॥ श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः ॥

गुरुपरम्परामें श्रीकृष्णचैतन्यके अधीन चौथी पीढ़ीके महापुरुष श्रीरूपानुग अप्राकृत-कविकुलश्रेष्ठ-
ॐ विष्णुपाद **श्रीश्रीमद् कृष्णदास-कविराज-गोस्वामी**-रचित

श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत

मध्यलीला [प्रथम भाग (अध्याय 1-14)]

गुरुपरम्परामें श्रीकृष्णचैतन्यके अधीन आठवीं पीढ़ीके पुरुषप्रधान श्रीरूपानुगवर-
ॐ विष्णुपाद **श्रीश्रीमद् सच्चिदानन्द-भक्तिविनोद-ठाकुर**-रचित

अमृतप्रवाह-भाष्य,

गुरुपरम्परामें श्रीकृष्णचैतन्यके अधीन नौवीं पीढ़ीके श्रेष्ठ परिजन परमहंस-परिव्राजकाचार्य-श्रीरूपानुगश्रेष्ठ-
श्रीब्रह्ममाध्वगौड़ीय-सम्प्रदायके सर्वोत्तम संरक्षक-
ॐ विष्णुपाद परमहंसस्वामी **श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद**-रचित
श्रीस्वरूप-रूप-विरोधी समस्त-कुसिद्धान्तोंको निरस्त करनेवाला

अनुभाष्य

एवं

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी कृत
'अमृतानुकणा', विविध गौड़ीय वैष्णवाचार्योंके लेखों एवं नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद
अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके प्रवचनोंसे सङ्कलित 'अमृतानुकणिका'
भाष्य, भूमिका, विविध सूची और विवरण आदि-सहित

गुरुपरम्परामें श्रीकृष्णचैतन्यके अधीन दसवीं पीढ़ीके श्रेष्ठ परिजन
श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता-आचार्य-भास्कर
नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके अनुकम्पा-पात्र
नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके-
आदेश-निर्देशानुसार उनके चरणाश्रितजनोंके द्वारा
अनुवादित और सम्पादित

प्रकाशक : इन्टरनेशनल गौड़ीय वेदान्त पब्लिकेशन्स

मूल बङ्गला पयार, संस्कृत श्लोक, अमृतप्रवाह भाष्य, अनुभाष्य,
अमृतानुकणा और अमृतानुकणिका सहित प्रकाशित

प्रथम संस्करण— *श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकी 7वीं विरह तिथि, 12 दिसम्बर, 2017*

1000 प्रतियाँ

卐 卐 卐 卐 卐

ग्रन्थ प्राप्ति स्थान

★ **श्रीरमणविहारी गौड़ीय मठ**	B–3, म्यूजिकल फाँऊन्टेन पार्कके निकट, जनकपुरी, **नई दिल्ली** ✆ 9810192540, 8285211049
★ **श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ**	जवाहर हाट, **मथुरा** (उ.प्र.) ✆ 0565–2502334
★ **श्रीरूप–सनातन गौड़ीय मठ**	दान गली, **वृन्दावन** (उ.प्र.) ✆ 9456828001
★ **श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठ**	दसविसा, राधाकुण्ड रोड, **गोवर्धन** (उ.प्र.) ✆ 0565–2815668
★ **श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठ**	कोलेरडाङ्गा लेन, **नवद्वीप** (प.ब.) ✆ 9153125442
★ **श्रीराधामाधव गौड़ीय मठ**	162, सैक्टर–16A, **फरीदाबाद** (हरियाणा) ✆ 9911283869
★ **जयश्री दामोदर गौड़ीय मठ**	चक्रतीर्थ रोड़, **जगन्नाथपुरी** (ओडीशा) ✆ 9776238328
★ **श्रीराधागोविन्द गौड़ीय मठ**	D–5, सैक्टर–55, **नोएडा**, (उ.प्र.) ✆ 9910400878
★ **खण्डेलवाल एण्ड सन्स**	अठखम्बा बाजार, **वृन्दावन** (उ.प्र.) ✆ 0565–2443101

विषय-सूची

	उद्धृत ग्रन्थ ○ ○ ○ ○ ○ ○ ○ ○ ○ ○ ○	i-iii
	अध्याय विवरण ○ ○ ○ ○ ○ ○ ○ ○ ○ ○ ○	iv-vi
अध्याय 1	मध्यलीला-सूत्रवर्णन ○ ○ ○ ○ ○ ○ ○ ○ ○	3-48
अध्याय 2	अन्त्यलीलाका सूत्ररूपमें प्रेमोन्माद-प्रलाप-वर्णन	51-79
अध्याय 3	संन्यास ग्रहण करनेके बाद श्रीअद्वैत-गृहमें भोजन-विलास-वर्णन ○ ○ ○ ○ ○ ○ ○ ○	81-110
अध्याय 4	श्रीमाधवेन्द्रपुरी-चरितामृतास्वादन ○ ○ ○	113-139
अध्याय 5	साक्षिगोपाल-चरित्र-वर्णन ○ ○ ○ ○ ○ ○	141-159
अध्याय 6	सार्वभौम-उद्धार ○ ○ ○ ○ ○ ○ ○ ○ ○ ○	161-209
अध्याय 7	दक्षिणयात्रामें 'वासुदेव-उद्धार' ○ ○ ○ ○ ○	211-230
अध्याय 8	रामानन्दराय-सङ्गोत्सव ○ ○ ○ ○ ○ ○ ○ ○	233-337
अध्याय 9	दक्षिणदेश-तीर्थ-भ्रमण ○ ○ ○ ○ ○ ○ ○ ○	339-402
अध्याय 10	वैष्णवमिलन ○ ○ ○ ○ ○ ○ ○ ○ ○ ○ ○	405-431
अध्याय 11	'बेड़ा-कीर्त्तन'-विलास-वर्णन ○ ○ ○ ○ ○ ○	433-463

अध्याय 12	गुण्डिचा-मन्दिर-मार्जन	465-494
अध्याय 13	रथके आगे नृत्य	497-527
अध्याय 14	'हेरा-पञ्चमी'-यात्रा-दर्शन	529-562
	श्लोक सूची	563-566
	पद्य सूची	567-582
	शब्दकोश	583-590

साङ्केतिक चिह्नोंकी सूची

अन्त्य	—	अन्त्यलीला	आदि	—	आदिलीला
उःनीः	—	उज्ज्वलनीलमणि	कठः	—	कठोपनिषद
छाः	—	छान्दोग्योपनिषद	तैः	—	तैत्तिरयोपनिषद
नाःपःराः	—	नारदपञ्चरात्र	ब्रःसः	—	ब्रह्मसंहिता
बृःआः	—	बृहदारण्यकोपनिषद	मध्य	—	मध्यलीला
मःभाः	—	महाभारत	भःरःसिः	—	भक्तिरसामृतसिन्धु
भाः	—	भागवत	विःपुः	—	विष्णुपुराण
श्वेः	—	श्वेताश्वतरोपनिषद	हःभःविः	—	हरिभक्तिविलास

निवेदन

हमारे परमाराध्य गुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीकी अपार कृपासे गौड़ीय वैष्णवाचार्योंकी विविध टीकाओं सहित हिन्दी भाषामें श्रीचैतन्यचरितामृतकी दो भागोंमें आदिलीला प्रकाशित करनेके पश्चात् अब 'मध्यलीला प्रथम भाग' का प्रकाशन कार्य सम्पन्न हुआ है। यह कार्य उनकी आज्ञा एवं उनके द्वारा प्रदत्त शक्तिसे ही सम्पादित हुआ है। श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामीने श्रीचैतन्य महाप्रभुके द्वारा अनुमोदित गूढ़ तत्त्व-सिद्धान्तों और सर्वोच्च रस-तत्त्वका अनूठा, अद्भुत और चमत्कारी समन्वय इस ग्रन्थमें अति सरल बङ्गला भाषामें करके अपने अप्राकृत कवित्वका परिचय प्रदान किया है। "मितञ्च सारञ्च वचो हि वाग्मिता", श्रील कविराज गोस्वामीकी लेखनी इस उक्तिका उज्ज्वल उदाहरण है, उन्होंने अति अल्प शब्दोंमें समस्त शास्त्रोंके सारको प्रमाण सहित इस ग्रन्थमें प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थकी भाषा सरल होनेपर भी इसमें अत्यन्त गूढ़ रहस्य समन्वित हैं। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर और श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरने अपनी टीकाओं एवं अनेकानेक लेखोंके द्वारा उन गूढ़ रहस्योंको उद्‌घाटित किया है। इन टीकाओं और लेखों तथा श्रील गुरुदेवके प्रवचनोंको इस प्रकाशनमें समन्वय करके ग्रन्थके गूढ़ भावोंको सर्वसाधारणके लिये बोधगम्य बनानेका हमारा प्रयास है।

उनके मनोवाञ्छित कार्यको सम्पूर्ण करनेके लिये प्रकाशन मण्डलीके सेवक निरन्तर प्रयासशील हैं और श्रील गुरुदेवकी प्रेरणा एवं निरुपाधिक निरवधि कृपाशक्ति हमें इस महत् कार्यमें सदा उत्साहशील बनाये रखती है। यह अति हर्षका विषय है कि श्रीचैतन्यचरितामृतका 'मध्यलीला प्रथम भाग' भी अब प्रकाशित हो गया है और श्रीगुरुदेवकी प्रसन्नताके लिये उनकी निज वस्तुको उनके ही करकमलोंमें अर्पित करते हुए परमानन्दका अनुभव कर रहे हैं।

इस ग्रन्थके प्रकाशनके लिये आत्मीय सहायता एवं प्रेरणाके लिये हम श्रीयुता उमादेवी दासीके आभारी हैं। इस ग्रन्थमें कुछ त्रुटियोंका रह जाना स्वाभाविक है। सुधी पाठकोंके द्वारा उनका संशोधनपूर्वक पाठ करनेसे हम आनन्दित होंगे।

प्रकाशन मण्डली
इन्टरनेशनल गौड़ीय वेदान्त पब्लिकेशन्स (IGVP)

प्रकाशन-मण्डली

अनुवाद और विन्यास (Translation & Layout) :—

श्रीमान् गोकुलचन्द्र दास

शोधकार्य (Research) :—

श्रीमती जानकी दासी / श्रीमान् गोकुलचन्द्र दास

टङ्कण (Typing) :—

श्रीमती ऐश्वर्य दासी / श्रीमती प्रज्ञा दासी

संस्कृत–हिन्दी अनुवाद :—

श्रीमान् डॉ अच्युतलाल भट्ट (पी॰एच॰डी॰)

प्रूफ–संशोधन (Proof Reading) :—

श्रीमती कुन्दलता दासी

मुखपृष्ठ चित्र :—

श्रीमान् अनुज

रेखा चित्र :—

श्रीमान् गुलशन / श्रीमान् राधेश्याम

प्रकाशक :—

श्रीपाद रामचन्द्र दास

इन्टरनेशनल गौड़ीय वेदान्त पब्लिकेशन्स

श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत मध्यलीला (प्रथम भाग)

उद्धृत प्रमाण-ग्रन्थ तालिका

आदि पुराण—11/28; **उज्ज्वलनीलमणि—8/**110, 161,195; **14/**163, 174, 187, 192, 197; **उत्तररामचरित—7/**73; **काव्यप्रकाश—1/**58, **13/**121; **कूर्मपुराण—9/**211, 212; **कृष्णकर्णामृत—2/**58, 61, 65, 74; **10/**178; **कृष्णचैतन्योक्त श्लोक—1/**211; **2/**45; **गीतगोविन्द—8/**105, 106, 143; **गोविन्दलीलामृत—8/**182, 206, 211; **14/**181, 189, 194; **गोस्वामीपादोक्त श्लोक—2/**28; **14/**200; **गौतमीय-तन्त्र—8/**216; **चैतन्यचन्द्रोदय नाटक—3/**28; **6/**142, 254, 255; **10/**119; **11/**8, 11, 47, 151; **जगन्नाथवल्लभ-नाटक—2/**18, 36; **दानकेलिकौमुदी—14/**180; **नारदपञ्चरात्र—9/**157; **पद्मपुराण—3/**28; **6/**181, 182, 225, 226; **8/**98; **9/**29, 32; **11/**31; **पद्यावली—1/**76; **4/**197; **8/**69, 70; **13/**78, 80, 121; **बृहन्नारदीयपुराण—6/**242; **वैष्णवतोषणी—2/**42; **ब्रह्मसंहिता—8/**136, 163; **14/**227; **ब्रह्माण्डपुराण—9/**33; **भक्तिरसामृतसिन्धु—1/**190; **8/**84, 141, 156, 188, 190; **9/**117, 146; **10/**178; **14/**228; **भगवत्सन्दर्भ—8/**153; **भगवद्गीता—9/**265; **भागवत—2/**42; **3/**36; **6/**84, 101-103, 108, 109, 149, 186, 235, 261, 270; **7/**143; **8/**6, 40, 62, 67, 72, 75, 77, 78, 80, 81, 89, 92, 94, 99, 139, 145, 147, 219, 224, 227, 232, 266, 275, 276; **9/**114, 121, 123, 132, 143, 259, 260, 262, 264, 266, 270; **10/**12; **11/**29, 30, 32, 100, 104, 118, 192; **13/**79, 136, 160; **14/**13, 158; **भागवतामृत—8/**98; **महाभारत—6/**104; **9/**30; **10/**170; **यामुनाचार्यकृत-श्लोक**—1/203, 206; **8/**73; **11/**151; **रघुवंश—10/**145; **रामायण (वाल्मिकी-कृत)—10/**146; **रूपगोस्वामीकृत श्लोक—1/**76; **लघुभागवतामृत—9/**157; **11/**28, 31; **ललितमाधव—1/**84; **8/**149; **9/**150; **विदग्धमाधव—2/**52; **विष्णुपुराण—6/**154-157; **8/**58, 153, 156; **13/**77; **श्वेताश्वतर उपनिषद्—10/**141; **साहित्यदर्पण—13/**221; **स्तवमाला—13/**207; **स्तोत्ररत्न—8/**73; **हयशीर्षपञ्चरात्र—6/**142; **हरिभक्तिविलास—9/**33 ।

अमृतप्रवाह भाष्यमें उद्धृत ग्रन्थादि-तालिका

ऐतरयोपनिषद्—6/143-148; **गोविन्ददासका कड़चा—8/**14; 9/93; **चैतन्यचन्द्रोदय-नाटक—8/**245-257; **9/**355-357; **चैतन्यभागवत—1/**151; **4/**4; **5/**140; **चैतन्य-शतनाम—7/**150; **जगन्नाथवल्लभ-नाटक—5/**20; **नाटक-चन्द्रिका—1/**134; **पातञ्जल-दर्शन—6/**269; **प्रपन्नामृत—7/**113; **प्रेमाम्भोज-मकरन्द-स्तोत्र—8/**168-181; **भागवत—8/**101-102; **9/**133-140; **11/**56; **14/**8; **मुण्डकोपनिषद्—6/**158-163; **श्वेताश्वतर उपनिषद्—6/**133-141, 150-153; **सङ्गीत दामोदर—10/**116; **सात्वतशास्त्र—9/**48; **साहित्य-दर्पण—1/**134; **हरिभक्तिविलास—8/**127 ।

अनुभाष्यमें उद्धृत ग्रन्थादि-तालिका

अध्यात्म रामायण—9/11; अमृतप्रवाह भाष्य—6/97; आदिपुराण—8/246; इतिहाससमुच्चय—8/246; उज्ज्वलनीलमणि—1/87; 2/66; 6/13; 8/172, 175, 202-205; 14/141-153, 159, 165, 168; उपदेशामृत (रूपगोस्वामीकृत)—12/195; ऐतरयोपनिषद्—6/143-144; कठोपनिषद्—6/87; 8/307-309; 9/195; 11/37-38; कर्णूल-म्यानुयेल—1/106; कल्याण-कल्पतरु—12/7-9, 59-61; कात्यान-गृहसूत्र—8/127; काशीखण्ड—9/157; कूर्मपुराण—6/180; कौपीन-पञ्चक (शङ्कराचार्य)—6/121; गञ्जाम-म्यानुयेल—7/113; गरुड़-पुराण—8/246; गोपालतापनी-उपनिषद्—8/137; गोविन्द भाष्य (श्रीमद्भागवत)—11/195; गौतमीय-तन्त्र—13/142; चैतन्यचन्द्रामृत—7/37; 8/246; 10/175-177; चैतन्यचन्द्रोदय-नाटक—10/106; चैतन्यचन्द्रोदय-नाटक (टिप्पनी)—10/105; चैतन्यभागवत—4/186; 5/140; चैतन्याष्टक—13/207; छान्दोग्योपनिषद्—6/145; 9/270; 12/194; तत्त्व-सन्दर्भ—6/135; तन्त्र—12/212, 215; ताञ्जोर गेजेटियार—9/74, 78-79; तैत्तरीय उपनिषद्—6/143-145, 172; 8/266; तैत्तरीय श्रुतिभाष्य (राघवेन्द्र यति)—6/143-144; दक्षिण आर्कट म्यानुयेल—9/38, 73; दक्षिण कानाड़ा म्यानुयेल—9/245; दुर्गम-सङ्गमनी—8/202-205; नरोत्तमदास ठाकुरकी प्रार्थना—8/137; 11/67; 12/135; नारायणव्यूह स्तव—8/246; पदामृत-समुद्र (राधामोहन ठाकुर)—3/114; पद्मपुराण—8/35-36, 44; 11/32; पूर्णप्रज्ञ-दर्शन—6/135; पत्थरके पटलपर लिखे श्लोक—7/113; प्रेमविवर्त्त—8/192; प्रेमविलास-विवर्त्त—8/192; बाजसेनकी शाखा—8/121; बाधूल-शाखा—6/143-144; बृहदारण्यक-श्रुति—12/194; बृहद्वामन-पुराण—8/246; बृहद्विष्णु-पुराण—3/99; बृहद्भागवतामृत—8/248; 14/126; बृहन्नारदीय-पुराण—8/246; बोम्बाइ गेजेटियार—9/245, 280, 281, 316; ब्रह्मसंहिता—8/137; 10/179-181; ब्रह्मसूत्र—6/135, 147; 8/266, 308-310; भक्तिरत्नाकर—1/35-44, 189; 9/82; भक्तिरसामृतसिन्धु—2/35, 47, 66, 72; 3/127, 162; 4/202; 6/12; 8/202-205; 12/135; 13/142; 14/157; भविष्यपुराण—6/137; भरद्वाज-संहिता (पञ्चरात्र)—1/263; भागवत—1/189; 2/29-34; 3/96, 97, 181; 4/179, 186; 5/28; 6/95, 143, 144, 263-265; 8/5, 44, 57, 60, 64, 127, 245-257, 264-266; 9/74, 80, 94-96, 102, 181, 195, 201, 218, 234, 260, 264, 270, 360, 362; 10/10, 11, 175-177; 12/32, 56, 184; 13/139, 142; भागवत-तात्पर्य (मध्व)—9/11; भावार्थ-दीपिका—6/95, 144; 8/5; भिजागापटम्-गेजेटियार—8/3; मध्व-विजय—9/245; मध्व-भाष्य—6/137, 147; मनःशिक्षा (दास गोस्वामी)—8/64; मनुसंहिता—10/154; महाभारत—8/127; 9/175, 310; मुकुन्दमालास्तोत्र—9/271; मुण्डकोपनिषद्—6/172; 8/307-309; 12/59-61; मुरारी-कड़चा—10/185; राधारस-सुधानिधि—13/207; रामायण—9/218, 312; लघुभागवतामृत—6/263-265; 9/138-139; 12/212, 215; लघुभागवतामृत-टीका (बलदेव)—6/263-265; विद्यापतिका गीतिग्रन्थ—3/114; विवर्त्तविलास (बाउलका ग्रन्थ)—8/192; विलापकुसुमाञ्जली—1/283-284; वेदान्तदर्शन (गौड़ीय)—8/192; वेदान्त-पारिजात—6/135; वेदार्थसंग्रह (श्रीरामानुज)—8/57; वैष्णव-मञ्जुषा—9/244-245; 10/90; 11/84; शरणागति (ठाकुर भक्तिविनोद)—3/194; 7/69; श्वेताश्वतरोपनिषद्—6/143-144, 150; 8/264; 9/102; श्रीभाष्य—6/135; श्रुति—8/266; सप्तशती—8/90; सर्वज्ञसूक्त—6/198; सर्वसम्वादिनी—6/135; 8/192; स्कन्दपुराण—6/147; 8/246; स्तवमाला—7/37; स्मृति—10/137; हरिभक्तिविलास—4/59-62; 8/127; 12/126-127 ।

अमृतानुकणामें उद्धृत ग्रन्थादि-तालिका

उपदेशामृत—5/142-143; गीता—13/80; चैतन्यभागवत—3/4; छान्दोग्य-भाष्य—9/276; जावालोपनिषद्—3/4; नारायणसंहिता—9/276; न्यायरक्षामणि—5/142-143; बृहदारण्यक—13/80; ब्रह्मवैवर्त्त-पुराण—3/4; ब्रह्मसूत्र—9/276; ब्रह्मसूत्र (मध्वभाष्य)—9/276; भागवत—3/4, 9/276, 13/80; मध्वमत-प्रकाशक—9/276; महाभारत—9/276; महाभारत-तात्पर्य—9/276; माठर श्रुति—9/276; मनुसंहिता—3/4; मुण्डकोपनिषद् (मध्यभाष्य)—9/276; रघुनन्दन—3/4; शिवार्क-मणिदीपिका—5/142-143; श्रुति—13/80।

अमृतानुकणिकामें उद्धृत ग्रन्थादि-तालिका

उज्ज्वलनीलमणि—2/5, 2/66-70; गरुड़पुराण—9/192; गीता—8/57, 59; 9/192; दानकेलिकौमुदी—2/61; नारद-पञ्चरात्र—8/57, 60; भक्तिरसामृतसिन्धु—8/67; 9/94-96; भक्तिसन्दर्भ—8/68; भागवत—8/59, 63, 67-68, 97-99; 9/94-96; महाभारत—8/57; माठरश्रुति—8/67; विदग्धमाधव—8/1; श्रुति—8/59;

श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत

मध्यलीला (प्रथम भाग) अध्याय-विवरण

पहला अध्याय— 3-48

मध्य और अन्त्य लीलाकी भूमिका या सूत्रवर्णन।

दूसरा अध्याय— 51-79

अन्तिम 12 वर्ष गम्भीरामें अन्तरदशामें अवस्थित महाप्रभुका श्रीराधाके आवेशमें दिव्योन्माद और प्रलाप आदि, एवं श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थके मूल आधारका कथन।

तीसरा अध्याय— 81-110

संन्यास ग्रहण करनेके बाद महाप्रभुका राढ़देशमें भ्रमण, श्रीनित्यानन्द प्रभुकी चेष्टासे शान्तिपुरमें श्रीअद्वैताचार्यके घरमें आकर शचीमाताके द्वारा बनाया गया भोजन ग्रहण करना और नृत्य-कीर्तनलीला, पुरीमें निवास स्वीकार और श्रीनित्यानन्द प्रभु आदि चार भक्तोंके साथ पुरीकी यात्रा।

चौथा अध्याय— 113-139

रेमुणामें उपस्थित होकर श्रीनित्यानन्द आदिको श्रीईश्वरपुरीके मुखसे सुनी हुयी श्रीमाधवेन्द्र पुरी गोस्वामीके द्वारा गोवर्धनधारी गोपालकी प्रतिष्ठा और अन्नकूट महोत्सव, श्रीमाधवेन्द्रपुरीके रेमुणामें आनेपर श्रीगोपीनाथके द्वारा उनके लिये क्षीरकी चोरी एवं श्रीमाधवेन्द्रपुरीके द्वारा चन्दन-कर्पूर संग्रह करके श्रीगोपीनाथके अङ्गमें लेपन आदिका वृत्तान्त वर्णित है।

पाँचवाँ अध्याय— 141-159

साक्षीगोपालमें आनेपर श्रीनित्यानन्द प्रभुके मुखसे महाप्रभु आदिका बड़े ब्राह्मण, छोटे ब्राह्मण और साक्षी गोपालके चरित्रका श्रवण, कमलपुरमें श्रीनित्यानन्द प्रभुके द्वारा महाप्रभुका दण्ड भङ्ग, आठारनालामें आनेपर दण्ड भङ्गकी बात सुनकर महाप्रभुका अकेले पुरीमें आगमन और श्रीजगन्नाथजीके दर्शनसे मूर्च्छाकी प्राप्ति।

छठा अध्याय— 161-209

श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीमुकुन्द आदिके द्वारा महाप्रभुका दर्शन, महाप्रभुको बाह्य दशाकी प्राप्ति, सभीके द्वारा प्रसादका सम्मान। अन्य एक दिन महाप्रभुके परमेश्वरत्वके सम्बन्धमें श्रीगोपीनाथाचार्यके साथ सशिष्य श्रीभट्टाचार्यका कुतर्क, मायावादी पण्डित सार्वभौमके मुखसे सात दिन चुपचाप वेदान्त व्याख्याका श्रवण और वेदान्तके निर्विशेष ब्रह्मपरतारूप कुतर्कका खण्डन। श्रीसार्वभौमके द्वारा 'आत्मारामश्च' श्लोककी नौ प्रकारकी व्याख्या, महाप्रभुकी उन नौ प्रकारके अतिरिक्त अठारह प्रकारकी व्याख्या; श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यकी पराजय, श्रीसार्वभौमको चतुर्भुज और द्विभुजरूपका प्रदर्शन और उद्धारका साधन।

सातवाँ अध्याय— 211-230

कृष्णदास ब्राह्मणके साथ महाप्रभुकी दक्षिणयात्रा, मार्गमें प्रत्येक ग्राम और नगरवासियोंको वैष्णव बनाना और कूर्मस्थानमें वासुदेव ब्राह्मणको कुष्ठरोगसे मुक्त करना।

आठवाँ अध्याय— 233-337

गोदावरी तटपर श्रीरामानन्दके साथ महाप्रभुका

मिलन और श्रीरायके मुखसे साध्य-साधन तत्त्वकी अन्तिम सीमातक श्रवण, श्रीरायको महाप्रभुका रसराज-महाभाव रूपका प्रदर्शन और श्रीरायको राजकार्य त्यागकर पुरी आकर मिलनेका आदेश देकर पुनः दक्षिणयात्रा।

नौवाँ अध्याय— 339-402

दक्षिण देशमें अनेक तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए अन्य अभिलाषी, ज्ञानी और पाषण्डी लोगों और अन्य साम्प्रदायिक वैष्णवोंका कृष्ण नाममें प्रवर्त्तन, सिद्ध होनेपर भी राम-नामकारी ब्राह्मणको कृष्णनाममें प्रवर्त्तन। मार्गमें तार्किक, मीमांसक, मायावादी, पाषण्डी आदि समस्त भक्ति विरोधी मतोंका खण्डन करके कृष्णभक्ति सिद्धान्तका स्थापन, बौद्ध आचार्यकी पराजय, रङ्गक्षेत्रमें वैङ्कटभट्टके घरमें चातुर्मास्य यापन और श्रीलक्ष्मीनारायण उपासक श्रीसम्प्रदायी भट्टको सपरिवार श्रीराधाकृष्णकी उपासनामें प्रवर्त्तन, ऋषभ पर्वतमें श्रीपरमानन्दपुरी गोस्वामीके साथ भेंट और पुरी गोस्वामीकी नीलाचलकी ओर यात्रा, दक्षिण मथुरामें रामसीताके भक्त ब्राह्मणको 'अप्राकृत वैकुण्ठेश्वरी सीतादेवी प्राकृत असुर रावणके द्वारा दर्शनसे अतीत हैं'—ऐसा कहकर सान्त्वना प्रदान करना; बादमें रामेश्वरसे कूर्मपुराण-श्लोक लाकर उनको दिखाना। मालावार देशमें भट्टथारियोंके हाथोंसे सङ्गी कृष्णदासका उद्धार, पयस्विनी तटपर ब्रह्मसंहिताके पञ्चम अध्यायका संग्रह; शृङ्गेरी मठमें जाना; उडुपीमें मठाधीश मध्वाचार्यकी पराजय, पाण्डरपुरमें श्रीरङ्गपुरीके मुखसे श्रीशङ्करारण्य अर्थात् बड़े भाई श्रीविश्वरूपकी स्वधाम प्राप्ति (अप्रकट)का संवाद श्रवण। कृष्णवेन्वा नदीके तटपर 'कृष्णकर्णामृत'का संग्रह और विद्यानगरमें पुनः लौटकर श्रीरामानन्दके साथ भेंट करके अलालनाथसे होते हुये पुरीमें वापस लौटना।

दसवाँ अध्याय— 405-431

महाप्रभुका श्रीकाशीमिश्रके घरमें अवस्थान, श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके द्वारा क्षेत्रवासी वैष्णवोंके परिचयकी प्राप्ति करना, कृष्णदासको नवद्वीपमें भेजना, गौड़ीय भक्तोंकी पुरीमें आनेकी तैयारी, श्रीपरमानन्द पुरीका नवद्वीपसे पुरीमें आगमन, श्रीदामोदर स्वरूपका काशीसे आगमन और महाप्रभुसे मिलन, श्रीईश्वरपुरीके शिष्य श्रीगोविन्दका आगमन और महाप्रभुकी सेवामें उनकी नियुक्ति, ब्रह्मानन्द भारतीसे चर्माम्बरका त्याग करवाना और उनका महाप्रभुमें श्रीकृष्ण ज्ञान; बलवान काशीश्वरका आगमन।

ग्यारहवाँ अध्याय— 433-463

श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके द्वारा प्रतापरुद्रकी महाप्रभुसे मिलन सम्पादन करनेकी चेष्टा, महाप्रभुकी अनिच्छा, राजकार्यसे मुक्त होकर श्रीरायका महाप्रभुका दर्शन और राजा प्रतापरुद्रके गुणोंका कीर्तन, राजाके प्रति महाप्रभुके चित्तभावका परिवर्तन, पुरुषोत्तममें अनवसर-कालमें महाप्रभुका आलालनाथमें गमन और वहाँसे लौटनेपर गौड़देशसे समागत श्रीअद्वैताचार्य आदि भक्तोंके साथ मिलन, श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके साथ श्रीगोपीनाथाचार्यके द्वारा महलके ऊपर चढ़कर राजा प्रतापरुद्रको गौड़ीय भक्तोंका परिचय-दान, राजाके द्वारा उनको रहनेके स्थान और महाप्रसादकी व्यवस्था, महाप्रभुका श्रीहरिदासको टोटामें अर्थात् एक बगीचेमें स्थान प्रदान करना और सभीके प्रसाद सेवन करनेके बाद संध्याके समय मन्दिरमें चार मण्डलियाँ बनाकर कीर्तन।

बारहवाँ अध्याय— 465-494

श्रीनित्यानन्द प्रभु आदि भक्तोंका महाप्रभुके पास प्रतापरुद्रकी आर्त्तिका ज्ञापन करना और राजाको सान्त्वना देने हेतु महाप्रभुके द्वारा व्यवहार किये गये एक बहिर्वासका खण्ड प्रदान करना, बादमें श्रीरामानन्दके आग्रहसे निकट आये राजकुमारको 'कृष्ण' जानकर महाप्रभुका उसे आलिङ्गन दान, उस प्रेमाविष्ट पुत्रके स्पर्शसे राजाको महाप्रभुकी कृपाकी प्राप्ति और प्रेम उदय, गुण्डिचा-मन्दिर मार्जन और धुलाई, एक गौड़ीय

भक्तके द्वारा महाप्रभुके चरणोदकका पान, श्रीअद्वैताचार्यके पुत्र गोपालकी नृत्य करते हुये मूर्च्छा और महाप्रभुकी कृपासे पुनः चेतनताकी प्राप्ति, सभीके द्वारा स्नान और उसके बाद प्रसादका सम्मान, श्रीनित्यानन्द और अद्वैतप्रभुकी प्रेम-कलहलीला और सभीके द्वारा श्रीजगन्नाथके नव-यौवनका दर्शन।

तेरहवाँ अध्याय— 497-527

श्रीजगन्नाथकी पाण्डुविजयका दर्शन, राजाके द्वारा मार्गकी झाड़ू लगाकर सफाई करना, रथके आगे सात मण्डलियोंमें महाप्रभुका नृत्य और बलगण्डि उपवनमें विश्राम।

चौदहवाँ अध्याय— 529-562

विश्रामकालमें प्रतापरुद्रका वैष्णववेशमें एकान्तमें महाप्रभुके चरण दबाना, उनके मुखसे कालोचित श्लोकका पाठ सुनकर प्रेममें आविष्ट महाप्रभुका उनको आलिङ्गनका दान, सभीके द्वारा बलगण्डिमें भोगके प्रसादका सम्मान, महाप्रभुके द्वारा रथका सञ्चालन, इन्द्रद्युम्न सरोवरमें भक्तोंके साथ जलक्रीड़ा, हेरा पञ्चमी-यात्राका दर्शन, स्वरूप दामोदरका महाप्रभु और श्रीवाससे वैकुण्ठ धाम एवं लक्ष्मीके ऐश्वर्यके साथ व्रजधाम और श्रीराधाके ऐश्वर्य, माधुर्य तथा प्रेमके तारतम्यको बतलाना; कुलीन-ग्रामके भक्तोंको महाप्रभुके द्वारा प्रत्येक वर्ष श्रीजगन्नाथके लिये मजबूत रेशमी डोरी लानेका आदेश।

॥श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत॥

मध्यलीला प्रथम भाग

अध्याय 1-14

चित्र-1

पहला अध्याय

कथासार—इस अध्यायमें महाप्रभुकी सम्पूर्ण मध्यलीला और शेषलीलाके प्रथम छह वर्षोंकी लीलाका सूत्ररूपमें वर्णन हुआ है। "यः कौमारहरः" श्लोकका पाठ करते हुए महाप्रभुने जिस भावका प्रकाश किया था, उसी भावको श्रीरूप गोस्वामीने "सोऽयं कृष्णः" श्लोक रचकर स्पष्ट किया था। श्रीरूप गोस्वामीके इस श्लोकको पढ़कर महाप्रभुने उनके ऊपर विशेष कृपा की थी। इस अध्यायमें श्रीरूप, श्रीसनातन और श्रीजीव गोस्वामीके द्वारा विरचित सभी ग्रन्थोंका उल्लेख किया गया है। महाप्रभुने रामकेलि ग्राममें श्रीरूप और श्रीसनातन गोस्वामीपर कृपा की थी, इसका वर्णन भी इस अध्यायमें हुआ है।

—(अमृतप्रवाह भाष्य)

श्रीगौरकृपासे अज्ञानीको भी सर्वज्ञताकी प्राप्ति :—

यस्य प्रसादादज्ञोऽपि सद्यः सर्वज्ञतां व्रजेत्।
स श्रीचैतन्यदेवो मे भगवान् संप्रसीदतु॥ 1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अज्ञानीजन भी जिनकी कृपासे तत्क्षणात् सर्वज्ञता लाभ करते हैं, वे भगवान् श्रीचैतन्यदेव मेरे प्रति प्रसन्न हों॥ 1॥

अनुभाष्य—

यस्य (श्रीचैतन्यदेवस्य) प्रसादात् (अनुकम्पया) अज्ञः (अनभिज्ञः) अपि सद्यः सर्वज्ञतां व्रजेत् (सर्वेषु विषयेषु पारङ्गतो विज्ञो भवति), स भगवान् श्रीचैतन्यदेवः मे (मयि) संप्रसीदतु (सम्यक् प्रसन्नो भवतु)।

श्लोक-भावानुवाद—जिनकी कृपासे अनभिज्ञ व्यक्ति भी तुरन्त सभी विषयोंमें पारङ्गत हो जाते हैं, वे भगवान् श्रीचैतन्यदेव मेरे प्रति सम्पूर्ण रूपसे प्रसन्न हों॥ 1॥

श्रीगौर-निताइको प्रणाम :—

वन्दे श्रीकृष्णचैतन्य-नित्यानन्दौ सहोदितौ।
गौड़ोदये पुष्पवन्तौ चित्रौ शन्दौ तमोनुदौ॥ 2॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 2॥

अमृतप्रवाह भाष्य—मैं श्रीकृष्णचैतन्य और श्रीनित्यानन्दकी वन्दना करता हूँ, जो सबका मङ्गल करनेके लिये तथा अज्ञानरूपी अन्धकारको दूर करनेके लिये गौड़देशरूपी क्षितिजपर एक साथ चन्द्र एवं सूर्यके समान आश्चर्यजनक रूपसे उदित हुए हैं॥ 2॥

सम्बन्धाधिदेवताको प्रणाम :—

जयतां सुरतौ पङ्गोर्मम मन्दमतेर्गती।
मत्सर्वस्वपदाम्भोजौ राधामदनमोहनौ॥ 3॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 3॥

अमृतप्रवाह भाष्य—मैं पङ्गु और मन्दमति हूँ; जो मेरी एकमात्र गति हैं और जिनके चरणकमल ही मेरा समस्त धन हैं, वे परम कृपालु श्रीश्रीराधा-मदनमोहन जययुक्त हों॥ 3॥

अभिधेयाधिदेवताको प्रणाम :—

दीव्यद् वृन्दारण्यकल्पद्रुमाधः
श्रीमद्रत्नागारसिंहासनस्थौ।
श्रीश्रीराधाश्रीलगोविन्ददेवौ
प्रेष्ठालीभिः सेव्यमानौ स्मरामि॥ 4॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 4॥

अमृतप्रवाह भाष्य—ज्योतिर्मय-शोभायुक्त वृन्दावनके कल्पवृक्षके नीचे रत्नमन्दिरमें स्थित सिंहासनके ऊपर विराजमान श्रीश्रीराधागोविन्दकी प्रियसखियाँ उनकी सेवा कर रही हैं; मैं उनका स्मरण करता हूँ॥ 4॥

प्रयोजनाधिदेवताको प्रणाम :—

श्रीमान्‌रासरसारम्भी वंशीवटतटस्थितः।
कर्षन् वेणुस्वनैर्गोपीर्गोपीनाथः श्रियेऽस्तु नः॥ 5॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 5॥

अमृतप्रवाह भाष्य—रासरसके प्रवर्तक वंशीवटके तटपर स्थित होकर श्रीमद्गोपीनाथ वेणुध्वनिके द्वारा गोपियोंको आकर्षित कर रहे हैं; वे हमारे मङ्गलका विधान करें॥ 5॥

जय जय गौरचन्द्र जय कृपासिन्धु।
जय जय शचीसुत जय दीनबन्धु॥ 6॥

अनुवाद—कृपासिन्धु श्रीगौरचन्द्रकी जय हो, जय हो। दीन-पतितोंके एकमात्र बन्धु शचीनन्दन सदा जययुक्त होंवे॥ 6॥

जय जय नित्यानन्द जयाद्वैतचन्द्र।
जय जय श्रीवासादि गौरभक्तवृन्द॥ 7॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीअद्वैतचन्द्र प्रभु की जय हो, जय हो, श्रीवासादि गौरभक्तोंकी जय हो॥ 7॥

पहले आदिलीलामें सूत्रके साथ ही
मूल घटनाएँ वर्णित हुईं :—

पूर्वे कहिलुँ आदिलीलार सूत्रगण।
याहा विस्तारियाछेन दास-वृन्दावन॥ 8॥

अतएव तार आमि सूत्र-मात्र कैलुँ।
ये किछु विशेष, सूत्रमध्येइ कहिलुँ॥ 9॥

अनुवाद—मैंने पहले सूत्ररूपमें आदिलीलामें उन लीलाओंका वर्णन किया जिनका श्रीवृन्दावनदासने विस्तारसे वर्णन किया है। इसलिये मैंने उन लीलाओंका सूत्ररूपमें ही वर्णन किया और उनमें भी जो कुछ विशेष लीलाएँ थीं, उन्हें भी उन सूत्रोंके बीचमें ही कहा॥ 8-9॥

अब शेषलीलाका मुख्यसूत्र-वर्णनारम्भ :—

एबे कहि शेषलीलार मुख्य सूत्रगण।
प्रभुर अशेष लीला ना याय वर्णन॥ 10॥

अनुवाद—यद्यपि महाप्रभुकी असीम लीलाओंका वर्णन सम्भव नहीं है, तथापि अब उनकी मुख्य शेषलीलाओंका सूत्र रूपमें वर्णन करूँगा॥ 10॥

श्रीचैतन्यभागवतमें विस्तारसे वर्णित घटनाओंको सूत्ररूपमें
और उसमें संक्षेपमें वर्णित मुख्य-मुख्य घटनाओंका
सविस्तार वर्णन करनेकी प्रतिज्ञा :—

तार मध्ये येइ भाग दास-वृन्दावन।
'चैतन्यमङ्गले' विस्तारि' करिला वर्णन॥ 11॥

सेइ भागेर इहाँ सूत्रमात्र लिखिब।
ताहाँ ये विशेष किछु, इहाँ विस्तारिब॥ 12॥

अनुवाद—जिन लीलाओंका श्रीवृन्दावनदासने 'चैतन्यमङ्गल'में विस्तारसे वर्णन किया है, उनको यहाँ सूत्र रूपमें ही लिखूँगा और उसमें जो कुछ विशेष लीलाएँ हैं, उन्हें विस्तारपूर्वक कहूँगा॥ 11-12॥

अनुभाष्य—ऐसा जाना जाता है कि चैतन्यचरितामृतके रचनाकाल तक श्रीवृन्दावनदास ठाकुरके द्वारा रचित श्रीचैतन्यभागवतका नाम 'चैतन्यमङ्गल' था। जयानन्दके 'चैतन्यमङ्गल' नामसे जो अति आधुनिक भक्तिसिद्धान्त-विरोधी ग्रन्थका उल्लेख किया जाता है, वह एक नकली ग्रन्थ है। प्राचीनकालके किसी भी ग्रन्थमें उसका या उसके रचियता जयानन्दका कोई उल्लेख नहीं मिलता है। इससे यह सहज ही जाना जाता है कि 'जयानन्द' एक कृत्रिम नाम है॥ 11-12॥

वृन्दावनदास ठाकुरकी वन्दना :—

चैतन्यलीलार व्यास—दास वृन्दावन।
ताँर आज्ञाय करों ताँर उच्छिष्ट चर्वण॥ 13॥

भक्ति करि' शिरे धरि ताँहार चरण।
शेषलीलार सूत्र एबे करिये वर्णन॥ 14॥

अनुवाद—श्रीव्यासदेवके अवतार श्रीवृन्दावनदास ही चैतन्यलीलाके अधिकारी रचियता हैं, मैं तो उनकी आज्ञासे उनके उच्छिष्टको चबानेकी चेष्टा कर रहा हूँ। भक्ति-भावसे उनके चरणोंको अपने शीशपर रखकर अब मैं शेषलीलाका सूत्ररूपमें वर्णन कर रहा हूँ॥ 13-14॥

अनुभाष्य—*'चैतन्यलीलार व्यास'*—भगवान्‌के अवतारों और श्रीकृष्णकी लीलाओंके लेखक श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासदेव हैं। श्रीचैतन्यलीलाके लेखक श्रीवृन्दावनदास ठाकुर श्रीव्यास-स्वरूप अर्थात् उनके ही अवतार हैं। श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने जिन श्रीचैतन्य-लीलाओंका वर्णन नहीं किया है, उन्हीं बची हुई लीलाओंको उनके आनुगत्यमें ही उनके दास और पाल्य श्रीकृष्णदास लिख रहे हैं॥ 13॥

शेषलीलाका सूत्र-वर्णन आरम्भ; प्रथम चौबीस वर्ष गृहस्थ-अभिनयसे आदिलीला :—

चब्बिश वत्सर प्रभुर गृहे अवस्थान।
ताहाँ ये करिला लीला—'आदि-लीला' नाम॥ 15॥

अनुवाद—प्रथम चौबीस वर्ष महाप्रभु गृहमें रहे और उन्होंने वहाँ जो-जो लीलाएँ कीं, वे 'आदिलीला'के नामसे कही जाती हैं॥ 15॥

शेष चौबीस वर्षोंकी संन्यासीके अभिनयसे 'शेषलीला' :—

चब्बिश वत्सर शेष येइ माघमास।
तार शुक्लपक्षे प्रभु करिला संन्यास॥ 16॥

संन्यास करिया चब्बिश वत्सर अवस्थान।
ताहाँ येइ लीला, तार 'शेषलीला' नाम॥ 17॥

अनुवाद—चौबीसवें वर्षके अन्तमें माघमासके शुक्लपक्षमें महाप्रभुने संन्यास ग्रहण किया। संन्यास ग्रहण करनेके पश्चात् महाप्रभुने चौबीस वर्षों तक इस जगत्‌में रहकर जो लीलाएँ कीं, उन्हें 'शेषलीला' कहा जाता है॥ 16-17॥

मध्य और अन्त्य-भेदसे शेषलीला :—

शेषलीलार 'मध्य' 'अन्त्य',—दुइ नाम हय।
लीलाभेदे वैष्णव सब नाम-भेद कय॥ 18॥

अनुवाद—शेषलीलाके 'मध्य' और 'अन्त्य'—ये दो नाम हैं। लीलाके भेदानुसार सब वैष्णव इनका इन दो नामोंसे उल्लेख करते हैं॥ 18॥

शेष चौबीस वर्षोंके प्रथम छह वर्ष समस्त भारतमें प्रचाररूप मध्यलीला :—

तार मध्ये छय वत्सर—गमनागमन।
नीलाचल-गौड़-सेतुबन्ध-वृन्दावन॥ 19॥

अन्तिम अठारह वर्षोंकी आस्वादनरूप अन्त्यलीला :—

ताहाँ येइ लीला, तार 'मध्यलीला' नाम।
तार पाछे लीला—'अन्त्यलीला' अभिधान॥ 20॥

'आदिलीला', 'मध्यलीला', 'अन्त्यलीला' आर।
एबे 'मध्यलीला' किछु करिये विस्तार॥ 21॥

अनुवाद—(संन्यासके पश्चात्) पहले छह वर्ष महाप्रभुने यात्रामें बिताये। उन्होंने पुरीसे बङ्गाल और कन्याकुमारीसे वृन्दावन तक लगभग सम्पूर्ण भारतकी यात्रा की। इन छह वर्षोंमें उन्होंने जो लीलाएँ कीं, उनका नाम 'मध्यलीला' है और अन्तिम अठारह वर्षकी लीलाओंको 'अन्त्यलीला' कहा जाता है। महाप्रभुकी लीलाएँ समयके भेदसे 'आदि', 'मध्य' और 'अन्त्य' लीला कही जाती हैं। अब मैं मध्यलीलाको कुछ विस्तारसे कहूँगा॥ 19-21॥

बाकी अठारह वर्षोंमें पहले छह वर्ष भक्तसङ्गमें वास और पुरीमें आचार्यत्व :—

अष्टादशवर्ष केवल नीलाचले स्थिति।
आपनि आचरि' जीवे शिखाइला भक्ति॥ 22॥

तार मध्ये छय वत्सर भक्तगण-सङ्गे।
प्रेमभक्ति प्रवर्त्ताइला नृत्यगीतरङ्गे॥ 23॥

अनुवाद—महाप्रभु अन्तिम अठारह वर्ष केवल नीलाचल (श्रीजगन्नाथपुरी) में रहे और अपने आचरणसे उन्होंने जीवोंको भक्तिकी शिक्षा दी। इसमें छह वर्षोंतक अपने भक्तोंके सङ्ग महाप्रभुने नृत्य और गीतके माध्यमसे प्रेमाभक्तिकी शिक्षा दी॥ 22-23॥

प्रचारकवर्ग—(1) गौड़मण्डलमें निजगणोंके
साथ श्रीनित्यानन्द प्रभुका प्रचार :—

नित्यानन्द-गोसाञिरे पाठाइल गौड़देशे।
तेँहो गौड़देश भासाइल प्रेमरसे॥ 24॥

कृष्णप्रेमकी बाढ़में गौड़देशका डूबना :—

सहजेइ नित्यानन्द—कृष्णप्रेमोद्दाम।
प्रभु-आज्ञाय कैल याहाँ ताहाँ प्रेमदान॥ 25॥

श्रीनित्यानन्द-वन्दना और गुण-वर्णन :—

ताँहार चरणे मोर कोटि नमस्कार।
चैतन्येर प्रिय येहोँ लओयाइल संसार॥ 26॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीनित्यानन्द प्रभुको नीलाचलसे गौड़देश (बङ्गाल) कृपा वितरणके लिये भेजा। श्रीनित्यानन्द प्रभुने पूरे गौड़देशको श्रीकृष्णप्रेममें डुबो दिया। श्रीनित्यानन्द प्रभुमें स्वाभाविक रूपसे कृष्णप्रेम विराजमान है और महाप्रभुकी आज्ञासे उन्होंने उसे जहाँ-तहाँ-सर्वत्र ही दान किया। उनके श्रीचरणोंमें मेरा करोड़ों बार नमस्कार है, उन्होंने श्रीचैतन्य महाप्रभुकी भक्तिको लाकर सम्पूर्ण जगत्में वितरित किया है॥ 24-26॥

श्रीगौराङ्गके 'गौरवके भाई' और स्वयं प्रभु
होनेपर भी श्रीनिताइका गौर-दासाभिमान :—

चैतन्य-गोसाञि याँरे बले 'बड़ भाइ'।
तेँहो कहे, मोर प्रभु—चैतन्य-गोसाञि॥ 27॥

यद्यपि आपनि हये प्रभु बलराम।
तथापि चैतन्येर करे दास-अभिमान॥ 28॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभु उन्हें अपना बड़ा भाई कहते हैं, परन्तु वे चैतन्य महाप्रभुको अपना स्वामी कहते हैं। यद्यपि श्रीनित्यानन्द प्रभु स्वयं बलराम हैं, तथापि सदा वे अपनेमें महाप्रभुका दास होनेका अभिमान रखते हैं॥ 27-28॥

अचित्की सेवा और भोग छोड़कर नित्य चिद्-ईश्वरकी
सेवासे ही जीवको नित्य-आनन्दकी प्राप्ति :—

'चैतन्य' सेव, 'चैतन्य' गाओ, लओ 'चैतन्य'-नाम।
'चैतन्ये' ये भक्ति करे, सेइ मोर प्राण॥ 29॥

महापापी तक सभीको ही विभु चित्की
सेवामें नियुक्त करना और उनका उद्धार :—

एइ मत लोके चैतन्य-भक्ति लओयाइल।
दीन-हीन, निन्दक, सबारे निस्तारिल॥ 30॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभु सभीसे यही भिक्षा करते हैं कि 'श्रीचैतन्य-महाप्रभु' की सेवा करो, 'श्रीचैतन्य-महाप्रभु' की लीलाओंका गान करो और 'श्रीचैतन्य-महाप्रभु'के नामका जप करो। जो ऐसी 'श्रीचैतन्य-महाप्रभु'की भक्ति करता है, उसे श्रीनित्यानन्द प्रभु अपने प्राणोंके समान प्रिय मानते हैं। इस प्रकार श्रीनित्यानन्द प्रभुने संसारमें श्रीचैतन्य-भक्तिका मुक्त-हस्तसे वितरण करके सभी दीन-हीन (भक्तिहीन) और निन्दक व्यक्तियोंका भी उद्धार किया॥ 29-30॥

अनुभाष्य—आदिलीला 6/50-51 संख्या देखें॥ 27-30॥

(2) माथुरमण्डलमें श्रीरूप-सनातनके द्वारा प्रचार :—

तबे प्रभु व्रजे पाठाइल रूप-सनातन।
प्रभु-आज्ञाय दुइ भाइ आइला वृन्दावन॥ 31॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने श्रीरूप और श्रीसनातन गोस्वामीको व्रजमें भेजा। महाप्रभुकी आज्ञासे दोनों भाई उनकी मनोभीष्ट सेवाके लिये वृन्दावनमें आकर वास करने लगे॥ 31॥

(क) शुद्धभक्ति प्रचार, (ख) लुप्ततीर्थ उद्धार,
(ग) मठादि-स्थापनके द्वारा श्रीमूर्तिसेवा प्रचार :—

भक्ति प्रचारिये सर्वतीर्थ प्रकाशिल।
मदनगोपाल-गोविन्देर सेवा प्रचारिल॥ 32॥

अनुवाद—उन्होंने व्रजमें श्रीकृष्ण-भक्तिका प्रचार किया, व्रजमें लुप्त श्रीकृष्ण लीला-स्थलियोंका जगत्में प्रकाश किया। श्रीसनातन गोस्वामीने श्रीमदनगोपाल और श्रीरूप गोस्वामीने श्रीगोविन्ददेवजीके विग्रहोंको प्रकट करके उनकी सेवा परिपाटीको जगत्में स्थापित किया॥ 32॥

अनुभाष्य—अप्राकृत सेवामें रत और संसारसे विरक्त शुद्ध श्रीकृष्णभक्त ही भक्तिका प्रचार कर सकते

हैं तथा उनके द्वारा ही तीर्थके स्वरूपका प्रकाश होता है। कृत्रिम भक्तवेशधारी बाउलिया तो स्वयं ही चरित्रहीन होते हैं और वे केवल अपनी इन्द्रियोंके भोगोंके लिये भक्तिके प्रचार कार्य और मन्दिरोंके निर्माणमें प्रवृत्त होते हैं, इसलिये उनके इन कार्योंसे वैकुण्ठ तीर्थ प्रकाशित नहीं होते। वह तो केवल मायाकी क्रीड़ामात्र है॥ 32॥

(घ) सात्वतशास्त्र-प्रचार, (ङ) अधम-तारण :-

नाना शास्त्र आनि' कैला भक्तिग्रन्थ सार।
मूढ़ अधमजनेरे तेँहो करिला निस्तार॥ 33॥

सर्वशास्त्र-मीमांसा और अप्राकृत व्रज-रागभक्ति-प्रचार :-

प्रभु-आज्ञाय कैल सब शास्त्रेर विचार।
व्रजेर निगूढ़ भक्ति करिल प्रचार॥ 34॥

अनुवाद—वे अनेक शास्त्रोंको व्रजमें लेकर आये और उनके सारको अपने व्रजकी प्रेमाभक्तिके प्रतिपादक ग्रन्थोंमें प्रकाश किया। इस प्रकार उन्होंने अज्ञानी और पतित जीवोंका उद्धार किया। महाप्रभुकी आज्ञासे उन्होंने समस्त शास्त्रोंका विचार करके सर्वश्रेष्ठ और परम रहस्यमयी व्रजकी मधुर रसमयी भक्तिका प्रचार किया॥ 34-35॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'निगूढ़भक्ति'*—पाठान्तरमें निगूढ़ रस॥ 34॥

अनुभाष्य—प्राकृत सहजिया लोग शास्त्रविचारका त्याग करके कृत्रिम आँसू बहाकर भगवान्‌के लिये रोनेका नाटक करते हैं, जिस कारण सत्यस्वरूप (प्रेममयी) भगवत्सेवा उनके अश्रुओंमें बह जाती है। अर्थात् वे सेवाका त्याग करके केवल कृत्रिम भावोंके प्रदर्शनके द्वारा भक्त होनेका अभिनय करते हैं। इस प्रकार वे महाप्रभुकी आज्ञाका उल्लङ्घन करते हैं। शास्त्रके सिद्धान्तोंको भली-भाँति समझनेवाले भक्तोंके द्वारा ही निगूढ़ व्रजसेवा प्रचारित होती है, अन्यथा इन्द्रिय-भोगके विचार आकर भक्तिसिद्धान्तोंको उलट देते हैं॥ 34॥

श्रीसनातन गोस्वामीके चार ग्रन्थ :-

हरिभक्तिविलास, आर भागवतामृत।
दशम-टिप्पनी, आर दशम-चरित॥ 35॥

एइ सब ग्रन्थ कैल गोसाञि सनातन।
रूपगोसाञि कैल यत, के करु गणन॥ 36॥

अनुवाद—श्रीसनातन गोस्वामीने श्रीहरिभक्तिविलास, बृहद्भागवतामृत, दशम-टिप्पनी और दशम-चरित आदि ग्रन्थोंकी रचना की। श्रीरूप गोस्वामीने जितने ग्रन्थोंकी रचना की, कौन उसकी गणना कर सकता है?॥ 35-36॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'भागवतामृत'* अर्थात् बृहद्भागवतामृत। *'दशम-टिप्पनी'* अर्थात् दशम स्कन्धकी 'बृहद्-वैष्णवतोषणी' नामक टीका। *'दशम-चरित'* अर्थात् दशम स्कन्धमें वर्णित श्रीकृष्णलीला-चरित (श्रीलीलास्तव)॥ 34-36॥

अनुभाष्य— *'हरिभक्तिविलास'*—श्रील सनातन गोस्वामी प्रभुके द्वारा रचित तथा श्रील गोपालभट्ट गोस्वामी प्रभुके द्वारा सङ्कलित वैष्णव-स्मृतिग्रन्थ है, इसमें कुल बीस विलास हैं। पहले विलासमें—गुरु, शिष्य और मन्त्र; दूसरे विलासमें—दीक्षा; तीसरे विलासमें—सदाचार, स्मरण और शुचि (स्नान और सन्ध्या); चौथे विलासमें—संस्कार, तिलक, मुद्रा, माला और गुरुपूजा; पाँचवें विलासमें—आसन, प्राणायाम, न्यास, शालग्रामादि श्रीमूर्ति; छठे विलासमें—श्रीमूर्तिका आह्वान, स्नान कराना और आनुषङ्गिक आवश्यक कृत्य; सातवें विलासमें—श्रीविष्णुपूजा योग्य पुष्पोंका विवरण; आठवें विलासमें—श्रीमूर्तिके सम्मुख धूप, दीप, नैवेद्य, नृत्य, वाद्य, आरती, स्तुति, नमस्कार और अपराधोंके लिये क्षमा-प्रार्थना; नवें विलासमें—तुलसी, वैष्णव-श्राद्ध और नैवेद्य; दसवें विलासमें—भगवद्भक्त अथवा वैष्णव अथवा साधु; ग्यारहवें विलासमें—श्रीमूर्तिका अर्चन, श्रीहरिनाम, श्रीनामका जप और कीर्तन, नामापराध और उनका मोचन, भक्तिका माहात्म्य और शरणागति; बारहवें विलासमें—एकादशी-विधि; तेरहवें विलासमें—उपवास, महाद्वादशी-व्रत; चौदहवें विलासमें—विभिन्न मासोंमें किये

जानेवाले अनेकानेक कृत्य; पन्द्रहवें विलासमें—निर्जला एकादशी, तप्तमुद्रा-धारण, चातुर्मास्य, जन्माष्टमी, पार्श्व एकादशी, श्रवणाद्वादशी, रामनवमी, विजयादशमी; सोलहवें विलासमें—कार्तिक मासके कृत्य अथवा दामोदर (ऊर्जा) व्रत, दीपदानादि, गोवर्धन-पूजा, रथयात्रा; सतरहवें विलासमें—पुरश्चरण, जप और माला; अठारहवें विलासमें—विष्णुकी श्रीमूर्तिके विभिन्न प्रकार; उन्नीसवें विलासमें—श्रीमूर्तिकी प्रतिष्ठा करना तथा उनको स्नानादि कराना; बीसवें विलासमें—श्रीमन्दिर-निर्माणादि और ऐकान्तिक भक्तोंके कृत्य वर्णित हैं।

मध्यलीला 24/325-341 संख्या देखें।

'हरिभक्तिविलास' ग्रन्थके कुछ अंश जिनका श्रीमद् गोपालभट्ट गोस्वामीने सङ्कलन किया था, उसका विवरण श्रील कविराज गोस्वामीने मध्यलीलाके चौबीसवें अध्यायमें लिखा है। श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीके द्वारा सङ्कलित ग्रन्थमें अब वैष्णवस्मृतिका पूर्ण विकास लक्षित नहीं होता। श्रीगौरसुन्दरके आदेशानुसार श्रीसनातन गोस्वामीके द्वारा किये गये विपुल स्मृति-संग्रहके तत्कालोचित आंशिक विषयसमूह ही इस ग्रन्थमें प्रकाशित हुए हैं। वैष्णवस्मृति-कल्पद्रुमके अथवा श्रीसनातन गोस्वामीके द्वारा सङ्कलित पूर्ण श्रीहरिभक्तिविलासके प्रकाशित होनेसे ही वैष्णवसमाजमें सभी व्यवहारिक अभाव दूर होंगे। श्रीहरिभक्तिविलासमेंसे श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी प्रभुने 'भक्तिविलास'-ग्रन्थ संक्षिप्त रूपमें लिखा था और उस समय स्मार्त्तकुलका अधिक प्रभाव होनेके कारण इस भक्तिविलास-ग्रन्थके द्वारा सभी व्यवहारिक कार्योंकी मीमांसा प्राप्त नहीं होती। श्रीसनातन गोस्वामीने स्वसङ्कलित श्रीहरिभक्तिविलासकी 'दिग्दर्शिनी' नामक टीका भी स्वयं ही लिखी थी, इस टीकाके कुछ अंश वर्तमानकालके भक्तिविलास-ग्रन्थमें टीकारूपमें प्रकाशित हुए हैं, परन्तु कोई-कोई श्रीगोपीनाथ पूजाधिकारीके द्वारा सङ्कलित 'दिग्दर्शनी' कहकर उसका प्रचार करते हैं। ये श्रीगोपीनाथ वृन्दावनमें श्रीराधारमणजीकी सेवामें रत श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी प्रभुके एक शिष्य हैं।

'बृहद्भागवतामृत'—यह दो खण्डोंमें विभाजित भगवद्भक्तिसिद्धान्तपूर्ण ग्रन्थ है। पहले खण्डका नाम-'भगवत्कृपाभरनिर्द्धार' है; इसमें भौम, दिव्य, ब्रह्मलोक और वैकुण्ठ, भक्त, प्रिय, प्रियतम और पूर्ण—ये सात अध्याय हैं। दूसरे खण्डका नाम 'गोलोक-माहात्म्यनिरूपण' है; इसमें वैराग्य, ज्ञान, भजन, वैकुण्ठ, प्रेम, अभीष्टलाभ और जगदानन्द—ये सात अध्याय हैं; कुल चौदह अध्यायोंमें ग्रन्थ सम्पूर्ण होता है।

'दशम-टिप्पनी'—यह श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धकी टीका है, जो 'बृहद्वैष्णवतोषणी'के नामसे प्रसिद्ध है। भक्तिरत्नाकरकी प्रथम तरङ्गमें कहा गया है—"चौदह सौ छहतर (1476) शकाब्द (1554 ईसवी) में 'बृहत्' (वैष्णवतोषणी) सम्पूर्ण हुई। पन्द्रह सौ चार (1504) शकाब्द (1582 ईसवी) में लघु (तोषणी) पूर्ण हुई।

आदिलीला 10/84 संख्याका अनुभाष्य देखें॥ **35-36**॥

श्रीरूपके अनेक ग्रन्थ मधुरसेवा-विषयक :—

प्रधान प्रधान किछु करिये गणन।
लक्ष ग्रन्थे कैल व्रजविलास वर्णन॥ 37॥

अनुवाद—श्रीरूप गोस्वामीके कुछ मुख्य-मुख्य ग्रन्थोंकी गणना करूँगा, उन्होंने लाखों श्लोकोंमें व्रजविलासका वर्णन किया है॥ **37**॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'ग्रन्थ'*—अनुष्टुप्। (एक श्लोक परिमाणमें शब्द-संख्या)॥ **37**॥

अनुभाष्य— *'ग्रन्थ'*—अनुष्टुप। ग्रन्थका तात्पर्य यहाँ पुस्तकसे नहीं है। एक श्लोकके चार पाद अथवा चार ग्रन्थ—इस प्रकार समझना चाहिये। गद्य-ग्रन्थका अर्थ भी इसी प्रकारसे ही है॥ **37**॥

श्रीरूप गोस्वामीके द्वारा विरचित ग्रन्थ :—

रसामृतसिन्धु, आर विदग्धमाधव।
उज्ज्वलनीलमणि, आर ललितमाधव॥ 38॥

दानकेलिकौमुदी, आर बहु स्तवावली।
अष्टादश लीलाछन्द, आर पद्यावली॥ 39॥

गोविन्द-विरुदावली, ताहार लक्षण।
मथुरा-माहात्म्य, आर नाटक-वर्णन॥ 40॥
लघुभागवतामृतादि के करु गणन।
सर्वत्र करिल व्रजविलास वर्णन॥ 41॥

अनुवाद—श्रीरूप गोस्वामीके प्रमुख ग्रन्थ हैं- श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु, विदग्धमाधव, ललितमाधव, उज्ज्वलनीलमणि, दानकेलिकौमुदी, अठारह लीलाछन्द, पद्यावली, बहु-स्तवावली अर्थात् स्तवमाला, गोविन्द-विरुदावली और उसके लक्षण, मथुरा-माहात्म्य और नाटक-वर्णन। इसके अतिरिक्त लघुभागवतामृतादि अन्य ग्रन्थोंकी कौन गणना कर सकता है? उन्होंने सभी ग्रन्थोंमें व्रजकी लीलाओंका वर्णन किया है॥ 38-41॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'बहु-स्तवावली'* अर्थात् *'स्तवमाला'* ग्रन्थ। *'गोविन्दविरुदावली'*—यह स्तवमालाके अन्तर्गत ही है। *'नाटक-वर्णन'*—नाटकचन्द्रिका॥ 38-40॥

अनुभाष्य—भक्तिरत्नाकरकी प्रथम तरङ्गमें वर्णन है कि श्रीलरूप गोस्वामीने सोलह ग्रन्थोंकी रचना की। आदिलीला 10/84 संख्या देखें।

'श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु'—यह श्रीकृष्णभक्ति और भक्तिरस-सम्बन्धी संग्रह ग्रन्थ है। इस ग्रन्थकी रचना 1463 शकाब्दमें हुई। इसमें पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर—ये चार विभाग हैं। पूर्व विभागका नाम— 'स्थायिभावोत्पादन' है; इसमें सामान्यभक्ति, साधनभक्ति, भावभक्ति और प्रेमभक्ति—ये चार लहरियाँ हैं। दक्षिण विभागका नाम—'भक्तिरस-सामान्य-निरूपण' है; इसमें विभाव, अनुभाव, सात्त्विक, व्यभिचारी और स्थायीभाव—ये पाँच लहरियाँ हैं। पश्चिम विभागका नाम— 'मुख्यभक्तिरस-निरूपण' है; इसमें शान्त, प्रीतिभक्तिरस अथवा दास्य, प्रेयोभक्तिरस अथवा सख्य, वात्सल्यभक्तिरस, और मधुरभक्तिरस—ये पाँच लहरियाँ हैं। उत्तर विभागका नाम—'गौणभक्तिरसादि-निरूपण' है; इसमें हास्य-भक्तिरस, अद्भुत-भक्तिरस, वीर-भक्तिरस, करुण-भक्तिरस, रौद्र-भक्तिरस, भयानक-भक्तिरस, वीभत्स-भक्तिरस, रसोंकी मैत्री-वैर-स्थिति और रसाभास—ये नौ लहरियाँ वर्तमान हैं।

'विदग्धमाधव'—यह श्रीकृष्णकी व्रजलीला विषयक नाटक ग्रन्थ है। 1454 शकाब्दमें इस ग्रन्थकी रचना हुई थी। इस नाटकमें सात अङ्क हैं। पहले अङ्कका नाम—वेणुनादविलास; दूसरे अङ्कका नाम—मन्मथलेख; तीसरे अङ्कका नाम—राधासङ्ग; चौथे अङ्कका नाम—वेणुहरण; पाँचवें अङ्कका नाम—राधाप्रसादन; छठे अङ्कका नाम—शरद्-विहार; सातवें अङ्कका नाम—गौरीविहार है।

'श्रीउज्ज्वलनीलमणि'—यह अप्राकृत मधुर-व्रजरस-विषयक अलङ्कार ग्रन्थ है। इसके द्वितीय श्लोकमें श्रीरूप गोस्वामी लिखते हैं—

मुख्यरसेषु पुरा यः संक्षेपेणोदितोऽति रहस्यत्वात्।
पृथगेव भक्तिरसराट् सविस्तारेणोच्यतेऽत्र मधुरः॥

अर्थात् 'भक्तिरसामृतसिन्धु' ग्रन्थमें शान्तादि मुख्यरससमूहमें अति रहस्यमय मधुररसका संक्षेपमें ही वर्णन किया था। श्रीउज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थमें पृथक् रूपसे केवल इस भक्तिरसराज मधुररसका ही वर्णन है। इसमें नायकभेद, सहायभेद, कृष्णवल्लभा, श्रीराधिका, नायिकाभेद, यूथेश्वरीभेद, दूतीभेद, सखी, हरिवल्लभा, उद्दीपन, अनुभाव, उद्भास्वर, सात्त्विक एवं व्यभिचारीभाव, स्थायीभाव, शृङ्गारभेदके अन्तर्गत विप्रलम्भ, पूर्वराग, मान, प्रेमवैचित्त्य, प्रवास, संयोगवियोगस्थिति, सम्भोग (मुख्य और गौण) आदि विषयोंका वर्णन है।

'ललितमाधव'—यह श्रीकृष्णकी द्वारकालीला विषयक नाटकग्रन्थ है। 1459 शकाब्दमें इस ग्रन्थकी रचना हुई। इस नाटकमें दस अङ्क हैं। पहले अङ्कका नाम—सायं उत्सव; दूसरे अङ्कका नाम—शङ्खचूड़ वध; तीसरे अङ्कका नाम—उन्मत्ता राधिका; चौथे अङ्कका नाम—राधिकाभिसार; पाँचवें अङ्कका नाम—चन्द्रावलीलाभ; छठे अङ्कका नाम—ललिता-प्राप्ति; सातवें अङ्कका नाम—नववृन्दावन-सङ्गम; आठवें अङ्कका नाम— नववृन्दावन-विहार; नौवें अङ्कका नाम—चित्रदर्शन; दसवें अङ्कका नाम—पूर्णमनोरथ है।

'लघुभागवतामृत'—यह ग्रन्थ कृष्णामृत और भक्तामृत—दो खण्डोंमें विभक्त है। **प्रथम खण्डमें**—शब्द-प्रमाणकी श्रेष्ठता, तत्पश्चात् सर्वप्रथम स्वयंरूप श्रीकृष्ण, उनके विलास स्वांश और आवेश भेदसे तदेकात्मरूप, तीन पुरुषावतार, तीन गुणावतारोंमें विष्णु और विष्णुभक्तिकी निर्गुणता, पच्चीस लीलावतार (चतुःसन, नारद, वराह, मत्स्य, यज्ञ, नरनारायण ऋषि, सेश्वर, कपिल, दत्तात्रेय, हयग्रीव, हंस, पृश्निगर्भ, ऋषभ, पृथु, नृसिंह, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, वामन, परशुराम, दाशरथि रामचन्द्र, कृष्णद्वैपायन, बलराम अथवा शेष सङ्कर्षण, वासुदेव, बुद्ध और कल्कि); चौदह मन्वन्तरावतार (यज्ञ, विभु, सत्यसेन, हरि, वैकुण्ठ, अजित, वामन, सार्वभौम, ऋषभ, विष्वक्सेन, धर्मसेतु, सुदामा, योगेश्वर और बृहद्भानु); चार प्रकारके युगावतार (शुक्ल, रक्त, श्याम और कृष्णवर्ण); विभिन्न कल्प और उनके अवतारसमूह तथा "आवेश, प्राभव, वैभव और पर"—ये चार अवस्थामें अवस्थित अवतार-विचार। लीलाभेदसे भगवन्नाम-महिमा-वैचित्र्य, शक्ति और शक्तिमान् विचार, भगवत्ताके परस्पर-विरुद्ध गुणसमूहका अचिन्त्य समन्वय; श्रीकृष्णकी स्वयं भगवत्ता, वे सबसे श्रेष्ठ हैं, वे सभी अवतारोंके अवतारी हैं, सभी अवतार उनके अंश हैं, वे सर्वेश्वर हैं, निर्विशेष-ब्रह्म श्रीकृष्णकी अङ्गप्रभामात्र है, श्रीकृष्णकी द्विभुज-नरलीलाका माधुर्य असमोर्द्ध है, अप्राकृत वैकुण्ठवस्तुके देह और देहीमें भेद नहीं है, श्रीकृष्ण अजन्मा हैं और अनादिकालसे उनका आविर्भाव होता आ रहा है—ये परस्पर विरोधी दिखनेपर भी इनमें कोई विरोध नहीं है; लीलाकी नित्यता, प्रकट और अप्रकट भेदसे दो प्रकारकी लीला, प्रकटलीलाका रस-वैचित्र्य, व्रज, मथुरा और द्वारका लीलाकी नित्यता, विभिन्न धामतत्त्व और माहात्म्य-विचार, 'बाल्य, पौगण्ड, कैशोर और यौवन'-भेदसे आयु-भेदका माधुर्य-वैचित्र्य एवं चार विशेष माधुरियाँ (ऐश्वर्य, क्रीड़ा, वेणु और श्रीविग्रह) आदि विषयोंका वर्णन हुआ है।

द्वितीय खण्डमें—भक्तके द्वारा पूजाका प्रयोजन, भजनके तारतम्यसे भक्तोंका तारतम्य; प्रह्लाद, पाण्डवों, यादवों, उद्धव और व्रजगोपियों एवं सर्वापेक्षा श्रीमती राधिका और राधाकुण्डके माहात्म्यका वर्णन हुआ है॥ 38-41॥

श्रीजीव गोस्वामी :—

ताँर भ्रातुष्पुत्र नाम-श्रीजीवगोसाञि।
यत भक्तिग्रन्थ कैल, तार अन्त नाइ॥ 42॥

श्रीभागवतसन्दर्भ-नाम ग्रन्थ-विस्तार।
भक्तिसिद्धान्त ताते लिखियाछेन सार॥ 43॥

गोपालचम्पू-नामे ग्रन्थ महाशूर।
नित्यलीला स्थापन याहे व्रजरस-पूर॥ 44॥

ग्रन्थकी रचना और सपरिवार वृन्दावन वास :—

एइ मत नाना ग्रन्थ करिया प्रकाश।
गोष्ठी सहिते कैला वृन्दावने वास॥ 45॥

अनुवाद—श्रीसनातन और श्रीरूप गोस्वामीके भतीजे श्रीजीव गोस्वामी हैं और उन्होंने जितने भक्तिग्रन्थ लिखे हैं, उसका कोई अन्त नहीं है। श्रीभागवतसन्दर्भ नामक ग्रन्थमें उन्होंने भक्ति-सिद्धान्तका सार लिखा है। गोपालचम्पू तो उनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति है, जिसमें उन्होंने श्रीकृष्णकी व्रजमें माधुर्य-प्रधान (पारकीय रसकी) नित्यलीलाका निरूपण किया है। इस प्रकार अपने परिवार (श्रीरूप और सनातन गोस्वामी)के साथ वृन्दावनमें वास करते हुए उन्होंने अनेक ग्रन्थोंका प्रकाश किया॥ 42-45॥

अनुभाष्य—भक्तिरत्नाकरकी प्रथम तरङ्गमें कहा गया है—

श्रीमद्भागवत-अर्थ यैछे आस्वादिल।
ताहा श्रीवैष्णवतोषणीते प्रकाशिल॥ 535॥" × × ×
"हेन सनातन-रूप प्रभुर आज्ञाते।
वर्णिल यतेक ताहा व्यापिल जगते॥ 790॥
श्रीरूप श्रीहंसदूत-आदि ग्रन्थ कैला।
सनातन भागवतामृतादि वर्णिला॥ 791॥
श्रीवैष्णव-तोषणी करिया सनातन।

श्रीजीवेरे आज्ञा दिला करिते शोधन॥ 792॥
आज्ञा पाइया श्रीजीव लघुतोषणी करिला।
यैछे करिलेन ताहा तथाइ लिखिला॥ 793॥
चौद्दशत सप्तछये (1476) सम्पूर्ण 'बृहत्'।
पनरशत चारि (1504) शके 'लघु' सुसम्मत॥ 794॥
तथाहि लघु-तोषण्याम्—
"तयोरनुजसृष्टेषु काव्यं श्रीहंसदूतकम्।
श्रीमदुद्धवसन्देशश्छन्दोऽष्टादशकं तथा॥ 796॥
स्तवस्योत्कलिकावल्लीं गोविन्दविरुदावली।
प्रेमेन्दुसागराद्याश्च बहवः सुप्रतिष्ठिताः॥ 797॥
विदग्ध-ललिताग्र-माधवं नाटकद्वयम्।
भाणिका दानकेल्याख्या रसामृतयुगं पुनः॥ 798॥
मथुरामहिमा पद्यावली नाटकचन्द्रिका।
संक्षिप्त-श्रीभागवतामृतमेते च संग्रहाः॥ 799॥
तथाग्रजकृतेष्वग्रं श्रील-भागवतामृतम्।
हरिभक्तिविलासश्च तट्टीका दिक्प्रदर्शिनी॥ 800॥
लीलास्तवटिप्पनी च सेयं वैष्णवतोषणी।
या संक्षिप्ता मया क्षुद्रजीवेनापि तदाज्ञया॥ 801॥
शके षट्सप्ततिमनौ पूर्णेयं टिप्पनी शुभा।
संक्षिप्ता युगशून्याग्रपञ्चैकगणिते तथा॥ 803॥"
श्रीजीवेर शिष्य कृष्णदास अधिकारी।
तिँह निज-ग्रन्थे इहा कहिल विस्तारि'॥ 805॥
"तयोर्जयेष्ठस्य कृतिषु श्रीसनातननामिनः।
सिद्धान्तग्रन्थसन्दोहाल्लेखोल्लेखो विधीयते॥ 809॥
प्रथमादिद्वयं खण्डयुग्मं भागवतामृतम्।
हरिभक्तिविलासश्च तट्टीका-दिक्प्रदर्शिनी।
लीलास्तव-टिप्पनी च नाम्ना वैष्णवतोषणी॥ 810॥
तयोरनुजसृष्टेषु काव्यं श्रीहंसदूतकम्।
श्रीमदुद्धवसन्देशः कृष्णजन्मतिथेर्विधिः॥ 822॥
बृहल्लघुतया ख्याता श्रीगणोद्देशदीपिका।
श्रीकृष्णस्य प्रियाणाञ्च स्तवमाला मनोहरा॥ 823॥
विदग्धमाधवः ख्यातस्तथा ललितमाधवः।
दानलीलाकौमुदी च तथा भक्तिरसामृतम्॥ 824॥
उज्ज्वलाख्यो नीलमणिः प्रयुक्ताख्यातचन्द्रिका।
मथुरामहिमा पद्यावली नाटकचन्द्रिका॥ 825॥
संक्षिप्त-श्रीभागवतामृतमेते च संग्रहाः।826 (क)।
श्रीमद्वल्लभपुत्र-श्रीजीवस्य कृतिषुद्यते।
शब्दानुशासनं नाम्ना हरिनामामृतं तथा॥ 843॥
तत्सूत्रमालिका तत्र प्रयुक्तो धातुसंग्रहः।
कृष्णार्चादीपिका सूक्ष्मा गोपालविरुदावली॥ 844॥
रसामृतस्य शेषश्च श्रीमाधवमहोत्सवः।
सङ्कल्प-कल्पवृक्षो यश्चम्पूभावार्थसूचकः॥ 845॥
टीका गोपालतापन्याः संहितायाश्च ब्रह्मणः।
रसामृतस्योज्ज्वलस्य योगसार-स्तवस्य च॥ 846॥
तथा चाग्निपुराणस्थ-गायत्रीविवृतिरपि।
श्रीकृष्णपदचिह्नानां पाद्मोक्तानामथापि च॥ 847॥
लक्ष्मीविशेषरूपा या श्रीमद्वृन्दावनेश्वरी।
तस्याः करपदस्थानां चिह्नानाञ्च समाहृतिः॥ 848॥
पूर्वोत्तरतया चम्पूद्वयी या च त्रयी त्रयी।
सन्दर्भाः सप्तविख्याताः श्रीमद्भागवतस्य वै॥ 849॥
तत्त्वाख्यो भगवत्संज्ञः परमात्माख्य एव च।
कृष्णभक्तिप्रीतिसंज्ञाः क्रमाख्यः सप्तमः स्मृतः॥ 850॥
सम्बन्धश्चाभिधेयश्च प्रयोजनमिति त्रयम्।
हस्तामलकवद् येषु सद्भिराद्यैः प्रकाशितम्॥ 851॥"

अर्थात् "श्रीमद्भागवतका अर्थ जिस रूपमें श्रीसनातन गोस्वामीने आस्वादन किया, उसे उन्होंने अपने द्वारा रचित श्रीवैष्णवतोषणी-टीकामें प्रकाशित किया। महाप्रभुकी आज्ञासे श्रीसनातन और श्रीरूप गोस्वामीने अपने ग्रन्थोंमें जितना वर्णन किया, वह समस्त जगत्में व्याप्त हुआ। श्रीरूप गोस्वामीने हंसदूतादि ग्रन्थोंकी रचना की। श्रीसनातन गोस्वामीने भागवतामृतादिकी रचना की। श्रीसनातन गोस्वामीने श्रीवैष्णवतोषणीकी रचना करके श्रीजीव गोस्वामीको उसका संशोधन करनेकी आज्ञा दी। आज्ञा प्राप्त करके श्रीजीवने वैष्णवतोषणीके अनुरूप ही लघुतोषणीकी रचना की। 1476 शकाब्दमें बृहद्-वैष्णवतोषणी सम्पूर्ण हुई और 1504 शकाब्दमें लघुतोषणी पूर्ण हुई, यह सर्वसम्मत है। श्रीसनातन गोस्वामीके छोटे भाई श्रीरूप गोस्वामीके द्वारा लिखित श्रीहंसदूत काव्य, श्रीमद्-उद्धवसन्देश, छन्दोऽष्टादशक ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। (इनके अतिरिक्त) उनके स्तवमाला, गोविन्दविरुदावली, प्रेमेन्दुसागरादि बहुत सुप्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। (इन सबके अतिरिक्त) ललितमाधव और विदग्धमाधव नामसे दो नाटक, दानकेली-नाटिका, रसामृत-युगल, मथुरामहिमा, नाटक-चन्द्रिका तथा संक्षिप्त (लघु) श्रीभगवतामृत आदि संग्रह ग्रन्थ हैं।

श्रीरूपके बड़े भाई श्रीसनातन गोस्वामीके द्वारा लिखित ग्रन्थोंमें पहले श्रीभागवतामृत, उसके बाद दिक्दर्शिनी-टीका सहित हरिभक्तिविलास, उसके बाद लीलास्तव और अनन्तर यह दशमटिप्पनी वैष्णवतोषणी उनकी आज्ञासे क्षुद्रजीव होनेपर भी मेरे (जीव गोस्वामीके) द्वारा संक्षिप्त रूपमें लिखी गयी है। 1476 शकाब्दमें यह मङ्गल प्रदान करनेवाली वैष्णवतोषणी टिप्पणी पूर्ण हुई। और 1504 शकाब्दमें लघुतोषणी समाप्त हुई।

श्रीजीव गोस्वामीके प्रिय शिष्य श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी हैं, जिन्होंने अपने ग्रन्थमें इस विषयमें विस्तारसे लिखा है।

श्रीसनातन गोस्वामी, जो ज्येष्ठ भ्राता हैं, उनके द्वारा रचित सिद्धान्तग्रन्थ-समूहसे उनके द्वारा रचित ग्रन्थमालाका नाम उल्लेख कर रहा हूँ।

श्रीसनातन गोस्वामी प्रभुके द्वारा लिखित ग्रन्थ ये हैं—प्रथम और द्वितीय खण्डयुक्त भागवतामृत, हरिभक्तिविलास, उसकी दिक्दर्शिनी टीका, लीलास्तव और वैष्णवतोषणी नामक टिप्पणी।

श्रीरूप गोस्वामीके द्वारा प्रणीत कुछ विशिष्ट ग्रन्थोंके नाम—श्रीहंसदूत काव्य, श्रीमद्-उद्धवसन्देश, श्रीकृष्णजन्मतिथि-विधि, श्रीबृहद्-गणोद्देशदीपिका, श्रीलघुगणोद्देशदीपिका, श्रीकृष्ण और उनके प्रिय गणोंकी मनोहर स्तवमाला, प्रसिद्ध विदग्धमाधव और ललितमाधव, दानलीलाकौमुदी, भक्तिरसामृतसिन्धु, उज्ज्वलनीलमणि, प्रयुक्ताख्यातचन्द्रिका, मथुरा-महिमा, पद्यावली, नाटकचन्द्रिका तथा लघुभागवतामृत आदि संग्रह ग्रन्थ।

श्रीवल्लभके पुत्र श्रीजीव गोस्वामीके द्वारा रचित ग्रन्थोंमें कुछके नाम इस प्रकार हैं—श्रीहरिनामामृत नामक व्याकरण, उसकी सूत्रमालिका, उसके साथ धातुसंग्रह, अल्प आकारमें कृष्ण-अर्चन-दीपिका, गोपालविरुदावली रसामृतका शेष अंश, श्रीमाधवमहोत्सव, सङ्कल्प-कल्पवृक्ष, भावार्थसूचक-चम्पू, गोपालतापनी-टीका, ब्रह्मसंहिता-टीका, भक्तिरसामृतसिन्धुकी टीका, उज्ज्वलनीलमणिकी टीका, योगसार-स्तवकी टीका, अग्निपुराणमें वर्णित गायत्रीकी विवृति, पद्मपुराणमें उक्त श्रीकृष्णपदचिह्नकी विवृति, मूललक्ष्मीरूपा श्रीवृन्दावनेश्वरी श्रीराधिकाके हस्त-पदके चिह्नसमूहका संग्रह, गोपालचम्पू-पूर्वभाग, गोपालचम्पू-उत्तरभाग। श्रीमद्भागवतके विख्यात सात सन्दर्भ, जैसे—तत्त्वसन्दर्भ, भगवत्सन्दर्भ, परमात्म-सन्दर्भ, कृष्णसन्दर्भ, भक्तिसन्दर्भ, प्रीतिसन्दर्भ और क्रमसन्दर्भ—जिनके द्वारा श्रेष्ठ महाजन श्रीजीव गोस्वामीने सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन, इन तीनों तत्त्वोंको हथेलीमें रखे आँवलेके समान सहज ही समझ आनेवाले रूपमें प्रकाशित किया है।"

'भागवतसन्दर्भ'—इसका दूसरा नाम 'षट्सन्दर्भ' है। प्रथम *'तत्त्वसन्दर्भ'* में—सभी प्रमाणोंकी अपेक्षा श्रीमद्भागवतकी श्रेष्ठता और तत्त्व-निरूपण। द्वितीय *'भगवत्-सन्दर्भ'* में—ब्रह्म-परमात्माका विचार, वैकुण्ठ और विशुद्धसत्त्वका निरूपण, भगवद्-स्वरूपका स्वशक्तित्व, श्रीभगवान् विरुद्ध शक्तियोंके आश्रय, उनमें अचिन्त्य शक्ति है और यह अनेक प्रकारकी है; अन्तरङ्गादि भेद, मायाशक्ति, स्वरूपशक्तिके गुण स्वरूपभूत हैं, भगवान्का श्रीविग्रह नित्य है, उनकी विभुता, सर्वाश्रयता, स्थूल-सूक्ष्मसे पृथक्ता, उनका स्वप्रकाशत्व, रूप-गुण-लीलामयत्व, अप्राकृतत्व, पूर्ण स्वरूपत्व; परिकर-समूहका स्वरूपांशत्व; वैकुण्ठ, पार्षद और त्रिपादविभूतिका अप्राकृतत्व, ब्रह्म और भगवान्का तारतम्य, भगवत्तामें पूर्णत्व, सभी वेदोंका अभिधेयत्व, स्वरूप शक्तिका विवरण, श्रीभगवान् एकमात्र भक्ति-ग्राह्य। तृतीय *'परमात्म-सन्दर्भ'* में—परमात्मा, उनके भेद, गुणावतारोंका तारतम्य, जीव, माया, जगत्, परिणामवाद-स्थापन, विवर्त्त-समाधान, जगत् और परमात्माका अनन्यत्व, जगत्की सत्यता और श्रीधर स्वामीका मत, निर्गुण ईश्वरकी कर्त्तृत्व-योजना, लीलावतार-समूहकी भक्तोंके उद्देश्यसे प्रवृत्ति, छह प्रकारके चिह्नोंके (लक्षणोंके) द्वारा भगवान्का ही तात्पर्यत्व। चतुर्थ *'कृष्ण सन्दर्भ'* में—कृष्णकी स्वयं भगवत्ता, कृष्ण-लीलागुण, पुरुषावतारोंका कर्त्तृत्व, श्रीधर स्वामीकी सम्मति, सभी शास्त्रोंमें कृष्ण-समन्वय,

बलदेव आदिका महासङ्कर्षणत्व, कृष्णमें सभी अंशोंके प्रवेशका विचार और उनमें नित्यस्थिति, द्विभुजत्व, गोलोक-निरूपण, वृन्दावनादि कृष्णके नित्यधाम, गोलोक और वृन्दावन एक ही वस्तु, यादव और गोप कृष्णके नित्य परिकर, प्रकट-अप्रकट लीलाकी व्यवस्था, प्रकट-अप्रकट लीलाका समन्वय, श्रीकृष्णका गोकुलमें सर्वाधिक प्रकाश, पट्टमहिषियोंका स्वरूप-शक्तित्व, उनकी अपेक्षा गोपियोंका उत्कर्ष, उनके नाम और राधिकाकी सर्वोत्कर्षता। पञ्चम *'भक्ति-सन्दर्भ'* में—भगवद्भक्ति साक्षात् अभिधेय तत्त्व, अन्वय और व्यतिरेक भावसे भक्तितत्त्वका निरूपण, सर्वशास्त्र-श्रवण, वर्णाश्रम आचार और उसके अन्तर्भुक्त ज्ञानके द्वारा अन्वय भावसे कर्मका अनादर, हरिविमुख ब्राह्मणकी निन्दा, भगवदर्पित कर्मका अनादर, योगका अनादर, ज्ञानके श्रमत्व-प्रदर्शनसे और अन्याश्रयोंकी (अन्य देवी-देवताओंकी) स्वतन्त्रताके अनादरके द्वारा उन देवी-देवताओंका भगवान्‌के भक्तरूपमें आदर-विधान, अभक्तमात्रका अनादर, जीवन्मुक्त और परम मुक्त शिवादि तक भक्तोंकी भक्तिकी नित्यता और अभिधेयत्व, भक्तिमें सर्वफल देनेकी योग्यता, निर्गुणता, स्व-प्रकाशता और परमसुखरूपता, भगवत्-प्रीति हेतु वैशिष्ट्य, भजनाभाससे भी फललाभ, निष्काम भक्तिकी प्रशंसा, अधिकारी-भेदसे पुनः निष्काम-भक्तिकी स्थापना, साधुसङ्गका मूल कारण, महाभागवतोंमें भेद और विशेषता, सर्वाश्रय-विवेक, भक्ति-भेद-निरूपणमें ज्ञानका लक्षण, अहंग्रहोपासनाका लक्षण, भक्ति-लक्षण, आरोपसिद्धा आदिके लक्षण, वैधीभक्तिमें शरणागति, गुरुसेवा, महाभागवत-प्रसङ्ग, उनकी परिचर्या, साधारण वैष्णवसेवा; श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, अपराध और उनको दूर करनेके उपाय, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन; रागानुगा भक्तिका विचार, कृष्ण-भजनका वैशिष्ट्य और सिद्धिका क्रम। छठे *'प्रीति-सन्दर्भ'* में—प्रीतिका परम पुरुषार्थ निरूपण, मुक्तिमें सविशेष और निर्विशेष भेद, जीवन्मुक्ति (शरीर रहते हुए मुक्ति) और उत्क्रान्त (देहत्यागके बाद) मुक्तिमें भेद, सभी प्रकारकी मुक्तियोंकी अपेक्षा भगवत्-प्रीतिका आधिक्य, परतत्त्वके साक्षात्कारसे परम-पुरुषार्थकी प्राप्ति, सद्यो-मुक्ति, क्रम-मुक्ति, ब्रह्मसाक्षात्कार और भगवत्-साक्षात्कार-लक्षणारूपा जीवन्मुक्ति और उत्क्रान्त मुक्ति। अन्तर और बाहरके भेदसे भगवत्-साक्षात्कारके लक्षणोंके दो प्रकार, ब्रह्मसाक्षात्कार-लक्षणाकी अपेक्षा श्रेष्ठत्व, बाहरी साक्षात्कार लक्षणा जीवन्मुक्ति और उत्क्रान्त मुक्ति, सालोक्यादि भेद, सामीप्यका आधिक्य, भक्तिका मुक्तित्व और उपादेयत्व; उसकी उपपत्ति, प्रीतिका स्वरूप-लक्षण, गुणातीत प्रीतिका तटस्थ लक्षण और आविर्भाव-भेद, प्रीति-रति आदिका भेद, व्रजदेवियोंके कामका शुद्धप्रेमके रूपमें स्थापन, ज्ञान-भक्ति आदिका मिश्रत्व, परिकर अभिमानी गणोंकी प्रीतिका उत्कर्ष, ऐश्वर्य और माधुर्यके अनुभवका तारतम्य, गोकुलवासियोंकी श्रेष्ठता, उनकी अपेक्षा सखाओं, पितृगणों, गोपियों और राधिकाका उत्तरोत्तर श्रेष्ठत्व, अनुकरण-कार्यमें रसत्व, लौकिक रसकी अपेक्षा श्रेष्ठता, आलम्बन-विभाग, उद्दीपन-विभाग, गुण, धीरोदात्तादि भेद, माधुर्यकी उत्तमता, अनुभाव, सञ्चारी, रसके पाँच प्रकार, गौणरसके सात प्रकार; रसाभास, शान्त, दास्य, प्रश्रय (सख्य), वात्सल्य और उज्ज्वलमें वल्लभभेद, स्थायी, सम्भोग और विप्रलम्भ-भेद, पूर्वराग, मान, प्रेमवैचित्त्य, प्रवास और श्रीराधिका देवीकी महिमा।

गोपालचम्पूके दो विभाग हैं—पूर्व और उत्तर। पूर्वचम्पूमें तैंतीस पूरण और उत्तरचम्पूमें सैंतीस पूरण हैं। पूर्वचम्पू 1510 शकाब्द (1588 ईसवी) में सम्पूर्ण हुआ। पूर्व चम्पूके पूर्व विभागके 33 पूरण—1) वृन्दावन और गोलोक, 2) प्रस्तावना, पूतनावध लीला वर्णन, यशोदाके आदेशसे गोपियोंका गृह-गमन, राम-कृष्णका स्नान, स्निग्धकण्ठ और मधुकण्ठ, 3) यशोदाजीका स्वप्न, 4) जन्मोत्सव, 5) नन्द-वसुदेवका मिलन, पूतनावध, 6) औत्थानिक (उठनेकी) लीला, शकटभञ्जन, नामकरण, 7) तृणावर्त्तवध, मिट्टी-भक्षण, बाल-चापल्य, चोरी करना, 8) दधिमन्थन, स्तनपान, दधिभाण्ड-भञ्जन,

बन्धन, यमलार्जुन भञ्जन, यशोदा-विलाप, 9) वृन्दावन प्रवेश, 10) वत्सासुरवध, बकासुरवध, व्योमासुरवध, 11) अघासुरवध, ब्रह्ममोहन, 12) गोष्ठ गमन, 13) गोचारण, कालियदमन, 14) गर्द्दभासुरवध, कृष्णलालन, 15) गोपियोंका पूर्वानुराग, 16) प्रलम्बासुरवध, दावाग्नि-पान, 17) गोपियोंकी कृष्णचेष्टा अर्थात् कृष्णकी लीलाओंका अनुकरण, 18) गोवर्धन धारण, 19) कृष्णाभिषेक, 20) वरुणालयसे नन्द महाराजको लाना, गोपोंका गोलोक दर्शन, 21) कात्यायनीव्रतानुष्ठान, 22) यज्ञपत्नियोंसे अन्नभिक्षा, 23) गोपियोंका मिलन, 24) गोपीविहार, राधा-कृष्णका अन्तर्धान होना, गोपियोंके द्वारा ढूँढ़ना, 25) कृष्णका प्रकट होना, 26) गोपियोंका सङ्कल्प, 27) जलविहार, 28) सर्पग्रस्त नन्द महाराजका उस बन्धनसे मोचन, 29) विविध रहःक्रीड़ा, 30) शङ्खचूड़वध, होली, 31) अरिष्टासुरवध, 32) केशीवध, 33) नारदका आगमन, ग्रन्थ रचनाका शक और सम्वत्।

उत्तरचम्पूके 37 पूरण—1) व्रजानुराग, 2) अक्रूरकी क्रूरता, 3) मथुरापुर नामक स्थानमें प्रस्थान, 4) मथुरान्त प्रदेशका निर्देश, 5) कंसवध, 6) व्रजपति-विसर्जन-कष्ट (अर्थात् नन्द महाराजको व्रजमें भेजनेका कष्ट), 7) नन्दका व्रजमें प्रवेश, 8) अध्ययन आदि, 9) गुरुपुत्रको लाना, 10) उद्धवका व्रजागमन, 11) भ्रमरमें दूतका भ्रम, 12) उद्धवका वापिस लौटना, 13) जरासन्ध-बन्धन, 14) यवन जरासन्ध, 15) बलभद्र-विवाह, 16) रुक्मिणी विवाह, 17) सप्तविवाह, 18) नरकासुर वध, पारिजात हरण, सोलह हज़ार महिषियोंके साथ विवाह, 19) बाणासुरपर विजय, 20) बलरामजीकी व्रजमें जानेकी कामना, 21) पौण्ड्र 22) द्विविध-वध, हस्तिनापुर आलोचना, 23) कुरुक्षेत्रकी यात्रा, 24) व्रजवासियोंकी कुरुक्षेत्र यात्रा, 25) उद्धव-मन्त्रणा, 26) राज-मोचन, 27) राजसूय, 28) शाल्व-वध, 29) व्रज आगमन-विषयक विचार, 30) कृष्णका व्रज-आगमन, 31) राधादिकी बाधाका समाधान, 32) सर्वसमाधान, 33) राधामाधव-अधिवास, 34) राधाकृष्णका अलङ्करण, 35) राधामाधव-विवाह निर्वाह, 36) राधा-माधवका मिलन, 37) गोलोक प्रवेश।

आदिलीला 10/85 संख्याका अनुभाष्य देखें॥ **35–44**॥

महाप्रभुके संन्यासके बादके पहले वर्षमें श्रीअद्वैतादि गौड़ीय भक्तोंका पुरीमें गमन :—

प्रथम वत्सरे अद्वैतादि भक्तगण।
प्रभुरे देखिते कैला नीलाद्रि-गमन॥ 46॥

पुरीमें कीर्तनादिके द्वारा चातुर्मास्य व्यतीत करना :—

रथयात्रा देखि' ताहाँ रहिला चारिमास।
प्रभुसङ्गे नृत्यगीत परम उल्लास॥ 47॥

अनुवाद—महाप्रभुके संन्यास ग्रहणके एक वर्ष बाद श्रीअद्वैताचार्य आदि भक्त महाप्रभुके दर्शनके लिये बङ्गालसे नीलाचल गये। नीलाचलमें उन्होंने श्रीजगन्नाथदेवकी रथयात्रामें भाग लिया और महाप्रभुके सङ्ग नृत्य-गीत करते हुए आनन्दसे चार मास बिताये॥ **46–47**॥

महाप्रभुका भक्तोंको प्रति वर्ष रथयात्रा-दर्शनके लिये आनेका आमन्त्रण :—

विदाय-समय प्रभु कहिला सबारे।
"प्रत्यब्द आसिबे सबे गुण्डिचा देखिबारे॥" 48॥

अनुवाद—चार मासके अन्तमें महाप्रभुने उन्हें विदा करते हुए प्रत्येक वर्ष श्रीजगन्नाथदेवकी गुण्डिचा मन्दिर तककी रथयात्राके दर्शनके लिये आनेके लिये आमन्त्रित किया॥ **48**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'गुण्डिचा'*—श्रीजगन्नाथदेव रथयात्रामें 'सुन्दराचल'-नामक स्थानमें 'गुण्डिचा'-नामक मन्दिरमें जाकर नौ दिन लीला करते हैं, इसलिये रथयात्राको उड़ीसावासी 'गुण्डिचा-यात्रा' कहते हैं॥ **48**॥

प्रति वर्ष गौड़ीय भक्तोंका पुरीमें रथयात्रा-दर्शन :—

प्रभु-आज्ञाय भक्तगण प्रत्यब्द आसिया।
गुण्डिचा देखिया या'न प्रभुरे मिलिया॥ 49॥

अनुवाद—महाप्रभुकी आज्ञानुसार भक्त लोग प्रति

वर्ष रथयात्राके समय नीलाचल आते और महाप्रभुके साथ मिलकर 'गुण्डिचा-यात्रा'के दर्शन करते॥ 49॥

अन्तिम चौबीस वर्षोंमेंसे बारह वर्षोंतक
भक्तोंके साथ महाप्रभुका मिलन :—

द्वादश वत्सर ऐछे कैला गतागति।
अन्योऽन्ये दुँहार दुँहा बिना नाहि स्थिति॥ 50॥

अनुवाद—भक्त लोग बारह वर्षोंतक प्रतिवर्ष महाप्रभुसे मिलने नीलाचल आते रहे, क्योंकि उनका प्रेम इतना प्रगाढ़ था कि वे एक दूसरेके बिना नहीं रह सकते थे॥ 50॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महाप्रभु और उनके भक्त एक-दूसरेसे मिले बिना सुखी नहीं हो सकते॥ 50॥

अन्तिम बारह वर्षोंमें महाप्रभुका श्रीकृष्णविरह :—

तार शेष येइ रहे द्वादश वत्सर।
कृष्णेर विरहलीला प्रभुर अन्तर॥ 51॥

अनुवाद—नीलाचलमें अन्त्यलीलाके जो बाकी बारह वर्ष थे, महाप्रभुने उनमें केवल श्रीकृष्ण-विरहमें विप्रलम्भ रसका आस्वादन किया॥ 51॥

अमृतप्रवाह भाष्य—गोपियोंकी श्रीकृष्णविरह-लीला महाप्रभुके अन्तःकरणमें सदा जाग्रत रहती थी॥ 51॥

रात-दिन कृष्णविरहसे उत्पन्न दिव्योन्माद :—

निरन्तर रात्रि-दिन विरह उन्मादे।
हासे, कान्दे, नाचे, गाय परम विषादे॥ 52॥

अनुवाद—दिन-रात निरन्तर वे विरहके उन्मादमें ग्रस्त होकर कभी हँसते, कभी रोते, कभी नाचते और कभी दुःखमें विकल होकर गाते॥ 52॥

दीर्घ-विरहके अन्तमें श्रीराधिकाके कृष्णदर्शनसे उत्पन्न
भावोंमें विभोर भावमय महाप्रभुका श्रीजगन्नाथ दर्शन :—

ये-काले करेन जगन्नाथ-दरशन।
मने भावेन, कुरुक्षेत्रे पाञाछि मिलन॥ 53॥

अनुवाद—महाप्रभु जब भी श्रीजगन्नाथजीके दर्शन करते, उनके हृदयमें कुरुक्षेत्रमें श्रीकृष्णसे मिल रहीं राधाजीके भाव उदित हो जाते॥ 53॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीकृष्णने कुरुक्षेत्रमें यज्ञका आयोजन किया और व्रजवासियोंको उसमें आमन्त्रित किया। गोपियोंने वहाँ जाकर श्रीकृष्णदर्शन-सुखको प्राप्त किया। महाप्रभुके अन्तःकरणमें सदा श्रीकृष्णविरहके भाव उद्दीप्त रहते थे। केवल जब-जब वे श्रीजगन्नाथजीके दर्शन करते, तब-तब कुरुक्षेत्र-मिलन-भाव उनके हृदयमें उदित होते थे॥ 53॥

रथके आगे नृत्य करते समय महाप्रभुका गान :—

रथयात्राय आगे यबे करेन नर्त्तन।
ताहाँ एइ पद मात्र करये गायन॥ 54॥

वह पद :—

"'सेइत' पराण-नाथ पाइनु।
याहा लागि' मदनदहने झुरि' गेनु॥"55॥

अनुवाद—महाप्रभु जब रथयात्रामें श्रीजगन्नाथजीके सामने नृत्य करते, तब वे यही एक पद गाया करते थे—मैंने उन्हीं प्राणनाथको पा लिया है, जिनके विरहमें मैं कामाग्निकी ज्वालामें जलकर म्लान हो रही थी॥ 54-55॥

श्रीजगन्नाथजीके गुण्डिचा जाते समय महाप्रभुके भाव :—

एइ धुया-गाने नाचेन द्वितीय प्रहर।
कृष्ण लञा व्रजे याइ—एभाव अन्तर॥ 56॥

अनुवाद—राधाजी श्रीकृष्णको वृन्दावन ले जा रही हैं, अन्तरमें इस राधा-भावसे महाप्रभु द्वितीय प्रहरमें विशेष रूपसे यही गान करते हुए नाचते॥ 56॥

अमृतप्रवाह भाष्य—कुरुक्षेत्रमें मिलनसे सन्तोष प्राप्त नहीं हुआ, इसलिये श्रीकृष्णको व्रजमें ले जाकर वहाँ उनके साथ मिलन हो, ऐसे भाव महाप्रभुके हृदयमें सदा उठते थे॥ 56॥

अनुभाष्य—महाप्रभुने राधाभावमें विभावित होकर सुदीर्घ माथुरविरहभावको ग्रहण किया। इसके द्वारा निरन्तर सम्भोगके पुष्टिकारक विप्रलम्भ-रसके मूर्तिमान् विग्रह बनकर उन्होंने जीवोंके एकमात्र भजन-साधनको जगत्को जनाया है। श्रीमद्भागवतके दसवें स्कन्धके 82वें अध्यायमें वर्णित है कि श्रीकृष्ण दर्शनके लिये उत्सुका गोकुलवासिनी सभी व्रजगोपियाँ स्यमन्तपक्षके ग्रहणके उपलक्ष्यमें कुरुक्षेत्र गयी थीं। वहाँ पहुँचकर उन्होंने जिस प्रकार हृदयके भावोंका प्रकाश किया था, दूसरी बार वही भाव श्रीगौरसुन्दरने नीलाचलपति श्रीजगन्नाथके दर्शनमें प्रकाशित किये थे। कुरुक्षेत्रमें गोपियाँ जिस प्रकार श्रीकृष्णके ऐश्वर्य-भावको दूर करके उन्हें गोकुलके माधुर्य-आस्वादनमें ले जानेका प्रयास कर रही थीं, उसी प्रकार श्रीगौरहरि कुरुक्षेत्ररूप नीलाचल मन्दिरसे श्रीकृष्णरूप श्रीजगन्नाथदेवको वृन्दावनरूप गुण्डिचा मन्दिरकी ओर ले जा रहे थे। रथके सामने श्रीगौरसुन्दर स्वयंमें उदित वृषभानुनन्दिनीके हृदयके भावका गान करते हुए श्रीकृष्णको पारकीय विहारस्थली गुण्डिचामें ले जा रहे थे॥ 53-56॥

गुह्य श्लोक :—

एइभावे नृत्यमध्ये पड़े एक श्लोक।
सेइ श्लोकेर अर्थ केह नाहि बूझे लोक॥ 57॥

अनुवाद—इस भावमें डूबकर नृत्य करते हुए महाप्रभुने एक श्लोक पढ़ा जिसका गूढ़ अर्थ कोई नहीं समझ सका॥ 57॥

पूर्वोक्त भावद्योतक श्लोक :—
काव्यप्रकाश (1/4); साहित्य-दर्पण (1/10);
पद्यावली (382) :—

यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपा-
स्ते चोन्मीलितमालतीसुरभयः प्रौढ़ाः कदम्बनिलाः।
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौ
रेवारोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठ्यते॥ 58॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 58॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिसने कौमारकालमें रेवानदीके तटपर मेरा चित्त हरण किया था, वही अब मेरा पति है; वही मधुमासकी रात्रि भी है; खिले हुए मालती पुष्पोंकी सुगन्ध भी है; कदम्बवनसे वायु भी मधुररूपमें बहकर आ रही है; सुरत-व्यापारलीलाके (प्रेममय विहारके) लिये मैं वही नायिका भी उपस्थित हूँ; तथापि मेरा चित्त इस अवस्थामें सन्तुष्ट नहीं होकर रेवानदीके तटपर वेतसी वृक्षके तलपर जानेके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित हो रहा है॥ 58॥

अनुभाष्य—

[हे सखि], यः [कान्तः] कौमारहरः (कौमारं हरति अपनयति यः सः) स एव हि वरः, ताः एव चैत्रक्षपाः (मधुचैत्रमासस्य ज्योत्सनावत्यः रजन्यः), [तथा] ते च उन्मीलितमालतीसुरभयः (उन्मीलितानिः विकशितानिः यानि मालती पुष्पानि तैः सुरभयः सुगन्धाः), प्रौढ़ाः (घनसुखप्रदाः) कदम्बानिलाः (कदम्ब-सुरभिपूर्णाः समीरणाः) [वहन्ति], सा च अहमेवास्मि, तथापि तत्र रेवारोधसि (रेवानदीतटे) वेतसीतरुतले (वेतसीकण्टक-वेष्टिते निर्जन-सुशीतलप्रदेशे) सुरतव्यापारलीलाविधौ (नायकसङ्गाकाङ्क्षायां यत्र पूर्वसङ्गमो जातस्तत्रैव) चेतः (मनः) समुत्कण्ठते (विहर्त्तुं उत्सहते)।

श्लोक-भावानुवाद—एक नायिका अपनी एक सखीसे कहती है,—"जिसने कौमारावस्थामें मेरे चित्तका हरण किया था, अब वही मेरा वर है अर्थात् वैवाहिक पति है। उसके साथ कौमारावस्थामें प्रथम मिलनके समय जो चैत्रमाहकी ज्योत्सनामयी रात्रि थी, अब भी वही चैत्रमाहका ज्योत्सनामय रात्रिकाल है। प्रथम मिलनके समयकी भाँति खिली हुई मालती पुष्पोंकी भीनी-भीनी मधुर सुगन्धयुक्त वायु अब भी कदम्ब वनकी ओरसे प्रवाहित हो रही है; मैं भी वही हूँ; फिर भी उसी रेवा नदीके तटपर निर्जन सुशीतल प्रदेशमें बैंतके वृक्षके नीचे प्रथम मिलनके समयवाली सुरत-व्यापारलीला अर्थात् प्रेममय विहारके लिये मेरा मन उत्कण्ठित हो रहा है॥"58॥

एकमात्र स्वरूप दामोदर ही महाप्रभुके भावोंके ज्ञाता :—

एइ श्लोकेर अर्थ जाने एकेला स्वरूप।
दैवे से वत्सर ताहाँ गियाछेन रूप॥ 59॥

अनुवाद—केवल श्रीस्वरूप दामोदर ही इस श्लोकके पाठके पीछे महाप्रभुके अप्राकृत भावोंको जानते थे। दैववश उस वर्ष श्रीरूप गोस्वामी भी वहाँ उपस्थित थे॥ 59॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'एकेला स्वरूप'*—उक्त श्लोक अत्यन्त तुच्छ नायक-नायिकाके सम्बन्धमें रचित है। महाप्रभु इसका जो इतने आदरके साथ पाठ कर रहे थे, उसका गूढ़ तात्पर्य स्वरूप-दामोदरके अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं जानता था॥ 59॥

श्रीरूपके द्वारा उसके अनुरूप स्वरचित श्लोक :—

प्रभुमुखे श्लोक शुनि' श्रीरूपगोसाञि।
सेइ श्लोकेर अर्थ-श्लोक करिला तथाइ॥ 60॥

अनुवाद—महाप्रभुके मुखसे इस श्लोकको सुनकर श्रीरूप गोस्वामीने उनके भावोंके अनुरूप एक श्लोककी रचना की॥ 60॥

अनुभाष्य—मध्यलीला, 13/111-159 संख्या देखें॥ 53-60॥

महाप्रभु और श्रीरूपके द्वारा रचित श्लोककी कथा :—

श्लोक करि' एक तालपत्रेते लिखिया।
आपन वासार चाले राखिला गुञ्जिया॥ 61॥

श्लोक राखि' गेला समुद्रस्नान करिते।
हेनकाले आइला प्रभु ताँहारे मिलिते॥ 62॥

अनुवाद—श्रीरूप गोस्वामीने श्लोककी रचना करके उसे एक तालपत्रपर लिखा और अपने वास स्थानपर फूसकी छतमें उसे फंसाकर रख दिया और समुद्रमें स्नानके लिये चले गये। तभी इसी बीच महाप्रभु उनसे मिलनेके लिये वहाँ आये॥ 61-62॥

ब्राह्मणोंके गुरु अप्राकृत वैष्णवाचार्य होनेपर भी दीनतावश मर्यादाका पालन करते हुए तीन व्यक्तियोंकी श्रीजगन्नाथ-मन्दिरमें जानेकी अनिच्छा :—

हरिदास ठाकुर, श्रीरूप-सनातन।
जगन्नाथ-मन्दिरे ना या'न तिन जन॥ 63॥

अनुवाद—श्रीहरिदास ठाकुर, श्रीरूप और श्रीसनातन गोस्वामी, ये तीनों श्रीजगन्नाथ मन्दिरमें दर्शनके लिये नहीं जाते थे॥ 63॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हरिदास ठाकुर काजीके पुत्र थे। मन्दिरकी मर्यादा भङ्ग न हो, इसलिये वे मन्दिरके भीतर नहीं जाते थे। श्रीरूप-सनातन दैन्यवशतः अपनेको तृणसे भी सुनीच मानते थे और उन्होंने नीच जातिके लोगोंकी नौकरी की थी, इसलिये अपनेको नीच जातिका ही मानकर मन्दिरमें नहीं जाते थे॥ 63॥

महाप्रभु जगन्नाथेर उपल-भोग देखिया।
निजगृहे या'न एइ तिनेरे मिलिया॥ 64॥

अनुवाद—महाप्रभु प्रतिदिन श्रीजगन्नाथदेवका उपल-भोग देखकर इन तीनोंसे मिलकर अपने वास स्थानपर जाते थे॥ 64॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'उपल-भोग'*—छत्र-भोग। श्रीजगन्नाथदेवके अन्य सभी भोग मणिकोठाके भीतर अर्पित किये जाते हैं। गरुड़-स्तम्भके पीछे एक बहुत बड़ा पत्थरसे बना स्थान है, दिनमें दोपहर बारह बजेके बाद जो बृहत् (बड़ा) भोग होता है, वह इस पत्थरके ऊपर लगाया जाता है। उपलका अर्थ होता है—पत्थर। उस पथरीली भूमिके ऊपर जो भोग लगाया जाता है, उसे 'उपल-भोग' कहते हैं॥ 64॥

एइ तिन मध्ये यबे थाके येइ जन।
ताँरे आसि' आपने मिले,—प्रभुर नियम॥ 65॥

अनुवाद—इन तीनोंमें जो भी उस स्थानपर होते थे, उनसे महाप्रभु आकर भेंट करते थे—ऐसा उनका नित्यका नियम था॥ 65॥

दैवे आसि' प्रभु यबे ऊर्ध्वेते चाहिल।
चाले गोँजा तालपत्रे सेइ श्लोक पाइल॥ 66॥

श्लोक पड़ि' आछे प्रभु आविष्ट हइया।
रूपगोसाञि आसि' पड़े दण्डवत् हञा॥ 67॥

अनुवाद—महाप्रभु जब वहाँ पहुँचे, तो अचानक उनकी दृष्टि ऊपर गयी और उन्हें वह तालपत्र दिखलायी दिया। श्लोक पढ़कर महाप्रभु भावमें आविष्ट हो गये और तभी श्रीरूप गोस्वामी वहाँ आये और उन्होंने महाप्रभुको दण्डवत् प्रणाम किया॥ 66-67॥

श्रीरूपके प्रति महाप्रभुकी अकृत्रिम स्नेह-कृपा :—

उठि' महाप्रभु ताँरे चापड़ मारिया।
कहिते लागिला किछु कोलेते करिया॥ 68॥

अनुवाद—महाप्रभुने उनको उठाकर प्रेमसे एक चाँटा मारा और अपनी गोदमें बैठाकर कुछ पूछने लगे॥ 68॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'उठि'*—पाठान्तर, *'उठाइ'*॥ 68॥

"मोर श्लोकेर अभिप्राय ना जाने कोन जने।
मोर मनेर कथा तुञि जानिलि केमने?॥"69॥

एत बलि' ताँरे बहु प्रसाद करिया।
स्वरूप-गोसाञिरे श्लोक देखाइल लञा॥ 70॥

अनुवाद—मेरे श्लोकका अभिप्राय कोई नहीं जानता है, तो मेरे मनके भाव तुमने कैसे जान लिये? यह कहकर महाप्रभुने उन्हें बहुत आशीर्वाद दिये और वह श्लोक दिखानेके लिये श्रीस्वरूप दामोदरजीके पास आये॥ 69-70॥

श्रीस्वरूपको श्रीरूपके द्वारा रचित
श्लोक दिखलाकर प्रश्न :—

स्वरूपे पुछेन प्रभु हइया विस्मिते।
"मोर मनेर कथा रूप जानिल केमते?॥"71॥

अनुवाद—महाप्रभु विस्मित होकर श्रीस्वरूप दामोदरसे पूछने लगे कि मेरे मनके भावोंको रूपने कैसे जान लिया?॥ 71॥

स्वरूप कहे,—"याते जानिल तोमार मन।
ताते जानि,—हय तोमार कृपार भाजन॥"72॥

अनुवाद—श्रीस्वरूप दामोदरने कहा—"यदि उसने आपके मनके भावोंको जान लिया है, तो यह निश्चित है कि वह आपका कृपापात्र ही है॥"72॥

प्रभु कहे,—"तारे आमि सन्तुष्ट हञा।
आलिङ्गन कैलुँ सर्वशक्ति सञ्चारिया॥ 73॥

योग्यपात्र हय गूढ़रस-विवेचने।
तुमिओ कहिओ तारे गूढ़रसाख्याने॥"74॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"मैं उससे सन्तुष्ट हुआ हूँ और उसका आलिङ्गन करके मैंने अपनी सारी शक्ति उसमें सञ्चारित की है। भक्तिरसके गूढ़ तत्त्वोंको समझनेका वह योग्य पात्र है। तुम उसको भक्तिरसके गूढ़ उपाख्यान समझाना॥"73-74॥

एसब कहिब आगे विस्तार करिञा।
संक्षेपे उद्देश कैल प्रस्ताव पाइया॥ 75॥

अनुवाद—(श्रीकृष्णदास कह रहे हैं) इन सबको विस्तारसे आगेके अध्यायोंमें कहूँगा, यहाँ तो मैंने केवल प्रसङ्गवशतः संक्षेपमें वर्णन किया है॥ 75॥

पद्यावलीमें श्रीरूपकृत श्लोक (387) :—

प्रियः सोऽयं कृष्णः सहचरि कुरुक्षेत्रमिलित-
स्तथाहं सा राधा तदिदमुभयोः सङ्गमसुखम्।
तथाप्यन्तः खेलन्मधुरमुरलीपञ्चमजुषे
मनो मे कालिन्दीपुलिनविपिनाय स्पृहयति॥ 76॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 76॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे सहचरी! मेरे वे अतिप्रिय कृष्ण मुझसे अभी कुरुक्षेत्रमें मिल रहे हैं, मैं भी वही

राधा हूँ; और हम दोनोंके मिलनका सुख भी वैसा ही है; तथापि इन कृष्णकी वनमें क्रीड़ाशील मुरलीके पञ्चमसुरके आनन्दसे प्लावित कालिन्दीके तटपर वृन्दावनमें जानेकी स्पृहा मेरे हृदयमें हो रही है॥ 76॥

अनुभाष्य—

हे सहचरि (सखि), सः (मम कान्तः) अयं प्रियः (प्राणारामः) कृष्णः कुरुक्षेत्रमिलितः (कुरुक्षेत्रे प्राप्तः) तथा सा राधा अहं उभयोः तत् इदं सङ्गमसुखं (मिथो मिलनेन यद्यपि सुखं जातं); तथापि अन्तःखेलन्मधुर-मुरली-पञ्चमजुषे (अन्तः हृदयाभ्यन्तरे वृन्दाविपिनमध्ये वा खेलन् क्रीड़न् मधुरो यः वंश्याः पञ्चमो रागः तं जुषते सेवते तस्मै) कालिन्दीपुलिनविपिनाय (कालिन्द्याः यमुनायाः पुलिनं तटस्थलं तस्मिन् यत् विपिनं तरु-समाकीर्णं निर्जनं काननं तस्मै वंशीनिनादपूर्णयामुनतटान्तस्थ-वृन्दावनाय) मे (मम) मनः स्पृहयति (गमनाय समुत्कण्ठितो भवति)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 76॥

श्लोकमें श्रीजगन्नाथ-दर्शनसे महाप्रभुके भाव व्यक्त :—

एइ श्लोकेर संक्षेपार्थ शुन, भक्तगण।
जगन्नाथ देखि' यैछे प्रभुर भावन॥ 77॥

अनुवाद—हे भक्तों! इस श्लोकका संक्षेपमें अर्थ सुनो। श्रीजगन्नाथको देखकर महाप्रभुमें जैसे भाव आते थे॥ 77॥

कुरुक्षेत्रमें श्रीकृष्ण दर्शनसे राधिकाका भाव :—

श्रीराधिका कुरुक्षेत्रे कृष्णेर दरशन।
यद्यपि पायेन, तबु भावेन ऐछन॥ 78॥

विधिधर्म और ऐश्वर्य त्याग करवाके श्रीकृष्णको व्रजमें दीन गोपियोंके मध्य प्राप्त करनेकी आकाङ्क्षा :—

राजवेश, हाती, घोड़ा, मनुष्य गहन।
काहाँ गोपवेश, काहाँ निर्जन वृन्दावन॥ 79॥

सेइ भाव, सेइ कृष्ण, सेइ वृन्दावन।
यबे पाइ, तबे हय वाञ्छित-पूरण॥ 80॥

अनुवाद—कुरुक्षेत्रमें श्रीमती राधिकाने श्रीकृष्णके दर्शन किये और वे साक्षात् उनके सामने थे, परन्तु उनके भाव इस प्रकार थे—यहाँ कृष्णका राजवेश है, चारों ओर हाथी, घोड़े और मनुष्योंकी भीड़ लगी है और कहाँ निर्जन वृन्दावनमें कृष्णका गोपवेश होता था। वही प्रेमके भाव, वही गोपवेशमें कृष्ण और वही वृन्दावनका परिवेश हो, तभी मेरी वाञ्छा पूर्ण होगी॥ 78–80॥

श्रीकृष्णसे स्वगृहमें मिलनकी आकाङ्क्षा :—

श्रीमद्भागवत (10/82/48)—

आहुश्च ते नलिननाभ पदारविन्दं
योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः।
संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं
गेहं जुषामपि मनस्युदियात् सदा नः॥ 81॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 81॥

अमृतप्रवाह भाष्य—गोपियोंने कहा,—"हे कमलनाभ! संसार-कूपमें पतित लोगोंके पार होनेके लिये आपके चरणकमल ही एकमात्र आश्रय हैं, जो ब्रह्मादि अति ज्ञानवान् योगेश्वरोंके हृदयमें ही सर्वतोभावेन (सभी प्रकारसे) चिन्तनीय हैं, वे चरणकमल हम गृहसेवियोंके मनमें सदा उदित हों।"

किसी-किसी पाठमें निम्नलिखित श्लोक दिखायी देता है (श्रीमद्भागवत 10/83/2)—

"त एवं लोकनाथेन परिपृष्टाः सुसत्कृताः।
प्रत्युचुर्हृष्टमनसस्तत्पादेक्षाहतांहसः॥"81॥

अनुभाष्य—स्यमन्तपञ्चक अर्थात् कुरुक्षेत्रमें श्रीकृष्णादि प्रमुख वृष्णियोंके साथ गोप-गोपियोंके मिलनके बाद श्रीकृष्णके प्रति गोपियोंकी उक्ति—

गोप्यः आहुः—हे नलिननाभ (पद्मनाभ), अगाधबोधैः (बुद्धेः पारङ्गतैः) योगेश्वरैः (विषयनिवृत्तैः) हृदि (मनसि) विचिन्त्यं (सर्वतोभावेन चिन्तनीयं) संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं (संसार एव कूपः तस्मिन् पतिताः ये तेषां उत्तरणाय उद्धाराय अवलम्बम् आश्रयरूपं विषयरतानां मुक्त्युपायरूपं) ते (तव) पदारविन्दं (चरणकमलं) गेहं (गोपभवनं वृन्दावनं) जुषां (सेवमानानां सहजगृहधर्मनिरतानां गोपीनां) अपि नः (अस्माकं) मनसि सदा उदियात्। [सांसारिकविषयरसाविष्टानां उद्धरणसमर्थं विषयरहितानां योगीनां च ध्यानविषयात्मकं तव पदकमलं,

किन्तु अस्माकं सहजगृहधर्मपराणां तव विरहसिन्धुनिमग्नानां नोद्धर्त्तुं शक्नुयात्, यतः वयं न ध्यानपरा योगिनः, न च पतिपुत्रादिकथारताः कृपणाः संसारिणः]।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें।

[इस श्लोकमें गोपियोंके गूढ़ भाव इस प्रकार हैं,—"हे कृष्ण! आपके चरणकमल सांसारिक विषयरस-विष्ठासे उद्धार करनेमें समर्थ और योगियोंके ध्यानके विषय हैं, किन्तु हमारे जैसी सहज गृहधर्म परायणा जो आपके विरह-समुद्रमें डूब रही हैं, उनका उद्धार करनेमें सक्षम नहीं हैं, क्योंकि हम न तो ध्यानपरायण योगिनी हैं और न ही पति-पुत्रादिमें आसक्त कृपण संसारी नारी हैं।"]॥ 81॥

दीर्घ विरहके अन्तमें मिलनकी आकाङ्क्षा :—

तोमार चरण मोर व्रजपुरघरे।
उदय करये यदि, तबे वाञ्छा पूरे॥ 82॥

अनुवाद—यदि तुम अपने चरण पुनः मेरे घर वृन्दावनमें रखोगे, तभी मेरी अभिलाषा पूर्ण होगी॥ 82॥

अनुभाष्य—गोपियाँ विशुद्ध कृष्णसेवा-परायणा हैं, उन्हें श्रीकृष्णके ऐश्वर्य या अन्य किसी वैभवसे कोई प्रयोजन नहीं हैं। इसलिये कुरुक्षेत्रमें श्रीकृष्णके हाथी, घोड़ों और राजवेशमें उनकी कोई रुचि नहीं है। जिस प्रकार गोपीजनवल्लभ श्रीकृष्ण गोपियोंके निर्मल प्रेमभावके वशीभूत हैं, उसी प्रकार गोपियाँ भी गोपीजनवल्लभकी नित्य सेविकाएँ हैं। योगीजन जिस प्रकार समस्त सांसारिक कामनाओंका त्यागकर एकाग्र चित्तसे अखिल वैभवके स्वामी श्रीकृष्णका ध्यान करते हैं, गोपियाँ उस प्रकार श्रीकृष्णका ध्यान करनेकी चेष्टा नहीं करती हैं। अथवा विषयोंमें आसक्त लोग जिस प्रकार अपनी समृद्धिके लिये अपने देह-पुत्र-परिवारके लौकिक मङ्गल अथवा स्वयं भवसागरसे मुक्त होनेके उद्देश्यसे हरिपदाश्रय करते हैं, गोपियोंकी उस प्रकारके सत्कर्मोंमें रुचि या निपुणता नहीं हैं। वे तो अपनी समस्त इन्द्रियोंके द्वारा काय-मनो-वाक्यसे श्रीकृष्णकी शुद्धसेवामें निरन्तर रत रहती हैं। गोपियाँ नीरस शुष्क तर्क-विचार अथवा प्राकृत रसके भोग अथवा त्याग—इन सबसे परे हैं। गोपियाँ यह नहीं चाहती हैं कि उनके प्राणवल्लभ अन्य किसी कार्यमें व्यस्त रहें अथवा मर्यादाका पालन करनेके लिये वृन्दावनके अतिरिक्त किसी अन्य स्थानमें रहें। वे तो श्रीवृन्दावनमें अपनी समस्त इन्द्रियोंसे सेवाके द्वारा व्रजेन्द्रनन्दनको सुखी करके ही सुखका अनुभव करती हैं॥ 82॥

भागवतेर श्लोकार्थ विचार करिञा।
रूप-गोसाञि श्लोक कैल लोक बुझाइञा॥ 83॥

अनुवाद—श्रीरूप गोस्वामीने एक ही श्लोकमें भागवतके गूढ़ रहस्यको प्रकाशित कर दिया जिसे साधारण लोग भी समझ सकते हैं॥ 83॥

विरहके कारण चिरकालसे मधुर-स्मृतिमय
मिलनकी आकाङ्क्षा :—
ललितमाधव (10/38) —

या ते लीलारसपरिमलोद्गारिवन्यापरीता
धन्या क्षौणी विलसति वृता माथुरी माधुरीभिः।
तत्रास्माभिश्चटुलपशुपीभावमुग्धान्तराभिः
सम्वीतस्त्वं कलय वदनोल्लासि-वेणुर्विहारम्॥ 84॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 84॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे कृष्ण! तुम्हारी लीला-रस-गन्धको विस्तार करनेवाले वनसमूहके द्वारा व्याप्त, मथुरामण्डलीय माधुरीके द्वारा परिवेष्टित और भावके द्वारा मुग्धचित्त हम गोपियोंके द्वारा परिसेवित होकर जिस धन्य वृन्दावनमें विलास करते थे, हे वंशीवदन! (वहीं) तुम हमारे सङ्ग वही लीला-विहार करो॥ 84॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णकी श्रीमती राधिकासे अभीष्ट वर माँगनेकी प्रार्थना करनेपर श्रीमतीकी उक्ति,—

लीलारसपरिमलोद्गारिवन्यापरीता (लीलारस-सुरभि-निःसारिणी या वन्या वनसमूहतया परीता व्याप्ता), माथुरी (मथुरा-सम्बन्धिनी) माधुरीभिः (सौन्दर्यैः) वृता (आवृता) धन्या (प्रशंसनीया), या

ते (तव) क्षौणी (व्रजभूमिः) विलसति, तत्र (व्रजपुर्यां) चटुलपशुपीभावमुग्धान्तराभिः (चटुलाः चञ्चलाः पशुपीभावेन गोपीभावेन मुग्धान्तःकरणं यासां ताभिः) अस्माभिः (गोपीभिः) संवीतः (सम्मिलितः) वदनोल्लासिवेणुः (वदनात् उल्लसितुं शीलमस्य इति उल्लासी वंशी यस्य तथाभूतः सन्, स्मितवदनोत्थ-गोप्युन्मादिमुरलीनिनादकारी) त्वं विहारं कलय (कुरु)।

श्लोक-भावानुवाद—गोपियाँ कह रही हैं,—"हे कृष्ण! मधुर लीलारसके सौरभको विस्तार करनेवाले वनसमूहसे परिव्याप्त, मथुरामण्डलकी माधुरीसे परिवेष्टित जो धन्य व्रजभूमि विराजमान है, उस व्रजपुरीमें मुग्धचित्त हम गोपियोंसे परिवेष्टित होकर प्रफु
करनेवाले वेणुवादन करते हुए तुम विहार करो।"

मध्यलीला 13/121-159 संख्या देखें॥ **75-84**॥

विरह हेतु श्रीजगन्नाथजीको व्रज ले जानेका आग्रह :—

एइरूप महाप्रभु देखि' जगन्नाथे।
सुभद्रा-सहित देखे, वंशी नाहि हाते॥ 85॥

त्रिभङ्ग-सुन्दर व्रजे व्रजेन्द्रनन्दन।
काहाँ पाव, एइ वाञ्छा करे अनुक्षण॥ 86॥

अनुवाद—इस प्रकार जब महाप्रभुने श्रीजगन्नाथजीको देखा कि वे अपनी बहन सुभद्राके साथ हैं और उनके हाथमें वंशी भी नहीं है, तो उनके हृदयमें श्रीजगन्नाथजीको त्रिभङ्ग-ललित मुद्रामें खड़े परम सुन्दर व्रजेन्द्रनन्दनके रूपमें देखनेकी इच्छा पल-पल बढ़ने लगी॥ **85-86**॥

उद्धवके दर्शनसे राधिका-भावमय महाप्रभु :—

राधिका-उन्माद यैछे उद्धव-दर्शने।
उद्घूर्णा-प्रलाप तैछे प्रभुर रात्रि-दिने॥ 87॥

अनुवाद—उद्धवजीको देखकर जैसे श्रीमती राधिका दिव्योन्मादकी दशामें उद्घूर्णा-प्रलाप करने लगीं थी, वैसे ही महाप्रभु दिन-रात उन्मादित होकर प्रलाप करते॥ **87**॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'उद्घूर्णा-प्रलाप'*—नाना प्रकार विवशतापूर्ण चेष्टासे जो प्रलापादि उदित होते हैं॥ **87**॥

अनुभाष्य— *'उन्माद'*—उद्घूर्णा और चित्रजल्पादियुक्त दिव्योन्माद।

"एतस्य मोहनाख्यस्य गतिं कामप्युपेयुषः।
भ्रमाभा कापि वैचित्री दिव्योन्माद इतीर्यते॥"

—(उःनीः 14/190)

अर्थात् "किसी अनिर्वचनीय विशेष-वृत्तिको प्राप्त होनेपर मोहनभावकी अद्भुत भ्रान्ति-सदृश स्फूर्तिरूपा वैचित्रीको पण्डितजन दिव्योन्माद कहते हैं।" इस श्लोकको श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तीकी आनन्दचन्द्रिका टीका—

"कामपि निर्वक्तुमशक्यां गतिं वृत्तिमुपेयुषः प्राप्तस्य काप्यद्भुता वैचित्री दिव्योन्मादः।"

अर्थात् "किसी अनिर्वचनीया वृत्तिसे प्राप्त मोहनके भ्रमतुल्य विचित्रतापूर्ण अवस्थाको दिव्योन्माद कहते हैं।"

"उद्घूर्णा चित्रजल्पाद्यास्तद्भेदा बहवो मताः।"

—(उःनीः 14/191)

अर्थात् "इस दिव्योन्मादमें उद्घूर्णा और चित्रजल्पादि बहुतसे भेद हुआ करते हैं।"

'उद्घूर्णा'—

"स्याद्विलक्षणमुद्घूर्णा नानावैवश्यचेष्टितम्।"

—(उःनीः 14/192)

अर्थात् "नाना प्रकारकी विलक्षण विवशतापूर्ण चेष्टाको उद्घूर्णा कहते हैं।" जैसे—

"शय्यां कुञ्जगृहे क्वचिद्वितनुते सा वाससज्जायिता,
नीलाभ्रं धृतखण्डिता व्यवहृतिश्चण्डी क्वचित्तर्जति।
आघूर्णत्यभिसारसंभ्रमवती ध्वान्ते क्वचिद्दारुणे,
राधा ते विरहोद्भ्रमप्रमथिता धत्ते न कां वा दशाम्।"

—(उःनीः 14/193)

अर्थात् उद्धवजी श्रीकृष्णसे कहते हैं—"हे श्रीकृष्ण! श्रीमती राधिका तुम्हारे विरहमें महाभ्रान्तिसे पीड़ित होकर न जाने कौन-कौनसी दशाको प्राप्त नहीं हो रही हैं? वे कभी वासकसज्जाकी भाँति कुञ्जभवनको सजाती हैं, शय्या-रचना करती हैं, कभी खण्डितावस्थामें अति क्रोधित होकर नीलमेघको भी तर्जन-गर्जन करती

हैं, कभी-कभी घनघोर अन्धकारमें भी शीघ्रतासे अभिसारिणी होकर भ्रमण करने लगती हैं।"

अधिरूढ़-महाभाव दो प्रकारका होता है—मोदन और मादन। मोदनभाव वियोग-दशामें 'मोहन' नामसे प्रसिद्ध है। इस मोहन-महाभावमें भी विरह-विवशता हेतु सात्त्विकभावसमूह सूद्दीप्त रूपमें प्रकाशित हुआ करते हैं॥ 87॥

अन्तके बारह वर्षोंमें महाप्रभुका श्रीकृष्ण विरह :—

द्वादश वत्सर शेष ऐछे गोङाइल।
एइ मत शेषलीलार विधान करिल॥ 88॥

अनुवाद—अन्तिम बारह वर्ष महाप्रभुने इसी प्रकार उन्माद दशामें बिताये, इस प्रकार उन्होंने (तीन प्रकारसे मध्य और अन्त्य) शेषलीला की॥ 88॥

महाप्रभुकी असीम लीलाएँ :—

संन्यास करि' चब्बिश वत्सर कैला ये ये कर्म।
अनन्त, अपार—तारके जानिबे मर्म॥ 89॥

ग्रन्थकारका दिग्दर्शन :—

उद्देश करिते करि दिग्-दरशन।
मुख्य-मुख्य-लीलार करि सूत्र गणन॥ 90॥

अनुवाद—संन्यास लेनेके बाद चौबीस वर्षोंमें उन्होंने जो-जो लीलाएँ कीं, वे अनन्त-अपार हैं और उनके मर्मको कौन जान सकता है? इसलिये मैं केवल उनका दिग्दर्शन करानेके लिये मुख्य-मुख्य लीलाओंको सूत्र रूपमें वर्णन करूँगा॥ 89–90॥

पहले महाप्रभुका संन्यास और बादमें वृन्दावन-यात्रा :—

प्रथम सूत्र प्रभुर संन्यासकरण।
संन्यास करि' चलिला प्रभु श्रीवृन्दावन॥ 91॥

अनुवाद—प्रथम सूत्र यह है कि महाप्रभुने संन्यास ग्रहण किया और उसके बाद वे वृन्दावनकी ओर चले॥ 91॥

अनुभाष्य—महाप्रभुका संन्यास साधारण कर्मियों और ज्ञानियोंके संन्यासके जैसा नहीं है। उन्होंने संन्यास ग्रहण करके वृन्दावन जानेकी लीला प्रदर्शित की। सांसारिक भोगोंके विचारको छोड़कर श्रीकृष्णका अनुकूल अनुशीलन ही अवैष्णवतासे संन्यास लेना है।

"अनासक्तस्य विषयान् यथार्हमुपयुञ्जतः।
निर्बन्धः कृष्णसम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते॥"

—(भ:र:सि: 1/2/255)

अर्थात् "विषयोंमें अनासक्त होकर अपनी भक्तिके अनुकूल यथा-उपयुक्त विषय-भोग करते हुए श्रीकृष्णकी भक्तिके सम्बन्धमें विशेष आग्रह रखना 'युक्त-वैराग्य' कहलाता है।"

ज्ञानी-संन्यासी हरिसेवासे विमुख होनेके कारण अप्राकृत तत्त्वको नहीं समझ पाते, इसलिये वे हरिसम्बन्धी वस्तुओंको भी भौतिक मानते हैं॥ 91॥

तीन दिन तक राढ़ देशमें भ्रमण :—

प्रेमेते विह्वल बाह्य नाहिक स्मरण।
राढ़देशे तिन दिन करिला भ्रमण॥ 92॥

अनुवाद—महाप्रभु श्रीकृष्णप्रेममें ऐसे मत्त हो गये कि उन्हें बाहरकी सुध-बुध ही नहीं रही और वे मनमें यही भावना कर रहे थे कि वे वृन्दावनकी ओर जा रहे हैं, परन्तु वे तीन दिन तक निरन्तर राढ़देशमें ही घूमते रहे॥ 92॥

श्रीनित्यानन्दकी चतुरतासे महाप्रभुका नवद्वीपमें आगमन :—

नित्यानन्द प्रभु महाप्रभु भुलाइया।
गङ्गातीरे लञा गेला 'यमुना' बलिया॥ 93॥

शान्तिपुरमें श्रीअद्वैतके घरमें भिक्षा और कीर्तन :—

शान्तिपुरे आचार्येर गृहे आगमन।
प्रथम भिक्षा कैल ताहाँ, रात्रे सङ्कीर्त्तन॥ 94॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभुने महाप्रभुको वृन्दावन ले जानेके छलसे उन्हें भ्रमित करके गङ्गाके तटपर लाकर कहा कि ये यमुनाजी हैं। उसके बाद श्रीनित्यानन्द प्रभु उन्हें शान्तिपुरमें श्रीअद्वैताचार्यके घर लेकर आये

और महाप्रभुने संन्यासके बाद पहली भिक्षा वहीं की। उस रात उन्होंने भक्तोंके साथ सङ्कीर्तन किया॥ 93-94॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'प्रथमभिक्षा'*—संन्यास लेनेके बाद कुछ दिन भ्रमण करनेके बाद श्रीअद्वैत-प्रभुके घरमें प्रथम अन्नभिक्षा ग्रहण की॥ 94॥

शचीमाता और भक्तोंके साथ मिलन, पुरीमें गमन :—

माता भक्तगणेर ताँहा करिल मिलन।
सर्व समाधान करि' कैल नीलाद्रिगमन॥ 95॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्यके घरमें महाप्रभुका शचीमाता और मायापुरके भक्तोंसे मिलन हुआ। तब मातासे अनुमति और सब भक्तोंसे विदा लेकर वे वहाँसे नीलाचलकी ओर चले पड़े॥ 95॥

अनुभाष्य—मध्यलीला तीसरा अध्याय देखें॥ 91-95॥

पुरीके मार्गमें रेमुणामें माधवेन्द्र पुरीका
वृत्तान्त और गोपीनाथ-दर्शन :—

पथे नाना लीला, सब देव-दरशन।
माधवपुरीर कथा, गोपाल-स्थापन॥ 96॥

अनुवाद—नीलाचल जाते हुए महाप्रभुने अनेक लीलाएँ कीं और मार्गमें उन्होंने सभी मन्दिरोंमें विग्रहोंके दर्शन किये। उन्होंने श्रीमाधवेन्द्रपुरीकी कथाका वर्णन किया कि कैसे उन्होंने श्रीगोपालके विग्रहकी गोवर्धनमें स्थापना की॥ 96॥

अनुभाष्य—श्रीमाधवपुरी-शब्दसे श्रीमाधवेन्द्रपुरीको समझना चाहिये। श्रीगदाधर-पण्डित गोस्वामीकी शाखामें श्रीवल्लभभट्टने श्रीमङ्गलभाष्यके लेखक श्रीमाधवाचार्यसे त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण किया था। श्रीमाधवाचार्य और श्रीमाधवेन्द्रपुरी दो अलग व्यक्ति हैं॥ 96॥

श्रीनित्यानन्दके द्वारा साक्षी-गोपालका वृत्तान्त
वर्णन और महाप्रभुके संन्यास दण्डको तोड़ना :—

क्षीर-चुरि-कथा, साक्षिगोपाल-विवरण।
नित्यानन्द कैल प्रभुर दण्ड-भञ्जन॥ 97॥

अनुवाद—गोपीनाथजीके द्वारा श्रीमाधवेन्द्रपुरीके लिये खीर चुराना, गोपालजीका ब्राह्मणके लिये साक्षी देनेके लिये वृन्दावनसे विशाखापट्टनम् आना आदि लीलाओंका महाप्रभुने आस्वादन किया। मार्गमें श्रीनित्यानन्द प्रभुने उनका संन्यास दण्ड तोड़कर उसे नदीमें फेंक दिया॥ 97॥

अनुभाष्य— *'क्षीरचोरा गोपीनाथ'*—श्रीपाट रेमुणामें है। टीका लिखनेके समय श्रीश्यामसुन्दर अधिकारी मन्दिरके सेवायत थे। वे श्रीश्यामानन्द प्रभुके अनुगत श्रील रसिकानन्द मुरारिके श्रीपाट मेदिनीपुर जिलाके छोरपर रहनेवाले गोपीवल्लभपुरके शिष्य हैं।

'साक्षिगोपाल'—भुवनेश्वरसे पुरीके मार्गपर 'सत्यवादी' नामक ग्राममें श्रीमन्दिर अवस्थित है। श्रीमहाप्रभुके समयमें कटक-शहरमें साक्षिगोपालका मन्दिर था। (मध्यलीला 5/8 का अमृतप्रवाह-भाष्य देखें।)

मध्यलीला चौथा और पाँचवाँ अध्याय भी देखें॥ 96-97॥

अकेले श्रीजगन्नाथ दर्शन करते समय मूर्च्छा :—

क्रुद्ध हञा एका गेला जगन्नाथ देखिते।
देखिया मूर्छित हञा पड़िला भूमिते॥ 98॥

श्रीसार्वभौमके घरमें महाप्रभुको लाना और मूर्च्छाभङ्ग :—

सार्वभौम लञा गेला आपन-भवन।
तृतीय प्रहरे प्रभु हइल चेतन॥ 99॥

अनुवाद—उनके दण्डको तोड़कर फेंक देनेकी बातसे क्रोधित होकर महाप्रभु अकेले ही श्रीजगन्नाथके दर्शनोंके लिये आये और वहाँ दर्शन करते ही वे मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़े। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य उन्हें उठाकर अपने घर ले आये। तीन प्रहर बाद महाप्रभुकी चेतना लौटी॥ 98-99॥

बादमें श्रीनित्यानन्दादि भक्तोंके साथ मिलन :—

नित्यानन्द, जगदानन्द, दामोदर, मुकुन्द।
पाछे आसि' मिलि' सबे पाइल आनन्द॥ 100॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीजगदानन्द, श्रीस्वरूप

दामोदर, श्रीमुकुन्द पीछे आकर महाप्रभुसे मिले और उन्हें बहुत आनन्द हुआ॥ 100॥

श्रीसार्वभौमपर कृपा और षड्भुज-प्रदर्शन :—

तबे सार्वभौमे प्रभु प्रसाद करिल।
आपन-ईश्वरमूर्त्ति ताँरे देखाइल॥ 101॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने श्रीसार्वभौमपर कृपा करके उन्हें अपनी ईश्वरमूर्तिके (पहले चतुर्भुज नारायणरूपके और बादमें अपने नित्य श्यामसुन्दर-वंशीधारी श्रीकृष्ण स्वरूपके) दर्शन कराये॥ 101॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 6/201–204 संख्या देखें॥ 101॥

महाप्रभुका दक्षिण भारतकी ओर गमन तथा
कूर्मक्षेत्रमें कुष्ठरोगी विप्रका उद्धार :—

तबे त' करिला प्रभु दक्षिण गमन।
कूर्मक्षेत्रे कैल वासुदेव-विमोचन॥ 102॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौमपर कृपा करके तब महाप्रभुने दक्षिण भारतकी यात्रा आरम्भ की। कूर्मक्षेत्र पहुँचकर उन्होंने कुष्टरोगी वासुदेव नामक ब्राह्मणका उद्धार किया॥ 102॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 7/113 के अनुभाष्यमें कूर्मस्थान और श्रीनरहरि (नृहरि) तीर्थके समयमें 1203 शकाब्दके पत्थर-पटलका वृत्तान्त देखें॥ 102॥

जियड़-नृसिंह-दर्शन :—

जियड़-नृसिंहे कैल नृसिंह-स्तवन।
पथे-पथे ग्रामे-ग्रामे नामप्रवर्त्तन॥ 103॥

अनुवाद—जियड़-नृसिंह क्षेत्रमें भगवान् नृसिंहदेवके दर्शन करके उनकी स्तुति की और मार्गमें आनेवाले सभी ग्रामोंमें उन्होंने श्रीकृष्णनाम-कीर्तनका प्रचार किया॥ 103॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 8/3 का अनुभाष्य देखें॥ 103॥

विद्यानगरमें गोदावरी-तटपर श्रीराय-रामानन्दसे मिलन :—

गोदावरीतीर-वने वृन्दावन-भ्रम।
रामानन्द राय सह ताहाञि मिलन॥ 104॥

अनुवाद—गोदावरीके तटपर एक वनको देखकर महाप्रभुको वृन्दावनका भ्रम हो गया। वहीं उनका श्रीराय रामानन्दसे मिलन हुआ॥ 104॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 8/11 और 8/14–20 संख्या देखें॥ 104॥

तिरुमलयमें तिरुपतिका दर्शन :—

त्रिमल्ल-त्रिपदी स्थान कैल दरशन।
सर्वत्र करिल कृष्णनाम प्रचारण॥ 105॥

अनुवाद—फिर महाप्रभुने त्रिमल्ल और त्रिपदी स्थानोंमें जाकर दर्शन किये और सर्वत्र श्रीकृष्णनामका प्रचार किया॥ 105॥

अनुभाष्य—*'त्रिमल्ल' (तिरुमलय)*—ताञ्जोर जिलामें अवस्थित है (मध्यलीला 9/71 संख्या देखें)। *'त्रिपदी' (तिरुपति, पदि या तिरु-पाट्टुर)*—(उत्तर आर्कटमें) व्येङ्कटाचलकी घाटीमें अवस्थित है, वहाँ श्रीरामचन्द्रका मन्दिर है। इसी व्येङ्कटाचलके ऊपर सुप्रसिद्ध श्रीबालाजीका मन्दिर है (मध्यलीला 9/64 संख्या देखें)॥ 105॥

पाखण्डी-बौद्धोंका उद्धार और अहोबल-नृसिंह-दर्शन :—

तबे त' पाषण्डिगणे करिल दलन।
अहोबल-नृसिंहादि कैल दरशन॥ 106॥

अनुवाद—तब उन्होंने कुछ पाखण्डियोंको परास्त किया। इसके बाद उन्होंने अहोबल-नृसिंह आदि मन्दिरोंके दर्शन किये॥ 106॥

अनुभाष्य—*'पाषण्डिदलन'*—मध्यलीला 9/42–62 संख्या देखें। *'अहोबल'*—नामान्तर *'अहोबिलम्' मन्दिर*—दक्षिण-भारतके कर्णूल जिलाके सार्बेल-तालुकामें है। सम्पूर्ण जिलेमें यह श्रीनृसिंहदेवका मन्दिर ही विख्यात है। पीछे अन्य नौ विष्णुविग्रहोंसे युक्त मन्दिरसे मिलनेपर

इसे 'नवनृसिंहमन्दिर' भी कहते हैं। प्रधान मन्दिर चौंसठ खम्बोंपर निर्मित है और प्रत्येक खम्बेपर छोटे-छोटे खम्बे खुदे हैं। मन्दिरके सामने अत्यधिक कुशल शिल्पकारोंकी कलाकारीके नमूनेके रूपमें सफेद पत्थरसे निर्मित तीन फुट व्यासके गोलाकार बड़े-बड़े स्तम्भोंसे युक्त एक असम्पूर्ण किन्तु बहुत विचित्र मण्डप विद्यमान है (कर्णूल म्यानुयेलन पत्रिका)॥ 106॥

श्रीरङ्गनाथ-दर्शन :—

श्रीरङ्गक्षेत्र आइला कावेरीर तीर।
श्रीरङ्ग देखिया प्रेमे हइला अस्थिर॥ 107॥

अनुवाद—वहाँसे वे कावेरीके तटपर श्रीरङ्गम पहुँचे। श्रीरङ्गजीके दर्शन करके वे प्रेममें मत्त हो गये॥ 107॥

अनुभाष्य—*'श्रीरङ्गक्षेत्र'*—मध्यलीला 9/79 संख्याका अनुभाष्य देखें॥ 107॥

त्रिमल्ल भट्टके घरमें चातुर्मास्य-यापन :—

त्रिमल्ल भट्टेर घरे कैल प्रभु वास।
ताहाञि रहिला प्रभु वर्षा चारि मास॥ 108॥

अनुवाद—महाप्रभु श्रीरङ्गममें त्रिमल्ल भट्टके घरमें वर्षाकालके चार मास (चातुर्मास्य) तक रहे॥ 108॥

त्रिमल्ल भट्ट—श्रीसम्प्रदायके वैष्णव :—

'श्रीवैष्णव' त्रिमल्लभट्ट—परम पण्डित।
गोसाञिर पाण्डित्य-प्रेमे हइला विस्मित॥ 109॥

अनुवाद—त्रिमल्ल भट्ट बड़े विद्वान और श्रीसम्प्रदायमें दीक्षित वैष्णव थे। परन्तु महाप्रभुका पाण्डित्य और श्रीकृष्णप्रेम देखकर आश्चर्यचकित हो गये॥ 109॥

अनुभाष्य—*'त्रिमल्लभट्ट'*—तमिलप्रदेशके अन्तर्गत श्रीरङ्गम् और अन्यान्य स्थानोंके रहनेवालोंकी 'तिरुमलय' या 'व्येङ्कट' नाम रखनेकी रीति नहीं है, विशेषतः तिरुमलय या व्येङ्कट भट्ट आदि बड़्गलइ अर्थात् उत्तरमें स्थित आन्ध्रप्रदेशके वैष्णव हैं और श्रीरङ्गम्वासी तेङ्गलइ या दक्षिण-प्रदेशवासी वैष्णव हैं। मध्यलीला 9/82 संख्याका अमृतभाष्य प्रवाह और अनुभाष्य देखें॥ 108-109॥

चातुर्मास्य महाप्रभु श्रीवैष्णवेर सने।
गोङाइल नृत्य-गीत-कृष्णसङ्कीर्त्तने॥ 110॥

अनुवाद—महाप्रभुने चातुर्मास्य त्रिमल्ल भट्ट और उसके परिवारके साथ नृत्य-गीत सहित श्रीकृष्ण नाम-सङ्कीर्तनमें बिताये॥ 110॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'चातुर्मास्य'*—आषाढ़मासकी शुक्ला-द्वादशीसे कार्तिकमासकी शुक्ला-द्वादशी तक चार मास॥ 110॥

अनुभाष्य—'श्रीवैष्णव-घरमें महाप्रभुका चातुर्मास्य-यापन'—मध्यलीला 9/84-164 संख्या देखें॥ 110॥

श्रीरङ्गम्के दक्षिणमें परमानन्द पुरीसे मिलन :—

चातुर्मास्यान्तरे पुनः दक्षिण गमन।
परमानन्दपुरी सह ताहाञि मिलन॥ 111॥

अनुवाद—चातुर्मास्यके बाद वे पुनः दक्षिण भारत भ्रमणपर निकले और वहाँ श्रीपरमानन्दपुरीसे उनका मिलन हुआ॥ 111॥

अनुभाष्य—*'ताहाञि'*—ऋषभ पर्वतपर। मध्यलीला 9/167-173 संख्या और 9/167 संख्याका अनुभाष्य देखें॥ 111॥

सङ्गी कृष्णदासका उद्धार, रामसेवकको
कृष्ण नाममें प्रवर्त्तन :—

तबे भट्टथारि हैते कृष्णदासेर उद्धार।
रामजपी विप्रमुखे कृष्णनाम प्रचार॥ 112॥

अनुवाद—तान्त्रिक भट्टथारियोंके द्वारा स्त्री और धनके आकर्षणमें फंसाये गये अपने सङ्गी कृष्णदासका महाप्रभुने उद्धार किया। श्रीराम-नाम जप करनेवाले ब्राह्मणके मुखसे उन्होंने श्रीकृष्णनामका प्रचार करवाया॥ 112॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'रामजपी'*—जो ब्राह्मण श्रीराम-नामका जप करता था॥ 112॥

अनुभाष्य—*'भट्टथारि'*—यही वास्तविक शब्द है। 'भट्टथारी'-शब्द ही लिखनेवालेकी असवाधानीके कारण बङ्गला ग्रन्थोंमें "भट्टमारि" हो गया है।

मालाबार प्रदेशमें पवित्रता-अभिमानी बहुत नम्बुद्रि-ब्राह्मण रहते थे। ये भट्टथारि लोग उनके पुरोहितका कार्य करते थे। इनकी मारण-उच्चाटन-वशीकरण आदि तान्त्रिक याग-यज्ञमें निपुणता विख्यात थी। महाप्रभुके सङ्गी कृष्णदास ब्राह्मणका चित्त चञ्चल और उसकी मति भी चञ्चल थी। वह इनके चङ्गुलमें फंसकर जीवके एकमात्र धर्म महाप्रभुके सर्वोत्तम दास्यको भूल गया था। दीन-तारण महाप्रभुने केशोंसे पकड़कर उसे मायाके पाशसे मुक्त करवाके अपने 'अहैतुकी-कृपासिन्धु' नामकी सार्थकताको स्थापित किया।

'भट्टथारिसे कृष्णदासका उद्धार'—मध्यलीला 9/226-233 संख्या देखें॥ 112॥

श्रीरङ्गपुरीके साथ मिलन, रावणके द्वारा माया-सीताके हरणकी कथा वर्णनकर रामदास विप्रको सान्त्वना :—

श्रीरङ्गपुरी सह ताहाञि मिलन।
रामदास विप्रेर कैल दुःखविमोचन॥ 113॥

अनुवाद—फिर महाप्रभु श्रीरङ्गपुरीसे मिले। तत्पश्चात् रामदास नामक ब्राह्मणके दुःखको दूर किया॥ 113॥

अनुभाष्य—*'रामसेवक ब्राह्मणपर कृपा'*—मध्यलीला 9/180-197, 201-217 संख्या देखें॥ 113॥

तत्त्ववादी माध्वमठाधीशके साथ विचार :—

तत्त्ववादी सह कैल तत्त्वेर विचार।
आपनाके हीनबुद्धि हैल ताँ-सबार॥ 114॥

अनुवाद—तत्पश्चात् मध्व-सम्प्रदायके तत्त्ववादियोंके साथ महाप्रभुने तत्त्वकी आलोचना की जिसके फलस्वरूप उन सबने अपने-आपको अल्पज्ञ माना॥ 114॥

अनुभाष्य—*'तत्त्ववादियोंका गर्वनाश'*—मध्यलीला 9/245-278 संख्या देखें। इन तत्त्ववादाचार्यका नाम उत्तरराढ़ी-मठाधीश श्रीरघुवर्य-तीर्थ-मध्वाचार्य था॥ 114॥

विष्णुविग्रह-दर्शन :—

अनन्त, पुरुषोत्तम, श्रीजनार्द्दन।
पद्मनाभ, वासुदेव कैल दरशन॥ 115॥

अनुवाद—उसके बाद महाप्रभुने श्रीअनन्तदेव, श्रीपुरुषोत्तम, श्रीजनार्द्दन, श्रीपद्मनाभ और श्रीवासुदेवके दर्शन किये॥ 115॥

अनुभाष्य—*'अनन्त-पद्मनाभ'*—त्रिवेन्द्रम जिलेका इस नामसे प्रसिद्ध एक विष्णु-मन्दिर है।

'श्रीजनार्द्दन'—त्रिवेन्द्रम जिलेके छब्बीस मील उत्तरमें बर्कालाके निकट यह विष्णु-मन्दिर है॥ 115॥

सप्तताल-उद्धार, रामेश्वरमें सेतुबन्ध-तीर्थमें स्नान :—

तबे प्रभु कैल सप्तताल-विमोचन।
सेतुबन्धे स्नान, रामेश्वर-दरशन॥ 116॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने सप्तताल वृक्षोंका उद्धार किया। सेतुबन्धपर स्नान करके महाप्रभुने श्रीरामेश्वरके दर्शन किये॥ 116॥

अनुभाष्य—*'सप्तताल-विमोचन'*—मध्यलीला 9/311-315 संख्या और *'सेतुबन्ध'* एवं *'रामेश्वर'*—मध्यलीला, 9/200 संख्याका अनुभाष्य देखें॥ 116॥

रामेश्वर तीर्थसे कूर्मपुराणको लेकर रामदास विप्रके दुःखका मोचन :—

ताहाञि करिल कूर्मपुराण श्रवण।
मायासीता निलेक रावण, ताहाते लिखन॥ 117॥

शुनिया प्रभुर आनन्दित हैल मन।
रामदास विप्रेर कथा हइल स्मरण॥ 118॥

सेइ पुरातन पत्र आग्रह करि' निल।
रामदासे देखाइया दुःख खण्डाइल॥ 119॥

अनुवाद—वहाँ उन्होंने कूर्मपुराणका श्रवण किया जिसमें लिखा है कि रावणने मायासीताका ही हरण किया था, वास्तविक सीताका नहीं। यह कथा सुनकर महाप्रभुको बहुत आनन्द हुआ और उन्हें रामदास ब्राह्मणकी बात स्मरण हो आयी (वह सीताजीका भक्त सदा दुःखी रहता था कि सीताजीको उस राक्षसने स्पर्श किया था)। महाप्रभुने कूर्मपुराणका पाठ करनेवाले ब्राह्मणोंसे विनम्रतापूर्वक आग्रह करके कूर्मपुराणकी वह पुरातन पोथी लेकर उसकी नकल करवाकर उन्हें दे दी और वह पुरातन पोथी रामदासको दिखाकर उसके दुःखको दूर किया॥ 117–119॥

अनुभाष्य—'रामदास ब्राह्मणको कूर्मपुराणका पत्रार्पण'—मध्यलीला 9/201–217 संख्या देखें॥ 117॥

'ब्रह्मसंहिता' और 'कर्णामृत'—दो ग्रन्थोंको लाना :—

ब्रह्मसंहिता, कर्णामृत, दुइ पुँथि पाञा।
दुइ पुस्तक लञा आइला उत्तम जानिञा॥ 120॥

अनुवाद—महाप्रभुको ब्रह्मसंहिता और कृष्णकर्णामृत नामक दो ग्रन्थ प्राप्त हुए और उन्हें उत्तम जानकर वे अपने साथ ले आये॥ 120॥

अनुभाष्य—*'ब्रह्मसंहिता'*—मध्यलीला 9/237–241 संख्या और अनुभाष्य; एवं *'कर्णामृत'*—मध्यलीला 9/305–309, 323–325 संख्या देखें॥ 120॥

पुरीमें वापिस लौटना और स्नानयात्रा-दर्शन :—

पुनरपि नीलाचले गमन करिल।
भक्तगणे मेलिया स्नानयात्रा देखिल॥ 121॥

अनुवाद—उन्होंने पुनः नीलाचलकी ओर गमन किया और वहाँ पहुँचकर भक्तोंसे भेंटकर करके श्रीजगन्नाथजीकी स्नान यात्राका दर्शन किया॥ 121॥

अनवसरमें आलालनाथ जाना और वहाँपर वास :—

अनवसरे जगन्नाथ ना पाञा दरशन।
विरहे आलालनाथ करिला गमन॥ 122॥

अनुवाद—स्नानयात्राके बाद श्रीजगन्नाथजीकी अस्वस्थ-लीलाके कारण उनके दर्शन न होनेके कारण वे विरहमें दुःखी होकर अलालनाथ चले गये॥ 122॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'अनवसर'*—स्नानयात्राके बाद 'नवयौवन'-दर्शनके पूर्व दिन तक कुछ दिन श्रीजगन्नाथजीके दर्शन नहीं होते हैं, उस समयको 'अनवसर' कहते हैं॥ 122॥

अनुभाष्य—*'अलालनाथ'*—इसका दूसरा नाम 'ब्रह्मगिरि' है। पुरीसे समुद्रके तटके साथ-साथ रेतीले मार्गसे जानेपर लगभग चौदह मील दूरीपर यह मन्दिर है। [टीका लिखनेके समय] वहाँ एक थाना और डाकघर है (मध्यलीला 7/59 संख्याका अमृतप्रवाह-भाष्य देखें)॥ 122॥

गौड़ीय भक्तोंके आगमनका श्रवण :—

भक्तसने दिन कत ताहाञि रहिल।
गौड़ेर भक्त आइसे, समाचार पाइल॥ 123॥

महाप्रभुको पुरीमें लाना :—

नित्यानन्द-सार्वभौम आग्रह करिञा।
नीलाचले आइला महाप्रभुके लइञा॥ 124॥

महाप्रभुका रात-दिन कृष्णविरह :—

विरहे विह्वल प्रभु गोडाय रात्रि-दिने।
हेनकाले आइला गौड़ेर भक्तगणे॥ 125॥

सबे मिलि' युक्ति करि' कीर्त्तन आरम्भिल।
कीर्त्तन-आवेशे प्रभुर मन स्थिर हैल॥ 126॥

अनुवाद—भक्तोंके साथ वे कुछ दिन अलालनाथमें रहे और तब उन्हें समाचार मिला कि गौड़देशसे भक्त उनसे मिलने आ रहे हैं। श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य बहुत आग्रह करके महाप्रभुको पुरी ले आये। महाप्रभु दिन-रात श्रीजगन्नाथके (श्रीकृष्णके) विरहमें विह्वल रहते थे। तभी वहाँ गौड़देशके भक्त आ पहुँचे। महाप्रभुकी विरह दशा देखकर भक्तोंने एक युक्ति सोची और सभी मिलकर कीर्तन करने लगे। महाप्रभु

भी कीर्तनमें सम्मिलित हो गये और कीर्तनके आवेशमें उनका मन स्थिर हो गया॥ 123-126॥

श्रीरामानन्दका पुरीमें आकर महाप्रभुके साथ कृष्ण-कथालोचना :—

पूर्वे यबे प्रभु रामानन्देर मिलिला।
नीलाचले आसिबारे ताँरे आज्ञा दिला॥ 127॥

राज-आज्ञा लञा तेँहो आइला कत दिने।
रात्रि-दिने कृष्णकथा रामानन्द-सने॥ 128॥

अनुवाद—पहले दक्षिण भारत यात्रामें जब महाप्रभु श्रीराय रामानन्दसे मिले थे, तब उन्हें नीलाचल आनेकी आज्ञा दी थी। राजा प्रतापरुद्रसे सेवा-निवृतिकी आज्ञा लेकर श्रीराय रामानन्द कुछ दिनों बाद नीलाचल आ गये। महाप्रभु रात-दिन श्रीराय रामानन्दके साथ श्रीकृष्णकथाकी चर्चा करते॥ 127-128॥

काशीमिश्र और प्रद्युम्नमिश्र एवं परमानन्द पुरी, श्रीगोविन्द और काशीश्वरके साथ मिलन :—

काशीमिश्रे कृपा, प्रद्युम्न मिश्रादि-मिलन।
परमानन्दपुरी-गोविन्द-काशीश्वरागमन॥ 129॥

अनुवाद—महाप्रभुने काशीमिश्रपर अपनी कृपा की और फिर प्रद्युम्न मिश्र आदिसे उनकी भेंट हुई। तब श्रीपरमानन्दपुरी, श्रीगोविन्द और श्रीकाशीश्वर नीलाचल आये॥ 129॥

श्रीस्वरूप दामोदर और शिखि-माहितिके साथ मिलन :—

दामोदर स्वरूप-मिलने परम आनन्द।
शिखिमाहिति-मिलन, राय भवानन्द॥ 130॥

अनुवाद—श्रीस्वरूप दामोदरसे मिलकर महाप्रभुको परम आनन्द हुआ। वे शिखिमाहिति और श्रीराय भवानन्दसे भी मिले॥ 130॥

अनुभाष्य—मध्यलीला दसवाँ अध्याय देखें॥ 121-130॥

गौड़देशसे आये कुलीन ग्रामवासियोंके साथ मिलन :—

गौड़ हइते सर्व वैष्णवेर आगमन।
कुलीनग्रामवासि-सङ्गे प्रथम मिलन॥ 131॥

अनुवाद—गौड़देशसे सभी वैष्णवोंका नीलाचलमें आगमन होने लगा। कुलीनग्रामवासी भक्तोंका महाप्रभुसे यह पहला मिलन था॥ 131॥

खण्डवासी और शिवानन्दके साथ मिलन :—

नरहरि दास आदि यत खण्डवासी।
शिवानन्द-सङ्गे मिलिला सबे आसि'॥ 132॥

अनुवाद—नरहरि आदि खण्डवासी शिवानन्दसेनके साथ आकर महाप्रभुसे मिले॥ 132॥

अनुभाष्य—मध्यलीला ग्यारहवाँ अध्याय देखें॥ 131-132॥

भक्तोंके साथ स्नानयात्रा-दर्शन और गुण्डिचा मार्जन :—

स्नानयात्रा देखि' प्रभु-सङ्गे भक्तगण।
सबा लञा कैला प्रभु गुण्डिचा-मार्जन॥ 133॥

अनुवाद—महाप्रभुने सब भक्तोंके साथ स्नानयात्राका दर्शन किया। रथयात्रासे एक दिन पूर्व महाप्रभुने सब भक्तोंको लेकर गुण्डिचा मन्दिरका मार्जन किया॥ 133॥

अनुभाष्य—मध्यलीला बारहवाँ अध्याय देखें॥ 133॥

रथके आगे नृत्य-कीर्तन :—

सबा-सङ्गे रथयात्रा कैल दरशन।
रथ-अग्रे नृत्य करि' उद्याने गमन॥ 134॥

अनुवाद—महाप्रभुने सबके साथ श्रीजगन्नाथदेवकी रथयात्राके दर्शन किये और रथके आगे नृत्य करते हुए चले। रथके आगे उद्दण्ड नृत्य करनेके बाद थोड़ा विश्राम करनेके लिये वे मार्गके साथ एक उद्यानमें गये॥ 134॥

प्रतापरुद्रपर कृपा और प्रति वर्ष गौड़ीय-भक्तोंको आमन्त्रण :—

प्रतापरुद्रेर कृपा कैल सेइ स्थाने।
गौड़भक्ते आज्ञा दिल विदायेर दिने॥ 135॥

'प्रत्यब्द आसिबे रथयात्रा-दरशने।'
एइ छले चाहे भक्तगणेर मिलने॥ 136॥

अनुवाद—उस उद्यानमें उन्होंने राजा प्रतापरुद्रपर कृपा की। जब गौड़ीय भक्त वापिस लौटने लगे, तब उन्हें विदा करते हुए महाप्रभुने आज्ञा दी कि वे प्रति वर्ष श्रीजगन्नाथजीकी रथयात्राके दर्शन करने आते रहें। इस आज्ञाके छलसे महाप्रभु अपने भक्तोंसे मिलना चाहते थे॥ 135–136॥

अनुभाष्य—मध्यलीला तेरहवें अध्यायमें रथके आगे नृत्य, चौदहवें अध्यायमें उद्यानमें जाना और प्रतापरुद्रपर कृपा वर्णित है॥ 134–135॥

श्रीसार्वभौमके द्वारा महाप्रभुको भिक्षा देना, उनके जामाता अमोघका अपराध और उद्धार :—

सार्वभौम-घरे प्रभुर भिक्षा-परिपाटी।
षाठीर माता कहे, याते राण्डी हउक् षाठी॥ 137॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य महाप्रभुको अपने घर प्रति मास पाँच दिन भिक्षा कराते थे। एक दिन जब महाप्रभु प्रसाद पा रहे थे, तब श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके दामादने महाप्रभुको खूब प्रसाद पाते देखकर उन्हें बड़े अपशब्द कहे। यह सुनकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यकी पत्नीने कहा—"अच्छा हो कि षाठी (उनकी पुत्री) विधवा हो जाय अर्थात् उनके दामादकी मृत्यु हो जाय॥"137॥

अनुभाष्य—मध्यलीला पन्द्रहवाँ अध्याय देखें॥ 137॥

दूसरे वर्ष श्रीअद्वैतादि भक्तोंका गौड़देशसे आगमन :—

वर्षान्तरे अद्वैतादि भक्तेर आगमन।
प्रभुरे देखिते सबे करिला गमन॥ 138॥

अनुवाद—वर्षके अन्तमें अर्थात् दूसरे वर्ष श्रीअद्वैताचार्य आदि सभी भक्त भारी संख्यामें महाप्रभुके दर्शनके लिये नीलाचल आये॥ 138॥

महाप्रभुके द्वारा सभीकी व्यवस्थाका सम्पादन :—

आनन्दे सबारे निया देन वासस्थान।
शिवानन्दसेन करे सबार पालन॥ 139॥

अनुवाद—महाप्रभु सबसे मिलकर बड़े आनन्दित हुए और उनके रहनेकी व्यवस्था की। श्रीशिवानन्दसेनने सभीके भोजन, शयन आदिका उत्तरदायित्व सम्भाला॥ 139॥

शिवानन्दके साथ आये कुत्तेका महाप्रभुके चरण दर्शनके बाद अन्तर्धान होना :—

शिवानन्देर सङ्गे आइला कुक्कुर भाग्यवान्।
प्रभुर चरण देखि' कैल अन्तर्धान॥ 140॥

अनुवाद—श्रीशिवानन्दसेनके सङ्ग एक कुत्ता भी आया था और वह सौभाग्यवान् महाप्रभुके चरणोंके दर्शन करते ही अन्तर्धान हो गया (अर्थात् शरीर त्यागकर भगवद्-धामको चला गया)॥ 140॥

पुरी आनेवाले भक्तोंका काशीकी ओर जा रहे श्रीसार्वभौमके साथ मार्गमें मिलन :—

पथे सार्वभौम सह सबार मिलन।
सार्वभौम भट्टाचार्येर काशीते गमन॥ 141॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य जब एक बार काशी जा रहे थे, तब मार्गमें उनके साथ नीलाचल आते हुए गौड़भक्तोंका मिलन हुआ था॥ 141॥

भक्तोंके साथ जल क्रीड़ा :—

प्रभुरे मिलिला सर्व वैष्णव आसिया।
जलक्रीड़ा कैल प्रभु सबारे लइया॥ 142॥

अनुवाद—नीलाचल आनेपर सभी वैष्णव महाप्रभुसे मिले। महाप्रभुने सबको साथ लेकर जलक्रीड़ा की॥ 142॥

रथके आगे नृत्य और गुण्डिचा-मार्जन :—

सबा लञा कैल गुण्डिचा-गृह-संमार्जन।
रथयात्रा-दरशने प्रभुर नर्त्तन॥ 143॥

अनुवाद—महाप्रभुने सभी भक्तोंको लेकर गुण्डिचा मन्दिरका मार्जन किया और रथयात्रामें सभीने उनके नृत्यका आनन्दसे दर्शन किया॥ 143॥

विप्रलम्भ-भावमय महाप्रभुका विलास :—

उपवने कैल प्रभु विविध विलास।
प्रभुर अभिषेक कैल विप्र कृष्णदास॥ 144॥

अनुवाद—रथयात्राके मार्गके साथ लगे उपवनमें महाप्रभुने भक्तोंके साथ सङ्कीर्तन-नृत्य आदि विविध विलास किये। कृष्णदास नामक एक ब्राह्मणने महाप्रभुका अभिषेक किया॥ 144॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'उपवन'*—जिस मार्गसे रथ गुण्डिचा मन्दिर जाता है, उसका नाम बड़दाँड़ है; उसके दोनों ओर जो सब उद्यान हैं, उन्हें 'उपवन' कहा जाता है॥ 144॥

नृत्यके अन्तमें जलक्रीड़ा और हेरा-पञ्चमी :—

गुण्डिचाते नृत्य-अन्ते कैल जलकेलि।
हेरा-पञ्चमी देखिल लक्ष्मीदेवीर केलि॥ 145॥

अनुवाद—रथयात्राके गुण्डिचा मन्दिर पहुँचनेपर महाप्रभुने नृत्य समाप्तकर जलक्रीड़ा की। हेरा पञ्चमीके दिन उन्होंने लक्ष्मीदेवीकी लीलाका दर्शन किया॥ 145॥

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीपर गोपलीला :—

कृष्णजन्म-यात्राते प्रभु गोपवेश हैल।
दधिभार वहि' तबे लगुड़ फिराइल॥ 146॥

अनुवाद—जन्माष्टमीके दिन महाप्रभुने गोपवेश धारण किया और सिरपर दहीकी मटकियाँ धरकर हाथमें लठिया घुमाते हुए चले॥ 146॥

गौड़ीय भक्तोंको विदायी देना :—

गौड़ेर भक्तगणे तबे करिल विदाय।
सङ्गेर भक्त लञा करे कीर्त्तन सदाय॥ 147॥

अनुवाद—तत्पश्चात् महाप्रभुने गौड़देशके भक्तोंको विदा किया और नीलाचलमें रहनेवाले भक्तोंके साथ वे सदा कीर्तन करते थे॥ 147॥

वृन्दावनके उद्देश्यसे गौड़देश जाते समय
प्रतापरुद्रके द्वारा महाप्रभुकी सेवा :—

वृन्दावन याइते कैल गौड़ेर गमन।
प्रतापरुद्र कैल पथे विविध सेवन॥ 148॥

अनुवाद—महाप्रभु वृन्दावन जाते हुए गौड़देश गये। उन्हें प्रसन्न करनेके लिये राजा प्रतापरुद्रने मार्गमें उनकी अनेक प्रकारसे सेवाकी व्यवस्था की॥ 148॥

महाप्रभुके साथ-साथ श्रीरायरामानन्दका
भद्रक तक आगमन :—

पुरीगोसाञि-सङ्गे वस्त्रप्रदान-प्रसङ्ग।
रामानन्द राय आइला भद्रक पर्यन्त॥ 149॥

अनुवाद—मार्गमें एक स्थानपर महाप्रभुने पुरी गोसाईंको शचीमाताको देनेके लिये श्रीजगन्नाथके प्रसादी वस्त्र प्रदान किये। श्रीराय रामानन्द उनके साथ भद्रक तक आये॥ 149॥

गौड़देशके विद्यानगरमें आगमन :—

आसि' विद्यावाचस्पतिर गृहेते रहिला।
प्रभुरे देखिते लोकसंघट्ट हइला॥ 150॥

अनुवाद—विद्यानगर (बङ्गाल) पहुँचकर वे श्रीविद्यावाचस्पतिके घरपर रहे। उनसे मिलनेके लिये आनेवाले लोगोंका ताँता लग गया॥ 150॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महाप्रभु वृन्दावन जाते समय जब गौड़मण्डलमें आये, तब वे श्रीविशारदके पुत्र अर्थात् श्रीसार्वभौमके भाई श्रीविद्यावाचस्पतिके घरमें अर्थात् विद्यानगरमें रहे॥ 150॥

कुलियामें आगमन :—

पञ्चदिन देखे लोक नाहिक विश्राम।
लोकभये रात्रे प्रभु आइला कुलिया-ग्राम॥ 151॥

अनुवाद—पाँच दिनों तक वे लोगोंसे मिलते रहे और उन्हें विश्राम करनेका अवसर ही नहीं मिला। तब वे भीड़से बचनेके लिये रात्रिमें कुलिया-ग्राम आ गये॥ 151॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महाप्रभु विद्यानगरमें पाँच दिन रहे और वहाँ लोगोंकी भीड़ देखकर रात्रिकालमें चुपकेसे कुलिया-ग्राम आ गये। श्रीचैतन्यभागवतके अन्त्यखण्डके तृतीय अध्यायमें लिखा है,—

"गङ्गा प्रति महा-अनुराग बाड़ाइया।
अति शीघ्र गौड़देशे आइला चलिया॥ 272॥
सार्वभौम-भ्राता 'विद्या-वाचस्पति' नाम।273 (क)।
++आचम्बिते आसि' उत्तरिला तार घर॥ 274 (ख)॥
++नवद्वीप आदि सर्वदिके हैल ध्वनि।
वाचस्पति घरे आइलेन न्यासिमणि॥ 286॥
++कुलियाय आइलेन वैकुण्ठ-ईश्वर।345 (क)।
++सबे गङ्गा-मध्ये नदीयाय-कुलियाय।
शुनि मात्र सर्वलोक महानन्दे धाय॥ 380॥"

अर्थात् "गङ्गाके प्रति महा-अनुराग बढ़ाकर महाप्रभु अति शीघ्र गौड़देशमें चले आये। महाप्रभु अचानक श्रीसार्वभौमके भाई श्रीविद्यावाचस्पतिके घरमें आ पधारे। नवद्वीप आदि सभी जगह यह बात फैल गयी कि श्रीवाचस्पतिके घर संन्यासी शिरोमणि पधारे हैं। (अनेक लोगोंकी भीड़के कारण श्रीवाचस्पतिको भी बिना बताये) महाप्रभु कुलिया चले आये। नदीया और कुलियाके बीचमें गङ्गा बहती हैं, महाप्रभुके कुलिया आनेका समाचार पाकर सब लोग आनन्दसे उधर दौड़ पड़े।"

चैतन्यभागवतके इस अध्यायका श्रीलोचनदासके वर्णनके साथ पाठ करनेसे यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान 'नवद्वीप' नामक जो स्थान है, वही प्राचीन नवद्वीपके दूसरे पार स्थित उस समयका 'कुलिया-ग्राम' था। उसी स्थानपर देवानन्द पण्डित, गोपाल चापाल और अन्य कई लोगोंका अपराध भञ्जन (क्षमा) हुआ था। तब विद्यानगरसे कुलिया आनेके लिये गङ्गाकी एक धाराको पार करना होता था और कुलियासे नवद्वीप जानेके लिये मूल भागीरथीको (गङ्गाको) पार करना होता था। आजकल इन सब स्थानोंको देखनेसे ऐसा लगता है कि उस समय कुलिया-ग्राममें 'चिनाडाङ्गा' आदि पल्ली और 'कुलियार गञ्ज' जिसे अब 'कोलेर गञ्ज' कहते हैं, वह समस्त भूमि उस समयके कुलियाके बचे हुए अंशके रूपमें है॥ 151॥

महाप्रभुके दर्शनके लिये लोगोंकी भीड़ :—

कुलिया-ग्रामेते प्रभुर शुनिया आगमन।
कोटि कोटि लोक आसि' कैल दरशन॥ 152॥

अनुवाद—कुलिया ग्राममें महाप्रभुके आगमनका समाचार सुनकर लाखों लोग महाप्रभुके दर्शनके लिये एकत्रित हो गये॥ 152॥

कुलियामें देवानन्द और चापाल-गोपालके अपराध-भञ्जन :—

कुलिया-ग्रामे कैल देवानन्देरे प्रसाद।
गोपाल-विप्रेरे क्षमाइल श्रीवासापराध॥ 153॥

पाषण्डी निन्दक आसि' पड़िला चरणे।
अपराध क्षमि' तारे दिल कृष्णप्रेमे॥ 154॥

अनुवाद—उन्होंने कुलिया ग्राममें देवानन्द पण्डितपर कृपा की और गोपाल-चापाल नामक ब्राह्मणका श्रीवासके चरणोंमें जो अपराध हुआ था, उसे क्षमा करवाया। अनेक नास्तिक और भगवान् एवं भक्तोंकी निन्दा करनेवालोंने महाप्रभुके चरणोंमें क्षमा याचना की और महाप्रभुने उन्हें क्षमा करके श्रीकृष्णप्रेमका दान किया॥ 153-154॥

अनुभाष्य— *'चापाल-गोपालका उद्धार'*—आदिलीला 17/55-59 संख्या देखें॥ 153॥

महाप्रभुकी व्रजयात्राको श्रवणकर श्रीनृसिंहानन्दके द्वारा ध्यानमें कानाई-नाटशाला तक मार्ग-सजाना और उसे रत्नोंके द्वारा जड़ना :—

वृन्दावन याबेन प्रभु शुनि' नृसिंहानन्द।
पथ साजाइल मने करिया आनन्द॥ 155॥

कुलिया नगर हैते पथ रत्ने बान्धाइल।
निवृन्त पुष्पशय्या उपरे पातिल॥ 156॥

पथे दुइदिके पुष्पबकुलेर श्रेणी।
मध्ये मध्ये दुइपाशे दिव्य पुष्करिणी॥ 157॥

रत्नबन्ध-घाट, ताहे प्रफुल्ल कमल।
नाना पक्षि-कोलाहल, सुधा-सम जल॥ 158॥

शीतल समीर बहे नाना गन्ध लञा।
'कानाइर नाटशाला' पर्यन्त लैल बान्धिञा॥ 159॥

आगे मन नाहि चले, ना पारे बान्धिते।
पथबान्धा ना याय, नृसिंह हैला विस्मिते॥ 160॥

अनुवाद—महाप्रभुके वृन्दावन जानेका समाचार सुनकर श्रीनृसिंहानन्दने आनन्दित होकर उनके मार्गको मन-ही-मनमें सजाया। उन्होंने मन-ही-मन कुलिया नगरसे वृन्दावनतक सुन्दर मार्गकी कल्पना की और उसके ऊपर रत्न जड़कर पुष्पोंकी कोमल पँखुड़ियोंका गद्दा बिछाया, जिससे महाप्रभुके कोमल चरणोंको कोई कष्ट नहीं हो। मार्गके दोनों ओर उन्होंने छायाके लिये बकुलादि पुष्पोंके वृक्ष लगाये और उनके बीच-बीचमें दिव्य निर्मल जलके सरोवर बनाये। उन अमृतके समान जलवाले सरोवरोंके घाट रत्नोंसे जड़ित थे और उनमें सुगन्धित कमल पुष्प खिले हुए थे। नाना प्रकारके पक्षी मधुर कलरव कर रहे थे। पुष्पोंकी सुगन्ध लेकर शीतल समीर बह रहा था और इस प्रकार उन्होंने 'कानाइर नाटशाला' तक मार्गका निर्माण कर लिया। परन्तु वहाँसे आगे उनका मन चल नहीं रहा था और वे आगे मार्गका निर्माण करनेमें असमर्थ हो गये। श्रीनृसिंहानन्द बड़े विस्मित हो गये कि वे आगे क्यों नहीं बढ़ पा रहे हैं?॥ 155–160॥

श्रीनृसिंहानन्दकी भविष्यवाणी :—

निश्चय करिया कहे,—"शुन, भक्तगण।
एबार ना याबेन प्रभु श्रीवृन्दावन॥ 161॥
'कानाञिर नाटशाला' हैते आसिब फिरिञा।
जानिबे पश्चात्, कहिलु निश्चय करिञा॥"162॥

अनुवाद—तब उन्होंने यह निश्चित करके कहा,—"हे भक्तों! सुनो, महाप्रभु इस बार श्रीवृन्दावन नहीं जायेंगे। वे 'कानाइर नाटशाला'से ही लौट आयेंगे, यह मैं विश्वासपूर्वक कह रहा हूँ। इस बातकी सत्यताको आप लोग बादमें स्वयं देखेंगे॥"161–162॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिस समय महाप्रभु कुलियासे वृन्दावन जा रहे थे, तब ऐसा हुआ—उस समय महाप्रभुके परमभक्त श्रीनृसिंहानन्दने ध्यानमें कुलियासे वृन्दावनतक मार्गका निर्माण और उसे सजाना आरम्भ किया। जब उन्होंने गौड़देशके निकटवर्ती 'कानाइ-नाटशाला' तक पथ तैयार कर लिया, तब उनका चित्त विचलित होनेसे ध्यान भङ्ग हो गया। तभी श्रीनृसिंहानन्दने कहा,—इस बार महाप्रभु केवल कानाइ-नाटशाला तक ही जायेंगे, वृन्दावन नहीं जायेंगे॥ 160–162॥

अनुभाष्य— *'कानाइ नाटशाला'*—कोलकातासे लगभग दो सौ मीलकी दूरी पर 'तिनपहाड़' स्टेशनपर उतरकर फिर शाखा-लाईनसे राजमहल-स्टेशनसे प्राय छह मीलकी दूरीपर है (वर्तमानमें 'तालझाड़ि' स्टेशनसे दो मीलकी दूरीपर है)॥ 162॥

महाप्रभुकी कुलियासे वृन्दावनकी यात्रा :—

गोसाञि कुलिया हैते चलिला वृन्दावन।
सङ्गे सहस्रेक लोक यत भक्तगण॥ 163॥

अनुवाद—महाप्रभु कुलियासे वृन्दावनकी ओर चले और उनके साथ हजारों भक्त लोग भी चले॥ 163॥

महाप्रभुके दर्शनके लिये असंख्य लोगोंकी भीड़ :—

याहाँ याय प्रभु, ताँहा कोटिसंख्य लोक।
देखिते आइसे, देखि' खण्डे दुःख-शोक॥ 164॥

अनुवाद—जहाँ-जहाँ महाप्रभु जाते, वहाँ असंख्य लोग उनके दर्शनके लिये आते और उनके दर्शन करके उनके सभी दुःख-शोक दूर हो जाते॥ 164॥

याहाँ याहाँ प्रभुर चरण पड़ये चलिते।
से मृत्तिका लय लोक, गर्त्त हय पथे॥ 165॥

अनुवाद—जहाँ-जहाँ महाप्रभुके चरण पड़ते, वहाँसे लोग धूल उठाते और उन लोगोंके धूल उठानेसे मार्गमें गड्ढे पड़ जाते॥ 165॥

रामकेलिमें आगमन :—

ऐछे चलि' आइला प्रभु 'रामकेलि' ग्राम।
गौड़ेर निकट ग्राम अति अनुपम॥ 166॥

याँहा नृत्य करे प्रभु प्रेमे अचेतन।
कोटि कोटि लोक आइसे देखिते चरण॥ 167॥

अनुवाद—इस प्रकार चलते हुए महाप्रभु 'रामकेलि' ग्राम पहुँचे। गौड़देशकी सीमाके निकट यह ग्राम अति मनोहर था। वहाँ नृत्य करते हुए महाप्रभु प्रेमके आवेशमें मूर्च्छित हो गये थे। असंख्य लोग उनके चरणकमलोंके दर्शन करनेके लिये आने लगे॥ 166–167॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'रामकेलिग्राम'*—गौड़देशके निकट गङ्गाके तटपर रामकेलिग्राम है, श्रीरूप-सनातन उस समय वहीं रहते थे॥ 166॥

बादशाहके द्वारा अपने कर्मचारियोंको महाप्रभुके स्वतन्त्र भ्रमणमें बाधा न देनेका आदेश :—

गौड़ाध्यक्ष यवन–राजा प्रभाव शुनिञा।
कहिते लागिल किछु विस्मित हञा॥ 168॥

"बिना दाने एत लोक याँर पाछे हय।
सेइ त' गोसाञा, इहा जानिह निश्चय॥ 169॥

काजी, यवन इहार ना करिह हिंसन।
आपन–इच्छाय बुलुन, याहाँ उँहार मन॥"170॥

अनुवाद—महाप्रभुके अद्भुत प्रभावके विषयमें सुनकर बङ्गालका यवन-राजा विस्मित होकर ऐसा कहने लगा,—"ये लोगोंको कुछ दान भी नहीं कर रहे हैं, तो भी यदि इतने लोग उनके पीछे जा रहे हैं, तो निश्चय ही ये पैगम्बर हैं। हे काजी! हे मुसलमानों! इन हिन्दू पैगम्बरसे ईर्ष्या-द्वेष मत करना। अपनी इच्छानुसार वे जहाँ जाना चाहें, उन्हें वहाँ जाने देना॥"168–170॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'गौड़ाध्यक्ष यवनराजा'*—हुसेनशाह बादशाह॥ 168॥

क्षत्रिय केशवकी महाप्रभुके लिये शुभ इच्छा और उसके अनुसार ही बादशाहको समझाना :—

केशव–छत्रीरे राजा वार्त्ता पूछिल।
प्रभुर महिमा छत्री उड़ाइया दिल॥ 171॥

"भिखारी संन्यासी करे तीर्थ पर्यटन।
ताँरे देखिबारे आइसे दुइ चारि जन॥ 172॥

यवने तोमार ठाञि करये लागानि।
ताँर हिंसाय लाभ नाहि, हय आर हानि॥"173॥

अनुवाद—यवन-राजाने अपने सैनिक अधिकारी केशव क्षत्रियसे महाप्रभुके प्रभावके बारेमें जिज्ञासा की, तो उसने महाप्रभुकी महिमाको छिपाते हुए कहा,—"वह एक भिखारी संन्यासी है और तीर्थ भ्रमण करता रहता है। दो-चार लोग ही उससे मिलने आते हैं। आपके मुसलमान सेवक उससे ईर्ष्याके कारण आपको उकसा रहे हैं। उससे ईर्ष्या करनेमें मैं कोई लाभ नहीं देखता हूँ, अपितु इसमें हानि ही हो सकती है॥"171–173॥

अमृतप्रवाह भाष्य—क्षत्रिय केशवको महाप्रभुके तत्त्वका ज्ञान था। परन्तु यह विचार करके कि बादशाह यदि अधिक अनुसन्धान करेगा, तो वह महाप्रभुसे शत्रुता करने लगेगा,—इसी आशङ्कासे उसने बादशाहकी बातको बढ़ने नहीं दिया॥ 171॥

गुप्तचरके द्वारा महाप्रभुसे अन्य स्थानपर चले जानेका अनुरोध :—

राजारे प्रबोधि' केशव, ब्राह्मण पाठाञा।
चलिबार तरे प्रभुके कहिल याञा॥ 174॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 174॥

अमृतप्रवाह भाष्य—राजाको इस प्रकार समझाकर सैनिक कर्मचारी केशवने एक ब्राह्मणको भेजकर महाप्रभुसे वहाँसे शीघ्र चले जानेका अनुरोध किया॥ 174॥

श्रीरूपसे महाप्रभुके विषयमें बादशाहकी जिज्ञासा :—

दबिर खासेरे राजा पुछिल निभृते।
गोसाञिर महिमा तेँहो लागिल कहिते॥ 175॥

अनुवाद—यवन राजाने एकान्तमें दबिर खास (श्रीरूप गोस्वामी)से महाप्रभुके विषयमें जिज्ञासा की, तो वे कहने लगे॥ 175॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'दबिरखास'*—श्रीरूपको उस समयके यवन राजाके द्वारा दिया गया नाम॥ 175॥

श्रीरूपके द्वारा महाप्रभुके माहात्म्यका कीर्तन :—

"ये तोमारे राज्य दिल, ये तोमार गोसाञा।
तोमार देशे, तोमार भाग्ये जन्मिला आसिञा॥ 176॥

तोमार मङ्गल वाञ्छे, वाक्यसिद्ध हय।
इहार आशीर्वादे तोमार सर्वत्रइ जय॥ 177॥

बादशाहकी प्रशंसा :—

मोरे केन पुछ, तुमि पुछ आपन-मन।
तुमि नराधिप हओ, विष्णु-अंश सम॥ 178॥

तोमार चित्ते चैतन्येरे कैछे हय ज्ञान।
तोमार चित्ते येइ लय, सेइ त' प्रमाण॥"179॥

अनुवाद—"ये वही आपके अल्लाह (परमेश्वर) हैं, जिन्होंने आपको यह राज्य दिया है और जिनको आप पैगम्बर मान रहे हो। इनका आपके राज्यमें जन्म ग्रहण करनेसे आपके सौभाग्यका उदय हुआ है। ये आपका मङ्गल चाहते हैं, इनकी कृपासे आपके सभी वाक्य सिद्ध हो जायेंगे और इनके आशीर्वादसे सर्वत्र आपकी जय होगी। परन्तु, आप मुझसे यह सब क्यों पूछ रहे हैं? आप स्वयं अपने मनसे पूछिये (वह आपको यथार्थ उत्तर देगा) क्योंकि आप राजा होनेके कारण भगवान् विष्णुके अंश समान हैं। आपके हृदयमें श्रीचैतन्यके प्रति कैसे भाव आते हैं? जो भाव आपके हृदयमें आते हैं, वे ही इस बातका प्रमाण हैं॥"176-179॥

अनुभाष्य—मनुसंहिता(7/8)—

"महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति॥"

अर्थात् "(राजा) ही नररूपमें महान् देवता है॥"178॥

बादशाहका महाप्रभुको ईश्वरके रूपमें मानना :—

राजा कहे,—"शुन, मोर मने येइ लय।
साक्षात् ईश्वर इँह, नाहिक संशय॥"180॥

अनुवाद—राजाने कहा,—"सुनो! मेरे मनमें यही विश्वास उठता है कि ये तो साक्षात् भगवान् हैं, इसमें कोई संशय नहीं है॥"180॥

एत कहि' राजा गेला निज अभ्यन्तरे।
तबे दबिर खास आइला आपनार घरे॥ 181॥

श्रीरूप-सनातनका विचार-विमर्श :—

घरे आसि' दुइ भाइ युकति करिञा।
प्रभु देखिबारे चले वेश लुकाञा॥ 182॥

अनुवाद—यह कहकर राजा अपने महलके अन्तःपुरमें चले गये। तब दबिर खास अपने घर आ गये। घरमें आकर उन्होंने अपने भाई (श्रीसनातन)से विचार-विमर्श किया और वे दोनों वेश बदलकर महाप्रभुके दर्शनके लिये चल पड़े॥ 181-182॥

दोनोंका महाप्रभुके दर्शनके लिये जाना और सबसे पहले श्रीनिताइ और हरिदासके साथ मिलन :—

अर्धरात्रे दुइ भाइ आइला प्रभु-स्थाने।
प्रथमे मिलिला नित्यानन्द-हरिदास-सने॥ 183॥

अनुवाद—वे आधी रातमें महाप्रभुके स्थानपर पहुँचे और पहले श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीहरिदास ठाकुरसे मिले॥ 183॥

ताँरा दुइजन जानाइला प्रभुर गोचरे।
रूप, साकरमल्लिक आइला तोमा' देखिबारे॥ 184॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभु और हरिदास ठाकुरने महाप्रभुके पास आकर कहा कि रूप और साकरमल्लिक (सनातन) आपके दर्शनके लिये आये हैं॥ 184॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'साकरमल्लिक'*—जिस प्रकार श्रीरूपका नाम दबिरखास हुआ था, उसी प्रकार श्रीसनातनका भी उस समयके राजाके द्वारा दिया गया नाम 'साकर-मल्लिक' प्रसिद्ध था॥ 184॥

दोनोंका दैन्य प्रदर्शन :—

दुइ गुच्छ तृण दुँहे दशने धरिञा।
गले वस्त्र बान्धि' पड़े दण्डवत् हञा॥ 185॥

अनुवाद—उन दोनोंने परम दैन्यभावसे अपने मुखमें तृणके गुच्छे दबाकर और गलेमें वस्त्र बाँधकर (बिके हुए पशुके समान मुखमें तृण और गलेमें रस्सीके बन्धन जैसे) महाप्रभुको दण्डवत् प्रणाम किया॥ 185॥

दैन्य रोदन करे, आनन्दे विह्वल।
प्रभु कहे,—उठ, उठ, हइल मङ्गल॥ 186॥

अनुवाद—महाप्रभुके दर्शनसे वे आनन्दमें विह्वल हो गये और दैन्यताके कारण रोने लगे। महाप्रभुने कहा,—"उठो-उठो! तुम्हारा मङ्गल हुआ है॥"186॥

श्रीरूप-सनातनका दैन्य और स्तव :—

उठि' दुइ भाइ तबे दन्ते तृण धरि'।
दैन्य करि' स्तुति करे करयोड़ करि'॥ 187॥

"जय जय श्रीकृष्णचैतन्य दयामय।
पतितपावन जय, जय महाशय॥ 188॥

नीच-जाति, नीच-सङ्गी, करि नीच काज।
तोमार अग्रेते प्रभु कहिते वासि लाज॥ 189॥

अनुवाद—दोनों भाई उठकर दैन्यतासे दाँतोंमें तृण दबाकर हाथ जोड़कर महाप्रभुकी स्तुति करने लगे,—"पतितोंका उद्धार करनेवाले परम दयालु श्रीकृष्णचैतन्यकी बारम्बार जय हो। परम पुरुषकी जय हो, जय हो। हम नीच जातिके हैं, नीच लोगोंका सङ्ग करते हैं और सदा नीच कार्योंमें रत हैं। आपके सामने खड़े होनेमें हमें बड़ी लज्जा आ रही है॥ 187-189॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीरूप और सनातनका विचार था कि उन्होंने नीच जातिमें जन्मे नीच लोगोंका सङ्ग और उनकी सेवा करके नीच कार्य किया है॥ 189॥

अनुभाष्य—*'नीचजाति'*—श्रीरूप-सनातन पवित्र कन्नड़-ब्राह्मण कुलमें जन्मे थे, परन्तु दैन्यवशतः अपनेको नीचजातिका कहते थे। जन्म तीन प्रकारके होते हैं—शौक्र, सावित्र और दैक्ष। नीच लोगोंका सङ्ग करनेसे स्वभाव नीच होता है।

"म्लेच्छजाति, म्लेच्छसङ्गी, करि म्लेच्छकर्म।
गो-ब्राह्मण-द्रोहि-सङ्गे आमार सङ्गम॥"

अर्थात् "हम मलेच्छ जातिके हैं, क्योंकि हम मलेच्छोंका सङ्ग करते हैं और मलेच्छों जैसे कर्म करते हैं। हम गो और ब्राह्मणोंका वध करनेवालोंका सङ्ग करते हैं।"

श्रीमद्भागवतके सातवें स्कन्धमें आदेश-मत है—

"यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम्।
यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत्॥"

अर्थात् "जिस व्यक्तिमें पूर्व वर्णित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके जो लक्षण दिखायी दें, चाहे उसने किसी अन्य वर्णमें जन्म लिया हो, उसे लक्षणोंके अनुसार वर्णका ही मानना चाहिये।"

श्रीरूप-सनातनने यवनकी सेवाके कारण स्वयंको नीचजातिका कहा। ब्राह्मण-वृत्तिरहित नीचजातीयकी नीच शूद्रवृत्तिको ग्रहणके कारण उसे उसी जातिका कहा जाता है। भक्तिरत्नाकरकी प्रथम तरङ्गमें कहा गया है—

"नीचजाति-सङ्गे सदा नीच व्यवहार।
एइ हेतु नीच-जात्यादिक उक्ति ताँर॥"

अर्थात् "नीचजातिके सङ्गसे सदा नीच व्यवहार होता है, इसलिये श्रीरूप-सनातन ऐसा कह रहे हैं॥"189॥

भक्तिरसामृतसिन्धु (1/2/154) :—

मत्तुल्यो नास्ति पापात्मा नापराधी च कश्चन।
परिहारेऽपि लज्जा मे किं ब्रुवे पुरुषोत्तम॥ 190॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह-भाष्य देखें॥ 190॥

अमृतप्रवाह भाष्य—मेरे जैसा कोई पापी नहीं है, मेरे जैसा कोई अपराधी भी नहीं है। हे पुरुषोत्तम! मेरे द्वारा किये गये पापों और अपराधोंका उल्लेख करने और उन्हें क्षमा करानेकी चेष्टा करनेमें भी मुझे लज्जा आ रही है॥ 190॥

अनुभाष्य—

हे पुरुषोत्तम (पुरुषश्रेष्ठ) मत्तुल्यः कश्चित् पापात्मा (पापी)

नास्ति, कश्चन् अपराधी न (नास्ति); परिहारे (अपराधक्षमापणविषये) अपि मे (मम) लज्जा (व्रीड़ात्मकः सङ्कोचः) [अतः अहं] किं ब्रुवे (कथयामि) [—मम प्रार्थनावसरोऽपि नास्ति इत्यर्थः]।

श्लोक-भावानुवाद—मेरे समान न तो कोई पापी है और न ही कोई अपराधी भी है। हे पुरुषोत्तम! क्या कहूँ? अपने दोषोंको क्षमा करनेकी प्रार्थना करनेमें भी मुझे लज्जा आती है अर्थात् मेरे पाप-अपराध अनन्त और प्रायश्चितके अयोग्य हैं॥ 190॥

पतितपावन-हेतु तोमार अवतार।
आमा-बइ जगते, पतित नाहि आर॥ 191॥

जगाइ-मधाइकी अपेक्षा अपनेको
अधिक हीन और पापी समझना :—

जगाइ-माधाइ दुइ करिले उद्धार।
ताँहा उद्धारिते श्रम नहिल तोमार॥ 192॥

ब्राह्मण-जाति तारा, नवद्वीपे घर।
नीच-सेवा नाहि करे, नहे नीचेर कूर्पर॥ 193॥

नामाभासके द्वारा ही उनका पापनाश और उद्धार :—

सबे एक दोष तार, हय पापाचार।
पापराशि दहे नामाभासेइ तोमार॥ 194॥

तोमार नाम लञा तोमार करिल निन्दन।
सेइ नाम हइल तार मुक्तिर कारण॥ 195॥

अनुवाद—पतितोंका उद्धार करनेके लिये आपने अवतार लिया है और हमसे अधिक पतित इस जगत्‌में कोई नहीं है। हे प्रभो! आपने जगाइ-मधाइ, दोनोंका उद्धार किया है और उनका उद्धार करनेमें आपको कोई परिश्रम भी नहीं करना पड़ा था। (क्योंकि) वे दोनों जातिसे ब्राह्मण थे और उन्होंने पावन नवद्वीपमें जन्म लिया था। उन्होंने नीच लोगोंकी सेवा भी नहीं की थी और वे नीच लोगोंके अधीन भी नहीं थे। उनका तो मात्र एक ही दोष था, वह था पापका आचरण। आपके नामाभाससे ही कूट पापराशि जलकर भस्म हो जाती है। आपका नाम लेकर उन्होंने आपकी निन्दा की और वही नाम (नामाभास) उनकी (पापोंसे) मुक्तिका कारण बन गया॥ 191–195॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जगाइ-मधाइका उद्धार करनेमें आपको अधिक श्रम नहीं हुआ। हम तो उनसे अधिक अधम हैं, हमारा उद्धार करनेके लिये आपको विशेष यत्न करना पड़ेगा। जगाइ-मधाइ तो उच्च ब्राह्मण जातिके थे और वे महातीर्थ नवद्वीपमें वास करते थे। हमारे जैसे उन्होंने कभी भी नीच लोगोंकी सेवा नहीं की थी, वे नीच लोगोंके अधीन भी नहीं थे अर्थात् उनका पालन नीच लोगोंने नहीं किया था; वे केवलमात्र पापाचारी थे। आपके नामाभाससे ही सारे पाप जलकर समाप्त हो जाते हैं; उन्होंने आपका नाम लेकर आपकी निन्दा की थी, वह नाम ही उनकी पापोंसे मुक्तिका कारण बन गया॥ 192–195॥

अनुभाष्य—जगाइ और मधाइ यद्यपि पापी थे, तथापि उन्होंने नीच व्यक्तिके सेवक बनकर स्वयंको बेचकर स्वामीके लिये निन्दनीय कर्म नहीं किये थे। हम उनकी अपेक्षा भी घृणित हैं, क्योंकि हम नीच व्यक्तिके हाथोंकी कठपुतली हैं। हमारा स्वामी हमारे द्वारा ही अनेक प्रकारके नीच कार्य करवाता है। साधुकी निन्दा करनेसे अपराध होता है। विष्णुकी निन्दासे जो अपराध होता है, वह उनका नाम ग्रहण करनेसे विनष्ट हो जाता है॥ 193–195॥

जगाइ-माधाइसे भी अपनेको अधम माननेकी उक्ति :—

जगाइ-माधाइ हैते कोटी कोटी गुण।
अधम पतित पापी आमि दुइ जन॥ 196॥

म्लेच्छजाति, म्लेच्छसङ्गी, करि म्लेच्छकर्म।
गो-ब्राह्मण-द्रोहि-सङ्गे आमार सङ्गम॥ 197॥

अनुवाद—जगाइ और मधाइसे भी करोड़ों-करोड़ों गुणा हम दोनों अधम, पतित और पापी हैं। हम म्लेच्छ जातिके हैं, क्योंकि हम म्लेच्छोंका सङ्ग करते हैं और म्लेच्छों जैसे कर्म करते हैं। हाय! हम गो और

ब्राह्मणोंका वध करनेवालोंका सङ्ग करते हैं॥ 196–197॥

अमृतप्रवाह भाष्य—म्लेच्छ दो प्रकारके हैं—जन्मके द्वारा म्लेच्छ और सङ्गके द्वारा म्लेच्छ। म्लेच्छोंका सङ्ग करनेके कारण हम भी जन्मसे म्लेच्छके जैसे हैं। हमने पतित होकर अनेक प्रकारसे म्लेच्छ व्यवहार किया है, विशेषतः जो सब गो-ब्राह्मणद्रोही म्लेच्छ हैं, हम उनके सङ्गी हैं॥ 197॥

अति कातर स्वरसे दोनोंका दैन्य-विलाप :—

मोर कर्म, मोर हाते-गलाय बान्धिया।
कु-विषय-विष्ठा-गर्त्ते दियाछे फेलिया॥ 198॥

अनुवाद—हमारे पापकर्मोंने हमारे हाथ-गलेको बाँधकर हमें विष्ठा-रूपी सांसारिक विषय भोगोंके गर्तमें धकेल दिया है॥ 198॥

अनुभाष्य— *'कु-विषय-विष्ठा-गर्त्ते'*—भोगके वशीभूत होकर इन्द्रियोंकी चेष्टाओंके द्वारा संसारमें जिसे ग्रहण किया जाता है, उसे ही 'विषय' कहते हैं। जिससे पुण्य अर्जित होता है, उसे 'सुविषय' और जिससे पाप अर्जित होता है, उसे 'कुविषय' कहते हैं। सब जड़सुखभोग विष्ठा-जातीय (मलके समान) हैं। श्रीकृष्ण-सेवा ही जीवके लिये परम कल्याणकारी होनेके कारण ग्रहण करनेकी वस्तु है। इन्द्रिय-सेवा घृणित और विसर्जनीय है, इसलिये मलके समान त्यागने योग्य है। त्याग किये हुए मलमें जैसे केवल मलके कीड़ेका अधिकार है, वैसे ही जीव अपनी वास्तविक स्थितिको भूलकर उस मलके कीड़ेके समान विषयरूपी मलमें रहनेको अपना श्रेय (कल्याण) मानकर मात्र मलके कीड़ेकी रुचिका अनुसरण करनेवाला है। गड्ढेमें गिरा व्यक्ति जिस प्रकार स्वयं उससे नहीं निकल सकता, विषयी जीव भी वैसे श्रीकृष्णकी ओर उन्मुख होनेकी चेष्टा करनेपर भी अपने बलपर विषय-मलके गड्ढेरूपी जड़भोगोंको छोड़कर निकलनेमें समर्थ नहीं होता है॥ 198॥

आमा उद्धारिते बली नाहि त्रिभुवने।
पतितपावन तुमि—सबे तोमा बिने॥ 199॥

आमा उद्धारिया यदि राख निज-बल।
'पतितपावन' नाम तबे से सफल॥ 200॥

अनुवाद—जो हमारा उद्धार कर सके, ऐसा महाबली तो तीनों लोकोंमें नहीं है। आप ही एकमात्र पतितोंका उद्धार करनेवाले हो, इसलिये आपके बिना हमारा और कोई आश्रय नहीं है। हमारा उद्धार करके अपना दिव्य बल दिखाओ, तभी त्रिभुवनमें प्रसिद्ध आपका 'पतितपावन' नाम सार्थक होगा॥ 199–200॥

सत्य एक बात कहोँ, शुन, दयामय।
मो-बिनु दयार पात्र जगते ना हय॥ 201॥

मोरे दया करि' कर स्वदया सफल।
अखिल ब्रह्माण्ड देखुक तोमार दया-बल॥ 202॥

अनुवाद—हे दयानिधान! हम एक सत्य बात कहते हैं, उसे कृपा करके सुनें,—जगत्में आपकी दयाका योग्यपात्र हमारे अतिरिक्त और कोई भी नहीं है। हमपर दया करके अपनी दयाको सफल करो, जिससे सारा ब्रह्माण्ड आपकी दयाका बल देखे॥ 201–202॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हम जैसे अत्यन्त पतित व्यक्तिपर दया करके आप अपना स्वदया अर्थात् निज दयालु नाम सफल करें॥ 202॥

श्रीयमुनाचार्यपाद-कृत स्तोत्ररत्न-श्लोक (50) :—

न मृषा परमार्थमेव मे
श्रृणु विज्ञापनमेकमग्रतः।
यदि मे न दयिष्यसे तदा
दयनीयस्तव नाथ दुर्लभः॥ 203॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 203॥

अमृतप्रवाह भाष्य—आपसे हम एक निवेदन कर रहे हैं, इसमें कुछ भी मिथ्या नहीं है, अपितु यह

परमार्थसे (सत्यसे) परिपूर्ण है; वह यह है कि यदि आप हमारे प्रति दया नहीं करेंगे, तब हे नाथ! आप उपयुक्त दयाका पात्र और कहाँ पायेंगे? ॥ 203 ॥

अनुभाष्य—

हे नाथ (प्रभो,) [तव] अग्रतः (पुरतः) मे (मम) एकं परमार्थं (वास्तवं) एव विज्ञापनं (निवेदनं) शृणु,—न [तत्] मृषा (मिथ्या); यदि मे (मम सम्बन्धे मयि) न दयिष्यसे (दयां करिष्यसि), तदा तव दयनीयः (दयार्हः) दुर्लभः। [सर्वाधमत्वात् दयायोग्यपात्रत्वात् मम अपकृष्टत्वस्य आधिक्यम्]।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह-भाष्य देखें ॥ 203 ॥

आपने अयोग्य देखि' मने पाङ क्षोभ।
तथापि तोमार गुणे उपजय लोभ ॥ 204 ॥

वामन हञा चाँद धरिते इच्छा करे।
तैछे मोर एइ वाञ्छा उठये अन्तरे ॥" 205 ॥

अनुवाद—अपनेको आपकी कृपाके अति अयोग्य जानकर हमारे मनमें क्षोभ हो रहा है, परन्तु आपके दिव्य गुणोंको देखकर हमारे हृदयमें लोभ भी उत्पन्न हो रहा है। जैसे बौना व्यक्ति चाँदको पकड़नेकी असम्भव इच्छा करे, वैसे ही हमारे मनमें भी ऐसी महत् कामना जाग्रत हो रही है ॥" 204-205 ॥

श्रीयमुनाचार्यपाद-कृत स्तोत्ररत्न-श्लोक (46) :—

भवन्तमेवानुचरन्निरन्तरः
प्रशान्तनिःशेषमनोरथान्तरः।
कदाहमैकान्तिकनित्यकिङ्करः
प्रहर्षयिष्यामि सनाथजीवितम् ॥ 206 ॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें ॥ 206 ॥

अमृतप्रवाह भाष्य—आपकी निरन्तर सेवाके द्वारा अन्य मनोरथोंसे सर्वथा रहित होकर प्रशान्तभावसे मैं कब अपनेको आपके नित्यदास कहकर दास्यजीवनके सहित आनन्दसे प्रफुल्लित होऊँगा? ॥ 206 ॥

अनुभाष्य—

हे नाथ, (प्रभो,) प्रशान्तनिःशेष-मनोरथान्तरः (प्रशान्तं निश्चलं निःशेषं सम्पूर्णं मनोरथानां वासनानां अन्तरं यस्य सः) ऐकान्तिकनित्यकिङ्करः (दृढ़नित्यदासः सन्) सः अहं भवन्तं (मम सेव्यं त्वम्) एव निरन्तरः (सान्द्रः) अनुचरन् (परिचर्यां कुर्वन् घनमनुगच्छन्) कदा (कस्मिन्काले) जीवितं (प्राणान्) प्रहर्षयिष्यामि (सर्वतोभावेन सुखयिष्यामि)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें ॥ 206 ॥

श्रीरूपको लक्ष्य करके दोनोंके
लिये महाप्रभुके कृपामय वचन :—

शुनि' महाप्रभु कहे,—"शुन, दबिर खास।
तुमि दुइ भाइ—मोर पुरातन दास ॥ 207 ॥

आजि हैते दुँहार नाम 'रूप' 'सनातन'।
दैन्य छाड़, तोमार दैन्ये फाटे मोर मन ॥ 208 ॥

अनुवाद—उनकी प्रार्थना सुनकर महाप्रभु बोले,—"सुनो, दबिर खास, तुम दोनों भाई मेरे प्राचीन (नित्य) दास हो। आजसे तुम दोनोंके नाम रूप और सनातन होंगे। अपनी दीनताका त्याग करो, तुम्हारे दैन्य भावसे मेरा हृदय फटा जा रहा है ॥ 207-208 ॥

अनुभाष्य—महाप्रभुने प्रसादके रूपमें दबिरखासका नाम 'रूप' और साकर मल्लिकका नाम 'सनातन' रखा। गुरुके द्वारा वैध कनिष्ठ-अधिकारीका नामकरण एक संस्कार है। जो गुरुके द्वारा प्रदान किये नाम-प्रसादकी अवज्ञा करते हैं अर्थात् उसका अनादर करते या उसमें दोष देखते हैं, उनके द्वारा हरिभक्तिकी सम्भावना नहीं है; वे जड़ जगत्‌की प्रतिष्ठामें मत्त रहते हैं।

"शङ्खचक्राद्यूर्द्धपुण्ड्र
तन्नामकरणञ्चैव वैष्णवत्वमिहोच्यते ॥"

अर्थात् "शङ्ख, चक्र, पद्म, गदा आदि विष्णु चिह्न और उर्ध्वपुण्ड्र
करना एवं गुरुके द्वारा उनका नामकरण—ये सभी कनिष्ठ वैष्णवोंके लक्षण हैं।"

प्राकृत सहजियोंमें विष्णु-दास्यपरक नामकरण नहीं होनेसे उन्हें अब 'गौड़ीय वैष्णव' नहीं कहा जा सकता। अवैष्णव लोग वैष्णव-गुरुसे नाम नहीं प्राप्त करते।

इसलिये वे देहात्मबुद्धिके वशीभूत होकर हरिसे अपने सम्बन्धको न जाननेके कारण सामाजिक वर्णोचित नामादिके संरक्षणमें ही प्रमत्त रहते हैं॥ 208॥

दैन्यपत्री लिखि' मोरे पाठाले बार बार।
सेइ पत्रीद्वारा जानि तोमार व्यवहार॥ 209॥

तोमार हृदय आमि जानि पत्र-द्वारे।
तोमा शिखाइते श्लोक कहिलुँ बारे-बारे॥ 210॥

अनुवाद—तुमने अनेक दैन्यपत्र लिखकर मुझे भेजे थे। उन्हें पढ़कर मैं तुम्हारे व्यवहारको अच्छी प्रकार जान गया था। तुम्हारे हृदयके भावोंको पत्रोंके द्वारा भली-भाँति जानकर मैंने तुम्हें शिक्षा देनेके लिये एक श्लोक (निम्नलिखित) को बार-बार लिखकर भेजा था॥ 209-210॥

रागमार्गीय भक्तका लोक-व्यवहार :—
महाप्रभुके द्वारा उक्त श्लोक—

परव्यसनिनी नारी व्यग्रापि गृहकर्मसु।
तमेवास्वादयत्यन्तर्नवसङ्गरसायनम्॥ 211॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 211॥

अमृतप्रवाह भाष्य—परपुरुषमें अनुरक्त रमणी (नारी) सभी गृहकर्मोंमें व्यग्रता दिखानेपर भी अन्तःकरणमें (अपने प्रेमीके साथ) नूतन सङ्गरसका आस्वादन करती है॥ 211॥

अनुभाष्य—

परव्यसनिनी (निजपतिभिन्नापरपुरुषसङ्गामोदिनी) नारी (कुलरमणी) गृहकर्मसु व्यग्रा (पतिपुत्रसेवादिषु सेवैकपरताप्रदर्शनपरा) अपि अन्तः (हृदयाभ्यन्तरे) तं नवसङ्गरसायनं (नवनवकान्तसङ्गसुखरसस्थानम्) एव आस्वादयति। [यथा पत्यन्तर-भजनपरा नारी स्व-गृहधर्मपरां भूत्वा संसारे स्थित्वापि जारसङ्गसुखेन दिनानि यापयति, तथा वैधवर्णाश्रम-धर्मपालनेन मूढान् वञ्चयित्वा, चतुराणां वैष्णवानां हरिदास्यमेव भजन-चातुर्यम्]।

श्लोक-भावानुवाद—जो कुलरमणी अपने पतिके बदले किसी दूसरे पुरुषसे प्रेम करती है, वह पति-पुत्रादिकी सेवामें अत्यन्त तत्परता दिखलाती है, परन्तु अपने हृदयमें वह अपने प्रेमीसे मिलनके नव-नव रसोंका आस्वादन करती है। [जैसे पतिके स्थानपर अन्य पुरुषसे प्रेम करनेवाली नारी अपने गृहधर्म पालन करके संसारमें रहकर प्रेमीके सङ्गके सुखको हृदयमें आस्वादन करती हुई दिन यापन करती है, वैसे ही वैध-वर्णाश्रम-धर्मका पालन करके मूढ़ लोगोंकी वञ्चना करते हुए चतुर वैष्णवोंका हरिदास्यमें ही भजन-चातुर्य है।]॥ 211॥

रूप-सनातनको देखनेके लिये महाप्रभुका
रामकेलिमें आगमन :—

गौड़-निकट आसिते नाहि मोर प्रयोजन।
तोमा-दुँहा देखिते मोर इँहा आगमन॥ 212॥

एइ मोर मनेर कथा केह नाहि जाने।
सबे बले, केने आइला रामकेलि-ग्रामे॥ 213॥

उत्कण्ठित दोनों भाइयोंको महाप्रभुका आश्वासन देना :—

भाल हैल, दुइ भाइ आइला मोर स्थाने।
घरे याह, भय किछु ना करिह मने॥ 214॥

जन्मे जन्मे तुमि दुइ—किङ्कर आमार।
अचिराते कृष्ण तोमाय करिबे उद्धार॥" 215॥

अनुवाद—गौड़देशके निकट आनेका मेरा कोई प्रयोजन नहीं था, मैं तो केवल तुम दोनोंसे मिलनेके लिये यहाँ आया हूँ। मेरे मनकी यह बात कोई नहीं जानता है, इसलिये सब मुझसे रामकेलि ग्राममें आनेके कारणकी जिज्ञासा करते हैं। यह बहुत अच्छा हुआ कि तुम दोनों भाई मुझसे मिलने आये। अब तुम अपने घरको लौट जाओ और मनमें कोई भय मत करो। तुम मेरे जन्म-जन्मके सेवक हो, श्रीकृष्ण शीघ्र ही तुम्हारा उद्धार करेंगे॥" 212-215॥

दोनोंका महाप्रभुके श्रीचरणोंको शीशपर धारण करना :—

एत बलि' दुँहार शिरे धरिल दुइ हाते।
दुइ भाइ धरि' प्रभुर पद निल माथे॥ 216॥

अनुवाद—यह कहकर महाप्रभुने अपने दोनों हाथ

उन दोनोंके सिरपर रख दिये और उन दोनों भाइयोंने महाप्रभुके चरणोंको अपने सिरपर धारण किया॥ 216॥

कृपासे द्रवित महाप्रभुका दोनोंपर भक्तोंसे कृपा करनेका आवेदन :—

दोँहा आलिङ्गिया प्रभु बलिल भक्तगणे।
"सबे कृपा करि' उद्धार' एइ दुइ जने॥"217॥

अनुवाद—महाप्रभुने दोनोंको उठाकर उनका आलिङ्गन किया और सभी भक्तोंको उन दोनोंपर कृपा करके उनका उद्धार करनेको कहा॥ 217॥

भक्तोंका विस्मय और आनन्द :—

दुइजने प्रभुर कृपा देखि' भक्तगणे।
'हरि' 'हरि' बले सबे आनन्दित-मने॥ 218॥

अनुवाद—उन दोनोंपर महाप्रभुकी कृपा देखकर सभी भक्त आनन्दित होकर 'हरि' 'हरि' बोलने लगे॥ 218॥

सभी भक्तोंके चरणोंमें कृपाकी याचना और सबके द्वारा धन्यवादकी प्राप्ति :—

नित्यानन्द, हरिदास, श्रीवास, गदाधर।
मुकुन्द, जगदानन्द, मुरारि, वक्रेश्वर॥ 219॥

सबार चरणे धरि' पड़े दुइ भाइ।
सबे बले,—धन्य तुमि, पाइले गोसाञि॥ 220॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीहरिदास ठाकुर, श्रीवास पण्डित, श्रीगदाधर पण्डित, श्रीमुकुन्द दत्त, श्रीजगदानन्द पण्डित, श्रीमुरारि गुप्त, श्रीवक्रेश्वर पण्डित आदि महाप्रभुके जितने भक्त वहाँ उपस्थित थे, श्रीरूप और सनातन, दोनों भाइयोंने गिरकर सबके चरणकमलोंको पकड़ा और सभी भक्त उन्हें आशीर्वाद देते कहने लगे कि तुम धन्य हो, क्योंकि तुमने महाप्रभुकी कृपा प्राप्त की है॥ 219-220॥

विदायीके समय श्रीसनातनका महाप्रभुको सत्परामर्श :—

सबा-पाश आज्ञा मागि' चलन-समय।
प्रभु-पदे कहे किछु करिया विनय॥ 221॥

"इहाँ हैते चल, प्रभु, इँहा नाहि काज।
यद्यपि तोमारे भक्ति करे गौड़राज॥ 222॥

तथापि यवन जाति, ना करिह प्रतीति।
तीर्थयात्राय एत संघट्ट, भाल नहे रीति॥ 223॥

अपने भजन-क्षेत्रमें बहुत बहिरङ्ग लोगोंका होना अप्रयोजनीय :—

याहाँ सङ्गे चले एइ लोक लक्षकोटि।
वृन्दावन याइबार ए नहे परिपाटी॥"224॥

अनुवाद—चलते समय दोनोंने सभीसे जानेकी आज्ञा माँगी और महाप्रभुके चरणकमलोंमें एक निवेदन किया। (श्रीसनातन गोस्वामी)ने कहा,—"हे प्रभो! यद्यपि बङ्गालका राजा आपका बहुत सम्मान करता है, तथापि आपका अब यहाँ और कोई प्रयोजन नहीं है। इसलिये आप यहाँसे प्रस्थान करें। राजा यवन जातिका है, इसलिये उसका अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता है। तीर्थयात्रापर इतनी भीड़के साथ जानेकी रीति अच्छी नहीं है। आपके साथ हजारों-लाखों लोग जा रहे हैं, वृन्दावन जानेकी यह परिपाटी नहीं है॥"221-224॥

स्वयं परमेश्वर होते हुए भी आचार्यरूपसे कनिष्ठाधिकारीको शिक्षाका सुयोग प्रदान :—

यद्यपि वस्तुतः प्रभुर किछु नाहि भय।
तथापि लौकिकलीला, लोक-चेष्टामय॥ 225॥

अनुवाद—यद्यपि वास्तवमें महाप्रभुको किसीसे कोई भय नहीं है, तो भी उन्होंने लौकिक लीलाके अनुरूप जगत्में शिक्षा देनेके लिये साधारण मनुष्यके जैसा आचरण किया॥ 225॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 16/265-276 संख्या देखें॥ 221-225॥

दोनों भाइयोंका विदायी ग्रहण करना :—

एत बलि' चरण वन्दि' गेला दुइजन।
प्रभुर सेइ ग्राम हैते चलिते हैल मन॥ 226॥

अनुवाद—ऐसा कहकर दोनों भाई महाप्रभुके चरणोंकी वन्दना करके अपने घरको लौट गये। तब महाप्रभुने रामकेलि ग्रामसे प्रस्थान करनेका निश्चय किया॥ 226॥

रामकेलिसे 'कानाइ नाटशाला' :—

प्राते चलि' आइला 'कानाइर नाटशाला'।
देखिल सकल ताँहा कृष्णचरित्र-लीला॥ 227॥

अनुवाद—प्रातःकालमें महाप्रभु 'कानाइ-नाटशाला'में आये और उन्होंने वहाँ श्रीकृष्णकी अनेक लीलाओंका दर्शन किया॥ 227॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'कृष्णचरित्र-लीला'*—उस समयमें गौड़देशके अनेक स्थानोंपर 'कानाइ-नाटशाला' नामक स्थानकी व्यवस्था थी। गौड़देशके निकट जो कनाइ-नाटशाला थी, वहाँ महाप्रभुने कृष्णलीलाके नाना प्रकारके चित्रवर्णन देखे॥ 227॥

सनातनके परामर्शके अनुसार महाप्रभुके द्वारा वृन्दावन जानेकी इच्छाका त्याग :—

सेइ रात्रे ताँहा प्रभु चिन्ते मने मन।
'सङ्गे संघट्ट भाल नहे, बले सनातन॥ 228॥

मथुरा याइब आमि एत लोक सङ्गे।
किछु सुख ना हइबे, हबे रसभङ्गे॥ 229॥

एकाकी याइब, किम्वा सङ्गे एक जन।
तबे से शोभय वृन्दावनेरे गमन॥'230॥

अनुवाद—उस रात्रिमें श्रीसनातनकी बातपर विचार करके महाप्रभुने निर्णय लिया,—'इतने लोगोंको साथ लेकर वृन्दावन जाना उचित नहीं है। यदि मैं मथुरा इतने लोगोंके साथ जाऊँगा, तो कोई आनन्द नहीं आयेगा और रस भङ्ग हो जायेगा। यदि मैं अकेले अथवा केवल एक व्यक्तिको लेकर जाऊँगा, तो वृन्दावनकी यात्रा बड़ी सुखप्रद होगी॥'228–230॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 16/265–276 संख्या देखें॥ 229–230॥

नीलाचलकी ओर जाते हुए शान्तिपुरमें आगमन और वहाँ पाँच-सात दिन ठहरना :—

एत चिन्ति' प्रातःकाले गङ्गास्नान करि'।
'नीलाचले याब' बलि' चलिला गौरहरि॥ 231॥

एइमत चलि' चलि' आइला शान्तिपुरे।
दिन पाँच-सात रहिला आचार्येर घरे॥ 232॥

अनुवाद—इस प्रकार चिन्तन करते हुए उन्होंने प्रातःकाल गङ्गामें स्नान किया और अपनी यात्रा आरम्भ करते हुए सबसे कहा,—'मैं नीलाचल जाऊँगा।' चलते-चलते वे शान्तिपुर आये और वे श्रीअद्वैताचार्यके घरमें पाँच-सात दिन रहे॥ 231–232॥

श्रीअद्वैताचार्यके घरमें शचीमाताके द्वारा महाप्रभुकी सेवा :—

शचीदेवी आसि' ताँरे कैल नमस्कार।
सातदिन ताँर ठाञि भिक्षा-व्यवहार॥ 233॥

अनुवाद—महाप्रभुके शान्तिपुर आनेका समाचार सुनकर शचीमाता भी वहाँ आयीं और महाप्रभुने उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने सात दिन वहाँ रहकर महाप्रभुके लिये भोजन बनाया॥ 233॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 16/212–216, 223, 234, 245–250 संख्या और चैःभाः अन्त्यखण्ड तीसरा अध्याय देखें॥ 232–233॥

सब भक्तोंको विदायी देना और रथयात्राके समय पुरीमें मिलनेका आदेश :—

ताँर आज्ञा लञा पुनः करिला गमने।
विनय करिया विदाय दिल भक्तगणे॥ 234॥

"जना दुइ सङ्गे आमि याब नीलाचले।
आमारे मिलिबा आसि' रथयात्रा-काले॥"235॥

अनुवाद—शचीमातासे आज्ञा लेकर महाप्रभु नीलाचलकी ओर चले, तो भक्त लोग उनके पीछे-पीछे चलने लगे। महाप्रभुने उनसे अनुनय-विनय करके

वापिस लौट जानेको कहा और उनसे विदायी ली। महाप्रभुने भक्तोंसे कहा,—"मैं नीलाचल केवल दो लोगोंको साथ लेकर जाऊँगा और बाकी सभी लौट जाँय और रथयात्राके समय मुझसे श्रीजगन्नाथपुरीमें आकर मिलना॥"234–235॥

बलभद्र और दामोदर पण्डितके साथ पुरीमें आगमन :—

बलभद्र भट्टाचार्य, आर पण्डित दामोदर।
दुइजन-सङ्गे प्रभु आइला नीलाचल॥236॥

अनुवाद—महाप्रभु बलभद्र भट्टाचार्य और दामोदर पण्डितको अपने साथ लेकर नीलाचल आये॥236॥

अनुभाष्य—*'दामोदर पण्डित'*—आदिलीला 10/31 संख्या और अन्त्यलीला तीसरा अध्याय देखें॥236॥

कुछ दिन पुरीमें रहनेके बाद वृन्दावनकी यात्रा :—

दिन कत रहि' ताँहा चलिला वृन्दावन।
लुकाञा चलिला रात्रे, ना जाने कोन जन॥237॥

अनुवाद—श्रीजगन्नाथपुरीमें कुछ दिन रहनेके बाद एक रात्रिमें बिना किसीको बताये वे वृन्दावनकी ओर चल पड़े॥237॥

महाप्रभुके साथ एकमात्र बलभद्र भट्ट :—

बलभद्र भट्टाचार्य रहे मात्र सङ्गे।
झारिखण्ड-पथे काशी आइला नानारङ्गे॥238॥

अनुवाद—उन्होंने केवल बलभद्र भट्टाचार्यको ही अपने साथ लिया और झारखण्डके रास्तेसे होते हुए वे आनन्दपूर्वक काशी पहुँचे॥238॥

अनुभाष्य—*'बलभद्र'*—आदिलीला, 10/146 संख्या और *'झारिखण्ड पथसे महाप्रभुका काशीगमन'*—मध्यलीला, 17/3–82 संख्या देखें॥236–238॥

काशीमें आगमन और चार दिन तक
वास करनेके बाद मथुरा-गमन :—

दिन चारि काशीते रहि' गेला वृन्दावन।
मथुरा देखिया देखे द्वादश कानन॥239॥

अनुवाद—वे चार दिनों तक काशीमें रहे और फिर वे वृन्दावनकी ओर चले। मथुराके दर्शन करके उन्होंने व्रजके बारह वन देखे॥239॥

अनुभाष्य—*'द्वादशकानन'*—काम्यवन, तालवन, तमालवन, मधुवन, कुसुमवन, भाण्डीरवन, बिल्ववन, भद्रवन, खदिरवन, लोहवन, कुमुदवन और गोकुल-महावन॥239॥

वृन्दावनमें प्रेमोन्माद, तत्पश्चात् मथुरा होकर प्रयाग :—

लीलास्थल देखि' प्रेमे हइला अस्थिर।
बलभद्र कैल ताँरे मथुरार बाहिर॥240॥

अनुवाद—लीलास्थलियोंके दर्शन करके महाप्रभु प्रेममें भावाविष्ट हो गये। बलभद्र उन्हें किसी प्रकारसे मथुरासे बाहर लेकर आये॥240॥

प्रयागमें दशाश्वमेधघाटपर श्रीरूपके साथ मिलन :—

गङ्गातीर-पथे लञा प्रयागे आइला।
श्रीरूप प्रभुरे आसि' तथाइ मिलिला॥241॥
दण्डवत् करि' रूप भूमिते पड़िला।
परम आनन्दे प्रभु आलिङ्गन दिला॥242॥

अनुवाद—मथुरासे निकलकर वे गङ्गाके किनारे चलते-चलते प्रयाग पहुँचे और श्रीरूप गोस्वामी वहाँ आकर उनसे मिले। श्रीरूप गोस्वामीने भूमिपर गिरकर महाप्रभुको दण्डवत् प्रणाम किया और महाप्रभुने बड़े आनन्दसे उन्हें उठाकर उनका आलिङ्गन किया॥241–242॥

श्रीरूपको शिक्षा देकर वृन्दावन
भेजना और स्वयं काशीमें गमन :—

श्रीरूपे शिक्षा कराइ' पाठा'न वृन्दावन।
आपने करिला वाराणसी आगमन॥243॥

अनुवाद—श्रीरूप गोस्वामीको शिक्षा देकर उन्हें वृन्दावन जानेकी आज्ञा दी और वे स्वयं वाराणसी आ गये॥243॥

अनुभाष्य—*'श्रीरूप-मिलन और शिक्षा'*—मध्यलीला उन्नीसवाँ अध्याय देखें॥ 241–243॥

काशीमें श्रीसनातनके साथ
मिलन और उनको शिक्षा प्रदान :—

काशीते प्रभुके आसि' मिलिला सनातन।
दुइ मास रहि' ताँरे कराइला शिक्षण॥ 244॥

श्रीसनातनको मथुरामण्डलमें भेजना
और प्रकाशानन्दका उद्धार :—

मथुरा पाठाइला ताँरे दिया भक्तिबल।
संन्यासीरे कृपा करि' गेला नीलाचल॥ 245॥

अनुवाद—श्रीसनातन गोस्वामी काशीमें आकर महाप्रभुसे मिले। महाप्रभुने दो महीने वहाँ रहकर उन्हें शिक्षा दी। महाप्रभुने श्रीसनातन गोस्वामीमें भक्तिका बल सञ्चारित करके उन्हें मथुरा भेजा और काशीमें प्रकाशानन्दादि मायावादी संन्यासियोंपर कृपा करके उनका उद्धार किया और तब वे नीलाचल लौट आये॥ 244–245॥

अनुभाष्य—*'श्रीसनातन-मिलन और शिक्षा'*—मध्यलीला बीसवाँ अध्याय देखें॥ 244॥

छह वर्ष इधर-उधर गमनागमन रूप 'मध्यलीला' :—

छय वत्सर प्रभु ऐछे करिला विलास।
कभु इति-उति-गति, कभु क्षेत्रवास॥ 246॥

पुरीमें भक्तोंके साथ नित्य कीर्तन
और श्रीजगन्नाथ दर्शन :—

आनन्दे भक्तसङ्गे सदा कीर्त्तन-विलास।
जगन्नाथ-दरशन, प्रेमेर विलास॥ 247॥

अनुवाद—कभी पुरीमें रहकर और कभी अन्य स्थानोंमें भ्रमण करके छह वर्ष महाप्रभुने ऐसी लीलाएँ कीं। पुरीमें महाप्रभु अपने भक्तोंके साथ सदा आनन्दमें विभोर होकर सङ्कीर्तन करते और श्रीजगन्नाथजीके दर्शन करके प्रेममें भावाविष्ट हो जाते॥ 246–247॥

अन्त्यलीलाके सूत्रोंका आरम्भ :—

मध्यलीलार कैलुँ एइ सूत्र-विवरण।
अन्त्यलीलार सूत्र एबे शुन, भक्तगण॥ 248॥

अनुवाद—मैंने (ग्रन्थकार कृष्णदास कविराज) अभी तक मध्यलीलाका सूत्ररूपमें वर्णन किया। हे भक्तो! अब अन्त्यलीला सूत्ररूपमें सुनो॥ 248॥

छह वर्षोंके बाद बाकी अठारह वर्षों
तक केवल पुरीमें वास :—

वृन्दावन हैते यदि नीलाचले आइला।
आठार वर्ष ताँहा वास, काँहा नाहि गेला॥ 249॥

चातुर्मास्यमें गौड़ीयभक्तोंका महाप्रभुके
साथ पुरीमें वास :—

प्रतिवर्ष आइसेन ताँहा गौड़ेर भक्तगण।
चारि मास रहे प्रभुर सङ्गे सम्मिलन॥ 250॥

नित्यकाल कृष्ण कीर्तन और प्रेमभक्तिका दान :—

निरन्तर नृत्य-गीत-कीर्त्तन-विलास।
आ-चण्डाले प्रेमभक्ति करिला प्रकाश॥ 251॥

अनुवाद—महाप्रभु वृन्दावनसे लौटकर नीलाचल आये और बाकी अठारह वर्षों तक केवल वहीं वास किया और वहाँसे किसी और स्थानपर नहीं गये। गौड़देशसे भक्त प्रतिवर्ष नीलाचल आते और चार मास तक महाप्रभुके सङ्गमें रहते। पुरीमें महाप्रभु निरन्तर नृत्य-गीत और सङ्कीर्तन विलासमें डूबे रहते। उन्होंने अपनी अहैतुकी कृपासे चाण्डाल जैसे नीच लोगोंको भी श्रीकृष्ण-प्रेमाभक्तिका दान किया॥ 249–251॥

श्रीगदाधर पण्डितका क्षेत्र-संन्यास
और पुरीप्रवासी भक्तगण :—

पण्डित-गोसाञि कैल नीलाचले वास।
वक्रेश्वर, दामोदर, शङ्कर, हरिदास॥ 252॥

जगदानन्द, भवानन्द, गोविन्द, काशीश्वर।
परमानन्दपुरी, आर स्वरूप-दामोदर॥ 253॥

क्षेत्रवासी रामानन्द राय प्रभृति।
प्रभुसङ्गे एइ सब नित्य कैल स्थिति॥ 254॥

अनुवाद—श्रीगदाधर पण्डित क्षेत्र संन्यास लेकर नीलाचलमें ही वास करने लगे। श्रीवक्रेश्वर पण्डित, श्रीदामोदर, श्रीशङ्कर, श्रीहरिदास ठाकुर, श्रीजगदानन्द, श्रीभवानन्द, श्रीगोविन्द, श्रीकाशीश्वर, श्रीपरमानन्दपुरी, और श्रीस्वरूप दामोदर तथा नीलाचलवासी श्रीराय रामानन्द आदिने महाप्रभुके साथ पुरीमें ही नित्यवास किया और पुरीसे बाहर कभी भी नहीं गये॥ 252–254॥

प्रतिवर्ष गौड़ीय भक्तोंका महाप्रभुके
साथ चातुर्मास्य-यापन :—

अद्वैत, नित्यानन्द, मुकुन्द, श्रीवास।
विद्यानिधि, वासुदेव, मुरारि,—यत दास॥ 255॥
प्रतिवर्षे आइसे, सङ्गे रहे चारिमास।
ताँ-सबा लञा प्रभुर विविध विलास॥ 256॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्य, श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीमुकुन्द, श्रीवास पण्डित, श्रीविद्यानिधि, श्रीवासुदेव, श्रीमुरारि गुप्त आदि महाप्रभुके परिकर प्रतिवर्ष पुरीमें आकर चार मास तक रहते और महाप्रभु उनके साथ अनेक प्रकारसे लीला विलासका आनन्द लेते॥ 255–256॥

ठाकुर हरिदासका पुरीमें निर्याण :—

हरिदासेर सिद्धिप्राप्ति,-अद्भुत से सब।
आपनि महाप्रभु याँर कैल महोत्सव॥ 257॥

अनुवाद—श्रीहरिदास ठाकुरका देह निर्याण पुरीमें हुआ। यह एक अद्भुत घटना थी, क्योंकि महाप्रभुने स्वयं उनका विरह महोत्सव मनाया था॥ 257॥

अनुभाष्य—*'ठाकुर हरिदास निर्याण'*—अन्त्यलीला ग्यारहवाँ अध्याय देखें॥ 257॥

श्रीरूपका पुरीमें आगमन :—

तबे रूप-गोसाञिर पुनरागमन।
ताँहार हृदये कैल प्रभु शक्ति-सञ्चारण॥ 258॥

अनुवाद—तब श्रीरूप गोस्वामी पुनः पुरी आये और महाप्रभुने उनके हृदयमें अपनी दिव्य शक्ति सञ्चारित की॥ 258॥

अनुभाष्य—चिद्शक्ति अथवा अप्राकृत-बलसञ्चार; चिद्शक्तिसे रहित होनेपर या मायाशक्ति-सञ्चारसे भोगलालसाकी वृद्धि होती है। अन्त्यलीला प्रथम अध्याय देखें॥ 258॥

छोटा हरिदासको दण्ड और
दामोदर पण्डितका वाक्य दण्ड :—

तबे छोट हरिदासे प्रभु कैल दण्ड।
दामोदर-पण्डित कैल प्रभुके वाक्यदण्ड॥ 259॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने छोटा हरिदासको दण्ड-स्वरूप उसका बहिष्कार कर दिया और दामोदर पण्डितने महाप्रभुको कुछ चेतावनीके वाक्य कहे॥ 259॥

अनुभाष्य—*'छोटा हरिदास'*—अन्त्यलीला, दूसरा अध्याय देखें। *दामोदरका 'वाक्यदण्ड'*—अन्त्यलीला, तीसरा अध्याय देखें।

महाप्रभुको अज्ञानी लोग न समझकर यदि उनपर कटाक्ष करेंगे, तो इस प्रकारका प्रदर्शन ही महाप्रभुके प्रति वाक्य-दण्ड है। दामोदर-पण्डितका महाप्रभुके लिये इस प्रकार वाक्यका प्रयोग भक्तोंके विचारानुसार दण्डात्मक वाक्यमात्र है। यह निग्रह-अनुग्रह-समर्थ व्यक्तियोंको दूसरोंके द्वारा सावधान किया जाना अनाधिकार-चर्चा मात्र है॥ 259॥

श्रीसनातनका पुरीमें आगमन :—

तबे सनातन-गोसाञिर पुनरागमन।
ज्येष्ठमासे प्रभु ताँरे कैल परीक्षण॥ 260॥

अनुवाद—तब श्रीसनातन गोस्वामी पुनः पुरी आये और महाप्रभुने ज्येष्ठ मासमें उनकी परीक्षा ली॥ 260॥

अनुभाष्य—*'श्रीसनातन गोस्वामी'*—अन्त्यलीला चौथा अध्याय देखें॥ 260॥

श्रीसनातन गोस्वामीको वृन्दावन भेजना
और श्रीअद्वैत-घरमें भिक्षा :—

तुष्ट हञा प्रभु ताँरे पाठाइला वृन्दावन।
अद्वैतेर हस्ते प्रभुर अद्भुत भोजन॥ 261॥

अनुवाद—श्रीसनातन गोस्वामीसे सन्तुष्ट होकर महाप्रभुने उन्हें वृन्दावन वापिस भेज दिया। श्रीअद्वैताचार्यने महाप्रभुको अपने हाथोंसे भोजन करानेकी अद्भुत लीला की॥ 261॥

अनुभाष्य—*'श्रीअद्वैतगृहमें महाप्रभुका अकेले भोजन'*—अन्त्यलीला आठवाँ अध्याय देखें॥ 261॥

गौड़देशमें श्रीनित्यानन्दको नाम-प्रेम-प्रचारार्थ भेजना :—

नित्यानन्द-सङ्गे युक्ति करिया निभृते।
ताँरे पाठाइला गौड़े प्रेम प्रचारिते॥ 262॥

अनुवाद—महाप्रभुने एकान्तमें श्रीनित्यानन्द प्रभुके साथ विचार-विमर्श करके उनको कृष्णप्रेमको वितरित करनेके लिये गौड़देशमें भेज दिया॥ 262॥

अनुभाष्य—*'श्रीनित्यानन्द प्रभुको गौड़देशमें नाम-प्रचारकी आज्ञा देना'*—मध्यलीला, 15/42, 16/59-67 संख्या देखें॥ 262॥

वल्लभभट्टका गर्व-नाश और कृष्णनाम-महिमा-श्रवण :—

तबे त' वल्लभभट्ट प्रभुरे मिलिला।
कृष्णनामेर अर्थ प्रभु ताँहारे कहिला॥ 263॥

अनुवाद—तब वल्लभभट्ट पुरीमें आकर महाप्रभुसे मिले और महाप्रभुने (उनका गर्वनाश करके) उन्हें महिमा सहित कृष्णनामके अर्थकी व्याख्या की॥ 263॥

अनुभाष्य—*'वल्लभभट्ट'*—अन्त्यलीला, सातवाँ अध्याय और मध्यलीला, उन्नीसवाँ अध्याय देखें।

श्रीगौरसुन्दरने अपने प्रियजन श्रीगदाधर पण्डितसे वल्लभभट्टको नाममन्त्र दिलवाया और स्वयं उसे अपने सम्प्रदायके अनुसार नामका अर्थ बतलाया। "विनीतानथ पुत्रादीन् संस्कृत्य प्रतिबोधयेत्" अर्थात् "विनीत शिष्योंको वैदिक दस संस्कारोंसे संस्कृतकर आचार्य अपने शिष्योंको ब्रह्मचारी बनाकर उनको मन्त्रके अर्थकी शिक्षा देवें।"—इस पञ्चरात्र वाक्यके अनुसार वल्लभभट्टने नामार्थ श्रवण करनेका अधिकार पाया था॥ 263॥

ब्राह्मणकुल-उत्पन्न प्रद्युम्न मिश्रका ब्राह्मणकुलमें नहीं जन्में
वैष्णवाचार्य श्रीराय रामानन्दको गुरु रूपमें वरण :—

प्रद्युम्न मिश्रेरे प्रभु रामानन्द-स्थाने।
कृष्णकथा शुनाइल कहि' ताँर गुणे॥ 264॥

अनुवाद—महाप्रभुने (कायस्थकुलमें जन्में) श्रीराय रामानन्दके दिव्य गुणोंकी महिमा गान करके (ब्राह्मणकुलमें जन्में) प्रद्युम्न मिश्रको उनसे श्रीकृष्णकथा श्रवण करनेके लिये प्रेरित किया॥ 264॥

अनुभाष्य—अन्त्यलीला, पाँचवाँ अध्याय देखें॥ 264॥

राजाके क्रोधसे गोपीनाथका उद्धार :—

गोपीनाथ पट्टनायक—रामानन्द-भ्राता।
राजा मारितेछिल, प्रभु हैल त्राता॥ 265॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीराय रामानन्दके भाई गोपीनाथ पट्टनायकके प्राणोंकी रक्षा की, जिसे राजाने मृत्यु दण्ड दिया था॥ 265॥

अनुभाष्य—अन्त्यलीला, नौवाँ अध्याय देखें॥ 265॥

विद्वेषी रामचन्द्र पुरीका महाप्रभुके
प्रति शासन और भक्तोंका दुःख :—

रामचन्द्रपुरी-भये भिक्षा घाटाइल।
वैष्णवेर दुःख देखि' अर्द्धेक राखिल॥ 266॥

अनुवाद—महाप्रभुके ऊपर रामचन्द्रपुरीके द्वारा अधिक प्रसाद ग्रहण करनेका दोषारोपण करनेपर उन्होंने बहुत अल्पमात्रामें प्रसाद पाना आरम्भ किया। इसे देखकर सभी वैष्णव लोग बहुत दुःखी हो गये, तब महाप्रभु दोषारोपणसे पूर्व जितना प्रसाद पाते थे, उसका आधा ग्रहण करने लगे॥ 266॥

अनुभाष्य—अन्त्यलीला, आठवाँ अध्याय देखें॥ 266॥

ब्रह्माण्डवासी असंख्य जीवोंका
महाप्रभुके दर्शनसे उद्धार :—

ब्रह्माण्ड-भितरे हय चोद्दभुवन।
चोद्दभुवने बैसे यत जीवगण॥ 267॥

मनुष्येर वेश धरि' यात्रिकेर छले।
प्रभुर दर्शन करे आसि' नीलाचले॥ 268॥

अनुवाद—इस ब्रह्माण्डमें चौदह लोक हैं और जितने भी प्राणी इन लोकोंमें वास करते हैं, वे सभी तीर्थयात्राके छलसे मनुष्य रूप धारण करके नीलाचलमें महाप्रभुके दर्शन करनेके लिये आते॥ 267–268॥

श्रीवासादि भक्तोंके गौरकीर्तनमें महाप्रभुकी असहमति और
रोषाभास एवं कृष्ण-कीर्तन करनेकी आज्ञा :—

एकदिन श्रीवासादि यत भक्तगण।
महाप्रभुर गुण गाञा करेन कीर्त्तन॥ 269॥

शुनि' भक्तगणे कहे सक्रोध वचन।
"कृष्ण-नाम-गुण छाड़ि, कि कर कीर्त्तन॥ 270॥

औद्धत्य करिते हैल सबाकार मन।
स्वतन्त्र हइया सबे नाशा'ले भुवन॥" 271॥

अनुवाद—एक दिन श्रीवासादि सभी भक्त महाप्रभुके गुणोंका कीर्तन कर रहे थे। अपनी प्रशंसा सुनकर महाप्रभु क्रोधित होकर सभीको डाँटते हुए बोले,—"कृष्णके नाम और गुणोंके कीर्तनको छोड़कर यह कैसा कीर्तन हो रहा है? तुम अपने मनके अनुसार स्वतन्त्रतापूर्वक आचरण करते हुए ऐसी धृष्टता कर रहे हो जिससे सारे संसारका नाश हो जायेगा॥" 269–271॥

असंख्य जीवोंके कण्ठसे गौर-जयध्वनि
और आर्त्ति ज्ञापन :—

दशदिके कोटि कोटि लोक हेन काले।
'जय कृष्णचैतन्य' बलि' करे कोलाहले॥ 272॥

"जय जय महाप्रभु—व्रजेन्द्रकुमार।
जगत् तारिते प्रभु, तोमार अवतार॥ 273॥

बहुदूर हैते आइनु हञा बड़ आर्त्त।
दरशन दिया प्रभु करह कृतार्थ॥" 274॥

अनुवाद—महाप्रभुके इस प्रकार क्रोध प्रदर्शन करनेपर भी दसों दिशाओंसे लाखों-लाखों लोग तुमुलघोष करने लगे,—"श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुकी जय हो। महाप्रभुकी बारम्बार जय हो, जो स्वयं व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण हैं और जगत्का उद्धार करनेके लिये अवतरित हुए हैं। हे प्रभो! हम दुःखियारे लोग बहुत दूरसे आये हैं, अपने दर्शन देकर हमें कृतार्थ करो॥" 272–274॥

महाप्रभुकी करुणा :—

शुनिया लोकेर दैन्य द्रविला हृदय।
बाहिरे आसि' दरशन दिला दयामय॥ 275॥

श्रीमहाप्रभुके कृपादेशको प्राप्तकर असंख्य
लोगोंके कण्ठसे गौरहरिकी ध्वनि :—

बाहु तुलि' बले प्रभु—बल' 'हरि' 'हरि'।
उठिल—श्रीहरिध्वनि चतुर्द्दिक भरि'॥ 276॥

महाप्रभुकी स्तुति :—

प्रभु देखि' प्रेमे लोक आनन्दित मन।
प्रभुके ईश्वर बलि' करये स्तवन॥ 277॥

अनुवाद—लोगोंकी दीन और दुःख भरी पुकार सुनकर महाप्रभुका हृदय पिघल गया। बाहर आकर परम कृपालु महाप्रभुने सभीको दर्शन दिया। महाप्रभुने दोनों भुजायें उठाकर सभीसे कहा,—"हरि बोल! हरि बोल!" सभी लोग अपनी भुजायें उठाकर 'हरि-हरि' बोलने लगे और उनकी ध्वनिसे चारों दिशायें गुञ्जायमान हो गयीं। महाप्रभुके दर्शन करके सभी लोग प्रेममें मग्न होकर आनन्दसे उनको भगवान् कहकर उनकी स्तव-स्तुति करने लगे॥ 275–277॥

करोड़ों कण्ठोंसे महाप्रभुकी जयध्वनि सुनकर सुयोग
समझकर श्रीवासके द्वारा महाप्रभुको उलाहना देना :—

स्तव शुनि' प्रभुके कहेन श्रीनिवास।
"घरे गुप्त हञा, केने बाहिरे प्रकाश॥ 278॥

के शिखाल एइ लोके, कहे कोन् बात।
इहा–सबारे मुख ढाका दिया राख' हात॥ 279॥
सूर्य येन उदय करि' चाहे लुकाइते।
बुझिते ना पारि तोमार ऐछन चरिते॥ "280॥

अनुवाद—स्तव सुनकर श्रीनिवास ठाकुर महाप्रभुसे परिहाससे कहने लगे,—"आप घरके भीतर तो अपनी भगवत्ताको गोपन रखना चाहते हैं और बाहर आकर इसे सबके सामने प्रकाशित कर रहे हैं। इन्हें किसने यह शिक्षा दी है? वे लोग क्या कह रहे हैं? अब आप इन सबके मुख अपने हाथोंसे ढककर बन्द कर दीजिये। सूर्य जैसे उदित होकर स्वयंको छिपाना चाहे, वैसे ही आप अपनेको गोपन रखना चाहते हैं। मैं आपके ऐसे व्यवहारको नहीं समझ पा रहा हूँ॥"278–280॥

महाप्रभुकी लज्जा और श्रीवासको कृत्रिम शिकायत :—

प्रभु कहेन,—"श्रीनिवास, छाड़ विड़म्बना।
सबे मेलि' कर मोर कतेक लाञ्छना॥ "281॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा—"प्रिय श्रीनिवास! कृपा करके इस उपहासको बन्द करो। तुम सब मिलकर मुझे लज्जित कर रहे हो॥"281॥

अमृतप्रवाह भाष्य—किसी-किसी पाठमें दूसरी पंक्ति परिवर्तित होकर इस प्रकारसे देखी जाती है,—"सेइ सब कर याते आमार यातना" अर्थात् वे सब मुझे पीड़ा दे रहे हैं॥ 281॥

प्रथम अध्यायका अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

महाप्रभुकी कृपा दृष्टि-वर्षणसे लोगोंका उद्धार :—

एत बलि' लोके करि' शुभदृष्टिदान।
अभ्यन्तरे गेला, लोकेर पूर्ण हैल काम॥ 282॥

अनुवाद—यह कहकर महाप्रभुने लोगोंपर अपनी कृपा दृष्टि डाली और वे अपने कक्षमें चले गये। उनकी कृपा दृष्टिमात्रसे सभीकी सब कामनायें पूर्ण हो गयीं॥ 282॥

अनुभाष्य—अन्त्यलीला 9/7-12 संख्या देखें॥ 267–282॥

पाणिहाटीमें श्रीरघुनाथके द्वारा श्रीनित्यानन्द और उनके परिकरोंकी सेवा :—

रघुनाथ-दास नित्यानन्द-पाशे गेला।
चिड़ा-दधि-महोत्सव ताँहाइ करिला॥ 283॥

तत्पश्चात् श्रीनित्यानन्दकी कृपासे रघुनाथदास गोस्वामीका गृहत्याग तथा पुरीमें महाप्रभुके चरणोंमें आगमन और स्वरूप दामोदरके निकट आत्मसमर्पण :—

ताँर आज्ञा लञा गेला प्रभुर चरणे।
प्रभु ताँरे समर्पिला स्वरूपेर स्थाने॥ 284॥

अनुवाद—श्रीरघुनाथदास पाणिहाटीमें श्रीनित्यानन्द प्रभुके पास गये। श्रीनित्यानन्द प्रभुने उनपर कृपा की और उनसे सभी वैष्णवोंके लिये दही-चिड़वा महोत्सव करानेकी आज्ञा दी। श्रीनित्यानन्द प्रभुकी आज्ञा लेकर श्रीरघुनाथदास गृह त्यागकर महाप्रभुकी शरणमें गये और महाप्रभुने उन्हें श्रीस्वरूप दामोदरके हाथोंमें सौंप दिया॥ 283–284॥

अनुभाष्य—इस सन्दर्भमें श्रीरघुनाथदास गोस्वामी अपने ग्रन्थ विलाप-कुसुमाञ्जलीमें लिखते हैं—

"यो मां दुस्तरगेहनिर्जलमहाकूपादपारक्लमात् सद्यः
सान्द्रदयाम्बुधिः प्रकृतितः स्वैरी-कृपारज्जुभिः।
उद्धृत्यात्म-सरोजनिन्दिचरणप्रान्तं प्रपाद्य स्वयं
श्रीदामोदरसाच्चकार तमहं चैतन्यचन्द्रं भजे॥"

अर्थात् "मैं उन महाप्रभुके चरणकमलोंका भजन करता हूँ, जिन्होंने अपनी कृपा-रज्जुके द्वारा मेरा गृहरूपी सूखे (अन्धे) कुएँसे उद्धार करके श्रीस्वरूप दामोदरकी शरण प्रदान करके मुझे दिव्यानन्दके समुद्रमें निम्मजित कर दिया है।"

अन्त्यलीला, छठा अध्याय देखें॥ 283–284॥

ब्रह्मानन्द भारतीका चर्मवस्त्र-त्याग :—

ब्रह्मानन्द-भारतीर घुचाइल चर्माम्बर।
एइ मत लीला कैल छय वत्सर॥ 285॥

अनुवाद—महाप्रभुने ब्रह्मानन्द भारतीसे मृगछाला पहननेका अभ्यास छुड़वाया। इस प्रकार उन्होंने छह वर्षोंतक दिव्य लीलाओंका आनन्द लिया॥ **285**॥

अनुभाष्य—मध्यलीला, दसवाँ अध्याय देखें॥ **285**॥

अठारह वर्षोंमें अन्तिम बारह वर्षोंकी
लीलाओंका आगे सूत्ररूपमें वर्णन :—

एइ त' कहिल मध्यलीलार सूत्रगण।
शेष द्वादश वत्सरेर शुन विवरण॥ 286॥

अनुवाद—इस प्रकार मैंने (श्रीकृष्णदास कविराज) सूत्ररूपसे मध्यलीला कही। शेष बारह वर्षोंकी लीलाका विवरण अब सुनो॥ **286**॥

अनुभाष्य—आदिलीलाके 17/312 संख्यामें वर्णित व्यासदेवके आचारका अनुगमन करते हुए लिखित प्रबन्धका अनुवाद, आदि, मध्य और अन्त्य—इन तीन लीलाओंके अन्तिम भागमें लिखा गया है। आदिलीलाको पाँच-आयुभेदसे केवल सूत्ररूपमें लिखकर कुछ लीलाओंका वर्णन करते हुए उल्लेख किया कि इनका श्रीवृन्दावनदासने विस्तृतरूपसे वर्णन किया है। शेषलीला अर्थात् मध्य और अन्त्यलीलाको सूत्ररूपमें इस अध्यायमें लिखकर अन्तिम बारह वर्षोंकी लीलाओंका सूत्ररूपमें वर्णन दूसरे अध्यायमें किया है। इसके बाद क्रमशः मध्य और अन्त्यलीलाका विस्तृत विवरण दिया गया है। इस प्रकार रचनाका उद्देश्य (अन्त्यलीला 1/10)के अनुसार—

"मध्यलीला-मध्ये अन्त्यलीला-सूत्रगण।
पूर्वग्रन्थे संक्षेपेते करियाछि वर्णन॥
आमि जराग्रस्त, निकट जानिया मरण।
अन्त्यलीलार कोन सूत्र करियाछि वर्णन॥"

अर्थात् "मध्यलीलाके बीचमें मैंने अन्त्यलीलाको सूत्ररूपमें वर्णन किया है। मैं अति वृद्ध हो गया हूँ और रोगग्रस्त भी हूँ। मैं किसी समय भी देह त्याग सकता हूँ, इसलिये मैंने अन्त्यलीलाके कुछ भागका मध्यलीलामें वर्णन किया है॥"**286**॥

प्रथम अध्यायका अनुभाष्य समाप्त।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ 287॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते मध्यखण्डे मध्यलीला-सूत्रवर्णनं
नाम प्रथम-परिच्छेदः।

अनुवाद—श्रीरूप-रघुनाथ गोस्वामीके चरणकमलोंकी कृपाभिलाषा करते हुए कृष्णदास इस श्रीचैतन्यचरितामृतका वर्णन कर रहा है॥ **287**॥

श्रीचैतन्यचरितामृत मध्यखण्डमें मध्यलीला-सूत्रवर्णन
नामक पहले अध्यायका अनुवाद समाप्त।

चित्र–2

दूसरा अध्याय

कथासार—इस दूसरे अध्यायमें ग्रन्थकारने महाप्रभुके अन्तिम बारह वर्षोंकी भावास्वादन-लीलाओंका सूत्ररूपमें वर्णन किया है और बीचमें संस्कृत श्लोक उद्धृत करनेके कारण उनकी व्याख्या भी की है। इन गम्भीर भावोंके तत्त्वको लोग आसानीसे समझ नहीं सकते। इस ग्रन्थमें वर्णित श्रीचैतन्य महाप्रभुकी लीलाओंके वर्णनको सुनते-सुनते आसानीसे भावतत्त्व जीवोंके हृदयमें उदित होगा। कविराज गोस्वामीने बहुत वृद्धावस्थामें इस ग्रन्थको लिखा था। उन्हें भय था कि कहीं यह ग्रन्थ अधूरा न रह जाय, इसलिये भक्तोंके उपकारके लिये उन्होंने अन्त्यलीलाके सूत्रोंको इस अध्यायमें संग्रह किया है। कविराज गोस्वामीने कहा है,—श्रीस्वरूप-गोस्वामीका मत ही भजनके सम्बन्धमें प्रधान मत है। श्रीरघुनाथदास गोस्वामीने उनकी कृपासे उनके द्वारा रचित कड़चा कण्ठस्थ कर लिया था। श्रीस्वरूपके अन्तर्धान होनेके बाद श्रीरघुनाथदास गोस्वामी व्रजमें आये। कविराज-गोस्वामी व्रजमें आकर श्रीरूप और श्रीरघुनाथसे मिले और उनकी कृपासे उस कण्ठस्थ कड़चाके तात्पर्यको समझकर इस ग्रन्थकी रचना की।
—(अमृतप्रवाह भाष्य)

महाप्रभुके कृष्ण विरह-प्रलापादिका वर्णन :—

विच्छेदेऽस्मिन् प्रभोरन्त्यलीला-सूत्रानुवर्णने।
गौरस्य कृष्णविच्छेदप्रलापाद्यनुवर्ण्यते॥ 1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महाप्रभुकी अन्त्यलीला सूत्ररूपमें वर्णन करते हुए इस अध्यायमें उनके श्रीकृष्ण-विरह-प्रलाप आदिका वर्णन किया है॥ 1॥

अनुभाष्य—

अस्मिन् विच्छेदे (श्रीचैतन्यचरितामृते मध्यलीलायां द्वितीयपरिच्छेदे) प्रभोः (श्रीचैतन्यदेवस्य) अन्त्यलीलासूत्रानुवर्णने (संन्यासचरित्रसूत्र-प्रतिसंक्रमणे विषये) गौरस्य (गोपीभावाश्रितस्य भगवतो महाप्रभोः) कृष्णविच्छेदप्रलापादिः (निजकान्त-विरहजन्योन्मत्तवाक्यादिः) अनुवर्ण्यते (मया लिख्यते)।

श्लोक-भावानुवाद—श्रीचैतन्यचरितामृतके मध्यलीलाके दूसरे अध्यायमें श्रीचैतन्यदेवके संन्यासचरित्रके विषयमें गोपीभावाश्रित महाप्रभुके निजकान्त विरहजनित उन्मत्त-वाक्यादिको मैं लिख रहा हूँ॥ 1॥

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥ 2॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभुकी जय हो, श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो, श्रीअद्वैतचन्द्रकी जय हो, सभी गौर भक्तोंकी जय हो॥ 2॥

अन्तके बारह वर्षोंमें महाप्रभुका कृष्णविरह :—

शेष ये रहिल प्रभुर द्वादश वत्सर।
कृष्णेर वियोग-स्फूर्त्ति हय निरन्तर॥ 3॥

अनुवाद—अन्तिम बारह वर्षोंमें महाप्रभु निरन्तर श्रीकृष्णका वियोग और वियोगमें उनकी स्फूर्ति अनुभव करते थे॥ 3॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'वियोग'*—विच्छेद, विरह॥ 3॥

उद्धवके दर्शनसे श्रीराधिकाभावमय महाप्रभु :—

श्रीराधिकार चेष्टा येन उद्धव-दर्शने।
एइमत दशा प्रभुर हय रात्रि-दिने॥ 4॥
निरन्तर हय प्रभुर विरह-उन्माद।
भ्रममय चेष्टा सदा, प्रलापमय वाद॥ 5॥

अनुवाद—उद्धवजीके दर्शनसे जैसी श्रीमती राधिकाकी चेष्टाएँ हुईं थी, वैसी ही दशा महाप्रभुकी भी दिन-रात रहती थी। महाप्रभु सब समय श्रीकृष्ण-विरहमें उन्मादित रहते थे, इस कारण उनकी सभी क्रियाएँ भ्रमित व्यक्तिकी भाँति होती थीं और वे प्रलापमय (बाहरसे पागलोंके जैसे, परन्तु वास्तविकतामें नहीं) वाक्य बोलते थे॥ 4-5॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'वाद'*—वाक्य॥ 5॥

अनुभाष्य— *'भ्रममय चेष्टा'*—उद्घूर्णा। *'प्रलापमय वाद'*—चित्रजल्पादि दस प्रकारके प्रलापमय वाक्य॥ 5॥

अमृतानुकणिका—"महाप्रभु सब समय कृष्णके विरहमें उन्मादित रहते थे, उनकी भ्रममय चेष्टाएँ और वाक्य प्रलापमय होते थे।

'भ्रममय चेष्टा'—श्रीकृष्ण मथुरा चले गये हैं, परन्तु श्रीमती राधिका सोच रही हैं कि वे अभी गोचारण करके आयेंगे। अब उनको यह भ्रम हो गया कि श्रीकृष्ण मथुरा नहीं गये हैं, अभी व्रजमें ही हैं। अथवा श्रीकृष्णके मथुरा जानेपर भी वे उस बातको भूल गयीं और उनसे मिलनेके लिये कुञ्जमें जा रही हैं। वहाँपर श्रीकृष्णके लिये सज्जादि सजा रही हैं, थोड़ी देरके बादमें देखती हैं कि श्रीकृष्ण नहीं आये। वे मार्ग देखते-देखते रह गयीं और श्रीकृष्ण नहीं आये, तब वे रोने लगीं। थोड़ी देरमें उन्होंने आकाशकी ओर देखा और वहाँ नील मेघको देखकर उन्हें श्रीकृष्णकी स्फूर्ति हुई। तब उन्हें लगा कि श्रीकृष्ण आ गये हैं और देरीसे आनेपर क्षमा याचना कर रहे हैं। परन्तु राधाजी उस मेघको श्रीकृष्ण समझकर उसको गर्जन-तर्जन करने लगीं। थोड़ी देर बादमें जब देखा कि मेघ अन्तर्धान हो गया, तो अब उनका वह भाव दूर हो गया और अब कलहान्तारिताके रूपमें, कलह करनेके बादमें जब श्रीकृष्ण चले गये, तब उनके लिये रोने लगीं और हाय-हाय करने लगीं।

'कलहान्तारिता नायिका' (उःनीः 5/87)—

"या सखीनां पुरः पादपतितं वल्लभं रुषा।
निरस्य पश्चात्तपति कलहान्तरिता हि सा।
अस्याः प्रलाप-संताप-ग्लानि-निःश्वसितादयः॥"

"जो नायिका सखियोंके सामने अपने चरणोंमें झुके वल्लभको परित्यागकर पीछे अत्यन्त अनुताप अनुभव करती है, उसे कलहान्तरिता कहा जाता है। प्रलाप, सन्ताप, ग्लानि, दीर्घनिःश्वास-त्याग आदि कलहान्तरिता नायिकाओंकी चेष्टाएँ हैं।"

ऐसी चेष्टाएँ ही 'भ्रममय-चेष्टा' कहलाती हैं और इन्हींमें प्रलापमय वाक्य बोले जाते हैं। जो व्यक्ति वहाँ नहीं है, उसको देखकर उससे बातचीत करना और जो बात नहीं है, वही कहना 'प्रलापमयवाद' है।

(उःनीः अनुः प्रः 11/87-88)— *'प्रलापः'* —

व्यर्थालापः प्रलापः स्यात्॥ 87॥
करोति नादं मुरली रली रली
व्रजाङ्गनाहृन्मथनं थनं थनम्।
ततो विदूना भजते जते जते
हरे भवन्तं ललिता लिता लिता॥ 88॥

अर्थात् *'प्रलाप'*—व्यर्थ आलापको प्रलाप कहते हैं। मधुपानसे उन्मत्ता श्रीराधा श्रीकृष्णसे कह रही हैं,—"हे कृष्ण! मैं जानती हूँ कि तुम्हारी मुरली 'रली-रली' व्रजाङ्गनाओंके हृदयको मन्थन 'थन-थन' शब्द प्रकाश करती है और इसीलिए ललिता 'लिता-लिता' दुःखी होकर तुम्हारा भजन 'जन-जन' कर रही है।" यहाँ 'रली-रली, थन-थन, जते-जते, लिता-लिता, जन-जन' आदि शब्द निरर्थक हैं।"—श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी॥ 5॥

महाप्रभुका विप्रलम्भ महाभाव :—

लोमकूपे रक्तोद्गम, दन्त सब हाले।
क्षणे अङ्ग क्षीण हय, क्षणे अङ्ग फूले॥ 6॥

अनुवाद—उनके लोमकूपोंसे रक्त बहता था, उनके दाँत सब ढीले होकर हिलते थे। एक क्षणमें उनका शरीर पतला हो जाता और दूसरे क्षणमें फूलकर मोटा हो जाता था॥ 6॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'हाले'*—हिलने लगे॥ 6॥

गम्भीरा-भितरे रात्रे नाहि निद्रा-लव।
भित्ते मुख-शिर घषे, क्षत हय सब॥ 7॥

अनुवाद—वे 'गम्भीरा' में रहते थे और रातमें एक क्षणके लिये भी उन्हें नींद नहीं आती थी। विरहमें व्याकुल होकर वे अपना मुख और सिर दीवारोंसे घिसते थे, जिससे उनमें घाव हो जाते॥ 7॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'गम्भीरा'*—बरामदेके बाद जो घर होता है, उसके भीतर जो छोटासा कमरा होता है, उसे 'गम्भीरा' कहते हैं॥ 7॥

तिन द्वारे कपाट, प्रभु यायेन बाहिरे।
कभु सिंहद्वारे पड़े, कभु सिन्धुनीरे॥ 8॥

अनुवाद—गम्भीराके तीनों द्वार बन्द कर देनेपर भी वे वहाँसे निकल जाते और कभी श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरके सिंहद्वारपर पड़े मिलते और कभी समुद्रके जलमें कूद पड़ते॥ 8॥

महाप्रभुको चिन्मय व्रजलीलाका उद्दीपन :—

चटक-पर्वत देखि' 'गोवर्धन'-भ्रमे।
धाञा चले आर्त्तनाद करिया क्रन्दने॥ 9॥

उपवनोद्यान देखि' वृन्दावन-ज्ञान।
ताँहा याइ' नाचे, गाय, क्षणे मूर्च्छा या'न॥ 10॥

अनुवाद—चटक पर्वतको देखकर उन्हें गोवर्धनका भ्रम हो जाता, वे रोते और आर्त्तनाद करते हुए उसकी ओर दौड़ पड़ते। पुरीमें उपवन-उद्यानोंको देखकर उन्हें वृन्दावनकी स्फूर्ति होती, वे वहाँ जाकर नाचते-गाते और कभी उन्मादमें मूर्च्छित होकर गिर पड़ते॥ 9-10॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'चटकपर्वत'*—समुद्र तटपर जो बालूका पहाड़ होता है, उसे 'चटकपर्वत' कहते हैं। गुण्डिचा मन्दिर और समुद्रके बीच एक बड़ा चटकपर्वत है, अनेक बार उसे देखकर महाप्रभु 'गोवर्धन'के भ्रमसे वहाँ दौड़ते हुए जाते थे॥ 9॥

अनुभाष्य— *'भ्रमे'*—भ्रमसे॥ 9॥

श्रीकृष्ण विरहसे उत्पन्न अपूर्व महाभाव-विकार :—

काँहा नाहि शुनि येइ भावेर विकार।
सेइ भाव हय प्रभुर शरीरे प्रचार॥ 11॥

हस्तपादेर सन्धि सब वितस्ति-प्रमाणे।
सन्धि छाड़ि' भिन्न हये, चर्म रहे स्थाने॥ 12॥

हस्त, पाद, शिर, सब शरीर-भितरे।
प्रविष्ट हय—कूर्मरूप देखिये प्रभुरे॥ 13॥

अनुवाद—महाप्रभुके शरीरमें जो भाव प्रकाशित होते थे, वे इस जगत्‌में कहीं सुने भी नहीं जाते, अर्थात् किसी अन्यके शरीरमें नहीं हो सकते। कभी उनके हाथ-पाँवकी अस्थियोंके जोड़ खुलकर वितस्ति (हथेली फैलाकर अंगूठेके कोनेसे छोटी अंगुलीके कोने तक) जितने लम्बे हो जाते, केवल त्वचाके कारण ही वे अस्थियाँ शरीरमें टिकी रहतीं। कभी महाप्रभुके हाथ-पाँव-सिर उनके शरीरके भीतर चले जाते और उनका शरीर कछुवे जैसा हो जाता॥ 11-13॥

अनुभाष्य— *'प्रचार'*—प्रकाशित। जोड़ोंमें जुड़ी हुई अस्थियाँ अलग होकर केवल त्वचाका ही अस्तित्व दिखायी देता। सन्धि-स्थल तब फैली हुई हथेली जितने लम्बे हो जाते॥ 11-12॥

एइ मत अद्भुत-भाव शरीरे प्रकाश।
मनेते शून्यता, वाक्ये हाहा-हुताश॥ 14॥

अनुवाद—इस प्रकार महाप्रभुके शरीरमें अद्भुत सात्त्विक भावोंका प्रकाश होता। श्रीकृष्णविरहमें उनके मनमें शून्यता अर्थात् जगत् उन्हें शून्य प्रतीत होता और जो वचन वे बोलते उसमें निराशा ही होती॥ 14॥

कृष्णविरहमें महाप्रभुका करुण विलाप :—

"काँहा मोर प्राणनाथ मुरलीवदन।
काँहा करों, काँहा पाङ व्रजेन्द्रनन्दन॥ 15॥

काहारे कहिब, केबा जाने मोर दुःख।
व्रजेन्द्रनन्दन बिना फाटे मोर बुक॥"16॥

एइमत विलाप करे विह्वल अन्तर।
रायेर नाटक-श्लोक पड़े निरन्तर॥17॥

अनुवाद—महाप्रभुका करुण विलाप,—"हाय! मुरली वादन करते हुए मेरे प्राणनाथ कहाँ हैं? क्या करूँ? कहाँ जाऊँ, कहाँ जानेसे मेरे प्राणनाथ व्रजेन्द्रनन्दन मिलेंगे? किससे मनका दुःख कहूँ? कौन मेरे दुःखको समझ सकता है? व्रजेन्द्रनन्दनके बिना मेरा हृदय फटा जा रहा है।" इस प्रकार महाप्रभु श्रीकृष्णविरहमें विह्वल होकर विलाप करते और श्रीराय रामानन्दके 'जगन्नाथ-वल्लभ' नाटकके इस श्लोकका सदा उच्चारण करते॥15-17॥

जगन्नाथवल्लभ नाटक (3/9)—

प्रेमच्छेदरुजोऽवगच्छति हरिर्नायं न च प्रेम वा
स्थानास्थानमवैति नापि मदनो जानाति नो दुर्बलाः।
अन्यो वेद न चान्यदुःखमखिलं नो जीवनं वाश्रवं
द्वित्रीण्येव दिनानि यौवनमिदं हाहा विधेः का गतिः॥18॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥18॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हमारे कृष्ण प्रेमके द्वारा दिये गये आघातजनित रोगको अनुभव नहीं करते। प्रेमकी बात ही क्या कहूँ, वह तो स्थान-अस्थानको (कहाँ करना है और कहाँ नहीं करना है, इसको) न जानकर आघात करता है। मदनकी तो बात क्या है, क्योंकि वह यह भी नहीं समझता है कि हम अति दुर्बल हैं। हम किसे क्या कहें, कोई हमारे इन सब दुःखोंको नहीं समझ सकता। हमारा जीवन हमारे वशमें नहीं है; यौवन तो दो-तीन दिनके समान थोड़े समयका है। हाय! इस अवस्थामें हे विधाता! हमारी क्या गति होगी? पाठान्तरमें—'विधे'॥18॥

अनुभाष्य—

अयं हरिः (कृष्णः) अस्मान् प्रेमच्छेदरुजः (प्रेमच्छेदेन तस्य प्रेमभङ्गेन याः रुजः ताः विच्छेदरोगार्त्ताः गोपी) न अवगच्छति (जानाति); प्रेम वा स्थानास्थानां (सदसत्-पात्रापात्रं) न अवैति (जानाति); मदनः अपि नः (अस्मान्) दुर्बलाः (परवश्याः अबलाः) न जानाति। अन्यः जनः अन्यदुःखं (अपरजनक्लेशं) न वेद (जानाति)। नः (अस्माकं) जीवनम् आश्रवं (क्लेशमात्रं परवश्यं वा)। इदं यौवनं द्वित्रीण्येव दिनानि! हा हा विधेः (विधातुः) का गतिः (कीदृशी गतिः, अस्माभिर्दुर्बोध्येति भावः)।

श्लोक-भावानुवाद—(राधाजी शोकमें विह्वल होकर कहती हैं)—प्रेमके विच्छेदसे जो वेदना हमें हो रही है, उसे कृष्ण नहीं जानते। प्रेम पात्र या अपात्र नहीं देखता है। और न ही मदन (कामदेव) यह जानता है कि हम अति दुर्बल हैं [हम उसके वारको झेल नहीं पायेंगी, फिर भी वह हमपर निरन्तर वार कर रहा है]। कोई किसीके दुःखको नहीं समझ सकता। हमारा जीवन तो क्लेशमात्र और दूसरेके वशमें है। यह यौवन भी तो दो-तीन दिनकी भाँति अल्प समयका है। हा! हा! हे विधाता! ऐसेमें हमारी क्या गति होगी? (हमारे लिये यह जानना अति कठिन है—यह भाव है)॥18॥

अत्यन्त विरहके कारण श्रीकृष्णके प्रति दोषोद्गार :—

"उपजिल प्रेमाङ्कुर, भाङ्गिल ये दुःख-पूर,
कृष्ण ताहा नाहि करे पान।
बाहिरे नागरराज, भितरे शठेर काज,
परनारी वधे सावधान॥19॥

अपने भाग्यको धिक्कार :—

सखि हे, ना बुझिये विधिर विधान।
सुख लागि' कैलुँ प्रीति, हैल विपरीत गति,
एबे याय, ना रहे पराण॥20॥ ध्रु॥

प्रेमके प्रति दोषारोपण :—

कुटिल प्रेमा अगेयान, नाहि जाने स्थानास्थान,
भाल-मन्द नारे विचारिते।
क्रूर शठेर गुणडोरे, हाते-गले बान्धि' मोरे,
राखियाछे, नारि' उकाशिते॥21॥

कृष्णकामनाके प्रति दोषोद्गार :—

ये मदन तनुहीन, परद्रोहे परवीण,
पाँच बाण सन्धे अनुक्षण।

अबलार शरीरे, बिन्धि' कैल जरजरे,
दुःख देय, ना लये जीवन॥ 22॥

परमप्रेष्ठ-सखियोंके प्रति भी दोषारोपण :—

अन्येर ये दुःख मने, अन्ये ताहा नाहि जाने,
सत्य एइ शास्त्रेर विचार।
अन्य जन काँहा लिखि, ना जानये प्राणसखी,
याते कहे धैर्य धरिबार॥ 23॥

आयुके अल्प होनेके कारण विलम्ब या प्रतीक्षासे हताशभाव :—

'कृष्ण—कृपा-पारावार, कभु करिबेन अङ्गीकार',
सखि, तोर ए व्यर्थ वचन।
जीवेर जीवन चञ्चल, येन पद्मपत्रेर जल,
तत दिन जीवे कोन् जन॥ 24॥
शत वत्सर पर्यन्त, जीवेर जीवन अन्त,
एइ वाक्य कह ना विचारि'।
नारीर यौवन-धन, यारे कृष्ण करे मन,
से यौवन—दिन दुइ चारि॥ 25॥

अग्नि और पतङ्गके साथ कृष्ण और अपनी तुलना :—

अग्नि यैछे निज-धाम, देखाइया अभिराम,
पतङ्गीरे आकर्षिया मारे।
कृष्ण ऐछे निज-गुण, देखाइया हरे मन,
पाछे दुःख-समुद्रेते डारे॥"26॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 19-26॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीमती राधिका कह रही हैं,—"अहो! दुःखकी बात क्या कहूँ? कृष्णमिलनसे हमारा प्रेमाङ्कुर उत्पन्न हुआ; अब कृष्ण विच्छेदसे उस प्रेमाङ्कुरको आघात लगा और अब वह दुःखके प्रवाहमें बह रहा है। इस रोगके कृष्ण ही एकमात्र चिकित्सक हैं, किन्तु कृष्ण उस प्रेमाङ्कुरकी रक्षा करनेके लिये कोई यत्न नहीं कर रहे हैं। कृष्णके व्यवहारके बारेमें क्या कहूँ!—वे बाहरसे तो नागरराज (प्रेम व्यवहारमें चतुर) हैं, परन्तु भीतरमें शठता (धूर्तता)से परिपूर्ण हैं और परनारी-वधमें बहुत कुशल हैं। कृष्णके साथ प्रीति करनेसे ऐसा फल! हे सखी! इस विधिके विधानको न बूझकर मैंने सुखके लिये प्रीति की, किन्तु इस दुःखियारीको उसका विपरीत होकर महादुःख मिला। अब तो स्थिति यह है कि प्राण अब जायेंगे या तब जायेंगे। हमारे कृष्ण तो ऐसे हैं, और 'प्रेम' नामक जो एक तत्त्व है, उसके विषयमें क्या कहूँ? प्रेम तो स्वभावसे कुटिल और अज्ञानी (अन्धा) है। उसने उचित या अनुचित स्थान न जानकर और उस मन्दबुद्धिने फल या कुफलका विचार न करके कृष्णरूप क्रूर शठकी गुण-रस्सीसे मेरे हाथ-गलेको बाँधकर रख दिया है, मैं उससे अपनेको छुड़ा नहीं पा रही हूँ! कृष्ण और प्रेम—इन दोनोंका यही कार्य है। इस प्रीतिकार्यमें 'मदन' नामक एक और तत्त्व है। उसके गुण ये हैं,—वह स्वयं तो देहरहित है, परन्तु दूसरोंको सतानेमें बहुत प्रवीण है। पाँच बाण सन्धान करके अबलाओंके शरीरको बींधकर जर्जरित कर देता है। यदि वह एक बारमें वध करके प्राण ले लेता, तो अच्छा होता, परन्तु वह ऐसा न करके केवल दुःख ही देता है। शास्त्रोंमें कहा है कि एक व्यक्तिका दुःख अन्य कोई नहीं जान सकता। इस सम्बन्धमें औरोंकी बात क्या कहूँ, मेरी ललितादि सभी प्राणसखियाँ भी मेरे दुःखको समझ नहीं पातीं और 'हे सखी, धैर्य रखो' ऐसा बार-बार कहती हैं। हे सखी! तुम यह कहती हो,—'कृष्ण कृपाके समुद्र हैं, वे कभी-न-कभी तुम्हें अङ्गीकार करेंगे',—किन्तु तुम्हारे ये शब्द कभी सत्य नहीं होंगे; क्योंकि कमलके पत्तेपर जलकी बूँदके समान जीवका जीवन चञ्चल है। कृष्णकृपा जिस समय होगी, उस समय तक क्या मैं जीवित रहूँगी? मनुष्यकी आयु तो सौ वर्षसे अधिक नहीं है। और विचार करके देखो, कृष्ण-चित्तहारी रमणीका यौवनधन तो बहुत अल्प समयके लिये ही है। यदि तुम कहो,—कृष्ण तो गुणोंके सागर हैं, वे अवश्य ही कृपा करेंगे, इसलिये कहती हूँ कि अग्नि जिस प्रकार अपना प्रकाश दिखाकर

पतङ्गको आकर्षित करके उसे मार देती है, कृष्णके गुण भी उसी प्रकार हैं। वे पहले गुणोंकी चकाचौंधसे नारियोंके मनको आकर्षण करके फिर उन्हें विरहरूप दुःख-समुद्रमें डुबो देते हैं॥"19-26॥

अनुभाष्य— *'अगेयान'*—अज्ञान, अज्ञेय। *'उकाशिते'*—मुक्त करना। *'तनुहीन'*—अनङ्ग (देहरहित)॥21-22॥

एतेक विलाप करि', विषादे श्रीगौरहरि,
उघाड़िया दुःखेर कपाट।
भावेर तरङ्ग-बले, नानारूप मन चले,
आर एक श्लोक कैल पाठ॥27॥

अनुवाद—इस प्रकार विषादमें विलाप करते हुए महाप्रभुने अपने हृदयके कपाट खोलकर अपने भावोंको प्रकाशित किया। भावोंकी तरङ्गोंमें बहते हुए उनका मन इधर-उधर चलने लगा और उन्होंने एक और श्लोकका पाठ किया॥27॥

अनुभाष्य— *'उघाड़िया'*—उद्घाटन किया (दिखलाया)॥27॥

गूढ़ कृष्णप्रीति-सूचक निर्वेदमय गान :—
गोस्वामि-पादोक्त-श्लोक—

श्रीकृष्णरूपादिनिषेवणं बिना
व्यर्थानि मेऽहान्यखिलेन्द्रियाण्यलम्।
पाषाणशुष्केन्धनभारकाण्यहो
विभर्मि वा तानि कथं हतत्रपः॥28॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥28॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे सखि! श्रीकृष्णके रूप-गुण-लीला सेवन न करके मेरी समस्त इन्द्रियाँ (और सभी दिन) व्यर्थ हो रहे हैं, अब मैं उन सब पाषाण (पत्थर) और सूखी-लकड़ीके समान इन्द्रियोंको निर्ल्लज होकर धारण करनेमें कैसे सक्षम होऊँगी?॥28॥

अनुभाष्य—

श्रीकृष्णरूपादिनिषेवणं (श्रीकृष्णरूपगुणलीलानां निषेवणं शुश्रुषादिकं) बिना मे (मम) अहानि (दिनानि जीवितकालानि) अखिलेन्द्रियाणि (सर्वहृषीकाणि भोग्याङ्गविग्रहाणि च) अलं व्यर्थानि (विफलप्रदानि भवन्ति)। अहो, पाषाणशुष्केन्धनभारकाणि (पाषाण-शुष्ककाष्ठतुल्यो भारो येषां तानि इन्द्रियाणि) कथं वा विभर्मि (धारयामि)? अहं हतत्रपः (निर्लज्जः), [अतः कृष्णभोगरहिते जीवितविग्रहे मम स्पृहा वर्त्तते]।

श्लोक-भावानुवाद—श्रीकृष्णके रूप-गुण-लीलाकी सेवाके बिना मेरा जीवनकाल और समस्त इन्द्रियाँ विफल हो रही हैं। अहो! पाषाण-शुष्ककाठके तुल्य भारके समान इन्द्रियोंको मैं कैसे धारण करूँगी? मैं निर्लज्ज हूँ [इसलिये श्रीकृष्णसेवाके बिना जीवित रहनेकी स्पृहा (कामना) मुझमें है]॥28॥

(1) भोगरत चक्षुकी व्यर्थता :—

"वंशीगानामृत-धाम, लावण्यामृत-जन्मस्थान,
ये ना देखे से चाँदवदन।
से नयने किवा काज, पडुक् तार मुण्डे बाज,
से नयन रहे कि कारण॥29॥

अनुवाद—"वे आँखें किस कामकी यदि उनसे श्रीकृष्णके मुखचन्द्रका दर्शन न किया जाय जो समस्त लावण्यामृतका जन्मस्थान और वंशीके गानामृतका आधार है? उसके सिरपर तो वज्रपात होना चाहिये, उसने ऐसी आँखोंको क्यों धारण किया है?॥29॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीकृष्णका मुखचन्द्र वंशीगानका अमृतधामस्वरूप और लावण्यरूप अमृतका जन्मस्थान-स्वरूप है॥29॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णका मुखचन्द्र वंशीगानरूप अमृतका आश्रय और लावण्यमृतका मूल है। जिस गोपीके नेत्र इस प्रकार परमरमणीय श्रीकृष्णरूपके दर्शनसे वञ्चित हैं, उन नेत्रोंके आश्रय उस गोपीके मस्तकपर वज्रपात होना ही श्रेयस्कर है। वास्तवमें गोपियाँ श्रीकृष्णसे अतिरिक्त कोई भी वस्तु देखकर उसके प्रति वैराग्य दिखलाती हैं अथवा उदासीन रहती हैं, उसमें उनकी कोई रुचि नहीं होती। उनके नयनाभिराम (नयनोंको

आनन्द देनेवाले) सेव्य श्रीकृष्णका मुखचन्द्र ही उनकी नेत्र इन्द्रियोंकी आराध्य वस्तु है। जिसके नेत्रोंका आराध्य श्रीकृष्णका मुखचन्द्र नहीं है, वह नेत्र-धारक या नेत्रोंका आधारस्वरूप सिर वज्रपात होने योग्य ही है। गोपियाँ यह नहीं समझ सकतीं कि श्रीकृष्णके दर्शनके अतिरिक्त नेत्रोंको धारण करनेकी क्या आवश्यकता है?॥ 29॥

सखि हे, शुन, मोर हत विधिबल।
मोर वपु-चित्त-मन, सकल इन्द्रियगण,
कृष्ण बिना सकल विफल॥ 30॥ ध्रु॥

अनुवाद—हे सखि, सुनो! मैंने अपना सौभाग्य गँवा दिया है, अब श्रीकृष्णसेवाके बिना मेरा तन-चित्त-मन और सभी इन्द्रियाँ निष्फल ही हैं॥ 30॥

(2) भोगरत कानोंकी व्यर्थता :—

कृष्णेर मधुर वाणी, अमृतेर तरङ्गिणी,
तार प्रवेश नाहि ये श्रवणे।
काणाकड़ि-छिद्र सम, जानिह से श्रवण,
तार जन्म हैल अकारणे॥ 31॥

अनुवाद—श्रीकृष्णकी मधुर वाणी (अथवा श्रीकृष्ण-सम्बन्धी शब्द) अमृतकी तरङ्गोंके समान है। यदि किसीके कानोंमें यह अमृत नहीं जाता, तो वे कान फूटे हुए शङ्खके समान हैं। ऐसे कानोंका होना व्यर्थ ही है॥ 31॥

(3) भोगरत जिह्वाकी व्यर्थता :—

कृष्णेर अधरामृत, कृष्ण-गुण-चरित,
सुधासार-स्वादु-विनिन्दन।
तार स्वाद ये ना जाने, जन्मिया ना मैल केने,
से रसना भेक-जिह्वा सम॥ 32॥

अनुवाद—श्रीकृष्णका अधरामृत और उनके दिव्य गुण-चरितादिका गानरूप अमृत अन्य सभी प्रकारके अमृतके स्वादको विनिन्दित करते हैं। जिसने इसका आस्वादन नहीं किया है, वह जन्म लेते ही मर क्यों नहीं गया? (अर्थात् उसके जीनेका क्या प्रयोजन है?) उसकी जिह्वा तो मेंढककी जिह्वाके समान है (जो टर्र-टर्र करके मृत्युरूप साँपको अपनी ओर बुलाती है)॥ 32॥

(4) भोगरत नासिकाकी व्यर्थता :—

मृगमद-नीलोत्पल, मिलने ये परिमल,
येइ हरे तार गर्व-मान।
हेन कृष्ण-अङ्ग-गन्ध, यार नाहि से सम्बन्ध,
सेइ नासा भस्त्रार समान॥ 33॥

अनुवाद—कस्तूरी और नीलकमलकी मिलित सुगन्धको भी पराभूत करनेवाली सुगन्ध श्रीकृष्णके समस्त अङ्गोंमें है—जिसकी नासिकाने ऐसी सुगन्धका आस्वादन नहीं किया, वह नासिका तो लोहारकी धौंकनीके समान है॥ 33॥

(5) भोगरत त्वचाकी व्यर्थता :—

कृष्ण-कर-पदतल, कोटिचन्द्र-सुशीतल,
तार स्पर्श येन स्पर्शमणि।
तार स्पर्श नाहि यार, से याउक छारखार,
सेइ वपु लोहा-सम जानि॥ "34॥

अनुवाद—श्रीकृष्णकी हथेली और श्रीचरणोंके तलवे करोड़ों-करोड़ों चन्द्रमाओंसे अधिक शीतलता प्रदान करनेवाले हैं। उनका स्पर्श तो स्पर्शमणिके समान है। जिसने उनका स्पर्श नहीं किया है, उसका जीवन व्यर्थ है और उसका शरीर लोहेके समान है, अर्थात् मायाके त्रिताप भोगनेके योग्य है॥ "34॥

अनुभाष्य—(श्रीमद्भागवत 2/3/17-24)—

"आयुर्हरति वै पुंसामुद्यन्नस्तश्च यन्नसौ।
तस्यर्ते यत्क्षणो नीत उत्तमःश्लोकवार्त्तया॥ 17॥

तरवः किं न जीवन्ति भस्त्राः किं न श्वसन्त्युत।
न खादन्ति न मेहन्ति किं ग्रामे पशवोऽपरे॥ 18॥

श्वविड्वराहोष्ट्र
न यत्कर्णपथोपेतो जातु नाम गदाग्रजः॥ 19॥

बिले बतोरुक्रमविक्रमान् ये न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य।
जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगायगाथाः॥ 20॥

भारः परं पट्टकिरीटजुष्ट-मप्युत्तमाङ्गं न नमेन्मुकुन्दम्।
शावौ करौ नो कुरुतः सपर्यां हरेर्लसत्काञ्चनकङ्कणौ वा॥ 21॥

बर्हायिते ते नयने नराणां लिङ्गानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये।
पादौ नृणां तौ द्रुमजन्मभाजौ क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यौ॥ 22॥

जीवञ्छवो भागवताङ्घ्रिरेणून् न जातु मर्त्योऽभिलभेत यस्तु।
श्रीविष्णुपद्या मनुजस्तुलस्याः श्वसञ्छवो यस्तु न वेद गन्धम्॥ 23॥

तदश्मसारं हृदयं बतेदं यद्गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः।
न विक्रियेताथ यदा विकारो नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः॥ 24॥

अर्थात् "अतः श्रीकृष्ण-कथाओंके श्रवणमें विलम्ब करना उचित नहीं है, क्योंकि सूर्यदेव प्रतिदिन उदित और अस्त होकर मनुष्योंकी हरिकथासे रहित व्यर्थ आयुको हरण कर लेते हैं। जिनका समय केवल उत्तमश्लोक श्रीहरिकी कथाओंमें ही व्यतीत होता है, उनकी ही आयुका वे हरण नहीं कर पाते। श्रीकृष्ण-कथामें क्षणमात्र काल भी व्यतीत होनेपर सम्पूर्ण जीवन सफल हो जाता है। क्या वृक्ष जीवित नहीं रहते हैं? क्या लुहारकी धौंकनी श्वास लेती अथवा छोड़ती नहीं है? क्या गाँवके अन्य पशु आहार अथवा मैथुन नहीं करते? इसलिये जो हरिभजन न कर आहार और निद्रादिमें ही अपना समय बिताते है, वे नराकारमें पशु ही हैं। जिनके कानोंमें कभी भी श्रीकृष्णके नामने प्रवेश नहीं किया, वे मानव कुत्ते, ग्रामके सूअर, ऊँट और गधेके समान पशु कहे गये हैं, अर्थात् ऐसे श्रीकृष्ण-भजनसे हीन मनुष्योंको पशुसे भी अधिक निन्दनीय माना गया है। जो व्यक्ति अपने कानोंसे प्रचुर गुणोंसे युक्त भगवान्के पराक्रमकी कथा नहीं सुनते, उनके दोनों कानोंके छिद्र बिलके समान व्यर्थ ही हैं। जिसकी जिह्वा भगवान्के पराक्रमका कीर्तन नहीं करती, अर्थात् जो जिह्वा अपने पति भगवान् हृषीकेशकी लीलाओंका गुणगान न करके तरह-तरहकी सांसारिक वार्त्ताको ही कहती रहती है, वह असती नारी अथवा वेश्याके समान है। वह मेंढककी जिह्वाके समान केवल टर्र-टर्रका शोर मचाकर कालसर्पके समान मृत्युका ही आह्वान करती है। जो मस्तक भगवान् मुकन्दके श्रीचरणोंमें नहीं झुकता, रेशमी वस्त्रोंसे सुसज्जित और मुकटसे युक्त रहनेपर भी वह उत्तम-अङ्ग रूपी मस्तक संसार सागरके अथाह जलमें प्रवेश करनेवाले व्यक्तिको और भी अधिक शीघ्रतासे उसमें डुबोनेके लिये केवल बोझमात्र ही है। जो हाथ सोनेके कङ्गनोंसे सुशोभित होकर भी श्रीहरिकी सेवामें नियुक्त नहीं होते, वे मृतकके हाथोंके समान हैं। (इसका कारण है कि देव-पितरादि भी इन हाथोंके द्वारा दिये गये जल-पिण्ड आदिको अपवित्र मानकर स्वीकार नहीं करते)। जिन व्यक्तियोंके नेत्र भगवान्के श्रीविग्रह, तीर्थ आदिका दर्शन नहीं करते, वे मोरोंके पंखमें बनी हुई आँखोंके समान व्यर्थ ही हैं। ऐसी निरर्थक आँखोंवाले व्यक्ति अपने कल्याणके मार्गको न देख पानेके कारण संसाररूप काँटोंके क्षेत्रमें ही पड़े रहते हैं। जिन मनुष्योंके पैर श्रीहरिकी लीलाभूमि अथवा तीर्थोंमें नहीं जाते, उनके पैर न चलनेवाले वृक्षोंके समान स्थावर ही हैं। जिस प्रकार वृक्षकी जड़को कुल्हाड़ीके द्वारा काट डाला जाता है, उसी प्रकार यमदूत भी कुल्हाड़ीके द्वारा ऐसे व्यक्तियोंके पैरोंको काट डालते हैं। जिस व्यक्तिने कभी भी भगवद्भक्तोंकी चरणधूलिको भलीभाँति अपने समस्त अङ्गोंमें नहीं लगाया, जीवित रहनेपर भी उस व्यक्तिके अङ्ग प्रेतके समान हैं, क्योंकि वह सदा-सर्वदा साधुओंसे भयभीत रहता है। उसके हाथोंके द्वारा की गयी पूजा-सेवाको भी भगवान् स्वीकार नहीं करते। इसी प्रकार जो मनुष्य भगवान् श्रीविष्णुके श्रीचरणोंमें अर्पित तुलसीकी सुगन्धको लेकर आनन्दित नहीं होता, वह व्यक्ति साँस लेते हुए भी मृत प्राणीके समान ही है। (इस प्रकार एक-एक करके बाह्य अङ्गोंकी निन्दा करके अब आन्तरिक भावोंकी निन्दा करते हुए कह रहे हैं कि) भगवान् श्रीहरिके मङ्गलमय नामोंको ग्रहण

करनेपर भी जिनका हृदय नहीं पिघलता, आँखें आँसुओंसे भर नहीं जातीं, रोम-रोम आनन्दसे पुलकित नहीं हो जाते, हाय! उनका हृदय लोहेके समान अति कठोर है। (ये श्रीनामके प्रति अपराधके भी लक्षण हैं)॥"29–34॥

करि' एत विलापन, प्रभु श्रीशचीनन्दन,
उघाड़िया हृदयेर शोक।
दैन्य-निर्वेद-विषादे, हृदयेर अवसादे,
पुनरपि पड़े एक श्लोक॥35॥

अनुवाद—इस प्रकार विलाप करते हुए महाप्रभुने अपने हृदयके शोकको उजागर कर दिया। हृदयमें उदासीके कारण दैन्य, निर्वेद और विषादग्रस्त होकर उन्होंने एक श्लोक और पढ़ा॥35॥

अनुभाष्य— *'दैन्य'*—(भ:र:सि: द:वि: 4र्थ ल:)—

"दुःखत्रासापराधाद्यैरनोर्जित्यन्तु 'दीनता'।
चाटुकृन्मान्द्यमालिन्यचिन्ताङ्गजड़िमादिकृत्॥"

अर्थात् "दुःख, त्रास और अपराधादिके द्वारा अपनेको अति निकृष्ट माननेको 'दीनता' कहते हैं। दैन्य होनेपर दैन्यमयी याचना, हृदयकी अपटुता (मन्दता), अस्वच्छन्दता (मालिन्य), नाना प्रकारकी भावनायें (चिन्तायें) और अङ्गोंमें जड़ता (निष्क्रियता) होती है।

'निर्वेद'—(भ:र:सि: द:वि: 4र्थ ल:)—

"महार्त्तिविप्रयोगेर्षासद्विवेकादिकल्पितम्।
स्वावमाननमेवात्र 'निर्वेद' इति कथ्यते।
अत्र चिन्ताश्रुवैवर्ण्य-दैन्यनिश्वसितादयः॥"

अर्थात् "अत्यन्त दुःख, विरह, ईर्ष्या, अकर्त्तव्य करनेके लिये अथवा कर्त्तव्यका पालन न करनेके लिये शोकयुक्त अपने अपमानको 'निर्वेद' कहते हैं। इस निर्वेदमें चिन्ता, अश्रु, वैवर्ण्य, दैन्य और निःश्वासादि अनुभाव प्रकाशित होते हैं।

'विषाद'—(भ:र:सि: द:वि: 4र्थ ल:)—

"इष्टानवाप्तिप्रारब्धकार्यासिद्धिविपत्तितः।
अपराधादितोऽपि स्यादनुतापो विषण्णता॥
अत्रोपायसहायानुसन्धिश्चिन्ता च रोदनम्।
विलापश्वासवैवर्ण्यमुखशोषादयोऽपि च॥"

अर्थात् "इष्ट-वस्तुके प्राप्त न होनेसे, सङ्कलित प्रारब्ध कार्यमें असिद्धि, विपत्ति एवं अपराधादि होनेसे जो अनुताप होता है, उसे 'विषाद' कहते हैं। इस विषादमें उपाय एवं सहायकको ढूँढ़ना, चिन्ता, रोदन, विलाप, श्वास, वैवर्ण्य और मुखका सूखना आदि लक्षण होते हैं।

दैन्य, निर्वेद एवं विषादादि तैंतीस व्यभिचारी भाव स्थायीभावके ऊपर विशेष प्रधानता लाभ करके विचरण करते हैं। वाक्य, क्रन्दनादि अङ्ग और सत्त्वसे उत्पन्न अनुभावोंके द्वारा सूचित होनेपर इन्हें व्यभिचारी भाव कहा जाता है। ये भावोंकी गतिको सञ्चार करते हैं, इसलिये व्यभिचारी-भावको 'सञ्चारी-भाव' भी कहते हैं॥35॥

अमृतानुकणिका—" *'उघाड़िया हृदयेर शोक'*—जिन भावोंको अपनी माँको नहीं कहा जा सकता, पिताको नहीं कहा जा सकता, अन्य किसीको नहीं कहा जा सकता, किन्तु उन्हें अपने अन्तरङ्ग सखा या सखीको कहा जा सकता है। राधाजी अपने भावोंको निःसङ्कोच बिना छिपाये ही ललिता-विशाखाको बताती हैं, क्योंकि ललिता-विशाखा उनकी अपनी अन्तरङ्ग सखियाँ हैं। राधाजी ललिता, विशाखाको अपने भावोंको उघाड़कर कह रही हैं,—'कृष्ण हमें छोड़कर मथुरा चले गये हैं। उन्होंने कहा था कि मैं अति शीघ्र लौट आऊँगा, परन्तु वे अभी तक नहीं आये। यदि वे प्रेम करना छोड़ देते हैं, तो हम क्यों नहीं उनसे प्रेम करना छोड़ देती?' श्रीकृष्ण विरहमें राधाजीके जो भाव हृदयमें उठ रहे हैं, वही कह रही हैं,—'ऐसा धूर्त हमने जगत्में नहीं देखा, यदि ऐसा जानती, तो उनसे प्रेम नहीं करती। ऐसा सखा भी हमने नहीं देखा, ये (कृष्ण) तो भ्रमरके समान हैं, जैसे भ्रमर फूलोंका रस लेकर वहाँसे चल देते हैं, वैसे ही ये भी हैं। हमें त्यागकर अब ये मथुराकी रमणियोंके साथ विहार कर रहे हैं। इन्हें हम

लोगोंके सुख-दुःखसे क्या प्रयोजन?' महाप्रभुमें तदात्मभावका आवेश है अर्थात् राधाजीके भाव उनके हृदयमें है। उस समय राधाजीके भावोंके आवेशमें वे श्रीस्वरूप दामोदरको ललिताके रूपमें और श्रीरायरामानन्दको विशाखाके रूपमें देखते हैं। जो उस भावावेशमें तमाल वृक्षको कृष्ण देख सकते हैं, किसी पहाड़को गोवर्धन देख सकते हैं, नदीमात्र या समुद्रको यमुना देख सकते हैं, उनके लिये स्वरूप दामोदरको ललिताके रूपमें और श्रीराय रामानन्दको विशाखाके रूपमें देखना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। महाप्रभु श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीराय रामानन्दको वैसे ही अपने हृदयके भावोंको उघाड़कर कह रहे हैं।"—श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी॥ 35॥

श्रीजगन्नाथवल्लभ-नाटक (3/11) :—

यदा यातो दैवान्मधुरिपुरसौ लोचनपथं
तदास्माकं चेतो मदनहतकेनाहृतमभूत्।
पुनर्यस्मिन्नेष क्षणमपि दृशोरेति पदवीं
विधास्यामस्तस्मिन्नखिलघटिका रत्नखचिताः॥ 36॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 36॥

अमृतप्रवाह भाष्य—मेरे भाग्यसे श्रीकृष्ण-रूपका मेरे नयनोंके द्वारा दर्शन होनेपर मेरा चित्त दर्शन-सौभाग्यके अभिमानके द्वारा घायल होनेपर 'आनन्द' नामक किसी तत्त्वके द्वारा अपहरण कर लिया गया, इसलिये मैं मन भरकर उस रूप-सौन्दर्यको नहीं देख पायी। और यदि जब पुनः वह कृष्णस्वरूप देख पाऊँगी, तब उस समयको (उस क्षणको, उस पलको) बहुत रत्नोंसे अलङ्कृत करूँगी॥ 36॥

अनुभाष्य—

यदा (यस्मिन् काले स्वप्ने वा) असौ मधुरिपुः (मधुसूदनः) दैवात् (मम भाग्येन) लोचनपथं (दृग्गोचरं) यातः (प्राप्तः) तदा मदनहतकेन (मदयति हर्षयति इति मदनः एवः हतकः शत्रुर्यस्य तेन वैरिणा मदनेन) अस्माकं चेतः (मनः) आहतं (चोरितम्) अभूत्। पुनः यस्मिन् (क्षणे) एषः (कृष्णः) दृशोः (नेत्रयोः) पदवीं (मार्गं) एति (याति प्राप्नोतीत्यर्थः) [तस्मिन् काले] अखिलघटिकाः (मुहूर्त्तघटीपलविपलादिकाः) रत्नखचिताः विधास्यामः (माल्य-चन्दनमणिमुक्तादिना समलङ्कुर्मः)।

श्लोक-भावानुवाद—जिस समय या स्वप्नमें वे मधुसूदन मेरे भाग्यसे मेरे दृष्टिगोचर हुए, तभी आनन्द नामक शत्रु (मदन)ने मेरे चित्तको चुरा लिया। पुनः जिस क्षण श्रीकृष्ण मेरे नयनपथपर प्राप्त होंगे, उस कालको (उस मुहूर्त्त-घड़ी-पल-विपलको) माला-चन्दन-मणि-मुक्तादिसे अलङ्कृत करूँगी॥ 36॥

श्लोकार्थ :—
विरहके कारण श्रीकृष्णके दर्शन या
मिलनके एक क्षणको भी बहुत आदर :—

"ये काले वा स्वपने, देखिनु वंशीवदने,
सेइकाले आइला दुइ वैरि।
'आनन्द' आर 'मदन', हरि' निल मोर मन,
देखिते ना पाइलुँ नेत्र भरि'॥ 37॥

पुनः यदि कोन क्षण, कराय कृष्ण दरशन,
तबे सेइ घटी-क्षण-पल।
दिया माल्यचन्दन, नाना रत्न-आभरण,
अलङ्कृत करिमु सकल॥"38॥

अनुवाद—दैववशतः जिस समय मैंने साक्षात् अथवा स्वप्नमें वंशीवादन करते हुए श्रीकृष्णको देखा, उसी समय 'आनन्द' और 'मदन', ये दो वैरी आ गये और इन दोनोंने मेरा मन हर लिया, इसलिये मैं मन भरकर उनका दर्शन भी नहीं कर पायी। यदि सौभाग्यवश कोई 'क्षण' मुझे पुनः श्रीकृष्णके दर्शन कराये, तो उस घड़ी-क्षण-पलको मैं माला, चन्दन और नाना प्रकारके रत्नों एवं आभूषणोंसे अलङ्कृत करूँगी॥ 37-38॥

महाप्रभुका 'चित्रजल्प' महाभाव; बाह्यदशामें
महाप्रभुका स्वरूप-रामानन्दके निकट विलाप :—

क्षणे बाह्य हैल मन, आगे देखे दुइ जन,
ताँरे पुछे,—"आमि ना चैतन्य?
स्वप्नप्राय कि देखिनु, किवा आमि प्रलापिनु,
तोमरा किछु शुनियाछ दैन्य?॥ 39॥

कृष्णविरहमें अपने आपको दीन मानना :—

शुन, मोर प्राणेर बान्धव।
नाहि कृष्ण-प्रेमधन, दरिद्र मोर जीवन,
देहेन्द्रिय वृथा मोर सब॥"40॥ ध्रु॥

अनुवाद—तभी महाप्रभुको कुछ कालके लिये बाह्य ज्ञान हुआ, तो उन्होंने सामने दो लोगोंको देखा। तब उनसे पूछने लगे,—"क्या मैं (कृष्ण) चैतन्य नहीं हूँ? मैं क्या स्वप्न देख रहा था? मैंने क्या प्रलाप किया? तुमने क्या मेरा कुछ दैन्य-प्रलाप सुना? हे मेरे बन्धुओं! तुम मुझे प्राणोंसे भी प्रिय हो, इसलिये मेरी बात सुनो। मेरे पास कृष्णप्रेमरूपी धन नहीं है, अतः मैं अति दरिद्र हूँ, मेरा देह और इन्द्रियोंको धारण करना व्यर्थ है॥"39-40॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'आगे देखे दुइ जन'*—महाप्रभुने श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीराय रामानन्दको देखा। उन्हें देखकर थोड़ी देरके लिये महाप्रभुको बाह्य ज्ञान हुआ और वे राधाभिमान छोड़कर पूछने लगे कि क्या मैं वही चैतन्य नहीं हूँ?॥39॥

पुनः कहे,—"हाय हाय, शुन, स्वरूप-रामराय,
एइ मोर हृदय-निश्चय।
शुनि' करह विचार, हय, नय—कह सार",
एत बलि' श्लोक उच्चारय॥41॥

अनुवाद—महाप्रभु पुनः कहने लगे,—"हाय! हाय! सुनो स्वरूप और रामराय, मेरे हृदयकी अन्तरङ्ग बात सुनो और उसपर विचार करके अपना निर्णय दो कि ऐसा है अथवा नहीं।" यह कहकर उन्होंने एक श्लोकका उच्चारण किया॥41॥

श्रीमद्भागवत (10/31/1) टीकामें तोषणी-उद्धृत श्लोक :—

कइअवरहिअं पेम्मं ण हि होइ मानुसे लोत्र।
जइ होइ कस्स विरहो विरहे होन्तम्मि को जीअइ॥42॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥42॥

अमृतप्रवाह भाष्य—यह श्लोक सामान्य लोक प्रचलित संस्कृत भाषा 'प्राकृत'में है। संस्कृतमें यह श्लोक इस प्रकार है—

"कैतव-रहितं प्रेम न हि भवति मानुषे लोके।
यदि भवति कस्य विरहो विरहे सत्यपि को जीवति॥"

अर्थात् "प्रेम कैतवरहित (छलरहित) है और यह मनुष्यलोकमें कभी भी उदित नहीं होता। यदि उदित हो, तब विरह नहीं होता। यदि विरह हो, तब जीवन नहीं रहता॥"42॥

अनुभाष्य—

कइअवरहिअं (कैतवरहितं धर्मार्थकाममोक्षादि-छलधर्मशून्यं) प्रेम्मं (प्रेम) मानुसे लोत्र (मानुषे लोके) ण हि होइ (भवति)। जइ (यदि) कस्स (कस्य) विरहः (प्रेम्णः विच्छेदः भवति), (तदा) विरहे (विच्छेदे) होन्तस्मि (भवत्यपि) को जीअई (जीवति?—न कोऽपीत्यर्थः)।

श्लोक-भावानुवाद—धर्म-अर्थ-काम-मोक्षादि छल-धर्मसे शून्य (श्रीकृष्ण) प्रेम इस मनुष्यलोकमें नहीं होता। यदि ऐसा प्रेम कहीं है, तो वहाँ विरह नहीं हो सकता। यदि ऐसे प्रेममें विरह है, तो फिर कौन जीवित रह सकता है? अर्थात् कोई जीवित नहीं रह सकता—यह अर्थ है॥42॥

श्लोकका अर्थ :—

"अकैतव कृष्णप्रेम, येन जाम्बुनद-हेम,
सेइ प्रेमा नृलोके ना हय।
यदि हय तार योग, ना हय तबे वियोग,
विरह हैले केह ना जीयय॥"43॥

अनुवाद—"जाम्बु-नदीके शुद्ध सोनेके जैसा शुद्ध छलरहित श्रीकृष्णप्रेम इस मनुष्य लोकमें नहीं होता है। यदि वह प्रेम कहीं होता है, तो वहाँ वियोग नहीं हो सकता। यदि वियोग हो, तो कोई जीवित नहीं रह सकता॥"43॥

एत कहि' शचीसुत, श्लोक पड़े अद्भुत,
शुने दुँहे एक मन हञा।
"आपन–हृदय–काज, कहिते वासिये लाज,
तबु कहि लाजबीज खाञा॥"44॥

अनुवाद—यह कहकर शचीनन्दन गौरहरिने एक और अद्भुत श्लोक पढ़ा जिसे श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीराय रामानन्दने एकाग्रचित्तसे सुना। महाप्रभु कहने लगे,—"अपने हृदयकी गोपनीय बात कहनेमें लज्जा आती है, किन्तु उस लज्जाके बीजको खाकर अर्थात् औपचारिकता त्यागकर मैं कहता हूँ॥"44॥

अनुभाष्य—*'लाजबीज खाञा'*—लज्जाके शीशको खाकर॥44॥

श्रीमहाप्रभुके द्वारा उक्त श्लोक :—

न प्रेमगन्धोऽस्ति दरापि मे हरौ
क्रन्दामि सौभाग्यभरं प्रकाशितुम्।
वंशीविलास्याननलोकनं बिना
विभर्मि यत् प्राणपतङ्गकान् वृथा॥45॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥45॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे सखि! कृष्णके लिये मेरे हृदयमें प्रेमकी लेशमात्र गन्ध भी नहीं है। तब मैं जो क्रन्दन करती हूँ, वह केवल अपने परम–सौभाग्यका प्रकाश करनेके लिये ही करती हूँ। वंशीवदन कृष्णके दर्शनके बिना मैं जो प्राणपतङ्ग धारण करती हूँ, वह व्यर्थ ही है॥45॥

अनुभाष्य—

मे (मम) हरौ (भगवति कृष्णे) दरापि (ईषदपि) प्रेमगन्धः (प्रेमाभास) न अस्ति, [तथापि] सौभाग्यभरं (मम प्रेमास्ति इति सौभाग्यातिशयं) प्रकाशितुं क्रन्दामि (आनन्द–नीरं क्षिपामि)। वंशीविलास्याननलोकनं (मुरलीनिनाद–पर–कृष्णमुख–शोभानिरीक्षणं) बिना यत् प्राणपतङ्गकान् (यानि क्षुद्रपतङ्गतुल्यप्राणान्) विभर्मि (धारयामि), [तानि] वृथा एव।

श्लोक–भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥45॥

श्लोकार्थ :—

"दूरे शुद्धप्रेमबन्ध, कपट प्रेमेर गन्ध,
सेइ मोर कृष्णे नाहि पाय।
तबे ये करि क्रन्दन, स्वसौभाग्य प्रख्यापन,
करि, इहा जानिह निश्चय॥46॥

याते वंशीध्वनि–सुख, ना देखि से चाँदमुख,
यद्यपि नाहिक 'आलम्बन'।
निज–देहे करि प्रीति, केवल कामेर रीति,
प्राण–कीटेर करिये धारण॥47॥

अनुवाद—शुद्ध कृष्णप्रेमकी गन्ध तो मुझसे बहुत दूर है, मेरा प्रेमका प्रदर्शन तो कपटता मात्र है। मेरी कपटताके कारण मैं कृष्णको प्राप्त नहीं कर पाती। तब ऐसा तुम निश्चित जानना कि मैं जो क्रन्दन करती हूँ, वह केवल अपने सौभाग्यको प्रदर्शित करनेके लिये ही है। मैं वंशीवादन करते हुए कृष्णके मुखचन्द्रका दर्शन नहीं कर रही हूँ और न ही उनकी वंशीध्वनि सुननेका आनन्द प्राप्त कर रही हूँ। यद्यपि उनसे मिलनकी कोई सम्भावना भी नहीं है, तो भी मैं अपनी देहसे प्रीति करते हुए उसका पालन कर रही हूँ अर्थात् केवल स्वसुखकी कामना करती हूँ। यह प्रेमकी नहीं, कामकी रीति है; व्यर्थ ही मैं कीटके समान प्राणको धारण कर रही हूँ॥46–47॥

अनुभाष्य—सेव्य (श्रीकृष्ण)को 'विषय' और सेवक (भक्त)को 'आश्रय' कहते हैं, विषय और आश्रयके एक साथ मिलनको 'आलम्बन' कहते हैं। यहाँ आश्रयके श्रवण और विषयकी वंशीध्वनिका प्रसङ्ग है; परन्तु विषयके चन्द्रमुखके दर्शनमें आग्रहका अभाव आश्रयका आलम्बन रहित होनेका ज्ञापक है। स्वयंके देहसुखके लिये कामपूर्तिके कारण प्राण धारण करना वृथा ही है।

भ:र:सि:—

"हन्त देहहतकैः किममीभिः पालितैर्विफलपुण्यफलैर्नः।"

अर्थात् "हाय! मेरी पुण्यरहित हत–देहका पालन करनेसे क्या होगा?॥"47॥

कृष्णप्रेमका लक्षण :—

कृष्णप्रेमा सुनिर्मल, येन शुद्धगङ्गाजल,
सेइ प्रेमा—अमृतेर सिन्धु।
निर्मल से–अनुरागे, ना लुकाय अन्य दागे,
शुक्लवस्त्रे यैछे मसीबिन्दु॥ 48॥

शुद्धप्रेम–सुखसिन्धु, पाइ तार एक बिन्दु,
सेइ बिन्दु जगत् डुबाय।
कहिबार योग्य नय, तथापि बाउले कय,
कहिले वा केबा पातियाय॥ "49॥

अनुवाद—कृष्णप्रेम शुद्धगङ्गाजलके समान निर्मल और प्रेमामृतका समुद्र है। यह निर्मल अनुराग किसी दागको नहीं छुपाता, जैसे श्वेत वस्त्रके ऊपर स्याहीका एक बिन्दु भी स्पष्ट दिखायी देता है। शुद्ध कृष्णप्रेम आनन्दका समुद्र है। यदि किसीको उस समुद्रका एक बिन्दु मिल जाता है, तो वह समस्त जगत्को उस बिन्दुमें डूबो सकता है। यद्यपि प्रेमको वाणीके द्वारा प्रकाश करना उचित नहीं है, तथापि एक पागल इसे कहेगा। क्योंकि उसके कहनेपर भी कोई उसका विश्वास नहीं करेगा॥ 48–49॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'पातियाय'*—विश्वास करे॥ 49॥

अनुभाष्य—निर्मल कृष्णप्रेमका अनुराग श्वेत वस्त्रके समान कहा गया है और अनुरागका अभाव काले दागके समान है। जिस स्थानपर अनुरागका अभाव है, वह अनुराग नामक श्वेत–भूमिकाके ऊपर काले दागके जैसे स्पष्ट दिखायी देता है॥ 48॥

कृष्ण प्रेमके परस्पर विरुद्ध लक्षण :—

एइ मत दिने दिने, स्वरूप–रामानन्द–सने,
निज–भाव करेन विदित।
बाहिरे विषज्वाला हय, भितरे आनन्दमय,
कृष्णप्रेमेर अद्भुत चरित॥ 50॥

अनुवाद—इस प्रकार दिन–प्रतिदिन महाप्रभु श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीराय रामानन्दके आगे अपने दिव्य भावोंको प्रकट करते। बाहरसे ऐसा लगता कि महाप्रभु मानो विषकी ज्वालामें जल रहे हैं, परन्तु भीतरसे वे आनन्दका अनुभव करते। कृष्णप्रेमका ऐसा ही अद्भुत चरित (स्वभाव) है॥ 50॥

एइ प्रेमा–आस्वादन, तप्त–इक्षु–चर्वण,
मुख ज्वले, ना याय त्यजन।
सेइ प्रेमा याँर मने, तार विक्रम सेइ जाने,
विषामृते एकत्र मिलन॥ 51॥

अनुवाद—कृष्णप्रेमका आस्वादन गर्म गन्नेके रसके समान है। जो गर्म गन्नेके रसका पान करता है, उसका मुख जलता है, परन्तु वह उसकी मिठासके कारण उसे छोड़ भी नहीं पाता। जिसके हृदयमें कृष्णप्रेम है, वही इसकी महिमाको समझ सकता है। यह तो विष और अमृतका मिश्रण है॥ 51॥

विदग्धमाधव (2/18) :—

पीड़ाभिर्नवकालकूट–कटुतागर्वस्य निर्वासनो
निस्यन्देन मुदां सुधा–मधुरिमाहङ्कारसङ्कोचनः।
प्रेमा सुन्दरि नन्दनन्दनपरो जागर्त्ति यस्यान्तरे
ज्ञायन्ते स्फुटमस्य वक्रमधुरास्तेनैव विक्रान्तयः॥ 52॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 52॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे सुन्दरि! नन्दनन्दन श्रीकृष्ण–सम्बन्धी प्रेम जिसके हृदयमें जाग्रत होता है, उस प्रेमके वक्र (कुटिल अर्थात् कटु) एवं मधुरभावकी समस्त महिमा उस हृदयमें स्पष्ट रूपसे प्रकाशित होती है। वह प्रेम दो रूपसे कार्य करता है,—(1) अपने द्वारा प्रदानकी गयी पीड़ाके द्वारा वह नव–सर्पविषकी कटुताके गर्वको दूर करता है अर्थात् जिससे अधिक कोई नहीं हो सकता, ऐसा दुःख उदय कराता है; और (2) आनन्दके द्वारा अमृतके माधुर्यका जो अहङ्कार है,

उसको भी सङ्कुचित करके परम सुख प्रदान करता है॥ 52॥

अनुभाष्य—पौर्णमासी नान्दीमुखीसे कह रही हैं—

हे सुन्दरि, पीड़ाभिः (यातनाभिः) नवकालकूट-कटुतागर्वस्य (नवकालकूटस्य सुतीव्रविषस्य यः कटुतागर्वः अन्यावज्ञा-रुपोग्रतामयभावः तस्य) निर्वासनः (दूरीकरणशीलः), मुदां निस्यन्देन (क्षरणेन) सुधामधुरिमाहङ्कारसङ्कोचनः (सुधायाः अमृतस्य यः मधुरिमा माधुर्यं तेन यः अहङ्कारः गर्वः तं सङ्कोचयति खर्वीकरोति यः) नन्दनन्दनपरः (कृष्णोद्देशकः) प्रेमा यस्य अन्तरे (हृदये) जागर्त्ति, अस्य (प्रेम्णः) वक्रमधुराः (कुटिलमाधुर्यसमन्विताः) विक्रान्तयः (प्रभावाः) तेन (जनेन) एव स्फुटं (स्पष्टं) ज्ञायन्ते (अनुभूयन्ते)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 52॥

कृष्णदर्शनसे महाप्रभुकी महाभाव-चेष्टा :—

ये काले देखि जगन्नाथ, श्रीराम-सुभद्रा-साथ,
तबे जानि—आइलाम कुरुक्षेत्र।
सफल हैल जीवन, देखिलुँ पद्मलोचन,
जुड़ाइल तनु-मन-नेत्र॥ 53॥

अनुवाद—महाप्रभु जब श्रीजगन्नाथका बलराम और सुभद्राके साथ दर्शन करते, तो उन्हें ऐसा लगता कि वे कुरुक्षेत्रमें आकर श्रीकृष्णका दर्शन कर रहे हैं। वे सोचते कि उनका जीवन सफल हो गया है, क्योंकि कमलनयन श्रीकृष्णके दर्शन करके उनके तन-मन और नेत्र शीतल हो जाते हैं॥ 53॥

गरुड़ेर सन्निधाने, रहि' करे दरशने,
से आनन्देर कि कहिब ब'ले।
गरुड़-स्तम्भेर तले, आछे एक निम्न खाले,
से खाल भरिल अश्रुजले॥ 54॥

अनुवाद—महाप्रभु गरुड़-स्तम्भके निकट खड़े होकर श्रीजगन्नाथजीके दर्शन करते थे और उनको जो आनन्द होता था, उसका वर्णन कैसे करें? गरुड़-स्तम्भके नीचे एक खड्डा था और वह महाप्रभुके आनन्दाश्रुओंसे भर जाता था॥ 54॥

अनुभाष्य—श्रीजगन्नाथ-मन्दिरके सम्मुख जगमोहनके अन्तमें एक स्तम्भ है [इसपर गरुड़जी विराजमान हैं, इसलिये] इसे गरुड़-स्तम्भ कहते हैं। इस स्तम्भके पीछे भागकी भूमिमें एक खड्डा था, वह भगवान् महाप्रभुके प्रेमाश्रुजलसे भर जाता था॥ 54॥

पुनः कृष्णविरहका उद्दीपन :—

ताँहा हैते घरे आसि', माटीर उपरे बसि'
नखे करे पृथिवी लिखन।
"हा-हा काँहा वृन्दावन, काँहा गोपेन्द्रनन्दन,
काँहा सेइ वंशीवदन॥ 55॥

काँहा से त्रिभङ्गठाम, काँहा सेइ वेणुगान,
काँहा सेइ यमुना-पुलिन।
काँहा से रासविलास, काँहा नृत्यगीत-हास,
काँहा प्रभु मदनमोहन॥"56॥

उठिल नाना भावोद्वेग, मने हैल उद्वेग,
क्षणमात्र नारे गोङाइते।
प्रबल विरहानले, धैर्य हैल टलमले,
नाना श्लोक लागिला पड़िते॥ 57॥

अनुवाद—श्रीजगन्नाथ मन्दिरसे महाप्रभु घर लौटकर आते और भूमिपर बैठकर अपने नाखूनोंसे पृथ्वीपर कुछ लिखते। उस समय विषादकी दशामें क्रन्दन करते और कहते,—"हा! हा! कहाँ है वृन्दावन? नन्दनन्दन कृष्ण कहाँ हैं? कहाँ हैं वे वंशीवदन? कहाँ हैं वे त्रिभङ्ग-ललित कृष्ण? कहाँ है उनका मधुर वंशीगान? कहाँ है वह यमुनाका तट? कहाँ है वह रास-विलास? कहाँ है वह नृत्य-गान और हास-परिहास? कहाँ हैं मेरे प्रभु मदनमोहन?" इस प्रकार महाप्रभुके मनमें अनेक भावोंका वेग आता और उनका मन उद्विग्न हो जाता। इनसे वे एक क्षण भी नहीं निकल पाते। प्रबल विरहाग्निमें उनका धैर्य डगमगाने लगा और वे नाना श्लोक पढ़ने लगे॥ 55-57॥

श्रीकृष्णकर्णामृत (41) :—

अमून्यधन्यानि दिनान्तराणि
हरेस्त्वदालोकनमन्तरेण।
अनाथबन्धो करुणैकसिन्धो हा हन्त
हा हन्त कथं नयामि॥ 58॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 58॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे हरि! हे अनाथबन्धु! हे करुणाके एकमात्र सिन्धु! आपके दर्शनके बिना हाय-हाय मैं ये अशुभ दिन-रात कैसे काटूँगा?॥ 58॥

अनुभाष्य—

*हे अनाथबन्धो (अनाथानां विरहविधुराणां गोपीनां बन्धुर्यः एवम्विध) करुणैकसिन्धो (दयैकसमुद्र) [कृष्णादृते माधुर्यप्रेमसम्पत्त्यभावात् कोऽपन्यः गोपीः अनुकम्पयितुं न समर्थ इति भावः] हे हरे (गोपीजनकायमनोवाक्यहारिन्), त्वदालोकनं (भवद्दर्शनम्) अन्तरेण (बिना) हा हन्त! हा हन्त! अधन्यानि (अशुभानि) अमूनि दिनानि * कथं (केन प्रकारेण) [तव सेवां बिना] नयामि (अतिवाहयामि)।*

* दिनान्तराणि—"दिनस्य अहोरात्रस्य अन्तराणि मध्यगतानि क्षणवृन्दानि इति" (सारङ्ग-रङ्गदा)। [अर्थात् दिन और रातमें जो सब क्षण हैं, वे, अथवा करोड़ों कल्पोंके समान जिनका अतिक्रम करना असम्भव है।]

श्लोक-भावानुवाद—हे अनाथबन्धु (विरह-विधुर गोपियोंके बन्धु)! हे करुणैकसिन्धु (अर्थात् कृष्ण द्वारा आदृत माधुर्यप्रेम सम्पत्तिकी स्वामिनी गोपीपर अन्य कोई अनुकम्पा करनेमें समर्थ नहीं है)! हे हरे (गोपियोंके काय-मन-वाक्यको हरण करनेवाले)! तुम्हारे दर्शनके बिना हाय-हाय ये अशुभ दिन किस प्रकार तुम्हारी सेवाके बिना कटेंगे?॥ 58॥

अमृतानुकणिका—श्रीराधाके भावोंमें विभावित महाप्रभुके हृदयमें विरहज्वाला और भी प्रज्ज्वलित हो उठी और एक क्षणकाल भी अनेक दिनोंके समान प्रतीत होने लगा, तब अतिशय खेद और विषादके साथ प्रलाप करने लगे,—'हाय हाय! तुम्हारे दर्शनके बिना ये कोटि कल्पोंके समान क्षण कैसे कटेंगे? यह तुम ही बताओ। तुम्हारे अदर्शनके कारण ये दिन सभी विफल हैं।' इसलिये आगे कहने लगे,—''हे अनाथबन्धो!' अपने पति-पुत्रादिको दुःखप्रद जानकर उन्हें त्याग करनेवाली हम अनाथा गोपियोंके तुम ही एकमात्र बन्धु हो।' यदि श्रीकृष्ण कहें कि तुम अपने पति आदिकी सेवा करते हुए अपने नारी धर्मका पालन करते हुए सुखपूर्वक गृहमें अवस्थानको त्यागकर मुझसे मिलनकी प्रार्थना क्यों कर रही हो? तो इसके उत्तरमें राधाजी कह रही हैं,—''हरे!' हे चित्त-इन्द्रियोंको हरण करनेवाले। तुमने हमारे चित्त और इन्द्रियोंका हरण किया है, इसमें तुम्हारा ही दोष है।' यदि श्रीकृष्ण कहें कि कामिनियोंमें तुम ही चपला नारी हो, तो मैं कैसे अपने धर्मका त्याग करूँ (मैं तो ब्रह्मचारी हूँ)? इसलिये दैन्यसहित राधाजी कह रही हैं,—''हे करुणासिन्धो!' तुम तो करुणाके सिन्धु हो, इसलिये धर्मका भी उल्लङ्घनकर मुझ दीनके प्रति अनुग्रह करो अर्थात् कृपाकर दर्शन दो॥'58॥

कृष्णविरहमें महाप्रभुका विलाप :—

"तोमार दर्शन-बिने, अधन्य ए रात्रि-दिने,
एइ काल ना याय काटन।
तुमि अनाथेर बन्धु, अपार करुणासिन्धु,
कृपा करि' देह दरशन॥"59॥

अनुवाद—"तुम्हारे दर्शन बिना ये अशुभ दिन-रात काटे नहीं कटते। हे कृष्ण! तुम अनाथोंके बन्धु और करुणाके अपार सिन्धु हो। अपने दर्शन देकर इस दीनपर कृपा करो॥"59॥

कृष्णदर्शनके लिये पागल :—

उठिल भाव-चापल, मन हइल चञ्चल,
भावेर गति बुझन ना याय।
अदर्शने पोड़े मन, केमने पाव दरशन,
कृष्ण-ठाञि पुछेन उपाय॥ 60॥

अनुवाद—महाप्रभुके हृदयमें भावोंकी लहरियाँ आने

लगी और उनका मन चञ्चल हो गया। उनके भाव उनको कहाँ ले जायेंगे, यह कोई नहीं समझ सकता। श्रीकृष्णके दर्शन नहीं होनेसे उनका मन जलने लगा। वे श्रीकृष्णसे ही पूछने लगे कि किस उपायसे आपके दर्शन मिलेंगे? ॥ 60 ॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'चापल'*—चापल्य, चपलता ॥ 60 ॥

श्रीकृष्णकर्णामृत (32) बिल्वमङ्गलवाक्य :—

त्वच्छैशवं त्रिभुवनाद्भुतमित्यवेहि
मच्चापलञ्च तव वा मम वाधिगम्यम्।
तत् किं करोमि विरलं मुरलीविलासि
मुग्धं मुखाम्बुजमुदीक्षितुमीक्षणाभ्याम् ॥ 61 ॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें ॥ 61 ॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे वंशीविलासी कृष्ण! तुम्हारा शैशव (कैशोर) माधुर्य त्रिभुवनमें अद्भुत है। मेरे चापल्यको तुम जानते हो और मैं जानती हूँ, इसे और कोई नहीं जानता है। इन दो नेत्रोंके द्वारा निर्जन स्थानमें तुम्हारे मुखकमलके दर्शनके लिये अब मैं क्या करूँ? ॥ 61 ॥

अनुभाष्य—

हे मुरलीविलासि (गोपीचित्तहारिवंशीवादक,) त्वत् (तव) शैशवं मत् (मम) चापलं च त्रिभुवनाद्भुतं (त्रिलोकमध्ये विचित्रं)—तव वा मम वा (आवयोरेव इत्यर्थः) अधिगम्यं (अन्यः कोऽपि न जानाति) विरलं (दुर्लभदर्शनं निर्जने वा) मुग्धं (गोपीमनोहरं) मुखाम्बुजं (वदनकमलं) ईक्षणाभ्यां (नेत्राभ्यां) यथेष्टम् उदीक्षितुम् (अवलोकयितुं) किं करोमि, [तदुपायं कथय]।

श्लोक-भावानुवाद—हे अपनी मधुर वंशीवादनसे गोपियोंके चित्तको हरण करनेवाले! तुम्हारा कैशोर और मेरा चापल्य त्रिभुवनमें अद्भुत हैं। इन्हें मैं और तुम ही जानते हैं, अन्य कोई नहीं। इसलिये अब वह उपाय बताओ जिससे निर्जनमें तुम्हारे गोपीमनोहर मुखकमलका अपने नेत्रोंसे यथेष्ट रूपसे दर्शन कर सकूँ? ॥ 61 ॥

अमृतानुकणिका—श्रीमती राधिका कह रही हैं कि मेरा चापल्य भी तुम्हारे द्वारा उत्पादित होता है, इसलिये तुम इसे जानते हो। और (यह चापल्य) मेरा होनेके कारण मैं भी इसे जानती हूँ। जैसे कोई दूसरेके दुःखको सम्पूर्ण रूपसे नहीं जान सकता, इसी प्रकार मेरे चापल्यको पूर्णरूपसे मेरी सखियाँ भी नहीं जानती हैं। पुनः उद्वेगकी वृद्धि होनेसे राधाजी कहने लगीं कि तुम्हारे मुखकमलको अपने दोनों नेत्रोंके द्वारा मन भरके देखनेके लिये क्या उपाय करूँ? जिससे उसका दर्शन हो, वह उपाय तुम बतलाओ। यदि श्रीकृष्ण कहें कि दर्शन न करनेसे तुम्हारा क्या आता-जाता है? तब उसके उत्तरमें कह रही हैं कि तुम्हारे 'मनोहर' मुखकमलको देखे बिना ये नेत्र धारण करना विफल है। जैसे दानकेलिकौमुदी (श्लोक 55)में—

"भवतु माधवजल्पमशृण्वतोः श्रवणयोरलमश्रवणिर्मम।
तमविलोकयतोरविलोकनिः सखि विलोचनयोश्च किलानयोः ॥"

अर्थात् श्रीराधारानी वृन्दासे कह रही हैं,—"हे सखि! मेरे कानोंने माधवका गुणानुवाद नहीं सुना है, इसलिये इनका बहरा हो जाना ही अच्छा है। मेरे दोनों नेत्रोंने उनका अवलोकन नहीं किया है, इसलिये इनका अन्धा हो जाना ही अच्छा है।"

यदि श्रीकृष्ण कहें कि अभी नहीं देखनेसे क्या होगा? प्रतीक्षा करो, बादमें मेरे दर्शन होंगे। इसके उत्तरमें राधाजी कहती हैं 'विरलं' अर्थात् मैं कुलवधू हूँ, मेरे लिये यह बहुत दुर्लभ है। उसपर भी तुम गोचारणादिके लिये सारा दिन वनमें चले जाते हो, इसलिये तुम्हारे दर्शन अतीव दुर्लभ हैं। अतएव इस समय निर्जन स्थानमें अवसर पाकर भी दर्शनदान नहीं करते हो, तो यह तुम्हारी निष्ठुरता है। अथवा कोई कहे कि उनके समान किसी औरको देखो, तो कह रही हैं 'विरलं' अर्थात् श्रीकृष्ण अतुलनीय हैं। उसका कारण है—'मुरलीविलासि', अर्थात् ऐसा मुरलीवादन करता मुखकमल किसी औरका नहीं है ॥ 61 ॥

श्लोकका अर्थ :—

"तोमार माधुरी-बल, ताते मोर चापल,
एइ दुइ, तुमि आमि जानि।
काँहा करोँ काँहा याङ, काँहा गेले तोमा पाङ,
ताहा मोरे कह त' आपनि॥"62॥

अनुवाद—हे कृष्ण! तुम्हारी माधुरीका बल और कैसे वह मेरे चित्तको चपल बना देती है, इन दोनोंको तुम भी जानते हो और मैं भी जानती हूँ। तुम बताओ कि मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? कहाँ जानेसे तुम मिलोगे?॥62॥

महाभावमें महाप्रभुका दिव्योन्माद :—

नाना-भावेर प्राबल्य, हैल सन्धि-शाबल्य,
भावे-भावे हैल महारण।
औत्सुक्य, चापल्य, दैन्य, रोषामर्ष आदि सैन्य,
प्रेमोन्माद—सबार कारण॥63॥

मत्तगज भावगण, प्रभुर देह—इक्षुवन,
गज-युद्धे वनेर दलन।
प्रभुर हैल दिव्योन्माद, तनुमनेर अवसाद,
भावावेशे करे सम्बोधन॥64॥

अनुवाद—महाप्रभुके हृदयमें नाना भाव प्रबल वेगसे आ रहे हैं; दो भावोंका एक साथ समावेश होनेसे भाव-सन्धि और एक भावको दबाकर दूसरे भावका उदय होनेसे भाव-शाबल्य; इस प्रकार भावोंमें परस्पर महायुद्ध हो रहा है। औत्सुक्य, चापल्य, दैन्य, रोष, अमर्ष आदि भाव इस युद्धमें सैनिक हैं और कृष्णप्रेमका उन्माद ही इन सबका कारण है। महाप्रभुका शरीर गन्नेके खेतके समान था जिसमें मतवाले हाथियोंके समान भाव प्रवेश कर गये। उन हाथियोंमें युद्ध हो गया और उसके कारण वह गन्नेका खेत नष्ट हो गया। महाप्रभुके शरीरमें दिव्योन्माद जाग्रत हो गया और उनके तन-मनमें निराशा छा गयी। भावावेशमें वे कहने लगे॥63–64॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'दिव्योन्माद'*—मोहनभावमें भ्रमके जैसी किसी प्रेमवैचित्र्य-दशाका नाम 'दिव्योन्माद' है॥64॥

अनुभाष्य—*'सन्धि'*—(भ.र.सि. दःविः चतुर्थ लः)—

"सरूपयोर्भिन्नयोर्वा सन्धिः स्याद्भावयोर्युतिः।"
'सरूपसन्धि'—"सन्धिः सरूपयोस्तत्र भिन्नहेतुत्थयोर्मतः।"
'भिन्नरूप सन्धि'—"भिन्नयोर्हेतुनैकेन भिन्नेनाप्युपजातयोः।"

अर्थात् "समानरूप अथवा भिन्नरूप दो भावोंके मिलनको 'सन्धि' कहते हैं। भिन्न-भिन्न कारणोंसे समानरूप दो भावोंके मिलनको 'सरूपसन्धि' और एक कारण या भिन्न कारणसे दो भिन्न भावोंके मिलनको 'भिन्नरूप सन्धि' कहते हैं।" एक कारण या भिन्न कारण-जनित दो भावोंकी सन्धि; हर्ष और शङ्का—दोनोंकी सन्धि, हर्ष और विषादकी सन्धि।

'शाबल्य'—(भ.र.सि. दःविः चतुर्थ लः)—

"शबलत्वं तु भावानां संमर्द्दः स्यात् परस्परम्।"

अर्थात् "समस्त सञ्चारी भावोंके परस्पर युद्धका नाम 'शाबल्य' है। गर्व, विषाद, दैन्य, मति, स्मृति, शङ्का, अमर्ष, त्रास, निर्वेद, धैर्य और औत्सुक्य आदि भावोंके युद्ध होनेपर 'शाबल्य' होता है।"

'औत्सुक्य'—(भ.र.सि. दःविः चतुर्थ लः)—

"कालाक्षमत्वमौत्सुक्यमिष्टेक्षाप्ति-स्पृहादिभिः।
मुखशोष-त्वरा-चिन्ता-निश्वास-स्थिरतादिकृत्॥"

अर्थात् "अभीष्टवस्तुके दर्शनकी इच्छा या अभीष्टप्राप्ति-वासनाके लिये काल विलम्ब सहन न कर सकनेको 'औत्सुक्य' कहते हैं। इसमें मुखका सूखना, व्यस्तता, चिन्ता, दीर्घःश्वास और स्थैर्य आदि लक्षित होते हैं।"

'चापल'—(भ.र.सि. दःविः चतुर्थ लः)—

"रागद्वेषादिभिश्चित्तलाघवं चापलं भवेत्।
तत्राविचारपारुष्यस्वच्छन्दाचरणादयः॥"

अर्थात् "आसक्ति और विरक्तिके द्वारा चित्तकी लघुताको 'चापल' कहते हैं। इसमें अविचार, स्वच्छन्द आचरण और कर्कशवाक्यादि लक्षित होते हैं।"

'रोष'—(भ.र.सि. दःविः चतुर्थ लः)—

"अपराधदुरुक्त्यादिजातं चण्डत्वमुग्रता।
वधबन्धशिरःकम्पभर्त्सनाताड़नादिकृत्॥"

अर्थात् "अपराध और बुरे-वचनजनित क्रोधको 'उग्रता' या 'रोष' कहते हैं। इसमें वध, बन्धन, सिरका काँपना, भर्त्सना और ताड़नादि लक्षण होते हैं।"

'अमर्ष'—(भ.र.सि. दःविः चतुर्थ लः)—

"अधिक्षेपापमानादेः स्यादमर्षोऽसहिष्णुता॥
तत्र स्वेदः शिरःकम्पो विवर्णत्वं विचिन्तनम्।
उपायान्वेषणाक्रोशवैमुख्योत्ताड़नादयः॥"

अर्थात् "व्यङ्ग या तिरस्कार और अपमानादिके लिये असहिष्णुताको 'अमर्ष' कहते हैं। इसमें पसीना आना, सिरका काँपना, विवर्णता (रङ्गहीन या कान्तिहीन होना), चिन्ता, उपायको ढूँढना, आक्रोश, विमुखता और ताड़नादि लक्षण होते हैं॥"63॥

प्रियतम श्रीकृष्णके दर्शनकी आकाङ्क्षा :—
श्रीकृष्णकर्णामृत (40) बिल्वमङ्गल-श्लोक—

हे देव, हे दयित, हे भुवनैकबन्धो,
हे कृष्ण, हे चपल, हे करुणैकसिन्धो।
हे नाथ, हे रमण, हे नयनाभिराम,
हा हा कदा नु भवितासि पदं दृशोर्मे॥65॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥65॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे देव! हे दयित! हे भुवनके एकमात्र बन्धु! हे कृष्ण! हे चपल! हे करुणासिन्धु! हे नाथ! हे रमण! हे नयनोंको आनन्द देनेवाले! आहा! तुम कब मुझे दर्शन दोगे?॥65॥

अनुभाष्य—

हे देव, हे दयित (प्रिय), हे भुवनैकबन्धो (व्रजभूम्येकपालक), हे चपल (स्वेच्छाराम), हे करुणैकसिन्धो, हे रमण (गोपीजनरमण), हे नयनाभिराम (नयनानन्द), हे कृष्ण (गोपवध्वाकर्षक), हा हा मे (मम) दृशोः (नयनयोः) पदं (गोचरं) कदा (कस्मिन्काले) नु (किं) भवितासि?

श्लोक-भावानुवाद—हे देव! हे प्रियतम! हे व्रजके पालनहारे! हे चपल (स्वेच्छासे रमण करनेवाले)! हे करुणाके सिन्धु! हे गोपीजन-रमण! हे नयनानन्द! हे गोपवधु-आकर्षक! हा हा कब मेरे नयनोंके गोचर होओगे?॥65॥

महाप्रभुके दिव्योन्मादका वर्णन :—

उन्मादेर लक्षण, कराय कृष्ण-स्फुरण,
भावावेशे उठे प्रणय-मान।
सोल्लुण्ठ-वचन-रीति, मद, गर्व, व्याज-स्तुति,
कभु निन्दा, कभु वा सम्मान॥66॥

अनुवाद—महाप्रभुमें उन्मादके लक्षण उन्हें श्रीकृष्णकी स्फूर्ति कराते। भावके आवेशमें प्रणय, मान, व्यङ्गात्मक वाक्य, मद, गर्व और परोक्ष-स्तुति आदि प्रेमके विकार और सञ्चारी भाव जाग्रत हो गये। वे कभी कृष्णकी निन्दा करते और कभी सम्मान करते॥66॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'सोल्लुण्ठ'*—स्तुतिवाक्यके द्वारा निन्दा॥66॥

अनुभाष्य—

उन्माद'—(भ.र.सि. दःविः चतुर्थ लः)—

"उन्मादो हृदभ्रमः प्रोढ़ानन्दापद्विरहादिजः।
अत्राट्टहासो नटनं सङ्गीतं व्यर्थचेष्टितम्।
प्रलाप-धावनक्रोश-विपरीत-क्रियादयः॥"

अर्थात् "अत्यन्त आनन्द, विपत्ति एवं विरहादिसे उत्पन्न हृदयके भ्रमको 'उन्माद' कहते हैं। उन्मादमें अट्टहास, नृत्य, सङ्गीत, व्यर्थ-चेष्टा, प्रलाप, भागना, चीत्कार और विपरीत क्रियादि अनुभाव होते हैं।"

'प्रणय'—(भःरःसिः पःविः तृतीय लः)—

"प्राप्तायां सम्भ्रमादीनां योग्यतायामपि स्फुटम्।
तद्गन्धेनाप्यसंस्पृष्टा रतिः प्रणय उच्यते॥"

अर्थात् "जिस रतिमें स्पष्टरूपसे सम्भ्रमादिकी प्राप्तिकी योग्यता रहते हुए भी यदि उसे सम्भ्रम लेशमात्र भी स्पर्श नहीं करता, तो उसे 'प्रणय' कहते हैं।"

'मान'—(उज्ज्वलनीलमणि 14/96)—

"स्नेहस्तूत्कृष्टता-व्याप्त्या माधुर्यं मानयन्नवम्।
यो धारयत्यदाक्षिण्यं स मान इति कीर्त्त्यते॥"

अर्थात् "जो स्नेह उत्कर्ष प्राप्तिके द्वारा श्रीराधाकृष्णयुगलको नव-नव माधुर्य अनुभव कराता है और अपने भावको गोपन रखनेके लिये बाहरसे कौटिल्यको धारण करता है, उसे 'मान' कहते हैं॥ **66**॥

पूर्वोक्त 'हे देव' श्लोककी व्याख्या :—

"तुमि देव—क्रीड़ारत, भुवनेर नारी यत,
ताहे कर अभीष्ट क्रीड़न।
तुमि मोर दयित, ताते वैस मोर चित,
मोर भाग्ये कैले आगमन॥ 67॥

अनुवाद—[श्लोकके 'हे देव'का भाव]-"तुम देव हो अर्थात् तुम सदा अपनी क्रीड़ामें रत रहते हो। इसलिये जगत्की अन्य समस्त नारियोंके साथ तुम अपनी अभीष्ट क्रीड़ा करो। ['हे दयित'का भाव]-तुम मेरे प्रियतम हो, मेरे हृदयमें विश्राम करो। आज मेरा भाग्य उदित हुआ है, जो तुम्हारा यहाँ आगमन हुआ है॥ **67**॥

अमृतानुकणिका—दिव्योन्माद दशामें महाप्रभु श्रीराधिकाके भावोंमें विभावित होकर 'हे देव..' यह श्लोक पढ़ने लगे। राधाजीकी कृष्णविरहजनित मूर्च्छा दूर हुई और वे चारों ओर देखकर कहने लगीं,—'अहो सखी! मैं नुपूरकी ध्वनि सुन रही हूँ, परन्तु वे तो कहीं दिखायी नहीं दे रहे। ऐसा लगता है कि इसी कुञ्जमें किसी और रमणीके विलास करते हुए वे शठ यहीं अवस्थान कर रहे हैं।' ऐसा कहकर पुनः उन्मादवश हेतु किसी अन्य रमणीके साथ सङ्गमसे चिह्नाङ्कित श्रीकृष्णको सामने देखकर उनके प्रति राधाजीमें अमर्ष उदित हो गया। और फिर वे चले गये, ऐसा मनमें चिन्तन करनेके बाद तापसे औत्सुक्य उदित हुआ (यहाँ अमर्ष और औत्सुक्य, दोनों भावोंकी सन्धि हुई)। पहले अन्य रमणीके साथ सम्भुक्त श्रीकृष्णका मनमें ही दर्शनकर स्वाभाविक अपना धीराधीर-मध्यत्व (नायिकाके गुण)का आश्रयकर नेत्रोंमें जल भरे हुए राधाजीने वक्रोक्तिसे सम्बोधन किया,—"हे देव!' अन्य रमणियोंके साथ क्रीड़ारत हो, इसलिये तुम देव (क्रीड़ाशील) हो। अतः तुम उन्हींके पास जाओ—यही अर्थ है।' (उःनीः 5/39)—

"धीराधीरा तु वक्रोक्त्या सवाष्पं वदति प्रियम्॥"

अर्थात् "जो नायिका अपराधी वल्लभके आनेपर अपने नेत्रोंसे आँसुओंको बहाती हुई वक्रोक्ति प्रयोग करती है, उसे धीराधीरमध्या नायिका कहते हैं।"

'किसी अन्य रमणीके पास जाओ'—राधाजीके यह वचन सुनकर श्रीकृष्ण जैसे चले गये हैं, ऐसा मनमें सोचकर बादमें हृदयमें तापके उदय होनेसे उनके दर्शनकी उत्सुक्तावश कहने लगीं,—' 'हे दयित!', तुम तो मेरे प्राणकोटि प्रियतम हो, मैं कैसे तुम्हारा त्याग कर सकती हूँ? इसलिये दर्शन दो—यह अर्थ है॥ '**67**॥

भुवनेर नारीगण, सबा' कर आकर्षण,
ताँहा कर सब समाधान।
तुमि कृष्ण—चित्तहर, ऐछे कोन् पामर,
तोमारे वा केबा करे मान॥ 68॥

अनुवाद—[हे भुवनैकबन्धौ!] जगत्में सभी रमणियोंके चित्तको तुम वंशीध्वनिके द्वारा आकर्षित करते हो और उन सबके मनकी सन्तुष्टिका विधान करते हो। [हे कृष्ण!] निज रूप-गुण-माधुर्यके द्वारा तुम सभीके चित्तको हरण करनेवाले हो। ऐसा कौन अधम है जो तुमसे मान करेगा? अर्थात् कोई भी नहीं कर सकता॥ **68**॥

अमृतानुकणिका—पुनः श्रीकृष्ण आकर अनुनय कर रहे हैं, ऐसा मनमें जानकर राधाजीमें अमर्षके अनुगत असूयाका उदय हुआ। असूयाके उदय होनेसे धीराधीर-मध्य भावका आश्रयकर वक्रोक्तिसे सोलुण्ठ

वचन (परिहासयुक्त वचन, स्तुतिपूर्वक निन्दा) बोलने लगीं,—'हे भुवनैकबन्धो!' इसमें तुम्हारा क्या दोष है? तुम तो केवल मेरे ही बन्धु नहीं हो, सभी गोपियोंके भी केवल नहीं, वेणुनादसे समस्त भुवनोंके, अर्थात् समस्त भुवनोंमें रहनेवाली स्त्रियोंके तुम बन्धु हो, इसलिये उनके सब कार्योंके समाधान हेतु जाओ—यह अर्थ है। उसका लक्षण (उ॰नी॰ 5/35)—

"धीरा तु वक्ति वक्रोक्त्या सोत्प्रासं सागसं प्रियम्॥"

अर्थात् "जो नायिका अपने अपराधी प्रियतमके प्रति उपहासपूर्वक वक्रोक्तिका प्रयोग करती है, उसको 'धीरमध्या' कहा जाता है॥"

पुनः श्रीकृष्ण जैसे चले गये, ऐसा मनमें जानकर औत्सुक्यके अनुगत मति-नामक भावके उदयसे कहने लगीं,—"हे कृष्ण!'—हे श्यामसुन्दर, तुम सबके चित्ताकर्षक हो। मेरा चित्त तो तुमने पहले ही हरण कर लिया था, अब मेरे मान करनेका क्या प्रयोजन है? इसलिये एकबार तो दर्शन दो—यह अर्थ है॥'68॥

तोमार चपल मति, एकत्र ना हय स्थिति,
ता'ते तोमार नाहि किछु दोष।
तुमि त' करुणासिन्धु, आमार पराण-बन्धु,
तोमाय नाहि मोर कभु रोष॥ 69॥

अनुवाद—[हे चपल!] तुम्हारी मति अति चञ्चल है, तुम्हारे मनकी कहीं स्थिरता नहीं है। तुम्हारा मन किसी एक रमणीमें स्थिर नहीं रहता। [करुणैकसिन्धौ!] तुम तो करुणाके सिन्धु हो। तुम तो मेरे प्राणोंसे प्रिय बन्धु हो, इसलिये मैं तुमसे कभी भी रुष्ट नहीं हो सकती॥ 69॥

अमृतानुकणिका—पुनः श्रीकृष्ण जैसे आकर विनय कर रहे हैं,—'प्रिये! मैं बाहर ही था, कहीं और गया नहीं था, अतः तुम प्रसन्न होओ।' इस प्रकार श्रीकृष्ण अनुनय कर रहे हैं, ऐसा मनमें जानकर राधाजीमें औग्र्य या उग्रता नामक भाव उदय हो गया। उग्रता नामक भाव उदय होनेसे अधीरामध्या नायिकाके गुणोंका आश्रय करके रोषसहित राधाजी बोलीं,—'हे चपल!' हे चपलराज परस्त्री-चोर! जाओ जाओ, यहाँसे चले जाओ—यह अर्थ है।' अधीराके लक्षण (उ॰नी॰ 5/37)—

"अधीरा परुषैर्वाक्यै निरस्येद्वल्लभं रुषा॥"

अर्थात् "जो नायिका अपने रोषको प्रकाशकर अपने वल्लभको निष्ठुर वाक्योंसे फटकार लगाती है, उसको अधीरामध्या कहा जाता है।"

राधाजीको लगा कि मेरे रोषपूर्ण वाक्य सुनकर श्रीकृष्ण चले गये हैं, तो अपने मनमें ग्लानिसे सोचने लगीं,—'हाय! मैंने उनका अनादर कर दिया, इस कारण वे चले गये हैं और अब वे नहीं आयेंगे'—इस प्रकार दैन्य उदय होनेसे सकाकु (मिनतीपूर्वक) बोलीं,—"हे करुणैकसिन्धो!' तुम तो करुणाके एकमात्र सिन्धु हो, यद्यपि मैं अपराधिनी हूँ, तथापि तुम करुणासे आर्द्र होकर दर्शन दो॥'69॥

श्रीकृष्णके प्रति क्षमा या प्रसन्न भाव :—

तुमि नाथ—व्रजप्राण, व्रजेर कर परित्राण,
बहु कार्ये नाहि अवकाश।
तुमि आमार रमण, सुख दिते आगमन,
ए तोमार वैदग्ध्य-विलास॥ 70॥

अनुवाद—[हे नाथ!] हे कृष्ण! तुम व्रजके नाथ, व्रजवासियोंके प्राण हो। व्रजवासियोंकी रक्षाके लिये तुम अनेक कार्योंमें व्यस्त रहते हो, इसलिये मेरे पास आनेका तुम्हें अवकाश नहीं है। [हे रमण!] तुम तो सदा ही मेरे हृदयमें रमण करते रहते हो और मुझे सुख प्रदान करनेके लिये मेरे पास आये हो, यह तुम्हारे विलासका वैदग्ध्य है॥ 70॥

अनुभाष्य— *'वैदग्ध्य'*—पटुता, पाण्डित्य, रसिकता, चतुरता, शोभा और भङ्गी॥ 70॥

अमृतानुकणिका—पुनः जैसे श्रीकृष्ण आकर बोले,—'प्रिये! किसलिये मान करके मुझे कटु वचन कह रही हो? मेरे प्रति प्रसन्न होओ।' इस प्रकार अनुनय कर रहे हैं, ऐसा मनमें जानकर अमर्षके अनुगत अवहित्था भाव राधाजीमें उदय हुआ। अवहित्था भाव उदय होनेपर राधाजी धीरप्रगल्भ भावके गुणका आश्रयकर उदासीनतासे कहने लगीं,—''हे नाथ!' तुम तो हम व्रजवासियोंके रक्षक हो, ऐसी कौनसी निर्बुद्धि (मूर्ख) रमणी है, जो तुम्हें सन्तुष्ट नहीं करेगी? किन्तु ब्राह्मणियोंके कहनेपर मैंने मौनव्रत धारण किया था, इस कारण मैं अब तक तुमसे बातचीत नहीं कर पायी, इसलिये मेरा यह अपराध क्षमा करो—यह भाव है।' धीरप्रगल्भाके लक्षण (उःनीः 5/53)—

"उदास्ते सुरते धीरा सावहित्था च सादरा॥"

अर्थात् "मानिनी अवस्थाको प्राप्त होकर सम्भोगके विषयमें उदासीना और अवहित्थाके द्वारा अपने मानके भावको गुप्त रखकर ऊपरसे कान्तके प्रति आदर दिखलानेवालीको 'धीरप्रगल्भा' कहते हैं।"

पुनः श्रीकृष्ण जैसे चले गये हैं, ऐसा मन-ही-मनमें कहने लगीं,—'बार-बार मेरे व्यवहारसे दुःखी होकर चले गये हैं, अब वे लौटकर नहीं आयेंगे।' ऐसा मनमें भाव आनेसे चापल नामक भावके उदय होनेसे मनमें चिन्तन करने लगीं,—'यदि कृपापूर्वक पुनः वे दर्शन प्रदान करेंगे, तब मैं स्वयं ही उनके कण्ठको धारण करूँगी (गले लग जाऊँगी)।' इस प्रकार दैन्यसहित बोलने लगीं,—''हे रमण!' तुम सदा ही मुझे आनन्द प्रदान करते हो, इसलिये पहलेके समान अब भी आकर मेरे साथ विहार करो-यह अर्थ है॥'70॥

मोर वाक्य निन्दा मानि', कृष्ण छाड़ि' गेला जानि,
शुन, मोर ए स्तुति-वचन।
नयनेर अभिराम, तुमि मोर धन-प्राण,
हाहा पुनः देह दरशन॥"71॥

अनुवाद—[हे नयनाभिराम!] मेरे वचनोंको निन्दा मानकर कृष्ण मुझे छोड़कर चले गये हैं, ऐसा मानकर श्रीराधिका कहने लगीं—हे कृष्ण! मेरे मधुर वचन सुनो। तुम मेरे नयनोंको आनन्द प्रदान करनेवाले हो, तुम ही मेरे प्राण-धन हो। हा-हा! मुझे पुनः दर्शन दो॥"71॥

अमृतानुकणिका—अब सामने श्रीकृष्ण आये हैं, यह जानकर सहज उत्सुकताके द्वारा मन आक्रान्त होनेपर राधाजीने आलिङ्गनके लिये दोनों भुजायें फैला दीं। किन्तु श्रीकृष्णको न पानेपर बाह्य स्फूर्ति होनेपर अत्यन्त विकलताके साथ कहने लगीं,—"हे नयनाभिराम!' हे नयनोंके आनन्ददायक! कब तुम मेरे नयनपथके पथिक होओगे?' अर्थात् राधाजी अति खेदसे कह रही हैं, हाय हाय, कब तुम मेरे दृष्टिगोचर होओगे?॥71॥

महाप्रभुके महाभावके लक्षण :—

स्तम्भ, कम्प, प्रस्वेद, वैवर्ण्य, अश्रु, स्वरभेद,
देह हैल पुलके व्यापित।
हासे, कान्दे, नाचे, गाय, उठि' इति-उति धाय,
क्षणे भूमे पड़िया मूर्च्छित॥72॥

अनुवाद—राधाभावाविष्ट महाप्रभुके शरीरमें श्रीकृष्ण विरहके कारण स्तम्भ, कम्प, स्वेद, वैवर्ण्य, अश्रु, स्वरभेद, पुलकादि सात्त्विकभाव उदित हो गये। वे कभी हँसते, कभी रोते, कभी नाचते, कभी गाते, कभी इधर-उधर दौड़ते और कभी मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़ते॥72॥

अनुभाष्य— *'स्तम्भ'*—अष्ट-सात्त्विक विकारोंमें एक। (भ.र.सि. दःविः तृतीय लः)—

"चित्तं सत्त्वीभवत् प्राणे न्यस्यत्यात्मानमुद्भटम्।
प्राणस्तु विक्रियां गच्छन् देहं विक्षोभयत्यलम्।
तदा स्तम्भादयो भावा भक्तदेहे भवन्त्यमी॥
स्तम्भं भूमिस्थितः प्राणस्तनोति।
स्तम्भो हर्षभयाश्चर्यविषादामर्षसम्भवः।
तत्र वागादि-राहित्यं नैश्चल्यं शून्यतादयः॥"

अर्थात् "चित्त सात्त्विक भाव प्राप्त करनेपर चञ्चल मनको प्राणमें समर्पण कर देता है, उससे प्राण भी विकार प्राप्त होनेपर देहको क्षुब्ध करते हैं। तब भजनशीलकी देहपर स्तम्भादि सात्त्विक भावोंका उदय होता है। प्राण पञ्चभूतोंमेंसे भूमिपर स्थित होनेसे 'स्तम्भ' विकार होता है। हर्ष, भय, विस्मय, विषाद और क्रोधसे स्तम्भ उत्पन्न होता है। स्तम्भमें वाणी-हस्त-पादादिका चेष्टारहित होना, निश्चलता एवं शून्यताके कारण अन्य इन्द्रियोंकी क्रियाओंका स्थगित होना लक्षण प्रकाशित होते हैं। स्तम्भ मनकी एक विशेष अवस्थाका नाम है। वाक्यादि रहित देहमें उत्पन्न विकार बाहरमें और अन्तरमें व्याप्त होकर अवस्थान करते हैं। ये विकार पहले सूक्ष्म देहमें अवस्थित होते हैं और बादमें स्थूल देहमें अवस्थित होते हैं। वाक्यादि-हीनता कर्मेन्द्रियोंकी और शून्यता ज्ञानेन्द्रियोंकी क्रियारहित होनेके ज्ञापक हैं।"

'कम्प'—(भ:र:सि: द:वि: तृतीय ल:)—

"वित्रासामर्षहर्षाद्यैर्वेपथुर्गात्रलौल्यकृत्॥"

अर्थात् "विशेष भय, क्रोध और हर्षादिके द्वारा शरीरमें जो चञ्चलता उत्पन्न होती है, उसे 'वेपथु' या 'कम्प' कहते हैं।"

'वैवर्ण्य'—(भ:र:सि: द:वि: तृतीय ल:)—

"विषादरोषभीत्यादेर्वैवर्ण्यं वर्णविक्रिया।
भावज्ञैरत्र मालिन्यकार्श्याद्याः परिकीर्त्तिताः॥"

अर्थात् "विषाद, क्रोध और भयादिसे शरीरमें वर्ण-विकारको 'वैवर्ण्य' कहते हैं। वैवर्ण्यसे देहमें मलिनता और कृशताादि होती है।"

'अश्रु'—(भ:र:सि: द:वि: तृतीय ल:)—

"हर्षरोषविषादाद्यैरश्रु नेत्रे जलोद्गमः।
हर्षजेऽश्रुणि शीतत्वमौष्ण्यं रोषादि सम्भवे।
सर्वत्र नयनक्षोभ-रागसंमार्जनादयः॥"

अर्थात् "हर्ष, क्रोध और विषादादिके द्वारा बिना प्रयत्नके नेत्रोंमें जो जल-भर आता है, उसे 'अश्रु' कहते हैं। हर्षजनित अश्रुओंमें शीतलता और क्रोधादिजनित अश्रुओंमें उष्णता लक्षित होनेपर भी सभी अश्रुओंमें नेत्रोंकी चञ्चलता, लालिमा और उनका पोंछनाादि देखा जाता है।"

'स्वेद'—(भ:र:सि: द:वि: तृतीय ल:)—

"स्वेदो हर्षभयक्रोधादिजः क्लेदकरस्तनोः॥"

अर्थात् "हर्ष, भय और क्रोधादिसे उत्पन्न जो शरीरमें क्लेद (पसीना) आता है उसको 'स्वेद' कहते हैं।"

'गद्गद'—(भ:र:सि: द:वि: तृतीय ल:)—

"विषादविस्मयामर्षहर्षभीत्यादिसम्भवम्।
वैस्वर्यं स्वरभेदः स्यादेष गद्गदिकादिकृत।"

अर्थात् "विषाद, आश्चर्य, क्रोध, आनन्द और भयादिसे 'स्वरभेद' या 'वैस्वर्य' होता है। इस स्वरभेदमें वाणी गद्गद हो जाती है।"

'पुलक'—(भ:र:सि: द:वि: तृतीय ल:)—

"रोमाञ्चोऽयं किलाश्चर्यहर्षोत्साहभयादिजः।
रोम्णामभ्युद्गमस्तत्र गात्रसंस्पर्शनादयः॥"

अर्थात् "विस्मय, हर्ष, उत्साह और भयादिसे रोम खड़े होनेसे 'पुलक' या 'रोमाञ्च' होता है और शरीरमें किसी वस्तुके स्पर्श जैसा अनुभव होने लगता है॥"72॥

महाप्रभुको कृष्णदर्शनका भ्रम :—

मूर्च्छाय हैल साक्षात्कार, उठि' करे हुहुङ्कार,
कहे—एइ आइला महाशय।
कृष्णेर माधुरी-गुणे, नाना भ्रम हय मने,
श्लोक पड़ि' करये निश्चय॥ 73॥

अनुवाद—महाप्रभुको मूर्च्छित अवस्थामें श्रीकृष्णका साक्षात्कार हुआ। वे आनन्दमें भरकर सहसा उठे और जोरसे हुङ्कार करके कहने लगे,—'ये महाशय (श्रीकृष्ण) आये हैं।' श्रीकृष्णकी माधुरी और गुणोंके प्रभावसे उनका मन अनेक प्रकारसे भ्रमित होने लगा और वे एक श्लोक पढ़कर श्रीकृष्णकी उपस्थितिको निश्चित करने लगे॥ 73॥

श्रीकृष्णकर्णामृतमें (68) बिल्वमङ्गल-वाक्य :—

मारः स्वयं नु मधुरद्युतिमण्डलं नु
माधुर्यमेव नु मनो नयनामृतं नु।
वेणीमृजो नु मम जीवितवल्लभो नु
कृष्णोऽयमभ्युदयते मम लोचनाय॥ 74॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 74॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे सखि! साक्षात् कन्दर्पस्वरूप, द्युतिसमूहके माधुर्यस्वरूप, मूर्तिमान् माधुर्यस्वरूप, मन-नयनके अमृतस्वरूप, गोपियोंके (वेणी-मोचनकारी) आनन्दस्वरूप, मेरे प्राणवल्लभस्वरूप, साक्षात् नन्दनन्दन ही हैं, जो मेरे दर्शनपथपर प्रकट हुए हैं॥ 74॥

अनुभाष्य—

मारः (कन्दर्पः) नु (किं) स्वयं नु (वितर्के) मधुरद्युतिमण्डलं (हृत्स्पर्शि सुन्दरस्निग्धज्योतिर्बिम्बं) नु (किं न) तत् माधुर्यम् एव नु (किं), मनोनयानामृतं (हृदयनेत्रसुधास्वरूपः) नु (किं), वेणीमृजः (वेण्युन्मोचनकारी) नुः (किं) अयं जीवितवल्लभः (कृष्णः) मम लोचनाय (लोचनसुखदातुं) अभ्युदयते (मत्सन्निधौ प्रकटयति)।

श्लोक-भावानुवाद—हे सखि! क्या साक्षात् कामदेव यहाँ आये हैं? नहीं, क्या ये पुरुष हृदयस्पर्शि सुन्दर-स्निग्ध ज्योतिर्बिम्ब हैं? अथवा क्या मूर्तिमान माधुर्य हैं? अथवा क्या मेरे मन-नयनोंके अमृतस्वरूप हैं? क्या ये गोपियोंके वेणी-मोचनकारी कान्त हैं? अथवा क्या ये मेरे जीवन-वल्लभ कृष्ण हैं, जो मेरे नयनोंको आनन्द प्रदान करनेके लिये मेरे दृष्टिपथपर प्रकट हुए हैं?॥ 74॥

अमृतानुकणिका—'श्रीकृष्णका दर्शन मेरे भाग्यमें नहीं है'—इस प्रकार सखियोंके साथ बात करते-करते अकस्मात् श्रीकृष्णको दूरसे देखकर विरहमें व्याकुल राधाजी कहने लगीं,—'मारः स्वयं नु', हे सखियों! जो अदृश्य रहकर भी जगत्को मारते हैं, वे 'मार' अर्थात् कन्दर्प क्या स्वयं आये हैं?' 'नु'—शब्दका अर्थ वितर्क से है। पुनः माधुर्य अनुभव करके आश्चर्यसहित बोलीं,—'कन्दर्प इस प्रकार मधुर नहीं हो सकता, तो क्या ये मधुर ज्योतिसमूहके मण्डल हैं?' पुनः अत्यन्त आश्चर्य अनुभव करके कहने लगीं,—'माधुर्य ही क्या साक्षात् मूर्तिमान् होकर प्रकट हुआ है?' पुनः मन और नयनोंकी अतिशय तृप्तिसे परम सन्तोषसे कहने लगीं,—'ये क्या मन और नयनोंको तृप्त करनेवाले अमृतस्वरूप हैं?' पुनः अपनी देहको अनुभव करके सम्भ्रमसे कहने लगीं,—'मेरी वेणी खोलनेवाले विदेशसे आये मेरे कान्त हैं क्या?' पुनः सम्पूर्णरूपसे अवलोकन करके आनन्दके साथ बोलीं,—'हे सखियों! ये मेरे प्राणवल्लभ नवकिशोर कृष्ण हैं, जो मेरे नयनोंके आनन्दको वर्धित करनेके लिये आये हैं, तुम सब उनके दर्शन करो।'

'मारः स्वयं नु' आदिसे लेकर 'वेणीमृजः' तक सन्देह ही है। 'मम जीवितवल्लभः कृष्णः अभ्युदयते'—यह निश्चित है। इसलिये यह सन्देहान्त निश्चय अलङ्कार है॥ 74॥

श्लोकका अर्थ :—

"किवा एइ साक्षात् काम, द्युतिबिम्ब मूर्त्तिमान्,
कि माधुर्य स्वयं मूर्त्तिमन्त।
किवा मनो-नेत्रोत्सव, किवा प्राणवल्लभ,
सत्य कृष्ण आइला नेत्रानन्द॥"75॥

अनुवाद—"क्या ये साक्षात् कामदेव हैं अथवा ज्योतिपुञ्ज मूर्तिमान होकर प्रकट हुए हैं? क्या समस्त माधुर्य ही मूर्तिमान होकर प्रकट हुआ है? या ये मेरे मन-नेत्रोंके उत्सवस्वरूप हैं? क्या ये मेरे प्राणवल्लभ हैं? ये सचमुच कृष्ण ही हैं जो मेरे नेत्रोंको आनन्द देनेके लिये आये हैं॥"75॥

भावके वशीभूत महाप्रभु :—

गुरु—नाना भावगण, शिष्य—प्रभुर तनु-मन,
नाना रीते सतत नाचाय।
निर्वेद, विषाद, दैन्य, चापल्य, हर्ष, धैर्य, मन्यु,
एइ नृत्ये प्रभुर काल याय॥ 76॥

अनुवाद—निर्वेद, विषाद, दैन्य, चापल्य, हर्ष, धैर्य, क्रोधादि भाव गुरुके समान महाप्रभुके शरीर और मनरूपी शिष्यको अनेक प्रकारसे सदा नचाते। इसी प्रकार उनका सारा समय व्यतीत होता॥ 76॥

अनुभाष्य—गुरु जिस प्रकार शासन करके शिष्योंको कलाकी शिक्षा देते हैं, उसी प्रकार महाप्रभुके हृदयके भाव गुरु बनकर महाप्रभुके श्रीअङ्ग और मनरूपी दो शिष्योंको नाना प्रकारसे नृत्य कराते॥ 76॥

स्वरूप-रामानन्दके साथ महाप्रभुकी
प्रतिदिनकी कार्यावली :—

चण्डीदास, विद्यापति, रायेर नाटक-गीति,
कर्णामृत, श्रीगीतगोविन्द।
स्वरूप-रामानन्द-सने, महाप्रभु रात्रि-दिने,
गाय, शुने—परम आनन्द॥ 77॥

अनुवाद—श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीराय रामानन्दके साथ महाप्रभु (अपने भावोंके अनुरूप) रात-दिन श्रीचण्डीदास और श्रीविद्यापतिके पद, श्रीराय रामानन्दके जगन्नाथवल्लभ-नाटक, श्रीबिल्वमङ्गलके श्रीकृष्णकर्णामृत और श्रीजयदेव गोस्वामीके श्रीगीतगोविन्दके श्लोक गाते और सुनते परम आनन्दसे समय बिताते॥ 77॥

अनुभाष्य—*'रायेर नाटक'*—'जगन्नाथवल्लभ' नाटक; *'गीति'*—श्रीचण्डीदास, श्रीविद्यापति, श्रीराय रामानन्द, श्री बिल्वमङ्गल और श्रीजयदेव—इनके द्वारा रचित ग्रन्थोंकी पद्यावलीका गान॥ 77॥

महाप्रभुके विभिन्न रसाश्रित भक्तगण :—

पुरीर वात्सल्य मुख्य, रामानन्देर शुद्धसख्य,
गोविन्दाद्येर शुद्धदास्यरस।
गदाधर, जगदानन्द, स्वरूपेर मुख्य रसानन्द,
एइ चारि भावे प्रभु वश॥ 78॥

अनुवाद—श्रीपरमानन्द पुरीका महाप्रभुके प्रति वात्सल्यभाव था। श्रीराय रामानन्दका उनमें शुद्धसख्य-भाव, श्रीगोविन्दादिका उनमें दास्यभाव था। श्रीगदाधर पण्डित, श्रीजगदानन्द पण्डित और श्रीस्वरूप दामोदरका महाप्रभुमें मुख्य (मधुर) रसमें प्रेम था। महाप्रभु इन चार भावोंके वशीभूत रहते थे॥ 78॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'पुरीर'*—श्रीपरमानन्द पुरीका। *'मुख्यरस'*—मधुर रस॥ 78॥

अनुभाष्य—श्रीपरमानन्द पुरीका (व्रजके उद्धवका) वात्सल्य-रसप्रधान भाव, श्रीरामानन्दका (अर्जुन या विशाखाका) शुद्ध सख्यभाव, श्रीगोविन्दादि सेवकोंका शुद्ध दास्यभाव, और अन्तरङ्ग-भक्त श्रीगदाधर, श्रीजगदानन्द और श्रीस्वरूप दामोदरका मुख्य मधुररस,—इन चार भावोंमें महाप्रभु उनकी भजन-सङ्गसुख-सेवा ग्रहण करके उनके वशीभूत थे॥ 78॥

महाप्रभुके पक्षमें मधुररसमें महाभाव
आश्चर्यजनक नहीं :—

लीलाशुक-मर्त्यजन, ताँर हय भावोद्गम,
ईश्वरे से—कि इहा विस्मय।
ताहे मुख्य-रसाश्रय, हइयाछे महाशय,
ताते हय सर्वभावोदय॥ 79॥

अनुवाद—लीलाशुक (श्रीबिल्वमङ्गल ठाकुर) यद्यपि मनुष्य थे, तो भी उनके शरीरमें अनेक भावोंके विकार प्रकट होते थे। तो फिर इसमें क्या आश्चर्यकी बात है कि ये भाव स्वयं भगवान् महाप्रभुके शरीरमें उदित हुए। मधुररसके भावोंमें डूबे हुए महाप्रभुकी तो सर्वोच्च स्थिति है, इसलिये सभी प्रकारके भाव उनके शरीरमें दिखायी देते थे॥ 79॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'लीलाशुक'*—श्रीबिल्वमङ्गल गोस्वामी। इनके पूर्व आश्रमका नाम शिहलण मिश्र था और ये दक्षिण भारतके ब्राह्मण थे। गृहस्थ-धर्मका शास्त्रोचित रूपसे पालन करते-करते चिन्तामणि नामक वेश्यासे उपदेश सुनकर इन्हें वैराग्य हो गया और 'शान्तिशतक' नामक ग्रन्थकी रचना की। बादमें श्रीकृष्ण-वैष्णव कृपासे भक्तिलाभ करके इनका नाम

'बिल्वमङ्गल गोस्वामी' हुआ और इन्होंने 'श्रीकृष्णकर्णामृत' ग्रन्थकी रचना की। उनके प्रेमसे उन्मत्त भावोंको देखकर लोग उन्हें 'लीलाशुक' कहते थे॥ 79॥

अनुभाष्य—*'लीलाशुक'*—इनके अन्य नाम 'लीलासुख', 'चित्सुखाचार्य' और 'बिल्वमङ्गल' थे। ये विष्णुस्वामी सम्प्रदायके त्रिदण्डिस्वामी थे। आदिलीला 1/57 का अनुभाष्य देखें॥ 79॥

आश्रयके प्रणयभावमय विषयविग्रह श्रीगौरसुन्दर :—

पूर्व व्रजविलासे, येइ तिन अभिलाषे,
सेइ यत्ने आस्वादन नहिल।
श्रीराधार भावसार, आपने करि' अङ्गीकार,
सेइ तिनवस्तु आस्वादिल॥ 80॥

अनुवाद—श्रीकृष्णकी पहले व्रजलीलामें जिन तीन भावोंको आस्वादन करनेकी अभिलाषा थी, परन्तु सब प्रकारसे यत्न करनेपर भी वे उन्हें पूरा नहीं कर पाये, क्योंकि ये भाव श्रीमती राधिकाकी सम्पत्ति हैं। इसलिये श्रीकृष्णने राधाजीके इन भावोंको अङ्गीकार करके महाप्रभुके रूपमें अवतरित होकर उन तीन भावोंका आस्वादन किया॥ 80॥

अनुभाष्य—आदिलीला 4/230 संख्या देखें॥ 80॥

महावदान्य महाप्रभुके द्वारा उसी आश्रयका
सेवा-भाव-वितरण :—

आपने करि' आस्वादने, शिखाइल भक्तगणे,
प्रेमचिन्तामणिर प्रभु धनी।
नाहि जाने स्थानास्थान, यारे तारे कैल दान,
महाप्रभु—दाता-शिरोमणि॥ 81॥

अनुवाद—श्रीकृष्णप्रेमके भावोंका महाप्रभुने स्वयं तो आस्वादन किया ही और अपने भक्तोंको भी इसकी शिक्षा दी। वे कृष्णप्रेमरूपी चिन्तामणिके धनसे धनी हैं। उन्होंने इस धनका पात्र-अपात्रका विचार न करके सर्वत्र ही इसका दान किया, इसलिये वे दान करनेवालोंमें शिरोमणि हैं॥ 81॥

अमृतप्रवाह भाष्य—प्रभु श्रीचैतन्यदेवका प्रेम-चिन्तामणि ही धन है ओर वे उस धनसे धनी हैं। प्राकृत-चिन्तामणिके कार्यके समान प्रेम-चिन्तामणि भी अनेक-अनेक प्रेम-चिन्तामणियोंका उत्पादन करनेपर भी महाप्रभुके भण्डारमें वह पूर्णरूपसे विराजमान है। और भक्त महाप्रभुके द्वारा दी गयी प्रेम-चिन्तामणिसे अनन्त-कोटि चिन्तामणियाँ समस्त जगत्में विस्तार करते हैं॥ 81॥

परम दयाल अवतार :—

एइ गुप्त भाव-सिन्धु, ब्रह्मा ना पाय एक बिन्दु,
हेन धन बिलाइल संसारे।
ऐछे दयालु अवतार, ऐछे दाता नाहि आर,
गुण केह नारे वर्णिवारे॥ 82॥

अनुवाद—महाप्रभुके हृदयमें जिन गुप्त भावोंका सिन्धु है, उसकी एक बूँद भी ब्रह्माजी जैसे ऐश्वर्य-भावके भक्त नहीं पा सकते। परन्तु महाप्रभु ऐसे दयालु अवतार हैं, जिन्होंने अहैतुककृपावश इस धनका संसार भरमें दान किया है। उन जैसा महान् दाता जगत्में और कोई नहीं है, इसलिये उनके दिव्य-गुणोंका कौन वर्णन कर सकता है?॥ 82॥

श्रीचैतन्य-आनुगत्यके बिना कृष्णसेवा-प्राप्ति असम्भव :—

कहिबार कथा नय, कहिले केह ना बुझय,
ऐछे चित्र चैतन्येर रङ्ग।
सेइ से बुझिते पारे, चैतन्येर कृपा याँरे,
हय ताँर दासानुदास-सङ्ग॥ 83॥

अनुवाद—कृष्णप्रेमके जो भाव महाप्रभु दिखला रहे हैं, उनकी चर्चा साधारण लोगोंमें नहीं करनी चाहिये, क्योंकि वे उन्हें समझ नहीं सकते। महाप्रभुकी ऐसी अद्भुत लीलाएँ हैं। यदि कोई इसे समझ सकता है, तो यह निश्चय जानना चाहिये कि वह महाप्रभुका कृपापात्र है जिसे उन्होंने अपने दासके दासका सङ्ग दिया है॥ 83॥

अमृतप्रवाह भाष्य—इस राधानुगत भावतत्त्वमें

साधारण लोगोंका अधिकार नहीं है। अयोग्यपात्रसे ये भाव कहनेसे वे 'सहजिया', 'बाउल' आदि लोगोंके विकृत भावोंकी भाँति इनका रूपान्तर ग्रहण करेंगे। पाण्डित्यका अभिमान रखनेवाले व्यक्ति भी इस रसतत्त्वमें प्रवेश करने योग्य नहीं हैं॥ 83॥

श्रीदामोदर स्वरूप और श्रीरघुनाथसे भक्तोंके द्वारा महाप्रभुके भावोंका श्रवण :—

चैतन्यलीला-रत्न-सार, स्वरूपेर भाण्डार,
तेँहो थुइला रघुनाथेर कण्ठे।
ताँहा किछु ये शुनिलुँ, ताँहा इँहा विस्तारिलुँ,
भक्तगणे दिलुँ एइ भेटे॥ 84॥

अनुवाद—महाप्रभुकी लीलाएँ समस्त रत्नोंकी शिरोमणि हैं जो श्रीस्वरूप दामोदरके भण्डारमें रखी हैं। श्रीस्वरूप दामोदरने श्रीरघुनाथदास गोस्वामीको इन लीलाओंकी व्याख्या की थी। श्रीरघुनाथदास गोस्वामीके द्वारा कण्ठस्थ उन लीलाओंमें जो कुछ मैंने (ग्रन्थकार) सुनी हैं, उन्हींका यहाँ विस्तारसे वर्णन किया है और यह भक्तोंके निमित्त भेंट है॥ 84॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीस्वरूप दामोदरने महाप्रभुकी शेषलीलाको सूत्ररूपमें अपने कड़चामें लिखा था और उसे श्रीरघुनाथदास गोस्वामीके कण्ठमें रखा था, अर्थात् उन्हें कण्ठस्थ करावाकर श्रीकृष्णदास कविराजके द्वारा जगत्में इनका प्रचार करवाया। इसलिये श्रीस्वरूप दामोदरका कड़चा पृथक् पुस्तकके रूपमें नहीं लिखा गया है। यह श्रीचैतन्यचरितामृत ही श्रीस्वरूप दामोदरके कड़चाका निष्कर्ष है॥ 84॥

अनुभाष्य— *'भेटे'*—उपहार॥ 84॥

ग्रन्थकार की निरपेक्षता :—

यदि केह हेन कय, ग्रन्थ कैल श्लोकमय,
इतर-जने नारिबे बुझिते।
प्रभुर येइ आचरण, सेइ करि वर्णन,
सर्व-चित्त नारि आराधिते॥ 85॥

अनुवाद—यदि कोई कहे कि इस ग्रन्थमें अनेक संस्कृतके श्लोक हैं जिन्हें साधारण लोग नहीं समझ सकते, तो मेरा यह कहना है कि महाप्रभुकी लीलाएँ जैसी हैं [और उन्होंने जिन श्लोकोंका पाठ किया है], मैंने उनका वैसा ही वर्णन किया है। मैं सभीके मनको प्रसन्न करनेके लिये महाप्रभुकी लीलाओंको तोड़-मरोड़कर नहीं लिख सकता॥ 85॥

अनुभाष्य—(श्रीकृष्णदास कविराजके भाव) श्रीगौरसुन्दरके चरित्रका यथायथ (अर्थात् जैसा है, वैसा) वर्णन करते हुए मैंने सभी मतवादियोंकी प्रशंसाका पात्र बननेकी इच्छा नहीं की है। वे लोग मेरी निन्दा करेंगे, यह विचार करके यहाँ महाप्रभुके चरित्रकी वास्तविक कथा न लिखकर कुछ अंशोंका वर्जन (त्याग) या वर्द्धन या आवरण (ढकना) या शोधन नहीं किया। इस ग्रन्थमें संस्कृत श्लोकोंको सम्मिलित करनेसे अनेक लोग तर्क कर सकते हैं कि संस्कृत न जाननेवाले लोग श्लोकोंके वास्तविक भावार्थको नहीं समझ सकेंगे॥ 85॥

नाहि काँहा सविरोध, नाहि काँहा अनुरोध,
सहज वस्तु करि विवरण।
यदि हय रागोद्देश, ताँहा हये आवेश,
सहज वस्तु ना याय लिखन॥ 86॥

अनुवाद—श्रीचैतन्यचरितामृतमें कहीं भी किसी वस्तु अथवा व्यक्ति विशेषके विचारोंके न तो विरोध अथवा अनुरोधके प्रभावमें कुछ लिखा है। केवलमात्र महाप्रभुकी लीला और सिद्धान्तको सहज रूपसे जैसा मैंने श्रेष्ठ वैष्णवोंके मुखसे सुना है, वैसा ही लिखा है। यदि किसीसे मेरा रागका उद्देश्य होगा, तो मेरा उसमें आवेश होगा और मैं उन्नत भक्तोंके मुखसे श्रवण की गयी वाणीको यथायथ (जैसी है, वैसी) नहीं लिख पाऊँगा॥ 86॥

अमृतप्रवाह भाष्य—मेरे इस ग्रन्थमें कहीं भी किसीके भी सिद्धान्तका विरोध नहीं है, अथवा अन्य

किसी व्यक्तिके मतके प्रति अनुरोध भी नहीं है। मैंने सहजतत्त्व विचार करके लिखा है। जीवके लिये रागतत्त्व ही सहज है, परन्तु विचारतत्त्व सहज नहीं है। रागतत्त्वसे जो उदित होता है, वही श्रीमहाप्रभुके द्वारा प्रदर्शित भजनतत्त्व है। यदि किसी अन्यके मतसे या अन्य प्रकार तर्कसिद्धान्तसे रागका उद्देश्य हो, तो उसमें आविष्ट होकर निरपेक्षता दूर हो जाती है; इसलिये जीवका स्वतःसिद्ध सहजत्व लिखा नहीं जाता है॥ 86॥

मध्यलीला दूसरे अध्यायका अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

अनुभाष्य—इस ग्रन्थमें किसी वस्तुकी अपेक्षा करके मैंने किसीके साथ विरोध या किसीके साथ अनुरोधके वशीभूत होकर कुछ नहीं लिखा है; मैंने केवलमात्र सहज-वस्तुका विवरण लिखा है। जिसमें महाप्रभुके प्रति राग हो जाय और उसमें आविष्ट हो जाय, तो वह सभी लिखित वर्णनके अर्थोंको सहज ही समझ लेगा। सहज वस्तु रागानुगजनोंके द्वारा ही अनुभव करनेकी वस्तु है। इस प्रकार लिखी लेखनी रागमें आविष्ट व्यक्तिके हृदयमें स्फुरित होगी; रागहीन व्यक्ति उस लेखनीमें उस प्रकार प्रवेश नहीं कर पायेंगे। सहज वस्तु अनुभव करनेकी वस्तु है। पाठान्तरमें—'यदि हय राग-द्वेष', उसका अर्थ इस प्रकार है—'यदि कृष्णसेवाका परित्याग करके कृष्णसे इतर वस्तुमें अनुराग अर्थात् अभिनिवेश एवं द्वेष या विराग आकर किसीको आविष्ट करेगा, तो उसके द्वारा शुद्धात्माके सहज अप्राकृत कृष्णप्रेमके विषयमें कुछ भी वर्णन करना सम्भव नहीं होगा॥ 86॥

श्रद्धापूर्वक चैतन्यलीला श्रवणके
फलस्वरूप कृष्णप्रीतिका उदय :—

येबा नाहि जाने केह, शुनिते शुनिते सेह,
कि अद्भुत चैतन्यचरित।
कृष्ण उपजिबे प्रीति, जानिबे रसेर रीति,
शुनिलेइ बड़ हय हित॥ 87॥

अनुवाद—महाप्रभुके चरितको यदि कोई प्रारम्भिक अवस्थामें नहीं समझ पाये, तो भी इसे बार-बार श्रवण करनेसे धीरे-धीरे समझमें आने लगेगा। महाप्रभुका अद्भुत चरित श्रवण करनेसे श्रोताके हृदयमें कृष्णप्रेम उदित होगा। तब वह श्रीराधा-कृष्णकी लीलाके मधुररसकी रीतिको समझ सकेगा। इसलिये इसको बार-बार श्रवण करो, इससे तुम्हारा परम कल्याण होगा॥ 87॥

संस्कृत भाषामें लिखित भागवतके साथ उपमा :—

भागवत—श्लोकमय, टीका तार संस्कृत हय,
तबु कैछे बुझे त्रिभुवन।
इँहा श्लोक दुइ चारि, तार व्याख्या-भाषा करि,
केने ना बुझिबे सर्वजन॥ 88॥

अनुवाद—सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतम् संस्कृतके श्लोकोंके द्वारा रचित है और उसकी टीकाएँ भी संस्कृतमें हैं, तो जगत्के लोग उसे कैसे समझ लेते हैं? इस ग्रन्थमें मैंने कहीं-कहीं ही श्लोक लिखे हैं और उसकी व्याख्या भी सरल भाषामें दी है, तब सभी उसे क्यों नहीं समझ सकेंगे?॥ 88॥

अनुभाष्य—पयार संख्या 85में वादियोंके वादके सम्बन्धमें मेरा यह कहना है—'श्रीमद्भागवत-ग्रन्थमें सभी श्लोक संस्कृतमें हैं; उसकी सभी व्याखाएँ भी संस्कृत भाषामें लिखी गयी हैं। यदि उसे त्रिभुवनके लोग समझकर कृष्णभक्ति लाभ करते हैं, तब इस चैतन्यचरितामृतमें मैंने जो दो-चार संस्कृतके श्लोक उद्धृत करके उनकी बङ्गला कवितामें व्याख्या भी की है, उसे सभी गौरभक्त क्यों नहीं समझ सकेंगे?॥ 88॥

महाप्रभुकी शेषलीला-वर्णन करनेकी इच्छा :—

शेष-लीलार सूत्रगण, कैलुँ किछु विवरण,
इँहा विस्तारिते चित्त हय।
थाके यदि आयु-शेष, विस्तारिब लीला-शेष,
यदि महाप्रभुर कृपा हय॥ 89॥

अनुवाद—मैंने शेषलीलाका सूत्ररूपमें कुछ वर्णन किया है और अब मेरी यह इच्छा है कि मैं विस्तारसे इसका वर्णन करूँ। यदि मेरा जीवन रहा और मेरे सौभाग्यसे महाप्रभुकी कृपा हुई, तो मैं शेष लीलाको विस्तारसे कहूँगा॥ 89॥

ग्रन्थकारका अपनी अयोग्यता और दैन्य ज्ञापन :—

आमि वृद्ध जरातुर, लिखिते काँपये कर,
मने किछु स्मरण ना हय।
ना देखिये नयने, ना शुनिये श्रवणे,
तबु लिखि—ए बड़ विस्मय॥ 90॥

अनुवाद—मैं वृद्ध हो गया हूँ और चलने-फिरनेमें असमर्थ हूँ। जब मैं लिखता हूँ, तो मेरे हाथ काँपते हैं। मुझे कुछ स्मरण भी नहीं रहता है और न ही मैं ठीकसे देख और सुन पाता हूँ। तो भी मैं लिख रहा हूँ, यह बहुत बड़ा आश्चर्य है॥ 90॥

महाप्रभुकी दिव्योन्मादात्मक अन्त्यलीला ही
गौरभक्तोंके लिये नित्य आलोच्य :—

एइ अन्त्यलीला-सार, सूत्रमध्ये विस्तार,
करि' किछु करिलुँ वर्णन।
इहा-मध्ये मरि यबे, वर्णिते ना पारि तबे,
एइ लीला भक्तगण-धन॥ 91॥

अनुवाद—इस अध्यायमें मैंने अन्त्यलीलाके सारका सूत्रोंके मध्य कुछ विस्तार करके वर्णन किया है। यदि मैं इसे विस्तार करते हुए बीचमें ही देह त्याग दूँगा, तो भी सूत्ररूपमें यह लीला भक्तोंके लिये दिव्य निधि होगी॥ 91॥

अभी संक्षेपमें और बादमें विस्तारकी इच्छा :—

संक्षेपे एइ सूत्र कैल, येइ इँहा ना लिखिल,
आगे ताहा करिब विचार।
यदि तत दिन जिये, महाप्रभुर कृपा हये,
इच्छा भरि' करिब विस्तार॥ 92॥

अनुवाद—इस अध्यायमें मैंने अन्त्यलीलाको सूत्ररूपमें कहा है। इस लीलाके विषयमें जो कुछ मैंने नहीं कहा है, आगे उसपर विचार करके लिखूँगा। यदि महाप्रभुकी कृपासे मैं उतने दिनों तक जीवित रहूँगा, तो मन भरके इसका विस्तारपूर्वक वर्णन करूँगा॥ 92॥

भक्तों की वन्दना और श्रौतपन्थामें अवस्थान :—

छोट बड़ भक्तगण, वन्दों सबार-चरण,
सबे मोरे करह सन्तोष।
स्वरूप-गोसाञिर मत, रूप-रघुनाथ जाने यत,
ताइ लिखि, नाहि मोर दोष॥ 93॥

अनुवाद—मैं कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम भक्त, सभीके चरणकमलोंकी वन्दना करता हूँ कि वे मुझसे सन्तुष्ट हों। मैंने श्रीस्वरूप गोस्वामीके विचारोंको जैसे श्रीरूप और श्रीरघुनाथ गोस्वामीसे श्रवण करके समझा, उसी रूपमें लिखा है। मैंने इसमें अपने विचारानुसार कोई संशोधन नहीं किया है, इसलिये मेरे लिखनेमें कोई दोष नहीं है॥ 93॥

अनुभाष्य—'भजनविज्ञ' (भजनमें दक्ष), 'भजनशील' और 'कृष्णनाममें दीक्षित कृष्णनामकारी'—ये तीन प्रकारके छोटे-बड़े भक्त हैं, सभी मुझपर कृपा करें। कनिष्ठ भक्तोंकी तर्क करनेमें रुचि होती है। वे सिद्धान्त नहीं जानते हैं, परन्तु अपनेको रसिकभक्त मानते हैं। मैंने लीलाके साथ सिद्धान्तको भी लिखा है, परन्तु कहीं ये कनिष्ठ भक्त इसे मेरा पाण्डित्य, भक्तिहीनता और कुतर्कमें निष्ठाका फल मानकर मुझे दोषी समझकर मुझपर कृपा न करें, इस आशङ्कासे मैं विनीत-भावसे निवेदन कर रहा हूँ कि मैं इस विषयमें स्वतन्त्र नहीं हूँ। मैं जिनके चरणकमलोंमें बिका हुआ हूँ, उन श्रीरूप-रघुनाथ-श्रीदामोदरस्वरूपसे जो श्रीगौरलीला-तत्त्व मैंने जाना है, उसीको मैंने लिखा है॥ 93॥

पञ्चतत्त्व, गुरुवर्ग और हरिदास-पण्डितकी वन्दना :—

श्रीचैतन्य, नित्यानन्द, अद्वैतादि भक्तवृन्द,
शिरे धरि सबार चरण।

स्वरूप, रूप, सनातन, रघुनाथेर श्रीचरण,
धूलि करोँ मस्तके भूषण॥ 94॥
पाञा याँर आज्ञाधन, व्रजेर वैष्णवगण,
वन्दोँ ताँर मुख्य हरिदास।
चैतन्यविलास-सिन्धु- कल्लोलेर एक बिन्दु,
तार कणा कहे कृष्णदास॥ 95॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते मध्यखण्डे अन्त्यलीला सूत्रकथने प्रेमोन्माद-प्रलापवर्णनं नाम द्वितीय-परिच्छेदः।

अनुवाद—मैं श्रीचैतन्य महाप्रभु, श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीअद्वैतादि भक्तोंके चरणकमलोंको अपने शीशपर धारण करनेकी अभिलाषा करता हूँ। मैं श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीरूप गोस्वामी, श्रीसनातन गोस्वामी, श्रीरघुनाथ गोस्वामी आदि भक्तोंके श्रीचरणोंकी धूलिको अपने मस्तकका भूषण बनाना चाहता हूँ। इस प्रकार मैं उनकी कृपाकी वाञ्छा करता हूँ। इन सभीकी और व्रजके सभी वैष्णवों, विशेषकर श्रीहरिदास पण्डित (श्रीगोविन्ददेवजीके पुजारी) की आज्ञा पाकर मैं, कृष्णदास, श्रीचैतन्य महाप्रभुकी लीला-विलासके समुद्रकी लहरकी एक बिन्दुके एक कणको कह रहा हूँ॥ **94–95**॥

श्रीचैतन्यचरितामृत मध्यलीलामें अन्त्यलीलाका सूत्ररूपमें प्रेमोन्माद-प्रलाप-वर्णन नामक दूसरे अध्यायका अनुवाद समाप्त।

अनुभाष्य—आदिलीला 8/49–60 संख्या देखें॥ **95**॥

दूसरे अध्यायका अनुभाष्य समाप्त।

चित्र-3

तीसरा अध्याय

कथासार—कटोया-ग्राममें संन्यास ग्रहणके बाद तीन दिनोंतक राढ़देशमें भ्रमण करते-करते महाप्रभुका श्रीनित्यानन्द प्रभुकी चतुराईसे शान्तिपुरके पश्चिम पारमें आगमन हुआ। महाप्रभुने गङ्गाको यमुना समझकर उनकी स्तव-स्तुति की। उसके बाद श्रीअद्वैतप्रभु नौका लेकर आये और महाप्रभुको स्नान करवाकर उन्हें अपने घर ले आये। वहाँपर नवद्वीप धामवासियों और श्रीशचीमाताके साथ महाप्रभुका मिलन हुआ। उनके साथ मिलनेके बाद शचीमाताने भोजन बनाया। जब महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभु भोजन कर रहे थे, तब श्रीनित्यानन्द प्रभुके साथ श्रीअद्वैतप्रभुका नाना प्रकारसे कौतुक हुआ। दोपहरके बाद भक्त समुदायके साथ सङ्कीर्तन होने लगा। इस प्रकार वहाँ कुछ दिन बीतनेके बाद भक्तोंने शचीमाताके साथ परामर्श करके महाप्रभुसे नीलाचलमें रहनेका अनुरोध किया। महाप्रभुने उसे स्वीकार करके श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीमुकुन्द, श्रीजगदानन्द पण्डित और श्रीदामोदर पण्डितको साथ लिया तथा शान्तिपुरके भक्तों और शचीमातासे विदायी लेकर छत्रभोग मार्गसे श्रीपुरुषोत्तमकी यात्रा की।

—(अमृतप्रवाहभाष्य)

संन्यास लेते ही भ्रमण करनेवाले श्रीगौरको प्रणाम :—

न्यासं विधायोत्प्रणयोऽथ गौरो
वृन्दावनं गन्तुमना भ्रमाद् यः।
राढ़े भ्रमन् शान्तिपुरीमयित्वा
ललास भक्तैरिह तं नतोऽस्मि॥1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—संन्यास ग्रहण करनेके बाद श्रीकृष्णप्रेममें वृन्दावन जानेकी इच्छा करनेपर भी भ्रान्तचित्तके कारण राढ़देशमें भ्रमण करते-करते शान्तिपुर पहुँचकर भक्तोंसे भेंट करके हर्षित हुए श्रीगौरचन्द्रको मैं नमस्कार करता हूँ॥1॥

अनुभाष्य—

यः गौरः (विश्वम्भरः) न्यासं (तुर्याश्रमं) विधाय (वेदविहित-संन्यास-संस्कारादिकं गृहीत्वा) उत्प्रणयः (प्रेमाकृष्टः सन्) वृन्दावनं गन्तुमनाः (व्रजगमनोत्सुकमानसः) भ्रमात् (प्राकृतनेत्रेषु भ्रमं प्रदर्शनात्, प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्ति-विलोचनपदं कृष्णधाम प्राकृतचेष्टया दुर्लभं शुद्धभजनलभ्यं चेति प्रदर्शयन्) राढ़े (गङ्गायाः पश्चिमे राष्ट्र
(गत्वा) इह (अस्मिन् शन्तिपुर्यां) भक्तैः सह ललास, तं गौरं नतोऽस्मि।

श्लोक भावानुवाद—जिन विश्वम्भरने वैदिक नियमानुसार संन्यास ग्रहण किया और श्रीकृष्णप्रेममें विह्वल होकर वृन्दावन जानेकी इच्छा की, किन्तु प्रेमावेशमें भ्रमवश राढ़देशमें भ्रमण करते हुए शान्तिपुर पहुँच गये और वहाँ भक्तोंसे मिलकर आनन्दित हुए, उन श्रीगौरचन्द्रको मैं नमस्कार करता हूँ।

(श्रीकृष्णधामकी प्राप्ति केवल प्रेमरूपी अञ्जनसे रञ्जित भक्तिनेत्रोंके द्वारा ही सम्भव है। प्राकृत चेष्टासे इसका पाना अति दुर्लभ है। जड़ीय नेत्र और जड़ीय चेष्टा केवल भ्रम ही उत्पन्न करते हैं, वास्तव वस्तुका दर्शन नहीं, महाप्रभुकी लीला इसी सत्यको दिखानेके लिये हुई)।

'राढ़े'—गङ्गाका पश्चिम प्रदेश॥1॥

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥2॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभुकी जय हो, जय हो; श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो, श्रीअद्वैतचन्द्रकी जय हो तथा समस्त गौरभक्तोंकी जय हो॥2॥

चौबीस वर्षके अन्तमें महाप्रभुका संन्यास-ग्रहण :—

चब्बिश वत्सर शेष येइ माघ-मास।
तार शुक्लपक्षे प्रभु करिल संन्यास॥3॥

अनुवाद—चौबीस वर्षके अन्तमें माघ मासके शुक्लपक्षमें महाप्रभुने संन्यास ग्रहण किया॥3॥

त्रिदण्डि भिक्षुकका गीत पढ़ते हुए महाप्रभुका राढ़देशमें तीन दिन तक भ्रमण :—

संन्यास करि' प्रेमावेशे चलिला वृन्दावन।
राढ़-देशे तिन दिन करिला भ्रमण॥4॥

अनुवाद—संन्यास ग्रहण करनेके बाद महाप्रभु प्रेमके आवेशमें वृन्दावनकी ओर चले, परन्तु वे तीन दिनोंतक राढ़देशमें ही भ्रमण करते रहे॥4॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'राढ़देश'*—'राष्ट्र
बना है। गङ्गाके पश्चिमपार गौड़-भूमिको 'राढ़देश' कहते हैं; इसका एक नाम 'पौण्ड्र
पौण्ड्र
राजधानी थी॥4॥

अमृतानुकणा—(जावालोपनिषत्)—

"यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्।"

अर्थात् 'जिस दिन कोई संसारसे विरक्त होगा, उसी दिन वह प्रव्रज्या (संन्यास) ग्रहण करेगा।' यह बात श्रीमद्भागवत (1/13/27)में और अधिक स्पष्ट रूपसे कहा गयी है—

"यः स्वकात् परतो वेह जातनिर्वेद आत्मवान्।
हृदि कृत्वा हरिं गेहात् प्रव्रजेत् स नरोत्तमः॥"

अर्थात् "जो आत्मज्ञ-व्यक्ति अपने विवेकसे अथवा दूसरोंके उपदेशोंको सुनकर संसारको दुःखपूर्ण समझकर श्रीहरिको अपने हृदयमें धारण करके गृह त्याग करके संन्यास ग्रहण करते हैं, वे नरोत्तम (मनुष्योंमें उत्तम) हैं।" इस प्रकार शास्त्रोंमें संन्यास ग्रहण और अधिकारके विषयमें कहा गया है। पुराणोंमें सर्वश्रेष्ठ श्रीमद्भागवत, याज्ञवल्क्य यति-प्रकरण, पद्मपुराण, स्कन्दपुराण, हारित-संहिता, संवर्त्त-संहिता, दक्ष-संहिता, मनु-संहिता आदि विविध शास्त्रोंमें त्रिदण्ड-संन्यासकी विधिका वर्णन है। किन्तु तो भी कोई-कोई,

"अश्वमेधं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम्।
देवरेण सुतोत्पत्तिं कलौ पञ्च विवर्ज्जयेत्॥"

—इस ब्रह्मवैवर्त्त-पुराणके वाक्यके अनुसार कहते हैं कि कलियुगमें संन्यास ग्रहण करना वर्जित है। समस्त वेद-इतिहास-पुराण जिनके श्वाससे प्रकाशित हुए हैं, उनके भी जो अंशी हैं, वे सर्वावतारी स्वयं भगवान् श्रीगौरसुन्दरने कलियुगमें अवतरित होकर चतुर्थ आश्रमरूप संन्यासको ग्रहण करके महाभारतमें कहे गये विष्णुसहस्रनामके अन्तर्गत अपने 'संन्यासकृत्' नामको सार्थक किया। इसलिये उपरोक्त पुराण वाक्यका तात्पर्य अन्य प्रकारसे ग्रहण करना चाहिये।

"कलियुगमें संन्यास वर्जित है, ऐसा कहनेका भाव यह है—आचार्य-शङ्करके द्वारा प्रवर्त्तित 'सोऽहं', 'अहं ब्रह्मास्मि' आदि अवैध चिन्तनसे उत्पन्न एकदण्ड संन्यास कभी भी ग्रहण करनेके योग्य नहीं है; इसलिये संन्यासको निषिद्ध कहा गया है। त्रिदण्ड संन्यास ही वास्तविक सनातन चतुर्थ आश्रम है। यह सदा ही ग्रहण योग्य है, कभी भी निषिद्ध नहीं है। त्रिदण्ड-संन्यास किसी-किसी समय बाहरसे एकदण्डाकारमें भी देखा जाता है। इस श्रेणीके एकदण्डी संन्यासी महाजन 'सेव्य-सेवक-सेवा'-रूप त्रिदण्डका नित्यत्व स्वीकार करके शङ्कर-प्रवर्त्तित 'एकदण्ड'-संन्यासको सभी प्रकारसे अवैध जानकर ग्रहण करनेके अयोग्य मानते हैं। इसलिये (रघुनन्दन)-स्मार्त्ताचार्यके द्वारा संग्रहीत उक्त वचनोंके बलपर भी निवृतिपथके साधकोंके पक्षमें त्रिदण्ड-संन्यास ग्रहण करना ही उक्त प्रमाणका तात्पर्य है।" (—त्रिदण्डीस्वामी श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज)

श्रीचैतन्यभागवत (मध्यखण्ड 28/154-159)के पाठसे यह जाना जाता है कि श्रीगौरसुन्दरने शङ्कर-सम्प्रदायके

एकदण्डी संन्यासी श्रीमत् केशव-भारतीसे संन्यास ग्रहणके समय पहले श्रीकेशव-भारतीके कानमें संन्यास-मन्त्र प्रदान करके उनको संन्यास प्रदान किया या परात्मनिष्ठामें परिनिष्ठित किया था। उसके बाद उनसे महाप्रभुने अपने द्वारा दिये हुए संन्यास-मन्त्रको ग्रहण किया।

"सर्व-शिक्षागुरु—गौरचन्द्र वेदे बले।
केशव-भारती-स्थाने ताहा कहे छले॥ 154॥
प्रभु कहे,—'स्वप्ने मोर कोन महाजन।
कर्णे संन्यासेर मन्त्र करिल कथन॥ 155॥
बूझ देखि ताहा तुमि हय किवा नहे।'
एत बलि' प्रभु तार कर्णे मन्त्र कहे॥ 156॥
छले प्रभु कृपा करि' तारे शिष्य कैल।
भारतीर चित्ते महा-विस्मय जन्मिल॥ 157॥
प्रभुर आज्ञाय तबे केशव भारती।
सेइ मन्त्र प्रभुरे कहिला महामति॥"159॥

अर्थात् "समस्त वेद श्रीगौरचन्द्रको 'सर्व-शिक्षागुरु' कहते हैं। उन्होंने श्रीकेशव-भारतीसे छलसे कहा,—'स्वप्नमें किसी महाजनने मेरे कानमें यह संन्यास-मन्त्र दिया। देखो, आप इसे समझ पाते हो अथवा नहीं।' यह कहकर महाप्रभुने उनके कानमें मन्त्र कहा। छलसे महाप्रभुने उनपर कृपा करके उन्हें अपना शिष्य बना लिया। यह मन्त्र सुनकर श्रीभारतीके हृदयमें बड़ा विस्मय हुआ और महाप्रभुकी आज्ञासे तब श्रीकेशव भारतीने वही मन्त्र उनको प्रदान किया।"

इस प्रकार स्वयं भगवान् श्रीगौरसुन्दरने शाङ्कर-संन्यासको अस्वीकार करके श्रीमद्भागवतीय त्रिदण्ड-संन्यास ग्रहणका ही दृष्टान्त स्थापित किया। उन्होंने उपरोक्त 'अश्वमेधं---' संन्यास निषेध करनेवाले पुराण-वाक्यके तात्पर्यको प्रकाशित करते हुए शास्त्रीय संन्यास-विधिकी परम सार्थकता स्थापित की। संन्यास ग्रहण करनेके पश्चात् उन्होंने श्रीमद्भागवतीय त्रिदण्डी-भिक्षु-गीतका कीर्तन करते हुए वृन्दावनकी ओर गमनकी लीला की। इसके द्वारा महाप्रभुने संन्यास ग्रहण करनेके तात्पर्य और त्रिदण्ड ग्रहणकर वृन्दावनधाम जानेकी विधिको प्रकाश किया। मनुसंहिता (12/10)—

"वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कायदण्डस्तथैव च।
यस्यैते निहिता बुद्धौ त्रिदण्डीति स उच्यते॥"

अर्थात् "जिसकी बुद्धिमें ये तीन—वाणीपर नियन्त्रण (वाग्दण्ड), मनपर नियन्त्रण (मनोदण्ड) और देहपर नियन्त्रण (कायदण्ड) दृढ़तासे स्थित हैं, उसे ही (वास्तविक) त्रिदण्डी कहा जाता है।" इसलिये वाग्दण्ड, मनोदण्ड और कायदण्ड-ग्रहणरूप त्रिदण्ड-विचारको अस्वीकार करनेसे जीव जिह्वा-मन-कायको अपने नियन्त्रणमें रखनेके स्थानपर उनके अधीन रहेगा। ऐसी अनियन्त्रित इन्द्रियाँ व्यक्तिको व्यभिचारमें प्रवृत होनेके लिये बाध्य करेंगी और वह केवल मायाके चङ्गुलमें ही फंसा रहेगा। ऐसा मायाबद्ध जीव श्रीचैतन्यदेवके द्वारा प्रदर्शित श्रीकृष्णसे विरहका कैसे अनुभव करेगा? अर्थात् वह विप्रलम्भात्मक (विरहमें) भजनमें कभी भी अधिकार नहीं प्राप्त कर सकता। (आदिलीला 3/20)—

"आपनि आचरि' भक्ति शिखामु सबारे।"

अर्थात् "महाप्रभुने स्वयं आचरण करके सभीको भक्तिकी शिक्षा दी।" सर्वलोकगुरु श्रीगौरसुन्दरकी यह त्रिदण्डसंन्यास- ग्रहणलीला एकमात्र उत्तमा-भक्तिकी प्राप्तिके इच्छुक साधक जीवोंके लिये एक विशेष उदाहरण स्थापित करनेके लिये ही हुई, किन्तु कलिसे प्रभावित जीव इसे समझ नहीं पाते॥ 4॥

एइ श्लोक पड़ि' प्रभु भावेर आवेशे।
भ्रमिते पवित्र कैल सब राढ़-देशे॥ 5॥

अनुवाद—महाप्रभुने राढ़देशमें भ्रमण करते हुए उसे पवित्र कर दिया और भावावेशमें एक श्लोक पढ़ा॥ 5॥

श्रौतपन्था-अनुसरणसे ही त्रिदण्डिभिक्षुकी
सिद्धि-प्राप्तिकी आशा :—
(श्रीमद्भागवत 11/23/57 श्लोक)—

एतां समास्थाय परात्म-
निष्ठामुपासितां पूर्वतमैर्महद्भिः।
अहं तरिष्यामि दुरन्तपारं
तमो मुकुन्दाङ्घ्रिनिषेवयैव॥ 6॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥6॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अवन्तीदेशके भिक्षुक ब्राह्मणने कहा,—"प्राचीन महात्माओंके द्वारा उपासित इस परात्म-निष्ठारूप भिक्षुक-आश्रमका आश्रय करके मैं श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी सेवाके द्वारा इस दुस्तर संसाररूप तमः (अज्ञान) से तर जाऊँगा॥"6॥

अनुभाष्य—संसारमें त्रितापसे जलते हुए अवन्तीके त्रिदण्डिभिक्षुने समस्त कायमनोवाक्यके द्वारा भगवान्‌के एकान्त शरणागत होकर सेवा करनेके उद्देश्यसे यह गीत गान किया—

पूर्वतमैः (प्राचीनैः) महद्भिः (महाभागवतैः) उपासितां (सेविताम्) एतां परात्मनिष्ठां (परः "ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः। अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारण-कारणम्॥" इति वचनात् सर्वस्मात् परः यः आत्मा, तस्मिन् या निष्ठा अनर्थनिवृत्त्यनन्तरं नैसर्गिकभजनपरावस्थितिः तां) समास्थाय (आदौ श्रद्धादिक्रम-पन्थानुसारेण सम्यक् प्रकारेण श्रौतमार्गे भजनं कुर्वन्) मुकुन्दाङ्घ्रिनिषेवया (साधन-भावभक्ताख्या) एव दुरन्तपारं (दुस्तरं) तमः (कृष्णसेवारहित-जड़ाहङ्कार-भोगरूप संसाराख्यम् अज्ञानं) तरिष्यामि (कृष्णेतर-कैङ्कर्यवासनां त्यक्तवा अतिक्रमिष्यामि)।

श्लोक-भावानुवाद—"प्राचीनकालमें महाभागवतोंके द्वारा सेवित इस परात्म-निष्ठा ['परः'—"ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः। अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्॥" ब्रह्मसंहिताके इस वचनके द्वारा जो सबसे श्रेष्ठ आत्मा (श्रीकृष्ण) हैं, उनमें निष्ठा अर्थात् अनर्थ निवृत्तिके उपरान्त स्वाभाविक भजन-परायणता]के द्वारा [श्रद्धासे प्रेम तक क्रमपथका सम्पूर्णरूपसे श्रौतमार्ग (गुरुसे श्रवण किये ज्ञान)के अनुसार] भजन करते हुए श्रीकृष्णसेवासे इस दुस्तर अन्धकारसे [श्रीकृष्णसेवारहित जड़-अहङ्कार-भोगरूप संसार कहलानेवाले अज्ञानसे] तर जाऊँगा अर्थात् श्रीकृष्णके अतिरिक्त मैं अन्य किसीका सेवक हूँ, इस भावका अतिक्रमण कर जाऊँगा।"

चौंसठ प्रकारके भक्तिके अङ्गोंमें 'वैष्णवचिह्नधारण'के अन्तर्गत चतुर्थाश्रम (संन्यास)के लिये उचित वेष-धारण करना एक अङ्ग है। जो यह चतुर्थाश्रमोचित वेष धारण करते हैं, उनका ही मुकुन्दसेवाके द्वारा संसारसे उद्धार होता है। परमात्मनिष्ठ व्यक्ति त्रिदण्डिभिक्षुका वेष धारण करते हैं। पूर्वकालमें महर्षिगण त्रिदण्डिवेश धारण करते थे, बादमें विष्णुस्वामीने कलियुगमें त्रिदण्डवेशको ही 'परात्मनिष्ठा' कहकर मुकुन्दसेवामें निष्ठाका प्रचलन किया। ऐकान्तिक-भक्तिनिष्ठ वैष्णव उस त्रिदण्डके साथ चतुर्थ 'जीवदण्ड'को जोड़ देते हैं, तो भी वैष्णव संन्यासी त्रिदण्डि-संन्यासी कहलाते हैं। मायावादी संन्यासी एकदण्ड ग्रहण करते हैं, वे त्रिदण्डके तात्पर्यको नहीं समझ पाते। विष्णुस्वामीके परवर्ती कालमें शिवस्वामी सम्प्रदायके लोगोंने निर्विशेष-ब्रह्मज्ञानको लक्ष्य करके शङ्कराचार्यके एकदण्ड संन्यासके आदर्शको अपनाकर सेव्य-सेवक-भाव अर्थात् मुकुन्दसेवाका परित्याग कर दिया। विष्णुस्वामी सम्प्रदायके द्वारा प्रवर्तित संन्यासके एक सौ आठ नामोंके स्थानपर केवलाद्वैतवादी संन्यासी दस नामोंको ही ग्रहण करते हैं।

श्रीगौरसुन्दरने यद्यपि भारतकी तात्कालिक प्रथाके अनुसार एकदण्ड-संन्यास ग्रहण किया था, तथापि उस एकदण्डके भीतर चतुष्दण्ड एकीभूत था,—यही प्रचार करनेके लिये उन्होंने श्रीमद्भागवतमें वर्णित त्रिदण्डि-भिक्षुके गीतका गान किया। श्रीगौरसुन्दरने कभी भी परात्मनिष्ठाके अभाववाले एकदण्ड संन्यासका अनुमोदन नहीं किया। त्रिदण्डी संन्यासी त्रिदण्डके साथ जीवदण्डके संयोगसे ऐकान्तिकी भक्तिका विधान करके रखते हैं। अप्राकृत भक्तिरहित एकदण्डि-संन्यासी निर्विशेष मतका अवलम्बन करनेके कारण परात्मनिष्ठासे विमुख होते हैं, इसलिये वे ब्रह्म नामक प्रकृतिमें लीन होकर निर्विशेष होनेको ही 'मुक्ति' मानते हैं। आर्यवर्त्तके (भारतके) मायावादी लोग श्रीचैतन्यदेवको उनके बाह्यज्ञानके कारण त्रिदण्डी न मानकर एकदण्डी संन्यासी ही मानते हैं, यह उनका भ्रम ही है। श्रीमद्भागवतमें एकदण्ड संन्यासका कहीं भी वर्णन नहीं है, त्रिदण्ड-धारणको ही चतुर्थ आश्रमका एकमात्र वेश कहा गया है। भगवान्‌की बहिरङ्गा शक्तिसे

मोहित मायावादी लोग यह समझ नहीं पाते हैं कि श्रीगौरसुन्दर श्रीमद्भागवतकी वाणीका बहुत आदर करते हैं।

श्रीचैतन्यदेवकी शिक्षानुसार आज तक उनके अनुगत भक्तोंमें शिखा और सूत्र (जनेऊ) युक्त संन्यास प्रचलित है। एकदण्डि-मायावादी लोग शिखा और सूत्रका परित्याग करते हैं, इसलिये वे त्रिदण्डका माहात्म्य समझनेमें असमर्थ हैं, क्योंकि उनमें श्रीभगवान्‌की सेवा करनेकी वृत्ति नहीं है। उनका चित्त विषयकी सेवामें निमग्न होनेसे वे धैर्यहीन होकर सेव्य-सेवक-भावका त्याग करके ब्रह्ममें लीन होनेका विचार करते हैं। दैव-वर्णाश्रम (गीता एवं भागवतके अनुसार गुण-कर्मके आधारपर वर्णाश्रमका निर्णय) प्रवर्त्तनकारी आचार्यगण असुरवर्णाश्रम (जन्मके आधारपर वर्णाश्रमका निर्णय) वालोंके ज्ञान और चिन्तन-धारा आदि किसीको भी ग्रहण नहीं करते हैं।

श्रीगौरसुन्दरके अत्यन्त अन्तरङ्ग भक्त, श्रीमद्भागवत शास्त्रमें परम प्रवीण श्रीमद् गदाधर पण्डित गोस्वामी प्रभुने स्वयं त्रिदण्ड संन्यासका विचार ग्रहण किया और श्रीमाधव उपाध्यायको त्रिदण्ड संन्यास प्रदान किया। इन्हीं श्रीमाधवाचार्यसे ही पश्चिम भारतमें वल्लभाचार्य-सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई है। गौड़ीय-वैष्णव-स्मृत्याचार्य श्रीगोपालभट्टने अपने श्रीगुरुदेव त्रिदण्डिस्वामी श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीसे किस प्रकार त्रिदण्डि-विधानमें दीक्षित होकर वेश ग्रहण किया, इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। तथापि श्रीरूप गोस्वामीके द्वारा रचित 'श्रीउपदेशामृत'के प्रथम श्लोकमें निहित त्रिदण्ड-विधानका आनुगत्य श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीमें उत्तम रूपमें प्रकाशित होता था। श्रीगौरसुन्दरके अनुगत भक्त केवलाद्वैत-विचारसे 'एकदण्ड'-संन्यासको कभी भी ग्रहण नहीं करते। शिखाका मुण्डन और सूत्रका त्यागकर भगवान्‌को निर्विशेष ब्रह्म कहनेवाले संन्यासी अपनी विचार-प्रणालीको गौड़ीय-वैष्णव-सम्प्रदायमें प्रचलित करनेमें कभी सफल नहीं हुए हैं।

त्रिदण्डि-श्रीधर स्वामीकी प्रणालीका श्रीगौरसुन्दरने अनुमोदन किया है। केवलाद्वैतवादी लोग श्रीधर स्वामीकी शुद्धाद्वैत-विचार-प्रणालीको न समझकर उन्हें भी अपने सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त करना चाहते हैं, परन्तु श्रीगौरसुन्दरका यह विचार नहीं है॥ 6॥

त्रिदण्डि-भिक्षुकी कृष्णसेवा-निष्ठा-दर्शनसे सुख :—

प्रभु कहे,—"साधु एइ भिक्षुक-वचन।
मुकुन्द सेवन-व्रत कैल निर्धारण॥ 7॥
परात्मनिष्ठा-मात्र वेष-धारण।
मुकुन्द-सेवाय हय संसार-तारण॥ 8॥
सेइ वेष कैल, एबे वृन्दावन गिया।
कृष्णनिषेवण करि निभृते बसिया॥"9॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"इस भिक्षुकके वचन अति सुन्दर हैं, क्योंकि उसने मुकुन्दसेवाका व्रत ग्रहण किया है। परात्मनिष्ठा ही संन्यास वेश धारण करनेका एकमात्र तात्पर्य है। मुकुन्द सेवासे ही संसारसे मुक्ति मिलती है। संन्यास वेश धारण करके मैं अब वृन्दावन जाकर किसी एकान्त स्थानमें वास करके केवल श्रीकृष्णका भजन और सेवा करूँगा॥"7–9॥

अमृतप्रवाह भाष्य—संन्यासवेश ग्रहण करके महाप्रभुने कहा,—"भिक्षुकके ये वचन साधु (सुन्दर) हैं, क्योंकि इनके द्वारा श्रीकृष्ण-चरणकमलोंकी सेवारूपी व्रत निर्धारित हुआ है।" जड़ात्म-निष्ठाका निषेध करके परात्मनिष्ठा ही संन्यासवेश धारण करनेका तात्पर्य है॥ 7–8॥

महाप्रभुकी प्रेमोन्मत्त अवस्थामें वृन्दावन-यात्रा :—

एत बलि' चले प्रभु, प्रेमोन्मादेर चिह्न।
दिक्-विदिक्-ज्ञान नाहि, किवा रात्रि-दिन॥ 10॥

अनुवाद—यह कहकर महाप्रभु वहाँसे वृन्दावनकी ओर चले। उनके शरीरमें प्रेमोन्मादके चिह्न उदित हो गये और उस प्रेमोन्मादमें उन्हें न तो दिशा-विदिशा और न ही रात्रि-दिनका ज्ञान रहा॥ 10॥

महाप्रभुके पीछे चलनेवाले निताइ,
चन्द्रशेखर और मुकुन्द :—

नित्यानन्द, आचार्यरत्न, मुकुन्द,—तिनजन।
प्रभु-पाछे-पाछे तिने करेन गमन॥ 11॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीचन्द्रशेखर आचार्य और श्रीमुकुन्द प्रभु,—ये तीनों भी महाप्रभुके पीछे-पीछे चले॥ 11॥

महाप्रभुके दर्शन मात्रसे लोगोंका उद्धार :—

येइ येइ प्रभु देखे, सेइ सेइ लोक।
प्रेमावेशे 'हरि' बले, खण्डे दुःख-शोक॥ 12॥

बालकोंके प्रति महाप्रभुका स्नेह :—

गोप-बालक सब प्रभुके देखिया।
'हरि' 'हरि' बलि' डाके उच्च करिया॥ 13॥

शुनि' ता-सबार निकटे गेला गौरहरि।
'बल' 'बल' बले सबार शिरे हस्त धरि'॥ 14॥

ता'-सबार स्तुति करे,—"तोमरा भाग्यवान्।
कृतार्थ करिले मोरे शुनाञा हरिनाम॥"15॥

अनुवाद—जिस-जिसने महाप्रभुके दर्शन किये, वह भी प्रेमावेशमें 'हरि' 'हरि' बोलने लगता और उसके समस्त दुःख-शोक दूर हो जाते। वहाँके गोप-बालक भी महाप्रभुको देखकर उच्च स्वरसे 'हरि' 'हरि' बोलने लगे। श्रीगौरहरि उनकी हरिध्वनि सुनकर उन गोप-बालकोंके पास गये और उनके सिरोंपर हाथ रखकर उनसे पुनः पुनः 'हरि' 'हरि' बोलनेके लिये कहने लगे। तब महाप्रभुने उन सबकी स्तुति करते हुए कहा,—"तुम लोग बड़े सौभाग्यवान् हो। तुमने मुझे हरिनाम सुनाकर कृतार्थ किया है॥"12-15॥

श्रीनित्यानन्दकी चतुरायी और बालकोंको
एकान्तमें उपदेश :—

गुप्ते ता-सबाके आनि' ठाकुर नित्यानन्द।
शिखाइला सबाकारे करिया प्रबन्ध॥ 16॥

"वृन्दावन-पथ प्रभु पुछेन तोमारे।
गङ्गातीर-पथ तबे देखाइह ताँरे॥"17॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभुने उन गोप बालकोंको एकान्तमें जाकर कुछ बात बतलायी जिसका उन्हें विश्वास हो गया। श्रीनित्यानन्द प्रभुने उनसे कहा,—"यदि महाप्रभु तुमसे वृन्दावनका मार्ग पूछें, तो उन्हें गङ्गाके किनारेका मार्ग दिखला देना॥"16-17॥

अनुभाष्य—*'प्रबन्ध'*—सुसङ्गत कहानीकी रचना॥ 16॥

महाप्रभुके द्वारा बालकोंसे वृन्दावन जानेका मार्ग पूछनेपर
बालकोंका उनको नवद्वीप-पथ दिखाना :—

तबे प्रभु पूछिलेन,—"शुन, शिशुगण।
कह देखि, कोन् पथे याब वृन्दावन॥"18॥

शिशु सब गङ्गातीरपथ देखाइल।
सेइ पथे आवेशे प्रभु गमन करिल॥ 19॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने उन बालकोंसे पूछा—"हे बच्चों सुनो! वृन्दावन जानेका कौनसा मार्ग है?" सब बालकोंने गङ्गाके किनारेका पथ उन्हें दिखला दिया। महाप्रभु आवेशमें उस पथपर चले गये॥ 18-19॥

सब प्रकारकी आवश्यकताओंकी पूर्ति हेतु और चारों ओर
महाप्रभुके आगमनकी सूचना देनेके लिये श्रीनिताइके द्वारा
श्रीचन्द्रशेखरको शान्तिपुरमें भेजना :—

आचार्यरत्नेरे कहे नित्यानन्द-गोसाञि।
"शीघ्र याह तुमि अद्वैत-आचार्येर ठाञि॥ 20॥

प्रभु लये याब आमि ताँहार मन्दिरे।
सावधाने रहेन येन नौका लञा तीरे॥ 21॥

तबे नवद्वीपे तुमि करह गमन।
शचीमाता लञा आइस आर भक्तगण॥"22॥

अनुवाद—तब श्रीनित्यानन्द प्रभुने श्रीचन्द्रशेखर आचार्यको कहा,—"आप तुरन्त ही श्रीअद्वैताचार्यके घर जाँय। मैं महाप्रभुको शान्तिपुर ले आऊँगा और श्रीअद्वैताचार्य वहीं गङ्गाके किनारे सावधानीपूर्वक एक

नौकामें हमारी प्रतीक्षा करें। तब आप नवद्वीप जाकर शचीमाताके साथ सभी भक्तोंको लेकर शान्तिपुर आ जाना॥"20–22॥

महाप्रभुके सामने निताइका अचानक आगमन :—

ताँरे पाठाइया नित्यानन्द महाशय।
महाप्रभुर आगे आसि' दिल परिचय॥23॥

अनुवाद—श्रीचन्द्रशेखर आचार्यको भेजकर श्रीनित्यानन्द प्रभु महाप्रभुसे आगे निकलकर उनके सामने आये॥23॥

श्रीनित्यानन्दको देखकर महाप्रभुकी जिज्ञासा और श्रीनिताइका छल :—

प्रभु कहे,—"श्रीपाद, तोमार कोथाके गमन।"
श्रीपाद कहे,—"तोमार सङ्गे याब वृन्दावन॥"24॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"श्रीपाद! आप कहाँ जा रहे हैं?" श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा,—"मैं भी आपके साथ वृन्दावन जाऊँगा॥"24॥

गङ्गाको यमुना कहकर दिखलाना :—

प्रभु कहे,—"कत दूरे आछे वृन्दावन।"
तेँहो कहेन,—"कर एइ यमुना दरशन॥"25॥

अनुवाद—महाप्रभुने पूछा,—"वृन्दावन कितनी दूर है?" श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा,—"वह देखिये, सामने ही श्रीयमुनाके दर्शन कीजिये॥"25॥

महाप्रभुको गङ्गाके दर्शनसे यमुनाका उद्दीपन :—

एत बलि' आनिल ताँरे गङ्गा-सन्निधाने।
आवेशे प्रभुर हैल गङ्गारे यमुना-ज्ञाने॥26॥

अनुवाद—यह कहकर श्रीनित्यानन्द प्रभु उन्हें गङ्गाके तटपर ले आये। आवेशमें डूबे हुए महाप्रभुने गङ्गाको यमुना ही समझा॥26॥

महाप्रभुके द्वारा यमुनाका स्तव :—

"अहो भाग्य, यमुनारे पाइलुँ दरशन।"
एत बलि' यमुनार करेन स्तवन॥27॥

अनुवाद—"मेरा अहो भाग्य है कि मैंने यमुनाका दर्शन पाया है।"—यह कहकर महाप्रभु यमुनाकी स्तव-स्तुति करने लगे॥27॥

चैतन्यचन्द्रोदयनाटक (5/13)में उद्धृत पद्मपुराणवाक्य :—

चिदानन्दभानोः सदा नन्दसूनोः
परप्रेमपात्री द्रवब्रह्मगात्री।
अघानां लवित्री जगत्क्षेमधात्री
पवित्रीक्रियान्नो वपुर्मित्रपुत्री॥28॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥28॥

अमृतप्रवाह भाष्य—चिदानन्दसूर्यस्वरूप नन्दनन्दनकी सर्वदा प्रेमकी पात्री, ब्रह्मद्रवस्वरूपिणी, पापनाशिनी, जगत्‌की मङ्गलकारिणी, सूर्यपुत्री यमुना हमारे शरीरोंको पवित्र करें॥28॥

अनुभाष्य—

चिदानन्दभानोः (सम्वित्प्रीतिप्रकाशकस्य) नन्दसूनोः (कृष्णस्य) सदा (नित्यं) परप्रेमपात्री (परमप्रीतिप्रदात्री) द्रवब्रह्मगात्री (चित्सलिलरूपा) अघानाम् (अपराधानां) लवित्री (विनाशयित्री) जगत्क्षेमधात्री (जगतां लोकानां मङ्गलविधात्री) मित्रपुत्री (रविसुता कालिन्दी यमुना) नः (अस्माकं) वपुः [दिव्यज्ञानेन] पवित्रीक्रियात् (शुद्धी कुर्यात्)।

श्लोक-भावानुवाद—प्रीति-प्रकाशक सम्वित्‌के अधिष्ठाता नन्दनन्दन श्रीकृष्णकी नित्य परम प्रीतिको प्रदान करनेवाली, चिन्मय जलरूपा, अपराधोंका विनाश करनेवाली, जगत्‌के मङ्गलका विधान करनेवाली हे सूर्यपुत्री यमुना! हमारा दिव्यज्ञानके द्वारा शोधन करो॥28॥

एक कौपीनमात्र ही महाप्रभुका सहारा :—

एत बलि' नमस्करि' कैल गङ्गास्नान।
एक कौपीन, नाहि द्वितीय परिधान॥29॥

अनुवाद—यह कहकर महाप्रभुने नमस्कार करके गङ्गामें स्नान किया। महाप्रभुने जो कौपीन पहना था, उसके अतिरिक्त उनके पास दूसरा कोई वस्त्र नहीं था॥29॥

श्रीअद्वैताचार्यका आगमन :—

हेनकाले आचार्य-गोसाञि नौकाते चड़िञा।
आइल नूतन कौपीन-बहिर्वास लञा॥ 30॥

श्रीअद्वैतके दर्शनसे महाप्रभुको सन्देह और जिज्ञासा :—

आगे आचार्य आसि' रहिला नमस्कार करि'।
आचार्य देखि' बले प्रभु मने संशय करि'॥ 31॥

"तुमि त' आचार्य-गोसाञि, एथा केने आइला।
आमि वृन्दावने, तुमि केमते जानिला॥"32॥

श्रीअद्वैतका सरल भावसे महाप्रभुको उत्तर देना :—

आचार्य कहे,—"तुमि याँहा, सेइ वृन्दावन।
मोर भाग्ये गङ्गातीरे तोमार आगमन॥"33॥

अनुवाद—उस समय श्रीअद्वैताचार्य नौकामें नये कौपीन और बहिर्वास (बाहर पहननेवाले कपड़े) लेकर आये और महाप्रभुके सामने आकर उन्हें प्रणाम किया। श्रीअद्वैताचार्यको देखकर महाप्रभुके मनमें संशय हुआ। [महाप्रभु अभी आवेशमें ही थे, इसलिये] उन्होंने उनसे पूछा,—"आप तो अद्वैताचार्य हैं ना, आप यहाँ कैसे आये? मैं वृन्दावनमें हूँ, यह आपने कैसे जाना?" श्रीअद्वैताचार्यने कहा,—"आप जहाँपर हैं, वह स्थान ही वृन्दावन है। यह मेरा सौभाग्य है कि आप गङ्गातटपर आये हैं॥"30–33॥

श्रीअद्वैतके समक्ष श्रीनिताइकी चतुरायीका वर्णन :—

प्रभु कहे,—"नित्यानन्द आमारे वञ्चिला।
गङ्गाके आनिया मोरे यमुना कहिला॥"34॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने कहा,—"नित्यानन्दने मेरे साथ छल किया। मुझे गङ्गाके तटपर लाकर उन्होंने इसे यमुना बतलाया॥"34॥

श्रीअद्वैतके द्वारा श्रीनिताइ-वाक्यका समर्थन
और सत्यताका प्रतिपादन :—

आचार्य कहे,—"मिथ्या नहे श्रीपाद-वचन।
यमुनाते स्नान तुमि करिला एखन॥ 35॥

गङ्गाय यमुना बहे हञा एकधार।
पश्चिमे यमुना बहे, पूर्वे गङ्गाधार॥ 36॥

महाप्रभुको नया कौपीन देना और निमन्त्रण :—

पश्चिमधारे यमुना बहे, ताँहा कैले स्नान।
आर्द्र कौपीन छाड़ि' शुष्क कर परिधान॥ 37॥

प्रेमावेशे तिन दिन आछ उपवास।
आजि मोर घरे भिक्षा, चल मोर वास॥ 38॥

कहीं महाप्रभु अस्वीकार न करें, इसी भयसे अपने घरमें
भिक्षाकी सामग्रीका सामान्य रूपसे वर्णन :—

एकमुष्टि अन्न मुञि करियाछोँ पाक।
शुखरुखा व्यञ्जन कैलुँ, सूप आर शाक॥"39॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्यने कहा,—"श्रीपाद नित्यानन्दके वचन मिथ्या नहीं हैं। आपने अभी यमुनामें ही स्नान किया है। (प्रयागके बाद) गङ्गा और यमुना मिलकर एक धाराके रूपमें बहती हैं, पश्चिमकी ओरवाली धारा यमुना है और पूर्वकी ओरवाली धारा गङ्गा है। पश्चिम धारामें यमुना बह रही हैं, वहीं आपने स्नान किया। अब आप गीले कौपीनको छोड़कर सूखे वस्त्र धारण करें। प्रेमके आवेशमें आपने तीन दिनतक उपवास किया है। आज मेरे घर चलकर भिक्षा ग्रहण करें। मैंने केवल एक मुट्ठी भर अन्न (चावल) पकाया है। साथमें एक सूखी सब्जी, एक रसेवाली सब्जी और शाक है॥"35–39॥

अनुभाष्य—*'शुखरुखा व्यञ्जन'*—सूखी सब्जी; *'सूप'*—रसा॥ 39॥

महाप्रभुको शान्तिपुरमें अपने घरमें लाना और सत्कार :—

एत बलि' नौकाय चड़ाञा निल निज-घर।
पादप्रक्षालन कैल आनन्द-अन्तर॥ 40॥

अनुवाद—यह कहकर श्रीअद्वैताचार्य महाप्रभुको नौकापर चढ़ाकर अपने घर ले आये। घर पहुँचकर महाप्रभुके चरणोंको धोकर श्रीअद्वैताचार्यके हृदयमें बहुत आनन्द हुआ॥ 40॥

सीता-ठाकुराणीके द्वारा रसोई और स्वयं श्रीअद्वैताचार्यके द्वारा भोग-निवेदन :—

प्रथमे पाक करियाछेन आचार्याणी।
विष्णु-समर्पण कैल आचार्य आपनि॥ 41॥

दोनों प्रभु (महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द) और श्रीकृष्ण—इन तीनोंके लिये तीन पात्रोंमें नैवेद्यको सजाना :—

तिनठाञि भोग बाड़ाइल सम करि’।
कृष्णेर भोग बाड़ाइल धातु-पात्रोपरि॥ 42॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्यकी पत्नी सीता ठाकुराणीने पहलेसे ही भोग बना रखा था और तब श्रीअद्वैताचार्यने उसे भगवान् विष्णुको निवेदन किया। उन्होंने उस भोगको तीन बराबर भागोंमें सजाया। उनमेंसे एक भागको धातुके पात्रके ऊपर रखकर उसे श्रीकृष्णको निवेदनके लिये रखा॥ 41-42॥

नैवेद्यका वर्णन :—

बत्तिशा-आठिया-कलार आङ्गटिया पाते।
दुइ ठाञि भोग बाड़ाइल भाल मते॥ 43॥

मध्ये पीत-घृतसिक्त शाल्यन्नेर स्तूप।
चारिदिके व्यञ्जन-डोङ्गा, आर मुदगसूप॥ 44॥

साद्रक, वास्तुक-शाक विविध प्रकार।
पटोल, कुष्माण्ड-बड़ि, मानकचु आर॥ 45॥

चइ-मरिच-सुख्‌त दिया सब फल-मूले।
अमृतनिन्दक पञ्चविध तिक्त-झाले॥ 46॥

कोमल निम्बपत्र सह भाजा वार्त्ताकी।
पटोल-फुलबड़ि-भाजा, कुष्माण्ड-मानचाकि॥ 47॥

नारिकेल-शस्य, छाना, शर्करा मधुर।
मोचाघण्ट, दुग्धकुष्माण्ड, सकल प्रचुर॥ 48॥

मधुराम्लबड़ा, अम्लादि पाँच-छय।
सकल व्यञ्जन कैल लोके यत हय॥ 49॥

मुदगबड़ा, माषबड़ा, कलाबड़ा, मिष्ट।
क्षीरपुली, नारिकेल, यत पिठा इष्ट॥ 50॥

बत्तिशा-आठिया-कलार डोङ्गा बड़ बड़।
चले हाले नाहि, डोङ्गा अति बड़ दढ़॥ 51॥

पञ्चाश पञ्चाश डोङ्गा व्यञ्जने पूरिञा।
तिन भोगेर आशे पाशे राखिल धरिञा॥ 52॥

सघृत-पायस नव-मृत्कुण्डिका भरिञा।
तिन पात्रे घनावर्त्त-दुग्ध राखेत धरिञा॥ 53॥

दुग्ध-चिड़ा-कला आर दुग्ध-लक्‌लकी।
यतेक करिल, ताहा कहिते ना शकि॥ 54॥

दुइ पाशे धरिल सब मृत्कुण्डिका भरि’।
चाँपाकला-दधि-सन्देश कहिते ना पारि॥ 55॥

अनुवाद—‘बत्तिशा-आठिया-कला’ अर्थात् जिस केलेके वृक्षकी डालपर कम-से-कम बत्तीस केलोंका गुच्छा आता है, उस वृक्षके अखण्ड (कहींसे भी न कटे) पत्तोंके ऊपर निम्नलिखित व्यञ्जनोंवाले भोगके बाकी दो भागोंको अच्छी प्रकार सजाकर रखा। भोगपात्रके बीचमें पीले रङ्गके घीसे युक्त उत्तम धानके चावलको स्तूपके आकारमें रखा गया तथा उस चावलके स्तूपके चारों ओर केलेके पत्तेसे बने दोनोंमें नाना प्रकारके व्यञ्जन सजाये गये। उनमें मूँगकी दाल, अनेक प्रकारके साग, परमल, कच्चे पेठेके साथ दाल मिलाकर बनायी गयी बड़ी, अरबी आदिको सजाया गया। तीखी मिर्च अथवा तीखे और कटु मसालोंके साथ कच्चे केले, पपीते, कन्दमूल, मूली आदिके द्वारा बनायी गयी पाँच प्रकारकी ऐसी तरकारियाँ, जो अमृतको भी निन्दित करने वाली थीं।

इन व्यञ्जनोंमें कोमल-कोमल नीमके पत्तेसे युक्त बैंगन, परमल और नर्म बड़ीका भाजा तथा सरसोंका छोंक लगाकर कच्चे पेठे और अरबीकी सूखी सब्जी थी। नारियलके गूदे, पनीर और शक्करसे बना हुआ मधुर मिष्ठान, केलेके फूलसे बनी सब्जी, दूधमें कच्चे पेठेको डालकर बनाया गया व्यञ्जन—ये सभी प्रचुर मात्रामें बनाये गये थे। खट्टा-मीठा बड़ा, पाँच-छह

प्रकारके खट्टे पदार्थादि तथा जितने प्रकारके व्यञ्जन लोक-प्रसिद्ध हैं, उन्हें भी भोगमें सजाया। मूँगकी दालका बड़ा, उड़दकी दालका बड़ा, केलेका बड़ा, रबड़ी और नारियल और अनेक प्रकारका पीठा बनाया गया था। बत्तिशा-आठिया केलेके पत्तोंके दोने बड़े और बहुत मजबूत थे, इसलिये वे हिल-डुल नहीं रहे थे। इस प्रकार पचास-पचास दोने व्यञ्जनोंसे भरकर तीनों भोगोंके आस-पास रखे गये थे। घीसे बनी खीरको नये मिट्टीके बर्तनोंमें भरकर रखा गया था तथा तीन पात्रोंमें दूधको गाढ़ा करके बनायी रबड़ी भी रखी गयी। चिड़वा और केलेको दूधमें मिलाकर बनाये गये व्यञ्जन तथा लौकीकी खीर आदि जितने और व्यञ्जन प्रस्तुत किये गये, जिनका वर्णन करना सम्भव नहीं है, वे मिट्टीके कसोरोंमें रखे हुए थे। छोटे-छोटे केले, दही और सन्देश आदि विविध प्रकारके व्यञ्जन भी थे, जिनका वर्णन करना सम्भव नहीं है॥ 44–55॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'बत्तिशा-आठिया-कलार आङ्गटिया'*—जिसमें बत्तीस या अधिक केलोंका गुच्छा आता है, ऐसा केलेका वृक्ष। आङ्गटिया अर्थात् अखण्ड केलेका पत्ता॥ 43॥

अनुभाष्य—ग्रन्थकार श्रील कविराज गोस्वामी अपनी पाक-कलाके नैपुण्यको सुन्दर रूपसे प्रदर्शित कर रहे हैं। *'लोके'*—जगत्‌में। *'इष्ट'*—प्रयोजनीय, वाञ्छित। *'चले-हाले नाहि'*—हिलता-डुलता नहीं। *'दढ़'*—दृढ़, मजबूत। *'शकि'*—कर सकता हूँ॥ 44–55॥

नैवेद्यके ऊपर तुलसी और उसके साथ
आचमन-जल प्रदान करना :—

अन्न-व्यञ्जन-उपरि दिल तुलसीमञ्जरी।
तिन जलपात्रे सुवासित जल भरि'॥ 56॥

तिन शुभ्रपीठ, तार उपरि वसन।
कृष्णेर भोग साक्षात् कृष्णे कराइल भोजन॥ 57॥

अनुवाद—तब श्रीअद्वैताचार्यने उन सब अन्न और व्यञ्जनोंके ऊपर तुलसी मञ्जरी रख दी और तीन जलपात्रोंमें सुगन्धित जल भरकर रख दिया तथा भोग लगानेके उद्देश्यसे तीन सुन्दर लकड़ीके आसनोंपर कपड़ा बिछा दिया। इस प्रकार श्रीअद्वैताचार्यने भगवान् श्रीकृष्णके लिये सजाये गये भोगको साक्षात् श्रीकृष्ण (महाप्रभु)को भोजन कराया॥ 56–57॥

अनुभाष्य— *'साक्षात् कृष्णे'*—श्रीमन् महाप्रभुको॥ 57॥

स्वयं श्रीअद्वैतके द्वारा आरती-सम्पादन और दोनों
प्रभुओंका अपने भक्तोंके साथ आरती-दर्शन :—

आरतिर काले दुइ प्रभु बोलाइल।
प्रभु-सङ्गे सबे आसि' आरति देखिल॥ 58॥

अनुवाद—भोग निवेदन करनेके बाद भोग-आरतीके समय श्रीअद्वैताचार्य प्रभुने महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभुको बुलवा लिया। महाप्रभुके साथ आकर सभी भक्तोंने आरतीके दर्शन किये॥ 58॥

ठाकुरको शयन प्रदान करना :—

आरति करिया कृष्णे करा'ल शयन।
आचार्य आसि' प्रभुरे तबे कैला निवेदन॥ 59॥

दोनों प्रभुओंका भोजन करनेके लिये
घरके भीतर आना :—

दुइ भाइ आइला तबे करिते भोजन।
गृहेर भितरे प्रभु करेन गमन॥ 60॥

अनुवाद—आरती करके श्रीअद्वैताचार्य प्रभुने श्रीकृष्णको शयन कराया और महाप्रभुके पास आकर घरके भीतर आनेका निवेदन किया। उनकी प्रार्थनाको सुनकर दोनों भाई भोजन करनेके लिये अन्दर आये॥ 59–60॥

मुकुन्द और हरिदासको भोजनके लिये प्रार्थना करनेपर
उन दोनोंकी अपनी मर्यादाकी रक्षा और दैन्य-विनय :—

मुकुन्द, हरिदास,—दुइ प्रभु बोलाइल।
योड़हाते दुइ जन कहिते लागिल॥ 61॥

मुकुन्द बले,—"मोर किछु कृत्य नाहि सरे।
पाछे मुञि प्रसाद पामु, तुमि याह घरे॥"62॥

हरिदास बले,—"मुञि पापिष्ठ अधम।
बाहिरे एक मुष्टि पाछे करिमु भोजन॥"63॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने श्रीमुकुन्द और श्रीहरिदासको भी भोजन करनेके लिये घरके भीतर आनेके लिये कहा। उनकी बात सुनकर श्रीमुकुन्द और श्रीहरिदास हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगे। श्रीमुकुन्दने कहा,—"मेरा कुछ नित्यकार्य अभी बाकी हैं, इसलिये मैं बादमें प्रसाद पाऊँगा, आप भीतर जाइये।" श्रीहरिदासने कहा,—"मैं पापी और अधम हूँ, इसलिये बाहर बैठकर बादमें एक मुट्ठी प्रसाद ग्रहण करूँगा॥"61-63॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'कृत्य नाहि सरे'*—कर्त्तव्य कुछ बाकी है॥62॥

प्रसादके दर्शनसे महाप्रभुको आनन्द
और श्रीअद्वैतको सम्मान देना :—

दुइ प्रभु लञा आचार्य गेला भितर-घरे।
प्रसाद देखिया प्रभुर आनन्द अन्तरे॥64॥
"ऐछे अन्न ये कृष्णके कराय भोजन।
जन्मे जन्मे शिरे धरोँ ताँहार चरण॥"65॥

अनुवाद—महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभुको जब श्रीअद्वैताचार्य घरके भीतर ले गये, तब प्रसादको देखकर आनन्दित होकर महाप्रभुने कहा,—"जो व्यक्ति इस प्रकार श्रीकृष्णको अन्न-व्यञ्जनादि अर्पण कर भोजन कराता है, मैं उसके चरणोंको जन्म-जन्मान्तर तक अपने सिरपर धारण करता हूँ॥"64-65॥

महाप्रभुको न बतलाकर श्रीअद्वैतका दोनों
प्रभुओंके लिये आसन प्रदान करना :—

प्रभु जाने तिन भोग—कृष्णेर नैवेद्य।
आचार्येर मन-कथा नहे प्रभुर वेद्य॥66॥

अनुवाद—महाप्रभुने यह समझा कि तीनों भोग श्रीकृष्णको समर्पित हुए हैं, परन्तु श्रीअद्वैताचार्यके मनकी बातको महाप्रभु नहीं जान पाये॥66॥

अनुभाष्य—श्रीअद्वैतप्रभुने तीन भागोंमें भोगको समान मात्रामें बाँटकर सजा दिया था। (इसी अध्यायकी 42 संख्या देखें), उसमेंसे धातुके पात्रमें सजाया गया भोग श्रीकृष्णके लिये था; और बाकी दो भाग केलेके पत्तोंके ऊपर सजाये गये थे। धातुके पात्रवाले भोगको श्रीअद्वैतप्रभुने स्वयं श्रीकृष्णको निवेदन किया था। बाकी केलेके पत्तोंवाले दो भोग श्रीमहाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभुके लिये अनिवेदित अवस्थामें ही रखे हुए थे,—उनको श्रीअद्वैताचार्यने मन-ही-मनमें रखा था, महाप्रभुके सामने उन्होंने इस बातको प्रकाशित नहीं किया। इसलिये महाप्रभुने तीनों भोगोंको ही श्रीकृष्णका नैवेद्य-प्रसाद ही समझा था॥66॥

महाप्रभु और श्रीअद्वैताचार्य, दोनोंका ही एक दूसरेको
भोजन करनेके लिये अनुरोध :—

प्रभु बले,—"वैस तुमि करिते भोजन।"
आचार्य कहे,—"आमि करिब परिवेशन॥"67॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीअद्वैताचार्यसे कहा,—"आप भी बैठकर भोजन कीजिये।" यह सुनकर श्रीअद्वैताचार्यने कहा,—"मैं भोजन परोसूँगा॥"67॥

महाप्रभुके वचन :—

"कोन् स्थाने बसिब, आर आन दुइ पात।
अल्प करि' ताहे आनि' देह व्यञ्जन भात॥"68॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥68॥

अनुभाष्य—श्रीमहाप्रभुने श्रीअद्वैताचार्यसे पूछा,—"मैं और नित्यानन्द किस स्थानपर बैठेंगे?" भोगके परिमाणको बहुत अधिक देखकर और भी अन्य दो पात्रको लाकर उनमें ही कम मात्रामें अन्न-व्यञ्जन देनेको कहा॥68॥

श्रीअद्वैताचार्यका दोनों प्रभुओंको आसन-प्रदान :—

आचार्य कहे,—"बैस दोँहे पिण्डार उपरे।"
एत बलि' हाते धरि' बसाइल दुँहारे॥69॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्यने कहा,—"आप दोनों यहाँ

आसनोंपर बैठ जाइये।" यह कहकर श्रीअद्वैताचार्यने उनको हाथोंसे पकड़कर आसनपर बैठा दिया॥ 69॥

महाप्रभुकी विधिमार्गमें आचार्योचित वैराग्य-लीला :—

प्रभु कहे,—"संन्यासीर भक्ष्य नहे उपकरण।
इहा खाइले कैछे हय इन्द्रिय-वारण॥"70॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"संन्यासीके लिये इतने प्रकारके व्यञ्जनोंका भोजन करना उचित नहीं है। इन्हें खाकर अपनी इन्द्रियोंपर संयम कैसे रखा जा सकता है?"॥ 70॥

अनुभाष्य—*'उपकरण'*—दाल, सब्जी आदि जिनके साथ उत्तम स्वाद लेते हुए चावलका भोजन किया जा सकता है। परन्तु संन्यासीका जिह्वाको अच्छे लगनेवाले द्रव्योंमें अधिकार नहीं है। इन्द्रियोंको प्रिय लगनेवाली वस्तुओंके सेवनसे भोग प्रवृत्ति और अधिक प्रबल होती है, इसलिये महाप्रभुने वैराग्य प्रधान भक्तोंके सम्बन्धमें श्रीरघुनाथदास गोस्वामीको कहा था—

"भाल ना परिबे आर भाल ना खाइबे।"

अर्थात् "बहुत अच्छे-अच्छे वस्त्र मत पहनना और बहुत स्वादिष्ट वस्तुएँ मत खाना।"

भक्तगण कृष्णप्रसादके अतिरिक्त कभी भी और कोई वस्तु ग्रहण नहीं करते। धनी गृहस्थ व्यक्ति अत्यन्त स्वादिष्ट लगनेवाले उत्तम-उत्तम द्रव्योंका श्रीकृष्णको भोग अर्पण करते हैं। श्रीकृष्णविलासके सहचर मुखशुद्धि ताम्बूल (पान), सुगन्धित मसाले, पुष्प-मालाएँ, पलङ्ग, वस्त्र, आभूषणादि प्रसादी वस्तुएँ यद्यपि वैष्णवोंके लिये आदरणीय हैं, तथापि महाप्रभुकी आज्ञानुसार अकिञ्चन वैष्णव अपनी देहको घृणित प्राकृत मानकर इन वस्तुओंको स्वीकार करनेमें अपनी अयोग्यता दिखलाते हैं कि इसके द्वारा अपराध होगा। वैष्णवाभिमानी अवैष्णव सहजिया आदि अनर्थोंमें प्रवृत्त व्यक्ति महाप्रभुके आदेशके तात्पर्यको समझनेमें असमर्थ हैं॥ 70॥

गौरगतप्राण आचार्यके द्वारा महाप्रभुको भोजनके लिये अत्यधिक अनुरोध :—

आचार्य कहे,—"छाड़ तुमि आपनार चुरि।
आमि जानि तोमार संन्यासेर भारिभूरि॥ 71॥

भोजन करह, छाड़ वचन चातुरी।"
प्रभु कह,—"एत अन्न खाइते ना पारि॥"72॥

आचार्य बले,—"अकपटे करह आहार।
यदि ना खाइते पार, रहिबेक आर॥"73॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्यने कहा,—"आप अपने आपको छिपानेकी चेष्टा मत करो। मैं आपको और आपके संन्यास ग्रहणके रहस्यको भी अच्छी तरह जानता हूँ। अपनी वाक्-चातुरीको छोड़कर भोजन कीजिये।" यह सुनकर महाप्रभुने कहा,—"मैं इतना भोजन नहीं कर सकता।" श्रीअद्वैताचार्य कहने लगे,—"आप बहाने मत बनाइये और भोजन कीजिये। यदि पूरा नहीं खा सकते, तो उच्छिष्ट पत्तेमें ही छोड़ दीजिये॥"71–73॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'भारिभूरि'*—गोपनीय बात॥ 71॥

भोजन-पात्रमें उच्छिष्ट छोड़ना संन्यासीके लिये निषेध :—

प्रभु बले,—"एत अन्न नारिब खाइते।
संन्यासीर धर्म नहे उच्छिष्ट राखिते॥"74॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"मैं इतना भोजन नहीं खा सकूँगा और उच्छिष्ट छोड़ना संन्यासीका धर्म नहीं है॥"74॥

अनुभाष्य—संन्यासी उच्छिष्ट नहीं छोड़ते (भाः11/18/19)—

"बहिर्जलाशयं गत्वा तत्रोपस्पृश्य वाग्यतः।
विभज्य पारितं शेषं भुञ्जीताशेषमाहृतम्॥"

अर्थात् "संन्यासी भिक्षा प्राप्त करनेके पश्चात् ग्रामके बाहर स्थित जलाशयमें जाकर स्नान-आचमन करके जलके द्वारा भिक्षाको पवित्र कर ले। फिर शास्त्रोक्त पद्धतिसे जिन्हें भिक्षाका भाग देना चाहिये,

उन्हें देकर जो कुछ बचे उसे मौन रहकर पूरा खा लेना चाहिये। दूसरे समयके लिये बचाकर न रखे और न ही अधिक माँगकर लाये।"

उक्त श्लोककी श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तीकी टीका—

"विभज्य विष्णु ब्रह्मार्कभूतेभ्यः; अशेषमिति भोजनपात्रेऽवशिष्टं न रक्षणीयमित्यर्थः।"

अर्थात् "विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य आदि देवताओं तथा अन्य प्राणियोंके उद्देश्यसे विभक्त करके बचे हुए भोजनको पूरा खाकर भोजनपात्रमें अवशिष्ट न छोड़े—यह अर्थ है॥"74॥

आचार्यका महाप्रभुपर आक्षेप और दीनता प्रदर्शन :—

आचार्य बले,—"नीलाचले खाओ चौयान्नबार।
एकबारे अन्न खाओ शत शत भार॥75॥
तिन जनार भक्ष्यपिण्ड—तोमार एक ग्रास।
तार लेखाय एइ अन्न नहे पञ्चग्रास॥76॥
मोर भाग्ये, मोर घरे, तोमार आगमन।
छाड़ह चातुरी, प्रभु, करह भोजन॥"77॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्य (महाप्रभुको श्रीजगन्नाथसे अभिन्न जानते हुए) कहने लगे,—"नीलाचलमें (श्रीजगन्नाथ रूपमें) तो आप चौवन बार भोजन करते हो और एक-एक बारमें सौ-सौ पात्रोंमें भरे हुए अन्न खा जाते हो। तीन लोग जितना भोजन करते हैं, उतना तो आपका एक ग्रास मात्र होता है। उस अनुपातमें तो यह अन्न आपके पाँच ग्रासके भी बराबर नहीं है। मेरे परम सौभाग्यसे आज आपका मेरे घरमें आगमन हुआ है। इसलिये हे प्रभो! अपनी चतुराईको छोड़कर भोजन करो॥"75-77॥

अनुभाष्य— *'लेखाय'*—अनुपातमें॥76॥

दोनों प्रभुओंका अलग-अलग जलसे
आचमन करनेके बाद भोजन आरम्भ :—

एत बलि' जल दिल दुइ गोसाञिर हाते।
हासिया लागिला दुँहे भोजन करिते॥78॥

अनुवाद—इतना कहकर श्रीअद्वैताचार्यने दोनों प्रभुओंके हाथोंमें आचमनके लिये जल दिया और दोनों हँसते हुए भोजन करने लगे॥78॥

श्रीअद्वैतके साथ श्रीनिताइका प्रेम कौतुकमय-कलह :—

नित्यानन्द कहे,—"कैलुँ तिन उपवास।
आजि पारणा करिते बड़ छिल आश॥79॥
आजि उपवास हैल आचार्य-निमन्त्रणे।
अर्धपेट ना भरिल एइ ग्रासेक अन्ने॥"80॥

अनुवाद—तब श्रीनित्यानन्द प्रभुने उपहास करते हुए कहा,—"मैं तीन दिनसे उपवास कर रहा हूँ और आज पारण करनेकी अर्थात् पेट भरकर खानेकी बड़ी आशा थी। श्रीआचार्यने मुझे अपने घरपर भोजनके लिये निमन्त्रण तो दिया है, परन्तु लगता है आज भी उपवास करना पड़ेगा, क्योंकि केवल इस एक ग्रास अन्नसे मेरा आधा पेट भी नहीं भरेगा॥"79-80॥

आचार्य कहे,—"तुमि तैर्थिक संन्यासी।
कभु फल-मूल खाओ, कभु उपवासी॥81॥
दरिद्र-ब्राह्मण-घरे ये पाइला मुष्टिकान्न।
इहाते सन्तुष्ट हओ, छाड़ लोभ-मन॥"82॥

अनुवाद—यह सुनकर श्रीअद्वैताचार्यने कहा,—"आप तीर्थोंमें भ्रमण करनेवाले एक संन्यासी हो। (वहाँ तो आपको भर पेट भोजन नहीं मिलता) इसलिये कभी मिल जाय, तो आप फल-मूल खाते हो और वह भी नहीं मिले, तो उपवास करते हो। इस दरिद्र ब्राह्मणके घर जो मुट्ठी भर अन्न आपको मिला है, उसीमें सन्तुष्ट रहो, मनमें अधिक लोभ मत करो॥"81-82॥

नित्यानन्द बले,—"यबे कैले निमन्त्रण।
तत दिते चाह, यत करिये भोजन॥"83॥

अनुवाद—यह सुनकर श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा,—"मैं जो भी हूँ, परन्तु आपने मुझे भोजनके लिये निमन्त्रण

दिया है। इसलिये मैंने जितना खाना है, उतना आपको देना पड़ेगा॥"83॥

शुनि' नित्यानन्देर कथा ठाकुर अद्वैत।
कहेन ताँहारे किछु पाइया पिरीत॥ 84॥

"भ्रष्ट अवधूत तुमि, उदर भरिते।
संन्यास लइयाछ, बूझि, ब्राह्मण दण्डिते॥ 85॥

तुमि खेते पार दश-विश मानेर अन्न।
आमि ताहा काँहा पाब, दरिद्र ब्राह्मण॥ 86॥

ये पाञाछ मुष्टिकान्न, ताहा खाञा उठ।
पागलामि ना करिह, ना छड़ाइओ झूठ॥"87॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभुकी बातको सुनकर श्रीअद्वैताचार्य प्रभुने भी परिहास करते हुए कहा,—"तुम एक भ्रष्ट अवधूत हो। मैं जानता हूँ कि अपना पेट भरनेके लिये ही तुमने संन्यास लिया है और मुझ जैसे सरल ब्राह्मणोंको परेशान करते हो। तुम तो दस-बीस 'मान' चावल खा सकते हो। मैं दरिद्र ब्राह्मण हूँ। इतना चावल कहाँसे लाऊँगा? इसलिये जो एक मुट्ठी अन्न मिला है, उसे खाकर उठ जाओ। पागलपन मत करो और कुछ झूठा भी मत छोड़ना॥"84–87॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'मान'*-चार सेर (लगभग साढ़े तीन किलो) को एक 'मान' कहते हैं॥ 86॥

अनुभाष्य—*'तैर्थिक संन्यासी'*—श्रीनित्यानन्द प्रभु स्वयं अवधूत होनेपर भी तीर्थ भ्रमण करनेवाले बहुदक संन्यासीका अभिनय कर रहे थे। 85 संख्याका अनुभाष्य देखें।

'भ्रष्ट'—प्राकृत-स्मार्त्तसमाज-भ्रष्ट अर्थात् विधि और निषेधसे अतीत, यहाँ निन्दाके छलसे स्तुतिके अर्थमें व्यवहार हुआ है।

संन्यासकी चरम अवस्था—परमहंस कहलाती है; उसीका ही दूसरा नाम 'अवधूत' है। अवधूत स्वेच्छाचारी होते हैं। विषय ग्रहण करनेपर भी वे विषयोंके द्वारा बाध्य नहीं है। संन्यासके चिह्न वे कभी तो ग्रहण करते हैं और कभी परित्याग करते हैं। श्रीअद्वैताचार्यके द्वारा कहे गये ये सब वचन परिहासमात्र हैं, वास्तवमें सत्य नहीं हैं। कोई-कोई खड़्दहमें त्रिपुरासुन्दरीको श्रीश्यामसुन्दरके साथ अधिष्ठित देखकर श्रीनित्यानन्द प्रभुके अवधूत आचरणको शाक्त सम्प्रदायके कौल-अवधूतका आचरण समझकर भ्रमित होते हैं—

"अन्तः शाक्तः बहिः शैवः सभायां वैष्णवो मतः।"

अर्थात् "अन्तरमें शाक्त, बाहरसे शैव और सभामें वैष्णव"—वास्तवमें ऐसा नहीं है। श्रीनित्यानन्दस्वरूप एक वैदिक-संन्यासीके अनुगत 'स्वरूप'-नामक ब्रह्मचारी हैं अर्थात् वैदिक-संन्यासी गुरुने उन्हें ब्रह्मचारी नाम 'स्वरूप' दिया था, परन्तु वास्तवमें वे स्वयं परमहंस हैं। और कोई-कोई कहते हैं कि श्रीलक्ष्मीपति तीर्थ ही उनके आचार्य (गुरु) हैं, किन्तु वैसा होनेपर भी वे श्रीमध्व सम्प्रदायके ही अन्तर्गत हैं,—वे बङ्गदेशीय तान्त्रिक नहीं हैं।

'झूट'—उच्छिष्ट॥ 81–87॥

श्रीअद्वैत और श्रीनिताइ दोनों प्रभुओंके प्रीतिपूर्वक कलह-कौतुकको देखकर महाप्रभुका हँसना :—

एइ मत हास्यरसे करेन भोजन।
अर्ध-अर्ध खाञा प्रभु छाड़ेन व्यञ्जन॥ 88॥

आचार्यकी इच्छानुसार महाप्रभुका परिपूर्ण भोजन :—

सेइ व्यञ्जन आचार्य पुनः करेन पूरण।
एइ मत पुनः पुनः परिवेशे व्यञ्जन॥ 89॥

अनुवाद—इस प्रकार परस्पर हास-परिहास करते हुए दोनों प्रभु भोजन कर रहे थे। महाप्रभु थोड़ा-थोड़ा खाकर हर व्यञ्जन दोनेमें छोड़ रहे थे। श्रीअद्वैताचार्य उन-उन व्यञ्जनोंसे दोने पुनः भर देते थे। इस प्रकार श्रीअद्वैताचार्य बार-बार व्यञ्जन परोस रहे थे॥ 88–89॥

दोना व्यञ्जने भरि' करेन प्रार्थन।
प्रभु बलेन,—"आर कत करिब भोजन॥"90॥

आचार्य कहे,—"ये दियाछि, ताहा ना छाड़िबा।
एखन ये दिये, तार अर्द्धेक खाइबा॥"91॥

नाना यत्ने-दैन्ये प्रभुर कराइल भोजन।
आचार्येर इच्छा प्रभु करिल पूरण॥92॥

अनुवाद—इस प्रकार दोने व्यञ्जनोंसे भरकर श्रीअद्वैताचार्य महाप्रभुसे और भोजन करनेके लिये प्रार्थना करने लगे, तो महाप्रभु बोले,—"और कितना भोजन करूँगा?" श्रीअद्वैताचार्यने कहा,—"मैंने जो पहले दिया है, उसे मत छोड़ना। और अब जो दिया है, उसका आधा तो खाइयेगा ही।" इस प्रकार श्रीअद्वैताचार्यने बड़े यत्नसे और दीनतापूर्वक महाप्रभुको भोजन कराया। महाप्रभुने भी श्रीअद्वैताचार्यकी इच्छाको पूर्ण किया॥90-92॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'दोना'*—दोना। *'करेन प्रार्थना'*—खानेके लिये प्रार्थना करना॥90॥

आधा पेट भरे होनेका भान करते हुए कृत्रिम क्रोध भरे श्रीनिताइका एक मुट्ठी अन्न फेंकना :—

नित्यानन्द कहे,—"आमार पेट ना भरिल।
लञा याह, तोर अन्न किछु ना खाइल॥"93॥

एत बलि' एकग्रास अन्न हाते लञा।
उझालि' फेलिल आगे येन क्रुद्ध हञा॥94॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा,—"मेरा पेट ही नहीं भरा। अपना भोजन वापिस ले जाओ, मैंने तुम्हारे अन्नमेंसे कुछ भी नहीं खाया है।" इतना कहकर उन्होंने चावलका एक ग्रास हाथमें लेकर फेंककर सामने भूमिपर बिखेर दिया जैसे वे क्रोधमें हैं॥93-94॥

अनुभाष्य—*'उझालि'*—बिखेरना॥94॥

श्रीनिताइके द्वारा फेंके हुए उच्छिष्टका अङ्गोंसे स्पर्श होनेसे श्रीअद्वैतका प्रेमपूर्वक नृत्य :—

भात दुइ-चारि लागे आचार्येर अङ्गे।
भात गाये लञा आचार्य नाचे बहुरङ्गे॥95॥

"अवधूतेर झूटा मोर लागिल अङ्गे।
परम पवित्र मोरे कैल एइ ढङ्गे॥96॥

निन्दाके छलसे श्रीअद्वैतके द्वारा श्रीनित्यानन्द-स्तुति :—

तोरे निमन्त्रण करि' पाइनु तार फल।
तोर जाति-कुल नाहि, सहजे पागल॥97॥

आपनार सम मोरे करिबार तरे।
झूठा दिले, विप्र बलि' भय ना करिले॥"98॥

अनुवाद—फेंके हुए चावलके दो-चार दाने श्रीअद्वैताचार्यके अङ्गमें लगे। वे अङ्गोंमें चावल लगे-लगे ही तरह-तरहसे नाचने लगे और कहने लगे,—"इस अवधूतका जूठा मेरे अङ्गसे लगा है। इस प्रकार उसने मुझे परम पवित्र कर दिया है। तुम्हें निमन्त्रण देकर मैंने उसका फल पा लिया है। तुम्हारा जाति-कुल आदि कुछ भी निश्चित नहीं है। तुम तो स्वभावसे पागल हो। मुझे अपने जैसे पागल बनानेके लिये ही तुमने अपना जूठा मेरे अङ्गोंपर फेंका है। मैं ब्राह्मण हूँ, इस बातका भी तुम्हें भय नहीं हुआ।" (यह श्रीअद्वैताचार्यके द्वारा श्रीनित्यानन्द प्रभुकी निन्दाके छलसे स्तुति ही है)॥95-98॥

अनुभाष्य—*'अवधूत'*—असंस्कृतदेह (भाः 3/1/19 श्लोककी श्रीधरस्वामी-टीका देखें)। परमहंस-आचरणकी लीला करनेवाले श्रीनित्यानन्द प्रभुने अन्नको फेंककर पागलपन जैसे व्यवहारको दिखानेका छल किया। अभक्त स्मार्त्तसमाजकी विधिके अनुसार उच्छिष्टके स्पर्शसे व्यक्ति अपवित्र हो जाता है, परन्तु इस उच्छिष्टके स्पर्शसे अपवित्र होनेके बदले वास्तवमें मैं (अद्वैताचार्य) परम पवित्र और शुद्ध हुआ था।

वैष्णव अथवा परमहंसका उच्छिष्ट—महामहाप्रसाद होता है, वह स्वयं चेतनमय विष्णुके समान है। महामहाप्रसाद अभक्तोंकी इन्द्रियोंकी तृप्ति करनेवाला साधारण चावल-दाल नहीं है। वर्णाश्रमसे अतीत परमहंसश्रेष्ठ श्रीगुरुदेवके या परमहंस अर्थात् वैष्णवोंके

उच्छिष्टका स्पर्श और सेवनरूपी सङ्ग सांसारिक जीवोंके हृदयमें स्थित हरि-विमुखताको सम्पूर्ण रूपसे दूर करके उनको अप्राकृत परमहंस-दास्यरूप शुद्ध ब्राह्मणत्वमें प्रतिष्ठित करता है,—यही आचार्य श्रीअद्वैतप्रभुने स्वयं मूढ़ जीवोंके मङ्गलके लिये बोला।

'सहजे पागल'—आत्मा अर्थात् चेतनाके साथ ही उत्पन्न अप्राकृत परमहंस धर्मपरायण, प्रतिक्षण सभी इन्द्रियोंके द्वारा श्रीकृष्णकी सेवामें रत (भाः 11/18/28–29) देखें।

'आपनार सम'—अर्थात् सिद्धवैष्णव या विधि-निषेधसे अतीत परमहंस। श्रीगुरु नित्यानन्द और परमहंस या वैष्णव और उनके दास कभी भी हरिविमुख प्राकृत स्मार्त्त-समाजके भयसे उनके विधि-विधानसे नहीं चलते हैं—यही श्रीअद्वैताचार्यके कहनेका तात्पर्य है। शुद्धवैष्णव या परमहंसोंके दास चेतनमय महाप्रसादका सेवन और सम्मान करते हैं, उसे प्रकृतिसे उत्पन्न जड़ेन्द्रियोंकी तृप्ति करनेवाले चावल-दालके समान मानकर उसमें स्पर्शदोषका विचार नहीं करते। वे यह जानते हैं—शुद्ध वैष्णवकी तो बात दूर है, चण्डालके मुखसे भी गिरे महाप्रसादके सेवनके फलसे भी ब्राह्मणका ब्राह्मणत्व पूरी तरहसे अटूट रहता है, ब्राह्मणत्वमें किसी प्रकारकी अपवित्रता स्पर्श नहीं करती। महाप्रसादके सेवनसे जड़-जगत्‌की समस्त पवित्र और अपवित्र वस्तुएँ श्रीकृष्णकी सेवामें नियुक्त होकर अप्राकृत (दिव्य) पवित्र वस्तुके रूपमें दिखायी देती हैं॥ **96–98** ॥

श्रीनित्यानन्दके द्वारा श्रीअद्वैतको दण्डका भय
दिखाना और उसके प्रायश्चितकी व्यवस्था :—

नित्यानन्द बले,—"एइ कृष्णेर प्रसाद।
इहाके 'झुठा' कहिले, कैले अपराध॥ 99 ॥
शतेक संन्यासी यदि कराह भोजन।
तबे एइ अपराध हइबे खण्डन॥" 100 ॥

अनुवाद—तब श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा,—"यह श्रीकृष्णका प्रसाद है। इसे 'झूठा' कहकर तुमने अपराध किया है। यदि तुम सौ संन्यासियोंको भोजन कराओगे, तभी तुम्हारा यह अपराध दूर होगा॥" **99–100** ॥

अनुभाष्य—बृहद्विष्णुपुराणमें—

"नैवेद्यं जगदीशस्य अन्नपानादिकश्च यत्।
भक्ष्याभक्ष्यविचारश्च नास्ति तद्भक्षणे द्विजाः।
ब्रह्मवनिर्विकारं हि यथा विष्णुस्तथैव तत्।
विकारं ये प्रकुर्वन्ति भक्षणे तद्द्विजातयः॥
कुष्ठव्याधिसमायुक्ताः पुत्रदारविवर्जिताः।
निरयं यान्ति ते विप्रास्तस्मान्नावर्त्तते पुनः॥"

अर्थात् "हे ब्राह्मणों! श्रीहरिका नैवेद्य और अन्नपान आदि द्रव्य सेवन करते समय किसी प्रकारके खाद्य-अखाद्यका विचार न करें। श्रीहरिका नैवेद्य ब्रह्मकी भाँति निर्विकार और विष्णुके सदृश है। विष्णुका नैवेद्य आदि ग्रहण करनेमें जिनके चित्तमें संशय आदि विकार उत्पन्न होते हैं, उनको कुष्ठरोगसे युक्त और पुत्र-स्त्री-विहीन होकर नरकगामी होना पड़ता है। वहाँसे उनका पुनरागमन नहीं होता।"

महाप्रसादको साधारण चावल-दालके समान मानकर उसमें भोग-बुद्धि रखनेके अपराधसे सावधान करनेके लिये ही ग्रन्थकारने महाप्रसादके माहात्म्यके विषयमें (अन्त्यलीला, 16/56–63 संख्यामें) लिखा है॥ **99–100** ॥

वैष्णव संन्यासके द्वारा स्मार्त्त विधिका लुप्त होना :—

आचार्य कहे,—"ना करिब संन्यासि-निमन्त्रण।
संन्यासी नाशिल मोर सब स्मृति-धर्म॥" 101 ॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्यने उत्तर दिया,—"मैं आजके बाद किसी भी संन्यासीको निमन्त्रण नहीं दूँगा, क्योंकि एक संन्यासीने ही मेरे ब्राह्मण स्मृति-धर्मको नष्ट कर दिया है॥" 101 ॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'स्मृतिधर्म'*—स्मार्त्तधर्म॥ 101 ॥

आचमन देनेके बाद श्रीअद्वैतके द्वारा दोनों
प्रभुओंकी समयके अनुसार सेवा :—

एत बलि' दुइ जने कराइल आचमन।
उत्तम शय्याते लइया कराइल शयन॥ 102 ॥

लवङ्ग एलाची-बीज—उत्तम रसवास।
तुलसी-मञ्जरीसह दिल मुखवास॥ 103॥

सुगन्धि चन्दने लिप्त कैल कलेवर।
सुगन्धि पुष्पमाला आनि' दिल हृदय-उपर॥ 104॥

अनुवाद—यह कहकर श्रीअद्वैताचार्यने दोनों प्रभुओंको आचमन कराया और उनको शयनके लिये उत्तम शय्या प्रदान की। मुखके अच्छे स्वादके लिये लौंग, इलायचीके दानेसे बने उत्तम रसवासको तुलसी मञ्जरीके साथ दिया। श्रीअद्वैताचार्य प्रभुने तब सुगन्धित चन्दनके द्वारा उनके अङ्गोंका लेपन किया और सुगन्धित पुष्पमाला उनके वक्षःस्थलपर धारण करा दी॥ 102–104॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'रसवास'*—रसयुक्त गन्ध॥ 103॥

श्रीअद्वैतके द्वारा महाप्रभुके पाद-सम्वाहनकी चेष्टा :—

आचार्य करिते चाहे पाद-सम्वाहन।
सङ्कुचित हञा प्रभु बलेन वचन॥ 105॥

महाप्रभुकी लज्जा ओर श्रीअद्वैताचार्यको मुकुन्द तथा हरिदासके साथ भोजन करनेकी आज्ञा :—

"बहुत नाचाइले तुमि, छाड़ नाचान।
मुकुन्द-हरिदास लइया करह भोजन॥"106॥

तबे त' आचार्य सङ्गे लञा दुइ जने।
करिल भोजन, इच्छा ये आछिल मने॥ 107॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्य महाप्रभुका पाद-सम्वाहन करना चाहते थे, परन्तु महाप्रभुने सङ्कोच करके कहा,—"आपने मुझे बहुत नचाया है, अब और नचाना छोड़ो। जाकर मुकुन्द और हरिदासके साथ भोजन करो।" तब श्रीअद्वैताचार्यने श्रीमुकुन्द तथा श्रीहरिदासको साथ ले जाकर, महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभुके प्रसादको पाकर अपने मनकी इच्छाको पूर्ण किया॥ 105–107॥

अनुभाष्य—संन्यासीको उत्तम शय्या, लौंग, इलायची, चन्दन, पुष्पमालादान ओर स्वयं श्रीअद्वैताचार्यकी पाद सम्वाहन अर्थात् चरण दबानेकी चेष्टाको देखकर (यह सब संन्यासीके लिये उचित नहीं है, ऐसा जनानेके लिये) महाप्रभुने कहा,—"तुमने मुझे बहुत नचाया है, अब और नचाना बन्द करो॥"106–107॥

स्थानीय लोगोंका महाप्रभुके दर्शनके लिये आना :—

शान्तिपुरेर लोक शुनि' प्रभुर आगमन।
देखिते आइला लोक प्रभुर चरण॥ 108॥

चारों ओर हरिध्वनि और महाप्रभुके रूपका दर्शन कर लोगोंको आनन्दकी प्राप्ति :—

'हरि' 'हरि' बले लोक आनन्दित हञा।
चमत्कार पाइल प्रभुर सौन्दर्य देखिञा॥ 109॥

गौर-देह-कान्ति सूर्य जिनिया उज्ज्वल।
अरुण-वस्त्रकान्ति ताहे करे झलमल॥ 110॥

अनुवाद—महाप्रभुके आगमनकी बात सुनकर शान्तिपुरके लोग उनके श्रीचरणोंके दर्शनके लिये आये। महाप्रभुका दर्शन करके लोग आनन्दसे 'हरि' 'हरि' बोलने लगे। महाप्रभुके सौन्दर्यको देखकर वे आश्चर्यचकित हो गये। उनके गौर-देहकी उज्ज्वल कान्ति सूर्यकी कान्तिको भी परास्त कर रही थी और संन्यासके गेरुए वस्त्र उनकी देहपर झलमल कर रहे थे॥ 109–110॥

सारा दिन लोगोंका आना-जाना :—

आइसे याय लोक सब, नाहि समाधान।
लोकेर सङ्घट्टे दिन हैल अवसान॥ 111॥

अनुवाद—कितने लोग आये और गये, इसका कोई हिसाब नहीं था। सारा दिन लोगोंका जमघट लगा रहा॥ 111॥

अनुभाष्य—*'समाधान'*—हिसाब, मीमांसा॥ 111॥

सन्ध्याके समय श्रीअद्वैतका सङ्कीर्तन :—

सन्ध्याते आचार्य आरम्भिल सङ्कीर्त्तन।
आचार्य नाचेन, प्रभु करेन दर्शन॥ 112॥

नित्यानन्द गोसाञि बुले आचार्य धरिञा।
हरिदास पाछे नाचे हरषित हञा॥ 113॥

अनुवाद—सन्ध्यामें श्रीअद्वैताचार्यने सङ्कीर्तन आरम्भ किया। श्रीअद्वैताचार्य प्रेमावेशमें नाचने लगे और महाप्रभु उन्हें देख रहे थे। श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीअद्वैताचार्यको पकड़कर उनके साथ चलने लगे (कहीं वे गिर न जाँय)। श्रीहरिदास ठाकुर भी परमान्दित होकर उनके पीछे-पीछे नृत्य करने लगे॥ 112-113॥

अनुभाष्य— *'बुले'*—नाचते हुए चल रहे थे॥ 113॥

विद्यापतिका पद :—

कि कहिब रे सखि आजुक आनन्द ओर।
चिरदिने माधव मन्दिरे मोर॥ 114॥ ध्रु॥

एइ पद गाओयाइया हर्षे करेन नर्त्तन।
स्वेद-कम्प-पुलकाश्रु-हुङ्कार-गर्जन॥ 115॥

अनुवाद—(श्रीअद्वैताचार्य इस पदको गाने लगे),—"हे सखि! आजके मैं अपने आनन्दकी सीमाके विषयमें क्या कहूँ? चिरकालके बाद आज माधव मेरे घरमें आये हैं।" इस पदको गाते हुए श्रीअद्वैताचार्य हर्षसे नृत्य करने लगे और उनके शरीरमें स्वेद, कम्प, पुलक, अश्रु, हुँकार तथा गर्जन आदि सात्त्विक भाव उत्पन्न हो गये॥ 114-115॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'ओर'*—सीमा; यह विद्यापतिका पद है॥ 114॥

अनुभाष्य—विद्यापति द्वारा रचित गीत—

"कि कहब रे सखि आजुक आनन्द ओर।
चिरदिने माधव मन्दिरे मोर॥
पाप सुधाकर यत सुख देल।
पियामुख-दरशने तत सुख भेल॥
आचर भरिया यदि महानिधि पाइ।
तब् हाम् पिया दूरदेशे ना पाठाइ॥
शीतेर ओड़नी पिया, गिरिषीर वा'।
वरिषार छत्र पिया, दरियार ना'॥
भणये विद्यापति, शुन, वरनारि।
सुजनक दुख दिवस दुइ चारि॥"

अर्थात् "हे सखि! क्या बताऊँ, आज मेरे आनन्दकी कोई सीमा नहीं है, बड़े दिनोंके बाद माधव आज मेरे घरमें आये हैं। रात्रिमें चन्द्रमा जैसे सुख प्रदान करता है, माधवके मुखके दर्शन करके मैं वैसी ही सुखी हुई हूँ। आँचल भरकर भी यदि महानिधि कोई दे, तो भी मैं उसे छोड़कर अपने प्रियतमको अपने पास ही रखना चाहूँगी, उन्हें दूरदेश नहीं भेजूँगी। प्रियतमका सङ्ग शीतकालमें ओढ़नीके समान और ग्रीष्म एवं वर्षाकालमें छातेके समान सुखदायक होता है। हे सखि! विद्यापति कहते हैं कि सज्जनोंके दुःख दिन दो-चार ही होते हैं, एक न एक दिन उन्हें अपने प्रियतम मिल ही जाते हैं।"

श्रीलराधामोहन ठाकुरने 'पदामृत-समुद्र' ग्रन्थमें इस गीतकी पहली चार पंक्तियोंको नहीं लिखा। कोई-कोई 'माधव'-शब्दसे श्रीमाधवेन्द्रपुरीको लक्ष्य करके इसे श्रीअद्वैताचार्य प्रभुका गीत मानते हैं, किन्तु ऐसा विचार सङ्गत नहीं है। माथुर-विरहके बाद सम्भोग, इसकी यहाँ अधिक सङ्गति है, ऐसा जानना होगा॥ 114॥

श्रीअद्वैतके द्वारा महाप्रभुके निकट सविनय प्रार्थना :—

फिरि' फिरि' कभु प्रभुर धरेन चरण।
चरण धरिया प्रभुरे बलेन वचन॥ 116॥
"अनेक दिन तुमि मोरे बेड़ाइले भाण्डिया।
घरेते पाञाछि, एबे राखिब बाँधिया॥"117॥
एत बलि' आनन्दे आचार्य करेन नर्त्तन।
प्रहरेक-रात्रि आचार्य कैल सङ्कीर्त्तन॥ 118॥

अनुवाद—घूमते-घूमते श्रीअद्वैताचार्य कभी महाप्रभुके चरण पकड़ लेते और चरण पकड़कर उनसे कहते,—"बहुत दिनोंसे मुझे धोखा देकर भागते रहे हो, किन्तु अब आप मेरे घरमें हो, मैं आपको बाँधकर रखूँगा।" यह कहकर श्रीअद्वैताचार्यने आनन्दपूर्वक नृत्य करते हुए उस रात एक प्रहर तक सङ्कीर्तन किया॥ 116-118॥

अनुभाष्य— *'भण्डिया'*—धोखा करके॥ 117॥

महाप्रभुका श्रीकृष्ण-विरह :—

प्रेमेर उत्कण्ठा,—प्रभुर नाहि कृष्णसङ्ग।
विरह बाड़िल, प्रेमज्वालार तरङ्ग॥ 119॥

व्याकुल हञा प्रभु भूमेते पड़िला।
गोसाञि देखिया आचार्य नृत्य सम्वरिला॥ 120॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्य प्रभु जब इस प्रकार नृत्य कर रहे थे, तब महाप्रभु श्रीकृष्णप्रेममें उत्कण्ठित हो उठे, किन्तु श्रीकृष्ण-सङ्ग प्राप्त न करनेके कारण विरहमें उनकी प्रेम-ज्वालाकी तरङ्गें बढ़ने लगीं। श्रीकृष्ण-विरहमें व्याकुल होकर महाप्रभु भूमिपर गिर पड़े और महाप्रभुको गिरते हुए देखकर श्रीअद्वैताचार्यने नृत्य करना बन्द कर दिया॥ 119–120॥

मुकुन्दका समयके अनुसार गीत गाना :—

प्रभुर अन्तर मुकुन्द जाने भालमते।
भावेर सदृश पद लागिला गाइते॥ 121॥
आचार्य उठाइल प्रभुके करिते नर्त्तन।
पद शुनि' प्रभुर अङ्ग ना याय धारण॥ 122॥

महाप्रभुके अष्टसात्त्विक विकार :—

अश्रु, कम्प, पुलक, स्वेद, गदगद वचन।
क्षणे उठे, क्षणे पड़े, क्षणेक रोदन॥ 123॥

अनुवाद—श्रीमुकुन्द महाप्रभुके अन्तरङ्ग भावोंको भलीभाँति जानते थे और वे उनके भावोंके अनुरूप पदका गान करने लगे। तब श्रीअद्वैताचार्य महाप्रभुको नृत्य करनेके लिये उठाने लगे, परन्तु मुकुन्दके पदको सुनकर महाप्रभु इतने अधिक भावाविष्ट हो गये कि उन्हें पकड़ा नहीं जा रहा था। उनकी आँखोंसे अश्रुपात हो रहा था, सारा शरीर काँप रहा था, देहमें पुलक हो रहा था, शरीर पसीनेसे तर-बतर हो रहा था तथा उनका गला रुद्ध हो गया था। एक क्षण वे उठते, क्षण भरमें गिर पड़ते तथा अगले क्षण क्रन्दन करने लगते॥ 121–123॥

यथा पद :—

हा हा प्राणप्रियसखि, कि ना हैल मोरे।
कानुप्रेमविषे मोर तनु-मन जरे॥ 124॥

रात्रि-दिने पोड़े मन, सोयास्ति ना पाइ।
याँहा गेले कानु पाङ, ताँहा उड़ि' याइ॥ 125॥

एइ पद गाय मुकुन्द मधुर सुस्वरे।
शुनिया प्रभुर चित्त हइल कातरे॥ 126॥

अनुवाद—हा! हा! प्राणप्रियसखि! मुझे क्या नहीं हुआ है? कृष्णके प्रेमरूपी विषके प्रभावसे मेरा तन और मन संतप्त हो रहा है। रात-दिन मेरा मन जलता रहता है। मुझे इससे तनिक भी आराम नहीं मिलता। यदि कहीं जानेसे कृष्ण मिलेंगे, तो मैं वहाँ उड़कर पहुँच जाऊँ।—श्रीमुकुन्द इस पदको मधुर सुस्वरमें गान कर रहे थे और इसे सुनकर महाप्रभुका हृदय विरहमें कातर हो रहा था॥ 124–126॥

अनुभाष्य—सम्भोग-रसके गानमें श्रीकृष्णसङ्गके अभाववशतः महाप्रभुमें विप्रलम्भ रसका पूर्ण प्राकट्य देखकर श्रीमुकुन्दने उसीके अनुरूप पदका गान आरम्भ किया। श्रीअद्वैतप्रभुने भी नृत्य बन्द कर दिया। विद्यापतिका अनुरूप पद—

"कि करिब कोथा याब सोयाथ ना हय।
पियार लागिया हाम् कोन देशे याब॥"

अर्थात् "क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, हृदयको शान्ति नहीं मिल रही। अपने प्रियतमको खोजने मैं कौनसे देशको जाऊँ?"॥ 124॥

महाप्रभुके भाव :—

निर्वेद, विषाद, हर्ष, चापल्य, गर्व, दैन्य।
प्रभुर सहित युद्ध करे भाव-सैन्य॥ 127॥

जर-जर हैल प्रभु भावेर प्रहारे।
भूमिते पड़िल, श्वास नाहिक शरीरे॥ 128॥

देखिया चिन्तित हैला यत भक्तगण।
आचम्बिते उठे प्रभु करिया गर्जन॥ 129॥

'बल्' 'बल्' बले, नाचे, आनन्दे विह्वल।
बुझन ना जाय, भाव-तरङ्ग प्रबल॥ 130॥

अनुवाद—निर्वेद, विषाद, हर्ष, चापल्य, गर्व और दैन्य आदि भाव सैनिकोंके जैसे आकर महाप्रभुके साथ युद्ध कर रहे थे। उन सात्त्विक भावोंके प्रहारसे महाप्रभुका शरीर जर्जर हो गया और वे भूमिपर गिर पड़े तथा उनकी श्वास लगभग बन्द हो गयी। यह देखकर सभी भक्त चिन्तित हो गये। तभी महाप्रभु अचानक उठ खड़े हुए और जोरसे गर्जन करते हुए कहा 'बोलो' 'बोलो'। वे आनन्दमें विह्वल होकर नृत्य करने लगे। महाप्रभुके इस प्रकारके भावोंकी प्रबल तरङ्गोंको कोई नहीं समझ सकता॥ 127-130॥

अनुभाष्य— *'हर्ष'*—भ:र:सि:, द:वि:, चतुर्थ ल:—

"अभीष्टेक्षणलाभादिजाता चेतःप्रसन्नता।
हर्षः स्यादिह रोमाञ्चः स्वेदोऽश्रुमुखफुल्लता।
आवेगोन्मादजड़तास्तथा मोहादयोऽपि च॥"

अर्थात् "अभीष्टके दर्शन प्राप्त करनेपर चित्तमें जो प्रसन्नता होती है, उसीका नाम 'हर्ष' है। हर्ष होनेपर रोमाञ्च, स्वेद (पसीना), अश्रु, मुख फूलना, आवेग, उन्माद, जड़ता और मोह आदि होता है।"

'गर्व'—भ:र:सि:, द:वि:, चतुर्थ ल:—

"सौभाग्यरूपतारुण्यगुणसर्वोत्तमाश्रयैः।
इष्टलाभादिना चान्य-हेलनं गर्व ईर्यते॥
तत्र सोलुण्ठवचनं लीलानुत्तरदायिता।
स्वाङ्गेक्षा निह्नवोऽन्यस्य वचनाश्रवणादयः॥"

अर्थात् "इष्टवस्तुकी प्राप्तिसे अपने सौभाग्य, रूप, तारुण्य, गुण, सर्वोत्तम आश्रय आदिके सहारे दूसरोंकी जो अवहेलना होती है, वही 'गर्व' है। इसमें स्तुतिवाक्य, उत्तर न देना, अपने अङ्गोंको देखना, अपने अभिप्राय आदिको गोपन रखना और दूसरोंकी बातको श्रवण आदि न करने जैसी क्रियाएँ वर्तमान होती हैं॥ 127॥

महाप्रभुके साथ सतर्क श्रीनित्यानन्द :—

नित्यानन्द सङ्गे बुले प्रभुके धरिञा।
आचार्य, हरिदास बुले पाछे त' नाचिञा॥ 131॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभु महाप्रभुको पकड़कर साथ चलने लगे ताकि वे गिरें नहीं और श्रीअद्वैताचार्य तथा श्रीहरिदास महाप्रभुके पीछे-पीछे नृत्य करते चल रहे थे॥ 131॥

महाप्रभुमें अनेक भावोंका वैचित्र्य :—

एइ मत प्रहरेक नाचे प्रभु रङ्गे।
कभु हर्ष, कभु विषाद, भावेर तरङ्गे॥ 132॥

अनुवाद—इस प्रकार आनन्दमग्न होकर महाप्रभु एक प्रहर तक नृत्य करते रहे। भावोंकी तरङ्गोंमें कभी उनके हृदयमें हर्ष और कभी विषाद (दुःख) छा जाता॥ 132॥

उपवासके बाद अधिक नृत्य करनेसे
महाप्रभुको थकावट :—

तिन दिन उपवासे करिया भोजन।
उद्दण्ड-नृत्येते प्रभुर हैल परिश्रम॥ 133॥

श्रीकृष्णप्रेममें महाप्रभुको थकावटका अनुभव नहीं
होनेपर भी थकावटको दूर करना :—

तबु त' ना जाने श्रम प्रेमाविष्ट हञा।
नित्यानन्द महाप्रभुके राखिल धरिञा॥ 134॥

आचार्य-गोसाञि तबे राखिल कीर्त्तन।
नाना सेवा करि' प्रभुके कराइल शयन॥ 135॥

अनुवाद—तीन दिनके उपवासके बाद महाप्रभुने बहुत मात्रामें भोजन किया था। इसलिये उसके बाद उद्दण्ड नृत्य करनेमें महाप्रभुको कुछ थकान हो गयी। यद्यपि प्रेममें आविष्ट होनेके कारण महाप्रभुको थकान अनुभव नहीं हो रही थी, तथापि श्रीनित्यानन्द प्रभुने महाप्रभुको पकड़कर नृत्य करनेसे रोक दिया। तब श्रीअद्वैताचार्यने सङ्कीर्तनको विश्राम देकर महाप्रभुकी अनेक प्रकारसे सेवा करके उन्हें शयन कराया॥ 133-135॥

दस दिन तक शान्तिपुरमें वास :—

एइमत दशदिन भोजन-कीर्त्तन।
एकरूपे करि' करे प्रभुर सेवन॥ 136॥

अनुवाद—इस प्रकार श्रीअद्वैताचार्यके घर दस दिन महाप्रभुने भोजन किया और कीर्तनका आनन्द लिया। प्रतिदिन ही श्रीअद्वैताचार्यने महाप्रभुकी इसी प्रकारसे सेवा की॥ 136॥

नवद्वीपके भक्तोंके साथ शचीमाताका पालकीमें आना :—

प्रभाते आचार्य-रत्न दोलाय चड़ाञा।
भक्तगण-सङ्गे आइला शचीमाता लञा॥ 137॥

नदीया-नगरेर लोक—स्त्री-बालक-वृद्ध।
सब लोक आइल, हैल संघट्ट समृद्ध॥ 138॥

अनुवाद—(महाप्रभुके शान्तिपुर आनेके) अगले दिन प्रातःकालमें श्रीचन्द्रशेखर आचार्य नवद्वीपसे शचीमाताको पालकीमें बैठाकर भक्तोंके साथ श्रीअद्वैताचार्यके घर ले आये। महाप्रभुके दर्शनके लिये नदीया नगरके सभी लोग, क्या स्त्री, क्या बालक और क्या वृद्ध—सभी वहाँ आये। उनके आनेसे वहाँ लोगोंकी भीड़ हो गयी॥ 137–138॥

प्रातःकाल शचीमाताका महाप्रभुसे मिलन :—

प्रातःकृत्य करि' करे नाम-सङ्कीर्त्तन।
शचीमाता लञा आइला अद्वैत-भवन॥ 139॥

अनुवाद—प्रातःकालकी क्रियाओंको समाप्त करके जब महाप्रभु नाम-सङ्कीर्तन कर रहे थे, उस समय श्रीचन्द्रशेखर शचीमाताको लेकर श्रीअद्वैत-भवनमें पहुँचे॥ 139॥

महाप्रभुके दर्शनसे शचीमाताका स्नेहसे क्रन्दन :—

शची-आगे पड़िला प्रभु दण्डवत् हञा।
कान्दिते लागिला शची कोले उठाइञा॥ 140॥

अनुवाद—शचीमाताको देखते ही महाप्रभुने उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया और शचीमाता रोने लगीं और उन्होंने महाप्रभुको अपनी गोदमें ले लिया॥ 140॥

शचीमाताका महाप्रभुके प्रति वात्सल्य-प्रेमका वर्णन :—

दोँहार दर्शने दुँहे हइला विह्वल।
केश ना देखिया शची हइला विकल॥ 141॥

अङ्ग मुछे, मुख चुम्बे, करे निरीक्षण।
देखिते ना पाय,—अश्रु भरिल नयन॥ 142॥

अनुवाद—एक-दूसरेको देखकर दोनों ही विह्वल हो उठे। महाप्रभुके केशोंको न देखकर शचीमाता व्याकुल हो गयीं। पुत्र-स्नेहके कारण वे महाप्रभुके अङ्गोंको सहलाने लगीं। महाप्रभुका मुख चुम्बन करके वे उनके निरीक्षणका प्रयास करने लगीं, परन्तु आँखोंमें अश्रु भर जानेके कारण उन्हें देख न सकीं॥ 141–142॥

शचीमाताका पुत्रके निकट विलाप और प्रार्थना :—

कान्दिया कहेन शची,—"बाछारे निमाञि।
विश्वरूपसम ना करिह निठुराइ॥ 143॥

संन्यासी हइया पुनः ना दिल दरशन।
तुमि तैछे कैले मोर हइबे मरण॥"144॥

अनुवाद—रोते-रोते शचीमाता कहने लगीं,—"हे पुत्र निमाइ! तुम भी विश्वरूपकी भाँति निष्ठुर मत बनना। उसने संन्यासी होकर मुझे पुनः दर्शन नहीं दिया। यदि तुम भी वैसा ही करोगे, तो मैं अवश्य ही मर जाऊँगी॥"143–144॥

अनुभाष्य—'*निठुराइ*'—निष्ठुरता॥ 143॥

शचीमाताको मातृभक्त-शिरोमणि
महाप्रभुके द्वारा सान्त्वना प्रदान :—

कान्दिया बलेन प्रभु,—"शुन, मोर आइ।
तोमार शरीर एइ, मोर किछु नाइ॥ 145॥

तोमार पालित देह, जन्म तोमा हैते।
कोटि जन्मे तोमार ऋण ना पारि शोधिते॥ 146॥

शचीमाताके प्रति महाप्रभुका चिरस्नेह :—

जानि' वा ना जानि' यदि करिलुँ संन्यास।
तथापि तोमारे कभु नहिब उदास॥ 147॥

शचीमाताके कहे स्थानपर महाप्रभुकी रहनेकी प्रतिज्ञा :—

तुमि याँहा कह, आमि ताँहाइ रहिब।
तुमि येइ आज्ञा कर, सेइ से करिब॥"148॥

अनुवाद—महाप्रभु भी रोते हुए कहने लगे,—"मेरी प्यारी माता! सुनो, यह शरीर तुम्हारा ही है, मेरा कुछ भी नहीं है। आपसे ही मेरा जन्म हुआ है और आपने ही मेरे इस शरीरका पालन-पोषण किया है। मैं करोड़ों जन्मोंमें भी आपके इस ऋणको नहीं चुका सकता। जानकर अथवा न जानकर यद्यपि मैंने संन्यास ग्रहण किया है, तथापि मैं कभी भी आपके प्रति उदासीन नहीं होऊँगा। आप मुझे जहाँ कहेंगी, मैं वहीं रहूँगा। आप मुझे जो आज्ञा देंगी, मैं वैसा ही करूँगा॥145-148॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'आइ'*—आर्या, शचीमाता॥145॥

महाप्रभुका प्रणाम और शचीमाताका स्नेह भावसे महाप्रभुको अपनी गोदमें धारण करना :—

एत बलि' पुनः पुनः करे नमस्कार।
तुष्ट हञा आइ कोले करे बार-बार॥149॥

अनुवाद—यह कहकर महाप्रभु बार-बार माताको प्रणाम करने लगे और शचीमाता भी सन्तुष्ट होकर उनको बार-बार गोदमें लेने लगीं॥149॥

भक्तोंके साथ महाप्रभुका मिलन और प्रेमालिङ्गन :—

तबे आइ लञा आचार्य गेला अभ्यन्तरे।
भक्तगण मिलिते प्रभु हइला सत्वरे॥150॥

एके एके मिलिला प्रभु सब भक्तगणे।
सबार मुख देखि' करे दृढ़ आलिङ्गने॥151॥

अनुवाद—तब श्रीअद्वैताचार्य शचीमाताको घरके भीतर ले गये। महाप्रभु तब सभी भक्तोंसे मिलने लगे। एक-एक करके महाप्रभु सभी भक्तोंसे मिले और सभीके मुखको देखकर वे उन्हें गाढ़ आलिङ्गन करने लगे॥150-151॥

महाप्रभुके दर्शनसे भक्तोंका सुख आत्मेन्द्रिय-प्रीति-वाञ्छा नहीं :—

केश ना देखिया भक्त यद्यपि पाय दुःख।
सौन्दर्य देखिते तबु पाय महासुख॥152॥

अनुवाद—महाप्रभुके केशोंको न देखकर यद्यपि भक्तोंको दुःख हो रहा था, तथापि महाप्रभुके सौन्दर्यको देखकर उन्हें अत्यन्त सुख भी हुआ॥152॥

नवद्वीपवासी भक्तगण :—

श्रीवास, रामाइ, विद्यानिधि, गदाधर।
गङ्गादास, वक्रेश्वर, मुरारि, शुक्लाम्बर॥153॥

बुद्धिमन्त खाँन, नन्दन, श्रीधर, विजय।
वासुदेव, दामोदर, मुकुन्द, सञ्जय॥154॥

कत नाम लइब यत नवद्वीपवासी।
सबारे मिलिला प्रभु कृपादृष्ट्ये हासि'॥155॥

अनुवाद—श्रीवास, श्रीरामाइ, श्रीविद्यानिधि, श्रीगदाधर, श्रीगङ्गादास, श्रीवक्रेश्वर, श्रीमुरारि, श्रीशुक्लाम्बर, श्रीबुद्धिमन्त खाँन, श्रीनन्दन, श्रीधर, श्रीविजय, श्रीवासुदेव, श्रीदामोदर, श्रीमुकुन्द और श्रीसञ्जय आदि जितने नवद्वीपवासी भक्त वहाँ आये थे, कहाँ तक उन सबके नामोंका उल्लेख करूँ? महाप्रभु मन्द-मन्द मुस्कानके साथ कृपादृष्टि वर्षण करते हुए सबसे मिले॥153-155॥

अद्वैतभवन—वैकुण्ठ, सब समय हरिसेवामय :—

आनन्दे नाचये सबे बलि' 'हरि' 'हरि'।
आचार्य-मन्दिर हैल श्रीवैकुण्ठपुरी॥156॥

अनुवाद—सभी आनन्दपूर्वक नाचते हुए 'हरि' 'हरि' बोल रहे थे। श्रीअद्वैताचार्य प्रभुका घर श्रीवैकुण्ठपुरी बन गया॥156॥

एकत्रित सभी लोगोंको श्रीअद्वैताचार्यके द्वारा स्थान और भोजन प्रदान :—

यत लोक आइल महाप्रभुके देखिते।
नाना-ग्राम हैते, आर नवद्वीप हैते॥157॥

सबाकारे वासा दिल—भक्ष्य, अन्नपान।
बहुदिन आचार्य-गोसाञि कैल समाधान॥ 158॥

अनुवाद—महाप्रभुको मिलनेके लिये जितने भी भक्त नवद्वीप और अनेक गाँवोंसे आये थे, बहुत दिनों तक श्रीअद्वैताचार्यने उन सबके लिये रहनेके स्थान तथा भोजन आदिकी सारी व्यवस्था की॥ 157–158॥

अच्युत आचार्यका अच्युत भण्डार :—

आचार्य-गोसाञिर भाण्डार—अक्षय, अव्यय।
यत द्रव्य व्यय करे, तत द्रव्य हय॥ 159॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्यका भण्डार अक्षय तथा अव्यय था। वे जितने द्रव्य व्यय करते, उतने ही द्रव्य फिर आ जाते॥ 159॥

शचीमाताके द्वारा बनाये अन्नसे महाप्रभुका भोजन :—

सेइ दिन हैते शची करेन रन्धन।
भक्तगण लञा प्रभु करेन भोजन॥ 160॥

अनुवाद—उस दिनसे शचीमाता स्वयं भोजन बनाती थीं और सभी भक्तोंको साथ लेकर महाप्रभु भोजन करते थे॥ 160॥

दिनके समय आचार्यका और रातके समय अन्य-अन्य लोगोंको महाप्रभुका दर्शन :—

दिने आचार्येर प्रीति—प्रभुर दर्शन।
रात्रे लोक देखे प्रभुर नर्त्तन-कीर्त्तन॥ 161॥

अनुवाद—दिनमें जो लोग आते, वे महाप्रभुके साथ-साथ श्रीअद्वैताचार्यके उनके प्रति प्रीतिपूर्ण व्यवहारके भी दर्शन करते। रातके समय वे महाप्रभुके नृत्यके दर्शन करते और उनके कीर्तनको सुनते॥ 161॥

कीर्तनके समय भावावेशमें महाप्रभुका भूमिपर गिरना :—

कीर्त्तन करिते प्रभुर सर्वभावोदय।
स्तम्भ, कम्प, पुलकाश्रु, गदगद, प्रलय॥ 162॥

अनुवाद—कीर्तन करते समय महाप्रभुमें स्तम्भ, कम्प, पुलक, अश्रु, गदगद-कण्ठ और प्रलय (मूर्च्छा) आदि सभी सात्त्विक भाव उदित हो जाते॥ 162॥

अनुभाष्य— *'पुलकाश्रु'*—भ:र:सि:, द:वि:, चतुर्थ ल:—

"हर्षरोषविषादाद्यैरश्रुनेत्रे जलोद्गमः।
हर्षजेऽश्रुणि शीतत्वमौष्णयं रोषादिसम्भवे।
सर्वत्रनयनक्षोभ रागसमार्जनादयः॥"

अर्थात् "हर्ष, क्रोध और विषाद आदिसे बिना किसी प्रयत्नके नेत्रोंसे जो जल गिरता है, वही 'पुलकाश्रु' है। हर्षसे उत्पन्न अश्रुओंमें शीतलता, क्रोधसे उत्पन्न अश्रुओंमें उष्णता तथा दोनों प्रकारके पुलकसे नयनक्षोभ (नेत्रोंमें चञ्चलता) तथा राग समार्जनादि होता है।"

'प्रलय'—भ:र:सि:, द:वि:, तृतीय ल:—

"प्रलयः सुखदुःखाभ्यां चेष्टाज्ञाननिराकृतिः।
अत्रानुभावाः कथिता महीनिपतनादयः॥"

अर्थात् "सुख और दुःख—दोनों प्रकारकी चेष्टासे ज्ञान दूर हो जाता है। इसी प्रकार प्रलयमें भूमिपर गिरना आदि सभी अनुभाव दिखायी देते हैं।"

'सर्वभाव' अर्थात् स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभेद, कम्प, वैवर्ण्य, पुलकाश्रु और प्रलय—ये अष्ट-सात्त्विक विकार॥ 162॥

स्नेह-सिक्त भयसे विह्वल शचीमाताकी पुत्रके स्वास्थ्यके लिये श्रीविष्णुसे प्रार्थना :—

क्षणे क्षणे पड़े प्रभु आछाड़ खाञा।
देखि' शचीमाता कहे रोदन करिया॥ 163॥
"चूर्ण हैल, हेन वासों निमाञि-कलेवर।"
हाहा करि' विष्णु-पाशे मागे एइ वर॥ 164॥
"बाल्यकाल हैते तोमार ये कैलुँ सेवन।
तार प्रतिफल मोरे देह, नारायण॥ 165॥
ये-काले निमाञि पड़े धरणी-उपरे।
व्यथा येन नाहि लागे निमाञि-शरीरे॥"166॥

एइमत शचीदेवी वात्सल्ये विह्वल।
हर्ष-भय-दैन्यभावे हइल विकल॥ 167॥

अनुवाद—महाप्रभु बार-बार पछाड़ खाकर गिर जाते, जिसे देखकर शचीमाता रोते हुए कहने लगतीं,—"ऐसे गिरनेसे तो लगता है निमाइका शरीर चूर-चूर हो जायेगा।" "हाय! हाय!" करती हुई शचीमाता विष्णुसे यही वर माँगने लगतीं,—"हे नारायण! बाल्यकालसे मैंने जो आपकी सेवा की है, उसका फल मुझे यही दो कि जिस समय निमाइ पृथ्वीपर गिरे, उसके शरीरमें किसी प्रकारका कष्ट न हो।" इस प्रकार शचीमाता वात्सल्य रसमें विह्वल हो जातीं। (निमाइके दर्शनसे) हर्ष, (निमाइको गिरनेसे कष्टसे) भय और (नारायणसे प्रार्थना करते हुए) दैन्य आदि भावोंसे व्याकुल हो जातीं॥ 163–167॥

अनुभाष्य—*'बाल्यकाल हैते'*—बालिका अवस्थासे ही, शैशवकालसे ही। नित्यसिद्धा मूर्तिमती-वात्सल्यकी विग्रहा यशोदास्वरूपिणी शचीमाता जन्मसे ही श्रीकृष्णसेवा-परायणा हैं,—वे कभी भी प्राकृत (साधारण) जीव नहीं हैं, यह इस स्थानपर उनके अपने ही मुखसे कहा गया है॥ 165॥

भक्तोंकी महाप्रभुको निमन्त्रण करनेकी इच्छा :—

श्रीवासादि यत प्रभुर विप्र-भक्तगण।
प्रभुके भिक्षा दिते हैल सबाकार मन॥ 168॥

अनुवाद—महाप्रभुके श्रीवासादि जितने ब्राह्मण भक्त आये थे, उन सबकी महाप्रभुको भोजन करानेकी इच्छा हुई॥ 168॥

शचीमाताके द्वारा भक्तोंका निवारण और
स्वयं महाप्रभुको भिक्षा देनेका प्रस्ताव :—

शुनि' शची सबाकारे करिल मिनति।
"निमाञिर दरशन आर मुञि पाब कति॥ 169॥

तोमा-सबा-सने हबे अन्यत्र मिलन।
मुञि अभागिनीर मात्र एइ दरशन॥ 170॥

यावत आचार्य-गृहे निमाञिर अवस्थान।
मुञि भिक्षा दिब, सबाकारे मागोँ दान॥" 171॥

अनुवाद—श्रीवासादिकी इच्छाको सुनकर शचीमाताने सभीसे प्रार्थना की,—"मुझे और फिर कहाँ निमाइका दर्शन प्राप्त होगा? तुम लोगोंके साथ तो निमाइका मिलन कहीं और भी अनेक बार हो जायेगा, परन्तु मुझ अभागिनीके लिये तो मात्र यहीं दर्शन है (मैं तो घरमें ही रहूँगी और संन्यासी घर लौटकर कभी नहीं आता)। इसलिये मैं आप सबसे यही भिक्षा माँगती हूँ कि जब तक निमाइ अद्वैताचार्यके घरमें रहे, तब तक मैं ही इसे भोजन कराऊँ॥" 169–171॥

अनुभाष्य—*'कति'*—कहाँ॥ 169॥

भक्तोंकी सम्मति :—

शुनि' सब भक्तगण कहे करि' नमस्कार।
"मातार ये इच्छा, सेइ सम्मत सबार॥" 172॥

अनुवाद—यह सुनकर सभी भक्तोंने शचीमाताको प्रणाम करके कहा,—"माता! आपकी जो इच्छा है, हम सब उससे सहमत हैं॥" 172॥

माताकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये
मातृभक्तशिरोमणि महाप्रभुका भक्तोंसे अनुरोध :—

मातार व्यग्रता देखि' प्रभुर व्यग्र मन।
भक्तगण एकत्र करि' बलिला वचन॥ 173॥

महाप्रभुकी भक्तवश्यता :—

"तोमा-सबार आज्ञा बिना चलिलाम वृन्दावन।
याइते नारिल, विघ्न कैल निवर्त्तन॥ 174॥

महाप्रभुका भक्तों और माताके प्रति वात्सल्य :—

यद्यपि सहसा आमि करयाछोँ संन्यास।
तथापि तोमा-सबा हैते नहिब उदास॥ 175॥

तोमा-सब ना छाड़िब, यावत आमि जीव'।
मातारे तावत् आमि छाड़िते नारिब॥ 176॥

वान्ताशी होना संन्यासीका कर्त्तव्य नहीं :—

संन्यासीर धर्म नहे—संन्यास करिञा।
निज जन्मस्थाने रहे कुटुम्ब लञा॥ 177॥

फल्गु वैराग्यके कारण उनकी निन्दा न हो, इसलिये भक्तोंके निकट महाप्रभुकी युक्तिकी प्रार्थना :—

केह येन एइ बलि' ना करे निन्दन।
सेइ युक्ति कह, याते रहे दुइ धर्म॥"178॥

अनुवाद—शचीमाताकी व्याकुलताको देखकर महाप्रभुका मन भी विह्वल हो गया। तब महाप्रभुने सभी भक्तोंको एकत्रित करके कहा,—"मैं आप सबसे आज्ञा लिये बिना ही वृन्दावन जा रहा था। परन्तु कुछ विघ्न आनेसे मैं जा नहीं सका और वापिस लौट आया। यद्यपि मैंने अचानक संन्यास ग्रहण किया है, तथापि मैं आप सबके प्रति उदासीन नहीं हो सकता। जब तक मेरा जीवन है, तब तक मैं आप सबको नहीं छोड़ूँगा और न ही अपनी माताको छोड़ पाऊँगा। किन्तु संन्यास ग्रहण करनेके बाद संन्यासीका यह धर्म नहीं है कि वह अपने कुटुम्बके साथ अपने जन्मस्थानपर वास करे। कोई ऐसा कहकर मेरी निन्दा न करे, इसलिये कोई ऐसी युक्ति करो जिससे मेरे दोनों धर्मोंकी (संन्यासके कारण जन्मस्थानपर नहीं रहनेके धर्मकी, और आप सभीको न छोड़नेके भक्त-वात्सल्यरूपी धर्मकी) रक्षा हो जाय॥ 173–178॥

अनुभाष्य— *'जीव'*—बचूँगा, प्रकट रहूँगा॥ 176॥

शचीमातासे श्रीअद्वैतादिकी प्रार्थना :—

शुनिया प्रभुर एइ मधुर वचन।
शचीपाश आचार्यादि करिल गमन॥ 179॥

प्रभुर निवेदन ताँरे सकल कहिल।
शुनि' शची जगन्माता कहिते लागिल॥ 180॥

महाप्रभुके सुखमें ही शचीमाताका सुख :—

"तेँहो यदि इँहा रहे, तबे मोर सुख।
ताँ'र निन्दा हय यदि, तबे मोर दुःख॥ 181॥

अनुवाद—महाप्रभुके ऐसे मधुर वचनोंको सुनकर श्रीअद्वैताचार्य आदि सब भक्त शचीमाताके पास गये और उन्हें महाप्रभुके इस निवेदनके बारेमें बतलाया। यह सुनकर जगत्-जननी श्रीशचीदेवी कहने लगीं,—"यदि निमाइ यहाँ रहे, तो मुझे बहुत सुख होगा। परन्तु यदि उसकी [यहाँ रहनेसे] निन्दा होगी, तो मुझे बहुत दुःख होगा॥ 179–181॥

अनुभाष्य—मातृकुलकी आदर्श जगन्माता शचीठाकुराणी ऐसी बात कहकर समस्त मातृकुलको शिक्षा दे रही हैं—'पुत्रके द्वारा श्रीकृष्णको ढूँढ़नेकी चेष्टाका परित्याग करके घरमें ही रहनेपर, माताको इन्द्रियतृप्तिरूपी (पुत्र-दर्शनरूपी) सुख तो होगा, परन्तु साथ ही श्रीकृष्णसेवाको त्यागनेके कारण पुत्र निन्दाका पात्र होगा, ऐसा सोचकर वास्तविक स्नेहशीला माताको दुःख ही होगा। इसलिये पुत्र दर्शनरूपी अपने सुख या भोगकी अपेक्षा पुत्रकी श्रीकृष्ण-सेवामें ही उसके नित्य मङ्गलरूपी सुखकी आकाङ्क्षा रखनेवाली वास्तविक माताको वास्तवमें सुख होता है। नहीं तो, मा-'माया' शब्द वाच्या, (अर्थात् 'मा'-का अर्थ माया हो जायेगा)। इस प्रसङ्गमें यह श्लोक विचारणीय है, (भाः 5/5/18)—

"गुरुर्न स स्यात् स्वजनो न स स्यात्
पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात्।
दैवं न तत् स्यान्न पतिश्च स स्या-
न्न मोचयेद् यः समुपेतमृत्युम्॥"

अर्थात् "जो अपने प्रिय सम्बन्धीको भगवद्भक्तिका उपदेश देकर जन्म-मृत्युके चक्रसे नहीं छुड़ाता, वह गुरु गुरु नहीं है, स्वजन स्वजन नहीं है, पिता पिता नहीं है, माता माता नहीं है, इष्टदेव इष्टदेव नहीं है और पति पति नहीं है॥"181॥

शचीमाताका पुत्र-सुखके लिये पुरीवासका अनुमोदन :—

ताते एइ युक्ति भाल, मोर मने लय।
नीलाचले रहे यदि, दुइ कार्य हय॥ 182॥

नीलाचले-नवद्वीपे येन दुइ घर।
लोक-गतागति-वार्त्ता पाब निरन्तर॥ 183॥

तुमि सब करिते पार गमनागमन।
गङ्गास्नाने कभु ताँर हबे आगमन॥ 184॥

शचीमाताका शुद्ध वात्सल्य-प्रेम :—

आपनार दुःख-सुख ताँहा नाहि गणि।
ताँर येइ सुख, ताहा निज सुख मानि॥" 185॥

अनुवाद—इसलिये मेरे मनको तो यह युक्ति अच्छी लगती है कि यदि निमाइ नीलाचलमें रहे, तो दोनों कार्य हो जायेंगे। नीलाचल और नवद्वीप दोनों ही एक घरके दो कमरोंके समान हैं। दोनों स्थानोंसे लोगोंका आना-जाना लगा रहता है और उनसे मुझे निमाइका समाचार भी प्राप्त होता रहेगा। तुम सब भी नीलाचल आना-जाना कर सकते हो और कभी निमाइ भी गङ्गा स्नानके लिये यहाँ आयेगा। मुझे अपने दुःख-सुखकी चिन्ता नहीं है। निमाइके सुखमें ही मैं अपना सुख मानती हूँ॥" 182-185॥

अनुभाष्य—इस पयारमें श्रीकृष्ण-सेवकोंकी श्रीकृष्णको सब प्रकारसे सुखी करनेवाली सेवाकी सुन्दर अभिव्यक्ति है। इस सन्दर्भमें आदिलीला 4/174-175, 201, 204 संख्या; मध्यलीला 4/186 संख्या तथा ठाकुर श्रीभक्तिविनोद रचित 'शरणागति'में "सेवा-सुख-दुःख—परम सम्पद" देखें॥ 185॥

भक्तोंके द्वारा शचीमाताकी स्तुति :—

शुनि' भक्तगण ताँरे करिल स्तवन।
"वेद-आज्ञा यैछे, माता, तोमार वचन॥" 186॥

अनुवाद—शचीमाताकी इस बातको सुनकर उनकी स्तुति करते हुए भक्तोंने कहा,—"हे माता! आपके वचन वेद-आज्ञाके समान मान्य हैं॥" 186॥

शचीमाताके अभिप्रायको जानकर महाप्रभुको आनन्द :—

प्रभु-आगे भक्तगण कहिते लागिल।
शुनिया प्रभुर मने आनन्द हइल॥ 187॥

अनुवाद—तब महाप्रभुके पास आकर सभी भक्तोंने शचीमाताके विचारको सुनाया, जिसे सुनकर महाप्रभु बहुत आनन्दित हुए॥ 187॥

भक्तोंके निकट महाप्रभुकी प्रार्थना :—

नवद्वीप-वासी आदि यत भक्तगण।
सबारे सम्मान करि' बलिला वचन॥ 188॥

"तुमि-सब लोक—मोर परम बान्धव।
एइ भिक्षा मागोँ,—मोरे देह तुमि-सब॥ 189॥

सभीको श्रीकृष्ण-कीर्तन करनेका आदेश :—

घरे याञा कर सदा कृष्णसङ्कीर्त्तन।
कृष्णनाम, कृष्णकथा, कृष्ण-आराधन॥ 190॥

पुरी जाते हुए महाप्रभुकी आज्ञा-प्रार्थना :—

आज्ञा देह नीलाचले करिये गमन।
मध्ये मध्ये आसि' तोमाय दिब दरशन॥" 191॥

अनुवाद—नवद्वीपवासी आदि समस्त भक्तोंको सम्मान देते हुए महाप्रभु कहने लगे,—"आप सब लोग मेरे परम बान्धव हो। मैं आप सबसे एक भिक्षा माँगता हूँ, कृपा करके मुझे वह प्रदान कीजिये। आप सब घर जाकर सदैव श्रीकृष्णसङ्कीर्तन करना। और साथमें श्रीकृष्णकी आराधना, श्रीकृष्णनाम तथा श्रीकृष्णकथा करना। अब आप मुझे नीलाचल जानेकी आज्ञा प्रदान करें। मैं आश्वासन देता हूँ कि मैं बीच-बीचमें आकर आपसे मिलता रहूँगा॥" 188-191॥

यथायोग्य सम्मान देकर सभीको विदायी देना :—

एत बलि' सबाकारे ईषत् हासिञा।
विदाय करिल प्रभु सम्मान करिञा॥ 192॥

अनुवाद—इस प्रकार सभी भक्तोंका सम्मान करके महाप्रभुने मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए सभीको विदा किया॥ 192॥

हरिदासकी दीनता और अकिञ्चन भाव :—

सबा विदाय दिया चलिते हैल मन।
हरिदास कान्दि' कहे करुण-वचन॥ 193॥

"नीलाचले याबे तुमि, मोर कोन् गति।
नीलाचले याइते मोर नाहिक शकति॥ 194॥

मुञि अधम ना पाइनु तोमार दरशन।
केमते धरिब एइ पापिष्ठ जीवन॥"195॥

अनुवाद—सबको विदा करके महाप्रभुने नीलाचल जानेका निर्णय किया। तब श्रीहरिदास ठाकुर रोते हुए करुण वचन कहने लगे,—"आप तो नीलाचल चले जायेंगे, किन्तु मेरी क्या गति होगी? मुझमें तो नीलाचल जानेकी शक्ति नहीं है। मुझ अधमको यदि आपके दर्शन नहीं होंगे, तो मैं यह पापमय जीवन कैसे धारण करूँगा?॥"193–195॥

अनुभाष्य—यद्यपि श्रीहरिदास ठाकुरका जन्म यवन-कुलमें हुआ था, तथापि अपने भजनके द्वारा उन्होंने ब्राह्मणताको प्राप्त किया था। परन्तु श्रीहरिदास ठाकुरने स्वाभाविक दैन्यके कारण अपनेको अत्यन्त हीन समझकर महाप्रभुसे आर्त्त-स्वरसे कहा कि यवनकुलमें जन्मके कारण उनका नीलाचलमें प्रवेशका अधिकार नहीं है। विशेषतः नीलाद्रिमें चारों वर्णोंके अतिरिक्त श्रीजगन्नाथ मन्दिरकी चार दीवारीमें किसी औरको प्रवेश करनेका अधिकार नहीं है। इसलिये महाप्रभु यदि नीलाचलके श्रीमन्दिरके अन्दर वास करेंगे, तो फिर श्रीहरिदास ठाकुरका वहाँ जानेका अधिकार नहीं होगा। बादमें ऐसा जानकर कि नीलाद्रि (नील समुद्र)के निकट बालूवाले स्थानपर रहनेमें उनके लिये कोई भी बाधा नहीं है, ठाकुर हरिदास वहाँ रहे। आजकल वह स्थान 'सिद्धबकुल मठ'के नामसे प्रसिद्ध है॥ 194॥

प्रभु कहे,—"कर तुमि दैन्य-सम्वरण।
तोमार दैन्येते मोर व्याकुल हय मन॥ 196॥

हरिविमुख स्मार्त्त समाजको धिक्कार देकर ब्राह्मणगुरु वैष्णवाचार्य हरिदास ठाकुरको पुरी ले जानेकी प्रतिज्ञा :—

तोमार लागि' जगन्नाथे करिब निवेदन।
तोमा-लञा याब आमि श्रीपुरुषोत्तम॥"197॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"अपनी दीनताका सम्वरण करो। तुम्हारी दीनताको देखकर मेरा मन व्याकुल हो रहा है। मैं तुम्हारे लिये श्रीजगन्नाथदेवसे निवेदन करूँगा और तुम्हें अपने साथ नीलाचल ले जाऊँगा॥"196–197॥

महाप्रभुसे और कुछ दिन रहनेकी श्रीअद्वैतकी प्रार्थना :—

तबे त' आचार्य कहे विनय करिञा।
"दिन दुइ-चारि रह कृपा त' करिञा॥"198॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीअद्वैतकी इच्छा पूर्ति और सभीको आनन्द :—

आचार्येर वाक्य प्रभु ना करे लङ्घन।
रहिला अद्वैत-गृहे, ना कैल गमन॥ 199॥

आनन्दित हैल आचार्य, शची, भक्त-सब।
प्रतिदिन करे आचार्य महामहोत्सव॥ 200॥

अनुवाद—तब श्रीअद्वैताचार्यने विनती करते हुए महाप्रभुसे कहा,—"कृपा करके दो-चार दिन और यहाँ रुक जाइये।" श्रीअद्वैताचार्यके वचनोंका महाप्रभु कभी उल्लङ्घन नहीं करते, इसलिये वे गमन न करके श्रीअद्वैताचार्यके घरमें रुक गये। इससे श्रीअद्वैताचार्य, शचीमाता और सब भक्तोंको बहुत आनन्द हुआ। श्रीअद्वैताचार्यने प्रतिदिन महा-महोत्सव किया॥ 198–200॥

दिनमें इष्ट-गोष्ठी और रातमें सङ्कीर्तन :—

दिने कृष्णरस-कथा भक्तगण-सङ्गे।
रात्रे महा-महोत्सव सङ्कीर्त्तन-रङ्गे॥ 201॥

अनुवाद—महाप्रभु भक्तोंके साथ दिनमें श्रीकृष्णरस-कथाका आस्वादन करते और रातमें सङ्कीर्तन करके महा-महोत्सव मनाते॥ 201॥

भक्तोंके साथ महाप्रभुको अपने द्वारा बनाया गया भोजन करते देख माताको आनन्द :—

आनन्दित हञा शची करेन रन्धन।
सुखे भोजन करे प्रभु लञा भक्तगण॥ 202॥

अनुवाद—शचीमाता बड़े आनन्दसे रसोई बनातीं

और महाप्रभु सभी भक्तोंके साथ सुखपूर्वक भोजन करते॥ 202॥

महाप्रभुकी सेवासे श्रीअद्वैतका सबकुछ धन्य :—

आचार्येर श्रद्धा-भक्ति, गृह-सम्पद्-धने।
सकल सफल हैल प्रभुर आगमने॥ 203॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्यकी श्रद्धा-भक्ति, उनका घर, सम्पत्ति, धनादि सब कुछ महाप्रभुकी सेवामें प्रयोग होनेसे सार्थक हो गये॥ 203॥

शचीमाताका सुख :—

शचीर आनन्द बाड़े देखि' पुत्रमुख।
भोजन कराञा पूर्ण कैल निजसुख॥ 204॥

अनुवाद—अपने पुत्र निमाइका मुख देखकर शचीमाताका आनन्द बढ़ता जाता और उसे भोजन कराके उन्होंने अपने अभिलिषित परम सुखको प्राप्त किया॥ 204॥

श्रीअद्वैतके घरमें कुछ दिन तक अप्राकृत आनन्द :—

एइमत अद्वैत-गृहे भक्तगण मिले।
वञ्चिला कतकदिन महा-कुतूहले॥ 205॥

अनुवाद—इस प्रकार श्रीअद्वैताचार्यके घरमें महाप्रभुने भक्तोंके साथ कुछेक दिन आनन्दपूर्वक बिताये॥ 205॥

महाप्रभुके द्वारा भक्तोंको विदायी देना :—

आर दिन प्रभु कहे सब भक्तगणे।
"निज-निज-गृहे सबे करह गमने॥ 206॥

महाप्रभु और भक्त—दोनोंका परस्पर
भविष्यमें मिलनके सुयोगका निर्देश :—

घरे गिया कर सबे कृष्णसङ्कीर्त्तन।
पुनरपि आमा-सङ्गे हइबे मिलन॥ 207॥

भक्तोंके द्वारा नीलाचल जाने और महाप्रभुके द्वारा
नवद्वीपमें आने पर मिलनकी सम्भावना :—

कभु वा तोमरा करिबे नीलाद्रि-गमन।
कभु वा आसिब आमि करिते गङ्गास्नान॥"208॥

अनुवाद—अगले दिन महाप्रभुने सभी भक्तोंसे कहा,—"अब आप सब अपने-अपने घर जाइये। घर जाकर आप सब श्रीकृष्ण-सङ्कीर्तन करते रहना। मेरे साथ आपका पुनः मिलन होगा। कभी आप लोग नीलाचलमें आयेंगे और कभी मैं गङ्गास्नान करने यहाँ आऊँगा॥"206-208॥

पुरीके मार्गमें महाप्रभुके साथ श्रीनिताइ आदि चार भक्त;
महाप्रभुके द्वारा शचीमाताको सान्त्वना तथा उनकी
वन्दनाके बाद यात्रा :—

नित्यानन्द-गोसाञि, पण्डित जगदानन्द।
दामोदर पण्डित, आर दत्त मुकुन्द॥ 209॥

एइ चारिजन, आचार्य दिल प्रभु-सने।
जननी प्रबोध करि' वन्दिल चरणे॥ 210॥

ताँरे प्रदक्षिण करि' करिल गमन।
एथा आचार्येर घरे उठिल क्रन्दन॥ 211॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्यने श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीजगदानन्द पण्डित, श्रीदामोदर पण्डित और श्रीमुकुन्द दत्त—इन चार भक्तोंको महाप्रभुके साथ भेजा। महाप्रभुने शचीमाताको सान्त्वना देकर उनके श्रीचरणकमलोंकी वन्दना की और उनकी परिक्रमा करके महाप्रभु नीलाचलकी ओर चल दिये। उस समय श्रीअद्वैताचार्यके घरमें सभी महाप्रभुके वियोगमें ज़ोर-ज़ोरसे रोने लगे॥ 209-211॥

निरपेक्ष हञा प्रभु शीघ्र चलिला।
कान्दिते कन्दिते आचार्य पश्चात् चलिला॥ 212॥

अनुवाद—परन्तु महाप्रभु निरपेक्ष होकर अर्थात् बिना विचलित हुए शीघ्रतासे वहाँसे चल दिये और श्रीअद्वैताचार्य भी रोते-रोते उनके पीछे चलने लगे॥ 212॥

अनुभाष्य—*'निरपेक्ष'*—जड़ीय वस्तुकी अपेक्षा या प्रभावसे मुक्त अपने स्वरूप भगवद्-दास्यमें स्थित रहना निरपेक्ष होना है। बादमें श्रीकृष्णके अन्वेषण कार्यमें

बाधा होगी, इस भयसे स्वजनोंके रोने आदिको सुनकर भी महाप्रभु निष्ठुरकी भाँति नीलाचलकी ओर चल दिये। यद्यपि उनके इस कार्यसे नास्तिक नीतिवादी लोग उन्हें 'अत्यन्त निष्ठुर' कहेंगे, तथापि जगद्गुरुके रूपमें उन्होंने जीवोंके लिये यह शिक्षा दी कि उनका जो सर्वोत्तम परमधर्म श्रीकृष्णसेवा-चेष्टा है, वही एकमात्र प्रयोजनीय कार्य है। असार नाशवान् भोगोंके फलस्वरूप संसारमें ही आसक्ति और बन्धन होनेसे श्रीकृष्णसेवा नहीं हो सकती। इसलिये जगत्की दृष्टिमें अत्यधिक प्रशंसित सुनीति भी यदि श्रीकृष्णसेवाकी विरोधी हो, तो यह पथ महाप्रभुके विचारोंके विरुद्ध है। "निरपेक्ष ना हइले धर्म रक्षणे ना याय" (अर्थात् निरपेक्ष नहीं होनेसे धर्मकी रक्षा नहीं हो सकती)—महाप्रभुके श्रीमुखसे निकली यह वाणी विचारणीय है॥ 212॥

श्रीअद्वैताचार्यको सान्त्वना देकर उनकी विदायी :—

कत दूर गिया प्रभु करि' योड़-हात।
आचार्ये प्रबोधि' किछु कहे मिष्ट बात॥ 213॥

"जननी प्रबोध, कर भक्त-समाधान।
तुमि व्यग्र हैले कारो ना रहिबे प्राण॥"214॥

एत बलि' प्रभु ताँरे करि' आलिङ्गन।
निवृत्त करिया कैल स्वच्छन्द गमन॥ 215॥

अनुवाद—कुछ दूर जानेपर महाप्रभुने हाथ जोड़कर श्रीअद्वैताचार्य प्रभुको सान्त्वना देते हुए कुछ मधुर वचन कहे,—"आप घर लौटकर शचीमाता तथा भक्तोंको सान्त्वना प्रदान करो। यदि आप ही इस प्रकार व्याकुल हो जायेंगे, तो कोई भी प्राण धारण नहीं कर सकेगा।" यह कहकर महाप्रभुने श्रीअद्वैताचार्यका आलिङ्गनकर उन्हें अपने पीछे आनेसे रोककर स्वच्छन्द रूपसे नीलाचलके लिये गमन किया॥ 213-215॥

छत्रभोगके मार्गसे महाप्रभुका पुरीगमन :—

गङ्गातीरे-तीरे प्रभु चारिजन-साथे।
नीलाद्रि चलिला प्रभु छत्रभोग-पथे॥ 216॥

अनुवाद—महाप्रभु चारों भक्तोंके साथ गङ्गाके किनारे-किनारे छत्रभोगके रास्तेसे होते हुए नीलाचलकी ओर चले॥ 216॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'छत्रभोग-पथे'*—महाप्रभु छत्रभोगके रास्ते गङ्गाके साथ-साथ आटिसार, पाणिहाटी, वराहनगरसे होते हुए चलने लगे। उस समय गङ्गा कलिकाताके दक्षिणसे कालीघाट होकर वारुइपुर आदि स्थानोंसे होकर डायमण्ड-हारबार-सबडिवीजनसे 'मथुरापुर' नामक थानेसे होकर सैकड़ों धाराओंके रूपमें समुद्रमें मिलती थी। महाप्रभु उसी रास्तेसे ही मथुरापुर थानेके अन्तर्गत 'अम्बुलिङ्ग' स्थानसे छत्रभोगके रास्तेसे नीलाचल गये थे॥ 216॥

तृतीय अध्यायका अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

अनुभाष्य— *'छत्रभोग'*—चौबीस परगना जिलेमें मगराहाट-स्टेशनसे पूर्व-दक्षिणकी ओर छह-सात कोस दूर जयनगरके दो-तीन कोस दक्षिणमें यह गाँव अवस्थित है। इस गाँवको कोई-कोई 'खाड़ि' कहते हैं। यहाँपर 'बैजुर्कानाथ' नामक शिवलिङ्ग हैं। वहाँ चैत्रमासमें शुक्ला प्रतिपदाके दिन 'नन्दा'-मेला होता है। अब यहाँपर गङ्गा नहीं है। *'आटिसारा'*—यह वारुइपुर स्टेशनके निकट है, ऐसा सुना जाता है॥ 216॥

चैतन्यभागवतमें विस्तृत रूपसे वर्णन :—

'चैतन्यमङ्गले' प्रभुर नीलाद्रि गमन।
विस्तारि' वर्णियाछेन दास-वृन्दावन॥ 217॥

अद्वैत-गृहे प्रभुर विलास शुने येइ जन।
अचिरे मिलये ताँरे कृष्णप्रेम-धन॥ 218॥

अनुवाद—श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने अपने श्रीचैतन्य-मङ्गल (श्रीचैतन्यभागवत) नामक ग्रन्थमें महाप्रभुके श्रीजगन्नाथपुरी गमनकी लीलाका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। श्रीअद्वैताचार्यके घरमें किये गये महाप्रभुके लीला-विलासका यदि कोई श्रवण करता है, तो उसे शीघ्र ही श्रीकृष्णप्रेम-धनकी प्राप्ति होती है। 217-218॥

अनुभाष्य—चैःभाः अन्त्यखण्ड, दूसरा अध्याय देखें।

बङ्गालमें आटिसारा गाँव, वराहनगर, अम्बुलिङ्ग-छत्रभोग, उत्कलमें प्रयागघाट, सुवर्णरेखा, जलेश्वर, रेमुणा, याजपुर, वैतरणी, दशाश्वमेधघाट, कटक, महानदी, भुवनेश्वर (बिन्दु-सरोवर), कमलपुर, आठारनाला आदि स्थानोंसे होकर महाप्रभुने श्रीनीलाचलमें प्रवेश किया॥217॥

तृतीय अध्यायका अनुभाष्य समाप्त।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥219॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते मध्यखण्डे संन्यासकरणाद्वैतगृहे भोजनविलासवर्णनं नाम तृतीय-परिच्छेदः।

अनुवाद—श्रीरूप-रघुनाथ गोस्वामीके चरणकमलोंकी कृपाभिलाषा करते हुए कृष्णदास इस चैतन्यचरितामृतका वर्णन कर रहा है॥219॥

श्रीचैतन्यचरितामृतके मध्यखण्डमें संन्यास ग्रहण करनेके बाद श्रीअद्वैत-गृहमें भोजन-विलास-वर्णन नामक तीसरा अध्याय समाप्त।

चित्र-4

चौथा अध्याय

कथासार—श्रीमन्महाप्रभु छत्रभोग-पथसे वृद्धमन्त्रेश्वरसे होकर उत्कल राज्यकी एक सीमापर पहुँचे। मार्गमें अनेक प्रकारसे आनन्दमय कीर्तन और भिक्षा आदि करते-करते रेमुणाग्राममें श्रीगोपीनाथके दर्शन किये। वहाँ परमानन्दित होकर उन्होंने अपने भक्तोंको श्रीईश्वरपुरीके द्वारा कही गयी श्रीमाधवेन्द्र पुरीसे सम्बन्धित कथाका वर्णन किया। पूर्वकालमें श्रीमाधवेन्द्रपुरी जब वृन्दावन गये थे, तब उन्होंने गोवर्धनमें रातके समय 'वनमें गोपाल हैं'—यह स्वप्न देखा। उस स्वप्नको देखनेके बाद उन्होंने अगले दिन प्रातःकालमें गोवर्धनवासियोंको लेकर वनसे श्रीगोपालमूर्तिको बाहर निकालकर पर्वतके ऊपर स्थापित किया। महासमारोहके साथ श्रीगोपालकी पूजा और अन्नकूट महोत्सव हुआ। इस बातका क्रमशः प्रचार होनेसे बहुतसे गाँवोंसे अनेक लोग आकर श्रीगोपालका महोत्सव करने लगे। श्रीगोपालने एक रात श्रीमाधवेन्द्रपुरीको यह स्वप्न दिया,—"तुम बिना देरी किये नीलाचल जाकर मलयज चन्दनको संग्रह करके (यहाँपर ले आओ और उसे घिसकर) मेरे शरीरपर लगाकर मेरा ताप दूर करो।" गोपालजीकी आज्ञा पाकर पुरी गोस्वामी बङ्गालसे होते हुए उत्कलदेश (उड़ीसा)के रेमुणा नामक गाँवमें पहुँचे, वहाँ श्रीगोपीनाथके द्वारा प्रदान किये खीर-प्रसादको पाकर उन्होंने श्रीपुरुषोत्तमकी ओर गमन किया। श्रीमाधवेन्द्रपुरीको श्रीगोपीनाथजीने चोरी करके खीर प्रदान की थी, इसलिये उनका नाम 'क्षीरचोरा गोपीनाथ' हो गया है। नीलाचल पहुँचकर श्रीजगन्नाथदेवके सेवकोंके द्वारा राजकर्मचारियोंसे एक मन (लगभग 36 किलो) चन्दन और बीस तोला (लगभग 250 ग्राम) श्रीकर्पूर एकत्रित करके, दो व्यक्तियोंके द्वारा इन दोनों वस्तुओंको लेकर वे पुनः रेमुणा आये। तब गोवर्धनधारी श्रीगोपालने उन्हें पुनः स्वप्नमें आज्ञा दी,—"इस चन्दन और कर्पूरको गोपीनाथके अङ्गोंमें लगानेसे मेरा ताप दूर हो जायेगा।" श्रीमाधवेन्द्रपुरी उनकी उस आज्ञाका पालन करके पुनः नीलाचल चले गये। महाप्रभुने इस इतिहासको श्रीनित्यानन्द आदि भक्तोंको सुनाकर श्रीमाधवेन्द्रपुरीकी विशुद्ध प्रेमभक्तिकी बहुत प्रशंसा की। श्रीमाधवेन्द्रपुरीके द्वारा रचित श्लोकका पाठ करनेसे महाप्रभुमें प्रेमोन्माद उदित हुआ। लोगोंकी भीड़को देखकर महाप्रभुको बाह्यज्ञान होनेपर उन्होंने खीर प्रसाद पाकर वह रात्रि वहीं व्यतीत करके अगले दिन नीलाचलकी यात्रा की।

—(अमृतप्रवाहभाष्य)

'क्षीरचोरा गोपीनाथ'-सेवक श्रीमाधवेन्द्रपुरीको प्रणाम :—

यस्मै दातुं चोरयन् क्षीरभाण्डं
गोपीनाथः क्षीरचोराभिधोऽभूत्।
श्रीगोपालः प्रादुरासीद्वशः सन्
यत्प्रेम्णा तं माधवेन्द्रं नतोऽस्मि॥ 1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिनको खीर अर्पण करनेके लिये खीरके भाण्ड (कुल्हड़)की चोरी करके श्रीगोपीनाथका 'क्षीरचोरा'-नाम हुआ था और जिनकी भक्तिके वशीभूत होकर श्रीगोपालदेव प्रकाशित हुए थे, उन श्रीमाधवेन्द्रपुरीको मैं नमस्कार करता हूँ॥ 1॥

अनुभाष्य—

गोपीनाथः (रेमुणा-ग्रामस्थस्तन्नामप्रसिद्धः श्रीविग्रहः) क्षीरभाण्डं (पायसान्नपूर्णं पात्रं) चोरयन् (अपरहण) यस्मै (श्रीमाधवेन्द्राय) दातुं क्षीरचोराभिधः अभूत (क्षीरचोरागोपीनाथेति संज्ञां प्राप्तवान्); यत् (यस्य माधवेन्द्रस्य) प्रेमणा वशः (वशीभूतः सन्)

श्रीगोपालः (वज्रस्थापितविग्रहः गोवर्धनधारी) प्रादुरासीत् (प्रादुर्बभूव); तं माधवेन्द्रं (लक्ष्मीपतिशिष्यं माधवसम्प्रदायगुरुं माधवेन्द्रपुरीं) नतोऽस्मि।

श्लोक-भावानुवाद—जिनको देनेके लिये रेमुणा ग्राममें स्थित श्रीगोपीनाथ नामसे प्रसिद्ध श्रीविग्रहका नाम खीरका कुल्हड़ चुरानेके कारण 'क्षीरचोरागोपीनाथ' हुआ था तथा जिनके प्रेमके वशीभूत होकर व्रजनाभके द्वारा स्थापित गोवर्धनधारी श्रीगोपालके रूपमें प्रकाशित हुए थे, उन श्रीलक्ष्मीपतिके शिष्य मध्वसम्प्रदायके गुरु श्रीमाधवेन्द्रपुरीको मैं नमन करता हूँ॥ 1॥

जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥ 2॥

अनुवाद—श्रीगौरचन्द्रकी जय हो, जय हो, श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो, श्रीअद्वैताचार्यकी जय हो और समस्त श्रीगौरभक्तोंकी जय हो॥ 2॥

चैतन्यभागवतमें महाप्रभुके नीलाचल गमनके बादकी अन्य-अन्य लीलाएँ मधुररूपसे वर्णित :—

नीलाद्रि-गमन, जगन्नाथ-दरशन।
सार्वभौम भट्टाचार्य-प्रभुर मिलन॥ 3॥

ए सकल लीला श्रीदास-वृन्दावन।
विस्तारि' वर्णियाछेन उत्तम वर्णन॥ 4॥

सहजे विचित्र मधुर चैतन्य-विहार।
वृन्दावनदास-मुखे अमृतेर धार॥ 5॥

पुनरुक्ति और दम्भ अथवा श्रौतपन्थाके वरोधके भयसे ग्रन्थकार निवृत्त :—

अतएव ताहा वर्णिले हय पुनरुक्ति।
दम्भ करि' वर्णि यदि नाहि तैछे शक्ति॥ 6॥

अनुवाद—महाप्रभुका नीलाचल जाना, श्रीजगन्नाथका दर्शन करना और श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके साथ उनका मिलन—इन सब लीलाओंका श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने विस्तारपूर्वक अपने ग्रन्थ श्रीचैतन्यभागवतमें उत्तम रूपसे वर्णन किया है। महाप्रभुकी लीलाएँ स्वाभाविक रूपसे मधुर और विचित्र हैं, परन्तु श्रीवृन्दावनदास ठाकुरके श्रीमुखसे निकलनेपर तो वे अमृतकी धाराके समान प्रतीत होती हैं। इसलिये उन लीलाओंका पुनः वर्णन करनेसे पुनरुक्ति होगी और यदि दम्भ करके मैं उनका वर्णन करना भी चाहूँ, तो मुझमें ऐसी शक्ति नहीं है॥ 3-6॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'ए सकल लीला'*—ये सब लीलाएँ। श्रीचैतन्यभागवतके अन्त्यखण्डके दूसरे और तीसरे अध्यायमें इन्हें देखें॥ 4॥

चैतन्यभागवतमें विस्तृत रूपसे जो वर्णन हुआ है, उसका इस ग्रन्थमें संक्षेपमें और उसमें जो संक्षेपमें है, उसका इस ग्रन्थमें विस्तृत रूपसे वर्णन :—

चैतन्यमङ्गले याहा करिल वर्णन।
सूत्ररूपे सेइ लीला करिये सूचन॥ 7॥

ताँर सूत्रे आछे, तेँह ना कैल वर्णन।
यथा-कथञ्चित् करि' से लीला-कथन॥ 8॥

ग्रन्थकारका अतुलनीय मानद-धर्म—वृन्दावनदासकी वन्दना :—

अतएव ताँर पाये करि नमस्कार।
ताँर पाय अपराध ना हउक् आमार॥ 9॥

अनुवाद—श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने अपने ग्रन्थ श्रीचैतन्यमङ्गल (श्रीचैतन्यभागवत)में जिन लीलाओंका विस्तारसे वर्णन किया है, उन लीलाओंको मैं संक्षेपमें लिखूँगा। जिन लीलाओंका उन्होंने सूत्ररूपसे वर्णन किया है, अथवा जिन लीलाओंका उन्होंने वर्णन नहीं किया है, उन सबका मैं अपने सामर्थ्यानुसार विस्तारसे वर्णन करनेकी चेष्टा करूँगा। इसलिये मैं श्रीवृन्दावनदास ठाकुरके श्रीचरणोंमें दीनतापूर्वक नमस्कार करता हूँ, जिससे उनके श्रीचरणोंमें मेरा कोई अपराध न हो॥ 7-9॥

श्रीनित्यानन्दादि चार भक्तोंके साथ महाप्रभुकी पुरीके लिये यात्रा :—

एइमत महाप्रभु चलिला नीलाचले।
चारिभक्त-सङ्गे कृष्णकीर्त्तन कुतूहले॥ 10॥

भिक्षा लागि' एकदिन एक ग्राम गिया।
आपने अनेक अन्न आनिल मागिया॥ 11॥

अनुवाद—इस प्रकार महाप्रभुने चार भक्तोंके साथ उत्कण्ठापूर्वक श्रीकृष्णनामका कीर्तन करते हुए नीलाचलकी ओर प्रस्थान किया। महाप्रभु स्वयं एक-एक दिन एक-एक ग्राममें भिक्षा माँगनेके लिये जाते और बहुतसे चावल-दालादि ले आते॥ 10-11॥

महाप्रभुका रेमुणा पहुँचना और श्रीगोपीनाथ-दर्शन :—

पथे बड़ बड़ दानी विघ्न नाहि करे।
ता' सबारे कृपा करि' आइला रेमुणारे॥ 12॥
रेमुणाते गोपीनाथ परम-मोहन।
भक्ति करि' कैल प्रभु ताँर दरशन॥ 13॥
ताँर पादपद्म-निकट प्रणाम करिते।
ताँर पुष्प-चूड़ा पड़िल प्रभुर माथाते॥ 14॥

अनुवाद—मार्गमें अनेक स्थानोंपर 'बड़े-बड़े दानी' अर्थात् पथ-कर संग्रह करनेवाले बलवान व्यक्ति थे, परन्तु किसीने भी महाप्रभुको रोककर कर नहीं लिया। महाप्रभु उन सबपर कृपा करते हुए रेमुणामें आये। रेमुणामें परम मनोहर श्रीगोपीनाथ विराजमान हैं, महाप्रभुने बड़े भक्तिभावसे उनका दर्शन किया। महाप्रभुने श्रीगोपीनाथके श्रीचरणकमलोंके निकट जाकर प्रणाम किया, तभी श्रीगोपीनाथका पुष्प-मुकुट गिरकर महाप्रभुके मस्तकपर जा पड़ा॥ 12-14॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'दानी'*—घाटके माँझी (शुल्क संग्रह करनेवाले)। *'रेमुणा'*—बालेश्वरके निकट (पाँच मील पश्चिममें) रेमुणा नामका ग्राम है। वहाँ 'क्षीरचोरा गोपीनाथ' विराजमान हैं॥ 12-13॥

अनुभाष्य—*'रेमुणा'*—मध्यलीला 1/97 संख्याका अनुभाष्य देखें। इस स्थानमें 'श्रीगोपीनाथ'-विग्रह है और श्रीश्यामानन्द प्रभुके सेवक श्रीरसिकानन्द प्रभुकी समाधि आज भी विद्यमान है॥ 12॥

महाप्रभुका नृत्य-कीर्तन और विग्रहके सेवकोंके द्वारा महाप्रभुकी पूजा :—

चूड़ा पाञा महाप्रभुर आनन्दित मन।
बहु नृत्यगीत कैल लञा भक्तगण॥ 15॥
प्रभुर प्रभाव देखि' प्रेम-रूप-गुण।
विस्मित हइला गोपीनाथेर दासगण॥ 16॥
नानारूपे प्रीत्ये कैल प्रभुर सेवन।
सेइ रात्रि ताँहा प्रभु करिला वञ्चन॥ 17॥

अनुवाद—पुष्प-मुकुटको पाकर महाप्रभुको बहुत आनन्द हुआ और वे भक्तोंके साथ मिलकर नृत्य-कीर्तन करने लगे। महाप्रभुके अलौकिक भाव, उनका श्रीकृष्णमें प्रेम, उनके रूप और गुणोंको देखकर श्रीगोपीनाथके सेवक विस्मित हो गये। उन सेवकोंने अनेक प्रकारसे प्रीतिपूर्वक महाप्रभुकी सेवा की। महाप्रभुने वह रात श्रीगोपीनाथ-मन्दिरमें ही बितायी॥ 15-17॥

अनुभाष्य—*'वञ्चन'*—यापन अर्थात् बिताना॥ 17॥

गुरुमुखसे सुने श्रीकृष्णके भक्तवात्सल्योद्दीपक क्षीरप्रसादके सम्मानार्थ महाप्रभुकी वहाँ अपेक्षा :—

महाप्रसाद-क्षीर-लोभे रहिला प्रभु तथा।
पूर्वे ईश्वरपुरी ताँरे कहियाछेन कथा॥ 18॥

अनुवाद—श्रीगोपीनाथके खीररूपी महाप्रसादके लोभसे महाप्रभु वहीं रहे। महाप्रभुके गुरुदेव श्रीईश्वरपुरीने पहले स्वयं उनको खीरकी महिमा बतलायी थी॥ 18॥

भक्तोंके समक्ष महाप्रभुके द्वारा भक्त-माधवेन्द्रपुरीके लिये श्रीगोपीनाथका 'क्षीरचोरा' बननेके प्रसङ्गका वर्णन :—

'क्षीरचोरा गोपीनाथ' प्रसिद्ध ताँर नाम।
भक्तगणे कहे प्रभु सेइ त' आख्यान॥ 19॥
पूर्वे माधव-पुरीर लागि' क्षीर कैल चुरि।
अतएव नाम हैल 'क्षीरचोरा हरि'॥ 20॥
पूर्वे श्रीमाधव-पुरी आइला वृन्दावन।
भ्रमिते भ्रमिते गेला यथा गोवर्धन॥ 21॥

अनुवाद—श्रीगोपीनाथ कैसे 'क्षीरचोरा गोपीनाथ'के नामसे प्रसिद्ध हुए, महाप्रभुने इस कथाको अपने भक्तोंको सुनाया। पूर्वकालमें श्रीगोपीनाथने अपने भक्त श्रीमाधवेन्द्रपुरीके लिये खीरकी चोरी की थी, इसलिये उनका नाम 'क्षीरचोर गोपीनाथ' हो गया था। एक बार श्रीमाधवेन्द्रपुरी वृन्दावन आये थे और भ्रमण करते-करते वे गिरिराज गोवर्धन पहुँचे॥ 19-21॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'माधव-पुरी'*—माधवेन्द्रपुरी॥ 20॥

निरन्तर कृष्णप्रेममें मत्त श्रीमाधवेन्द्रपुरी :—

प्रेमे मत्त,—नाहि ताँर रात्रिदिन-ज्ञान।
क्षणे उठे, क्षणे पड़े, नाहि स्थानास्थान॥ 22॥

शैल परिक्रमा करि' गोविन्दकुण्डे आसि'।
स्नान करि, वृक्षतले आछे सन्ध्याय बसि'॥ 23॥

अनुवाद—श्रीमाधवेन्द्र पुरी प्रेममें ऐसे मत्त रहते कि उनको रात-दिनका कोई भी ज्ञान नहीं रहता था। प्रेमावेशमें वे एक क्षण उठकर खड़े होते और अगले क्षण भूमिपर गिर पड़ते, वह स्थान पवित्र है अथवा अपवित्र, उन्हें कुछ भी ध्यान नहीं रहता था। एक दिन गिरिराज गोवर्धनकी परिक्रमा करके उन्होंने गोविन्दकुण्डमें आकर स्नान किया। स्नान करके सन्ध्याके समय वे एक वृक्षके नीचे बैठे हुए थे॥ 22-23॥

अनुभाष्य— *'शैल'*—गोवर्धन पर्वत, मथुरासे आठ कोस दूर॥ 23॥

गोपबालकके वेशमें श्रीकृष्णके द्वारा अपने भक्त श्रीमाधवेन्द्रपुरीको दुग्ध-दान :—

गोप-बालक एक दुग्ध-भाण्ड लञा।
आसि' आगे धरि' किछु बलिल हासिया॥ 24॥

"पुरी, एइ दुग्ध लञा कर तुमि पान।
मागि' केने नाहि खाओ, किवा कर ध्यान॥"25॥

बालकेर सौन्दर्ये पुरीर हइल सन्तोष।
ताहार मधुर-वाक्ये गेल भोक-शोष॥ 26॥

अनुवाद—तभी एक गोपबालक दूधसे भरा पात्र लेकर आया और उसे उनके आगे रखकर मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए उनसे कहने लगा,—"हे माधवेन्द्रपुरी! तुम यह दूध लेकर पी लो। कुछ माँगकर खाते क्यों नहीं हो? और किसका ध्यान कर रहे हो?" उस बालकके सौन्दर्यको देखकर श्रीमाधवेन्द्रपुरी बहुत प्रसन्न हुए और उसके मधुर वचन सुनकर उनकी भूख-प्यास भी दूर हो गयी॥ 24-26॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'भोक-शोष'*—भूख और प्यास॥ 26॥

श्रीमाधवेन्द्रपुरीके द्वारा बालकके परिचयकी जिज्ञासा :—

पुरी कहे,—"के तुमि, काँहा तोमार वास।
केमते जानिले, आमि करि उपवास॥"27॥

अनुवाद—श्रीमाधवेन्द्रपुरीने उस बालकसे पूछा,—"तुम कौन हो? कहाँ रहते हो? तुम्हें कैसे पता चला कि मैंने आज उपवास किया है?॥"27॥

बालकके द्वारा आत्मगोपन :—

बालक कहे,—"गोप आमि, एइ ग्रामे बसि।
आमार ग्रामेते केह ना रहे उपवासी॥ 28॥

केह अन्न मागि' खाय, केह दुग्धाहार।
अयाचक-जने आमि दिये त' आहार॥ 29॥

जल निते स्त्रीगण तोमारे देखि' गेल।
स्त्रीगण दुग्ध दिया आमारे पाठाइल॥ 30॥

गोदोहन करिते चाहि, शीघ्र आमि याब।
पुनः आसि' आमि एइ भाण्ड लइब॥"31॥

अनुवाद—उस बालकने उत्तर दिया,—"मैं एक गोप हूँ और इसी गाँवमें रहता हूँ। हमारे गाँवमें कोई भी भूखा नहीं रहता। यहाँ कोई अन्न माँगकर खा लेता है या कोई केवल दूध माँगकर पी लेता है। और भिक्षा न माँगनेवालेको मैं स्वयं ही आहार पहुँचा देता हूँ। मेरे गाँवकी कुछ स्त्रियाँ जल लेनेके लिये इस कुण्डपर

आयी थीं और उन्होंने तुम्हें देखा था। उन स्त्रियोंने ही दूध देकर मुझे यहाँ भेजा है। अभी मुझे जल्दीसे गाय दुहनेके लिये जाना है, मैं पुनः आकर इस दूधके पात्रको ले जाऊँगा॥"28-31॥

दूध देकर बालकका अन्तर्धान होना :—

एत बलि' गेला बालक ना देखिये आर।
माधव-पुरीर चित्ते हैल चमत्कार॥32॥

दूध पीनेके बाद श्रीमाधवेन्द्रपुरीकी बालकके लिये प्रतीक्षा :—

दुग्ध पान करि' भाण्ड धुञा राखिल।
बाट देखे, से बालक पुनः ना आइल॥33॥

अनुवाद—इतना कहकर वह गोपबालक वहाँसे चला गया मानो वह अन्तर्धान हो गया हो। दूध पीकर श्रीमाधवेन्द्रपुरीके चित्तमें चमत्कार हो गया। दूध पीकर तब श्रीमाधवेन्द्रपुरीने उस बर्तनको धोकर रख दिया और उस बालककी बाट देखने लगे, परन्तु वह बालक फिर लौटकर नहीं आया॥32-33॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'बाट'*—राह, उड़िया भाषाका शब्द॥33॥

समाधिमें बालकरूपी श्रीकृष्णका दर्शन :—

बसि' नाम लय पुरी, नाहि निद्रा हय।
शेषरात्रे तन्द्रा हैल,—बाह्यवृत्ति-लय॥34॥

अनुवाद—श्रीमाधवेन्द्रपुरी वहीं बैठकर नाम जप करने लगे, रातमें भी उनको नींद नहीं आयी। रातके अन्तमें उन्हें तन्द्रा आ गयी और उनकी बाह्य चेतना लुप्त हो गयी॥34॥

अनुभाष्य—*'नाम'*—हरिनाम। *'बाह्यवृत्ति-लय'*—भक्तिमें समाहित (समाधिस्थ) हो गये॥34॥

स्वप्नमें श्रीमाधवेन्द्रपुरीको बालकरूपी श्रीकृष्णके द्वारा एक कुञ्जमें लाना :—

स्वप्न देखे, सेइ बालक सम्मुखे आसिञा।
एक कुञ्जे लञा गेल हातेते धरिञा॥35॥

सेवामें शिथिलताके कारण गिरिधारीके द्वारा दुःख प्रकट करना :—

कुञ्ज देखाञा कहे,—"आमि एइ कुञ्जे रइ।
शीत-वृष्टि-वाताग्निते महा-दुःख पाइ॥36॥

गिरिराजके ऊपर एक मठ निर्माण करके गिरिधारी गोपालकी प्रतिष्ठा करनेका आदेश :—

ग्रामेर लोक आनि' आमा काढ़' कुञ्ज हैते।
पर्वत-उपरि लञा राख भालमते॥37॥

एक मठ करि' ताँहा करह स्थापन।
बहु शीतल जले कर श्रीअङ्ग मार्जन॥38॥

अनुवाद—श्रीमाधवेन्द्रपुरीने स्वप्नमें देखा कि वही गोपबालक उनके सामने आया और उनको हाथसे पकड़कर एक कुञ्जमें ले गया। कुञ्ज दिखाते हुए उसने कहा,—"मैं इस कुञ्जमें रहता हूँ। सर्दी, गर्मी, वर्षा और आँधी-तूफानके कारण बहुत कष्ट पाता हूँ। तुम गाँवके लोगोंको लाकर मुझे इस कुञ्जसे बाहर निकालो और मुझे भलीभाँति गिरिराजके ऊपर विराजमान कर दो। उस स्थानपर एक मन्दिर स्थापित करो। फिर बहुतसा शीतल जल लाकर मेरे श्रीअङ्गोंका मार्जन करो॥35-38॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'काढ़'*—बाहर करो; *'मठ'*—मन्दिर॥37॥

भक्तकी प्रतीक्षामें भगवान् :—

बहुदिन तोमार पथ करि निरीक्षण।
कबे आसि' माधव आमा करिबे सेवन॥39॥

तोमार प्रेमवशे करि' सेवा अङ्गीकार।
दर्शन दिया निस्तारिब सकल संसार॥40॥

अनुवाद—मैं बहुत दिनोंसे तुम्हारी राह देख रहा था कि कब माधवेन्द्रपुरी यहाँ आयेगा और मेरी सेवा करेगा। तुम्हारे प्रेमके वशीभूत होकर मैं तुम्हारी सेवा स्वीकार करूँगा और अपने दर्शन देकर संसारके समस्त लोगोंका उद्धार करूँगा॥39-40॥

श्रीगिरिधारीके द्वारा अपना परिचय प्रदान :—

'श्रीगोपाल' नाम मोर,—गोवर्धनधारी।
वज्रेर स्थापित, आमि इँहा अधिकारी॥ 41॥

शैल-उपरि हैते आमा कुञ्जे लुकाञा।
म्लेच्छ-भये सेवक मोर गेल पलाञा॥ 42॥

सेइ हैते रहि आमि एइ कुञ्ज-स्थाने।
भाल, आइला तुमि, आमा काढ़ सावधाने॥"43॥

अनुवाद—मैं गोवर्धनधारी हूँ और मेरा नाम 'श्रीगोपाल' है। वज्रनाभने मुझे स्थापित किया था और मैं यहाँका अधिकारी हूँ। म्लेच्छोंके भयसे मेरा सेवक मुझे गोवर्धनके ऊपरसे लाकर इस कुञ्जमें छिपाकर स्वयं भाग गया था। तभीसे मैं इस कुञ्जमें रह रहा हूँ। अच्छा हुआ जो तुम आ गये, अब सावधानीपूर्वक मुझे यहाँसे निकालो॥"41-43॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'वज्रेर स्थापित'*—श्रीकृष्णके पौत्र अनिरुद्धके पुत्र वज्रनाभको पाण्डवोंने द्वारकासे लाकर मथुराका राजा बनाया था। वज्रनाभने श्रीकृष्णकी लीलाओंके सभी स्थानोंको खोजकर कुछेक श्रीमूर्तियोंकी स्थापना की थी। श्रीगोवर्धनधारी गोपाल उन्हीं श्रीमूर्तियोंमेंसे ही एक श्रीमूर्ति है॥ 41॥

गोपालका अन्तर्धान होना :—

एत बलि' येइ बालक अन्तर्धान हैल।
जागिया माधवपुरी विचार करिल॥ 44॥

श्रीमाधवेन्द्रपुरीका विचार :—

'श्रीकृष्णके देखिनु मुञि नारिनु चिनिते।'
एत बलि' प्रेमावेशे पड़िला भूमिते॥ 45॥

अनुवाद—यह कहकर वह बालक अन्तर्धान हो गया। तब श्रीमाधवेन्द्रपुरीने जागकर स्वप्नमें जो देखा, उसपर विचार करने लगे,—"हाय! हाय! श्रीकृष्णको देखकर भी मैं उन्हें पहचान न सका।" ऐसा कहकर वे प्रेमावेशमें पछाड़ खाकर भूमिपर गिर पड़े॥ 44-45॥

गिरिधारीको प्रकट करनेके लिये श्रीमाधवेन्द्रपुरीका यत्न :—

क्षणेक रोदन करि' मन कैल स्थिर।
आज्ञा-पालन लागि' हइला सुस्थिर॥ 46॥

प्रातःस्नान करि' पुरी ग्राममध्ये गेला।
सब लोक एकत्र करि' कहिते लागिला॥ 47॥

ग्रावबासियोंको सहायताके लिये प्रेरित करना :—

"ग्रामेर ईश्वर तोमार—गोवर्धनधारी।
कुञ्जे आछे, चल, ताँरे बाहिर ये करि॥ 48॥

कुठारि, कोदालि लह द्वारा करिते।
अत्यन्त निविड़ कुञ्ज,—नारि प्रवेशिते॥"49॥

अनुवाद—तब कुछ समय तक रोनेके बाद उन्होंने मनमें धैर्य धारण किया और श्रीगोपालकी आज्ञाका पालन करनेके लिये तैयार हो गये। प्रातःकाल स्नान करनेके बाद श्रीमाधवेन्द्रपुरी गाँवमें गये और सब लोगोंको एकत्रित करके कहने लगे,—"तुम्हारे गाँवके ईश्वर श्रीगोवर्धनधारी एक कुञ्जमें पड़े हुए हैं। चलो, हम सब उनको वहाँसे उन्हें बाहर निकालें। वह कुञ्ज बहुत ही घना है, उसमें कोई प्रवेश नहीं कर सकता। इसलिये रास्ता बनानेके लिये अपने साथ कुल्हाड़ियाँ और फावड़े ले चलो॥"46-49॥

सभी ग्रामवासियोंका मिलकर प्रयत्न :—

शुनि' लोक ताँर सङ्गे चलिला हरिषे।
कुञ्ज काटि' द्वार करि' करिला प्रवेशे॥ 50॥

अनुवाद—श्रीमाधवेन्द्रपुरीकी बात सुनकर गाँवके लोग हर्षित होकर उनके साथ चल पड़े। और वहाँ जाकर कुञ्जकी झाड़ियों आदिको काटकर रास्ता बनाकर उसमें प्रवेश किया॥ 50॥

सभीको छिपे हुए श्रीगिरिधारीका दर्शन और आनन्द :—

ठाकुर देखिल माटी-तृणे आच्छादित।
देखि' सब लोक हैल आनन्दे विस्मित॥ 51॥

अनुवाद—उन्होंने देखा कि धूल-मिट्टी और तिनकोंसे ढके हुए हैं। श्रीगोपालको देखकर वे सब लोग बहुत आनन्दित और विस्मित हुए॥ 51॥

विग्रहका अत्यधिक भार :—

आवरण दूर करि' करिल चिह्निते।
महा-भारि ठाकुर—केह नारे चालाइते॥ 52॥

महा-महा-बलिष्ठ लोक एकत्र करिञा।
पर्वत-उपरि गेल पुरी ठाकुर लञा॥ 53॥

पर्वतके ऊपर विग्रहका अभिषेक आरम्भ :—

पाथरेर सिंहासने ठाकुर बसाइल।
बड़ एक पाथर पृष्ठे अवलम्ब दिल॥ 54॥

अनुवाद—मिट्टी-तृणादिके आवरणको हटानेके बाद उन्होंने देखा कि श्रीगोपाल तो बहुत भारी हैं, कोई भी उनको हिला तक नहीं पा रहा है। तब बड़े-बड़े बलवान लोगोंको इकट्ठा करके उनके द्वारा श्रीगोपालको उठवाकर श्रीमाधवेन्द्रपुरी पर्वतके ऊपर ले गये। एक बड़े पत्थरको सिंहासन बनाकर श्रीगोपालको उसपर बैठाया और उनको सहारा देनेके लिये पीछे एक बड़ा पत्थर लगाया॥ 52-54॥

नैवेद्य और पूजाके उपकरण :—

ग्रामेर ब्राह्मण सब नवघट लञा।
गोविन्द-कुण्डेर जल आनिल छानिञा॥ 55॥

नवशतघट जल कैल उपनीत।
नाना वाद्य-भेरी बाजे, स्त्रीगण गाय गीत॥ 56॥

केह गाय, केह नाचे, महोत्सव हैल।
दधि, दुग्ध, घृत आइल ग्रामे यत छिल॥ 57॥

भोग-सामग्री आइल सन्देशादि यत।
नाना उपहार, ताहा कहिते पारि कत॥ 58॥

तुलसी आदि, पुष्प, वस्त्र आइल अनेक।
आपने माधवपुरी कैल अभिषेक॥ 59॥

अङ्गमला दूर करि' कराइल स्नान।
बहु तैल दिया कैल श्रीअङ्ग चिक्कण॥ 60॥

पञ्चगव्य, पञ्चामृते स्नान कराञा।
महास्नान कराइल शत घट दिञा॥ 61॥

पुनः तैल दिया कैल श्रीअङ्ग चिक्कण।
शङ्ख-गन्धोदके कैल स्नान समाधान॥ 62॥

श्रीअङ्ग मार्जन करि' वस्त्र पराइल।
चन्दन, तुलसी, पुष्प-माला अङ्गे दिल॥ 63॥

अनुवाद—गाँवके सब ब्राह्मण नये-नये घड़े लेकर गोविन्द कुण्डके जलको छानकर लाने लगे। इस प्रकार एक सौ नये घड़े जल आ गया। तब अनेक प्रकारके भेरी आदि वाद्ययन्त्र बजने लगे और स्त्रियाँ मधुर स्वरसे गीत गाने लगीं। कोई गा रहा था, तो कोई नाच रहा था, इस प्रकार वहाँ एक महोत्सव होने लगा। गाँवमें जितना भी दही, दूध और घी था, सब वहाँ लाया गया। भोग सामग्रीके लिये जितने प्रकारके सन्देशादि मिष्ठान्न और उपहार लाये गये, उनको मैं बतला नहीं सकता। गाँवके लोग तुलसी, पुष्प और अनेक प्रकारके वस्त्र ले आये और स्वयं श्रीमाधवेन्द्रपुरीने श्रीगोपाल-विग्रहका अभिषेक किया। मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए श्रीविग्रहके ऊपर चढ़े धूल-तृणादि मैलको दूर किया गया। तब श्रीविग्रहको स्नान कराना आरम्भ किया। सबसे पहले श्रीविग्रहकी बहुत मात्रामें सुगन्धित तेलसे मालिश करके उनके श्रीअङ्गोंको चमकाया। तब पञ्चगव्य और पञ्चामृतसे स्नान कराके सौ घड़ोंमें लाये जल और घीके द्वारा महास्नान कराया। महास्नानके बाद फिरसे सुगन्धित तेल मलकर श्रीविग्रहके अङ्गोंको चमकाया गया तथा शङ्खमें सुगन्धित जल भरकर स्नान कराया। इस प्रकार श्रीगोपालके श्रीअङ्गोंका मार्जन हो जानेके बाद श्रीमाधवेन्द्रपुरीने उन्हें वस्त्र पहनाये तथा श्रीअङ्गोंमें चन्दन, तुलसी और पुष्पमाला आदि अर्पण किये॥ 55-63॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'पञ्चगव्य'*—दूध, दही, घी, गोमूत्र एवं गोबर; *'पञ्चामृत'*—दही, दूध, घी, शहद एवं चीनी। *'शङ्ख-गन्धोदक'*—शङ्खोदक अर्थात् शंखमें रखा हुआ पुष्प-चन्दन मिश्रित सुगन्धित जल॥ **61-62**॥

अनुभाष्य—ह:भ:वि: छठा विभाग—

"ततः शङ्खेनाभिषेकं कुर्याद् घण्टादिनिःस्वनैः।
मूलेनाष्टाक्षरेणपि धूपयन्नन्तरान्तरा॥"65॥

अर्थात् "स्नानपात्रमें श्रीभगवान्‌की मूर्तिको रखकर घण्टा आदि वाद्य-यन्त्रोंके साथ धूप अर्पण करते हुए शङ्खमें रखे जलके द्वारा बीच-बीचमें अष्टाक्षर मूल-मन्त्रके साथ अभिषेक करना चाहिये।"

यवचूर्ण ('जौ'का चूर्ण), गोधूमचूर्ण (गेहूँका चूर्ण), लोध्रचूर्ण (एक विशेष प्रकारके वृक्षके तनेसे बना चूर्ण), कुङ्कुमचूर्ण, मसूरचूर्णके द्वारा साफ करना चाहिये। बेसन और हल्दीके उबटनके द्वारा और 'खस' आदिसे निर्मित कूची, गायकी पूँछके बालोंसे बनी हुई कूची आदिसे अङ्गोंकी मैल दूर होती है। ह:भ:वि: छठा विभाग—

"तत्र तु प्रथमं भक्तया विदधीत सुगन्धिभिः।
दिव्यैस्तैलादिभिर्द्रव्यैरभ्यङ्गं श्रीहरेः शनैः॥66॥
अभ्यङ्गद्रव्याणि—
मालतीयूथीमादाय सुगन्धानान्तु वा पुनः॥67॥
तथान्यपुष्पजातीनां गृहीत्वा भक्तितो नराः॥68क॥
यः पुनः पुष्पतैलेन दिव्यौषधियुतेन हि॥69ख॥
अभ्यङ्गं कुरुते विष्णोर्मध्ये क्षिप्त्वा तु कुङ्कुमम्॥70क॥
गन्ध-तैलानि दिव्यानि सुगन्धीनि शुचीनि च॥"71क॥

अर्थात् "स्नानकार्यमें पहले दिव्य सुगन्धित तेलादि द्रव्योंके द्वारा भक्तिपूर्वक धीरे-धीरे श्रीहरिके सभी अङ्गोंको मलना चाहिये। मालती, यूथि, या अन्य-अन्य सुगन्धवाले पुष्पोंको लेकर और दिव्य औषधियुक्त कुङ्कुम-मिश्रित सुगन्धित पवित्र पुष्प-तेलके द्वारा भक्तिसहित श्रीविष्णुके अङ्गोंको मलना आवश्यक है।"

ह:भ:वि: छठा विभाग—

"ततः शङ्खभृतेनैव क्षीरेण स्नापयेत् क्रमात्।
दध्ना घृतेन मधुना खण्डेन च पृथक् पृथक्॥"72॥

अर्थात् "श्रीविष्णुके श्रीअङ्गोंको मलनेके बाद शङ्खमें दूध, दही, घी, शहद और चीनी डालकर क्रमानुसार पृथक् पृथक्‌रूपसे स्नान कराना चाहिये।"

'महास्नान'—ह:भ:वि: छठा विभाग—

"द्वे सहस्रे पलानान्तु महास्नाने च संख्यया॥"75ख॥

अर्थात् "देव-प्रतिमाको घीसे स्नान कराना होता है। महास्नानमें घी और स्नानजल,—प्रत्येकका परिमाण दो हजार 'पल' होता है। एक 'पल' चार 'तोला'के बराबर होता है, इस हिसाबसे महास्नानमें अढ़ाई मन (लगभग 90 किलो) जल लगता है।"

ह:भ:वि: छठा विभाग—

"ततः कोष्णेन संस्नाप्य संस्कृतेन सुगिन्धना।
शीतलेनाम्बुना शङ्खभृतेन स्नापयेत् पुनः॥107॥
चन्दनोषीर-कर्पूरकुङ्कुमागुरु-वासितैः।
सलिलैः स्नापयेन्मन्त्री नित्यदा विभवे सती॥"108॥

जलका परिमाण—

"स्नाने पलशतं देयमभ्यङ्गे पञ्चविंशतिः।
पलानां द्वे सहस्रे तु महास्नानं प्रकीर्त्तितम्॥"109॥

अर्थात् "श्रीविग्रहके अङ्ग-मार्जनके बाद सर्वोषधि आदिके द्वारा सुसंस्कृत सुगन्धित गुनगुने जलके द्वारा स्नान कराकर शङ्खसे शीतल जलसे स्नान कराना चाहिये। सामर्थ्य होनेपर दीक्षित व्यक्तिको चन्दन, खस, कर्पूर, कुङ्कुम, अगुरु, चन्दनयुक्त जलसे प्रतिदिन श्रीविग्रहको स्नान कराना चाहिये।" जलका परिमाण—"स्नानमें एक सौ 'पल' और अभ्यङ्ग-स्नानमें पचीस 'पल' परिमाणमें जल देना चाहिये। दो हजार 'पल' जलसे महास्नान होता है॥"**60-62**॥

भोग आरति :—

धूप, दीप, करि' नाना भोग लागाइल।
दधि-दुग्ध-सन्देशादि यत किछु आइल॥ 64॥

सुवासित जल नवपात्रे समर्पिल।
आचमन दिया से ताम्बूल निवेदिल॥ 65॥

आरात्रिक करि' कैल बहुत स्तवन।
दण्डवत् करि' कैल आत्मसमर्पण॥ 66॥

अनुवाद—फिर श्रीमाधवेन्द्रपुरीने धूप, दीपके द्वारा श्रीगोपालका अर्चन करके दही, दूध और सन्देशादि अनेक प्रकारकी जो सामग्री गाँवसे आयी थी, उन सबका भोग लगाया। उसके बाद नये पात्रमें सुगन्धित जल अर्पित किया, तत्पश्चात् आचमन देकर श्रीगोपालको ताम्बूल अर्पण किया। फिर भोग-आरती करनेके बाद श्रीगोपालकी अनेक स्तव-स्तुति की। और अन्तमें दण्डवत् प्रणाम करके श्रीगोपालको आत्मसमर्पण किया॥ 64-66॥

पके हुए अन्नका भोग लगाना—अन्नकूट :—

ग्रामेर यतेक तण्डुल, दालि, गोधूम-चूर्ण।
सकल आनिया दिल पर्वत हैल पूर्ण॥ 67॥

कुम्भकार-घरे छिल ये मृद्भाजन।
सब आनाइल प्राते, चड़िल रन्धन॥ 68॥

अनुवाद—गाँवके लोगोंके घरमें जितना भी चावल, दाल एवं आटा आदि था, वे सारा उठाकर वहाँ ले आये जिससे पर्वतका शिखर पूरा भर गया। गाँवके कुम्हारोंके घरमें जितने भी मिट्टीके बर्तन थे, वे भी उन सभी बर्तनोंको ले आये और प्रातःकालसे ही रसोई बननी आरम्भ हो गयी॥ 67-68॥

अनेक प्रकार व्यञ्जन :—

दशविप्र अन्न रान्धि' करे एक स्तूप।
जना-पाँच रान्धे व्यञ्जनादि नाना सूप॥ 69॥

वन्य शाक-फल-मूले विविध व्यञ्जन।
केह बड़ा-बड़ि-कढ़ि करे विप्रगण॥ 70॥

जना पाँच-सात रुटि करे राशि-राशि।
अन्न-व्यञ्जन सब रहे घृते भासि'॥ 71॥

नववस्त्र पाति' ताहे पलाशेर पात।
रान्धि' रान्धि' तार उपर राशि कैल भात॥ 72॥

तार पाशे रुटि-राशिर पर्वत हैल।
सूप-आदि-व्यञ्जन-भाण्ड चौदिके धरिल॥ 73॥

तार पाशे दधि, दुग्ध, माठा, शिखरिणी।
पायस, मथनि, सर पाशे धरि' आनि'॥ 74॥

स्वयं पुरी-गोसाईंके द्वारा भोग-निवेदन :—

हेनमते अन्नकूट करिल साजन।
पुरी-गोसाञि गोपालेरे कैल समर्पण॥ 75॥

अनेक घट भरि' दिल सुवासित जल।
बहुदिनेर क्षुधाय गोपाल खाइल सकल॥ 76॥

अनुवाद—दस ब्राह्मणोंने मिलकर चावल और पाँच ब्राह्मणोंने मिलकर सूखे और रसेवाले अनेक प्रकारके व्यञ्जनादि बनाये। कुछ ब्राह्मणोंने वनसे लाये गये शाक, मूल और फलोंके द्वारा अनेक प्रकारके व्यञ्जन बनाये, तो कोई ब्राह्मण दाल पीसकर बड़ा, कोई बड़ि और कोई कढ़ी आदि बनाने लगा। पाँच-सात लोगोंने मिलकर इतनी रोटियाँ बनायी कि रोटियोंका पहाड़ बन गया और सभी रोटियोंपर अच्छे प्रकारसे घी लगाया था। अन्न-व्यञ्जन आदि तो घीमें सराबोर हो रहे थे। एक नये वस्त्रको बिछाकर उसपर पलाशके पत्ते रखे गये। उनपर बीचमें पके हुए चावलका पर्वताकारमें ढेर लगाया गया और उसके चारों ओर रोटियोंका ढेर तथा दाल-सब्जी-व्यञ्जनोंके पात्र भरकर रखे गये। उनके साथ ही दही, दूध, मट्ठा, शिखरिणी, खीर, मक्खन और मलाई आदिके पात्रोंको भी रखा गया। इस प्रकार अन्नकूटको सजाकर श्रीपुरी गोसाईंने श्रीगोपालको अर्पण किया। श्रीपुरीने अनेक घड़ोंमें भरकर सुगन्धित शीतल जल अर्पण किया। अनेक दिनोंसे भूखे होनेके कारण श्रीगोपालने सब कुछ खा लिया॥ 69-76॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'माठा'*—मट्ठा; *'शिखरिणी'*—दही, दूध, चीनी, कर्पूर एवं काली मिर्च—ये पाँच वस्तुएँ मिलानेसे 'शिखरिणी' बनती है; *'मथनि'*—मक्खन॥ 74॥

अनुभाष्य—यहाँपर भी ग्रन्थकार श्रील कविराज

गोस्वामी प्रभुका विविध प्रकारके पकवान बनानेका नैपुण्य प्रकाशित हो रहा है। *'अन्नकूट'*—अन्नका पर्वत; *'कूट'*—दुर्ग, गढ़, पर्वत॥ **69-76**॥

श्रीगोपालके द्वारा भोगके सभी नैवेद्य खा लिये जानेपर भी हार्थोंके स्पर्शसे पुनः पूरण :—

यद्यपि गोपाल सब अन्न-व्यञ्जन खाइल।
ताँर हस्त-स्पर्शे पुनः तेमनि हइल॥ 77॥

अनुवाद—यद्यपि श्रीगोपालने सब अन्न-व्यञ्जन खा लिये, तथापि उनके हाथोंके स्पर्शसे पुनः सब कुछ पूर्ववत् हो गया॥ **77**॥

भगवद्-लीला भक्तोंके ही गोचर :—

इहा अनुभव कैल माधव गोसाञि।
ताँर ठाञि गोपालेर लुकान किछु नाइ॥ 78॥
एकदिन-उद्योगे ऐछे महोत्सव कैल।
गोपाल-प्रभावे हय, अन्ये ना जानिल॥ 79॥

अनुवाद—श्रीगोपालकी इस भोजन लीलाका अनुभव केवल श्रीमाधवेन्द्र पुरीको ही हुआ, क्योंकि उनके जैसे भक्तोंसे भगवान्‌की कोई बात छिपी नहीं रह सकती। एक दिनके प्रयाससे इतना बड़ा महोत्सव केवल श्रीगोपालके प्रभावसे ही सम्भव हो सका, शुद्धभक्तके अतिरिक्त इसे और कोई भी नहीं जान सकता॥ **78-79**॥

अनुभाष्य—आदिलीला, 3/86-89 संख्या देखें॥ **78**॥

श्रीगोपालकी आरती :—

आचमन दिया दिल बिड़क-सञ्चय।
आरति करिल, लोके करे जय जय॥ 80॥

अनुवाद—तब श्रीमाधवेन्द्रपुरीने श्रीगोपालको आचमन देकर उन्हें अनेक पानके बीड़े अर्पित किये। उसके बाद जब उन्होंने श्रीगोपालकी आरती की, तब सभी लोग श्रीगोपालकी जय-जयकार करने लगे॥ **80**॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'विड़क'*—पानका बीड़ा; *'सञ्चय'*—संग्रह॥ **80**॥

ठाकुरके लिये शय्या तथा शयनकी व्यवस्था :—

शय्या कराइल, नूतन खाट आनाञा।
नववस्त्र आनि' तार उपरे पातिया॥ 81॥
तृण-टाटि दिया चारिदिक् आवरिल।
उपरेते एक टाटि दिया आच्छादिल॥ 82॥

अनुवाद—आरती करनेके बाद श्रीमाधवेन्द्रपुरीने श्रीगोपालके लिये एक नवीन खाट मँगवाकर उसपर नया वस्त्र बिछाकर उनको शयन कराया। फिर चटाईसे उस स्थानके चारों ओर घेरा बना दिया तथा ऊपर भी एक चटाई लगाकर उसको ढक दिया, इस प्रकार वहाँ एक अस्थाई मन्दिर बन गया॥ **81-82**॥

सभीके द्वारा अन्नकूट महाप्रसाद-सेवन :—

पुरी-गोसाञि आज्ञा दिल सकल ब्राह्मणे।
आ-बाल-वृद्ध ग्रामेर लोक कराह भोजने॥ 83॥
सबे बसि' क्रमे क्रमे भोजन करिल।
ब्राह्मण-ब्राह्मणीगणे आगे खाओयाइल॥ 84॥

अनुवाद—श्रीपुरी गोसाईंने सभी ब्राह्मणोंको बुलाकर आज्ञा दी कि बालकसे वृद्ध तक, गाँवके सभी लोगोंको भरपेट महाप्रसादका भोजन कराया जाय। सभीने बैठकर क्रमसे भोजन किया। सबसे पहले ब्राह्मण-ब्राह्मणियोंको भोजन कराया गया॥ **83-84**॥

दर्शन मात्रसे ही प्रसादका सम्मान :—

अन्य ग्रामेर लोक यत देखिते आइल।
गोपाल देखिया सेह प्रसाद पाइल॥ 85॥

अनुवाद—अन्य गाँवोंसे दर्शनके लिये आये लोगोंने भी श्रीगोपालका दर्शनकर उस महाप्रसादको पाया॥ **85**॥

श्रीमाधवेन्द्रपुरीके प्रभावको देखकर सभीको आश्चर्य तथा अन्नकूटके दर्शनसे नन्दोत्सवका स्मरण :—

देखिया पुरीर प्रभाव लोके चमत्कार।
पूर्व अन्नकूट येन हैल साक्षात्कार॥ 86॥

अनुवाद—श्रीमाधवेन्द्रपुरीके प्रभावको देखकर सभी लोग चमत्कृत हो गये। सभीको ऐसा लगा, मानो वे द्वापर युगमें भगवान् श्रीकृष्णके कहनेपर व्रजवासियोंके द्वारा आयोजित किये गये अन्नकूट महोत्सवको ही साक्षात् देख रहे हैं॥ 86॥

अमृतप्रवाह भाष्य—द्वापर युगमें व्रजवासी सभी गोप इन्द्रकी पूजा करते थे। श्रीकृष्णने इन्द्रकी पूजाको छुड़वाकर गिरिगोवर्धनकी पूजा और उन्हें (गिरिराजको) अन्नकूट भोजन करानेकी व्यवस्था कर दी। उससे इन्द्रने क्रोधित होकर सात दिनतक वर्षा करके गोकुलको विनष्ट करनेकी चेष्टा की। श्रीकृष्णने गोवर्धन पर्वतको अपनी कनिष्ठ (सबसे छोटी) अंगुलीपर छतरीके रूपमें धारण करके गोकुलकी रक्षा की थी। उस गोवर्धन-पूजामें जैसा बड़ा अन्नकूट हुआ था, श्रीमाधवेन्द्रपुरीने भी उसी प्रकारसे अन्नकूट किया था॥ 86॥

अनुभाष्य—*'पूर्व अन्नकूट'*—श्रीकृष्णके परामर्श अनुसार गोपोंने द्वापरके अन्तमें इन्द्रपूजाको त्यागकर गो, ब्राह्मण और गोवर्धनगिरिकी पूजा की थी। श्रीकृष्णने और एक रूप धारण करके 'मैं ही पर्वत हूँ'—ऐसा कहकर उन्होंने गोवर्धनको निवेदित अनेकानेक नैवेद्योंका भक्षण किया था। (भाः 10/24/26, 31-33)—

"पच्यन्तां विविधाः पाकाः सूपान्ताः पयसादयः।
संयावापूपशष्कुल्यः सर्वदोहश्च गृह्यताम्॥ 26॥
प्रोक्तं निशम्य नन्दाद्याः साधवगृह्णन्त तद्वचः॥ 31ख॥
तथा च व्यदधुः सर्वं यथाह मधुसूदनः॥
वाचयित्वा स्वस्त्ययनं तद्द्रव्येण गिरिद्विजान्॥ 32॥
उपहृत्य बलीन् सम्यगादृता यवसं गवाम्॥"33क॥

अर्थात् "श्रीकृष्णने नन्दबाबा आदि व्रजवासियोंसे कहा,—"खीरसे आरम्भ करके मूँगकी दालतक, हलवा, पुआ, पूरी, पापड़ आदि पकवान बनवाये जाँय और समस्त व्रजवासी गायोंका दोहन करके दूध, दही आदि यहाँ ले आयें।" भगवान् श्रीकृष्णके इन वचनोंको नन्दबाबा आदि गोपोंने बड़ी प्रसन्नतासे स्वीकार कर लिया। तब उन्होंने श्रीकृष्णके कहे अनुसार सभी अनुष्ठान किये। सर्वप्रथम ब्राह्मणोंके द्वारा स्वस्तिवाचन कराया गया। तत्पश्चात् इन्द्रके उद्देश्यसे निर्मित सामग्रियोंको गिरिराज गोवर्धनको अर्पित किया गया और ब्राह्मणोंकी पूजा करके उसी सामग्रीमेंसे उनको भेंटें दी गयीं। गायोंको बड़े आदरके साथ हरी-भरी घासका चारा दिया गया॥"86॥

श्रीमाधवेन्द्रपुरीकी कृपासे ब्राह्मणोंका वैष्णव होना :—

सकल ब्राह्मणे पुरी वैष्णव करिल।
सेइ सेइ सेवा-मध्ये सबा नियोजिल॥ 87॥

अनुवाद—श्रीमाधवेन्द्र पुरीने उपस्थित सभी ब्राह्मणोंको मन्त्र-दीक्षादिके द्वारा वैष्णव बना दिया और सबको यथायोग्य विभिन्न सेवाओंमें लगा दिया॥ 87॥

पुनः दिन-शेषे प्रभुर कराइल उत्थान।
किछु भोग लागाइल कराइल जलपान॥ 88॥

अनुवाद—फिर दिन ढलनेके समय श्रीमाधवेन्द्रपुरीने श्रीगोपालको शयनसे उठाया और कुछ भोग लगाकर जलपान करवाया॥ 88॥

सर्वत्र श्रीगोपालका प्राकट्य-प्रचार और अन्नकूट-भोग :—

गोपाल प्रकट हैल,—देशे शब्द हैल।
आश-पाश-ग्रामेर लोक देखिते आइल॥ 89॥

एकेक दिन एकेक ग्रामे लइल मागिञा।
अन्नकूट करे सबे हरषित हञा॥ 90॥

अनुवाद—सारे देशमें यह बात फैल गयी कि गोवर्धनमें श्रीगोपाल प्रकट हुए हैं, तो आस-पासके गाँवोंके लोग उनके दर्शनोंके लिये आने लगे। सभी गाँवाले अन्नकूट-महोत्सव करना चाहते थे, इसलिये एक-एक गाँववालोंने श्रीमाधवेन्द्र पुरीसे एक-एक दिन माँग लिया। इस प्रकार बारी-बारी वे सभी आनन्दित होकर अन्नकूट-महोत्सव करने लगे॥ 89-90॥

पुरी गोसाईंका रात्रि-आहार :—

रात्रिकाले ठाकुरे कराइया शयन।
पुरी-गोसाञि कैल किछु गव्य भोजन॥ 91॥

अनुवाद—रात्रिके समय श्रीमाधवेन्द्रपुरीने श्रीगोपालको शयन दिया। उन्होंने सारा दिन कुछ भी नहीं खाया था। शयन देनेके बाद उन्होंने थोड़ासा दूध पान किया॥ 91॥

अनुभाष्य—*'गव्य'*—दूध॥ 91॥

अगले दिन प्रातःकालमें भी पहले दिनके जैसी सेवा :—

प्रातःकाले पुनः तैछे करिल सेवन।
अन्न लञा एक ग्रामेर आइल लोकगण॥ 92॥

अन्न, घृत, दधि, दुग्ध,—ग्रामे यत छिल।
गोपालेर आगे लोक आनिया धरिल॥ 93॥

पूर्वदिन-प्राय ब्राह्मण करिल रन्धन।
तैछे अन्नकूट गोपाल करिल भोजन॥ 94॥

अनुवाद—अगले दिन प्रातःकालमें पुनः श्रीमाधवेन्द्रपुरीने श्रीगोपालकी पूर्व-दिनके जैसे सेवा की। तभी एक गाँवके लोग भोग-सामग्री लेकर आ गये। उनके गाँवमें जितना भी अन्न, घी, दही, दूध आदि था, वह सब लाकर उन्होंने श्रीगोपालके आगे रख दिया। पहले दिनकी भाँति आज भी ब्राह्मणोंने रसोई बनायी और वैसा ही अन्नकूट महोत्सव हुआ तथा आज भी श्रीगोपालने सब कुछ ग्रहण किया॥ 92–94॥

व्रजवासियों और श्रीकृष्ण, दोनोंकी दोनोंके प्रति स्वाभाविक प्रीति :—

व्रजवासी लोकेर कृष्णे सहज-प्रीति।
गोपालेर सहजे प्रीति व्रजवासि-प्रति॥ 95॥

महाप्रसाद खाइल आसिया सब लोक।
गोपाल देखिया सबार खण्डे दुःख-शोक॥ 96॥

प्रतिदिन अनेक उपहार और महोत्सव :—

आश-पाश व्रजभूमेर यत लोक सब।
एक एक दिन सबे करे महोत्सव॥ 97॥

अनुवाद—जिस प्रकार व्रजवासियोंकी श्रीकृष्णमें स्वाभाविक प्रीति है, उसी प्रकार श्रीगोपालकी भी व्रजवासियोंके प्रति स्वाभाविक प्रीति है। अन्नकूट महोत्सवमें जितने भी लोग आये थे, उन सबने अन्नकूट-महाप्रसादका सेवन किया तथा श्रीगोपालके दर्शनसे उन सबके दुःख-शोक दूर हो गये। व्रजभूमिमें आस-पासके जितने भी गाँव थे, उन सभी गाँवोंके लोग एक-एक दिन आकर अन्नकूट महोत्सव करने लगे॥ 95–97॥

गोपाल-प्रकट शुनि' नाना देश हैते।
नाना द्रव्य लञा लोक लागिल आसिते॥ 98॥

मथुरार लोक सब बड़ बड़ धनी।
भक्ति करि' नाना द्रव्य भेट देय आनि'॥ 99॥

स्वर्ण, रौप्य, वस्त्र, गन्ध, भक्ष्य-उपहार।
असंख्य आइसे, नित्य बाड़िल भाण्डार॥ 100॥

अनुवाद—श्रीगोपालके प्राकट्यकी बात सुनकर अनेक प्रदेशोंसे लोग अनेक प्रकारके द्रव्य लाकर उनके दर्शनोंके लिये आने लगे। मथुराके सब बड़े-बड़े धनी व्यक्ति श्रद्धापूर्वक अनेक वस्तुएँ लाकर भेंट चढ़ाने लगे। इस प्रकार असंख्य मात्रामें स्वर्ण, चाँदी, वस्त्र, इत्र और अन्य खानेकी सामग्री आने लगी, जिससे श्रीगोपालका भण्डार प्रतिदिन बढ़ता ही गया॥ 98–100॥

गोपालके मन्दिरका निर्माण–

एक महाधनी क्षत्रिय कराइल मन्दिर।
केह पाक-भाण्डार कैल, केह त' प्राचीर॥ 101॥

एक एक व्रजवासी एक एक गाभी दिल।
दशसहस्र गाभी गोपालेर हैल॥ 102॥

अनुवाद—तब किसी एक बहुत धनी क्षत्रियने श्रीगोपालके लिये मन्दिर बनवा दिया और किसी एकने रसोईघर बनवाया और बर्तन दिये तथा अन्य किसीने चार-दीवारी बनवा दी। एक-एक व्रजवासीने एक-एक

गाय दी और इस प्रकार श्रीगोपालकी दस हजार गायें हो गयीं॥ 101-102॥

दो वैरागी ब्राह्मणोंपर कृपा और सेवा-समर्पण :—

गौड़ हइते आइला दुइ वैरागी ब्राह्मण।
पुरी-गोसाञि राखिल तारे करिया यतन॥ 103॥

सेइ दुइ शिष्य करि' सेवा समर्पिल।
राज-सेवा हय,—पुरीर आनन्द बाड़िल॥ 104॥

अनुवाद—तभी बङ्गालसे दो वैरागी ब्राह्मण वहाँ आये। श्रीपुरी गोसाईंको वे दोनों बहुत अच्छे लगे और उन्होंने उनके वहीं रहनेके लिये अच्छे स्थानकी व्यवस्था कर दी। श्रीमाधवेन्द्रपुरीने उन्हें दीक्षा प्रदान करके अपने शिष्यके रूपमें स्वीकार किया और उन्हें श्रीगोपालकी सेवा समर्पित कर दी। इस प्रकार श्रीगोपालकी नित्य राजसेवा होने लगी, जिसे देखकर श्रीमाधवेन्द्रपुरीके आनन्दकी सीमा न रही॥ 103-104॥

दो वर्षों तक श्रीमाधवेन्द्रपुरीके द्वारा श्रीगोपालकी सेवा :—

एइमत वत्सर दुइ करिल सेवन।
एकदिन पुरी-गोसाञि देखिल स्वपन॥ 105॥

स्वप्नमें श्रीमाधवेन्द्रपुरीके समक्ष श्रीगोपालके
द्वारा चन्दनकी इच्छा प्रकाशित :—

गोपाल कहे,—"पुरी, आमार ताप नाहि याय।
मलयज-चन्दन लेप', तबे से युड़ाय॥ 106॥

मलयज आन याञा नीलाचल हैते।
अन्ये हैते नहे, तुमि चलह त्वरिते॥"107॥

अनुवाद—इस प्रकार दो वर्षों तक श्रीमाधवेन्द्रपुरीने श्रीगोपालकी सेवा की। तब एक दिन श्रीमाधवेन्द्रपुरीने एक स्वप्न देखा। स्वप्नमें श्रीगोपालने कहा,—"पुरी! मेरे शरीरका ताप नहीं जा रहा है, मलयज चन्दनका लेप होनेसे ही वह ताप दूर होगा। नीलाचल जाकर वहाँसे मलयज चन्दन ले आओ। इस कार्यको कोई और नहीं कर सकता, इसलिये तुम शीघ्र ही चले जाओ॥"105-107॥

अनुभाष्य—*'मलयज'*—मलय देशमें उत्पन्न; इसको 'चन्दनगिरि' कहते हैं। मलयदेश अथवा मालावार देश 'पश्चिमघाट'—नामक गिरिपुञ्जके दक्षिण भागमें है। 'नीलगिरि'को कोई-कोई मलय पर्वत कहते हैं। मलयज शब्दका अर्थ चन्दन भी होता है॥ 106॥

स्वप्न देखि' पुरी-गोसाञि हैल प्रेमावेश।
प्रभु-आज्ञा पालिवारे गेला पूर्वदेश॥ 108॥

श्रीजगन्नाथपुरीके मार्गमें पुरीपादका गौड़देशमें आगमन :—

सेवाय नियुक्त लोक करिल स्थापन।
आज्ञा मागि' गौड़-देशे करिल गमन॥ 109॥

अनुवाद—स्वप्न देखकर श्रीमाधवेन्द्रपुरी प्रेमाविष्ट हो गये और श्रीगोपालकी आज्ञा पालन करनेके लिये पूर्व-भारतमें नीलाचलकी ओर चलनेके लिये तैयार हुए। उन्होंने श्रीगोपालकी सुचारुरूपसे सेवाके लिये लोगोंको नियुक्त किया और फिर श्रीगोपालसे आज्ञा लेकर गौड़देशके लिये चल दिये॥ 108-109॥

शान्तिपुरमें श्रीअद्वैतके घरपर आगमन
और उनको दीक्षा प्रदान :—

शान्तिपुर आइला अद्वैताचार्येर घरे।
पुरीर प्रेम देखि' आचार्य आनन्द अन्तरे॥ 110॥

ताँर ठाञि मन्त्र लैल यत्न करिञा।
चलिला दक्षिणे पुरी ताँरे दीक्षा दिञा॥ 111॥

अनुवाद—श्रीमाधवेन्द्रपुरी जब शान्तिपुर पहुँचे, तब वे श्रीअद्वैताचार्यके घरमें रहे। श्रीमाधवेन्द्रपुरीके श्रीकृष्णप्रेमको देखकर श्रीअद्वैताचार्यके हृदयमें बहुत आनन्द हुआ। उन्होंने श्रीमाधवेन्द्रपुरीसे प्रार्थना करके दीक्षामन्त्र ग्रहण किया। उनको दीक्षा प्रदान करके श्रीमाधवेन्द्रपुरी दक्षिण दिशामें नीलाचलकी ओर चल दिये॥ 110-111॥

अनुभाष्य—श्रीअद्वैताचार्यने श्रीमाध्वसम्प्रदायके गुरु संन्यासीवर श्रीमाधवेन्द्रपुरीसे दीक्षा मन्त्र ग्रहण किया था। श्रीमहाप्रभुने भी श्रीमाधवेन्द्र पुरीके अभिप्रायके अनुसार

"किवा विप्र, किवा न्यासी,, शूद्र केने नय। येइ कृष्णतत्त्ववेत्ता सेई गुरु हय॥"—उपदेश दिया है। पञ्चरात्रके मतानुसार,—गृहस्थ ब्राह्मणके अतिरिक्त दीक्षा देनेका अधिकार और किसीको नहीं है, क्योंकि दीक्षित व्यक्ति दीक्षा प्राप्त करके दैक्ष-ब्राह्मणता [दीक्षाके प्रभावसे ब्राह्मणके पदको] प्राप्त करता है। जो ब्राह्मण नहीं है, उसमें दूसरेमें ब्राह्मणता सञ्चार करनेकी क्षमता नहीं होती। इसलिये दीक्षा देनेवालेमें ब्राह्मणत्व होनेका विशेष गुण स्वतः ही अनिवार्य है। वैष्णवाचार्यमें ब्राह्मणत्व स्वतः ही ग्रथित है। वर्णाश्रममें स्थित गृहस्थ ब्राह्मण शास्त्र विहित उपायसे अपने द्वारा अर्जित धनके द्वारा अनेक प्रकारकी सेवायोग्य वस्तुओंको संग्रह करके मन्त्रोंके द्वारा भगवद्-अर्चन करनेमें समर्थ होते हैं। भौतिक संसारमें फंसे लोग वैसे अभिज्ञ गृहस्थ-ब्राह्मण गुरुसे यह जानकर कि भगवद्-सेवा ही वर्णाश्रमका एकमात्र लक्ष्य है, अपनी गृहवासनासे मुक्त होनेके लिये उनसे मन्त्र-दीक्षाकी प्रार्थना करते हैं। इसलिये गृहस्थ-ब्राह्मण गुरुको वास्तविक वैष्णव होना आवश्यक है। यद्यपि संन्यासी गुरुके पास अर्चा-विग्रहके अर्चनमें वैसी सुविधाएँ नहीं होतीं, तथापि कोई पारमार्थिक संन्यासी गुरुका आश्रय ग्रहण करता है, तो अर्चन विधि उपेक्षित जैसी प्रतीत होनेपर भी वास्तवमें उपेक्षित नहीं होती। गुरुके विषयमें जिस ब्राह्मणताकी योग्यताको लक्ष्य किया गया है, वह शौक्र-विप्रत्व (जन्मके द्वारा ब्राह्मण) अथवा शौक्र शूद्रत्व (जन्मके द्वारा शूद्र) का भेद नहीं है। वास्तवमें सावित्र (जनेऊ संस्कारसे) और दीक्षाके द्वारा ब्राह्मणता ही उसका उद्देश्य है। जन साधारणकी शौक्र-जन्ममें ही एकमात्र जाति-विषयक अशुद्ध धारणाको दृढ़ जानकर श्रीमहाप्रभुने जीवके हृदयकी और समाजकी दुर्बलताको लक्ष्य करके ही "किवा विप्र" पद्यमें ऐसा कहा। इस पद्यके द्वारा उन्होंने शास्त्रीय तात्पर्यको समझा दिया; क्योंकि कृष्णतत्त्ववेत्ता ही सावित्र अथवा दैक्ष-ब्राह्मण हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। "दिव्यं ज्ञानं यतो दद्यात् कुर्यात् पापस्य संक्षयम्। तस्माद्दीक्षेति सा प्रोक्ता देशिकैस्तत्त्वकोविदैः॥" अर्थात् "क्योंकि यह दिव्यज्ञान (सम्बन्धज्ञान) प्रदान करता है और पापका (पाप, पापबीज और अविद्या) जड़ सहित विनाश करता है, इसलिये भगवत्तत्त्वविद् पण्डितगण इस अनुष्ठानको 'दीक्षा'के नामसे पुकारते हैं॥" 'गृहस्थ-गुरु' शब्दका अर्थ जिस प्रकार गृहव्रतधारी इन्द्रियोंका दास नहीं होता, उसी प्रकार 'वैष्णव-संन्यासी' कहनेसे वर्णाश्रमाभिमान परायण व्यक्तिको नहीं समझना चाहिये॥ 111॥

रेमुणामें श्रीगोपीनाथका दर्शन और नृत्य-गीत :—

रेमुणाते कैल गोपीनाथ-दरशन।
ताँर रूप देखिञा हैल विह्वल-मन॥ 112॥

अनुवाद—मार्गमें रेमुणामें उन्होंने श्रीगोपीनाथके दर्शन किये। उनके मनोहर रूपको देखकर श्रीपुरी गोसाईंका मन विह्वल हो गया॥ 112॥

भोगकी परिपाटीको सुननेसे सुख :—

'नृत्यगीत करि' जगमोहने बसिला।
'क्या क्या भोग लागे?' वैरागी ब्राह्मणे पुछिला॥ 113॥
सेवार सौष्ठव देखि' आनन्दित मने।
'उत्तम भोग लागे'—इहा कैलुँ अनुमाने॥ 114॥

अनुवाद—फिर श्रीमाधवेन्द्रपुरी नृत्य-गीत करके बरामदेमें बैठ गये। श्रीगोपीनाथकी सेवाके सौन्दर्यको देखकर श्रीमाधवेन्द्रपुरी बहुत आनन्दित हुए और उन्होंने मनमें अनुमान लगाया कि अवश्य ही गोपीनाथजीको उत्तम भोग लगाये जाते होंगे। इसलिये उन्होंने एक वैरागी ब्राह्मणसे पूछा,—'श्रीगोपीनाथको क्या-क्या भोग लगता है?'॥ 113-114॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'जगमोहन'*—मन्दिरके सामने बने जिस बरामदेसे भगवान्‌के दर्शन होते हैं, वह 'जगमोहन' कहलाता है।

'वैरागी ब्राह्मण'—जो ब्राह्मण संसारसे विरक्त होकर उसकी कोई आशा नहीं रखते, परन्तु उन्होंने अपने

आश्रमका त्याग नहीं किया है, वे ही 'वैरागी ब्राह्मण' हैं।

'क्या क्या'—पाठान्तरमें 'काँहा काँहा'; इसका अर्थ है—क्या क्या भोग लगता है॥ 113॥

श्रीगोपालको वैसा भोग देनेकी इच्छासे पुजारीसे पूछना और पुजारीके द्वारा गोपीनाथके खीरभोगकी प्रशंसा :—

'येमन इहा भोग लागे, सकल शुनिब।
तेमन अनुमाने भोग गोपाले लागाइब॥'115॥

एइ लागि' पुछिलेन ब्राह्मणेर स्थाने।
ब्राह्मण कहिल सब भोग-विवरणे॥ 116॥

अनुवाद—'यहाँ जिस प्रकारके भोग लगाये जाते हैं,—उन सबके विषयमें सुनकर उसीके अनुसार अनुमानसे अपने श्रीगोपालको भोग लगाऊँगा'—इसी उद्देश्यसे श्रीमाधवेन्द्रपुरीने ब्राह्मणसे प्रश्न किया। तब ब्राह्मणने जो-जो भोग लगता है, उसका सारा विवरण उन्हें बतलाया॥ 115-116॥

"सन्ध्याय भोग लागे क्षीर—'अमृतकेलि'-नाम।
द्वादश मृत्पात्रे भरि' अमृत-समान॥ 117॥

'गोपीनाथेर क्षीर' बलि' प्रसिद्ध नाम यार।
पृथिवीते ऐछे भोग काँहा नाहि आर॥"118॥

अनुवाद—ब्राह्मणने भोगकी एक विशेषता बतलाते हुए कहा,—"संध्यामें श्रीगोपीनाथको बारह मिट्टीके कुल्हड़ोंमें 'अमृतकेलि'-नामक खीरका भोग लगता है और यह अमृतके समान स्वादिष्ट है। यह 'श्रीगोपीनाथकी खीर'के नामसे सारे जगत्‌में प्रसिद्ध है। ऐसा भोग पृथ्वीमें और कहीं भी नहीं लगाया जाता॥"117-118॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'क्षीर'*—खीर॥ 117॥

श्रीगोपीनाथके खीरभोगके अनुरूप श्रीगोपालको खीर देनेकी इच्छा :—

हेनकाले सेइ भोग ठाकुरे लागिल।
शुनि' पुरी-गोसाञि किछु मने विचारिल॥ 119॥

'अयाचित क्षीर-प्रसाद अल्प यदि पाइ।
स्वाद जानि' तैछे क्षीर गोपाले लागाइ॥'120॥

अनुवाद—उसी समय श्रीमाधवेन्द्रपुरीने सुना कि श्रीगोपीनाथको उसी अमृतकेलि खीरका भोग लगाया जा रहा है। तब वे मनमें विचार करने लगे,—'बिना माँगे यदि थोड़ा-सा वह खीर-प्रसाद मुझे मिल जाय, तो उसका स्वाद जानकर मैं भी वैसा ही खीरका भोग श्रीगोपालको लगाऊँगा॥'119-120॥

अनुभाष्य—*'अयाचित'*—बिना माँगे॥ 120॥

उसे जिह्वाका लोभ समझकर पुरी गोस्वामीका लज्जित होना और आरती-दर्शनके बाद उस स्थानका त्याग :—

एइ इच्छाय लज्जा पाञा विष्णुस्मरण कैल।
हेनकाले भोग सरि' आरति बाजिल॥ 121॥

आरति देखिया पुरी कैल नमस्कार।
बाहर हैला, कारे किछु ना कहिल आर॥ 122॥

अनुवाद—ऐसी इच्छाको अपनी जिह्वाका लोभ समझकर श्रीमाधवेन्द्रपुरी लज्जित होकर भगवान् विष्णुका स्मरण करने लगे जिससे उनका मन खीरकी ओर न जाय। उसी समय भोग समाप्त हुआ तथा आरतीके लिये घण्टा बजने लगा। आरतीका दर्शन करके श्रीमाधवेन्द्रपुरीने श्रीगोपीनाथको प्रणाम किया। खीरके विषयमें किसीसे कुछ कहे बिना वे मन्दिरसे बाहर आ गये॥ 121-122॥

अनुभाष्य—*'सरि''*—सम्पादित होकर॥ 121॥

श्रीमाधवेन्द्रपुरीका आचरण :—

अयाचित-वृत्ति पुरी—विरक्त, उदास।
अयाचित पाइले खा'न, नहे उपवास॥ 123॥

प्रेमामृते तृप्ति, नाहि क्षुधा-तृष्णा बाधे।
क्षीर-इच्छा हैल, ताहे माने अपराधे॥ 124॥

ग्रामेर शून्य हट्टे बसि' करेन कीर्त्तन।
एथा पूजारी कराइल ठाकुरे शयन॥ 125॥

अनुवाद—श्रीमाधवेन्द्रपुरी किसीसे कुछ नहीं माँगते थे। यदि अपने आप कोई कुछ खानेके लिये दे देता, तो उसीको खाते थे, नहीं तो उपवास करते थे। वे प्रेमामृतके पानमें ही तृप्त रहते थे, उन्हें कभी भी भूख-प्यास नहीं सताती थी। इसलिये जब उन्हें खीरको चखनेकी इच्छा हुई, तो उसे वे अपराध मानने लगे। वे मन्दिरसे बाहर आकर गाँवके एक निर्जन हाटमें बैठकर कीर्तन करने लगे। इधर पुजारीने श्रीगोपीनाथको शयन करा दिया॥ 123-125॥

अनुभाष्य—श्रीमाधवेन्द्रपुरी प्रभुकी स्वाभाविकी परमहंसकी अवस्था थी,—उनकी श्रीकृष्णनाममें प्रीति थी और वे जड़ीय वस्तुओंके प्रति उदासीन थे।

'नाहि क्षुधा-तृष्णा बाधे'—वे भूख और प्याससे अतीत, विजित-षड्गुण अर्थात् जितेन्द्रिय थे॥ 123-124॥

पुजारीको स्वप्नमें श्रीगोपीनाथका आदेश :—

निज-कृत्य करि' पूजारी करिल शयन।
स्वप्नकाले ठाकुर आसि' बलिला वचन॥ 126॥

"उठह पूजारी, कर द्वार विमोचन।
क्षीर एक राखियाछि संन्यासि-कारण॥ 127॥

धड़ार अञ्चले ढाका क्षीर एक हय।
तोमरा ना जानिला ताहा, आमार मायाय॥ 128॥

माधवपुरी संन्यासी आछे हाटेते वसिञा।
ताहाके त' एइ क्षीर शीघ्र देह लञा॥"129॥

अनुवाद—अपने सेवाकार्यको समाप्तकर पुजारी सो गया। अर्द्धरात्रिमें उसके स्वप्नमें आकर श्रीगोपीनाथ कहने लगे,—"पुजारी उठो! मन्दिरका द्वार खोलो। मैंने एक संन्यासीके लिये खीरका एक कुल्हड़ रखा है। उसे मैंने अपने वस्त्रकी ओटमें छिपा रखा है। मेरी मायाके कारण तुम्हें उसका पता नहीं चला। माधवेन्द्रपुरी नामक वह संन्यासी बाजारमें बैठा हुआ है, तुम यह खीर ले जाकर शीघ्र ही उसे दे आओ॥"126-129॥

अनुभाष्य— *'कारण'*—निमित्त। *'धड़ा'*—वस्त्र। *'एक'*—खीरसे भरा हुआ एक पात्र॥ 127-128॥

पुजारीकी निद्रा-भङ्ग और श्रीगोपीनाथके द्वारा चोरी की गयी खीरकी प्राप्ति :—

स्वप्न देखि' पूजारी उठि' करिला विचार।
स्नान करि' कपाट खुलि' मुक्त कैल द्वार॥ 130॥

धड़ार आँचलतले पाइल सेइ क्षीर।
स्थान लेपि' क्षीर लञा हइल बाहिर॥ 131॥

अनुवाद—स्वप्न देखकर पुजारीने उठकर श्रीगोपीनाथके आदेशपर विचार किया। तब उसने स्नान करके मन्दिरका द्वार खोला। पुजारीको श्रीगोपीनाथके वस्त्रके नीचे एक खीरका कुल्हड़ मिला। उस खीरके कुल्हड़को उठाकर उसने स्थानको लेपकर साफ कर दिया और वह खीर लेकर बाहर आ गया॥ 130-131॥

खीरको हाथमें लेकर पुजारीके द्वारा श्रीमाधवेन्द्रपुरीकी खोज :—

द्वार दिया ग्रामे गेला सेइ क्षीर लञा।
हाटे हाटे बुले माधवपुरीके चाहिञा॥ 132॥

"क्षीर लह एइ, यार नाम 'माधवपुरी'।
तोमा लागि' गोपीनाथ क्षीर कैल चुरि॥ 133॥

क्षीर लञा सुखे तुमि करह भक्षणे।
तोमा-सम भाग्यवान् नाहि त्रिभुवने॥"134॥

अनुवाद—मन्दिरका द्वार बन्द करके पुजारी उस खीरको लेकर गाँवमें गया और हाट-हाटमें घूमते हुए श्रीमाधवेन्द्रपुरीको खोजते हुए पुकारने लगा,—"जिनका नाम 'माधवपुरी' है, वे कृपा करके इस खीरको ग्रहण करें। आपके लिये श्रीगोपीनाथने यह खीर चोरी की है। आप इस खीरको लेकर आनन्दसे खाओ। आपके समान भाग्यवान् तीनों लोकोंमें और कोई नहीं है॥"132-134॥

अनुभाष्य— *'बुले'*—घूमना-फिरना॥ 132॥

एत शुनि' पुरी-गोसाञि परिचय दिल।
क्षीर दिया पूजारी ताँरे दण्डवत् हैल॥ 135॥

अनुवाद—पुजारीकी पुकारको सुनकर श्रीपुरी गोसाईंने उसको अपना परिचय दिया। पुजारीने उन्हें खीरका पात्र देकर दण्डवत् प्रणाम किया॥ 135॥

अनुभाष्य—*'दण्डवत्'*—दण्डकी भाँति प्रणत् अर्थात् चरणोंमें गिरकर॥ 135॥

पुजारीके मुखसे श्रीगोपीनाथकी चोरीकी बातको सुनकर श्रीमाधवेन्द्रपुरीका प्रेम :—

क्षीरेर वृत्तान्त ताँरे कहिल पूजारी।
शुनि' प्रेमाविष्ट हैला श्रीमाधवपुरी॥ 136॥

पुजारीके द्वारा श्रीमाधवेन्द्रपुरीको श्रीकृष्णको वशीभूत करनेवाले भक्तके रूपमें अनुमान :—

प्रेम देखि' सेवक कहे हइया विस्मित।
'कृष्ण से इँहार वश,—हय यथोचित॥' 137॥

अनुवाद—पुजारीने जब उन्हें खीरकी चोरीका पूरा वृत्तान्त सुनाया, तब उसे सुनकर श्रीमाधवेन्द्रपुरी प्रेममें आविष्ट हो गये। उनके श्रीकृष्णप्रेमको देखकर पुजारी आश्चर्यचकित हो गया। वह मनमें सोचने लगा,—'यह उपयुक्त ही है कि श्रीगोपीनाथ इनके वशीभूत हैं॥' 136-137॥

अनुभाष्य—*'यथोचित'*—उपयुक्त अथवा योग्य॥ 137॥

श्रीमाधवेन्द्रपुरीके द्वारा खीर-प्रसादका सम्मान करना आत्मेन्द्रिय-तर्पण नहीं :—

एत बलि' नमस्करि' करिला गमन।
आवेशे करिला पुरी से क्षीर भक्षण॥ 138॥

पात्र प्रक्षालन करि' खण्ड खण्ड कैल।
बहिर्वासे बान्धि' सेइ ठिकारि राखिल॥ 139॥

प्रतिदिन एकखानि करेन भक्षण।
खाइले प्रेमावेश हय,—अद्भुत-कथन॥ 140॥

अनुवाद—यह कहकर पुजारी उनको प्रणाम करके अपने घर लौट गया। श्रीमाधवेन्द्रपुरीने प्रेमाविष्ट होकर उस खीर-प्रसादका सेवन किया। खीर खानेके बाद उन्होंने उस खीर प्रसादके कुल्हड़को धोकर उसके छोटे-छोटे टुकड़े कर लिये। उन्होंने उन ठीकरोंको अपने बहिर्वासमें बाँधकर रख लिया। वहाँसे नीलाचल जाते हुए श्रीमाधवेन्द्रपुरी प्रतिदिन एक ठीकरेको खाते और उसे खानेके साथ-ही-साथ प्रेममें आविष्ट हो जाते,—यह कथा बहुत ही अद्भुत है॥ 138-140॥

अनुभाष्य—*'ठिकारि'*—बर्तनका टूटा हुआ टुकड़ा॥ 139॥

श्रीमाधवेन्द्रपुरीको प्रतिष्ठाका भय और पुरीधाम यात्रा :—

'ठाकुर आमाके क्षीर दिल'—लोक सब शुनि'।
दिने लोक-भिड़ हबे मोर प्रतिष्ठा जानि'॥ 141॥

सेइ भये रात्रि शेषे चलिला श्रीपुरी।
सेइखाने गोपीनाथे दण्डवत् करि'॥ 142॥

अनुवाद—'गोपीनाथजीने चोरी करके मुझे खीर दी',—प्रातःकाल जब लोग ऐसा सुनेंगे, तो लोगोंकी भीड़ मेरे पास आयेगी और मुझे बड़ा भक्त मानकर बहुत सम्मान देंगे। इस प्रतिष्ठाके भयसे श्रीमाधवेन्द्रपुरी प्रातःकाल होनेसे पहले ही श्रीगोपीनाथको वहींसे दण्डवत् प्रणाम करके नीलाचलकी ओर चल दिये॥ 141-142॥

पुरी धाममें श्रीजगन्नाथके दर्शनसे प्रेममें विह्वल :—

चलि' चलि' आइला पुरी श्रीनीलाचल।
जगन्नाथ देखि' हैला प्रेमेते विह्वल॥ 143॥

प्रेमावेशे उठे, पड़े, हासे, नाचे, गाय।
जगन्नाथ-दरशने महासुख पाय॥ 144॥

अनुवाद—वहाँसे चलते-चलते श्रीमाधवेन्द्रपुरी श्रीनीलाचलमें आ पहुँचे और श्रीजगन्नाथके दर्शनकर प्रेममें विह्वल हो गये। श्रीजगन्नाथजीके दर्शनसे उन्होंने महासुख प्राप्त किया, इसलिये प्रेमके आवेशमें वे कभी उठते और कभी गिर पड़ते। कभी वे हँसने लगते, तो कभी नाचने और कभी गाने लगते॥ 143-144॥

प्रतिष्ठाकी चाह न होनेपर भी श्रीमाधवेन्द्रपुरीको प्रतिष्ठाकी प्राप्ति :—

'माधवपुरी श्रीपाद आइल',—लोके हैल ख्याति।
सब लोक आसि' ताँरे करे बहु भक्ति॥ 145॥

अनुवाद—'श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी आये हैं'—श्रीजगन्नाथ पुरीमें यह बात विख्यात हो गयी। उनकी महिमाके विषयमें वे सुन चुके थे, इसलिये सब लोग आकर भक्तिपूर्वक उनका बहुत अधिक आदर-सम्मान करने लगे॥ 145॥

प्रतिष्ठार स्वभाव एइ जगते विदित।
ये ना वाञ्छे, तार हय विधाता-निर्मित॥ 146॥

प्रतिष्ठार भये पुरी रहे पलाञा।
कृष्ण-प्रेमे प्रतिष्ठा चले सङ्गे गड़ाञा॥ 147॥

अनुवाद—प्रतिष्ठाका यह स्वभाव जगत्में सब जानते हैं कि जो इसे नहीं चाहता, विधाताके द्वारा उसे ही प्रतिष्ठा मिलती है। श्रीमाधवेन्द्रपुरी प्रतिष्ठाके भयसे रेमुणासे भागकर आये थे, परन्तु श्रीकृष्णसे प्रेम होनेपर प्रतिष्ठा भक्तके साथ-साथ ही चलती है॥ 146-147॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जो प्रतिष्ठाकी इच्छा न रखकर सत्कार्य करते हैं, उनके लिये ही विधाताने प्रतिष्ठाका निर्माण किया है; अर्थात् जो प्रतिष्ठाकी आशासे सत्कर्म करते हैं, उनको प्रतिष्ठाकी प्राप्ति नहीं होती—यही प्रतिष्ठाका रहस्य है॥ 146॥

अनुभाष्य—बद्धजीवोंमेंसे बहुतसे जीव ईर्ष्यालु होते हैं। जिनकी बहुत ख्याति होती है, उनके विरुद्ध आचरण करनेकी ईर्ष्यालु व्यक्तियोंमें स्वाभाविक रूपसे प्रवृत्ति होती है। इसलिये प्रतिष्ठाकामी व्यक्तिको ईर्ष्यालु व्यक्तियोंसे प्रतिष्ठाके बदले ईर्ष्या मिलना स्वाभाविक ही है। यद्यपि जो दीनतावश प्रतिष्ठाकी आकाङ्क्षा नहीं करते, उन्हें ईर्ष्यालु लोग बिल्कुल असमर्थ और दीन समझकर दया करके प्रतिष्ठा देकर उत्साह प्रदान करते हैं, तथापि वैष्णव लोग इस संसारमें वैसी प्रतिष्ठाके भिक्षुक नहीं है। बादमें लौकिक प्रतिष्ठा मिलेगी, इसलिये वैष्णवराज श्रीमाधवेन्द्रपुरीने लोगोंकी दृष्टिसे अपने भगवद्-प्रिय होनेकी घटनाको छिपानेका प्रयत्न किया था। किन्तु उनकी अन्यान्य श्रीकृष्णप्रेममयी चेष्टाओंको देखकर जगत्के सभी लोगोंने उनको श्रीभगवान्‌की अपने भक्तके निमित्त उत्कण्ठा और चेष्टाका प्रमाण माना। वास्तविक रूपमें श्रीमाधवेन्द्र पुरीको सर्वश्रेष्ठ प्रतिष्ठा ही स्वाभाविक रूपसे प्राप्त होने योग्य है। किन्तु जो लोग प्रतिष्ठा पानेके लिये उनका अनुकरण करके अपने हृदयमें छिपे हुए कपट दैन्यका सहारा लेकर अपने आपको प्रतिष्ठाकी लालसा-रहित कहकर छल करते हैं, उनके लिये वैष्णवोचित दैन्यतामें प्रतिष्ठित होना असम्भव है॥ 146-147॥

अनिच्छा होनेपर भी प्रतिष्ठाके स्थानपर प्रभुकी सेवा हेतु अवस्थान :—

यद्यपि उद्वेग हैल पलाइते मन।
ठाकुरेर चन्दन-साधन हइल बन्धन॥ 148॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 148॥

अनुभाष्य—यद्यपि श्रीमाधवेन्द्रपुरी प्रतिष्ठाके चङ्गुलसे मुक्त होनेके उद्देश्यसे पुरीसे भाग निकलनेके उपायका विचार करने लगे, तथापि श्रीगोपालके लिये चन्दन-संग्रहरूपी सेवाने उनको बाँधकर प्रतिष्ठासे भरे नीलाचलमें रहनेके लिये बाध्य किया॥ 148॥

श्रीजगन्नाथके सेवकोंको गोपालकी इच्छा व्यक्त करना :—

जगन्नाथेर सेवक यत, यतेक महान्त।
सबाके कहिल सब गोपाल-वृत्तान्त॥ 149॥

भक्तोंका अनेक प्रकारसे चन्दन संग्रह करनेका यत्न :—

गोपाल चन्दन मागे,—शुनि' भक्तगण।
आनन्दे चन्दन लागि' करिल यतन॥ 150॥

राजपात्र-सने यार यार परिचय।
तारे मागि' कर्पूर-चन्दन करिला सञ्चय॥ 151॥

लोगों सहित चन्दन देकर श्रीमाधवेन्द्रपुरीकी विदायी :—

एक विप्र, एक सेवक, चन्दन वहिते।
पुरी-गोसाञिर सङ्गे दिल सम्बल-सहिते॥ 152॥

अनुवाद—श्रीमाधवेन्द्रपुरीने श्रीजगन्नाथदेवके सभी सेवकों और महान्तोंको श्रीगोपालका (प्रकट होने और चन्दन मँगवानेका) सब वृत्तान्त कह सुनाया। 'श्रीगोपालने चन्दन मँगवाया है'—यह सुनकर श्रीजगन्नाथदेवके सभी भक्त आनन्दपूर्वक चन्दन संग्रह करनेका प्रयास करने लगे। राज-कर्मचारियोंके साथ जिन-जिनका परिचय था, उन्होंने उनसे माँगकर कर्पूर-चन्दन इकट्ठा किया। उन्होंने एकत्रित चन्दन-कर्पूर श्रीमाधवेन्द्रपुरीको दिया और उसे उठाकर ले जानेके लिये साथमें एक ब्राह्मण और एक सेवकको दिया। मार्गमें सबके व्ययके लिये उन्होंने कुछ धन भी भेंट दिया॥ 149-152॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'कर्पूर'*—श्रीकर्पूर, जिससे श्रीजगन्नाथदेवकी आरती होती है। श्रीजगन्नाथके सेवकोंने राजकर्मचारियोंसे उस श्रीकर्पूर और मलयज चन्दनको संग्रह करके पुरी गोसाईंके साथ एक ब्राह्मण और एक सेवकको भेजा और सबके लिये रास्तेका खर्चा भी दिया॥ 152॥

अनुभाष्य—*'सम्बल'*—मार्गमें होने वाला खर्चा॥ 152॥

अमृतानुकणिका—उस समय श्रीकर्पूर श्रीजगन्नाथकी आरती और चन्दन उनके श्रीअङ्गोंमें लेपन करनेके लिये प्रयोग किये जाते थे। ये दोनों वस्तुएँ राजाके अधिकारमें होती थीं और सर्व-साधारणको उपलब्ध नहीं थीं। इसलिये सब भक्त और श्रीजगन्नाथके सेवक राजकर्मचारियोंसे मिले और उन्हें सब बात बतलायी कि ये दोनों वस्तुएँ श्रीगोपालकी सेवाके लिये चाहिये। इस प्रकार उन्होंने श्रीकर्पूर और चन्दनको नीलाचलसे बाहर ले जानेकी अनुमति प्राप्त की॥ 150-152॥

विघ्नरहित जानेके लिये अनुमति-पत्र देना :—

घाटी-दानी छाड़ाइते राजपात्र-द्वारे।
राजलेखा करि' दिल पुरी-गोसाञिर करे॥ 153॥

अनुवाद—मार्गमें घाटी-दानी उनसे कर न माँगे, इस उद्देश्यसे राजकर्मचारियोंने राजाका अनुमति-पत्र भी श्रीमाधवेन्द्रपुरीके हाथमें दिया॥ 153॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'घाटी'*—जो पथका शुल्क (कर) लेता है। *'दानी'*—जो पार करानेका पैसा लेता है। उन सभीको छुड़ानेके लिये अर्थात् उनको पैसा दिये बिना ही जानेके लिये राजकर्मचारियोंके द्वारा लिखे गये राजपत्रको अर्थात् फरमानको पुरी गोसाईंके हाथमें दे दिया॥ 153॥

रेमुणामें पहुँचना और गोपीनाथके दर्शनसे नृत्य-गीत :—

चलिल माधवपुरी चन्दन लञा।
कतदिने रेमुणाते उत्तरिल गिया॥ 154॥

गोपीनाथ-चरणे कैल बहु नमस्कार।
प्रेमावेशे नृत्य-गीत करिला अपार॥ 155॥

पुरी देखि' सेवक सब सम्मान करिल।
क्षीरप्रसाद दिया ताँरे भिक्षा कराइल॥ 156॥

अनुवाद—चन्दन लेकर श्रीमाधवेन्द्रपुरीने नीलाचलसे गोवर्धनकी ओर प्रस्थान किया। कुछ दिन बाद वे रेमुणा पहुँचे। वहाँ श्रीगोपीनाथके श्रीचरणोंमें उन्होंने अनेक बार प्रणाम किया और प्रेममें आविष्ट होकर उन्होंने बहुत देर तक नृत्य-गान किया। उन्हें देखकर श्रीगोपीनाथके सभी सेवकोंने उनका बहुत सम्मान किया तथा श्रीगोपीनाथजीका खीर प्रसाद देकर उन्हें भोजन कराया॥ 154-156॥

स्वप्नमें श्रीमाधवेन्द्रपुरीको श्रीगोपालके द्वारा श्रीगोपीनाथके श्रीअङ्गमें चन्दन लेपन करनेका आदेश :—

सेइ रात्रे देवालये करिल शयन।
शेषरात्रि हैले पुरी देखिल स्वपन॥ 157॥

गोपाल आसिया कहे,—"शुनह, माधव।
कर्पूर-चन्दन आमि पाइलाम सब॥ 158॥

कर्पूर-सहित घषि' एसब चन्दन।
गोपीनाथेर अङ्गे सब करह लेपन॥ 159॥

गोपीनाथ आमार से एकइ अङ्ग हय।
इँहाके चन्दन दिले, आमार ताप-क्षय॥ 160॥

द्विधा ना भाविह, ना करिह किछु मने।
विश्वास करि' चन्दन देह आमार वचने॥ "161॥

अनुवाद—उस रात श्रीमाधवेन्द्रपुरीने श्रीगोपीनाथजीके मन्दिरमें ही शयन किया और रातके अन्तमें उन्होंने एक स्वप्न देखा। श्रीगोपालने स्वप्नमें आकर उनसे कहा,—"सुनो माधवेन्द्र! मैंने यह सब कर्पूर-चन्दन प्राप्त कर लिया है। अब तुम कर्पूरके साथ इस सब चन्दनको घिसकर गोपीनाथके सभी अङ्गोंपर नित्य लेप करो जब तक वह पूरा समाप्त न हो जाय। मेरा और गोपीनाथका एक ही शरीर है। इनको चन्दन लेप करनेसे मेरे अङ्गोंका ताप दूर हो जायेगा। किसी दुविधामें नहीं पड़ो और मनमें कुछ भी संशय मत रखो, मेरी बातपर विश्वास करके गोपीनाथके अङ्गोंमें चन्दनका लेपन कर दो॥ "157-161॥

अनुभाष्य—श्रीगोपालको न लगाकर श्रीगोपीनाथको चन्दन लगानेका तात्पर्य यह है,—श्रीगोपालकी भूमि वृन्दावन है, जो रेमुणासे बहुत योजन दूरीपर है। विशेषतः वहाँ जानेके लिये विधर्मी म्लेच्छोंके द्वारा शासित प्रदेशको पार करके जाना होता है; उसमें बहुत विघ्न-बाधाएँ हैं। इसलिये प्रियतम भक्तश्रेष्ठ पुरी गोस्वामीको कष्ट होगा, ऐसा जानकर भक्तवत्सल भक्तप्रेमके वशीभूत श्रीगोपालने अपनेसे अभिन्न-विग्रह श्रीगोपीनाथके श्रीअङ्गोंमें ही चन्दनका लेपन करनेके लिये कहकर भक्तके श्रमको सफल और कम किया। परवर्ती 176-177 संख्या देखें॥ 159-160॥

सेवकोंको श्रीगोपालकी आज्ञा बताना :—

एत बलि' गोपाल गेल, गोसाञि जागिला।
गोपीनाथेर सेवकगणे डाकिया आनिला॥ 162॥

प्रभुर आज्ञा हैल,—"एइ कर्पूर-चन्दन।
गोपीनाथेर अङ्गे नित्य करह लेपन॥ 163॥

इँहाके चन्दन दिले, गोपाल हइबेन शीतल।
स्वतन्त्र ईश्वर,—ताँर आज्ञा से प्रबल॥ 164॥

ग्रीष्मकाले गोपीनाथ परिबे चन्दन।"
शुनि' आनन्दित हैल सेवकेर मन॥ 165॥

अनुवाद—इतना कहकर श्रीगोपाल अन्तर्धान हो गये। श्रीमाधवेन्द्रपुरीने उठकर श्रीगोपीनाथके सेवकोंको बुलाया और कहा कि श्रीगोपालकी आज्ञा हुई है,—"इस कर्पूर-चन्दनको घिसकर श्रीगोपीनाथजीके श्रीअङ्गोंपर नित्य लेपन करो। इनको चन्दन लगानेसे श्रीगोपालके अङ्ग स्वतः ही शीतल हो जायेंगे। वे स्वतन्त्र ईश्वर हैं, उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये। ग्रीष्मकालमें श्रीगोपीनाथके श्रीअङ्गोंपर चन्दन लगेगा।" यह सुनकर सभी सेवकोंके मनमें आनन्द हो गया॥ 162-165॥

अनुभाष्य— *'स्वतन्त्र'*—स्वेच्छामय॥ 164॥

साथमें आये दोनों सेवकोंको चन्दन-घिसनेमें लगाना :—

पुरी कहे,—"एइ दुइ घषिबे चन्दन।
आर जना-दुइ देह, दिब ये वेतन॥ "166॥

अनुवाद—श्रीमाधवेन्द्रपुरीने कहा,—"(मेरे साथ नीलाचलसे आये) ये दोनों व्यक्ति चन्दन घिसेंगे। आप चन्दन घिसनेके लिये मुझे दो लोग और दे दीजिये, उनका वेतन मैं दूँगा॥ "166॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'एइ दुइ'*—पुरी गोस्वामीके साथ जो दो लोग आये हैं॥ 166॥

श्रीमाधवेन्द्रपुरीके वचन अनुसार सेवकोंके द्वारा आनन्दित होकर चन्दन लगाना :—

एइ मत चन्दन देय प्रत्यह घषिया।
पराय सेवक सब आनन्द करिया॥ 167॥

अनुवाद—इस प्रकार वे चारों लोग प्रतिदिन चन्दन घिसकर देने लगे और श्रीगोपीनाथके सेवक उनके श्रीअङ्गोंमें बड़े आनन्दसे प्रतिदिन चन्दनका लेप करते॥ 167॥

सम्पूर्ण ग्रीष्मकालमें चन्दन समाप्त होनेके तक श्रीमाधवेन्द्रपुरीका रेमुणामें ठहरना :—

प्रत्यह चन्दन पराय, यावत् हैल अन्त।
तथाय रहिल पुरी तावत् पर्यन्त॥ 168॥

अनुवाद—प्रतिदिन श्रीगोपीनाथके अङ्गों पर चन्दनका लेप किया जाता रहा जब तक वह समाप्त नहीं हो गया। श्रीमाधवेन्द्रपुरी तब तक रेमुणामें ही रहे॥ 168॥

श्रीमाधवेन्द्रपुरीके द्वारा नीलाचलमें चातुर्मास्य-पालन :—

ग्रीष्मकाल-अन्ते पुनः नीलाचले गेला।
नीलाचले चातुर्मास्य आनन्दे रहिला॥ 169॥

अनुवाद—ग्रीष्मकालके अन्तमें श्रीमाधवेन्द्रपुरी पुनः नीलाचल चले गये और चातुर्मास्यमें वे आनन्दपूर्वक नीलाचलमें रहे॥ 169॥

अनुभाष्य— *'चातुर्मास्य'*—आषाढ़ मासके शुक्लपक्षमें शयन एकादशीसे आरम्भ करके कार्तिक शुल्कपक्षकी उत्थान-एकादशी तक चार चन्द्रमास; अथवा आषाढ़ी पूर्णिमासे कार्तिकी पूर्णिमा तक चार चन्द्रमास; अथवा श्रावणसे कार्तिक तक चार सौरमासका समय—चातुर्मास्य-वर्षाकाल है। इन चार मासोंका व्रत चारों आश्रमोंके सभी व्यक्तियोंके लिये पालनीय है। इसका उद्देश्य सभी प्रकारके भोगोंका त्याग है। श्रावणमें साग, भाद्रमें दही, आश्विनमें दूध और कार्तिकमें आमिष (और आमिष-जातीय वस्तुओं) का त्याग करना चाहिये। जड़-भोगयोग्य विषयोंका त्याग ही इस चातुर्मास्यकी शिक्षाका तात्पर्य है।

श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिये श्रीमाधवेन्द्रपुरीने जो यत्न किये, वे कोई सांसारिक विषय भोग नहीं है॥ 47–169॥

महाप्रभुको श्रीमाधवेन्द्रपुरीके चरित्र-वर्णनमें आनन्द :—

श्रीमुखे माधवपुरीर अमृत-चरित।
भक्तगणे शुनाञा प्रभु करे आस्वादित॥ 170॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीनिताइको श्रीमाधवेन्द्रपुरीके प्रेमकी महिमाका वर्णन :—

प्रभु कहे,—"नित्यानन्द, करह विचार।
पुरी-सम भाग्यवान् जगते नाहि आर॥ 171॥

दुग्धदान-छले कृष्ण याँरे देखा दिल।
तिनबारे स्वप्ने आसि' याँरे आज्ञा कैल॥ 172॥

याँर प्रेमे वश हञा प्रकट हइल।
सेवा अङ्गीकार करि' जगत तारिल॥ 173॥

याँर लागि' गोपीनाथ क्षीर कैल चुरि।
अतएव नाम हैल 'क्षीरचोरा' करि'॥ 174॥

अनुवाद—इस प्रकार महाप्रभु अपने श्रीमुखसे भक्तोंको श्रीमाधवेन्द्रपुरीका अमृतमय चरित सुना रहे थे और स्वयं भी उसका आस्वादन कर रहे थे। महाप्रभुने आगे कहा,—"नित्यानन्द! विचार करो। श्रीमाधवेन्द्रपुरीके समान भाग्यवान् जगत्में और कोई नहीं है। दूध देनेके छलसे श्रीकृष्णने जिन्हें साक्षात् दर्शन दिया। तीन बार स्वप्नमें आकर जिन्हें आदेश दिया। जिनके प्रेमके वशीभूत होकर श्रीगोपाल प्रकट हुए और जिनकी सेवा स्वीकार की तथा समस्त जगत्वासियोंका उद्धार किया। जिनके लिये श्रीगोपीनाथने खीरकी चोरी की, जिस कारण उनका नाम 'क्षीरचोरा' हो गया॥ 170–174॥

कर्पूर चन्दन याँर अङ्गे चड़ाइल।
आनन्दे पुरी-गोसाञिर प्रेम उथलिल॥ 175॥

श्रीगोपालके स्थानपर श्रीगोपीनाथको चन्दन लगवानेका तात्पर्य :—

म्लेच्छदेशे कर्पूर-चन्दन आनिते जञाल।
पुरी दुःख पाबे, इहा जानिया गोपाल॥ 176॥

महा-दयामय प्रभु—भकतवत्सल।
चन्दन परि' भक्तश्रम करिल सफल॥ 177॥

अनुवाद—श्रीमाधवेन्द्रपुरीने कर्पूर-चन्दन श्रीगोपीनाथके श्रीअङ्गोंमें लगवाया और आनन्दसे उनके हृदयमें प्रेमकी लहरें उठने लगीं। म्लेच्छोंके देशोंसे होकर कर्पूर-चन्दनको वृन्दावन लाना बड़ा जञ्जाल था। श्रीमाधवेन्द्रपुरीको इससे बहुत कष्ट होगा—यह जानकर परम दयालु भक्तवत्सल प्रभुने श्रीगोपीनाथके रूपमें ही चन्दन सेवाको ग्रहणकर अपने भक्तके परिश्रमको सफल किया॥ 175-177॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'म्लेच्छ देशे'*—मेदिनीपुर जिलाके अनेक अंशों तक उत्कल राजाका राज्य था; वह हिन्दु राजाका देश था। उसके बाद प्रायः सभी देश ही म्लेच्छ राजाओंके अधीन थे। स्थान-स्थानपर म्लेच्छ राजाके अनुचर पथिकोंके सामानसे अच्छी-अच्छी वस्तुओंको निकालकर अपने पास रख लेते थे। गौड़देशमें कर्पूर और चन्दन दुर्लभ थे। इसलिये कोई जञ्जाल खड़ा हो जायेगा, इस आशङ्कासे ही कि पुरी गोसाईंको वृन्दावन तक जाते हुए बहुत कष्ट उठाना पड़ेगा और उस कष्टको दूर करनेके लिये ही श्रीगोपालने पुरी गोस्वामीको रेमुणामें विराजमान श्रीगोपीनाथको चन्दन अर्पण करनेकी आज्ञा प्रदान की थी॥ 176-177॥

श्रीमाधवेन्द्रपुरीके प्रेम और चरित्रकी महिमा :—

पुरीर प्रेम-पराकाष्ठा करह विचार।
अलौकिक प्रेमे चित्ते लागे चमत्कार॥ 178॥

परम-विरक्त, मौनी, सर्वत्र उदासीन।
ग्राम्यवार्त्ता-भये द्वितीय-सङ्ग-हीन॥ 179॥

अनुवाद—श्रीमाधवेन्द्रपुरीके प्रेमकी पराकाष्ठापर विचार करो। उनके अलौकिक प्रेमसे तुम्हारे चित्तमें चमत्कार होगा। वे परम-विरक्त, मौनी (अर्थात् श्रीकृष्ण कथाको छोड़कर और कुछ भी नहीं बोलते थे) और जड़ीय विषयोंके प्रति सदैव उदासीन रहते थे। ग्राम्यवार्त्ताके भयसे वे किसीका सङ्ग नहीं करते थे॥ 178-179॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णविरह अर्थात् चिद्-विप्रलम्भ ही जीवोंके भजनका एकमात्र साधन है। जड़-विरह अर्थात् सांसारिक भोग प्राप्त न होनेपर उनसे उत्पन्न निर्वेद जड़की ही आसक्तिको प्रकाशित करता है। किन्तु श्रीकृष्णविरहसे उत्पन्न सांसारिक-भोगोंसे वैराग्य श्रीकृष्णेन्द्रिय-प्रीतिकी कामनाका श्रेष्ठ प्रदर्शन है। यहाँपर मूल-महाजन श्रीपाद माधवेन्द्रपुरीकी अपूर्व श्रीकृष्णेन्द्रिय-प्रीतिकी कामना श्रीकृष्णसेवा-अभिलाषी जीवोंका एकमात्र आदर्श और विशेषरूपसे लक्ष्य करने योग्य विषय है—यही श्रीमन्महाप्रभुने और उनकी अन्तरङ्ग शक्तियोंने (अन्तरङ्ग परिकरोंने) बादमें आचरण करके दिखाया है।

'ग्राम्यवार्त्ता'—स्त्री-पुरुषमें होनेवाली बात, ग्राम सम्बन्धीय सब प्रकारकी बातें। ग्राम—(भाः 11/25/25) श्लोकमें—"ग्रामो राजस उच्यते"; (भाः 11/25/28 और 29) श्लोकमें—"राजसश्चेन्द्रियप्रेष्ठम्", "विषयोत्थन्तु राजसम्"—अपनी इन्द्रियोंकी तृप्ति करनेवाला अथवा विषयभोगोंको उत्पन्न करनेवाला अर्थात् जागतिक कामोद्दीपक कार्यमात्र ही राजस अर्थात् ग्राम्य है॥ 178-179॥

सेव्यकी आज्ञा पालनमें असहाय पुरीका अपूर्व उद्यम :—

हेन-जन गोपालेर आज्ञामृत पाञा।
सहस्र क्रोश आसि' बुले चन्दन मागिञा॥ 180॥
भोके रहे, तबु अन्न मागिञा ना खाय।
हेन-जन चन्दन-भार बहि' लञा जाय॥ 181॥

अनुवाद—वे ऐसे व्यक्ति थे जो श्रीगोपालके आज्ञामृतको पाकर हजार कोस चलकर चन्दनकी भिक्षा माँगने गये थे। जो भूखे रहकर भी किसीसे अन्न माँगकर नहीं खाते थे, ऐसे व्यक्ति माँगकर चन्दनका भार उठाकर ले जा रहे थे॥ 180-181॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'भोके रहे'*—भूखे रहकर॥ 181॥

स्वयं बहुत दुःख सहन करनेपर भी प्रभुकी सेवासे ही श्रीमाधवेन्द्रपुरीको आनन्द :—

'मणेक चन्दन, तोला-बिशेक कर्पूर।
गोपाले पराइब',—एइ आनन्द प्रचुर॥ 182॥

उत्कलेर दानी राखे चन्दन देखिञा।
ताँहा एड़ाइल राजपत्र देखाञा॥ 183॥

म्लेच्छदेशे दूर पथ, जगाति अपार।
केमते चन्दन निब—नाहि ए विचार॥ 184॥

सङ्गे एक वट नाहि घाटीदान दिते।
तथापि उत्साह बड़, चन्दन लञा याइते॥ 185॥

अनुवाद—श्रीमाधवेन्द्रपुरी यही विचार करते हुए परम आनन्दित होकर एक मन चन्दन और बीस तोला कर्पूर लेकर जा रहे थे कि इनका लेपन श्रीगोपालके अङ्गोंपर करके उनका ताप दूर करूँगा। उत्कल प्रदेशके कर-अधिकारीने चन्दनको देखकर उसे रोक लिया, किन्तु श्रीमाधवेन्द्रपुरीने उन्हें राजपत्र दिखाकर उनसे छुड़ा लिया। (उत्कल देशके राजा तो हिन्दु हैं और उनका अनुमति पत्र भी साथ है), परन्तु म्लेच्छोंके देशोंसे होते हुए बहुत दूर चन्दनको ले जाना है, मार्गमें उनके अनेक पहरेदार हैं और कैसे वहाँसे चन्दन ले जाऊँगा—श्रीमाधवेन्द्रपुरीने इन सबका कुछ भी विचार नहीं किया। यद्यपि उनके पास पथ-कर देनेके लिये एक कौड़ी भी नहीं थी, तथापि श्रीगोपालके लिये चन्दन लेकर जानेका उनमें प्रबल उत्साह था॥ 182–185॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'जगाति'*—प्रहरीके छलसे मार्गमें कर लेनेके बहाने लूटनेवाले। *'वट'*—कौड़ी॥ 184–185॥

अनुभाष्य— *'राखे'*—रोका था॥ 183॥

श्रीकृष्णके प्रेमीके लक्षण :—

प्रगाढ़-प्रेमेर एइ स्वभाव-आचार।
निज-दुःख-विघ्नादिर ना करे विचार॥ 186॥

अनुवाद—श्रीकृष्णमें प्रगाढ़ प्रेमवालोंका स्वाभाविक आचरण ही ऐसा है कि वे अपने दुःख-विघ्नादिका कोई विचार नहीं करते॥ 186॥

अनुभाष्य—प्रगाढ़ प्रेम करनेवालोंके स्वाभाविक आचरणमें ऐसा ही देखा जाता है कि अपनी कामनाकी पूर्तिके विपरीत-भाव दुःख-विघ्नादि उन्हें कोई बाधा नहीं देते; अपितु लाखों विघ्न और निरन्तर दुःखोंके बीच ही वे पूर्णमात्रामें अपनी प्रीतिका परिचय देते हैं। "तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्ष्यमाणः" यह भागवतीय श्लोक इस जड़ जगत्की बद्धानुभूति और द्वितीयाभिनिवेशसे मुक्त होनेकी योग्य पात्रताके विचारका उदाहरण है। भगवान्से प्रगाढ़ प्रेम करनेवाले इस जगत्के किसी अभाव, विघ्न और दुःख आदिका विचार नहीं करते। "यत देख वैष्णवेर व्यवहार-दुःख। निश्चय जानिह सेइ परानन्दसुख॥" अर्थात् श्रीकृष्णसेवामें जब वैष्णवको बाहरसे दुःख प्राप्त होता हुआ दिखायी दे, तो भी निश्चित जानो कि उसके हृदयमें परमानन्द अनुभव हो रहा है। श्रीमन्महाप्रभुके "आश्लिष्य वा पादरतां" (श्रीशिक्षाष्टक आठवाँ श्लोक) वचनमें इसी चरम शिक्षाको ही हम लक्ष्य करते हैं॥ 186॥

श्रीकृष्णके द्वारा अपने भक्तकी महिमाका प्रदर्शन :—

एइ तार गाढ़ प्रेमा लोके देखाइते।
गोपाल ताँरे आज्ञा दिल चन्दन आनिते॥ 187॥

बहु परिश्रमे चन्दन रेमुणा आनिल।
आनन्द बाड़िल मने, दुःख ना गणिल॥ 188॥

अनुवाद—उनके इस प्रगाढ़ प्रेमको जगत्वासियोंको दिखानेके लिये ही श्रीगोपालने उन्हें चन्दन लानेकी आज्ञा दी थी। श्रीमाधवेन्द्रपुरी बहुत परिश्रमसे चन्दनको लेकर नीलाचलसे रेमुणा तक पहुँचे, परन्तु उन्होंने इसमें कोई कष्ट अनुभव नहीं किया, अपितु उनके हृदयमें आनन्द ही वर्धित होता रहा॥ 187–188॥

भक्तकी परीक्षा और भक्तका परीक्षामें उत्तीर्ण होना :—

परीक्षा करिते गोपाल कैल आज्ञा दान।
परीक्षा करिया शेषे हैल दयावान्॥ 189॥

भक्त और भगवान्—परस्पर अलौकिकी रति :—

एइ भक्ति, भक्तप्रिय-कृष्ण-व्यवहार।
बुझितेओ आमा-सबार नाहि अधिकार॥"190॥

अनुवाद—अपने भक्तकी परीक्षा लेनेके लिये ही श्रीगोपालने उन्हें ऐसा आदेश दिया था। परीक्षामें उत्तीर्ण होनेपर अन्तमें श्रीगोपालने उनपर पूर्ण दया की। श्रीमाधवेन्द्रपुरीकी ऐसी भक्ति और भक्तोंके प्रियतम श्रीकृष्णके व्यवहारको समझनेमें हम सबका अधिकार नहीं है॥"189-190॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीमाधवेन्द्रपुरी रचित
अतुलनीय महिमायुक्त श्लोकका वर्णन :—

एत बलि' पड़े प्रभु ताँर कृत श्लोक।
येइ श्लोक-चन्द्रे जगत् करेछे आलोक॥ 191॥

घषिते घषिते यैछे मलयज-सार।
गन्ध बाड़े, तैछे एइ श्लोकेर विचार॥ 192॥

रत्नगण-मध्ये यैछे कौस्तुभमणि।
रसकाव्य-मध्ये तैछे एइ श्लोक गणि॥ 193॥

एइ श्लोक कहियाछेन राधा-ठाकुराणी।
ताँर कृपाय स्फुरियाछे माधवेन्द्र-वाणी॥ 194॥

अनुवाद—यह कहकर महाप्रभुने श्रीमाधवेन्द्रपुरीके द्वारा रचित वह श्लोक पढ़ा जो चन्द्रमाकी भाँति जगत्को प्रकाश प्रदान करनेवाला है। घिसते-घिसते जैसे मलय-चन्दनकी सुगन्धि बढ़ती है, वैसे ही इस श्लोकका जितना विचार किया जाय, उतना ही इसका रसास्वादन होता है। रत्नोंमें जैसे कौस्तुभमणि सर्वश्रेष्ठ है, वैसे ही समस्त रसकाव्योंमें इस श्लोकको जानो। श्रीराधा ठाकुराणीने ही यह श्लोक कहा है और उन्हींकी कृपासे ही यह श्रीमाधवेन्द्रपुरीकी वाणीमें स्फुरित हुआ॥ 191-194॥

श्रीराधा, श्रीमाधवेन्द्रपुरी और श्रीगौर—केवल इन तीनोंकी
ही इस श्लोकको आस्वादन करनेकी योग्यता :—

किवा गौरचन्द्र इहा करे आस्वादन।
इहा आस्वादिते आर नाहि चौठजन॥ 195॥

शेषकाले एइ श्लोक पठिते पठिते।
सिद्धिप्राप्त हैल पुरीर श्लोकेर सहिते॥ 196॥

अनुवाद—[श्रीमती राधिका, श्रीमाधवेन्द्रपुरी और] श्रीगौरचन्द्र—इन तीनोंने ही इस श्लोकका आस्वादन किया। इनके अतिरिक्त इस श्लोकका आस्वादन करने योग्य कोई चौथा व्यक्ति है ही नहीं। अपने प्रकटकालके अन्तिम समयमें श्रीमाधवेन्द्रपुरीने इस श्लोकको पढ़ते-पढ़ते ही सिद्धि प्राप्त की थी॥ 195-196॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'चौठजन'*—चौथा व्यक्ति; अर्थात् श्रीराधा ठाकुराणी, श्रीमाधवेन्द्रपुरी और महाप्रभु,—इन तीनोंने ही इस श्लोकका आस्वादन किया है; अन्य कोई चौथा व्यक्ति इसको आस्वादन करने योग्य नहीं था॥ 195॥

पद्यावलीमें चतु:श्ताङ्क-उद्धृत श्रीमाधवेन्द्रपुरीके वचन :—

अयि दीनदयार्द्रनाथ
हे मथुरानाथ कदावलोक्यसे।
हृदयं त्वदलोककातरं दयित
भ्राम्यति किं करोम्यहम्॥ 197॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 197॥

अमृतप्रवाह भाष्य—ओहे दीनदयार्द्रनाथ! ओहे मथुरानाथ! कब तुम्हारे दर्शन करूँगी? तुम्हारे दर्शनके अभावमें मेरा कातर हृदय अस्थिर हो गया है। हे दयित (प्रियतम)! अब मैं क्या करूँ?

तात्पर्य,—शुद्धभक्तिवादी वेदान्तमूलक वैष्णवगण चार सम्प्रदायोंमें विभक्त हैं; उनमें श्रीमध्वाचार्य-सम्प्रदायको स्वीकार करके श्रीमाधवेन्द्रपुरीने वैष्णव-संन्यास ग्रहण किया था। श्रीमध्वाचार्यसे श्रीमाधवेन्द्रपुरीके गुरु श्रीलक्ष्मीपति तक इस सम्प्रदायमें शृङ्गार-रसमयी भक्ति नहीं थी। उनकी जैसी भक्ति थी, वह महाप्रभुके दक्षिण देशमें भ्रमणके समय तत्त्ववादियोंके साथ हुए विचारसे जानी जाती है। श्रीमाधवेन्द्रपुरीने इस अपूर्व श्लोक-रचनाके द्वारा शृङ्गार-रसमयी भक्तिके बीजको बोया। इसमें भाव यह है,—मथुरा गये हुए श्रीकृष्णके वियोगमें श्रीमती राधिकाके महाप्रेमका जो उच्छ्वास हुआ था अर्थात् उनका जो भावोद्गार प्रकट हुआ था, उन्हीं भावोंके

अनुगत होकर जो श्रीकृष्णभजन किया जाता है, वही सर्वोत्तम है। इस रसके भक्त अपने आपको अत्यन्त दीन मानकर 'दीनदयार्द्रनाथको' इस भावसे पुकारेंगे। **जीवके लिये श्रीकृष्णसे वियोगका भाव ही स्वाभाविक भजन है।** श्रीकृष्ण मथुरा चले गये हैं, उनके दर्शनके बिना श्रीमती राधिकाका हृदय अत्यन्त कातर होकर उनके दर्शनके लालसासे कह रहा है,—"हे कान्त, तुम्हारे दर्शनके अभावमें मेरा हृदय अत्यन्त व्याकुल है; बताओ, मेरे क्या करनेसे तुम्हारे दर्शन प्राप्त होंगे? मुझे दीन समझकर तुम दयार्द्र होओ अर्थात् तुम्हारा हृदय द्रवित हो।" श्रीमाधवेन्द्रपुरीके इस भावके साथ श्रीमहाप्रभुमें प्रकाशित श्रीमती राधिकाके उद्धव-दर्शनसे जिस भाव वैचित्र्यका वर्णन (इस ग्रन्थमें) हुआ है, उसकी समानता अनायास ही दिखायी देती है। इसलिये महाजनोंने कहा है कि शृङ्गार-रसवृक्षके मूल श्रीमाधवेन्द्र पुरी हैं, श्रीईश्वरपुरी उसका अङ्कुर और महाप्रभु उसके मूल स्कन्ध हैं। महाप्रभुके अनुगत भक्तगण—उसकी शाखा-उपशाखा हैं॥ 197॥

चौथे अध्यायका अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

अनुभाष्य—

अयि (श्रीवृषभानुराजनन्दिन्याः स्वरमणं प्रति मधुरसम्बोधनं) हे दीनदयार्द्र (दीनानां कृष्णविरहकातराणां गोपीनां स्वजनानां सम्बन्धे या दया, तासां विप्रलम्भापनोदिनी साक्षाद्रूपगुणलीला-स्फूर्त्तिविधायिनी कृपा, तया आर्द्र, सरसहृदय,—उत्कटविरह-तापार्त्त-गोपीकृपापरकोमलचित्त) हे नाथ (मादृशगोपीजनैकवल्लभ) हे मथुरानाथ (माथुरजनेश्वर, चेत् गोपीजनवल्लभाभिमानस्तव वर्त्तते, तदा अस्मान् गोपीः विस्मृत्य कथम् ऐश्वर्यवासनया माथुर-साधारणी-कान्तामोदार्थं तत्रावस्थितिः, अतः, गोपीकृपारहित-कठिनहृदय) कदा त्वं [विरहकातरया गोप्या तद्भावाश्रितया मया] अवलोक्यसे? हे दयित (हे प्राणेभ्योऽपि प्रियतम) त्वदलोककातरं हृदयं (तव दर्शनाय कातरं व्याकुलं उद्घूर्णाचित्रजल्पादिमयं गोपीजनहृदयं) भ्रामयति (उन्मादयति) किं करोमि, [तत् कथय]।

श्लोक भावानुवाद—वृषभानुनन्दिनी श्रीमती राधिका श्रीकृष्णके मथुरा चले जानेपर उनको गौरवरहित मधुर सम्बोधनके द्वारा कह रही हैं—अरे! (मदीय भावके कारण यह अति गूढ़ सम्बन्धका सूचक है)। हे कृष्ण! तुम विरहमें कातर हम दीन गोपियोंके विरह-तापको दूर करनेवाली साक्षात् रूप-गुण-लीला-स्फूर्त्तिरूपी कृपा करते हो, क्योंकि हमारे विरह तापसे तुम्हारा चित्त विगलित हो जाता है। तुम तो हम गोपियोंके एकमात्र नाथ अर्थात् प्राणवल्लभ हो। [किन्तु] हे मथुरानाथ! अर्थात् हम गोपियोंके वल्लभ होनेका अभिमान होनेपर भी अब मथुरावासियोंके नाथ बने हो? हम गोपियोंको भूलकर कैसे ऐश्वर्यभावयुक्त मथुराकी साधारणी कान्ताओंके आनन्दका विधान कर रहे हो (हम गोपियोंके द्वारा की जानेवाली सेवासे वञ्चित होनेके कारण तुम कठोर हृदय हो गये हो)। तुम्हारे विरहमें कातर मैं कब तुम्हारे दर्शन प्राप्त करूँगी? हे दयित (प्राणोंसे भी प्रियतम)! तुम्हारे दर्शनके लिये व्याकुल मेरा हृदय उद्घूर्णा-चित्रजल्पादि अनुभावोंके द्वारा उन्मादित हो रहा है, [तुम ही यह बतलाओ] ऐसी दशामें मैं क्या करूँ?॥ 197॥

महाप्रभुकी मूर्च्छा और विप्रलम्भ-भावोन्माद :—

एइ श्लोक पड़िते प्रभु हइला मूर्च्छिते।
प्रेमेते विवश हञा पड़िल भूमिते॥ 198॥

आस्ते व्यस्ते कोले करि' निल नित्यानन्द।
क्रन्दन करिया तबे उठे गौरचन्द्र॥ 199॥

प्रेमोन्माद हैल, उठि' इति-उति धाय।
हुङ्कार करये, हासे, कान्दे, नाचे, गाय॥ 200॥

'अयि दीन', 'अयि दीन' बले बारबार।
कण्ठे ना निःसरे वाणी, नेत्रे अश्रुधार॥ 201॥

कम्प, स्वेद, पुलकाश्रु, स्तम्भ, वैवर्ण्य।
निर्वेद, विषाद, जाडय, गर्व, हर्ष, दैन्य॥ 202॥

एइ श्लोके उघाड़िला प्रेमेर कपाट।
गोपीनाथ-सेवक देखे प्रभुर प्रेमनाट॥ 203॥

अनुवाद—इस श्लोकका उच्चारण करते ही प्रेममें

विवश होकर महाप्रभु मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। हड़बड़ाकर तुरन्त ही श्रीनित्यानन्द प्रभुने महाप्रभुको अपनी गोदमें ले लिया और श्रीगौरचन्द्र क्रन्दन करते हुए उठ बैठे। महाप्रभु श्रीकृष्णप्रेममें उन्मादग्रस्त होकर हुँकार करके, हँसते, रोते, नाचते और गाते हुए इधर-उधर दौड़ने लगे। वे बार-बार 'अयि दीन', अयि दीन' बोलने लगे, किन्तु उसके आगे श्लोकका उच्चारण करनेके लिये उनके कण्ठसे वाणी नहीं निकली और उनके नेत्रोंसे अश्रुओंकी धाराएँ बहने लगीं। कम्प, स्वेद, पुलक, अश्रु, स्तम्भ, वैवर्ण्य, निर्वेद, विषाद, जाड्य, गर्व, हर्ष और दैन्य आदि अष्ट-सात्त्विक और सञ्चारी भाव उनके श्रीअङ्गोंमें प्रकाशित होने लगे। इस श्लोकमें महाप्रभुने प्रेमके कपाट खोल दिये, तब श्रीगोपीनाथके सेवकोंने महाप्रभुको प्रेमके आवेशमें नृत्य करते देखा॥ 198–203॥

अनुभाष्य— *'जाड्य'*—भ:र:सि:, द:वि:, चतुर्थ ल:—

"जाड्यमप्रतिपत्तिः स्यादिष्टानिष्टश्रुतीक्षणैः।
विरहाद्यैश्च तन्मोहात् पूर्वावस्था पराऽपि च॥"

"इष्ट और अनिष्टके श्रवण, दर्शन और विरह आदिके द्वारा जो विचारशून्यता होती है, उसको 'जाड्य' कहते हैं। यह मोहके पहले और बादकी अवस्था है।

'प्रेमानाट'—प्रेमके आवेशमें नृत्य॥ 202–203॥

महाप्रभुकी बाह्यदशा और श्रीगोपीनाथकी भोगारति :—

लोकेर संघट्ट देखि' प्रभुर बाह्य हैल।
ठाकुरेर भोग सरि' आरति बाजिल॥ 204॥

अनुवाद—लोगोंके जमघटको देखकर महाप्रभुकी बाह्य चेतना लौट आयी। तभी श्रीगोपीनाथजीका भोग लगना समाप्त हुआ और आरतीका घण्टा बजने लगा॥ 204॥

पुजारीके द्वारा महाप्रभुके लिये
बारह पात्रोंमें खीर लाना :—

ठाकुरे शयन कराञा पूजारी हैल बाहिर।
प्रभुर आगे आनि' दिल प्रसाद बार क्षीर॥ 205॥

अनुवाद—आरतीके बाद श्रीगोपीनाथजीको शयन कराकर पुजारी बाहर आया और उसने बारहके बारह खीरके पात्र महाप्रभुको लाकर दे दिये॥ 205॥

अनुभाष्य— *'बार'*—बारह खीरसे भरे पात्र॥ 205॥

खीरको देखनेसे महाप्रभुको आनन्द और पाँच पात्रोंको
ग्रहण करके सात पात्रोंको वापिस देना :—

क्षीर देखि' महाप्रभुर आनन्द बाड़िल।
भक्तगणे खाओयाइते पञ्च क्षीर लैल॥ 206॥

सात क्षीर पूजारीके बाहुड़िया दिल।
पञ्चक्षीर पञ्चजने बाँटिया खाइल॥ 207॥

गोपीनाथ-रूपे यदि करियाछेन भोजन।
भक्ति देखाइते कैल प्रसाद भक्षण॥ 208॥

अनुवाद—खीर-प्रसादको देखकर महाप्रभुको बहुत आनन्द हुआ। उन्होंने भक्तोंको खिलानेके उद्देश्यसे केवल खीरके केवल पाँच पात्र ही लिये और बचे हुए सात पात्रोंको पुजारीको लौटा दिया। उन पाँच खीरके पात्रोंको महाप्रभु और उनके साथ चार भक्तोंने बाँटकर खा लिया। यद्यपि श्रीगोपीनाथ-विग्रहके रूपमें महाप्रभुने पहलेसे ही समस्त खीरका भोजन किया था, परन्तु लोकशिक्षाके लिये भक्ति दिखाते हुए फिरसे महाप्रसादका सेवन किया॥ 206–208॥

अनुभाष्य— *'बाहुड़िया'*—आगे बढ़कर लौटाना। यद्यपि श्रीमन्महाप्रभुने श्रीगोपीनाथ-विग्रहके रूपमें इस खीरका पहले ही भोजन किया था, तथापि लोकशिक्षकके रूपमें उन्होंने श्रीकृष्णभजन प्रदर्शित करनेके लिये खीर-महाप्रसादका सम्मान किया॥ 207–208॥

प्रातःकाल होनेपर वहाँसे पुरीकी ओर यात्रा :—

नाम-सङ्कीर्त्तने सेइ रात्रि गोङाइला।
मङ्गल-आरति देखि' प्रभाते चलिला॥ 209॥

अनुवाद—महाप्रभुने भक्तोंके साथ नाम-सङ्कीर्तन करते हुए वह रात बितायी। प्रभात होनेपर मङ्गल-आरतीका दर्शन करके आगे चल दिये॥ 209॥

अनुभाष्य— *'गोङाइल'*—बितायी ॥ 209 ॥

इस आख्यानके द्वारा महाप्रभु और उनके भक्तोंकी अपूर्व प्रीति और गुणोंकी महिमाका वर्णन :—

एइ त' आख्याने कहिला दोँहार महिमा।
प्रभुर भक्तवात्सल्य, आर भक्तप्रेम-सीमा ॥ 210 ॥

भक्त-सङ्गे श्रीमुखे प्रभु कैला आस्वादन।
गोपाल-गोपीनाथ-पुरीगोसाञिर गुण ॥ 211 ॥

श्रद्धायुक्त हञा इहा शुने येइ जन।
श्रीकृष्ण-चरणे सेइ पाय प्रेमधन ॥ 212 ॥

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास ॥ 213 ॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते मध्यखण्डे श्रीमाधवेन्द्रपुरी-चरितामृतास्वादनं नाम चतुर्थः परिच्छेदः।

अनुवाद—भगवान्‌का भक्तवात्सल्य और उनके भक्तोंके प्रेमकी सीमा,—महाप्रभुने इस आख्यानमें इन दोनोंकी महिमाका वर्णन किया है। इस प्रकार भक्तोंके साथ महाप्रभुने अपने श्रीमुखसे वर्णन करते हुए श्रीगोपाल, श्रीगोपीनाथ और श्रीमाधवेन्द्रपुरीके गुणोंका आस्वादन किया। जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक इस आख्यानको सुनता है, उसे श्रीकृष्णके चरणोंमें प्रेमधनकी प्राप्ति होती है। श्रीरूप-रघुनाथ गोस्वामीके चरणकमलोंकी कृपाभिलाषा करते हुए कृष्णदास इस चैतन्यचरितामृतका वर्णन कर रहा है ॥ 210–213 ॥

श्रीचैतन्यचरितामृतके मध्यखण्डमें श्रीमाधवेन्द्रपुरी-चरितामृतास्वादन नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त।

अनुभाष्य—प्रभु और भक्तोंका, दोनोंका एक-दूसरेके प्रति जो प्रेम है, वह अतुलनीय है ॥ 210 ॥

चौथे अध्यायका अनुभाष्य समाप्त।

चित्र-5

पाँचवाँ अध्याय

कथासार—महाप्रभु याजपुरसे होते हुए कटक नगरमें पहुँचे। वहाँ वे श्रीसाक्षी-गोपालके दर्शन करने गये और श्रीनित्यानन्द प्रभुके श्रीमुखसे गोपालके प्रसङ्गको श्रवण किया। विद्यानगर-निवासी दो (एक वृद्ध और दूसरा युवा) ब्राह्मण बहुतसे तीर्थोंमें भ्रमण करके श्रीवृन्दावन पहुँचे। वृद्ध ब्राह्मणने युवा ब्राह्मणकी सेवासे सन्तुष्ट होकर उसको अपनी कन्या देनेकी प्रतिज्ञा की। युवा ब्राह्मणने वृद्ध ब्राह्मणको वृन्दावनके श्रीगोपालके सामने यह बात कहलवायी और श्रीगोपालको इसका साक्षी रखा। स्वदेश लौट आनेपर युवा ब्राह्मणने जब विवाहका प्रस्ताव रखा, तब वृद्ध ब्राह्मणने अपने पुत्र-पत्नी आदिके दबावमें आकर कहा,—'मुझे तो स्मरण नहीं है कि मैंने ऐसी कोई प्रतिज्ञा की थी।' उस वृद्ध ब्राह्मणकी बात सुनकर युवा ब्राह्मण पुनः श्रीगोपालके पास गया और उसने श्रीगोपालको पूरी बात कह सुनाकर अपनी भक्तिके द्वारा उन्हें मजबूर करके दक्षिण देश (विद्यानगर) ले आया। श्रीगोपाल युवा ब्राह्मणके पीछे-पीछे नूपुरकी ध्वनि करते-करते विद्यानगरके निकट पहुँचकर स्थित हो गये। युवा ब्राह्मणने विद्यानगरके सज्जन व्यक्तियोंको, वृद्ध ब्राह्मण और उसके पुत्रको वहाँ लाकर श्रीगोपालकी साक्षी दिलायी। वे सब बहुत चमत्कृत हो गये और उन्होंने वृद्ध ब्राह्मणकी कन्याके साथ युवा ब्राह्मणका विवाह कार्य सम्पन्न किया। विद्यानगरके राजाने श्रीगोपालके लिये भक्तिभावसे मन्दिर आदिका निर्माण करवाया। बहुत दिनोंके बाद उत्कल (उड़ीसा)के राजा पुरुषोत्तमदेवको विद्यानगरके राजाने श्रीजगन्नाथका झाड़ूदार कहकर अपमान करके अपनी कन्या देनेसे मना किया। राजा पुरुषोत्तमदेवने श्रीजगन्नाथकी सहायतासे उस राजासे युद्ध किया तथा उसको पराजित करके उसकी कन्या और राज्यको ग्रहण किया। उस समयसे वैष्णवराज पुरुषोत्तमदेवकी भक्तिकी डोरसे बँधकर श्रीगोपाल कटकनगरमें आये। इस प्रसङ्गको सुनकर महाप्रभुने महाप्रेमसहित श्रीगोपालका दर्शन किया। कटकसे भुवनेश्वर शिवके दर्शन करके कमलपुरमें भार्गी-नदीके तटपर कपोतेश्वर-शिवके दर्शनके छलसे महाप्रभुने श्रीनित्यानन्द प्रभुके हाथमें अपने संन्यासका दण्ड दिया। श्रीनित्यानन्द प्रभुने उस दण्डके तीन टुकड़े करके उसे भार्गी नदीमें फेंक दिया। 'आठारनाला'के पास पहुँचकर जब महाप्रभुको अपना दण्ड नहीं मिला, तब वे अपने साथियोंको छोड़कर अकेले ही श्रीजगन्नाथ मन्दिर गये।

—(अमृतप्रवाहभाष्य)

भक्तके वशीभूत साक्षीगोपाालको प्रणाम :-

पद्भ्यां चलन् यः प्रतिमा-स्वरूपो
ब्रह्मण्यदेवो हि शताहगम्यम्।
देशं ययौ विप्रकृतेऽद्भुतेऽहं
तं साक्षिगोपालमहं नतोऽस्मि॥ 1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जो ब्रह्मण्यदेव प्रतिमास्वरूप होकर भी ब्राह्मणके उपकारके लिये उस स्थानपर पैदल चलते-चलते पहुँचे, जहाँ पहुँचनेमें सौ दिन लग जाते हैं, उन्हीं अद्भुत चेष्टा करनेवाले श्रीसाक्षी-गोपालको मैं प्रणाम करता हूँ॥ 1॥

अनुभाष्य—

यः (गोपालः) प्रतिमास्वरूपः (अर्च्याश्रितविग्रहः) ब्रह्मण्यदेवः पद्भ्यां चलन् विप्रकृते (ब्राह्मणस्योपकाराय) हि शताहगम्यं (शतदिवस-प्राप्यं) देशं (माथुरमण्डलात् विद्यानगरं) ययौ, अहं तम् अद्भुतेऽहं (अपूर्वचेष्टासमन्वितं) साक्षिगोपालं नतोऽस्मि (प्रणमामि)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 1॥

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥ 2॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभुकी जय हो, जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो। श्रीअद्वैतचन्द्रकी जय हो तथा श्रीगौरभक्तवृन्दकी जय हो॥ 2॥

महाप्रभुका याजपुरमें वराहदेवका दर्शन :—

चलिते चलिते आइला याजपुर-ग्राम।
वराह-ठाकुर देखि' करिला प्रणाम॥ 3॥
नृत्यगीत कैल प्रेमे, बहुत स्तवन।
याजपुरे से रात्रि करिला यापन॥ 4॥

अनुवाद—महाप्रभु अपने भक्तोंके साथ चलते-चलते याजपुर नामक ग्राममें पहुँचे। वहाँ श्रीवराह भगवान्‌के विग्रहको देखकर प्रणाम किया। भगवान् वराहदेवके मन्दिरमें महाप्रभुने नृत्य-गीत करते हुए प्रेमसे उनकी बहुत स्तव-स्तुति कीं। उस रात वे याजपुरमें ही रहे॥ 3-4॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'याजपुरग्राम'*—यह उड़ीसामें वैतरणी नदीके तटपर स्थित विरजाक्षेत्रमें नाभिगयारूप एक विशेष तीर्थ स्थान है॥ 3॥

अनुभाष्य— *'याजपुर'*—कटक जिलेका एक उपमण्डल है, उसको 'नाभिगया' कहते हैं। यहाँ पर 'ब्राह्मणनगर' मौहल्लेमें श्रीवराहदेव विराजमान हैं॥ 3॥

कटकमें श्रीसाक्षी-गोपालका दर्शन :—

कटके आइला साक्षिगोपाल देखिते।
गोपाल-सौन्दर्य देखि' हैला आनन्दिते॥ 5॥
प्रेमावेशे नृत्यगीत कैल कतक्षण।
आविष्ट हञा कैल गोपाल-स्तवन॥ 6॥

अनुवाद—याजपुरसे महाप्रभु कटकमें आये और वहाँ श्रीसाक्षी-गोपालके दर्शन किये। श्रीसाक्षी-गोपालका सौन्दर्य देखकर उनको बहुत आनन्द हुआ। महाप्रभुने वहाँ प्रेमावेशमें कुछ देर तक नृत्य-गीत किया और फिर आविष्ट होकर उनकी स्तव-स्तुति करने लगे॥ 5-6॥

श्रीनित्यानन्दके मुखसे महाप्रभुके द्वारा
साक्षिगोपालके वृत्तान्तका श्रवण :—

सेइ रात्रि ताँहा रहि' भक्तगण-सङ्गे।
गोपालेर पूर्वकथा शुने प्रभु रङ्गे॥ 7॥

अनुवाद—उस रात महाप्रभु भक्तोंके साथ वहीं रहे और उन्होंने बड़े आनन्दसे श्रीसाक्षी-गोपालकी पूर्व कथाका श्रवण किया॥ 7॥

पहले तीर्थ-भ्रमण करते श्रीनिताइका श्रवणका सुयोग :—

नित्यानन्द-गोसाञि यबे तीर्थ भ्रमिला।
साक्षिगोपाल देखिबारे कटक आइला॥ 8॥
साक्षिगोपालेर कथा शुनि' लोकमुखे।
सेइ कथा कहेन, प्रभु शुने महासुखे॥ 9॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभु जब तीर्थोंमें भ्रमण कर रहे थे, तब वे श्रीसाक्षी-गोपालका दर्शन करने कटक आये थे। श्रीसाक्षी-गोपालकी जो कथा उन्होंने वहाँके लोगोंके मुखसे सुनी थी, वही कथा अब वे सुनाने लगे और महाप्रभु सुखपूर्वक उसे सुनने लगे॥ 8-9॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'साक्षिगोपाल'*—महानदीके तटपर कटक एक प्रधान नगर है; उस समयमें श्रीसाक्षी-गोपाल वहाँ विराजमान थे। श्रीसाक्षी-गोपाल जब दक्षिण भारतसे लाये गये थे, तब पहले वे कुछ दिनोंतक कटकमें रहे, उसके बाद कुछ दिनोंतक वे श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें श्रीजगन्नाथ मन्दिरमें रहे। वहाँ (उनकी श्रीजगन्नाथदेवसे) किसी प्रकारकी प्रेम कलह होनेपर उड़ीसाके राजाने पुरुषोत्तमसे तीन कोस दूर 'सत्यवादी'-नामक एक गाँवको बसाकर वहीं श्रीसाक्षी-गोपालको रखा। अब उसी गाँवमें एक पक्के मन्दिरमें श्रीसाक्षी-गोपाल विराजमान हैं॥ 8॥

श्रीसाक्षी-गोपालका वृत्तान्त; दो ब्राह्मणोंकी कथा :—

पूर्वे विद्यानगरेर दुइ त' ब्राह्मण।
तीर्थ करिबारे दुँहे करिला गमन॥ 10॥

गया, वाराणसी, प्रयाग—सकल करिया।
मथुराते आइला दुँहे आनन्दित हञा॥ 11॥

वनयात्राय वन देखि' देखे गोवर्धन।
द्वादश-वन देखि' शेषे गेला वृन्दावन॥ 12॥

वृन्दावने गोविन्द-स्थाने महादेवालय।
से-मन्दिरे गोपालेर महासेवा हय॥ 13॥

अनुवाद—पूर्वकालमें विद्यानगरमें दो ब्राह्मण थे, वे दोनों तीर्थ यात्रा करनेके लिये चले। वे गया, वाराणसी, प्रयाग आदि सभी तीर्थोंके दर्शन करके बड़े आनन्दित होकर मथुरा पहुँचे। मथुरा आकर व्रजके अनेक वनोंके दर्शन करते हुए वे गोवर्धन आये। इस प्रकार व्रजके प्रमुख बारह वनोंका दर्शन करके अन्तमें वृन्दावन आ पहुँचे। वृन्दावनमें वर्तमान श्रीगोविन्दजीके मन्दिरके स्थानपर उस समय एक विशाल मन्दिर था जिसमें श्रीगोपालकी राज-सेवा होती थी॥ 10-13॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'द्वादशवन'*—बारह वन, जैसे—भद्र, बेल, लौह, भाण्डीर और महावन,—ये पाँच वन यमुनाके पूर्वमें; मधु, ताल, कुमुद, बहुला, काम्य, खदीर और वृन्दावन,—ये बाकी सात वन यमुनाके पश्चिममें हैं। इन बारह वनोंको देखकर अन्तमें वे 'पाँच-कोसी वृन्दावन'-नामक स्थान पर गये। तात्पर्य यह है कि बारह वनोंमें जो वृन्दावन है, इस वृन्दावनसे आरम्भ होकर नन्दगाँव, बरसानातक सोलह कोस उसका विस्तार है; उसमें 'पाँच-कोसी वृन्दावन' नामक एक ग्राम है॥ 12॥

केशीतीर्थ, कालीय-ह्रदादिके कैल स्नान।
श्रीगोपाल देखि' ताँहा करिला विश्राम॥ 14॥

गोपाल-सौन्दर्य दुँहार मन निल हरि'।
सुख पाञा रहे ताँहा दिन दुइ-चारि॥ 15॥

अनुवाद—केशीतीर्थ और कालीय ह्रद आदिमें स्नान करके दोनों ब्राह्मणोंने श्रीगोपालका दर्शन किया। तत्पश्चात् उन्होंने उसी मन्दिरमें विश्राम किया। श्रीगोपालके सौन्दर्यने उन दोनोंके मनको हर लिया था, इसलिये प्रसन्नतापूर्वक वे दो-चार दिन वहीं रह गये॥ 14-15॥

दुइविप्र-मध्ये एक विप्र—वृद्धप्राय।
आर विप्र—युवा, ताँर करेन सहाय॥ 16॥

छोटविप्र करे सदा ताँहार सेवन।
ताँहार सेवाय विप्रेर तुष्ट हैल मन॥ 17॥

अनुवाद—दोनों ब्राह्मणोंमेंसे एक ब्राह्मण लगभग वृद्ध हो गये थे और दूसरा ब्राह्मण युवा था तथा वह उनकी सब प्रकारसे सहायता करता था। छोटा ब्राह्मण उनकी सदा सेवा करता था और उसकी सेवासे वृद्ध ब्राह्मण सन्तुष्ट होकर बहुत प्रसन्न हुए॥ 16-17॥

विप्र बले,—"तुमि मोर बहु सेवा कैला।
सहाय हञा आर तीर्थ कराइला॥ 18॥

पुत्रेओ पितार ऐछे ना करे सेवन।
तोमार प्रसादे आमि ना पाइलाम श्रम॥ 19॥

कृतघ्नता हय, तोमाय ना कैले सम्मान।
अतएव तोमाय आमि दिब कन्यादान॥"20॥

अनुवाद—वृद्ध ब्राह्मणने छोटे ब्राह्मणसे कहा,—"तुमने मेरी बहुत सेवा की है। मेरे सहायक बनकर तुमने मुझे तीर्थ यात्रा करवायी है। कोई पुत्र भी अपने पिताकी ऐसी सेवा नहीं करता। तुम्हारी कृपासे मुझे यात्रामें कोई भी कष्ट नहीं हुआ। यह मेरी कृतघ्नता होगी यदि मैं तुम्हारा सम्मान नहीं करूँ, इसलिये मैं तुम्हें अपनी कन्याका दान करूँगा॥"18-20॥

छोटविप्र कहे,—"शुन, विप्र-महाशय।
असम्भव कह केने, येइ नाहि हय॥ 21॥

महाकुलीन तुमि—विद्या-धनादि-प्रवीण।
आमि अकुलीन आर धन-विद्या-हीन॥ 22॥

कन्यादान-पात्र आमि ना हइ तोमार।
कृष्णप्रीत्ये करि तोमार सेवा-व्यवहार॥ 23॥

ब्राह्मण-सेवाय कृष्णेर प्रीति बड़ हय।
ताँहार सन्तोषे भक्ति-सम्पद बाड़य॥"24॥

अनुवाद—बड़े ब्राह्मणकी बात सुनकर छोटे ब्राह्मणने कहा,—"हे ब्राह्मण महाशय! सुनिये, आप ऐसी असम्भव बात क्यों कर रहे हैं जो कभी हो ही नहीं सकती। आप उच्च कुलके ब्राह्मण हैं और विद्या-धनादिसे सम्पन्न भी हैं। मैं छोटे कुलका हूँ, उसपर भी निर्धन और विद्यासे हीन हूँ। मैं आपके कन्यादानका योग्य पात्र नहीं हूँ। श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेके लिये ही मैंने आपकी सेवा की है, क्योंकि ब्राह्मणकी सेवा करनेसे श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न होते हैं। उनके सन्तुष्ट होनेसे भक्तिरूपी सम्पत्तिकी वृद्धि होती है॥"**21-24**॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके उद्देश्यसे छोटे ब्राह्मणने भगवद्भक्त बड़े ब्राह्मणकी सेवा की थी, उसके फलस्वरूप अपने भक्तके सम्मानकी रक्षा करनेके लिये श्रीगोपालठाकुरने साक्षी दी थी। अन्यथा छोटे ब्राह्मणके द्वारा इस प्रकार बड़े ब्राह्मणकी सेवा और उसकी कन्यासे विवाहकी सम्मति आदि क्रियाएँ इन्द्रिय-सुखभोगके लिये सांसारिक कर्मकाण्ड होतीं और श्रीमन्महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभु कभी भी उनका आदर नहीं करते॥ **23-24**॥

बड़विप्र कहे,—"तुमि ना कर संशय।
तोमाके कन्या दिब आमि, इथे कि विस्मय॥"25॥

अनुवाद—यह सुनकर बड़े ब्राह्मणने कहा,—"तुम मेरी बातमें संशय मत करो। मैं तुम्हें अपनी कन्याका दान करूँगा, इसमें आश्चर्यकी क्या बात है?"॥ **25**॥

छोटविप्र बले,—"तोमार स्त्री-पुत्र सब।
बहु ज्ञाति-गोष्ठी तोमार बहुत बान्धव॥ 26॥

ता'-सबार सम्मति बिना नहे कन्यादान।
रुक्मिणीर पिता भीष्मक ताहाते प्रमाण॥ 27॥

भीष्मकेर इच्छा,—कृष्णे कन्या समर्पिते।
पुत्रेर विरोधे कन्या नारिल अर्पिते॥"28॥

अनुवाद—छोटे ब्राह्मणने कहा,—"आपके परिवारमें स्त्री, पुत्रादि सब लोग हैं और आपके जाति-समाजमें बहुत बन्धु-बान्धव हैं। उन सबकी सम्मतिके बिना कन्यादान नहीं हो सकता। रुक्मिणीके पिता भीष्मक इस बातका प्रमाण हैं। भीष्मककी इच्छा थी कि वे अपनी कन्याको श्रीकृष्णको समर्पित करेंगे, परन्तु अपने पुत्र रुक्मीके विरोधके कारण वे अपनी कन्याको श्रीकृष्णको अर्पण न कर सके॥"**26-28**॥

अनुभाष्य—(भाः 10/52/21,25)—

"राजासीद्भीष्मको नाम विदर्भाधिपतिर्महान्।
तस्य पञ्चाभवन् पुत्राः कन्यैका रुचिरानना॥ 21॥
बन्धूनामिच्छतां दातुं कृष्णाय भगिनीं नृप।
ततो निवार्य कृष्णद्विट् रुक्मी चैद्यममन्यत"॥ 25॥

अर्थात् "महाराज भीष्मक विदर्भदेशके अधिपति थे। उनके पाँच पुत्र और एक कन्या (रुक्मिणी) थी। रुक्मिणीके भाई-बन्धु भी चाहते थे कि हमारी बहनका विवाह श्रीकृष्णसे हो। परन्तु रुक्मी श्रीकृष्णसे बड़ा द्वेष रखता था, उसने उन्हें विवाह करनेसे रोक दिया और चेदिराज शिशुपालको ही अपनी बहिनके योग्य वर समझा।" (भाः 10/53/2)—

श्रीभगवानुवाच—
"तथाहमपि तच्चित्तो निद्राञ्च न लभे निशि।
वेदाहं रुक्मिणा द्वेषान्ममोद्वाहो निवारितः॥"

अर्थात् "भगवान् श्रीकृष्णने कहा,—"ब्राह्मणदेवता! जैसे विदर्भराजकुमारी मुझे चाहती है, वैसे मैं भी उन्हें चाहता हूँ। मेरा चित्त उन्हींमें लगा रहता है। कहाँ तक

कहूँ, मुझे रातमें नींद तक नहीं आती। मैं जानता हूँ कि रुक्मीने द्वेषवश मेरा विवाह रोक दिया है।"

विदर्भराज भीष्मकके ज्येष्ठपुत्र रुक्मीके द्वारा अपनी बहन रुक्मिणीके हरणके समय श्रीकृष्णको बुरा-भला कहनेपर उसका श्रीकृष्णके साथ युद्ध हुआ। वह उस युद्धमें अवश्य ही मारा जाता, परन्तु अपने भाईकी रक्षाके लिये श्रीकृष्णसे रुक्मिणीके अनुरोधके कारण उसको जीवनदान मिला। श्रीकृष्णने तलवारके द्वारा उसकी मूँछ-दाढ़ीके केशोंको कई जगहसे मूँड़कर तथा उसका मुण्डन करके उसको कुरूप बनाकर छोड़ दिया॥ 26–28॥

बड़विप्र कहे,—"कन्या मोर निज-धन।
निज-धन दिते निषेधिबे कोन् जन॥ 29॥
तोमाके कन्या दिब, सबाके करि' तिरस्कार।
संशय ना कर तुमि, करह स्वीकार॥"30॥

अनुवाद—बड़े ब्राह्मणने कहा,—"कन्या मेरी अपनी सम्पत्ति है, अपनी सम्पत्ति देनेसे मुझे कौन रोक सकता है? मैं सबका तिरस्कार करके भी तुम्हें ही अपनी कन्या दूँगा। मेरी इस बातमें संशय किये बिना तुम मेरे इस प्रस्तावको स्वीकार करो॥"29–30॥

छोटविप्र कहे,—"यदि कन्या दिते आछे मन।
गोपालेर आगे कह ए सत्य-वचन॥"31॥

अनुवाद—छोटे ब्राह्मणने कहा,—"यदि मुझे अपनी कन्या देनेका आपने निश्चय कर लिया है, तो आप श्रीगोपालके सामने यह प्रतिज्ञा कीजिये॥"31॥

गोपालेर आगे विप्र कहिते लागिल।
"तुमि जान, निज-कन्या इहारे आमि दिल॥"32॥
छोटविप्र बले,—"ठाकुर, तुमि मोर साक्षी।
तोमा साक्षी बोलाइमु, यदि अन्यथा देखि॥"33॥

अनुवाद—तब गोपालजीके सामने आकर बड़े ब्राह्मणने कहा,—"हे प्रभो! आप साक्षीके रूपमें जान लीजिये कि मैंने अपनी कन्या इसको दान की है।" तब छोटे ब्राह्मणने गोपालजीकी ओर देखते हुए कहा,—"हे ठाकुरजी! आप मेरे साक्षी हो। मैं आपको साक्षी देनेके लिये बुलाऊँगा यदि ये ब्राह्मण अपनी प्रतिज्ञासे मुकर जायेंगे॥"32–33॥

एत बलि' दुइजने चलिला देशेरे।
गुरुबुद्ध्ये छोटविप्र बहु सेवा करे॥ 34॥

अनुवाद—इतना कहकर दोनों ब्राह्मण अपने देशकी ओर चल दिये। मार्गमें पहलेकी ही भाँति छोटे ब्राह्मणने पूज्य मानकर बड़े ब्राह्मणकी बहुत सेवा की॥ 34॥

देशे आसि' दुइजने गेला निज-घरे।
कतदिने बड़विप्र चिन्तित अन्तरे॥ 35॥
'तीर्थे विप्रे वाक्य दिलुँ,—केमते सत्य हय।
स्त्री, पुत्र, ज्ञाति, बन्धु जानिबे निश्चय॥'36॥

अनुवाद—विद्यानगर आकर दोनों ब्राह्मण अपने-अपने घर चले गये। कुछ दिन बाद वृद्ध ब्राह्मण हृदयमें चिन्ता करने लगे,—'मैंने तीर्थमें ब्राह्मणको जो वचन दिया था, वह कैसे सत्य हो? अपने स्त्री, पुत्र तथा सङ्गे-सम्बन्धियोंको अवश्य ही इस बातको बताना पड़ेगा॥'35–36॥

एकदिन निज-लोक एकत्र करिल।
ता-सबार आगे सब वृत्तान्त कहिल॥ 37॥
शुनि' सब गोष्ठी तार करे हाहाकार।
"ऐछे बात् मुखे तुमि ना आनिबे आर॥ 38॥
नीचे कन्या दिले कुल याइबेक नाश।
शुनिञा सकल लोक करिबे उपहास॥"39॥

अनुवाद—वृद्ध ब्राह्मणने एक दिन अपने सगे-सम्बन्धियोंको बुलाया और उनके सामने सारी बात खोलकर रख दी। वृद्ध ब्राह्मणकी बात सुनकर सब

लोग हाहाकार करने लगे और कहने लगे,—"ऐसी बात फिर कभी अपने मुखमें मत लाना। नीच जातिमें अपनी कन्याको देनेपर हमारे कुलकी मर्यादा नष्ट हो जायेगी। और इस बातको सुनकर सभी लोग हमारा उपहास करेंगे॥"37–39॥

विप्र बले,—"तीर्थ-वाक्य केमने करि आन।
ये हउक्, से हउक्, आमि दिब कन्यादान॥"40॥

अनुवाद—वृद्ध ब्राह्मणने कहा,—"तीर्थयात्रामें मैंने जो वचन दिया है, उससे मैं कैसे मुकर सकता हूँ? अब जो होना हो, सो हो, मैं तो उसे ही अपनी कन्या दान करूँगा॥"40॥

ज्ञाति लोक कहे,—"मोरा तोमाके छाड़िब।"
स्त्री-पुत्र कहे,—"विष खाइया मरिब॥"41॥

अनुवाद—वृद्ध ब्राह्मणके अपने वचनपर दृढ़ रहनेकी बात सुनकर सगे-सम्बन्धी लोग कहने लगे,—"तब हम तुमसे सब सम्बन्ध तोड़ देंगे।" और उनकी स्त्री और पुत्रने कहा,—"हम तो विष खाकर मर जायेंगे॥"41॥

विप्र बले,—"साक्षी बोलाञा करिबेक न्याय।
जिति' कन्या लबे, मोर व्यर्थ धर्म हय॥"42॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥42॥

अनुभाष्य—वृद्ध ब्राह्मणने कहा,—"मैं अपनी प्रतिज्ञानुसार छोटे ब्राह्मणको यदि कन्या प्रदान नहीं करूँगा, तो वह श्रीगोपाल-विग्रहको साक्षीके रूपमें बुलाकर (न्याय करवा लेगा और) बलपूर्वक मेरी कन्याको जय कर ही लेगा। ऐसा होनेपर तब तो मेरा धर्म निष्फल हो जायेगा॥"42॥

पुत्र बले,—"प्रतिमा साक्षी, सेह दूर देशे।
के तोमार साक्षी दिबे, चिन्ता कर किसे॥43॥
'नाहि कहिं'—ना कहिं' ए मिथ्या-वचन।
सबे कहिबे—'मोर किछु नाहिक स्मरण॥'44॥
तुमि यदि कह,—'आमि किछुइ ना जानि।'
तबे आमि न्याय करि' ब्राह्मणेरे जिनि॥"45॥

अनुवाद—तब उनके पुत्रने कहा,—"इस बातकी साक्षी तो प्रतिमा है और वह भी बहुत दूर देशमें है। कौन आकर आपके विरुद्ध साक्षी देंगे? आप क्यों चिन्ता कर रहे हैं। 'मैंने ऐसा नहीं कहा'—आपको ऐसा झूठ बोलनेकी आवश्यकता नहीं है। आप केवल इतना ही कहना,—'मुझे कुछ स्मरण नहीं है।' यदि आप केवल यही कहें,—'मैं इस विषयमें कुछ नहीं जानता', तब मैं तर्कके द्वारा उस ब्राह्मणको जीत लूँगा॥"43–45॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'मैं कन्या दूँगा, मैंने ऐसा बोला ही नहीं'—ऐसे झूठे वचन मत कहना, केवल इतना ही कहना,—'मुझे यह स्मरण नहीं है॥'44॥

अनुभाष्य—बड़े ब्राह्मणका पुत्र नास्तिक, स्मार्त्त, सांसारिक विषयोंमें चतुर था, किन्तु उस मूर्खको यह विश्वास नहीं था कि श्रीविग्रह भी चेतन और विभु हैं। कठपुतलीकी भाँति श्रीविग्रहको भी शिला-काष्ठादि समझते हुए उसने अपने पिताजीसे कहा,—"एक तो यह कि साक्षी प्रतिमा है, इसलिये वह चेतन वस्तुकी भाँति बात करेगी—यह बात विश्वास करने योग्य नहीं है। उसपर भी वह तो बहुत दूर है, इसलिये इतनी दूरसे यहाँ आकर साक्षी देना उसके लिये सम्भव नहीं होगा। इसलिये आप किसी प्रकारकी चिन्ता मत कीजिये। आप स्पष्ट रूपसे झूठ बोलकर अपनी प्रतिज्ञाको सम्पूर्ण रूपसे अस्वीकार मत कीजिये। राजा युधिष्ठिरके वाक्य "अश्वत्थामा हत इति गजः" की भाँति, केवल इतना ही कहना और ऐसे ही हाव-भाव दिखाना कि आपको ऐसा कुछ भी स्मरण नहीं आता है, अर्थात् आप इस विषयमें कुछ नहीं जानते। आप यदि ऐसा कहेंगे, तो मैं छोटे ब्राह्मणको कूटतर्कमें जालमें फँसाकर उसको हरा दूँगा और आपको भी कन्यादानरूपी विपत्तिसे सबके सामने छुटकारा दिला दूँगा। इस प्रकार आपकी प्रतिज्ञाको भी टूटनेसे बचाकर

कुलके सम्मानकी रक्षा करूँगा।" *'न्याय'*—तर्क॥ 43-45॥

एत शुनि' विप्रेर चिन्तित हैल मन।
एकान्त-भावे चिन्ते विप्र गोपाल-चरण॥ 46॥
'मोर धर्म रक्षा पाय, ना मरे निज-जन।
दुइ रक्षा कर, गोपाल, लइनु शरण॥'47॥
एइमत विप्र चित्ते चिन्तिते लागिल।
आर दिन लघुविप्र ताँर घरे आइल॥ 48॥

अनुवाद—पुत्रकी बातें सुनकर वृद्ध ब्राह्मण मन-ही-मन बहुत चिन्तित हो गये। एकान्त भावसे श्रीगोपालजीके श्रीचरणोंको स्मरण करते हुए ब्राह्मण कहने लगे,—'हे गोपाल! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। मेरे धर्मपालनमें विघ्न न आये और मेरे परिवार भी न मरे, आप कृपया इन दोनोंकी रक्षा करो।' इस प्रकार वृद्ध ब्राह्मण चिन्ता करने लगे। तब अगले दिन वह छोटा ब्राह्मण उनके घर आया॥ 46-48॥

आसिञा परम-भक्तये नमस्कार करि'।
विनय करिञा कहे कर-दुइ जुड़ि'॥ 49॥
"तुमि मोरे कन्या दिते करयाछ अङ्गीकार।
एबे किछु नाहि कह, कि तोमार व्यवहार॥"50॥
एत शुनि' सेइ विप्र रहे मौन धरि'।
ताँर पुत्र मारिते आइल हाते ठेङ्गा करि'॥ 51॥
"अरे अधम! मोर भग्नी चाह विवाहिते।
वामन हञा चन्द्रे येन चाह त' धरिते॥"52॥

अनुवाद—छोटे ब्राह्मणने उनको आदरपूर्वक प्रणाम किया और हाथ जोड़कर विनय करने लगा,—"आपने मुझे अपनी कन्या देनेका वचन दिया था, परन्तु अब आप उस विषयमें कुछ नहीं कह रहे। यह कैसा आपका व्यवहार है?" छोटे ब्राह्मणकी बात सुनकर वृद्ध ब्राह्मण कुछ नहीं बोले, परन्तु उनका पुत्र उस छोटे ब्राह्मणको मारनेके लिये हाथमें लाठी लेकर आया और कहने लगा,—"अरे अधम! तू मेरी बहनसे विवाह करना चाहता है? बौना होकर तू चाँदको पकड़ना चाहता है॥"49-52॥

ठेङ्गा देखि' सेइ विप्र पलाञा गेल।
आर दिन ग्रामेर लोक एकत्र करिल॥ 53॥
सब लोक बड़विप्रे डाकिया आनिल।
तबे सेइ लघुविप्र कहिते लागिल॥ 54॥
"इँहो मोरे कन्या दिते करयाछे अङ्गीकार।
एबे ये ना देन, पूछ इँहार व्यवहार॥"55॥
तबे सेइ विप्रेरे पूछिल सर्वजन।
"कन्या केने ना देह, यदि दियाछ वचन॥"56॥

अनुवाद—लाठी देखकर छोटा ब्राह्मण वहाँसे भाग गया, परन्तु अगले दिन उसने गाँवके सभी लोगोंको इकट्ठा कर लिया और उन्हें सब बात बतलायी। उसकी बात सुनकर गाँवके लोग बड़े ब्राह्मणको बुलाकर ले आये। तब छोटे ब्राह्मणने कहा,—"इन्होंने मुझे अपनी कन्या देनेका वचन दिया था, परन्तु अब मुझे अपनी कन्याका दान नहीं दे रहे हैं, आप इनसे पूछिये कि ये ऐसा व्यवहार क्यों कर रहे हैं?" तब सभी लोगोंने बड़े ब्राह्मणसे पूछा,—"यदि तुमने इसे अपनी कन्या देनेका वचन दिया था, तो तुम इसे कन्यादान क्यों नहीं करते?॥"53-56॥

विप्र कहे,—"शुन, लोक, मोर निवेदन।
कबे कि बलियाछि, मोर नाहिक स्मरण॥"57॥
एत शुनि' ताँर पुत्र वाक्य-छल पाञा।
प्रगल्भ हइया कहे सम्मुखे आसिञा॥ 58॥
"तीर्थयात्राय पितार सङ्गे छिल बहु धन।
धन देखि' एइ दुष्टेर लैते हैल मन॥ 59॥
आर केह सङ्गे नाहि, एइ सङ्गे एकल।
धुतुरा खाओयाञा बापे करिल पागल॥ 60॥

सब धन लञा कहे,—'चोरे लइल धन।'
'कन्या दिते चाहियाछे'—उठाइल वचन॥ 61॥

तोमरा सकल लोक करह विचारे।
मोर पितार कन्या दिते योग्य कि इहारे॥"62॥

अनुवाद—बड़े ब्राह्मणने कहा,—"आप लोग मेरा निवेदन सुनिये। मैंने कब क्या कहा था, मुझे ठीकसे स्मरण नहीं है।" यह सुनकर बड़े ब्राह्मणके पुत्रको वाक्-चातुरी दिखानेका अवसर मिल गया। वह निर्ल्लज होकर सबसे कहने लगा,—"तीर्थयात्रामें मेरे पिताजीके पास बहुत धन था। धनको देखकर इस दुष्टको उसे लेनेकी इच्छा हुई। मेरे पिताजीके साथ उस समय और कोई भी नहीं था, केवल यही अकेला था। इसने धतूरा खिलाकर मेरे पिताजीको पागल कर दिया और उनका सारा धन हड़पकर कहने लगा कि 'चोर सब धन ले गये।' और अब यह ऐसी बात उठा रहा है कि 'मेरे पिताजी इसे कन्यादान करना चाहते थे।' आप सब लोग अब विचार करो कि क्या यह मेरे पिताजीकी कन्या देने योग्य है?"57–62॥

अनुभाष्य—'*छल*'—वक्ता जिस शब्दका जिस अर्थमें प्रयोग करता है, उस शब्दके उस अर्थको ग्रहण न करके उसके विपरीत अर्थकी कल्पना करके प्रतिवादी जो सब मिथ्या दोषारोपण करता है, वही 'छल' है॥ 58॥

एत शुनि' लोकेर मने हइल संशय।
'सम्भवे,—धनलोभे छाड़े धर्मभय॥'63॥

अनुवाद—बड़े ब्राह्मणके पुत्रकी बात सुनकर लोगोंके मनमें भी संशय हो गया कि 'ऐसा सम्भव है, क्योंकि धनके लोभमें लोग धर्मके भयको छोड़ देते हैं॥'63॥

अनुभाष्य—धनके लोभसे लोगोंका धर्म-अधर्मका विवेक लुप्त हो जाता है, इसलिये छोटा ब्राह्मण उस समय धनकी लालसासे बड़े-ब्राह्मणके ऊपर अत्याचार कर भी सकता था,—लोगोंने इस प्रकार सन्देह किया॥ 63॥

तबे छोटविप्र कहे,—"शुन, महाजन।
न्याय जिनिबारे कहे असत्य-वचन॥ 64॥

एइ विप्र मोर सेवाय तुष्ट यबे हैला।
'तोरे आमि कन्या दिब' आपने कहिला॥ 65॥

तबे मुञि निषेधिनु,—'शुन, द्विजवर।
तोमार कन्यार योग्य नहि मुञि वर॥ 66॥

काँहा तुमि पण्डित, धनी, परम-कुलीन।
काँहा मुञि दरिद्र, मूर्ख, नीच, कुलहीन॥'67॥

तबु एइ विप्र मोरे कहे बार बार।
'तोरे कन्या दिब, तुमि करह स्वीकार॥'68॥

तबे आमि कहिलाङ,—'शुन, महामति।
तोमार स्त्री-पुत्र-ज्ञातिर ना हबे सम्मति॥ 69॥

कन्या दिते नारिबे, हबे असत्य-वचन।'
पुनरपि कहे विप्र करिया यतन॥ 70॥

'कन्या तोरे दिब, द्विधा ना करिह चित्ते।
आत्मकन्या दिब, केबा पारे निषेधिते॥'71॥

अनुवाद—तब छोटे ब्राह्मणने कहा,—"सुनो, महाजन! तर्कके द्वारा मुझसे जीतनेके लिये ही यह झूठ बोल रहा है। मेरी सेवासे सन्तुष्ट होकर इन ब्राह्मणने जब स्वयं ही कहा था,—'मैं तुम्हें अपनी कन्याका दान करूँगा।' तब मैंने मना करते हुए कहा था,—'हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! सुनो, मैं आपकी कन्याके लिये योग्य वर नहीं हूँ। कहाँ तो आप पण्डित, धनवान और परम कुलीन हैं और कहाँ मैं दरिद्र, मूर्ख, नीच और कुलहीन हूँ।' किन्तु तब भी इन ब्राह्मणने मुझसे बार-बार कहा था,—'मैं तुम्हें ही अपनी कन्या-दान करूँगा, तुम बस स्वीकार करो।' तब मैंने कहा था,—'सुनिये, मान्यवर! आपके स्त्री, पुत्र और सगे-सम्बन्धी इस बातसे सहमत नहीं होंगे। आप अपनी कन्या मुझे नहीं दे पायेंगे और आपका वचन असत्य हो जायेगा।' किन्तु फिर भी इन्होंने ज़ोर देकर कहा था,—'मैं तुम्हें

अपनी कन्याका दान करूँगा, मनमें कोई दुविधा मत रखो। मैं अपनी कन्याका दान करूँगा, ऐसा करनेसे मुझे कौन रोक सकता है?'॥ 64-71॥

तबे आमि कहिलाङ दृढ़ करि' मन।
'गोपालेर आगे कह ए-सत्य-वचन॥'72॥

तबे इँहो गोपालेर आसिया कहिल।
'तुमि जान, एइ विप्रे कन्या आमि दिल॥'73॥

तबे आमि गोपालेरे साक्षी करिञा।
कहिलाङ ताँर पदे प्रणत हइञा॥ 74॥

'यदि एइ विप्र मोरे ना दिबे कन्यादान।
साक्षि बोलाइमु तोमाय, हइओ सावधान॥'75॥

एइ वाक्ये साक्षी मोर आछे महाजन।
याँर वाक्य सत्य करि' माने त्रिभुवन॥"76॥

अनुवाद—तब मैंने भी निश्चय करके कहा,—'आप गोपालजीके सामने यह सत्य प्रतिज्ञा करो।' तब गोपालजीके सामने इन्होंने कहा था,—'हे प्रभो! आप साक्षी हों कि मैंने इस ब्राह्मणको अपनी कन्या दान की है।' तब मैंने भी गोपालजीको साक्षी बनाकर उनके चरणोंमें प्रणत होकर कहा था,—'यदि ये ब्राह्मण मुझे अपनी कन्यादान नहीं करेंगे, तो मैं आपको साक्षी देनेके लिये बुलाऊँगा, आप इस बातका ध्यान रखना।' मेरे इन वचनोंके साक्षी वे परदेवता श्रीगोपाल हैं, जिनके वचनोंको त्रिभुवन सत्य मानता है॥"72-76॥

अनुभाष्य—*'महाजन'*—देवता॥ 76॥

तबे बड़विप्र कहे,—"एइ सत्य कथा।
गोपाल यदि साक्षी देन, आपने आसि' एथा॥ 77॥

तबे कन्या दिब आमि, जानिह निश्चय।"
ताँर पुत्र कहे,—"एइ भाल बात हय॥"78॥

अनुवाद—यह सुनकर बड़े ब्राह्मणने कहा,—"यह बात ठीक है। यदि गोपालजी स्वयं यहाँ आकर साक्षी देंगे, तब मैं अवश्य ही इस ब्राह्मणको अपनी कन्याका दान दूँगा।" बड़े ब्राह्मणके पुत्रने भी इसमें सहमति जताते हुए कहा,—"यही बात ठीक है॥"77-78॥

बड़विप्रेर मने,—'कृष्ण बड़ दयावान्।
अवश्य मोर वाक्य तेँहो करिबे प्रमाण॥'79॥

पुत्रेर मने,—'प्रतिमा ना आसिबे साक्षी दिते।'
एइ बुद्ध्ये दुइजन हइला सम्मते॥ 80॥

अनुवाद—बड़े ब्राह्मणके मनमें विश्वास था,—'श्रीकृष्ण बड़े दयावान् हैं, वे आकर अवश्य ही साक्षी देकर मेरे वाक्योंकी सत्यताको प्रमाणित करेंगे।' बड़े ब्राह्मणके पुत्रके मनमें विचार था,—'प्रतिमा कभी भी साक्षी देनेके लिये यहाँ नहीं आयेगी।' इस प्रकार मन-ही-मन विचार करके दोनों ही इस बातपर सहमत हो गये॥ 79-80॥

छोटविप्र बले,—"पत्र करह लिखन।
पुनः येन नाहि चले एसब वचन॥"81॥

तबे सब लोक मेलि' पत्र त' लिखिल।
दुँहार सम्मति लञा मध्यस्थ राखिल॥ 82॥

अनुवाद—छोटे ब्राह्मणने कहा,—"अपने जो अभी कहा है, उसे लिखकर दें, जिससे आप फिर अपने वचनोंसे मुकर न जाँय।" तब सभी लोगोंने मिलकर इस आशयका एक पत्र लिखा तथा उन दोनों ब्राह्मणोंके हस्ताक्षर करवाकर उनकी सहमतिसे गाँवके सभी लोग बिचोलिये बन गये॥ 81-82॥

तबे छोटविप्र कहे,—"शुन, सर्वजन।
एइ विप्र—सत्य-वाक्, धर्मपरायण॥ 83॥

स्ववाक्य छाड़िते इँहार नाहि कभु मन।
स्वजन-मृत्यु-भये कहे असत्य-वचन॥ 84॥

इँहार पुण्ये कृष्णे आनि' साक्षी बोलाइब।
तबे एइ विप्रेर सत्य-प्रतिज्ञा राखिब॥"85॥

अनुवाद—तब छोटे ब्राह्मणने कहा,—"आप सभी

लोग सुनिये! ये ब्राह्मण सत्यवादी और धर्मपरायण हैं। अपनी प्रतिज्ञाको तोड़नेकी इनकी कभी इच्छा नहीं थी, किन्तु अपने स्वजनोंकी मृत्युके भयसे ही इन्होंने असत्य वचन कहे हैं। मैं इनके पुण्यके प्रभावसे श्रीकृष्णको साक्षी देनेके लिये यहाँ लाऊँगा, तब इन ब्राह्मणकी प्रतिज्ञाकी सत्यताकी रक्षा करूँगा॥"83–85॥

एत शुनि' नास्तिक लोक उपहास करे।
केह बले, 'ईश्वर—दयालु, आसितेह पारे॥'86॥

अनुवाद—छोटे ब्राह्मणकी बातको सुनकर कुछ नास्तिक लोग उसका उपहास करने लगे। परन्तु किसीने कहा,—'ईश्वर बहुत दयालु हैं, वे आ भी सकते हैं॥'86॥

अनुभाष्य— *'नास्तिक'*—क्योंकि श्रीकृष्णकी परमेश्वरता और भक्तवात्सल्यताके ऊपर विश्वास न करके उनकी अर्चाविग्रहमें भौम-बुद्धि थी अर्थात् वे उन्हें एक पत्थर-काठ आदिसे बनी जड़वस्तु माननेवाले थे॥86॥

तबे सेइ छोटविप्र गेला वृन्दावन।
दण्डवत् करि' कहे सब विवरण॥87॥
"ब्रह्मण्यदेव! तुमि—बड़ दयामय।
दुइ विप्रेर धर्म राख हञा सदय॥88॥
कन्या पाब,—मोर मने इहा नाहि सुख।
ब्राह्मणेर प्रतिज्ञा याय,—एइ बड़ दुःख॥89॥
एत जानि' तुमि साक्षी देह, दयामय।
जानि' साक्षी नाहि देय, तार पाप हय॥"90॥

अनुवाद—तब छोटा ब्राह्मण वृन्दावनकी ओर चल दिया। वहाँ पहुँचकर गोपालजीके सामने दण्डवत् प्रणाम करके वह सब वृत्तान्त सुनाने लगा,—"आप ब्राह्मणोंके रक्षक और परम दयालु हो। कृपा करके हम दोनों ब्राह्मणोंके धर्मकी रक्षा कीजिये। मेरे मनमें ऐसी बात नहीं है कि उनकी कन्या पाकर मैं संसार-सुख भोग करूँगा। उन ब्राह्मणकी प्रतिज्ञा भङ्ग होगी, यही मेरे लिये बड़े दुःखकी बात है। हे दयामय! यह जानकर आप चलकर साक्षी दीजिये, क्योंकि जो किसी बातको जानकर भी समय आनेपर जान-बूझकर साक्षी नहीं देता, उसे पाप लगता है [आपको तो कोई पाप स्पर्श नहीं कर सकता, परन्तु यदि आप साक्षी नहीं देंगे, तो उन ब्राह्मणको पाप लगेगा, इसलिये आप अवश्य ही चलिये]॥"87–90॥

अनुभाष्य—मैं बड़े ब्राह्मणकी कन्यासे विवाह करके अपने इन्द्रिय-भोगसुख वर्धनकी लालसासे आपको साक्षी देनेके लिये नहीं कह रहा हूँ, अपितु आपके भक्त उन ब्राह्मणकी प्रतिज्ञा-भङ्ग होनेसे उनको लगनेवाले पापसे उद्धार करके उनके वाक्योंकी रक्षाके लिये ही आपसे साक्षी देनेके लिये कह रहा हूँ॥89॥

कृष्ण कहे,—"विप्र, तुमि याह स्वभवने।
सभा करि' मोरे तुमि करिह स्मरणे॥91॥
आविर्भाव हञा आमि ताँहा साक्षी दिब।
तबे दुइ विप्रेर सत्य-प्रतिज्ञा राखिब॥"92॥

अनुवाद—छोटे ब्राह्मणकी बातको सुनकर श्रीकृष्णने कहा,—"हे ब्राह्मण! तुम अपने घर लौट जाओ। वहाँ सबको बुलाकर एक सभा करना और तुम मेरा स्मरण करना। मैं वहाँ सबके सामने आविर्भूत होऊँगा तथा साक्षी देकर तुम दोनों ब्राह्मणोंकी प्रतिज्ञाकी रक्षा करूँगा॥"91–92॥

विप्र बले,—"यदि हओ चतुर्भुज-मूर्त्ति।
तबु तोमार वाक्य कारु ना हबे प्रतीति॥93॥
एइ मूर्त्ति गिया, यदि एइ श्रीवदने।
साक्षी देह यदि, तबे सर्व लोक शुने॥"94॥

अनुवाद—छोटे ब्राह्मणने कहा,—"यदि आप चतुर्भुज रूपमें प्रकट होकर साक्षी देंगे, तो भी आपके वाक्योंपर किसीको विश्वास न होगा। परन्तु यदि आप अपने

इसी श्रीगोपालरूपसे वहाँ आयेंगे और श्रीमुखसे साक्षी देंगे, तभी सब लोग विश्वास करेंगे॥"93–94॥

कृष्ण कहे,—"प्रतिमा चले, कोथाह ना शुनि।"
विप्र बले,—"प्रतिमा हञा कह केने वाणी॥95॥
प्रतिमा नह तुमि,—साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन।
विप्र लागि' कर तुमि अकार्य-करण॥"96॥

अनुवाद—श्रीकृष्णने कहा,—"प्रतिमा चलकर जाती है, ऐसा तो कहीं नहीं सुना है।" छोटे ब्राह्मणने कहा,—"तो प्रतिमा होकर आप बोल कैसे रहे हैं? आप जड़मय प्रतिमा नहीं, बल्कि साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन हैं। अपने भक्त ब्राह्मणके धर्मकी रक्षाके लिये आप वह कार्य कर सकते हैं जिसे आपने पहले कभी नहीं किया [अर्थात् मेरे साथ चलकर साक्षी दीजिये]॥"95–96॥

अमृतप्रवाह भाष्य—ब्राह्मणके उपकारके लिये आप न करनेवाले कार्योंको भी करते हो॥96॥

अनुभाष्य—छोटे ब्राह्मणको कोई विष्णुके अर्चाविग्रहमें पत्थर-काठादि बुद्धि रखनेवाला मूर्तिपूजक न समझ ले, इसलिये इस प्रकारके अपयशसे बचानेके लिये ही उसकी परीक्षाके लिये भगवान्‌ने ऐसा प्रश्न किया। और ब्राह्मणने भी सर्वेश्वरके ईश्वर विष्णुकी ईश्वरतामें पूर्ण विश्वास रखनेवाले भक्तके समान ही उत्तर दिया॥95–96॥

हासिञा गोपाल कहे,—"शुनह ब्राह्मण।
तोमार पाछे पाछे आमि करिब गमन॥97॥
उलटिया आमा ना करिह दरशने।
आमाके देखिले, आमि रहिब सेइ स्थाने॥98॥
नूपुरेर ध्वनिमात्र आमार शुनिबा।
सेइ शब्दे आमार गमन प्रतीति करिबा॥99॥
एकसेर अन्न रान्धि' करिह समर्पण।
ताहा खाञा तोमार सङ्गे करिब गमन॥"100॥

अनुवाद—तब श्रीगोपालने हँसते हुए कहा,—"सुनो ब्राह्मण! मैं तुम्हारे पीछे-पीछे चलूँगा। परन्तु तुम कभी भी मुझे मुड़कर मत देखना। यदि तुम मुझे पीछे मुड़कर देखोगे, तो मैं उसी स्थानपर ही रह जाऊँगा। केवल मेरे नूपुरकी ध्वनिको सुनकर समझना कि मैं तुम्हारे पीछे-पीछे चल रहा हूँ। प्रतिदिन एक सेर (लगभग एक किलो) चावल पकाकर मुझे भोग लगाना, उसे खाकर मैं तुम्हारे पीछे-पीछे चलता रहूँगा॥"97–100॥

आर दिन आज्ञा मागि' चलिला ब्राह्मण।
तार पाछे पाछे गोपाल करिला गमन॥101॥
नूपुरेर ध्वनि शुनि' आनन्दित मन।
उत्तमान्न पाक करि' कराय भोजन॥102॥

अनुवाद—अगले दिन श्रीगोपालकी अनुमति लेकर ब्राह्मण अपने घरकी ओर चल पड़ा और गोपालजी भी उसके पीछे-पीछे चलने लगे। गोपालजीके नूपुरकी ध्वनिको सुनकर ब्राह्मणके मनमें बहुत आनन्द हो रहा था और वह प्रतिदिन उत्तम कोटिके चावल पकाकर गोपालजीको भोग लगाता॥101–102॥

एइमते चलि' विप्र निज-देशे आइला।
ग्रामेर निकट आसि' मनेते चिन्तिला॥103॥
'एबे मुञि ग्रामे आइनु, याइमु भवने।
लोकेरे कहिब गिया साक्षीर गमने॥104॥
साक्षाते ना देखिले मने प्रतीति ना हय।
इँहा यदि रहेन, तबु नाहि किछु भय॥'105॥

अनुवाद—इस प्रकार चलते-चलते छोटा ब्राह्मण अपने देशमें आ गया। अपने गाँवके निकट आकर उसने मनमें सोचा,—'अब मैं अपने गाँवमें आ गया हूँ और अपने घरमें जाऊँगा। फिर सभी लोगोंको जाकर साक्षीके आनेकी बातको कहूँगा। परन्तु लोग यदि गोपालजीको साक्षात् रूपमें नहीं देखेंगे, तो उन्हें विश्वास नहीं होगा। और यदि मेरे मुड़कर देखनेपर

गोपालजी यहाँ रह भी जाँय, तो भी किसी प्रकारका भय नहीं है॥'103–105॥

एत भावि' सेइ विप्र फिरिया चाहिल।
हासिञा गोपालदेव तथाय रहिल॥ 106॥
ब्राह्मणेरे कहे,—"तुमि याह निज-घर।
एथाय रहिब आमि, ना याब अतःपर॥"107॥

अनुवाद—यह विचार करके छोटे ब्राह्मणने जैसे ही घूमकर पीछे देखा, श्रीगोपाल मुस्कुराते हुए वहीं खड़े हो गये। तब गोपालजीने ब्राह्मणको कहा,—"अब तुम अपने घर जाओ, मैं यहीं रहूँगा, इससे आगे नहीं जाऊँगा॥"106–107॥

तबे सेइ विप्र याइ' नगरे कहिल।
शुनिञा सकल लोक चमत्कार हैल॥ 108॥
आइल सकल लोक साक्षी देखिबारे।
गोपाल देखिञा लोक दण्डवत् करे॥ 109॥
गोपाल-सौन्दर्य देखि' लोके आनन्दित।
प्रतिमा चलिञा आइला,—शुनिया विस्मित॥ 110॥

अनुवाद—तब उस ब्राह्मणने जाकर गाँवमें सबको गोपालजीके आनेका समाचार दिया। इसे सुनकर सभी लोग बड़े आश्चर्यचकित हो गये और श्रीसाक्षी-गोपालको देखनेके लिये गाँवके बाहर आ गये। श्रीगोपालके दर्शन करके सब उनको दण्डवत् प्रणाम करने लगे और उनके सौन्दर्यको देखकर सबको बहुत आनन्द हुआ। प्रतिमा स्वयं चलकर आयी है, यह सुनकर उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ॥ 108–110॥

तबे सेइ बड़विप्र आनन्दित हञा।
गोपालेर आगे पड़े दण्डवत् हञा॥ 111॥
सकल लोकेर आगे गोपाल साक्षी दिल।
बड़विप्र छोटविप्रे कन्यादान कैल॥ 112॥

अनुवाद—यह समाचार सुनकर वृद्ध ब्राह्मणको बहुत आनन्द हुआ और उन्होंने शीघ्रतासे आकर गोपालजीके आगे गिरकर दण्डवत् प्रणाम किया। सभी लोगोंके सामने गोपालजीने साक्षी दी, तब बड़े ब्राह्मणने निर्भय होकर छोटे ब्राह्मणको कन्यादान की॥ 111–112॥

तबे सेइ दुइ विप्रे कहिल ईश्वर।
"तुमि-दुइ-जन्मे-जन्मे आमार किङ्कर॥ 113॥
दुँहार सत्ये तुष्ट हइलाङ, दुँहे माग' वर।"
दुइ विप्र वर मागे आनन्द-अन्तर॥ 114॥
"यदि वर दिबे, तबे रह एइस्थाने।
किङ्करेरे दया तब सर्वलोके जाने॥"115॥

अनुवाद—तब श्रीगोपालने उन दोनों ब्राह्मणोंसे कहा,—"तुम दोनों जन्म-जन्मान्तरसे मेरे सेवक हो। मैं तुम दोनोंकी सत्यतासे बहुत सन्तुष्ट हुआ हूँ, तुम दोनों मुझसे वर माँग लो।" मनमें आनन्दित होते हुए दोनों ब्राह्मणोंने यही वर माँगा,—"यदि आप वर देना चाहते हैं, तो आप इसी स्थानपर रहिये, जिससे आपकी अपने सेवकोंके प्रति दयाको सभी लोग जान सकें॥"113–115॥

गोपाल रहिला, दुँहे करेन सेवन।
देखिते आइला सब देशेर लोक-जन॥ 116॥

अनुवाद—तब श्रीगोपाल वहीं रह गये और वे दोनों ब्राह्मण उनकी सेवा करने लगे। इस अद्भुत घटनाके विषयमें सुनकर अनेक देशोंसे लोग श्रीगोपालके दर्शनके लिये वहाँ आने लगे॥ 116॥

श्रीगोपाल और उत्कलके राजा पुरुषोत्तमकी कथा :—

से देशेर राजा आइल आश्चर्य शुनिञा।
परम सन्तोष पाइल गोपाले देखिञा॥ 117॥
मन्दिर करिया राजा सेवा चालाइल।
'साक्षिगोपाल' बलि' ताँर नाम ख्याति हैल॥ 118॥

एइ मत विद्याानगरे साक्षिगोपाल।
सेवा अङ्गीकार करियाछेन चिरकाल॥ 119॥

अनुवाद—उस देशका राजा भी इस आश्चर्यमय घटनाको सुनकर वहाँ आया और श्रीगोपालके दर्शन करके परम प्रसन्न हुआ। तब राजाने वहाँ एक विशाल मन्दिरका निर्माण करवाया और श्रीगोपालकी सेवाकी सुन्दर व्यवस्था कर दी। तभीसे श्रीगोपाल 'श्रीसाक्षी-गोपाल'के नामसे प्रसिद्ध हो गये। इस प्रकार विद्यानगरमें श्रीसाक्षी-गोपालने बहुत समय तक सेवा ग्रहण की॥ 117–119॥

अनुभाष्य— *'विद्यानगर'*—त्रैलङ्गदेशमें गोदावरी नदी बङ्गालकी खाड़ीमें जहाँ मिलती है, वह स्थान 'कोटदेश'के नामसे प्रसिद्ध है। उड़ीसा राज्यके उस प्रदेशकी प्रादेशिक राजधानी 'विद्यानगर' थी। यह नगर गोदावरी नदीके दक्षिण दिशामें स्थित था। उत्कलके राजा पुरुषोत्तम उस स्थानको अपने अधिकारमें लेकर प्रादेशिक शासनकर्त्ताके द्वारा उसपर शासन करते थे। वर्तमान गोदावरीके उत्तर तटपर स्थित राजमहेन्द्रीसे विद्यानगर 20–25 मील पूर्व-दक्षिणमें स्थित है। राजा प्रतापरुद्रके समयमें श्रीरामानन्द राय वहाँके शासनकर्त्ता थे। 'भिजियानगरम् या भिजियाना-ग्राम या विजयनगर' यह विद्यानगर नहीं है॥ 119॥

उत्कलेर राजा—श्रीपुरुषोत्तम-नाम।
सेइ देश जिनि' निल करिया संग्राम॥ 120॥

सेइ राजा जिनि' निल ताँर सिंहासन।
'माणिक्य-सिंहासन' नाम अनेक रतन॥ 121॥

अनुवाद—तब एक समय उत्कल देशके राजा श्रीपुरुषोत्तमने विद्यानगरपर चढ़ायी करके युद्धमें उस देशपर विजय प्राप्त कर ली। राजा श्रीपुरुषोत्तमने विद्यानगरको जीतकर वहाँके राजाके सिंहासनको ले लिया। अनेक रत्न जड़े होनेके कारण उस सिंहासनका नाम 'माणिक्य-सिंहासन' था॥ 120–121॥

पुरुषोत्तम-देव सेइ बड़ भक्तराज।
गोपाल-चरणे मागे,—'चल मोर राज॥'122॥

ताँर भक्तिवशे गोपाल ताँरे आज्ञा दिल।
गोपाल लइया सेइ कटके आइल॥ 123॥

जगन्नाथे आनि' दिल माणिक्य-सिंहासन।
कटके गोपाल-सेवा करिल स्थापन॥ 124॥

अनुवाद—राजा श्रीपुरुषोत्तमदेव उत्तम कोटिके भक्त थे। उन्होंने श्रीसाक्षी-गोपालके चरणोंमें गिरकर प्रार्थना की,—'आप कृपा मेरे राज्यमें चलिये।' उनकी भक्तिके वशीभूत होकर श्रीगोपालने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। तब राजा श्रीगोपालको लेकर कटक आ गये। राजाने उस 'माणिक्य-सिंहासन'को श्रीजगन्नाथदेवजीको भेंट किया और कटकमें श्रीगोपालकी सेवा स्थापित कर दी॥ 122–124॥

अनुभाष्य— *'राज'*—राज्यमें॥ 122॥

श्रीगोपाल और रानीकी कथा :—

ताँहार महिषी आइला गोपाल-दर्शने।
भक्ति करि' बहु अलङ्कार कैल समर्पणे॥ 125॥

ताँहार नासाते बहुमूल्य मुक्ता हय।
ताहा दिते इच्छा हैल, मनेते चिन्तय॥ 126॥

'ठाकुरेर नासाते यदि छिद्र थाकित।
तबे एइ दासी मुक्ता नासाय पराइत॥'127॥

अनुवाद—एक दिन राजा श्रीपुरुषोत्तमदेवकी महारानी श्रीगोपालजीका दर्शन करने आयी और उसने भक्तिपूर्वक श्रीगोपालजीको बहुतसे आभूषण समर्पित किये। महारानीके नाकमें एक बहुत मूल्यवान मुक्ता था और उस मुक्ताको भी श्रीगोपालको देनेकी उनकी इच्छा हुई। तब वह मनमें विचार करने लगी,—'यदि ठाकुरजीके नाकमें छेद होता, तो यह दासी इस मुक्ताको उनके नाकमें पहनाती॥'125–127॥

एत चिन्ति' नमस्करि' गेला स्वभवने।
रात्रिशेषे गोपाल ताँरे कहेन स्वपने॥ 128 ॥

"बाल्यकाले माता मोर नासा छिद्र करि'।
मुक्ता पराञाछिल बहु यत्न करि'॥ 129 ॥

सेइ छिद्र अद्यापिह आछये नासाते।
सेइ मुक्ता पराह, याहा चाहियाछ दिते॥ "130 ॥

अनुवाद—मनमें ऐसी इच्छा करके महारानी श्रीगोपालको प्रणाम करके अपने महलमें चली गयी। उस रातके अन्तमें श्रीगोपालने उसे स्वप्नमें आकर कहा,—"बाल्यकालमें मेरी माताने मेरी नाकमें छेद करके बहुत प्रेमसे उसमें मुक्ता पहनाया था। वह छेद आज भी मेरे नाकमें है। जिस मुक्ताको मुझे देना चाहती हो, उसे तुम मेरे नाकमें पहना सकती हो॥ "128-130 ॥

स्वप्ने देखि' सेइ वाणी राजाके कहिल।
राजासह मुक्ता लञा मन्दिरे आइल॥ 131 ॥

पराइल मुक्ता नासाय छिद्र देखिञा।
महामहोत्सव कैल आनन्दित हञा॥ 132 ॥

सेइ हैते गोपालेर कटकेते स्थिति।
एइ लागि' 'साक्षिगोपाल' नाम हैल ख्याति॥ 133 ॥

अनुवाद—तब महारानीने उस स्वप्नकी बात राजाको बतलायी और राजाके साथ मुक्ता लेकर मन्दिरमें आ गयी। श्रीगोपालके नाकमें छेद देखकर उन्हें मुक्ता पहना दिया और परम आनन्दित होकर उन्होंने एक महामहोत्सव किया। तभीसे श्रीगोपालजी कटकमें विराजमान हैं और वे 'साक्षी-गोपाल'के नामसे प्रसिद्ध हैं॥ 131-133 ॥

श्रीनिताइके मुखसे साक्षिगोपालके वृत्तान्तको सुनकर भक्तोंके साथ महाप्रभुको आनन्द :—

नित्यानन्द-मुखे शुनि' गोपाल-चरित।
तुष्ट हैला महाप्रभु स्वभक्त-सहित॥ 134 ॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभुके श्रीमुखसे श्रीसाक्षी-गोपालका लीला-चरित्र सुनकर महाप्रभु और उनके भक्त बहुत प्रसन्न हुए॥ 134 ॥

भक्तोंका महाप्रभु और श्रीगोपालमें अभेद-दर्शन :—

गोपालेर आगे यबे प्रभुर हय स्थिति।
भक्तगणे देखे—येन दुँहे एकमूर्त्ति॥ 135 ॥

दुँहे—एक वर्ण, दुँहे—प्रकाण्ड-शरीर।
दुँहे—रक्ताम्बर, दुँहार स्वभाव—गम्भीर॥ 136 ॥

महा-तेजोमय दुँहे कमल-नयन।
दुँहार भावावेश, दुँहे—चन्द्रवदन॥ 137 ॥

उनके दर्शनोंसे भक्तोंके साथ श्रीनिताइका परिहास करना :—

दुँहा देखि' नित्यानन्दप्रभु महारङ्गे।
ठाराठारि करि' हासे भक्तगण-सङ्गे॥ 138 ॥

अनुवाद—महाप्रभु जब श्रीसाक्षी-गोपालके सामने खड़े थे, तब सभी भक्तोंने देखा महाप्रभु और साक्षी-गोपाल दोनों एक ही समान हैं। उन दोनोंका वर्ण एक जैसा था और दोनोंका शरीर विशाल था। दोनोंने ही लाल वस्त्र पहने हुए थे और दोनोंका ही स्वभाव अत्यन्त गम्भीर था। दोनों ही महा-तेजवान थे तथा दोनोंके नेत्र कमलके समान थे। दोनों ही भावमें आविष्ट थे और दोनोंके मुख ही पूर्णचन्द्रके समान उज्ज्वल और सुशीतल थे। दोनोंके दर्शन करके श्रीनित्यानन्द प्रभु बहुत आनन्दित हुए और नेत्रोंसे इशारे करते हुए भक्तोंके साथ स्वयं भी हँसने लगे॥ 135-138 ॥

प्रातःकाल सभीकी पुरीकी ओर यात्रा :—

एइमत महारङ्गे से रात्रि वञ्चिञा।
प्रभाते चलिला मङ्गल-आरति देखिञा॥ 139 ॥

अनुवाद—इस प्रकार सभीने बड़े आनन्दमें वह रात्रि बितायी। प्रातःकालमें श्रीगोपालकी मङ्गल-आरतीका दर्शन करके सभी पुरीकी ओर चल दिये॥ 139 ॥

चैतन्यभागवतमें भुवनेश्वर-दर्शन आदिका वर्णन है :—

भुवनेश्वर-पथे यैछे कैल दरशन।
विस्तारि' वर्णियाछेन दास-वृन्दावन॥ 140॥

अनुवाद—भुवनेश्वरके मार्गमें महाप्रभुने जिन-जिन स्थानोंका दर्शन किया, उसका श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने अपने श्रीचैतन्यभागवतमें विस्तारसे वर्णन किया है॥ 140॥

अमृतप्रवाह भाष्य—चैतन्यभागवत अन्त्यलीलाका दूसरा अध्याय देखें। कटकसे राजमार्गसे बाहर होकर बलिहस्ता या बालकाटिचटिसे भुवनेश्वर दो-तीन कोसकी दूरीपर है॥ 140॥

अनुभाष्य—चैःभाः अन्त्य, दूसरा अध्याय—

"तबे प्रभु आइलेन श्रीभुवनेश्वर।
गुप्तकाशी-वास यथा करेन शङ्कर॥ 307॥
सर्वतीर्थ-जल यथा बिन्दु-बिन्दु आनि'।
'बिन्दुसरोवर' शिव सृजिला आपनि॥ 308॥
'शिवप्रिय सरोवर जानि' श्रीचैतन्य।
स्नान करि' विशेषे करिला अति धन्य॥"309॥

अर्थात् "तब महाप्रभु श्रीभुवनेश्वर पहुँचे। श्रीभुवनेश्वर गुप्त काशी है, जहाँ शङ्कर निवास करते हैं। सभी तीर्थोंसे बिन्दु-बिन्दु भर जल लाकर स्वयं शिवजीने यहाँ 'बिन्दुसरोवर'का निर्माण किया है। इस सरोवरको शिवजीका प्रिय सरोवर जानकर महाप्रभुने इसमें स्नान करके इसे कृतार्थ किया।"

स्कन्दपुराणमें शिवजीका एकाम्रकानन (श्रीभुवनेश्वर) को प्राप्त करनेके इतिहासका वर्णन है। 'काशीराज'-नामक एक राजाने पूजा करके शिवजीको सन्तुष्ट किया। जब काशीराज श्रीकृष्णके साथ युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुआ, तब शिवजीने उसकी सहायता की। श्रीकृष्णने सुदर्शन चक्रके द्वारा काशीराजका वध करके काशीको जला दिया। काशीको जलते देखकर शिवजीने पशुपात अस्त्रका प्रयोग किया, परन्तु श्रीसुदर्शनके आगे वह भी विफल हो गया। तब शिवजीने श्रीकृष्णकी महिमाको जानकर अपने द्वारा किये गये अपराधके लिये क्षमा-याचना की। श्रीकृष्णने उन्हें क्षमा करके नीलाचलके निकट एकाम्रकानन स्थान प्रदान किया। एकाम्रकाननको केशरीवंशीय राजाओंने राजधानी बनाकर कुछेक शताब्दी उत्कलदेशपर राज्य किया॥ 140॥

महाप्रभुका श्रीनिताइको संन्यास-दण्ड देना और कमलपुरमें भार्गीनदीमें स्नान :—

कमलपुरे आसि भार्गीनदी-स्नान कैल।
नित्यानन्द-हाते प्रभु दण्ड धरिल॥ 141॥

महाप्रभु द्वारा कपोतेश्वर-दर्शन और पीछेसे श्रीनिताइके द्वारा महाप्रभुके दण्डको तोड़ना :—

कपोतेश्वर देखिते गेला भक्तगण-सङ्गे।
एथा नित्यानन्दप्रभु कैल दण्ड भङ्गे॥ 142॥

तिन खण्ड करि' दण्ड दिल भासाञा।
भक्त-सङ्गे आइला प्रभु महेश देखिञा॥ 143॥

अनुवाद—कमलपुरमें आकर महाप्रभुने भार्गीनदीमें स्नान किया। श्रीनित्यानन्द प्रभुके हाथोंमें अपने संन्यास-दण्डको पकड़ाकर महाप्रभु भक्तोंके साथ कपोतेश्वरका दर्शन करने चले गये। इधर श्रीनित्यानन्द प्रभुने महाप्रभुके दण्डको तोड़कर उसके तीन टुकड़े करके उसे भार्गी नदीमें बहा दिया। तभी श्रीशिवका दर्शन करके महाप्रभु अपने भक्तोंके साथ लौट आये॥ 141–143॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'भार्गीनदी'*—आजकल 'दण्डभाङ्गा'-नदीके नामसे विख्यात है; यह पुरीसे तीन कोस उत्तरमें है। *'कपोतेश्वर'*—दण्डभाङ्गा नदीके निकटमें है। *'दण्ड'*—संन्यासके समय महाप्रभुने जिस दण्डको प्राप्त किया था, उसे श्रीनित्यानन्द प्रभुके हाथमें देकर वे कपोतेश्वर गये। श्रीनित्यानन्द प्रभुने उस दण्डके तीन टुकड़े करके भार्गी नदीके जलमें बहा दिये, तबसे भार्गी नदीका नाम 'दण्डभाङ्गा' हो गया है। काय, वाक् और मनको दण्डित (शासन) करनेके लिये संन्यासी त्रिदण्ड धारण करते हैं। शङ्कराचार्यकी एकदण्ड धारण करनेकी विधि है। श्रीमहाप्रभुको उस प्रकार दण्ड धारण करनेकी

कोई आवश्यकता नहीं है, ऐसा विचार करके श्रीनित्यानन्द प्रभुने उस दण्डको तोड़कर फेंक दिया॥ 141–143॥

अनुभाष्य— *'कपोतेश्वर'*—शिवलिङ्ग। *'दण्ड'*—श्रीगौरसुन्दरने काटोयामें शाङ्कर-भारती-सम्प्रदायमें एकदण्ड-संन्यास ग्रहण किया। श्रीनित्यानन्द प्रभुने उस संन्यास दण्डके तीन टुकड़े करके भार्गी (वर्तमान 'दण्डभाङ्गा') नदीमें फेंक दिया। संन्यासाश्रममें 'कुटीचक' और 'बहुदक'-अवस्थामें दण्डकी रक्षा करनेकी आवश्यकता है, किन्तु 'हंस' और 'परमहंस' अवस्थामें दण्डका त्याग करना ही विधि है। श्रीगौरहरि तो चौदह भुवनोंके पति (स्वामी) हैं, इसलिये उन्हें दूसरे संन्यासियोंकी भाँति न्यून-अधिकार प्रदर्शनकी कोई आवश्यकता नहीं है, ऐसा जानकर श्रीनित्यानन्द-स्वरूपने उस दण्डको तोड़कर फेंक दिया॥ 142–143॥

अमृतानुकणा—चैतन्यभागवत अन्त्यखण्ड, दूसरा अध्याय—

"दण्ड हाते करि' हासे नित्यानन्द-राय।
दण्डेर सहित कथा कहेन लीलाय॥ 206॥
'अहे दण्ड, आमि याँरे बहिये हृदये।
से तोमारे बहिबेक ए'त युक्त नहे॥' 207॥
एत बलि' बलराम परम प्रचण्ड।
फेलिलेन दण्ड भाङ्गि' करि तिन खण्ड॥" 208॥

इनकी टीका 'गौड़ीय भाष्य'में जगद्गुरु श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरने जनाया है,—"श्रीनित्यानन्द प्रभुने दण्डको सम्बोधित करते हुए कहा,—'चौदह भुवनोंके पति श्रीकृष्णको हम सब सर्वदा हृदयमें धारण करते हैं; हम उनके नित्य सेवक हैं; तुम हमारे उन नित्य प्रभुको अपने वाहकके रूपमें बनाकर अपराध कर रहे हो। इसलिये श्रीकृष्णने भक्तभावको अङ्गीकार करके जिन सब विधि-ग्रहण या निषेध-त्यागके चिह्न (दण्ड) को अपने हाथों और कन्धोंपर वहन किया है, वह वहनकार्य केवल हम सबको ही शोभा देता है। हे दण्ड! तुम मेरे प्रभुके प्रभु मत बनो, महाप्रभुके द्वारा तुम स्वयंको मत उठवाओ।'

'प्राकृत सहजिया भक्तब्रुव' अर्थात् प्राकृत—जो भगवान्‌की अप्राकृत लीलाओंको प्राकृत काम-क्रीड़ाकी भाँति समझते हैं; सहजिया—जो भक्त होनेका अभिनय करते हैं; भक्तब्रुव—जो दिखनेमें तो भक्त हैं, परन्तु वास्तवमें भक्त नहीं हैं, वे श्रीकृष्णसे धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष-आदिकी इच्छा करके उनके द्वारा सेवा करवाकर अपने इन्द्रिय-भोग करते हैं। (वास्तविक) भक्तोंका इस प्रकार मनका भाव नहीं होता।

"केवलाद्वैतवादी तथाकथित परमहंस एकदण्डी संन्यासी त्रिदण्डी संन्यासियोंका सदा ही अनादर करते हैं। श्रीगौरसुन्दरके द्वारा एक-दण्ड ग्रहण करनेकी छलनेवाली लीला प्रदर्शित करनेपर श्रीनित्यानन्द प्रभुने उस दण्डको तीन भागोंमें खण्डित करके उसको त्रिदण्डके रूपमें परिणत कर दिया और इस दण्डको वहन करनेका भार भगवद्-सेवकोंके ऊपर दे दिया (अर्थात् भगवान् दण्डको वहन नहीं करेंगे)। इसलिये अति प्राचीनकालसे महाभारतमें जो हंस-गीति है, उसमें "वाचो वेगम्" श्लोक त्रिदण्ड-ग्रहणके प्रमाण और योग्यताको सूचित करता है। और त्रिदण्डिगणोंमें जो रूपानुगत्व है, इसे श्रीरूपगोस्वामी प्रभुने 'उपदेशामृत'में लिपिबद्ध किया है। ब्रह्ममें लीन होनेके इच्छुक सम्प्रदाय आदिमें दीक्षित प्रच्छन्न बौद्ध-मतावलम्बी मायावादियोंने त्रिदण्डके विरुद्ध 'परिमल' नामकी टीकामें प्रचुर गाली-गलौज की है। भविष्यमें मायावादी मतमें दीक्षित 'न्यायरक्षामणि', 'शिवार्क-मणिदीपिका'-आदि ग्रन्थोंके भीतरमें जो भक्ति-विरोधी मतवाद लिखेंगे, उनकी अयोग्यता दिखानेके लिये श्रीनित्यानन्द प्रभुने श्रीगौरसुन्दरके एकदण्डको त्रिदण्डमें परिणत कर दिया। (और) 'शुद्धद्वैत'-मतावलम्बियोंकी (जैसे श्रीमाध्व-सम्प्रदायकी) शिष्य-परम्परामें जो एकदण्ड ग्रहणकी प्रथा प्रचलित थी और प्रचलित है, वह श्रीमाध्वगौड़ीय-सम्प्रदायमें अनुमोदित नहीं है। इसे ही समझानेके लिये श्रीबलदेवप्रभुने (श्रीनित्यानन्द प्रभुने) संन्यास-वेषधारी श्रीचैतन्यदेवके एकदण्डको त्रिदण्डमें परिणत किया है—यही श्रीमद्भागवत-सम्मत एवं गौड़ीय

वैष्णवोंका एकमात्र विचार है। 'त्रिदण्डी' न होनेसे कोई भी आत्मसंयम करनेमें समर्थ नहीं होता। कर्मकाण्डीय त्रिदण्डमें इन्द्रदण्ड, वज्रदण्ड और ब्रह्मदण्डके साथ जीवदण्डका समावेश है। श्रीरूपगोस्वामी प्रभुने त्रिदण्डकी व्याख्यामें काय-मनोवाक्-दण्डकी बात पारमार्थिक त्रिदण्डिगणोंको बतलायी है। त्रिदण्डके साथ जीवदण्डके संयोगमें प्राकृत बुद्धिसे चालित विचारसे त्रिदण्डका पारमहंस-धर्ममें एकदण्ड ही परिलक्षित होता है। किन्तु जिस एकदण्डमें जड़ीय मायाके तीन गुणोंके सम्मिलनमें 'गुणविधौत अवस्था' अर्थात् गुणोंको सम्पूर्ण रूपसे धोनेकी अवस्था नामक एकदण्ड है, वह एकायन पद्धतिमें कलङ्क आरोपित करता है, इसलिये त्रिदण्ड-सम्मिलनमें एकदण्ड ही एकायन पद्धतिमें स्वीकृत हुआ है। ब्रह्मसम्प्रदायमें, ब्रह्म-माध्व-सम्प्रदायमें और ब्रह्म-माध्व-गौड़ीय-सार्वजनिक-वैष्णव-समाजमें वह प्रथा चिरकालसे ही व्यक्त एवं अव्यक्तभावसे विद्यमान है॥ 142-143 ॥

पुरीके मन्दिरको देखकर श्रीकृष्णविरहमें
आतुर महाप्रभुका नृत्य और आवेश :—

जगन्नाथेर देउल देखि' आविष्ट हैला।
दण्डवत् हञा प्रेमे नाचिते लागिला॥ 144 ॥

भक्तगण आविष्ट हञा, सबे नाचे गाय।
प्रेमावेशे प्रभु-सङ्गे राजमार्गे याय॥ 145 ॥

हासे, कान्दे, नाचे प्रभु हुङ्कार गर्जन।
तिनक्रोश पथ हैल—सहस्र-योजन॥ 146 ॥

अनुवाद—दूरसे ही श्रीजगन्नाथदेवके मन्दिरको देखकर महाप्रभु प्रेममें आविष्ट हो गये और वहींसे दण्डवत् प्रणाम करके वे प्रेममें आविष्ट होकर नृत्य करने लगे। भक्तगण भी प्रेमाविष्ट होकर नाचने और गाने लगे और महाप्रभुके साथ राजमार्गपर चलने लगे। कभी हँसते, कभी रोते, कभी नृत्य करते और कभी हुँकार-गर्जन करते हुए महाप्रभु प्रेमावेशमें चल रहे थे। मन्दिरकी तीन कोसकी दूरी भी उन्हें हजार योजन जितनी लम्बी लगने लगी॥ 144-146 ॥

अनुभाष्य— *'देउल'*—देवालय। अनङ्गभीम नामक राजाके द्वारा निर्मित वर्तमान श्रीजगन्नाथजीका मन्दिर। उपलभोगका मन्दिर, भोगवर्द्धन खण्ड एवं बाहर बना हुआ ऊँचा चबूतरा उस समयमें नहीं बना था। *'राजमार्ग'*—श्रीजगन्नाथदेवके दर्शनके लिये यात्री बङ्गालसे जिस रास्तेसे होते हुए पुरुषोत्तम आते थे। तीन कोस दूरसे श्रीजगन्नाथ मन्दिरके दर्शन करके श्रीमहाप्रभुमें अत्यधिक विरहके कारण सात्त्विक विकार उदित हो गये और वे भगवद्दर्शनके लिये अत्यन्त व्याकुल और उत्कण्ठित हो उठे। बहुत तीव्र विप्रलम्भमें (विरहमें) जिस प्रकार क्षणकालका विरह भी युगके समान प्रतीत होता है, नेत्रोंपर पलकें होनेके कारण गोपियाँ जिस प्रकार विधिकी (सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माकी) मूर्खता बताती हैं, उसी प्रकार तीन कोसका रास्ता महाप्रभुको सुदूर सैकड़ों योजनका लगने लगा॥ 144-146 ॥

आठारनालामें आकर महाप्रभुकी बाह्य दशा :—

चलिते चलिते प्रभु आइला 'आठारनाला'।
ताँहा आसि' प्रभु किछु बाह्य प्रकाशिला॥ 147 ॥

श्रीनिताइसे अपने संन्यास-दण्डकी याचना :—

नित्यानन्दे कहे प्रभु,—"देह मोर दण्ड।"
नित्यानन्द बले,—"दण्ड हैल तिनखण्ड॥ 148 ॥

निताइकी चतुरता ओर दण्डभङ्ग-वार्त्ता-निवेदन :—

प्रेमावेशे पड़िला तुमि, तोमारे धरिनु।
तोमा-सह तेरछे दण्ड-उपरे पड़िनु॥ 149 ॥

दुइजनार भरे दण्ड खण्ड खण्ड हैल।
सेइ दण्ड काँहा पड़िल, किछु ना जानिल॥ 150 ॥

मोर अपराधे तोमार दण्ड हइल खण्ड।
ये उचित हय, मोर कर तार दण्ड॥ "151 ॥

अनुवाद—चलते-चलते महाप्रभु 'आठारनाला' नामक स्थानपर पहुँचे और वहाँ कुछ बाहरी-ज्ञान प्रकाशित

करते हुए उन्होंने श्रीनित्यानन्द प्रभुसे कहा,—"मेरा संन्यास दण्ड दो।" श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा,—"उस दण्डके तो तीन टुकड़े हो गये हैं। प्रेमके आवेशमें जब आप गिर रहे थे, तब मैंने आपको पकड़ा, किन्तु हम दोनों ही दण्डके ऊपर गिर पड़े। हम दोनोंके भारसे दण्ड टुकड़े-टुकड़े हो गया। अब उस दण्डके टुकड़े कहाँ हैं, मुझे कुछ पता नहीं। मेरे अपराधके कारण ही आपका दण्ड टूट गया, इसलिये अब आप जैसा भी उचित समझे, वैसा दण्ड मुझे दे सकते हैं॥"147–151॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'आठारनाला'*—पुरीमें प्रवेश करनेके लिये जो पुल है, उसका नाम 'आठारनाला' है; उस पुलके नीचे अठारह मेहराब (दो खम्बोंके ऊपर अर्द्ध-मण्डलाकार भाग) हैं॥147॥

पाँचवें अध्यायका अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

महाप्रभुका दुःख और थोड़ा क्रोध :—

शुनि' किछु महाप्रभु दुःख प्रकाशिला।
ईषत् क्रोध करि' किछु कहिते लागिला॥152॥

महाप्रभुकी डाँट और अकेले श्रीजगन्नाथके दर्शनकी इच्छाका प्रकाश :—

"नीलाचले आसि' मोर सबे हित कैला।
सबे दण्डधन छिल, ताहा ना राखिला॥153॥

तुमि-सब आगे याह ईश्वर देखिते।
किवा आमि आगे याइ, ना याह सहिते॥"154॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभुकी बात सुनकर महाप्रभुने थोड़ा दुःख प्रकाशित किया और थोड़ा क्रोध करते हुए कुछ कहने लगे,—"मेरे साथ नीलाचल तक आकर आप सबने मेरा बहुत उपकार किया है। संन्यास-दण्ड मेरा एकमात्र धन था, उसे भी आपने सम्भालकर नहीं रखा। अब आप सब आगे चलकर श्रीजगन्नाथका दर्शन करो अथवा मैं आगे जाऊँगा, अब मैं आपके साथ नहीं जाऊँगा॥"152–154॥

अनुभाष्य—वैध-संन्यासके योग्य एकदण्ड धारण करना महाप्रभुके लिये अनावश्यक है, क्योंकि महाप्रभु किसी विधिके अधीन नहीं हैं, श्रीनित्यानन्द प्रभुने ऐसा जानकर कि उस दण्डको ढोनेसे महाप्रभुको छुट्टी दे दी। महाप्रभुने श्रीनित्यानन्द प्रभुपर क्रोध इसलिये दिखलाया कि उनके द्वारा दण्डत्यागको देखकर भविष्यमें संन्यास लेनेवाले अयोग्य संन्यासी योग्यता प्राप्त करनेसे पहले ही अपने दण्डको तोड़ देंगे और इससे वैदिक-विधि शिथिल हो जायेगी। श्रेष्ठ व्यक्तिके आचरणका जगत्के अन्यान्य लोग अनुसरण करते हैं। भ्रान्त चित्तवाले व्यक्ति श्रुति-स्मृति-पुराणादिमें कहे गये भक्तिके अनुकूल वैधमार्गके तात्पर्यको नहीं समझनेसे उसकी अवहेलना करके मनोकल्पित-मार्गको अनुराग-मार्ग अथवा अवधूताचार मानते हैं। ऐसे लोगोंको भक्तिमें बहुत असुविधा होगी, इसी कारणसे महाप्रभुकी यह क्रोध-प्रदर्शन-लीला है॥152॥

मुकुन्दका महाप्रभुको पहले जानेका अनुरोध :—

मुकुन्द दत्त कहे,—"प्रभु, तुमि याह आगे।
आमि-सब पाछे याब, ना याब तोमार सङ्गे॥"155॥

अनुवाद—श्रीमुकुन्द दत्तने कहा,—"प्रभो! आप आगे चलिये। हम सब आपके पीछे चलेंगे। हम आपके साथ नहीं जायेंगे॥"155॥

दोनों प्रभुओंका भाव—अचिन्त्य :—

एत शुनि' प्रभु आगे चलिला शीघ्रगति।
बुझिते ना पारे केह दुइ प्रभुर मति॥156॥

इँहो केने दण्ड भाङ्गे, तेँहो केने भाङ्गाय।
भाङ्गाञा क्रोधे तेँहो इँहाके दोषाय॥157॥

अनुवाद—यह सुनकर महाप्रभु तेज़ीसे आगे चल पड़े। महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभु—इन दोनोंके गूढ़ भावोंको कोई नहीं जान सकता। श्रीनित्यानन्द प्रभुने दण्डको क्यों तोड़ा अथवा महाप्रभुने ही उन्हें दण्ड तोड़नेकी अनुमति क्यों दी? और अनुमति देकर फिर क्रोध करके श्रीनित्यानन्द प्रभुको दोष क्यों दे रहे हैं?॥156–157॥

दोनोंमें अभेद-दर्शनकारी भक्त ही
इस लीलाको समझनेमें समर्थ :—

दण्डभङ्ग-लीला एइ—परम गम्भीर।
सेइ बुझे, दुँहार पदे याँर भक्ति धीर॥ 158॥

अनुवाद—दण्डभङ्ग-लीला अत्यन्त गम्भीर है। जिसकी महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभु, दोनोंके चरणकमलोंमें अचला भक्ति है, वही इस लीलाको समझ सकता है॥ 158॥

अनुभाष्य—श्रीचैतन्य महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभुको वास्तविक रूपमें धीर होकर जिन्होंने समझा है, वे ही दोनों प्रभुओंके स्वरूप और इस दण्डभङ्ग-लीलाके तात्पर्यको समझ पायेंगे। पूर्व महाजनोंने श्रीकृष्ण-चरणसेवाके लिये दण्ड ग्रहणकर संसारके अभिनिवेशको त्याग किया है। साधकरूपसे महाजनोंके मार्गका अनुगमन करके वैध-संन्यासकी जो आवश्यकता है, उसको महाप्रभुने भी स्वीकार किया। यद्यपि विद्वत-संन्यासमें (परमहंस अवस्थामें) दण्डकी आवश्यकता नहीं रहती, तथापि लोकशिक्षाके लिये महाप्रभुने दिखलाया कि वर्णाश्रमके अन्तर्गत संन्यास अथवा विषय-त्याग करते हुए भक्तिके अनुकूल अनुष्ठानके लिये साधक जीवनमें यह आवश्यक है। दास श्रीनित्यानन्द प्रभु इस बातको जानते हैं कि संन्यासकी प्रारम्भिक अवस्थामें जो दण्ड वहनका कार्य है, वह वास्तवमें महाप्रभुका उच्च परमहंसका अधिकार होनेके कारण उनके लिये आवश्यक नहीं है। परन्तु दूसरे जड़बुद्धिवाले व्यक्ति महाप्रभुको 'कुटीचक' या 'बहुदक' संन्यासकी अवस्थामें स्थित समझकर कहीं भ्रमित होकर अपराध ना करें, इसलिये परम उच्चतम अवस्थाका आदर्श दिखलानेके लिये महाप्रभुसे दण्ड-त्याग करवाया॥ 158॥

वक्ता और श्रोता, दोनोंके ही भगवान् होनेके कारण
श्रीसाक्षी-गोपालका वृत्तान्त—अलौकिक :—

ब्रह्मण्यदेव-गोपालेर महिमा एइ धन्य।
नित्यानन्द—वक्ता यार, श्रोता—श्रीचैतन्य॥ 159॥

अनुवाद—ब्रह्मण्यदेव श्रीगोपालकी महिमा भी धन्य है, जिसके वक्ता श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रोता महाप्रभु हैं॥ 159॥

अनुभाष्य—श्रीसाक्षी-गोपालकी कथामें चार निर्देशोंपर विचार करना चाहिये—1) श्रीगोपालमूर्ति नित्यसत्य विग्रह है; 2) 'स्वयंसत्य विग्रह'—जड़जगत्की लौकिक विधिको लाँघकर सदैव सत्यकी मर्यादा स्थापित करते हैं; 3) ब्राह्मण-जीवनमें सत्यमें स्थित होना विशेष रूपसे आवश्यक है; 4) श्रीकृष्णभक्त स्वतः ही ब्राह्मण हैं और ऐसे ब्राह्मणके वशीभूत स्वयं श्रीकृष्ण हैं, इसलिये श्रीकृष्णाश्रित ब्राह्मण केवल मायाबद्ध जीव नहीं हैं॥ 159॥

पाँचवें अध्यायका अनुभाष्य समाप्त।

श्रद्धावान श्रोताको श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी प्राप्ति :—

श्रद्धायुक्त हञा इहा शुने येइ जन।
अचिरे मिलये तारे गोपाल-चरण॥ 160॥

अनुवाद—जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक इस साक्षी-गोपालकी लीलाको श्रवण करता है, उसे शीघ्र ही श्रीगोपालके चरणकमलोंकी प्राप्ति होती है॥ 160॥

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ 161॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते मध्यखण्डे साक्षिगोपाल-चरित्र-वर्णनं
नाम पञ्चम-परिच्छेदः।

अनुवाद—श्रीरूप-रघुनाथ गोस्वामीके चरणकमलोंकी कृपाभिलाषा करते हुए कृष्णदास इस चैतन्यचरितामृतका वर्णन कर रहा है॥ 161॥

श्रीचैतन्यचरितामृतके मध्यखण्डमें साक्षिगोपाल-चरित्र-वर्णन
नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त।

चित्र–6

छठा अध्याय

कथासार—श्रीमन्महाप्रभुमें श्रीजगन्नाथके दर्शनसे महाप्रेममें महाभावरूप सात्त्विक विकार उदित होनेपर श्रीसार्वभौम उन्हें उठवाकर अपने घर ले गये। श्रीसार्वभौमके बहनोई श्रीगोपीनाथाचार्यने पूर्व परिचित श्रीमुकुन्दसे मिलकर उनसे श्रीमन्महाप्रभुके संन्यास ग्रहण करने और नीलाचलमें आगमनकी बातको सुना। लोगोंके मुखसे महाप्रभुके महाभावकी बातको सुनकर सभी श्रीसार्वभौमके घरमें गये। श्रीनित्यानन्द प्रभु आदि सभी भक्त श्रीसार्वभौमके पुत्र चन्दनेश्वरके साथ श्रीजगन्नाथके दर्शन करके आये, और तृतीय प्रहरमें महाप्रभुकी चैतन्य (बाह्यदशा) हुई। श्रीसार्वभौमने आदरपूर्वक सभीको महाप्रसाद सेवन करवाया। श्रीसार्वभौमके साथ महाप्रभुका परिचय होनेपर श्रीसार्वभौमने उनको अपनी मौसीसासके घरपर रहने योग्य स्थान दे दिया। श्रीगोपीनाथाचार्यने जब महाप्रभुको 'ईश्वर' बतलाया, तब श्रीसार्वभौम और उनके शिष्योंके साथ उनका बहुत तर्क-वितर्क हुआ। परमेश्वरकी कृपाके बिना परमेश्वरके तत्त्वको नहीं जाना जा सकता और पाण्डित्यके द्वारा भी ईश्वरको जाना नहीं जा सकता,—ये सब बातें श्रीगोपीनाथने अच्छी तरहसे समझा दीं। उन्होंने भागवत और महाभारतके आधारपर प्रमाणित किया कि महाप्रभु साक्षात् भगवान् हैं, तो भी श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने उनकी बातोंका मजाक उड़ाया। महाप्रभुने उनकी सब बातें सुनी और उन्होंने कहा,—श्रीभट्टाचार्य हमारे गुरु हैं, स्नेहपूर्वक वे जो कुछ बोलते हैं, वह हमारे मङ्गलके लिये है। श्रीभट्टाचार्यके साथ जब महाप्रभुकी आमने-सामने बात होनेपर श्रीभट्टाचार्यने उन्हें वेदान्त श्रवण करनेकी आज्ञा दी। महाप्रभुने उसे स्वीकार करके सात दिन तक मौन रहकर वेदान्त श्रवण किया। श्रीभट्टाचार्यने कहा,—हे कृष्णचैतन्य, क्या तुम वेदान्त नहीं समझ रहे हो?' महाप्रभुने उत्तर दिया,—'आपने श्रवण करनेके लिये कहा था, मैं श्रवण कर रहा हूँ; श्रीव्यासदेवके द्वारा लिखे गये सूत्रोंको तो मैं बहुत अच्छी तरहसे समझता हूँ, केवल आप जिस मायावादी-भाष्यको पढ़ रहे हैं, उसको नहीं समझ पा रहा हूँ।' श्रीभट्टाचार्यके प्रश्नोंके उत्तरमें महाप्रभुने उपनिषद् और वेदान्तकी व्याख्या करते हुए 'सविशेषवाद'को स्थापित किया। उन्होंने कहा,—'मायावादियोंके मतानुसार, ब्रह्म—निराकार और शक्तिहीन है। मायावादियोंके यह दो महाभ्रम हैं। वेदमें सर्वत्र ब्रह्मकी शक्तिको स्वीकार किया गया है और उनके सच्चिदानन्द, अप्राकृत विग्रहको स्वीकार किया गया है। वेदके मतानुसार ईश्वर और जीव—युगपत् (एक ही साथ) स्वरूपतः और स्वभावतः नित्य भिन्न और नित्य अभिन्न हैं। फलस्वरूप अचिन्त्यभेदाभेद-सिद्धान्त ही वेद और वेदान्तका मत है। मायावादी वास्तवमें नास्तिक हैं।' श्रीभट्टाचार्य बहुत विचार करके हार गये। (उसके बाद महाप्रभुने) श्रीभट्टाचार्यकी प्रार्थनापर 'आत्माराम' श्लोकके अठारह प्रकारके अर्थ किये। श्रीभट्टाचार्यमें जब ज्ञानका उदय हुआ, तब महाप्रभुने उन्हें अपना रूप दिखाया। श्रीभट्टाचार्यने एक सौ श्लोक उच्चारण करके उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। महाप्रभुकी अलौकिक कृपाको देखकर श्रीगोपीनाथ आदि सभी बहुत प्रसन्न हुए। बादमें एकदिन महाप्रभुने अरुणोदयके समय (श्रीजगन्नाथजीके) शय्योत्थान लीला (मङ्गल आरती)के दर्शन करनेके बाद 'पाकाल' प्रसादको लाकर श्रीभट्टाचार्यको दिया। श्रीभट्टाचार्यने तब पूर्व संस्कारोंका त्याग करके अत्यधिक आनन्दसे 'महाप्रसाद'को प्राप्त किया। और किसी दिन श्रीभट्टाचार्यके द्वारा भक्तिके श्रेष्ठ साधन-अङ्गको जाननेकी इच्छा करनेपर महाप्रभुने उन्हें 'नाम-सङ्कीर्तन'

करनेका उपदेश दिया। और एक दिन श्रीसार्वभौमने 'तत्तेऽनुकम्पां' श्लोकके अन्तिम अंशमें 'मुक्ति-पद'के स्थानपर 'भक्ति-पद' शब्द लगाकर महाप्रभुको सुनाया। महाप्रभुने कहा,—'श्रीमद्भागवतके श्लोकमें परिवर्तन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। 'मुक्तिपद'-शब्दसे श्रीकृष्णको समझना चाहिये।' श्रीभट्टाचार्यने उस समय शुद्धभक्तिका पात्र बनकर कहा,—'यद्यपि 'मुक्तिपद'-शब्दका अर्थ 'श्रीकृष्ण' होता है, तथापि आश्लिष्य-दोषके कारण 'मुक्तिपद'-शब्द प्रयोग करनेकी रुचि नहीं होती; 'भक्तिपद' कहनेसे भक्तोंको बहुत सुख होता है।' श्रीभट्टाचार्यके मायावादके चङ्गुलसे छूटनेकी बातको सुनकर नीलाचलवासी पण्डित महाप्रभुके शरणागत हुए।

—(अमृतप्रवाहभाष्य)

सार्वभौम-विजयी श्रीगौरको प्रणाम :—

नौमि तं गौरचन्द्रं यः कुतर्क-कर्कशाशयम्।
सार्वभौमं सर्वभूमा भक्तिभूमानमाचरत्॥ 1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिन सर्वभूमा पुरुषने कुतर्क-कर्कश हृदयवाले श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यको भक्तिपूर्ण कर दिया था, उन श्रीगौरचन्द्रको मैं प्रणाम करता हूँ॥ 1॥

अनुभाष्य—

यः सर्वभूमा (सर्वेभ्यः देवीधामान्तर्गत-सर्वोपाधिधारिभ्यः देव-नरेभ्यः ब्रह्मलोक-वैकुण्ठगोलोकाद्यवस्थितेभ्यः कृष्णेतर-सर्ववस्तुभ्यः भूमा महत्त्वं यस्य सः परमपरमात्मा गौरचन्द्रः) कुतर्क-कर्कशाशयं (कुतर्केन स्वरूपस्ववृत्त्यादिभ्रान्त्या कृष्ण-सेवनेतर-चेष्टया कुज्ञानाश्रितेन कर्कशः जड़ाभिमानपूर्णः आशयः चितं यस्य तं) सार्वभौमं (वासुदेवाख्यं पण्डितराजं) भक्तिभूमानं (शुद्धभक्तिपूर्णं पात्रम्) आचरत् (कारयामास, स्वपदसेवकं चकार इत्यर्थः) तं (गौरचन्द्रं) नौमि।

श्लोक-भावानुवाद—देवीधामके अन्तर्गत सभी देवता-नरादि उपाधिधारी, ब्रह्मलोक, वैकुण्ठ, गोलोकादिमें अवस्थित कृष्णेतर-सभी वस्तुओंसे भी श्रेष्ठ जिन परमपरमात्माने स्वरूप-स्ववृत्तिसे भ्रान्त अर्थात् श्रीकृष्णसेवासे इतर चेष्टाओंके द्वारा कुज्ञानका आश्रय करके जड़ाभिमानपूर्ण चित्तवाले वासुदेव सार्वभौम पण्डितराजको शुद्धभक्तिका पात्र बनाया, उन श्रीगौरचन्द्रको मैं प्रणाम करता हूँ॥ 1॥

जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥ 2॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभुकी जय हो, जय हो, श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो, श्रीअद्वैतचन्द्रकी जय हो और श्रीगौरभक्तवृन्दकी जय हो॥ 2॥

प्रेमके आवेशमें श्रीजगन्नाथको आलिङ्गन करनेके लिये जाते हुए महाप्रभुकी मूर्च्छा :—

आवेशे चलिला प्रभु जगन्नाथ-मन्दिरे।
जगन्नाथ देखि' प्रेमे हइला अस्थिरे॥ 3॥

जगन्नाथ आलिङ्गिते चलिला धाञा।
मन्दिरे पड़िला प्रेमे आविष्ट हञा॥ 4॥

अनुवाद—[नित्यानन्द प्रभु आदिको पीछे छोड़कर आठारनालासे अकेले] महाप्रभु प्रेमके आवेशमें श्रीजगन्नाथ मन्दिरकी ओर चल पड़े और श्रीजगन्नाथदेवका दर्शन करके वे प्रेममें आविष्ट हो गये। महाप्रभु श्रीजगन्नाथदेवका आलिङ्गन करनेके लिये दौड़े, परन्तु प्रेममें आविष्ट होकर वे मन्दिरमें मूर्च्छित होकर गिर पड़े॥ 3-4॥

दैववशतः श्रीसार्वभौमके द्वारा महाप्रभुका दर्शन और महाप्रभुको चोट लगनेसे रक्षा करना :—

दैवे सार्वभौम ताँहाके करे दरशन।
पड़िछा मारिते तेँहो कैल निवारण॥ 5॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने महाप्रभुको गिरते हुए देखा। पड़िछा जब महाप्रभुको मारने जा रहे थे, तब श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने उन्हें ऐसा करनेसे रोक दिया॥ 5॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'पड़िछा'*—श्रीमन्दिरका दारोगा जैसा

विशेष कर्मचारी। वे पड़िछा श्रीसार्वभौमके शिक्षा-शिष्य थे॥ 5॥

श्रीसार्वभौमका विस्मय :—

प्रभुर सौन्दर्य आर प्रेमेर विकार।
देखि' सार्वभौम हैला विस्मित अपार॥ 6॥

अनुवाद—महाप्रभुके सौन्दर्य और उनके प्रेमके विकारोंको देखकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य आश्चर्यचकित हो गये॥ 6॥

महाप्रभुकी चेतनता आनेमें विलम्ब देखकर महाप्रभुको अपने घरमें लाना :—

बहुक्षणे चैतन्य नहे, भोगेर काल हैल।
सार्वभौम मने तबे उपाय चिन्तिल॥ 7॥

शिष्य पड़िछा-द्वारा निल बहाञा।
घरे आनि' पवित्र-स्थाने राखिल शोयाञा॥ 8॥

अनुवाद—बहुत देरतक भी जब महाप्रभुकी चेतनता नहीं आयी और उधर श्रीजगन्नाथदेवको भोग लगानेका समय भी हो गया, तब श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने मनमें एक उपाय सोचा। वे अपने पड़िछा शिष्योंके द्वारा महाप्रभुको उठवाकर अपने घरमें ले गये और वहाँ उन्हें एक पवित्र स्थानपर लिटा दिया॥ 7-8॥

अनुभाष्य— *'घरे'*—श्रीवासुदेव सार्वभौम उस समय श्रीमन्दिरके दक्षिणकी ओर स्थित बालूखण्डपर मार्कण्डेय-सरोवरके तटपर वास करते थे। आजकल उनका वह घर 'गङ्गामातामठ'के नामसे प्रसिद्ध है॥ 8॥

महाप्रभुको मृतकी भाँति अचेतन देखकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यको आशङ्का :—

श्वास-प्रश्वास नाहि उदर-स्पन्दन।
देखिया चिन्तित हैल भट्टाचार्येर मन॥ 9॥

अनुवाद—महाप्रभुकी श्वास भी नहीं चल रही थी और उनके उदरमें भी किसी प्रकारके स्पन्दनको न देखकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य चिन्तित हो गये॥ 9॥

महाप्रभुकी चेतनताकी परीक्षा और भट्टाचार्यको कुछ धैर्यकी प्राप्ति :—

सूक्ष्म तुला आनि' नासा-अग्रेते धरिल।
ईषत् चलये तुला देखि' धैर्य हैल॥ 10॥

अनुवाद—तब श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने रुईकी पतली बत्ती महाप्रभुके नाकके आगे रखी और उस रुईको थोड़ा-सा हिलता हुआ देखकर उनको कुछ धैर्य हुआ कि श्वास कुछ चल रही है॥ 10॥

भट्टाचार्यको महाप्रभुके देहमें महाप्रेमके विकारका ज्ञान :—

बसि' भट्टाचार्य मने करेन विचार।
'एइ कृष्ण-महाप्रेमेर सात्त्विक विकार॥ 11॥

अनुवाद—महाप्रभुके पास बैठकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने मनमें विचार किया,—'ये तो कृष्ण-महाप्रेमके सात्त्विक विकार हैं॥ 11॥

अनुभाष्य—मध्यलीला, 3/162 संख्या देखें॥ 11॥

'सुद्दीप्त भाव' :—

'सुद्दीप्त सात्त्विक' एइ नाम ये 'प्रणय'।
नित्यसिद्ध-भक्ते से 'सुद्दीप्त भाव' हय॥ 12॥

अनुवाद—इसमें जो सुद्दीप्त सात्त्विकभाव दिख रहे हैं, इसका नाम 'प्रणय' है। केवल भगवान्‌के नित्यसिद्ध भक्तोंमें ये 'सुद्दीप्त भाव' देखे जाते हैं॥ 12॥

अनुभाष्य— *'सुद्दीप्त'*—(भ:र:सि: द:वि: तीसरी लहरी)—अष्टसात्त्विक विकारोंको गोपन करनेकी चेष्टा दो प्रकार की है—'धूमायिता' और 'ज्वलिता'। 'धूमायिता'—

"अद्वितीया अमी भावा अथवा सद्वितीयकाः।
ईषद्व्यक्ता अपह्नोतुं शक्या धूमायिता मताः॥

अर्थात् "एक या दो भाव सहज-भावुकके शरीरमें थोड़ेसे प्रकाशित होनेपर जिन भावोंको छिपाया जा सकता है, उन भावोंको 'धूमायिता' कहते हैं। 'ज्वलिता'—

"द्वौ वा त्रयो वा युगपद् यान्तः सुप्रकटां दशाम्।
शक्याः कृच्छ्र

अर्थात् "एक ही समय दो या तीन सात्त्विकभाव अच्छी प्रकार प्रकाशित हो जाँय और बहुत कष्टसे उनको छिपाना सम्भव हो, तब उन भावोंको 'ज्वलिता' कहते हैं।" *'दीप्ता'*—

"प्रौढ़ास्त्रिचतुरा व्यक्तिं पञ्च वा युगपद्गताः।
सम्वरितुमशक्यास्ते दीप्ता धीरैरुदाहृताः॥"

अर्थात् तीन-चार या पाँच प्रौढ़भावोंके एक ही समयमें उदित होनेपर उनको सम्वरणकी चेष्टा विफल होनेपर भावको समझनेवाले धीर व्यक्ति उसे 'दीप्ता' कहते हैं।" *'उद्दीप्ता'*—

"एकदा व्यक्तिमापन्नाः पञ्चधाः सर्व एव वा।
आरुढाः परमोत्कर्षमुद्दीप्ता इति कीर्त्तिताः"॥

अर्थात् "एक ही समयमें पाँच-छह अथवा सभी भाव प्रकाशित होकर प्रेमकी परमोत्कर्षताको प्राप्त करते हैं, तब उसे 'उद्दीप्ता' कहते हैं।"

'उद्दीप्तानां भिदा एव सूदीप्ताः सन्ति कुत्रिचित्।
सात्त्विकाः परमोत्कर्षकोटीमात्रैव विभ्रति॥' (उः नीः 12/37)

अर्थात् "उद्दीप्त भावसमूहका अन्य प्रकार ही किसी-किसी स्थानपर 'सुद्दीप्त'के नामसे कहा जाता है। सात्त्विक भावसमूह करोड़ों गुणा होकर परमोत्कर्षता प्राप्त करनेपर जब प्रेमकी पराकाष्ठा सुन्दररूपसे प्रकाशित होती है, तब वे 'सुद्दीप्त' कहलाते हैं।"

'नित्यसिद्ध भक्त'—पार्षदभक्त, दिव्यसूरि; मध्यलीला 24/289 संख्या—

"विधिभक्त्ये नित्यसिद्ध 'पारिषद—दास'।
'सखा', 'गुरु', 'कान्तागण'—चारिविध प्रकाश॥"

अर्थात् "वैधीभक्तिके जो नित्य सिद्धभक्त हैं, वे दास, सखा, गुरु अथवा मातापिता और कान्तागण—ये चार प्रकारके हैं॥"12॥

महाप्रभुकी देहमें लोकातीत महाभाव :—

'अधिरूढ़-महाभाव' याँर, ताँर ए विकार।
मनुष्येर देहे देखि,—बड़ चमत्कार॥'13॥

अनुवाद—जिसमें 'अधिरूढ़-महाभाव' हो, केवल उसीमें ऐसा विकार हो सकता है। एक मनुष्यके शरीरमें यह भाव दिखायी दे रहा है, यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है॥13॥

अनुभाष्य— *'अधिरूढ़-महाभाव'*—(उज्ज्वलनीलमणि 14/146)— *'अनुराग'*—

"सदानुभूतमपि यः कुर्यान्नवनवं प्रियम्।
रागो भवन्नवनवः सोऽनुराग इतीर्यते॥"

अर्थात् "प्रीतिके पात्र नायकके रूप-गुण-माधुर्यका पहले नित्य आस्वादन करनेपर भी अनास्वादित लगनेके कारण अर्थात् जैसे उसका आस्वादन हुआ ही नहीं, नायिकाके ऐसे अनुभवसे नायिकाका जो राग नायकको नूतन-नूतन बोध कराता है, वह राग नूतन-नूतन होकर 'अनुराग' कहलाता है।"

'भाव'—(उःनीः 14/154)—

"अनुरागः स्वसंवेद्यदशां प्राप्य प्रकाशितः।
यावदाश्रयवृत्तिश्चेद्भाव इत्याभिधीयते॥"

अर्थात् "निजानुरागके द्वारा अनुरागकी सम्वेदन-योग्य दशा प्राप्त करके प्रकाशयुक्त होनेपर यदि अनुराग पराकाष्ठाको प्राप्त होता है, तब उसे भाव कहते हैं।" प्रकाशित न होनेपर यावदाश्रयवृत्तिके अभावके कारण अपने द्वारा सम्वेदन-योग्य दशामें केवल मात्र 'अनुराग' रहता है, उसे 'भाव' नहीं कहा जा सकता।

'महाभाव'—(उःनीः चौदहवाँ अध्याय)—

"मुकुन्दमहिषीवृन्दैरप्यसावितदुर्लभः ।
व्रजदेव्येकसंवेद्यो महाभावाख्योच्यते॥"156॥

रूढ़ और अधिरूढ़के भेदसे महाभाव—

"वरामृतस्वरूपश्रीः स्वं स्वरूपं मनो नयेत्॥"157॥
"स रूढ़श्चाधिरूढ़श्चेत्युच्यते द्विविधो बुधैः॥"158॥

रूढ़-महाभाव—

"उद्दीप्ता सात्त्विका यत्र स रूढ़ इति भण्यते॥"159॥

अधिरूढ़-महाभाव—

*"रूढ़ोक्तेभ्योऽनुभावेभ्यः कामप्याप्ता विशिष्टताम्।
यत्रानुभावा दृशयन्ते सोऽधिरूढ़ो निगद्यते॥"170॥*

अर्थात् "यह भाव श्रीकृष्णकी महिषियोंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है; केवल व्रजगोपियोंमें ही यह महाभाव एकमात्र अनुभव योग्य है; अर्थात् गोपियोंके अतिरिक्त अन्य ललनाओंमें महाभाव लक्षित नहीं होता। लौकिक आस्वादनीय वस्तुओंमें अमृतकी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ कोई वस्तु नहीं है। अमृतके समान 'महाभाव'—प्रेमकी विशेष अवस्था है, उसमें पृथक् रूपमें मनकी स्थिति नहीं होती अर्थात् मन महाभावात्मक होता है। इन्द्रियोंकी मनोवृत्तिरूपा गोपियोंका मन आदि सभी इन्द्रियाँ महाभाव रूप होनेके कारण उनके सभी कार्योंके द्वारा श्रीकृष्णका उनके अति वशीभूत होना युक्तिसिद्ध है। पट्टमहिषियोंमें सम्भोगकी इच्छाके कारण पृथक् अवस्थित होनेके कारण मन सम्पूर्णरूपसे प्रेमात्मिका नहीं है, इसलिये उनमें महाभावकी सम्भावना नहीं है। महाभाव—'रूढ़' और 'अधिरूढ़'के भेदसे दो प्रकारका है। जिस महाभावमें सात्त्विक भावसमूह उद्दीप्त होते हैं, वही 'रूढ़' भाव है। रूढ़भावमें कहे गये अनुभावसमूहसे भी सात्त्विक भावसमूह जब किसी विशेष दशाको प्राप्त करके जो अनुभाव लक्षित होते हैं, वही 'अधिरूढ़'-महाभाव है। वह 'सुद्दीप्त' भाव नहीं है। यह अधिरूढ़ भाव दो प्रकारका होता है—'मोदन' और 'मादन'। जिस अधिरूढ़ महाभावमें राधाकृष्णके सात्त्विक भावसमूह अतिशय उद्दीप्त रूपमें प्रकाशित होते हैं, उसे 'मोदन' कहते हैं। ह्लादिनीका सार प्रेम यदि सभी भावोंके उद्गमसे उल्लासशील होता है, तब उसे 'मादन' कहते हैं। यह परात्पर अर्थात् मोहनादि भावोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट है; यह केवल श्रीराधिकामें ही सब समय सम्भव है॥13॥

भट्टाचार्यकी चिन्ता :—

**एत चिन्ति' भट्टाचार्य आछेन बसिया।
नित्यानन्दादि सिंहद्वारे उत्तरिल गिया॥14॥**

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य घरमें बैठकर जब ऐसा चिन्तन कर रहे थे, तभी श्रीनित्यानन्द प्रभु आदि भक्त श्रीजगन्नाथ मन्दिरके सिंहद्वारपर आ पहुँचे॥14॥

श्रीनित्यानन्दादिका आठारनालासे पुरीमें आनेपर लोगोंके मुखसे महाप्रभुका श्रीभट्टाचार्यके घरमें होनेके विषयमें सुनना :—

**ताँहा शुनि' लोके कहे अन्योन्ये बात्।
'एक संन्यासी आसि' देखि' जगन्नाथ॥15॥
मूर्च्छित हैल, चेतन ना हय शरीरे।
सार्वभौम लञा गेला आपनार घरे॥'16॥**

अनुवाद—वहाँ पहुँचकर श्रीनित्यानन्द प्रभु आदि भक्तोंने लोगोंको कहते हुए सुना,—'एक संन्यासी श्रीजगन्नाथदेवके दर्शनके लिये आये थे। श्रीजगन्नाथदेवके दर्शन करके वे मूर्च्छित हो गये थे, उनके शरीरमें चेतना नहीं रही थी। तब श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य उन्हें अपने घरमें ले गये॥'15-16॥

श्रीसार्वभौमके बहनोई श्रीगोपीनाथका वहाँपर आना :—

**शुनि' सबे जानिलेन महाप्रभुर कार्य।
हेनकाले आइला ताँहा गोपीनाथाचार्य॥17॥
नदीया-निवासी, विशारदेर जामाता।
महाप्रभुर भक्त तेँहो, प्रभुर तत्त्वज्ञाता॥18॥**

अनुवाद—यह बात सुनकर सभी भक्त जान गये कि वे संन्यासी महाप्रभु ही हैं। उसी समय श्रीगोपीनाथाचार्य भी वहाँ आ गये। श्रीगोपीनाथाचार्य नदीयाके निवासी, महेश्वर विशारदके दामाद और महाप्रभुके भक्त और उनके तत्त्वको जाननेवाले थे॥17-18॥

अनुभाष्य—*'विशारद'*—नीलाम्बर चक्रवर्तीके सहपाठी महेश्वर विशारद समुद्रगढ़के निकट स्थित 'विद्यानगर'में वास करते थे। मधुसूदन वाचस्पति और वासुदेव सार्वभौम उनके दो पुत्र थे और श्रीगोपीनाथाचार्य उनके दामाद थे॥17॥

पूर्व परिचयके अनुसार मुकुन्दादिके साथ बातचीत करनेपर महाप्रभुके संवादका श्रवण :—

मुकुन्द-सहित पूर्वे आछे परिचय।
मुकुन्द देखिया ताँर हइल विस्मय॥ 19॥

मुकुन्द ताँहारे देखि' कैल नमस्कार।
तेँहो आलिङ्गिया पूछे प्रभुर समाचार॥ 20॥

मुकुन्द कहे,—"प्रभुर इँहा हैल आगमने।
आमि-सब आसियाछि महाप्रभुर सने॥"21॥

नित्यानन्द-गोसाञिके आचार्य कैल नमस्कार।
सबे मेलि' पुछे प्रभुर वार्त्ता बार बार॥ 22॥

मुकुन्द कहे,—"महाप्रभु संन्यास करिया।
नीलाचले आइला सङ्गे आमा-सबा लञा॥ 23॥

आमा-सबा छाड़ि' आगे गेला दरशने।
आमि-सब पाछे आइलाङ ताँर अन्वेषणे॥ 24॥

अन्योन्ये लोकेर मुखे ये कथा शुनिल।
सार्वभौम-गृहे प्रभु,—अनुमान कैल॥ 25॥

ईश्वर-दर्शने प्रभु प्रेमे अचेतन।
सार्वभौम लञा गेला आपन-भवन॥ 26॥

तोमार मिलने यबे आमार हैल मन।
दैवे सेइ क्षणे पाइलुँ तोमार दरशन॥ 27॥

श्रीजगन्नाथकी अपेक्षा महाप्रभुके प्रति अधिक प्रेम :—

चल, सबे याइ सार्वभौमेर भवन।
प्रभु देखि' पाछे करिब ईश्वर-दर्शन॥"28॥

अनुवाद—श्रीगोपीनाथाचार्यका श्रीमुकुन्द दत्तके साथ पहलेसे ही परिचय था, इसलिये श्रीमुकुन्द दत्तको वहाँ देखकर वे आश्चर्यचकित हुए। श्रीमुकुन्द दत्तने उनको देखकर प्रणाम किया। श्रीगोपीनाथाचार्यने श्रीमुकुन्द दत्तका आलिङ्गन करके उनसे महाप्रभुका समाचार पूछा। श्रीमुकुन्द दत्तने कहा,—"महाप्रभु यहाँ नीलाचलमें आये हैं और हम सब उनके साथ ही आये हैं।" श्रीगोपीनाथाचार्यने श्रीनित्यानन्द प्रभुको प्रणाम किया और फिर सबसे मिलकर वे बार-बार महाप्रभुके बारेमें पूछने लगे कि वे कहाँ हैं? श्रीमुकुन्दने कहा,—"महाप्रभुने संन्यास ग्रहण किया है। वे हम सबको अपने साथ लेकर नीलाचल आये हैं। हम सबको छोड़कर वे आगे श्रीजगन्नाथका दर्शन करने आये थे और हम सब उन्हें ढूँढ़ते हुए आ रहे हैं। दूसरे लोगोंके मुखसे हमने जो बात सुनी है, उससे तो यह अनुमान लग रहा है कि वे श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके घरमें हैं। हमने उनसे सुना कि भगवान् श्रीजगन्नाथके दर्शन करके वे प्रेममें आविष्ट होकर अचेतन हो गये थे और श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य उन्हें अपने घर ले गये हैं। इस परिस्थितिमें सहायताके लिये मैं आपका स्मरण कर ही रहा था कि भाग्यसे मुझे आपका दर्शन प्राप्त हो गया है। चलो, हम सब श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके घर जाकर पहले महाप्रभुका दर्शन करें। बादमें श्रीजगन्नाथदेवका दर्शन करेंगे॥"19–28॥

सभी भक्तोंका श्रीसार्वभौमके घरकी ओर गमन :—

एत शुनि' गोपीनाथ सबारे लञा।
सार्वभौम-घरे गेला हरषित हञा॥ 29॥

अनुवाद—यह सुनकर श्रीगोपीनाथाचार्य हर्षित होकर सब भक्तोंको अपने साथ लेकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके घर गये॥ 29॥

वहाँ महाप्रभुका दर्शन, गोपीनाथको महाप्रभुके दर्शनसे एकसाथ हर्ष और विषाद :—

सार्वभौम-स्थाने गिया प्रभुके देखिल।
प्रभु देखि' आचार्येर दुःख-हर्ष हैल॥ 30॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके घर जाकर सभीने देखा कि महाप्रभु मूर्च्छित पड़े हैं। महाप्रभुकी ऐसी दशा देखकर श्रीगोपीनाथाचार्यको दुःख हुआ और साथ ही उनके दर्शनसे उन्हें हर्ष भी हुआ॥ 30॥

सभी भक्तोंको घरके अन्दर भेजना और सबके साथ यथायोग्य बातचीत :—

सार्वभौमे जानाञा सबे निल अभ्यन्तरे।
नित्यानन्द-गोसाञिरे तेँहो कैल नमस्कारे॥ 31॥

सबा सहित यथायोग्य करिल मिलन।
प्रभु देखि' सबार हैल हरषित मन॥ 32॥

अनुवाद—श्रीगोपीनाथाचार्यसे भक्तोंके विषयमें जानकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य सभीको अपने घरके भीतर ले गये और श्रीनित्यानन्द प्रभुको देखकर उन्हें प्रणाम किया। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने सभी भक्तोंके साथ यथायोग्य व्यवहार करते हुए भेंट की। महाप्रभुको देखकर सबका मन आनन्दित हो गया॥ 31–32॥

पुत्र चन्दनेश्वरके साथ सभीको श्रीजगन्नाथके दर्शनके लिये भेजना :—

सार्वभौम पाठाइल सबा दर्शन करिते।
'चन्दनेश्वर' निजपुत्र दिल सबार साथे॥ 33॥

अनुवाद—तब श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने अपने पुत्र 'चन्दनेश्वर'के साथ उन सब भक्तोंको श्रीजगन्नाथदेवके दर्शनके लिये भेज दिया॥ 33॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'दर्शन करिते'*—श्रीजगन्नाथदेवके दर्शन करनेके लिये॥ 33॥

श्रीजगन्नाथके दर्शनसे निताइमें प्रेमका आवेश :—

जगन्नाथ देखि' सबार हइल आनन्द।
भावेते आविष्ट हैला प्रभु नित्यानन्द॥ 34॥

सबे' मेलि' धरि' ताँरे सुस्थिर करिल।
ईश्वर-सेवक माला-प्रसाद आनि' दिल॥ 35॥

प्रसाद पाञा सबे हैला आनन्दित मने।
पुनरपि आइला सबे महाप्रभुर स्थाने॥ 36॥

अनुवाद—श्रीजगन्नाथदेवका दर्शन करके सभीको बहुत आनन्द हुआ। श्रीनित्यानन्द प्रभु तो भावमें आविष्ट हो गये। सभी भक्तोंने मिलकर श्रीनित्यानन्द प्रभुको पकड़ा तथा उन्हें स्थिर किया। तभी श्रीजगन्नाथदेवके सेवकने उन्हें प्रसाद और माला लाकर दिये। श्रीजगन्नाथदेवका प्रसाद पाकर सभीका मन बहुत प्रसन्न हुआ। इसके बाद वे सब फिरसे महाप्रभुके पास श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके घरपर आ गये॥ 34–36॥

महाप्रभुके निकट सभी भक्तोंके द्वारा उच्च-स्वरसे कीर्तन और महाप्रभुको बाह्य-दशाकी प्राप्ति :—

उच्च करि' करे सबे नाम-सङ्कीर्त्तन।
तृतीय प्रहरे हैल प्रभुर चेतन॥ 37॥

श्रीसार्वभौमका शिष्टाचार :—

हुङ्कार करिया उठे 'हरि' 'हरि' बलि'।
आनन्दे सार्वभौम ताँर लैल पदधूलि॥ 38॥

अनुवाद—महाप्रभुकी चेतना लौटानेके लिये सभी भक्त उच्चस्वरसे नाम-सङ्कीर्तन करने लगे, तब तीसरे प्रहर महाप्रभुको चेतनता आयी। महाप्रभु हुँकार करते हुए उठे और जोरसे 'हरि' 'हरि' बोला। उनकी चेतनता लौटनेपर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने महाप्रभुके श्रीचरणोंकी धूलिको ग्रहण किया॥ 37–38॥

श्रीसार्वभौमका निमन्त्रण :—

सार्वभौम कहे,—"शीघ्र करह मध्याह्न।
मुञि भिक्षा दिब आजि महाप्रसादान्न॥"39॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने सभीसे कहा,—"आप शीघ्र ही अपना मध्याह्नका स्नान कर लीजिये। मैं आप सबको आज श्रीजगन्नाथदेवका महाप्रसाद लाकर भोजन कराऊँगा॥"39॥

अनुभाष्य—*'करह मध्याह्न'*—दिनके समय किये जानेवाले स्नानके बाद आहारको ग्रहण करो॥ 39॥

स्नानके बाद भक्तों सहित महाप्रभुका प्रसाद-सम्मान :—

समुद्रस्नान करि' प्रभु शीघ्र आइला।
चरण पाखालि' प्रभु आसने बसिला॥ 40॥

बहुत प्रसाद सार्वभौम आनाइल।
तबे महाप्रभु सुखे भोजन करिल॥ 41 ॥

सुवर्ण-थालाते अन्न उत्तम व्यञ्जन।
भक्तगण-सङ्गे प्रभु करेन भोजन॥ 42 ॥

अनुवाद—समुद्रमें स्नान करके महाप्रभु और उनके भक्त शीघ्र ही लौट आये। महाप्रभु चरणोंको धोनेके बाद प्रसाद पानेके लिये आसनपर बैठ गये। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने अनेक प्रकारका श्रीजगन्नाथदेवका महाप्रसाद मँगवाकर रखा था। महाप्रभुने तब बड़े आनन्दके साथ भोजन किया। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने स्वर्णकी थालीमें महाप्रभुको विशेष चावल और उत्तम व्यञ्जन परोसे। अपने भक्तोंके साथ महाप्रभुने महाप्रसाद ग्रहण किया॥ 40-42 ॥

श्रीसार्वभौमके द्वारा महाप्रसाद परोसना :—

सार्वभौम परिवेशन करेन आपने।
प्रभु कहे,—"मोरे देह लाफरा-व्यञ्जने॥ 43 ॥

पीठा-पाना देह तुमि इँहा-सबाकारे।"
तबे भट्टाचार्य कहे युड़ि' दुइ करे॥ 44 ॥

"जगन्नाथ कैछे करियाछेन भोजन।
आजि सब महाप्रसाद कर आस्वादन॥" 45 ॥

एत बलि' पीठा-पाना सब खाओयाइला।
भिक्षा कराञा आचमन कराइला॥ 46 ॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य स्वयं ही महाप्रसाद परोस रहे थे। महाप्रभुने उनसे कहा,—"आप मुझे केवल लाफरा व्यञ्जन दीजिये और सभी भक्तोंको पीठा-पाना दीजिये। तब श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने हाथ जोड़कर कहा,—"आज श्रीजगन्नाथदेवने जो-जो भोजन किया है, उस सबका आप स्वयं महाप्रसादके रूपमें आस्वादन करें।" इतना कहकर उन्होंने महाप्रभु और सभी भक्तोंको पीठा-पाना आदि सब कुछ खिलाया और भोजन करानेके बाद आचमन कराया॥ 43-46 ॥

अनुभाष्य—*'लाफरा-व्यञ्जन'*—बहुत सी सब्जियोंको काटकर एक साथ मिलाकर जीरा, मिर्च और सरसों आदिका तड़का लगाकर बनाया गया व्यञ्जन॥ 43 ॥

श्रीगोपीनाथ और श्रीसार्वभौमका महाप्रभुके पास आना :—

आज्ञा मागि' गोपीनाथ आचार्यके लञा।
प्रभुर निकट आइला भोजन करिया॥ 47 ॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 47 ॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महाप्रभुके भोजनके बाद श्रीसार्वभौमने उनकी आज्ञा लेकर श्रीगोपीनाथाचार्यके साथ बैठकर भोजन किया और पुनः महाप्रभुके पास आये॥ 47 ॥

श्रीसार्वभौमका प्रणाम और महाप्रभुका आर्शीवाद :—

'नमो नारायणाय' बलि' नमस्कार कैल।
'कृष्णे मति रहु' बलि' गोसाञि कहिल॥ 48 ॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने 'नमो नारायणाय' कहकर महाप्रभुको प्रणाम किया। उसके उत्तरमें महाप्रभुने कहा,—'श्रीकृष्णमें तुम्हारी मति रहे॥' 48 ॥

अनुभाष्य—चतुर्थ-आश्रमी संन्यासियोंको 'ॐ नमो नारायणाय' कहकर सम्बोधन करनेकी प्रथा है। संन्यासियोंके लिये 'निराशीर्निर्नमष्क्रियः' (नमस्कार भी नहीं करेगा तथा आशीर्वाद भी नहीं देगा, ऐसी) विधि स्मृतिशास्त्रोंमें कही गयी है; किन्तु वैष्णव-संन्यासिगण अपने आपको श्रीकृष्णदास और श्रीकृष्णकी सेवाको ही सर्वोत्तम जानकर जगत्में सभीको 'श्रीकृष्णचरणकमलोंमें तुम्हारी मति हो' ऐसा करुणापूर्ण आशीर्वाद देते हैं॥ 48 ॥

श्रीसार्वभौमका महाप्रभुको वैष्णव-सम्प्रदायका मानना :—

'शुनि' सार्वभौम मने विचार करिल।
वैष्णव-संन्यासी इँहो, वचने जानिल॥ 49 ॥

अनुवाद—महाप्रभुके उत्तरको सुनकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने मनमें विचार किया कि इनके वचनोंसे लगता है ये वैष्णव-संन्यासी हैं॥ 49 ॥

श्रीगोपीनाथसे महाप्रभुके पूर्व आश्रमके सम्बन्धमें पूछना :—

गोपीनाथ आचार्येरे कहे सार्वभौम।
"गोसाञिर जानिते चाहि काँहा पूर्वाश्रम॥"50॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने श्रीगोपीनाथाचार्यसे पूछा,—"मैं इन संन्यासीके पूर्वाश्रमके बारेमें जानना चाहता हूँ॥"50॥

अनुभाष्य—*'पूर्वाश्रम'*—संन्यासाश्रम ग्रहण करनेसे पहले गृहमें रहते समय किस नामसे परिचित थे और किस स्थानपर वास करते थे॥50॥

गोपीनाथके द्वारा परिचय-प्रदान :—

गोपीनाथाचार्य कहे,—"नवद्वीपे घर।
'जगन्नाथ'—नाम, पदवी—'मिश्र पुरन्दर'॥51॥

'विश्वम्भर'—नाम इँहार, ताँर इँहो पुत्र।
नीलाम्बर चक्रवर्त्तीर हयेन दौहित्र॥"52॥

सार्वभौम कहे,—"नीलाम्बर चक्रवर्त्ती।
विशारदेर समाध्यायी,—एइ ताँर ख्याति॥53॥

'मिश्र पुरन्दर' ताँर मान्य, हेन जानि।
पितार सम्बन्धे दोँहाके पूज्य करि' मानि॥"54॥

अनुवाद—श्रीगोपीनाथाचार्यने कहा,—"नवद्वीपमें श्रीजगन्नाथ नामके एक व्यक्ति रहते हैं, जिनकी पदवी—'मिश्र पुरन्दर' है। इनका नाम 'विश्वम्भर' है और ये उनके पुत्र तथा श्रीनीलाम्बर चक्रवर्तीके नाती हैं।" श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने कहा,—"नीलाम्बर चक्रवर्ती तो मेरे पिताजी श्रीमहेश्वर विशारदके सहपाठी थे, उनके विषयमें मैं यही जानता हूँ। श्रीजगन्नाथ मिश्र पुरन्दरका भी मेरे पिताजी बहुत सम्मान करते हैं। इसलिये पिताजीके सम्बन्धसे मैं श्रीनीलाम्बर चक्रवर्ती तथा श्रीजगन्नाथ मिश्र दोनोंको ही अपना पूजनीय मानता हूँ॥"51–54॥

महाप्रभुके परिचय-श्रवणसे श्रीसार्वभौमको आनन्द :—

नदीया-सम्बन्धे सार्वभौम हृष्ट हैला।
प्रीत हञा गोसाञिरे कहिते लागिला॥55॥

श्रीसार्वभौमका दैन्य-विनय :—

"सहजेइ पूज्य तुमि, आरे त' संन्यास।
अतएव हङ तोमार आमि निज दास॥"56॥

अनुवाद—महाप्रभुको नदीयावासी जानकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य बहुत प्रसन्न हुए और वे महाप्रभुसे कहने लगे,—"आप तो सहज ही हमारे पूज्य हैं और आप संन्यासी भी हैं। इसलिये मैं आपका निज-दास हूँ॥"56॥

अनुभाष्य—आपकी स्वाभाविक-वृत्तिके उत्कर्षका विचार करनेपर आप मेरे पूजनीय हो; और बाह्य आश्रम विचारसे भी आप संन्यास ग्रहण करनेके कारण हमारे जैसे गृहस्थोंके पूजनीय हो। इसलिये मैं आपका दास हूँ और आप मेरे सेव्य हो॥56॥

महाप्रभुका दूसरोंको सम्मान देनेका धर्म :—

शुनि' महाप्रभु कैल श्रीविष्णु-स्मरण।
भट्टाचार्ये कहे किछु विनय वचन॥57॥

"तुमि जगद्गुरु—सर्वलोक-हितकर्त्ता।
वेदान्त पड़ाओ, संन्यासीर उपकर्त्ता॥58॥

अनुवाद—अपनी प्रशंसा सुनकर महाप्रभुने लज्जित होकर श्रीविष्णुका स्मरण किया और श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यको विनम्रतासे कहने लगे,—"आप तो वेदान्त पढ़ाते हैं, इसलिये जगद्गुरु और सबके हितकारी हैं। आप तो संन्यासियोंका भी उपकार करनेवाले हैं॥57–58॥

अनुभाष्य—आप तो जगत्के गुरुपदपर आसीन हैं, वेदान्तके अध्यापक, अज्ञानी छात्रोंको शिक्षा प्रदान करनेवाले, संन्यासियोंके शुभाकाङ्क्षी; उन्हें वेदान्तके अर्थोंका श्रवण कराके वैराग्यका उपदेश देकर उनके अज्ञानको दूर करनेवाले और भिक्षुओंको (त्यागियोंको) अपने घरमें भिक्षा (भोजन) कराके उनका उपकार करनेवाले हैं॥58॥

महाप्रभुका अपनेको पाल्य और
श्रीसार्वभौमको पालक मानना :—

आमि बालक-संन्यासी—भाल-मन्द नाहि जानि।
तोमार आश्रय निलुँ, गुरु करि' मानि॥ 59॥

तोमार सङ्ग लागि' मोर इँहा आगमन।
सर्वप्रकारे करिबे आमाय पालन॥ 60॥

महाप्रभुके द्वारा कृतज्ञता दिखलाना :—

आजि ये हैल आमार बड़इ विपत्ति।
ताहा हैते कैले तुमि आमार अव्याहति॥"61॥

अनुवाद—मैं तो एक युवा संन्यासी हूँ, अपना अच्छा-बुरा कुछ नहीं जानता हूँ। इसलिये मैं आपको गुरु मानकर आपका आश्रय ग्रहण करता हूँ। आपका सङ्ग प्राप्त करनेके लिये ही मैं यहाँ आया हूँ, आप मेरा सब प्रकारसे पालन कीजिये। आज जो मुझपर इतनी बड़ी विपत्ति आ पड़ी थी, उससे आपने ही मेरी रक्षा की थी॥"59-61॥

अनुभाष्य—श्रीजगन्नाथके दर्शनसे मैं मूर्च्छित होकर संज्ञाहीन हो गया था, आपने मेरी सेवाके भारको ग्रहण करके अज्ञानको दूर करके चेतन किया है अर्थात् अन्तर्दशासे बहिर्दशामें पहुँचा दिया है॥ 61॥

भट्टाचार्यके द्वारा महाप्रभुके प्रति स्नेहपूर्ण उपदेश :—

भट्टाचार्य कहे,—"एकले तुमि ना याइह दर्शने।
आमार सङ्गे याबे, किम्वा आमार लोक-सने॥"62॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने कहा,—"अब आप अकेले श्रीजगन्नाथदेवके दर्शनके लिये मत जाना। मेरे साथ जाना या मेरे किसी आदमीके साथ जाना॥"62॥

महाप्रभुकी सम्मतिसूचक उक्ति :—

प्रभु कहे,—"मन्दिर-भितरे ना याइब।
गरुड़ेर पाशे रहि' दर्शन करिब॥"63॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"अब मैं मन्दिरके भीतर नहीं जाऊँगा। गरुड़-स्तम्भके पास खड़े होकर ही श्रीजगन्नाथदेवके दर्शन करूँगा॥"63॥

श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके द्वारा अपने बहनोईको
महाप्रभुकी देखरेख करनेकी प्रार्थना :—

गोपीनाथाचार्यके कहे सार्वभौम।
"तुमि गोसाञिरे कराइह दर्शन॥ 64॥

आमार मातृस्वसा-गृह—निर्जन स्थान।
ताँहा वासा देह, कर सर्व समाधान॥"65॥

गोपीनाथ प्रभु लञा ताँहा वासा दिल।
जलपात्र आदि सर्व समाधान कैल॥ 66॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने श्रीगोपीनाथाचार्यको कहा,—"आप गोसाईंजीको अपने साथ ले जाकर इन्हें श्रीजगन्नाथदेवके दर्शन कराना। मेरी मौसीका घर निर्जन स्थानमें है, वहाँ आप इनके रहनेकी और जो-जो आवश्यक वस्तुएँ हैं, उन सबकी व्यवस्था कर दीजिये।" तब श्रीगोपीनाथाचार्यने महाप्रभुको साथ ले जाकर उन्हें उनके रहनेका स्थान दिखाया। उन्होंने जलपात्र आदि सभी आवश्यक वस्तुओंकी भी व्यवस्था कर दी॥ 64-66॥

श्रीगोपीनाथके द्वारा महाप्रभुको
श्रीजगन्नाथकी सेवाका प्रदर्शन :—

आर दिन गोपीनाथ प्रभु-स्थाने गिया।
शय्योत्थान दरशन कराइल लञा॥ 67॥

अनुवाद—अगले दिन श्रीगोपीनाथाचार्य महाप्रभुके स्थानपर गये और उन्हें श्रीजगन्नाथदेवके शय्योत्थान दर्शन कराये॥ 67॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'शय्योत्थान'*—श्रीजगन्नाथदेवका शय्यासे उठना॥ 67॥

श्रीमुकुन्दके साथ श्रीसार्वभौमके घरमें आगमन :—

मुकुन्ददत्त लञा आइला सार्वभौम-स्थाने।
सार्वभौम किछु ताँरे बलिला वचने॥ 68॥

श्रीसार्वभौमकी महाप्रभुके प्रति स्नेहप्रीति और
उनके संन्यास-परिचयकी जिज्ञासा :—

"प्रकृति—विनीत, संन्यासी देखिते सुन्दर।
आमार बहुप्रीति बाड़े इँहार उपर॥ 69॥

**कोन् सम्प्रदाये संन्यास करयाछेन ग्रहण।
कि नाम इँहार, शुनिते हय मन॥"70॥**

अनुवाद—तब श्रीगोपीनाथाचार्य श्रीमुकुन्द दत्तको लेकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके घर आये। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य कहने लगे,—"ये संन्यासी विनम्र स्वभावके हैं और देखनेमें भी बहुत सुन्दर हैं। उनके प्रति मेरी प्रीति बढ़ती ही जा रही है। मुझे यह सुननेकी बहुत उत्कण्ठा हो रही है कि इन्होंने किस सम्प्रदायसे संन्यास ग्रहण किया है तथा इनका नाम क्या है?"॥68-70॥

अनुभाष्य—महाप्रभुने वास्तविक संन्यासीके अधिकारको ग्रहण करनेपर भी दैन्यपूर्वक संन्यासीके शिष्य 'ब्रह्मचारी'-नामसे ही अपना परिचय देना उचित समझा। वास्तविक संन्यासी होनेपर भी 'ब्रह्मचारी'-परिचय प्रदान करना स्वाभाविक विनयका आदर्श है॥69॥

श्रीगोपीनाथके द्वारा परिचय-प्रदान :—

**गोपीनाथ कहे,—"इँहार नाम श्रीकृष्णचैतन्य।
गुरु इँहार केशव-भारती महाधन्य॥"71॥**

अनुवाद—श्रीगोपीनाथाचार्यने बतलाया,—"इनका नाम श्रीकृष्णचैतन्य है और इनके संन्यास गुरु परम सौभाग्यवान् श्रीकेशव-भारती हैं॥"71॥

श्रीसार्वभौमके द्वारा सम्प्रदायकी समालोचना :—

**सार्वभौम कहे,—"इँहार नाम सर्वोत्तम।
भारती-सम्प्रदाय एइ—हयेन मध्यम॥"72॥**

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने कहा,—"इनका नाम 'श्रीकृष्णचैतन्य' तो सर्वोत्तम है, परन्तु ये भारती-सम्प्रदायके हैं, इसलिये ये मध्यम श्रेणीके संन्यासी हैं॥"72॥

श्रीगोपीनाथके द्वारा महाप्रभुके सम्प्रदायका समर्थन :—

**गोपीनाथ कहे,—"इँहार नाहि बाह्यापेक्षा।
अतएव बड़ सम्प्रदायेर नाहिक अपेक्षा॥"73॥**

अनुवाद—श्रीगोपीनाथाचार्यने कहा,—"ये किसी बाहरी औपचारिकताकी आवश्यकता नहीं समझते, इसलिये इन्हें बड़े सम्प्रदायकी कोई अपेक्षा नहीं है॥"73॥

अनुभाष्य—शङ्कराचार्यके द्वारा प्रवर्त्तित दशनामी संन्यासियोंमें 'तीर्थ', 'आश्रम' और 'सरस्वती'—ये सर्वोच्च हैं। शृङ्गेरि मठमें 'सरस्वती'—उत्तम, 'भारती'—मध्यम और 'पुरी'—कनिष्ठ—ये तीन संन्यासियोंकी उपाधियाँ हैं।

श्रीशङ्कर-सम्प्रदायकी जिस प्रकार तीर्थ आदि दशनामी संन्यासियोंकी व्याख्या प्रकाशित है, वह यह है—

जो त्रिवेणी-सङ्गम तीर्थमें 'तत्त्वमसि' आदि लक्षणोंसे युक्त वाक्यके अनुसार तत्त्वका अर्थ समझकर स्नान करते हैं, वे 'तीर्थ' नामसे जाने जाते हैं। जिनका संन्यासाश्रममें रहनेका विशेष आग्रह है अथवा गुरु-गृहमें शिक्षा पूर्ण होनेपर गृहस्थ आश्रममें जानेके अनिच्छुक और सांसारिक आशाके बन्धनोंसे मुक्त एवं योनिभ्रमणमुक्त (कोई सांसारिक आसक्ति नहीं होनेके कारण जन्म-मरणके चक्रसे मुक्त) हैं, वे 'आश्रम' नामसे परिचित होते हैं। जो मनोहर निर्जनस्थान या वनमें वास करते हैं और आशाबन्धनसे मुक्त हैं, वे 'वन'-नामसे कहे जाते हैं। जो नित्यकाल अरण्यमें रहकर आनन्दरूपी नन्दनकाननमें वास करनेके लिये इस विश्वके समस्त सम्बन्धोंका त्याग करते हैं, वे 'अरण्य' हैं। जो पर्वतोंपर वनमें वास करके सदैव गीता-अध्ययनमें रत हैं, जिसकी बुद्धि पर्वतके समान गम्भीर हैं, वे 'गिरि' हैं। जिन्होंने पर्वतवासी प्राणियोंके मध्य वास करके अत्यन्त गूढ़ ज्ञान लाभ करके संसारके सार एवं असार वस्तुओंके भेदको जान लिया है, वे 'पर्वत' हैं। जो तत्त्व-सागरसे ज्ञानरूपी रत्न एकत्रित करके कभी भी मर्यादाका उल्लङ्घन नहीं करते, वे 'सागर' हैं। जो उदात्तादि अथवा षड़ज-ऋषभ आदि स्वरज्ञानकी चर्चामें रत हैं, स्वर-आलापादिमें निपुण एवं असार-संसार विनाशकारी हैं, वे 'सरस्वती' कहलाते हैं। जिन्होंने विद्यामें पूर्णता लाभ करके अविद्याके सम्पूर्ण भारका परित्याग कर दिया है और जो किसी भी प्रकारके दुःखसे दुःखी नहीं

होते, वे 'भारती' हैं। जो तत्त्वज्ञानमें पारङ्गत एवं पूर्णतत्त्वपदमें अवस्थित होकर सब समय परब्रह्मकी चर्चामें रत हैं, वे 'पुरी' नामसे प्रसिद्ध हैं।

श्रीशङ्कर-सम्प्रदायमें 'ब्रह्मचारी' नामोंका अर्थ जिस प्रकारसे प्रदान किया जाता है, वह यह है—

जो अपने स्वरूपको भलीभाँति जानते हैं, स्वधर्मका पालन करते हैं एवं नित्यकाल अपने आनन्दमें मग्न हैं, वे 'स्वरूप'-नामक ब्रह्मचारी हैं। जो स्वयं ज्योतिर्ब्रह्मको विशेष रूपसे जानते हैं और तत्त्वज्ञानके प्रकाशके द्वारा विशेषरूपसे योगयुक्त है, वे 'प्रकाश' नामसे जाने जाते हैं। जो तत्त्वज्ञान प्राप्त करके सत्य, ज्ञान, अनन्त और ब्रह्मका सदैव ध्यान करते हैं एवं स्वानन्दमें विहार करते हैं, वे 'आनन्द' नामसे प्रसिद्ध हैं। जो अचित्-मिश्रभावसे अतीत चिन्मात्र, मायाके द्वारा चित्तविकारसे रहित, और जो अनन्त, अजर और मङ्गलमय ब्रह्मको जानते हैं, वे विद्वान हैं और 'चैतन्य'-नामसे कहे जाते हैं (मञ्जुषा-द्वितीय संख्या)।

श्रीसार्वभौमने कहा,—"श्रीमन्महाप्रभुका नाम—'श्रीकृष्ण' एवं ब्रह्मचारी-उपाधि—'चैतन्य' है। इसलिये श्रीकृष्णनाम सभी नामोंकी अपेक्षा उत्तम है, किन्तु श्रीमहाप्रभु सर्वोच्च सरस्वती-सम्प्रदायमें प्रवेश ना करके मध्यम-सम्प्रदायमें प्रविष्ट हुए हैं।" इसके उत्तरमें श्रीगोपीनाथने कहा,—"इनका मध्यम-सम्प्रदायमें प्रवेश करनेका कारण यह है कि इनकी किसी प्रकारकी कोई बाह्यापेक्षा नहीं है। भीतरमें मर्यादाका अहङ्कार रहनेपर मनुष्य मर्यादा पानेका प्रयास करता है। अकिञ्चन होकर दीनभावसे हरिभजन करनेकी इच्छा होनेपर भारती-सम्प्रदायकी उपेक्षा करके सरस्वती-सम्प्रदायका अनुसन्धान करके उसमें प्रवेश करनेकी आकाङ्क्षा नहीं होती॥ 72-73॥

साधारण युवा समझकर महाप्रभुके प्रति भट्टाचार्यकी गुरुकी भाँति उपदेशमूलक उक्ति :—

भट्टाचार्य कहे,—"इँहार प्रौढ़ यौवन।
केमने संन्यास-धर्म हबेक रक्षण॥ 74॥

निरन्तर इँहाके वेदान्त शुनाइब।
वैराग्य-अद्वैत-मार्गे प्रवेश कराइब॥ 75॥

कहेन यदि, पुनरपि योग-पट्ट दिया।
संस्कार करिये उत्तम-सम्प्रदाये आनिया॥"76॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने कहा,—"श्रीकृष्ण-चैतन्य पूर्ण यौवनमें हैं, ये अपने संन्यास धर्मकी रक्षा कैसे करेंगे? इसलिये मैं इन्हें निरन्तर वेदान्त सुनाकर इनको वैराग्यमें स्थिर रखूँगा और अद्वैत-मार्गमें प्रवेश कराऊँगा। यदि श्रीकृष्णचैतन्य कहेंगे, तो मैं उन्हें फिरसे संन्यास-वस्त्र देकर और संस्कार करके उत्तम सम्प्रदायमें ले आऊँगा॥"74-76॥

अमृतप्रवाह भाष्य—इस मायिक जगत्को कौवेकी विष्ठाके (मलके) समान तुच्छ ज्ञान करानेवाले केवल-अद्वैतपथमें प्रवेश करा दूँगा। *'योगपट्ट'*—संन्यासियोंका विशेष वेश। उत्तम सम्प्रदायके योग्य योगपट्ट अर्थात् संन्यासियोंके द्वारा व्यवहार किये जानेवाले वस्त्रोंको देकर पुनः संस्कार कर दूँगा॥ 75-76॥

अनुभाष्य—संन्यासिगण सदैव वेदान्तवाक्योंका अनुशीलन करके विषयोंके प्रति वैराग्य उत्पन्न करते हैं एवं कौपीनाश्रित होकर कौपीनकी मर्यादाकी रक्षा करते हैं। सदैव शम-दमादि छह प्रकारके साधनोंमें पारदर्शी होनेके लिये भक्तिरहित-विचारकोंकी युक्तिके अनुसार ज्ञान और वैराग्यकी उपासना आवश्यक है। द्वितीय (देहमें) अभिनिवेश होनेपर ही मायिक वस्तुओंके पराक्रमकी आशङ्का होती है, इसलिये ज्ञान-वैराग्यसे युक्त कराके अद्वैत-पथमें प्रवेश करानेपर युवावस्थाके कारण कामसे उत्पन्न चेष्टाएँ बलवान् नहीं हो पायेंगी।

महाप्रभु यदि उच्च सरस्वती-सम्प्रदायमें प्रवेशाधिकारकी इच्छा करें, तो फिर पुनः सरस्वती-सम्प्रदायके संन्यासीके द्वारा उनको त्यागियोंके वस्त्र-दण्ड आदि प्रदान कराके उन्नत करा सकता हूँ। शौक्रब्राह्मणके अतिरिक्त कोई भी वर्ण उच्च 'सरस्वती' सम्प्रदायमें प्रवेश नहीं कर सकता; इसलिये 'भारती' आदि सम्प्रदायमें विधिकी शिथिलता

रहनेसे 'सरस्वती' संन्यासियोंकी भाँति उच्च सम्प्रदायके विचारसे 'भारती' संन्यासियोंकी मध्यमता और 'पुरी' संन्यासियोंकी कनिष्ठता सिद्ध है॥ **74-76**॥

महाप्रभुके प्रति शासन-वाणीको सुनकर दोनों भक्तोंको दुःख :—

शुनि' गोपीनाथ मुकुन्द, दुँहे दुःखी हैला।
गोपीनाथाचार्य किछु कहिते लागिला॥ 77॥

श्रीसार्वभौमके अज्ञानको देखकर गोपीनाथके द्वारा महाप्रभुकी महिमाका कीर्तन :—

"भट्टाचार्य, तुमि इँहार ना जान महिमा।
भगवत्ता-लक्षणेर इँहातेइ सीमा॥ 78॥

ताहाते विख्यात इँहो परम-ईश्वर।
अज्ञ-स्थाने किछु नहे विज्ञेर गोचर॥"79॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यकी बात सुनकर श्रीगोपीनाथाचार्य और श्रीमुकुन्द दत्त, दोनों बहुत दुःखी हुए। श्रीगोपीनाथाचार्य कुछ कहने लगे,—"भट्टाचार्य! आप इनकी महिमा नहीं जानते। इनमें भगवत्ताके समस्त लक्षण परम सीमा तक विराजमान हैं। इसलिये ये परम-ईश्वरके रूपमें विख्यात हैं। इस विषयमें विज्ञ व्यक्ति जिन सिद्धान्तोंको जानते हैं, उन्हें अज्ञ व्यक्तियोंके द्वारा समझना बहुत कठिन है॥"**77-79**॥

तर्कपन्थी और श्रौतपन्थीके विचार; तर्कपन्थाके द्वारा भगवान् अलभ्य और श्रौतपन्थाके द्वारा सुलभ :—

शिष्यगण कहे,—"ईश्वर कह कोन प्रमाणे।"
आचार्य कहे,—"विज्ञमत ईश्वर-लक्षणे॥"80॥

शिष्य कहे,—"ईश्वर-तत्त्व साधि अनुमाने।"
आचार्य कहे,—"अनुमाने नहे ईश्वर-ज्ञाने॥"81॥

अनुमान प्रमाण नहे ईश्वरतत्त्व-ज्ञाने।
कृपा बिना ईश्वरेरे केह नाहि जाने॥ 82॥

ईश्वरेर कृपा-लेश हयत' याहारे।
सेइ त' ईश्वर-तत्त्व जानिबारे पारे॥ 83॥

अनुवाद—यह सुनकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके शिष्योंने पूछा,—"आप किस प्रमाणके आधारपर इन्हें ईश्वर कह रहे हैं।" श्रीगोपीनाथाचार्यने उत्तर दिया,—"ईश्वरके लक्षणके सम्बन्धमें विज्ञ (तत्त्वको जाननेवाले) व्यक्तियोंका मत ही प्रमाण है।" शिष्य कहने लगे,—"ईश्वर-तत्त्व अनुमानके द्वारा ही प्रमाणित होता है।" श्रीगोपीनाथाचार्यने कहा,—"अनुमानके द्वारा ईश्वर-तत्त्वका ज्ञान नहीं होता। ईश्वर-तत्त्वको जाननेके लिये अनुमान प्रमाण नहीं है। ईश्वरकी कृपाके बिना उनको कोई भी नहीं जान सकता। जिसपर ईश्वरकी लेशमात्र भी कृपा होती है, वही ईश्वर-तत्त्वको जान सकता है॥ **80-83**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—विज्ञको जो तत्त्व दिखलायी देता है, वह अज्ञ व्यक्तियोंके लिये कुछ भी नहीं है,—इसी कारणसे ही तुम इनको 'सामान्य मनुष्य' मान रहे हो; वास्तवमें इनमें भगवत्ता-लक्षणोंकी सीमा है। श्रीसार्वभौमके शिष्योंने श्रीगोपीनाथको कहा,—'तुम किस प्रमाणके द्वारा इनको 'ईश्वर' कह रहे हो?' गोपीनाथने उत्तर दिया,—'विज्ञ व्यक्ति जिन लक्षणोंके आधारपर ईश्वरको स्थापित करते हैं, मैं उन्हीं लक्षणोंके आधारपर ही इनको ईश्वर कह रहा हूँ।' शिष्योंने कहा,—'ईश्वरतत्त्व अनुमानके द्वारा जाना जाता है। व्याप्तिज्ञान-लक्षण ही अनुमान है; जैसे 'पर्वतो बह्निमान् धूमात्' अर्थात् 'जहाँ धुआँ देखा जायेगा, वहाँ अग्नि है, ऐसा जानना होगा; 'धुआँ दिखाई दे रहा है, इसलिये पर्वतपर अग्नि है', यही बात यहाँ प्रमाणित होती है। ईश्वरके विषयमें अनुमान ऐसे कार्य करता है,—जैसे, जितनी वस्तुएँ देखी जाती हैं, सभीका ही कारण है; यह परिदृश्यमान जगत् भी एक वस्तु है; इसलिये इसका कोई कारण नहीं है, ऐसा नहीं हो सकता। इसलिये 'ईश्वर—विश्वका कारण हैं', यह तत्त्व प्रमाणित हुआ। हम इसी प्रणालीसे ईश्वरतत्त्वका निरूपण करते हैं। आप यदि दिखा पायें कि ये संन्यासी इस युक्तिके अनुसार ईश्वर हो सकते हैं, तब हम मान सकते हैं।' श्रीगोपीनाथने उत्तर

दिया,—'ईश्वरतत्त्वको जाननेके लिये अनुमान प्रमाणके रूपमें कार्य नहीं कर सकता, क्योंकि ईश्वरकी कृपाके बिना कोई भी उनको नहीं जान सकता॥'78-83॥

कृपाके बिना केवल ज्ञानमार्गसे भगवान् अगोचर :—
श्रीमद्भागवत (10/14/29)—

तथापि ते देव पदाम्बुजद्वय-
प्रसाद-लेशानुगृहीत एव हि।
जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो
न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन्॥84॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥84॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे देव, आपके श्रीचरणकमल-युगलोंकी लेशमात्र कृपाको प्राप्त करनेवाला व्यक्ति ही केवल आपकी महिमाके तत्त्वको जान सकता है; किन्तु जो चिरकालसे भी अनुमानके द्वारा शास्त्रोंका विचार करते हुए अन्वेषण करते हैं, उनमेंसे कोई भी उस तत्त्वको नहीं जान पाता॥84॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णके द्वारा ब्रह्माका अहङ्कार चूर्ण होनेपर श्रीकृष्णके परमैश्वर्यके दर्शनसे उनके माहात्म्यको जानकर ब्रह्माने इस प्रकार स्तव किया—

हे देव [तव महिमा सर्वत्र व्याप्तः], तथापि ते (तव) पदाम्बुजद्वय-प्रसादलेशानुगृहीतः (चरणकमलद्वयानुकम्पा-कणया-सुभगान्वितः) एव हि जनः भगवन्महिम्नः (भगवतस्तव महिम्नः ऐश्वर्यस्य) तत्त्वं जानाति; अन्यः (कृष्णप्रसादरहितः) एकः (कश्चित्) अपि चिरं (दीर्घकालं) विचिन्वन् (विचारयन्) अपि न च जानाति।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥84॥

भट्टाचार्यकी नास्तिकताको देखकर मानद होते हुए भी गोपीनाथके द्वारा उनका अनादर :—

यद्यपि जगद्गुरु तुमि—शास्त्र-ज्ञानवान्।
पृथिवीते नाहि पण्डित तोमार समान॥85॥
ईश्वरेर कृपा-लेश नाहिक तोमाते।
अतएव ईश्वरतत्त्व ना पार जानिते॥86॥
तोमार नाहिक दोष, शास्त्रे एइ कहे।
पाण्डित्याद्ये ईश्वरतत्त्व-ज्ञान कभु नहे॥"87॥

अनुवाद—श्रीगोपीनाथाचार्यने श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यसे कहा,—"यद्यपि आप जगद्गुरु हो तथा सभी शास्त्रोंका आपको ज्ञान है, पृथ्वीपर आपके समान और कोई पण्डित भी नहीं है, तथापि आपपर ईश्वरकी लेशमात्र कृपा भी नहीं है। इसलिये आप ईश्वरके तत्त्वको नहीं जान पा रहे हैं। इसमें आपका कोई दोष नहीं है। शास्त्र यह कहते हैं कि पाण्डित्यादिके द्वारा ईश्वरतत्त्वका ज्ञान कभी नहीं होता॥"85-87॥

अनुभाष्य—कठोपनिषद् 1/2/23 वाँ मन्त्र—

"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्॥"

9 वाँ मन्त्र—

"नैषा तर्केण मतिरापनेया॥"

अर्थात् "परमात्म-भगवद् वस्तु व्याख्यानके द्वारा प्राप्त नहीं होती; अपनी बुद्धिके बलपर भी प्राप्त नहीं होती; श्रुति-परम्पराको छोड़कर बहुत अधिक श्रवणके द्वारा भी प्राप्त नहीं होती। किन्तु भगवान् जिसको स्वीकार करते हैं अर्थात् जिसके प्रति प्रसन्न होते हैं, उसीको ही वे दिखलायी देते हैं अथवा प्राप्त होते हैं। भक्त ही भगवान्‌की कृपाके पात्र हैं, इसलिये उनपर ही कृपा करके वे उन्हें अपना दर्शन देते हैं। इस ब्रह्मका साक्षात्कार करानेवाली मतिका तर्कके द्वारा खण्डन करना कर्त्तव्य (उचित) नहीं है॥"87॥

श्रीसार्वभौमका कुतर्क :—

सार्वभौम कहे,—"आचार्य, कह सावधाने।
तोमाते ईश्वर-कृपा इथे कि प्रमाणे॥"88॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने कहा,—"आचार्य! सावधानीपूर्वक बात कीजिये। आपपर भगवान्‌की कृपा है, इसका क्या प्रमाण है?"॥88॥

श्रीगोपीनाथके द्वारा उनकी बातका खण्डन :—

आचार्य कहे,—"वस्तु-विषये हय वस्तुज्ञान।
वस्तुतत्त्व-ज्ञान हय कृपाते,—प्रमाण॥ 89॥

अनुवाद—श्रीगोपीनाथाचार्यने कहा,—"वस्तुके विषयमें जो ज्ञान है, उसे 'वस्तु-ज्ञान' कहते हैं और वस्तुका तत्त्व-ज्ञान ईश्वरकी कृपासे ही होता है,—यह प्रमाण है॥ 89॥

अनुभाष्य—श्रीसार्वभौमने तर्कका सहारा लेकर अपने बहनोई श्रीगोपीनाथको कहा,—'मेरे प्रति ईश्वरकी कृपा नहीं हुई है, यह सत्य है, किन्तु तुम्हारे ऊपर भगवान्‌की कृपा किस प्रकार हुई है, मुझे समझा दो।' उसके उत्तरमें आचार्य गोपीनाथने कहा,—'वस्तु और वस्तुशक्ति 'एक' होनेके कारण वस्तु-विषयसे ही वस्तुका ज्ञान होता है। वस्तु—अखण्ड-ज्ञानमय, अद्वितीय है, किन्तु शक्ति—बहुत प्रकारकी है। अखण्ड अद्वयज्ञानमय वस्तु खण्डज्ञान अर्थात् प्राकृत ज्ञानसे नहीं जानी जा सकती, किन्तु वस्तु-विषयक अनुभूति होनेसे ही वस्तुका ज्ञान होता है। जैसे जलानेकी शक्तिके ज्ञानसे ही अग्निका ज्ञान होता है। अद्वयज्ञान-तत्त्ववस्तुकी उपलब्धिका प्रमाण—केवलमात्र भगवान्‌की कृपा है। (87 संख्याका अनुभाष्य देखें)। वे जिसको अपनी कृपाके द्वारा अपने स्वरूपका दर्शन करायेंगे, वे ही उनको समझ पायेंगे। वस्तुविषयके अतिरिक्त अन्य विषयोंका सहारा लेनेसे वस्तुका ज्ञान होनेकी सम्भावना नहीं है। कृपाके बिना उनका दर्शन या वस्तुज्ञान नहीं होता। जिन्होंने उनकी कृपाको प्राप्त किया है, वे ही उनके स्वरूपको समझकर कृपा-भिक्षुक हुए हैं एवं वे किसी भी और प्रकारके ज्ञानकी सहायतासे उनको समझनेकी चेष्टा नहीं करते॥ 89॥

प्रत्यक्ष ईश्वर-लक्षण देखकर भी ईश्वरमें अविश्वास—मायाका खेल :—

इँहार शरीरे सब ईश्वर-लक्षण।
महा-प्रेमावेश तुमि पाञाछ दर्शन॥ 90॥

तबु त' ईश्वर-ज्ञान ना हय तोमार।
ईश्वरेर माया,—एइ बलि व्यवहार॥ 91॥

अनुवाद—इनके शरीरमें ईश्वरके सभी लक्षण हैं। इनके महाप्रेमावेशके आपने दर्शन किये थे, किन्तु तब भी आपको इनमें ईश्वर-ज्ञान नहीं हुआ। आप इनकी लीलाको भी ईश्वरकी मायाका कार्य समझ रहे हैं॥ 90-91॥

अनुभाष्य—आपने भगवान्‌के महाप्रेमावेशको देखा है। उन अलौकिक प्रेममय पुरुषको 'ईश्वर'के रूपमें नहीं जान पाकर भगवान्‌की वैसी लीलाको भी मायिक अर्थात् व्यवहारिक मात्र समझ रहे हो॥ 91॥

बहिर्मुखका आवृत्त-दर्शनके कारण भगवद्दर्शन-अभाव :—

देखिले ना देखे तारे बहिर्मुख जन।"
शुनि' हासि' सार्वभौम बलिल वचन॥ 92॥

अनुवाद—जो बहिर्मुख लोग हैं, वे ईश्वरको देखकर भी उन्हें देख अर्थात् पहचान नहीं पाते।" यह सुनकर श्रीसार्वभौम मुस्कुराते हुए कहने लगे॥ 92॥

अनुभाष्य—जिनके हृदयमें मायासे अतीत श्रीकृष्णसेवाकी प्रवृत्ति उदित नहीं हुई है, उनका ऐसा माननेपर भी कि उन्होंने अपनी भोगमय कर्म-बुद्धिके द्वारा वस्तुविषयका (भगवान्‌का) अनुभव किया है या कर रहे हैं, वास्तवमें प्रेममय भगवद्-स्वरूप बाह्यविषय-ज्ञानके द्वारा दिखायी नहीं देता॥ 92॥

श्रीसार्वभौमकी भ्रमपूर्ण शास्त्रयुक्ति :—

"इष्टगोष्ठी विचार करि, ना करिह रोष।
शास्त्रदृष्ट्ये कहि, किछु ना लइह दोष॥ 93॥

महाप्रभुके प्रति महाभागवत ज्ञान होनेपर भी 'ईश्वर' माननेमें अविश्वास :—

महा-भागवत हय चैतन्य-गोसाञि।
एइ कलिकाले विष्णुर अवतार नाइ॥ 94॥

अतएव 'त्रियुग' करि' कहि विष्णुनाम।
कलियुगे अवतार नाहि,—शास्त्रज्ञान॥"95॥

अनुवाद—"हम इष्टगोष्ठीमें विचार-विमर्श कर रहे हैं, इसलिये आप क्रोध मत करना। मैं शास्त्रोंके आधारपर ही अपनी बात कह रहा हूँ, इसमें मेरा कोई दोष मत लेना। श्रीचैतन्य गोसाईं निश्चय ही महाभागवत हैं, परन्तु वे ईश्वर नहीं हो सकते, क्योंकि कलियुगमें विष्णुका अवतार नहीं होता। कलियुगमें विष्णुका अवतार नहीं होता, इसलिये उनका एक नाम त्रियुग है,—ऐसा शास्त्र कहते हैं॥"93–95॥

अनुभाष्य—*'इष्टगोष्ठी'*—अभीष्ट अर्थात् अभिलषित वस्तुको प्राप्त करनेके उद्देश्यसे एकत्रित मण्डलीके बीचमें। *'त्रियुग'*—(भाः 7/9/38)—

"इत्थं नृतिर्यगृषिदेवझषावतारै-
र्लोकान् विभावयसि हंसि जगत् प्रतीपान्।
धर्मं महापुरुष पासि युगानुवृत्तं
छन्नः कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ स त्वम्॥"

अर्थात् "हे पुरुषोत्तम! इस प्रकार आप मनुष्य, पशु-पक्षी, ऋषि, देवता और मत्स्य आदि अवतार लेकर लोकोंका पालन तथा विश्वके द्रोहियोंका संहार करते हैं। इन अवतारोंके द्वारा आप प्रत्येक युगमें उसके धर्मोंकी रक्षा करते हैं। कलियुगमें आप छिपकर गुप्तरूपसे ही रहते हैं, इसलिये आपका एक नाम 'त्रियुग' भी है।

श्रीधर स्वामिपादकी टीका—

"कलौ तु (वधरक्षणादिकं) न करोषि, यतस्तदा त्वं छन्नोऽभवः, अतस्त्रिष्वेव युगेष्वाविर्भावात् स एवम्भूतस्त्वं त्रियुग इति प्रसिद्धः।"

अर्थात् "कलियुगमें आप असुरोंका वध और साधुओंकी रक्षाका कार्य प्रत्यक्ष रूपमें नहीं करते हैं अर्थात् अपने ऐश्वर्यको गोपन करके आप प्रकट होते हैं। अन्य तीन युगोंमें आपका साक्षात् आविर्भाव होता है, इसलिये आप त्रियुगके नामसे प्रसिद्ध हैं।"॥93–95॥

गोपीनाथके द्वारा श्रीसार्वभौमके भ्रान्त सिद्धान्तका खण्डन और यथार्थ शास्त्र सिद्धान्तका प्रदर्शन :—

शुनिया आचार्य कहे दुःखी हञा मने।
"शास्त्रज्ञ हञा तुमि कर अभिमाने॥96॥

महाभारत और भारतार्थविनिर्णयमें श्रीमद्भागवत ही एकमात्र मुख्य प्रमाण :—

भागवत-भारत, दुइ—शास्त्रेर प्रधान।
सेइ दुइग्रन्थ-वाक्ये नाहि अवधान॥97॥

अनुवाद—यह सुनकर श्रीगोपीनाथाचार्य मनमें दुखी होकर कहने लगे,—"आप शास्त्रज्ञ होनेका अभिमान करते हैं। भागवत और महाभारत—ये दोनों सभी शास्त्रोंमें प्रधान शास्त्र हैं, परन्तु उनके वाक्योंपर आपने ठीकसे विचार नहीं किया है॥96–97॥

अनुभाष्य—आदिलीला 3/49 संख्याका अनुभाष्य एवं 3/51 संख्याका अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥97॥

इस कलियुगमें लीलावतारके नहीं रहनेपर भी स्वयंरूप अवतारीका आविर्भाव :—

सेइ दुइ कहे कलिते साक्षात् अवतार।
तुमि कह,—'कलिते नाहि विष्णुर प्रचार॥'98॥

कलियुगमें लीलावतारके नहीं होनेपर भी युगावतारका आविर्भाव :—

कलिकाले लीलावतार ना करे भगवान्।
अतएव 'त्रियुग' करि' कहि तार नाम॥99॥

प्रतियुगे करेन कृष्ण युग-अवतार।
तर्कनिष्ठ हृदय तोमार नाहिक विचार॥100॥

अनुवाद—इन दोनों ग्रन्थोंमें ही कलियुगमें भगवान्के साक्षात् अवतारके विषयमें कहा गया है, परन्तु आप कह रहे हैं कि 'कलियुगमें विष्णुका अवतार नहीं होता।' कलियुगमें भगवान्का लीलावतार नहीं होता, इसलिये उनका एक नाम 'त्रियुग' है। श्रीकृष्ण प्रत्येक युगमें ही युगावतार ग्रहण करते हैं। आपका हृदय तर्कनिष्ठ है, इसलिये आप इस बातपर विचार नहीं कर पा रहे हैं॥98–100॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीगोपीनाथने कहा,—'शास्त्रोंमें यही निरूपण किया गया है कि पाण्डित्यादि गुणोंसे ईश्वरतत्त्वको नहीं जाना जा सकता, इसलिये इसमें तुम्हारा क्या दोष है? इस सिद्धान्तको सुनकर श्रीसार्वभौमने कहा,—'आचार्य, आप थोड़ासा सावधान होकर बात कहिये; आपके प्रति ईश्वरकी कृपा हुई है, इसका क्या प्रमाण है?' श्रीगोपीनाथने उत्तर दिया,—'परमतत्त्व-वस्तुके विषयमें जो ज्ञान है, उसको ही 'वस्तुज्ञान' कहते हैं और वस्तुतत्त्वज्ञान ही ईश्वरकी कृपाका प्रमाण है। आपने इनके महाप्रेमावेशरूपी ईश्वरके लक्षण देखे हैं, तब भी ईश्वरकी मायाके द्वारा आच्छन्न (ढके) होकर इनको 'ईश्वर' नहीं जान पाये। बहिर्मुख व्यक्ति उनको देखकर भी नहीं देखते हैं। ईश्वरकी कृपाका अभाव ही इसका एकमात्र कारण है।' श्रीसार्वभौमने हास्य करते हुए कहा,—'केवल वितर्क छोड़कर अभिलषित सत्य-विचार करनेवालोंके मतानुसार, शास्त्रदृष्टिपूर्वक विचार करके कह रहा हूँ, सुनो;—ये चैतन्य गोसाईं परम भागवत हैं, क्योंकि कलियुगमें विष्णुका अवतार नहीं होता; इसलिये विष्णुका एक नाम 'त्रियुग' है।' श्रीगोपीनाथने उत्तर दिया,—'आप अपने आपको 'शास्त्रज्ञ' मानकर अभिमान कर रहे हो, किन्तु शास्त्रोंमें प्रधान (मुख्य) जो 'भागवत' और 'महाभारत' हैं, उन दोनों ग्रन्थोंके वचनोंकी ओर आपका ध्यान नहीं है। उन दोनों ग्रन्थोंमें, कलियुगमें साक्षात् अवतार है,—ऐसा सिद्धान्त स्थापित हुआ है। यह सत्य है कि कलियुगमें भगवान्‌का कोई लीलावतार नहीं होता; इसलिये उनको 'त्रियुग' कहा गया है। प्रत्येक युगमें श्रीकृष्णका जो युगावतार होता है, उसको आप अपने तर्कनिष्ठ-हृदयसे समझ नहीं पा रहे हो॥'87–100॥

अनुभाष्य—*'लीलावतार'*—विविध प्रकारकी विचित्रताओंसे युक्त, चेष्टारहित, नित्य नयी-नयी उल्लासमयी तरङ्गोंसे उद्वेलित, अपनी इच्छानुसार विशेष लीला करनेवाले अवतारको 'लीलावतार' कहते हैं। श्रीसनातन शिक्षामें—मध्यलीला, 20/297-298 संख्यामें—

"लीलावतार कृष्णेर ना याय गणन।
प्रधान करिया कहि दिग्‌दर्शन।
मत्स्य-कूर्म-रघुनाथ-नृसिंह-वामन।
वराहादि लेखा याँर, ना याय गणन॥"

अर्थात् "श्रीकृष्णके लीलावतारोंकी गणना नहीं की जा सकती। उनमें से मुख्य-मुख्य अवतारोंका दिग्दर्शन करा रहा हूँ। मत्स्य, कूर्म, श्रीरामचन्द्र, नृसिंह, वामन और वराहादि अनेक लीलावतार हैं, जिनकी गणना नहीं की जा सकती।"

इसका अनुभाष्य और भाः 10/2/40 श्लोक देखें। लघुभागवतामृतमें पच्चीस लीलावतार कहे गये हैं—

(1) चतुःसन, (2) नारद, (3) वराह, (4) मत्स्य, (5) यज्ञ, (6) नर-नारायण, (7) कपिल, (8) दत्तात्रेय, (9) हयशीर्ष (हयग्रीव), (10) हंस, (11) पृश्निगर्भ, (12) ऋषभ, (13) पृथु, (14) नृसिंह, (15) कूर्म, (16) धन्वन्तरि, (17) मोहिनी, (18) वामन, (19) परशुराम, (20) राघवेन्द्र, (21) व्यास, (22) बलराम, (23) कृष्ण, (24) बुद्ध और (25) कल्कि॥99॥

चार युगोंमें चार वर्णोंका अवतार :—
श्रीमद्भागवत (10/8/13) —

आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः॥101॥

अनुवाद—आपका यह पुत्र अन्य तीन युगोंमें शुक्ल, रक्त एवं पीतवर्ण धारण करता है, परन्तु वर्तमान द्वापरयुगमें इसने कृष्णवर्ण धारण किया है॥101॥

अनुभाष्य—आदिलीला 3/36 संख्या देखें॥101॥

श्रीमद्भागवत (11/5/31-32)—

इति द्वापर उर्वीश स्तुवन्ति जगदीश्वरम्।
नानातन्त्रविधानेन कलावपि तथा शृणु॥102॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥102॥

अनुभाष्य—विदेहराज निमिके प्रश्नके उत्तरमें

श्रीकरभाजन-मुनि कलिकालके अवतार और उनके भजनकी प्रणालीका वर्णन कर रहे हैं—

हे उर्वीश (पृथ्वीपते निमे), द्वापरे [भक्ताः] जगदीश्वरं (वासुदेवादि-चतुष्टयं) स्तुवन्ति (पञ्चरात्रादि-कथितेन अर्चन-विधिना पूजां कुर्वन्ति)। तथा कलौ अपि नानातन्त्रविधानेन (येन येन पञ्चरात्रादि-सात्वत-तन्त्राद्युक्त-विधिना) स्तुवन्ति, तत् [मत्तः] शृणु।

श्लोक-भावानुवाद—हे राजन् निमि! द्वापरयुगमें लोग वासुदेवादि चतुर्व्यूहकी पञ्चरात्रादिमें वर्णित अर्चन-विधिके अनुसार पूजा करते हैं। तथा कलियुगमें भी लोग जिन-जिन पञ्चरात्रादि सात्वत-तन्त्रोंमें कही गयी विधियोंके द्वारा स्तुति करते हैं, वे अब श्रवण करो॥ 102॥

कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।
यज्ञैः सङ्कीर्त्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः॥ 103॥

अनुवाद—जिनके मुखमें सदैव कृष्ण-वर्ण अर्थात् श्रीकृष्णनाम और जिनकी कान्ति अकृष्ण अर्थात् गौर है, उन्हीं अङ्ग, उपाङ्ग, अस्त्र तथा पार्षदोंसे परिवेष्टित महापुरुषकी बुद्धिमान् व्यक्ति सङ्कीर्तनप्राय यज्ञके द्वारा पूजा करते हैं॥ 103॥

अनुभाष्य—आदिलीला 3/51 संख्या देखें॥ 103॥

महाभारत दानधर्म (149),
विष्णुसहस्रनाम-स्त्रोत (92, 75) :—

सुवर्णवर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी।
संन्यासकृच्छमः शान्तो निष्ठा-शान्ति-परायणः॥ 104॥

अनुवाद—सुवर्णवर्ण, पिघले स्वर्णकी भाँति अङ्ग, सर्वांगसुन्दर गठन, चन्दनमालासे सुशोभित। संन्यासाश्रमी, हरि-रहस्यकी आलोचनारूप शमगुणसे युक्त, हरिकीर्तन-रूप महायज्ञमें दृढ़तापूर्वक निष्ठावान्, केवलाद्वैतवादी अभक्त-निवृत्तिकारिणी शान्ति-प्राप्त महाभावपरायण। [प्रथम चार लक्षण महाप्रभुकी गृहस्थलीलामें और शेष चार लक्षण संन्यासलीलामें लक्षित होते हैं।]॥ 104॥

अनुभाष्य—आदिलीला 3/49 संख्या देखें॥ 104॥

श्रीगोपीनाथके द्वारा श्रीभट्टाचार्यकी उपेक्षा और उपहास :—

तोमार आगे एत कथार नाहि प्रयोजन।
ऊषर-भूमिते येन बीजेर रोपण॥ 105॥

भगवद्-कृपासे ही भगवान्की महिमाका ज्ञान :—

तोमार उपरे ताँर कृपा यबे हबे।
एसब सिद्धान्त तबे तुमिह कहिबे॥ 106॥

अप्राकृत वस्तुके विषयमें कुतर्क—मायाजनित :—

तोमार ये शिष्य कहे कुतर्क, नानावाद।
इहार कि दोष—एइ मायार प्रसाद॥ 107॥

अनुवाद—आपके सामने इन सब प्रमाणोंको कहनेका कोई प्रयोजन नहीं है, क्योंकि बंजर भूमिमें बीज बोनेसे कोई लाभ नहीं होता। जब आपपर भगवान्की कृपा होगी, तब आप स्वयं इन सब सिद्धान्तोंको अपने मुखसे कहेंगे। आपके शिष्य जो अनेक प्रकारके कुतर्क करके अनेक वाद स्थापित कर रहे हैं, इसमें इनका कोई दोष नहीं—यह तो मायादेवीकी कृपा है॥ 105-107॥

श्रीकृष्णकी अचिन्त्यशक्ति ही अक्षज
विचारकोंमें मोह उत्पन्न करनेवाली :—
श्रीमद्भागवत (6/4/31)—

यच्छक्तयो वदतां वादिनां वै,
विवाद-संवाद-भुवो-भवन्ति।
कुर्वन्ति चैषां मुहुरात्ममोहं,
तस्मै नमोऽनन्तगुणाय भूम्ने॥ 108॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 108॥

अमृतप्रवाह भाष्य—प्रजापति दक्षने कहा,—"वादियोंके सम्बन्धमें जिनकी सब शक्तियाँ विवाद और संवाद उत्पन्न करती हैं एवं उनके आत्ममोहको बार-बार उत्पन्न कर देती हैं, उन अनन्त-गुणस्वरूप भूमा-पुरुषको मैं नमस्कार करता हूँ॥ 108॥

अनुभाष्य—भगवान् श्रीहरिके प्रति प्रजापति दक्षका हंसगुह्यस्तव—

यच्छक्तयः (यस्य बहिरङ्गा-मायाविद्याः शक्तयः) वदतां वादिनां (पूर्वोत्तरपक्षाश्रितानां) विवादसंवादभूवः (विवादस्य क्वचित् संवादस्य च भुवः उत्पत्तिहेतवः) भवन्ति; एषां (विवादशीलानां) मुहुः (पुनः पुनः) आत्ममोहं कुर्वन्ति, तस्मै अनन्तगुणाय (सर्वशक्तिविशिष्टाय) भूम्ने (परमात्मने) नमः।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 108॥

अधोक्षज-सेवक ब्राह्मण ही युक्त,
अक्षज-ज्ञानी मायादास अयुक्त :—
श्रीमद्भागवत (11/22/4)—

युक्तञ्च सन्ति सर्वत्र भाषन्ते ब्राह्मणा यथा।
मायां मदीयमुदगृह्य वदतां किं नु दुर्घटम्॥"109॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 109॥

अमृतप्रवाह भाष्य—ब्राह्मणोंने जो कहा है, वह सर्वत्र युक्त हुआ है; क्योंकि मेरी मायाका सहारा लेकर जो बोलते हैं, उनके लिये कुछ भी दुर्घट नहीं है। तात्पर्य यह है कि भगवान्‌की माया अघटनघटनपटीयसी (असम्भवको सम्भव और सम्भवको असम्भव करनेवाली) शक्ति है; इसलिये वह अनेक स्थानोंपर सत्यको गोपन करके मिथ्याको प्रमाणित कर सकती है। उसी मायाके आश्रयमें कपिल, गौतम, जैमिनी और कणाद आदि ब्राह्मणोंने बहुतसे असार वाक्योंको सार वाक्योंकी भाँति प्रकाशित किया है॥ 109॥

अनुभाष्य—तत्त्व संख्याके विषयमें उद्धवके द्वाराकी गयी जिज्ञासाके उत्तरमें श्रीकृष्णकी उक्ति,—

यथा ब्राह्मणाः भाषन्ते (निर्णीतवन्तः), [तत्] च सर्वत्र युक्तं सन्ति। मदीयां मायां (अचिन्त्य-स्वरूपशक्तिं, न तु अविद्याम्) उद्‌गृह्य (स्वीकृत्य) वदतां (जनानां) किं दुर्घटं नु (प्रश्ने, न किमपीत्यर्थः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 109॥

श्रीभट्टाचार्यके द्वारा श्रीगोपीनाथके
उपदेश अनसुना करना :—

तबे भट्टाचार्य कहे,—"याह गोसाञिर स्थाने।
आमार नामे गण-सहित कर निमन्त्रणे॥ 110॥

प्रसाद आनि' ताँरे कराह आगे भिक्षा।
पश्चात् आसि' आमारे कराइह शिक्षा॥"111॥

अनुवाद—तब श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने उनकी बातको अनसुना करके कहा,—"अभी श्रीचैतन्य गोसाईंके स्थानपर जाकर मेरी ओरसे उन्हें उनके सङ्गियों सहित मेरे घरपर प्रसाद पानेको निमन्त्रण दीजिये। भगवान् श्रीजगन्नाथका प्रसाद लाकर पहले उन्हें भोजन कराइये और उसके बादमें मुझे शिक्षा देना॥"110-111॥

श्रीगोपीनाथकी अनेक प्रकारसे श्रीभट्टाचार्यका
उपकार करनेकी चेष्टा :—

आचार्य—भगिनीपति, श्यालक—भट्टाचार्य।
निन्दा-स्तुति-हास्ये शिक्षा करा'न आचार्य॥ 112॥

अनुवाद—श्रीगोपीनाथाचार्य बहनोई थे तथा श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य उनके साले थे। ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध होनेके कारण श्रीगोपीनाथाचार्य कभी निन्दाके द्वारा, कभी स्तुतिके द्वारा एवं कभी हास-परिहासके द्वारा श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यको शिक्षा प्रदान कर रहे थे॥ 112॥

श्रीभट्टाचार्यके मायावाद-वाक्यको सुनकर श्रीमुकुन्दका क्रोध
करना ही उनके प्रति कृपा :—

आचार्येर सिद्धान्ते मुकुन्देर हैल सन्तोष।
भट्टाचार्येर वाक्ये मने हैल दुःख-रोष॥ 113॥

अनुवाद—श्रीगोपीनाथाचार्यके सिद्धान्तको सुनकर श्रीमुकुन्द दत्त बहुत सन्तुष्ट हुए, परन्तु श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके वचनोंको सुनकर वे मन-ही-मन बहुत दुःखी हुए तथा उनमें कुछ रोष भी भर आया॥ 113॥

महाप्रभुको निमन्त्रण :—

गोसाञिर स्थाने आचार्य कैल आगमन।
भट्टाचार्येर नामे ताँरे कैल निमन्त्रण॥ 114॥

श्रीमुकुन्द, श्रीगोपीनाथकी श्रीभट्टाचार्यके विरुद्ध निन्दा :—

मुकुन्द-सहित कहे भट्टाचार्येर कथा।
भट्टाचार्ये निन्दा करे, मने पाञा व्यथा॥ 115॥

अनुवाद—तब श्रीगोपीनाथाचार्य महाप्रभुके पास गये और उन्हें श्रीभट्टाचार्यकी ओरसे निमन्त्रण दिया। श्रीगोपीनाथाचार्यने श्रीमुकुन्द दत्तके साथ मिलकर महाप्रभुको श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके द्वारा कही गयी सभी बातोंको बतलाया और मनमें दुःख होनेके कारण उन्होंने श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यकी निन्दा भी की॥ 114-115॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीभट्टाचार्यको सम्मान प्रदान :—

शुनि' महाप्रभु कहे,—"ऐछे मत् कह।
आमा प्रति भट्टाचार्येर हय अनुग्रह॥ 116॥

आमार संन्यास-धर्म चाहेन राखिते।
वात्सल्ये करुणा करेन, कि दोष इहाते॥" 117॥

अनुवाद—उनकी बात सुनकर महाप्रभुने कहा,—"ऐसा मत कहो। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यकी मेरे ऊपर बहुत कृपा है। मेरे प्रति अपने हृदयमें वात्सल्यमय करुणाके कारण वे मेरे संन्यास-धर्मकी रक्षा करना चाहते हैं, तो इसमें क्या दोष है?"॥ 116-117॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीसार्वभौमके साथ श्रीजगन्नाथ दर्शन करनेके बाद उनके घरमें जाना :—

आर दिन महाप्रभु भट्टाचार्य-सने।
आनन्दे करिला जगन्नाथ-दरशने॥ 118॥

भट्टाचार्य-सङ्गे ताँर मन्दिरे आइला।
प्रभुरे आसन दिया आपने बसिला॥ 119॥

अनुवाद—अगले दिन महाप्रभुने श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके साथ आनन्दपूर्वक श्रीजगन्नाथदेवका दर्शन किया। फिर वे श्रीभट्टाचार्यके साथ उनके घरपर आये। उन्होंने महाप्रभुको बैठनेके लिये आसन प्रदान किया और स्वयं भी बैठ गये॥ 118-119॥

श्रीसार्वभौमके द्वारा महाप्रभुको वेदान्तका पढ़ाना और उपदेश देना :—

वेदान्त पड़ाइते तबे आरम्भ करिला।
स्नेह-भक्ति करि' किछु प्रभुरे कहिला॥ 120॥

"वेदान्त-श्रवण,—एइ संन्यासीर धर्म।
निरन्तर कर तुमि वेदान्त श्रवण॥" 121॥

अनुवाद—तब श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने महाप्रभुको वेदान्त पढ़ाना आरम्भ किया। स्नेह-भक्तिके साथ वे महाप्रभुसे कहने लगे,—"वेदान्तका श्रवण करना ही संन्यासीका धर्म है, इसलिये आप निरन्तर वेदान्तका श्रवण कीजिये॥"120-121॥

अनुभाष्य— *'वेदान्त'*—यहाँ वेदान्तका तात्पर्य शङ्कराचार्यके द्वारा रचित ब्रह्मसूत्रका निर्विशेष-ब्रह्म-प्रतिपादक शारीरक भाष्य है। 'वेदान्तवाक्येषु सदा रमन्तः' [वेदान्तसूत्रके वाक्योंमें सदा आनन्द अनुभव करना चाहिये], यह संन्यासियोंका धर्म है॥ 121॥

महाप्रभुका दैन्य :—

प्रभु कहे,—"मोरे तुमि कर अनुग्रह।
सेइ से कर्त्तव्य, तुमि येइ मोरे कह॥" 122॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"आपकी मेरे प्रति बहुत कृपा है, इसलिये आप मुझे जैसा कहेंगे, वैसा करना ही मेरा कर्त्तव्य है॥"122॥

श्रीसार्वभौमके मुखसे महाप्रभुका सात दिन तक वेदान्त श्रवण और मायावाद-भाष्यके श्रवणमें अनादर होनेके कारण मौनवृत्ति :—

सप्तदिन पर्यन्त ऐछे करेन श्रवणे।
भाल-मन्द नाहि कहे, बसि' मात्र शुने॥ 123॥

अनुवाद—तब सात दिन तक महाप्रभुने श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यसे वेदान्त श्रवण किया। ठीक या गलत, उन्होंने कुछ भी नहीं कहा, बैठकर मात्र श्रवण करते रहे॥ 123॥

आठवें दिन श्रीसार्वभौमकी उसके कारणकी जिज्ञासा :—

अष्टम-दिवसे ताँरे पुछे सार्वभौम।
"सातदिन कर तुमि वेदान्त-श्रवण॥ 124॥

भालमन्द नाहि कह, रह मौन धरि'।
बुझ, कि ना बुझ,—इहा जानिते ना पारि॥"125॥

अनुवाद—तब आठवें दिन श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने महाप्रभुसे पूछा,—"सात दिनोंसे आप वेदान्तका श्रवण कर रहे हो। ठीक-गलत कुछ भी न कहकर केवल मौन धारण करके बैठे हो। इसलिये मैं यह जान नहीं पा रहा हूँ कि आप वेदान्त समझ भी रहें हैं या नहीं॥"124-125॥

महाप्रभुके द्वारा दीनतापूर्वक मायावाद-भाष्यकी उपेक्षा :—

प्रभु कहे,—"मूर्ख आमि, नाहि अध्ययन।
तोमार आज्ञाते मात्र करिये श्रवण॥126॥

संन्यासीर धर्म लागि' श्रवण मात्र करि।
तुमि येइ अर्थ कर, बुझिते ना पारि॥"127॥

अनुवाद—महाप्रभुने उत्तर दिया,—"मैं मूर्ख हूँ, इसलिये मैं वेदान्त-सूत्रका अध्ययन नहीं करता। केवल आपकी आज्ञाका पालन करनेके लिये ही मैं सुन रहा हूँ। संन्यासीका धर्म पालन करनेके लिये मैं श्रवणमात्र ही करनेका प्रयास कर रहा हूँ। किन्तु आप वेदान्त-सूत्रोंकी जो व्याख्या कर रहे हैं, वह मुझे समझ नहीं आ रही॥"126-127॥

भट्टाचार्यका महाप्रभुको अज्ञ समझकर उन्हें मौनका त्याग करके परिप्रश्न करनेका आदेश :—

भट्टाचार्य कहे,—"ना बुझि', हेन-ज्ञान यार।
बुझिबार लागि' सेह पुछे पुनर्बार॥128॥

तुमि शुनि' शुनि' रह मौन-मात्र धरि'।
हृदये कि आछे तोमार, बुझिते ना पारि॥"129॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने कहा,—"जिसे यह ज्ञान होता है—'मैं समझ नहीं पा रहा हूँ', वह समझनेके लिये पुनः पुनः प्रश्न करता है। परन्तु आपने बार-बार सुनकर केवल मौन ही धारण कर रखा है। आपके हृदयमें क्या है, मैं उसे समझ नहीं पा रहा हूँ॥"128-129॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीसार्वभौमकी मायावाद-भाष्य-व्याख्याका खण्डन :—

प्रभु कहे,—"'सूत्रेर अर्थ बुझिये निर्मल।
तोमार व्याख्या शुनि' मन हय त' विकल॥130॥

मुख्य अभिधा-वृत्तिसे ब्रह्मसूत्रका अर्थ सहज, परन्तु गौण-लक्षणारूपी कल्पनाके आश्रयसे वह आवृत :—

सूत्रेर अर्थ—भाष्य कहे प्रकाशिया।
भाष्य कह तुमि—सूत्रेर अर्थ आच्छादिया॥131॥

सूत्रेर मुख्य अर्थ ना करह व्याख्यान।
कल्पनार्थे तुमि ताहा कर आच्छादन॥132॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"सूत्रोंके अर्थको तो मैं भलीभाँति समझ पा रहा हूँ, परन्तु आपकी व्याख्याको सुनकर मेरा मन क्षुब्ध हो रहा है। 'भाष्य' तो सूत्रोंके अर्थको प्रकाशित करता है, परन्तु आपके द्वारा कहे हुए 'भाष्य'से तो सूत्रोंका अर्थ आच्छादित हो रहा है। आपने सूत्रोंके मुख्य अर्थको न कहकर अपने कल्पित अर्थके द्वारा उनको आच्छादित कर दिया है॥130-132॥

अमृतप्रवाह भाष्य—सूत्रका जो वास्तविक भाष्य होता है, वह सूत्रके अर्थको प्रकाशित करके बोलता है, किन्तु आप जो भाष्य कर रहे हैं, वह तो सूत्रके अर्थको ढक रहा है॥131॥

अनुभाष्य—श्रीव्यासदेवके द्वारा रचित ब्रह्मसूत्रोंका अभिधा-वृत्तिका आश्रय लेकर जो मुख्य अर्थ होता है, वह व्याख्या न करके सूत्रके अर्थको छिपाकर लक्षणाके द्वारा कल्पित अर्थ कर रहे हो॥132॥

उपनिषद्-प्रतिपाद्य अर्थ ही सूत्राकारमें वेदान्तमें निबद्ध :—

उपनिषद्-शब्दे येइ मुख्य अर्थ हय।
सेइ अर्थ मुख्य,—व्याससूत्रे सब कय॥133॥

मुख्यार्थ छाड़िया कर गौणार्थ कल्पना।
'अभिधा'-वृत्ति छाड़ि' कर शब्देर 'लक्षणा'॥134॥

शब्द अथवा वेद ही मुख्य प्रमाण-

प्रमाणेर मध्ये श्रुति-प्रमाण—प्रधान।
श्रुति ये मुख्यार्थ कहे, सेइ से प्रमाण॥ 135॥

दृष्टान्त :—

जीवेर अस्थि-विष्ठा दुइ—शङ्ख-गोमय।
श्रुति-वाक्ये सेइ दुइ महापवित्र हय॥ 136॥

गुरु-परम्पराके बिना इन्द्रियज्ञानसे वेदको जानना दुर्बोध :—

स्वतःप्रमाण वेद सत्य येइ कय।
'लक्षणा' करिते स्वतःप्रामाण्य-हानि हय॥ 137॥

शङ्कर भाष्य—वेदान्त-विरुद्ध :—

व्यास-सूत्रेर अर्थ—यैछे सूर्येर किरण।
स्वकल्पित भाष्य-मेघे करे आच्छादन॥ 138॥

वेद और सात्वतपुराणोंमें सविशेष ब्रह्म
अथवा श्रीभगवान् ही उद्दिष्ट :—

वेद-पुराणे कहे ब्रह्म निरूपण।
सेइ ब्रह्म—बृहद्वस्तु, ईश्वर-लक्षण॥ 139॥

सच्चिदानन्दविग्रह निर्विशेष नहीं :—

सर्वैश्वर्यपरिपूर्ण स्वयं भगवान्।
ताँरे निराकार करि' करह व्याख्यान॥ 140॥

'निर्विशेष' अर्थमें प्राकृत-विशेष या वैचित्र्यका अभाव :—

'निर्विशेष' ताँरे कहे येइ श्रुतिगण।
'प्राकृत' निषेधि करे 'अप्राकृत' स्थापन॥ 141॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 133-141॥

अमृतप्रवाह भाष्य—उपनिषद्के वाक्योंका जो मुख्य अर्थ है, उसका ही श्रीवेदव्यासने अपने द्वारा रचित ब्रह्मसूत्रमें उल्लेख किया है। अर्थात् उसे मुख्य अर्थ ही जानना चाहिये। उसको छोड़कर जिस गौण अर्थकी कल्पना की जाती है और शब्दकी 'अभिधा-वृत्ति'को छोड़कर 'लक्षणावृत्ति'से जो अर्थ किया जाता है, वह अमङ्गलजनक होता है। 'प्रत्यक्ष', 'अनुमान', 'ऐतिह्य' और 'शब्द'—इन चारों प्रकारके प्रमाणोंमें, 'श्रुतिप्रमाण' अर्थात् शब्द-प्रमाण ही सबसे प्रधान है। श्रुति वाक्योंका जो मुख्य अर्थ है, वही प्रमाण है। देखो, पशुओंकी हड्डी और मल—बहुत ही अपवित्र है; किन्तु 'शङ्ख' और 'गोबर' उनमें गिने जानेपर भी श्रुतिवाक्योंके बलसे महापवित्र हुए हैं। वैदिक वाक्योंका अर्थ लक्षणा-वृत्तिके द्वारा करनेपर, उनको 'अनुमान'के अधीन बनाकर उनके स्वतःप्रमाणिकताको नष्ट करना हो जाता है। व्याससूत्रोंके अर्थ सूर्यकी किरणोंके समान देदीप्यमान हैं। मायावादियोंने अपने द्वारा कल्पित भाष्यरूपी-मेघोंके द्वारा उसको आच्छादित कर दिया हैं। वेद और उसके अनुगत पुराणसमूहने एकमात्र ब्रह्मका ही निरूपण किया है। वह ब्रह्म अपने बृहत्व-धर्मवशतः [अर्थात् असीम विस्तारके गुणोंके कारण] ईश्वर-लक्षणोंसे लक्षित होता है। पुनः, उन ईश्वरको उनके सर्वैश्वर्यकी परिपूर्णताके साथ देखनेपर, वही बृहद्-ब्रह्मवस्तु ही स्वयं भगवान् हो जाती है। इसलिये 'ब्रह्म' और 'ईश्वर'—ये भगवद्-तत्त्वके अन्तर्गत उनकी विशेष प्रतीति हैं। षड़ैश्वर्यपूर्ण भगवान् सदैव परिपूर्ण 'श्री' अर्थात् रूपसे युक्त हैं, इसलिये वे नित्य सविशेष हैं; उनको 'निराकार' कहकर व्याख्या करनेसे वेदोंका अर्थ विकृत हो जाता है। जो सब श्रुतियाँ उन्हें 'निर्विशेष' कहकर व्याख्या करती हैं, वे केवल 'प्राकृत विशेष'का निषेध करके 'अप्राकृत विशेष' की स्थापना करती हैं।

"अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः। स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥" [पुरुषोत्तम भगवान्के किसी प्रकारके प्राकृत हाथ, पैरादि नहीं हैं। किन्तु वे अपनी अचिन्त्य शक्तिके बलसे अपने अप्राकृत पैरोंसे इतनी तीव्रतासे चल सकते हैं जो अन्य किसीके लिये सम्भव नहीं है। वे अपने अप्राकृत हाथोंसे सर्वत्र ही भक्तोंके द्वारा निवेदित वस्तुओंको ग्रहण करते हैं। वे अप्राकृत नेत्रोंसे सर्वत्र दर्शन करते हैं। वे अप्राकृत कानोंसे भक्तोंके द्वारा किये गये उनके नाम, रूप, गुणादिका कीर्तन सदा श्रवण करते हैं। वे सर्वज्ञ हैं, तथापि उनके अप्राकृत स्वरूपको कोई प्राकृत व्यक्ति नहीं जान सकता। एकमात्र उनके ऐकान्तिक भक्त उनकी कृपासे

दिव्यज्ञान प्राप्त करके उनके अचिन्त्यनीय स्वरूपको जान सकते हैं।]—(श्वेताश्वतर उपनिषद् 3/19) आदि बहुतसी श्रुतियोंमें अप्राकृत-साकार- सच्चिदानन्दतत्त्वका वर्णन है॥ **133–141**॥

अनुभाष्य— *'उपनिषद्'*—आदिलीला, 2/5 संख्याके अनुभाष्यमें अन्वय और आदिलीला 7/106 संख्याका अनुभाष्य एवं 7/108 संख्याका अमृतप्रवाह भाष्य और अनुभाष्य देखें।

श्रील जीवगोस्वामीके तत्त्वसन्दर्भमें 10–11 संख्या और श्रीबलदेव विद्याभूषण-रचित टीका एवं "शास्त्रयोनित्वात्" (ब्रह्मसूत्र 1/1/3), "तर्काप्रतिष्ठानात्" (ब्रह्मसूत्र 2/1/11) एवं "श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात्" (ब्रह्मसूत्र 2/1/27) आदि सूत्रोंके श्रीभाष्य, श्रीमाध्वभाष्य, श्रीनिम्बार्कभाष्य और श्रीबलदेव-कृत गोविन्दभाष्य देखें। श्रीजीव प्रभुने 'सर्वसम्वादिनी' में लिखा है,—

"तथापि भ्रम-प्रमाद-विप्रलिप्सा-करणापाटव-दोषरहितवचनात्मकः शब्द एव मूलं प्रमाणम्। अन्येषां प्रायः पुरुष-भ्रमादि-दोषमयतयान्यथा-प्रतीति-दर्शनेन प्रमाणं वा तदाभासो वेति पुरुषैर्निर्णेतुमशक्यत्वात्, तस्य तदभावात्॥"

अर्थात् "प्रत्यक्षादि दस प्रकारके प्रमाण विद्यमान रहनेपर भी भ्रमादि चार प्रकारके दोषोंसे रहित वचनात्मक 'शब्द' या श्रुति ही मूल प्रमाण है; अन्यान्य प्रमाणोंके विषयमें मनुष्योंके वाक्यादि प्रायः ही भ्रमादि दोषोंसे युक्त होनेके कारण उनके द्वारा अन्य प्रकारकी प्रतीति देखी जाती है, इसलिये अन्य नौ प्रमाण वास्तवमें प्रमाण हैं या फिर प्रमाणाभास हैं, उसका निर्णय नहीं किया जा सकता, किन्तु वास्तव-दर्शनमूलक होनेके कारण शब्द प्रमाणमें इस प्रकारकी आशङ्का नहीं है।"

(ब्रह्मसूत्र 2/1/5)—'दृश्यते तु', इस सूत्रके भाष्यमें श्रीमन्मध्वाचार्यपादने इन 'भविष्यपुराण'के वचनोंको उद्धृत किया है—

'ऋग्यजुःसामाथर्वाश्च भारतं पञ्चरात्रकम्।
मूलरामायणञ्चैव 'वेद' इत्येव शब्दितः॥
पुराणनि च यानीह वैष्णवानि विदो विदुः।
स्वतःप्रामाण्यमेतेषां नात्र किञ्चित् विचार्यते॥"

अर्थात् "ऋक्, यजुः, साम और अथर्व, महाभारत, पञ्चरात्र और मूल-रामायणको 'वेद' कहा गया है। पण्डितगण जो सब वैष्णव अर्थात् सात्त्विक पुराण हैं, उन्हींको यहाँपर 'वेद'के रूपमें जानते हैं। इनके स्वतःप्रमाण-विषयमें किसी प्रकारका विचार (तर्क) नहीं चलता है॥"**133–137**॥

सविशेष श्रीभगवान् ही श्रुतिका उद्दिष्ट विषय :—
श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-नाटक (6/67) में उद्धृत
हयशीर्ष-पञ्चरात्रवचन—

या या श्रुतिर्जल्पति निर्विशेषं
सा साभिधत्ते सविशेषमेव।
विचारयोगे सति हन्त तासां
प्रायो बलीयः सविशेषमेव॥ 142॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **142**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जो जो श्रुति तत्त्ववस्तुको 'निर्विशेष' कहकर कल्पना करती है, वही-वही श्रुति अन्तमें सविशेष-तत्त्वको ही प्रतिपादित करती है। 'निर्विशेष' और 'सविशेष'—भगवान्के ये दोनों गुण ही नित्य हैं। इसका विचार करनेपर सविशेष-तत्त्व ही प्रबल हो जाता है; क्योंकि जगत्में सविशेष-तत्त्वका ही अनुभव होता है, निर्विशेष-तत्त्वका अनुभव नहीं होता॥ **142**॥

अनुभाष्य—

या या श्रुतिः (वेदमन्त्रः) निर्विशेषं (ब्रह्मनः विशेषरहितभावं केवलचिन्मात्रं) जल्पति (प्रकाशयति), सा सा श्रुतिः सविशेषं (नामरूपगुणलीलादिरूपम्) एव अभिधत्ते (मुख्यया अभिधया वृत्त्या वदति); हन्त तासां (श्रुतीनां) विचारयोगे सति (सूक्ष्मानुशीलनेन) प्रायः (सर्वतोभावेन) सविशेषं एव वलीयः (वेद-वचनानां मुख्यतात्पर्यम्)।

श्लोक-भावानुवाद—जो जो श्रुति तत्त्ववस्तुको केवल चिन्मात्र 'निर्विशेष' कहकर प्रकाश करती है, वही-वही श्रुति मुख्य अर्थात् अभिधा वृत्तिसे सविशेष-तत्त्वको ही

कहती है। श्रुतियोंका सूक्ष्मरूपसे विचार करनेपर सब प्रकारसे सविशेष-तत्त्व ही वेदोंका मुख्य तात्पर्य दिखलायी देता है॥ 142॥

श्रीभगवान् ही सभी कारकोंकी उद्दिष्ट-वस्तु :—

ब्रह्म हैते जन्मे विश्व, ब्रह्मेते जीवय।
सेइ ब्रह्मे पुनरपि हये याय लय॥ 143॥
'अपादान', 'करण', 'अधिकरण'—कारक तिन।
भगवानेर सविशेषे एइ तिन चिह्न॥ 144॥

अनुवाद—ब्रह्मसे ही इस विश्वकी सृष्टि होती है, ब्रह्मसे ही विश्वकी स्थिति रहती है और इसी ब्रह्ममें यह विश्व प्रलयके समय लीन हो जाता है। 'अपादान', 'करण' तथा 'अधिकरण'-ये तीन कारक ही भगवान्के सविशेष रूपके तीन चिह्न हैं॥ 143-144॥

अनुभाष्य—(ऐतःउः 1/1/1-2)—

"आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्।
नान्यत् किञ्चन मिषत्।
स इमान् लोकानसृजत।"

(श्वेःउः 4/9)—

"छन्दांसि यज्ञाः क्रु
भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति।
यस्मान् मायी सृजते विश्वमेतत्
तस्मिंश्चान्यो मायया संनिरुद्धः॥"

(तैःउःभृः 1अः)—

"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्मं।"

वारुणि-भृगुके द्वारा पिता वरुणसे ब्रह्मके सम्बन्धमें जिज्ञासा करनेपर उसके उत्तरमें वरुणके यह वचन हैं। इस मन्त्रमें 'यतः' (जिस ब्रह्मसे विश्वका उदय हुआ है)—अपादान-कारक है; 'येन' (जिस ब्रह्मके द्वारा विश्व पालित है)—करण-कारक है; 'यत' अर्थात् 'यस्मिन्' (जिस ब्रह्ममें विश्व प्रवेश करता है)—अधिकरण-कारक है। श्रीराघवेन्द्र-यति कृत टीका—

"अन्नमयं प्राणमयं चक्षुर्मयं श्रोत्रमयं मनोमयं वाङ्मयं विज्ञानमयं आनन्दमयश्च इत्येवं नामैकदेशे नामग्रहण-न्यायेन अयं निर्द्देशो ध्येयः। विज्ञानमयानन्दमय एवाप्युपलक्ष्यौ, एतेन ब्रह्मवल्ल्यां पञ्चरूपोक्ति-रूपलक्षणम्। चक्षुर्मय-वाङ्मय-श्रोत्रमया अपि ग्राह्या इत्युक्तं भवति। तथाह्युक्तं 'वाधूल'-शाखायाम्—"तस्माद्वा एतस्मात् अन्न-रसमयात् अन्योऽन्तर आत्मा वाङ्मयः। तस्माद्वा एतस्माद्वाङ्मयात् अन्योऽन्तर आत्मा चक्षुर्मयः। तस्माद्वा एतस्माच्चक्षुर्मयात् अन्योऽन्तर आत्मा श्रोत्रमयः। चक्षुर्मयत्वादेस्तु पूर्णदर्शनशक्तित्वाच्चक्षुर्मय इतिरितः।" इति ऐतरेयभाष्योक्तरीत्या पूर्णदर्शन-शक्तित्व-पूर्णश्रवणशक्तित्व-पूर्णवक्तृत्वशक्तिस्वरूपा वा। यत्प्रयन्ति प्रलये। यदभि-स्वेच्छया-संविशन्ति मुक्तौ, तद्विजिज्ञासस्व।" (भाः1/5/20)—"इदं हि विश्वं भगवानिवेतरो यतो जगत्स्थान-निरोधसम्भवाः।"

अर्थात् (एतेरेय उपनिषद्—) "सृष्टिके पूर्व एकमात्र परमेश्वर ही थे, उनके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था। उन्होंने ही इन समस्त लोकोंकी सृष्टि की है।" (श्वेताश्वतर उपनिषद्—) "वेदसमूह, सभी यज्ञ, समस्त क्रतु, व्रतसमुदाय, यह विश्व और वेदोंमें उक्त अन्यान्य भूत एवं भविष्यत् जो कुछ है, सभीकी मायाके अधीश्वर परमात्माने सृष्टि की है—जिससे अन्य सभी जीव उस मायासे बद्ध होकर रह रहे हैं।" (तैत्तिरीय उपनिषद्—) "जिनसे ये समस्त जीव उत्पन्न हुए हैं, जिनके द्वारा ही उन सब जीवोंका पालन होता है, जिनमें धावित होकर जीव अन्तमें लीन होते हैं, उनको ही विशेषरूपसे जाननेकी इच्छा करो, वे ही ब्रह्म हैं।" (श्रीराघवेन्द्र यतिकृत टीका—) "नामके एकदेश-ग्रहणके द्वारा वही नाम ही गृहीत होता है—इस न्यायानुसारसे 'अन्नं प्राणं चक्षुः श्रोत्रं मनोवाचं', इनके द्वारा अन्नरसमय, प्राणमय, चक्षुर्मय, श्रोतमय, मनोमय, वाङ्मय, विज्ञानमय, आनन्दमय ब्रह्म इस क्रमसे ऐसे निर्देश चिन्तनीय है। (उनमें) विज्ञानमय, आनन्दमय ये दो उपलक्ष्य (प्रयोजनीय) हैं; इसी कारण ब्रह्मवल्लीमें कथित पाँचरूप (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय)-उक्ति उपलक्षण हैं। यहाँपर चक्षुर्मय, वाङ्मय, श्रोतमय भी ग्रहणीय कहे गये हैं। वह 'बाधुल-शाखा'में दिखायी देता है, जैसे,—'वह

इस अन्नरसमयसे भिन्न अन्य एक आत्मा वाङ्मय है। वह इस वाङ्मयसे भिन्न अन्य एक आत्मा चक्षुर्मय है। वह इस चक्षुर्मयसे भिन्न अन्य एक आत्मा श्रोतमय है। चक्षुर्मयत्व आदिका पूर्णदर्शनशक्तित्व होनेके कारण चक्षुर्मय कहा गया है। अथवा ऐतरेय-भाष्यमें कथित रीतिके अनुसारसे पूर्णदर्शनशक्तित्व, पूर्णश्रवणशक्तित्व, पूर्णवक्तृत्वशक्तिस्वरूप है। 'यत्प्रयन्ति' अर्थात् प्रलयकालमें जीवगण जिनके प्रति (जिनकी ओर) गमन करते हैं। 'यदभिसंविशन्ति'—मुक्तगण स्वेच्छासे जिनमें सम्यक् प्रवेश करते हैं, उनको विशेषरूपसे जाननेकी इच्छा करो।" (श्रीमद्भागवतमें—) "यह विश्व भगवान्‌का अंशस्वरूप है अर्थात् उनसे प्रपञ्च पृथक् नहीं है; परन्तु इस प्रपञ्चसे भगवान् पृथक् हैं, जिनसे इस जगत्‌की सृष्टि-स्थिति-प्रलय होती है।"

भाः (6/4/30) श्लोककी श्रीधर स्वामीकी टीका देखें॥ 143-144॥

अद्वयज्ञान (एक) श्रीकृष्णसे अनेक प्रकाश
ही प्रत्यक् अथवा श्रौत सिद्धान्त है,
अनेकसे एकका सिद्धान्त—अश्रौत :—

भगवान् अनेक हैते यबे कैल मन।
प्राकृत-शक्तिते तखन कैल विलोकन॥ 145॥

अनुवाद—भगवान्‌ने जब एकसे अनेक होनेकी इच्छा की, तब उन्होंने प्राकृत शक्तिके ऊपर दृष्टिपात किया॥ 145॥

अनुभाष्य—(छाःउः 6ठा प्रः 2/3)—

"तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति।"

(तैःउः 2/6/1)—

"सोऽकामयत् बहु स्यां प्रजायेयेति॥"

[(छाःउः)—उन सच्चिदानन्द भगवान्‌ने सङ्कल्प किया कि अनन्त चिद्-अचिद्‌मिश्र व्यष्टि जगत्‌रूपमें मैं ही अनेक हो जाऊँ। (तैःउः)—उन सच्चिदानन्द भगवान्‌ने कामना की मैं अनेक हो जाऊँ]॥ 145॥

पहले मायाके प्रति दृष्टि-निक्षेप, उसके फलस्वरूप सृष्टि,
इसलिये भगवान्‌की दृष्टि-दर्शनादि-अप्राकृत :—

से काले नाहि जन्मे 'प्राकृत' मन-नयन।
अतएव 'अप्राकृत' ब्रह्मेर नेत्र-मन॥ 146॥

अनुवाद—सृष्टिसे पहले 'प्राकृत' मन और नेत्रोंकी उत्पत्ति ही नहीं हुई थी, इसलिये यह प्रमाणित होता है कि ब्रह्मके नेत्र और मन अप्राकृत हैं॥ 146॥

अनुभाष्य—सृष्टि करनेके उद्देश्यसे प्राकृतशक्तिपर दृष्टिपात करनेसे पहले उन्होंने अप्राकृत नेत्रोंके द्वारा दृष्टिपात किया था। उस दर्शनके समय प्राकृत नेत्रोंकी सृष्टि नहीं हुई थी, क्योंकि प्राकृत-सृष्टि यदि उससे पहले हुई होती, तो उनकी सृष्टि-प्रवृत्तिका उल्लेख करनेकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती। तब सविशेष-ब्रह्मका नित्य अप्राकृत मन था, जिसके द्वारा उन्होंने प्राकृत सृष्टिका मनन किया था और उनके नित्य अप्राकृत नेत्र भी थे, जिनके द्वारा उन्होंने प्रकृति-शक्तिपर दृष्टिपात किया था॥ 146॥

विभुचित् या विष्णु-परतत्त्व श्रीकृष्ण ही भगवान् :—

ब्रह्म-शब्दे कहे पूर्ण स्वयं भगवान्।
स्वयं भगवान् कृष्ण,—शास्त्रेर प्रमाण॥ 147॥

अनुवाद—'ब्रह्म'-शब्दका अर्थ पूर्ण स्वयं भगवान् है और श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं,—यह शास्त्रोंका प्रमाण है॥ 147॥

अनुभाष्य—"शास्त्रयोनित्वात्" (ब्रः सूः 1/1/3) इस सूत्रके भाष्यमें श्रीमन्मध्वाचार्यपादने कहा है—

"ऋग्यजुःसामाथर्वाश्च भारतं पञ्चरात्रकम्।
मूलरामायणञ्चैव शास्त्रमित्यभिधीयते॥
यच्चानुकूलमेतस्य तच्च शास्त्रं प्रकीर्त्तितम्।
अतोऽन्यग्रन्थविस्तारो नैव शास्त्रं कुवर्त्म तत्॥ इति स्कान्दे।"

अर्थात् ऋक, यजुः, साम और अथर्ववेद, महाभारत (पुराणसहित) सात्वत-तन्त्र, पञ्चरात्र और मूल रामायण-यही 'शास्त्र'-शब्दसे कहे जाते हैं तथा इनके अनुकूल ग्रन्थ

भी शास्त्रोंमें गिने जाते हैं; इनके अतिरिक्त अन्य जो सब ग्रन्थ हैं, वे शास्त्र ही नहीं है, परन्तु उन्हें 'कुवर्त्म' अर्थात् 'कुमार्ग' कहते हैं। आदिलीला, दूसरा अध्याय देखें॥ 147॥

वेदके अर्थको पूर्ण करनेवाले और अति पुराने युगोंमें प्रकाशित होनेके कारण पुराण अर्थात् प्राचीन नाम :—

वेदेर निगूढ़ अर्थ बुझन ना हय।
पुराण-वाक्ये सेइ अर्थ करय निश्चय॥ 148॥

अनुवाद—वेदोंके गूढ़ अर्थ सरलतासे समझमें नहीं आते, इसलिये पुराण वाक्योंके द्वारा उन अर्थोंको अच्छी प्रकारसे समझा जा सकता है॥ 148॥

अमृतप्रवाह भाष्य—"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते"—(तैः धृः 1) आदि श्रुतिवाक्योंमें यह पाया जाता है, 'यह चराचर विश्व ब्रह्मसे ही जन्म लेता है, ब्रह्मके द्वारा ही जीवित रहता है और उसी ब्रह्ममें ही पुनः लीन हो जाता है।' इन सब वेदवाक्योंके द्वारा परब्रह्मके 'अपादान', 'करण' और 'अधिकरण'-कारकत्व रूपी तीन प्रकारके लक्षण हैं। इन तीन प्रकारके नित्य-लक्षणोंके द्वारा भगवान् नित्य-सविशेषरूपमें व्यक्त होते हैं। "बहु स्याम्" (तैःउःब्रः 6 अः) आदि श्रुति-मतानुसार भगवान्ने जब अनेक होनेकी इच्छा की, तब "स ऐक्षत" (ऐतःउः 1/1) इस वाक्यके मतानुसार प्राकृत-शक्तिपर उन्होंने दृष्टिपात किया। उस समय प्राकृत मन और नेत्रोंकी सृष्टि नहीं हुई थी; इसलिये भगवान्ने जिस मनमें चिन्ता की, जिस नयनसे प्रकृतिके प्रति दृष्टिपात किया, वे मन और नेत्र प्राकृत सृष्टिके पहले ही थे। इसलिये परब्रह्मके स्वरूपगत अप्राकृत नेत्र और मन थे—यह सभी वेदोंके द्वारा सम्मत है। उपनिषद् वाक्योंमें प्रायः सर्वत्र ही 'ब्रह्म'-शब्द पाया जाता है। वही ब्रह्म ही अपनी पूर्ण अवस्थामें स्वयं भगवान् है,—यही वेदसम्मत है और शास्त्र-प्रमाणके द्वारा भी यही सिद्ध हो रहा है कि श्रीकृष्ण ही वही स्वयं भगवान् हैं। यदि कहें, वेदोंमें इस प्रकारसे स्पष्ट वाक्य नहीं है (या फिर दिखाई नहीं देते), तब विचार करके देखो,—वेद वाक्योंके अर्थसमूह अत्यन्त निगूढ़ हैं। महर्षियोंने वेदवाक्योंके तात्पर्यको जगत्में समझानेके लिये पुराण-वाक्योंके द्वारा वेदोंके तात्पर्यका निर्णय किया है॥ 143–148॥

अनुभाष्य—श्रीजीवप्रभु-कृत तत्त्वसन्दर्भकी 12–17 संख्या और श्रीबलदेव-कृत टीका देखें॥ 148॥

श्रीमद्भागवत (10/14/32)—

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्॥ 149॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 149॥

अमृतप्रवाह भाष्य—नन्द-गोप और व्रजवासियोंके भाग्यकी कोई सीमा नहीं है, क्योंकि परमानन्दस्वरूप पूर्णब्रह्म-सनातन उनके मित्ररूपमें प्रकट हुए हैं॥ 149॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णके द्वारा ब्रह्माका अभिमान चूर्ण-विचूर्ण होनेपर ब्रह्मा एकान्त शरणागत होकर श्रीकृष्णका स्तव करते-करते श्रीकृष्णप्रिय व्रजवासियोंके अत्यधिक प्रेम-सौभाग्यकी प्रशंसा कर रहे हैं—

नन्द-गोपव्रजौकसां (नन्दराजप्रमुख-पञ्चरसावस्थितानां व्रजवासिनाम्) अहो भाग्यं; यत् (येषां व्रजवासिनां) मित्रं सनातनं (नित्यकालप्रकटितं) पूर्णम् (अखण्डं) परमानन्दं (सच्चिद्घनानन्दं), ब्रह्म।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 149॥

श्रुतिमन्त्रोंमें जड़विशेषका खण्डन करके अप्राकृत सच्चिदानन्द-विग्रहत्व ही उद्दिष्ट :—

'अपाणि-पाद'-श्रुति वर्जे 'प्राकृत' पाणि-चरण।
पुनः कहे,—शीघ्र चले, करे सर्व ग्रहण॥ 150॥

अनुवाद—'अपाणि-पाद'-श्रुतिवचन ब्रह्मके 'प्राकृत' हाथ-पैर होनेका निषेध करती है, फिर वही श्रुति यह भी कहती है कि ब्रह्म तेजीसे चलते हैं और उनको अर्पित सब वस्तुओंको वे ग्रहण भी करते हैं॥ 150॥

अनुभाष्य—(श्वेःउः 3/19)—

"अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः। स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥"

अर्थात् "पुरुषोत्तम भगवान् अपने अप्राकृत सच्चिदानन्द स्वरूपमें सदा विराजमान हैं। उनके किसी प्रकारसे प्राकृत पैर-हाथादि नहीं हैं, किन्तु अपनी अचिन्त्यशक्तिके बलसे वे उन अप्राकृत पैरोंसे चलते हैं, हाथोंसे भक्तोंके द्वारा अर्पित द्रव्योंको गहण करते हैं। केवल ऐसा ही नहीं है, उनके पैरोंसे चलनेकी गति इतनी अधिक है कि इस जगत्की किसी भी शक्तिके प्रयोगसे उतना गतिशील नहीं हुआ जा सकता। इसीके अनुरूप उनके अप्राकृत दोनों हाथ सर्वत्र विराजमान हैं, क्योंकि वे प्रेमीभक्तोंकी निवेदित वस्तुको सादर ग्रहण करते हैं। उनके प्राकृत नेत्र नहीं होनेपर भी वे उन अप्राकृत नेत्रोंके द्वारा सभीके द्रष्टा हैं। उनके प्राकृत कान नहीं होनेपर भी वे अपने अप्राकृत कानोंके द्वारा प्रेमी भक्तोंके द्वारा किया गया अपने अप्राकृत नाम-रूप-गुणादिका कीर्तन श्रवण करते हैं। वे सर्वज्ञ हैं, परन्तु उनके अप्राकृत स्वरूपको कोई प्राकृत व्यक्ति नहीं जान सकता। एकमात्र जो उनके ऐकान्तिक भक्त हैं, वे उनकी कृपासे दिव्यज्ञान प्राप्त करके उनके असमोर्द्ध अचिन्त्य स्वरूपको जान पाते हैं॥"150॥

मुख्यवृत्तिमें सविशेषत्व और गौणवृत्तिमें निर्विशेषत्व :—

अतएव श्रुति कहे, ब्रह्म—सविशेष।
'मुख्य' छाड़ि' 'लक्षणा'ते माने निर्विशेष॥151॥

अनुवाद—इसलिये श्रुतियाँ ब्रह्मको सविशेष कहती हैं। परन्तु मुख्य अभिधावृत्तिको छोड़कर लक्षणावृत्ति ग्रहण करनेवाले (मायावादी) ब्रह्मके स्वरूपको निर्विशेष रूपमें ही स्वीकार करते हैं॥151॥

अनुभाष्य—पूर्व-उल्लिखित श्रुतिके वचनोंने ब्रह्मके विशेषत्वका ही निरूपण किया है; किन्तु मुख्य अभिधावृत्तिका त्याग करके लक्षणाके द्वारा मायावादी निर्विशेष-मतवादकी स्थापना करते हैं। लक्षणाके द्वारा सिद्ध निर्विशेषत्व भी विशेषवादका ही एक परिचय मात्र है; जड़-जगत्की विशेषताओंसे ब्रह्मका पार्थक्य स्थापन करना उसका उद्देश्यमात्र है॥151॥

चिद्विलासका निर्विलासके रूपमें स्थापन ही मायावाद :—

षड़ैश्वर्यपूर्णानन्द-विग्रह याँहार।
हेन-भगवाने तुमि कह निराकार?॥152॥
स्वाभाविक तिन शक्ति येइ ब्रह्मे हय।
'निःशक्तिक' करि' ताँरे करह निश्चय?॥153॥

अनुवाद—जिनका षड़ैश्वर्यपूर्ण सच्चिदानन्द विग्रह है, उन भगवान्को आप निराकार कह रहे हैं? जिन ब्रह्मकी तीन स्वाभाविक शक्तियाँ हैं, क्या आप यह प्रमाणित करना चाहते हैं कि वे 'निःशक्तिक' अर्थात् शक्तिहीन हैं?॥152-153॥

अमृतप्रवाह भाष्य—"अपाणिपादो जवनो ग्रहीता" (श्वेः उः 3/19)—यह श्रुति वाक्य है। ब्रह्मके 'प्राकृत हाथ-पैर नहीं हैं' ऐसा पहले कहकर बादमें 'शीघ्र चलते हैं और सभी वस्तुओंको ग्रहण करते हैं'—इस वाक्यके द्वारा 'अप्राकृत हाथ-पैर हैं' कहकर ब्रह्मको 'सविशेष' स्थापित किया है। श्रुतिके मुख्यार्थको छोड़कर लक्षणा-वृत्तिसे ब्रह्मके सविशेष-निषेधक निर्विशेषत्वका अन्यायरूपमें स्थापन कर रहे हैं। मायावादी ब्रह्मको नित्य निराकार कहकर स्थापित करते हैं, परन्तु शास्त्रके मतानुसार वे ब्रह्म षड़ैश्वर्य-पूर्णानन्द-विग्रहवाले भगवद्-स्वरूपमें नित्य विराजमान हैं। मायावादी ब्रह्मको 'निःशक्तिक' कहकर स्थापित करते हैं, किन्तु 'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते" (श्वेः उः 6/8)—आदि अनेक वेदवाक्यमूलक शास्त्र वाक्योंमें उन ब्रह्मकी तीन स्वाभाविक शक्तियाँ स्वीकृत हुई हैं॥150-153॥

अनुभाष्य—शक्तिको अज्ञानके द्वारा उत्पन्न अनित्य विशेष-अवस्था माननेके कारण केवलाद्वैतवादियोंका विचार है कि निःशक्तित्व ही ब्रह्मका लक्षण है। किन्तु ब्रह्ममें तीन शक्तियाँ नित्य विराजमान होनेपर भी काल्पनिक

गुणोंका आरोपवाद आदि विचारोंकी सहायतासे ब्रह्मको शक्तिहीन कहकर निर्धारित करनेका कोई प्रयोजन नहीं है॥ 153॥

विष्णुपुराण (6/7/61-63)—

विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथापरा।
अविद्या कर्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते॥ 154॥

अनुवाद—विष्णुशक्ति—परा, क्षेत्रज्ञा और अविद्या नामक, तीन प्रकारकी है। विष्णुकी पराशक्ति ही 'चित्-शक्ति' है, क्षेत्रज्ञा शक्ति ही 'जीवशक्ति' है (जिसको मायारूपा 'अविद्या' से 'अपरा' अर्थात् भिन्ना कहा गया है) और कर्म नामक अविद्याशक्तिका नाम 'माया' है॥ 154॥

अनुभाष्य—आदिलीला 7/119 संख्या देखें॥ 154॥

यया क्षेत्रज्ञशक्तिः सा वेष्ठिता नृप सर्वगा।
संसारतापानखिलानवाप्नोत्यत्र सन्ततान्॥ 155॥

तया तिरोहितत्वाच्च शक्तिः क्षेत्रज्ञसंज्ञिता।
सर्वभूतेषु भूपाल तारतम्येन वर्त्तते॥ 156॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 155-156॥

अमृतप्रवाह भाष्य—क्षेत्रज्ञ-शक्ति ही जीवशक्ति है; वह जीवशक्ति सर्वज्ञ होनेपर भी मायावृत्तिरूप अविद्याके द्वारा आवृत्त होकर संसारके समस्त तापोंको नित्य भोग करती है। और, वही 'क्षेत्रज्ञ'-नामक शक्ति अविद्या-कुण्ठासे आवृत होकर, हे भूपाल, सभी जीवोंमें तारतम्यके सहित वर्तमान रहती है। तात्पर्य यह है, भगवान्‌की चिद्-शक्ति—सर्वश्रेष्ठा, जीव-शक्ति—मध्यमा और अविद्या-कर्म कहलानेवाली माया शक्ति—अधमा है। जीवशक्ति मायाके द्वारा आवृत होकर अर्थात् चिद्-शक्तिकी वृत्तिसे दूर होकर संसारके तापोंको भोगती है। वह चिद्-शक्तिसे दूर रहते हुए अपने द्वारा किये हुए कर्मोंके चक्रमें प्रवेश करके ऊँची-नीची अवस्थाएँ प्राप्त करती है॥ 155-156॥

अनुभाष्य—

हे नृप, सर्वगा (चिज्जड़ोभयगामिनी) सा क्षेत्रज्ञशक्तिः (जीवाख्यशक्तिः) यया (अविद्यया भगवद्विमुखया मायया) वेष्टिता (आवृता); अत्र (देवीधामनि संसारे) सा सन्ततान् (नानाकर्म-फलभोगजन्यान्) अखिलान् (नानाविधान्) तापान् अवाप्नोति (लभते)॥ हे भूपाल, तया (अविद्यया) तिरोहितत्वात् (गुणमायासङ्गहीनात्) क्षेत्रज्ञ-संज्ञिता शक्तिः (जीवशक्तिः) [भगवद्वैमुख्यविधायिन्यविद्या-वर्त्तमानत्वात्] सर्वभूतेषु तारतम्येन् वर्त्तते (अविद्यया वरावरा च मन्यते)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 155-156॥

विष्णुपुराण (1/12/69)—

ह्लादिनी सन्धिनी सम्वित् त्वय्येका सर्वसंश्रये।
ह्लादतापकरी मिश्रा त्वयि नो गुण-वर्जिते॥ 157॥

अनुवाद—हे भगवन्! आप सभीके आश्रय और निर्गुण हैं। आपमें स्थित त्रिविधरूप शक्ति 'ह्लादिनी', 'सन्धिनी' और 'सम्वित्', तीनों चिन्मय हैं। मायाके वशमें होने योग्य चित्-कण जीव जब मायामें आविष्ट होकर मायाके तीन गुणोंका आश्रय करते हुए जिस अवस्थाको प्राप्त करते हैं, उस अवस्थामें वह शक्ति 'ह्लादकारी' (सात्त्विक), 'तापकरी' (तामसिक) और 'मिश्रा' (राजसिक)—इन तीन प्रकारके भावोंको प्राप्त करती है। किन्तु सभी गुणोंसे अतीत आपमें यह शक्ति निर्मल और निर्गुणस्वरूपमें एकाकार होकर रहती है॥ 157॥

अनुभाष्य—आदिलीला, 4/63 संख्या देखें॥ 157॥

शक्तिमान् भगवान्‌की तीन शक्तियाँ :—

सच्चिदानन्दमय हय ईश्वर-स्वरूप।
तिन अंशे चिच्छक्ति हय तिन रूप॥ 158॥

आनन्दांशे 'ह्लादिनी', सदंशे 'सन्धिनी'।
चिदंशे 'सम्वित्', यारे कृष्णज्ञान मानि॥ 159॥

अन्तरङ्गा—चिच्छक्ति, तटस्था—जीवशक्ति।
बहिरङ्गा—माया,—तिने करे प्रेमभक्ति॥ 160॥

चिद्‌विलासकी निर्विशेषरूपमें धारणा—दम्भमात्र :—

षड़्‌विध ऐश्वर्य—प्रभुर चिच्छक्ति-विलास।
हेन शक्ति नाहि मान,—परम साहस॥ 161॥

भगवान् और जीवका नित्य भेद,
केवल-अभेदवाद—नास्तिकता :—

'मायाधीश'-'मायावश'—ईश्वरे-जीवे भेद।
हेन-जीवे ईश्वर-सह कह त' अभेद॥ 162॥

गीतामें 'जीव'—भगवदच्छक्ति :—

गीताशास्त्रे जीवरूप 'शक्ति' करि' माने।
हेन-जीवे 'भेद' कर ईश्वरेर सने॥ 163॥

अनुवाद—ईश्वरका स्वरूप सच्चिदानन्दमय है। तीन अंशोंमें भगवान्‌की एक ही चिद्-शक्ति तीन रूपोंमें प्रकाशित होती है। आनन्द-अंशसे 'ह्लादिनी', सत्-अंशसे 'सन्धिनी' और चित्-अंशसे 'सम्वित्', वही सम्वित् ही श्रीकृष्ण-सम्बन्धीय ज्ञान है। 'अन्तरङ्गा' अर्थात् चिद्-शक्ति स्वयं, 'तटस्था' अर्थात् जीवशक्ति, 'बहिरङ्गा' अर्थात् मायाशक्ति—तीनों शक्तियाँ ही भगवान्‌की प्रेममयी सेवा करती हैं। भगवान्‌का षड़्‌विध ऐश्वर्य ही उनकी चिद्-शक्तिका विलास है। उनकी ऐसी शक्तिको नहीं मानते हो, तो यह आपका दुःसाहस या धृष्टता है। ईश्वर मायाधीश हैं और जीव मायाके वशमें होने योग्य है, ऐसे जीवको ईश्वरके साथ अभेद कहते हो। गीताशास्त्रमें जीवको भगवान्‌की शक्ति कहा गया है, तो भी आप कहते हैं कि जीव और भगवान्‌में पूर्णतया भेद है (अमृतप्रवाह भाष्य देखें) ॥ 158-163॥

अमृतप्रवाह भाष्य—वेद-वेदान्त-मतानुसार—ईश्वर, जीव और माया, इन तीन तत्त्वोंका स्वरूप और सम्बन्ध जानना आवश्यक है। सर्वप्रथम ईश्वरके स्वरूपको जानना अति आवश्यक है। ईश्वरका स्वरूप सच्चिदानन्दमय ही है। भगवान्‌की एक चिद्-शक्ति ही 'सत्', 'चित्' और 'आनन्द'—इन तीन अंशोंमें तीन रूपोंमें प्रकाशित होती है। आनन्द-अंशसे 'ह्लादिनी', सत्-अंशसे 'सन्धिनी' और चित्-अंशसे 'सम्वित्'। वही सम्वित् ही श्रीकृष्ण-सम्बन्धीय ज्ञान है। ईश्वरकी स्वरूपशक्ति तीन स्वरूपोंमें प्रकाशित होती है—'अन्तरङ्गा' अर्थात् चिद्-शक्ति स्वयं, 'तटस्था' अर्थात् जीवशक्ति, 'बहिरङ्गा' अर्थात् मायाशक्ति। इन तीन प्रकाशोंमें ह्लादिनी, सन्धिनी और सम्वित्‌के क्रियानुसार तीन-तीन भाव समझने चाहिये। चिद्-शक्ति अपनी ह्लादिनी और सम्वित्‌के मिलितसार (भक्ति), जीवको प्रदान करनेके बाद, जीवशक्ति यदि उसको ग्रहण करती है, तब निष्कपट-चिद्-शक्तिके प्रभावसे मायाशक्तिका आवरण-विक्षेपात्मक अचित्-विक्रम दूर होकर जीवको कृष्णप्रेमभक्तिका अधिकारी बना देता है। परमेश्वरका षड़्‌विध ऐश्वर्य ही उनका ऐश्वर्य विलास है; उनको 'निराकार', 'निःशक्तिक' कहनेसे अत्यन्त अवैदिक वाक्यका प्रयोग होता है। ईश्वर—स्वभावतः ही मायाके अधीश्वर हैं; जीव—स्वभावतः ही अणु-चैतन्य होनेके कारण मायाके वशमें होने योग्य है।

मुण्डकोपनिषद् (3/1/1-2)में कहा गया है—

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति॥
समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यनन्यमीशमस्य महिमानमेति वीतशोकः॥"

अर्थात् "प्रत्येक जीवके देहरूप वृक्षमें परमात्मा और आत्मा, दोनों सख्यभावसे नित्य वास करनेपर भी जीवात्मा विवर्तवशः अपने पुराने और वर्तमान कर्मफलोंका भोक्ता है, इसी अभिमानमें आसक्त होता है। किन्तु परमात्मा यद्यपि उसी वृक्षमें अवस्थान करते हैं, किन्तु वे किसीरूपमें कर्मफलके भोक्ता नहीं हैं, केवल साक्षीरूप और प्रयोजककर्त्ताके रूपमें अवस्थान करते हैं। माया उनको स्पर्श नहीं कर पाती। जीवका तटस्थ धर्म और बहिर्मुख वृत्ति होनेके कारण वह सब समय मायाके तीन तापोंसे दग्ध होता है। जीव यदि किसी रूपमें अज्ञात पारमार्थिक सुकृति लाभ करे, तभी वह स्वयंको मायाके हाथोंसे छूटनेमें असहाय और बलहीन पाता है और तब वह चिद्‌बल पानेके लिये व्याकुल

होता है। तब साक्षी पुरुषरूपी परमात्मा उसको तत्त्वज्ञ और तत्त्वदर्शी गुरुके द्वारा कृपा प्रदान करते हैं। उस कृपाको ग्रहणकर वह गुरुके आनुगत्यमें भक्ति करते हुए भगवान्के सच्चिदानन्दरूपको जानकर मायासे अतीत वैकुण्ठ या गोलोकमें भगवान्की नित्य सेवा प्राप्त करता है।"

अर्थात् 'ईश्वरको भूलनेपर जीव दण्डका भागीदार होता है, ईश्वरके द्वारा बनाये गये कारागारकी रक्षयित्री माया उस अपराधके कारण जीवको कारागारमें बन्द करके दण्ड देती है।' यहाँपर यह प्रमाणित होता है कि ईश्वर स्वभावतः मायाके अधीश हैं, मायाके वशीभूत नहीं।

जीवके स्वभावमें मायारहित सत्ता रहनेपर भी मायाके वशमें होने योग्य एक धर्म है, उसीका नाम ही 'तटस्थत्व' है, इसलिये जीवको तटस्थ कहा जाता है। जब जीवमें ऐसा स्वभावगत (मायाके वशीभूत होने योग्य) और स्वरूपगत (मायारहित सत्ता) नित्य भेद है, तब ऐसा नहीं कह सकते कि किसी विशेष अवस्थामें जीव ईश्वरसे अभेद है। और, गीताशास्त्रमें जीवोंको 'शक्ति' कहा गया है, तब "शक्तिशक्तिमतोरभेदः" इस वेदान्त वाक्यके अनुसार ईश्वरके साथ जीवका जो अभेद बतलाया गया है, उसे भी स्वीकार करनेके लिये हम बाध्य है। ईश्वर और जीव तत्त्वका यही अचिन्त्यभेदाभेद ही रहस्य है॥ **158–163**॥

अनुभाष्य—आदिलीला 4/61–62 संख्या देखें॥ **158–159**॥

भगवान्की गुण-माया और जीव-माया :—

श्रीमद्भवदगीता (7/4–5)—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्न प्रकृतिरष्टधा॥ 164॥

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥ 165॥

अनुवाद—मेरी बहिरङ्गा प्रकृति भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहङ्कार—इन आठ भागोंमें विभक्त है। किन्तु, आठ भेदोंवाली यह जड़ा प्रकृति निकृष्टा है। इससे उत्कृष्ट जीवस्वरूपा मेरी एक और प्रकृति जानो, जिसके द्वारा यह जगत् अपने कर्मके द्वारा भोगनेके लिये गृहीत होता है॥ **164–165**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहङ्कार—ये आठ मेरी ही अपरा शक्तिकी विशेष वृत्तियाँ हैं; जीवतत्त्व इससे पृथक् है॥ **164–165**॥

अनुभाष्य—अर्जुनके प्रति भगवान् श्रीकृष्णकी उक्ति–

भूमिः, आपः, अनलः, वायुः, खं, मनः, बुद्धिः, अहङ्कारः च इति अष्टधा मे (मम) भिन्ना प्रकृतिः (बहिरङ्गाख्या शक्तिः) एव। (भूम्यादि-शब्दैः पञ्च महाभूतानि, सूक्ष्मभूतैः रूपरसगन्ध-शब्दस्पर्शादिभिः सहैकीकृत्य संगृह्यन्ते; अहङ्कार-शब्देन तत्तत्कार्यभूतानीन्द्रियाणि वाक्पाणिपादपायुपस्थानि तत्तत्कारण-भूतमहत्तत्त्वमपि गृह्यते। बुद्धिमनसोः पृथगुक्तिस्तत्त्वेषु तयोः प्राधान्यात्)।

श्लोक-भावानुवाद—भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहङ्कार,—यह मेरी आठ प्रकारकी बहिरङ्गा कहलानेवाली शक्ति है। (भूमि आदि शब्दसे पाँच महाभूत और उनके साथ सूक्ष्मभूत रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्दादि पाँच तन्मात्राएँ मिलाकर जानना होगा; अहङ्कार शब्दसे उन-उन कार्योंको करनेवाली इन्द्रियाँ—वाणी, हाथ, पैर, मल-मूत्र द्वार तथा उनके कारणस्वरूप महत्तत्त्वको ग्रहण करना होगा। बुद्धि और मनको उनकी प्रधानताके कारण अलग तत्त्व कहा गया है।)

श्लोक संख्या 165 के लिये आदिलीला 7/118 संख्या देखें॥ **164–165**॥

भगवद्-विग्रह—सच्चिदानन्दमय :—

ईश्वरेर श्रीविग्रह सच्चिदानन्दाकार।
से-विग्रहे कह सत्त्वगुणेर विकार॥ 166॥

नित्यचिद्विलास अस्वीकार पाषण्डता-मात्र :—

श्रीविग्रह ये ना माने, सेइ त' पाषण्ड।
अस्पृश्य, अदृश्य सेइ, हय यमदण्ड्य॥ 167॥

अनुवाद—भगवान्‌का श्रीविग्रह सच्चिदानन्दमय है, किन्तु आप उस श्रीविग्रहको सत्त्वगुणका विकार कह रहे हैं। भगवान्‌के श्रीविग्रहको जो नहीं मानता है, वह पाखण्डी है। उस व्यक्तिको स्पर्श नहीं करना चाहिये, उसको देखना भी नहीं चाहिये, वह तो यमके द्वारा दण्डित होने योग्य है॥ 166–167॥

अमृतप्रवाह भाष्य—वेदशास्त्रके मतानुसार ईश्वरका सच्चिदानन्द विग्रह नित्य हैं। निराकार-धर्म—प्राकृत सत्वगुणके विपरीत रूपसे विशेष विकार है, अर्थात् जड़ीय सत्त्वमें जो आकार है, उसका निषेध करने वाला विशेष भाव है। प्रकृतिसे अतीत जो चिन्मय-विग्रह है, उसका आकार भी चिन्मय है। मायिक सत्त्वका निराकारत्व उसको स्पर्श नहीं कर सकता। ऐसे श्रीविग्रहको जो नहीं मानता, उसकी गिनती 'पाखण्डियों' में होती है॥ 166–167॥

अनुभाष्य—आदिलीला 7/113 संख्या देखें।

जो भगवान्‌के नित्य रूप-गुण-लीलामय विग्रहको प्राकृतिक सत्त्वगुणोंका विकार, अथवा समस्त अज्ञानका आधारमात्र समझकर अप्राकृत विग्रहके नित्य सेवा-परायण नहीं होते, वे पाखण्डी हैं। अर्थात् अनित्य काल्पनिक पाँच-देवताओंकी मिथ्या उपासना और भक्तिको एक समान माननेके कारण वे श्रीकृष्णके नित्य दासके पदसे गिर जाते हैं। भक्त उन पाखण्डियोंको स्पर्श नहीं करते और उसको देखते भी नहीं है, क्योंकि वे न्याय या अन्यायमय कर्मोंके द्वारा जड़ीय-भोगके लिये अथवा भोग-त्याग करनेके लिये अनात्माको (शरीरको) आत्मा मानकर वरण करते हैं। इस कारण वे भगवान्‌के नित्यविग्रह और लीलाको भी अपने सांसारिक भोग योग्य विषय ही समझते हैं। भक्तिविरोधी जड़ीय भोग-त्याग करनेपर भी उन्हें यमदण्ड भोगना ही पड़ेगा। केवलमात्र भक्तलोग ही पाखण्ड या यमदण्डके अधिकारमें नहीं हैं॥ 167॥

मायावादी मुखसे वैदिक होनेपर भी प्रच्छन्न बौद्ध :—

वेद ना मानिया बौद्ध हय त' नास्तिक।
वेदाश्रय नास्तिक्यवाद बौद्धके अधिक॥ 168॥

अनुवाद—बौद्ध लोग वेदोंको नहीं मानते हैं, इसलिये वे 'नास्तिक' कहलाते हैं। किन्तु जो वेदोंका आश्रय लेकर भी नास्तिक्य-वादको मानते हैं, वे मायावादी बौद्धोंसे भी अधिक निन्दनीय हैं॥ 168॥

अमृतप्रवाह भाष्य—बौद्ध शाक्यसिंह वेदविधिको नहीं मानता था, वैदिक आर्यगण उसको 'नास्तिक' कहकर निन्दा करते हैं। किन्तु मायावादी वेदोंका आश्रय करके जो नास्तिक्यवाद प्रकाश कर रहे हैं, वह बौद्धवादकी अपेक्षा अधिकतर निन्दनीय है; क्योंकि स्पष्ट शत्रुकी अपेक्षा मित्ररूपमें आया छिपा हुआ शत्रु बहुत अधिक भयङ्कर होता है॥ 168॥

अनुभाष्य—*'वेदाश्रय नास्तिक्यवाद'*—केवलाद्वैतवाद है। वेद त्याग करके शाक्यसिंहने वैदिक-कर्मोंके अनुष्ठानोंसे छुटकारा पाया और उसने प्राकृत-नैष्कर्म्यकी स्थापना की। उसके मतानुसार, परलोकमें सच्चिदानन्द-रहित विग्रह विराजमान है। मायावादी वेदोंको मुखसे तो ग्रहण करते या मानते हैं। वे ऐसा मानते हैं कि वैदिक कर्मोंका अनुष्ठान भोगपरक अज्ञान है, ऐसा कहकर वे कर्मसे छुटकारा पाकर नैष्कर्म्यकी स्थापना करते हैं। उनके मतानुसार परलोकमें निर्बोध सच्चिदानन्द-विग्रह अर्थात् निर्विशेष केवल चिन्मात्र विराजमान है। अज्ञानमें स्थित मुक्तिकामी ज्ञानवादी सच्चिदानन्द-ज्ञानको भी 'खण्डज्ञान' या 'अज्ञानके प्रतिफलन'-रूपमें मानते हैं। इस प्रकार उन सच्चिदानन्द-ज्ञानके सम्बन्धमें किसी सम्विद्‌वृत्तिके अनुशीलनको भी अपने अज्ञानका ही एक प्रकारका भेदमात्र माननेके कारण भगवद्‌सेवासे दूर होते हैं। इसलिये शुद्ध सच्चिदानन्दकी अनुभूति अज्ञान-विग्रह ज्ञानवादियोंके लिये समझनेका विषय नहीं है। क्योंकि

उनके सिद्धान्तमें निःशक्तिक-ब्रह्म—जड़मय अर्थात् 'ज्ञान', 'ज्ञेय', 'ज्ञाता',—इन तीनों अवस्थाओंसे रहित है। जड़ाभिमानसे ग्रस्त उनका विचार-निपुणतारूपी 'अज्ञान' प्रबल होनेके कारण वे समझते हैं कि सच्चिदानन्द विग्रहमें भी चिन्मय 'ज्ञान', 'ज्ञेय', 'ज्ञाता'—ये धर्म नहीं हैं। वास्तवमें अज्ञानमय अवस्थाके कारण उनका इस प्रकार कहना है। इसलिये मायावादियोंकी वास्तविक वस्तुके (भगवान्‌के) ज्ञानके सम्बन्धमें उनके अस्तित्वको ही नकारनेवाली बुद्धि है॥ 168॥

ब्रह्मसूत्रमें ही जीवका परम कल्याण,
शाङ्करभाष्यमें जीवका सर्वनाश निहित :—

जीवेर निस्तार लागि' सूत्र कैल व्यास।
मायावादि-भाष्य शुनिले हय सर्वनाश॥ 169॥

अनुवाद—जीवोंका उद्धार करनेके लिये श्रीव्यासदेवने ब्रह्मसूत्रकी रचना की, परन्तु जो इन सूत्रोंके मायावादी भाष्यको सुनता है, तो उसका सर्वनाश हो जाता है॥ 169॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीव्यासदेवके सूत्रोंमें शुद्धभक्तिवाद है। मायावादियोंने उन सूत्रोंके जो भाष्य लिखे हैं, उनमें परब्रह्मका चिन्मय विग्रह अस्वीकृत हुआ है और जीवोंकी ब्रह्मसे पृथक् सत्ता भी अस्वीकृत हुई है, इसलिये वे शुद्धभक्तितत्त्वके अत्यन्त विरुद्ध हैं। इसलिये मायावादियोंके भाष्यको सुननेसे जीवका सर्वनाश होता है, क्योंकि ब्रह्मके साथ एक होनेकी इच्छारूपी दुराशासे उत्पन्न अभिमानके द्वारा शुद्धभक्ति नष्ट होती है और वास्तवमें यह ईश्वरको नहीं मानना है॥ 169॥

शक्तिपरिणामवाद ही ब्रह्मसूत्रमें उद्दिष्ट :—

'परिणाम-वाद'—व्याससूत्रेर सम्मत।
अचिन्त्यशक्ति ईश्वर जगद्रूपे परिणत॥ 170॥

अनुवाद—'परिणाम-वाद' श्रीव्यासदेवके द्वारा रचित ब्रह्मसूत्रके द्वारा सम्मत है, अर्थात् भगवान्‌की अचिन्त्यशक्ति जड़-जगत्‌के रूपमें परिणत हुई है॥ 170॥

अनुभाष्य—आदिलीला 7/121–133 संख्याका अनुभाष्य देखें॥ 170॥

प्राकृत चिन्तामणिका दृष्टान्त; शक्ति परिणत
होनेपर भी शक्तिमान् अविकृत :—

मणि यैछे अविकृते प्रसवे हेमभार।
जगद्रूप हय ईश्वर, तबु अविकार॥ 171॥

अनुवाद—प्राकृत चिन्तामणिमें जैसे बहुत स्वर्णका प्रसव करनेपर भी कोई विकार नहीं आता, उसी प्रकार अपनी अचिन्त्य शक्तिके द्वारा गुणमय जगत्‌के रूपमें प्रकाशित होनेपर भी भगवान् अपने नित्य अप्राकृत स्वरूपमें ही रहते हैं॥ 171॥

अनुभाष्य—शक्ति-परिमाणवाद ही 'जन्माद्यस्य' सूत्रके द्वारा सम्मत है। असंख्य, अनन्त नित्यशक्ति जिनसे उत्पन्न होती है, जिनमें स्थित और अव्यक्त रहती है, तथा शक्तिसमूह जिनके अधीन हैं, ऐसी शक्तिसमूहके प्रभु ही 'ईश्वर' हैं। अनन्त रूपोंमें विराजमान नित्य-अनित्य-शक्ति, आत्म-अनात्म-शक्ति आदिकी एक ही साथ ईश्वरमें अवस्थिति किस प्रकारसे सम्भव है, उसको जीव वर्तमान जड़-बद्धावस्थामें मायाशक्तिके अधीन रहते समय समझ नहीं सकता। इसलिये मानवज्ञानसे इस प्रकारके परस्पर विरुद्ध गुणोंका समाश्रय अचिन्त्य होनेपर भी ईश्वरमें नित्य अवस्थित है। मानव जड़ज्ञानके अहङ्कारके कारण अपने क्षुद्र अज्ञानरूपी सामर्थ्यको झूठी-कल्पनाके द्वारा बहुत बड़ा मानकर, जिस शक्ति-रहितरूप एक अवस्थाकी 'ब्रह्म'के रूपमें कल्पना करता है, वह (ब्रह्म न) होकर चिन्त्य-शक्तिका प्रकारभेद मात्र है। उसके द्वारा जगत्‌को ईश्वरका 'परिणाम' समझनेसे 'विवर्त्तवाद' को अवश्य ही ग्रहण करना पड़ेगा। किन्तु ईश्वरत्वमें अचिन्त्य नित्यशक्तिमत्ता निहित है, इसका ज्ञान होनेपर यह भी समझमें आयेगा कि ईश्वर अपनी बहिरङ्गा-मायाशक्तिके द्वारा परिणत खण्डज्ञान-गम्य राज्यमें (अर्थात् इस भौतिक जगत्‌में) भी प्रकाशित अथवा अवतीर्ण हो

सकते हैं। किसी मणिमें ऐसी शक्ति निहित होती है जिससे मणि सोनेकी सृष्टि करके भी अपने मणिवाले स्वरूपको किसी अन्य रूपमें परिणत अथवा परिवर्तित नहीं करती। सोनेकी सृष्टि करनेसे पहले मणि जिस प्रकारकी थी, सोनेको उत्पन्न करनेके बाद भी उसी रूपमें ही रहती है। जिस प्रकार वास्तवमें अपने अन्दर निहित शक्तिके प्रभावसे मणि स्वयं विकृत न होकर और अपनेसे भिन्न किसी अन्य वस्तु (सोने) को उत्पन्न करके भी अपने मणि-स्वरूपमें अवस्थित रह सकती है, उसी प्रकार सच्चिदानन्द ईश्वर अपनी मायाशक्तिको सञ्चालित करके, वैसी शक्तिको विकारयोग्य गुणमय जगत्के रूपमें परिणत कर सकते हैं। ईश्वर अपनी एक शक्तिको विकारमय जगत्रूपमें परिणत करके भी अपने स्वरूपको विकार-रहित रख सकते हैं,—यह नित्यशक्ति उनमें विद्यमान है॥ 171॥

गुरु-व्यासदेवको भ्रान्त कहनेके कारण मायावादी विवर्त्तवादी हैं, इसलिये वे—श्रौतपथ-विरोधी नास्तिक :—

व्यास—भ्रान्त बलि' सेइ सूत्रे दोष दिया।
'विवर्त्तवाद' स्थापियाछे कल्पना करिया॥ 172॥

अनुवाद—शङ्कराचार्यने श्रीव्यासदेवके सूत्रमें दोष निकालकर उनको भ्रान्त कह दिया और अपनी कल्पनाके अनुसार सूत्रपर भाष्य लिखकर 'विवर्त्तवाद' को स्थापित किया॥ 172॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'परिणाम-वाद' माननेसे ईश्वर 'विकारी' हो जायेंगे, इसलिये व्यासदेवको तब 'भ्रान्त' कहना होगा,—ऐसा कहकर सूत्रके मुख्यार्थमें दोषारोपण करके गौणार्थ करके 'विवर्त्तवाद'को स्थापित किया॥ 172॥

अनुभाष्य—*'सेइ सूत्र'*—ब्रह्मसूत्रके प्रारम्भमें "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" सूत्रके उत्तरमें सर्वप्रथम "जन्माद्यस्य यतः"—यह सूत्र परिणामवादके उद्देश्यसे ही लिखा गया है। जैसे—"यतो वा इमानि भूतानि"—इस तैत्तिरीय-वाक्य, "यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च"—इस मुण्डक-वाक्य और श्रीमद्भागवतके प्रारम्भमें कहे गये सभी श्लोकोंका तात्पर्य ही 'परिणामवाद' है। किन्तु शङ्कराचार्यका 'परिणामवाद' ग्रहण करनेपर काल्पनिक लक्षणावृत्ति-वादी लोग 'जन्माद्यस्य यतः'—इस सूत्रको 'दुष्टसूत्र' और उसके लेखक श्रीव्यासदेवको 'भ्रान्त' कहेंगे। इससे बचनेके लिये और अपने गुरु व्यासको परिणामवादी एवं 'जन्माद्यस्य' सूत्रको परिणामवाद कहकर वे निन्दा न करें, इस उद्देश्यसे काल्पनिक युक्तिके द्वारा उन्होंने वेदके किसी विशेष-अंशमें लिखे 'विवर्त्तवाद' जिसका कोई अन्य तात्पर्य है, उसे ही सत्य कहकर स्थापित किया॥ 172॥

देहमें आत्मबुद्धिरूप विवर्त्त ही मिथ्या है;
जगत्—सत्य, किन्तु नश्वर है :—

जीवेर देहे आत्मबुद्धि सेइ मिथ्या हय।
जगत् ये मिथ्या नहे, नश्वरमात्र हय॥ 173॥

अनुवाद—जीवकी जो देहमें आत्मबुद्धि है, वह मिथ्या है। किन्तु यह जगत् मिथ्या नहीं है, केवल नश्वरमात्र है॥ 173॥

अनुभाष्य—निर्मल जीव स्वरूपतः नित्य कृष्णदास है। परन्तु जब वह कर्मफल भोगनेवाले स्थूल और सूक्ष्म शरीरोंको भ्रमपूर्वक 'मैं' समझता है, ऐसी बुद्धि मिथ्या है—इसको दिखलानेके लिये 'विवर्त्तवाद'-शब्दका प्रयोग होता है। जीवात्मा नित्य है, वह कभी भी तात्कालिक स्थूलशरीर और सूक्ष्मशरीरके समान कालके वशमें नहीं है। विश्व वास्तवमें मिथ्या नहीं है, तो भी कालके द्वारा परिवर्तन-योग्य है। विश्वको अपने भोगकी वस्तु मानना ही जीवका 'विवर्त्त' है। यह जड़-जगत् ईश्वरकी शक्तिका परिणाम है। मायावादी लोग जीवके स्वरूपमें और विश्वके स्वरूपमें 'विवर्त्त' विचार करते हैं, किन्तु दोनों (जीव और विश्व) ही ईश्वरकी शक्तिके परिणाम हैं॥ 173॥

ओंकार ही आदि-महावाक्य और ईश्वर-मूर्त्ति एवं
वेद-कल्पतरुका बीज :—

'प्रणव' ये महावाक्य—ईश्वरेर मूर्त्ति।
प्रणव हैते सर्ववेद, जगते उत्पत्ति॥ 174॥

अनुवाद—'प्रणव' ही वेदोंका महावाक्य है, यह साक्षात् भगवान्की मूर्ति है। प्रणवसे ही सभी वेदोंकी और जगत्की उत्पत्ति हुई है॥ 174॥

अनुभाष्य—*'प्रणव'*—ईश्वरका नामविग्रह है; वही महावाक्य है। नामस्वरूप 'ओंकार' से इस नश्वर-जगत्में रहते समय भी विवर्त्तबुद्धिको (देहमें आत्मबुद्धिको) छोड़नेसे अप्राकृत स्वरूपका उदय होता है॥ 174॥

तत्त्वमस्यादि वाक्य—वेदके एकदेश-सूचक :—

'तत्त्वमसि'—जीव-हेतु प्रादेशिक वाक्य।
प्रणव ना मानि' तारे कहे महावाक्य॥"175॥

अनुवाद—'तत्त्वमसि'—यह वेद-वाक्य जीवके लिये एक प्रादेशिक वाक्य है। प्रणवको महावाक्य न मानकर शङ्कराचार्यने तत्त्वमसिको महावाक्य कहा है॥"175॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जीवकी चिन्मय सत्ताको समझानेके लिये 'तत्त्वमसि' वाक्य वेदके एक स्थानपर पाया जाता है, वह महावाक्य नहीं है॥ 175॥

अनुभाष्य—ईश्वर, जीव और जगत्के स्वरूपको विवर्त्तवादका विषय बनाकर शङ्कराचार्यने ॐकार-रूप नामाश्रयके बदले 'तत्त्वमसि' को महावाक्य कहा है। किन्तु जीवकी देहमें आत्मबुद्धि होकर कहीं मिथ्या भ्रमको उदित न कर दे, इसलिये वह वस्तुतः केवल भ्रान्त जीवोंके उद्देश्यसे कहा गया प्रादेशिक वाक्य है। पक्षान्तरमें, शङ्कराचार्यने 'तत्त्वमसि'को महावाक्य कहकर ब्रह्मस्वरूप, वेदोंके जीवन 'प्रणव'-नामका ही अनादर किया है॥ 175॥

श्रीसार्वभौमके अनेक पूर्वपक्ष और महाप्रभुके द्वारा उन सबका खण्डन :—

एइमते कल्पित भाष्ये शत दोष दिल।
भट्टाचार्य पूर्वपक्ष अपार करिल॥ 176॥

वितण्डा, छल, निग्रहादि अनेक उठाइल।
सब खण्डि' प्रभु निज-मत से स्थापिल॥ 177॥

अनुवाद—इस प्रकार महाप्रभुने शङ्कराचार्यके भाष्यको कल्पित कहकर उसमें सैंकड़ो दोष दिखलाये। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने भी शङ्कराचार्यके भाष्यके पक्षमें पूर्वपक्षकी ओरसे अनेक प्रश्न उठाये। वितण्डा, छल, निग्रहादिके द्वारा अनेक प्रकारकी बातें उठायीं। परन्तु महाप्रभुने उन सबका खण्डन करके अपने मतको स्थापित किया॥ 176-177॥

अनुभाष्य—आदिलीला 7/106-147 संख्या देखें।

'वितण्डा'—अपने मतकी स्थापना ना करके केवल दूसरेके मतका खण्डन करना। *'छल'*—शब्दके वास्तविक तात्पर्यको किसी अन्य काल्पनिक विषयरूपमें आरोप करके खण्डन करना। *'निग्रह'*—दूसरे पक्षकी पराजय॥ 131-177॥

महाप्रभुके द्वारा यथार्थ वेदमतकी स्थापना :—

भगवान्—'सम्बन्ध', भक्ति—'अभिधेय' हय।
प्रेमा—'प्रयोजन', वेदे तिनवस्तु कय॥ 178॥

अनुवाद—महाप्रभुने आगे कहा,—भगवान् ही 'सम्बन्ध' हैं, भक्ति ही 'अभिधेय' है और भगवद्प्रेम ही 'प्रयोजन' है—वेद इन तीन वस्तुओंको ही प्रतिपादित करते हैं॥ 178॥

इन सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजनके निर्देशके अतिरिक्त सभी मतवाद ही काल्पनिक :—

आर ये ये-किछु कहे, सकलेइ कल्पना।
स्वतःप्रमाण वेद-वाक्ये न करिये लक्षणा॥ 179॥

अनुवाद—और कोई यदि वेदोंकी व्याख्या किसी और प्रकारसे करता है, तो वह उसकी कल्पनाके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। स्वतःप्रमाण वेद वाक्योंका लक्षणावृत्तिसे अर्थ नहीं करना चाहिये॥ 179॥

अनुभाष्य—मायाके गुणोंसे अतीत निर्मल जीव ही भगवद्भक्त हैं। उनका सम्बन्ध केवल भगवान्से ही है, अभिधेय भक्ति है और उनका प्रयोजन भगवद्-प्रेम है, यही वेदशास्त्रोंमें कहा गया है। किन्तु किसी-किसी मतवादमें देखा जाता है कि जीवका सम्बन्ध—निःशक्तिक

ब्रह्मसे है, अभिधेय—ज्ञान-वैराग्य है और प्रयोजन—मुक्ति है; यह बद्धजीवकी कल्पना-मात्र है। वेद स्वयं ही प्रमाण है; 'लक्षणा' वृत्तिके द्वारा उनका काल्पनिक अर्थ होता है॥ 179॥

ईश्वरके आदेशसे शङ्करके द्वारा असुर-मोहन :—

आचार्येर दोष नाहि, ईश्वर-आज्ञा हैल।
अतएव कल्पना करि' नास्तिक-शास्त्र कैल॥ 180॥

अनुवाद—इसमें वास्तवमें शङ्कराचार्यका दोष नहीं है, भगवान्‌की आज्ञासे ही उन्होंने ऐसा प्रचार किया है। इसलिये उन्होंने काल्पनिक नास्तिक शास्त्रोंकी रचना की है॥ 180॥

अनुभाष्य—कूर्मपुराणके पूर्वभागमें 16/115-117 संख्यामें श्रीभगवद्-वाक्य—

"तस्माद् हि वेदवाह्यानां रक्षणार्थाय पापिनाम्।
विमोहनाय शास्त्राणि करिष्यसि वृषध्वज॥
एवं सञ्चोदितो रुद्रो माधवेनासुरारिणा।
चकार मोहशास्त्राणि केशवोऽपि शिवे स्थितः॥
कापालं नाकुलं वामं भैरवं पूर्वपश्चिमम्।
पाञ्चरात्र-पाशुपतं तथान्यानि सहस्रशः॥"180॥

अर्थात् "इसलिये हे वृषध्वज! वेदसे बाह्य लोगोंकी रक्षाके उद्देश्यसे और पापियोंको मोहित करनेके लिये सभी शास्त्रोंको प्रकाश करूँगा। इस प्रकारसे श्रीरुद्रने असुर-विनाशक श्रीमाधवके द्वारा प्रेरित होकर और श्रीकेशवने भी शिव-बुद्धिमें अवस्थित होकर कापाल, नाकुल, वाम, भैरव, पूर्व-पश्चिम (अथवा पूर्वभैरव, पश्चिमभैरव?), पाशुपत-पञ्चरात्र तथा अन्य सहस्र शास्त्रोंका प्रवर्त्तन किया॥"180॥

पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें सहस्रनामका वाक्य (62/31) :—

स्वागमैः कल्पितैस्त्वञ्च जनान् मद्विमुखान् कुरू।
माञ्च गोपय येन स्यात् सृष्टिरेषोत्तरोत्तरा॥ 181॥

अनुवाद—भगवान्‌ने श्रीमहादेवको कहा,—'कलियुगमें मनुष्योंको वेदोंके काल्पनिक अर्थोंके द्वारा उन्हें मुझसे विमुख करो। उन कल्पित-शास्त्रोंमें मेरे नित्य-भगवत् स्वरूपका विषय गुप्त रखो। इससे जगत्‌की बहिर्मुख सृष्टि उत्तरोतर परिवर्द्धित होती रहेगी॥ 181॥

अमृतप्रवाह भाष्य—भगवान्‌ने श्रीमहादेवसे कहा,—अपने कल्पित आगमके द्वारा मनुष्योंको मुझसे विमुख करो। मुझे इस प्रकार गोपन करो, जिसके द्वारा बहिर्मुख-जीवोंकी जीववृद्धिकार्यसे विरक्ति उत्पन्न नहीं हो॥ 181॥

अनुभाष्य—

[हे शिव], त्वं कल्पितैः (सत्याद्भ्र (निजतन्त्रादिकैः) जनान् (जड़विषयरतान् लोकान्) मद्विमुखान् (हरिजनविमुखान् कर्मज्ञाननिरतान्) कुरु; मां गोपय च, येन (भगवद्गोपन-कार्येण) उत्तरोत्तरा एषा सृष्टिः (संसारप्रवृत्तिः) स्यात्।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें।

देहात्मबुद्धि होनेसे केवल शौक्र-विचारकी प्रबलताके कारण संसारको भोग करनेकी प्रवृत्ति होती है और जहाँ भोग-प्रवृत्ति होती है, वहाँ शुद्धभक्ति गुप्त रहती है॥ 181॥

पद्मपुराणके उत्तरखण्ड (25/7)में :—

मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते।
मयैव विहितं देवि कलौ ब्राह्मणमूर्त्तिना॥"182॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 182॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीमहादेवने कहा,—मैं कलियुगमें ब्राह्मणमूर्ति धारण करके असत्-शास्त्रके द्वारा मायावादरूप प्रच्छन्न-बौद्धमतका विधान करूँगा॥ 182॥

अनुभाष्य—

मायावादम् (ईश्वर-जीव-विश्व-स्वरूपत्रयं माया-कल्पित-मिथ्या-विकारमात्रं ब्रह्मणः भिन्नमिति विचारपरम्) असच्छास्त्रं (नित्य-भगवद्बहिर्मुखकर्मज्ञानपरम् अनित्योपदेशमयं ग्रन्थं) प्रच्छन्नं (कपट-वेदविचार-परं श्रौतपथविरुद्धं) बौद्धं (नास्तिक-बौद्धमतानुगतम्) उच्यते। हे देवि! मया ब्राह्मणमूर्त्तिना (मालवरदेशोद्भुतेन शङ्कराख्येन देहेन) कलौ (विवादयुगारम्भे) [मायावादमतम् एव] विहितं (स्थापितम्)।

श्लोक-भावानुवाद—मैं कलियुगमें मालवर देशमें शङ्कर नामसे जन्म ग्रहण करके असत्-शास्त्र जिसमें नित्य भगवद्-विमुख कर्म-ज्ञानको परम कहा गया है, उसके द्वारा (ब्रह्मसे भिन्न ईश्वर-जीव-विश्व, तीनों मायासे कल्पित मिथ्या विकारमात्र हैं) ऐसे मायावादरूप प्रच्छन्न-बौद्धमतको स्थापित करूँगा॥ 182॥

विलासहीन केवल चिद्-साहित्य-वाद और चिद्-राहित्य-वाद, दोनों ही जागतिक विचारसे उत्पन्न मनोधर्मके अन्तर्गत हैं॥ 182॥

महाप्रभुकी व्याख्या सुनकर भट्टाचार्य विस्मित :—

शुनि' भट्टाचार्य हैल परम विस्मित।
मुखे ना निःसरे वाणी, हइला स्तम्भित॥ 183॥

अनुवाद—महाप्रभुकी व्याख्याको सुनकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य आश्चर्यचकित हो गये। कुछ भी बोलनेमें वे असमर्थ हो गये और वे स्तम्भित हो गये॥ 183॥

श्रीकृष्णभक्ति ही जीवका परम पुरुषार्थ :—

प्रभु कहे,—"भट्टाचार्य, ना कर विस्मय।
भगवाने भक्ति—परम-पुरुषार्थ हय॥ 184॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"भट्टाचार्य! आश्चर्य मत करो। भगवद्भक्ति ही परम पुरुषार्थ है॥ 184॥

दिव्यसूरिगण भी श्रीकृष्ण-चरणोंके प्रति आकृष्ट :—

'आत्माराम' पर्यन्त करे ईश्वर-भजन।
ऐछे अचिन्त्य भगवानेर गुणगण॥ 185॥

अनुवाद—आत्माराम अर्थात् आत्मामें रमण करनेवाले मुक्त पुरुष भी भगवान्का भजन करते हैं, क्योंकि भगवान्में ऐसे अचिन्त्य गुण हैं कि वे आत्माराम मुनियोंके चित्तको भी आकर्षित करते हैं॥ 185॥

श्रीमद्भागवत (1/7/10) :—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः॥"186॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 186॥

अमृतप्रवाह भाष्य—आत्मामें ही जिनकी रति है, ऐसे वासना-ग्रन्थियोंसे शून्य सभी मुनि भी बृहत्कर्मा श्रीकृष्णकी अहैतुकी भक्ति करते हैं; क्योंकि जगत्के चित्तहारी श्रीहरिका ऐसा ही एक गुण है॥ 186॥

अनुभाष्य—स्वभावतः ब्रह्मानन्दमें निमग्न परमहंस श्रीशुकदेवने किसलिये श्रीकृष्ण-नाम-रूप-गुण-लीला और कथापूर्ण श्रीमद्भागवतका अभ्यास किया,—शौनक आदि ऋषियोंके इस प्रश्नके उत्तरमें श्रीसूतकी उक्ति,—

आत्मारामाः (आत्मनि भगवति रमन्ते ये ते कृष्णक्रीड़नशीलाः) मुनयः (भोगपर-जड़-विषयरहिताः) निर्ग्रन्थाः (हृदयजकामग्रन्थिहीनाः ब्रह्मभूताः) अपि उरुक्रमे (अजिते कृष्णे) अहैतुकीम् (अन्याभिलाषिताशून्यं कर्मज्ञानाद्यनावृतां शुद्धां कृष्णानुशीलनमयीं) भक्तिं (सेवां) कुर्वन्ति। हरिः इत्थम्भूतगुणः (मुक्तामुक्त-सर्वास्थ-जीवाकर्षण-धर्मयुतः)। [अलौकिक-गुणाधारः हरिर्मायावादनिरतानां जनानां तत्तन्मत-वादात् मोचयित्वा कृपया तेभ्यः स्वचरणं प्रयच्छति]।

श्लोक-भावानुवाद—स्वभावतः श्रीकृष्णकी लीलाओंमें रमण करनेवाले आत्माराम, जड़विषयोंसे विरक्त मुनि और जिनकी हृदयकी कामनाओंकी ग्रन्थि खुल गयी है—ऐसे ब्रह्मभूत पुरुष, सभी उरुक्रम अर्थात् अजित भगवान्की अन्याभिलाषिता-शून्य, कर्म-ज्ञानसे अनावृत शुद्ध कृष्णानुशीलमयी भक्ति करते हैं। हरि अपने स्वभाविक गुणोंसे मुक्त और बद्ध अवस्थावाले सभी जीवोंको आकर्षण करनेवाले हैं। [हरि अलौकिक गुणोंके आधार हैं, वे मायावादादिमें निरत लोगोंको उन-उन मतवादोंसे मुक्त करके कृपापूर्वक अपने चरणोंका आश्रय प्रदान करते हैं।]॥ 186॥

श्रीसार्वभौमकी श्लोककी व्याख्या सुननेकी इच्छा :—

शुनि' भट्टाचार्य कहे,—"शुन, महाशय।
एइ श्लोकेर अर्थ शुनिते वाञ्छा हय॥"187॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने महाप्रभुसे कहा,—"सुनो महाशय! इस श्लोकका अर्थ सुननेकी मेरी इच्छा हो रही है॥"187॥

महाप्रभुके अनुरोधसे श्रीसार्वभौमके द्वारा व्याख्या करते हुए अपने पाण्डित्यका प्रकाश :—

प्रभु कहे,—"तुमि कि अर्थ कर, ताहा शुनि'।
पाछे आमि करिब अर्थ, येबा किछु जानि॥"188॥

शुनि' भट्टाचार्य श्लोक करिल व्याख्यान।
तर्कशास्त्र-मत उठाय विविध विधान॥ 189॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"आप इस श्लोकका क्या अर्थ करते हैं, मैं उसे सुनना चाहता हूँ। बादमें मैं जो कुछ जानता हूँ, उसके अनुसार अर्थ करूँगा।" यह सुनकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने उपरोक्त श्लोककी व्याख्या की और तर्कशास्त्रके मतानुसार उन्होंने विविध अर्थ बतलाये॥ 188-189॥

श्रीसार्वभौमके द्वारा यथाशक्ति नौ प्रकारकी व्याख्या :—

नवविध अर्थ कैल शास्त्रमत लञा।
शुनि' प्रभु कहे किछु ईषत् हासिया॥ 190॥

महाप्रभुका मान देनेका धर्म—श्रीसार्वभौमकी प्रशंसा :—

"भट्टाचार्य, जानि—तुमि साक्षात् बृहस्पति।
शास्त्रव्याख्या करिते ऐछे कारो नाहि शक्ति॥ 191॥

किन्तु तुमि अर्थ कैले पाण्डित्य-प्रतिभाय।
इहा वइ श्लोकेर आछे आरो अभिप्राय॥"192॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने शास्त्रोंके मतानुसार इस श्लोकके नौ प्रकारके अर्थ किये। जिसे सुनकर महाप्रभुने मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए कहा,—"भट्टाचार्य! ऐसा लगता है कि आप तो साक्षात् देवगुरु बृहस्पति हैं। इस जगत्में शास्त्रोंकी ऐसी व्याख्या करनेकी शक्ति और किसीमें नहीं है। किन्तु आपने पाण्डित्य प्रतिभासे जो अर्थ प्रकाशित किये हैं, इनके अतिरिक्त भी इस श्लोकका और भी अभिप्राय है॥"190-192॥

भट्टाचार्यकी प्रार्थनासे महाप्रभुकी स्वतन्त्र व्याख्या :—

भट्टाचार्येर प्रार्थनाते प्रभु व्याख्या कैल।
ताँर नव अर्थ-मध्ये एक ना छुँइल॥ 193॥

महाप्रभुके द्वारा अठारह प्रकारसे व्याख्या :—

आत्मारामाश्च-श्लोके 'एकादश' पद हय।
पृथक् पृथक् कैले पदेर अर्थ निश्चय॥ 194॥

तत्तत्पद-प्राधान्ये 'आत्माराम' मिलाञा।
अष्टादश अर्थ कैल अभिप्राय लञा॥ 195॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यकी प्रार्थनापर महाप्रभुने उनके द्वारा किये हुए नौ प्रकारके अर्थोंमेंसे किसीको स्पर्श किये बिना 'आत्मारामाश्च'-श्लोककी व्याख्या आरम्भ की। आत्मारामाश्च-श्लोकमें 'ग्यारह' पद हैं। महाप्रभुने सभी पदोंकी एक-एक करके व्याख्या की। महाप्रभुने श्लोकके प्रधान पदोंके लेकर प्रत्येकके साथ 'आत्माराम' पदको जोड़कर अठारह प्रकारसे व्याख्या की॥ 193-195॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्लोकके ग्यारह शब्दोंके ग्यारह अर्थ हैं और श्लोकमें 'मुनयः', 'निर्ग्रन्थाः', 'उरुक्रम', 'अहैतुकी', 'भक्ति', 'गुण' और 'हरि'—इन सात प्रधान पदोंमें 'आत्माराम'-पद जोड़कर और सात अर्थ होते हैं—अर्थात् कुल मिलाकर अठारह अर्थ हैं॥ 194-195॥

अनुभाष्य—*'एकादशपद'*— 1) आत्मारामः, 2) च, 3) मुनयः, 4) निर्ग्रन्थाः, 5) अपि, 6) उरुक्रमे, 7) कुर्वन्ति, 8) अहैतुकीं, 9) भक्तिं, 10) इत्थम्भूतगुणः, 11) हरिः॥ 194॥

भगवद्गुणशक्ति अचिन्त्य और आत्माराम-आकर्षिणी :—

भगवान्, ताँर शक्ति, ताँर गुणगण।
अचिन्त्य प्रभाव तिनेर ना याय कथन॥ 196॥

अन्य यत साध्य-साधन करि' आच्छादन।
एइ तिने हरे सिद्ध-साधकेर मन॥ 197॥

सनकादि-शुकदेव ताहाते प्रमाण।
एइमत नाना अर्थ करेन व्याख्यान॥ 198॥

अनुवाद—श्रीभगवान्, उनकी शक्ति और उनके गुणसमूह—इन तीनोंका ही प्रभाव अचिन्त्य है, इनका

सम्पूर्ण रूपसे वर्णन सम्भव नहीं है। ये तीनों अन्य सभी प्रकारके साध्य और उनके लिये किये जानेवाले साधनोंको आच्छादित करके सिद्ध एवं साधकोंके भी मनका हरण करते हैं। श्रीसनकादि और श्रीशुकदेव गोस्वामी इसके प्रमाण हैं। इस प्रकार महाप्रभुने अनेक प्रकारके अर्थोंकी व्याख्या की॥ 196–198॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'तिने'*—भगवान्, भगवद्-शक्ति और भगवद्-गुणसमूह॥ 197॥

अनुभाष्य—ज्ञानी, कर्मी और अन्याभिलाषियोंके दलोंमें जितने प्रकारके सम्बन्ध और अभिधेय कल्पित होते हैं, उनको आच्छादित करके अचिन्त्य प्रभाववाले भगवान्, उनकी शक्ति और उनके गुणसमूह—ये तीन वस्तुएँ साधक-जीव और सिद्धोंके मनका हरण करते हैं। सनकादि और शुकदेव आदि मुक्त-मनीषियोंका श्रीकृष्णके प्रति आकृष्ट होना ही इसका उदाहरण है। मध्यलीला, 24/107–109, 111—

"मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ते॥"
"जन्म हैते शुक-सनकादि 'ब्रह्ममय'।
कृष्णगुणाकृष्ट हञा कृष्णेरे भजय॥
सनकाद्येर कृष्णकृपाय सौरभे हरे मन।
गुणाकृष्ट हञा करे निर्मल भजन॥
व्यासकृपाय शुकदेवेर लीलादि-स्मरण।
कृष्णगुणाकृष्ट हञा करेन भजन॥"

मध्यलीला, 17/139—

"ब्रह्मानन्द हैते पूर्णानन्द कृष्णगुण।
अतएव आकर्षये आत्मारामेर मन॥"

अर्थात् "ब्रह्ममें लीन मुक्त जीव भी श्रीकृष्णकी लीलाओंके प्रति आकर्षित होकर उनका भजन करते हैं। यद्यपि शुकदेव गोस्वामी और सनकादि चार कुमार ब्रह्मके ध्यानमें लीन रहते थे, तथापि वे भी श्रीकृष्णके चिन्मय गुणों और लीलाओंके प्रति आकर्षित हुए और वे भी श्रीकृष्णका भजन करने लगे। सनकादि चार कुमारोंका मन श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें समर्पित तुलसीकी गन्धसे आकृष्ट हुआ। तब उनके गुणोंसे आकृष्ट होकर वे श्रीकृष्णका निर्मल भजन करने लगे। श्रीव्यासदेवकी कृपासे शुकदेव गोस्वामी श्रीकृष्णकी लीलाओंके प्रति आकृष्ट हुए। श्रीकृष्णके गुणोंसे आकृष्ट होकर वे भी श्रीकृष्णका भजन करने लगे। ब्रह्मानन्दसे कोटि गुणा पूर्ण आनन्द श्रीकृष्णके चिन्मय-गुणोंमें है, इसलिये वे आत्माराम मुनियोंके चित्तको भी आकर्षित कर लेते हैं।"

इस प्रसङ्गमें भाः 3/15/43 देखें। मध्यलीला 24/3–308 संख्या भी देखें॥ 193–198॥

श्रीसार्वभौमकी आत्मग्लानि :—

शुनि' भट्टाचार्येर मने हैल चमत्कार।
प्रभुके कृष्ण जानि' करे आपना धिक्कार॥ 199॥
'इँहो त' साक्षात् कृष्ण,—मुञि ना जानिया।
महा-अपराध कैनु गर्वित हइया॥' 200॥

अनुवाद—महाप्रभुसे 'आत्माराम श्लोक'की व्याख्या सुनकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यका मन आश्चर्यचकित हो गया। वे महाप्रभुको श्रीकृष्ण जानकर अपनेको धिक्कारने लगे,—'ये तो साक्षात् श्रीकृष्ण हैं, मैंने ऐसा नहीं समझा और अपने ज्ञानके अभिमानमें गर्वित होकर महा-अपराध किया है॥' 199–200॥

श्रीसार्वभौमकी महाप्रभुके चरणोंमें शरणागति
और महाप्रभुकी कृपा :—

आत्मनिन्दा करि' लैल प्रभुर शरण।
कृपा करिवारे तबे प्रभुर हैल मन॥ 201॥

अनुवाद—इस प्रकार श्रीसार्वभौमने अपनी निन्दा करते हुए महाप्रभुकी शरण ग्रहण की। महाप्रभुकी भी श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यपर कृपा करनेकी इच्छा हो गयी॥ 201॥

महाप्रभुके द्वारा पहले चतुर्भुज रूप और बादमें
द्विभुज-रूपका प्रदर्शन :—

निज-रूप प्रभु ताँरे कराइल दर्शन।
चतुर्भुज-रूप प्रभु हइला तखन॥ 202॥

देखाइल ताँरे आगे चतुर्भुज-रूप।
पाछे श्याम-वंशीमुख स्वकीय स्वरूप॥ 203॥

अनुवाद—महाप्रभुने कृपा करके श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यको पहले चतुर्भुज रूप प्रकट करके अपना (नारायण) रूप दिखलाया। अपना नारायण रूप दिखलानेके बादमें अपना नित्य श्यामसुन्दर-वंशीधारी श्रीकृष्ण स्वरूप दिखलाया॥ 202-203॥

श्रीसार्वभौमके द्वारा स्तव-स्तुति :—

देखि' सार्वभौम दण्डवत् करि' पड़ि'।
पुनः उठि' स्तुति करे दुइ कर युड़ि'॥ 204॥

अनुवाद—महाप्रभुमें श्रीकृष्णके स्वरूपको प्रकाशित देखकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने भूमिपर गिरकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। फिर उठकर हाथ जोड़कर उनकी स्तव-स्तुति करने लगे॥ 204॥

महाप्रभु-कृपासे श्रीसार्वभौमके चित्तमें तत्त्वकी स्फूर्त्ति :—

प्रभुर कृपाय ताँर स्फुरिल सब तत्त्व।
नाम-प्रेमदान-आदि वर्णेन महत्त्व॥ 205॥

अनुवाद—महाप्रभुकी कृपासे श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके हृदयमें समस्त तत्त्व स्फुरित हो गये और वे महाप्रभुके द्वारा भगवान्‌के नाम और भगवद्-प्रेमके सर्वत्र दानकी महिमाको समझ गये॥ 205॥

अतिशीघ्र रचना करनेकी शक्ति :—

शत श्लोक कैल दण्ड एक ना याइते।
बृहस्पति तैछे श्लोक ना पारे करिते॥ 206॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने एक दण्ड (चौबीस मिनट) से भी कम समयमें ही सौ श्लोकोंकी रचना करके महाप्रभुकी स्तुति की। देवगुरु बृहस्पति भी इतने कम समयमें इतने श्लोकोंकी रचना नहीं कर सकते॥ 206॥

अनुभाष्य—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके द्वारा रचित इन सौ श्लोकोंके ग्रन्थका नाम 'सुश्लोक-शतक' है॥ 206॥

महाप्रभुके आलिङ्गनसे श्रीसार्वभौममें सात्त्विक भाव :—

शुनि' सुखे प्रभु ताँरे कैल आलिङ्गन।
भट्टाचार्य प्रेमावेशे हैल अचेतन॥ 207॥

अश्रु, स्तम्भ, पुलक, स्वेद, कम्प थरहरि।
नाचे, गाय, कान्दे, पड़े प्रभु-पद धरि'॥ 208॥

अनुवाद—महाप्रभुने वे सौ श्लोक सुनकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यका सुखपूर्वक आलिङ्गन किया। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य महाप्रभुके आलिङ्गनसे प्रेमावेशमें आविष्ट होकर मूर्च्छित हो गये। उनके शरीरमें अश्रु, स्तम्भ, पुलक, पसीना, कम्प आदि अष्ट-सात्त्विक भाव उदित हो गये तथा वे नाचने-गाने लगे, कभी रोने लगे और कभी भूमिपर गिरकर महाप्रभुके चरणकमलोंको पकड़ने लगे॥ 207-208॥

श्रीगोपीनाथकी प्रसन्नता :—

देखि' गोपीनाथाचार्य हरषित मन।
भट्टाचार्येर नृत्य देखि' हासे प्रभुर गण॥ 209॥

अनुवाद—इसे देखकर श्रीगोपीनाथाचार्य मनमें बहुत प्रसन्न हुए और श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके नृत्यको देखकर महाप्रभुके सङ्गी हँसने लगे॥ 209॥

श्रीसार्वभौमकी दशाका दर्शन करनेसे गोपीनाथके द्वारा महाप्रभुकी महिमाका कीर्तन :—

गोपीनाथाचार्य कहे महाप्रभुर प्रति।
"सेइ भट्टाचार्येर तुमि कैले एइ गति॥" 210॥

अनुवाद—तब श्रीगोपीनाथाचार्यने महाप्रभुसे कहा,—"प्रभो! आपने भट्टाचार्यकी ऐसी गति कर दी॥" 210॥

महाप्रभुके द्वारा भक्तका सम्मान :—

प्रभु कहे,—"तुमि भक्त, तोमार सङ्ग हैते।
जगन्नाथ इँहारे कृपा कैल भालमते॥" 211॥

अनुवाद—महाप्रभुने उत्तर दिया,—"आप भक्त हैं, आपके सङ्गके कारण ही श्रीजगन्नाथदेवने इनपर पूर्ण कृपा की है॥" 211॥

स्थिर होकर श्रीभट्टाचार्यके द्वारा महाप्रभुकी स्तुति :—

तबे भट्टाचार्ये प्रभु सुस्थिर करिल।
स्थिर हञा भट्टाचार्य बहु स्तुति कैल॥ 212॥

"जगत् निस्तारिले तुमि,—सेह अल्पकार्य।
आमा उद्धारिले तुमि,—ए शक्ति आश्चर्य॥ 213॥

तर्क-शास्त्रे जड़ आमि, यैछे लौहपिण्ड।
आमा द्रवाइले तुमि, प्रताप प्रचण्ड॥"214॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यको शान्त किया। स्थिर होकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने महाप्रभुकी बहुत स्तुति की। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य कहने लगे,—"जगत्का उद्धार करना तो आपके लिये छोटा सा कार्य है, परन्तु आपने जो मेरा उद्धार किया है, यह वास्तवमें आपकी आश्चर्यमय शक्तिका परिचय है। तर्क-शास्त्रके अध्ययनसे मैं जड़बुद्धि हो गया था। मेरा हृदय लोहेके पिण्डकी भाँति कठोर हो गया था, परन्तु आपने इसे द्रवीभूत कर दिया, आपका प्रभाव अति महान् है॥"212-214॥

महाप्रभुका अपने स्थानपर आगमन :—

स्तुति शुनि' महाप्रभु निज वासा आइला।
भट्टाचार्य आचार्य-द्वारे भिक्षा कराइला॥ 215॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यकी स्तुति सुनकर महाप्रभु अपने वासस्थानपर लौट आये। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने श्रीगोपीनाथाचार्यके द्वारा महाप्रसाद मँगवाकर महाप्रभुको भोजन करवाया॥ 215॥

अगले दिन प्रातःकाल महाप्रभुके द्वारा प्रसादान्न-संग्रह :—

आर दिन प्रभु गेला जगन्नाथ-दरशने।
दर्शन करिला जगन्नाथ-शय्योत्थाने॥ 216॥

पूजारी आनिया माला-प्रसादान्न दिला।
प्रसादान्न-माला पाञा प्रभु हर्ष हैला॥ 217॥

अनुवाद—अगले दिन सूर्योदयसे पहले महाप्रभु श्रीजगन्नाथके दर्शन करने गये और श्रीजगन्नाथदेवके शय्या-उत्थान अर्थात् मङ्गलारतीके दर्शन किये। पुजारीने श्रीजगन्नाथदेवकी प्रसादी-माला और प्रसाद-अन्न लाकर उन्हें दिया। महाप्रभु प्रसाद-अन्न और माला पाकर बहुत प्रसन्न हुए॥ 216-217॥

भट्टाचार्यके घरमें आगमन :—

सेइ प्रसादान्न-माला अञ्चले बाँधिया।
भट्टाचार्येर घरे आइला त्वरायुक्त हञा॥ 218॥

अनुवाद—उस प्रसाद-अन्न और मालाको अपने आँचलमें सावधानीपूर्वक बाँधकर महाप्रभु तेजीसे श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके घर आये॥ 218॥

भट्टाचार्यके द्वारा प्रातःकृत्यसे पहले ही महाप्रभुके द्वारा दिये गये प्रसादका सम्मान :—

अरुणोदय-काले हैल प्रभुर आगमन।
सेइकाले भट्टाचार्येर हैल जागरण॥ 219॥

'कृष्ण' 'कृष्ण' स्फुट कहि' भट्टाचार्य जागिला।
कृष्णनाम शुनि' प्रभुर आनन्द बाड़िला॥ 220॥

बाहिरे प्रभुर तेँहो पाइल दरशन।
आस्ते-व्यस्ते आसि' कैल चरण-वन्दन॥ 221॥

बसिते आसन दिया दुँहे त' बसिला।
प्रसादान्न खुलि' प्रभु ताँर हाते दिला॥ 222॥

प्रसादान्न पाञा भट्टाचार्येर आनन्द हैल।
स्नान, सन्ध्या, दन्तधावन यद्यपि ना कैल॥ 223॥

श्रीचैतन्य महाप्रभुकी कृपासे जाड्यका नाश :—

चैतन्य-प्रसादे मनेर सब जाड्य गेल।
एइ श्लोक पड़ि' अन्न भक्षण करिल॥ 224॥

अनुवाद—महाप्रभु अरुणोदयके समय ही श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके घर पहुँच गये। उस समय श्रीभट्टाचार्य अभी नींदसे जागे ही थे और वे उच्च स्वरसे 'कृष्ण' 'कृष्ण' नामका उच्चारण करते हुए उठे थे। उनके मुखसे 'कृष्ण' नाम सुनकर महाप्रभुको बहुत आनन्द हुआ। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने देखा कि महाप्रभु उनके घरके

बाहर आये हैं, तो हड़बड़ाकर वे उनके पास आये और उनके श्रीचरणकमलोंकी वन्दना की। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने महाप्रभुको बैठनेके लिये आसन दिया तथा वे स्वयं भी बैठ गये। तब महाप्रभुने अपने आँचलको खोलकर उसमेंसे श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके हाथमें प्रसाद दिया। प्रसादको पाकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य बहुत आनन्दित हो गये। यद्यपि अभी तक उन्होंने स्नान, सन्ध्या तथा दन्त-धावन आदि कुछ भी नहीं किया था, तथापि महाप्रभुकी कृपासे उनके मनकी जड़ता दूर हो गयी और उन्होंने निम्नोक्त श्लोकका पाठ करके प्रसाद ग्रहण किया॥ 219-224॥

अनुभाष्य— *'अरुणोदय-काल'*—सूर्य उदय होनेसे पहलेके चार दण्ड (96 मिनट) समयको 'अरुणोदय-काल' कहते हैं॥ 219॥

अप्राकृत-प्रसादके सम्मानमें कालाकालका विचार नहीं :—
पद्मपुराण—

शुष्कं पर्युषितं वापि नीतं वा दूरदेशतः।
प्राप्तिमात्रेण भोक्तव्यं नात्र कालविचारणा॥ 225॥

न देशनियमस्तत्र न कालनियमस्तथा।
प्राप्तमन्नं द्रुतं शिष्टैर्भोक्तव्यं हरिरब्रवीत्॥ 226॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 225-226॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महाप्रसाद सूख गया हो, भले ही बासा हो या किसी दूरदेशसे लाया गया हो, प्राप्त करनेके साथ-ही-साथ उसे खानेकी विधि है; इसमें समयका विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। भगवान्‌ने ऐसी आज्ञा दी है कि श्रीकृष्णके अन्न-प्रसादको प्राप्त करते ही सज्जन व्यक्ति उसका भोजन करेंगे, इसमें देश और कालका कोई नियम नहीं है॥ 225-226॥

अनुभाष्य—

शुष्कं (रसरहितं) पर्युषितं (पूर्वपूर्वदिनपक्वं) दूरदेशतः (सुदूरविदेशात्) नीतम् (आनीतं) वा [कृष्णप्रसादं] प्राप्ति-मात्रेण (लाभमात्रेण) भोक्तव्यं (सादरेण गृहीतव्यं सेव्यं) अत्र (प्रसादग्रहणविषये) कालविचारणा न (नास्ति)। तत्र (प्रसादग्रहणविषये) देशनियमः न, तथा कालनियमः न, प्राप्तमन्नं (कृष्णप्रसादं) द्रुतं (तत्क्षणमेव) शिष्टैः (वैष्णवैः) भोक्तव्यं (प्रसादार्चने स्थानकाल-व्यवधानादिकं न ग्राह्यम्) इति हरिः अब्रवीत्।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 225-226॥

श्रीसार्वभौमके द्वारा प्रसादका सम्मान देखकर महाप्रभुको परमानन्द और प्रेमपूर्वक दोनोंका नृत्य :—

देखिया आनन्द हैल महाप्रभुर मन।
प्रेमाविष्ट हञा प्रभु कैला आलिङ्गन॥ 227॥

दुइजने धरि' दुँहे करेन नर्त्तन।
प्रभु-भृत्य दुँहा स्पर्शे, दुँहे फूले मन॥ 228॥

अनुवाद—श्रीभट्टाचार्यकी प्रसादमें इस प्रकारकी श्रद्धाको देखकर महाप्रभु प्रसन्न हो गये और उन्होंने प्रेमाविष्ट होकर श्रीसार्वभौमका आलिङ्गन किया। दोनों एक-दूसरेको पकड़कर नृत्य करने लगे। महाप्रभु और दास—दोनोंका मन एक-दूसरेको स्पर्श करके प्रफुल्लित हो गया॥ 227-228॥

स्वेद-कम्प-अश्रु दुँहे आनन्दे भासिला।
प्रेमाविष्ट हञा प्रभु कहिते लागिला॥ 229॥

श्रीसार्वभौमके उद्धारसे महाप्रभुका आत्मगौरव :—

"आजि मुञि अनायासे जिनिनु त्रिभुवन।
आजि मुञि करिनु वैकुण्ठ आरोहण॥ 230॥

आजि मोर पूर्ण हैल सर्व अभिलाष।
सार्वभौमेर हैल महाप्रसादे विश्वास॥ 231॥

सार्वभौमको महाप्रभुका आशीर्वाद :—

आजि तुमि निष्कपटे हैला कृष्णाश्रय।
कृष्ण आजि निष्कपटे तोमा हैल सदय॥ 232॥

आजि से खण्डिल तोमार देहादि-बन्धन।
आजि तुमि छिन्न कैले मायार बन्धन॥ 233॥

आजि कृष्णप्राप्ति-योग्य हैल तोमार मन।
वेद-धर्म लङ्घि' कैले प्रसाद भक्षण॥" 234॥

अनुवाद—उनके दोनोंके अङ्गोंमें स्वेद, कम्प, अश्रु आदि सात्त्विक विकार प्रकट होकर उन्हें आनन्दके समुद्रमें डुबोने लगे। महाप्रभु प्रेममें आविष्ट होकर कहने लगे,—"आज मैंने अनायास ही त्रिभुवनपर विजय प्राप्त कर ली है और वैकुण्ठ प्राप्त किया है। आज मेरी सभी अभिलाषाएँ पूर्ण हो गयी हैं, क्योंकि श्रीसार्वभौमका महाप्रसादमें विश्वास उत्पन्न हुआ है। आज आपने निष्कपट होकर श्रीकृष्णका आश्रय ग्रहण किया है और श्रीकृष्णने भी निष्कपट होकर आपपर कृपा की है। आजसे आपके देहादि-बन्धन टूट गये हैं और आज आपने मायाके बन्धनोंको तोड़ दिया है। आज आपका मन श्रीकृष्णको प्राप्त करनेके योग्य हुआ है, क्योंकि आज आपने वेद-धर्मका उल्लङ्घन करके प्रसादका सेवन किया है॥"232-234॥

श्रीकृष्णके प्रति निष्कपट शरणागत
भक्तोंकी ही मायासे मुक्ति :—
श्रीमद्भागवत (2/7/42)—

येषां स एष भगवान् दययेदनन्तः
सर्वात्मनाश्रितपदो यदि निर्व्यलीकम्।
ते दुस्तरामतितरन्ति च देवमायां
नेषां ममाहमितिधीः श्वशृगालभक्ष्ये॥235॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥235॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अनन्तस्वरूप भगवान् उनपर ही अकपट दया करते हैं, जो सब प्रकारसे उनके श्रीचरणकमलोंका आश्रय ग्रहण करते हैं और वे ही इस दुस्तर दैवी मायाको पार करते हैं। सियार और कुत्तेके आहार इस जड़ शरीरमें जिनकी 'मैं' और 'मेरा' की बुद्धि है, उनपर भगवान् दया नहीं करते॥235॥

अनुभाष्य—श्रीनारदजीसे भगवान्के लीलावतार-समूहके कर्म, प्रयोजन और विभूतियोंका वर्णन करके ब्रह्माजी भगवान्की माया और भक्तोंके माहात्म्यको बता रहे हैं—

स एष अनन्तः भगवान् येषां (एकान्तप्रपन्नानां) दययेत् (अनुकम्पां कुर्यात्) यदि निर्व्यलीकं (निष्कपटं यथा स्यात् तथा) सर्वात्मना (सर्वतोभावेन, न तु अंशेन) आश्रितपदः (कृष्णपादैकप्रपन्नाः) भवन्ति, ते दुस्तरां (तर्त्तुमशक्यामपि) देवमायाम् अतितरन्ति। ऐषां (प्रपन्नानां) श्व-शृगाल-भक्ष्ये (पशुभोजन-योग्ये देहे) अहं-मम-इति-धीः (बुद्धिः) न (नास्ति)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥235॥

भट्टाचार्यके द्वारा जड़ाभिमानका त्याग :—

एत कहि' महाप्रभु आइला निज-स्थाने।
सेइ हैते भट्टाचार्येर खण्डिल अभिमाने॥236॥

अनुवाद—यह कहकर महाप्रभु अपने वासस्थानपर आ गये। उसी समयसे ही श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यका पाण्डित्यका अभिमान दूर हो गया॥236॥

श्रीसार्वभौमका सब प्रकारसे भक्तिमार्गका आश्रय :—

चैतन्य-चरण बिना नाहि जाने आन।
भक्ति बिना शास्त्रेर अन्य ना करे व्याख्यान॥237॥

गोपीनाथका प्रसन्नता-पूर्वक नृत्य :—

गोपीनाथाचार्य ताँर वैष्णवता देखिया।
'हरि' 'हरि' बलि' नाचे हाते तालि दिया॥238॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य-चरणोंके अतिरिक्त अब वे और कुछ नहीं जानते थे और तबसे वे शास्त्रोंकी केवल भक्तिपरक व्याख्या ही करते थे। श्रीगोपीनाथाचार्य भी उनकी वैष्णवताको देखकर 'हरि' 'हरि' बोलकर ताली बजाते हुए नाचने लगे॥237-238॥

भट्टाचार्यकी श्रीजगन्नाथकी अपेक्षा
महाप्रभुके प्रति अधिक प्रीति :—

आर दिन भट्टाचार्य आइला दर्शने।
जगन्नाथ ना देखि' आइला प्रभु-स्थाने॥239॥

अनुवाद—अगले दिन श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य श्रीजगन्नाथदेवके दर्शन करने निकले, परन्तु मन्दिर न जाकर पहले महाप्रभुके दर्शनके लिये उनके वासस्थानपर आ गये॥239॥

श्रीसार्वभौमकी दीनता :—

दण्डवत् करि' कैल बहुविध स्तुति।
दैन्य करि' कहे निज–पूर्वदुर्मति॥ 240॥

श्रीसार्वभौमके द्वारा पूछनेपर कि सर्वश्रेष्ठ साधन क्या है? महाप्रभुके द्वारा नामसङ्कीर्तनकी महिमाका वर्णन :—

भक्तिसाधन–श्रेष्ठ शुनिते हैल मन।
प्रभु उपदेश कैल नाम–सङ्कीर्त्तन॥ 241॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने महाप्रभुको दण्डवत् प्रणामकर उनकी अनेक प्रकारसे स्तुति की। तब उन्होंने दीनतापूर्वक अपनी पहलेकी दुर्मतिकी बात कही और भक्ति–साधनोंमेंसे सर्वश्रेष्ठ साधनको जाननेकी इच्छा प्रकट की। तब महाप्रभुने उनको सर्वश्रेष्ठ साधन श्रीनाम–सङ्कीर्तनका उपदेश दिया॥ 240–241॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके द्वारा प्रश्न करनेपर कि चौंसठ प्रकारकी साधनभक्तिमेंसे कौनसा अङ्ग सर्वश्रेष्ठ है, तो उसके उत्तरमें महाप्रभुने कहा,—नामसङ्कीर्तन ही एकमात्र सर्वश्रेष्ठ है॥ 241॥

बृहन्नारदीय–पुराण (38/126) :—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥ 242॥

अनुवाद—कलियुगमें हरिनाम ही, हरिनाम ही, हरिनाम ही एकमात्र साधन है, इसके अतिरिक्त अन्य कोई गति नहीं है, नहीं है, नहीं है॥ 242॥

अमृतप्रवाह भाष्य—

"कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्त्तनात्॥"

अर्थात् "सत्ययुगमें भगवान् विष्णुका ध्यान करनेसे, त्रेतामें बड़े–बड़े यज्ञोंके द्वारा उनकी आराधना करनेसे और द्वापरमें विधिपूर्वक उनका अर्चन करनेसे जो फल मिलता है, वह कलियुगमें केवल भगवन्नामका कीर्तन करनेसे ही प्राप्त हो जाता है॥"242॥

अनुभाष्य—आदिलीला 7/76 संख्या देखें॥ 242॥

महाप्रभुके द्वारा श्लोककी व्याख्याको सुनकर भट्टाचार्य विस्मित :—

एइ श्लोकेर अर्थ शुनाइल करिया विस्तार।
शुनि' भट्टाचार्य–मने हैल चमत्कार॥ 243॥

अनुवाद—महाप्रभुने इस श्लोकका विस्तारपूर्वक अर्थ सुनाया, जिसे सुनकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके मनमें चमत्कार हुआ॥ 243॥

श्रीगोपीनाथकी भविष्यवाणीकी सफलता :—

गोपीनाथाचार्य बले,—"आमि पूर्वे ये कहिल।
शुन, भट्टाचार्य, तोमार सेइ त' हइल॥"244॥

अनुवाद—तब श्रीगोपीनाथाचार्यने कहा,—"सुनो भट्टाचार्य! मैंने आपको पहले जो कहा था, अब आपके साथ वही हुआ न॥"244॥

श्रीगोपीनाथके साथ सम्बन्ध होनेके कारण श्रीसार्वभौमको महाप्रभुकी कृपाकी प्राप्ति :—

भट्टाचार्य कहे ताँरे करि' नमस्कारे।
"तोमार सम्बन्धे प्रभु कृपा कैल मोरे॥ 245॥
तुमि—महाभागवत, आमि—तर्क–अन्धे।
प्रभु कृपा कैल मोरे तोमार सम्बन्धे॥"246॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने श्रीगोपीनाथाचार्यको प्रणाम करके कहा,—"आपके साथ सम्बन्ध होनेके कारण ही महाप्रभुने मुझपर कृपा की है। आप महाभागवत हैं और मैं तर्कका आश्रय करनेवाला अन्धा था। वास्तवमें आपके साथ सम्बन्धके कारण ही महाप्रभुने मुझपर कृपाकी है॥"245–246॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीभट्टाचार्यको श्रीजगन्नाथके दर्शनकी अनुमति :—

विनय शुनि' तुष्ट्ये प्रभु कैल आलिङ्गन।
कहिल,—"करह याञा ईश्वर दरशन॥"247॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके ऐसे दीनतापूर्वक वचनोंको सुनकर महाप्रभु बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें आलिङ्गनकर कहने लगे,—"अब जाकर श्रीजगन्नाथदेवका दर्शन करो॥"247॥

घर आकर प्रसाद और महाप्रभुके महिमासूचक श्लोकको भेजना :—

जगदानन्द-दामोदर,—दुइ सङ्गे लञा।
घरे आइल भट्टाचार्य जगन्नाथ देखिया॥ 248॥

उत्तम उत्तम प्रसाद बहुत आनिला।
निजविप्र-हाते दुइ जना सङ्गे दिला॥ 249॥

निज-कृत दुइ श्लोक लिखिया तालपाते।
'प्रभुके दिह' बलि' दिल जगदानन्द-हाते॥ 250॥

अनुवाद—श्रीजगन्नाथदेवका दर्शन करनेके बाद श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य श्रीजगदानन्द और श्रीदामोदरको साथ लेकर अपने घर लौट आये। मन्दिरसे वे अपने साथ बहुतसा उत्तम-उत्तम प्रसाद भी लाये। उस प्रसादको अपने एक ब्राह्मण और श्रीजगदानन्द तथा श्रीदामोदरके हाथोंमें दिया। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने अपने द्वारा रचित दो श्लोकोंको तालपत्रपर लिखकर श्रीजगदानन्द पण्डितके हाथमें देकर कहा,—'इसे महाप्रभुको दे देना॥'248-250॥

महाप्रभुके द्वारा पत्रकी प्राप्तिसे पहले श्रीमुकुन्दके द्वारा दोनों श्लोकोंकी नकलके द्वारा रक्षा :—

प्रभु-स्थाने आइला दुँहे प्रसाद-पत्री लञा।
मुकुन्द दत्त पत्र निल तार हाते पाञा॥ 251॥

श्रीजगदानन्दका महाप्रभुको श्रीभट्टाचार्यके श्लोकवाला पत्र देना :—

दुइ श्लोक बाहिर-भिते लिखिया राखिल।
तबे जगदानन्द पत्री प्रभुके लञा दिल॥ 252॥

प्रभु श्लोक पड़ि' पत्र छिण्डिया फेलिल।
भित्ते देखि' भक्त सब श्लोक कण्ठे कैल॥ 253॥

अनुवाद—श्रीजगदानन्द और श्रीदामोदर, प्रसाद और पत्रीको लेकर महाप्रभुके पास आये। भीतर जानेसे पहले श्रीमुकुन्द दत्तने श्रीजगदानन्दके हाथसे वह पत्री ले ली और उन दो श्लोकोंको बाहर दीवारपर लिख दिया। तब श्रीजगदानन्दने भीतर जाकर महाप्रभुको वह पत्री दी। महाप्रभुने उन श्लोकोंको पढ़ते ही पत्रीको फाड़कर फेंक दिया। परन्तु भक्तोंने दीवारपर लिखे उन दोनों श्लोकोंको देखकर कठस्थ कर लिया था। वे दो श्लोक इस प्रकार हैं॥ 251-253॥

ज्ञान-वैराग्य-भक्ति-वितरणकारी श्रीगौरको प्रणाम :—
श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक (6/74)—

वैराग्यविद्या-निजभक्तियोग-
शिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः।
श्रीकृष्णचैतन्यशरीरधारी
कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये॥ 254॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 254॥

अमृतप्रवाह भाष्य—वैराग्य, विद्या और निजभक्तियोगकी शिक्षा देनेके लिये श्रीकृष्णचैतन्यरूपधारी एक सनातन पुरुष—जो सर्वदा कृपाके समुद्र हैं, उनके प्रति मैं शरणागत होता हूँ॥ 254॥

अनुभाष्य—

वैराग्यविद्यानिज-भक्तियोगशिक्षार्थं (कृष्णेतरवस्तुविरक्ति-परेशानुभूति-निजनाम-रूप-गुण-लीला-सेवनयोग्योपदेशार्थम्) एकः पुराणः (सनातनः) कृपाम्बुधिः (जड़ासक्तजनेष्वपि परमोत्तम-मुक्त-जनोचित-व्रजप्रेमदानरूप-दयार्णवः) पुरुषः श्रीकृष्णचैतन्यशरीरधारी (श्रीकृष्णचैतन्य एव शरीरं धर्त्तुं शीलमस्य सः) अहं तं प्रपद्ये (आश्रयामि)।

श्लोक-भावानुवाद—जड़ विषयोंमें आसक्त लोगोंको भी मुक्तजनोंके लिये उचित परम-उत्तम व्रजप्रेमदानरूप दयाके समुद्र; श्रीकृष्णसे इतर वस्तुओंसे विरक्ति, पर-ईशकी अनुभूति और निज नाम-रूप-गुण-लीला-सेवाके योग्य उपदेश देनेके लिये श्रीकृष्णचैतन्य-शरीरधारी एक सनातन पुरुषके मैं शरणागत होता हूँ॥ 254॥

गुप्तभक्ति-व्यक्तकारी श्रीगौरमें निष्ठा :—

कालान्नष्टं भक्तियोगं निजं यः
प्रादुष्कर्त्तुं कृष्णचैतन्यनामा।
आविर्भूतस्तस्य पादारविन्दे
गाढ़ं गाढ़ं लीयतां चित्तभृङ्गः॥255॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥255॥

अमृतप्रवाह भाष्य—कालके प्रभावसे निजभक्तियोगको प्राय विनष्ट देखकर जो 'श्रीकृष्णचैतन्य'—नामक पुरुष उसका पुनः प्रचार करनेके लिये आविर्भूत हुए हैं, उनके श्रीचरणकमलोंमें मेरा चित्तरूपी भ्रमर गाढ़रूपसे लीन हो जाय॥255॥

अनुभाष्य—

कालात् (अन्याभिलाषकर्मज्ञानजड़ासक्तिप्राबल्यात् काल-धर्मवशेन) नष्टं (लुप्तं) निजं (कृष्णनामरूपगुणलीलामयं) भक्तियोगं प्रादुष्कर्त्तुं (पुनः प्रकटयितुं) यः कृष्णचैतन्यनामा [सन्] आविर्भूतः (प्रकाशितः), तस्य पादारविन्दे (चरण-कमले) चित्तभृङ्गः (चञ्चलमनोभ्रमरः) गाढ़ं गाढ़ं लीयतां (निमज्जतु)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥255॥

दोनों श्लोकोंके द्वारा श्रीसार्वभौमकी महिमाका विस्तार :—

एइ दुइ श्लोक—भक्तकण्ठे मणिहार।
सार्वभौमेर कीर्त्ति घोषे ढक्कावाद्याकार॥256॥

अनुवाद—ये दो श्लोक नगाढ़ेके भाँति उच्च स्वरसे श्रीसार्वभौमकी कीर्ति सब समयके लिये घोषित करते रहेंगे, क्योंकि ये सब भक्तोंके कण्ठके मणिमय हार स्वरूप बन गये हैं॥256॥

श्रीगौरगत प्राण सार्वभौम :—

सार्वभौम हैला प्रभुर भक्त एकजन।
महाप्रभुर सेवा-बिना नाहि अन्य मन॥257॥
'श्रीकृष्णचैतन्य शचीसुत गुणधाम।'
एइ ध्यान, एइ जप, लय एइ नाम॥258॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य महाप्रभुके अनन्य भक्त बन गये। अब वे महाप्रभुकी सेवाके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानते थे। 'समस्त गुणोंके सागर शचीनन्दन श्रीकृष्णचैतन्य'के नामका सब समय जप-कीर्तन करते और उन्हींका ध्यान करते॥257-258॥

महाप्रभुके निकट श्रीसार्वभौमके द्वारा ब्रह्मस्तुतिके एक श्लोकका पाठान्तरपूर्वक पाठ करना :—

एकदिन सार्वभौम प्रभु-आगे आइला।
नमस्कार करि' श्लोक पड़िते लागिला॥259॥
भागवतेर 'ब्रह्मस्तवे'र श्लोक पड़िला।
श्लोक-शेषे दुइ अक्षर-पाठ फिराइला॥260॥

अनुवाद—एक दिन श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने महाप्रभुके पास आकर उनको प्रणाम करनेके बाद भागवतसे ब्रह्म-स्तुतिका एक श्लोक पढ़ा। पढ़ते हुए उन्होंने श्लोकके अन्तिम चरणके दो अक्षरोंका पाठ बदल दिया॥259-260॥

श्रीमद्भागवत (10/14/8) परिवर्तित :—

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्ष्यमाणो
भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत
यो भक्तिपदे स दायभाक्॥261॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥261॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जो आपकी अनुकम्पा प्राप्तिकी उद्देश्यसे अपने कर्मोंके मन्द फलोंको भोग करते-करते मन, वाक्य और शरीरके द्वारा आपके प्रति भक्ति करते हुए जीवन यापन करते हैं, वे 'मुक्तिपदे दायभाक्' अर्थात् वे मुक्तिपदको प्राप्त करते हैं। इस श्लोकका पाठ करते समय श्रीसार्वभौमने "भक्तिपदे स दायभाक्"—ऐसा उच्चारण किया था॥261॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णके द्वारा गर्व चूर्ण होनेपर ब्रह्मा एकान्त शरणागत होकर श्रीकृष्णका स्तव कर रहे हैं—

तत् (तस्मात्) ते अनुकम्पां (कृपां) सुसमीक्ष्यमाणः (सम्यक्

मन्यमानः) आत्मकृतं (निजानुष्ठितं) विपाकं (कर्मफलं) भुञ्जानः एव हृदवाग्वपुभिः (कायमनोवाक्यैः) ते (तुभ्यं) नमः विदधत् (जड़ीयाहङ्कारं त्यक्तवा आत्मसमर्पणं कुर्वन्) यः जीवेत्, सः मुक्तिपदे दायभाक् (योग्यपात्रः) भवति।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 261॥

महाप्रभु द्वारा भागवतके पाठका समर्थन और संरक्षण :—

प्रभु कहे,—" 'मुक्तिपदे'—इहा पाठ हय।
'भक्तिपदे' केने पड़, कि तोमार आशय॥"262॥

अनुवाद—महाप्रभुने उनसे कहा,—"श्लोकमें तो 'मुक्तिपदे'—यह पाठ है। आप 'भक्तिपदे' पाठ क्यों कह रहे हैं? आपका ऐसा कहनेका क्या अभिप्राय है?"॥262॥

भट्टाचार्यकी मुक्तिके स्थानपर
भक्ति-पाठ-रक्षा करनेकी इच्छा :—

भट्टाचार्य कहे,—" 'भक्ति'-सम नहे मुक्तिफल।
भगवद्भक्तिविमुखेर हय दण्ड केवल॥ 263॥

पाषण्ड, मायावादी और विष्णुविद्वेषी
दैत्यगणको सायुज्य मुक्ति :—

कृष्णेर विग्रह येइ सत्य नाहि माने।
येइ निन्दा-युद्धादिक करे ताँर सने॥ 264॥

सेइ दुइर दण्ड हय—'ब्रह्मसायुज्य-मुक्ति'।
तार मुक्ति फल नहे, येइ करे भक्ति॥ 265॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने कहा,—" 'भक्ति'के समान मुक्तिका फल नहीं है। मुक्ति तो भगवद्भक्ति-विमुख लोगोंके लिये केवल दण्डमात्र है। श्रीकृष्णके विग्रहको जो लोग सत्य नहीं मानते और जो लोग उनकी निन्दा एवं उनसे युद्धादि करते हैं,—इन दोनों प्रकारके लोगोंको 'ब्रह्मसायुज्य-मुक्ति' रूप दण्ड मिलता है। परन्तु जो भक्ति करते हैं, उसका फल ऐसी मुक्ति नहीं है॥ 263-265॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीभट्टाचार्यने कहा,—(प्रेम)-भक्ति ही भक्तिका सर्वोत्तम फल है, मुक्ति भक्तिका फल नहीं है। भगवद्भक्तिसे विमुख व्यक्तिके लिये सायुज्यमुक्ति केवल एक प्रकारका दण्ड है॥ 263॥

अनुभाष्य—श्रीरूप गोस्वामी द्वारा रचित लघुभागवतामृतमें ब्रह्मलोकके वर्णनके प्रसङ्गमें उनके द्वारा रचित कारिका—

"भक्तेरव्यभिचारायाः प्रेमसेवैव यत्फलम्।
केवलं ब्रह्मभावस्तु विद्वेषेणापि लभ्यते॥"

अर्थात् "प्रेमसेवा ही अव्यभिचारिणी भक्तिका फल है। (पक्षान्तरमें) यह निश्चित है कि ब्रह्मभाव (भगवान्‌के) विद्वेषके द्वारा भी प्राप्त होता है।"

श्रीबलदेवविद्याभूषणके द्वारा रचित टीका—

"ननु चित्परमाणोर्जीवस्य चिद्राशौ तस्मिन् ब्रह्मणि लयेनैव भाव्यं, न पुनस्ततो निःसृत्य तदाश्रयस्य कृष्णस्य सेवनं सम्भवेदिति चेत्? तत्राह—भक्तेरिति। तस्मिन् ब्रह्मणि विलीनतया स्थितिस्तु भगवता कृष्णेन् निहतानां विद्वेषिणामपि भवेत्, 'सिद्धलोकस्तु तमसः पारे यत्र वसन्ति हि। सिद्धा ब्रह्मसुखे मग्ना दैत्याश्च हरिणा हताः॥' (ब्रह्माण्डपुराणे) इति स्मरणात्। तस्मात् तल्लीनत्वमात्रं भक्तेः फलं न भवतीति। तमसः—अष्टमावरणात् प्रकृतिमण्डलात्, पारे ब्रह्मलोकः—'चयस्त्विषाम्' इति न्यायेन निराकारचित्पुञ्जरूपं स्थानमित्यर्थः। सिद्धाः—अनवज्ञातभगवदङ्घ्रयस्तादृग्ब्रह्मचिन्तकाः तच्चिन्तनात् विधवस्त-लिङ्गाः, यत्र वसन्ति—लीयन्ते; तच्चरणावज्ञातृणान्तु ज्ञानलव-दग्धनामधःपातो भवति, 'येऽन्येऽरविन्दाक्ष! विमुक्तमानिनस्त्वयस्तद्भावाद्विशुद्धबुद्धयः। आरुह्य कृच्छ्र पदं ततः पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः॥" (भाः 10/2/32) इति श्रीभागवतात्।"

अर्थात् "यदि चित्परमाणु जीवका चित्पुञ्ज ब्रह्ममें ही लय हो गया, ऐसा होनेपर तो ब्रह्मसे निकलकर जीवके लिये पुनः उसके आश्रय श्रीकृष्णकी सेवा सम्भव नहीं होगी? इस आशङ्काके उत्तरमें उल्लिखित श्लोक कहा गया है। ब्रह्ममें लीन होकर अवस्थान करना तो अति तुच्छ है,—वह स्थिति तो श्रीकृष्णके हाथों मारे गये विद्वेषी दैत्योंको भी प्राप्त होती है; क्योंकि ब्रह्माण्डपुराणमें ही इसका प्रमाण मिलता है (आदिलीला 5/39 संख्या देखें)। इस श्लोकमें, "चयस्त्विषाम्"—इस न्यायके अनुसार 'ब्रह्म या सिद्धलोक' शब्दसे निराकार चित्पुञ्जरूप विशेष स्थानको समझना होगा। 'सिद्धाः'-शब्दका तात्पर्य, जो सब जीव भगवान्‌के चरणकमलोंकी अवज्ञा नहीं करते हैं, अपितु इस

प्रकारकी ब्रह्मचिन्ताके द्वारा जिनके लिङ्गदेहका आवरण दूर हो गया है—वे 'वसन्ति' अर्थात् लय प्राप्त करते हैं। किन्तु जो भगवान्के श्रीचरणोंकी अवज्ञा करनेवाले हैं, उनका (भाः 10/2/32)—"येऽन्योरविन्दाक्ष" श्लोकके अनुसार जो सामान्य ज्ञान पहले सहारा था, वह भी भगवान्की अवज्ञा करनेके फलस्वरूप सम्पूर्ण रूपसे नष्ट हो जाता है, इसलिये उनका अधःपतन होता है अर्थात् उनको नरककी प्राप्ति होती है॥"263-265॥

पाँच प्रकारकी मुक्ति :—

यद्यपि मुक्ति हय एइ पञ्च-प्रकार।
सालोक्य-सामीप्य-सारूप्य-सार्ष्टि-सायुज्य आर॥266॥

सायुज्यके अतिरिक्त चार प्रकारकी मुक्तियाँ भक्तिकी आनुषङ्गिक :—

'सालोक्यादि' चारि यदि हय सेवा-द्वार।
तबु कदाचित् भक्त करे अङ्गीकार॥267॥

नरक-सदृश सायुज्य 'भक्तिविनाशक' होनेके कारण सर्वथा परित्याज्य :—

'सायुज्य' शुनिते भक्तेर हय घृणा-भय।
'नरक' वाञ्छये, तबु सायुज्य ना लय॥268॥

अनुवाद—यद्यपि मुक्ति 'सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सार्ष्टि और सायुज्य'—पाँच प्रकारकी होती है, तथापि सालोक्यादि चार प्रकारकी मुक्तियाँ यदि भगवद्-सेवाका द्वार हों, तो कदाचित् भक्त उन्हें स्वीकार करते हैं। 'सायुज्य' मुक्तिका नाम सुनते ही भक्तोंको उससे घृणा और भय होता है। भक्त सायुज्य मुक्तिको अङ्गीकार करनेके स्थानपर नरक जाना श्रेयस्कर समझते हैं॥266-268॥

अमृतप्रवाह भाष्य—सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सार्ष्टि और सायुज्य,—इन पाँच प्रकारकी मुक्तियोंमेंसे पहली सालोक्यादि चार इतनी निन्दनीय नहीं हैं, क्योंकि वे भगवद्सेवाके द्वार-स्वरूप हैं। तथापि श्रीकृष्णभक्त उपरोक्त चार प्रकारकी मुक्तियोंको भी स्वीकार नहीं करते, क्योंकि वे जन्म-जन्मान्तर श्रीकृष्णभक्तिकी ही अभिलाषा करते हैं। 'सायुज्य'-शब्द सुनने मात्रसे भक्तमें उसको तुच्छ समझकर घृणा और 'भक्तिविरोधकारी अपराध' जानकर भय होता है॥267-268॥

दो प्रकारके सायुज्य :—

ब्रह्मे, ईश्वरे सायुज्य दुइ त' प्रकार।
ब्रह्म-सायुज्य हैते ईश्वर-सायुज्य धिक्कार॥269॥

अनुवाद—सायुज्य मुक्ति दो प्रकारकी है—'ब्रह्म-सायुज्य' और 'ईश्वर-सायुज्य'। ब्रह्म-सायुज्यसे ईश्वर-सायुज्य और भी अधिक धिक्कारके योग्य है॥269॥

अमृतप्रवाह भाष्य—सायुज्य दो प्रकारका होता है—ब्रह्मसायुज्य और ईश्वरसायुज्य। मायावादी वेदान्तिकोंके मतानुसार जीवका चरमफल—ब्रह्मसायुज्य है; पातञ्जलके मतानुसार, कैवल्य-अवस्थामें ईश्वर-सायुज्य है। इन दोनों प्रकारके सायुज्योंमेंसे ईश्वरसायुज्य ही अधिक घृणित है। ब्रह्मसायुज्यमें निर्विशेषज्ञानके द्वारा निर्विशेष गति प्राप्त होती है; किन्तु सविशेष-ईश्वरका ही ध्यान करके जो कैवल्यरूपी ईश्वरसायुज्य प्राप्त होता है, वही वासनादोषके कारण और अधिक पतनरूपी फल है। "क्लेशकर्मविपाकाशयैर परामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।" अर्थात् "क्लेशों और कर्मफलकी वासनाओंसे अस्पृष्ट विशेष पुरुष ही ईश्वर है।", "स पूर्वेषामपि गुरुः कालानवच्छेदात्।" अर्थात् "वह सनत् कुमारादिसे भी पूर्व विद्यमान है और कालसे कभी भी ढका या प्रभावित नहीं होता।" इसके द्वारा सविशेष-ईश्वरका नित्यत्व देखा जाता है। पुनः इस पातञ्जलमें कैवल्यपादमें "पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति" अर्थात् "प्रकृतिके तीनों गुणोंके प्रभाव दूर होनेपर शुद्ध आत्मा अपने चिद्-स्वरूपमें कैवल्य-मुक्तिको प्राप्त होती है।" इस सूत्रके द्वारा साधककी सिद्धावस्थामें अन्य पुरुष-ईश्वरके अवस्थानका अभाव है। सविशेषतत्त्वके आश्रयके छलसे योगमार्ग अत्यन्त तुच्छ है। तात्पर्य यह है कि (योगपन्थामें) सविशेष तत्त्वकी उपासनासे सविशेष-फल ना होकर अत्यन्त सुदूरवर्ती धिक्कारयोग्य फल प्राप्त होता है॥269॥

सेव्यकी निष्काम-सेवाके अतिरिक्त सेवककी
किसी भी मुक्तिकी कामना नहीं :—
श्रीमद्भागवत (3/29/13)—

सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य-सारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति बिना मत्सेवनं जनाः॥"270॥

अनुवाद—[मेरे द्वारा] सालोक्य (वैकुण्ठवास), सार्ष्टि (ऐश्वर्यसम्पत्ति), सामीप्य (निकटवास), सारूप्य (चतुर्भुजाकार) और एकत्व (सायुज्य या अभेदगति) प्रदान करनेपर भी भक्त उन्हें ग्रहण नहीं करते, क्योंकि मेरी अप्राकृत सेवाके अतिरिक्त उनकी कोई भी अभिलाषा नहीं है॥ 270॥

अनुभाष्य—आदिलीला 4/207 संख्या देखें॥ 270॥

महाप्रभुके द्वारा मुक्तिपदकी व्याख्या :—

प्रभु कहे,—"मुक्तिपदे'र आर अर्थ हय।
मुक्तिपद-शब्दे 'साक्षात् ईश्वर' कहय॥ 271॥

मुक्ति पदे याँर, सेइ 'मुक्तिपद' हय।
किम्वा नवम पदार्थ 'मुक्तिर' समाश्रय॥ 272॥

दुइ-अर्थे 'कृष्ण' कहि, केने पाठ फिरि।"
सार्वभौम कहे,—"ओ-पाठ कहिते ना पारि॥ 273॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"मुक्तिपदके और भी अर्थ हैं। मुक्तिपद-शब्दसे 'साक्षात् ईश्वर'को कहा जाता है। मुक्ति जिनके चरणोंमें रहती है, वे 'मुक्तिपद' हैं। अथवा [भागवतके दस लक्षणोंमेंसे] नौवें पदार्थ मुक्तिके जो सम्पूर्ण आश्रय हैं, वे मुक्तिपद हैं। इसलिये जब ये दोनों अर्थ 'मुक्तिपद'के द्वारा श्रीकृष्णको ही कहते हैं, तब क्यों पाठमें परिवर्तन करते हो?" श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने कहा,—"मैं वह पाठ [मुक्तिका उच्चारण] नहीं कर सकता॥ 271–273॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिनके चरणोंमें मुक्ति है, वे—'मुक्तिपद' अर्थात् 'दसवें' पदार्थ श्रीकृष्ण हैं; अथवा नौवाँ पदार्थ जो मुक्ति है, वह जिनको आश्रय करके रहती है, वे—श्रीकृष्ण हैं॥ 272॥

अनुभाष्य—आदिलीला 2/91–92 संख्या देखें॥ 272॥

तथापि श्रीसार्वभौमके द्वारा मुक्ति-शब्दके 'सायुज्य' अर्थका
अनादर और 'भक्ति'-शब्दका आदर :—

यद्यपि तोमार अर्थ एइ शब्दे कय।
तथापि 'आश्लिष्य-दोषे' कहन ना याय॥ 274॥

यद्यपि 'मुक्ति'-शब्देर हय पञ्च वृत्ति।
'रूढ़िवृत्त्ये' कहे तबु 'सायुज्ये' प्रतीति॥ 275॥

मुक्ति-शब्द कहिते मने हय घृणा-त्रास।
भक्ति-शब्द कहिते मने हय त' उल्लास॥"276॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने कहा,—यद्यपि आपके अर्थोंमें 'मुक्तिपद' श्रीभगवान् ही हैं, तथापि 'आश्लिष्य-दोष' (संशय)के कारण 'मुक्तिपद' शब्द कहा नहीं जाता। यद्यपि 'मुक्ति' शब्दकी पाँच प्रकारकी वृत्तियाँ हैं, तथापि रूढ़िवृत्तिके द्वारा मुक्ति शब्दसे 'सायुज्य'की ही प्रतीति होती है। मुक्ति-शब्द कहते ही मनमें घृणा होती है और भय लगता है। परन्तु भक्ति-शब्द कहते ही मनमें उल्लास हो जाता है॥ 274–276॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'आश्लिष्य-दोष'*—जिसका दो प्रकारसे अर्थ हो सकता है; जिसमें मुख्य अर्थकी कुछ हानि होती है, वह दोष। *'रूढ़िवृत्ति'*—मुख्यवृत्ति॥ 274–275॥

छठे अध्यायका अमृप्रवाह भाष्य समाप्त।

श्रीसार्वभौमकी निष्काम भक्तिको
देखकर महाप्रभुकी प्रसन्नता :—

शुनिया हासेन प्रभु आनन्दित मने।
भट्टाचार्य कैल प्रभु दृढ़ आलिङ्गने॥ 277॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके वचनोंको सुनकर महाप्रभु बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने उनका प्रगाढ़ आलिङ्गन किया॥ 277॥

ग्रन्थकारके द्वारा श्रीकृष्णचैतन्यकी
कृपाकी महिमाका कीर्तन :—

येइ भट्टाचार्य पड़े पड़ाय मायावादे।
ताँर ऐछे वाक्य स्फुरे चैतन्य-प्रसादे॥ 278॥

लोहाके यावत् स्पर्शि' हेम नाहि करे।
तावत् स्पर्शमणि केह चिनिते ना पारे॥ 279॥

अनुवाद—[ग्रन्थकार श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी कह रहे हैं] जो श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य मायावादको पढ़ते और पढ़ाते थे, आज महाप्रभुकी कृपासे उनके मुखसे ऐसे वाक्य निकल रहे हैं। जब तक अपने स्पर्शसे वह लोहेको सोना नहीं बनाती, तब तक स्पर्शमणिको कोई पहचान नहीं पाता॥ 278–279॥

महाप्रभुका 'परमेश्वर श्रीकृष्ण' होनेमें सभीका विश्वास :—

भट्टाचार्येर वैष्णवता देखि' सर्वजन।
प्रभुके जानिल,—'साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन'॥ 280॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यकी वैष्णवताको देखकर सभी जान गये कि महाप्रभु 'साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन' श्रीकृष्ण हैं॥ 280॥

काशीमिश्रादिकी महाप्रभुके चरणोंमें शरणागति :—

काशीमिश्र-आदि यत नीलाचलवासी।
शरण लइल सबे प्रभु-पदे आसि'॥ 281॥

अनुवाद—तदुपरान्त काशीमिश्रादि जितने नीलाचलवासी थे, सभीने आकर महाप्रभुके चरणकमलोंकी शरण ग्रहण की॥ 281॥

इसके बाद महाप्रभुका दक्षिण भारतमें भ्रमण :—

सेइ सब कथा आगे करिब वर्णन।
एबे कहि प्रभुर दक्षिण-यात्रा-विवरण॥ 282॥

अनुवाद—इन सब कथाओंका मैं बादमें वर्णन करूँगा, अभी मैं महाप्रभुकी दक्षिण-भारतकी यात्राका वर्णन करूँगा॥ 282॥

सार्वभौम करे यैछे प्रभुर सेवन।
यैछे परिपाटी करे भिक्षा-निर्वाहण॥ 283॥

विस्तारिया आगे ताहा करिब वर्णन।
एइ महाप्रभुर लीला—सार्वभौम-मिलन॥ 284॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने जिस प्रकार भिक्षादि करवाकर अनेक प्रकारसे महाप्रभुकी सेवा की, इन सब लीलाओंका मैं विस्तारपूर्वक बादमें वर्णन करूँगा। यह महाप्रभुकी श्रीसार्वभौम-मिलन लीला है॥ 283–284॥

अनुभाष्य—मध्यलीला पन्द्रहवाँ अध्याय देखें॥ 284॥

छठे अध्यायका अनुभाष्य समाप्त।

श्रीसार्वभौम और चैतन्य महाप्रभुके संवादको
श्रवण करनेसे निष्काम भक्तिकी प्राप्ति,
यह कर्मकाण्डीय फलश्रुति मात्र नहीं :—

इहा येइ श्रद्धा करि' करये श्रवण।
ज्ञान-कर्मपाश हैते हय विमोचन॥ 284॥

श्रद्धाय चैतन्यलीला शुने येइजन।
अचिरे मिलये ताँरे चैतन्य-चरण॥ 285॥

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ 286॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते मध्यखण्डे सार्वभौमोद्धारो
नाम षष्ठ-परिच्छेदः।

अनुवाद—इस लीलाको जो श्रद्धापूर्वक सुनते हैं, वे ज्ञान और कर्मके बन्धनसे छूट जाते हैं। जो श्रद्धापूर्वक श्रीचैतन्यलीलाको सुनते हैं, उन्हें शीघ्र ही महाप्रभुके चरणकमलोंकी प्राप्ति होती है। श्रीरूप-रघुनाथ गोस्वामीके चरणकमलोंकी कृपाभिलाषा करते हुए कृष्णदास इस चैतन्यचरितामृतका वर्णन कर रहा है॥ 284–286॥

श्रीचैतन्यचरितामृतमें मध्यखण्डमें सार्वभौम-उद्धार
नामक छठे अध्यायका अनुवाद समाप्त।

चित्र–7

सातवाँ अध्याय

कथासार—माघमासके शुक्ल पक्षमें महाप्रभुने संन्यास ग्रहण करके फाल्गुन मासमें नीलाचलमें वास किया। फाल्गुनमासमें दोलयात्राका दर्शन करके चैत्रमासमें श्रीसार्वभौमका उद्धार किया। वैशाखमासमें दक्षिणकी ओर यात्रा की। अकेले ही दक्षिणमें भ्रमण करेंगे,—ऐसा प्रस्ताव रखनेपर, श्रीनित्यानन्द प्रभुने उनके साथ 'कृष्णदास' नामक एक ब्राह्मणको भेजा। जानेके समय श्रीसार्वभौमने महाप्रभुको साथ ले जानेके लिये चार कौपीन-बहिर्वास दिये और श्रीरामानन्द रायके साथ गोदावरीके तटपर साक्षात्कार करनेके लिये अनुरोध किया। आलालनाथ तक श्रीनित्यानन्द प्रभु आदि कुछ भक्त महाप्रभुके साथ गये थे। उन सबको वहीं छोड़कर केवल कृष्णदासको साथ ले जाना स्वीकार करके महाप्रभु 'कृष्ण' 'कृष्ण' बोलते-बोलते चलने लगे। जिस गाँवमें वे रात्रिमें वास करते थे, वहाँ शरणागत व्यक्तियोंमें शक्ति घसञ्चार करके उसे सम्पूर्ण देशको ही 'वैष्णव' बनानेकी आज्ञा देते। वे सब (महाप्रभुसे शक्ति-प्राप्त लोग) पुनः दूसरे लोगोंकी भक्तिकी शिक्षा देकर अन्यान्य गाँवोंमें भक्तोंकी संख्यामें वृद्धि करने लगे। इस प्रकार सबको वैष्णव बनाते हुए महाप्रभु कूर्मस्थानमें पहुँचे, वहाँ 'कूर्म'-नामक ब्राह्मणपर कृपा की और 'वासुदेव' नामक ब्राह्मणका गलितकुष्ठ (ऐसा कोढ़, जिसमें कीड़े पड़ गये हों, उस) रोगसे उद्धार किया। वासुदेवका उद्धार करके 'वासुदेवामृतप्रद' नामक महाप्रभुका एक नाम हुआ।

—(अमृतप्रवाहभाष्य)

'वासुदेवामृतप्रद'-प्रभुको प्रणाम :—

धन्यं तं नौमि चैतन्यं वासुदेवं दयार्द्रधीः।
नष्टकुष्ठं रूपपुष्टं भक्तितुष्टं चकार यः॥1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिन्होंने दयार्द्रबुद्धि (दयासे द्रवित बुद्धि) होकर 'वासुदेव'-नामक भक्तको कोढ़-रोगसे मुक्त करके सुन्दर रूपमें पुष्ट किया और उसे भक्ति देकर सन्तुष्ट किया था, उन्हीं धन्य श्रीचैतन्यदेवको मैं प्रणाम करता हूँ॥1॥

अनुभाष्य—

यः दयार्द्रधीः (दयया आर्द्रा धीर्यस्य सः) [कुष्ठ रोगाक्रान्तं] वासुदेवं नष्टकुष्ठं (विगतकुष्ठरोगं) रूपपुष्टं (सौन्दर्यमयं) भक्तितुष्टं चकार, तं धन्यं चैतन्यं नौमि।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥1॥

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥2॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभुकी जय हो, जय हो, श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो, श्रीअद्वैतचन्द्रकी जय हो और श्रीगौरभक्तवृन्दकी जय हो॥2॥

माघ मासमें संन्यास, फाल्गुन मासमें पुरीधाममें वास, चैत्र मासमें श्रीसार्वभौमका उद्धार, वैशाख मासमें दक्षिण भारत जानेकी इच्छा :—

एइमते सार्वभौमेर निस्तार करिल।
दक्षिण-गमने प्रभुर इच्छा उपजिल॥3॥

माघ-शुक्लपक्षे प्रभु करिल संन्यास।
फाल्गुने आसिया कैल नीलाचले वास॥4॥

फाल्गुनेर शेषे दोलयात्रा से देखिल।
प्रेमावेशे बहुविध नृत्यगीत कैल॥5॥

चैत्रे रहि' कैल सार्वभौम-विमोचन।
वैशाखेर प्रथमे दक्षिण याइते हैल मन॥6॥

अनुवाद—इस प्रकार श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यका उद्धार करनेके बाद महाप्रभुकी दक्षिण भारत जानेकी इच्छा जाग्रत हुई। माघमासके शुक्लपक्षमें महाप्रभुने संन्यास ग्रहण किया और फाल्गुन मासमें नीलाचलमें आकर वास किया था। फाल्गुन मासके अन्तमें महाप्रभुने दोलयात्राका दर्शन किया और प्रेमावेशमें अनेक प्रकारसे नृत्य-गीत किया। चैत्रमासमें नीलाचलमें रहते हुए महाप्रभुने श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यका उद्धार किया तथा वैशाख मासके प्रारम्भमें उन्होंने दक्षिण भारत जानेका निश्चय किया॥ 3–6॥

भक्तोंके निकट कृतज्ञता-ज्ञापन और विदायी-माँगना :—

निजगण आनि' कहे विनय करिया।
आलिङ्गन करि' सबाय श्रीहस्ते धरिया॥ 7॥

"तोमा-सबा जानि आमि प्राणाधिक करि'।
प्राण छाड़ा याय, तोमा-सबा छाड़िते ना पारि॥ 8॥

तुमि-सब बन्धु मोर बन्धुकृत्य कैले।
इँहा आनि' मोरे जगन्नाथ देखाइले॥ 9॥

एबे सबा-स्थाने मुञि मागों एक दाने।
सबे मेलि' आज्ञा देह, याइब दक्षिणे॥ 10॥

बड़े भाई विश्वरूपको ढूँढ़नेके छलसे दक्षिण भारतके लोगोंके उद्धारके लिये अकेले जानेकी इच्छा :—

विश्वरूप-उद्देशे अवश्य आमि याब।
एकाकी याइब, केहो सङ्गे ना लइब॥ 11॥

सेतुबन्ध हैते आमि ना आसि यावत्।
नीलाचले तुमि-सब रहिबे तावत्॥"12॥

अनुवाद—महाप्रभुने अपने सभी भक्तोंको बुलाकर उनका आलिङ्गन किया और उनके हाथोंको पकड़कर विनीत भावसे कहने लगे,—"आप सब मुझे मेरे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं। मैं अपने प्राण छोड़ सकता हूँ, परन्तु आप सबको नहीं। आप सब मेरे बन्धु हैं और मुझे यहाँ लाकर श्रीजगन्नाथदेवके दर्शन कराके वास्तवमें बन्धुका कार्य ही किया है। अब मैं आप सबसे एक दान माँगता हूँ, आप सभी मुझे दक्षिण भारत जानेकी अनुमति प्रदान करो। मुझे अपने भाई श्रीविश्वरूपको खोजनेके लिये अवश्य ही जाना है, परन्तु मैं अकेला ही जाऊँगा और किसीको साथमें नहीं लूँगा। जब तक मैं रामेश्वरम्‌से लौटकर नहीं आ जाता, तब तक आप सब नीलाचलमें ही रहना॥"7–12॥

विश्वरूप-सिद्धि-प्राप्ति जानेन सकल।
दक्षिण-देश उद्धारिते करेन एइ छल॥ 13॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 13॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महाप्रभु तो सर्वज्ञ हैं। विश्वरूपको इससे पूर्व ही सिद्धिप्राप्ति हो चुकी है अर्थात् वे अप्रकट हो चुके हैं, उसे महाप्रभु पूर्णरूपसे जानते थे, परन्तु दक्षिण-भारतके लोगोंका उद्धार करनेके लिये उन्होंने यह छल किया कि मैं विश्वरूपको खोजूँगा॥ 13॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 9/299–300 संख्या देखें॥ 13॥

भक्तोंका दुःख :—

शुनिया सबार मने हैल महादुःख।
निःशब्द हइला, सबार शुकाइल मुख॥ 14॥

अनुवाद—महाप्रभुकी बातको सुनकर सभीके मनमें इतना दुःख हुआ कि वे कुछ बोल ही नहीं पाये और सबका मुख सूख गया॥ 14॥

साथमें जानेके लिये श्रीनित्यानन्द प्रभुकी प्रार्थना :—

नित्यानन्दप्रभु कहे,—"ऐछे कैछे हय?
एकाकी याइबे तुमि, के इहा सहय?॥ 15॥

दुइ-एक सङ्गे चलुक, ना पड़ हठ-रङ्गे।
यारे कह, सेइ दुइ चलुक् तोमार सङ्गे॥ 16॥

दक्षिणेर तीर्थपथ आमि सब जानि।
आमि सङ्गे याइ, प्रभु, आज्ञा देह तुमि॥"17॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभुने कुछ धैर्य धारण

करके कहा,—"ऐसा कैसे हो सकता है? आप अकेले जायेंगे, इसे कौन सहन कर सकता है? हम दो-एक व्यक्तियोंको अपने सङ्ग लेकर चलो, अन्यथा आप किसी ठगके चङ्गुल पड़ जाओगे। आप जिन्हें कहेंगे, वे दो व्यक्ति ही आपके साथ जायेंगे। मैं दक्षिणके सभी तीर्थोंके मार्ग जानता हूँ। प्रभो! आप मुझे आज्ञा दीजिये, मैं आपके साथ जाऊँगा॥"15–17॥

अनुभाष्य— *'हठ-रङ्गे'*—ठग या जुआ-चोरके चङ्गुलमें॥ 16॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीनित्यानन्द-जगदानन्द-दामोदर आदि भक्तोंकी कृत्रिम निन्दाके छलसे गुणगान :—

प्रभु कहे,—"आमि नर्त्तक, तुमि—सूत्रधार।
तुमि यैछे नाचाओ, तैछे नर्त्तन आमार॥ 18॥
संन्यास करिया आमि चलिलाङ वृन्दावन।
तुमि आमा लञा आइले अद्वैत-भवन॥ 19॥
नीलाचल आसिते, पथे भाङ्गिला मोर दण्ड।
तोमा-सबार गाढ़-स्नेहे आमार कार्य-भङ्ग॥ 20॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीनित्यानन्द प्रभुको लक्ष्य करके कहा,—"मैं नर्तक हूँ और आप सूत्रधार हो। आप जैसे मुझे नचाते हो, मैं वैसे ही नाचता हूँ। संन्यास लेकर जब मैं वृन्दावनकी ओर चला, तब आप मुझे शान्तिपुरमें श्रीअद्वैताचार्यके घर ले आये। नीलाचल आते समय मार्गमें आपने मेरा संन्यास दण्ड तोड़ दिया। आप सबके गाढ़-स्नेहसे मेरे कार्य बिगड़ रहे हैं॥ 18–20॥

जगदानन्द चाहे आमा विषय भुञाइते।
येइ कहे, सेइ भये चाहिये करिते॥ 21॥
कभु यदि इँहार वाक्य करिये अन्यथा।
क्रोधे तिनदिन मोरे नाहि कहे कथा॥ 22॥

अनुवाद—(महाप्रभुने श्रीजगदानन्दके विषयमें कहा)—जगदानन्द तो मुझे विषय-भोग करवाना चाहता है। वह जो भी कहता है, उसके भयसे मुझे वह करना पड़ता है। यदि कभी मैं इसकी बात नहीं मानकर कुछ और करता हूँ, तो यह क्रोधित होकर तीन दिन तक मुझसे बात नहीं करता॥ 21–22॥

मुकुन्द हयेन दुःखी देखि' संन्यास-धर्म।
तिनबारे शीते स्नान, भूमिते शयन॥ 23॥
अन्तरे दुःखी मुकुन्द, नाहि कहे मुखे।
इहार दुःख देखि' मोर द्विगुण हये दुःखे॥ 24॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 23–24॥

अनुभाष्य—(महाप्रभुने श्रीमुकुन्दको लक्ष्य करके कहा)—संन्यासधर्मका पालन करनेके लिये मैं शीतकालमें भी तीन बार स्नान और बिना शय्याके भूमिपर शयन करता हूँ, ऐसा देखकर मुकुन्द दुःखी होता है। मेरे लिये मुकुन्दके मनमें दुःख होता है, ऐसा जानकर उसके लिये मैं दुगना दुःखी होता हूँ॥ 23–24॥

दामोदर-ब्रह्मचारीकी निरपेक्षतापर महाप्रभुका कटाक्ष :—

आमि त'—संन्यासी, दामोदर—ब्रह्मचारी।
सदा रहे आमार उपर शिक्षा-दण्ड धरि'॥ 25॥
इँहार आगे आमि ना जानि व्यवहार।
इँहारे ना भाय स्वतन्त्र चरित्र आमार॥ 26॥
लोकापेक्षा नाहि इँहार कृष्णकृपा हैते।
आमि कभु लोकापेक्षा ना पारि छाड़िते॥ 27॥

अनुवाद—(अब महाप्रभुने श्रीदामोदर पण्डितको लक्ष्य करके कहा)—यद्यपि मैं संन्यासी हूँ और दामोदर ब्रह्मचारी है, तथापि वह शिक्षा-दण्ड लेकर सदा ही मेरे ऊपर शासन करता है, अर्थात् सदा मुझे उपदेश देता रहता है। इसके विचारसे मैं लोक-व्यवहार नहीं जानता, इसलिये इसे मेरा स्वतन्त्र व्यवहार अच्छा नहीं लगता। इसपर श्रीकृष्णकी कृपा है, इसलिये यह अपेक्षा नहीं रखता कि लोग क्या कहेंगे, परन्तु मैं संन्यासी हूँ, इसलिये कभी भी लोकापेक्षा नहीं छोड़ सकता॥ 25–27॥

अमृतप्रवाह भाष्य—दामोदर (ब्रह्मचारी) मुझे सदैव इस प्रकार शिक्षादण्ड देता है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि इसके सामने मैं एक व्यवहार-ज्ञानशून्य व्यक्ति हूँ। दामोदर पण्डित आदिके प्रति कृष्णकृपा अधिक होनेके कारण, ये लोगोंकी अपेक्षा न करके मुझे अनेक प्रकारके विषय-भोग कराना चाहते हैं। किन्तु मैं दीन संन्यासी हूँ, लोकापेक्षाको नहीं छोड़ सकता, इसलिये अपने संन्यास-धर्मके अनुसार व्यवहार करता हूँ॥ 25-27॥

अनुभाष्य— *'संन्यासी'*—ब्रह्मचारीके गुरु होते हैं, इसलिये 'ब्रह्मचारी' होकर संन्यासीको उपदेश देना अनुचित है। *'ना भाय'*—अच्छा नहीं लगता॥ 25-26॥

महाप्रभुके द्वारा सभीको अपने वापिस
लौटने तक पुरीमें रहनेका अनुरोध :—

अतएव तुमि-सब रह नीलाचले।
दिन-कत तीर्थ आमि भ्रमिब एकले॥"28॥

अनुवाद—इसलिये तुम सब नीलाचलमें रहो और मैं कुछ दिन अकेले ही तीर्थ भ्रमण करूँगा॥"28॥

अपने भक्तोंके दोष-प्रदर्शनके छलसे गुण-वर्णन :—

इँहा-सबार वश प्रभु हये ये-ये-गुणे।
दोषरूप-छले करे गुण आस्वादने॥ 29॥

अनुवाद—महाप्रभु जिन-जिन गुणोंके कारण इन सब भक्तोंके वशीभूत थे, दोषरूप-छलसे उन सभी गुणोंका महाप्रभुने आस्वादन किया॥ 29॥

अनुभाष्य—पूर्वकथित भक्तोंके जिन-जिन गुणोंके कारण महाप्रभु वशीभूत हुए थे, उन्हींको ही 'छलपूर्वक दोष' कहकर उल्लेख करके उन्होंने भक्तोंकी महिमा बतलायी॥ 29॥

महाप्रभुका अनुपम भक्तवात्सल्य :—

चैतन्येर भक्तवात्सल्य—अकथ्य-कथन।
आपने वैराग्य-दुःख करेन सहन॥ 30॥

भक्तोंके लिये महाप्रभुको कष्ट स्वीकार,
भक्तोंका उसमें दुःख :—

सेइ दुःख देखि' येइ भक्त दुःख पाय।
सेइ दुःख ताँर शक्त्ये सहन ना याय॥ 31॥

गुण-दोषोद्गार-छले सबा निषेधिया।
एकाकी भ्रमिबेन तीर्थ वैराग्य करिया॥ 32॥

अनुवाद—महाप्रभुके भक्तवात्सल्यको शब्दोंके द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। अपने संन्यासके वैराग्य दुःखको वे स्वयं सहन कर लेते थे। परन्तु महाप्रभुके उस दुःखको देखकर भक्त दुःखी होते और महाप्रभुमें अपने भक्तोंके इन दुःखोंको सहन करनेकी शक्ति नहीं थी। उनके भक्तोंको कोई दुःख न हो, इसलिये महाप्रभुने भक्तोंके गुणोंको भी दोष कहकर छलसे उनको अपने साथ जानेके लिये मना किया, जिससे वे वैराग्ययुक्त होकर अकेले तीर्थ-भ्रमण कर सकें॥ 30-32॥

स्वतन्त्र ईश्वर महाप्रभु अपने सङ्कल्पपर अटल :—

तबे चारिजन बहु मिनति करिल।
स्वतन्त्र ईश्वर प्रभु कभु ना मानिल॥ 33॥

अनुवाद—तब उन चारोंने मिलकर बहुत प्रार्थना की, परन्तु महाप्रभु तो स्वतन्त्र ईश्वर हैं, उन्होंने किसीकी भी बात नहीं मानी॥ 33॥

श्रीनिताइकी अन्तिम प्रार्थना :—

तबे नित्यानन्द कहे,—"ये आज्ञा तोमार।
दुःख-सुख ये हउक्, कर्त्तव्य आमार॥ 34॥

किन्तु एक निवेदन करोँ आर बार।
विचार करिया ताहा कर अङ्गीकार॥ 35॥

कौपीन-बहिर्वास और जलपात्रको उठानेके लिये अपने
साथ किसीको ले जानेकी प्रार्थना :—

कौपीन, बहिर्वास आर जलपात्र।
आर किछु नाहि याबे, सबे एइ मात्र॥ 36॥

महाप्रभुके द्वारा संख्या नाम-जप :—

तोमार दुइ हस्त बद्ध नाम-गणने।
जलपात्र-बहिर्वास वहिबे केमने॥ 37॥

प्रेमावेशे पथे तुमि हबे अचेतन।
ए-सब सामग्री तोमार के करे रक्षण॥ 38॥

अनुवाद—तब श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा,—"आपकी जैसी आज्ञा। उसका पालन करना हमारा कर्त्तव्य है, चाहे हमें दुःख हो या सुख हो। परन्तु एक बार मैं फिरसे कुछ निवेदन करता हूँ, कृपया उसपर विचार करके उसे स्वीकार कीजिये। यदि और कुछ भी आप साथ नहीं ले जायेंगे, तो भी कौपीन, बहिर्वास और जलपात्र तो आप अवश्य ही साथ ले जायेंगे। आपके दोनों हाथ तो नाम करने और संख्या गिननेमें बँधे रहेंगे, फिर आप जलपात्र और बहिर्वास कैसे उठायेंगे? प्रेमाविष्ट होकर जब आप मार्गमें अचेतन हो जायेंगे, तब आपकी इन सब वस्तुओंकी रक्षा कौन करेगा? ॥ 34–38॥

अनुभाष्य—नाम-संख्या गिननेके लिये महाप्रभुके दोनों हाथ बँधे रहते, इसलिये यदि कोई दूसरा व्यक्ति कमण्डलु और बहिर्वासादिको (कौपीन-धोती आदिको) नहीं उठायेगा, तो आवश्यकताके समय महाप्रभुको ये व्यवहार करनेवाली वस्तुएँ नहीं मिलेंगी। प्रेमावेशमें अचेतन होनेपर उस समय इन वस्तुओंकी रक्षाके लिये किसी व्यक्तिकी आवश्यकता है। श्रीमन्महाप्रभुके द्वारा किये गये नाम-संख्याकी गणनाके सम्बन्धमें श्रीचैतन्यचन्द्रामृतमें कहा गया है—"बध्नन् प्रेमभरप्रकम्पितकरो ग्रन्थीन् कटीडोरकैः संख्यातुं निजलोकमङ्गल-हरेकृष्णेति नाम्नां जपन्" अर्थात् "समस्त जगत्का मङ्गल करनेवाले अपने पवित्र नाम—हरे कृष्ण महामन्त्रका जप करते हुए नाम संख्या गणना करनेके लिये जब वे गाँठयुक्त कटिडोरीका स्पर्श करते हैं, तो उनके हाथ प्रेमावेशमें काँपते हैं।" आदि वाक्य, और स्तवमालामें—"हरे कृष्णेत्युच्चैः स्फुरितरसनो नामगणनाकृत-ग्रन्थिश्रेणी-सुभगकटिसूत्रोज्ज्वलकरः" अर्थात् "उच्च स्वरसे हरे कृष्ण नाम उच्चारण करते हुए उनकी रसना नृत्य करती है और उच्चारित नामकी गणनाके लिये गाँठयुक्त कटि-सूत्रमें उनका सुन्दर बायाँ हाथ सुशोभित हो रहा है॥" आदि चैतन्याष्टक श्लोक आलोच्य हैं॥ 37–38॥

कृष्णदास-ब्राह्मणको साथ लेनेके लिये अनुरोध :—

'कृष्णदास'-नामे एइ सरल ब्राह्मण।
इँहो सङ्गे करि' लह, धर निवेदन॥ 39॥

जलपात्र-वस्त्र वहि' तोमा-सङ्गे याबे।
ये तोमार इच्छा कर, किछु ना बलिबे॥"40॥

अनुवाद—'कृष्णदास'-नामका यह एक सरल ब्राह्मण है। इसे अपने साथ ले जाइये, यही मेरी प्रार्थना है। यह आपके जलपात्र और वस्त्र उठाकर आपके साथ चलेगा। आपकी जैसी इच्छा हो वैसा ही करना, यह आपको कुछ भी नहीं कहेगा॥"39–40॥

अनुभाष्य—यह कालाकृष्णदास ब्राह्मण और आदिलीला 11/37 संख्यामें वर्णित नित्यसिद्ध व्रजसखा द्वादश गोपालोंमें अन्यतम, श्रीनित्यानन्द प्रभु जिनके प्राण स्वरूप हैं,—वे कालाकृष्णदास, ये दोनों पृथक् व्यक्ति हैं। पहलेवाले ब्राह्मण बादमें गौड़देश (बङ्गालमें) गये थे, इस विषयमें मध्यलीला 10/62–74 संख्या देखें॥ 39॥

महाप्रभुके द्वारा स्वीकार :—

तबे ताँर वाक्य प्रभु करि' अङ्गीकारे।
ताहा-सबा लञा गेला सार्वभौम-घरे॥ 41॥

श्रीसार्वभौमके घरमें गमन :—

नमस्करि' सार्वभौम आसन निवेदिल।
सबाकारे मिलि' तबे आसने बसिल॥ 42॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने श्रीनित्यानन्द प्रभुकी बातको मान लिया और उन सबको साथ लेकर वे श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके घर गये। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने प्रणाम करके महाप्रभुको बैठनेके लिये आसन प्रदान किया

और फिर बाकी सबको आसन देकर वे स्वयं भी बैठ गये॥ 41–42॥

भट्टाचार्यसे विदायीकी याचना :—

नाना कृष्णवार्त्ता प्रभु कहिल ताँहारे।
"तोमार ठाञि आइलाङ आज्ञा मागिबारे॥ 43॥

विश्वरूपको ढूँढ़नेका छल :—

संन्यास करि' विश्वरूप गियाछे दक्षिणे।
अवश्य करिब आमि ताँर अन्वेषणे॥ 44॥

आज्ञा देह, अवश्य आमि दक्षिणे चलिब।
तोमार आज्ञाते शुभे लेउटि' आसिब॥"45॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीसार्वभौमके साथ बहुतसी श्रीकृष्ण विषयक चर्चा की और तब उनसे कहा,—"मैं आपके पास एक आज्ञा माँगने आया हूँ। मेरे ज्येष्ठ भ्राता विश्वरूप संन्यास लेकर दक्षिण भारतमें गये थे, मुझे उन्हें ढूँढ़ने अवश्य ही जाना है। आप मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं उन्हें ढूँढ़ने दक्षिण भारतमें जाऊँ। आपकी आज्ञासे सफल होकर वापिस लौट आऊँगा॥"43–45॥

अनुभाष्य—**'लेउटि'**—पश्चिम भारतीय (हिन्दी भाषाका) शब्द 'लौटना' या वापिस आना॥ 45॥

भट्टाचार्यकी विरह-दुःखपूर्ण उक्ति :—

शुनि' सार्वभौम हैला अत्यन्त कातर।
चरणे धरिया कहे विषाद-उत्तर॥ 46॥

"बहुजन्मेर पुण्यफले पाइ तोमार सङ्ग।
हेन-सङ्ग विधि मोर करिलेक भङ्ग॥ 47॥

शिरे वज्र पड़े यदि, पुत्र मरि' याय।
ताहा सहि, तोमार विच्छेद सहन ना याय॥ 48॥

महाप्रभुको कुछ दिन रुकनेके लिये अनुरोध :—

स्वतन्त्र-ईश्वर तुमि करिबे गमन।
दिन-कथो रह, देखि तोमार चरण॥"49॥

अनुवाद—महाप्रभुकी बात सुनकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य अत्यन्त दुःखी हुए और उनके चरण पकड़कर बड़े दुःखसे कहने लगे,—"बहुत जन्मोंके पुण्योंके फलस्वरूप मुझे आपका सङ्ग प्राप्त हुआ है, परन्तु इस सङ्गको विधाता अब भङ्ग कर रहे हैं। यदि मेरे मस्तकपर वज्रपात हो अथवा मेरा पुत्र मर जाय, मैं उसे सहन कर सकता हूँ, परन्तु आपका वियोग सहन नहीं कर सकता। आप स्वतन्त्र ईश्वर हैं, इसलिये आपने जानेका निश्चय किया है, तो आप अवश्य ही जायेंगे। परन्तु कृपा करके आप कुछ दिन और यहाँ रुक जाँय, जिससे मैं आपके चरणोंका दर्शन कर सकूँ॥"46–49॥

महाप्रभुकी सम्मति :—

ताहार विनये प्रभुर शिथिल हैल मन।
रहिल दिवस-कथो, ना कैल गमन॥ 50॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यकी विनती सुनकर महाप्रभुके मनका सङ्कल्प शिथिल हो गया और वे उसी समय न जाकर कुछ दिनोंके लिये वहीं रह गये॥ 50॥

भट्टाचार्यके द्वारा महाप्रभुको निमन्त्रण और उनकी गृहिणीके द्वारा रसोई बनाना :—

भट्टाचार्य आग्रह करि' करेन निमन्त्रण।
गृहे पाक करि' प्रभुके करा'न भोजन॥ 51॥

ताँहार ब्राह्मणी, ताँर नाम—'षाठीर माता'।
रान्धि' भिक्षा देन तेँहो, आश्चर्य ताँर कथा॥ 52॥

आगे त' कहिब ताहा करिया विस्तार।
एबे कहि प्रभुर दक्षिण-यात्रा-समाचार॥ 53॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने आग्रह करके महाप्रभुको अपने घर आनेका निमन्त्रण दिया और तब अपने घरमें ही रसोई बनाकर महाप्रभुको भोजन कराया। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यकी पत्नी जिनको 'षाठीकी माता' भी कहते थे, महाप्रभुको भोजन बनाकर देती थीं। उनकी भी एक आश्चर्यमय कथा है, जिसका मैं

बादमें विस्तारसे वर्णन करूँगा। अब मैं महाप्रभुकी दक्षिण यात्राके विषयमें वर्णन करता हूँ॥ 51–53॥

पाँच दिनके बाद पुनः विदायीकी प्रार्थना :—

दिन पाँच रहि' प्रभु भट्टाचार्य-स्थाने।
चलिबार लागि' आज्ञा मागिला आपने॥ 54॥

भट्टाचार्यकी सम्मति :—

प्रभुर आग्रहे भट्ट सम्मत हइला।
प्रभु ताँरे लञा जगन्नाथ-मन्दिरे गेला॥ 55॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके घरमें पाँच दिन रहकर महाप्रभुने स्वयं उनसे चलनेकी आज्ञा माँगी। महाप्रभुके यात्रापर जानेका आग्रह करनेपर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य सहमत हो गये। तब महाप्रभु उनको साथ लेकर श्रीजगन्नाथ मन्दिर गये॥ 54–55॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीजगन्नाथ मन्दिरमें जाकर उनसे यात्राकी आज्ञाकी याचना और प्रसादी-माला प्राप्तकर मन्दिरकी परिक्रमाकर यात्रा आरम्भ :—

दर्शन करि' ठाकुर-पाश आज्ञा मागिला।
पूजारी माला-प्रसाद प्रभुरे आनि' दिला॥ 56॥
आज्ञा-माला पाञा हर्षे नमस्कार करि'।
आनन्दे दक्षिण-देशे चले गौरहरि॥ 57॥
भट्टाचार्य-सङ्गे आर यत निजगण।
जगन्नाथ प्रदक्षिण करि' करिला गमन॥ 58॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीजगन्नाथदेवका दर्शनकर उनसे जानेके लिये आज्ञा माँगी। तब पुजारीने श्रीजगन्नाथदेवकी माला और प्रसाद लाकर उन्हें प्रदान किया। मालाके रूपमें श्रीजगन्नाथदेवकी आज्ञा पाकर महाप्रभुने हर्षित होकर उन्हें प्रणाम किया। तब महाप्रभु आनन्दसे दक्षिण देशकी यात्राके लिये तत्पर हुए। महाप्रभु अपने भक्तों और श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके साथ श्रीजगन्नाथदेवकी प्रदक्षिणा करके यात्राके लिये चल दिये॥ 56–58॥

महाप्रभुकी अलालनाथ होते हुए दक्षिणकी यात्रा :—

समुद्र-तीरे-तीरे आलालनाथ-पथे।
सार्वभौम कहिलेन आचार्य-गोपीनाथे॥ 59॥

श्रीसार्वभौमका घरमें रखे चार कौपीन-बहिर्वास श्रीगोपीनाथके द्वारा मँगवाकर महाप्रभुको प्रदान करना :—

"चारि कोपीन-बहिर्वास राखियाछि घरे।
ताहा, प्रसादान्न, लञा आइस विप्रद्वारे॥"60॥

अनुवाद—महाप्रभु समुद्रके तटके साथ-साथ आलालनाथ जानेवाले मार्गपर चले। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने श्रीगोपीनाथाचार्यसे कहा,—"घरमें चार कौपीन और बहिर्वास रखे हैं, उसे और प्रसाद-अन्नको किसी ब्राह्मणकी सहायतासे ले आइये॥"59–60॥

अमृतप्रवाह भाष्य—समुद्रतटके साथ-साथ होते हुए दक्षिणकी ओर जानेपर पुरीसे छह कोसकी दूरीपर 'आलालनाथ' ग्राम है। 'आलालनाथ'में—चतुर्भुज-वासुदेव-विग्रह है। वनके बीचमें एक छोटेसे गाँवमें उनका मन्दिर है और उन्हें वहाँ बहुत ही उत्तम खीरका भोग लगता है। वहाँके पण्डे अभी भी (ठाकुरजीके अङ्गोंपर पड़े) गर्म खीरके दाग श्रीविग्रहमें दिखलाते हैं॥ 59॥

रायरामानन्दके साथ मिलनेके लिये श्रीसार्वभौमका महाप्रभुसे अनुरोध :—

तबे सार्वभौम कहे प्रभुर चरणे।
"अवश्य पालिबे, प्रभु, मोर निवेदने॥ 61॥
'रामानन्द राय' आछे गोदावरी-तीरे।
अधिकारी हयेन तेँहो विद्यानगरे॥ 62॥
शूद्र विषयि-ज्ञाने उपेक्षा ना करिबे।
आमार वचने ताँरे अवश्य मिलिबे॥ 63॥

अनुवाद—तब श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने महाप्रभुसे प्रार्थना करते हुए कहा,—"मेरा एक निवेदन आप अवश्य ही स्वीकार करना, गोदावरी-तटपर स्थित विद्यानगरके अधिकारी 'रामानन्दराय' हैं। मेरी बात मानकर आप

उनसे अवश्य ही मिलना, शूद्र और विषयी जानकर आप उनकी उपेक्षा मत करना॥ 61–63॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'अधिकारी'*—राजाका प्रधान कर्मचारी। विद्यानगरको आजकल 'पोरबन्दर' कहते हैं॥ 62॥

अनुभाष्य— *'शूद्र'*—उत्कल देश (उड़ीसा)के समाजमें करण-जातिको 'शौक्र-शूद्र' (जन्मके कारण शूद्र) कहा जाता है। श्रीरामानन्द करण-जातिमें जन्मे थे; इसलिये लौकिक-दृष्टिसे वे शौक्रशूद्र होनेपर भी वास्तवमें ब्राह्मण अथवा ब्राह्मणोंके भी गुरु परमहंस-वैष्णव थे।

'विषयी'—स्त्री-पुत्रादिकी बातोंमें रत अथवा बाह्य-रूप-रस-गन्ध-शब्द-स्पर्श आदि विषयोंमें ज्ञानेन्द्रियोंको युक्त करके उनमें प्रमत्त रहनेवालेको 'विषयी' कहते हैं। श्रीरामानन्द बाहरी दृष्टिसे कौपीनधारी संन्यासी नहीं थे, इसलिये लौकिक दृष्टिसे वे राजाके सेवक होनेके कारण विषयी दिखते थे, किन्तु वास्तवमें वे परम विद्वान अथवा नरोत्तम-संन्यासी थे।

सार्वभौम भट्टाचार्यने पहले स्वयं वैष्णव नहीं होनेपर भी श्रीरामानन्द रायको वैष्णव जाना था। और फिर, महाप्रभुकी कृपासे भक्त बननेके बाद श्रीरामानन्दकी बातोंपर विचार करके उनको 'अधिकारी रसिकभक्त'के रूपमें समझा था॥ 63॥

राय-रामानन्दकी प्रशंसा :—

तोमार सङ्गेर योग्य तेँहो एकजन।
पृथिवीते रसिक भक्त नाहि ताँर सम॥ 64॥

पाण्डित्य आर भक्तिरस,—दुँहेर तेँहो सीमा।
सम्भाषिले जानिबे तुमि ताँहार महिमा॥ 65॥

पहले वैष्णवोंको स्मार्त्त व्यक्तियोंकी अपेक्षा छोटा माननेके कारण भट्टाचार्यके द्वारा उनका उपहास :—

अलौकिक वाक्य चेष्टा ताँर ना बुझिया।
परिहास करियाछि ताँरे 'वैष्णव' जानिया॥ 66॥

बादमें महाप्रभुकी कृपासे चिन्मय-वैष्णवकी महिमाकी उपलब्धि :—

तोमार प्रसादे एबे जनिनु ताँर तत्त्व।
सम्भाषिले जानिबे ताँर येमन महत्त्व॥"67॥

अनुवाद—रामानन्दराय ही एकमात्र आपके सङ्ग करने योग्य हैं, पृथ्वीपर उनके समान कोई भी रसिक भक्त नहीं है। वे पाण्डित्य और भक्तिरस—दोनोंकी चरम सीमा हैं। उनसे बातचीत करनेपर आप स्वयं ही उनकी महिमा जान जायेंगे। मैं उनके अलौकिक वचनों और क्रिया-कलापोंको समझ नहीं पाता था तथा मैं उन्हें 'वैष्णव' मानकर उनका उपहास करता था। अब आपकी कृपासे मैं राय रामानन्दकी महिमाको समझ सका हूँ। उनके साथ वार्त्तालाप करके आप भी उनकी महिमाको जान पायेंगे॥"64–67॥

अनुभाष्य—महाप्रभुसे विमुख प्रकृति-वादी ज्ञानी और कर्मी लोग श्रीचैतन्याश्रित वैष्णवोंका ऐसे ही उपहास किया करते हैं। महाप्रभुसे विमुख लोग—प्रत्यक्ष और अनुमानको ही सर्वस्व माननेवाले जड़ेन्द्रियोंसे प्राप्त ज्ञानमें ही मत्त तर्कपन्थी हैं। श्रीचैतन्याश्रित वैष्णव शब्दप्रमाणको आश्रय माननेवाले अधोक्षज भगवान्‌के सेवक और श्रौतपन्थी हैं॥ 66॥

महाप्रभुके द्वारा उनके वाक्य-पालनकी सम्मति :—

अङ्गीकार करि' प्रभु ताँहार वचन।
ताँरे विदाय दिते ताँरे कैल आलिङ्गन॥ 68॥

महाप्रभुके द्वारा गृहस्थ-वैष्णवको सम्मान :—

"घरे कृष्ण भजि' मोरे करिह आशीर्वादे।
नीलाचले आसि' येन तोमार प्रसादे॥"69॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यकी बातको मानकर उन्हें विदायी देनेके लिये उनका आलिङ्गन करके कहा,—"घरमें श्रीकृष्णका भजन करते समय आप मुझे आशीर्वाद प्रदान करते रहना, जिससे मैं आपकी कृपासे पुनः नीलाचल लौट आऊँ॥"68–69॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णसेवक बाहरी दृष्टिसे गृहस्थ आश्रमको अलङ्कृत (अर्थात् उसे स्वीकार करके उसकी महिमा वर्धित) करनेपर भी, वास्तवमें इन्द्रियोंके दास गृहव्रती या घर-परिवारमें ही आसक्त बुद्धिवाले गृहमेधी व्यक्तियोंके समान नहीं है। "ये दिन गृहे भजन देखि, गृहेते गोलोक भाय" (ठाकुर श्रील भक्तिविनोद द्वारा रचित शरणागतिका कीर्तन)—गृहस्थ-वैष्णव ही इस बातका तन-मन-वचनसे कीर्तन करनेके एकमात्र अधिकारी हैं। इसलिये महाप्रभुके पदाश्रित यथार्थ शुद्धवैष्णव-गृहस्थ संन्यासियोंके भी आदरणीय और गुरु हैं। श्रीकृष्णभजनकी महिमाको नहीं जाननेवाले जीवोंको शिक्षा देनेके लिये महाप्रभुने सार्वभौम भट्टाचार्यसे आशीर्वादकी भिक्षा माँगकर इसे दिखलाया॥ 69॥

महाप्रभुकी यात्रा और श्रीसार्वभौमकी मूर्च्छा :—

एत बलि' महाप्रभु करिला गमन।
मूर्च्छित हञा ताँहा पड़िला सार्वभौम॥ 70॥

अनुवाद—इतना कहकर महाप्रभु आगे चल पड़े। उनके विरहको सहन न कर पानेसे उसी समय श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य मूर्च्छित होकर वहीं गिर पड़े॥ 70॥

निरपेक्ष महाप्रभु :—

ताँरे उपेक्षिया कैल शीघ्र गमन।
के बुझिते पारे महाप्रभुर चित्त-मन॥ 71॥

महानुभावेर चित्तेर स्वभाव एइ हय।
पुष्प-सम कोमल, कठिन वज्रमय॥ 72॥

अनुवाद—महाप्रभु उसे अनदेखा करके शीघ्रतासे वहाँसे चले गये। महाप्रभुके चित्त और मनके रहस्यको कौन जान सकता है? महानुभाव व्यक्तियोंके चित्तका स्वभाव ही ऐसा होता है, वे कभी पुष्पके समान कोमल और कभी वज्रके समान कठोर होते हैं॥ 71-72॥

अनुभाष्य— *'महाप्रभुकी निरपेक्षता'*—मध्यलीला 3/212 संख्या देखें॥ 71-72॥

परस्पर विरुद्ध-धर्मके समाश्रय भगवान्की भाँति भगवद्भक्त भी कोमल और कठोर :—
भवभूतिकृत 'उत्तर-रामचरित्र'के तृतीयांकमें 2/7-23वाँ श्लोक

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमीश्वरः॥ 73॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 73॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अलौकिक पुरुषोंका चित्त वज्रसे भी कठोर और कुसुमसे भी कोमल होता है; अन्य लोग उसको समझनेके योग्य नहीं होते॥ 73॥

अनुभाष्य—

वज्रात् अपि कठोराणि, कुसुमात् (पुष्पात्) अपि मृदूनि (कोमलानि); लोकोत्तराणां (असाधारणालौकिकानां) चेतांसि (अन्तःकरणानि) विज्ञातुं (बोद्धुं) कः हि ईश्वरः (समर्थः)?

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 73॥

श्रीनिताइके द्वारा श्रीसार्वभौमको घर भेजना :—

नित्यानन्दप्रभु भट्टाचार्ये उठाइल।
ताँर लोकसङ्गे ताँरे घरे पाठाइल॥ 74॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभुने श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यको उठाया और उनके लोगोंके साथ उन्हें घर भेज दिया॥ 74॥

भक्तोंके साथ आलालनाथ-आगमन :—

भक्तगण शीघ्र आसि' लैल प्रभुर साथ।
वस्त्र-प्रसाद लञा तबे आइला गोपीनाथ॥ 75॥

सबा-सङ्गे प्रभु तबे आलालनाथ आइला।
नमस्कार करि' तारे बहुस्तुति कैला॥ 76॥

आलालनाथ नारायण-दर्शनसे महाप्रभुका स्तव-नृत्य-गीत :—

प्रेमावेशे नृत्यगीत कैल कतक्षण।
देखिते आइला ताँहा बैसे यत जन॥ 77॥

अनुवाद—सभी भक्त जल्दीसे आकर महाप्रभुके साथ हो लिये। वस्त्र और प्रसाद लेकर श्रीगोपीनाथाचार्य

भी तब वहाँ आ पहुँचे। सबको साथ लेकर महाप्रभु आलालनाथ आ गये और उनको प्रणाम करके उनकी बहुत स्तव-स्तुति की। प्रेमावेशमें महाप्रभुने कुछ देर तक नृत्य-गीत किया और वहाँ रहनेवाले सभी लोग उनके दर्शनके लिये आये॥ 75-77॥

अनुभाष्य—*'साथ'*—सङ्ग या साथ॥ 75॥

महाप्रभुके दर्शनोंके लिये बहुत लोगोंका
आगमन और हरि-सङ्कीर्तन :—

चौदिकेते सब लोक बले 'हरि' 'हरि'।
प्रेमावेशे मध्ये नृत्य करे गौरहरि॥ 78॥

काञ्चन-सदृश देह, अरुण वसन।
पुलकाश्रु-कम्प-स्वेद ताहाते भूषण॥ 79॥

देखिते लोकेर मने हैल चमत्कार।
यत लोक आइसे, केह नाहि याय घर॥ 80॥

केह नाचे, केह गाय, 'श्रीकृष्ण' 'गोपाल'।
प्रेमेते भासिल लोक, स्त्री-वृद्ध-आबाल॥ 81॥

देखि' नित्यानन्द प्रभु कहे भक्तगणे।
"एइरूपे नृत्य आगे हबे ग्रामे ग्रामे॥" 82॥

अनुवाद—चारों ओर सब लोक 'हरि' 'हरि' बोलने लगे और उनके बीचमें श्रीगौरहरि प्रेमाविष्ट होकर नृत्य कर रहे थे। स्वर्णके समान महाप्रभुकी देह और उसके ऊपर अरुण वर्णके वस्त्र थे तथा पुलक, अश्रु, कम्प, स्वेदादि अष्ट-सात्त्विकभाव उनके भूषणस्वरूप थे। महाप्रभुके ऐसे अद्भुत रूप और भावोंको देखकर लोगोंका मन चमत्कृत हो रहा था और कोई भी अपने घर लौटना नहीं चाह रहा था। कुछ लोग नृत्य कर रहे थे, कुछ लोग 'श्रीकृष्ण' 'गोपाल' नामका सङ्कीर्तन कर रहे थे। इस प्रकार बालक-स्त्री-वृद्ध, सभी प्रेममें डूब रहे थे। यह देखकर श्रीनित्यानन्द प्रभुने भक्तोंसे कहा कि अब तो गाँव-गाँवमें जहाँ महाप्रभु जायेंगे, इसी प्रकार नृत्य होगा॥" 78-82॥

अनुभाष्य—आदिलीला 7/25 संख्या देखें॥ 81॥

महाप्रभुको छोड़नेकी लोगोंमें अनिच्छा देखकर प्रसाद
पवानेके छलसे महाप्रभुको वहाँसे हटाना :—

अतिकाल हैल, लोक छाड़िया ना याय।
तबे नित्यानन्द-गोसाञि सृजिल उपाय॥ 83॥

मध्याह्न करिते गेला प्रभुके लञा।
ताहा देखि' लोक आइसे चौदिके धाञा॥ 84॥

भक्तोंका मन्दिरके भीतर प्रवेश :—

मध्याह्न करिते आइला देवता-मन्दिरे।
निजगण प्रवेशि' कपाट दिल बहिर्द्वारे॥ 85॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द गोसाईंने देखा कि बहुत समय हो गया है, तो उन्होंने एक उपाय निकाला जिससे लोग महाप्रभुको छोड़ दें। वे महाप्रभुको दोपहरका स्नान करानेके लिये ले चले, ऐसा देखकर लोग चारों ओरसे दौड़कर उधर ही आने लगे। दोपहरका स्नान करनेके बाद वे वापिस मन्दिरमें आ गये। श्रीनित्यानन्द प्रभुने अपने साथ आये लोगोंको प्रवेश करवाके बाहरका द्वार बन्द कर दिया॥ 83-85॥

अनुभाष्य—*'अतिकाल'*—अधिक समय व्यतीत हो जानेपर॥ 83॥

श्रीगोपीनाथके द्वारा महाप्रभुको भिक्षा प्रदान;
भक्तोंको महाप्रभुके अवशेषकी प्राप्ति :—

तबे दुइ प्रभुरे गोपीनाथ भिक्षा कराइल।
प्रभुर शेष प्रसादान्न सबे बाँटि' खाइल॥ 86॥

अनुवाद—तब श्रीगोपीनाथाचार्यने महाप्रभु एवं श्रीनित्यानन्द प्रभु, दोनोंको भोजन कराया और उनके उच्छिष्ट अन्न-प्रसादको सब भक्तोंने बाँटकर खा लिया॥ 86॥

मन्दिरके बाहर महाप्रभुके दर्शनोंके लिये
अनेक लोगोंका समागम :—

शुनि' शुनि' लोक-सब आसि' बहिर्द्वारे।
'हरि' 'हरि' बलि' लोक कलरव करे॥ 87॥

अनुवाद—महाप्रभुके आगमनकी बातको सुनकर

सब लोग मन्दिरके बाहिरी द्वारपर एकत्रित हो गये और 'हरि' 'हरि' बोलकर कोलाहल करने लगे॥ 87॥

मन्दिरके द्वारका खुलना और सभीको
महाप्रभुका दर्शन प्राप्त :—

तबे महाप्रभु द्वार कराइल मोचन।
आनन्दे आसिया लोक पाइल दरशन॥ 88॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने मन्दिरका द्वार खुलवा दिया और सभी लोगोंने आकर आनन्दपूर्वक महाप्रभुके दर्शन किये॥ 88॥

सारा दिन लोगोंको महाप्रभुके दर्शनके
फलसे वैष्णवताकी प्राप्ति :—

एइमत सन्ध्या पर्यन्त लोक आसे, याय।
'वैष्णव' हइल लोक, सबे नाचे, गाय॥ 89॥

अनुवाद—इस प्रकार सायंकाल तक लोग आते-जाते रहे और महाप्रभुकी कृपासे सभी 'वैष्णव' भक्त बनकर नाचने-गाने लगे॥ 89॥

आलालनाथमें भक्तोंके साथ रात्रिवास :—

एइरूपे सेइ ठाञि भक्तगण-सङ्गे।
सेइ रात्रि गोङाइल कृष्णकथा-रङ्गे॥ 90॥

अनुवाद—इस प्रकार महाप्रभुने वह रात वहीं बितायी और सारी रात भक्तोंके साथ श्रीकृष्णकथाका आनन्द लेते रहे॥ 90॥

प्रातः पुनः यात्रा :—

प्रातःकाले स्नान करि' करिला गमन।
भक्तगणे विदाय दिला करि' आलिङ्गन॥ 91॥

अनुवाद—अगले दिन प्रातःकालमें महाप्रभुने स्नान करके सभी भक्तोंको आलिङ्गन करके विदायी ली और दक्षिण भारतकी यात्रापर चल दिये॥ 91॥

महाप्रभुकी निरपेक्षता :—

मूर्च्छित हञा सबे भूमिते पड़िला।
ताँहा-सबा पाने प्रभु फिरि' ना चाहिला॥ 92॥

अनुवाद—सभी भक्त मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़े, परन्तु महाप्रभुने उन्हें मुड़कर भी नहीं देखा और अपनी यात्रापर अग्रसर हुए॥ 92॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 3/212 संख्याका अनुभाष्य देखें॥ 92॥

महाप्रभुके पीछे-पीछे जल-पात्रादि-वाहक कृष्णदास :—

विच्छेदे व्याकुल प्रभु चलिला दुःखी हञा।
पाछे कृष्णदास याय जलपात्र लञा॥ 93॥

अनुवाद—श्रीकृष्णविरहमें व्याकुल महाप्रभु दुःखी होकर चल रहे थे और उनका सेवक कृष्णदास जलपात्रको हाथमें लेकर उनके पीछे-पीछे चल रहा था॥ 93॥

उस दिन भक्तोंका उपवास और बादमें पुरी-गमन :—

भक्तगण उपवासी ताँहाइ रहिला।
आर दिने दुःखी हञा नीलाचले आइला॥ 94॥

अनुवाद—उस दिन सभी भक्त वहीं अलालानाथमें ही रहे और सबने उपवास किया। अगले दिन दुःखी होकर सभी नीलाचल लौट आये॥ 94॥

मत्तसिंह-प्राय प्रभु करिला गमन।
प्रेमावेशे याय करि' नाम-सङ्कीर्त्तन॥ 95॥

अनुवाद—मत्तसिंहकी भाँति महाप्रभु यात्रामें चल दिये। प्रेमाविष्ट होकर नाम-सङ्कीर्तन करते हुए वे चले जा रहे थे॥ 95॥

श्रीमुख कीर्त्तित-श्लोक :—

कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण!
कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! हे।
कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण!
कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! हे॥
कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण!
कृष्ण! कृष्ण! रक्ष माम्।

कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण!
कृष्ण! कृष्ण! पाहि माम्॥
राम! राघव! राम! राघव!
राम! राघव! रक्ष माम्।
कृष्ण! केशव! कृष्ण! केशव!
कृष्ण! केशव! पाहि माम्॥ 96॥

अनुवाद—महाप्रभु इस प्रकार कीर्तन कर रहे थे—

कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! हे।

कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! हे॥

कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! मेरी रक्षा करो।

कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! मेरा पालन करो॥

राम! राघव! राम! राघव! राम! राघव! मेरी रक्षा करो।

कृष्ण! केशव! कृष्ण! केशव! कृष्ण! केशव! मेरा पालन करो॥ 96॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'रक्ष मां'*—मेरी रक्षा करो; *'पाहि मां'*—मेरा पालन करो॥ 96॥

लोगोंको हरिनाम दान :—

एइ श्लोक पथे पड़ि' चलिला गौरहरि।
लोक देखि' पथे कहे,—बल 'हरि' 'हरि'॥ 97॥

महाप्रभुके मुखसे नाम-श्रवण करनेसे
लोगोंके द्वारा हरिनाम-ग्रहण :—

सेइ लोक प्रेममत्त हञा बले 'हरि' 'कृष्ण'।
प्रभुर पाछे सङ्गे याय दर्शन-सतृष्ण॥ 98॥

महाप्रभुकी शक्तिके सञ्चारसे उस वैष्णवके द्वारा उसके
ग्राममें सभीको वैष्णवताकी प्राप्ति :—

कतक्षणे रहि' प्रभु तारे आलिङ्गिया।
विदाय करिल तारे शक्ति सञ्चारिया॥ 99॥

सेइजन निज-ग्रामे करिया गमन।
'कृष्ण' बलि' हासे, कान्दे, नाचे अनुक्षण॥ 100॥
यारे देखे, तारे कहे,—कह कृष्णनाम।
एइमत 'वैष्णव' कैल सब निज-ग्राम॥ 101॥

अनुवाद—इस श्लोकका उच्चारण करते-करते श्रीगौरहरि अपने मार्गपर चले जा रहे थे। मार्गमें जिस किसी व्यक्तिको देखते, उसे भी 'हरि' 'हरि' बोलनेके लिये कहते। महाप्रभुको 'हरि' 'हरि' बोलते सुनकर वह व्यक्ति भी प्रेममें उन्मत्त होकर 'हरि' 'कृष्ण' बोलने लगता। इस प्रकार महाप्रभुके दर्शनके लिये उत्कण्ठित होकर वह उनके पीछे-पीछे चलने लगता। कुछ समयके बाद महाप्रभु उसका आलिङ्गन करके उसमें अपनी शक्ति सञ्चार कर देते और उसे अपने घर जानेके लिये विदा कर देते। महाप्रभुसे शक्ति प्राप्तकर वह व्यक्ति अपने ग्राममें जाकर 'श्रीकृष्ण'-नामका कीर्तन करते हुए कभी हँसता, कभी रोता, तो कभी नृत्य करने लगता। वह जिसे भी देखता, उसे श्रीकृष्णनाम कहनेको कहता। इस प्रकार वह अपने सारे ग्रामवासियोंको वैष्णव बना देता॥ 97–101॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'शक्ति सञ्चारिया'*—ह्लादिनी-शक्तिका सारभाग और सम्वित्-शक्तिका सारभाग—दोनों मिलनेपर 'भक्ति-शक्ति' होती है। श्रीकृष्ण या भक्त कृपा करके उस शक्तिका जिसमें सञ्चार करते हैं, वह 'परमभक्त' बन जाता है। महाप्रभु जिसपर कृपा करते थे, उसमें वैसी शक्ति सञ्चार करके वैष्णवधर्मके प्रचारका भार अर्पण करते थे॥ 99॥

अन्य ग्रामवासियोंकी भी उस वैष्णव-दर्शनके
कृपारूपी फलसे वैष्णवताकी प्राप्ति :—

ग्रामान्तर हैते देखिते आइल यत जन।
ताँर दर्शन-कृपाय हय ताँर सम॥ 102॥

इस प्रकार सभी दक्षिण-भारतवासियोंका
उद्धार और उन्हें वैष्णवताकी प्राप्ति :—

सेइ याइ' ग्रामेर लोक वैष्णव करय।
अन्यग्रामी आसि' ताँरे देखि' वैष्णव हय॥ 103॥

सेइ याइ' अन्य ग्रामे करे उपदेश।
एइमत 'वैष्णव' हैल सब दक्षिण–देश॥ 104॥

अनुवाद—दूसरे गाँवोंसे भी जो लोग इन महाप्रभुसे शक्ति-प्राप्त वैष्णवके गाँवमें आते, वे भी इसके दर्शनरूपी कृपासे उसके समान वैष्णव बन जाते। जब ये वैष्णव अपने गाँवमें जाते, तो वे भी अपने गाँवके सभी लोगोंको वैष्णव बना देते। इसी प्रकार जब अन्य गाँवोंके लोग इनका दर्शन करने आते, तो वे भी वैष्णव बन जाते। इस प्रकार वैष्णव बन जानेके बाद वे दूसरे गाँवोंमें जाकर श्रीकृष्णनामका उपदेश करने लगते। इस प्रकार होते-होते समस्त दक्षिणवासी वैष्णव बन गये॥ 102–104॥

महाप्रभुके द्वारा बहुत भाग्यवान् जीवोंका उद्धार :—

एइमत पथे याइते शत शत जन।
'वैष्णव' करेन ताँरे करि' आलिङ्गन॥ 105॥

अनुवाद—इस प्रकार मार्गपर चलते-चलते महाप्रभुने सैकड़ों लोगोंको आलिङ्गन करके वैष्णव बना दिया था॥ 105॥

महाप्रभुको भिक्षा देनेवाले दाताओंके दर्शन करनेवालोंको भी वैष्णवताकी प्राप्ति और बादमें उनके द्वारा आचार्यरूपमें बहुत लोगोंका उद्धार :—

येइ ग्रामे रहि' भिक्षा करेन याँर घरे।
सेइ ग्रामेर यत लोक आइसे देखिबारे॥ 106॥

प्रभुर कृपाय हय महाभागवत।
सेइसब आचार्य हञा तारिल जगत्॥ 107॥

इस प्रकार समस्त दक्षिणदेशका उद्धार :—

एइमत कैला यावत् गेला सेतुबन्धे।
सर्वदेश 'वैष्णव' हैल प्रभुर सम्बन्धे॥ 108॥

अनुवाद—महाप्रभु जिस गाँवमें रहकर भिक्षा ग्रहण करते, उस गाँवके जितने लोग उनका दर्शन करने आते, महाप्रभुकी कृपासे वे सब महाभागवत बन जाते। बादमें उन सबने आचार्य बनकर जगत्का उद्धार किया। इस प्रकार सबपर कृपा करते हुए महाप्रभु सेतुबन्ध तक गये और उनके प्रभावसे सम्पूर्ण दक्षिण-देशवासी वैष्णव बन गये॥ 106–108॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'सेतुबन्ध'*—सेतुबन्ध-रामेश्वर, समुद्रके तटपर, 'राम-नद' की दूसरी ओर भारतवर्षके दक्षिण प्रान्तमें है॥ 108॥

महाप्रभुकी कृपा-महिमा नवद्वीपकी अपेक्षा दक्षिणदेशमें अधिक प्रकाशित :—

नवद्वीप येइ शक्ति ना कैला प्रकाशे।
सेइ शक्ति प्रकाशि' निस्तारिल दक्षिणदेशे॥ 109॥

अनुवाद—नवद्वीपमें भी जिस शक्तिको प्रकाशित नहीं किया था, उस शक्तिको प्रकाशित करके महाप्रभुने दक्षिण भारतका उद्धार किया॥ 109॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'नवद्वीप' धाम होनेपर भी वहाँ उस समय न्याय और स्मृति-शास्त्रोंकी विशेष प्रबलता थी। उन-उन शास्त्रोंके अध्यापकोंमें अनेक तो बहिर्मुख लोग थे, परन्तु उनका उद्धार करनेके लिये महाप्रभुने किसी विशेष शक्तिका प्रकाश नहीं किया, इसलिये ग्रन्थकारने ऐसा कहा है॥ 109॥

श्रीचैतन्य-भक्तोंको ही भगवद्-कृपाशक्तिमें विश्वास :—

प्रभुके ये भजे, तारे ताँर कृपा हय।
सेइ से ए-सब लीला सत्य करि' लय॥ 110॥

अप्राकृत-लीलामें विश्वासके फलस्वरूप ही नित्यकल्याणकी प्राप्ति, अन्यथा अक्षज-ज्ञानके द्वारा सर्वनाश :—

अलौकिक-लीलाय यार ना हय विश्वास।
इहलोक, परलोक तार हय नाश॥ 111॥

प्रथमेइ कहिल प्रभुर येरूपे गमन।
एइमत जानिह यावत् दक्षिण-भ्रमण॥ 112॥

अनुवाद—जो व्यक्ति महाप्रभुका भजन करता है, उसीपर उनकी कृपा होती है और वही उनकी इन सब लीलाओंपर विश्वास करता है। महाप्रभुकी इन अलौकिक

लीलाओंपर जिसे विश्वास नहीं होता, उसका इस लोक और परलोक—दोनोंका ही नाश हो जाता है। ऐसा ही जानो कि महाप्रभुने यात्राके प्रारम्भमें जैसे सर्वत्र कृपाका वितरण किया, वैसे ही उन्होंने सम्पूर्ण दक्षिण-भारतका भ्रमण करते हुए किया था॥ 110-112॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णचैतन्यकी अलौकिक लीला—छलरहित, निरस्तकुहक अर्थात् माया और मायाकी कपटतासे मुक्त, अप्राकृत चिदैश्वर्यमयी—जीवोंके नित्य चरम कल्याणको प्रदान करनेवाली है, इसलिये वह वास्तव वस्तु है। वह मायाबद्ध वञ्चक और वञ्चित जीवोंकी गुणमय-धारणासे उत्पन्न ईर्ष्यामूलक कपटता नहीं है। कपटता या ठगीके द्वारा, वञ्चक और वञ्चित दोनोंका ही श्रीकृष्णसेवासे दूर होनेके फलस्वरूप सर्वनाश होता है॥ 111॥

श्रीकूर्म स्थानमें जाना और विग्रह-दर्शनकर नृत्य-गीत :—

एइमत याइते याइते गेला कूर्मस्थाने।
कूर्म देखि' कैल ताँरे स्तवन-प्रणामे॥ 113॥

अनुवाद—इस प्रकार चलते-चलते महाप्रभु कूर्मस्थानमें पहुँचे। उन्होंने कूर्मदेवके दर्शन करके उन्हें प्रणाम करके उनकी स्तव-स्तुति की॥ 113॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'कूर्मस्थान'*—यह एक तीर्थ है। वहाँ कूर्मदेवका मन्दिर है। 'प्रपन्नामृत'-ग्रन्थमें कहा गया है कि श्रीजगन्नाथदेवने श्रीरामानुज-स्वामीको रात्रिमें श्रीपुरुषोत्तमसे कूर्मतीर्थमें उठाकर फेंक दिया था॥ 113॥

अनुभाष्य—*'कूर्मस्थान'*—गञ्जाम जिलेमें 'चिकाकोल रोड़' स्टेशनसे आठ मील पूर्वकी ओर 'कूर्माचल' अथवा 'श्रीकूर्मम्' हैं; यह तेलगु भाषी लोगोंका सबसे श्रेष्ठ तीर्थ है ('गञ्जाम म्यानुयेल')। वहाँ कूर्ममूर्ति विराजमान है। श्रीरामानुजाचार्य ग्यारहवीं शक-शताब्दीमें जब श्रीजगन्नाथदेवके द्वारा कूर्माचलमें फेंके गये, तब उस कूर्ममूर्तिको शिवमूर्ति समझकर उन्होंने उपवास किया, बादमें उसे विष्णु-मूर्ति जानकर उन्होंने कूर्मदेवकी सेवाका प्रकाश किया। जैसा, प्रपन्नामृतके छतीसवें अध्यायमें लिखा है—

"तद्रात्रावेव योगीन्द्रं प्रापयामास सत्वरम्।
श्रीकूर्मे लक्ष्मणाचार्यं श्रीहरिर्योगमायया॥
प्रभातायां तु शर्वर्य्यां तस्यां लक्ष्मणदेशिकः।
उत्थाय सहसा धीमान् हरिर्हरिरितीरयन्॥
दृष्ट्वा दशदिशः सम्यक् चिन्ता-व्याकुलमानसः।
श्रीकूर्ममिति तत्क्षेत्रं ज्ञात्वा विस्मयमागतः।
श्रीकूर्मनायकं मत्वा शिवलिङ्गमितीरितम्।
उपवासेन तत्रैकं वासरं स्थितवान् गुरुः॥ xx
स्वप्ने प्रसन्नो भगवान् तस्य श्रीकूर्मनाथकः।
व्याजहार शुभं वाक्यं कृपया यति-भूपतिम्॥
यतीन्द्राज्ञान-दोषेण शिवलिङ्गं जना इति।
मां वदन्ति मृषा सर्वे मायान्धीकृतलोचनाः॥
वत्स्याम्यत्र स्वरूपेण शङ्खचक्रगदाधरः।
लक्ष्मणार्याधुना शीघ्रं त्वं मां सम्यग् विलोकय॥ xx
अत्रैव पूजयन् मां त्वं दिनानि कतिचिद् वस॥
ततः स्वप्नात् समुत्थाय सन्तुष्टो विस्मयान्वितः।
तथा विधाय योगीन्द्रस्तेनोक्तेनैव वर्त्मना॥
कूर्मनाथं समाराध्य तन्निवेदित-भोजनम्।
विधाय तस्य पादाग्रे सुखं तत्रावसत्तदा॥
तदा प्रभृति सर्वत्र यतीन्द्रागम-वैभवात्।
विष्णुस्थलमिति ह्यासीत् श्रीकूर्मं विदितं महत्॥"

अर्थात् "उसी रात्रिमें ही श्रीहरिने योगमायाके द्वारा योगीन्द्र श्रीलक्ष्मणाचार्य (श्रीरामानुजाचार्य)को श्रीकूर्मक्षेत्रमें स्थानान्तर करवाया। उस रात्रिके बाद प्रभात होनेपर श्रीमान् लक्ष्मणदेशिक (श्रीरामानुजाचार्य) 'हरि' 'हरि' बोलते-बोलते सहसा जाग्रत होकर दसों दिशाओंमें देखते हुए विशेष चिन्तित और व्याकुल हुए। उस स्थानको 'कूर्मक्षेत्र' जानकर वे विस्मित हुए। भगवान् श्रीकूर्मको (श्रीमूर्तिको) वहाँके लोगोंकी मान्यताके अनुसार 'शिवलिङ्ग' मानकर गुरु लक्ष्मणदेशिकने उस स्थानपर एक दिन उपवास किया। क्षेत्रनाथ भगवान् श्रीकूर्मने उनके प्रति प्रसन्न होकर कृपापूर्वक यतिराजको स्वप्नमें मधुर-वाक्य बोले,—"यतीन्द्र! स्थानीय लोग सभी आँखें होते हुए भी अन्धेके समान मायाके द्वारा मुझे मिथ्या

ही 'शिवलिङ्ग'- रूपमें कहते हैं। किन्तु इस स्थानपर मैं अपने 'शङ्ख-चक्र-गदाधर' रूपमें ही वास कर रहा हूँ। आर्य लक्ष्मण! तुम शीघ्र ही मेरा दर्शन करो और इसी स्थानपर मेरी पूजा करते हुए कुछ दिन वास करो।" ऐसा सुनकर विस्मित और सन्तुष्ट हुए योगीराजने उठकर स्वप्नमें कहे गये उपायके अनुसार श्रीकूर्मनाथकी सभी प्रकारसे आराधना की और उनको निवेदित खाद्य-द्रव्यका भोजन किया। उन्होंने उस स्थानपर उनके चरणकमलोंके सान्निध्यमें सुखपूर्वक कुछ दिन वास किया। तबसे उक्त क्षेत्र यतीन्द्रके आगमनकी महिमाके प्रभावसे 'श्रीकूर्मक्षेत्र'-नामक विष्णुस्थल-रूपमें सर्वत्र विशेषरूपसे जाना जाता है।"

बादमें यह मन्दिर श्रीमाध्व-मठकी देख-रेखमें विजयनगरके राजाके अधिकारमें था। उस मन्दिरमें एक पत्थरके पटलके ऊपर लिखित नौ श्लोक लिखे पाये गये हैं। ऐसा कहा जाता है कि श्रीमध्वसम्प्रदायकी गुरु-परम्परामें 1203 शकमें उस समयके गुरु श्रीनरहरि तीर्थके द्वारा वे लिखे गये हैं। उनका हिन्दी-अनुवाद इस प्रकार है—

पहला श्लोक—पुण्यश्लोक श्रीपुरुषोत्तम यतिने अनेक विद्वानोंके उपदेष्टाके रूपमें जन्म ग्रहण किया। वे भगवान् विष्णुको बहुत प्रिय थे।

दूसरा श्लोक—उनके उपदेशोंको समस्त जगत्में आदरपूर्वक ग्रहण किया गया था। सिंह जैसे हाथीको परास्त कर देता है, वैसे ही उन्होंने अपने सुसिद्धान्तपूर्ण युक्तियोंसे विवाद करनेवालोंके सभी तर्कोंको परास्त कर दिया था।

तीसरा श्लोक—उन्होंने आनन्दतीर्थको दीक्षा प्रदान की। अपने द्वारा ग्रहण किये गये संन्यास-दण्डके द्वारा शासन करके व्यासके विपथगामी मूर्ख शिष्योंको वे सुपथपर लाये, अर्थात् उन्हें भी संन्यास प्रदान किया।

चौथा श्लोक—उनकी कथाएँ विष्णुको विशेष प्रिय और वैकुण्ठसिद्धि-प्रदान करनेमें समर्थ थीं।

पाँचवाँ श्लोक—उनकी भक्तिकी शिक्षाएँ मनुष्योंको भगवान् श्रीहरिके चरणकमलोंको प्रदान करनेमें समर्थ हैं।

छठा श्लोक—नरहरितीर्थने उनसे ही दीक्षा ग्रहण की और नरहरितीर्थने कलिङ्ग प्रदेशपर राज्य किया।

सातवाँ श्लोक—नरहरितीर्थने शबरोंके साथ युद्ध करके श्रीकूर्म-मन्दिरकी रक्षाकी।

आठवाँ श्लोक—नरहरितीर्थ बहुत धार्मिक और शक्तिशाली राजा थे।

नौवाँ श्लोक—श्रीमन्दिरके निर्माण और उसे समस्त कल्याणदाता योगानन्द नृसिंहदेवको समर्पित करनेके बाद शुभ 1203 शकके वैशाख मासकी शुक्लपक्षीय एकादशी तिथिपर बुधवारको उन्होंने कामतदेवके सम्मुख आनन्दपूर्वक देह-त्याग किया था। (अध्यापक किल्हर्णके अनुसार वह दिन) शनिवार 29 मार्च, 1281 ईसवी था॥ 113॥

महाप्रभुके नृत्य-गीतके दर्शनसे लोगोंमें चमत्कार :—

प्रेमावेशे हासि' कान्दि' नृत्य-गीत कैल।
देखि' सर्व लोकेर चित्ते चमत्कार हैल॥ 114॥

आश्चर्य शुनिया लोक आइल देखिबारे।
प्रभुर रूप-प्रेम देखि' हैला चमत्कारे॥ 115॥

अनुवाद—कूर्मदेवके दर्शनकर प्रेममें आविष्ट होकर महाप्रभुने कभी हँसते, तो कभी रोते हुए नृत्य-गान किया। जिसे देखकर सब लोगोंके हृदयमें चमत्कार हुआ। इस आश्चर्यको सुनकर बहुतसे लोग महाप्रभुके दर्शन करनेके लिये आये और महाप्रभुके मनमोहक रूप और अद्भुत श्रीकृष्णप्रेमको देखकर वे भी चमत्कृत हो गये॥ 114-115॥

महाप्रभुके दर्शनोंसे लोगोंको वैष्णवताकी प्राप्ति :—

दर्शने 'वैष्णव' हैल, बले 'कृष्ण' 'हरि'।
प्रेमावेशे नाचे लोक ऊर्ध्वबाहु करि'॥ 116॥

उन्हीं लोगोंके द्वारा उस देशका उद्धार :—

कृष्णनाम लोकमुखे शुनि' अविराम।
सेइ लोक 'वैष्णव' कैल अन्य सब ग्राम॥ 117॥

इस प्रकार समस्त देशका उद्धार :—

एइमत परम्पराय देश 'वैष्णव' हैल।
कृष्णनामामृत-वन्याय देश भासाइल॥ 118॥

अनुवाद—महाप्रभुका दर्शनकर लोग वैष्णव बन गये। वे भी 'कृष्ण' 'हरि' नामका कीर्तन करते-करते प्रेमाविष्ट होकर अपनी भुजाओंको ऊपर उठाकर नृत्य करने लगे। इन लोगोंके मुखसे निरन्तर श्रीकृष्णनामको सुननेवाले व्यक्ति भी 'वैष्णव' बन गये। वे भी अपने गाँवमें जाकर कीर्तन करने लगे और उनके मुखसे नाम सुनकर अन्यान्य सब गाँवके लोगोंको भी वैष्णव बन गये। इस प्रकार परम्परासे सम्पूर्ण दक्षिण भारत 'वैष्णव' हो गया और श्रीकृष्णनामरूपी अमृतकी बाढ़में सारा दक्षिण भारत डूब गया॥ 116-118॥

विग्रहके सेवकोंके द्वारा महाप्रभुका सम्मान :—

कतक्षणे प्रभु यदि बाह्य प्रकाशिला।
कूर्मेर सेवक बहु सम्मान करिला॥ 119॥

अनुवाद—कुछ समयके बाद जब महाप्रभुने अपनी बाहरी चेतनाको प्रकाशित किया, तब श्रीकूर्मदेवके सेवकोंने उनका बहुत सम्मान किया॥ 119॥

सभी ग्रामोंमें जाकर महाप्रभुके द्वारा लोगोंका उद्धार :—

येइ ग्रामे याय ताँहा एइ व्यवहार।
एक ठाञि कहिल, ना कहिब आर बार॥ 120॥

अनुवाद—महाप्रभु जिस-जिस गाँवमें जाते, वहाँ भी ऐसा ही होता। (ग्रन्थकार कविराज गोस्वामी कह रहे हैं—) एकबार मैंने इसका वर्णन किया है, अब इसे बार-बार नहीं कहूँगा॥ 120॥

'कूर्म' नामक ब्राह्मणके द्वारा महाप्रभुकी पूजा :—

'कूर्म'-नामे सेइ ग्रामे वैदिक ब्राह्मण।
बहु श्रद्धा-भक्तये कैल प्रभुर निमन्त्रण॥ 121॥

घरे आनि' प्रभुर कैल पाद-प्रक्षालन।
सेइ जल वंश-सहित करिल भक्षण॥ 122॥

अनेकप्रकार स्नेहे भिक्षा कराइल।
गोसाञिर प्रसादान्न सवंशे खाइल॥ 123॥

"येइ पादपद्म तोमार ब्रह्मा ध्यान करे।
सेइ पादपद्म साक्षात् आइल मोर घरे॥ 124॥

मोर भाग्येर सीमा ना याय कहन।
आजि मोर श्लाघ्य हैल जन्म-कुल-धन॥ 125॥

महाप्रभुके साथ जानेकी कूर्म ब्राह्मणकी प्रार्थना :—

कृपा कर, प्रभु, मोरे, याङ तोमा-सङ्गे।
सहिते नारिमु तोमार विरह-तरङ्गे॥"126॥

अनुवाद—कूर्म-नामक एक वैदिक ब्राह्मण उस गाँवमें रहते थे, उन्होंने बहुत श्रद्धा और भक्तिसे महाप्रभुको अपने घरपर निमन्त्रित किया। महाप्रभुको अपने घरमें लाकर उन ब्राह्मणने उनके श्रीचरणोंको धोया और उस चरणामृतका उसने अपने परिवार सहित पान किया। उन ब्राह्मणने बहुत स्नेहसे महाप्रभुको अनेक प्रकारका भोजन कराया और बादमें महाप्रभुके उच्छिष्ट प्रसादको अपने परिवार सहित ग्रहण किया। महाप्रभुकी वन्दना करते हुए वे ब्राह्मण कहने लगे,—"आपके जिन श्रीचरणकमलोंका ब्रह्मा ध्यान करते हैं, वे श्रीचरणकमल आज साक्षात् मेरे घरमें आये हैं। मेरे भाग्यकी सीमा कही नहीं जा सकती। आज मेरा जन्म, कुल और धन, सब कुछ धन्य हो गया है। हे प्रभो! कृपा करके आप मुझे अपने साथ ले चलिये। मैं आपके विरहके तापको सहन नहीं कर पाऊँगा॥"121-126॥

महाप्रभुके द्वारा सभीको ही आचार्यरूपसे
कृष्णनाम-भक्ति प्रचार करनेका आदेश :—

प्रभु कहे,—"ऐछे बात् कभु ना कहिबा।
गृहे रहि' कृष्णनाम निरन्तर लैबा॥ 127॥

यारे देख, तारे कह 'कृष्ण'-उपदेश।
आमार आज्ञाय गुरु हञा तार' एइ देश॥ 128॥

कभु ना बाधिबे तोमार विषय-तरङ्ग।
पुनरपि एइ ठाञि पाबे मोर सङ्ग॥"129॥

अनुवाद—यह सुनकर महाप्रभुने कहा,—"ऐसी बात कभी नहीं कहना। घरमें रहकर ही निरन्तर श्रीकृष्णनाम करो। जिसे देखो, उसे ही श्रीकृष्णनाम करनेका उपदेश दो। मेरी आज्ञासे गुरु बनकर तुम इस देशका उद्धार करो। घरमें रहते हुए भी सांसारिक विषय कभी तुम्हारी भक्तिमें बाधा नहीं देंगे और यहीं तुम्हें पुनः मेरा सङ्ग प्राप्त होगा॥"127–129॥

एइ मत याँर घरे करे प्रभु भिक्षा।
सेइ ऐछे कहे, ताँरे कराय एइ शिक्षा॥130॥

अनुवाद—इस प्रकार जिसके घरमें महाप्रभु भिक्षा ग्रहण करते, वह भी इसी प्रकार कहता और महाप्रभु उसे भी यही शिक्षा देते॥130॥

अनुभाष्य—जिन्होंने अपना सर्वस्व त्यागकर ऐकान्तिक रूपसे श्रीमन्महाप्रभुका आश्रय लेकर सेवा करनेका सङ्कल्प किया है, भगवान् श्रीगौरसुन्दरने उनके भजनको स्वीकार करके यह शिक्षा दी है—

"अपनेमें गृहत्यागियोंके जैसे 'श्रेष्ठ भजनपरायण' होनेका अभिमान त्यागकर गृहवासरूपी दीनताके साथ निरन्तर श्रीकृष्णनाम कीर्तन करते हुए शुद्धकृष्णनाम-भजनका प्रचार करो। 'मैं सर्वोत्तम वैष्णव हूँ, शिष्य करनेसे मेरा भजन नष्ट हो जायेगा'—ऐसा बड़े भक्त होनेका अभिमान त्यागकर दीनतापूर्वक शुद्धनाम-ग्रहणका आचरण और शुद्धनाम-प्रचाररूपी गुरुका कार्य करनेसे जड़-प्रतिष्ठारूपी विषय-तरङ्ग प्रबल नहीं हो पाती। श्रीरूप, श्रीसनातन, श्रीजीव और श्रीरघुनाथदास आदि पार्षद-महात्माओंने ग्रन्थ लिखकर लोगोंको उपदेश दिया तथा श्रीमन् नरोत्तम, श्रीमध्व-रामानुज आदिने बहुतसे शिष्योंको ग्रहण किया। अनेक मूर्ख लोग उनके ऐसे कार्यको भक्तिके अङ्गोंका बाधक और विषय-तरङ्ग समझनेकी कल्पना करके वास्तविक अकिञ्चन भक्तोंके चरणोंमें अपराधी होते हैं। जगद्गुरु आचार्यके रूपमें श्रीगौराङ्गने यह शिक्षा इसलिये प्रदान की है कि वे गृहस्थ भक्त भलीभाँति विचार करके अपने मिथ्या दीन-अभिमानको परित्याग कर दें और हरि-विमुख व्यक्तियोंके प्रति प्रतिशोधकी भावना भी नहीं रखें, इस प्रकार महाप्रभुके आनुगत्यमें अपने भजनकी वृद्धि करें॥130॥

पुरीमें लौटने तक महाप्रभुके द्वारा सभीको आचार्यरूपमें भक्ति-प्रचार करनेका आदेश :—

पथे याइते देवालये रहे येइ ग्रामे।
याँर घरे भिक्षा करे, सेइ महाजने॥131॥
कूर्मे यैछे रीति, तैछे कैल सर्वठाञि।
नीलाचले पुनः यावत् ना आइला गोसाञि॥132॥
अतएव इँहा कहिलाङ करिया विस्तार।
एइमत जानिबे प्रभुर सर्वत्र व्यवहार॥133॥

अनुवाद—मार्गमें जाते हुए महाप्रभु जिस गाँवके देवालयमें रहते वहाँ प्रेमावेशमें नृत्य-गान करते तथा जिसके घरमें भिक्षा ग्रहण करते, उस महाजनको, कूर्म ब्राह्मणकी भाँति ही उपदेश प्रदान करते। नीलाचल लौटकर आने तक उन्होंने सर्वत्र यही उपदेश दिया। इसलिये मैंने कूर्म ब्राह्मणकी कथाको विस्तारपूर्वक कहा है। ऐसा ही समझो कि महाप्रभुने भ्रमण करते समय सर्वत्र ऐसा ही किया था॥131–133॥

उस रात कूर्मगृहमें वास :—

एइमत सेइ रात्रि ताँहाइ रहिला।
प्रातःकाले प्रभु स्नान करिया चलिला॥134॥

प्रातःकाल फिरसे यात्रा :—

प्रभुर अनुव्रजि' कूर्म बहु दूर आइला।
प्रभु ताँरे यत्न करि' घरे पाठाइला॥135॥

अनुवाद—इस प्रकार उस रात महाप्रभु वहीं रहे और अगले दिन प्रातःकालमें स्नान करके वे वहाँसे चल दिये। कूर्म बाह्मण बहुत दूर तक महाप्रभुके पीछे-पीछे आये। अन्तमें महाप्रभुने उन्हें बहुत समझा-बुझाकर घर वापिस भेजा॥134–135॥

कुष्ठरोगी वासुदेव-ब्राह्मणका महाप्रभुके दर्शनोंके लिये कूर्मब्राह्मणके गृहमें आगमन :—

'वासुदेव'-नाम एक द्विज महाशय।
सर्वाङ्गे गलित कुष्ठ, ताते कीड़ामय॥ 136॥

अङ्ग हैते येइ कीड़ा खसिया पड़य।
उठाञा सेइ कीड़ा राखे सेइ ठाञ॥ 137॥

रात्रिते शुनिला तेँहो गोसाञिर आगमन।
देखिबारे आइला प्रभाते कूर्मेर भवन॥ 138॥

अनुवाद—कूर्म स्थानमें एक ब्राह्मण थे जिनका नाम वासुदेव था, वे बड़े महात्मा थे, परन्तु उनके शरीरमें कोढ़का रोग था। रोगसे उनके अङ्ग गल रहे थे और उनमें भी कीड़े पड़ गये थे। यदि उनके किसी अङ्गसे कोई कीड़ा नीचे गिर जाता, तो वे उसे उठाकर फिर अपने उसी अङ्गमें रख देते। रात्रिमें उन्होंने महाप्रभुके आगमनके बारेमें सुना, सुबह होते ही वे कूर्म ब्राह्मणके घर महाप्रभुके दर्शन करने आये॥ 136-138॥

महाप्रभुके कूर्मक्षेत्रसे चले जानेकी बातको सुनकर वासुदेवको दुःख और विलापके कारण महाप्रभुका वहाँ आविर्भाव :—

प्रभुर गमन कूर्म-मुखेते शुनिञा।
भूमिते पड़िला दुःखे मूर्च्छित हञा॥ 139॥

अनेकप्रकार विलाप करिते लागिला।
सेइक्षणे आसि' प्रभु ताँरे आलिङ्गिला॥ 140॥

महाप्रभुका उनको आलिङ्गन-दान, उसके फलस्वरूप ब्राह्मणकी कुष्ठरोगसे मुक्ति और सौन्दर्य-प्राप्ति :—

प्रभु-स्पर्शे दुःख-सङ्गे कुष्ठ दूरे गेल।
आनन्द सहित अङ्ग सुन्दर हइल॥ 141॥

अनुवाद—कूर्म ब्राह्मणके मुखसे महाप्रभुके चले जानेकी बात सुनकर वे दुःखसे मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़े। फिर चेतना लौटनेपर वे बहुत प्रकारसे विलाप करने लगे। तभी महाप्रभुने वहाँ आकर उनका आलिङ्गन किया। महाप्रभुका स्पर्श पाते ही उनके दुःखके साथ-साथ उनका कोढ़का रोग भी दूर हो गया। उनके सभी अङ्ग सुन्दर हो गये और उनके हृदयमें आनन्दका सञ्चार हुआ॥ 139-141॥

महाप्रभुकी दयाका दर्शनकर वासुदेवका स्तव :—

प्रभुर कृपा देखि' ताँर विस्मय हैल मन।
श्लोक पड़ि' पाये धरि', करये स्तवन॥ 142॥

अनुवाद—महाप्रभुकी ऐसी कृपाको देखकर उनके मनमें बहुत आश्चर्य हुआ और वे उनके चरणकमलोंको पकड़कर एक श्लोकके द्वारा उनका स्तव करने लगे॥ 142॥

श्रीमद्भागवत (10/81/16) :—

क्वाहं दरिद्रः पापीयान् क्व कृष्णः श्रीनिकेतनः।
ब्रह्मबन्धुरिति स्माहं बाहुभ्यां परिरम्भितः॥ 143॥

अनुवाद—(सुदामाजीके वचन—) कहाँ मैं अति पापी दरिद्र, कहाँ श्रीनिकेतन (लक्ष्मीके निवासस्थान) श्रीकृष्ण! उन्होंने मुझे अयोग्य ब्राह्मण-पुत्र जानकर मेरा आलिङ्गन किया,—यह अति आश्चर्यका विषय है॥ 143॥

अनुभाष्य—आदिलीला 17/78 संख्या देखें॥ 143॥

बहु स्तुति करि' कहे,—"शुन, दयामय।
जीवे एइ गुण नाहि, तोमाते एइ हय॥ 144॥

मोरे देखि' मोर गन्धे पलाय पामर।
हेन-मोरे स्पर्श' तुमि,—स्वतन्त्र ईश्वर॥ 145॥

किन्तु आछिलाङ भाल अधम हञा।
एबे अहङ्कार मोर जन्मिबे आसिया॥"146॥

अनुवाद—वासुदेव ब्राह्मणने महाप्रभुकी बहुत स्तुति की और फिर कहने लगे,—"सुनो हे दयामय! जीवोंमें ऐसी कृपाका गुण नहीं हो सकता, जो आपमें है। मुझे देखकर, मेरे शरीरकी दुर्गन्धसे अत्यन्त पापी व्यक्ति भी मुझसे दूर भागते हैं और आपने मेरे जैसे व्यक्तिको स्पर्श किया—आप स्वतन्त्र ईश्वर हैं। किन्तु मैं उस

अधम अवस्थामें ही अच्छा था, क्योंकि अब मुझमें सुन्दर शरीरका अभिमान आ जायेगा॥"144-146॥

महाप्रभुके द्वारा वासुदेवको आचार्य होकर श्रीकृष्णनामका उपदेश करते हुए जीवोंके उद्धार करनेका आदेश :—

प्रभु कहे,—"कभु तोमार ना हबे अभिमान।
निरन्तर कह तुमि 'कृष्ण' 'कृष्ण' नाम॥147॥

कृष्ण उपदेशि' कर जीवेर निस्तार।
अचिराते कृष्ण तोमा करिबेन अङ्गीकार॥"148॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"तुम निरन्तर 'कृष्ण' 'कृष्ण' नामका कीर्तन करना, तब तुम्हें कभी भी अभिमान नहीं होगा। सभी जीवोंको श्रीकृष्णनामका उपदेश देकर उनका उद्धार करना, श्रीकृष्ण तुम्हें शीघ्र ही अङ्गीकार करेंगे॥"147-148॥

महाप्रभुकी कृपाको स्मरण करके कूर्म और वासुदेवका क्रन्दन :—

एतेक कहिया प्रभु कैल अन्तर्धाने।
दुइ विप्र गलागलि कान्दे प्रभुर गुणे॥149॥

अनुवाद—इतना कहकर महाप्रभु वहाँसे अन्तर्धान हो गये। तब कूर्म एवं वासुदेव ब्राह्मण परस्पर आलिङ्गन करके महाप्रभुके गुणोंका गान करते हुए रोने लगे॥149॥

इस आख्यानका नाम—वासुदेवका उद्धार, महाप्रभुका नाम—'वासुदेवामृतप्रद' :—

'वासुदेवोद्धार' एइ कहिल आख्यान।
'वासुदेवामृतप्रद' हैल प्रभुर नाम॥150॥

एइ त' कहिल प्रभुर प्रथम आगमन।
कूर्म-दरशन, वासुदेव-विमोचन॥151॥

चैतन्यलीला-श्रवण करनेसे अचैतन्य-सेवकको चैतन्यकी प्राप्ति :—

श्रद्धा करि' एइ लीला ये करे श्रवण।
अचिराते मिलये तारे चैतन्य-चरण॥152॥

अनुवाद—इस प्रकार मैंने (ग्रन्थकारने) 'वासुदेव-उद्धार' नामक कथाका वर्णन किया है और इस कारण महाप्रभुका एक नाम 'वासुदेवामृतप्रद' हो गया। यह मैंने महाप्रभुके द्वारा प्रथम यात्राके समय किये गये श्रीकूर्मदेवके दर्शन और वासुदेवके उद्धारका वर्णन किया। जो श्रद्धापूर्वक महाप्रभुकी इन लीलाओंका श्रवण करता है, उसे शीघ्र ही श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणकमलोंकी प्राप्ति होती है॥150-152॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीसार्वभौम-कृत महाप्रभुके सौ नामोंमें यह नाम भी है॥150॥

सातवें अध्यायका अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

अनुभाष्य—*'एइ लीला'*—श्रीकृष्णचैतन्यके द्वारा भक्तिहीन जीवोंको भक्ति दिये जानेपर वे सब श्रीकृष्ण-सेवोन्मुख जीव, पुनः आचार्यके रूपमें अन्य भक्तिहीन जीवोंको भक्ति प्रदान करके उन्हें श्रीकृष्णसेवान्मुख कराते रहते हैं। इस प्रकार अच्युत-गोत्रकी वृद्धि अर्थात् श्रौत-पन्था प्रसारके द्वारा यह श्रीगौरसुन्दरकी अवतारवाद-माहात्म्य-प्रदर्शन-लीला है॥152॥

सातवें अध्यायका अनुभाष्य समाप्त।

गुरुमुखसे श्रवणके फलस्वरूप अथवा श्रौतपन्थासे ही श्रीचैतन्य-सेवा :—

चैतन्यलीलार आदि-अन्त नाहि जानि।
सेइ लिखि, येइ महान्तेर मुखे शुनि॥153॥

शुद्धभक्तके चरणोंमें शरणागति ही श्रीचैतन्यकी प्राप्तिका उपाय :—

इथे अपराध मोर ना लइओ, भक्तगण।
तोमा-सबार चरण—मोर एकान्त शरण॥154॥

अनुवाद—मैं श्रीचैतन्य महाप्रभुकी लीलाके आदि-अन्तको नहीं जानता हूँ। मैं तो केवल वही लिख रहा हूँ, जो मैंने महाजनोंके मुखसे श्रवण किया है। इसलिये हे भक्तों! मेरा अपराध मत लेना, आप सभीके चरणकमल ही मेरा एकमात्र आश्रय हैं॥153-154॥

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ 155॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते मध्यखण्डे दक्षिणयात्रायां 'वासुदेवोद्धारो' नाम सप्तम-परिच्छेदः।

अनुवाद—श्रीरूप-रघुनाथ गोस्वामीके चरणकमलोंकी कृपाभिलाषा करते हुए कृष्णदास इस चैतन्यचरितामृतका वर्णन कर रहा है॥ 155॥

श्रीचैतन्यचरितामृतके मध्यखण्डके अन्तर्गत दक्षिणयात्रामें 'वासुदेव-उद्धार' नामक सातवाँ अध्याय समाप्त।

चित्र-8

आठवाँ अध्याय

कथासार—महाप्रभु जियड़-नृसिंहके दर्शन करके गोदावरीके तटपर विद्यानगरमें स्नान करनेके लिये आये। वहाँ उन्होंने श्रीराय रामानन्दके साथ भेंट की। परिचय होनेपर श्रीरामानन्दने उन्हें उसी गाँवमें कुछेक दिन रहनेके लिये अनुरोध किया। उनके अनुरोधपर महाप्रभु किसी वैदिक-वैष्णव-ब्राह्मणके घरमें रहे। सन्ध्याके समय जब श्रीरामानन्द-रायने दीनवेशमें महाप्रभुके निकट आकर दण्डवत् प्रणाम किया, तब महाप्रभुने उन्हें साध्य-निर्णयके लिये श्लोक पढ़नेकी आज्ञा दी। श्रीरामानन्द-रायने सबसे पहले वर्णाश्रमधर्मरूपी सज्जनोंके सामान्य धर्मका उल्लेख करके 'कर्मार्पण', बादमें 'आसक्तिशून्य कर्म', उसके बाद 'ज्ञानमिश्राभक्ति' और अन्तमें **'ज्ञानशून्य शुद्ध-भक्ति'**के सम्बन्धमें जब कुछेक श्लोकोंका पाठ किया, तब महाप्रभुने आखिरी (ज्ञानशून्य शुद्ध-भक्ति) को **'साध्यवस्तु'**के रूपमें स्वीकार किया। फिर भक्तिके सम्बन्धमें (महाप्रभुने श्रीराय रामानन्दको) उच्च अधिकारका वर्णन करनेके लिये कहा। तब श्रीरायने पहले 'शुद्धा कृष्णरतिरूपा प्रेमभक्ति', उसके बादमें 'दास्यप्रेम', उसके बाद 'सख्यप्रेम' और फिर 'वात्सल्यप्रेम' एवं (अन्तमें) **'कान्तभावगत प्रेम'**को **'साध्यसार'** कहकर वर्णन किया। कान्तप्रेम, किस प्रकारसे साध्यसार होता है, उसे भी श्रीरायने विविध रूपमें कहा। महाप्रभुने जब उसे **साध्यकी सीमाके रूपमें स्वीकार** किया, तब श्रीरायके द्वारा राधिकाका प्रेम वर्णित हुआ। बादमें श्रीरायने श्रीकृष्णके स्वरूप, श्रीराधाके स्वरूप, रसतत्त्वके स्वरूप और प्रेमतत्त्वका वर्णन किया। उसके बाद महाप्रभुके द्वारा जिज्ञासा करनेपर, श्रीरामानन्द-रायने प्रेमविलास-विवर्त्तरूप विप्रलम्भगत-अधिरूढ़-भावमय स्वरचित एक गीत बोला। अन्तमें, उन्होंने श्रीराधा-कृष्णकी प्रेमसेवारूपी परम साध्यवस्तुको प्राप्त करनेके उपायस्वरूप व्रजसखियोंके आनुगत्यका विशेषरूपसे विवरण प्रदान किया। कुछ दिनों तक प्रत्येक रात्रिमें अनेक प्रकारसे श्रीकृष्णकथा करनेके बाद, महाप्रभुके मूलतत्त्व और उनके स्वरूपको देखकर श्रीरामानन्द मूर्च्छित हो गये। कुछ दिनों बाद श्रीरामानन्दको राजकार्य परित्याग करके पुरुषोत्तम जानेकी आज्ञा देकर महाप्रभुने दक्षिणकी यात्रा की। यह समस्त विवरण श्रीकविराज गोस्वामीने श्रीस्वरूप दामोदरके कड़चाके अनुसार लिखा है।

—(अमृतप्रवाह भाष्य)

श्रीरामानन्दके द्वारा महाप्रभुका निज भक्तिसिद्धान्त-प्रचार :—

सञ्चार्य रामाभिध-भक्तमेघे
स्वभक्तिसिद्धान्तचयामृतानि।
गौराब्धिरेतैरमुना वितीर्णै-
स्तज्ज्ञत्व-रत्नालयतां प्रयाति॥ 1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—सिद्धान्तामृत-समुद्ररूप श्रीगौराङ्गने श्रीरामानन्द-नामक भक्तमेघमें स्वभक्ति-सिद्धान्तामृतका सञ्चार करके, उनके द्वारा विस्तृत किये गये उन भक्तिसिद्धान्तोंके द्वारा पुनः स्वयं भक्तितत्त्वज्ञता-रूपी समुद्रता प्राप्त की॥ 1॥

अनुभाष्य—

गौराब्धिः (श्रीगौराङ्गः एव अब्धिः सिद्धान्तामृतसमुद्रः) रामाभिध-भक्तमेघे (रामानन्द-नामा एव सिद्धान्तामृतवर्षकः मेघः, तस्मिन्) स्वभक्तिसिद्धान्तचयामृतानि सञ्चार्य अमुना (रामानन्द-मेघेन) एतैः (स्वभक्तिसिद्धान्तामृतैः) वितीर्णैः (व्याप्तैः निविड़ैः) तज्ज्ञत्व-रत्नालयतां (तानि सिद्धान्तामृतानि जानाति यः सः एव तज्ज्ञः, तस्य भावः तज्ज्ञत्वम् एव रत्नं, तस्य आलयतां सिद्धान्तामृताभिज्ञत्वरूपसमुद्रतां) प्रयाति (प्राप्नोति)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 1॥

अमृतानुकणिका—"श्रीराय रामानन्द संवाद अत्यन्त

गम्भीर तथा सिद्धान्तोंका रत्नालय है। इसमें महाप्रभु प्रश्न कर रहे हैं और श्रीरामानन्द उत्तर दे रहे हैं, किन्तु श्रीरामानन्दके हृदयमें उन सिद्धान्तोंका सञ्चारण महाप्रभु ही कर रहे हैं। भक्तिके जितने प्रकारके सिद्धान्त हैं, श्रीराधाभावद्युति सुवलित शचीनन्दन श्रीगौरहरि उनके समुद्र हैं।

'संचार्य'—अर्थात् सञ्चरित करके। जैसे—सूर्यकी किरणें जलको वाष्प रूपमें उड़ा देती हैं। तदनन्तर वह वाष्प मेघ रूप धारणकर वर्षाके रूपमें परिणत होकर पुनः समुद्रमें गिरता है। स्वाति नक्षत्रके संयोगसे वह जल समुद्रमें विद्यमान सीपमें गिरनेपर मोती या रत्न बन जाता है। उन अमूल्य रत्नोंको धारण करनेके कारण ही समुद्र 'रत्नालय' कहलाता है। यद्यपि समुद्रमें अवस्थित सीपमें रत्न बनानेकी क्षमता होती है, तथापि स्वाति नक्षत्रके संयोगसे वर्षाकी बूँद ही उसमें रत्न बननेका कारण होती है, समुद्रका जल नहीं। यहाँ श्रीगौरहरि ही भक्तिसिद्धान्त-रत्नालय हैं और श्रीरामानन्द हैं—मेघ। महाप्रभुने भक्ति-तत्त्वरूपी अमृत जलधाराओंके द्वारा अपनी दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर रसमयी, विशेषकर औपपत्य भावकी मेघ-मालाओंका अलक्षित रूपसे अपनी कृपाशक्तिके द्वारा श्रीरामानन्दके हृदयमें सञ्चार किया। श्रीरामानन्दकी भक्ति-सिद्धान्तोंकी व्याख्या ही स्वाति-नक्षत्रकी जलधारा है। इन जलधाराओंको महाप्रभुकी कर्णरूपी सीपके द्वारा ग्रहण किये जानेपर वे धाराएँ सिद्धान्त-रत्न बन गयीं और महाप्रभु सिद्धान्त-रत्नालय बन गये। ये रत्न महाप्रभुके हृदयमें उदित विभिन्न राधाभाव हैं।

कृष्णभक्तिके दो आलम्बन हैं—विषय और आश्रय। श्रीकृष्ण प्रेमके विषय और भक्त प्रेमके आश्रय हैं। भक्त ही भक्तिका आधार होते हैं। श्रीकृष्ण प्रेमके विषय होनेके कारण आश्रय-जातीय भक्तिके विषयमें अनभिज्ञ हैं। आश्रय-जातीय भक्तोंमें श्रीराधा सर्वश्रेष्ठा हैं। श्रीराधामें समस्त रसपूर्ण भाव, श्रद्धासे लेकर मादनाख्य-महाभाव तक परिपूर्णतम रूपमें अवस्थित हैं। इन्हीं आश्रयजातीय भावोंका आस्वादन करनेके लिये श्रीकृष्ण श्रीराधाके भाव और अङ्गकान्ति लेकर शचीनन्दन श्रीगौरहरि हुए। परन्तु अनुभूतिके बिना केवल भावके द्वारा उसका आस्वादन सम्भव नहीं है। यद्यपि महाप्रभु समस्त प्रकारके तत्त्वज्ञान और रसकी सीमा हैं। परन्तु श्रीराधा इन भावोंके द्वारा किस प्रकार श्रीकृष्णकी सेवा करती हैं, उनको आनन्द प्रदान करती हैं और स्वयं जिस आनन्दका अनुभव करती हैं—महाप्रभु इस विज्ञानको नहीं जानते थे अर्थात् उन्हें उसका अनुभव नहीं था। यह आश्रय-विज्ञान उन्होंने श्रीरामानन्द अर्थात् विशाखा सखीसे प्राप्त किया।

'रामाभिध-भक्तमेघे'—यहाँ भक्तमेघ श्रीरायरामानन्द हैं। भक्तमात्र ही भक्ति-तत्त्वको धारण कर सकते हैं, अन्य किसीमें यह सामर्थ्य नहीं होता। श्रीरामानन्द चैतन्यलीलामें गौराङ्ग महाप्रभुके नित्य पार्षद हैं और व्रजलीलामें विशाखा सखी हैं। उनमें ही यह विशेष शक्ति है कि वे महाप्रभुके निज-विषयक भक्ति-सिद्धान्तोंको धारणकर पुनः उनकी वर्षा कर सके और इसके द्वारा महाप्रभुको श्रीराधाप्रेम और भावनाओंकी वैचित्रीके अनुभवरूपी अनिर्वचनीय चमत्कारिताका आस्वादन करवा पाये।

'स्वभक्तिसिद्धान्तचयामृतानि'—'स्व' अर्थात् श्रीकृष्ण विषयक भक्तिसिद्धान्तसमूह अर्थात् श्रीकृष्णकी भक्ति, विशेषकर सख्य, वात्सल्य, और मधुर (रसमयी भक्ति)। इन आश्रयजातीय भक्तोंकी श्रीकृष्णके प्रति सेवा-भावना या उच्चकोटिकी ममता और इनमें भी मधुर रसका वैशिष्ट्य—मञ्जरियोंकी सेवाकी परिपाटी ही अमृत है।

"अनर्पितचरीं चिरात् करुण्यावतीर्णः कलौ
समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम्।"

'स्वभक्तिश्रियम्'—श्रीकृष्णकी सेवा-वासनाकी मूर्तिमान-स्वरूप श्रीराधा हैं और उनकी शोभा हैं—मञ्जरी-वृन्द। श्रीकृष्ण रसिक-शेखर हैं और साथ ही परम करुण भी हैं। अपनी अहैतुकी कृपासे श्रीकृष्णने महाप्रभुके रूपमें कलियुगमें अवतीर्ण होकर इस उन्नत उज्ज्वल रससे

परिपूर्ण स्वभक्तिकी शोभा अर्थात् मञ्जरीभावको जगत्को प्रदान किया। इसके पूर्व किसीने इसे जगत्में प्रकाशित नहीं किया था। इसी आनुगत्यमयी, परतन्त्रमयी सेवामें जीवका सर्वोच्च अधिकार है।

'गौराब्धिरेतैरमुना वितीर्णैः'—गौराब्धि अर्थात् गौर-समुद्र। समुद्र जलका आधार है। महाप्रभु प्रेमके अनन्त और अगाध समुद्र हैं। परन्तु इस समुद्रमें खारापन नहीं है, अपितु यह अमृतको भी विनिन्दित करने वाला परमानन्द-स्वरूप, परमास्वादनीय और अत्यन्त लोभनीय है। इसमें साधारण समुद्रके समान व्हेल मछलियाँ और उनको भी खा जानेवाले तिमिङ्गिल आदि कर्म, ज्ञान, उपासनाादि रूपी हिंसक जन्तु नहीं हैं, अपितु यह रसामृत तत्त्वसे परिपूर्ण है। इसमें भयङ्कर गर्जन नहीं, अपितु परमास्वादनीय, लोभनीय, चमत्कारपूर्ण संयोगात्मक-वियोगात्मक कल्लोल-हिल्लोलें उठती रहती हैं। इसमें 'सर्वात्मस्नपन' (आत्माके सम्पूर्ण स्नान) रूपी करुणाका आह्वान है, कल्लोल है, जो महाप्रभु इस जगत्को प्रदान करना चाहते हैं।"—श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी॥1॥

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥2॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभुकी जय हो, जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो। श्रीअद्वैतचन्द्रकी जय हो और समस्त गौरभक्तवृन्दकी जय हो॥2॥

जियड़नृसिंहका दर्शन और नृत्य-स्तुति-गीत :—

पूर्व-रीते प्रभु आगे गमन करिला।
'जियड़नृसिंह'-क्षेत्रे कतदिने गेला॥3॥

नृसिंह देखिया कैल दण्डवत्-प्रणति।
प्रेमावेशे कैल बहु नृत्य-गीत-स्तुति॥4॥

"श्रीनृसिंह, जय नृसिंह, जय जय नृसिंह।
प्रह्लादेश जय पद्मामुखपद्मभृङ्ग॥"5॥

अनुवाद—पहलेकी भाँति महाप्रभु सभीको वैष्णव बनाते हुए आगे चले। कुछ दिनोंमें वे 'जियड़ नृसिंह' क्षेत्रमें पहुँचे। श्रीनृसिंह भगवान्का दर्शन करके महाप्रभुने उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। प्रेमके आवेशमें उन्होंने बहुत नृत्य, गीत और स्तुति कीं,—"श्रीनृसिंह, जय नृसिंह, जय जय नृसिंह। भक्त प्रह्लादके ईश्वरकी जय हो। श्रीलक्ष्मीके मुखकमलके भ्रमरकी जय हो॥"3-5॥

अनुभाष्य—*'जियड़ नृसिंहक्षेत्र'*—भिजागापटम अथवा विशाखापत्तनसे पाँच मील उत्तरकी ओर 'सिंहाचलम्' नामक स्थान है। 'सिंहाचल'-नामसे रेल स्टेशन भी है। श्रीनृसिंहदेवका मन्दिर पर्वतकी चोटीपर है। भिजागापटममें यह मन्दिर सबसे अधिक प्रसिद्ध एवं समृद्धिसम्पन्न है तथा शिल्पकलाके श्रेष्ठ उदाहरणके रूपमें विराजमान है। एक पत्थरके पटलपर लिखा हुआ देखा जाता है कि राजा तृतीय 'गोङ्गा'की एक भक्त रानीने श्रीविग्रहको स्वर्णमण्डित करा दिया था—(भिजागापटम् गेजेटियार)। मन्दिरके निकट श्रीनृसिंहदेवके सेवकवृन्द और अन्यान्य स्थानीय लोग वास करते हैं। आजकल पर्वतके ऊपर यात्रियोंके ठहरनेके लिये श्रीमन्दिरसे लगी अनेक धर्मशालाएँ और बहुतसे घर हैं। विजय-मूर्ति प्रकाशमय स्थानपर और मूल श्रीनृसिंह-मूर्ति कक्षके अन्दर विराजमान है। कुछ रामानुजीय श्रीवैष्णवगण विजयनगर-राज्यके अधीन श्रीमूर्तिकी सेवा करते हैं।

'पद्मामुखपद्मभृङ्ग'—पद्मा अर्थात् अपने वक्षपर विलास करनेवाली लक्ष्मीदेवीके कान्त। भाः 1/1/1 एवं 10/87/1 श्लोककी टीकामें श्रीधर स्वामी द्वारा रचित श्लोक—

"प्रह्लाद-हृदयाह्लादं भक्ताविद्या-विदारणम्।
शरदिन्दुरुचिं वन्दे पारीन्द्रवदनं हरिम्॥"
"वागीशा यस्य वदने लक्ष्मीर्यस्य च वक्षसि।
यस्यास्ते हृदये सम्वित् तं नृसिंहमहं भजे॥"

श्लोक-भावानुवाद—"प्रह्लादके हृदयको आनन्द प्रदान करनेवाले, भक्तोंकी अविद्याका नाश करनेवाले, शरत्कालीन पूर्ण चन्द्रमाकी कान्तिसे युक्त श्रीनृसिंहदेवकी मैं वन्दना करता हूँ।"

"जिनके मुखमें वाणीकी स्वामिनी सरस्वती निवास

करती हैं, जिनके वक्षस्थलपर लक्ष्मी वास करती हैं और हृदयमें चेतनाकी दैवीशक्ति निवास करती हैं, उन श्रीनृसिंहदेवकी मैं वन्दना करता हूँ॥"3-5॥

अमृतानुकणिका—"'पूर्वरीतें' अर्थात् (महाप्रभुने) यथापूर्व सबको अपने नृत्य-गीत और विचारोंसे वैष्णव बनाया।

"एमन दयालु प्रभु नहे त्रिभुवने।
कृष्णप्रेम जन्माय याँर दूर दरशने॥"

अर्थात् "महाप्रभुके समान दयालु तीनों जगत्में कोई नहीं है, उनके दूरसे ही दर्शन करनेसे श्रीकृष्णप्रेम हृदयमें उत्पन्न हो जाता है।"

यहाँ तक कि उन्होंने झारखण्डके जङ्गलोंमें बाघ-सिंह-भालू आदि हिंसक पशुओंको भी प्रेम प्रदान किया। महाप्रभुका आदेश है (मध्यलीला 7/128)—

"यारे देख, तारे कह 'कृष्ण'-उपदेश।
आमार आज्ञाय गुरु हञा तार' एइ देश॥"

अर्थात् "जिसे देखो, उसे ही श्रीकृष्णनाम करनेका उपदेश दो। मेरी आज्ञासे गुरु बनकर तुम इस देशका उद्धार करो।"

(अन्त्यलीला 4/102) में कहा है—

"आपने आचारे केह, ना करे प्रचार।
प्रचार करेन केह, ना करे आचार॥"

अर्थात् "कोई व्यक्ति स्वयं तो आचरण करते हैं, किन्तु प्रचार नहीं करते तथा अन्य कोई व्यक्ति प्रचार तो करते हैं, किन्तु आचरण नहीं करते।"

पहले स्वयं आचरण करके उसके बाद प्रचार भी अवश्य करना चाहिये। आचार और प्रचार—दोनों ही आवश्यक हैं। केवल प्रचार करना कर्मकाण्ड है, इसलिये प्रचारके साथ आचरण भी आवश्यक है। प्रचार भी भक्ति है। महाप्रभुके अनुगत श्रीरूप गोस्वामी-सनातन गोस्वामीसे लेकर शिष्य-परम्परामें श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद, हमारे गुरुदेव श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज, श्रीभक्तिवेदान्त स्वामी महाराज आदि सभी आचार्योंने स्वयं आचरण किया और उसीका प्रचार भी किया। ऐसे भक्तोंका ही जीवन उच्च कोटिका है। इन्हींका सङ्ग करना चाहिये। जो संसारमें अनासक्त, निर्मल चरित्रवान्, भगवद्-कथामें निपुण, समस्त संशयोंका छेदन करने वाले हों—ऐसे वैष्णवोंके सङ्गमें उनसे हरिकथा सुननेपर हृदयमें भक्ति प्रकाशित होती है।

महाप्रभुने सर्वत्र प्रेमका प्रचार करते हुए विशेष-विशेष लोगोंको 'अनर्पितचरीं चिरात्' का भाव भी दिया और अपने दर्शनसे लोगोंको प्रेम-रसमें निमग्न किया।

महाप्रभु चलते हुए 'जियड़ नृसिंह' क्षेत्रमें पहुँचे। यहाँ श्रीनृसिंहदेवका मन्दिर एक पर्वतपर अवस्थित है। ऐसा कहा जाता है कि श्रीनृसिंहदेवके इन श्रीविग्रहने जियड़ नामक एक भक्तपर विशेष कृपा की थी, इसलिये वे 'जियड़ नृसिंह'के नामसे प्रसिद्ध हैं। महाप्रभुने श्रीनृसिंह भगवान्के दर्शन किये और अनेक प्रकारसे नृत्य-गीत-स्तुति आदि की।

पूर्वपक्ष यहाँ प्रश्न उठाते हैं कि राधाभावमें आविष्ट महाप्रभु श्रीकृष्णके ही नाम, रूप, गुण, लीला आदिका आस्वादन करना चाहते हैं, परन्तु यहाँ श्रीनृसिंहका जयगान करके स्तुति कर रहे हैं और असाधारण रूपसे प्रेमाविष्ट हो रहे हैं। इसका उत्तर यह है कि श्रीनृसिंहदेव या भगवान्के सभी अवतार श्रीकृष्णसे भिन्न नहीं हैं, श्रीकृष्ण ही हैं। सभी अवतारोंमें एक-एक रस वैचित्री है। श्रीरामचन्द्रमें वात्सल्य और ऐश्वर्य मिश्रित सख्य भी है। उनकी लीला करुण-रससे परिपूर्ण है। श्रीजयदेव गोस्वामीने श्रीगीतगोविन्दमें दशावतार स्तोत्रमें श्रीकृष्णके प्रत्येक रसके अधिष्ठानरूप एक-एक अवतारका जयगान किया है। राधाभावद्युति सुवलित श्रीगौरहरि श्रीकृष्ण ही हैं। वे अखिलरसामृतमूर्ति अपने अन्दर अनन्त रस-वैचित्री धारण किये हुए हैं। ऐसा कोई भी रस नहीं है जिसका महाप्रभु आस्वादन नहीं कर सकते। श्रीनृसिंह प्रह्लादके ईश हैं और अपनी वक्ष-विलासिनी लक्ष्मीदेवी पद्माके मुखकमलका भृङ्गके समान आस्वादन करते हैं। श्रीराधा ही आंशिक रूपमें

पद्मा हैं। वे पद्माके रूपमें नृसिंहदेवकी सेवाका वैचित्र्य प्रकाशित कर रही हैं। उसके रसास्वादनकी अभिलाषा महाप्रभुके हृदयमें जाग्रत हो उठी। उसका ही तब महाप्रभुने आस्वादन किया। इस मनोरथके पूर्ण होनेपर वे नृत्य-कीर्तन करने लगे। दक्षिण भारतमें महाप्रभु मीनाक्षी देवी, कन्याकुमारी आदि अनेक देवालयोंमें गये। वहाँ भावावेशमें उन्होंने नृत्य किया। वे अन्य देवी-देवताओंको भगवान्के परिकरके रूपमें दर्शन करते थे और भावाविष्ट हो जाते थे।"—श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी॥3–5॥

श्रीनृसिंह अभक्तोंके लिये कठोर और भक्तोंके लिये कोमल :—

भागवत (7/9/1)-टीकामें श्रीधरस्वामि-उद्धृत आगमवचन—

उग्रोऽप्यनुग्र एवायं स्वभक्तानां नृकेशरी।
केशरीव स्वपोतानामन्येषामुग्रविक्रमः॥6॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥6॥

अमृतप्रवाह भाष्य—सिंह जिस प्रकार उग्र (हिंसक) होनेपर भी अपनी सन्तानके प्रति हिंसक नहीं होता, उसी प्रकार श्रीनृसिंहदेव हिरण्यकशिपु आदि असुरोंके प्रति उग्र होनेपर भी प्रह्लादादि अपने भक्तोंके प्रति स्नेहपूर्ण होते हैं॥6॥

अनुभाष्य—

अन्येषां (स्वपाल्यशावकाभिन्नानां गज-व्याघ्रादीनां सम्बन्धे) उग्रविक्रमः (प्रचण्डपराक्रमः) स्वपोतानां (निजशावकानां सम्बन्धे) शान्तः केशरी (सिंह) इव अयं नृकेशरी (नृसिंहदेवः) उग्रं (प्रचण्डविक्रमः) अपि स्वभक्तानां (निजपाल्यदासानां सम्बन्धे) अनुग्रः (शान्तः कोमलः वत्सलः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥6॥

एइमत नाना श्लोक पड़ि' स्तुति कैल।
नृसिंह-सेवक माला-प्रसाद आनि' दिल॥7॥

अनुवाद—इस प्रकार महाप्रभुने अनेक श्लोकोंके द्वारा श्रीनृसिंह भगवान्की स्तव-स्तुति की। श्रीनृसिंहदेवके सेवकने महाप्रभुके भाव देखकर उन्हें प्रसाद और माला लाकर दी॥7॥

सिंहाचलमें रात्रिवास :—

पूर्ववत् कोन विप्रे कैल निमन्त्रण।
सेइ रात्रि ताँहा रहि' करिला गमन॥8॥

अनुवाद—पहलेकी भाँति किसी ब्राह्मणने आकर महाप्रभुको निमन्त्रण दिया। उस रात महाप्रभु वहीं रहे और अगले दिन वहाँसे गमन किया॥8॥

प्रातःकाल पुनः यात्रा :—

प्रभाते उठिया चलिला प्रेमावेशे।
दिग्विदिक् नाहि ज्ञान रात्रि-दिवसे॥9॥

अनुवाद—प्रभातमें उठकर महाप्रभु प्रेमावेशमें आगे चलने लगे। उन्हें न तो दिशा-विदिशाका और न ही रात-दिनका ज्ञान रहता था॥9॥

गोदावरीके तटपर आगमन और यमुनाकी उद्दीपना :—

पूर्ववत् 'वैष्णव' करि' सर्व लोकगणे।
गोदावरी-तीरे प्रभु आइला कतदिने॥10॥

गोदावरी देखि' हइल 'यमुना'-स्मरण।
तीरे वन देखि' स्मृति हैल वृन्दावन॥11॥

सेइ वने कतक्षण करि' नृत्य-गान।
गोदावरी पार हञा ताँहा कैल स्नान॥12॥

घाट छाड़ि' कतदूरे जल-सन्निधाने।
बसि' प्रभु करे कृष्णनाम-सङ्कीर्त्तने॥13॥

अनुवाद—पहलेकी भाँति सभी लोगोंको वैष्णव बनाते हुए महाप्रभु कुछ दिनों बाद गोदावरी नदीके तटपर पहुँचे। गोदावरीको देखकर उन्हें 'यमुना'का स्मरण हो आया और गोदावरीके तटपर स्थित वनको देखकर उन्हें श्रीवृन्दावनकी स्फूर्ति हो आयी। उन्होंने गोदावरीको यमुना और वहाँके वनको वृन्दावन समझा। उस वनमें कुछ समय तक नृत्य-गान करनेके बाद

उन्होंने गोदावरीको पार करके उस पार तटपर स्नान किया। स्नान करनेके बाद घाटसे कुछ दूर जलके निकट ही बैठकर महाप्रभु श्रीकृष्णनामका सङ्कीर्तन करने लगे॥ 10-13॥

स्नानके लिये श्रीराय-रामानन्दका वहाँपर आगमन :—

हेनकाले दोलाय चड़ि' रामानन्द राय।
स्नान करिबारे आइला, बाजना बाजाय॥ 14॥
ताँर सङ्गे बहु आइला वैदिक ब्राह्मण।
विधिमते कैल तेँहो स्नानादि-तर्पण॥ 15॥

अनुवाद—उसी समय पालकीपर चढ़कर स्नान करनेके लिये श्रीरामानन्द राय वहाँ आये। साथमें उनके आगमनकी सूचना देनेके लिये बाजे बज रहे थे। उनके साथ बहुतसे वैदिक ब्राह्मण भी आये थे। श्रीरामानन्द रायने विधिपूर्वक स्नान-तर्पणादि किया॥ 14-15॥

श्रीरामानन्दके साथ मिलनके लिये महाप्रभुकी व्यग्रता :—

प्रभु ताँरे देखि' जानिल—एइ रामराय।
ताँहारे मिलिते प्रभुर मन उठि' धाय॥ 16॥

अनुवाद—उन्हें देखते ही महाप्रभु समझ गये कि ये श्रीरामानन्द राय हैं। उनसे मिलनेके लिये महाप्रभुका मन अति उत्कण्ठित हो उठा॥ 16॥

महाप्रभुके पास श्रीरामानन्दका आना :—

तथापि धैर्य धरि' प्रभु रहिला बसिया।
रामानन्द आइला अपूर्व संन्यासी देखिया॥ 17॥

अनुवाद—महाप्रभु हृदयमें मिलनके लिये उत्कण्ठित होनेपर भी धैर्य धारण करके वहीं बैठे रहे। तब श्रीरामानन्द राय घाटसे कुछ दूर एक अद्भुत और अति सुन्दर संन्यासीको देखकर उनके निकट आये॥ 17॥

महाप्रभुके रूपदर्शनसे श्रीरायका विस्मय
और दण्डवत्-प्रणाम :—

सूर्यशत-सम कान्ति, अरुण वसन।
सुवलित प्रकाण्ड देह, कमल-लोचन॥ 18॥
देखिया ताँहार मने हैल चमत्कार।
आसिया करिल दण्डवत् नमस्कार॥ 19॥

अनुवाद—महाप्रभुकी अङ्गकान्ति सैंकड़ों सूर्योंके समान देदीप्यमान थी। उन्होंने अरुण (गेरुआ) वस्त्र धारण कर रखा था। उनका सुगठित और विशाल शरीर था तथा नेत्र कमलके समान थे। उन्हें देखकर श्रीरामानन्द रायके मनमें बड़ा ही चमत्कार हुआ और उन्होंने निकट आकर महाप्रभुको दण्डवत् प्रणाम किया॥ 18-19॥

आलिङ्गनके लिये उत्सुक महाप्रभुका धैर्य,
श्रीरायको उठाना और नाम जिज्ञासा :—

उठि' प्रभु कहे,—उठ, कह 'कृष्ण' 'कृष्ण'।
तारे आलिङ्गिते प्रभुर हृदय सतृष्ण॥ 20॥
तथापि पूछिल,—"तुमि राय रामानन्द?"
तेँहो कहे,—"हङ मुञि दास शूद्र मन्द॥"21॥

अनुवाद—उनको प्रणाम करते देख महाप्रभु उठ खड़े हुए और कहने लगे—उठिये, उठिये, 'कृष्ण' 'कृष्ण' कहिये। महाप्रभुका हृदय उनका आलिङ्गन करनेके लिये आतुर हो रहा था। यद्यपि महाप्रभुने उनको पहचान लिया था, तथापि उन्होंने उनसे पूछा,—"क्या आप राय रामानन्द हैं?" श्रीरामानन्द रायने दीनतापूर्वक उत्तर दिया,—"हाँ, मैं दुर्भागा शूद्र आपका दास हूँ॥"20-21॥

परिचय सुनने मात्रसे महाप्रभुके द्वारा श्रीरायका
आलिङ्गन और दोनोंका प्रेम :—

तबे तारे कैल प्रभु दृढ़ आलिङ्गन।
प्रेमावेशे प्रभु-भृत्य, दोँहे अचेतन॥ 22॥
स्वाभाविक प्रेम दोँहार उदय करिला।
दुँहाके आलिङ्गिया दुँहे भूमिते पड़िला॥ 23॥
स्तम्भ, स्वेद, अश्रु, कम्प, पुलक, वैवर्ण।
दुँहार मुखेते शुनि' गदगद 'कृष्ण' वर्ण॥ 24॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने श्रीरामानन्द रायका दृढ़तापूर्वक आलिङ्गन किया। दोनों ही अर्थात् स्वामी और दास प्रेमावेशमें मूर्च्छित हो गये। दोनोंके हृदयमें स्वाभाविक प्रेम उदित हो गया। दोनों ही एक-दूसरेको आलिङ्गन करके पृथ्वीपर गिर पड़े। दोनोंके ही श्रीअङ्गोंमें स्तम्भ, स्वेद, अश्रु, कम्प, पुलक और वैवर्ण्य आदि प्रेमके अष्ट-सात्त्विक विकार उदित होने लगे। दोनोंकी वाणी गद्‌गद हो गयी। दोनों ही 'कृष्ण-कृष्ण' उच्चारण करने लगे॥ 22–24॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीराधाकृष्णका विशाखा-सखीके प्रति और विशाखा-सखीका श्रीराधाकृष्णके प्रति जो स्वाभाविक प्रेम है, वही उदित हुआ॥ 23॥

उनके दर्शनसे ब्राह्मणोंका विस्मय और उनका विचार :—

देखिया ब्राह्मणगणेर हैल चमत्कार।
वैदिक ब्राह्मण सब करेन विचार॥ 25॥

'एइ त' संन्यासीर तेज देखि' ब्रह्मसम।
शूद्रे आलिङ्गिया केने करेन क्रन्दन॥ 26॥

एइ महाराज—पात्र पण्डित, गम्भीर।
संन्यासीर स्पर्शे मत्त हइला अस्थिर॥' 27॥

अनुवाद—श्रीरामानन्द रायके साथ आये हुए वैदिक ब्राह्मणोंको इस मिलनको देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ और वे मनमें विचार करने लगे,—'इन संन्यासीका तेज तो ब्रह्मके समान है, परन्तु ये इस शूद्रका आलिङ्गन करके रो क्यों रहे हैं? और दूसरी ओर ये महाराज (श्रीरामानन्द राय) महापण्डित एवं गम्भीर होनेपर भी संन्यासीके स्पर्शसे उन्मत्तकी भाँति चञ्चल क्यों हो गये हैं?' यही उन ब्राह्मणोंके विस्मयका कारण था॥ 25–27॥

महाप्रभुके द्वारा भाव-वेगका सम्वरण :—

एइमत विप्रगण भावे मने मन।
विजातीय लोक देखि' प्रभु कैल सम्वरण॥ 28॥

अनुवाद—इस प्रकार वे ब्राह्मण मनमें महाप्रभु और श्रीराय रामानन्दके बारेमें चिन्तन करने लगे। महाप्रभुने उन ब्राह्मणोंको विजातीय जानकर अपने भावोंको सम्वरण कर लिया॥ 28॥

अनुभाष्य—*'विजातीय लोक'*—श्रीरामानन्द महाप्रभुके स्वजातीय आशय (अन्तःकरण) वाले अन्तरङ्ग-भक्त थे, किन्तु श्रीरामानन्दके साथ आये हुए ब्राह्मणादि कर्ममें निष्ठा रखनेवाले थे। अन्तरङ्ग-भक्त होनेकी बात तो दूर, वे शुद्धभक्त भी नहीं थे, इसलिये वे विजातीय अर्थात् अभक्त थे। परस्परकी प्रीति प्रकाशित होनेपर भी कर्मियोंको बहिर्मुख जानकर उन्होंने अपने भावोंको छिपा लिया॥ 28॥

महाप्रभुके द्वारा अपने आनेके कारणका वर्णन :—

सुस्थ हञा दुँहे सेइ स्थानेते बसिला।
तबे हासि' महाप्रभु कहिते लागिला॥ 29॥

"सार्वभौम भट्टाचार्य कहिल तोमार गुणे।
तोमारे मिलिते मोरे करिल यतने॥ 30॥

तोमा मिलिबारे मोर एथा आगमन।
भाल हैल, अनायासे पाइलुँ दरशन॥" 31॥

अनुवाद—तब दोनों अपने-अपने भावोंको सम्वरण करके बाह्यावस्थामें आकर सुस्थिर होकर उसी स्थान पर बैठ गये। तब महाप्रभु मुस्कुराते हुए कहने लगे,—"सार्वभौम भट्टाचार्यने मुझे आपके गुणोंके विषयमें बतलाया था और आपसे मिलनेके लिये उन्होंने बहुत आग्रह किया था। मैं आपसे मिलनेके लिये ही यहाँ आया हूँ। बहुत अच्छा हुआ, जो अनायास ही आपका दर्शन प्राप्त हो गया॥" 29–31॥

श्रीरायकी दीनता और उनके द्वारा महाप्रभुकी स्तुति :—

राय कहे,—"सार्वभौम करे भृत्य-ज्ञान।
परोक्षेह मोर हिते हय सावधान॥ 32॥

ताँर कृपाय पाइनु तोमार दरशन।
आजि सफल हैल मोर मनुष्यजनम॥ 33॥

सार्वभौमे तोमार कृपा,—तार एइ चिह्न।
अस्पृश्य स्पर्शिले हञा ताँर प्रेमाधीन॥ 34॥

काँहा तुमि—साक्षात् ईश्वर नारायण।
काँहा मुञि—राजसेवक विषयी शूद्राधम॥ 35॥

मोर स्पर्शे ना करिले घृणा, वेदभय।
मोर दर्शन तोमा वेदे निषेधय॥ 36॥

तोमार कृपाय तोमाय कराय निन्द्यकर्म।
साक्षात् ईश्वर तुमि, के जाने तोमार मर्म॥ 37॥

आमा निस्तारिते तोमार इँहा आगमन।
परम दयालु तुमि पतित-पावन॥ 38॥

महान्त-स्वभाव एइ तारिते पामर।
निज कार्य नाहि तबु यान तार घर॥ 39॥

अनुवाद—श्रीरामानन्द रायने कहा,—"श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य प्रत्यक्ष रूपसे मुझे अपना एक दास मानते हैं और परोक्ष रूपसे अर्थात् पीछेसे मेरे हितके लिये सजग रहते हैं। उनकी कृपासे ही आज मैंने आपके चरणोंका दर्शन पाया है। आपका दर्शनकर आज मेरा मनुष्य-जन्म सार्थक हो गया। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यपर आपकी कितनी कृपा है, यह उसका ही प्रमाण है कि उनके प्रेमके अधीन होकर आपने मुझ जैसे अस्पृश्यको भी स्पर्श किया है। कहाँ तो आप साक्षात् ईश्वर नारायण हैं और कहाँ मैं राजसी वस्तुओंका उपभोगी, विषयोंका भोग करनेवाला अधम शूद्र। मुझ जैसे व्यक्तिका तो दर्शन भी आप जैसे संन्यासियोंके लिये निषिद्ध है, परन्तु आपको वेद-आज्ञा भङ्ग करनेका भय नहीं हुआ और मुझे स्पर्श करनेमें कोई घृणाका अनुभव भी नहीं किया। आपकी कृपा ही आपसे ऐसा निन्दित कार्य करवाती है। आप साक्षात् ईश्वर हैं, किन्तु भक्तिके वशमें हैं, आपके मर्मको भला कौन जान सकता है? आप परम-दयालु तथा पतित-पावन हैं, इसलिये मेरा उद्धार करनेके लिये ही आपका यहाँ आगमन हुआ है। आप अपने महान् स्वभावसे ही पतितोंका उद्धार करते रहते हैं। आपका अपना कोई कार्य अर्थात् स्वार्थ नहीं रहनेपर भी जीव-कल्याणके लिये आप घर-घर घूमते रहते हैं॥ 32-39॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीरामानन्द रायने कहा,—श्रीसार्वभौम मुझे अपना दास समझकर परोक्षमें भी अर्थात् मेरी अनुपस्थितिमें भी मेरे हितकी चेष्टा करते हैं॥ 32॥

अनुभाष्य—*'सावधान'*—उद्योगी (चेष्टा करनेवाले)।

श्रील राय रामानन्दके द्वारा स्वाभाविक दीनतावशतः 'विषयी', 'शूद्राधम' आदि निकृष्ट विशेषणोंसे अपनेको सम्बोधित करनेपर भी एवं शौक्रविप्रकुलमें (ब्राह्मण परिवारमें) जन्म न लेनेपर भी, वे प्रकटलीलामें अकिञ्चन शुद्धभागवत-परमहंस थे। इसलिये उन्हें वैदिक-एकायन-शाखास्थित' (*आदिलीला भूमिकामें पृष्ठ संख्या xiv देखें) अप्राकृत दीक्षित-ब्राह्मण कहनेसे उनकी सामान्य महिमा ही व्यक्त होगी। महाकुलमें उत्पन्न, सब प्रकारके यज्ञोंमें दीक्षित, सहस्र-वैदिक शाखाध्यायी व्यक्ति भी यदि उन्हें अन्य शूद्रकुलमें जन्मे व्यक्तियोंके समान शूद्र-जातिका मानेंगे, तो वे निश्चय ही नरकगामी होंगे, जैसा कि पद्मपुराणमें कहा गया है—"वीक्ष्यते जातिसामान्यात् स याति नरकं ध्रुवम्।" जो परमार्थके अभिलाषी हैं, उनका तो चिरकल्याण श्रीराय रामानन्दके दासानुदास होनेमें ही है।

'निन्द्यकर्म'—संन्यासीके लिये विषयीका दर्शन और शूद्रका सङ्ग अनुचित है, इसलिये निन्दनीय है; तथापि आपने अपनी असीम कृपाके कारण मेरे लिये उसे भी स्वीकार किया है॥ 32-37॥

अहैतुकी कृपा करना ही भगवान् और भक्तोंका धर्म :—
श्रीमद्भागवत (10/8/4)—

महद्विचलनं नृणां गृहिणां दीनचेतसाम्।
निःश्रेयसाय भगवन्नान्यथा कल्पते क्वचित्॥ 40॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 40॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे भगवन्! दयनीय गृहस्थ लोगोंका नित्यमङ्गल करनेके लिये महापुरुष उनके घरमें जाते हैं, वे अन्य किसी कारणसे नहीं जाते॥ 40॥

अनुभाष्य—श्रीवसुदेवके द्वारा भेजे गये महर्षि गर्गके अपने घरमें आनेपर श्रीनन्द महाराजने उनसे कहा—

हे भगवन् (मुने) महद्विचलनं (महतां निरहंस्तम्भानां सर्वमदैर्मुक्तानां निजाश्रमात् कुत्रापि विचलनं गमनं न स्यात्, यदि क्वचित् विचलनं भवति, तदा) दीनचेतसां (कृपणानां) गृहिणां (गृहतापक्लिष्टानां गृहव्रतानां, गृहं त्यक्तु नृणां निःश्रेयसाय (चरम-कल्याणाप्तये) एव, क्वचित् अन्यथा न कल्पते (निजस्वार्थाय न घटते)।

श्लोक-भावानुवाद—हे मुने! [आप जैसे] सर्वाभिमानसे मुक्त महान् पुरुष अपने आश्रमसे कहीं नहीं जाते। यदि कभी जाते भी हैं, तो जो लोग गृहकार्योंमें ऐसे उलझे हैं कि साधुसङ्गके लिये उनके आश्रम तक जानेमें असमर्थ हैं, ऐसे दीनहीन गृहस्थ लोगोंके चरम-कल्याणके लिये ही वे उनके पास जाते हैं, अन्य किसी उद्देश्यसे नहीं॥ 40॥

महाप्रभुके रूप दर्शन और आचरणके फलस्वरूप अपने साथियोंमें श्रीकृष्णप्रेमको देखकर श्रीरायका महाप्रभुके प्रति श्रीकृष्ण-ज्ञान :—

आमार सङ्गे ब्राह्मणादि सहस्रेक जन।
तोमार दर्शने सबार द्रवीभूत मन॥ 41॥
'कृष्ण' 'हरि' नाम शुनि सबार वदने।
सबार अङ्ग—पुलकित, अश्रु—नयने॥ 42॥
आकृत्ये-प्रकृत्ये तोमार ईश्वर-लक्षण।
जीवे ना सम्भवे एइ अप्राकृत गुण॥"43॥

अनुवाद—[श्रीरायने कहा—] मेरे साथ ब्राह्मणादि हजारों लोग हैं और देखिये आपके दर्शन करते ही सभीका हृदय द्रवीभूत हो गया है। मैं सभीके मुखसे 'कृष्ण', 'हरि' नाम सुन रहा हूँ। सबके अङ्ग पुलकित हो रहे हैं और उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित हो रही है। आपकी आकृति और स्वभावमें ईश्वरके समस्त लक्षण दिखायी दे रहे हैं। जीवोंमें ये अप्राकृत गुण होना सम्भव नहीं है॥"41-43॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'आकृति'ते*—अर्थात् 'न्यग्रोधपरिमण्डल'*-आकारसे, *'प्रकृति'ते*—अर्थात् परम दयालु स्वभावसे, आपमें 'ईश्वर'के लक्षण दिखायी दे रहे हैं॥ 43॥

*आदिलीला 3/43 का अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥

अनुभाष्य—*'अप्राकृत गुण'*—श्रीकृष्णभजन विषयमें सभीमें ही चैतन्य-सम्पादन करना अर्थात् सभीको प्रेमभक्ति प्रदान करना॥ 43॥

महाप्रभुका दैन्य और श्रीरायकी प्रशंसाके छलसे आत्मगोपनकी चेष्टा :—

प्रभु कहे,—"तुमि महाभागवतोत्तम।
तोमार दर्शने सबार द्रव हैल मन॥ 44॥
अन्येर कि कथा, आमि—'मायावादी संन्यासी'।
आमिह तोमार स्पर्शे कृष्ण-प्रेमे भासि॥ 45॥
एइ जानि' कठिन मोर हृदय शोधिते।
सार्वभौम कहिलेन तोमारे मिलिते॥"46॥

अनुवाद—यह सुनकर महाप्रभुने कहा,—"आप उत्तम महाभागवत हैं। मेरे नहीं, आपके दर्शनसे ही इन सबका हृदय द्रवीभूत हुआ है। दूसरोंकी तो बात ही क्या, एक मायावादी संन्यासी होनेपर भी मैं आपके स्पर्शसे श्रीकृष्ण-प्रेममें निमग्न हो रहा हूँ। मेरे कठोर (शुष्क, नीरस) हृदयको पवित्र करनेके लिये ही श्रीसार्वभौमने मुझे आपसे मिलनेके लिये कहा था॥"44-46॥

अनुभाष्य—महाभागवतके लक्षण—(अर्चनमार्गमें) जैसे, पद्मपुराणमें—

"तापादिपञ्चसंस्कारी नवेज्या-कर्मकारकः।
अर्थपञ्चकविद्विप्रः महाभागवतोत्तमः॥"

(भाव मार्गमें) यथा, श्रीमद्भागवतम् (11/2/45)में—

"सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥"

अर्थात् "तापादि-पञ्चसंस्कार-विशिष्ट नवेज्याकर्म (अर्चन, मन्त्रपाठ, योग, याग, वन्दन, नाम-सङ्कीर्तन, सेवा, चिह्नके द्वारा अर्चन और वैष्णवाराधन) करनेवाले एवं अर्थपञ्चकको जाननेवाले ब्राह्मण ही महाभागवत हैं।"

जो समस्त वस्तुओंको सभी जीवोंके हृदयमें नियन्ताके रूपमें स्थित परमात्मा श्रीहरिकी विभूतिके रूपमें दर्शन करते हैं, वे उत्तम भागवत हैं॥ 44॥

अमृतानुकणिका—*'पञ्चसंस्कार'*—ताप, पुण्ड्र मन्त्र और याग—इन पाँचोंको 'पञ्चसंस्कार' कहते हैं। इन 'पञ्चसंस्कार' अर्चनमार्गीय पाञ्चरात्रिक विधिमें विश्वास होना—यह मध्यम वैष्णवोंके लक्षण हैं।

'अर्थ-पञ्चक'—अर्थात् जानने योग्य पाँच विषय। पहला—प्राप्य अर्थात् जिसे प्राप्त करना है, वे भगवान्, दूसरा—प्राप्त करनेवाला स्वयं जीवात्मा, तीसरा—प्राप्त करनेका उपाय, चौथा—प्राप्तिके मार्गमें आनेवाली बाधाएँ और पाँचवाँ—प्राप्तिका फल॥ 44॥

महाप्रभु और भक्तके द्वारा परस्परकी स्तुति :—

एइमत दुँहे स्तुति करे दुँहार गुणे।
दुँहे दुँहार दरशने आनन्दित मने॥ 47॥

अनुवाद—इस प्रकार दोनों ही एक-दूसरेके गुणोंकी स्तुति करने लगे और एक-दूसरेके दर्शनसे दोनोंका मन बहुत आनन्दित हुआ॥ 47॥

वैष्णव-ब्राह्मणके घरमें महाप्रभुके द्वारा भिक्षा; महाप्रभुके निमन्त्रणमें अवैष्णव-ब्राह्मणब्रुवका अनाधिकार :—

हेनकाले वैदिक एक वैष्णव ब्राह्मण।
दण्डवत् करि' कैल प्रभुरे निमन्त्रण॥ 48॥

निमन्त्रण मानिल ताँरे वैष्णव जानिया।
रामानन्दे कहे प्रभु ईषत् हासिया॥ 49॥

श्रीरायके साथ महाप्रभुकी पुनः साक्षात्कारकी इच्छा :—

"तोमार मुखे कृष्णकथा शुनिते हय मन।
पुनरपि पाइ येन तोमार दरशन॥"50॥

अनुवाद—उसी समय एक वैदिक वैष्णव ब्राह्मण वहाँ आया और उसने महाप्रभुको दण्डवत् प्रणाम करके अपने घरमें भिक्षाके लिये निमन्त्रण दिया। महाप्रभुने उस ब्राह्मणको वैष्णव जानकर उसका निमन्त्रण स्वीकार किया। तब थोड़ा मुस्कुराते हुए श्रीरामानन्दसे कहने लगे,—"आपके श्रीमुखसे श्रीकृष्णकथा श्रवण करनेकी अत्यन्त उत्कण्ठा हो रही है। मैं आपका पुनः दर्शन करना चाहता हूँ॥"48-50॥

श्रीरायका दैन्य और सम्भ्रमसे महाप्रभुसे उपदेशकाङ्क्षा :—

राय कहे,—"आइला यदि पामर शोधिते।
दर्शनमात्रे शुद्ध नहे मोर दुष्ट चित्ते॥ 51॥

दिन पाँच-सात रहि' करह मार्जन।
तबे शुद्ध हय मोर एइ दुष्ट मन॥"52॥

अनुवाद—यह सुनकर श्रीरामानन्द रायने कहा,—"यदि आप मेरे जैसे पतितके चित्तको पवित्र करनेके लिये आये हैं, तो मेरा यह कलुषित चित्त आपके दर्शनमात्रसे शुद्ध नहीं हो सकता। आप कृपा करके कम-से-कम पाँच-सात दिन यहाँ रहकर इसका मार्जन कीजिये, तभी मेरा दुष्ट मन शुद्ध हो सकेगा॥"51-52॥

विदायीके समय भक्त और भगवान्, दोनोंके लिये परस्परका विरह असहनीय :—

यद्यपि विच्छेद दोँहार सहन ना याय।
तथापि दण्डवत् करि' चलिला रामराय॥ 53॥

प्रभु याइ' सेइ विप्रघरे भिक्षा कैल।
दुइ जनार उत्कण्ठाय आसि' सन्ध्या हैल॥ 54॥

अनुवाद—यद्यपि दोनोंको एक-दूसरेका विरह असहनीय हो रहा था, तथापि श्रीरामानन्द राय महाप्रभुको दण्डवत् प्रणाम करके चल दिये। महाप्रभु भी उस ब्राह्मणके साथ उसके घरमें पधारे और वहाँ भिक्षा ग्रहण की अर्थात् प्रसाद सेवन किया। दोनों मिलनेके लिये उत्कण्ठित हो रहे थे, तभी सन्ध्याका समय उपस्थित हुआ॥ 53-54॥

महाप्रभुका प्रतिदिन तीन बार स्नान और सन्ध्याके समय महाप्रभुका श्रीरायके साथ मिलन :—

प्रभु स्नान-कृत्य करि' आछेन बसिया।
एकभृत्य-सङ्गे राय मिलिला आसिया॥ 55॥

अनुवाद—महाप्रभु जब स्नान और सन्ध्या करनेके बाद आसनपर बैठकर हरिनाम कर रहे थे और श्रीरामानन्द रायकी प्रतिक्षा कर रहे थे, तभी साधारण वेशमें श्रीरामानन्द राय एक सेवकके साथ उनसे मिलनेके लिये पधारे॥ 55॥

अमृतप्रवाह भाष्य—संन्यासी तीनों सन्ध्याओंमें स्नान करते हैं। उसी विधिके अनुसार महाप्रभु सन्ध्याके समय स्नान करके बैठे थे॥ 55॥

श्रीरायका प्रणाम और महाप्रभुके द्वारा आलिङ्गन :—

नमस्कार कैल राय, प्रभु कैल आलिङ्गने।
दुइ जने कृष्ण-कथा कय सेइस्थाने॥ 56॥

अनुवाद—श्रीरामानन्द रायने आते ही महाप्रभुको दण्डवत् प्रणाम किया और महाप्रभुने उठकर बड़े प्रेमसे उनका आलिङ्गन किया। इसके बाद दोनों एक निर्जन स्थानपर बैठकर परस्पर श्रीकृष्णकथा कहने-सुनने लगे॥ 56॥

महाप्रभु-रामानन्द संवाद; महाप्रभुके द्वारा साध्य-साधन जिज्ञासा; श्रीरायके उत्तर-(क) साधन (अभिधेय) स्तर—
(1) सर्वप्रथम दैववर्णाश्रमरूप स्वधर्मके पालनसे सेश्वर-नैतिक अथवा धर्मजीवन-आरम्भ :—

प्रभु कहे,—"पड़ श्लोक साध्येर निर्णय।"
राय कहे,—"स्वधर्माचरणे विष्णुभक्ति हय॥"57॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 57॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महाप्रभुने कहा,—"हे रामानन्दराय, साध्यतत्त्व-निर्णय करनेवाले शास्त्रके श्लोकोंका पाठ करो।" श्रीरायने कहा,—"मनुष्योंके द्वारा स्वधर्मका आचरण करनेसे विष्णुभक्ति होती है॥"57॥

अनुभाष्य—श्रीरामानुजपादने 'वेदार्थ संग्रह'में कहा है—

"एवंविध-परभक्तिरूप-ज्ञानविशेषस्योत्पादकः पूर्वोक्ता हरहरुपचीयमानज्ञानपूर्वक-कर्मानुगृहीत-भक्तियोग एव; यथोक्तं भगवता पराशरेण—"वर्णाश्रम" इति। निखिलजगदुद्धारणाया-वनितलेऽवतीर्णः परब्रह्मभूतः पुरुषोत्तमः स्वयमेतदुक्तवान्—"स्वकर्म निरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु। यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्। स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥" (गी॰ 18/45-46) इति यथोदितक्रमपरिणत-भक्त्येकलभ्य एव, भगवद्बोधायन-टङ्क-द्रमिड़-गुहदेव-कपर्द्दि-भारुचि-प्रभृत्य-विगीत-शिष्टपरिगृहीत-पुरातन-वेद-वेदान्त-व्याख्यान-सुव्यक्तार्थ-श्रुतिनिकर-निदर्शितोऽयं पन्थाः॥"

मानवमात्रके लिये भक्ति ही अतिशय प्रिय और एकमात्र प्रयोजनीय है। इसके अतिरिक्त सभी कुछ अनपेक्षित एवं वितृष्णामय है। भक्तियुक्त आत्माके द्वारा ही श्रीभगवान् वरणीय हैं और भक्तोंको प्राप्त होते हैं। निरन्तर समृद्धिशील ज्ञानपूर्वक-कर्मानुगृहीत भक्तियोग ही धीरे-धीरे परम-भक्तिरूप विशेषज्ञानको उत्पन्न करता है। भगवान् पराशरने "वर्णाश्रमाचारवता" श्लोकमें इसी प्रकार कहा है। समस्त जगत्का उद्धार करनेके उद्देश्यसे पृथ्वीपर अवतीर्ण होकर परब्रह्मभूत पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने स्वयं ही गीतामें कहा है,—"मनुष्य अपने-अपने कर्मानुष्ठानमें लगे रहनेसे जिस प्रकार सिद्धि प्राप्त करेंगे, उसे श्रवण करो—जिन भगवान्से प्राणी उत्पन्न हुए हैं, जिन भगवान्के द्वारा यह जगत् विस्तृत हुआ है, मानव अपने कर्मके द्वारा उनका ही विशेष रूपसे अर्चन करके सिद्धि प्राप्त करेंगे।" यह सिद्धिका पथ कर्मानुगृहीत है, यथोचित-क्रमसे इसीके द्वारा भक्तिकी प्राप्ति होती है। भगवान् बोधायन, टङ्क, द्रमिड़, गुहदेव, कपर्द्दि, भारुचि आदि सज्जनोंने भी इस प्रशंसनीय पथका ही अनुमोदन किया है। पुरातन वेद-वेदान्त-व्याख्या एवं सुन्दर रूपसे प्रकाशित (सुस्पष्ट) अर्थके द्वारा श्रुतियों भी इसी पन्थाका निर्देश करती हैं। रामानुजीय साम्प्रदायिक आचार्यगण कहते हैं,—

"ब्रह्मप्राप्त्युपायश्च शास्त्राधिगत-तत्त्वज्ञानपूर्वक-स्वकर्मानुगृहीत-भक्तिनिष्ठासाध्यानवधिकातिशयप्रिय-विशदतममप्रत्यक्ष-तापन्नानुध्यान-रूप-परभक्तिरेव। वर्णाश्रमाचारवतेत्युक्तरीत्या न

संन्यासनियता, नापि यत्किञ्चिदेकवर्ण-नियता, किन्तु स्व-स्व-वर्णाश्रमनियता। कर्माङ्गकं ज्ञानमेव, ज्ञानं न तु नैष्कर्म्यं, नापि ज्ञानकर्मणोः सम-समुच्चयः।"

अर्थात् "शास्त्रोंका अध्ययनसे प्राप्त होनेवाले तत्त्वज्ञानके द्वारा वर्णाश्रम धर्मका पालन करते हुए भक्तिनिष्ठासे साध्य होनेवाले असमोर्द्ध अतिशय प्रिय विभु-तत्त्वकी प्रत्यक्ष निरन्तर ध्यानरूप पराभक्ति ही ब्रह्म-प्राप्तिका उपाय है। 'वर्णाश्रमाचारवत्'—इस उक्तिके अनुसार भक्तिके लिये न तो संन्यासकी अनिवार्यता है और न ही भक्ति किसी एक विशेष वर्णको ही प्राप्त होती है, अपितु अपने-अपने वर्णाश्रममें स्थित सभीके लिये प्राप्य है। कर्मके अङ्ग ज्ञान अथवा ज्ञानके द्वारा प्राप्त नैष्कर्म्य अथवा कर्म-ज्ञानके एकत्रित होनेसे भी भक्ति प्राप्त नहीं होती, क्योंकि भक्ति परम स्वतन्त्र है।"

'साध्य'—जिसकी साधनके द्वारा सिद्धि होती है। भाः 1/2/13 श्लोक देखें॥ **57**॥

अमृतानुकणिका—महाप्रभुने श्रीराय रामानन्दसे कहा—'शास्त्रानुसार साध्यका निर्णय करो।' केवल शास्त्रके द्वारा प्रमाणित साध्य ही मान्य है। शास्त्र भगवान्‌की निज वाणी है। वेद, वेदान्त, उपनिषद्, पुराणादि अनेक शास्त्र हैं और इनमें अमल-पुराण श्रीमद्भागवतम् ही सर्वश्रेष्ठ है। इन शास्त्रोंका अनादर करके जो व्यक्ति हरिभक्तिका कोई नया पथ आविष्कार करते हैं, वे जगत्‌के लिये उत्पात-स्वरूप हैं। नारद पञ्चरात्रमें कहा गया है—

"श्रुति स्मृति पुराणादिपञ्चरात्रविधिं विना।
ऐकान्तिकी हरेर्भक्तिरुत्पातायैव कल्पते॥"

अर्थात् "श्रुति-स्मृति-पुराणादि और पञ्चरात्रकी विधिका त्याग करके की गयी ऐकान्तिकी हरिभक्ति भी विघ्न ही उत्पादन करती है।"

श्रीकृष्णने गीता (16/24) में कहा है—

"तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥"

अर्थात् "कार्य-अकार्यकी व्यवस्थाके विषयमें शास्त्र ही तुम्हारे लिये प्रमाण हैं। इस कर्त्तव्य-विषयमें शास्त्रमें उपदिष्ट कर्मसे अवगत होकर उसे करनेके निमित्त योग्य होओ।"

'साध्य'का अर्थ है अभीष्ट वस्तु। इस अभीष्ट वस्तुको प्राप्त करनेकी चेष्टा साधन कहलाती है। साध्य-तत्त्व अप्राकृत वस्तु है। यह तर्कादिसे परे है। अप्राकृत विषयसे सम्बन्धित न होनेके कारण बद्धजीव इसका निर्णय नहीं कर सकता कि उसके लिये क्या कल्याणकारी है। एकमात्र शास्त्रोंके द्वारा ही इसका निर्णय हो सकता है। (महाभारत, भीष्मपर्व 5/22)—

"अचिन्त्या खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्।
प्रकृतिभ्यः परं यच्च तदचिन्त्यस्य लक्षणम्॥"

अर्थात् "जो भाव अचिन्त्य है, उसमें तर्क करना उचित नहीं होता। अचिन्त्यका लक्षण यही है कि वह प्रकृतिसे अतीत है।"

इसलिये महाप्रभुने श्रीरामानन्दको शास्त्रके आधारपर ही साध्य-तत्त्व निरूपित करनेके लिये कहा।" —श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी॥ **57**॥

दैववर्णाश्रमरूप स्वधर्मके पालनसे विष्णुकी सन्तुष्टि :—
विष्णुपुराण (3/8/9)में पराशरकी उक्ति-

वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान्।
विष्णुराराध्यते पन्था नान्यत्तत्तोषकारणम्॥ 58॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **58**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—परमेश्वर विष्णु वर्णधर्म और आश्रमधर्मके आचरणसे युक्त पुरुषके द्वारा आराधित होते हैं। वर्णाश्रमके आचरणके बिना उन्हें पूर्णरूपसे सन्तुष्ट करनेका अन्य कोई कारण (उपाय) नहीं है।

तात्पर्य यह है कि भगवान्‌को परितुष्ट करना ही साध्यतत्त्व है। मनुष्यके द्वारा अपने-अपने स्वभावके अनुसार निर्णीत वर्ण-धर्म और अवस्थाके अनुसार निर्णीत आश्रमधर्मका पालन करनेसे भगवान् विष्णु सन्तुष्ट होते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये

चार वर्ण हैं। प्रत्येक वर्णके लिये जो धर्मशास्त्रोंमें निर्णीत है, वैसा ही आचरण करके मनुष्य जीवनयात्रा निर्वाह करेंगे। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास,—ये चार आश्रम हैं। मनुष्य अपने-अपने आश्रमके लिये कहे गये धर्मका आचरण करके भगवान्‌को सन्तुष्ट करेंगे। इसमें व्यभिचार होने अर्थात् शास्त्रकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेसे मनुष्यको प्रत्यवाय (दोष) लगता है तथा नरकको प्राप्ति होती है। परमार्थ-पथपर चलनेके लिये सर्वप्रथम धर्ममय जीवनकी आवश्यकता है। जीवन निर्वाहकारी धर्म भिन्न-भिन्न स्वभाववाले व्यक्तियोंके लिये स्वभाविक रूपसे भिन्न-भिन्न है।

मनुष्यका जन्म, सङ्ग और शिक्षासे स्वभावका उदय होता है। स्वभावके अनुसार वर्ण स्वीकार न करनेसे कोई भी जीवन-यात्रामें चतुर नहीं हो सकता। स्वभाव बहुत प्रकारके होनेपर भी मूल विभागसे चार प्रकारके हैं—(1) ईश्वर और विद्या ही जिनका स्वाभाविक विषय है, वे 'ब्राह्मण' हैं; (2) शौर्य और राज्यशासन ही जिनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है, वे 'क्षत्रिय' हैं; (3) कृषि, पशुपालन और वाणिज्य (व्यापार) क्रिया ही जिनका स्वभावगत कर्म है, वे 'वैश्य' हैं; (4) तीनों वर्णोंकी सेवामात्र ही जिनका स्वभाव है, वे 'शूद्र' हैं। अपने-अपने वर्णधर्म एवं अवस्था क्रमसे आराधना करते-करते मानवकी स्वाभाविक उन्नति होती है; विपरीत आचरण करनेसे स्वाभाविक पतन होता है। इसलिये धर्मजीवन ही मानवके सभी उत्कर्षका मूल है॥ 58॥

अनुभाष्य—

वर्णाश्रमाचारवता (ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रवर्णाचारपालनरतेन ब्रह्मचारि-गृहस्थ-वानप्रस्थ-भिक्ष्वाश्रमाचारपालनपरेण च स्व-स्व-वर्णाश्रमधर्माचारवता) पुरुषेण परः पुमान् (पुरुषोत्तमः विष्णुः) आराध्यते। तत् (तस्य विष्णोः) अन्यः (वर्णाश्रमधर्मविनाशी कोऽपि) पन्थाः (मार्गः) तोषकारणं (प्रीत्यर्थं) न भवति।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 58॥

(2)भगवान्‌में कर्मार्पणरूपी कर्ममिश्रा
भक्ति शुद्धभक्ति नहीं :—

प्रभु कहे,—"एहो बाह्य, आगे कह आर।"
राय कहे,—"कृष्ण-कर्मार्पण—सर्वसाध्य-सार॥"59॥

अनुवाद—यह सुनकर महाप्रभुने कहा,—"यह तो बाहरकी बात है, इससे आगे कुछ और कहो।" तब श्रीरामानन्दने कहा,—"श्रीकृष्णको समस्त कर्मोंका अर्पण ही साध्यसार है॥"59॥

अनुभाष्य—साध्य अर्थात् साधनयोग्य अथवा साधनीय भक्तिका निर्णय करनेमें प्रवृत्त होकर श्रीरामानन्दने सबसे पहले ब्रह्माण्डमें अवस्थित साधकों जैसी बुद्धि धारण की। उन्होंने अन्याभिलाषिताका (शुद्धभक्तिके लक्षणका) खण्डन करके नीतिवादियोंका पक्ष लेते हुए वर्णधर्म और आश्रमधर्म पालनके द्वारा ही विष्णुकी प्रसन्नता होती है,—इसे 'साध्य' प्रमाण बतलाया। ऐसे 'साध्य' निर्णयकारीको अस्मिताके (मैं यह शरीर हूँ और शरीरसे सम्बन्धित सब वस्तुएँ मेरी हैं, ऐसे अभिमानके) कारण जिस सम्बन्धकी उपलब्धि होती है, वह ब्रह्माण्डके अन्तर्गत है, इसलिये बाह्य (बाहरी) है। इसे बाहरी कहनेका कारण यह है कि श्रीभगवान् गौरहरिने अपने धाम वैकुण्ठ या गोलोकके बाहरी स्थानोंपर रहनेवाले व्यक्तियोंकी बाहरी अनुभूतिको 'बाह्य साध्य' कहकर उसका परित्याग करते हुए आगे कुछ और कहनेके लिये कहा। श्रीरामानन्दने इस साध्यके विषयमें जो श्लोक प्रमाण रूपमें कहा, उसमें विष्णुके 'सविशेष' या 'निर्विशेष' होनेका निर्देश नहीं किया। इसलिये इस श्रेणीके साधक कर्ममार्गमें 'निर्विशेष' और 'सविशेष' दोनों प्रकारकी विष्णु-आराधनाको लक्ष्य कर सकते हैं। (श्रीरामानन्द रायने इस बातको समझकर) कर्म-उद्देश्यका तात्पर्य निर्विशेष-तत्त्वके विचारको त्यागकर सविशेष-तत्त्व ही है, उसके अनुरूप अगले श्लोकमें प्रमाण दिया॥ 59॥

अमृतानुकणिका—"श्रीरामानन्दने कहा कि श्रीकृष्णको अपने समस्त कर्मोंका अर्पण ही साध्यसार है। परन्तु

श्रीकृष्णको कर्मार्पण करना—यह तो साधन दिखता है। कर्त्ताने कुछ कर्म करके उन्हें अर्पण किया—यह तो क्रिया है, साधन है। किन्तु यहाँ श्रीकृष्णके प्रति समस्त कर्मोंके अर्पणको 'सर्वसाध्य सार' कहा है, क्योंकि गीता (3/9) में कहा है—

"यज्ञार्थात्कर्मणोन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर॥"

अर्थात् "हे कुन्तीनन्दन! श्रीविष्णुके लिये अर्पित निष्काम कर्मके अतिरिक्त अन्य कर्मोंके द्वारा मनुष्यको कर्मबन्धन प्राप्त होता है। अतः तुम फलाकाङ्क्षारहित होकर भगवान् विष्णुके उद्देश्यसे कर्मका भली-भाँति आचरण करो।"

विष्णुके लिये किये गये कर्मके अतिरिक्त अन्यान्य सभी कर्म लोक-बन्धक हैं अर्थात् उन कर्मोंसे लोग बद्ध हो जाते हैं। इसलिये उन कर्मोंसे जन्म-मरणके चक्रसे मुक्ति नहीं होती। इसके विपरीत परमेश्वरके लिये अर्पित कर्म बन्धनका कारण नहीं हैं। इसलिये कह रहे हैं—'यज्ञार्थात्'। श्रुतियोंमें यज्ञको ही विष्णु कहा गया है—'यज्ञौ वै विष्णु'। भागवत (11/19/39)में भगवान्ने स्वयं उद्धवजीको कहा है—'यज्ञोऽहं भगवत्तमः' अर्थात् मैं वसुदेवनन्दन ही यज्ञ हूँ। श्रीविष्णुके लिये अर्पित निष्काम कर्म ही यज्ञ कहलाता है। परन्तु श्रीविष्णुको अर्पित धर्म भी यदि कामनाके साथ किया जाय, तो वह बन्धनकारी होगा। इसके लिये ही कहते हैं—'मुक्तसङ्गः' अर्थात् फलाकाङ्क्षारहित। 'तदर्थम् कर्म कौन्तेय' अर्थात् कर्म और सांसारिक वस्तुओंके प्रति आसक्तिको काटकर। भव-बन्धनसे मुक्ति ही श्रीकृष्ण-कर्मार्पणका फल है—यह साध्य है और श्रीकृष्ण-कर्मार्पण साधन है।"—श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी॥ 59॥

भोगलिप्त कर्मीको श्रीकृष्णको कर्मार्पणका आदेश :—
श्रीमद्भगवद्गीता (9/27)—

यत् करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत्।
यत्तप्स्यसि कौन्तेय तत् कुरूष्व मदर्पणम्॥ 60॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 60॥

अमृतप्रवाह भाष्य—गीतामें कहा गया है,—"हे कौन्तेय! तुम जो कुछ भी करो, जो कुछ भी खाओ, जो कोई भी यज्ञ करो, जो कुछ भी दान करो और जो भी तपस्या करो, वह सभी मुझ कृष्णको अर्पण करो।

श्रीरायके प्रथम उत्तरमें वर्णाश्रम-धर्मके अन्तर्गत की जानेवाली श्रीकृष्ण-आराधनाको 'साध्य' निर्दिष्ट करनेपर महाप्रभुने उसको 'बाह्य' कहकर अपने प्रश्नके यथार्थ उत्तरको प्रदान करनेके लिये सामान्य वर्णाश्रम-धर्मकी अपेक्षा जो श्रेष्ठ है, उसे बतानेकी आज्ञा दी। उसे सुनकर श्रीरायने उत्तर दिया,—उस वर्णाश्रमके अन्तर्गत किये जानेवाले सभी कर्मोंको श्रीकृष्णमें अर्पण करना ही 'सभी साध्योंका सार' कहा गया है॥ 59-60॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—

हे कौन्तेय (अर्जुन) यत् कर्म करोषि, यत् अश्नासि, यत् ददासि, यत् जुहोसि, यत् तपस्यसि, तत् सर्वं मदर्पणं कुरुष्व।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें।

इस सन्दर्भमें भाः 11/2/36 श्लोक भी देखें॥ 60॥

अमृतानुकणिका—"नारद पञ्चरात्रमें कहा है—

'लौकिकी वैदिकी वापि या क्रिया क्रियते मुने।
हरिसेवानुकूलैव स कार्या भक्तिमिच्छता॥'

अर्थात् 'हे मुने! मनुष्य लौकिक और वैदिक जिन समस्त कर्मोंको करते हैं, भक्त्याभिलाषी व्यक्ति वे सब कर्म जो हरिसेवाके अनुकूल हैं, उन्हींको करेंगे।'

यहाँ कर्मोंमें लौकिक और वैदिक—दोनों ही कर्म कहे गये हैं। लौकिक कर्म हैं—भोजन-पान आदि और वैदिक कर्म हैं—दान, तप, होम आदि। भगवान् कह रहे हैं कि लौकिकी-वैदिकी सभी क्रियाएँ मुझे अर्पण करो। इसका यह अर्थ नहीं है कि हम जो कुछ करें, जो कुछ खायें-पीयें, सभी कुछ भगवान्के चरणोंमें समर्पण करनेसे दोष नहीं होगा। अथवा ऐसा भी नहीं

समझना चाहिये कि वैदिक कर्म भी जिस किसी भी देवता या सङ्कल्पके साथ क्यों न हो, केवल स्मार्त्तोंकी भाँति 'श्रीकृष्णाय समर्पणस्तु'—यह मन्त्र पढ़नेसे ही समर्पण हो जायेगा। दुर्योधनकी भाँति आसुरी बुद्धिवाले कहते हैं कि 'मेरे पाप इत्यादि जो भी हैं, आप करवानेवाले हैं। मैं निमित्त मात्र हूँ और आप मूल हैं।' यह ठीक नहीं है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुर 'यतकरोषि' श्लोककी टीकामें कहते हैं—कर्मी केवल वैदिक कर्मोंको भगवान्‌को अर्पित करते हैं, वह भी इसलिये कि उनकी कर्मकी कामना विफल न हो जाय। किन्तु भक्तगण 'भगवान् ही मेरे प्रभु हैं'—ऐसी भावनाकर अपने लौकिक, वैदिक, दैहिकादि समस्त कर्मोंको भगवान्‌की प्रीतिके लिये ही उनके चरणोंमें समर्पित करते हैं। दोनोंमें यही महान पार्थक्य है। इसलिये महाप्रभुने इसे बाह्य कहा है।"—श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी॥ 60॥

(3)केवल फलभोग-त्याग या नैष्कर्म्य शुद्धभक्ति नहीं :—

प्रभु कहे,—"एहो बाह्य, आगे कह आर।"
राय कहे,—"स्वधर्म-त्याग,—एइ साध्य-सार॥"61॥

अनुवाद—कर्मार्पणकी बात सुनकर महाप्रभुने कहा,—"यह भी बाहरकी बात है, इससे आगे कुछ और बतलाओ।" तब श्रीरामानन्द रायने कहा,—"स्वधर्मका त्याग ही सभी साध्योंका सार है॥"61॥

अमृतप्रवाह भाष्य—कर्मार्पणकी बात सुनकर भी महाप्रभुने कहा,—यह भी बाहरी है, मेरे प्रश्नका उत्तर इसके भी आगे है, उसे बोलो। उसके उत्तरमें श्रीरायने कहा,—स्वधर्म-त्याग ही साध्यसार है, अर्थात् चारों वर्णोंमेंसे ब्राह्मण अपने (गृह) धर्मको त्याग करके संन्यास ग्रहण करता है एवं अन्य सब वर्ण उसके अनुसार वैराग्य-लक्षण ग्रहण करके गृहत्याग करते हैं। इस संन्यासका नाम स्वधर्मत्याग अथवा कर्मत्याग है। त्यागधर्मसे हरिको प्रसन्नता प्राप्त होती है॥ 61॥

अनुभाष्य—'मदर्पण'-शब्दसे यद्यपि जड़-निर्विशेषको छोड़कर स्वतन्त्र सविशेषतत्त्व-स्वरूप श्रीकृष्णको ही अर्पण करना समझा जाता है, तथापि साधककी मैं और मेरेपनकी उपलब्धि ब्रह्माण्डके अन्तर्गत है एवं साधनकी वृत्ति भी ब्रह्माण्डके अन्तर्गत है, इसलिये यह भी बाहरी है। अर्थात् कर्मी जीव अपनी बाहरी-अनुभूतिसे किये गये बाहरी-कर्मोंको श्रीकृष्णको प्रदान करनेका उपदेश-मात्र प्राप्त कर रहे हैं। तब श्रीरामानन्द इस भावका शोधन करके कर्मोन्नत जीवको जिस प्रकारकी उन्नति करनी होती है, उसी भावके अनुरूप होकर स्वधर्म त्यागके द्वारा जो साध्य प्राप्त होता है, ऐसा प्रमाण कहा॥ 61॥

वर्णाश्रमरूप स्वधर्म-त्याग करके हरिभजन :—
श्रीमद्भागवत (11/11/32)—

आज्ञायैवं गुणान् दोषान्मयादिष्टानपि स्वकान्।
धर्मान् संत्यज्य यः सर्वान् मां भजेत् स सत्तमः॥ 62॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 62॥

अमृतप्रवाह भाष्य—धर्मशास्त्रोंमें मुझ भगवान्‌ने जिनको 'धर्म' कहकर आदेश किया है, उनके गुण-दोषका विचार करके, उन सभी प्रकारके धर्मोंकी प्रवृत्तिको छोड़कर जो मेरा भजन करते हैं, वे ही सबसे श्रेष्ठ (साधु) हैं॥ 62॥

अनुभाष्य—जब उद्धवजीने भगवान्‌के प्रिय साधुओंके लक्षण जाननेकी अभिलाषा दिखलायी, तब उसके उत्तरमें श्रीभगवान्‌ने कहा—

यः (साधकः) गुणान दोषान् (प्राकृत-सदसद्भावादीन्) आज्ञाय (ज्ञात्वा) अपि मया (वैदिककर्मोपदेशकेन) [कर्मरतान्] आदिष्टान् (उपदिष्टान्) सर्वान् स्वकान् धर्मान् (लौकिक-विप्रक्षत्रियवैश्यशूद्र-वर्णधर्मान् ब्रह्मचारिगृहस्थवानप्रस्थ-संन्यासाद्याश्रमधर्मांश्च) संत्यज्य (दूरे सम्यक् विहाय) मां (विशेषतत्त्वाश्रयं स्वतन्त्रं भगवन्तं कृष्णं) भजेत्, स तु सत्तमः (साधुनां श्रेष्ठः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 62॥

श्रीमद्भगवद्गीता (18/66)—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥63॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **63** ॥

अमृतप्रवाह भाष्य—समस्त धर्मोंका परित्याग करके एकमात्र, मैं जो भगवान् हूँ, मेरे शरणागत होओ। ऐसा करनेपर मैं तुम्हें समस्त पापोंसे मुक्त करूँगा। तुम शोक मत करो॥ **63** ॥

अनुभाष्य—श्रीभगवान्का अर्जुनको गुह्य उपदेश,—

सर्वधर्मान् (ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रादि-ब्रह्माण्डान्तर्गतवर्णधर्मान् ब्रह्मचारि-गृहस्थ-वानप्रस्थतुर्याश्रमादिब्रह्माण्डान्तर्गताश्रमधर्मांश्च) परित्यज्य (दूरे विहाय) एकं (तदतीतम् अद्वयज्ञानम्) [अव्यभिचारिण्या मत्या] मां (सविशेषतत्त्वं भगवन्तं कृष्णं) शरणं व्रज (गच्छ); अहं त्वां सर्वपापेभ्यः (ब्रह्माण्डान्तर्गतेभ्यः प्राकृत-नित्यवैदिक-कर्मानुष्ठानपरित्यागजनिताधर्मेभ्यः) मोक्षयिष्यामि (उद्धारयामि)। मा शुचः (अनित्यधर्मजन्य-शोकं मा कुरू)।

श्लोक-भावानुवाद—ब्रह्माण्डके अन्तर्गत वर्णाश्रमधर्म (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रादि वर्णधर्म और ब्रह्मचारी-गृहस्थ-वानप्रस्थ-संन्यासादि आश्रमधर्म) का दूरसे ही त्याग करके अव्यभिचारिणी मतिसे एक मुझ अद्वयज्ञान सविशेष-तत्त्व भगवान् कृष्णकी शरणमें आ जाओ। मैं तुम्हें समस्त पापोंसे अर्थात् नित्य वैदिक अनुष्ठानरूपी धर्मके त्यागसे उत्पन्न पापोंसे मुक्त कर दूँगा। तुम अपने अनित्य धर्मोंको (लौकिक कर्त्तव्यको) त्याग करनेका शोक मत करो।

श्रीरघुनाथ दासगोस्वामी प्रभुने स्वरचित 'मनःशिक्षा'में—"न धर्मं नाधर्मं श्रुतिगणनिरुक्तं किल कुरु, व्रजे राधाकृष्णप्रचुरपरिचर्यामिह तनु" आदि कहा है। भाः 4/29/46—"यदा यमनुगृह्णाति भगवानात्मभावितः। स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम्॥" इस प्रसङ्गमें भाः 1/5/17 श्लोक भी देखें।

हे मेरे प्यारे मन! श्रुतियोंमें कथित धर्म और अधर्म (पुण्यजनक धर्म और पापमूलक अधर्म) कुछ भी मत करो, बल्कि श्रुतियोंने जिन्हें सर्वोपरि परमतत्त्व निर्धारित किया है, उन श्रीश्रीराधाकृष्ण-युगलकी व्रजमें प्रेममयी प्रचुर सेवा करो।

जिस समय परिपूर्ण ऐश्वर्यशाली भगवान् किसी भी जीवात्माको आत्म-समर्पण करते देखकर उसपर प्रसन्न होकर अथवा उसकी आत्मवृत्तिके द्वारा सेवित होकर उसपर कृपा करते हैं, उस समय वह भक्त लौकिक-व्यवहार और वैदिक कर्मकाण्डमें अत्यधिक आसक्तिका परित्याग कर देता है॥ **63** ॥

अमृतानुकणिका—"महाप्रभुने भी इन दोनों प्रमाणोंको बाह्य बताया, क्योंकि धर्मका बुद्धिपूर्वक त्याग और षड्विधा शरणागतिमें श्रीकृष्ण-सेवाका कोई विचार नहीं है। यह जीवके स्वरूपसे सम्बन्धित नहीं है। यह भक्तिके लिये एक सीढ़ी मात्र है। वेद-विहित कर्मोंका त्याग तीन प्रकारके लोग करते हैं—1) मूर्ख, अज्ञानी—जिन्हें कर्त्तव्य-अकर्त्तव्यका कोई ज्ञान नहीं है। 2) नास्तिक—जिन्हें भगवान् और शास्त्रोंमें विश्वास नहीं है। 3) जिन्हें शास्त्र-वचनोंपर विश्वास है कि श्रीकृष्णभक्ति करनेसे ही सभी कर्म हो जाते हैं, जैसे मध्यलीला (22/62) में कहा गया है, 'कृष्णे भक्ति कैले सर्वकर्म कृत हय' अर्थात् 'कृष्ण भक्ति करनेसे सब कार्य करना हो जाता है।'

परन्तु इसमें भी एक विचार है, जैसा भागवत (11/20/9) में कहा है 'तावत् कर्माणि कुर्वीत' अर्थात् जब तक कर्मसे निर्वेद न हो जाय, तब तक कर्म करो, अथवा अकस्मात् किसी महत् पुरुषकी कृपासे भगवत्-कथा श्रवण-कीर्तनमें आत्यन्तिक श्रद्धा हो जाय कि कृष्णभक्ति ही एकमात्र श्रेय है, तभी स्वधर्म-त्यागका अधिकार प्राप्त होता है।"—श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी॥ **63** ॥

(4) ज्ञानमिश्रा भक्ति शुद्धभक्ति नहीं :—

प्रभु कहे,—"एहो बाह्य, आगे कह आर।"
राय कहे,—"ज्ञानमिश्रा भक्ति—साध्यसार॥"64॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"यह भी बाहरी है, इससे आगे कुछ और कहो।" श्रीरामानन्द रायने कहा,—"ज्ञानमिश्रा भक्ति सभी साध्योंका सार है॥"**64**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महाप्रभुने इस उत्तरको सुनकर इसको (सभी धर्मोंके त्यागको) भी बाहरी कहकर, इसकी अपेक्षा श्रेष्ठ बात कहनेकी आज्ञा दी। उसके उत्तरमें श्रीरायने कहा,—ज्ञानमिश्राभक्तिको 'साध्य-सार' कहा जाता है॥ **64**॥

अनुभाष्य—ब्रह्माण्डसे परे विरजा नदीमें तीनों गुणोंकी प्रबलताका अभाव है, वहाँ उनकी साम्यावस्था अथवा अव्यक्त-अवस्थामात्र है। अन्तरङ्गा शक्तिके द्वारा प्रकटित वैकुण्ठ और बहिरङ्गाशक्तिके द्वारा प्रकटित ब्रह्माण्ड, इन दोनोंके बीच ब्रह्मलोक और विरजा नदी हैं। ये दोनों स्थान (ब्रह्मलोक और विरजा नदी) जड़-जगत्से विरक्त और जड़-निर्विशेष जीवोंकी उपलब्धिका आश्रय हैं, इसलिये ये स्थान वैकुण्ठ नहीं हैं और उससे बाहर स्थित होनेके कारण बाह्य हैं। ब्रह्माण्डके अन्तर्गत सब प्रकारके धर्मोंका त्याग करनेवाले साधकको वैकुण्ठ अथवा गोलोककी अनुभूति नहीं होती। सर्वधर्मत्याग साध्यवृत्तिसे जड़भोगोंका त्याग करनेपर भी वह अचित् निर्विशेषत्वकी ही प्रतिपादक है, इसलिये वह भी बाह्य है। श्रीरामानन्दने तब उस भावको बाह्य साध्यभाव जानकर ज्ञानमिश्रा भक्ति ही उससे उन्नत साध्य है, उस विषयमें प्रमाण बोला॥ **64**॥

अमृतानुकणिका—"इसके पूर्व श्रीरामानन्दने कर्ममिश्रा भक्तिके बारेमें कहा था, अब वे ज्ञानमिश्राभक्तिको साध्य-सार बतला रहे हैं। ज्ञानमिश्राभक्ति अर्थात् 1) ज्ञानसे मिश्रित भक्ति और 2) भक्तिसे प्राप्त होने वाला ज्ञान (यह पूर्व कथितसे उत्तम है)। ज्ञानसे मिश्रित भक्ति सेविका है; वह भक्ति अपना फल देकर अन्तर्धान हो जायेगी। इसमें तीन प्रकारके ज्ञान सम्मिलित हैं—1) तत्-पदार्थका ज्ञान (परतत्त्व अथवा भगवत्-तत्त्वका ज्ञान। 2) त्वं-पदार्थका ज्ञान अर्थात् आत्म-तत्त्वका ज्ञान। जीव और ब्रह्मका परस्पर सम्बन्धज्ञान भी इसीके अन्तर्गत है और 3) जीव-ब्रह्म ऐक्य ज्ञान—यह अङ्ग भक्तिका नितान्त विरोधी है। इसके अन्तर्गत जीवका ब्रह्मके साथ स्वरूपगत सम्बन्ध ही स्फुरित नहीं हो सकता। अतः सेवाकी वासनाका भी उदय नहीं होगा।

किन्तु प्रथम दो अङ्ग—भगवद्-तत्त्वका ज्ञान और आत्म-तत्त्वका ज्ञान भक्ति-विरोधी नहीं हैं। पयारमें कहे गये 'ज्ञान' शब्दके व्यापक अर्थको ग्रहण करनेसे इन तीनों अङ्गोंसे मिश्रित भक्तिको ही ज्ञानमिश्रा भक्ति कहा गया है। भगवत्-तत्त्व ज्ञान ऐश्वर्यका बोधक है, जो व्रजभक्तिके प्रतिकूल है, इसमें लौकिक-सद्बन्धुवत् भाव उदित नहीं होता। भक्तिके प्रारम्भमें यह ज्ञान सहायक है, किन्तु भक्तिमें अग्रसर होनेपर सहायक नहीं होगा।"—श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी॥ **64**॥

सम्बन्धज्ञानप्राप्त ब्राह्मण ही श्रीकृष्णभजनफलसे वैष्णव :—
श्रीमद्भगवद्गीता (18/54)—

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥ 65॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **65**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—गीतामें कहा गया है,—अभेद ब्रह्मवादरूपी ज्ञानचर्चाके द्वारा स्वयं प्रसन्नात्माका शोक और कामनारहित होनेपर तथा सभी जीवोंमें समभावयुक्त ब्रह्मता प्राप्त करनेके बाद उसे मेरी पराभक्ति प्राप्त होती है। तात्पर्य यह है कि पहले कर्ममिश्रा-भक्तिका उल्लेख हुआ था, उसकी अपेक्षा ज्ञानमिश्रा भक्ति श्रेष्ठ है॥ **65**॥

अनुभाष्य—अर्जुनके प्रति श्रीभगवान्के वचन—

ब्रह्मभूतः (ब्रह्माण्डान्तर्गतबोधमुक्तः निर्विशेषानुभवपरः) प्रसन्नात्मा (अभावधर्मरहितः) शोचति न (जड़ाभावे तस्य शोकः नास्ति) काङ्क्षति न (तस्य जड़भोगे आकाङ्क्षा च न वर्त्तते) सर्वेषु भूतेषु [मत्सेवासम्बन्धयोगं ज्ञात्वा] समः सन्, परां (परमां शुद्धां) मद्भक्तिं लभते।

*श्लोक-भावानुवाद—*अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **65**॥

अमृतानुकणिका—"'ब्रह्मभूत' अर्थात् जिनका सर्दी-गर्मी, मान-अपमान, सुख-दुःखादिमें समभाव है। सत्त्व, रज और तमोगुणकी उपाधिसे अनावृत होनेपर साधक जीव ब्रह्मभूत हो जाते हैं। अनावृत चैतन्य प्राप्त करके वे 'प्रसन्नात्मा' हो जाते हैं। वे नष्ट-विषयोंके लिये शोक नहीं करते और 'न कांक्षति'—न ही अप्राप्त वस्तुकी अकाङ्क्षा करते हैं। 'समः सर्वभूतेषु'—वे भद्र-अभद्र सभी भूतोंमें बालकके समान समदर्शी हो जाते हैं। कोई लंगड़ा है, लूला है, गोरा है अथवा काला है—वे यह सब विचार नहीं करते, वह केवल आत्मदृष्टि रखते हैं।

एक समय अष्टावक्र ऋषि अपने हिमालयके आसनसे जनकपुरीमें महाज्ञानी जनकजीके दरबारमें आये। उनका टेढ़े शरीरको देखकर सब लोग हँसने लगे। जनकजी सबको हँसते हुए देखकर हँस दिये। तो अष्टावक्र भी लाठी रखकर बड़े ज़ोरसे हँसने लगे। तब राजा जनकने पूछा कि ये लोग तो आपके अङ्गके टेढ़ेपन, कुबड़ेपनपर हँस रहे हैं, किन्तु आप किसलिये हँस रहे हैं? अष्टावक्र बोले—मैं यह सुनकर महाराज जनकके दरबारमें आया था कि यहाँ बड़े-बड़े पण्डित लोग हैं, ब्रह्मतत्त्वको जाननेवाले हैं, सब प्राणियोंमें सम हैं। किन्तु मैं देखता हूँ कि यहाँ सब चमार-मोची हैं। वे लोग यह देखते हैं कि अच्छा चमड़ा है या खराब चमड़ा है। आत्म-तत्त्वका किसीको ज्ञान नहीं है, इसलिये मैं हँस रहा था।

यह ब्रह्मभूत ज्ञान उच्च-कोटिका साधन नहीं है। किन्तु यदि साधुसङ्ग प्राप्त हो जाय और अपराध न हों, तब पराभक्ति अर्थात् प्रेमाभक्ति प्राप्त होनेकी सम्भावना है। 'लभते' का तात्पर्य है कि साधकने पूर्वकालमें मोक्ष-सिद्धिके लिये ज्ञान-वैराग्यका अवलम्बन तो किया, परन्तु उसमें भक्ति आंशिक भावसे थी, उसकी उपलब्धि नहीं थी। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुर एक उदाहरण देते हैं—मूँग-उड़द दाल आदिमें यदि स्वर्ण-कणिका मिल जाय, तो दालमें आग लग जानेपर भी स्वर्ण-कणिका नष्ट नहीं होती। ज्ञानरूपी दालमें यह स्वर्ण कणिका संवित्-ह्लादिनीकी वृत्ति भक्ति है। यह कभी विनष्ट नहीं होती। कोई अपराध हो जानेपर अन्तर्धान हो जाती है। किन्तु यदि अपराध न हो तो साधुओंके सङ्गमें हरिकथा श्रवण करनेसे प्रेमाभक्ति प्राप्त होनेकी सम्भावना रहती है। कृष्णकी लीला-कथाओंका श्रवण, भागवत, भगवद्भक्तोंके चरित्र श्रवण करनेसे उनकी वह स्वर्ण-कणिकारूपी भक्ति विकसित हो उठती है, साथमें उनका ब्रह्म-ऐक्य ज्ञान नष्ट हो जाता है। सत्सङ्ग ही एकमात्र भक्तिप्रद सुकृति है। साधुजनोंके मुखसे निकली हरिकथाको श्रवण करनेसे ही भक्तिका क्रम विकास होता है। शुद्ध भक्तोंका सङ्ग जीवको प्रेम तक अवश्य ले जायेगा। शुद्ध गुरु और वैष्णवोंके सङ्गसे ज्ञानरूपी दाल श्रवण-कीर्तनरूपी आगमें जलकर भस्म हो जाती है और शुद्धभक्तिरूपी स्वर्ण-कणिका प्राप्त हो जाती है। किन्तु महाप्रभुने इसे भी बाह्य बतलाया, क्योंकि साधुसङ्ग सभीको मिलेगा—यह आवश्यक नहीं है।"
—श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी॥ 65॥

(5) ज्ञानशून्य भक्ति ही शुद्धभक्ति-शब्दवाच्य :—

प्रभु कहे,—"एहो बाह्य, आगे कह आर।"
राय कहे,—"ज्ञानशून्या भक्ति—साध्यसार॥"66॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 66॥

अमृतप्रवाह भाष्य—ज्ञानमिश्राभक्तिकी बात सुनकर महाप्रभुने कहा,—"यह भी बाह्य है; इसके परे जो है, उसे बोलो।" श्रीरायने कहा,—"ज्ञानशून्या भक्ति ही साध्योंका सार है॥"66॥

अनुभाष्य—इस (ज्ञानमिश्राभक्ति) अवस्थामें भी अस्मिता और उसकी वृत्ति शुद्ध-वैकुण्ठवाली अथवा वैकुण्ठको उद्देश्य नहीं करनेवाली होनेके कारण, यह भी बाह्य है। इस स्थितिमें साधक जड़से बाध्य नहीं रहनेपर अथवा उसको जड़से अतिरिक्त निर्मल अनुभव होनेपर भी उसे वास्तव सत्य-वस्तुकी (सविशेष भगवान्‌की) स्वतन्त्र

और विशेष उपलब्धि नहीं होती। इसलिये उसकी अपनी अनुभूति और अपने मनकी वृत्ति-बहिर्मुखिनी है। वास्तवमें, वह भी शुद्धजीवका साध्य नहीं है। निर्विशेषत्वकी कल्पनामें सच्चिदानन्द-विशेष-समूह सुप्त रहता है। उससे पहले काल्पनिक विचारवाले वाक्योंका तात्पर्य भी निर्विशेषध्यान है, इसलिये वैसी भगवद्-सेवावृत्तिरहित काल्पनिक निर्विशेषपरक मुक्त अवस्था भी बाह्य है॥ 66॥

श्रीकृष्णके सम्पूर्ण शरणागतजन ही
श्रीकृष्णवशकारी शुद्धभक्त :—
श्रीमद्भागवत (10/14/3)—

ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव
जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्त्ताम्।
स्थानस्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभि-
र्ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम्॥ 67॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 67॥

अमृतप्रवाह भाष्य—भागवतमें ब्रह्माने भगवान्‌को कहा,—"हे भगवन्! निर्भेद-ब्रह्मचिन्तारूपी ज्ञानचेष्टाको सम्पूर्णरूपसे दूर करके जो भक्तगण साधुओंके मुखसे निकली आपकी कथाका श्रवण करते हैं और काय-मन-वाक्यसे साधुपथमें स्थित होकर जीवनयात्रा निर्वाह करते हैं, त्रिलोकीमें आप दुर्लभ होनेपर भी उनके लिये सुलभ हो जाते हैं॥ 67॥

अनुभाष्य—बछड़ों-ग्वालबालोंको हरण करनेके फलस्वरूप श्रीकृष्णके द्वारा ब्रह्माका गर्व चूर्ण होनेपर ब्रह्माजी श्रीकृष्णके एकान्त शरणागत होकर स्तव कर रहे हैं—

ज्ञाने (ज्ञानार्थं) प्रयासं (चेष्टाजन्यक्लेशादिकम्) उदपास्य (दूरे विहाय) सन्मुखरितां (सद्भिः महाभागवतैः मुखरितां निसर्गप्रकटितां) श्रुतिगतां (कर्णकुहर प्राप्तां) भवदीयवार्त्तां (हरि-नामरूपगुणलीलामयीं कथां) ये स्थानस्थिताः (स्वस्थाने साधुमार्गे स्थिताः सन्तः) तनुवाङ्मनोभिः (कायमनोवाक्यैः) नमन्तः (सर्वतोभावेन आत्मनिवेदनं कुर्वन्तः) एव जीवन्ति, हे अजित, (अधोक्षजत्वात् अभक्तैः अनभिभाव्य, अपराधीन, अपरिमेय) अपि त्रिलोक्यां तैः (त्वद्भक्तैरेव) प्रायशः [त्वं] जितः (वशीकृतः) असि।

*श्लोक-भावानुवाद—*अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 67॥

अमृतानुकणिका—"श्रीरामानन्द रायने कहा ज्ञानशून्य भक्ति साध्यसार है। प्रमाणके रूपमें उन्होंने ब्रह्माजीके वचनको उद्धृत करते हुए कहा—'ज्ञाने प्रयासमुदपास्य' अर्थात् जो साधुओंके मुखसे आपकी और आपके परिकरोंकी मधुर कथाओंको उनके पास रहकर श्रवण करते हैं, तन-मनसे विनम्र भावसे अवनत होकर (उन कथाओंका) सेवन करते-करते जीवन धारण करते हैं, त्रिलोकीमें अन्यान्य व्यक्तियोंके द्वारा अजित आपको ये भक्त जीतकर वशीभूत कर लेते हैं। परन्तु श्रुतिमें कहा गया है 'तमेव विदित्वा अतिमृत्युमेति' अर्थात् परमेश्वरको जानकर ही जीव संसारसे मुक्त होता है; श्रीचैतन्यचरितामृत आदिलीला (2/117)में कहा गया है—'सिद्धान्त बलिया चित्ते न कर अलस', भक्तिरसामृतसिन्धुमें कहा गया है-'शास्त्रे युक्तौ च निपुणा' अर्थात् शास्त्र सिद्धान्त जानना आवश्यक है। ऐसे अनेक शास्त्र-वाक्य ज्ञानकी आवश्यकतापर बल देते हैं। दोनों विचारोंमें विरोध दिखनेपर भी इसका सामञ्जस्य करते हुए श्रीजीव गोस्वामी कहते हैं कि भगवान्‌की कथाओं और लीलाओंमें अनेक गम्भीर तत्त्व निहित हैं। जैसे दाम-बन्धन लीला, ब्रह्म-विमोहन लीला आदि। जितने तत्त्व-ज्ञानकी आवश्यकता है, वह सब इन सब लीलाओंमें विद्यमान है; पृथक् रूपसे तत्त्व-ज्ञानके लिये प्रयास करनेकी आवश्यकता नहीं है। श्रीजीव गोस्वामीने क्रम-सन्दर्भमें कहा है—जो तत्त्व-ज्ञानमें ही फँसे रहते हैं, उनका लोभमयी भक्तिमें प्रवेश नहीं होता।

भगवान्‌की लीला-कथाएँ भागवतके प्रत्येक श्लोकमें निबद्ध हैं, उनमें आनन्द है, रस है और वैष्णव लोग उनका आस्वादन करते हैं। हरिकथा हरिका ही स्वरूप है। अपनी कथा सुननेके लिये हरि सदैव उत्सुक रहते हैं। श्रवणके लोभसे स्वयं राधारानी एक बालिकाका रूप

धारण करके खीर बनानेके बहानेसे आकर श्रीरूप और श्रीसनातनकी ईष्ट-गोष्ठीके मध्य कृष्णकथाको सुनती हैं। 'स्थानस्थिताः' अर्थात् जहाँ साधु हों, वहीं स्थित रहें। साधुजनोंके मुखसे विगलित हरिकथाको श्रवण करनेसे ही भक्तिका क्रम विकास होता है। गुरुपदाश्रयमें हरिकथा श्रवण करते हुए जीव भक्तिके सोपान—निष्ठा, रुचि, आसक्तिपर आरूढ़ होता है। हरिकथा श्रवण करते-करते जब अपराध-शून्य होकर जीवका चित्त निर्मल हो जाता है, तब उसमें कृष्ण-सेवाकी वासना, रति उत्पन्न होती है और उसके द्वारा श्रीकृष्ण वशीभूत हो जाते हैं। माठर-श्रुति-वचन—'भक्तिवशः पुरुषः' अर्थात् 'भगवान् भक्तिके द्वारा वशीभूत होते हैं।' भागवत (9/4/63) में स्वयं भगवान्ने दुर्वासा ऋषिके निकट स्वीकार किया है—'अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज' अर्थात् 'मैं सर्वथा भक्तोंके अधीन हूँ, मुझमें तनिक भी स्वतन्त्रता नहीं है।'

प्रेमके तारतम्यानुसार रति पाँच प्रकारकी मानी गयी है—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर। भगवान्की वश्यतामें भी प्रेमके अनुरूप तारतम्य है। इसलिये जो ज्ञानके द्वारा मुक्ति लाभ करते हैं, उनके लिये भगवान् अजित ही हैं।

शुद्धभक्तोंका सङ्ग जीवको प्रेम तक अवश्य ही ले जाता है। भगवान्की लीलाकथाएँ और उनके भक्तोंके चरित्र भगवद्-वशीकरण मन्त्र हैं।"—श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी॥ 67॥

(ख) साधनकी सिद्धि—प्रेमभक्ति (भाव—प्रेमका अङ्कुर) :—

प्रभु कहे,—"एहो हय, आगे कह आर।"
राय कहे,—"प्रेमभक्ति—सर्वसाध्यसार॥"68॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"यह साध्य हो सकता है, परन्तु इसके आगे कुछ कहो।" श्रीरामानन्द रायने कहा,—"प्रेमभक्ति सर्वसाध्योंका सार है॥"68॥

अमृतप्रवाह भाष्य—यह बात सुनकर महाप्रभुने कहा,—अब साध्य निर्णीत हुआ है, इसकी अपेक्षा अधिक जो है, उसे कहो। तात्पर्य यह है कि केवल वर्णाश्रमधर्मके पालनकी अपेक्षा कर्मार्पण श्रेष्ठ है, केवल कर्मार्पणकी अपेक्षा स्वधर्मत्याग अर्थात् अपने वर्णधर्मको त्याग करके संन्यास ग्रहण करना श्रेष्ठ है, उसकी अपेक्षा ब्रह्मानुशीलनरूपी ज्ञानमिश्रा भक्ति श्रेष्ठ होनेपर भी, ये सभी बाह्य हैं, क्योंकि साध्यवस्तु जो शुद्धभक्ति है, वह पूर्वोक्त चारों प्रकारके सिद्धान्तोंमें नहीं है। 'आरोपसिद्धा' और 'सङ्गसिद्धा' भक्ति कभी भी 'शुद्धभक्ति' नहीं कहलाती। 'स्वरूपसिद्धा भक्ति'—एक पृथक् तत्त्व है। वह कर्म, कर्मार्पण, कर्मत्यागरूपी संन्यास और ज्ञानमिश्रा-भक्तिसे सदा पृथक् है। अन्याभिलाषिताशून्य, ज्ञान-कर्मादिसे अनावृत, अनुकूलभावसे श्रीकृष्णका अनुशीलन—ये शुद्धभक्तिके लक्षण हैं। यही साध्य वस्तु है, क्योंकि साधन-अवस्थामें इसको देख पानेपर भी सिद्धावस्थामें ही यह निर्मलरूपसे लक्षित होती है। महाप्रभुके अन्तिम-प्रश्नके उत्तरमें श्रीरायने कहा,—प्रेमभक्ति ही सभी साध्योंका सार है। शुद्धभक्ति प्रथमावस्थामें शान्त-भक्तिके रूपमें प्रतीत होती है, उसमें श्रीकृष्णके प्रति ममता-बुद्धि नहीं रहती॥ 68॥

अनुभाष्य—"ज्ञाने प्रयासं" श्लोक साध्यनिर्णयमें कहे जानेपर महाप्रभुने इस वृत्तिको **साध्यवृत्ति** कहकर स्वीकार किया। यही **'साधनभक्ति'**के नामसे जानी जाती है। बादमें और भी अग्रसर होनेका आदेश करनेपर श्रीरामानन्द रायने साधनभक्तिके बाद भावभक्ति अर्थात् प्रेमभक्तिकी अङ्कुरावस्था और शान्तरसमें निरपेक्षतारूपी धर्म प्रधान होनेके कारण अन्य चार प्रकारके रसोंसे युक्त **प्रेमभक्तिको ही साध्य** कहा। 'साधनभक्ति' कहनेसे 'श्रद्धा', 'साधुसङ्ग', 'भजनानुष्ठान', 'अनर्थनिवृत्ति', 'निष्ठा', 'रुचि' और 'आसक्ति'को समझना चाहिये॥ 68॥

अमृतानुकणिका—"श्रीजीव गोस्वामीने भक्ति-सन्दर्भ (श्लोक 217)में भक्तिके तीन विभाग किये हैं—'आरोप-सिद्धा भक्ति', 'सङ्ग-सिद्धा भक्ति' और 'स्वरूप-सिद्धा भक्ति।'

'आरोप-सिद्धा भक्ति'—जिसमें कृष्णकी प्रीति-विषयक कोई क्रिया न हो, परन्तु अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिये भगवान्में कर्मार्पण आदि किये जाँय, वह आरोप-सिद्धा भक्ति है। यह कर्मादि-रूपा है।

(1) राजा हरिश्चन्द्रकी सत्यवादिता प्रसिद्ध है, परन्तु उन्होंने देहमें आत्माभिमान होनेके कारण शरीरको ही सत्य और अपने दानको ही भगवद्भक्ति मान लिया था। यही आरोप सिद्धा-भक्ति है। यह वर्णाश्रम धर्मके अन्तर्गत है और इसके द्वारा अधिकाधिक स्वर्गकी प्राप्ति हो सकती है।

(2) दधीचि ऋषिने योगबलसे अपनी अस्थियोंका दान दिया, जिससे वज्र बनाया गया। इसमें शुद्धभक्तिकी कोई भी क्रिया नहीं है; योगके द्वारा भक्ति आरोपित हुई है। इसकी गति महर्लोकसे ऊपर नहीं है।

(3) महाराज शिविने कबूतरकी रक्षाके लिये अपने मांसका दान किया। इसमें कृष्णसेवाका कोई भाव नहीं है, यह मात्र एक पुण्य कर्म है, यह फलस्वरूप स्वर्ग तक प्रदान कर सकता है।

इन सभी उदाहरणोंमें श्रवण, कीर्तन, स्मरणादि भक्तिके अनुष्ठानकी कोई भी क्रिया नहीं है। अपने शरीरको ही श्रेष्ठ मानकर उसकी यातना सहन की गयी है। इन कर्मोंके मध्य जो भक्ति निहित है, उसके द्वारा ही स्वर्गादिकी प्राप्ति सम्भव होती है। यदि कर्ममें भक्ति न हो, तो वह कर्म भी निष्फल होता है, जैसे (मध्यलीला 24/87)—

'भक्ति बिनु कौन साधन दिते नारे फल।
सब फल देय भक्ति स्वतन्त्र प्रबल॥'

अर्थात् "भक्तिके बिना कोई भी साधन फल प्रदान नहीं कर सकता, किन्तु भक्ति अन्यान्य साधनोंकी अपेक्षासे रहित स्वतन्त्र तथा बहुत बलशाली है।"

इन सभी प्रकारकी बिद्धा-भक्तिमें भक्ति मिश्रित अवश्य रहती है, किन्तु उसके परिणाममें भक्ति नहीं होती और न ही भगवत्-सेवा होती है।

'सङ्गसिद्धा भक्ति'—जहाँ भक्ति न होकर भक्तिके अङ्ग-रूपी दान, वैराग्य, ज्ञान आदिकी प्रधानता हो, वह सङ्गसिद्धा भक्ति कहलाती है। अधिकतर लोग इसीको शुद्धभक्ति समझ लेते हैं; विशेषकर स्मार्त्त-सम्प्रदायके अनुयायी इसीका अनुष्ठान करते हैं। भागवत (11/23)में कहा गया है—'सर्वप्रथम देह एवं दैहिक सम्बन्ध यथा—सन्तान आदिसे अनासक्त होना सीखें, फिर भगवान्के भक्तोंसे प्रेम करना सीखें। इसके पश्चात् प्राणियोंसे यथायोग्य मैत्री, दया और विनयकी शिक्षा लें।' ये सब ज्ञान-कर्म आदिके अङ्ग-समूह हैं, भक्ति नहीं है। भक्तिका उदय होनेसे ये सब लक्षण स्वतः ही प्रकट हो जाते हैं, इनका पृथक् रूपसे अनुशीलन करनेसे भक्तिमें कोई लाभ नहीं है। जीवोंपर दया करना सात्त्विक वृत्ति है। भरत महाराज युवावस्थामें राज-पाट, वैभव, परिवारको त्यागकर वनमें भगवद्भजन करने लगे। किन्तु एक हिरण-शावककी रक्षाकर उसका लालन-पालन करनेके कारण उसमें आसक्त हो गये और हिरणका स्मरण करते हुए ही उन्होंने देह-त्याग किया। इस कारण उन्हें अगला जन्म हिरणका मिला। परन्तु पूर्व जन्मकी प्रबल सुकृतिके कारण उन्हें अपना पूर्व इतिहास स्मरण रहा और उससे अगला जन्म जड़ भरतके रूपमें हुआ। सात्त्विक दयाके कारण उनको दो और जन्म ग्रहण करने पड़े। इसके अतिरिक्त केवल श्रीकृष्णके शरणागत होना भी भक्ति नहीं, अपितु वह भक्तिका द्वार-मात्र है।

'स्वरूप-सिद्धा भक्ति'—जिस अनुष्ठानके द्वारा भक्ति स्वतः ही निरूपित हो और उसमें श्रीकृष्णके प्रति अनुकूल रूपमें तैलधारावत् अविच्छिन्न-गतिसे वैष्णवोंके आनुगत्यमें अनुशीलन हो, उसे स्वरूप-सिद्धा भक्ति कहते हैं। भागवत (7/5/23-24)—

"श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥"

इस भक्तिका अनुशीलन श्रवण, कीर्तन आदिके द्वारा किया जाता है। इस भक्तिकी विशेषता यह है कि जीवको उसके स्वरूप 'श्रीकृष्णके नित्यदास' की उपलब्धि करवा देती है। यदि कोई व्यक्ति श्रवण, कीर्तन आदि द्वारा नवधा-भक्तिका अज्ञानवशतः अनुकरण करते हुए भक्तिसे सम्बन्ध प्राप्त कर ले, तो उसे भक्तिका फल प्राप्त हो जाता है। प्रह्लाद महाराजने अपने पूर्व जन्ममें अज्ञानतावश ही श्रीनृसिंह चतुर्दशीका उपवास किया था, उस सुकृतिके बलसे उन्होंने अपने अगले जन्ममें हजारों वर्षों तक माताके गर्भमें महर्षि नारद गोस्वामीका सङ्ग प्राप्तकर उनसे हरिकथा श्रवण की। इसके फलस्वरूप उन्हें उत्तम-महाभागवत प्रह्लाद महाराजका जन्म प्राप्त हुआ।

श्रीरूपगोस्वामीने पूर्व आचार्योंके द्वारा दी गयी भक्तिकी सभी परिभाषाओंको क्रोड़ीभूत करके उत्तमाभक्तिकी परिभाषाका एक अद्भुत श्लोक दिया है (भःरःसिः 1/1/11)—

"अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येनकृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥"

अर्थात् "श्रीकृष्णकी सेवाके अतिरिक्त अन्य सभी कामनाओंसे रहित होकर निर्भेद-ज्ञान एवं नित्य-नैमित्तिक कर्म, योग, तपस्यासे अनावृत एवं अनुकूल भावसे श्रीकृष्णका जो अनुशीलन अर्थात् श्रीकृष्ण-सेवा की जाती है, उसे उत्तमा भक्ति कहते हैं।"

इस सूत्रमें भक्तिके स्वरूप और तटस्थ—दोनों लक्षणोंका विशद विवेचन किया गया है। अनुकूल भावसे श्रीकृष्णका अनुशीलन अथवा उनकी सेवा—यह भक्तिका स्वरूप-लक्षण है। भक्ति जो अन्याभिलाषाओंसे रहित हो और उसमें ज्ञान-कर्म आदिकी प्रधानता न हो—यह तटस्थ-लक्षण है। इसे उत्तमा भक्ति अथवा शुद्धभक्ति कहा जाता है। इन्द्रियों, मन, वाणीकी समस्त चेष्टाओंके द्वारा और हृदयके समस्त भावोंके द्वारा श्रीकृष्णकी सेवा हो, इसे श्रीकृष्णानुशीलन कहते हैं। ये चेष्टाएँ दो प्रकारकी होती हैं—प्रवृत्ति-मूलक और निवृत्ति-मूलक। इन्द्रियोंकी चेष्टाके द्वारा श्रवण, कीर्तन आदि भक्तिके अङ्गोंका पालन प्रवृत्ति-मूलक चेष्टा है। भक्ति-विरोधी-भाव, अपराध, आलस्य, अनर्थ आदिका त्याग निवृत्ति-मूलक चेष्टा है। भक्तिमें ये दोनों ही आवश्यक हैं। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं—अपराधयुक्त नाम-कीर्तन छिद्रयुक्त पात्रमें रखे जलके समान निकल जायेगा, ठहरेगा नहीं। सावधानीपूर्वक अपराध-रहित होकर भक्तिके अङ्गोंका पालनसे सिद्धि होती है। भक्ति आनुगत्यमयी होती है। श्रीकृष्ण हेतु समस्त प्रकारकी चेष्टाएँ अनुकूल भावसे हो, उसमें प्रतिकूल भावना न हो और रसिक-तत्त्वज्ञ गुरु-वैष्णवोंके आनुगत्यमें इसका नित्य-निरन्तर इसका अनुष्ठान होना चाहिये।

भक्तिकी सिद्धिके लिये अनुकूल अनुशीलनकी आवश्यकता है, क्योंकि प्रतिकूल आचरणसे सिद्धि नहीं होती। कोई-कोई महानुभाव कहते हैं कि अनुकूलका अर्थ है, जो कृष्णको रुचिकर हो। परन्तु इसमें अतिव्याप्ति और अव्याप्तिके दोष हो सकते हैं। 'अतिव्याप्ति-दोष'—श्रीकृष्ण चाणूर-मुष्टिकके सङ्ग युद्धमें अतिरुचिपूर्वक वीर-रसका आस्वादन कर रहे हैं। इससे असुरोंमें भक्ति व्याप्त लगती है, परन्तु उनमें श्रीकृष्णके प्रति द्वेष-रूप प्रतिकूल भाव होनेके कारण इसे भक्ति नहीं माना जा सकता। 'अव्याप्ति-दोष'—दूसरी ओर, स्तनपानमें श्रीकृष्णको अतृप्त छोड़कर माता यशोदा चूल्हेपर उफनते हुए दूधको उतारनेके लिये चली गयीं। माता यशोदाकी यह क्रिया श्रीकृष्णके लिये रुचिकर नहीं हुई। यहाँ ऐसा प्रतीत होता है, जैसे माता यशोदामें भक्ति अव्याप्त है अर्थात् उनमें भक्ति नहीं है। किन्तु श्रीकृष्णकी सेवामें उपयोग होनेवाली प्रत्येक वस्तुकी रक्षा करना परिपूर्ण भक्ति है; वह माताका श्रीकृष्णके प्रति वात्सल्यका प्रकाश है। श्रीकृष्णका जिसमें मङ्गल हो, वही भाव अनुकूल है। माता यशोदाका विचार है कि उनके दूधसे श्रीकृष्णकी पूर्ति नहीं होगी, उससे दही, मक्खन, छाछ और रबड़ी आदि मिष्ठान नहीं बनेंगे।

इसलिये दूधकी रक्षा करनी चाहिये। यह प्रीतिका लक्षण है। श्रीकृष्णकी सेवामें उपयोगमें आनेवाली वस्तुओंमें भक्तोंकी श्रीकृष्णसे भी अधिक प्रीति होती है।

केवल प्रातिकूल्य-रहित होना भी भक्ति नहीं है, क्योंकि घड़ेमें श्रीकृष्णके लिये प्रतिकूल भाव नहीं है, परन्तु साथ श्रीकृष्णकी सेवाकी कोई चेष्टा भी नहीं है। भक्ति भक्त-वृत्तिपर निर्भर करती है, श्रीकृष्ण-वृत्तिपर नहीं। 'आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं'—ये दोनों क्रियाएँ आवश्यक हैं। यह भक्तिका स्वरूप-लक्षण है। इसी स्वरूप-सिद्धा भक्तिका अनुष्ठान उत्तमा भक्तिमें पर्यवसित होता है।"—श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी॥ **68**॥

भक्तके प्रेमसे ही श्रीकृष्ण वशीभूत :—
पद्यावली 11वें अङ्कमें उद्धृत श्रीरामानन्द राय-कृत श्लोक—

नानोपचार-कृतपूजनमार्त्तबन्धोः
प्रेम्णैव भक्तहृदयं सुखविद्रुतं स्यात्।
यावत् क्षुदस्ति जठरे जरठा पिपासा
तावत् सुखाय भवतो ननु भक्ष्य-पेये॥ 69॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **69**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जैसे पेटमें जब तक बहुत जोरकी भूख और प्यास रहती है, तब तक ही खाने-पीने योग्य सब वस्तुएँ सुखदायक होती हैं, उसी प्रकार आर्त्तबन्धुकी (दीनबन्धु श्रीकृष्णकी) नाना उपचारसे पूजा होनेपर भी जब वह प्रेमयुक्त होती है, तभी भक्तोंका हृदय आनन्दसे पिघल जाता है॥ **69**॥

अनुभाष्य—

यावत् जठरे (उदरे) जरठा (अतिशयिनी) क्षुत् पिपासा च अस्ति, तावत् भक्ष्यपेये [यथा] सुखाय (आनन्दाय) भवतः, [तथा] आर्त्तबन्धोः (दीननाथस्य) नानोपचार-कृतपूजनं (विविध-षोड़शोपचारसमन्वितार्चनादिकम् अनुष्ठितमपि)) भक्तहृदयं प्रेम्णा (कृष्णेन्द्रिय-तोषणमया भक्त्या) एव सुख-विद्रुतम् (आनन्देन द्रवीभूतं) स्यात्।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **69**॥

रागमार्गके द्वारा ही श्रीकृष्णप्रेमकी प्राप्ति,
सुकृतिसे उत्पन्न वैधभक्तिसे दुर्लभ :—
(पद्यावली 12 अंकमें उद्धृत
श्रीरामानन्द राय-कृत श्लोक)—

कृष्णभक्तिरसभाविता मतिः
क्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते।
तत्र लौल्यमपि मूल्यमेकलं
जन्मकोटिसुकृतैर्न लभ्यते॥ 70॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **70**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—करोड़ों जन्मोंमें की गयी सुकृतियोंके द्वारा जिसे प्राप्त नहीं किया जा सकता, परन्तु लोभरूपी एक मूल्य देकर जिसे प्राप्त किया जा सकता है, ऐसी श्रीकृष्णभक्तिरसभावित मति जहाँसे भी मिले, उसे खरीद लो।

उक्त दो श्लोकोंमें, पहला श्रद्धामूलक वैधीभक्तिको सूचित कर रहा है और दूसरा लोभमूलक रागानुगा-भक्तिको सूचित कर रहा है। इसके बाद इसी रागानुगा-भक्तिका अवलम्बन करके ही श्रीराय रामानन्दके द्वारा कहे जानेवाले वचन व्यवहार होंगे। अर्थात् अब यहाँसे वे रागभक्ति-सिद्धान्तका अवलम्बन कर रहे हैं और उन्होंने वैधी-भक्तिकी बातको छोड़ दिया है॥ **70**॥

अनुभाष्य—

कृष्णभक्तिरसभाविता (कृष्णसेवारस-भावनामयी) मतिः (बुद्धिः) यदि कुतः (यत्र क्वापि देशकालपात्रतः अनुष्ठानात् वा) लभ्यते, तदा [युष्माभिः तादृशी मतिः] क्रीयतां (मूल्यप्रदानेन अवश्यमेव ग्रहणीया)। तत्र (मतिक्रयवाणिज्ये) एकलं लौल्यं (लोभः) एव हि मूल्यं, [यतः तन्मतिः] जन्मकोटि-सुकृतैः (बहुजन्मजन्मान्तरसञ्चितभाग्यैः) न लभ्यते, [सा परमदुर्लभा एवेत्यर्थः]।

श्लोक-भावानुवाद—श्रीकृष्णसेवारस-भावनामयी मति यदि किसी स्थानपर, किसी समय भी, किसी भी व्यक्तिसे मिल रही हो, तो वैसी मति मूल्य देकर खरीद लो। लोभ ही उस मतिको खरीदनेके लिये एकमात्र मूल्य है, बहुत जन्म-जन्मान्तरके सञ्चित भाग्यसे भी

वह प्राप्त नहीं की जा सकती; इसका अर्थ यह है कि वह परम दुर्लभा है॥ 70॥

अमृतानुकणिका—" *'नानोपचार-कृतपूजनमार्त्तबन्धोः'* —यहाँ ऐसा लगता है कि दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिककी सङ्गति नहीं है। दृष्टान्त कहता है कि अन्न-जल उसीको सुखदायी होता है, जिसे भूख-प्यास हो; यहाँ भोजनका सुख भोक्ताको प्राप्त हो रहा है, उसे तीव्र भूख-प्यास है। परन्तु दार्ष्टान्तिकमें देखा जाता है कि है—जो उपचारके साथ पूजा करेंगे, उनके हृदयमें यदि प्रेम रहे, तभी भगवान्‌का हृदय सुखसे द्रवित हो जाता है। परन्तु यह शङ्का निराधार है, क्योंकि जब भक्तका प्रेम आर्त्तिकी अवस्थामें पहुँचता है, तब भगवान् आर्त्तबन्धु होकर सेवा ग्रहण करते हैं। उन्हें विदुरानीके प्रेमके कारण भूख लग गयी, तो केलेके छिलके भी स्वाद लेकर खाये। किन्तु वे दुर्योधनका राजमहल और छप्पन भोग परित्याग करके चले आये, क्योंकि दुर्योधनमें प्रेम नहीं था। महाप्रभु श्रीधरकी दुकानसे केला, मोचा छीनकर लाते थे, श्रीरामचन्द्रने शबरीके झूठे बेर भी खाये, वे गोपियोंके घरसे माखन भी चुराकर खाते थे। क्योंकि भगवान् प्रेमके भूखे हैं। श्रीराय रामानन्दका यह उदाहरण वैधीभक्तिके अन्तर्गत है।

'कृष्णभक्तिरसभाविता मतिः'—यह उदाहरण अनुरागमयी रागानुगा भक्तिका है। कोटि जन्मोंकी सुकृतिसे साधुसङ्ग प्राप्त होता है और साधुसङ्गके द्वारा भक्ति होती है। किन्तु लोभमयी रागानुगा भक्ति कोटि जन्मोंकी सुकृतिसे भी नहीं मिलती। केवल साधुसङ्गमें रुचियुक्त हरिकथा श्रवणसे रुचियुक्त सेवा-वासना उदित होती है। उस समय वह कथा हृदय और कानोंके लिये रसायन हो जाती है। निरन्तर श्रवण करते-करते लोभमयी वासना आती है। भगवद्-कथाओंको सुनकर यदि लोभ हो जाय कि माता यशोदा, श्रीदाम, सुबल, गोपियाँ जैसे श्रीकृष्णकी सेवा करते हैं, मैं भी वैसी सेवा करूँ—इस लोभके उदित होनेके साथ ही रागानुगा भक्ति आरम्भ होती है। यह अवस्था रुचिकी है। यहींसे साधकका भक्ति-साधन आरम्भ होता है। इसके पूर्वकी अवस्थाएँ, निष्ठा आदि इसमें अन्तर्निहित हैं। यह दुर्लभ भक्ति श्रीकृष्ण तथा उच्च कोटिके रागानुगा भक्तोंकी कृपासे मिलती है। जैसे—श्रीशुकदेव गोस्वामीके द्वारा परीक्षित महाराजको भागवत श्रवण करवाना। ईश्वर-कृपा महद्-कृपाकी अनुगामिनी होती है। दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर भावयुक्त भक्त रागानुग भक्तोंकी श्रेणीमें आते हैं। और श्रवण यदि किसी रूपानुग भक्तसे हो, तो अधिक लाभ है। रागानुगा भक्तोंमें भी रूपानुग भक्त विशेष हैं। ये श्रीरूप मञ्जरीके अनुगत हैं और मधुर-भावापन्न हैं। रूपानुग भक्त परम दुर्लभ हैं।

साधनावस्थाके सभी सोपानोंमें श्रद्धासे आरम्भकर आसक्तिकी दशा तक श्रद्धा हर स्थितिमें रहती है। इसीसे साधक रतिकी अवस्था तक पहुँचता है। यही रति या भाव प्रेमका अङ्कुर है। रतिकी अवस्थाकी श्रद्धा दिव्य है। इस स्थितिको प्राप्त करके साधक एक भूत-ग्रस्त व्यक्तिकी भाँति प्रेम-ग्रस्त हो जाता है और सभी प्रकारकी शास्त्र-युक्तियोंको भूल जाता है; कैसे कृष्णसे मिलूँ—यही विचार प्रधान हो जाता है।"—श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी॥ 70॥

(1) 'दास्य-प्रेम' उत्तम नहीं :—

प्रभु कहे,—"एहो हय, आगे कह आर।"
राय कहे,—"दास्य-प्रेम—सर्वसाध्यसार॥"71॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"यह ठीक है, इससे आगे और कुछ कहिये।" तब श्रीरामानन्द रायने कहा,—"दास्यप्रेम सब साध्योंका सार है॥"71॥

अमृतप्रवाह भाष्य—यहाँ तक सुनकर महाप्रभुने कहा,—यह ठीक है; किन्तु इसके बाद जो है, उसे बताओ। उसके उत्तरमें श्रीरायने कहा,—दास्यप्रेम ही सभी साध्योंका सार है। 'प्रेमलक्षणभक्ति'में 'ममता' जुड़ जानेसे 'दास्यप्रेम' होता है। साधारण प्रेममें भगवान् और

भक्तमें कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं होता। 'भगवान् ही मेरे प्रभु हैं'—इस प्रकारका ममता-भाव उसमें जुड़नेसे साधारण प्रेम 'दास्यप्रेम' हो जाता है, यह साधारण प्रेमकी अपेक्षा ऊँचा है॥ 71॥

अनुभाष्य—ऊपर लिखे दो श्लोकोंमें प्रेमभक्तिको साधारण रूपसे 'साध्य' निर्णय करनेपर श्रीमहाप्रभुने श्रीरामानन्दको और भी अग्रसर होकर इस 'साध्य'की विशेष रूपसे धारावाहिककी भाँति व्याख्या करनेके लिये कहा। तब वे 'दास्यप्रेमभक्ति'को 'साध्य' कहकर प्रमाणित कर रहे हैं॥ 71॥

श्रीकृष्ण-दास ही श्रीकृष्णके सर्व-ऐश्वर्यके अधिकारी :—
श्रीमद्भागवत (9/5/16)—

यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान् भवति निर्मलः।
तस्य तीर्थपदः किंवा दासानामवशिष्यते॥ 72॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 72॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीभागवतमें कहा गया है,—जिनके नाम-श्रवणमात्रसे ही जीव निर्मल होता है, उन तीर्थपद भगवान्‌के जो दास हैं, उनके लिये और क्या वस्तु प्राप्त करनी बाकी रहती है?॥ 72॥

अनुभाष्य—स्वयंमें ब्राह्मण होनेका अभिमान और देहाभिमानके कारण दूसरोंमें दोष-दृष्टि रखनेवाले तथा वैष्णव-विरोधरूपी दुर्वासनासे ग्रस्त दुर्वासा, जिन्हें वैष्णवास्त्र श्रीसुदर्शन कष्ट दे रहे थे, उनकी महाभागवत अम्बरीषकी प्रार्थनासे श्रीसुदर्शन चक्रसे रक्षा हुई; ऐसा देखकर दुर्वासाकी जातिबुद्धि दूर हुई, तब उनके द्वारा की गयी शुद्धभक्त और भगवान्‌की ऐसी स्तुति—

यन्नामश्रुतिमात्रेण (यस्य भगवतः नामश्रवणेनैव) पुमान् (जीवः) निर्मलः (शुद्धः) भवति, तस्य तीर्थपदः (तीर्थं पदे यस्य सः तस्य भगवतः) दासानां (किङ्कराणां) किं वा अवशिष्यते? [न किञ्चिदेवेत्यर्थः]।

श्लोक-भावानुवाद—जिनका नाम श्रवणमात्रसे ही जीव निर्मल हो जाता है, तब उन भगवान् जिनके चरणकमलोंमें समस्त तीर्थ वास करते हैं, उनके दासोंको क्या पाना शेष रह जाता है, अर्थात् कुछ भी बाकी नहीं रहता है—यह अर्थ है॥ 72॥

भगवान्‌के दासकी दीनता :—
यामुनाचार्यपाद-कृत स्तोत्ररत्न (46)—

भवन्तमेवानुचरन्निरन्तरः
प्रशान्तनिःशेषमनोरथान्तरः।
कदाहमैकान्तिकनित्यकिङ्करः
प्रहर्षयिष्यामि स नाथ जीवितम्॥ 73॥

अनुवाद—हे नाथ! आपकी निरन्तर सेवाके द्वारा अन्य मनोरथोंसे सर्वथा रहित होकर प्रशान्तभावसे मैं कब अपनेको आपका नित्यदास कहकर दास्यजीवनके सहित आनन्दसे प्रफुल्लित होऊँगा?॥ 73॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 1/206 संख्या देखें॥ 73॥

अमृतानुकणिका—"शान्त भावमें निष्ठा है, परन्तु ममता नहीं है, इसलिये उसमें प्रेमका विकास भी नहीं है। शान्त रसके भक्त सनक-सनन्दनादि चार कुमार आदि हैं। ये ज्ञान-दृष्टिसे सभी कुछ जानते हैं। किन्तु उनका अपना रस कौन-सा है, वे किस रूपमें सेवा करते हैं, यह निश्चित नहीं है। उन्हें अपनी सेवाकी परिपाटी भी ज्ञात नहीं है।

दास्यभावमें निष्ठाके साथ ममतासे सेवाभाव भी युक्त हो जाता है। सम्भ्रम और विश्रम्भ भावसे दास्य दो प्रकारका होता है। वैकुण्ठमें शुद्ध सम्भ्रमयुक्त दास्य है। अयोध्या तथा द्वारकामें भी गौरव-मिश्रित सम्भ्रम दास्य-रस है। किन्तु वह वैकुण्ठसे कुछ ऊँचा है। केवल व्रजमें ही शुद्ध विश्रम्भ-भावयुक्त दास्य प्रेम अवस्थित है। व्रजके दास्य भक्तोंमें ममतायुक्त सख्य और वात्सल्यका मिश्रण रहता है।

दास्य प्रेममें श्रीकृष्ण विषय-आलम्बन हैं और वे भक्त-वात्सल्य आदि गुणोंसे युक्त हैं। श्रीकृष्णके दास आश्रय-आलम्बन हैं। श्रीकृष्णके दासोंमें नित्य-सिद्ध,

साधनसिद्ध और साधक—ये तीन प्रकारके भेद हैं। श्रीकृष्णकी कृपा, चरणरज और भुक्तावशेष (महाप्रसाद) आदि उद्दीपन हैं एवं श्रीकृष्णकी आज्ञा पालन करना अनुभाव है। दास्य-भक्तमें यह भावना होती है कि श्रीकृष्ण मेरे प्रभु हैं और मैं उनका दास हूँ।"—श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी॥ 73॥

(2) 'सख्यप्रेम'—उत्तम :—

प्रभु कहे,—"एहो हय, किछु आगे आर।"
राय कहे,—"सख्य-प्रेम—सर्वसाध्यसार॥ "74॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"दास्यप्रेम साध्य है, आपका यह कथन ठीक है, परन्तु इससे आगे और कुछ बतलाइये।" श्रीरामानन्द-रायने कहा,—"श्रीकृष्णके प्रति सख्य-प्रेम ही सभी साध्योंका सार है॥ "74॥

अमृतप्रवाह भाष्य—यह बात सुनकर महाप्रभुने कहा,—और कुछ आगे बढ़ पानेपर ही सर्वसार प्राप्त होगा। श्रीरायने उसके उत्तरमें कहा,—श्रीकृष्णमें 'सख्यप्रेम' ही सभी साध्योंका सार है। श्रीरायके कहनेका तात्पर्य यह है कि दास्यप्रेममें 'ममता' रहनेपर भी उसमें 'भगवान्'—'प्रभु' हैं, इस प्रकारकी बुद्धि रहनेके कारण एक प्रकारका 'भय' और 'सम्भ्रम' अर्थात् गौरवका भाव सहज ही उदित होता है। उस 'भय' और 'सम्भ्रम'का परित्याग करके 'विश्रम्भ' अर्थात् 'एकान्त विश्वास'को ग्रहण कर पानेपर वही प्रेम ही 'सख्यप्रेम' होता है। इस प्रेममें श्रीकृष्ण और उनके सखाओंके बीचमें एक 'समता भाव' उदित होता है॥ 74॥

व्रजके गोपालगणोंकी श्रीकृष्णसख्य-महिमा :—
श्रीमद्भागवत (10/12/11)—

इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या
दास्यं गतानां परदैवतेन।
मायाश्रितानां नरदारकेण
सार्द्धं विजह्रुः कृतपुण्यपुञ्जाः॥ 75॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 75॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीभागवतमें कहा गया है,—जो ज्ञानमार्गमें ब्रह्मसुखानुभूति स्वरूपमें, दास्यरसके भक्तोंको परदेवतारूपमें एवं मायाश्रित व्यक्तियोंको नरबालकके रूपमें प्रतीत होते हैं, उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णके साथ व्रजके गोपबालकोंने बहुत सुकृतिके फलस्वरूप सख्यरसमें विहार किया था॥ 75॥

अनुभाष्य—श्रीशुकदेव गोस्वामी परीक्षितको वन-भोजनके लिये निकले श्रीकृष्णके साथ विश्रम्भ-प्रेमके सूत्रमें बँधे सखा व्रज-गोपबालकोंके अतिशय सौभाग्यका वर्णन कर रहे हैं—

इत्थम् (एवम्प्रकारेण) कृतपुण्यपुञ्जाः (कृतः अनुष्ठितः पुण्यानां पुञ्जः समूहः यैः ते गोपबालकाः) सतां (निर्विशेषज्ञानिनां) ब्रह्मसुखानुभूत्या (ब्रह्मानन्दानुभवैकस्वरूपेण), दास्यं गतानां (लब्धभजनानां भक्तानामिति यावत्) परदैवतेन (परमेश्वर-स्वरूपेण) मायाश्रितानां (भगवन्माया-मोहितानां) नरदारकेण (नरबालकरूपेण) [भगवता] सार्द्धं [सख्येन] विजह्रुः (विहाराणि चक्रु भाग्यं कृष्ण-सखानामिति भावः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 75॥

अमृतानुकणिका—"सख्य दो प्रकारका होता है—ऐश्वर्ययुक्त तथा माधुर्य-युक्त। यहाँ श्रीराय रामानन्दका उद्देश्य शुद्ध माधुर्यमय व्रजके सख्यसे है, इसमें शान्तरसकी श्रीकृष्णमें एकनिष्ठता, दास्यकी सेवा तथा विश्रम्भ-सख्य है। प्रस्तुत श्लोकमें इसीका उदाहरण है। इसमें बतलाया है कि विभिन्न भावनावाले भक्त श्रीकृष्णको विभिन्न रूपोंमें देखते हैं। *'सतां'*—निर्विशेषवादी ब्रह्मज्ञानी भगवान्को 'ब्रह्मसुखानुभूति स्वरूप'में जानते हैं। वे श्रीकृष्णके साथ विहार नहीं कर सकते, क्योंकि ब्रह्मसुखमें कोई अस्तित्व नहीं है, सत्ता नहीं है, वे परतत्त्व रूपमें ब्रह्मकी उपासनाकर ब्रह्मसायुज्यकी कामना करते हैं; निर्विशेष ब्रह्मके साथ क्रीड़ा करना सम्भव नहीं है। *'दास्यं गतानां'*—इनमें आराध्यका भाव है। इस गौरव-बुद्धिके कारण वे न तो श्रीकृष्णके साथ खेल सकते हैं और न अन्य क्रीड़ा ही कर सकते हैं। *'मायाश्रितानां'*—मायामोहित जीव श्रीकृष्णको एक नरबालकके

रूपमें ही देखते हैं। उनका दृष्टिकोण विपरीत ही है। वे श्रीकृष्णको तुच्छ समझते हैं और उनकी श्रीकृष्णके साथ विहार करनेकी इच्छा भी नहीं होती। *'सार्द्धं विजह्रु कृतपुण्यपुञ्जाः'*—व्रजके सखा हैं। न जाने इन सखाओंने कौन-से कोटि-कोटि पुण्य किये थे, जो वे श्रीकृष्णके साथ अत्यन्त लोभनीय विहार करते हैं। वनमें सखागण पत्र-पुष्पों और गैरिक धातुओंसे श्रीकृष्णका शृङ्गार करते हैं, श्रीकृष्ण भी सखाओंका शृङ्गार करते हैं। कभी वे वेणुको चोरी कर लेते हैं, फिर पीछे-पीछेसे एक-दूसरेको पकड़ा देते हैं। जब श्रीकृष्ण वेणुको खोजते हैं, तो सखा कहते हैं कि हमें कन्धेपर बैठाकर ले चलो, तब वेणु कहाँ है, बतलायेंगे। वे श्रीकृष्णको स्पर्श करनेकी होड़ लगाते हैं कि 'पहले मैं पकडूँगा', 'पहले मैं पकडूँगा'। कभी सखा श्रीकृष्णके साथ पशुओंकी बोली बोलते हैं; कोयल, मयूरके स्वरकी नकल करते हैं, मेंढकके समान फुदकते हैं, कभी बन्दरकी पूँछ पकड़ लेते हैं और जब बन्दर एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर छलांग लगाते हैं, तो वे भी उनकी पूँछ पकड़े होनेके कारण उनके साथ एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर जाते हैं। श्रीकृष्ण सखाओंके साथ विभिन्न प्रकारकी लीलाएँ करते हुए स्वच्छन्दरूपसे वन-विहार करते हैं। इस प्रकार वे सख्यरसका आनन्द लेते हैं। सखाओंको यह सौभाग्य कोटि-कोटि पुण्य करनेके कारण प्राप्त हुआ है। *'कृतपुण्यपुञ्जाः'*—श्रीसनातन गोस्वामीके अनुसार 'पुञ्ज' शब्दका अर्थ है—'अक्षय' और 'पुण्य' शब्द 'भक्ति'का वाचक है, अर्थात् ये गोप-गण ऐसी 'अक्षय भक्ति'से सम्पन्न हैं। लौकिक पूजा-पाठ या तपस्या आदिसे कोई भी श्रीकृष्णका सहचर नहीं बन सकता। श्रीकृष्णके सखागण अक्षय भक्तिसे परिपूर्ण हैं और बलदेव प्रभुसे प्रकटित नित्य परिकर हैं; ये जीव तत्त्व नहीं हैं। इनकी लोभनीय क्रीड़ाओंकी कथाको सुनकर जीव रागानुगा भक्ति साधनके द्वारा श्रीकृष्णके सखा बन सकते हैं। ये जीव-तत्त्व साधन-सिद्ध होते हैं।

सख्य रसमें सङ्कोचरहित स्वच्छन्द सेवा है और सेवा वासनाका विकास भी है तथा साथमें ममता भी है। इसलिये महाप्रभुने इसे उत्तम माना है।"—श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी॥ 75॥

(3) 'वात्सल्य-प्रेम' सख्यकी अपेक्षा उत्तम :—

प्रभु कहे,—"एहो उत्तम, आगे कह आर।"
राय कहे,—"वात्सल्य-प्रेम—सर्वसाध्यसार॥"76॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा-"यह तो उत्तम है, परन्तु इससे आगे कुछ और कहिये।" तब श्रीरामानन्द-रायने कहा,—"वात्सल्य प्रेम ही सर्वसाध्यसार है॥"76॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महाप्रभुने कहा,—'सख्यरस' यद्यपि 'दास्यरस'की अपेक्षा उत्तम है, तथापि थोड़ा और अग्रसर होनेसे ही साध्यसार प्राप्त होगा। श्रीरायने उसके उत्तरमें कहा,—'वात्सल्य'-भावका प्रेम ही सभी साध्योंका सार है। सख्यरसका जो विश्रम्भात्मक प्रेम है, उसमें और अधिक स्नेहयुक्त होनेपर 'वात्सल्यरस'का उदय होता है॥ 76॥

अनुभाष्य—श्रीरामानन्दके 'सख्यप्रेम'के साध्य-निर्णयको सुनकर महाप्रभुने उसे 'दास्यप्रेम'की अपेक्षा 'उत्तम' कहा एवं और भी अग्रसर होनेके लिये अनुरोध करनेपर श्रीरामानन्दने तब 'वात्सल्य-प्रेम'को साध्य बतलाया॥ 76॥

नन्द-यशोदाके वात्सल्यकी महिमा :—
श्रीमद्भागवत (10/8/46)—

नन्दः किमकरोद्ब्रह्मन् श्रेय एवं महोदयम।
यशोदा वा महाभागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः॥ 77॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 77॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीमद्भागवतमें कहा गया है,—हे ब्रह्मन्! श्रीनन्द महाराजने ऐसी क्या सुकृति की थी, जिसके फलस्वरूप उन्होंने श्रीकृष्णको पुत्रके रूपमें प्राप्त किया था? महाभागा श्रीयशोदाने ही ऐसी क्या सुकृति की थी, जिससे साक्षात् परब्रह्म श्रीकृष्णने उनको 'माँ' कहकर उनका स्तन पान किया था?॥ 77॥

अनुभाष्य—श्रीशुकदेवके द्वारा यशोदाजीके श्रीकृष्णवात्सल्यके वर्णनको सुनकर विस्मित राजा परीक्षितकी उक्ति—

हे ब्रह्मन्, नन्दः एवं महोदयं (महान् श्रेष्ठः उदयः उत्कर्षः यस्मिन् तत् अपूर्वफलोदयं) श्रेयः (मङ्गलप्रदं कर्म) किम् अकरोत्, महाभागा (अतिशय-सौभाग्यशालिनी) यशोदा वा किम् अकरोत्, हरिः यस्याः (यशोदायाः) स्तनं पपौ?

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 77॥

यशोदाके यशका गान :—
श्रीमद्भागवत (10/9/20)—

नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत् प्राप विमुक्तिदात्॥ 78॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 78॥

अमृतप्रवाह भाष्य—यशोदा गोपीने साधारण जीवोंके मुक्तिदाता श्रीकृष्णसे जिस कृपाको प्राप्त किया था, वह ब्रह्मा, शिव अथवा विष्णुके वक्षःस्थलपर आश्रित लक्ष्मीको भी प्राप्त नहीं हुई॥ 78॥

अनुभाष्य—रस्सी द्वारा बाँधनेके लिये उद्यत माताको असमर्थ और थकी हुई देखकर श्रीकृष्ण स्वयं ही बँध गये; यशोदाजीके इस श्रीकृष्ण-वशकारिता-गुणके दर्शनसे परीक्षितके प्रति शुकदेवकी उक्ति—

गोपी (यशोदा) विमुक्तिदात् (श्रीहरेः सान्निध्यात्) यत् प्रसादं प्राप, तत् इमं प्रसादं विरिञ्चः (पुत्रो ब्रह्मापि) न, भवः (आत्मतुल्यः शम्भुः) न, अङ्गसंश्रया (पत्नी) श्रीः (लक्ष्मीः) अपि न लेभिरे।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 78॥

अमृतानुकणिका—गौड़ीय वेदान्त प्रकाशनसे प्रकाशित श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामीके द्वारा सम्पादित "श्रीरायरामानन्द-संवाद" ग्रन्थ देखें॥ 77-79॥

(4) 'कान्तभाव' ही सर्वश्रेष्ठ प्रेमभक्ति :—

प्रभु कहे,—"एहो उत्तम, आगे कह आर।"
राय कहे,—"कान्तभाव—प्रेमसाध्यसार॥"79॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"यह वात्सल्यप्रेम उत्तरोत्तर उत्तम है, पर आगे और जो है, उसे कहिये।" श्रीरामानन्द रायने कहा,—"श्रीकृष्णके प्रति कान्तभाव ही सब साध्योंका सार है॥"79॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महाप्रभुने कहा,—यद्यपि यह उत्तरोत्तर उत्तम हुआ है, तथापि इसको पार करके और एक रस है, जिसको ही 'साध्यसार' कह सकते हो। श्रीरायने उत्तर दिया,—**श्रीकृष्णके प्रति 'कान्तभाव' ही प्रेमकी पराकाष्ठा रूप साध्योंका सार है।** तात्पर्य यह है,—साधारण-प्रेममें 'ममता'का अभाव, दास्यरसमें 'विश्रम्भ' अथवा 'विश्वास'का अभाव, सख्यरसमें 'स्नेहाधिक्य'का अभाव और वात्सल्यरसमें 'निःसङ्कोच-भाव'का अभाव होनेके कारण साध्यप्रेमकी पूर्णता उन-उन रसोंमें नहीं होती। श्रीकृष्णके प्रति जब कान्तभाव उदित होता है, तभी सभी अभावोंसे शून्य, सभी साध्योंके सार एक अखण्ड प्रेमतत्त्वको प्राप्त किया जा सकता है॥ 79॥

अनुभाष्य—सख्यप्रेमकी अपेक्षा 'वात्सल्यप्रेम' उत्तम है, किन्तु जब महाप्रभुने श्रीरायको और भी अग्रसर होनेके लिये कहा, तब श्रीरामानन्दने 'कान्तभाव'को ही प्रेमका 'साध्यत्व' कहकर उल्लेख किया॥ 79॥

व्रजगोपियोंका माहात्म्य :—
(श्रीमद्भागवत 10/47/60)—

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः।
स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः।
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ-
लब्धाशिषां य उदगाद्व्रजसुन्दरीणाम्॥ 80॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 80॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीवृन्दावनमें रासोत्सवमें श्रीकृष्णकी भुजाओंके द्वारा आलिङ्गित-कण्ठवाली व्रजसुन्दरियोंके प्रति जो कृपा उदित हुई थी, वह श्रीकृष्णके वक्षःस्थलपर स्थित लक्ष्मी आदि परव्योमकी अत्यन्त अनुगत शक्तियोंको भी प्राप्त नहीं हुई, स्वर्गकी रमणियाँ जिनकी देहसे

कमलकी सुगन्ध आती है, उनको भी उस प्रकारकी कृपाकी प्राप्ति नहीं हुई, तब अन्य स्त्रियोंके विषयमें तो क्या कहूँ? ॥ 80 ॥

अनुभाष्य—उद्धवजी व्रजमें आकर कुछ महीनों तक रहे। श्रीकृष्णकथा-कीर्तनके द्वारा हर्षोत्पादन करनेपर भी जिनका चित्त ऐकान्तिक रूपसे श्रीकृष्णमें ही आविष्ट था, उन श्रीकृष्ण-विरहसे तप्त गोपियोंके एकमात्र श्रीकृष्णमें तन्मय चित्तकी विकलताके दर्शन करके उद्धवजी उनके परम सौभाग्यकी प्रशंसा कर रहे हैं—

रासोत्सवे (रासक्रीड़ाकाले) अस्य (श्रीकृष्णस्य) भुजदण्डगृहीतकण्ठलब्धाशिषां (भुजदण्डाभ्यां बाहुभ्यां गृहीतः आश्लिष्टः कण्ठः गलदेशः येन तस्मात् लब्धाः प्राप्ताः आशिषाः कल्याणमनोरथाः याभिर्गोपीभिस्तासां) व्रजसुन्दरीणां (गोपललनानां) यः (प्रसादः) उदगात् (आविर्बभूव), नलिनगन्धरुचां (नलिनस्य पद्मस्य इव गन्धो रुक् कान्तिश्च यासां तासां) स्वर्योषितां (देवरामाणां) न अभूत; उ (अहो) अङ्गे (वक्षसि) नितान्तरतेः (अनन्यात्यन्ताश्रितायाः) श्रियः (लक्ष्म्याः अपि) अयं प्रसादः न अभूत्; अन्याः (स्त्रियन्तु) कुतः [एवं कृष्णानुग्रहविषयाः भवन्ति?]

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें ॥ 80 ॥

व्रजगोपियोंका ही मदनमोहन-विग्रह-दर्शनमें अधिकार :—
श्रीमद्भागवत (10/32/2)—

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः॥ 81 ॥

अनुवाद—उसी समय उन रोदनकारी व्रजदेवियोंके बीचमें शूरवंशके शिरोमणि श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। उनका मुखकमल मन्द-मन्द मुस्कानसे खिला हुआ था, वे गलेमें वनमाला और शरीरपर पीताम्बर धारण किये हुए थे। उनका वह रूप-सौन्दर्य सबके मनको मथ डालनेवाले साक्षात् कामदेवके मनको भी मथनेवाला था॥ 81 ॥

अनुभाष्य—आदिलीला 5/214 संख्या देखें॥ 81 ॥

अमृतानुकणिका—"कान्त और कान्ताका परस्पर प्रेम ही 'कान्तभाव' है। यहाँ श्रीकृष्णके प्रति 'कान्तभाव' ही प्रेम-पराकाष्ठा रूप साध्योंका सार है। श्रीराय रामानन्दने यहाँ कान्तभावको सर्वश्रेष्ठ न कहकर उसके प्रेमकी पराकाष्ठाको ही सर्वश्रेष्ठ बतलाया है। श्रीकृष्णके प्रति कान्तभावके उदय होनेसे सभी साध्योंके सार, अखण्ड प्रेम-तत्त्वको प्राप्त किया जा सकता है। कान्तभावकी स्थिति शृङ्गार या मधुर रसके अन्तर्गत है। इसमें श्रीकृष्ण ही व्रज गोपियोंके प्राण-प्रियतम विषयालम्बन हैं। मुरली ध्वनि, वसन्त ऋतु, कोकिलकी कूक, मयूर-कण्ठका दर्शन आदि उद्दीपन विभाव हैं। कटाक्ष और हास्यादि अनुभाव हैं, समस्त सात्त्विक भाव सुद्दीप्त अवस्था तक होते हैं। इस रसमें प्रेम-स्नेह-मान-प्रणय-राग-अनुराग-महाभाव आदि सभी अवस्थाएँ दृष्टिगोचर होती हैं, परन्तु केवल श्रीमती राधिकामें ही महाभावकी सर्वोच्च अवस्था मादन नामक महाभाव अवस्थित है। मधुररस स्वकीया और परकीया भावसे दो प्रकारका होता है। स्वकीया वैकुण्ठ-गत तत्त्व है और परकीया भाव केवल व्रजरमणियोंमें ही देखा जाता है। आदिलीला (4/46–49)—

अतएव मधुर रस कहि तार नाम।
स्वकीया-परकीया-रूपे द्विविध संस्थान॥
परकीयभावे अति रसेर उल्लास।
व्रज बिना इहार अन्यत्र नाहि वास॥
व्रजवधूगणेर एइ भाव निरवधि।
तार मध्ये श्रीराधार भावेर अवधि॥
प्रौढ़-निर्मलभाव प्रेम सर्वोत्तम।
कृष्णेर माधुर्यरस-आस्वाद-कारण॥

इसी कारण व्रजगोपियोंमें श्रीकृष्णको पूर्णतः वशीभूत करनेका सामर्थ्य होता है। विभिन्न अन्य प्रेममें कुछ न कुछ न्यूनता रहती है, जैसे—शान्तप्रेममें ममताका अभाव, दास्यरसमें विश्रम्भ अथवा विश्वासकी कमी, सख्यरसमें स्नेहकी अधिकताकी कमी और वात्सल्यरसमें निःसङ्कोच भावकी न्यूनता होती है। इनके कारण

साध्यप्रेमकी पूर्णता इन रसोंमें नहीं होती। कान्तभावकी नायिकाओं व्रजगोपियोंमें एक अपूर्व भाव है। इन सभी न्यूनताओंकी पूर्त्ति करते हुए वे निजाङ्ग भी श्रीकृष्णसेवामें देकर श्रीकृष्णका सुख वर्धन करती हैं। यह विशेषता अन्य रसोंमें नहीं है। शान्त, दास्य, सख्य और वात्सल्य—इन चार रसोंके गुण मधुर कान्तरसमें नित्य विद्यमान हैं और उन रसोंमें जो चमत्कारिताका अभाव है, वह मधुररसमें सुन्दर रूपसे प्रतिष्ठित है।

व्रजमें दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर, जितनी भी प्रकारकी रति हैं, उन्हें दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—सम्बन्धानुगा और कामानुगा। दास्य, सख्य और वात्सल्य प्रेमके भक्त अपने सम्बन्धसे बँधे हैं। इनकी अपनी मर्यादा है, जिसका वे उल्लङ्घन नहीं कर सकते। इनकी सेवा सम्बन्धकी अनुगामिनी है और उसीमें सीमित रहती है। द्वारकामें भी रुक्मिणी, सत्यभामा आदिका प्रेम उनके वैवाहिक सम्बन्धके अन्तर्गत है अर्थात् यह भी सम्बन्धानुगा है। उनके प्रेममें अपने सुखकी कुछ वासनाएँ भी सम्मिलित होती हैं; इसलिये वे श्रीकृष्णको पूर्णतया वशीभूत नहीं कर सकतीं। कामानुगा कान्तरतिमें गोपियोंके प्रेममें सम्बन्धकी प्रधानता न होकर सेवा-वासनाकी प्रधानता है जिसके द्वारा वे श्रीकृष्णकी सभी इच्छाओंकी पूर्त्ति करती हैं। गोपियोंका लोकधर्म, वेदधर्म, आर्यधर्म, गुरु-गौरव, सतीत्व, कुलधर्म-ये सब तृणकी भाँति कान्त-भावमें बह जाते हैं। उनका काम और सेवा तदात्मयताको प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् एक ही हो जाते हैं। गोपियोंकी सेवा, प्रीति और काम-पृथक्-पृथक् नहीं, एक ही हैं। वे श्रीकृष्णकी सेवाके लिये सब कुछ करती हैं। उनके प्रेममें अपनी इन्द्रिय-सुखकी इच्छा नहीं है। श्रीकृष्णसे प्रेम करनेके लिये वे विवाह-बन्धनके द्वारा आबद्ध नहीं हैं।

कामानुगा रतिके दो विभाग हैं—सम्भोगेच्छामयी या कामात्मिका और तत्-तत्-भावेच्छात्मिका। सम्भोगेच्छामयी या कामात्मिका रति केलि तात्पर्यमयी होती है। इसकी अवस्थिति विभिन्न यूथेश्वरियोंमें होती है। तत्-तत् भावेच्छात्मिका—व्रजयूथेश्वरियोंका श्रीकृष्णके प्रति जो मधुर भाव होता है, उस मधुर भावकी कामनाका ही यह दूसरा विभाग है; श्रीराधाकी किङ्करियों, मञ्जरियोंमें यह भाव रहता है। जीवके पक्षमें यही भाव सर्वोच्च कोटिका है।

'नायं श्रियोऽङ्ग...'—इस श्लोकके द्वारा उद्धवजी श्रीकृष्ण प्रियाओं, व्रजगोपियोंके प्रेमकी महिमाकी उद्घोषणा करते हुए कह रहे हैं कि ऐसा अपूर्व और अदृष्टपूर्व भगवत्-प्रसाद अन्य किसीने प्राप्त नहीं किया। श्लोकमें 'उ' शब्दके द्वारा उद्धवजीका विस्मय प्रकट होता है। रासोत्सवमें श्रीकृष्णने उल्लसित होकर जिस प्रकार व्रजरमणियोंके कण्ठ-प्रदेशका आलिङ्गनकर उनका मनोरथ पूर्ण किया, वह सौभाग्य उनकी वक्षःस्थित लक्ष्मीदेवीको भी प्राप्त नहीं हुआ। यद्यपि लक्ष्मीदेवी श्रीकृष्णके वक्ष-स्थलपर स्वर्ण-रेखाके रूपमें विराजमान हैं और श्रीकृष्णसे उनका कभी विच्छेद नहीं है, तथापि गोपियाँ ही अधिक प्रशंसनीय हैं। इसका कारण है कि लक्ष्मीदेवी केवल सम्भोग रसमें स्थित हैं, किन्तु गोपियाँ कभी सम्भोग (मिलन) और कभी विप्रलम्भ (विरह)-युक्ता होती हैं। विप्रलम्भ ही सम्भोगकी पुष्टि करके उसमें चमत्कारिता प्रकाशित करता है। लक्ष्मी वक्ष-विलासिनी प्रेयसी हैं, किन्तु गोपियाँ केवल प्रेयसी ही नहीं, वे परकीया-भाव सम्पन्न रास-रङ्गिणी हैं और श्रीकृष्णकी प्रेम माधुरीका अपूर्व रूपमें विस्तार करती हैं। रासलीला महोत्सवमें श्रीकृष्ण अत्यन्त आनन्दपूर्वक प्रेमसमुद्रकी तरङ्गोंमें डूबते-उबरते हैं। इस प्रेमरूपी समुद्रकी गोपियोंके हाव-भाव, कटाक्षरूपी उत्ताल लहरियोंमें अपनेको संरक्षित करनेके लिये वे व्रज-देवियोंके कण्ठको धारण करते हैं। श्रीकृष्णको इस अपूर्व रसका आस्वादन एकमात्र गोपियाँ ही करवानेमें समर्थ हैं।

'तासामाविर्भूच्छौरि...'—प्रेम विवर्धनमें चतुर श्रीकृष्ण राससे अन्तर्धान हो गये। विरह-कातरा गोपियाँ अन्य कोई उपाय न देखकर रोती हुईं यमुना पुलिनमें अत्यन्त करुण स्वरसे विलाप करने लगीं। व्रजरमणियाँ

विरह-वेदनासे व्याकुल हो निरङ्कुश निरन्तर अश्रुपात कर रही थीं, उस सघन वनके अन्धकारमें उनके विलापमय क्रन्दनको सुनकर अपनी कान्ति प्रकाशित करते हुए श्रीकृष्णचन्द्र उन गोपियोंके मध्य अचानक प्रकट हो गये। विदग्ध चूड़ामणि श्रीकृष्णचन्द्र व्रजदेवियोंके मध्य अपना अपूर्व सौन्दर्य प्रकाश करते हुए प्रकट हुए। तीन विशेषणोंके द्वारा श्रीशुकदेव गोस्वामी रास-रसिक श्रीकृष्णके विलास और वेशकी अपूर्वताका वर्णन कर रहे हैं। *'स्मयमान मुखाम्बुजः'*—श्रीकृष्णकी यह मुस्कान उनके स्वाभाविक हास्यसे विलक्षण है; यह गोपियोंको आश्वासन देने और उनका दुःख दूर करनेके लिये थी। विरह-तापसे गोपियोंका हृदय-कमल सन्तप्त था, श्रीकृष्णके अत्यन्त मनोहर मुखारविन्दके दर्शनसे गोपियोंका समस्त दुःख दूर हो गया। *'पीताम्बरधर'*—श्रीकृष्णने मानो गोपियोंसे अपने अपराधकी क्षमा-प्रार्थनाके लिये दोनों कन्धोंसे पीताम्बरको लटकाकर अपने हाथोंमें पकड़ रखा था, जैसे कोई अपराधी क्षमा-याचनाके लिये मुखमें तृण दबाकर दीनतापूर्वक वस्त्र गलेमें डालकर आये। *'स्रग्वी'*—उन्होंने अपने कमनीय कण्ठमें अम्लान शीतल कमलोंकी पुष्पमाला धारण कर रखी थी। गोपियोंने ही यह माला गूँथकर उन्हें पहनायी थी, इसका आलिङ्गनकर वे गोपियोंके प्रति अपनी चिर-कृतज्ञताको प्रकाशित कर रहे थे।

'साक्षान्मन्मथमन्मथः'—श्रीकृष्णकी छवि अत्यन्त सुन्दर थी और कामदेवके भी मनको मथन करते हुए वे गोपियोंके मध्य सुशोभित हो रहे थे। प्राकृत कन्दर्पका रासादि क्रीड़ाओंमें अधिकार नहीं है। श्रीकृष्णके द्वारा अपने महामोहन माधुर्यमय रूप-लावण्यका आविष्कार विरहिणी गोपियोंके विरहःदुखको विस्मरण करवानेके लिये हुआ था। ऐसा साक्षात् मन्मथ-मन्मथ रूप ही श्रृङ्गाररसमें परम आलम्बन है। अन्य रसोंमें स्थित भक्तोंके लिये ऐसे रूपके दर्शन सम्भव नहीं है, क्योंकि उनमें वैसा आधार नहीं है।"—श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी॥ 81॥

कृष्णप्राप्तिर उपाय बहुविध हय।
कृष्णप्राप्ति-तारतम्य बहुत आछय॥ 82॥

प्रतिरसकी श्रेष्ठता होनेपर भी
परस्परमें तारतम्य वर्तमान :—

किन्तु याँर येइ रस, सेइ सर्वोत्तम।
तटस्था हञा विचारिले, आछे तर-तम॥ 83॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण-प्राप्तिके अनेक प्रकारके उपाय हैं। उनके अनुसार श्रीकृष्णप्राप्तिके भी अनेक तारतम्य हैं, किन्तु जिसका जो रस है, उसके लिये वही सर्वोत्तम है। यदि तटस्थ होकर विचार किया जाय, तो उनमें तारतम्य है॥ 82-83॥

श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु (2/5/38) :—

यथोत्तरमसौ स्वादविशेषोल्लासमयपि।
रतिर्वासनया स्वाद्वी भासते कापि कस्यचित्॥ 84॥

अनुवाद—पाँचों प्रकारकी रतियाँ एक-दूसरेसे उत्तरोत्तर अधिकाधिक आस्वादनीय एवं उल्लासमयी हैं। यही रति वासना विशेषताके क्रमसे विशेष परमास्वादनीय होकर किसी विशेष भक्तके लिये मधुर रसरूपमें प्रकाशित होती है॥ 84॥

अनुभाष्य—आदिलीला 4/45 संख्या देखें॥ 84॥

मधुर-रसमें ही शान्तादि चारों रस विद्यमान :—

पूर्व-पूर्व-रसेर गुण—परे-परे हय।
एक-दुइ गणने पञ्च पर्यन्त बाड़य॥ 85॥

गुणाधिक्ये स्वादाधिक्य बाड़े प्रति-रसे।
शान्त-दास्य-सख्य-वात्सल्येर गुण मधुरेते बैसे॥ 86॥

जड़ीय दृष्टान्त; पञ्चम महाभूत 'भूमि'में ही
अन्य चार भूत विद्यमान :—

आकाशादिर गुण येन पर-परभूते।
दुइ-तिन-गणने बाड़े पञ्च पृथिवीते॥ 87॥

श्रृङ्गार-रस-लक्षण प्रेमके वशीभूत श्रीकृष्ण :—

परिपूर्ण-कृष्णप्राप्ति एइ 'प्रेमा' हैते।
एइ प्रेमार वश कृष्ण,—कहे भागवते॥ 88॥

अनुवाद—रसादिके तारतम्यसे पूर्व-पूर्व रसके गुण अगले रसमें विद्यमान रहते हैं। पूर्वका गुण अगलेमें आ जानेसे दूसरेमें दो गुण हो जाते हैं, तीसरेमें तीन और पाँचवें रस तक पाँचों गुण तक वृद्धि हो जाती है। गुणोंकी अधिकतासे प्रत्येक रसका आस्वादन भी बढ़ता जाता है। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्यके गुण मधुररसमें वर्तमान रहते हैं। इस सिद्धान्तको समझानेके लिये दृष्टान्त देते हुए कहते हैं कि आकाशादिके गुण जैसे अगले-अगले महाभूतोंमें बढ़ते जाते हैं और दो, तीनके क्रमसे पृथ्वीमें पाँचों महाभूत तक बढ़ते जाते हैं, अतः कान्ताप्रेममें पूर्व-पूर्वके चारों रसोंके गुण होनेके कारण कान्ताभाव ही सर्वश्रेष्ठ है। अतः श्रीकृष्ण इस कान्ताप्रेमके ही वशीभूत होते हैं—जैसा कि श्रीमद्भागवतमें भी कहा गया है॥ 85–88॥

अमृतप्रवाह भाष्य—प्रभो, मैंने पूर्व-पूर्व साध्योंके अर्थात् श्रीकृष्णप्राप्तिके बहुतसे उपाय बतलाये, उनमें केवलमात्र यही भेद है कि अलग-अलग उपायके अनुसार श्रीकृष्ण-प्राप्तिके तारतम्यका विचार करना होगा। मनुष्य जिन-जिन उपायोंको करनेका अधिकारी है, उन-उन उपायोंको करके ही अपनी अवस्थाके योग्य साध्यवस्तु, जो श्रीकृष्ण-प्राप्ति है, वही उसके लिये कल्याणकारी है। विशेषतः रसको प्राप्त करनेके अधिकारियोंके 'दास्य', 'सख्य', 'वात्सल्य' और 'मधुर'—ये चार प्रकारके रस ही उत्तम हैं। जो जिस रसका अधिकारी है, उसके लिये वही रस ही सर्वोत्तम है। रस-विषयमें जो राग उदय होता है, उसमें आविष्ट होकर चारों रसोंका तारतम्य दिखलायी नहीं देता; किन्तु तटस्थ अर्थात् निरपेक्ष होकर देखनेसे इन रसोंमें तारतम्य है। 'शान्त', 'दास्य', 'सख्य', 'वात्सल्य' और 'मधुर'—इन पाँचों रसोंमें क्रमशः तारतम्य है। 'शान्तरस'में श्रीकृष्णमें ऐकान्तिक निष्ठारूपी गुण **दास्यरूपमें ममतासे** युक्त होकर अधिक समृद्ध होता है। फिर **सख्यरसमें** श्रीकृष्णमें ऐकान्तिक निष्ठा और ममता **विश्रम्भके** साथ युक्त होकर और अधिक प्रफुल्लित होती है; **वात्सल्यरसमें** फिर शान्त-दास्य-सख्यके तीनों गुण **स्नेहाधिक्यके** साथ युक्त होकर दिखलायी देते हैं। **कान्तभावरूप मधुर-रसमें** ये चारों गुण **सङ्कोचरहित** होकर अतिशय माधुरी प्राप्त करते हैं। इस प्रकार गुणोंकी वृद्धिके कारण आस्वादनकी भी वृद्धि होती है। इसलिये तटस्थ विचारसे मधुर-रस सबकी अपेक्षा श्रेष्ठ है।

रसोंका तारतम्य समझानेके लिये एक जागतिक उदाहरण दिया जा रहा है,—'आकाश', 'वायु', 'अग्नि', 'जल' और 'पृथ्वी'—ये पाँच महाभूत हैं। आकाशमें 'शब्द' नामक एक गुण है; वायुमें 'शब्द' और 'स्पर्श'—दो गुण हैं; अग्निमें 'शब्द', 'स्पर्श' और 'रूप'—ये तीन गुण हैं; जलमें 'शब्द', 'स्पर्श', 'रूप' और 'रस'—ये चार गुण हैं; मिट्टीमें 'शब्द', 'स्पर्श', 'रूप', 'रस' और 'गन्ध'—ये पाँच गुण हैं। अब देखें—आकाश आदिमें एकके बाद एक भूतमें क्रमशः गुणोंकी संख्यामें वृद्धि हुई है,—पाँचों गुण ही पृथ्वीमें लक्षित होते हैं। उसी प्रकार शान्त-दास्य-सख्य-वात्सल्य-मधुरमें क्रमशः गुणोंकी वृद्धि होकर मधुररसमें पाँचों गुण ही परिपूर्ण मात्रामें पाये जाते हैं; इसलिये परिपूर्ण-श्रीकृष्णप्राप्ति 'मधुर' अथवा शृङ्गार-रस-रूपी प्रेममें ही होती है। भागवतमें कहा गया है—मधुररससे उत्फुल्ल प्रेमसे श्रीकृष्ण पूर्णतया वशीभूत होते हैं॥ 82–88॥

अनुभाष्य—'किन्तु याँर येइ रस, सेइ सर्वोत्तम'—इस वाक्यके द्वारा यह नहीं समझना चाहिये कि जिसका जैसा भी मनोधर्म या विचार होगा, वही सर्वोत्तम है; उच्छृ

"श्रुतिस्मृतिपुराणादि-पञ्चरात्रविधिं बिना।
ऐकान्तिकी हरेर्भक्तिरुत्पातायैव केवलम्॥"

"श्रुति-स्मृति पुराणादि एवं पञ्चरात्रकी विधिका त्याग करके ऐकान्तिकी हरिभक्ति भी विघ्न ही उत्पादन किया करती है।"

गृहस्थमें आसक्त व्यक्तिके लिये भागवतका व्यापार जिसे शास्त्रोंमें निन्दनीय अपराध कहा गया है, मन्त्र

देनेका व्यापार, शिष्य बनानेका व्यापार, कीर्तनका व्यापार, बहिर्मुख-सामाजिकता, लौकिकता आदि अपेक्षाओंसे युक्त मनोधर्म—इन सबको और शुद्धभक्तिको एक समान कहनेका यहाँ उद्देश्य नहीं है। आउल, बाउल, कर्त्ताभजा, नेड़ा, दरवेश, साँई, अतिबाड़ि, चूड़ाधारी, गौराङ्गनागरी, गोस्वामियोंके नये मत अथवा जाति-गोस्वामियोंके मतका प्रचार करनेवाले एवं इन जाति गोस्वामियोंके मतको ही 'षड्गोस्वामियोंका मत' कहकर लोगोंको छलनेवाले, श्रीकृष्णके अभक्त, गौरमन्त्र और गौरनामके विरोधी, नये-नये छड़ा (सिद्धान्तविरोधी कीर्तनों)की रचना करनेवाले, विग्रहके व्यापारी, धन लेकर पाठ करनेवाले आदि, नीचजातिके सङ्गसे उत्पन्न वर्णब्राह्मणताको ही 'वैदिक ब्राह्मणता' कहकर प्रचार करनेवाले, स्मार्त्त, सात्वतपञ्चरात्रके विरोधी, मायावादी, स्त्रीसङ्गी आदि कभी भी निष्किञ्चन, श्रीकृष्णके लिये समस्त चेष्टा करनेवाले, प्रतिक्षण हरिसेवामें रत सर्वस्व-त्यागी, श्रीगुरुगौराङ्गको अपने-आपको बेच देनेवाले, नैष्ठिक ब्रह्मचारी, संयत-गृहस्थ, वानप्रस्थ और त्रिदण्डिवेशधारी लोगोंके साथ एक अथवा समान नहीं हो सकते।

जिस प्रसङ्गमें कविराज गोस्वामीने इस वाक्यको उद्धृत किया है, वह सिद्धभावपञ्चक (पाँच भावोंमेंसे किसीमें सिद्धि) की बात है। अर्थात् शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—इन पाँच प्रकारके भावोंमें इन पाँच रसोंके रसिक सेवा किया करते हैं। अनर्थ निवृत्तिके बाद इन सब सिद्धभावोंमेंसे जो कोई किसीके भी नित्यसिद्ध स्वरूपके स्वभावके अनुसार क्यों न उदित हो, वह उस-उस रसके अधिकारी व्यक्तिके लिये सर्वोत्तम है। इसका कारण यह है कि सभीके विषय श्रीकृष्ण ही है, श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य-अन्य कोई प्राकृत देवतादि नहीं। और दूसरी तरफ तटस्थ अर्थात् मध्यस्थ होकर विचार करनेपर उन पाँच प्रकारके भावोंके रसास्वादनमें तारतम्य अनुभव होता है;—जैसे दास्यरसमें शान्तरस और दास्यरस,—दोनों ही एक साथ वर्तमान हैं, इसलिये वह शान्तरसकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। दूसरी ओर, सख्यरसमें शान्त और दास्य वर्तमान हैं; इसलिये वह शान्त और दास्यसे और भी उन्नत है। फिर, वात्सल्य रसमें शान्त, दास्य एवं सख्य अन्तर्भुक्त होनेके कारण उसमें पूर्वोक्त तीनों प्रकारके रसोंसे अधिक चमत्कारिता वर्तमान है। फिर, मधुररसमें पूर्ववर्ती चार प्रकारके रस विराजमान होनेसे उसकी चमत्कारिता और माधुर्य सर्वश्रेष्ठ है। वैष्णव और भक्तिसिद्धान्तोंमें निपुण महाजनोंने इस प्रकारके उत्तरोत्तर क्रमसे स्वरूपकी उपलब्धिका सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्वसमूह विचार किया है। दुर्भाग्यवशतः दैव-मायाके द्वारा विमूढ़ असत्-सिद्धान्तोंमें निपुण व्यक्ति इन सब सिद्धान्तोंकी कुछ भी उपलब्धि नहीं कर पानेके कारण शुद्धवैष्णव-सिद्धान्तोंपर दोषारोपण करते हैं,—उनका ऐसा करना बालकों जैसी बातें करनेवाले उन सभी व्यक्तियोंके दुर्भाग्यका ही परिचय देता है॥ **82-86**॥

श्रीकृष्णमें प्रेमभक्ति ही श्रीकृष्ण-प्रदाता :—
श्रीमद्भागवत (10/82/44)—

मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते।
दिष्टया यदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां मदापनः॥ 89॥

अनुवाद—मेरे प्रति भक्ति ही जीवोंके लिये अमृत है। हे गोपियों! मेरे प्रति तुम्हारा जो स्नेह है, वही एकमात्र तुम लोगोंका मुझे प्राप्त करनेका कारण है॥ **89**॥

अनुभाष्य—आदिलीला 4/23 संख्या देखें॥ **89**॥

भक्तके भजनकी गाढ़ताके तारतम्यसे ही
श्रीकृष्णभक्तिकी प्राप्तिमें भी तारतम्य :—

कृष्णेर प्रतिज्ञा दृढ़ सर्वकाले आछे।
ये यैछे भजे, कृष्ण तारे भजे तैछे॥ 90॥

गोपियोंकी मधुर-रसकी सेवाके बदले श्रीकृष्णके द्वारा
स्वयंको प्रदान करनेकी असमर्थता हेतु ऋण :—

एइ 'प्रेमे'र अनुरूप ना पारे भजिते।
अतएव 'ऋणी' हय—कहे भागवते॥ 91॥

अनुवाद—श्रीकृष्णने पहले सर्वकालके लिये एक दृढ़ प्रतिज्ञा की है कि जो मुझे जिस प्रकार भजता है, मैं भी उसका उसी प्रकारसे भजन करता हूँ। परन्तु भागवतमें कहा गया है कि माधुर्य रसमें जो श्रीकृष्णप्रेम है, उसके अनुरूप श्रीकृष्ण उसका प्रतिदान नहीं दे पाते, इसलिये वे माधुर्य रसके भक्तोंके ऋणी ही रहते हैं॥ 90-91 ॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीकृष्णकी यह साधारण प्रतिज्ञा है कि जो उनका जिस रूपमें भजन करेगा, श्रीकृष्ण भी उसका उस रूपमें भजन करेंगे। अन्यान्य रसोंके भक्तोंके भजनके अनुरूप प्रतिभजन करनेमें श्रीकृष्ण समर्थ हैं; किन्तु मधुररससे उत्फुल्ल प्रेममें भजनके अनुरूप प्रतिभजन न देख पानेके कारण श्रीकृष्णने कहा,—हे व्रजसुन्दिरयों! मैं तुम्हारे ऋणका शोधन नहीं कर पाया अर्थात् चुका नहीं पाया॥ 90-91 ॥

अनुभाष्य—प्राकृत लोगोंका विचार—"जो जिस भी भावसे भजन क्यों न करें, वे भगवान्‌को ही प्राप्त करते हैं। कर्म, ज्ञान, योग, तपस्या, जिस किसी भी उपायसे भगवान्‌का भजन किया जाय, उस उपायसे कुछ लेना देना नहीं है। जैसे, किसी स्थानपर जानेके लिये अनेक मार्ग हैं, उसी प्रकार भगवान्‌के निकट जानेके भी विभिन्न मार्ग हैं। भगवान्‌को काली, दुर्गा, शिव, गणेश, राम, हरि, ब्रह्म, जिस किसी भी नामसे क्यों न पुकारा जाय, एक ही बात है। अथवा जैसे एक ही व्यक्तिके अलग-अलग नाम हैं, तो उनमेंसे जिस किसी भी नामसे पुकारनेपर वह उत्तर देता है, उसी प्रकार भगवान्‌के सम्बन्धमें भी ऐसी बात है।"

किन्तु यह सब बातें बालकों जैसे मनोधर्मी व्यक्तियोंके लिये मनोरञ्जक होनेपर भी सारग्राही व्यक्ति उसे कुसिद्धान्तपूर्ण ही मानते हैं। जो स्वर्ग आदिकी कामनासे आधिकारिक (भगवान्‌के द्वारा अधिकार प्राप्त) देवताओंकी उपासना करेंगे, भगवान्‌से विमुख करनेवाली मायाशक्ति उनको इन सभी आधिकारिक देवताओंमें ही श्रद्धारूपी फल देकर उन्हें सर्वोत्तम मङ्गलरूपी फलसे वञ्चित कर देंगी और जन्म-मरणरूपी मालाके कर्मचक्रमें कभी स्वर्ग, तो कभी मर्त्यलोकमें भ्रमण करायेंगी। और जो नित्य भगवान्‌की सेवाके लिये प्रार्थना करेंगे, भगवान् उन्हें अपनी नित्य-सेवा प्रदान करेंगे। इसलिये जो जिस प्रकारसे भी भजन क्यों न करें, उन्हें अपने भजनके अनुरूप ही फल प्राप्त होगा, ये बात सत्य है। किन्तु यह विशेष रूपसे लक्ष्य करना उचित है कि सब फल समान नहीं हैं। धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष कामी व्यक्तियोंका फल और नित्य-अहैतुकी श्रीकृष्णसेवाकी प्रार्थना करनेवाले व्यक्तियोंको प्राप्त होने वाला फल एक नहीं है। धर्म-अर्थ आदिका फल—नश्वर स्वर्गादि है, सायुज्य-मोक्षादिका फल—आत्माका विनाश आदि है, अहैतुकी हरिसेवाका उत्तम फल—नित्य नवनवायमान हरिसेवाकी प्राप्ति अथवा भगवद्-प्रेम है। इसलिये धर्म-अर्थकामी, निर्विशेष-मुक्तिकामी और हरिसेवामें तत्पर व्यक्तियोंके फलमें 'आकाश-पाताल'का भेद है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

जड़-जगत्‌की अधिष्ठात्री जगत्-जननी महामाया और अन्यान्य आधिकारिक देवता—श्रीभगवान्‌की बहिरङ्गा शक्ति और विरूप (विपरीत) वैभव हैं। वे भगवान्‌के आदेशसे जगत्-सृष्टि-कार्योंके विभिन्न अंशोंकी देख-रेखकर रहे हैं। जगत्-सृष्टि-कार्यमें भगवान्‌की अन्तरङ्गा शक्तिका कोई सम्बन्ध नहीं है। चिद्-धाममें जो सब कार्य होते हैं, वे ही अन्तरङ्गा शक्तिके कार्य हैं, वे सब योगमायाके द्वारा साधित होते हैं। योगमाया—भगवान्‌की अन्तरङ्गा शक्ति या चिद्-शक्ति है; जो चिद्-धाममें भगवान्‌के सेवाप्रार्थी हैं, वे योगमायाकी निष्कपट श्रीकृष्ण-सेवोन्मुखी कृपा प्राप्त करते हैं। और जो जड़-ब्रह्माण्डमें उत्तरोत्तर उन्नतिके लिये धर्म, अर्थ, काम आदि अन्याभिलाषकी इच्छा करते हैं या भगवद्-सेवा-विमुखिनी निर्विशेष-गतिकी इच्छा करते हैं, वे महामाया या रुद्रादि देवताओंकी उपासना करते हैं। इसलिये देखा जाता है,—गोपियोंने नन्दगोपके पुत्रको पतिके रूपमें प्राप्त करनेके लिये अर्थात् चिद्-धाममें उनकी नित्य

सेवा प्राप्तिके लिये चिद्-शक्ति योगमायाकी आराधना की थी। और देखा जाता है कि सातवीं शताब्दीमें राजा सुरथ एवं समाधि-नामक वैश्यने अपने आपको वर्णाश्रमके अन्तर्गत कोई अभावग्रस्त जीव मानकर जड़जगत्की अधिष्ठात्री महामायाकी आराधना की थी। इसलिये जहाँ 'योगमाया' और 'जड़माया'को एक ही करके 'मूड़ि और मिश्री'को एक ही भावमें चलानेका प्रयास करनेवालोंके जैसे 'समन्वयवाद'का प्रचार किया जाता है, वहाँ अज्ञानता, मूर्खता और भगवान्के स्वरूपकी उपलब्धिका अभाव ही जानना होगा।

दूसरा, इस जगत्में देखा जाता है,—'किसीके काने पुत्रका नाम 'पद्मलोचन' (कमलनयन) होता है, किन्तु भगवान्के सम्बन्धमें ऐसा नहीं है। भगवान्के नाम और नामीमें कोई भेद नहीं है, भगवान्का कोई भी नाम निरर्थक अथवा भगवान्की वास्तविक सत्तासे अलग नहीं है। श्रीभगवान्के नाम बहुत प्रकारके हैं, जैसे परमात्मा, ब्रह्म, सृष्टिकर्त्ता, नारायण, रुक्मिणीरमण, गोपीनाथ, कृष्ण आदि। किन्तु जो भगवान्को 'सृष्टिकर्त्ता' कहकर पुकारेंगे, वे नारायणका रसास्वादन नहीं कर पायेंगे, क्योंकि 'सृष्टिकर्त्ता' आदि नामसमूह जगत्के बहिर्मुख जीवोंके द्वारा उनके प्राकृत ज्ञानके द्वारा दिये गये नाम हैं। 'सृष्टिकर्त्ता' कहनेसे भगवान्की परिपूर्ण सत्ताकी उपलब्धि नहीं होती, क्योंकि सृष्टिकार्य भगवान्की स्वरूप शक्तिका कार्य नहीं है, वह—उनकी बहिर्मुखी शक्तिका परिचायक है। और 'ब्रह्म' कहनेसे भगवान्के छह प्रकारके ऐश्वर्योंका परिचय नहीं पाया जाता; क्योंकि, भगवान्का निर्विशेष भाव ही 'ब्रह्म'के नामसे प्रसिद्ध है, इसलिये वह भगवान्के सम्पूर्ण सच्चिदानन्द विग्रहका द्योतक नाम नहीं है। 'परमात्मा' कहनेसे भी भगवान्का सम्पूर्ण परिचय नहीं होता, क्योंकि प्रत्येक जीवके हृदयमें अन्तर्यामीके रूपमें भगवान्का आंशिक परिचय ही 'परमात्मा'के नामसे प्रसिद्ध है। और, नारायणका भजन करनेवाले व्यक्ति भी श्रीकृष्णके माधुर्यकी उपलब्धि नहीं कर पाते। पुनः एक श्रीकृष्णमें ही माधुर्यके द्वारा नारायणके ऐश्वर्यको आच्छादित करके सम्पूर्ण परम-चमत्कारिताको विद्यमान देखकर श्रीकृष्णभक्त नारायणका भजन करनेकी स्पृहा नहीं करते,—गोपियाँ श्रीकृष्णको कभी भी 'रुक्मिणीरमण' कहकर सम्बोधन नहीं करतीं। 'रुक्मिणीरमण' और 'श्रीकृष्ण' जागतिक शब्दकोशके अनुसार प्रति-शब्द या समानार्थक-शब्द होनेपर भी, एकके स्थानपर दूसरा शब्द प्रयोग नहीं हो सकता। यदि मूर्खतावशतः कोई उन्हें एक ही समझकर व्यवहार करे, तो यह 'रसाभास'-दोष होता है। जिन्होंने भगवान्के स्वरूपकी उपलब्धि की है, वे अनजान लोगोंकी भाँति ऐसा रसाभास या सिद्धान्तका विरोध नहीं करते। किन्तु तो भी कलिकी प्रबलताके कारण उच्छ्र
ही उदारता अथवा महासमन्वय-वादके नामसे एवं सत्-सिद्धान्त ही मूर्ख लोगोंके द्वारा सङ्कीर्णताके नामसे प्रचारित हो रहे हैं॥ **90**॥

गोपियोंके प्रेमका ऋण श्रीकृष्ण चुका नहीं सकते :—
श्रीमद्भागवत (10/32/22)—

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या माभजन दुर्जय-गेहशृङ्खलाः
संवृश्चय तद्वः प्रतियातु साधुना॥ 92॥

अनुवाद—हे प्यारी गोपियों! मेरे साथ तुम्हारा मिलन सर्वथा निर्दोष और निर्मल-निजसुखकी कामनाके लेशसे भी रहित विशुद्ध प्रेममय है। तुमने घर-गृहस्थीकी दुष्कर बेड़ियोंको तोड़कर तथा लोक-मर्यादाका उल्लङ्घनकर मेरा भजन किया है। मैं देवताओं जैसी लम्बी आयु प्राप्त करके भी तुम्हारे इस प्रेम, त्याग और सेवाका बिन्दुमात्र भी बदला चुकानेमें असमर्थ हूँ। तुम अपने सौम्य-स्वभावसे ही मुझे उऋण कर सकती हो, किन्तु मैं तो तुम्हारे प्रेमका सदा ऋणी ही हूँ और रहूँगा॥ **92**॥

अनुभाष्य— आदिलीला 4/177-180 संख्या देखें॥ **90–92**॥

अमृतानुकणिका—"श्रीकृष्ण अन्यान्य रसोंके भक्तोंके भजनके अनुरूप प्रतिदान करनेमें समर्थ हैं, परन्तु वे व्रजगोपियोंके प्रेमके अनुरूप प्रतिदान नहीं कर सके, इसलिये उनके ऋणी बन गये। भागवतके उपरोक्त श्लोकमें श्रीकृष्णने स्वयं इस बातको स्वीकार किया है।

शरद पूर्णिमाकी रात्रिको श्रीकृष्ण और गोपियोंकी रास-क्रीड़ा हुई, उसमें अन्यान्य गोपियोंको सौभाग्य-मद और श्रीराधाको मान हो गया। यह देखकर श्रीकृष्णने सोचा कि इन परिस्थितियोंमें सुष्ठु रूपसे रास होना सम्भव नहीं है। अतः वे अन्य गोपियोंके सौभाग्य-मदको दूर करनेके लिये और श्रीराधाके मान-प्रसादन हेतु श्रीराधाको लेकर अन्तर्धान हो गये। फिर एकान्तमें शृङ्गार, वार्त्तालाप और विहार-विलास आदिके पश्चात् श्रीराधाको भी छोड़कर पुनः अन्तर्धान हो गये। सब गोपियोंने तीव्र विरह-वेदनायुक्त गोपीगीतका अत्यन्त करुण स्वरमें गान किया जिसे सुनकर श्रीकृष्ण अपने मन्मथ-मन्मथ रूपमें पुनः आविर्भूत हुए। गोपियोंने विचार किया—'अहो! प्रेमियोंके शिरोमणि होकर भी इन्होंने हम लोगोंकी ऐसी दुरावस्था की है, इसलिये इनका हमारे प्रति क्या भाव है, क्या यह प्रीतियुक्त है या उदासीन है अथवा द्रोहपूर्ण है?' इसे जाननेके लिये गोपियोंने उनसे तीन प्रश्न किये—'हे कृष्ण, एक श्रेणीके लोग केवल प्रेम करनेवालोंसे प्रेम करते हैं, इसके विपरीत एक अन्य श्रेणीके लोग प्रेम न करनेवालोंसे भी प्रेम करते हैं, तथा कुछ लोग ऐसे होते हैं जो प्रेम करनेवाले और न करनेवाले—दोनोंसे ही प्रेम नहीं करते। हे प्रियतम, हम लोगोंके तीन प्रश्नोंका उत्तर यथार्थ रूपमें प्रदान करो। तुम इनमेंसे किसे अच्छा समझते हो?'

श्रीकृष्णने कहा—'हे मेरी प्रिय सखियों, जो प्रेम करनेपर ही बदलेमें प्रेम करते हैं, वे प्रेमी नहीं व्यापार करनेवाले बनिये हैं। जो प्रेम नहीं करनेपर भी प्रेम करते हैं, वे करुणाशील व्यक्ति, गुरुजन और माता-पिता हैं। इस श्लोकमें श्रीकृष्णने व्रजगोपियोंको सुमध्यमा कहकर सम्बोधित किया है। श्लेष भावसे वे यह कह रहे हैं कि 'तुम्हारी शोभा तुम्हारे इस मध्यम प्रश्नमें ही स्थापित है। इस सुशोभन मध्यवर्त्ती प्रश्नके उत्तरकी आधार तो तुम लोग ही हो। प्रेम न करनेवालोंसे भी प्रेम करना—यह गुण तुम लोगोंमें उज्ज्वल रूपसे प्रकाशित हो रहा है। जो लोग प्रीति करनेवालोंसे भी प्रीति नहीं करते, वे चार प्रकारके होते हैं—आत्माराम, आप्तकाम, अकृतज्ञ और गुरुद्रोही। आत्माराम अपनी आत्मामें ही रमणशील होनेके कारण स्वयंमें सम्पूर्ण होते हैं, आप्तकाम जन सभी कामनाएँ पूर्ण रहनेके कारण भोग-इच्छासे रहित होते हैं, अकृतज्ञ दूसरोंके द्वारा किये हुए उपकार आदिको स्मरण नहीं करते और गुरुद्रोही तो उपकारीके प्रति भी द्रोहका आचरण करते हैं।' यदि गोपियाँ कहें कि पहले और दूसरे प्रश्नके उत्तरके उदाहरण तुम नहीं हो, तुम तीसरी श्रेणीके अन्तर्गत दोषी हो। ऐसा कहकर वे एक-दूसरेको आँखोंके इशारेकर मुस्कुराने लगीं। तो श्रीकृष्ण कहने लगे—'हे सखियों, सुनो! क्या तुम मेरे मुखसे मेरी पराजय सुननेकी इच्छा कर रही हो? हे मन्द-मन्द मुस्कानके विलाससे युक्त कटाक्षकी नटन-चातुरीकी चूड़ामणि! तुम लोगोंको अपना दर्शनानन्द प्रदान करनेके कारण मैं गुरुद्रोही नहीं हूँ। हे गोपियों! तुम मेरी अत्यन्त प्रिया हो और मैं तुम्हारा परम प्रियतम हूँ। इसलिये तुम लोगोंके द्वारा मेरे प्रेममें दोष देखना उचित नहीं है। मैं तुम लोगोंका प्रेमालाप श्रवण करनेके लिये अन्तर्हित हो गया था। हे सखियों! मैं तो प्रेम करनेवालोंसे भी वैसा प्रेम नहीं करता जैसा करना चाहिये। मैं ऐसा इसलिये करता हूँ जिससे उनकी चित्तवृत्ति मुझमें लगी रहे। जैसे निर्धन व्यक्तिको कभी बहुत-सा धन मिल जाये और फिर वह खो जाय, तो उसका हृदय खोये हुए धनके चिन्तनमें निमग्न रहता है। वह भूख, प्यास आदि दूसरी वस्तुओंको भूल जाता है। उसी प्रकार मैं भी मिलकर छिप जाता हूँ, जिससे मेरा चिन्तन नित्य-निरन्तर बना रहे। हे प्रियाओं, मेरे

मनमें सदैव जो बात उदित होती है, उसे सुनो। मेरे साथ तुम्हारा यह मिलन निर्मल और निर्दोष है। यह संयोग काममय प्रतीत होनेपर भी वस्तुतः निर्मल प्रेममय होनेके कारण पवित्र और निर्दोष है। इस मिलनकी यदि कोई निन्दा करता है, तो वह स्वयं निन्दनीय है, वह प्रेमका मर्म नहीं जानता।' गोपियोंका प्रेम और संयोग प्रेमका परिपक्व विलास है। इस प्रकार स्मृतिशास्त्रके द्वारा स्वीकृत कामादिका खण्डन हुआ है।

श्रीकृष्णने आगे कहा,—'हे गोपियों! तुम्हारे जो साधुकृत्य हैं, वे असाधारण हैं। मैं वैसा करनेमें समर्थ नहीं हूँ। मैं देवताओं जैसी परम आयु पाकर भी तुम्हारे साधुकृत्यका ऋण-शोधन करनेमें समर्थ नहीं हो पाऊँगा। तुम लोगोंने उचित-अनुचितकी विवेचना न कर लोकधर्मका त्याग किया है, धर्म-अधर्मका विचार न कर वेद-धर्मका विसर्जन किया है, अपने आत्मीय स्वजन, बन्धु-बान्धव सबका परित्यागकर मेरे पास आयी हो, अर्थात् तुम लोगोंने गृहस्थ धर्मकी शृङ्खलाओंमें पति, श्वसुर, पिता, भाई आदिके स्नेह-बन्धनको छिन्न-भिन्नकर मेरा भजन किया है, तुम मेरे प्रति एकनिष्ठ हुई हो। किन्तु मैंने माता-पिता, भाई, बन्धु, बान्धवों सभीके प्रति स्नेह-सम्बन्ध रखते हुए तुम्हारा भजन किया है। मेरा चित्त अनेक-अनेक भक्तोंके प्रति प्रेमयुक्त होनेके कारण बहु-निष्ठ है। किन्तु तुम्हारा चित्त मुझमें एकनिष्ठ है। इसका प्रतिदान करनेमें मैं सफल नहीं हो सकता, यह मेरे सामर्थ्यकी बात नहीं है। तुम लोगोंके सुशीलता गुणके द्वारा ही मैं ऋणमुक्त हो सकता हूँ; किन्तु वास्तवमें मैं तुम लोगोंका ऋणी ही रहना चाहता हूँ।'

व्रज-गोपियोंके भाव-विशेषका परम आश्चर्यपूर्ण माहात्म्य स्वयं श्रीभगवान् अपने मुखसे वर्णन कर रहे हैं। भगवान् गोपियोंके प्रेमसे पराजित हो गये। अपनी प्रतिज्ञापर कटिबद्ध न रहनेके कारण वे गोपियोंके प्रेमके ऋणी हो गये। यह श्रीभगवान्‌की परम-विनय उक्तिकी माधुरी ही है—ऐसा समझना होगा।

श्रीसनातन गोस्वामीके अनुसार मूल श्लोकके *'स्वसाधुकृत्य'* पदका अर्थ है—'मेरे प्रति तुम्हारा 'सु' अर्थात् सुष्ठु असाधुकृत्य रूप निष्ठुरताका भाव विद्यमान रहनेपर वे कार्य साधुकृत्य किस प्रकार होंगे? तुम लोग मुझसे कहती हो—'तुम महाधूर्त्त हो! तुम्हारे मुखमें एक बात और मनमें दूसरी, तुम्हारे वचन मन्द-मन्द मुस्कानयुक्त होनेपर भी उनमें नारी-वधकी वासनाका गूढ़ विष रहता है। व्याध जिस प्रकार मधुर वंशीध्वनिके द्वारा हिरणीका चित्त आकर्षणकर फिर उसका वध करता है, तुम्हारी वंशीध्वनि भी उसी प्रकारसे ही मधुर है। तुमने जन्म लेते ही पूतनाका वध किया था, इसलिये जन्मसे ही नारीवध करना तुम्हारे जीवनका व्रत है। तुम महाचोर-चूड़ामणि हो। बाल अवस्थामें तुमने गोपियोंके घर-घरसे मक्खन चुराया, किशोर अवस्थामें तुमने कात्यायनी व्रत करनेवाली कुमारी गोपियोंके वस्त्रहरणके छलसे उनकी लज्जाका हरण किया तथा मर्यादा प्राप्त कुलस्त्रियोंके पातिव्रत्य धर्मका हरण किया। हे दुल्लीलशेखर! हे कितवेन्द्र धूर्त्तराज! आदि तुम्हारे ये कठोर वचनरूप महारससिन्धुकी तरङ्गमाला मेरे हृदयको उद्वेलित करती है। इसलिये इन वचनोंके द्वारा तुम्हारे साधुकृत्य किस प्रकार निष्पन्न होंगे?' वास्तवमें व्रजगोपियोंके साथ निरन्तर क्रीड़ाके लोभसे ही श्रीकृष्ण ये चातुरीपूर्ण वचन कह रहे हैं।"—श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी॥ **90–92**॥

गोपियोंके मधुर-प्रेममें ही
श्रीकृष्ण-माधुर्य-विलास प्रकटित :—

यद्यपि सौन्दर्य कृष्ण-माधुर्येर धुर्य।
व्रजदेवीर सङ्गे ताँर बाड़ये माधुर्य॥ 93॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **93**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—यद्यपि श्रीकृष्णका असमोर्द्ध सौन्दर्य ही श्रीकृष्ण-माधुर्यकी पराकाष्ठा है, तथापि व्रजदेवियोंका सङ्ग होनेसे वह माधुर्य अनन्तगुणा वृद्धि प्राप्त करता है; इसलिये गोपीजन-वल्लभ-प्रेम ही सभी भक्तोंके लिये साध्यसार है। इसमें भक्तको जिस प्रकार

(परिपूर्ण-माधुर्यमय) श्रीकृष्णकी प्राप्ति होती है, वैसी अन्य रसकी किसी अवस्थामें नहीं होती॥ 93॥

गोपीके मध्य श्रीकृष्ण—जैसे मणिके बीचमें मरकत :—
श्रीमद्भागवत (10/33/6)—

तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान् देवकीसुतः।
मध्ये मणीनां हैमानां महामरकतो यथा॥ 94॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 94॥

अमृतप्रवाह भाष्य—देवकीसुत भगवान् समस्त सौन्दर्यके सार होनेपर भी व्रजदेवियोंके साथ वे सोनेकी मणियोंके बीच महा-मरकतके समान अतिशय शोभायमान हुए थे॥ 94॥

अनुभाष्य—श्रीशुकदेवके द्वारा परीक्षितको रासलीला करनेवाली गोपियोंके बीचमें श्रीकृष्णके सौन्दर्यका वर्णन—

तत्र (वृन्दावने रासमण्डले) हैमानां (सुवर्णखचितानां) मणिनां मध्ये महामरकतः यथा, [तथा इव] ताभिः (व्रजदेवीभिः) [वेष्टितः सन्] भगवान् देवकीसुतः अतिशुशुभे।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 94॥

अमृतानुकणिका—"श्रीकृष्णके प्रेमपूर्ण अत्यन्त मनोहर वचनोंको सुनकर गोपियोंका विरहसे उदित सन्ताप दूर हो गया। गोपियों और श्रीकृष्णके प्रश्नोत्तर समाप्त होनेपर गोपियोंका मान शान्त हुआ। तदनन्तर उस मनोहर यमुना पुलिनमें श्रीकृष्णने अपनी प्रीतिपरायण अनुरागी गोपियोंके साथ रासक्रीड़ा आरम्भ की। *'मध्ये मणिनां हेमानां महामरकत यथा'*—उस रासमण्डलमें व्रजसुन्दरियोंके मध्य भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जैसे स्वर्णमयी-मणियोंकी मालाके बीचमें ज्योतिर्मयी नीलमणि चमक रही हो। श्रीकृष्णका वर्ण इन्द्रनीलमणिके समान और गोपियोंका वर्ण स्वर्णके समान है। गोपियाँ गोलाकार मण्डलमें थीं, इसलिये उन्हें स्वर्ण मणियोंसे निर्मित हारकी उपमा दी है। गोपियोंकी स्वर्ण कान्तिसे मिलकर श्रीकृष्णकी कान्ति मरकत वर्णकी हुई। गोपियोंके आलिङ्गनसे उनके पीतवर्णसे श्रीकृष्णके श्यामल शरीरकी आभा कुछ ढक गयी, उसपर गोपियोंकी अङ्गकान्तिकी परछाईं पड़ने लगी और वे पीताभा लिये श्यामल वर्णके दिखने लगे। श्रीकृष्णकी शोभा अनेकों गुणा और बढ़ गयी—*'अति शुशुभे'* अर्थात् अतुलनीय रूपसे शोभित हुए। वस्तुतः श्रीभगवान् प्रकाशभेदसे अनेकों होकर विराजमान हो रहे थे तथा रासमण्डलीके केन्द्रमें भी श्रीकृष्ण श्रीराधाके साथ वेणुवादनपूर्वक भ्रमण करते-करते विहार कर रहे थे। श्रीराधाकृष्ण युगलका यह प्रकाश सम्पूर्ण रासमण्डलीकी शोभाका अतिशय वर्धन कर रहा था। क्रमदीपिकाके अनुसार 'श्रीकृष्णने अपने दिव्यातिदिव्य विग्रहोंको अनेकों रूपोंमें प्रकाशित किया। दो-दो गोपियोंके मध्य एक-एक रूपमें प्रवेश करके अपनी दोनों भुजाओंको अपनी प्रेयसियोंके गलेमें डालकर विराजमान हुए।'

प्रस्तुत श्लोकमें भगवान्को 'देवकीसुत' कहकर सम्बोधित किया है; विष्णुपुराणके अनुसार श्रीनन्द महाराजकी पत्नीके दो नाम हैं—एक यशोदा और दूसरा देवकी। अतः देवकीसुत कहनेसे यशोदानन्दन ही उपलक्षित होते हैं। देवकीसुत एकवचनमें है और गोपियाँ शतकोटि संख्यामें, तो क्या श्रीकृष्ण रासमण्डलमें एक थे या प्रत्येक गोपीके साथ एक-एक? इससे अगले श्लोकमें श्रीशुकदेव गोस्वामी वर्णन कर रहे हैं—'गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः॥' अर्थात् 'गान करती हुई श्रीकृष्ण-प्रियाएँ मेघमें विद्युतकी भाँति सुशोभित हो रही थीं।' इसकी टीकामें श्रील श्रीधरस्वामी कहते हैं—'तत्र नानामूर्त्तिः कृष्णो मेघचक्रमिव' अर्थात् 'श्रीकृष्ण नाना मूर्तियोंमें मेघचक्रकी भाँति प्रकाशित होने लगे।' पूर्ववर्त्ती श्लोक (10/33/3)में भी कहा गया है—'रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डितः। योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः।' अर्थात् 'सम्पूर्ण योगके स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण दो-दो गोपियोंके बीच प्रकट हो गये और उनके गलेमें अपनी बाहें डाल दीं।' इस प्रकार एक गोपी और एक कृष्ण—इस क्रमके कारण प्रत्येक गोपी ऐसा अनुभव कर रही थीं कि मेरे प्रियतम मेरे पास ही हैं। ऐसा समझकर गोपियाँ

आनन्दसे ऐसी विह्वल हो गयीं कि वे यह न समझ सकीं कि श्रीकृष्ण उनके दोनों ओर विराजमान हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं—'श्रीकृष्ण गोपीमण्डलके मध्यमें विराजमान रहते हुए ऐसी तीव्र गतिसे नृत्य कर रहे थे कि एक परमाणु मात्र समयके भीतर ही मध्य-स्थलसे आकर मण्डलस्थ करोड़ों गोपियोंको नृत्य-सहित आलिङ्गन करते हुए पुनः मध्यस्थलमें उपस्थित हो जाते थे। श्रीकृष्णका यह तीव्र गतिसे नृत्य-सञ्चालन अलात-चक्रकी अपेक्षा भी अत्यन्त अधिक तीव्र सूचित हो रहा है, क्योंकि उन समस्त गोपियोंने श्रीकृष्णको अपने समीप ही अनुभव किया था।'

इस प्रकारकी अद्भुत क्रियाके सम्पादनका विशेषण है—*'योगेश्वर'*। श्रीकृष्ण दुर्घटन-घटन पटीयसी 'योगमाया'के अधीश्वर होनेके कारण 'योगेश्वर' हैं। समस्त गोपियाँ ही श्रीकृष्णके आलिङ्गनकी इच्छाका पोषण करती हैं और श्रीकृष्ण भी उनकी इच्छा पूर्ण करना चाहते हैं। इसलिये योगमायाने जितनी गोपियाँ थीं, उतनी संख्यामें श्रीकृष्णकी प्रकाशमूर्ति प्रकटितकर दोनों पक्षोंकी इच्छा पूर्ण की। ऐसा होनेपर भी श्रीकृष्ण जो प्रत्येक गोपीके निकट देखे जा रहे थे, वह उनकी नाट्य-विद्याका प्रभाव है। साथ ही श्रीकृष्ण श्रीवृषभानुनन्दिनीके साथ आलिङ्गित मध्य-स्थलमें भी सुशोभित हो रहे थे। ये सब क्रीड़ाएँ श्रीभगवान्‌की भगवत्ता-विशेषके द्वारा नहीं अपितु नृत्य-शक्तिके अपूर्व कौशलके कारण हुईं।"—श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी॥ **93-94**॥

(ग) गोपियोंका श्रीकृष्णप्रेम साध्यकी सीमा होनेपर भी महाप्रभुके द्वारा पुनः प्रश्न :—

प्रभु कहे,—"एइ 'साध्यावधि' सुनिश्चय।
कृपा करि' कह, यदि आगे किछु हय॥"95॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **95**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—यहाँ तकका सिद्धान्त श्रवण करके महाप्रभुने कहा,—**"श्रीगोपीजनवल्लभ-प्रेम ही साध्यतत्त्वकी सीमा** है, तथापि यदि और भी कुछ हो, उसे बोलो॥"**95**॥

प्रश्नकर्त्ता महाप्रभुका 'असमोर्द्धत्व'-रूपमें श्रीरायको ज्ञान :—

राय कहे,—"इहार आगे पुछे हेन जने।
एतदिन नाहि जानि, आछये भुवने॥96॥

अनुवाद—श्रीरामानन्द रायने कहा,—"मैं अब तक नहीं जानता था कि इस त्रिभुवनमें ऐसा कोई व्यक्ति होगा, जो इसके भी आगे कुछ और पूछेगा॥ **96**॥

(घ) श्रीराधाका श्रीकृष्णप्रेम ही—साध्यशिरोमणि :—

ईँहार मध्ये राधार प्रेम—'साध्यशिरोमणि'।
याँहार महिमा सर्वशास्त्रेते बाखानि॥97॥

अनुवाद—इस कान्ताप्रेमके बीचमें तो बस श्रीराधाका प्रेम ही है, जो 'साध्यशिरोमणि' है और जिसकी महिमा सभी शास्त्रोंमें वर्णन की गयी है॥ **97**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—साधारण गोपियोंका जो श्रीकृष्णप्रेम है, उसमेंसे **श्रीराधाजीका श्रीकृष्णप्रेम ही साध्य-शिरोमणि-तत्त्व** है। साधारण जीवोंके लिये इस भाव (श्रीराधाजीके) जैसे भावको ग्रहण करनेका उपदेश नहीं है। किन्तु उस भावके अनुगत अर्थात् उसके अनुरूप श्रीकृष्णप्रेमके अति-उच्च भाव ग्रहण करनेकी जीवोंकी योग्यता सिद्धावस्थामें हो सकती है। साधनावस्थामें राधिकाकी सखी और उनकी परिचारिकाओं (दासियों)का भाव ही अनुसरणीय है। **उद्धव-दर्शनसे राधिकाके जो भाव महाप्रभुमें लक्षित होते थे, वे भाव जीवोंके लिये साध्य नहीं है, किन्तु कुछ अन्य प्रकारसे अनुसरणीय हैं**॥ 97॥

श्रीराधाके समान श्रीराधाकुण्ड भी श्रीकृष्णको प्रिय :—
लघुभागवतामृत (2/45)में उद्धृत पद्मपुराण वाक्य—

यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा।
सर्वगोपीषु सैवैका विष्णोरत्यन्तवल्लभा॥98॥

अनुवाद—श्रीराधिका जिस प्रकार श्रीकृष्णकी प्रिया हैं, राधाकुण्ड भी वैसे ही उनका प्रिय स्थान है। सभी गोपियोंमें श्रीराधा ही श्रीकृष्णकी अत्यन्त प्रिया हैं॥ **98**॥

अनुभाष्य—आदिलीला 4/215 संख्या देखें॥ **98**॥

भागवतमें श्रीराधाको इङ्गित करना
और उनका अद्वितीयत्व :—
श्रीमद्भागवत (10/30/28)—

अनयाराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद्रहः॥ 99॥

अनुवाद—हे सखि! हम लोगोंको परित्यागकर श्रीकृष्ण जिन गोपीको एकान्तमें ले गये हैं, उन्होंने अवश्य ही ईश्वर श्रीहरिकी अधिक रूपसे आराधना की होगी। इसका गूढ़ अर्थ यह है कि वे कृष्णकान्ताओंकी शिरोमणि हैं, इसलिये उनका नाम 'राधिका' हुआ है॥ **99**॥

अनुभाष्य—आदिलीला 4/88 संख्या देखें॥ **99**॥

अमृतानुकणिका—"श्रीराय रामानन्दसे साध्य-तत्त्वकी सीमा कान्तप्रेमके विषयमें सुनकर महाप्रभुने आगे भी कुछ अधिक सुननेकी जिज्ञासा की; वास्तवमें वे श्रीराधाके प्रेमके विषयमें सुनना चाहते थे। श्रीरायने भी कहा कान्ताप्रेमके मध्य श्रीराधाप्रेम ही 'साध्य शिरोमणि' है, इसकी महिमा समस्त शास्त्रोंमें वर्णित है। क्रमदीपिका आदि आगम ग्रन्थोंमें ऐसा उल्लेख है कि 'व्रजमें सैंकड़ों कोटि प्रमदाएँ (प्रेम-मदसे परिपूर्ण) हैं' और इन सबमें श्रीराधा ही सब प्रकारसे सर्वश्रेष्ठा हैं। भगवान्‌की समस्त शक्तियोंमें 'ह्लादिनी' नामक जो सर्वश्रेष्ठ महाशक्ति है, श्रीराधा उस ह्लादिनीकी भी सार-स्वरूपा, महाभाव-स्वरूपा और अनन्त गुणशालिनी हैं। व्रजकी कोटि-कोटि गोपियोंके अनेक यूथ हैं। इन यूथेश्वरियोंमें परस्पर चार भेद हैं—स्वपक्षा, विपक्षा, सुहृत्-पक्षा और तटस्था। श्रीराधाकी सखियाँ—ललिता, विशाखा आदि स्वपक्षा हैं, श्रीमती चन्द्रावली श्रीराधाकी विपक्षा हैं, श्यामला सखी सुहृत्-पक्षा हैं और भद्रा तटस्थ-पक्षा हैं।

श्रीमती राधिका धीराधीरा मध्या, वाम स्वभावयुक्त, समस्त गोपियोंमें श्रीकृष्णकी सर्वाधिक प्रियतमा हैं। इसकी पुष्टि उपरोक्त श्लोकसे हो रही है—'यथा राधा प्रिया..।' वे सुरम्य अङ्गयुक्त सर्व-सुलक्षणशालिनी हैं; महामाधुरी, प्रेम-विदग्धता आदि गुणोंमें पराकाष्ठा प्राप्त हैं। जिस प्रकार नायकके सभी भेद और अवस्था श्रीकृष्णमें विद्यमान हैं, उसी प्रकार श्रीमती राधिकामें सभी नायिकाओंकी प्रायः सभी अवस्थाएँ विराजमान होती हैं। उनमें केवल स्वकीया और कन्यका अवस्था-भेद और कनिष्ठा भावभेद नहीं पाया जाता। वे समस्त प्रकारके भावोंकी रस-चमत्कारिता तथा अपूर्व प्रेम-विदग्धताके कारण श्रीकृष्णको अनन्त प्रकारसे रसास्वादन कराती हैं और अखिलरसामृतमूर्ति, 'रसो वै सः' को परितृप्त करनेमें कुशल और समर्था हैं।

'अनयाराधितो नूनं...'—वे श्रीराधा ही श्रीकृष्णकी सर्वश्रेष्ठ प्रियतमा हैं। यद्यपि श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहीं भी प्रत्यक्ष रूपमें श्रीराधाका नाम उच्चारण नहीं किया है, किन्तु श्रीराधाकी कृपासे उनकी सौभाग्यरूपी दुन्दुभि बजानेके लिये उनके मुखचन्द्रसे श्रीराधिकाका नाम स्वयं ही निकल गया। रासलीलाके मध्य श्रीराधा यह देखकर मानिनी हो गईं थी कि श्रीकृष्ण सभी गोपियोंको समभावसे आदर और प्रेमालिङ्गन प्रदान कर रहे हैं, इसलिये वे रास छोड़कर चली गईं। श्रीराधाको न देखकर श्रीकृष्ण व्याकुल होकर उन्हें मनानेके लिये उनके पीछे-पीछे चले गये। श्रीकृष्णको अपने मध्य न देखकर गोपियाँ उनका अन्वेषण करने लगीं। भागवतमें केवल श्रीकृष्णके ही अन्तर्धान होनेका वर्णन है, उनके साथ किसी गोपीके जानेका स्पष्ट उल्लेख नहीं है। केवल श्लोक (10/30/11)में पहली बार गोपियाँ हिरणियोंसे जिज्ञासा करते हुए कह रही हैं—'अप्येणपत्न्युपगतः' अर्थात् हे हिरण पत्नियों! कृष्ण क्या (अपनी) प्रियाके साथ यहाँ आये थे?' जिस समय श्रीराधिकाको लेकर कृष्ण सहसा अन्तर्हित हुए, उस समय स्वपक्षा सखियाँ

श्रीराधाको नहीं देखकर समझ गईं कि हमारी राधाको लेकर ही कृष्ण अन्तर्धान हुए हैं। अतः वे युगलको ढूँढनेमें व्यग्र हो गईं।

किन्तु जो गोपियाँ इस रहस्यको नहीं समझ पायीं, वे श्रीकृष्णको ही खोजनेमें ही तत्पर थीं। खोजते-खोजते उन्होंने श्रीकृष्णके चरण-चिह्न देखे, कुछ आगे बढ़नेपर श्रीकृष्णके चरण-चिह्नोंके मध्य छोटे आकारवाले किसी रमणीके पद-चिह्नोंको भी देखा। स्वपक्षा सखियाँ अन्तरङ्गा होनेके कारण उन चरण-चिह्नोंको पहचान गईं, परन्तु गम्भीरताके साथ चुप रहीं। विपक्षा चन्द्रावली आदि दुःखसे अधीर होनेके कारण कुछ बोल नहीं सकीं। तटस्था गोपियोंने इसका विचार नहीं किया कि श्रीकृष्णके चरण-चिह्नोंके साथ किसी रमणीके भी चरण-चिह्न हैं, वे भी चुप रहीं। प्रस्तुत श्लोक श्रीराधाकी सुहृत्-पक्षा गोपियोंके द्वारा उच्चारित हुआ है। उनके कहनेका भाव है—'गोविन्द इस रमणीके साथ रमण करनेके लिये उसे अपने अङ्कमें वहन करके ले गये हैं। एक निकुञ्जसे दूसरेमें प्रवेश करते हुए विलास कर रहे हैं। उन्होंने पुष्पोंका चयन करके इस शृङ्गार-वटमें उस कान्ताका केश-प्रसाधन किया।'

उधर वनप्रदेशमें चलते-चलते श्रीराधाने कहा—'बहुत चलनेके कारण मैं थक गई हूँ, अब चल नहीं पा रही हूँ।' श्रीकृष्ण बोले—'अन्य सब गोपियाँ यहींपर आनेवाली हैं। तब हमारे निर्जन विहारमें बाधा पड़ जायेगी।' श्रीराधाने कहा—'मुझे पहलेकी भाँति उठाकर ले चलो।' श्रीकृष्णने कहा—'प्रिये! क्या तुम्हें किसी निभृत निकुञ्जमें पुष्पोंकी शय्यापर ले चलूँ?' श्रीराधाने कहा—'जहाँ तुम्हारा मन चाहे वहाँ ले चलो।' श्रीकृष्ण बोले—'अच्छा प्रिये, तुम मेरे कन्धेपर चढ़ जाओ।' यह सुनकर जैसे ही वे श्रीकृष्णके कन्धेपर चढ़ने लगीं, उसी क्षण श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये और श्रीराधा निरन्तर विलाप करने लगीं—'हा नाथ! हा रमण! हा प्रेष्ठ! हा महाभुज! तुम कहाँ हो? कहाँ हो?' इसके पश्चात् श्रीराधामें और विलाप करनेकी शक्ति भी नहीं रही और वे विरहमें मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़ीं। श्रीकृष्णको खोजते हुए अन्य गोपियाँ वहीं आ पहुँचीं। उन्होंने विद्युतके समान उज्ज्वल कान्तियुक्त उस सखीको भूमिपर पड़ा देखा। सखियाँ उच्च स्वरसे रोते-रोते यत्नपूर्वक पंखा झलकर सेवाके द्वारा श्रीराधाको सचेत करनेकी चेष्टा करने लगीं।

श्रीकृष्ण श्रीराधाको लेकर आये, उनका शृङ्गार किया, अन्तमें उन्हें भी छोड़कर इसलिये चले गये कि उन्होंने विचार किया—'राधाने मेरे साथ विलासरसमें आपेसे बाहर होकर नायिकाके स्वधर्म वाम्यता और लज्जाका विसर्जन कर दिया है। सुनायिकाएँ कभी भी नायकको पुष्प-शय्यापर ले जानेकी सम्मति प्रदान नहीं करतीं। यदि राधिकाने वाम्य-रूप स्वधर्मका परित्यागकर दिया, तब मुझे भी नायकके कान्ताको अनुगमन करनेके दाक्षिण-भावको त्यागकर वाम्य-भावको ग्रहण करना चाहिये, अन्यथा यह रसजनक नहीं होगा। दोनों ही वाम्य अथवा दाक्षिण हों, तो मिलन सुरस नहीं होता। इसके अतिरिक्त गोपियोंने राधामें केवल मेरे मिलन-जनित सौभाग्यका दर्शन किया है, जब वे राधाकी तीव्र विरहमें उदित होनेवाली असाधारण दशाको भी देखेंगी कि राधाका विरह-दुःख दावानलके समान है और उनका विरह-दुःख एक दीप-शिखाके समान; तब वे राधाके आनुगत्यको स्वीकार करेंगी। साथ ही इसके द्वारा अन्य सभी गोपियोंकी ईर्ष्या भी दूर हो जायेगी और सभीमें एक मतका स्थापन होगा।'

श्रीकृष्ण एक कार्यके द्वारा अनेक कार्य सम्पादन करते हैं, यह उनकी परम चातुरी है। पक्षान्तरमें श्रीकृष्णका विचार है—'मेरे द्वारा दिये गये विरहमें राधाको देखकर सभी गोपियोंकी एक जैसी विरह-दशा हो जायेगी तथा सभीका चित्त एक भावसे मुझमें निविष्ट हो जायेगा। इस प्रकार रासलीला भी सार्थक होगी।'"—श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी॥ **97–99**॥

महाप्रभुका उल्लास और श्रीरायकी प्रशंसा करना :—

प्रभु कहे,—"आगे कह, शुनिते पाइ सुखे।
अपूर्वामृत-नदी बहे तोमार मुखे॥ 100॥

अद्वितीया श्रीराधाके प्रति श्रीकृष्णका निरपेक्ष प्रेम :—

चुरि करि' राधाके निल गोपीगणेर डरे।
अन्यापेक्षा हैले प्रेमेर गाढ़ता ना स्फुरे॥ 101॥

श्रीराधामें श्रीकृष्णका एकनिष्ठ प्रेम :—

राधा लागि' गोपीरे यदि साक्षात् करे त्याग।
तबे जानि,—राधाय कृष्णेर गाढ़-अनुराग॥"102॥

अनुवाद—इस श्लोकको सुनकर महाप्रभु गद्गद हो उठे और कहने लगे,—"आगे और कहो राय, मुझे यह सुनकर बड़ा सुख प्राप्त हो रहा है। तुम्हारे मुखसे अद्भुत, अनुपम, अमृतकी चमत्कारपूर्ण नदी प्रवाहित हो रही है। श्रीकृष्ण अन्य गोपियोंके भयसे श्रीराधाको चोरी करके ले गये। जहाँ अन्यापेक्षा है अर्थात् वे दूसरी गोपियोंसे भी प्रेम करते हैं, वहाँ श्रीराधाके प्रेमकी प्रगाढ़ता दूसरी गोपियोंसे अधिक प्रमाणित नहीं होती। यदि श्रीकृष्ण समस्त गोपियोंके सम्मुख ही उन सबका परित्यागकर श्रीराधाको अपने साथ ले जाते, तो समझा जा सकता है कि श्रीकृष्णका श्रीराधाजीके प्रति सर्वाधिक दृढ़ अनुराग था॥ 100-102॥

अमृतप्रवाह भाष्य—रासलीलामें श्रीकृष्णने देखा,—अन्य समस्त गोपियोंके साथ विराजमान राधिकाके साथ निरपेक्ष प्रेम नहीं हुआ, अन्य गोपियोंकी अपेक्षाके कारण प्रेमकी अति गाढ़ स्फूर्त्ति नहीं हुई, इसी कारण श्रीकृष्ण गोपियोंके भयसे राधिकाको रासस्थलीसे चोरी करके अन्य गोपियोंसे अलग होकर वहाँसे चले गये। "कंसारिरपि" श्लोक (संख्या 105) यहाँ पर उदाहरणीय है॥ 101-102॥

श्रीराधामें श्रीकृष्णकी प्रीतिका निरुपमत्व :—

राय कहे,—"तबे शुन प्रेमेर महिमा।
त्रिजगते राधा-प्रेमेर नाहिक उपमा॥ 103॥

सेवककी सेवा ग्रहण करनेके लिये उसके दर्शन न होनेसे सेव्यका विलाप :—

गोपीगणेर रास-नृत्य-मण्डली छाड़िया।
राधा चाहि' वने फिरे विलाप करिया॥ 104॥

अनुवाद—श्रीरायने कहा,—"तब राधाप्रेमकी महिमाको सुनो। तीनों लोकोंमें श्रीमती राधारानीके प्रेमकी कोई उपमा नहीं है। श्रीराधाके मान करके रास छोड़ जानेपर श्रीकृष्ण गोपियोंकी रास-नृत्य-मण्डलीको छोड़कर श्रीराधाको खोजनेके लिये विलाप करते हुए वनमें घूमने लगे॥ 103-104॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीराधिका रासमण्डलीमें गोपियोंकी साधारण प्रेम-सुलभ ममताको देखकर कौटिल्यवामतासे युक्त होकर रासमण्डलीको छोड़कर चली गयीं। श्रीकृष्णकी इच्छा थी कि श्रीमती रासलीलाके रसकी पुष्टि करें, किन्तु उनके भावमें श्रीकृष्ण खिन्न होकर विलाप करते-करते श्रीमतीको ढूँढ़नेके लिये वनमें घूमने लगे॥ 104॥

श्रीराधा ही श्रीकृष्णप्रीति-सेवाकी मूर्ति :—
श्रीगीतगोविन्द (3/1)—

कंसारिरपि संसारवासनाबद्धशृङ्खलाम्।
राधामाधाय हृदये तत्याज व्रजसुन्दरीः॥ 105॥

अनुवाद—कंसारि (श्रीकृष्ण) ने सम्पूर्ण साररूप रासलीलाकी वासनाके बन्धनको दृढ़ करनेवाली शृङ्खलारूपी रासक्रीड़ाकी परमाश्रया श्रीराधाको हृदयमें पूर्णरूपसे धारण करके अन्य सभी गोपियोंको त्याग दिया॥ 105॥

अनुभाष्य—आदिलीला 4/219 संख्या देखें॥ 105॥

श्रीगीतगोविन्द (3/2)—

इतस्ततस्तामनुसृत्य राधिकामनङ्ग-
बाणव्रण-खिन्नमानसः।
कृतानुतापः स कलिन्दनन्दिनी-
तटान्तकुञ्जे विषसाद माधवः॥ 106॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 106॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अनङ्ग बाणोंसे जर्जरित खिन्न मनसे अपने द्वारा किये गये कार्यके लिये अनुताप करते हुए, माधव कलिन्दनन्दिनी (यमुना)के तटपर स्थित वनमें इधर-उधर राधिकाको ढूँढ़नेपर भी प्राप्त नहीं कर पानेपर कुञ्जमें प्रवेश करके विषाद करने लगे॥ 106॥

अनुभाष्य—

अनङ्गबाणव्रणखिन्नमानसः (कामशरव्रणेन खिन्नं मानसं यस्य सः) माधवः इतस्ततः तां राधिकाम् अनुसृत्य (अन्विष्य) कृतानुतापः (कृतः अनुष्ठितः अनु पश्चात् तापो येन सः राधिकानादर-रूप-निजाचरितकर्मजन्य-शोकवशः सन्) कलिन्दनन्दिनीतटान्त-कुञ्जे (यमुनातटप्रान्तस्थकुञ्जे) विषसाद (विषण्णः अभूत्)।

श्लोक-भावानुवाद—कामबाणोंसे जर्जरित अपने द्वारा किये गये श्रीराधिकाका अनादर रूप कार्यके लिये शोकाकुल होकर माधव इधर-उधर श्रीराधिकाको ढूँढ़नेपर भी नहीं प्राप्त कर पानेपर यमुनातटपर स्थित कुञ्जमें प्रवेश करके विषाद करने लगे॥ 106॥

अमृतानुकणिका—"वासन्ती रासलीलाके मध्य श्रीराधाने देखा श्रीकृष्ण समस्त गोपाङ्गनाओंके साथ समान स्नेह करते हुए विहार कर रहे हैं। अपने प्रति विशिष्ट स्नेह प्रदर्शित नहीं होनेके कारण वे प्रणय-कोपके आवेशमें अन्यत्र एक कुञ्जमें जाकर छिप गयीं। श्रीकृष्ण श्रीराधाको न देखकर विशादयुक्त हो गये। यद्यपि वहाँ अनेकों व्रजसुन्दरियाँ उपस्थित थीं, किन्तु वे उनके प्रति उदासीन हो गये। वे सोचने लगे—'मुझे अनेकों गोपियोंके मध्य विलास करते देख, राधा मान करके चली गयी। अपनेको अपराधी समझकर मैं उसे रोकनेका साहस भी न कर सका। उसने अपने आपको अनादृत और उपेक्षित समझा, किन्तु वही मेरे हृदयमें प्रेयसीके रूपमें विराजमान है। विरह-तापमें वह न जाने क्या करती होगी, न जाने क्या कहेगी? राधाके विरहमें मुझे धन, जन, गोधन और गृह-सम्पदा आदि सब कुछ तुच्छ प्रतीत होता है। मैं जब उससे मिलूँगा, तब न जाने वह कोप तथा ईर्ष्याकी अभिव्यक्ति कैसे करेगी? निर्दयी, निष्ठुर कहकर मुझपर अभियोग लगायेगी, न जाने क्या-क्या कहेगी? यदि मैं जानता कि राधे तुम कहाँ गयी हो, तो तुम्हारा पाद-स्पर्श करके तुम्हें मना लेता, तुमसे क्षमा माँग लेता।' इस प्रकार अनुतापयुक्त होकर श्रीकृष्ण श्रीराधाका इधर-उधर अन्वेषण करने लगे और फिर उनके कहीं भी न मिलनेपर विशादयुक्त हो गये। (इस रासमें श्रीकृष्ण उसी प्रकार श्रीराधाको खोज रहे हैं, जिस प्रकार विरह-व्याकुल होकर शारदीय रासमें गोपियोंने उन्हें खोज रहीं थी।)

अनङ्ग-बाणसे जर्जरित उनका हृदय श्रीराधाके लिये अत्यन्त आकुल-व्याकुल हो गया; मनमें श्रीराधाकी स्फूर्त्ति होने लगी—'हे राधे! मुझे दर्शन दो। मैं तुम्हारा अतिप्रिय हूँ। तुम मेरी आँखोंसे ओझल मत होओ। तुम्हारे विरहमें मैं काम-तापसे झुलस रहा हूँ, मुझे दर्शन दो। मुझमें विरह-व्याधिकी यातना बढ़ती जा रही है।'

'कंसारि'—अर्थात् श्रीकृष्ण जो कंसको परास्त करनेमें समर्थ हैं, किन्तु श्रीराधाके प्रेमके द्वारा परास्त हो जाते हैं। *'संसारवासनाबद्धशृङ्खला'*—यहाँ संसार शब्द आनन्दमय, भावमय मधुररसका वाचक है। मधुररसमें सतत रहनेवाली वासना ही संसार-वासना है। श्रीकृष्णको अपने वशमें बनाये रखनेके कारण रासमें श्रीराधा ही शृङ्खला हैं। जब कोई विवेकी पुरुष तारतम्यके द्वारा किसी वस्तुकी सर्वश्रेष्ठताको जान लेता है, तब वह अन्य वस्तुओंका परित्याग कर देता है। उसी प्रकार श्रीराधाकी सर्वश्रेष्ठता अनुभव करके श्रीकृष्णने अन्यान्य गोपियोंका परित्याग कर दिया।"—श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी॥ 102–106॥

उपरोक्त दोनों श्लोकोंका विचार :—

एइ दुइ श्लोकेर अर्थ विचारिले जानि।
विचारिते उठे येन अमृतेर खनि॥ 107॥

अनुवाद—इन दोनों श्लोकोंके अर्थका विचार

करनेपर ही जाना जा सकता है कि श्रीराधाप्रेम तो अमृतकी खान है॥ 107 ॥

रासका वर्णन :—

शतकोटि गोपी-सङ्गे रास-विलास।
तार मध्ये एक-मूर्त्ये रहे राधा-पाश॥ 108 ॥

श्रीराधिकाके श्रीकृष्णप्रेममें वामता-भावकी प्रधानता :—

साधारण-प्रेम देखि' सर्वत्र 'समता'।
राधार कुटिल-प्रेम हइल 'वामता'॥ 109 ॥

अनुवाद—सौ-करोड़ गोपियोंके साथ रास-विलास करते समय श्रीकृष्ण जिस प्रकार अपनी एक-एक मूर्तिसे प्रत्येक गोपीके साथ विराज रहे थे, उसी प्रकार उनमेंसे एक श्रीकृष्णमूर्ति श्रीराधाके पास भी विद्यमान थी। अपने प्रति श्रीकृष्णका दूसरी गोपियोंके समान साधारण प्रेम देखकर श्रीराधामें वाम्य-भाव उत्पन्न हो गया, क्योंकि प्रेमका स्वभाव ही कुटिल होता है॥ 108-109 ॥

अमृतप्रवाह भाष्य—रासमण्डलमें दो-दो गोपियोंके बीच एक मूर्ति श्रीकृष्ण एवं श्रीराधिकाके पार्श्वमें एक मूर्ति श्रीकृष्ण—इस प्रकारसे प्रकाशित हुए थे। श्रीराधिकाने उसमें अपने कुटिल-प्रेमकी 'वामता' प्रकाशित की॥ 109 ॥

श्रीकृष्णप्रेमका कौटिल्य :—
उज्ज्वलनीलमणिके शृङ्गारभेद-कथनमें (102)—

अहेरिव गतिः प्रेम्णः स्वभावकुटिला भवेत्।
अतो हेतोरहेतोश्च यूनोर्मान उदञ्चति॥ 110 ॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 110 ॥

अमृतप्रवाह भाष्य—(उज्ज्वलनीलमणिमें कहा गया है)—सर्पके समान प्रेमकी भी स्वाभाविक कुटिल गति होती है; इसी कारणसे युवक और युवतीमें 'अहेतु' (बिना किसी कारणसे) और 'सहेतु' (किसी कारणसे)—इन दो प्रकारका मान उदित होता है॥ 110 ॥

अनुभाष्य—

अहेः (सर्पस्य) इव प्रेम्णः गतिः स्वभावकुटिला (निसर्गतः वक्रा) भवेत्; अतः (अस्मात् कारणात्) हेतोः (कारणोदयात्) अहेतोः च (कारणाभावदपि) यूनोः (कान्ताकान्तयोः) मानः उदञ्चति (उदेति)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 110 ॥

श्रीराधाके रास परित्यागसे श्रीकृष्णका उनको ढूँढ़ना :—

क्रोध करि' रास छाड़ि' गेला मान करि'।
ताँरे ना देखिया व्याकुल हैल हरि॥ 111 ॥

सम्यक् वासना कृष्णेर, इच्छा रासलीला।
रासलीला-वासनाते राधिका शृङ्खला॥ 112 ॥

ताँहा बिना रासलीला नाहि ताँर चित्ते।
मण्डली छाड़िया गेला राधा अन्वेषिते॥ 113 ॥

इतस्ततः भ्रमि' काँहा राधा ना पाञा।
विषाद करेन कामबाणे खिन्न हञा॥ 114 ॥

श्रीकृष्णकामपूर्त्ति-विग्रह श्रीराधाका असमोर्द्धत्व :—

शतकोटि-गोपीते नहे काम-निर्वापण।
ताहातेइ अनुमानि श्रीराधिकार गुण॥" 115 ॥

अनुवाद—राधाजीको सहेतुक मान हो गया और वे मान करके रासमण्डली छोड़कर चली गयीं। श्रीहरिने जब उन्हें रासस्थलीमें नहीं देखा, तो वे व्याकुल हो उठे। रासलीला ही श्रीकृष्णकी सम्पूर्णरूपसे सारभूता इच्छा है अर्थात् प्रधान-वासना है। रासलीलाकी वासनाको आबद्ध करनेके लिये राधाजी ही प्रधान शृङ्खला हैं। श्रीराधाके बिना रासलीलामें श्रीकृष्णका चित्त नहीं लगता, इसलिये वे रासमण्डलीको छोड़कर श्रीराधाको ढूँढ़ने चले गये। इधर-उधर भ्रमण करनेपर भी जब श्रीराधा नहीं मिली, तो श्रीकृष्ण कामबाणसे खिन्न होकर विषाद करने लगे। रासस्थलीमें शतकोटि गोपियाँ भी श्रीकृष्णके कामकी पूर्ति नहीं कर सकीं, इससे ही राधाजीके गुणोंका अनुमान लगाया जा सकता है॥" 111-115 ॥

अनुभाष्य—इसी अध्यायकी 104 संख्याका अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 112-113 ॥

आदिलीला 4/68–97 और 122–143, 214–219, 239–262 संख्या देखें॥ **97–115**॥

वक्ता श्रीरायके समक्ष श्रोतारूपी
महाप्रभुका शिष्यत्व अभिमान :—

प्रभु कहे,—"ये लागि' आइलाम तोमा-स्थाने।
सेइ सब तत्त्ववस्तु हैल मोर ज्ञाने॥ 116॥

अब महाप्रभुका श्रीकृष्णभजन-क्रमका श्रवण :—

एबे जानिलुँ साध्य-साधन-निर्णय।
आगे आर आछे किछु, शुनिते मन हय॥ 117॥

अनुवाद—महाप्रभु बोले,—"राय! जिस कार्यके लिये मैं आपके पास आया था, उन सभी तत्त्व-वस्तुओंका ज्ञान मुझे आपसे प्राप्त हो गया। अब मैंने साध्य-साधन तत्त्वका निर्णय जान लिया। तथापि मुझे लगता है कि इससे भी आगे कुछ है, और उसे सुननेकी मेरे मनमें इच्छा है॥ 116–117॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 8/1 श्लोक देखें। 'साध्य-साधन-निर्णय'के पाठान्तरमें—'सेव्य-साधन-निर्णय'॥ 116–117॥

महाप्रभुका (1) श्रीकृष्ण, (2) श्रीराधा, (3) रस और
(4) प्रेमके स्वरूप-तत्त्वका वर्णन
करनेके लिये श्रीरायसे अनुरोध :—

'कृष्णेर-स्वरूप' कह 'राधार स्वरूप'।
'रस'—कोन् तत्त्व, 'प्रेम'—कोन् तत्त्वरूप॥ 118॥

कृपा करि' एइ तत्त्व कह त' आमारे।
तोमा-बिना केह इहा निरूपिते नारे॥"119॥

अनुवाद—श्रीकृष्णका स्वरूप क्या है? इसे बताइये, श्रीराधाजीका स्वरूप भी कहिये, रसतत्त्व क्या है और प्रेमतत्त्वका स्वरूप क्या है? कृपा करके इन सब तत्त्वोंको मुझे बतलाइये, आपके अतिरिक्त इन तत्त्वोंका कोई भी निरूपण नहीं कर सकता॥"118–119॥

श्रीरायका अपनेको 'यन्त्र' और महाप्रभुको 'यन्त्री'-ज्ञान :—

राय कहे,—"इहा आमि किछुइ ना जानि।
तुमि येइ कहाओ, सेइ कहि वाणी॥ 120॥

तोमार शिक्षाय पड़ि येन शुक-पाठ।
साक्षात् ईश्वर तुमि, के बुझे तोमार नाट॥ 121॥

हृदये प्रेरण कर, जिह्वाय कहाओ वाणी।
कि कहिये भाल-मन्द, किछुइ ना जानि॥"122॥

अनुवाद—श्रीरामानन्द रायने कहा,—"मैं इस विषयमें कुछ भी नहीं जानता हूँ। आप मुझसे जो कहलवाते हैं, मैं वही कह रहा हूँ। तोतेकी भाँति आपके द्वारा सिखाये गये विषयोंका ही पाठ कर रहा हूँ। आप तो साक्षात् ईश्वर हैं, आपके नाटकको भला कौन जान सकता है? भला है या बुरा है—मैं कुछ भी नहीं जानता, अन्तर्यामी रूपसे आप हृदयमें जो प्रेरणा करते हो, जिह्वासे उसी वाणीको कहलवा देते हो॥ 120–122॥

अपनेको 'श्रीकृष्ण-विमुख' और 'दीन' बतलाकर
महाप्रभुके द्वारा श्रीरायको छलनेकी चेष्टा :—

प्रभु कहे,—"मायावादी आमि त' संन्यासी।
भक्तितत्त्व नाहि जानि, मायावादे भासि॥ 123॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"मैं तो मायावादी संन्यासी हूँ। भक्तितत्त्वको मैं कैसे समझ सकता हूँ? मैं तो सदैव मायावादमें ही डूबा रहता हूँ॥ 123॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीसार्वभौम और श्रीरामानन्दके वैशिष्ट्य
और तारतम्यका वर्णन; श्रीसार्वभौम—ब्राह्मण और
मुक्तिदाता; श्रीरामानन्द—श्रीकृष्ण-तत्त्वज्ञ और कीर्तनकारी
आचार्य अथवा वैष्णव :—

सार्वभौम-सङ्गे मोर मन निर्मल हइल।
'कृष्णभक्ति-तत्त्व कह', ताँहारे पुछिल॥ 124॥

तेँहो कहे,—'आमि नाहि जानि कृष्णकथा।
सबे रामानन्द जाने, तेँहो नाहि एथा॥'125॥

'वञ्चक'-लीलाभिनयकारी वैष्णव :—

तोमार ठाञि आइलाङ तोमार महिमा शुनिया।
तुमि मोरे स्तुति कर 'संन्यासी' जानिया॥ 126॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौमके सङ्गसे मेरा मन निर्मल हुआ था, इसलिये मैंने उनसे कृष्णभक्तितत्त्वके विषयमें

पूछा था। किन्तु उन्होंने कहा,—'मैं श्रीकृष्णकथा नहीं जानता हूँ, रामानन्दराय ही इस विषयमें सब कुछ जानते हैं, परन्तु वे इस समय यहाँ नहीं हैं।' आपकी महिमा सुनकर मैं आपके पास आया हूँ और आप मुझे संन्यासी जानकर मेरी ही स्तुति कर रहे हैं॥ 124-126॥

अनुभाष्य—अप्राकृत श्रीकृष्णप्रेमधनमें धनी गुरु-वैष्णवोंके लिये सांसारिक-सम्पत्तिका मूल्य अत्यन्त तुच्छ होता है। इसलिये गुरु-वैष्णवोंके पास अपने वास्तविक कल्याणके लिये शिष्य बननेके लिये आये व्यक्तिको इन सब लौकिक वस्तुओंके अभिमानको कभी भी प्रदर्शित नहीं करना चाहिये। जन्म, ऐश्वर्य, ज्ञान या बुद्धि और सौन्दर्यका अभिमान रखते हुए यदि कोई व्यक्ति वास्तवमें शरणागति, विनम्र जिज्ञासा और सेवाभावके बिना गुरु-वैष्णवोंके निकट आता है, तो वैष्णव भी उसको उसके द्वारा वाञ्छित बाहरी सम्मान देकर विदा कर देते हैं। वे उसे अब्राह्मण अथवा शूद्र समझकर कभी भी दिव्यज्ञान अर्थात् अप्राकृत श्रीकृष्णके सम्बन्धकी अनुभूति प्रदान नहीं करते। इसके फलस्वरूप वह व्यक्ति परमार्थ मार्गसे वञ्चित होकर नरकके पथपर ही अग्रसर होता है। श्रीगौरसुन्दर सांसारिक लोगोंकी दृष्टिमें वर्णाश्रम धर्मकी सर्वोत्कृष्ट अवस्था (ब्राह्मणवर्ण और संन्यासाश्रम) में स्थित थे। और श्रीरामानन्द उनकी अपेक्षा नीची अवस्था (शूद्रवर्ण और गृहस्थाश्रम) में थे। तो भी श्रीरामानन्दके सामने दीनता दिखलाते हुए महाप्रभुने कलिके प्रभावसे ग्रस्त, सांसारिक ज्ञानको ही सब कुछ समझनेवाले अज्ञानी जीवोंको अभिमानयुक्त दुर्बुद्धिसे सतर्क करनेके लिये जगद्गुरु आचार्यके रूपमें शिक्षा प्रदान की है॥ 126॥

जिस किसी भी अवस्थामें क्यों न रहे, श्रीकृष्णतत्त्वको जानने वाला ही दिव्यज्ञानदाता :—

किवा विप्र, किवा न्यासी,, शूद्र केने नय।
येइ कृष्णतत्त्ववेत्ता, सेइ 'गुरु' हय॥ 127॥

अनुवाद—चाहे ब्राह्मण हों या संन्यासी हों, अथवा शूद्र ही क्यों न हों, जो कृष्णतत्त्वको जाननेवाले हैं, वे ही वास्तवमें गुरु हैं॥ 127॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महाप्रभुने कहा,—"मैंने ब्राह्मण घरमें जन्म ग्रहण करके संन्यास ग्रहण किया है। इसलिये शूद्र व्यक्तिसे धर्मकी शिक्षा ग्रहण करना मेरे लिये अनुचित है, ऐसा मत सोचना। क्योंकि वर्णाश्रमरूपी धर्मशिक्षा और दीक्षामें ही ब्राह्मण-गुरुकी आवश्यकता होती है। किन्तु 'श्रीकृष्णतत्त्व-ज्ञान' सभी जीवोंका परमार्थ है। इस तत्त्वज्ञानके गुरु होनेके अधिकारके विचारमें केवलमात्र यही सिद्धान्त है—ब्राह्मण ही हो अथवा शूद्रजातिका ही हो, गृहस्थ ही हो अथवा संन्यासी ही हो, श्रीकृष्णतत्त्वको जाननेवाला ही 'गुरु' हो सकता है। श्रीहरिभक्तिविलासमें जो यह कहा गया है कि उच्चवर्णमें योग्य पुरुषके होनेपर, हीनवर्णके व्यक्तिसे श्रीकृष्णमन्त्र लेना उचित नहीं है—वह लोक-अपेक्षा रखनेवाले वैष्णवोंके लिये है। अर्थात् जो संसारमें प्रचलित-विधिके मतानुसार उसमें थोड़ा-बहुत परमार्थको भी जोड़ना चाहते हैं, उनके लिये ही यह विधि है। परन्तु जो वैधी और रागानुगा भक्तिके तात्पर्यको जानकर विशुद्ध श्रीकृष्णभक्ति प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं, उनके लिये उपयुक्त श्रीकृष्णतत्त्व-वेत्ता जिस-किसी भी वर्ण अथवा जिस-किसी भी आश्रममें क्यों न पाया जाय, उन्हींको ही 'गुरु'के रूपमें वरण करना ही विधि है। श्रीहरिभक्तिविलासमें उद्धृत पद्मपुराणके वचन—

"न शूद्रा भगवद्भक्तास्तेऽपि भागवतोत्तमाः।
सर्ववर्णेषु ते शूद्रा ये न भक्ता जनार्द्दने।
षट्कर्मनिपुणो विप्रो मन्त्रतन्त्र-विशारदः।
अवैष्णवो गुरुर्न स्याद्वैष्णवः श्वपचो गुरुः॥
महाकुल-प्रसूतोऽपि सर्वयज्ञेषुः दीक्षितः।
सहस्रशाखाध्यायी च न गुरुः स्यादवैष्णवः॥
विप्रक्षत्रियवैश्याश्च गुरवः शूद्रजन्मनाम्।
शूद्राश्च गुरवस्तेषां त्रयाणां भगवत्प्रियाः॥"

"भगवद्भक्तिपरायण व्यक्ति कभी भी शूद्र नहीं कहलाते, उनको 'भागवत' ही कहा जाता है। श्रीजनार्दनके प्रति भक्ति न होनेपर कोई भी जाति क्यों न हो, उनकी 'शूद्र' कहकर ही गणना होती है। यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान और प्रतिग्रह—इन छह कर्मोंमें निपुण एवं मन्त्र-तन्त्र विशारद ब्राह्मण भी अवैष्णव होनेपर गुरु नहीं हो सकता, किन्तु चण्डाल कुलमें जन्म ग्रहण करनेपर भी यदि कोई विष्णुभक्ति परायण हो, तो वह गुरु होनेके योग्य है। सम्भ्रान्त कुलमें उत्पन्न, सब यज्ञोंमें दीक्षित और सहस्रशाखाध्यायी ब्राह्मण भी अवैष्णव होनेपर गुरु पदके योग्य नहीं है। शूद्रकुलमें उत्पन्न व्यक्ति अपनेसे उन्नत ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जातिके किसी योग्य व्यक्तिको गुरुके रूपमें ग्रहण कर सकते हैं—यही साधारण विधि है, किन्तु भगवद्-प्रिय अर्थात् वैष्णवगण शूद्रकुलमें उत्पन्न होनेपर भी उक्त तीनों वर्णों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य-कुलमें उत्पन्न व्यक्तियोंके श्रीगुरुदेव हो सकते हैं॥"127॥

अनुभाष्य—वर्णमें ब्राह्मण ही हो, अथवा क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र ही हो, आश्रममें संन्यासी हो अथवा ब्रह्मचारी-वानप्रस्थ-गृहस्थ ही हो, जिस किसी वर्णमें अथवा जिस किसी आश्रममें अवस्थित हो, श्रीकृष्ण-तत्त्ववेत्ता ही गुरु अर्थात् वर्त्मप्रदर्शक, दीक्षागुरु अथवा शिक्षागुरु हो सकते हैं। गुरुकी योग्यता केवलमात्र श्रीकृष्णतत्त्वज्ञताके ऊपर ही निर्भर करती है,—वर्ण अथवा आश्रमके ऊपर निर्भर नहीं करती। श्रीमहाप्रभुका यह आदेश शास्त्रीय आदेशके विरुद्ध नहीं है। इस तात्पर्यके अनुसार श्रीविश्वम्भर-महाप्रभु श्रीईश्वरपुरी नामक संन्यासीसे, श्रीनित्यानन्द प्रभु माधवेन्द्रपुरी गोस्वामी (मतान्तरमें श्रीमद् लक्ष्मीपति तीर्थ) नामक संन्यासीसे, श्रीअद्वैताचार्य इन्हीं श्रीमाधवेन्द्रपुरी संन्यासीसे दीक्षित हुए थे। श्रीरसिकानन्दने ब्राह्मणसे इतर अन्य कुलमें आविर्भूत श्रीश्यामानन्द प्रभुसे, श्रीगङ्गानारायण चक्रवर्ती और श्रीरामकृष्ण भट्टाचार्यने भी ब्राह्मणकुलके अतिरिक्त अन्य किसी कुलमें आविर्भूत श्रील नरोत्तम-ठाकुरसे, काटोयाके श्रीयदुनन्दन चक्रवर्ती श्रीदासगदाधरसे पाञ्चरात्रिक दीक्षामें दीक्षित हुए थे। धर्म-नामक व्याध (शिकारी) आदि अनेकानेक व्यक्तियोंकी शिक्षा-गुरु होनेमें बाधा नहीं थी। महाभारतके स्पष्ट आदेशों और श्रीमद्भागवत (7/11/32) श्लोकमें—

"यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम्।
यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत्॥"

"मनुष्योंमें वर्णको लक्षित करनेवाले जो समस्त लक्षण बताये गये हैं, वे यदि दूसरे वर्णवालोंमें भी मिलें, तो उन्हें भी उसी वर्णका समझना होगा। (केवल जन्मके द्वारा वर्ण निरूपित नहीं होगा)।" इस वाक्यमें 'समझना होगा'—इस विधिलिङ्के प्रयोगसे अर्थात् इस आदेशका पालन अनिवार्य है। इसलिये वैष्णव विचारानुसार श्रीकृष्णतत्त्ववेत्ताकी वृत्तिमें ब्राह्मणता स्वाभाविक ही है। इसलिये कलिमें जो प्रचलित विचार है कि जन्मके बिना ब्राह्मणता नहीं हो सकती, उसके स्थानपर यह स्वीकार करना होगा कि श्रीकृष्णतत्त्ववित् होनेपर जन्मसे शूद्र भी शास्त्रीय ब्राह्मणता प्राप्त करके गुरु हो सकते हैं—यही श्रीमहाप्रभुने सूक्ष्मरूपसे समझाया है। जो श्रीकृष्णतत्त्ववित् वैदिक-वाजसनेय शाखाके अन्तर्गत कात्यान-गृह्यसूत्रमें कहे सावित्र्य-संस्कारको (उपनयन संस्कारको) ग्रहण नहीं करते, वे—एकायनशाखी (आदिलीला भूमिका पृष्ठ संख्या xiv देखें) दीक्षित-ब्राह्मण ही हैं। किन्तु अज्ञानी लोग अधिकतर उन्हें 'अच्युत ब्राह्मण' (जो ब्राह्मणत्वसे कभी नहीं गिरते) न समझ पानेके कारण नरकगामी होते हैं। इसलिये (जन्मसे ब्राह्मण नहीं होनेपर भी) रसिकानन्द प्रभुके वंशमें, श्रीखण्डके श्रीमुकुन्ददासके वंशमें, नवनीहोड़के वंशमें सावित्र्य ब्राह्मण-संस्कार एवं जन्मसे ब्राह्मण लोगोंको शिष्य बनाकर उनके आचार्यका कार्य बहुत समयसे चलता हुआ आ रहा है। कई भजनानन्दी वैष्णव सावित्र्य-संस्कार

ग्रहण नहीं करते, इसका तात्पर्य यह नहीं हैं कि गुरु होनेके लिये सावित्र्य-संस्कार ही एकमात्र विधि है। वैष्णवगण लक्षणोंके द्वारा वर्णका निर्णय करते हैं, किन्तु अज्ञानी व्यक्ति वैसे लक्षणोंके द्वारा वर्ण निर्णय करनेमें असमर्थ होते हैं, इसलिये श्रीमहाप्रभुने स्पष्टरूपसे ही शास्त्रके तात्पर्यको समझा दिया। हरिभक्तिविलासमें संगृहीत सिद्धान्त श्रीमहाप्रभुके अपने आदर्श-आचार और उपदेशोंके साथ एक होनेपर भी अज्ञानी व्यक्तियोंको वे भिन्न प्रतीत होते हैं। इस पयारमें कहे गये 'गुरु' शब्दसे उनके विचारानुसार श्रवण-गुरु अथवा भजन-शिक्षागुरुको ही लक्ष्य किया गया है, दीक्षा अथवा मन्त्रदाता गुरु नहीं। क्योंकि उनके मतानुसार वंश-परिचय अर्थात् रक्त अथवा शुक्र ही दिव्यज्ञान-दाताके अधिकारका निर्णय और परिचय प्रदान करता है। इसलिये शुद्ध-आत्मवृत्ति श्रीकृष्णभक्ति उनके मतानुसार निरपेक्ष या स्वतन्त्र नहीं है, अर्थात् वह जन्म-कुलके अधीन है। विशेषतः दीक्षागुरु अथवा मन्त्र-दाताका श्रेष्ठत्व और माहात्म्य उनकी मूर्खतानुसार 'श्रवण गुरु' अथवा 'भजन-शिक्षा-गुरु'की अपेक्षा अधिकतर है। इस सम्बन्धमें आदिलीला 1/47 संख्याका अनुभाष्य विशेष-रूपसे विचारणीय है। वास्तवमें ऐसी धारणा उनके प्राकृत ज्ञानसे उत्पन्न अपराधका फलमात्र है॥ 127॥

श्रीरायको राधाकृष्णके तत्त्वके वर्णनके लिये अनुरोध :—

'संन्यासी' बलिया मोरे ना करिह वञ्चन।
कृष्ण-राधा-तत्त्व कहि' पूर्ण कर मन॥"128॥

अनुवाद—मुझे 'संन्यासी' समझकर मेरी वञ्चना मत कीजिये। श्रीकृष्ण और श्रीराधातत्त्वोंका वर्णन करके मेरे मनोरथको पूर्ण करो॥"128॥

महाप्रभुकी मायाके द्वारा महामहासूरिगण भी मुग्ध, किन्तु वास्तविक तत्त्वको जाननेवाले श्रीरामानन्द धीर-स्थिर :—

यद्यपि राय—प्रेमी, महाभागवते।
ताँर मन कृष्णमाया नारे आच्छादिते॥ 129॥

महाप्रभुकी इच्छाशक्तिसे चालित सेवकका चलन—मायादास्य नहीं है, वह महाप्रभुकी इच्छाशक्तिका प्रभुत्व और श्रीरायके वश्यत्वका ज्ञापक :—

तथापि प्रभुर इच्छा—परम प्रबल।
जानिलेह रायेर मन हैल टलमल॥ 130॥

राय कहे,—"आमि—नट, तुमि—सूत्रधार।
येइ मत नाचाओ, सेइ मत चाहि नाचिबार॥ 131॥

मोर जिह्वा—वीणायन्त्र, तुमि—वीणाधारी।
तोमार मने येइ उठे, ताहाइ उच्चारि॥ 132॥

अनुवाद—यद्यपि श्रीरामानन्द राय श्रीकृष्ण-प्रेमी महाभागवत हैं और श्रीकृष्णकी माया उनके मनको आच्छादित नहीं कर सकती, तथापि महाप्रभुकी इच्छा परम प्रबल है, इसलिये श्रीरामानन्द रायका मन महाप्रभुके स्वरूपको जानते हुए भी चञ्चल हो गया। श्रीरायने कहा,—"मैं तो एक नट हूँ और आप सूत्रधार हो। आप जैसे मुझे नचाएँगे, मैं वैसे ही नाचूँगा। मेरी जिह्वा तो वीणा-यन्त्र है और आप वीणा बजानेवाले हैं। आपके मनमें जो श्रवण करनेकी इच्छा होती है, मैं वही कहता हूँ॥ 129-132॥

अनुभाष्य—आदिलीला 3/85-89 संख्या देखें। *'सूत्रधार'*—"वर्त्तनीयतया सूत्रं प्रथमं येन सूच्यते। रङ्गभूमिं समाक्रम्य सूत्रधारः स उच्यते॥"

"नाटकमें प्रयोग होनेवाली सभी वस्तुओंको सर्वप्रथम जिसके द्वारा रङ्गभूमिमें आकर सूचित किया जाता है, उसे 'सूत्रधार' कहते हैं।" वह नाटककी प्रस्तावनाको प्रस्तुत करनेवाला प्रधान नट है॥ 131॥

(1)श्रीकृष्णतत्त्व-वर्णनारम्भ; श्रीकृष्णका स्वरूप-परिचय :—

परम ईश्वर कृष्ण—स्वयं भगवान्।
सर्व-अवतारी, सर्वकारण-प्रधान॥ 133॥

अनन्त वैकुण्ठ, आर अनन्त अवतार।
अनन्त ब्रह्माण्ड इँहा,—सबार आधार॥ 134॥

सच्चिदानन्द-तनु, व्रजेन्द्रनन्दन।
सर्वैश्वर्य-सर्वशक्ति-सर्वरस-पूर्ण॥ 135॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण ही परम ईश्वर और स्वयं भगवान् हैं। वे सभी अवतारोंके अंशी अर्थात् मूल हैं और सभी कारणोंके प्रधान कारण हैं। श्रीकृष्ण अनन्त वैकुण्ठ, अनन्त अवतार एवं अनन्त ब्रह्माण्डोंके भी आधार स्वरूप हैं। वे सत्-चित्-आनन्दमय विग्रह हैं, तो भी वे महाराज नन्दके पुत्र हैं। वे समस्त ऐश्वर्योंके, समस्त शक्तियोंके ईश हैं और वे समस्त रसोंसे परिपूर्णतम रसस्वरूप हैं॥ 133–135॥

ब्रह्मसहिंता (5/1) :—

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्॥ 136॥

अनुवाद—सत्, चित् और आनन्दमय विग्रह श्रीकृष्ण ही सर्वेश्वरेश्वर हैं। वे स्वयंरूप, अनादि, किन्तु सबके आदि हैं। वे गोविन्द हैं तथा समस्त कारणोंके कारणभूत मूल कारण हैं॥ 136॥

अनुभाष्य—आदिलीला 2/107 संख्या देखें॥ 136॥

व्रजमें नित्यसेवित मदनमोहन-विग्रह :—

वृन्दावने 'अप्राकृत नवीन मदन'।
कामगायत्री, कामबीजे याँर उपासन॥ 137॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण वृन्दावनमें अप्राकृत नवीन मदन हैं। कामगायत्री और कामबीजके द्वारा उनकी उपासना होती है॥ 137॥

अनुभाष्य—*'वृन्दावन'*—ब्रह्मसंहितामें पाँचवें अध्यायका 56वाँ श्लोक—

"श्रियः कान्ताः कान्तः परमपुरुषः कल्पतरवो द्रुमा
भूमिश्चिन्तामणिगणमयी तोयममृतम्।
कथा गानं नाटयं गमनमपि वंशी प्रियसखी
चिदानन्दं ज्योतिः परमपि तदास्वाद्यमपि च॥
स यत्र क्षीराब्धिः स्रवति सुरभीभ्यश्च सुमहान्
निमेषार्द्धाख्यो वा व्रजति न हि यत्रापि समयः।
भजे श्वेतद्वीपं तमहमिह गोलोकमिति
यं विदन्तस्ते सन्तः क्षितिविरलचाराः कतिपये॥"

"अप्राकृत वृन्दावनमें सब कुछ ही चिन्मय है; अप्राकृत लक्ष्मियाँ अथवा गोपियाँ—कान्ता हैं, परम पुरुष श्रीकृष्ण—सभीके कान्त हैं, वहाँके वृक्ष—कल्पवृक्ष हैं, भूमि—चिन्तामणियोंसे युक्त है, पानी—अमृत है, बोलना—गान है, चलना—नृत्य है, वंशी—प्रियसखी है, चन्द्र-सूर्यादिरूप ज्योतिर्मय पदार्थ—चिदानन्दमय हैं। वह अप्राकृत चिन्मय भाव ही आस्वाद्य अथवा अनुशीलनीय है। वहाँ चिन्मय गैयाओंके दूधसे क्षीरसमुद्र प्रवाहित हो रहा है, वहाँका पलक झपकनेके समयका आधा भाग भी नित्यकाल ही है अथवा वहाँ काल वृथा ही व्यतीत होकर दूसरे कालमें नहीं बदलता। इस प्रपञ्चमें उदित वृन्दावन-धाम जिसको कुछ दुर्लभ श्रीकृष्णतत्त्व जाननेवाले साधु 'गोलोक' नामसे जानते हैं—उस श्वेतद्वीपका मैं भजन करता हूँ।" जड़बुद्धि और जड़ेन्द्रियोंके द्वारा प्राप्त सांसारिक ज्ञानसे वृन्दावनका दर्शन नहीं होता, क्योंकि अप्राकृत वृन्दावन—अप्राकृत श्रीकृष्णलीलाका अप्राकृत स्थान है। श्रील नरोत्तम दास ठाकुरने अपने द्वारा रचित 'प्रार्थना' नामक ग्रन्थमें कहा है,—

"आर कबे निताइचाँद करुणा करिबे।
संसार-वासना मोर कबे तुच्छ हबे॥
विषय छाड़िया कबे शुद्ध हबे मन।
कबे हाम हेरब श्रीवृन्दावन॥
रूप-रघुनाथ-पदे हइबे आकुति।
कबे हाम बुझब श्रीयुगल-पिरीति॥"

"कब श्रीनित्यानन्द प्रभुकी कृपासे मेरे हृदयसे सांसारिक वासनाएँ दूर होंगी? विषयोंका परित्यागकर मेरा मन कब शुद्ध होगा, जिससे कि मैं श्रीवृन्दावनधामके चिन्मय स्वरूपका दर्शन करूँगा। कब श्रीरूप गोस्वामी और श्रीरघुनाथदास गोस्वामीके चरणोंमें मेरी प्रीति होगी कि मैं उनकी कृपासे श्रीराधाकृष्णयुगलकी प्रीतिको जान पाऊँगा।"

मध्यलीला 14/219–226 संख्या देखें।

'अप्राकृत नवीनमदन'—जड़ अथवा प्राकृत और उसके विपरीत चिन्मय अथवा अप्राकृत, दोनों अवस्थाओंमें ही 'काम' विद्यमान है। जड़ काम कालके द्वारा क्षुब्ध होता है अर्थात् प्रकाशित होनेके समय ही इसकी अनुभूति होती है एवं थोड़ी ही देरमें यह मलिन होकर फिर रहता नहीं है। और अप्राकृत काम—नित्य नवनवायमान अर्थात् कालके द्वारा इसकी समाप्ति नहीं होती, यह सदैव उज्ज्वल रहता है। जड़ेन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण किया जा सकने वाला काम—जड़-देह-मनोवृत्ति एवं इन्द्रिय-भोगमें लगे प्रत्येक श्रीकृष्ण विमुख जीवके भौतिक देहजनित स्वभावमें वर्तमान है, किन्तु वह केवल तात्कालिक मात्र है। और चिद्-इन्द्रियोंके सेव्य मदन—मन्मथमन्मथ श्रीकृष्णचन्द्र हैं, वे—नित्य नवीन और स्वयंरूप-विग्रह हैं।

'काम-गायत्री'—'गायन्तं त्रायते यस्मात् गायत्री त्वं ततः स्मृता।' 'जो वस्तु गान करनेवालेका त्राण (रक्षा या उद्धार) करती है अथवा गानके द्वारा त्राण कराती है।' मध्यलीला 21/125 संख्या—

'कामगायत्री मन्त्ररूप, हय कृष्णस्वरूप,
सार्द्ध चब्बिश अक्षर तार हय।
से अक्षर-चन्द्र हय, कृष्ण करि' उदय,
त्रिजगत् कैल काममय।"

"मन्त्ररूप कामगायत्री श्रीकृष्णका स्वरूप है। कामगायत्रीमें साढ़े चौबीस अक्षर होते हैं। ये अक्षर चन्द्ररूप हैं जो श्रीकृष्णमें उदित होकर त्रिभुवनको काममय कर देते हैं।"

"क्लीं कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्॥"

कामदेव (187 संख्या देखें) अथवा मदनमोहन-कृष्ण ही सम्बन्ध-अधिदेवता, पुष्पबाण अथवा गोविन्द ही अभिधेय-अधिदेवता और अनङ्ग अथवा गोपीजनवल्लभ ही प्रयोजन-अधिदेवता हैं। कामगायत्री—अप्राकृत है। अप्राकृत-अनुभूतिसे अप्राकृत-वचनोंके द्वारा साधक श्रीकृष्णकी उपासना करते हैं।

ब्रह्मसंहिता 5/27-28 श्लोक—

"अथ वेणु-निनादस्य त्रयीमूर्त्तिमयी गतिः।
स्फुरन्ती प्रविवेशाशु मुखाब्जानि स्वयम्भुवः।
गायत्रीं गायतस्तस्मादधिगत्य सरोजजः॥
संस्कृतश्चादिगुरुणा द्विजतामगमत्ततः॥
त्रया प्रबुद्धोऽथ विधिर्विज्ञाततत्त्वसागरः।
तुष्टाव वेदसारेण स्तोत्रेणानेन केशवम्॥"

"अनन्तर श्रीकृष्णकी वंशीध्वनिकी त्रयीमूर्तिमयी गति (वेदमाता त्रि-अष्टाक्षरी—त्रिविध अर्थात् सम्बन्धाभिधेय-प्रयोजनात्मिका) प्रकाशित होकर स्वयंभू ब्रह्माके मुखकमलमें सहसा प्रविष्ट हुई। पद्मयोनि ब्रह्माने वेणुगीतसे निकली गायत्री-दीक्षा प्राप्त करके आदिगुरु श्रीकृष्णके द्वारा द्विज-संस्कार प्राप्त किया (श्रीजीव गोस्वामी प्रभुकी टीका देखें)। त्रयीमयी अर्थात् सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन-विशिष्टा गायत्रीके स्मरणके द्वारा जागरित होकर ब्रह्मा तत्त्वसमुद्रमें निष्णात (प्रवीण) हो गये अर्थात् उन्होंने अभिज्ञता प्राप्त की एवं उसी वेदसार-स्तोत्रके द्वारा केशवकी सेवा करके उनकी कृपा प्राप्त की।

'कामबीज'—अप्राकृत 'क्लीं'। ब्रह्मसंहिताका 5/3 श्लोक—

"प्रेमानन्द-महानन्द-रसेनावस्थितं हि यत्।
ज्योतिरूपेण मनुना काम-बीजेन सङ्गतम्॥"

"अप्राकृत कामबीजसे युक्त अप्राकृत काम-गायत्रीके द्वारा अप्राकृत नित्य नवीन मदनमोहन-विग्रहकी अप्राकृत उपासना होती है।" जैसे, गोपालतापनी उपनिषद्‌में कहा गया है—(पूर्व विभाग श्लोक-13 पृष्ठ 22)

"तस्य पुनारसनं जलभूमीन्दु-सम्पातकामादि-कृष्णायेत्येकं पदं गोविन्दायेति द्वितीयं गोपीजनेति तृतीयं वल्लभायेति तुरीयं स्वाहेति पञ्चममिति पञ्चपदीं जपन् पञ्चाङ्गं द्यावाभूमी सूर्यचन्द्रमसौ साग्नी तद्रूपतया ब्रह्म सम्पद्यते ब्रह्म सम्पद्यते इति।"

अर्थात् "ध्यानके अनन्तर उन श्रीकृष्ण नामक परब्रह्मका सन्तोष उत्पादन करेंगे। जल, भूमि, ई, इन्दु आदिके सम्मिलनसे उत्पन्न जो (क्लीं) कामबीज है, उसको आरम्भमें रखकर पाँच पदोंवाले अठ्ठारह अक्षरके

गोपालमन्त्रके जपके द्वारा परब्रह्म श्रीकृष्णके सन्तोषका विधान होता है। पाँच पद इस प्रकार हैं—क्लीं आरम्भमें रखकर कृष्णाय यह एक पद है, गोविन्दाय दूसरा पद है, गोपीजन तीसरा पद है, वल्लभाय चौथा पद है, स्वाहा पाँचवाँ पद है, यह पञ्चपदात्मक मन्त्र है। इसकी उपासनाका फल कह रहे हैं। पञ्चपदी जपशील पुरुष द्यावा, भूमि, अग्नि, सूर्य और चन्द्र, इन पञ्चाङ्गरूप नारायणात्मक परब्रह्मको पञ्चाङ्ग ब्रह्मस्वरूप होकर प्राप्त होते हैं।"

श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकी टीका—

"जलं ककारः तद्वाचित्वात्, भूमिर्लकारः लकार-बीजत्वात्, तथा ई—दीर्घ ईकारः अग्निः कृतसन्धित्वात्, इन्दुरनुस्वारः तदाकारत्वात्। तेषां सम्पातो मिलनं तेन जातं यत् कामबीजं तदादिकं कृष्णायेत्येकपदमित्यर्थः।"

अर्थात् 'क्लीं' यह बीज—जल (क-कार), भूमि (ल-कार), ई (दीर्घ ईकार वा अग्नि) एवं इन्दु (अनुस्वार) इनके सम्मिलनसे प्रकटित है। इस क्लीं-बीजको आदिमें (प्रारम्भमें) जोड़कर श्रीकृष्णमन्त्रसे श्रीकृष्ण-नामक परब्रह्मको रसन अर्थात् सन्तुष्ट करनेवाली उपासना हुई है।

आदिलीला 5/212-214, 219, 221-222 संख्या देखें॥ **137**॥

श्रीकृष्ण-माधुर्यकी आकर्षण-शक्ति :—

पुरुष, योषित्, किवा स्थावर-जङ्गम।
सर्व-चित्ताकर्षक, साक्षात् मन्मथ-मदन॥ 138॥

अनुवाद—पुरुष हो या फिर स्त्री, स्थावर (वृक्षादि स्थिर) हो या फिर जङ्गम (चलनेवाले प्राणी), श्रीकृष्ण सबके चित्तको आकर्षित करनेवाले हैं। वे मन्मथ (सबके मनको मथ डालनेवाले कामदेव)के मनको मथनेवाले साक्षात् मन्मथ-मदन हैं॥ **138**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—चिन्मयधामरूप वृन्दावनमें श्रीकृष्ण प्रकृतिसे अतीत अभिनव-मदनस्वरूपमें विराजमान हैं। 'मदन'-शब्दसे सामान्यतः सभी जड़ीय कवि जो अर्थ करते हैं, वह प्राकृत-जगत्में माँसपिण्डोंको परस्पर आकर्षित करनेवाला, अत्यन्त प्राकृत और हेय (तुच्छ) कामतत्त्व है। सभी जीव जड़बद्ध होकर देहमें आत्म-अभिमान करके उस कामकी अधीनताको स्वीकार करते हैं। श्रीकृष्ण-सम्बन्धतत्त्व जाननेपर जीवकी अप्राकृत चिन्मय अवस्थामें अवस्थिति होती है। वह अवस्था दो प्रकारकी है—'स्वरूपगत' और 'वस्तुगत'। तत्त्वकी प्रतीति हो गयी है, किन्तु 'वस्तुतः' अभी भी जड़सम्बन्ध दूर नहीं हुआ, ऐसी अवस्थामें चिन्मय-तत्त्वका थोड़ा-बहुत उदय होनेपर 'स्वरूपगतः' वृन्दावनमें अवस्थिति होती है, किन्तु 'वस्तुतः' नहीं होती। श्रीकृष्णकी इच्छासे स्थूल और लिङ्गमय जड़तत्त्वके साथ सम्बन्धरहित होनेपर ही 'वस्तुतः' वृन्दावनमें अवस्थिति होती है। स्वरूप-अवस्थितिमें साधना है, उस समय चिन्मयी कामगायत्री और चिन्मय कामबीजसे श्रीकृष्णकी उपासना होती है। पुरुष अथवा स्त्री, स्थावर अथवा जङ्गम, सभीको ही वे सर्वचित्ताकर्षक मन्मथ-मन्मथस्वरूप श्रीकृष्ण आकर्षित करते हैं।

'कामगायात्री'—साढ़े चौबीस अक्षरका एक विशेष वेदमन्त्र है। *'कामबीज'*—श्रीकृष्णकी उपासनामें जिस बीजका जप होता है, वही॥ **137-138**॥

अनुभाष्य—आदिलीला 4/147-148 संख्या देखें॥ **138**॥

श्रीमद्भागवत (10/32/2) :—

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथ-मन्मथः॥ 139॥

अनुवाद—उसी समय उन रोदनकारी व्रजदेवियोंके बीचमें शूरवंशके शिरोमणि श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। उनका मुखकमल मन्द-मन्द मुस्कानसे खिला हुआ था, वे गलेमें वनमाला और शरीरपर पीताम्बर धारण किये हुए थे। उनका वह रूप-सौन्दर्य सबके मनको मथ डालनेवाले साक्षात् कामदेवके मनको भी मथनेवाला था॥ **139**॥

अनुभाष्य—आदिलीला 5/214 संख्या देखें॥ **139**॥

नाना-भक्तेर रसामृत नानाविध हय।
सेइ सब रसामृतेर 'विषय' 'आश्रय'॥ 140॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 140॥

अमृतप्रवाह भाष्य—पूर्वकथित पाँच प्रकारके रसामृत-उपासनामें भक्त ही उस रसके 'आश्रय' और उपास्य श्रीकृष्ण ही उस रसके 'विषय' हैं॥ 140॥

अनुभाष्य—*'विषय'*—श्रीकृष्ण। *'आश्रय'*—रसाश्रित भक्त॥ 140॥

वार्षभानवी-दयितकी जय :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (1/1/1)—

अखिलरसामृतमूर्त्तिः प्रसृमर-
रुचिरुद्ध-तारका-पालिः।
कलित-श्यामा-ललितो
राधाप्रेयान् विधुर्जयति॥ 141॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 141॥

अमृतप्रवाह भाष्य—(भक्तिरसामृतसिन्धुमें) अखिलरसामृतमूर्ति, वर्धनशीलकान्तिके द्वारा तारका-पाली नामक दो सखियोंको अवरुद्ध करनेवाले, श्यामा और ललितासखीको वशमें करनेवाले, राधाजीके अत्यन्त प्रिय, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र जययुक्त हों। तात्पर्य यह है,—जो उनका जिस रसमें भी भजन करता है, श्रीकृष्ण उस रसामृतकी मूर्ति होनेपर भी श्रीराधिकाके रसके ही एकमात्र परम विषय हैं॥ 141॥

अनुभाष्य—

अखिलरसामृतमूर्त्तिः (अखिलाः शान्ताद्याः पञ्च मुख्यरसाः हास्याद्याः सप्त गौणरसाश्च यस्मिन् तदेव अमृतं परमानन्द एव मूर्त्तिः यस्य सः) प्रसृमर-रुचिरुद्ध-तारका-पालिः (प्रसृमराभिः प्रसरणशीलाभिः रुचिभिः कान्तिभिः रुद्धे वशीकृते तारका-पाली येन सः) कलित-श्यामा-ललितः (कलिते आत्मसात्कृते श्यामा च ललिता च येन् सः) राधाप्रेयान् (राधायाः प्रेयान् प्रियतमः) विधुः (कृष्णचन्द्रः) जयति।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 141॥

श्रीकृष्णके माधुर्यसे स्वयं श्रीकृष्ण ही मुग्ध :—

शृङ्गार-रसराजमय-मूर्त्तिधर।
अतएव आत्मपर्यन्त-सर्व-चित्त-हर॥ 142॥

अनुवाद—समस्त रसोंमें शृङ्गाररस सर्वोपरि है, रसराज है और श्रीकृष्ण इसके मूर्तिमान विग्रह हैं। इसलिये उनका यह रूप सभीके चित्तको तो हरण करता ही है, उनके स्वयंके चित्तको भी हरण कर लेता है॥ 142॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'शृङ्गार'*—रसराज; *'तन्मय-मूर्त्तिधर'*—श्रीकृष्ण; इस कारणसे श्रीकृष्णका श्रीरूप स्वयं श्रीकृष्ण तकके भी चित्तका हरण करता है॥ 142॥

अनुभाष्य—आदिलीला 4/144 और 222 संख्या देखें॥ 142॥

व्रजसुन्दरियोंके साथ नित्यविलासी श्रीकृष्ण :—
श्रीगीतगोविन्द (1/11)—

विश्वेषामनुरञ्जनेन जनयन्नानन्दमिन्दीवर-
श्रेणीश्यामलकोमलैरुपनयन्नङ्गैरनङ्गोत्सवम्।
स्वच्छन्दं व्रजसुन्दरीभिरभितः प्रत्यङ्गमालिङ्गितः
शृङ्गारः सखि मूर्त्तिमानिव मधौ मुग्धो हरिः क्रीड़ति॥ 143॥

अनुवाद—हे सखि! इस वसन्तकालमें विलासरसमें उन्मत्त श्रीकृष्ण मूर्तिमान शृङ्गाररसस्वरूप होकर विहार कर रहे हैं। वे इन्दीवर कमलसे भी अतीव अभिराम कोमल श्यामल अङ्गोंसे कन्दर्प महोत्सवका सम्पादन कर रहे हैं। गोपियोंकी जितनी भी अभिलाषाएँ हैं, उससे भी कहीं अधिक उनकी उन्मत्त लालसाओंको अति अनुरागके साथ तृप्त कर रहे हैं, परन्तु व्रजसुन्दिरयाँ विपरीत रतिरसमें आविष्ट हो विवश होकर उनके प्रत्येक अङ्ग-प्रत्यङ्गका सम्यक् एवं स्वतन्त्र रूपसे आलिङ्गन कर रही हैं॥ 143॥

अनुभाष्य—आदिलीला 4/224 संख्या देखें॥ 143॥

श्रीकृष्णका रूप-माधुर्य नारायण और
लक्ष्मीको भी आकर्षित करता है :—

लक्ष्मीकान्तादि अवतारेर हरे मन।
लक्ष्मी-आदि नारीगणेर करे आकर्षण॥ 144॥

अनुवाद—श्रीकृष्णका रूप-माधुर्य लक्ष्मीकान्तादि (श्रीनारायणादि) सभी भगवत्-अवतारों और भगवत्-स्वरूपोंकी कान्ताएँ लक्ष्मी आदि नारियों, सभीके मनको आकर्षित करनेवाला है॥ 144॥

अनुभाष्य—आदिलीला 5/223 और मध्यलीला 9/111–156 संख्या देखें॥ 144॥

श्रीमद्भागवत (10/89/58) :—

द्विजात्मजा मे युवयोर्दिदृक्षुणा,
मयोपनीता भुवि धर्मगुप्तये।
कलावतीर्णाववनेर्भरासुरान्,
हत्वेह भूयस्त्वरयेतमन्ति मे॥ 145॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 145॥

अमृतप्रवाह भाष्य—भूमा पुरुषने कहा,—'हे कृष्ण-अर्जुन! आप लोगोंके दर्शनोंकी इच्छासे मैं ब्राह्मण-कुमारोंको यहाँ लाया हूँ। आप लोग जगत्‌में धर्मकी रक्षाके लिये कलाके साथ अवतीर्ण हुए हो और अब पृथ्वीके भार-स्वरूप असुरोंको मारकर पुनः शीघ्र आगमन करो।'

तात्पर्य यह है,—भूमापुरुष श्रीलक्ष्मीकान्तने श्रीकृष्णके माधुर्यसे मुग्ध होकर उनके रूपके दर्शनकी इच्छा होनेपर ब्राह्मण-कुमारोंको अपहरण करनेके छलसे श्रीकृष्णके दर्शन प्राप्त किये॥ 145॥

अनुभाष्य—द्वारकामें ब्राह्मणकुमारकी अकाल-मृत्युके हाथसे रक्षा करनेके लिये प्रतिज्ञाबद्ध अर्जुनकी चेष्टाको विफल होते देखकर श्रीकृष्ण अर्जुनको साथ लेकर ब्राह्मणकुमारको दिखानेके लिये ब्रह्माण्डके बाहर प्रकृतिके परिणामरूप, भीषण अन्धकारको सुदर्शन-चक्रके प्रभावसे पार करके बहुत विशाल जलके बीचमें 'महाकालपुर'में पहुँचे। वहाँ सहस्र फणवाले अनन्तके ऊपर शयन करनेवाले शेषशायीके दर्शन करके जब उन्होंने अभिवादन किया, तब परमेष्ठीपति भगवान् शेषशायीने श्रीकृष्ण-अर्जुनको कहा—

धर्मगुप्तये (धर्मसंरक्षणाय) कलावतीर्णौ (कलाभिः सर्वाभिः शक्तिभिः अवतीर्णौ प्रकटौ) युवयोः दिदृक्षुणा (दर्शनेच्छुना) मे (मम) भुवि (महाकालपुरे) द्विजात्मजाः (विप्रकुमाराः) मया उपनीताः (आनीताः); भूयः पुनरपि अवनेः (पृथिव्याः) भरासुरान् (भारभूतान् विष्णु-विरोधि-दैत्यान्) हत्वा इह (अत्र) मे अन्ति (समीपं) त्वरया (शीघ्रमेव) इतम् (आगच्छतम्)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 145॥

श्रीमद्भागवत (10/16/36) :—

कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे
तवाङ्घ्रिरेणुस्पर्शाधिकारः।
यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाचरत्तपो विहाय
कामान् सुचिरं धृतव्रता॥ 146॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 146॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे देव! जिनकी चरणरजको प्राप्त करनेकी वासनासे लक्ष्मीने बहुत समय तक समस्त प्रकारके विषय-भोगोंका परित्याग करके दृढ़व्रत धारण करके तपस्या की थी, उस चरणरजको इस कालिय-नागने किस सुकृतिके द्वारा लाभ करनेका अधिकार प्राप्त किया, उसे हम नहीं जानती॥ 146॥

अनुभाष्य—कालिय-नाग जब श्रीकृष्णके चरणकमलोंके प्रहारसे मूर्च्छित हो गया और उसके फण टूट गये थे, तब श्रीकृष्णका स्तव करते हुए नागपत्नियोंने कहा—

यद्वाञ्छया (यत् यस्य पादपद्मरेणुस्पर्शाधिकारस्य वाञ्छया इच्छया) श्रीः (ब्रह्मादिसेव्या लक्ष्मीः) ललना (उत्तमा स्त्री अस्मद्-गरीयसी) [अपि सर्वान्] कामान् विहाय धृतव्रता (व्रतनिष्ठा तपस्विनी सती) सुचिरं तपः अचरत्, अस्य (सर्पयोनि-लब्धजीवस्यापि कालियस्य) तव अङ्घ्रिरेणुस्पर्शाधिकारः

(तादृशदुर्लभपदरजःस्पर्शने अधिकारः सामर्थ्यं) कस्य (सुकृतस्य) अनुभावः (फलं),—[वयम् एतत्] न विद्महे (जानीमः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 146॥

अपने माधुर्यके द्वारा श्रीकृष्ण स्वयं ही मुग्ध :—

आपन-माधुर्ये हरे आपनार मन।
आपना आपनि चाहे करिते आलिङ्गन॥ 147॥

अनुवाद—श्रीकृष्णका ऐसा अनुपम माधुर्य है कि वह उनके स्वयंके मनका हरण कर लेता है और वे स्वयं ही स्वयंका आलिङ्गन करना चाहते हैं॥ 147॥

अनुभाष्य—आदिलीला 4/148–158 संख्या देखें॥ 147॥

श्रीराधिकाकी भाँति अपने माधुर्यको आस्वादन करनेकी स्वयंकी ही व्यग्रता :—
श्रीललितमाधव (8/34)—

अपरिकलितपूर्वः कश्चमत्कारकारी
स्फुरति मम गरीयानेष माधुर्यपूरः।
अयमहमपि हन्त प्रेक्ष्य यं लुब्धचेताः
सरभसमुपभोक्तुं कामये राधिकेव॥ 148॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण बोले—"अहो! यह प्रगाढ़ माधुर्य-चमत्कारकारी अनिर्वचनीय चित्रित श्रेष्ठ पुरुष कौन है? इनपर दृष्टि पड़ते ही मैं क्षुब्धचित्तसे इन्हें देखता ही जा रहा हूँ और राधिकाकी भाँति इनका बलपूर्वक आलिङ्गन करनेकी इच्छा हो रही है॥"148॥

अनुभाष्य—आदिलीला 4/146 संख्या देखें॥ 148॥

अमृतानुकणिका—"श्रीकृष्णका नित्य विग्रह सच्चिदानन्दमय है। सामान्य रूपमें भगवान्‌के छह प्रकारके ऐश्वर्य हैं। (विष्णुपुराण 6/5/47)—'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य...'—अपार ऐश्वर्य, असीम वीर्य (पराक्रम), अनन्त यश, अपूर्व श्री (शोभा), पूर्णज्ञान (सर्वज्ञता) तथा पूर्ण वैराग्य—ये भगवान्‌के स्वरूपगत गुण हैं।

श्रीकृष्ण चिन्मय जगत्‌के सूर्य-स्वरूप प्रकाशमान तथा चन्द्रस्वरूप आनन्द-विस्तारक हैं। श्रीकृष्णका स्वरूप नित्य-सिद्ध है; उनका वह स्वरूप, उनका धाम, उपकरण, परिकरवृन्द और उनके लीला-विलास सभी चिन्मय, नित्य, परम उपादेय, निर्दोष और परम विशुद्ध हैं। माधुर्य प्रधान प्रकाश व्रजधाममें श्रीकृष्ण नित्य व्रजलीला विलासी हैं।

'वृन्दावने अप्राकृत नवीन मदन'—श्रीकृष्ण वृन्दावनमें अप्राकृत नवीन मदन हैं। एक है—'प्राकृत मदन' अथवा कामवेग। यह मायाकी एक वृत्ति है, जो मनमें उदित होकर समस्त इन्द्रियोंको क्षुब्ध कर देता है। पूर्व जन्मके संस्कारों, मायिक वस्तुओंके सङ्गके कारण इसका प्रकाश होता है। यह विषयोंकी ओर ही दौड़ता है और अपने सुखके लिये होता है; यह नरककी ओर ले जाता है। दूसरा होता है—'अप्राकृत मदन अथवा काम', यह स्वरूपशक्तिकी ह्लादिनी-संवित् वृत्तिसे निर्मित है और इसका उद्गम श्रीकृष्णसे है, अतः यह श्रीकृष्ण तक पहुँचाता है। अप्राकृत कामका अर्थ है स्वसुखरहित श्रीकृष्णसेवाकी वासना। व्रजमें गोपियोंका प्रेम ही 'काम' नामसे जाना जाता है, क्योंकि अप्राकृत कामके विषय सच्चिदानन्द स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं। वहाँ काम और प्रेम एक ही तात्पर्यमय है।

श्रीकृष्णका अनुपम अलौकिक मदन-मोहन रूप पुरुष, स्त्री, किम्वा स्थावर-जङ्गम, समस्त सृष्टिके मनको आकर्षित करनेवाला है। श्रीरूप गोस्वामीने श्रीभक्ति- रसामृतसिन्धु श्लोक (2/1/23–43) 'अयं नेता सुरम्याङ्गः ...गोविन्दस्य चतुष्टयम्' में श्रीकृष्णके असंख्य गुणोंमेंसे चौंसठ गुणोंका निरूपण किया है, जो केवल दिग्दर्शन मात्र है, जैसे-नायक शिरोमणि श्रीकृष्णके अङ्ग अत्यन्त सुरम्य हैं अर्थात् इनका अङ्गसन्निवेश अतिशय रमणीय है, वे सर्वसुलक्षणयुक्त हैं; रुचिर हैं अर्थात् इनका सौन्दर्य नेत्रोंको आनन्द देनेवाला है; तेजसान्वित अर्थात् वे अतिशय प्रभावयुक्त हैं; बलीयान् अर्थात् अतिशय बलवान हैं; 'वयसान्वितः' अर्थात् उनकी नानाविध विलासमय नवकिशोर अवस्था है।

श्रीकृष्णमें किशोर अवस्थाका उदय आठ वर्षमें होने लगता है। इसके पूर्व उन्होंने आदि-कैशोरमें

कालिय-दमन लीला की और मध्य कैशोरमें गोवर्धन-धारण लीला की। उनकी इन दोनों ही लीलाओंमें अपूर्व पराक्रमका प्रदर्शन है, जिसने व्रज-वल्लभियोंके हृदयमें अपूर्व रसका सञ्चार करके उनके हृदयके प्रेमको पुष्ट और वर्धित किया। क्योंकि वीर-रस सदैव शृङ्गाररसका पोषक होकर रहता है। श्रीकृष्णमें पूर्ण कैशोरका उदय नवम वर्षमें होता है। इसी अवस्थाको सफल करते हुए वे रासलीलादि सम्पन्न करते हैं।

श्रीकृष्णके चौंसठ गुणोंमेंसे पचास गुण भगवान्के अनुगृहीत पुरुषोंमें बिन्दु-बिन्दु रूपमें पाये जाते हैं। साधारण व्यक्तियोंमें भी इनके बिन्दुका आभास-मात्र जानना चाहिये। इनके अतिरिक्त पाँच गुण सदाशिव आदिमें आंशिक रूपमें तथा अन्य पाँच गुण श्रीनारायणमें भी प्रकाशित होते हैं। किन्तु श्रीकृष्णमें ये सभी गुण परिपूर्णतम मात्रामें नित्यकाल विराजमान रहते हैं। इनके अतिरिक्त चार असाधारण गुण—लीला-माधुरी, रूप-माधुरी, प्रेम-माधुरी और वेणु-माधुरी केवल व्रजविलासी व्रजेन्द्रनन्दन-श्रीकृष्णमें ही पाये जाते हैं। श्रीकृष्णके ये चार असाधारण गुण अन्य किसी भगवत्-स्वरूपमें नहीं होते, यहाँ तक कि मथुरेश और द्वारकाधीश श्रीकृष्णमें भी ये नहीं होते। इसी कारण श्रीनारायण या अन्य भगवत्-स्वरूपोंमें अभेद होते हुए भी रसके उत्कर्षमें व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण सर्वोपरि हैं।

1) *'लीला माधुर्य'*—श्रीकृष्णकी प्रत्येक लीला अद्भुत दिव्यातिदिव्य रस-प्रवाही है। रसिकशेखर रसस्वरूप श्रीकृष्ण अपनी समस्त लीलाओंमें रासलीलाका ही सर्वाधिक रूपमें आस्वादन करते हैं। श्रीबृहद्वामन पुराणमें श्रीकृष्णके वचन—

"सन्ति यद्यपि मे प्राज्या लीलास्तास्ता मनोहराः।
न हि जाने स्मृते रासे मनो मे कीदृशं भवेत्॥"

अर्थात् "यद्यपि मेरी अनेक प्रकारकी मनोहारी प्रचुर लीलाएँ विद्यमान हैं, तो भी रासलीलाका स्मरण करते ही मेरा मन जिस प्रकार भावापन्न होता है, उसे मैं व्यक्त नहीं कर सकता।"

2) *'प्रेम माधुर्य'*—श्रीकृष्ण अपने सभी रसाश्रित प्रेमीजनोंको अपने प्रेमसे मण्डित करते हैं। इस विषयमें सखाओंके प्रेमका वर्णन भागवत (10/12/11)—'इत्थं सतां…', आदि श्लोकोंमें देखा जाता है। व्रजके गोप-बालकोंका नित्यसिद्ध निर्मल सख्य-प्रेम जगत्में अतुलनीय है। श्रीकृष्ण भी इनके प्रेमके अधीन होकर अनेक प्रकारके क्रीड़ा-रसका आस्वादन करते हैं। खेलमें हार जानेपर श्रीकृष्ण सखाओंको कन्धेपर बैठाकर ले जाते हैं और कभी उनका जूठा खाते हैं, जिसे देखकर ब्रह्माजी भी मोहित हो जाते हैं।

वात्सल्य रसके प्रेमीजनों यथा श्रीनन्द-यशोदा आदिके प्रेम और भाग्यकी महिमा भागवतके (10/14/32)—'अहो भाग्यमहो…', (10/9/20)—'नेमं विरिञ्चो न भवो…' आदि श्लोकोंमें वर्णित है। श्रीनन्दादि व्रजवासियोंके धन्य भाग्य हैं, क्योंकि परमानन्दस्वरूप परंब्रह्म श्रीकृष्ण उनके सगे-सम्बन्धी और सुहृद् हैं। अपने प्रति चमत्कारमय असाधारण वात्सल्य प्रेमके कारण श्रीकृष्ण माता यशोदाकी डाँट-डपट सुनते हैं और उनके द्वारा रस्सीसे भी बँध जाते हैं। ऐसा सौभाग्य शिव, ब्रह्मा और यहाँ तक कि लक्ष्मीको भी नहीं प्राप्त हुआ है।

श्रीकृष्णप्रेममें आविष्ट गोपियोंने गोपीगीतके श्लोक (10/31/15)में कहा है—"अटति यद्भवानह्नि….." अर्थात् हे प्रियतम! दिनके समय जब तुम वनमें विहारके लिये चले जाते हो, तब तुम्हारे अदर्शनसे हमें आधे क्षणका समय भी युगके समान प्रतीत होता है। संध्याके समय तुम्हारे लौटनेपर हम घुँघराले केशोंसे सुशोभित तुम्हारा परम सुन्दर मुख निहारने लगती हैं। उस समय पलकोंका गिरना भी हमारे लिये असहनीय हो जाता है और हमें ऐसा जान पड़ता है कि नेत्रोंपर पलकें बनानेवाला विधाता मूर्ख है।

उद्धवजी भी गोपियोंके असाधारण प्रेमको देखकर आश्चर्यचकित होकर 'नायं श्रियोऽङ्ग' आदि श्लोकोंमें उनकी महिमाका गान कर रहे हैं।

3) *'वेणु माधुर्य'*—

भागवत (10/35/15)—'सवनशस्तदुपधार्य सुरेशाः'— "श्रीकृष्णकी मधुर वंशीध्वनिको सुनकर इन्द्र, शिव, ब्रह्मादि स्वयं सुपण्डित होते हुए भी राग, ताल, स्वरादिके तत्त्व निर्णय करनेमें असमर्थ हो जाते हैं और मोहको प्राप्त होकर अपनी गर्दन झुकाकर तन्मय हो जाते हैं।"

श्रीकृष्णकी सर्वाकर्षिणी वेणु-ध्वनि सुनकर गोपियाँ उन्मत्त होकर लोक-लज्जा, धैर्य, मर्यादा आदि सबको जलाञ्जली देकर अपने घरोंसे निकल पड़ती हैं। वेणुनादके द्वारा अपहत चित्तके कारण वे गृहकार्योंको अथवा शृङ्गारादिको अधूरा छोड़कर, वस्त्रोंको उल्टा-सीधा धारणकर तथा उन्मादग्रस्त होकर श्रीकृष्ण जहाँ वेणु वादन कर रहे हैं, उधर द्रुत गतिसे चल पड़ती हैं। और भी, वाम्य-स्वभाववाली मानिनियोंके दुर्जय मानको वंशी ही भङ्ग करनेमें समर्थ है। इस प्रकार व्रजमें वंशी श्रीकृष्णके अनेक कार्य सिद्ध करनेके कारण सर्वकार्य-साधिका है।

4) *'रूप माधुर्य'*—

भागवत (3/2/12)में उद्धवजीके विदुरसे कहे वचन—'यन्मर्त्यलीलौपयिकं...' अर्थात् 'श्रीकृष्णकी यह दिव्य मूर्ति इतनी रमणीय है कि इसे देखकर श्रीकृष्ण स्वयं भी विस्मित हो जाते हैं। यह श्रीविग्रह सौन्दर्यकी पराकाष्ठा-स्वरूप तथा समस्त भूषणोंका भूषण-स्वरूप है अर्थात् समस्त लौकिक दृश्योंसे अलौकिक और अलौकिक दृश्योंसे परम लौकिक है।'

श्रीकृष्णका विग्रह गोलोकका नित्यधन है। इस प्रपञ्चात्मक जगत्में उन्होंने अपनी उस मूर्तिको योगमायाके प्रभावके द्वारा प्रकट किया है। उनका यह दिव्य विग्रह मर्त्यजगत्के लिये उपयोगी है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुरने अपनी टीकामें कहा है कि 'मर्त्यजगत्के लिये उपयोगी', ऐसा माननेसे श्रीविग्रहका अपकर्ष नहीं होता। वास्तवमें वैकुण्ठलीलाके स्वरूपोंसे भी इस जगत्में प्रकाशित श्रीविग्रहका अत्यधिक उत्कर्ष ही है। इसलिये कह रहे हैं-'स्वयोगमायाबलं' अर्थात् योगमायाने कुछ ऐश्वर्य या माधुर्यको गोपन करके इसे प्रकाशित नहीं किया, अपितु सबकुछ ही इस श्रीविग्रहमें संयोजित हुआ है। अधिक क्या वैकुण्ठमें भी इस प्रकारका सामर्थ्य योगमायाके द्वारा प्रदर्शित नहीं हुआ है।

गोपियोंकी उक्ति भागवत (10/29/40) 'का स्त्र्यङ्ग ते कलपदायत' अर्थात् 'हे कृष्ण! तीनों लोकोंमें ऐसी कौन-सी रमणी है, जो मधुर-मधुर पद और आरोह-अवरोह क्रमसे विविध प्रकारकी मूर्च्छनाओंसे युक्त तुम्हारी वंशीकी तानको सुनकर तथा त्रिभुवनके सौभाग्यरूप तुम्हारे इस त्रिभङ्ग-ललित श्यामसुन्दर रूपको अपने नेत्रोंसे निहारकर सर्वथा मोहित होकर अपनी आर्य-मर्यादासे विचलित न हो जाय—नारीधर्म और लोक लज्जाको त्यागकर तुममें अनुरक्त न हो जाय? स्त्रियोंकी बात ही क्या है, तुम्हारा त्रिभुवन-मोहन रूप तथा मुरली सङ्गीत ऐसा मोहक है कि इसे देख-सुनकर गौएँ, पक्षी, वृक्ष और मृग आदि प्राणी भी परमानन्दसे पुलकित हो जाते हैं।'

श्रीकृष्णमें विरुद्ध धर्माश्रयका गुण होनेके कारण श्रीकृष्णमें धीरोदात्त, धीरललित, धीरप्रशान्त और धीरोद्धत्त—चारों प्रकारका नायकत्व है। लीलाशक्ति श्रीकृष्णकी इच्छानुसार इन्हें प्रकट करती है। (भःरःसिः 1/1/1)—

"अखिलरसामृतमूर्तिः प्रसृमररुचिरुद्धतारकापालिः।
कलितश्यामा-ललितो राधाप्रेयान् विधुर्जयति॥

"श्रीकृष्णचन्द्र अखिल रसामृतमूर्ति हैं, समस्त द्वादश रसोंके विषय हैं, परम सुन्दर हैं, मन्मथके भी मनको मथनेवाले हैं तथा इनकी रुचि अर्थात् कान्ति, सौन्दर्य, गुणावली, रूपछटा, प्रभा व्याप्त होकर तारका और पाली नामक साधारणी गोपियोंको, (सुहृत्-पक्षा) श्यामा और (स्वपक्षा) ललिता आदि प्रमुख गोपियोंको भी वशीभूत कर लेती है। श्रीकृष्ण श्रीराधासे अत्यन्त प्रेम करते हैं, ऐसे श्रीराधाके प्रियतम श्रीकृष्ण जययुक्त हों।"

इस श्लोकमें श्रीरूप गोस्वामीने श्रीराधाकी सखियों ललिता और श्यामाके नाम दिये हैं। श्रीराधाके साथ श्रीकृष्णके स्वच्छन्द विहारमें इनके द्वारा रसपुष्टिका योगदान होता है। ये दोनों ही यूथेश्वरियाँ हैं।

श्रीकृष्ण वृन्दावनमें अप्राकृत नवीन मदन हैं और उनकी उपासना कामगायत्री और कामबीजके द्वारा होती है। 'कम' धातुसे काम शब्दकी निष्पत्ति होती है। कामका अर्थ है—जिसकी कामना की जाय, अभिलाषा की जाय। श्रीकृष्णकी ही कामना सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि वे अतिशय रूपवान हैं, अत्यन्त मधुर हैं, उनका यह सौन्दर्य और माधुर्य क्षण-क्षणमें नित्य नवीन अनुभव होता है। अतः वे अप्राकृत नवीन मदन हैं, उनका यह स्वरूप प्रकृतिसे अतीत है। यह अप्राकृत मदन स्वरूप उपासकोंके हृदयमें तीव्र कामना उत्पन्न करके उन्हें मत्त कर देता है। श्रीकृष्ण परम करुण और रसिकशेखर हैं। वे रस स्वरूप हैं। रस शब्दके दो अर्थ होते हैं—आस्वाद्य 'रस' और रस-आस्वादक 'रसिक'। वे रस-रूपमें आस्वाद्य हैं और रसिक-रूपमें वे आस्वादक हैं। उसी 'रसस्वरूप' रूपमें श्रीकृष्णको प्राप्त करनेके लिये कामबीज और कामगायत्रीके द्वारा उनकी उपासना की जाती है। कामगायत्री श्रीकृष्णका ही स्वरूप है। इस रसमय ब्रह्मकी उपासना कामबीजयुक्त कृष्णमन्त्र 'गोपालमन्त्र' और कामगायत्रीके द्वारा ही सिद्ध होती है। बीजयुक्त होनेपर ही मन्त्र सम्पूर्ण होता है।

कामबीज, 'क्लीं'—यह आदि एकाक्षर बीज या कामबीज है। श्रीबृहद्गौतमीय तन्त्र तथा उपनिषदोंमें इसका अर्थ इस प्रकार है। श्रीभगवान्ने 'क्लीं'—इस कामबीजके द्वारा इस जगत्की सृष्टि की। इस बीजके अन्तर्गत 'क'-कारसे जल, 'ल'-कारसे भूमि, 'ई'-कारसे अग्नि तथा नाद अर्थात् चन्द्रसे वायु एवं बिन्दुसे आकाश उत्पन्न हुआ है। इसलिये कामबीजात्मक मन्त्र ही समस्त प्राणियोंका मूल कारण है।

रागमार्गके अनुसार मन्त्रार्थ—'क'-कारसे सच्चिदानन्द-विग्रह परम पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, 'ल'-कारसे श्रीराधाकृष्णके प्रेम-जनित परमानन्द सुख-समुद्र, 'ई'-कारसे नित्य वृन्दावनेश्वरी सर्वप्रेयसी शिरोमणि परमा प्रकृति श्रीराधा तथा चन्द्रबिन्दुसे श्रीराधाकृष्णका परस्पर चुम्बनानन्द माधुर्य।

कृष्णमन्त्र या गोपाल-मन्त्र पाँच भागोंमें विभक्त है—

1) *'कृष्णाय'*—श्रीकृष्ण अपनी वेणु, रूप, लीला आदिके अतुलनीय माधुर्य प्रवाहसे त्रिजगत्के स्थावर-जङ्गमादि सबके चित्तको आकर्षित करते हैं। इस प्रकार श्रीकृष्णके भुवनमोहन स्वरूपके साथ साधकका सम्बन्ध होता है।

2) *'गोविन्दाय'*—श्रीकृष्ण नन्द-गोकुलमें मनोहर नवजलधरवर्ण श्यामसुन्दर रूपमें अपनी मधुर लीलाका विस्तार करते हैं। नयन, कर्ण आदि समस्त इन्द्रियों और हृदयको उल्लसित करनेवाले गोविन्दकी साधक अपनी समस्त इन्द्रियोंके द्वारा आराधना करता है, अर्थात् अभिधेय तत्त्वमें प्रतिष्ठित होता है।

3) *'गोपीजन'*—'गोपी' श्रीकृष्णकी एक विशेष ह्लादिनी शक्ति है। यह भक्तोंको प्रेम प्रदानकर उनका पालन-पोषण करती हैं। श्रीराधा ही ह्लादिनी शक्ति-स्वरूपिणी हैं। इसलिये 'गोपी' शब्दसे मूलप्रकृति श्रीराधा तथा 'जन' शब्दसे श्रीराधाकी कायव्यूहरूपा ललिता, विशाखा आदि सखियोंका बोध होता है।

4) *'वल्लभाय'*—जो सर्वश्रेष्ठ नायकके रूपमें गोपियोंके साथ परम मधुर लीला-विलास करते हैं, वे ही गोपीजनवल्लभ श्रीराधिका और उनकी सखियोंके प्राणप्रियतम हैं। गोपीजनवल्लभ ही इस मन्त्रके प्रयोजन-तत्त्व हैं।

5) *'स्वाहा'*—यह श्रीकृष्णकी स्वरूपभूता चिद् शक्ति योगमाया हैं, जो भक्तोंको श्रीकृष्णके पादपद्मोंमें समर्पण करती हैं। 'स्वाहा' पदके उच्चारणसे ही श्रीराधाकृष्ण युगलमें सम्पूर्ण रूपसे आत्मसमर्पण होता है।

'कामगायत्री'—यह ब्रह्म गायत्रीका ही सिद्ध स्वरूप परिपक्व फल है। यह श्रीकृष्णका ही स्वरूप है और रसमय ब्रह्मकी प्राप्ति करानेवाला है। इसे कृष्णगायत्री

न कहकर कामगायत्री इसलिये कहा गया, क्योंकि इसमें सम्मिलित 'काम' नाम केवल मधुर भावमें ही ग्रहण किया जाता है। श्रीकृष्णकी सर्वोत्कृष्ट अवस्थाका नाम 'काम' है। वही कामदेव अनङ्गके रूपमें हैं।

कामगायत्रीमें साढ़े चौबीस अक्षर हैं, जो श्रीकृष्णके अङ्गोंमें साढ़े चौबीस चन्द्रोंको लक्ष्य करते हैं, यथा—एक मुखचन्द्र, दो गण्ड(कपोल), एक चन्दन बिन्दु, अर्धचन्द्र ललाट तथा बीस चन्द्र हस्त तथा पदके नख। उनका ललाट केशोंसे आधा ढका हुआ होता है, इसलिये उसे अष्टमीका अर्धचन्द्र कहा गया है। काम गायत्रीमें 'वि'के पूर्व जो 'य' है, वही अर्धाक्षर माना गया है और ललाटकी स्थिति भी मन्त्रमें इसी स्थानपर है। श्रीकृष्णके विषयमें अर्धचन्द्र भी पूर्ण ही है, क्योंकि श्रीकृष्ण अखण्ड हैं। श्रुतिके 'ॐ पूर्णमिदं' श्लोकके अनुसार श्रीकृष्णका एक अंश और कला भी परिपूर्ण है। श्रीकृष्णके अङ्ग-स्थित ये चन्द्र उदित होकर त्रिजगत्‌को काममय करते हैं, सबके हृदयमें श्रीकृष्णसेवा सुख वासनाका उद्दीपन कराते हैं।

कामगायत्री सभी गायत्रियोंमें सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि उसमें जो ध्यान और प्रार्थना है वह सम्पूर्ण रूपसे चिद्-विलासमय है, जो अन्य किसी गायत्रीमें नहीं है। इस गायत्रीमें श्रीगोपीजनवल्लभके परिपूर्ण ध्यानके पश्चात् उनकी लीलाकी स्फूर्ति और उस अप्राकृत अनङ्गको प्राप्त करनेकी प्रार्थना होती है। व्रजगोपियोंसे परिवेष्ठित श्रीमती राधिकाके सङ्ग लीलाविलासी नवीन मदन श्रीकृष्णको सुख देनेकी कामनामें तन्मय हो जाना ही कामबीज उपासनाका तात्पर्य है।

गोपाल-मन्त्रके कृष्ण, गोविन्द और गोपीजनवल्लभ कामगायत्रीमें इस प्रकार अवस्थित हैं—'कृष्ण'—कामदेव, 'गोविन्द'—पुष्पबाण और 'गोपीजनवल्लभ'—अनङ्ग। कामबीजके अन्तर्गत पञ्चाक्षर ही श्रीकृष्णके पञ्चबाण हैं। श्रीकृष्णकी सेवाके लिये बलवती वासना ही पञ्चबाणकी क्रिया है। रूप, रस, शब्द, गन्ध, स्पर्शके द्वारा आस्वादन ही पुष्पबाण हैं। श्रीकृष्ण ही साक्षात् मन्मथ-मन्मथ अनङ्ग हैं। वे अपनी कन्दर्परूप लीलाको प्रकट करके त्रिभुवनको जय करते हैं। साधकगण कामगायत्री उपासनाके द्वारा व्रजमें विराजित श्रीराधाकृष्णका सेवासुख लाभ करते हैं।"—श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी॥ 124–148 ॥

(2) श्रीराधिकाके तत्त्वका वर्णन आरम्भ :—

एइ त' संक्षेपे कहिल कृष्णेर स्वरूप।
एबे संक्षेपे कहि राधा-तत्त्वरूप॥ 149 ॥

श्रीकृष्णकी तीन शक्तियाँ :—

कृष्णेर अनन्त-शक्ति, ताते तिन—प्रधान।
'चिच्छक्ति', 'मायाशक्ति', 'जीवशक्ति'-नाम॥ 150 ॥

'अन्तरङ्गा', 'बहिरङ्गा', 'तटस्था' कहि यारे।
अन्तरङ्गा 'स्वरूप शक्ति'—सबार उपरे॥ 151 ॥

अनुवाद—(श्रीरामानन्द रायने कहा—) इस प्रकार संक्षेपमें मैंने श्रीकृष्णके स्वरूपका वर्णन किया। अब श्रीराधा-तत्त्वका स्वरूप संक्षेपमें सुनिये। श्रीकृष्णकी अनन्त शक्तियाँ हैं, उनमेंसे तीन शक्तियाँ प्रधान हैं—'चित्-शक्ति', 'मायाशक्ति' और 'जीवशक्ति'। इन्हें क्रमशः 'अन्तरङ्गा', 'बहिरङ्गा' और 'तटस्था' भी कहते हैं। इन सभीमें अन्तरङ्गा अर्थात् 'स्वरूप शक्ति' प्रधान है॥ 149–151 ॥

अनुभाष्य—आदिलीला 2/101–103 संख्या, 5/42, 45, 57–58 संख्या देखें॥ 151 ॥

विष्णुपुराण (6/7/61) :—

विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथापरा।
अविद्या कर्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते॥ 152 ॥

अनुवाद—विष्णुशक्ति—परा, क्षेत्रज्ञा और अविद्या नामक, तीन प्रकारकी है। विष्णुकी पराशक्ति ही 'चित्-शक्ति' है, क्षेत्रज्ञा-शक्ति ही जीवशक्ति है (जिसको मायारूपा 'अविद्या' से 'अपरा' अर्थात् भिन्ना कहा गया है) और कर्म नामक अविद्या-शक्तिका नाम 'माया' है॥ 152 ॥

अनुभाष्य—आदिलीला 7/119 संख्या देखें॥ 152॥

श्रीकृष्णके स्वरूपसे अभिन्न स्वरूपशक्ति :—

सच्चिदानन्दमय कृष्णेर स्वरूप।
अतएव स्वरूप-शक्ति हय तिन रूप॥ 153॥

स्वरूपशक्तिके तीन रूप :—

आनन्दांशे 'ह्लादिनी', सदंशे 'सन्धिनी'।
चिदंशे 'सम्वित्', यारे ज्ञान करि' मानि॥ 154॥

अनुवाद—श्रीकृष्णका स्वरूप सच्चिदानन्दमय (सत्, चित् और आनन्दमय) है, इसलिये उनकी स्वरूपशक्तिके भी तीन रूप हैं। वह स्वरूप-शक्ति आनन्द-अंशसे 'ह्लादिनी', सत्-अंशसे 'सन्धिनी' और चित्-अंशसे 'सम्वित्', जिसको ज्ञान भी कहा जाता है,—इन तीन रूपोंको धारण करती है॥ 153-154॥

विष्णुपुराण (1/12/69) :—

ह्लादिनी सन्धिनी सम्वित् त्वय्येका सर्वसंश्रये।
ह्लादतापकरी मिश्रा त्वयि नो गुणवर्जिते॥ 155॥

अनुवाद—हे भगवन्! आप सभीके आश्रय और निर्गुण हैं। आपमें स्थित त्रिविधरूप शक्ति 'ह्लादिनी', 'सन्धिनी' और 'सम्वित्', तीनों चिन्मय हैं। मायाके वशमें होने योग्य चित्-कण जीव जब मायामें आविष्ट होकर मायाके तीन गुणोंका आश्रय करते हुए जिस अवस्थाको प्राप्त करते हैं, उस अवस्थामें वह शक्ति 'ह्लादकारी', 'तापकरी' और 'मिश्रा'—इन तीन प्रकारके भावोंको प्राप्त करती है। किन्तु सभी गुणोंसे अतीत आपमें यह शक्ति निर्मल और निर्गुणस्वरूपमें एकाकार होकर रहती है॥ 155॥

अनुभाष्य—आदिलीला 4/61-63 संख्या देखें॥ 153-155॥

ह्लादिनी-संज्ञाका कारण और कार्य :—

कृष्णके आह्लादे, ता'ते नाम—'आह्लादिनी'।
सेइ शक्ति-द्वारे सुख आस्वादे आपनि॥ 156॥

सुखरूप कृष्ण करे सुख आस्वादन।
भक्तगणे सुख दिते 'ह्लादिनी'—कारण॥ 157॥

अनुवाद—जो शक्ति श्रीकृष्णको आनन्द प्रदान करती है, उसका नाम 'आह्लादिनी' है। उस शक्तिके द्वारा श्रीकृष्ण स्वयं सुखका आस्वादन करते हैं। स्वयं सुखरूप होनेपर भी श्रीकृष्ण ह्लादिनी-शक्तिके द्वारा सभी प्रकारके सुखोंका आस्वादन करते हैं और वे भक्तोंको भी ह्लादिनी-शक्तिके द्वारा सुख प्रदान करते हैं॥ 156-157॥

अनुभाष्य—आदिलीला 4/59-60 संख्या देखें॥ 156-157॥

ह्लादिनी और श्रीराधिका :—

ह्लादिनीर सार अंश, तार 'प्रेम' नाम।
आनन्दचिन्मयरूप रसेर आख्यान॥ 158॥

प्रेमेर परम-सार 'महाभाव' जानि।
सेइ महाभावरूपा राधा-ठाकुराणी॥ 159॥

अनुवाद—ह्लादिनीके सार अंशका नाम 'प्रेम' है। प्रेमकी व्याख्या करनेपर इसे आनन्दचिन्मयरस भी कहा जाता है। प्रेमका परम सार 'महाभाव' है, वही महाभावरूपा श्रीराधा-ठाकुरानी हैं॥ 158-159॥

उज्ज्वलनीलमणिमें राधा-चन्द्रावलीके
तारतम्य-वर्णनमें (4/3) —

तयोरप्युभयोर्मध्ये राधिका सर्वथाधिका।
महाभावस्वरूपेयं गुणैरतिवरीयसी॥ 160॥

अनुवाद—श्रीराधा और श्रीचन्द्रावलीके मध्यमें भी श्रीराधा ही सभी प्रकारसे श्रेष्ठा हैं। वे महाभावस्वरूपिणी हैं अर्थात् उनका विग्रह महाभावमय है, क्योंकि वे ह्लादिनी शक्तिकी सारांश हैं और गुणोंमें भी अत्यन्त श्रेष्ठा हैं॥ 160॥

श्रीराधाका 'स्वरूप' और 'देह' एक ही वस्तु,
वह सम्पूर्ण श्रीकृष्णप्रेममय :—

प्रेमेर 'स्वरूप'-'देह'—प्रेमेर भावित।
'कृष्णेर प्रेयसी-श्रेष्ठ' जगते विदित॥ 161॥

अनुवाद—श्रीराधाजीकी देह प्रेम-स्वरूप है अर्थात् वह प्रेमसे ही गठित है। श्रीकृष्णकी समस्त प्रेयसियोंमें वे श्रेष्ठतमा हैं, यह बात सारा जगत् जानता है॥ 161॥

अमृतप्रवाह भाष्य—यहाँ आदिलीलाके चौथे अध्याय पर ठीकसे विचार करनेपर यह सब विषय अच्छेसे समझ आ जायेंगे॥ 147-161॥

ब्रह्मसंहिता (5/37) :—

आनन्दचिन्मयरस-प्रतिभाविताभि-
स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः।
गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ 162॥

अनुवाद—आनन्द चिन्मयरसके द्वारा प्रतिभाविता, अपने चित्-रूपके अनुरूपा, चिन्मयरसस्वरूपा, चौंसठ कलाओंसे युक्ता, ह्लादिनीशक्तिस्वरूपा श्रीराधा और उनकी कायव्यूहस्वरूपा सखियोंके साथ जो अखिलात्मभूत गोविन्द अपने गोलोकधाममें निवास करते हैं, ऐसे आदिपुरुष श्रीगोविन्दका मैं भजन करता हूँ॥ 162॥

अनुभाष्य—आदिलीला 4/68-72 संख्या देखें॥ 158-162॥

श्रीराधा श्रीकृष्णकी वाञ्छाको पूर्ण करनेवाली,
अष्टसखियाँ—उनकी कायव्यूह :—

सेइ महाभाव हय 'चिन्तामणि-सार'।
कृष्ण-वाञ्छा पूर्ण करे एइ कार्य ताँर॥ 163॥
'महाभाव-चिन्तामणि' राधार स्वरूप।
ललितादि सखी—ताँर कायव्यूहरूप॥ 164॥

अनुवाद—यही महाभाव चिन्तामणिका सार है; श्रीकृष्णकी समस्त वाञ्छाओंको पूर्ण करना ही इसका कार्य है। 'महाभाव-चिन्तामणि' श्रीराधाजीका स्वरूप है और श्रीललिता आदि सखियाँ उनकी कायव्यूहरूपा हैं॥ 163-164॥

अनुभाष्य—आदिलीला 4/79, 87 और 94 संख्या तथा 5/213 और 215 संख्या देखें॥ 163-164॥

अमृतानुकणिका—"(उःनीः 14/156-157)—

"मुकुन्दमहिषीवृन्दैरप्यसावतिदुर्लभः।
व्रजदेव्येकसंवेद्यो महाभावाख्ययोच्यते॥ 156॥
वरामृतस्वरूपश्रीः स्वं स्वरूपं मनो नयेत्॥ 157॥"

अर्थात् रुक्मिणी आदि महिषियोंमें भी महाभाव अत्यन्त सुदुर्लभ है, यह केवलमात्र श्रीराधा आदि व्रजदेवियोंके द्वारा अनुभूत है। शृङ्गाररसमें श्रीनन्दनन्दन विषय-तत्त्वकी और श्रीराधा आश्रय-तत्त्वकी चरम सीमा हैं। उनका अनुराग ही स्थायीभाव है। अनुराग ही चरमावस्थामें यावदाश्रयवृत्तिके रूपमें स्वसम्वेद्य दशाको प्राप्त होनेपर 'महाभाव' कहलाता है। महाभाव श्रेष्ठ अमृतके समान स्वरूप-सम्पत्ति धारणकर चित्तको अपना स्वरूप प्राप्त कराता है। माधुर्य ही इसकी स्वरूपगत सम्पत्ति है। यह अतुलनीय माधुर्यमय है।

महाभाव रूढ़ और अधिरूढ़के भेदसे दो प्रकारका होता है। रूढ़ महाभावमें संयोग और वियोगमें निमेषकालकी भी असहिष्णुता, निकटवर्ती जनसमूहका हृदय विलोड़न, कल्प-क्षणत्व (मिलनमें एक कल्प भी एक क्षणके समान प्रतीत होना), श्रीकृष्णके सुखमें आर्त्तिकी आशङ्कासे खिन्नता, मोहादिके असद्भावमें भी आत्म-विस्मृति, क्षण-कल्पत्व (वियोगमें एक क्षण भी एक कल्पके समान लगना) आदि अनुभाव हैं।

जिस समय उक्त अनुभावसमूह रूढ़भावमें कहे गये अनुभावोंसे भी उत्तरोतर किसी विशेष दशाको प्राप्त होते हैं, उसे अधिरूढ़ महाभाव कहते हैं। यह अधिरूढ़ महाभाव भी मोदन और मादन दो प्रकारका होता है। जिस अधिरूढ़ महाभावमें नायिका और नायकके स्तम्भादि सात्त्विक भावसमूह अतिशय उद्दीप्त रूपमें प्रकाशित होते हैं, उसे मोदन कहते हैं। मोदन ही विरह अवस्थामें मोहन कहलाता है। मोहन-भावयुक्त प्रेयसीके प्रभावसे ब्रह्माण्डके सभी लोग क्षुब्ध हो जाते हैं और पशु-पक्षी भी रोदन करने लगते हैं। यहाँ तक कि सत्यभामादि महिषियोंके द्वारा आलिङ्गित होनेपर भी द्वारकेश श्रीकृष्ण श्रीराधाकी मोहन अवस्थाका श्रवण

करके मूर्च्छित हो जाते हैं। यह मोहन भाव श्रीराधाके यूथकी सखियोंमें उदित होनेपर भी अधिकतर श्रीराधामें ही उदित होता है। मोहनकी एक वृत्ति दिव्योन्माद कहलाती है जिसमें उद्घूर्णा, चित्रजल्पादि अवस्थाएँ उदित होती हैं। भागवत दशम स्कन्धके भ्रमरगीतमें इनका सरस वर्णन है।

मोहन भावसे भी अति उत्कृष्ट चमत्कारपूर्ण ह्लादिनी नामक महाशक्तिका स्थिरांश केवल श्रीमती राधिकामें ही नित्यकाल विराजमान रहता है—इसीको 'मादन'-महाभाव कहते हैं; यह मादन-महाभाव ललिता आदिमें भी उदित नहीं होता। 'महाभाव स्वरूपा श्रीराधा ठाकुरानी' कहनेसे महाभावकी सर्वोच्चावस्था 'मादन'को ही समझना चाहिये।

श्रीराधा महाभावकी समुद्र हैं। अन्य शक्तियों, महिषियों आदिमें भी महाभाव है, किन्तु उनमें वह आंशिक मात्रामें होता है। जैसे समुद्रके साथ ताल, कुँआ, सरोवर आदिकी तुलना नहीं है, वह अपनी उपमा स्वयं है, उसका जल अगाध अपार है; इसी प्रकार महाभाव-स्वरूपा श्रीराधा ठाकुरानी समस्त प्रकारके भावोंको क्रोड़ीभूत करती हुई महाभावके अपार अगाध भण्डार तथा वैशिष्ट्यके साथ विराजमान हैं।

जितनी भी व्रजगोपियाँ हैं, उन सभीमें कला-कौशल, प्रेम-परिपाटी, सेवा-दक्षता आदि है तथा श्रीकृष्ण उनके साथ भी लीला-विलास करते हैं। किन्तु ये समस्त गुण श्रीराधामें चरम सीमामें हैं। इसलिये श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने स्वकृत पदमें श्रीकृष्णके मनोभावको इस प्रकार व्यक्त किया है—'बले तुहुँ बिना काहार रास, तुहुँ लागि मोर बरज वास।' अर्थात् श्रीकृष्ण श्रीराधासे कह रहे हैं कि यह रसास्वादन तुम्हारे सङ्गके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं है। रसास्वादनके लिये ही रासलीला है। 'रसानाम् समूह इति रासः।' श्रीकृष्ण कुञ्जोंमें, वन-उपवनमें अनेक प्रकारकी लीलाएँ करते हैं तथा उन विभिन्न रूपोंमें कुछ भावोंका आस्वादन करते हैं। किन्तु सामुदायिक रूपमें समस्त रसोंका आस्वादन केवलमात्र रासलीलामें ही है। रासलीलाकी नायिका-शिरोमणि श्रीराधा हैं, इसलिये श्रीकृष्णने श्रीराधाको आकर्षितकर उनके सङ्ग लीला-विनोद किया। उस रासलीलामें समस्त प्रकारके भाव श्रीराधामें समस्त रूपोंमें प्रकाशित हुए।

श्रीकृष्णको वशीभूत करनेका मन्त्र महाभाव ही है। इसकी किञ्चित्मात्र गन्ध भी न रहनेसे श्रीकृष्ण वशीभूत नहीं होते और न ही अधीनता स्वीकार करते हैं। इसी कारण साधक महाभाव-स्वरूपा श्रीराधाका आश्रय ग्रहण करते हैं। उनका आश्रय ग्रहण किये बिना साधककी समस्त साधन-चेष्टा निष्फल रहती है, क्योंकि उसके द्वारा श्रीकृष्णको आकर्षित करनेका गुण नहीं प्राप्त होता। इसलिये गौड़ीय-वैष्णव श्रीराधाका प्राधान्य स्वीकार करते हैं।

श्रीकृष्ण ऐसी लीलाएँ करते हैं जिनके द्वारा श्रीराधामें किलकिञ्चित आदि भावोंका प्रकाश होता है, जिन्हें देखकर श्रीकृष्ण चमत्कृत हो जाते हैं। अन्य सभी नायिकाओंके साथ श्रीकृष्णके लीला-विनोदसे उन नायिकाओंमें भी भाव प्रकाशित होते हैं, किन्तु वे सीमित होते हैं। श्रीराधामें समस्त भाव असीमित रूपमें प्रकाशित होते हैं।

श्रीराधाके तीन स्वरूप हैं—श्रीकृष्णाङ्गमें 'शक्ति स्वरूप'में, 'आनन्दवर्धनकारी श्रीराधा' रूपमें और 'मन्त्र' रूपमें। इन तीन स्वरूपोंकी मूल 'आनन्दवर्धनकारी श्रीराधा' हैं। श्रीकृष्णकी अनन्त प्रेयसियाँ हैं, जिनमें तीन मुख्या हैं- वैकुण्ठकी लक्ष्मियाँ, द्वारकाकी महीषियाँ तथा व्रजगोपियाँ। इन तीनों प्रकारकी कान्ताओंका विस्तार श्रीराधासे होता है; वे ही सबकी मूल अंशिनी हैं। श्रीराधाका चित्त, इन्द्रियाँ और उनकी देह कृष्णप्रेमसे गठित हैं। ब्रह्मसंहिता (5/37)—'आनन्दचिन्मयरस-प्रतिभाविताभिः...' अर्थात् आनन्दचिन्मयरस ह्लादिनी तथा संवित्का सार है। इसी आनन्दचिन्मयरससे गठित व्रजगोपियाँ और उनमें भी आनन्द चिन्मयरसकी मूर्तिमान स्वरूप वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा श्रीकृष्णकी कान्ता रूपमें

प्रसिद्ध हैं। श्रीकृष्ण ब्रह्म-स्वरूप हैं, श्रीराधा आनन्दचिन्मय हैं तथा गोपियाँ उनकी अंश, कलादि हैं। शत कोटि गोपियोंके द्वारा भी श्रीकृष्णकी कान्ता-प्रेमास्वादनकी वासना पूर्ण नहीं होती—इसके द्वारा ही श्रीराधाकी प्रेम-महिमाका अनुमान लगाया जा सकता है। श्रीराधा केवल आनन्दरस-स्वरूपा हैं तथा अखण्ड रसवल्लभा रसकी मूर्ति हैं; उनका तत्त्व रसयुक्त है। श्रीराधाका स्वरूप महाभावसे गठित है। यही महाभाव चिन्तामणिके समान है। चिन्तामणिके समान श्रीराधा श्रीकृष्णकी समस्त इच्छाओं, अकाङ्क्षाओंकी पूर्त्ति करती हैं। यद्यपि श्रीकृष्णके स्वरूपमें जगत्की सृष्टिकी कामनाएँ नहीं होतीं, क्योंकि 'मद्भक्तविनोदाय' अर्थात् अपने भक्तोंका विनोद करना ही उनका एकमात्र कार्य है, तथापि उन्होंने ऐसी कामना की—'स अकामयत्'। इसलिये उन्होंने इस कामनाको अपने अंशके कला कारणाब्धिशायी विष्णुसे सम्पादित कराया। तब जगत्की सृष्टि करनेके लिये श्रीकृष्णशक्ति श्रीराधा महामाया बन गईं।"—श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी॥ 158-164॥

श्रीकृष्ण-प्रणयकी मूर्त्तविग्रह श्रीराधिकाका वर्णन :—

राधा-प्रति कृष्ण-स्नेह—सुगन्धि उद्वर्त्तन।
ता'ते सुगन्धि देह—उज्ज्वल-वरण॥ 165॥

अनुवाद—श्रीराधाके प्रति श्रीकृष्णका स्नेह ही श्रीराधाका सुगन्धित उबटन है। इस उबटनसे ही श्रीराधाकी देह सुगन्धित और उज्ज्वलवर्ण हो जाती है॥ 165॥

अनुभाष्य—*'सुगन्धि उद्वर्त्तन'*—सुगन्धित उबटन, जिसके द्वारा अङ्गोंका मैल दूर होता है; इसलिये इस श्रीकृष्णस्नेहरूपी उबटनको मलनेके कारण उनकी देह सुगन्धित और उज्ज्वल वर्णकी है॥ 165॥

श्रीराधाका तीन प्रकारकी धारामें स्नान,
श्रीराधाके विग्रहका वर्णन :—

कारुण्यामृत-धाराय स्नान प्रथम।
तारुण्यामृत-धाराय स्नान मध्यम॥ 166॥

लावण्यामृत-धाराय तदुपरि स्नान।
निज-लज्जा-श्याम-पट्टसाटि-परिधान॥ 167॥

कृष्ण अनुराग—द्वितीय अरुण-वसन।
प्रणय-मान-कञ्चुलिकाय वक्ष-आच्छादन॥ 168॥

सौन्दर्य—कुङ्कुम, सखी-प्रणय—चन्दन।
स्मितकान्ति—कर्पूर, तिने—अङ्गे विलेपन॥ 169॥

कृष्णेर-उज्ज्वल रस—मृगमद-भर।
सेइ मृगमदे विचित्र कलेवर॥ 170॥

प्रच्छन्न-मान-वाम्य—धम्मिल्ल-विन्यास।
'धीराधीरात्मक' गुण—अङ्गे पट्टवास॥ 171॥

राग-ताम्बूलरागे अधर उज्ज्वल।
प्रेमकौटिल्य—नेत्रयुगले कज्ज्वल॥ 172॥

'सुद्दीप्त-सात्त्विक' भाव, हर्षादि 'सञ्चारी'।
एइ सब भाव-भूषण सब अङ्गे भरि'॥ 173॥

'किलकिञ्चितादि'-भाव-विंशति-भूषित।
गुणश्रेणी-पुष्पमाला सर्वाङ्गे पूरित॥ 174॥

सौभाग्य-तिलक चारु-ललाटे उज्ज्वल।
प्रेम-वैचित्त्य—रत्न, हृदय—तरल॥ 175॥

मध्य-वयस, सखी-स्कन्धे कर-न्यास।
कृष्णलीला-मनोवृत्ति-सखी आशपाश॥ 176॥

निजाङ्ग-सौरभालये गर्व-पर्यङ्क।
ता'ते बसि' आछे, सदा चिन्ते कृष्णसङ्ग॥ 177॥

कृष्ण-नाम-गुण-यश—अवतंस काणे।
कृष्ण-नाम-गुण-यश-प्रवाह-वचने॥ 178॥

कृष्णके कराय श्यामरस-मधु पान।
निरन्तर पूर्ण करे कृष्णेर सर्वकाम॥ 179॥

अनुवाद—श्रीराधा अपना प्रथम स्नान करुणाकी अमृतमयी धारामें करती हैं, मध्याह्नकालीन द्वितीय स्नान वे अभिनव तारुण्य-अमृत-तरङ्गिणीमें करती हैं और

अपना तृतीय सन्ध्याका स्नान लावण्यरूपी अमृतकी धारामें करती हैं। वे अपनी लज्जारूप श्यामवर्णकी रेशमी साड़ी धारण करती हैं। श्रीकृष्णके प्रति अपने अनुरागरूप लाल रङ्गके उत्तरीय वस्त्रको धारण करती हैं। प्रणय और मान नामकी कञ्चुलिकाके द्वारा अपने श्रीवक्षःस्थलको आच्छादित करती हैं। उनके कायिक गुणोंका सौन्दर्य ही 'कुङ्कुम' है, सखियोंके प्रति उनका प्रणय ही 'चन्दन' है तथा उनकी मृदु मुस्कानकी कान्ति ही 'कर्पूर' है—इस प्रकार इन तीन वस्तुओं 'कुङ्कुम', 'चन्दन' और 'कर्पूर' से वे अपने श्रीअङ्गोंका लेपन करती हैं। श्रीकृष्णके शृङ्गाररसरूप मृगमदसे वे अपने समस्त चिन्मय अङ्गोंका शृङ्गार करती हैं। प्रच्छन्न-मान और वाम्यभावको श्रीराधाजी सुन्दर केशपाशके रूपमें ग्रथित करती हैं। धीराधीरात्मक गुणोंको अपने अङ्गोंमें वे वस्त्रके रूपमें धारण करती हैं। श्रीकृष्णके प्रति अनुरागरूपी ताम्बूलके लालवर्णसे श्रीराधाके अधर उज्ज्वल हैं। प्रेमकी कुटिलताको वे अपने नेत्रोंमें काजलके रूपमें धारण करती हैं। सुद्दीप्त सात्त्विकभाव तथा हर्षादि सञ्चारीभाव रूपी आभूषणोंसे वे अपने श्रीअङ्गोंको सुशोभित करती हैं। किलकिञ्चितादि बीस प्रकारके भावरूपी आभरणोंसे वे विभूषित हैं और माधुर्यादि गुणोंकी पुष्पमालाको उन्होंने समस्त अङ्गोंमें धारण कर रखा है। सौभाग्यरूपी मनोहर तिलक श्रीराधाके सुन्दर ललाटपर उज्ज्वलरूपमें दमक रहा है और प्रेम-वैचित्त्य आदि रत्न उनके हृदय-हारकी मध्य मणि बनकर स्निग्ध रूपसे शोभायमान हो रहे हैं। श्रीराधाकी मनोवृत्तियाँ ही उनकी निकट रहनेवाली सखियाँ हैं जो सदा श्रीकृष्ण-लीलामें ही आविष्ट रहती हैं। उन्होंने अपने करकमलको नित्य कैशार-अवस्थारूपी सखीके कन्धेपर अर्पण कर रखा है। अपने अङ्ग-सौरभरूप भवनमें गर्वरूपी पलङ्गपर आसीन होकर वे सदा श्रीकृष्ण-अङ्ग-सङ्गका चिन्तन करती हैं। श्रीकृष्णनाम, श्रीकृष्णगुण और श्रीकृष्णयश रूप अलङ्कार श्रीराधाके कर्णभूषण हैं और श्रीकृष्णका नाम-गुण-यश ही निरन्तर उनके मुखसे प्रवाहित होता रहता है। श्यामरस (शृङ्गार-रस) रूप मधुका श्रीकृष्णको पान कराकर वे निरन्तर श्रीकृष्णकी समस्त कामनाओंको पूर्णरूपसे सम्पन्न करती हैं॥ **166-179**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीराधिकाके गुणोंका वर्णन करनेके लिये कविराज गोस्वामीने श्रीरघुनाथदास गोस्वामीके द्वारा रचित 'प्रेमाम्भोज-मकरन्द' नामक स्तवको आधार बनाया है—

"महाभावोज्ज्वलच्चिन्तारत्नोद्भावितविग्रहाम्।
सखीप्रणयसद्गन्धवरोद्वर्त्तन-सुप्रभाम्॥ 1॥
कारुण्यामृतवीचिभिस्तारुण्यामृतधारया।
लावण्यामृतवन्याभिः स्नपितां ग्लपितेन्दिराम्॥ 2॥
ह्रीपट्टवस्त्रगुप्ताङ्गीं सौन्दर्यघुसृणाञ्चिताम्।
श्यामलोज्ज्वलकस्तूरीविचित्रितकलेवराम्॥ 3॥
कम्पाश्रुपुलकस्तम्भस्वेदगद्गदरक्तता।
उन्मादो जाड्यमित्येतै रत्नैर्नवभिरुत्तमैः॥ 4॥
क्लिप्तालङ्कृतिसंश्लिष्टां गुणालीपुष्पमालिनीम्।
धीराधीरात्व-सद्वास-पटवासैः परिष्कृताम्॥ 5॥
प्रच्छन्नमानधम्मिल्लां सौभाग्यतिलकोज्ज्वलाम्।
कृष्णनामयशःश्रावावतंसोल्लासिकर्णिकाम्॥ 6॥
रागताम्बूलरक्तौष्ठीं प्रेमकौटिल्य-कज्ज्वलाम्।
नर्मभाषितनिःस्यन्दस्मित-कर्पूरवासिताम्॥ 7॥
सौरभान्तःपुरे गर्वपर्यङ्कोपरि लीलया।
निविष्टां प्रेम-वैचित्त्य-विचलत्तरलाञ्चिताम्॥ 8॥
प्रणयक्रोधसच्चोलीबन्धगुप्तीकृतस्तनाम्।
सपत्नीवक्त्रहृच्छोषि-यशःश्री-कच्छपी-वराम्॥ 9॥
मध्यतात्मसखीस्कन्धलीलान्यस्तकराम्बुजाम्।
श्यामां श्यामस्मरामोदमधूली-परिवेशिकाम्॥ 10॥
त्वां नत्वा याचते धृत्वा तृणं दन्तैरयं जनः।
स्वदास्यामृतसेकेन जीवयामुं सुदुःखितम्॥ 11॥
न मुञ्चेच्छरणायातमपि दुष्टं दयामयः।
अतो गान्धर्विके हा हा मुञ्चैनं नैव तादृशम्॥ 12॥
प्रेमाम्भोजमकरन्दाख्यं स्तवराजमिमं जनः।
श्रीराधिकाकृपाहेतुं पठंस्तद्दास्यमाप्नुयात्॥ 13॥

(1) महाभावरूप उज्ज्वलचिन्तामणिके द्वारा भावित जिनका विग्रह है, श्रीकृष्णके प्रति सखीका जो प्रणय हैं, उसी सुगन्धित कुङ्कुम आदिके द्वारा जिनकी

अङ्गकान्ति उज्ज्वल हुई है।

(2) पूर्वाह्णमें कारुण्यामृतमें, मध्याह्नमें तारुण्यामृतमें और संन्ध्यामें लावण्यामृतमें स्नान किया गया जिनका विग्रह इन्दिरा तकको लज्जित करता है।

(3) लज्जारूपी रेशमीवस्त्रका परिधान, सौन्दर्यरूपी कुङ्कुमसे शोभित और श्यामवर्ण उज्ज्वल या शृङ्गाररसरूप कस्तूरीके द्वारा जिनका चित्रित कलेवर है।

(4) कम्प, अश्रु, पुलक, स्तम्भ, स्वेद, गद्‌गद स्वर, रक्तता, उन्माद और जड़तारूपी नौ उत्तम रत्नोंसे जो अलङ्कृत हैं।

(5) सौन्दर्य-माधुर्यादि सभी गुण पुष्पमालारूपमें जिनके शरीरपर विराजमान हैं; धीर और अधीरा भावको उन्होंने पट्टवास अर्थात् कर्पूरादिके द्वारा निर्मल किया है।

(6) प्रच्छन्नरूपसे मान ही जिनका धम्मिल अर्थात् जूड़ा है, सौभाग्यरूपी तिलकके द्वारा जिनका मस्तक उज्ज्वल है; श्रीकृष्णके नाम और यशका श्रवण ही जिनके कानोंके आभूषण हैं।

(7) अनुरागरूपी ताम्बूलके द्वारा जिनके ओंठ लालीसे रञ्जित हैं; प्रेम-कौटिल्यको ही जिन्होंने नेत्रोंके काजलके रूपमें धारण किया है; नर्म अर्थात् उपहासके कारण मृदुहास्यरूपी-कर्पूरके द्वारा जो सुगन्धित हैं।

(8) अपने अङ्गसौरभरूप-अन्तःपुरमें गर्वरूपी पलङ्कके ऊपर शयन करनेपर उनका विप्रलम्भरूपी हार प्रेमवैचित्त्यरूपी तरल (हारके बीचकी मणि)के रूपमें इधर-उधर झूलता है।

(9) प्रणयक्रोधरूपी कञ्चुलीके द्वारा जिनके स्तनयुगल आवृत्त हैं; सपत्नियोंके (सौतनके) मुख और हृदयका शोषणकारी यशःश्री (यश और सौन्दर्य) ही जिनकी कच्छपी वीणा है।

(10) जिन्होंने कैशोररूप-सखीके कन्धेपर लीलारूपी हस्तकमल रखा है; जो बहुत प्रकारके गुणोंसे युक्त होनेपर भी श्रीकृष्ण-कन्दर्पको आनन्दप्रदायक मधुका परिवेशन कर रही हैं।

(11) ऐसी श्रीराधासे दाँतमें तृण धारण करके मैं प्रार्थना कर रहा हूँ,—अपने दास्यरूप अमृतका दान करके इस अति दुःखितजनके प्राणोंकी रक्षा कीजिये।

(12) हे गान्धर्विके! दयामय श्रीकृष्ण जिस प्रकार शरणागत दुष्टजनोंका भी परित्याग नहीं करते, उसी प्रकार आप भी अपने आश्रित इस (दुष्ट) जनका त्याग मत करना।

(13) श्रीराधारानीकी कृपाके हेतुस्वरूप इस प्रेमाम्भोजमकरन्द नामक स्तवराजका जो पाठ करता है, वह उनका दास्य प्राप्त करके धन्य हो जाता है।

'किलकिञ्चितादि भाव'—बीस प्रकारके हैं। ये बीस भाव—

(1) *'अङ्गज'*—भाव, हाव, हेला;

(2) *'आत्मज'*—शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य और धैर्य;

(3) *'स्वभावज'*—किलकिञ्चित, लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, मोट्टायित, कुट्टमित, विव्वोक, ललित और विकृत।

'गुणश्रेणी-पुष्पमाला'—श्रीमतीके गुण तीन प्रकारके हैं—मानसिक, वाचिक और शारीरिक।

(1) *'मानसिक'*—कृतज्ञता, क्षमा और कारुण्यादि;

(2) *'वाचिक'*—कानोंको आनन्ददायक वाक्य-प्रयोगादि;

(3) *'कायिक'*—गुण, आयु, रूप, लावण्य और सौन्दर्यादि।

'कृष्णलीला-मनोवृत्ति-सखी'—श्रीकृष्णलीलानन्दरूपा श्रीमतीकी आठ मनोवृत्तियाँ आठ सखियाँ हैं और उनकी अनुवृत्तियाँ अन्यान्य मञ्जरियाँ हैं।

'श्यामरस'—मधुर रस॥ **165-179**॥

अनुभाष्य—श्रीमती राधिकाका स्वरूप—वे श्रीकृष्णकी अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाली महाभाव चिन्तामणि हैं। ललितादि सखियाँ—उनके कायव्यूहके समान अथवा प्रकाशविन्यास हैं। (1) श्रीकृष्णस्नेहरूपी उबटन मलकर

प्रथम अथवा पूर्वाह्नमें किये जानेवाले स्नानका जल ही कारुण्यामृत है अर्थात् पौगण्डको पार करके प्रथम कैशोरमें करुणाविशिष्ट नवयौवन है; (2) मध्यम अथवा मध्याह्नमें किये जानेवाले स्नानका जल ही तारुण्यामृत अथवा व्यक्त-यौवन है; (3) उससे श्रेष्ठ स्नान अथवा अपराह्नमें किये जानेवाले स्नानका जल लावण्यामृत अथवा पूर्णयौवन है; अर्थात् कायिक गुणोंकी जो आयु, रूप और लावण्य है, वही तीन प्रकारका स्नान-जल है। वस्त्र दो प्रकारके है- (1) अधोवसन (कमरसे नीचे पहननेवाले वस्त्र) और (2) उत्तरीय (कमरसे ऊपर पहननेवाले वस्त्र)। (1) अधोवसन—लज्जारूपा, वह श्याम रेशमी धागेसे बनी नीली-साड़ी है; (2) उत्तरीय—दूसरा वस्त्र अरुणवर्ण (लाल रङ्गका) है—वही श्रीकृष्णानुराग है। श्रीकृष्णप्रणयमानरूपी चोलीके द्वारा श्रीराधिकाका वक्षःस्थल ढका हुआ है। श्रीराधाके कायिक गुणोंका सौन्दर्य ही कुङ्कुम है और रमणीयता ही सखी-प्रणयरूपी चन्दन है तथा माधुर्य ही स्मितकान्तिरूपी कर्पूर है; ये तीन वस्तुएँ अङ्गोंके लेपन हैं अर्थात् उनके अङ्ग—सौन्दर्य, रमणीयता और माधुर्यसे भूषित हैं। श्रीकृष्णका उज्ज्वल रस ही मृगमद-कस्तूरी है, ये ही कोमलतारूपी कायिक गुण हैं।

'प्रच्छन्नमान'—हृदयमें वक्रता होनेपर भी बाहरसे दक्षिण-भावका प्रदर्शन। *'वाम्य'*—सरलताके अभावसे वक्रता, मध्यलीला 14/161 संख्याका अनुभाष्य देखें। *'धम्मिल्ल'*—जूड़ा।

'धीराधीरात्मक गुण'—उज्ज्वलनीलमणिमें—

"धीराधीरा तु वक्रोक्त्या सवाष्पं वदति प्रियम्।
धीराधीरगुणोपेता धीराधीरेति कथ्यते॥"

जो नायिका प्रियतमको धीराके धर्म अर्थात् वक्रोक्तिके द्वारा और अधीराके धर्म अर्थात् नेत्रोंमें अश्रु भरकर कुछ वचन कहती है, वह 'धीराधीरा' है। मध्यलीला 14/143-153 संख्या देखें। 'धीराधीरा-मध्या'के जो गुण हैं, 'धीराधीरा-प्रगल्भा'के भी वही सब गुण होते हैं। 'प्रगल्भा', 'मध्या' और 'मुग्धा',—इन तीनोंमें 'प्रगल्भा' अत्यन्त क्रोधित होकर डाँटने-फटकारनेवाली है; 'मध्या' कुछ कम क्रोधित होकर कठोर बात कहनेवाली है एवं 'मुग्धा' थोड़ासा क्रोध करके रोने लगती है। खण्डित-अवस्थामें इन गुणोंका विशेष प्रकाश होता है।

'पट्टवास'—पगड़ी; रेशमका उत्तरीय वस्त्र एकपाटा। पाठान्तरमें *'पटवास'*—वस्त्रसमूह, गन्धचूर्ण, पिसे हुए चावलसे बनी पेस्ट, साटिन (एक प्रकारका वस्त्र)।

श्रीकृष्णराग ही ताम्बूलका वर्ण है, उसके द्वारा अधर उज्ज्वल होते हैं; प्रेम-कुटिलता ही दोनों नेत्रोंका काजल है।

'सुद्दीप्त सात्त्विकभाव'—मध्यलीला 6/12 संख्या; *'हर्षादि तैंतीस सञ्चारीभाव'*—मध्यलीला 3/127 संख्या एवं मध्यलीला 14/167-168 संख्याका अमृतप्रवाह भाष्य देखें।

'किलकिञ्चित् आदि भाव'—मध्यलीला 14/168 संख्या देखें।

'गुणश्रेणी-पुष्पमाला'—मध्यलीला 23/82-86 संख्या देखें।

उज्ज्वलनीलमणिमें लिखे श्रीराधाके पच्चीस गुण—

"बहुना किं गुणास्तस्याः संख्यातीता हरेरिव।
इत्यङ्गोक्तिमनस्थास्ते परसम्बन्धगास्तथा।
गुणा वृन्दावनेश्वर्या इहा प्रोक्ताश्चतुर्विधाः॥"

और अधिक क्या कहें, श्रीहरिके समान श्रीराधिकामें भी असंख्य गुणसमूह नित्य वर्तमान है। उनके गुण चार भागोंमें विभक्त हैं—

(क) अङ्गस्थ (अङ्गोंमें स्थित गुण)
(ख) उक्तिस्थ (वचनोंमें स्थित गुण)
(ग) मनस्थ (मनमें स्थित गुण) और
(घ) परसम्बन्धग (दूसरोंसे सम्बन्धित गुण)।

(क) अङ्गस्थ गुण छह हैं—

(1) मधुरा अथवा चारु, अर्थात् वे देखनेमें परम सुन्दरी हैं,

(2) नववयसा अथवा किशोरी,

(3) चपलाङ्गा, अर्थात् चञ्चल कटाक्षवाली हैं,

(4) उज्ज्वलस्मिता, अर्थात् उज्ज्वल मृदुमधुर हास्यकारिणी हैं,

(5) सुन्दर सौभाग्यको सूचित करनेवाली रेखाओंसे युक्त अथवा पादादि स्थित चन्द्ररेखा, और

(6) गन्धोन्मादितमाधवा, अर्थात् अपनी अङ्गगन्धसे श्रीकृष्णको भी उन्मत्त करनेवाली हैं।

(**ख**) उक्तिस्थ गुण तीन हैं—

(1) सङ्गीतप्रसराभिज्ञा, अर्थात् सङ्गीतविद्यामें पारदर्शी,

(2) रम्यवाक्, अर्थात् मृदुभाषा बोलनेवाली, और

(3) नर्मपण्डिता, अर्थात् परिहास करनेमें पटु।

(**ग**) मनस्थ गुण दस हैं—

(1) विनिता,

(2) करुणापूर्णा, अर्थात् दयालु,

(3) विदग्धा, अर्थात् रसविषयमें अत्यन्त चतुर हैं,

(4) पाटवान्विता, अर्थात् रसविषयमें अत्यन्त चतुरा हैं,

(5) लज्जाशीला अथवा आभिजात्य और शीलता आदिका कारण,

(6) मर्यादा अथवा साधुमार्गसे अविचलित रहनेवाली,

(7) धैर्यशालिनी अथवा दुःख सहनेमें समर्थ,

(8) गाम्भीर्यशालिनी,

(9) सुविलासा, अर्थात् सुविलासप्रिया हैं, और

(10) महाभाव-परमोत्कर्ष-तर्षिणी अर्थात् महाभावके परमोत्कर्षको प्रकट करनेमें परम व्यग्र रहती हैं।

(**घ**) परसम्बन्धग गुण छह हैं—

(1) गोकुलप्रेमवसति, अर्थात् उनको देखते ही गोकुलवासियोंके हृदयमें प्रेम उमड़ पड़ता है,

(2) जगत्-श्रेणी लसद्यशा, अर्थात् अखिल ब्रह्माण्डमें उनकी कीर्त्ति व्याप्त है,

(3) गुर्वर्पित-गुरुस्नेहा, अर्थात् गुरुजनोंके स्नेहकी पात्री हैं,

(4) सखी-प्रणयितावशा, अर्थात् सखियोंके प्रणयके अधीन रहती हैं,

(5) कृष्णप्रियावलीमुख्या, अर्थात् श्रीकृष्णकी समस्त सखियोंमें प्रधाना हैं, और

(6) सन्तताश्रवकेशवा, अर्थात् केशव सदा उनकी आज्ञाके अधीन रहते हैं।

'प्रेमवैचित्त्य'—

"प्रियस्य सन्निकर्षेऽपि प्रेमोत्कर्ष-स्वभावतः।
या विश्लेषधियार्त्तिस्तत् प्रेमवैचित्त्यमुच्यते॥"

अत्यधिक प्रेमके स्वभावके कारण प्रियके निकट होनेपर भी उनसे वियोग होनेके भयसे जिस क्लेशकी (आर्त्तिकी) उत्पत्ति होती है, वही 'प्रेमवैचित्त्य' है; वही रत्न है।

'तरल'—हारके बीच स्थित मणि, धुक्धुकि।

मध्यवयस किशोरीभाव ही सखीके कन्धेपर हाथ रखना है और निकटमें स्थित सखियाँ—श्रीकृष्णलीलाकी मनोवृत्तिरूपा हैं।

'निजाङ्ग-सौरभालये'—अपने अङ्गरूपी सौरभके भवनमें। *'गर्व-पर्यङ्क'*—गर्वरूपी पलङ्ग अथवा खाटपर।

'अवतंस'—कानके विशेष अलङ्कार; श्रीकृष्ण नाम-गुण-यश ही उनके कानोंके अलङ्कार हैं। श्रीकृष्णनाम-गुण-यशकी वाक्यावलीका स्त्रोत (प्रवाह) ही श्यामरस-मधु-धारा है; श्रीमती राधिका वही श्रीकृष्णको पान कराती हैं।

श्रीराधा ही श्रीकृष्णका प्रणय विकार अर्थात् श्रीकृष्णप्रेमकी मूर्त्तविग्रह अर्थात् उनके मानसिक भाव, कायिक अङ्ग-प्रत्यङ्ग, वेषादि, समस्त ही श्रीकृष्णप्रेमकी एक-एक शोभा अथवा भूषण हैं—उसको विश्लेषण करके यहाँ दिखला रहे हैं॥ **165-179**॥

अमृतानुकणिका—" *'कारुण्यामृत-धाराय स्नान प्रथम'*। बाल्यकालमें चपलता रहती है। धीरे-धीरे पौगण्ड भाव

आनेपर श्रीराधाके अङ्ग थोड़े-से स्थूल होने लगे और सुन्दरता आदि वर्धित होने लगी। उसके बाद वय-सन्धि अर्थात् प्रथम कैशोरमें शरीरकी जो चञ्चलता थी, वह आँखों में आ गयी। वय-सन्धिमें पहले यह पूर्वराग होता है। भागवतमें मिलनके पूर्व पूर्वरागका वर्णन है। पूर्व-रागमें श्रीकृष्णके दर्शनके लिये उनमें अत्यन्त व्याकुलता, आतुरता, उत्कण्ठा जाग्रत होती है जिसके द्वारा उनमें करुणा आ जाती है। इस करुणाके लिये ही कहा है कि वे करुणाकी धारामें पहली बार स्नान करती हैं। श्रीकृष्णके प्रति श्रीराधाका स्नेह, अनुराग, उत्कण्ठा, लालसा आदि जिसमें किञ्चित् रूपसे प्रेम प्रकाशित हो जाता है, यही उनका प्रथम स्नान है।

'तारुण्यामृत धाराय स्नान मध्यम', इसका प्रकाश मध्य कैशोर अवस्थामें होता है। इसमें अङ्गोंमें सुकुमारता, सौन्दर्य, माधुर्य आदिका विकास होता है। नवयौवन रूप तारुण्यधारामें युगल मिलन होता है। कुञ्जोंमें केलि-महोत्सव, रासलीला आदिका आरम्भ इसीमें होता है।

'लावण्यामृत धाराय तदुपरि स्नान'—मुक्ताओंके भीतरसे जिस प्रकार स्वाभाविक रूपसे निर्मल-कान्ति बाहरमें प्रकाशित होती है, उसी प्रकार अङ्ग-प्रत्यङ्गोंसे अतिस्वच्छतापूर्वक स्वाभाविक प्रतिक्षण उदीयमान कान्तिकदम्बको लावण्य कहते हैं। श्रीकृष्णके द्वारा प्राप्त लावण्यमें स्नान करनेसे श्रीराधाके समस्त अङ्ग अत्यन्त लावण्यमय हो जाते हैं। उस समय श्रीकृष्ण उन्हें देखकर अत्यन्त मुग्ध हो जाते हैं। यह शेष कैशोर और पूर्ण यौवनकी दशामें प्रकाशित होता है। इसी अवस्थामें श्रीकृष्ण श्रीराधाके प्रेमका आस्वादनकर आनन्दित होते हैं। एक समय कृष्ण मिलन हेतु उपस्थित हुए। वहाँ उन्होंने देखा कि सम्पूर्ण वन पीत-आभासे सुशोभित है; समस्त तरुलता सुवर्ण रङ्गके हैं। वे अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर सोचने लगे कि 'यह क्या है? किसकी आभासे ये सम्पूर्ण वन सुवर्ण आभाका हो गया! मैं विश्वको आनन्दित करता हूँ। किन्तु मुझे आनन्द प्रदान करनेवाली यह कौन है?' तब उन्होंने अत्यन्त आनन्दित होकर जाना कि यह सब श्रीराधाकी अङ्गकान्तिका प्रभाव है।

श्रीराधाकी आयु, रूप और लावण्य ही उनका तीन प्रकारका स्नानजल है। प्रत्येक अवस्थामें वे परमसुन्दरी नवनवायमान सौन्दर्यको धारण करती हुई विराजमान होती हैं।

स्नानके पश्चात् वस्त्र धारण किये जाते हैं। परिधान दो प्रकारके होते हैं—अधोवस्त्र और उत्तरीय। अधोवस्त्र लज्जा निवारण करनेवाली श्यामवर्णकी रेशमी साड़ी है तथा उत्तरीय वस्त्र श्रीकृष्ण-अनुरागरूपी लालवर्णका है। श्रीराधा प्रणय-मान कञ्चुलिकाके द्वारा अपने वक्षस्थलका आच्छादन करती हैं। 'प्रणय' अर्थात् प्रगाढ़ विश्वास। इस अवस्थामें प्रियतम प्रेयसीके वशीभूत हो जाता है, अर्थात् नायिका स्वाधीनभर्त्तृका होकर अपनी सेवाके लिये भी आदेश देती है, जैसे—मेरी वेणी गूँथ दो, पाँवमें अलता लगा दो आदि। 'मान'—यह अत्यन्त उत्कृष्ट रूपमें श्रीराधाकृष्ण युगलको नित्य नव-नव माधुर्यका अनुभव करवाता है। कभी मान किसी हेतुसे होता है और कभी अहैतुक। एक समय श्रीराधा श्रीकृष्णके साथ वनमें विहार कर रही थीं। उस समय श्रीकृष्णके सङ्गसे उनका चित्त अत्यन्त द्रवीभूत हो रहा था। इस कारण श्रीराधाकी आँखोंसे अश्रुओंकी धाराबहने लगी। उस स्थानसे कुछ दूर गायें चर रही थीं और उनके खुरोंसे धूलि उड़ रही थी। श्रीराधा अवहित्थाके द्वारा अपने भावोंको छिपाकर कहने लगीं कि गायोंके खुरोंसे उठी धूलिके मेरे नेत्रोंमें प्रवेश करनेसे अश्रुधारा निकल रही है। श्रीकृष्णने कहा-'मैं अभी फूँककर तुम्हारे नेत्रोंको शीतल कर देता हूँ।' ऐसा कहकर श्रीकृष्ण मुखसे उनके नेत्रोंमें फूँकने लगे। श्रीराधा कहने लगीं—'आप रहने दीजिये! आपके कपट प्रेमके द्वारा मुझे क्या लाभ होगा? व्यर्थ ही कपटतापूर्ण आदरकी कोई आवश्यकता नहीं है।' ऐसा कहकर उन्होंने भृकुटी तान ली। अर्थात् मानवती हो गईं। इसमें कोई कारण नहीं है, यह अहैतुकी मान है। कुछ समय बाद अपने

आप दूर हो जाता है। सहेतुक मान कारण दूर होनेपर ही दूर होता है।

'सौन्दर्य-कुङ्कुम, सखी-प्रणय—चन्दन'—श्रीराधाका अपना सौन्दर्य ही कुङ्कुम है, सखियोंका उनके प्रति प्रणय चन्दन है, स्मितकान्ति कर्पूर है—इन तीनोंका मिश्रण उनके अङ्गोंका लेप है। सखियोंके प्रणयका अर्थ श्रीराधाका श्रीकृष्णके प्रति अनुरागको वर्धन करना है। जिस प्रकार हवाकी तरङ्गें आकर समुद्रको उद्वेलित करती हैं, उसी प्रकार श्रीराधाके महाभाव-समुद्रको सखियाँ श्रीकृष्ण-विषयक प्रसङ्गोंके द्वारा उनके प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव, महाभाव तकको तरङ्गायित करती हैं। *'कृष्णेर-उज्ज्वल-रस—मृगमद-भर'*—श्रीराधाके हृदयमें श्रीकृष्णके प्रति उन्नत-उज्ज्वलरस मृगमद कस्तूरी है, जो श्रीकृष्णको मदान्ध कर देता है। यही श्रीराधाका विचित्र कलेवर है। *'प्रछन्न-मान-वाम्य-धम्मिल-विन्यास'*—श्रीराधा अपने कुटिल कुन्तल, घुँघराले केशोंको जूड़ेके रूपमें ऐसे बाँध देती हैं मानो श्रीकृष्णके मतवाले हाथीरूपी मनको उसमें बाँध दिया हो।

"धीराधीरात्मक' गुण—अङ्गे पट्टवास'—श्रीराधा अपने धीराधीरात्मक गुणको रेशमी उत्तरीयके समान धारण करती हैं। श्रीराधा अपने धीराधीरात्मक गुणके द्वारा श्रीकृष्णको वशीभूत कर लेती हैं। रासलीलामें जब श्रीकृष्ण मन्मथ-मन्मथ रूपमें पुनः प्रकट हो गये, तब विभिन्न प्रकारकी गोपियोंने विभिन्न प्रकारसे उनका स्वागत किया, परन्तु श्रीराधा निकट न आकर दूरसे ही कुटिल-वक्र दृष्टिसे श्रीकृष्णको देखने लगीं। यह वक्र-दृष्टि वाम्य भाव है तथा यह अधीरा-नायिकाका गुण है। वे साथ ही नयनोंके द्वारा श्रीकृष्णके नवनवायमान मुखकमलके अमृतका पान भी कर रही थीं। यह धीरा नायिकाका गुण है। वे अपने इन्हीं गुणोंके द्वारा श्रीकृष्णको वशीभूतकर रसपान करवाती हैं।

'राग-ताम्बूलरागे अधर उज्ज्वल'—श्रीकृष्णके प्रति श्रीराधाका राग उनका ताम्बूल है। प्रेमकी एक विशेष अवस्था, जब प्रणयकी उत्कर्षताके कारण अत्यन्त दुःख भी अत्यन्त सुखके रूपमें अनुभूत होता है, उसे राग कहते हैं। श्रीराधा मध्याह्नकालमें सूर्यकी प्रखर किरणोंसे तप्त नुकीली शिलाओंपर खड़ी हुई श्रीकृष्णदर्शनके आनन्द-सिन्धुमें मग्न होकर सुध-बुध सम्पूर्णतः भूल गयी थीं और उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वे सुकोमल कमलदल शय्या पर खड़ी हैं।

'प्रेमकौटिल्य—नेत्रयुगले कज्ज्वल'—श्रीकृष्णके प्रति कुटिल भाव ही श्रीराधाका काजल है। रासलीलामें अन्तर्धानके पश्चात् पुनः आविर्भूत श्रीकृष्णको देखकर श्रीराधा प्रणयकोपके आवेशसे विवश होकर भृकुटि चढ़ाकर कटाक्षपात करते हुए अपने अधर दंशन करने लगीं। यहाँ भृकुटि धारण, कटाक्ष निक्षेप और अधर-दंशन- इन तीनोंके द्वारा कौटिल्यकी अभिव्यक्ति हुई है।

"सुद्दीप्त-सात्त्विक' भाव, हर्षादि 'सञ्चारी"—महाभाव स्वरूपा होनेके कारण श्रीराधामें सभी सात्त्विक भाव सुद्दीप्त रूपमें प्रकाशित होते हैं। श्रीकृष्ण दर्शन, स्पर्श, आलिङ्गनसे हर्षादि सञ्चारी भाव उदित होकर उनके अङ्गोंमें सुद्दीप्त रूपसे प्रकाशित होते हैं। किलकिञ्चित आदि भाव ही उनके अङ्गोंके भूषण हैं। 'हर्षोत्पन्न गर्व, अभिलाष, रोदन, स्मित, असूया, भय और क्रोध—इन सबके एक ही समयमें उदित सम्मिश्रणको किलकिञ्चित भाव कहते हैं।' श्रीराधामें इनका उदय दानघाटी-लीलामें देखा जाता है।"—श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी॥ 166-174॥

श्रीराधिका ही मूर्तिमान श्रीकृष्णप्रेम-सिन्धु :—

कृष्णेर विशुद्धप्रेम-रत्नेर आकर।
अनुपम-गुणगण-पूर्ण कलेवर॥ 180॥

अनुवाद—श्रीराधा श्रीकृष्णके विशुद्धप्रेमरूप रत्नोंकी खान हैं। इन सब अनुपम गुणोंसे श्रीराधाजीका कलेवर (शरीर) सदैव सुसज्जित रहता है॥ 180॥

अनुभाष्य—श्रीमती राधिका ही श्रीकृष्णके निर्मल प्रेमरूपी रत्नोंकी खान अर्थात् श्रीकृष्णप्रेमसिन्धुकी मूर्तविग्रह हैं एवं श्रीराधिकाकी देह—अतुलनीय गुणोंसे परिपूर्ण है। मध्यलीला 23/81–86 संख्या देखें॥ 180॥

श्रीराधिका ही श्रीकृष्णप्रेमकी मूल भण्डार :—
श्रीगोविन्दलीलामृत (11/122)—

का कृष्णस्य प्रणयजनिभूः श्रीमती राधिकैका
कास्य प्रेयस्यनुपमगुणा राधिकैका न चान्या।
जैह्मयं केशे दृशि तरलता निष्ठुरत्वं कुचेऽस्या
वाञ्छापूर्त्त्यै प्रभवति हरे राधिकैका न चान्या॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 181॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीकृष्णके प्रणयकी जन्मभूमि कौन हैं?—एकमात्र श्रीमती राधिका। श्रीकृष्णकी अनुपम गुणोंवाली प्रिया कौन हैं?—एकमात्र श्रीमती राधिका, अन्य कोई नहीं। केशोंमें कुटिलता (घुंघरालापन), नेत्रोंमें तरलता (चञ्चलता), दोनों कुचोंमें (स्तनोंमें) निष्ठुरता (कठोरता) आदि श्रीराधिकामें ही है। एकमात्र श्रीराधिका ही श्रीहरिकी वाञ्छा पूर्ण करनेमें समर्थ हैं, और कोई भी नहीं है॥ 181॥

अनुभाष्य—

(प्रश्नोत्तरक्रमेण श्रीराधिका-माहात्म्यं वर्णयति—) कृष्णस्य प्रणयजनिभूः (प्रणयस्य जन्मभूमिः) का?—एका राधिका। अस्य कृष्णस्य प्रेयसी (प्रेमपात्री) का?—अनुपमगुणा (अतुलनीयगुणसमन्विता) एका राधिका, न च अन्या। अस्याः (राधिकायाः एव) केशे जैह्मयं (कौटिल्यं), दृशि (नयने) तरलता (चञ्चलता), कुचे निष्ठुरत्वं (काठिन्यं) हरेः वाञ्छा-पूर्त्त्यै (वासनापूरणाय) प्रभवति (शक्नोति), न च अन्या (कापि तादृशी)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 181॥

श्रीराधिकाके श्रीकृष्णवशकारी विविध गुण :—

याँर सौभाग्य-गुण वाञ्छे सत्यभामा।
याँर ठाञि कलाविलास शिखे व्रजरामा॥ 182॥

याँर सौन्दर्यादि-गुण वाञ्छे लक्ष्मी-पार्वती।
याँर पतिव्रता-धर्म वाञ्छे अरुन्धती॥ 183॥

याँर सद्‌गुण-गणने कृष्ण ना पाय पार।
ताँर गुण गणिबे केमने जीव छार॥"184॥

अनुवाद—जिनके सौभाग्य-गुणोंकी सत्यभामा अभिलाषा करती हैं, जिनसे समस्त व्रजरमणियाँ कला-विलासकी शिक्षा लिया करती हैं, जिनके सौन्दर्य आदि गुणोंकी लक्ष्मीजी एवं पार्वतीजी वाञ्छा किया करती हैं, जिनके पातिव्रत्यधर्मकी सतीशिरोमणि अरुन्धतीजी भी कामना किया करती हैं, जिनके सद्‌गुणोंका गान करते-करते श्रीकृष्ण भी पार नहीं पाते, उन श्रीराधिकाके गुणोंकी गणना एक तुच्छ जीव किस प्रकार कर सकता है?॥"182–184॥

अनुभाष्य—आदिलीला 4/69, 75–79, 90–96, 122–124, 240–248, 255 संख्या देखें॥ 182–184॥

यहाँ तक श्रीराधाकृष्णतत्त्व;
अब रस-प्रेम-तत्त्व वर्णनारम्भ :—

प्रभु कहे,—"जानिलुँ कृष्ण-राधा-प्रेमतत्त्व।
शुनिते चाहिये दुँहार विलास-महत्त्व॥"185॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"मैंने कृष्णतत्त्व, राधातत्त्व और उनके परस्परके प्रेमतत्त्वको तो जान लिया है, अब मैं राधा-कृष्णके विलासकी महिमाको श्रवण करना चाहता हूँ।"185॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'विलास-महत्त्व'*—दोनोंके प्रेमविलासकी महिमा॥ 185॥

व्रजके किशोर-किशोरीके चरित्रका वर्णन :—

राय कहे,—"कृष्ण हय 'धीर-ललित'।
निरन्तर कामक्रीड़ा—याँहार चरित॥ 186॥

अनुवाद—श्रीरामानन्द रायने कहा,—"श्रीकृष्ण 'धीरललित' नायक हैं। निरन्तर काम-क्रीड़ा ही उनके चरित्रका वैशिष्ट्य है॥ 186॥

भक्तिरसामृतसिन्धु (2/1/230) :—

विदग्धो नवतारुण्यः परिहास–विशारदः।
निश्चिन्तो धीरललितः स्यात् प्रायः प्रेयसीवशः॥ 187॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 187॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जो पुरुष चतुर, नवतरुण, परिहास–पटु, निश्चिन्त और प्रेयसीके वशीभूत होता है, वह—'धीर–ललित' है॥ 187॥

अनुभाष्य—

विदग्धः (रसिकः) नवतारुण्यः (नवयौवनयुक्तः) परिहास–विशारदः (रहस्यनिपुणः) निश्चिन्त (उद्वेगरहितः) धीरललितः (नायकः) प्रायः प्रेयसीवशः (प्रेयसीनां प्रेमतारतम्येन वशीभूतः) स्यात्।

श्लोक–भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 187॥

श्रीराधाके साथ नित्य विलासमें रत श्रीकृष्ण :—

रात्रि–दिन कुञ्जे क्रीड़ा करे राधा–सङ्गे।
कैशोर–वयस सफल कैल क्रीड़ा–रङ्गे॥ 188॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण रातमें और दिनमें भी श्रीराधाके साथ कुञ्जमें विभिन्न प्रकारकी क्रीड़ाएँ करते हैं और इस प्रकार उन्होंने क्रीड़ारङ्गमें अपनी कैशोरवस्थाको सफल किया है॥ 188॥

भक्तिरसामृतसिन्धु (2/1/231) :—

वाचा सूचितशर्वरीरतिकला–प्रागल्भ्या राधिकां
व्रीड़ाकुञ्चित–लोचनां विरचयन्नग्रे सखीनामसौ।
तद्वक्षोरुहचित्रकेलिमकरीपाण्डित्यपारं गतः
कैशोरं सफलीकरोति कलयन् कुञ्जे विहारं हरिः॥ 189॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण प्रगल्भ (वाक्चातुर्य) वाक्योंके साथ पूर्वरात्रिमें श्रीमती राधिकाके सङ्ग घटित रतिकलाका वृत्तान्त वर्णन करने लगे। उससे लज्जावशतः श्रीमती राधिकाके दोनों नेत्र नीचे हो गये। तब श्रीकृष्ण उनके स्तनयुगलपर चित्रकेलि–भ्रमरादि चित्रित करते हुए सखियोंके मध्य विशेष पाण्डित्यका प्रकाश करने लगे। इस प्रकारकी रसक्रीड़ाके द्वारा कुञ्जमें विहार करते हुए श्रीहरिने कैशोर–अवस्थाको सफल किया॥ 189॥

अनुभाष्य—आदिलीला 4/117 संख्या देखें॥ 189॥

नित्य चिन्मयसेवा–विलासकी सर्वोत्तम अवस्था ही 'प्रेमविलास–विवर्त्त', वह जड़ निर्विशेष केवलाद्वैत–सिद्धि नहीं :—

प्रभु कहे,—"एहो हय, आगे कह आर।"
राय कहे,—"इहा वइ बुद्धि–गति नाहि आर॥ 190॥
येबा 'प्रेमाविलास–विवर्त्त' एक हय।
ताहा शुनि' तोमार सुख हय, कि ना हय॥" 191॥
एत बलि' आपन–कृत गीत एक गाहिल।
प्रेमे प्रभु स्वहस्ते ताँर मुख आच्छादिल॥ 192॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 190–192॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे रामानन्द! तुमने जो 'साध्य' निर्णय किया है, राधा–कृष्णके (तत्त्वका) वर्णन किया है और दोनोंके विलासकी महिमाको कहा है, वही सत्य है। किन्तु इससे आगे और जो कुछ है, उसे बोलो। श्रीरायने कहा,—इसके आगे बुद्धि और आगे काम नहीं कर पा रही। तो भी **'प्रेमविलास–विवर्त्त'** नामक एक भाव है, उसे सुना रहा हूँ, इसको सुनकर आपको सुख होगा या नहीं, मैं कह नहीं सकता। तात्पर्य यह है,—अब तक मैंने 'प्रेम–विलासके स्वरूप'का वर्णन किया था। प्रेमविलासतत्त्वमें दो प्रकारके भाव हैं अर्थात् सम्भोग (मिलन) और विप्रलम्भ (विरह)। **विप्रलम्भके बिना सम्भोगकी स्फूर्ति नहीं होती**। विच्छेद (वियोग)का नाम ही विप्रलम्भ है। वही **प्रेमविलासका विवर्त्त है अर्थात् विरहके समयमें अधिरूढ़भाववशतः सम्भोगके अभावमें भी सम्भोगकी स्फूर्त्ति होती है**। श्रीराय रामानन्दके द्वारा स्वरचित इस रसके एक सङ्गीतके गान करते ना करते महाप्रभुने अपने भावमें विह्वल होकर

उनके मुखको ढक दिया। गीत—विरहकालमें श्रीमतीजीकी उक्ति है, इसलिये विप्रलम्भदशामें सम्भोगकी स्फूर्त्ति हुई॥ 190-192॥

अनुभाष्य—

"व्यतीत्य भावनावर्त्म यश्चमत्कार-भारभूः।
हृदि सत्त्वोज्ज्वले बाढ़ं स्वदते स रसो मतः॥"

विशुद्ध-सत्त्वसे उज्ज्वल चित्तमें ही 'रस'का आस्वादन होता है। वह बाह्य-जगत् या अन्तर्जगत्के स्थूल-सूक्ष्म-उपाधियुक्त देह और मनके आस्वादन योग्य कार्य नहीं है। गौण स्थूल-सूक्ष्म-जगत्में जो अस्मिताका आभास लक्षित होता है, उसे अनात्म 'बुद्धि' और 'मनः' कहा जाता है। रसमय विषय रससे परिपूर्ण इन्द्रियोंके द्वारा ही ग्रहण किया जा सकता है। रसपूर्ण-इन्द्रियाँ रसमय-दर्शन-स्पर्शनादिके द्वारा रसिकशेखर, रसस्रोत्र, विषयविग्रह श्रीनन्दनन्दनकी प्रेममय सेवा करती हैं। यह निर्विशेषवादियोंकी प्राकृत-जगत्से परे जड़रहित अवस्था मात्र नहीं है, इसलिये 'रस'की संज्ञामें भावनापथका विशेष रूपसे अतिक्रमण लिखा गया है। भौतिकवादी लोग जड़जगत्में इन्द्रियभोगसे जो अनुभूति प्राप्त करते हैं, वे केवल उसके विपरीत भावका चिन्तन कर सकते हैं, परन्तु इस प्रकारके विचारोंसे वे अप्राकृत रसको नहीं समझ सकते। देह और मनके धर्मोंसे जो चमत्कारिता उत्पन्न होती है, वह असम्पूर्ण, लघु और नश्वर है, इसलिये ही कहा गया है कि चिन्मय-रस चमत्कारके गुरुत्वको प्रकाशित करता है। प्रेमा—शुद्ध और चिन्मय वस्तु है। अचित् वस्तुओंमें प्रीति—नश्वर है। तुच्छ-धर्म काममें ही अवस्थित है। जड़जगत्में इन्द्रियसुखमें बाधा होनेसे जो दुःख आता है, वह जड़-प्रीतिका 'विवर्त्त' है। दूसरी ओर प्रेमविलास और विलास-विवर्त्त किसी भी प्रकारका अभाव, निकृष्टता और अमङ्गल उत्पन्न नहीं करते। अप्राकृत-रस-रसिक श्रीरायरामानन्दने स्व-रचित जिस गीतका कीर्तन किया है, वह श्रीगौरसुन्दरके द्वारा अनुमोदित है या नहीं, ऐसी लीलाका अभिनय करते हुए उन्होंने प्रेम-विलास-विवर्त्तका वर्णन किया।

भक्तदास बाउल-कृत 'विवर्त्तविलास' ग्रन्थ—श्रीजगदानन्दके 'प्रेमविवर्त्त' और श्रीरामानन्दके 'प्रेमविलास-विवर्त्त'से सम्पूर्ण विपरीत ग्रन्थ है। आजकलके शिक्षित-अभिमानी व्यक्ति प्रेमविलास-विवर्त्तके विपरीत बुद्धि रखते हुए जड़ीय 'विवर्त्तविलास'के विचारोंका अनुसरण करके 'प्राकृत विद्यामन्दिर' (सांसारिक शिक्षा संस्थानों) से प्राकृत विद्यासागरगणों (सांसारिक विद्वानों) से 'पी.एच.डी.' की उपाधि प्राप्त कर सकते हैं, किन्तु 'परविद्यामन्दिर' (अप्राकृत शिक्षा संस्थान) से 'पी.एच.डी.' की उपाधि प्राप्त करनेके लिये जड़ीय-अहङ्कारको छोड़कर अपने नित्य स्वरूपमें अवस्थित होना पड़ेगा। मनुष्योंके द्वारा रचित धर्मशास्त्र और अप्राकृत दर्शन-शास्त्रमें आकाश-पातालका भेद है। इस भेदको श्रीमन्मध्वाचार्यने परम आदरणीय विचारोंके द्वारा सुन्दर रूपसे दिखाया है। जड़-दार्शनिक लोग जड़ीय-धारणामें ही अवस्थित हैं, इसलिये वे प्रेम-विवर्त्तको अपनी मनघड़न्त अनुभूतिके द्वारा समझनेमें समर्थ नहीं होंगे। थालीके बीचमें जिस प्रकार हाथी नहीं बैठ सकता, उसी प्रकार आरोहवादी कितना भी प्रयास कर लें, उनमें सामर्थ्य नहीं होनेके कारण उनके लिये अप्राकृत अनुभूति असम्भव है।

श्रीरामानन्द रायकी उक्तिसे जिस 'प्रेम-वैचित्त्य'के अन्तर्गत 'मोहन-मादनादि अधिरूढ़ महाभावका विलास-वैचित्र्य और विलास-विवर्त्त कहा गया है, उसको समझनेमें प्राकृत-सहजिया असमर्थ हैं। प्राकृत सहजिया श्रीरामानन्दके गीतका निर्विशेषवादी अर्थ करनेमें लगे रहेंगे, किन्तु वह (निर्विशेषवाद) न तो श्रीरामानन्दके कहनेका और न ही श्रीगौरसुन्दरके श्रवणका विषय था। आजकलके जड़ीय दार्शनिक समाजमें भजनकी निगूढ़ चमत्कारिता और अपूर्वताका प्रचार अविधिपूर्वक है, ऐसा विचार करके ही श्रीगौरसुन्दरने अपने हाथसे श्रीरामानन्दके श्रीकृष्णगानमें रत मुखकमलको ढक दिया था। इसके द्वारा यह स्थापित हुआ है कि यह गीत

जड़-दार्शनिकोंके अनुभवकी वस्तु नहीं है। तो भी, पूर्वोक्त विचारका अवलम्बन करनेसे ही केवलाद्वैतवादके स्थानपर शुद्धाद्वैतवादियोंका मत स्थापित हो सकता है। शुद्धाद्वैतवादी कहते हैं,—द्वैतजगत्‌में जो निकृष्टता है, उसके विपरीत जिस काल्पनिक अद्वयज्ञानको निर्देश किया जाता है, उसमें प्रेम-विलासका अभाव है। जड़-विवर्त्तवादी "ना सो रमण, ना हाम रमणी" इस पद्यकी व्याख्या विपरीत रूपसे करनेपर विषय-आश्रय-राहित्यरूपी कैवलाद्वैत-सिद्धिको 'अद्वयज्ञान' कहते हैं। ऐसी व्याख्या उन्हें पुनः जड़ीय-विवर्त्तमें ही धकेल देती है। इस विषयमें शुद्धाद्वैतवादी कहते हैं,—"ना सो रमण, ना हाम रमणी"—इस वाक्यमें वास्तव सत्यको ध्वंस नहीं किया गया है, किन्तु वस्तुमें वस्तु-शक्तिके परिचयसे जो अशुद्धद्वैत-आशङ्का प्रवर्त्तित हुई है, उसका खण्डन ही उद्दिष्ट हुआ है। विशिष्टाद्वैतवादियोंकी भाषामें यह बात इस प्रकार है,—वस्तुका परिचय दुर्ज्ञेय है, किन्तु शक्ति और शक्तिमान्‌को अभिन्न माननेसे शक्तिके परिचयसे ही वस्तुकी जानकारी प्राप्त होती है। जो वस्तुकी शक्तिको वस्तुसे अलग करके, 'रमण' और 'रमणी',—दो वस्तुओंकी कल्पना करते हैं, उनके विचारसे श्रीरामानन्दकी यह उक्ति केवल जड़ीय-शक्तिमान् और जड़ीय-शक्तिके भेदका खण्डन करनेवाली है।

जड़भोक्ता रमणके साथ जड़भोग्या रमणीका भेद है, ऐसा समझकर प्राकृत-सहजिया-सम्प्रदायके लोग अशुद्ध द्वैत विचारका आदर करते हैं। उससे बचनेके लिये चिन्त्यद्वैताद्वैत विचार प्रवर्तित हुआ है। इस विचारसे श्रीरामानन्दका अथवा श्रीगौरसुन्दरका अचिन्त्यभेदाभेद-विचार थोड़ा पृथक् है। शुद्धद्वैत-विचार और अचिन्त्यभेदाभेद-विचारको इस स्थानपर एक ही तात्पर्यमय समझना चाहिये। शुद्धाद्वैतवादियोंके विचार, शुद्धद्वैतवादियोंके विचार, चिन्त्य-द्वैताद्वैतवादियोंके विचार, विशिष्टाद्वैतवादियोंके विचारसे अचिन्त्यभेदाभेद-विचार पृथक् है, इसीको अचिन्त्यभेदाभेद-आचार्य स्वयं अभिन्न व्रजेन्द्रनन्दन (श्रीचैतन्यदेव)ने अप्राकृत-साहजिक श्रीरामानन्द रायके श्रीमुखसे इस बातका प्रचार किया है। इन श्रीरामानन्दके विषयमें ही श्रीगौरसुन्दरने कहा है,—"सम्पूर्ण दक्षिण देश (भारत)में तुम्हारे समान अप्राकृत-सहज-धर्मावलम्बी मैंने नहीं देखा है; मैं एक पागल हूँ और तुम दूसरे पागल हो। इसलिये तुम और मैं एक समान हैं॥" यह बात कहकर श्रीगौरसुन्दरने अचिन्त्यभेदाभेद विचारका प्रदर्शन किया है, इसलिये श्रीजीवपादने अपनी 'सर्वसम्वादिनी'में गौड़ीयके वेदान्त दर्शनको ही 'अचिन्त्यभेदाभेद' कहकर स्वीकार किया है। अचिन्त्यभेदाभेद-विचारके विषयमें प्राकृत-साहजिक सम्प्रदाय जिस 'तेल लगायी हुई देहसे गंगा-स्नान'की कहानीका उदाहरण देते हैं, वह जड़जगत्‌का विवर्त्तमात्र है। इस उदाहरणके द्वारा भेदाभेदप्रकाश-तत्त्व नहीं जाना जा सकता।

शक्ति-शक्तिमान्-तत्त्वके अभेदके प्रतिपादनमें विषयका आश्रयके लिये उद्दीपन और आश्रयका विषयके लिये उद्दीपन-भाव सुन्दर रूपसे समझानेके लिये ही श्रीरामानन्दके गीतमें रमण-रमणीका परस्परके स्वरूप-ज्ञानका यथायथ भाव है। अहंग्रहोपासना-चिन्मात्रवादियोंकी मूढ़ता एवं चिद्-विलासका वैपरीत्य मात्र है। 'अद्वयज्ञानवस्तुमें आश्रयजातीय भावका अभाव है', जो ऐसा विचार रखते हैं, उनके लिये ही गोलोकमें स्थित औदार्यमय-प्रकोष्ठमें श्रीकृष्णकी नित्य गौरलीला प्रपञ्चमें अवतीर्ण (प्रकट) हुई है। प्रपञ्चमें अवतीर्ण गौरलीला कभी भी जड़सम्भोगवादी गौरनागरी वालोंकी भोगकी वस्तु नहीं है, इसीको बतानेके लिये ही यह प्रेम-विलासविवर्त्तकी उदाहरण-लीला है। 'काञ्चना' आदि काल्पनिक दूतियोंकी अप्राकृत प्रेम विलासकी आवश्यकता नहीं है। प्राकृत-सहजिया-सम्प्रदायमें अपने-आपको शुद्ध भक्तोंके समान प्रकाशित करनेकी वासना है। इसलिये श्रीकृष्ण-भजन रसकी कथाको श्रीकृष्णकथाके अकालमय जगत्‌में प्रचार करनेकी इच्छा करनेपर वे नानामतवाद-विवर्त्तमें पतित हो सकते हैं, ऐसा जानकर यह सब व्याख्या शुद्धभक्तिमान् लोगोंके लिये ही संरक्षित हुई है॥ 190-192॥

श्रीराय रामानन्दका स्वकृत गान :—

गीत

"पहिलेहि राग नयनभङ्गे भेल।
अनुदिन बाढ़ल, अवधि ना गेल॥
ना सो रमण, ना हाम रमणी।
दुँहु–मन मनोभव पेषल जानि'॥
ए सखि, से–सब प्रेमकाहिनी।
कानुठामे कहबि बिछुरल जानि'॥
ना खोँजलुँ दूती, ना खोँजलुँ आन।
दुँहुको मिलने मध्ये पाँचबाण॥
अब् सोहि विराग, तुँहु भेलि दूति।
सु–पुरुख–प्रेमक ऐछन रीति॥"193॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥193॥

अमृतप्रवाह भाष्य—"आहा, मिलनके पूर्वरागके समय परस्परके नयन–ईक्षणसे 'राग' नामक एक भावका उदय होता है; वही राग बढ़ते–बढ़ते 'अवधि' अथवा चरम सीमाको प्राप्त नहीं हुआ; वह राग—हम दोनोंके स्वभावसे ही उत्पन्न हुआ है। रमणस्वरूप कृष्ण ही उसके कारण हैं, ऐसा नहीं है, अथवा रमणीस्वरूपा मैं ही उसका कारण हूँ, वैसा भी नहीं है। परस्पर दर्शनसे जो 'राग' उदित हुआ, वही मनोभव अर्थात् मदन हुआ और उसने हमारे मनको पीसकर एक कर दिया था। अब विरहके समय, वे सब प्रेमकी बातें, हे सखी! कृष्ण यदि भूल भी गये हों, तुम तो यह समझ सकती हो, इसलिये उनको कहना,—मिलनके समय हमने किसी दूतीको नहीं ढूँढ़ा था, अथवा और किसीसे भी कोई अनुरोध नहीं किया था, अनङ्गरूपी पाँच बाण ही हमारे मिलनके मध्यस्थ थे। और, अब विरहके समय वही राग 'विराग' होकर अर्थात् विशिष्टराग अथवा विच्छेदगत–राग अथवा अधिरूढ़भावरूपमें, हे सखि, तुम दूतीके रूपमें कार्य कर रही हो! सुन्दर–पुरुषके प्रेममें यही रीति सर्वत्र देखोगी।'

तात्पर्य यह है कि,—सम्भोगके समय 'राग' जैसे अनङ्गरूपमें मध्यस्थ होता है, विप्रलम्भके समय वह (राग) उसी प्रकार 'प्रेमविलास–विवर्त्तमें' अधिरूढ़–भावयुक्त दूती होता है अर्थात् विप्रलम्भमें सम्भोग–स्फूर्त्ति कार्यमें दूतीस्वरूप बननेपर उसको श्रीमती 'सखी' कहकर सम्बोधन करते हुए यह बात कह रही हैं। मूल तात्पर्य यह है कि,—प्रेमविलास–सम्भोगमें भी जैसा आनन्द है, विप्रलम्भमें भी वैसा ही है; विशेषतः विप्रलम्भमें (सेवाकी पराकाष्ठासे कृष्णमें तन्मयभावके कारण) सर्पमें रस्सीके भ्रमके समान तमालवृक्षादिमें श्रीकृष्णभ्रमजनित विवर्त्त–भावयुक्त अधिरूढ़–महाभावरूपी एक प्रकारका सम्भोग उदित होता है॥193॥

अनुभाष्य—*'पहिलेहि'*—सर्वप्रथम। *'राग'*—पूर्वराग।

"रतिर्या सङ्गमात् पूर्वं दर्शनश्रवणादिजा।
तयोरुन्मीलति प्राज्ञैः पूर्वरागः स उच्यते॥" (उःनीः 15/5)

"नायक और नायिकाके मिलनसे पूर्व दर्शन, श्रवणादिसे उत्पन्न जिस रतिका आविर्भाव होता है, उसे पूर्वराग कहते हैं।"

'नयन–भङ्गे'—परस्पर दर्शन–विनिमयसे; नयन–भङ्गीसे अर्थात् अपाङ्गदर्शनसे परस्परके चित्तवृत्ति–संयोजक इशारेसे। *'अनुदिन बाढ़ल'*—दिन–प्रतिदिन बढ़ने लगा। *'अवधि ना गेल'*—सीमा नहीं रही।

'प्रौढ़ा समर्था–रति'में लालसा, उद्वेग, जागर्य (निद्राका अभाव), तानव (शरीरकी कृशता, दुर्बलता), जड़ता, व्यग्रता, व्याधि, उन्माद, मोह और मृत्यु; अर्थात् चिन्ता, जागर, उद्वेग, अमर, मलिनाङ्गता, प्रलाप, व्याधि, उन्माद, मोह और मृत्यु—ये दस दशाएँ हैं। 'समञ्जसा–रति'में अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, गुण–कीर्तन, उद्वेग, सविलाप उन्माद,—ये छह प्रकारकी दशाएँ हैं। 'साधारणी–रति'में सोलह प्रकारकी दशाएँ अर्थात् प्रौढ़ा समर्था–रति और समञ्जसा–रतिके सविलाप उन्माद तक। '(उज्ज्वलनीलमणि पृः 828 से 852 देखें)।

'सो'—वे रमण श्रीकृष्ण; *'हाम'*—मैं राधिका रमणी;

हम दोनों ही उसके कारण नहीं हैं अथवा हमारी पार्थक्य-बुद्धि नहीं है अर्थात् हम दो हैं—ऐसी बुद्धि नहीं है। *'मनोभव'*—अर्थात् कन्दर्पने इसे जानकर, रमण और रमणी, दोनोंके मनको पीसकर एक कर दिया। *'प्रेम-काहिनी'*—प्रेमविलाससमूह। *'कानुठामे'*—कृष्णके स्थानमें या निकटमें। *'कहबि'*—बोलना। *'विछुरल'*—भूल गये हैं। *'जानि'*—जानकर। *'खौँजलुँ'*—ढूँढ़ा था। *'दूती'*—जो मध्यस्थ होकर नायक और नायिकाका मिलन कराती है; दूती दो प्रकारकी हैं—'स्वयं-दूती' और 'आप्तदूती'। *'स्वयं-दूती'*—कटाक्ष और वंशीध्वनि है; *'आप्तदूती'*—वीरा, वृन्दा आदि हैं। *'साधारण-दूती'*—शिल्पकारिणी, दैवज्ञा, लिङ्गिनी आदि। *'ना खौँजलुँ आन्'*—और किसीको भी अनुरोध अथवा अन्वेषण नहीं किया। *'दुँहुके'*—श्रीराधा और कृष्ण, इन दोनोंके। *'मिलने'*—दोनोंके मिलनसे; *'मध्ये पाँचबाण'*—रूप-रस-गन्ध-शब्द-स्पर्शसे प्रकटित पाँच बाण। *'अब'*—इस समय। *'सोहि'*—वही राग, *'विराग'*—विप्रलम्भमें अधिरूढ़-महाभाव। *'तुहुँ'*—तुम। *'भेलि'*—होनेपर। *'सु-पुरुख'*—उत्तम-नायकके। *'प्रेमक'*—प्रेमके। *'ऐछन'*—इस प्रकार॥ 193॥

परस्परके भेद-भ्रम-दूरीभूत अवस्था :—
उज्ज्वलनीलमणि (14/155)—

राधाया भवतश्च चित्तजतुनी स्वेदैर्विलाप्य क्रमाद्-
युञ्जन्नद्रि-निकुञ्ज-कुञ्जरपते निर्धूत-भेदभ्रमम्।
चित्राय स्वयमन्वरञ्जयदिह ब्रह्माण्डहर्म्योदरे
भूयोभिर्नव-राग-हिङ्गुलभरैः शृङ्गार-कारुकृती॥ 194॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 194॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे गोवर्धनपर्वत-निकुञ्जवासि-गजराज, शृङ्गारशिल्प-शास्त्रमें निपुण विधाताने राधिका और तुम्हारे चित्तरूपी लाक्षाको सात्त्विक-विकाररूपी धर्मके द्वारा द्रवीभूत करके [धीरे-धीरे दोनोंको एकत्रकर] भेदभ्रमको दूर करके ब्रह्माण्डरूप देवगृहमें नवराग-कुङ्कुमके द्वारा स्वयं जगत्के आश्चर्यको सम्वर्धित करनेके उद्देश्यसे दोनोंके उन दो चित्तोंको अतिशय रञ्जित किया है॥ 194॥

अनुभाष्य—

हे अद्रिनिकुञ्जकुञ्जरपते, (गिरि-गोवर्धन-निकुञ्जारण्य-गजपते, गोवर्धनकुञ्जविहारिन्), शृङ्गार-कारुकृति (शृङ्गार-कारुकर्मणि सुनिपुणः) राधायाः भवतश्च चित्तजतुनी (चित्ते एव जतुनी लाक्षे) स्वेदैः (अन्तर्बहिर्द्रवरूपैः विकारैः अग्नितापैर्वा) क्रमात् (शनैः शनैः) विलाप्य (द्रवीकृत्य) निर्धूतभेदभ्रमं (भेद एव भ्रमः, तं निर्धूतं दूरीभूतं) युञ्जन् (कुर्वन्) इह ब्रह्माण्ड-हर्म्योदरे (ब्रह्माण्डमेव हर्म्यं तस्योदरे) चित्राय (चित्रार्थं, विस्मयवर्द्धनार्थं) भूयोभिः (नानाविधैः) नवराग-हिङ्गुलभरैः (नवानुरागरूप-हिङ्गुल-रञ्जनैः) स्वयम् अन्वरञ्जयत्।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 194॥

अमृतानुकणिका—"महाप्रभु श्रीराय रामानन्दसे श्रीराधाकृष्णके विलासकी महिमाको श्रवण करना चाहते हैं। श्रीरायने कहा कि श्रीकृष्ण 'धीर-ललित' नायक हैं और उसी रूपमें विलास करते हैं। धीर-ललित नायक नवयौवनयुक्त, विदग्ध अर्थात् चतुर, परिहास-पटु अर्थात् परिहास करनेमें अत्यन्त कुशल, निश्चिन्त और अपनी प्रेयसीके वशीभूत होता है। *'परिहास-विशारद'*— श्रीकृष्णने शरद पूर्णिमाकी रात्रिमें वंशी बजाकर गोपियोंको बुलाया और जब वे सब कुछ त्यागकर वहाँ आयीं, तो श्रीकृष्ण कहने लगे—'आपका स्वागत है। मैं आपका कौनसा प्रिय कार्य करूँ? आप कैसे पधारीं? ओह! लगता है, आप सब पूर्णिमामें वनकी शोभा और यमुनाका सौन्दर्य देखने आयी हैं? अब आपने यह सब देख लिया है, इसलिये वापिस लौट जाओ, क्योंकि रात्रिके समय स्त्रियोंका वनमें आना उचित नहीं है। वनमें हिंसक प्राणी हैं और यह घोर रात्रि है। आप अपने-अपने घरोंको लौट जाओ। घरमें जाकर पति-सास-ससुर-बच्चोंकी सेवा करो, अन्यथा जघन्य अपराध, पाप होगा और समाजमें निन्दा भी होगी।' पहले तो गोपियाँ कृष्णके आन्तरिक मन्तव्यको समझनेके लिये चुप रहीं, अन्तमें गोपियोंने उनके इस परिहासका उत्तर दिया और रास आरम्भ हुआ। रासके मध्य भी श्रीकृष्ण

गोपियोंके प्रेम-वर्धन हेतु छिप जाते हैं। यह श्रीकृष्णका परिहास-कौशल और विदग्धता है। *'नवतारुण्य'*—नवयौवनावस्था विलासके योग्य है। श्रीकृष्ण रात-दिन श्रीराधाके साथ हास-परिहास और कुञ्जोंमें विभिन्न प्रकारकी क्रीड़ाएँ करते हैं। वे निश्चिन्त हैं, क्योंकि अत्यन्त प्रेमवशतः माता-पिताने उन्हें किसी कार्यका दायित्व नहीं दिया। इस प्रकार वे अपनी किशोरावस्थाको सफल कर रहे हैं। धीर-ललित नायक अपनी प्रेयसीके अधीन रहता है, यह उसका एक विशेष गुण है।

'प्रेमविलास-विवर्त्त'—विवर्त्तका अर्थ है विशेष रूपसे आवर्त्त। जब प्रेम अपनी चरम अवस्थापर उपस्थित हो जाता है, तब उसे प्रेम-विवर्त्त कहते हैं। अनुरागका आश्रय या नींव है राग; रागकी नींव है प्रणय, जिसमें नायक और नायिकामें विश्रम्भभाव उदित होता है अर्थात् दोनोंमें अपने देह-प्राणादिको एक माननेकी प्रवृत्ति जन्मती है। प्रणयका विकास जब अनुरागमें होता है, तब यह अपनी चरम सीमामें पहुँचकर 'यावदाश्रय वृत्ति' लाभ करता है। प्रेमसे लेकर महाभाव तक जितनी प्रकारकी आश्रय-वृत्तियाँ हैं, उनमें जब सभी सात्त्विक भावादि पूर्णरूपसे सुद्दीप्त अवस्थाको प्राप्त होते हैं, तब उस परिपक्व अवस्थाको 'यावदाश्रय वृत्ति' कहते हैं। इसमें आश्रय और विषय अपने प्रेमकी चरम पराकाष्ठा तक पहुँचते हैं, प्रेमका आगे बढ़नेका कोई स्थान नहीं रहनेपर भी वह बढ़ता रहता है। महाभावकी दूसरी विशेषता है—उसकी स्वसंवेद्य दशा। इस अवस्थामें मिलनमें प्रेम एक ऐसी स्थितिमें पहुँचता है जिसमें केवल मिलनके आनन्दकी ही अनुभूति रह जाती है, आस्वादक और आस्वाद्यका ज्ञान लुप्त हो जाता है। 'न सो रमण, न हाम रमणी'—अनुरागकी ऐसी अवस्थाको इङ्गित करता है जिसमें केवल रसका ही अनुभव होता है। इस मादनाख्य भावमें अनुरागकी जो चरम पराकाष्ठा है, उसमें विषय और आश्रय—दोनोंके प्राण, देह, मन आदिका भी ऐक्य हो जाता है, जिसका इङ्गित 'दुहुँ-मन मनोभव पेषल जानि' में किया गया है। प्रेमविलास-विवर्त्तमें यह ऐक्य भावगत है, वस्तुगत नहीं है, अर्थात् देह-मन-प्राणका पृथक् अस्तित्व बना रहता है, भाव तथा मननमें ऐक्य होता है। जिस प्रकार लाखके दो टुकड़े अग्निके प्रभावसे पिघलकर एक हो जाते हैं, उसी प्रकार श्रीराधाकृष्णका मन प्रेमके प्रभावसे पिघलकर एक हो जाता है। मनका भेद मिट जानेपर दोनोंको अपने पृथक् अस्तित्वका ज्ञान नहीं रहता, किन्तु पृथक् अस्तित्व बना रहता है; विलास-सुख ऐक्यताकी अनुभूति रहती है और विलास-सम्बन्धी चेष्टा भी रहती है। यही प्रेमविलासकी चरमोत्कर्ष अवस्था है।

प्रेमविलास-विवर्त्तके दो बाह्य लक्षण हैं—भ्रम और विपरीतता। तन्मयताके कारण भ्रम या आत्म-विस्मृति हो जाती है। इस अवस्थामें परस्परका सुख वर्धन करनेकी चरम उत्कण्ठाके कारण उनकी चेष्टाओंमें विपरीतता आ जाती है, अर्थात् कान्ताका भाव और आचरण कान्तमें और कान्तका भाव और आचरण कान्तामें सञ्चरित होता है। किन्तु यह विपरीतता अबुद्धिपूर्वक ही होती है।

श्रीराधा कह रही हैं—'पहिलेहि राग नयनभङ्गे भेल' अर्थात् पलक गिरनेमें जितना समय लगता है, उतनी देरमें कृष्णसे मेरा प्रथम राग हो गया। यही पूर्वराग प्रेमकी प्रथम स्थिति है।

विदग्धमाधवमें यह प्रसङ्ग वर्णित है—श्रीराधाने पहले तो श्रीकृष्णका नाम सुना, फिर वंशी ध्वनि सुनी और तत्पश्चात् उनका चित्रपट देखा। वे तीनोंपर ही मोहित हो गईं। किन्तु फिर सोचने लगीं कि 'तीन पुरुषोंमें मेरी रति कैसे हुई! अब मैं प्राण त्याग दूँगी।' तब ललिताने उन्हें समझाया कि ये तीन पुरुष नहीं हैं। जिनका नाम कृष्ण है, उन्हींकी वंशी-ध्वनि तुमने सुनी और यह चित्र भी उन्हींका ही है। ये तीनों व्यक्ति एक (कृष्ण) ही हैं।

'ये सब प्रेमकाहिनी कानुठामे कहबि बिछुरल जानि' अर्थात् अब हम बिछुड़ गये हैं, तो क्या कृष्ण

वह सब प्रेम कहानी भूल गये हैं?' 'न खोँजलुँ दूती, न खोँजलुँ आन' अर्थात् हे सखी! तुम उनसे कहना कि हमारे मिलनके समय दूती केवल हमारी दृष्टि थी, कन्दर्पके पाँच बाणोंने ही हमारी मध्यस्थता की थी, किन्तु अब मैं बड़ी विचित्र बात देख रही हूँ कि वे सब भूल गये हैं। उसीको याद दिलानेके लिये मैं तुम्हें भेज रही हूँ। 'अब् सोहि विराग', यहाँ श्रीराधामें अधिरूढ़ महाभाव उदित हुआ है। पहले मिलनमें कन्दर्प मध्यस्थ था, अब विरहमें अधिरूढ़ भाव दूती बन गया। श्रीराधा उसीको 'सखी' कहकर सम्बोधित कर रही हैं और कह रही हैं-'क्या सुपुरुषके प्रेमकी ऐसी ही गति होती है, जिससे प्रेम किया उसीको भूल जाना?' यह सब वार्त्तालाप वे स्वयंसे कर रही हैं। उनके कर-कमलोंमें कोई पत्र भी नहीं है, वे तो प्रेमकी चरमावस्थामें हैं—यही प्रेम-विलास विवर्त्त है।

यह सब श्रवणकर महाप्रभुने श्रीराय रामानन्दके मुखको अपने हस्तकमलसे ढक दिया और कहा—'साध्य वस्तु यही है और आगे मत कहो।' महाप्रभुको अपने कृष्ण-स्वरूपका स्मरण हो आया और श्रीरामानन्दके आगे कहनेसे उनका कृष्ण-स्वरूप प्रकट हो जायेगा, इसलिये महाप्रभु उन्हें आगे कहने नहीं दिया। यह अन्तरङ्ग कारण है और इसका बहिरङ्ग कारण यह है कि इस गूढ़ रहस्यको जगत्में प्रकाशित नहीं किया जा सकता। इसे सुनने और समझनेवाले इस जगत्में विरले ही हैं।"—श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी॥ 190-194॥

यहाँ तक साध्यकी सीमा :—

प्रभु कहे,—"'साध्यवस्तुर अवधि' एइ हय।
तोमार प्रसादे इहा जानिलुँ निश्चय॥ 195॥

साधनके द्वारा ही साध्यकी प्राप्ति :—

'साध्यवस्तु' 'साधन'-बिना केह नाहि पाय।
कृपा करि' कह, राय, पावार उपाय॥"196॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"यही साध्य वस्तुकी अन्तिम सीमा है। तुम्हारी कृपासे मैंने इस साध्य वस्तुके तारतम्यको समझा है। किन्तु ऐसी दुर्लभ साध्य वस्तुकी उपलब्धि, बिना साधनके नहीं हो सकती। इसलिये कृपा करके इस साध्य वस्तुकी प्राप्तिका उपाय भी बतलाइये॥"195-196॥

महाप्रभुकी इच्छासे श्रीराय वशीभूत :—

राय कहे,—"येइ कहाओ, सेइ कहि वाणी।
कि कहिये भाल-मन्द, किछुइ ना जानि॥ 197॥

त्रिभुवन-मध्ये ऐछे हय कोन् धीर।
ये तोमार माया-नाटे हइबेक स्थिर॥ 198॥

श्रीरायके मुखसे महाप्रभु स्वयं ही वक्ता, स्वयं ही श्रोता :—

मोर मुखे वक्ता तुमि, तुमि हओ श्रोता।
अत्यन्त रहस्य, शुन, साधनेर कथा॥ 199॥

साधनके रहस्यका वर्णन; केवल मधुर-रसमें 'कान्तभाव'की प्राप्ति :—

राधाकृष्णेर लीला एइ अति गूढ़तर।
दास्य-वात्सल्यादि-भावे ना हय गोचर॥ 200॥

अनुगत सखियोंके द्वारा ही राधाकृष्णविलासकी पुष्टि :—

सबे एक सखीगणेर इँहा अधिकार।
सखी हैते हय एइ लीलार विस्तार॥ 201॥

सखी बिना एइ लीला पुष्ट नाहि हय।
सखी लीला विस्तारिया, सखी आस्वादय॥ 202॥

सखी बिना एइ लीलाय अन्येर नाहि गति।
सखीभावे ये ताँरे करे अनुगति॥ 203॥

राधाकृष्ण-कुञ्जसेवा साध्य सेइ पाय।
सेइ साध्य पाइते आर नाहिक उपाय॥ 204॥

अनुवाद—श्रीरामानन्द रायने विनम्र भावसे कहा,—"जो आप मेरी वाणीसे कहलवा रहे हैं, मैं वही कहता जा रहा हूँ। इसमें क्या अच्छा है और क्या बुरा—इस विषयमें मैं कुछ नहीं जानता। इन तीन लोकोंमें कौन ऐसा धैर्यवान् पुरुष है, जो आपकी इस मायाके

नाटकको देखकर स्थिर रह सके? मेरे मुखसे आप ही वक्ता हैं और आप ही श्रोता बने हुए हैं। आप इस अत्यन्त रहस्यमय साधनके विषयमें सुनिये। श्रीराधाकृष्णकी यह लीला अति रहस्यमयी है। दास्य, सख्य, वात्सल्यादि भावाश्रित परिकरोंके द्वारा भी यह नहीं समझी जा सकती। एकमात्र श्रीराधाजीकी सखियोंका ही इस लीलामें अधिकार है और सखियोंसे ही लीलाका विस्तार होता है। सखियोंके बिना लीलाकी पुष्टि नहीं होती। सखियाँ ही इस लीलाका विस्तार करती हैं और वे ही इसका आस्वादन करती हैं। सखीके अतिरिक्त अन्य किसीका इस लीलामें प्रवेश करनेका अधिकार नहीं है। जो सखीभावसे सखीका आनुगत्य करता है, वही श्रीराधाकृष्णकी कुञ्जसेवारूप साध्य-वस्तुकी प्राप्ति कर सकता है—इसके अतिरिक्त इस साध्यकी प्राप्तिका और कोई उपाय नहीं है॥ **197–204**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महाप्रभुने इतना श्रवण करके कहा,—साध्यवस्तुके विषयमें सब कुछ कहना हो गया, अब इस चरमसाध्य-वस्तुको प्राप्त करनेका जो साधन अथवा उपाय है, उसे कहो। श्रीराय रामानन्दने उसके उत्तरमें कहा,—दास्य-वात्सल्यादि रसोंमें यह गूढ़तत्त्व प्राप्त नहीं होता, व्रजसखीके बिना इस लीलामें दूसरोंका प्रवेश असम्भव है; व्रजसखीका भाव ग्रहण करके सखीके आनुगत्यमें साधन कर पानेसे श्रीराधाकृष्ण-कुञ्जसेवारूप साध्यवस्तु प्राप्त होती है, इसको पानेका अन्य कोई उपाय नहीं है॥ **202–204**॥

अनुभाष्य— *'सखी'*,—उज्ज्वलनीलमणिमें जैसे—

"प्रेमलीलाविहारिणां सम्यग्विस्तारिका सखी।
विश्रम्भरत्नपेटी च॥"

श्रीकृष्णकी प्रेमलीला और विहारादिका सम्पूर्णरूपसे विस्तार करनेवालीको 'सखी' कहते हैं। सखियाँ—श्रीकृष्णकी विश्वासरूपी रत्नोंकी पेटीस्वरूपा हैं। सखियोंकी वृत्ति—

"मिथः प्रेमगुणोत्कीर्त्तिस्तयोरासक्तिकारिता।
अभिसारो द्वयोरेव सख्याः कृष्णे समर्पणम्।
नर्माश्वासन-नेपथ्यं हृदयोद्घाटपाटवम्।
छिद्रसंवृत्तिरेतस्याः पत्यादेः परिवञ्चना।
शिक्षा सङ्गमनं काले सेवनं व्यजनादिभिः।
तयोर्द्वयोरुपालम्भः सन्देशप्रेषणं तथा।
नायिकाप्राणसंरक्षा प्रयत्नाद्याः सखीक्रियाः॥"

(1) नायक और नायिकाके परस्परके प्रेम-गुणोंका कीर्तन, (2) एककी दूसरेके प्रति आसिक्तिको वर्धित करना, (3) दोनोंको अभिसार कराना, (4) कृष्णके प्रति सखीको समर्पित करना, (5) परिहास, (6) आश्वासन-प्रदान, (7) नेपथ्य अर्थात् नायक-नायिकाकी वेशरचना या उनका शृङ्गार, (8) हृदयके भावोंको प्रकाशित करनेकी निपुणता, (9) नायिकाके दोषोंको छिपाना, (10) पति आदिकी वञ्चना, (11) शिक्षा, (12) उचित कालमें नायक-नायिकाका मिलन कराना, (13) चामर आदि ढुलाना, (14) आवश्यक होनेपर दोनोंके प्रति तिरस्कार, (15) संवाद भेजना, (16) नायिकाके प्राणोंकी रक्षाके लिये यत्न करना। आदिलीला 4/211, 217–218 संख्या देखें।

'सखीभेकी' और 'गौरनागरी' आदि प्राकृत सहजिया सम्प्रदायके लोग देहात्म-बुद्धि होनेके कारण इस जड़ शरीर, जो मरनेके बाद कुत्ते-सियारका भोजन बन जायेगा, उसकी और चमड़ीकी शोभा बढ़ाकर श्रीकृष्णको आनन्द देना चाहते हैं, परन्तु श्रीकृष्णसे इतर ये सब कृत्रिम चेष्टाएँ जड़ेन्द्रियोंकी ही तृप्ति करनेवाली हैं, इसलिये श्रीकृष्ण उनका उपभोग करके आनन्द प्राप्त नहीं करते। चिन्मयी श्रीराधा और उनकी सखियोंकी देह, गेह, वेश-भूषणादि तथा सभी क्रियाएँ अथवा चेष्टाएँ चिन्मय हैं, वे कृष्णेन्द्रिय-प्रीतिकर और श्रीकृष्णको वशीभूत करनेवाली हैं। वे देवीधामके अन्तर्गत चौदह भुवनोंकी कोई क्रिया अथवा वस्तु नहीं है। श्रीकृष्ण भुवनमोहन होनेपर भी वे (गोपियाँ) भुवनमोहिनी नहीं, भुवनमोहन-मनोमोहनी हैं।

भोगपरायण मनोधर्मके वशीभूत होकर अपनी

काल्पनिक सिद्धदेहमें अपनेको 'सखी' मानकर अभिमान करना भी अहंग्रहोपासना ही हो जाता है; फलस्वरूप, कल्पनाकारीका देवीधाममें (इस संसारमें) ही वास होता है (भगवद्धामकी प्राप्ति नहीं होती)। श्रील जीवगोस्वामी प्रभुने प्राकृत-जीवोंको इस विषयमें सतर्क भी किया है—जैसे, भः रः सिः पूर्व विभाग द्वितीय लहरी—"लुब्धैर्वात्सलसख्यादौ"-श्लोकको 'दुर्गमसङ्गमनी' टीका—

'न तु व्रजेन्द्रादित्वाभिमानेनापीत्यर्थः। पितृत्वाद्यभिमानो हि द्विधा सम्भवति—स्वतन्त्रत्वेन, तत्पित्रादिभिरभेदभावनया च। ***तत्रान्त्यमनुचितं भगवदभेदोपासनावत्तेषु भगवद्वदेव नित्यत्वेन प्रतिपादयिष्यमाणेषु तदनौचित्यात्; तथा तत्परिकरेषु तदुचितभावना-विशेषेणापराधापातात्॥"***

श्रील जीवगोस्वामीने 'दुर्गम-सङ्गमनी'-टीकामें कहा है,—'वात्सल्य-सख्यादिभावोंसे लुब्ध साधकगण किन्तु व्रजराज श्रीनन्दादि-अभिमानके द्वारा भक्ति साधन नहीं करेंगे, यह अर्थ है। पिता होनेका अभिमान दो प्रकारका होता है—स्वतन्त्ररूपसे और श्रीकृष्णके पिता श्रीनन्दादिके साथ अभेद-भावनारूपसे। इनमेंसे बादमें कहा गया अभिमान अनुचित है, क्योंकि भगवान्‌के साथ अभेद होनेके लिये उपासनाके जैसे ही भगवान्‌के सदृश ही नित्यत्वरूपसे (श्रीनन्दादि नित्यसिद्धरूपसे) प्रतिपादन करेंगे, इस प्रकारका अभिमान अनुचित है। परन्तु [स्वतन्त्ररूपसे] भगवान्‌के पिता-सखादिरूप परिकर-अभिमानसे उसके उपयोगी विशेष भावनाके द्वारा अपराध नहीं होता।'

इसलिये ही (भःरःसिः, पूःविः, 2लः)में श्रीलरूप गोस्वामी प्रभुने कहा है,—

"कृष्णं स्मरन् जनश्चास्य प्रेष्ठं निज-समीहितम्।
तत्तत्कथारतश्चासौ कुर्याद्वासं व्रजे सदा।
सेवा साधकरूपेण सिद्धरूपेण चात्र हि।
तद्भावलिप्सुना कार्या व्रजलोकानुसारतः॥"

इस श्लोककी दुर्गमसङ्गमनी टीका—

"व्रजलोकास्त्वत्र कृष्णप्रेष्ठजनास्तदनुगताश्च तदनुसारतः॥"

श्लोकार्थ,—'श्रीकृष्णको और निज-अभीष्ट श्रीकृष्णप्रेष्ठ-जनको स्मरण करते-करते उन-उन कथामें रत होकर सर्वदा व्रजमें वास करेंगे। इस भावके लोभीगण साधकरूपमें और अन्तश्चिन्तित सिद्ध-स्वरूपसे व्रजवासियोंके अनुगामी होकर सेवा करेंगे।' दुर्गमसङ्गमनी टीकार्थ,—'यहाँपर 'व्रजवासियों' अर्थात् श्रीकृष्णप्रेष्ठजन और उनके अनुगतगण,—उनके अनुसरणके द्वारा, यह अर्थ है।'

मध्यलीला 22/155 और 157 संख्या देखें॥ **202-204**॥

सखियोंके द्वारा शृङ्गार-रसकी पुष्टि :—
श्रीगोविन्द-लीलामृत (10/17)—

विभुरपि सुखरूपः स्वप्रकाशोऽपि भावः
क्षणमपि न हि राधाकृष्णयोर्या ऋते स्वाः।
प्रवहति रसपुष्टिं चिद्विभूतीरिवेशः
श्रयति न पदमासां कः सखीनां रसज्ञः॥205॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **205**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—राधा-कृष्णका भाव स्वप्रकाश होनेपर भी और सुख विभु अर्थात् अनन्त होनेपर भी सखियोंके बिना एक क्षणके लिये भी रसपुष्टि लाभ नहीं कर सकता, जिस प्रकार ईश्वरकी चिद्-विभूतिके बिना ईश्वरत्व पुष्टि प्राप्त नहीं करता, उसी प्रकार। इसलिये उसमें प्रविष्ट कौन रसज्ञ सखियोंका पदाश्रय नहीं करेगा?॥ **205**॥

अनुभाष्य—

राधाकृष्णयोः (व्रजनवयुवद्वन्द्वयोः) भावः (चिद्विलासः) विभुः (परममहान्) अपि, सुखरूपः (सच्चिदानन्दमयः) स्वप्रकाशः (स्वयंप्रकाशरूपः) अपि स्वाः (निजसम्बन्धिन्यः कायव्यूह-स्वरूपिण्यः याः सखीः) ऋते (बिना) रसपुष्टिं न हि प्रवहति; यथा ईशः (ईश्वरः) चिद्विभूतीः इव, [सच्चिदानन्दः ईश्वरः यथा निजनित्यचिदैश्वर्यादिकं बिना पुष्टिं न प्राप्नोति, तथेत्यर्थः अतः कारणात्] कः रसज्ञः (कृष्णतत्त्ववित् कृति) आसां सखीनां पदं न श्रयति? (आश्रयति? सर्वे सनिपुणाः मधुररसज्ञाः भक्ताः सखीपदं आश्रयन्तीत्यर्थः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें।

(यथा केवलाद्वैतवादिनां कल्पनाङ्कितविग्रहः अज्ञान-समष्ट्यधिष्ठातृदेव ईश्वरः अज्ञान-व्यष्ट्यधिष्ठातृ-मलिनसत्त्व-विकाराख्य-जीवादि-विभूतिमयोऽपि षण्टवत् नित्यसत्यविलास-रहितः, विशिष्टाद्वैतवादिनामाराध्यो नित्यसच्चिदानन्दविग्रह ईश्वरो नित्यचिदानन्दमयः स्वगत-सजातीय-विजातीय-नित्यविशेष-विभूतिभिः शान्त-दास्य-सख्य-सार्द्धद्वय-रसपुष्टिं करोति, तथा परिपूर्णो सुखरूपौ श्रीवार्षभानवी-व्रजेन्द्रनन्दनौ स्वयं-प्रकाशरूपौ सन्तावपि सखीभिः नित्यरसपुष्टिं कुरुत इति भावः)।

केवलाद्वैतवादियोंके कल्पना-निर्मित-विग्रह 'अज्ञान-समष्टि'के अधिष्ठातारूप ईश्वर हैं—'अज्ञान-व्यष्टि'के अधिष्ठाता और मलिन-सत्त्वके विकाररूप जीव आदि विभूतियुक्त होनेपर भी वे क्लीववत् नित्य-सत्य-विलासरहित हैं। विशिष्टाद्वैतवादिगणोंके आराध्य नित्य सच्चिदानन्दविग्रह ईश्वर—नित्य चिदानन्दमय और स्वगत-सजातीय-विजातीय नित्य-सविशेष समस्त विभूतियोंके साथ शान्त, दास्य और आधे सख्यकी (अड़ाई) रस पुष्टि करते हैं। परिपूर्ण-सुखस्वरूप श्रीवृषभानुनन्दिनी और श्रीव्रजेन्द्रनन्दन स्वयं प्रकाशित रूप होनेपर भी (अर्थात् अन्य-अपेक्षारहित होनेपर भी) सखियोंके साथ नित्यरसकी पुष्टि करते रहते हैं,—यही अर्थ है॥ 205॥

सखियोंका श्रीराधाप्रेम :—

सखीर स्वभाव एक अकथ्य-कथन।
कृष्ण-सह निजलीलाय नाहि सखीर मन॥ 206॥

कृष्णसह राधिकार लीला ये कराय।
निज-सुख हैते ताते कोटि सुख पाय॥ 207॥

अनुवाद—सखियोंका स्वभाव अपूर्व और अवर्णनीय है। वे स्वयं कभी भी श्रीकृष्णके सङ्गरूपी सुखको प्राप्त करनेकी अभिलाषा नहीं करतीं। श्रीकृष्णके साथ श्रीराधिकाकी लीलाएँ करानेमें उनको जिस सुखकी अनुभूति होती है, उस सुखको वे स्वयं श्रीकृष्णके साथ क्रीड़ाविलास करनेसे भी कोटि गुणा अधिक मानती हैं॥ 206–207॥

राधा और सखियोंका परस्परका प्रेम-सम्बन्ध :—

राधार स्वरूप—कृष्णप्रेम-कल्पलता।
सखीगण हय तार पल्लव-पुष्प-पाता॥ 208॥

कृष्णलीलामृत यदि लताके सिञ्चय।
निज-सुख हैते पलवाद्येर कोटि-सुख हय॥ 209॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 208–209॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीराधा ही श्रीकृष्णकी प्रेम-कल्पलतास्वरूपा हैं और सखियाँ उस लताके पल्लव, पुष्प एवं पत्र हैं। लतारूप श्रीराधिकाका पदाश्रय लेकर लताका जलसे सिञ्चन करनेपर पल्लवादि अत्यन्त प्रफुल्लित हो जाते हैं। पल्लवादिमें जल देनेसे जैसे पल्लवादि प्रफुल्लित नहीं होते, उसी प्रकार गोपियोंको श्रीकृष्ण-मिलन सुखसे भी श्रीराधाकृष्ण-मिलनके द्वारा ही अधिक सुख होता है॥ 208–209॥

श्रीगोविन्द-लीलामृत (10/16) :—

सख्यः श्रीराधिकाया व्रजकुमुदविधोर्ह्लादिनी-नामशक्तेः
सारांश-प्रेमवल्याः किशलयदलपुष्पादितुल्याः स्वतुल्याः।
सिक्तायाः कृष्णलीलामृतरसनिचयैरुल्लसन्त्याममुष्यां
जातोल्लासां स्वसेकाच्छतगुणमधिकं सन्ति यत्तन्न चित्रम्॥ 210॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 210॥

अमृतप्रवाह भाष्य—व्रजकी सखियाँ श्रीराधाके तुल्य और व्रजकुमुदचन्द्रकी ह्लादिनी नामक शक्तिस्वरूपा श्रीराधिकाकी सारांश-प्रेमलताके कोंपल, पत्र, पुष्पादि स्वरूप हैं। श्रीकृष्णलीलामृतरस-समूहके द्वारा परमोल्लासमयी श्रीराधिकाके सिञ्चित होनेपर ही सखियाँ अपने सिञ्चनसे सौ गुणा अधिक उल्लसित होती हैं—यह कोई विचित्र बात नहीं है॥ 210॥

अनुभाष्य—

व्रजकुमुदविधोः (व्रजवासिकुमुदानन्दकृष्णचन्द्रस्य) ह्लादिनीनामशक्तेः (ह्लादिन्याख्यशक्तेः) श्रीराधिकायाः सारांश-प्रेमवल्ल्याः (सारांशः यः प्रेमा सः एव वल्ली लता तस्याः) किशलय-दल-पुष्पादितुल्याः

(नवीनपत्रकुसुमादिसमाः), अतएव स्वतुल्याः सख्यः (ललितादिप्रियनर्मसख्यः) कृष्णलीलामृत-रस-निचयैः सिक्तायां अमुष्यां (राधायाम्) उल्लसन्त्यां च [सत्यां ताः] सख्यः स्वसेकात् (स्व-सेचनात्) शतगुणम् अधिकं जातोल्लासाः (हर्षान्विताः) भवन्ति, इति यत्, तत् न चित्रं (विस्मयकरम्)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥210॥

श्रीराधिकाकी सखियोंके प्रति प्रीति :—

यद्यपि सखीर कृष्ण-सङ्गमे नाहि मन।
तथापि राधिका यत्ने करान सङ्गम॥211॥

नाना-छले कृष्णे प्रेरि' सङ्गम कराय।
आत्मसुख-सङ्ग हैते कोटि-सुख पाय॥212॥

श्रीराधा और सखियोंकी परस्पर प्रीतिमें कृष्णका सुख :—

अन्योन्ये विशुद्ध प्रेमे करे रस पुष्ट।
ताँ-सबार प्रेम देखि' कृष्ण हय तुष्ट॥213॥

सहज गोपीर प्रेम,—नहे प्राकृत काम।
कामक्रीड़ा-साम्ये तार कहि 'काम'-नाम॥214॥

अनुवाद—यद्यपि सखियोंकी श्रीकृष्णके साथ सङ्गमकी थोड़ीसी भी इच्छा नहीं होती, तथापि श्रीराधाजी बड़े प्रयत्नके साथ उनका श्रीकृष्णसे सङ्गम करा ही देती हैं। श्रीराधाजी अनेक प्रकारके छल, चतुरायी, युक्तियोंसे उन्हें श्रीकृष्णके पास भेजती हैं। श्रीराधाजीको भी अपने सङ्गम-सुखसे जितना आनन्द होता है, उससे भी करोड़ों गुणा अधिक सखियोंको श्रीकृष्णसे मिलानेमें प्रसन्नता होती है। राधाजी और सखियोंका एक दूसरेके प्रति विशुद्ध प्रेम रसका निरन्तर पोषण करता रहता है। इनके परस्पर प्रेमकी परिपाटीको देखकर श्रीकृष्ण बड़े सन्तुष्ट होते हैं। गोपियोंका श्रीकृष्णप्रेम सहज-स्वाभाविक है, इसमें प्राकृत कामकी लेशमात्र गन्ध भी नहीं है। लौकिक कामक्रीड़ाके समान प्रतीत होनेके कारण ही इस प्रेमको 'काम' कहा गया है॥211-214॥

अनुभाष्य—*'अन्योन्ये'*—परस्पर। श्रीराधिका और उनकी सखियाँ अपने-अपने सुखकी अभिलाषामें किसी प्रकारसे चेष्टाशीला न होकर एक-दूसरेके द्वारा श्रीकृष्ण सेवा करवाकर प्रेमको पुष्ट कराती है, उसको देखकर श्रीकृष्ण सन्तुष्ट होते हैं॥213॥

अमृतानुकणिका—"प्रेम विलास विवर्त्तके विषयमें श्रवण करके महाप्रभुने सन्तोष व्यक्त किया कि साध्य वस्तुकी अवधि यही है, अब आप इसे प्राप्त करनेका साधन बताइये। तब श्रीरायने कहा—'साधनकी कथा अत्यन्त रहस्यपूर्ण है। सखियोंके अतिरिक्त श्रीराधाकृष्णकी लीलामें किसीका अधिकार नहीं है। क्योंकि वे श्रीराधाकी समतजातीय हैं, उनकी भावनाओंको समझती हैं, उन्हींके समान महाभाव-स्वरूपा है तथा प्रेम और सेवाकी परिपाटीमें सुदक्ष हैं। वे ही अभिसार करवाना, शृङ्गार रचना, संवाद भेजना आदि लीला-विस्तारक सेवाओंमें कुशल हैं। वे श्रीराधा और श्रीकृष्ण—दोनोंकी ही परम विश्वासपात्री हैं। श्रीराधाकृष्णकी कुञ्जलीलाओंमें उन्हींका आश्रय ग्रहण करके प्रवेश सम्भव है। कुञ्ज-सेवा प्राप्तिका लोभ और रसिक वैष्णवोंका सङ्ग ही इसका हेतु है। परन्तु जो अभी जड़देहमें आबद्ध हैं, उन्हें मनके द्वारा भी कदापि ऐसा विचार या आचरण नहीं करना चाहियें। समुद्र-मन्थनसे उत्पन्न विषका पान केवल श्रीरुद्र ही कर सकते हैं, अन्य कोई करे तो वह निश्चय ही विनाश को प्राप्त होगा। श्रीराधाकृष्णकी लीलाएँ चिन्मय एवं विशुद्ध हैं। सम्पूर्ण रूपसे स्थूल देहगत सुखोंसे अपरिचित होकर इनमें प्रवेश प्राप्त होगा, अन्यथा जीव अधःपतित होकर नरकगामी हो जाता है।

गोविन्दलीलामृत (10/17)—*'विभुरपि सुखस्वरूप'*—सर्वव्यापी ईश्वर जिस प्रकार निज चिदैश्वर्यके बिना पूर्ण नहीं होते, उसी प्रकार अति महान स्वप्रकाश और सुख स्वरूप अर्थात् अनन्त होनेपर भी श्रीराधाकृष्णका भाव सखियोंके बिना क्षणमात्रके लिए भी रसयुक्त नहीं हो सकता। कौन ऐसा रसिक व्यक्ति होगा जो परम रसिक-रसज्ञ गोपियोंका आश्रय ग्रहण नहीं करेगा,

अर्थात् जितने भी रस लोलुप रसिक भक्त हैं, वे करेंगे ही, क्योंकि उन्हें कुञ्जसेवा प्राप्तिका लोभ हो गया है। यही लोभ कुञ्जसेवा प्राप्तिका प्रथम सोपान है।

'सखीर स्वभाव एक अकथ्य-कथन'—सखियोंका एक ऐसा सुन्दर, मधुर और रहस्यपूर्ण स्वभाव है, जो अकथ्य कथन है, जिसे कहना उचित नहीं है। परन्तु महाप्रभु श्रीरामानन्दके श्रीमुखसे यह इसलिये कहलवा रहे हैं कि नहीं कहनेसे यह विद्या ही लोप हो जायेगी और जो इसके लिए योग्य व्यक्ति हैं, वे वञ्चित रह जायेंगे। भागवतमें लिखा है—'कर्मण्या एव दुःख....' सभी व्यक्ति अपने दुःखको दूर करनेके लिये और सुखको पानेके लिये कार्य करते हैं। श्रीकृष्णकी सेवा भी एक महत्-स्वार्थके लिये करते हैं, स्वर्गसे ऊपर दो प्रकारकी मुक्तियाँ हैं—सुखैश्वर्य-उत्तरा और प्रेमसेवा-उत्तरा। सुखैश्वर्य-उत्तरा मुक्ति भी दुःखोंसे परे निजसुखके लिये ही है। मुखसे कहनेपर कि वे श्रीकृष्णको सुखी करनेके लिये भजन कर रहे हैं, तो भी सब लोग श्रीकृष्णका भजन करके श्रीकृष्णको ही प्राप्त करना चाहते हैं जिससे उन्हें सुख मिलेगा। अभी उन्हें श्रीकृष्णके सुखकी अनुभूति नहीं है, वे अपने ही सुखके लिये ही सब कुछ करते हैं। परन्तु इन सखियोंकी श्रीकृष्णसे मिलन करनेकी कोई कामना नहीं है, वे तो श्रीकृष्णके साथ श्रीराधाका मिलन करानेमें निज मिलनसे कोटि गुणा सुख पाती हैं—यही अकथ्य कथन है। इनका शरीर, मन और वाणी सदा श्रीकृष्णको सुखी करनेमें तत्पर है, इसलिये वे उनके सुखको भली प्रकार समझती और आस्वादन करती हैं। श्रीराधाकृष्ण-युगलके सुखका अनुभव करके इनमें भाव-विकार उदय हो जाते हैं। श्रीराधाका सुख इन लोगोंका स्वाभाविक सुख है।

स्वर्ण कल्पलता श्रीराधाको ये सखियाँ श्रीकृष्ण लीलाकथासे सींचती हैं। श्रीरूप मञ्जरी श्रीराधाका शृङ्गार कर रही हैं, गलेमें स्यमन्तक मणि पहना रही हैं और साथ ही कह रही हैं—'कौस्तुभ मणि इसका मित्र है। वह प्रतिक्षण स्यमन्तक मणिसे मिलनेके लिये लालायित रहता है। ये मिलते ही दोनों तरल हो जाते हैं। देखो, इसपर श्रीकृष्णकी प्रतिछवि पड़ती है और उनके कौस्तुभमें तुम्हारी छवि पड़ती है। फिर ये दोनों गर्वसे गर्वित होकर इतना वाद-विवाद करते हैं, जैसे तुम दोनों करते हो।' श्रीराधा श्रीकृष्ण-प्रसङ्ग सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होती हैं। सखियाँ शृङ्गार करते समय उसका पूर्वलीलासे सम्बन्ध स्मरण करवाकर श्रीराधाके कानोंमें अमृत-सिंचन करती हैं। श्रीराधाकी श्रीकृष्णसे मिलनकी तीव्र उत्कण्ठा हो जाती है और अनेकों-अनेकों मधुर स्मृतियाँ छा जाती हैं। यही लताको सींचना है। इसके द्वारा पत्र-पुष्प-मञ्जरी सभी आनन्दित हो जाते हैं और पुष्ट होते हैं। इसीसे लता भी पुष्ट होती है। इसलिये सखियोंके बिना लीला नहीं हो सकती, रास नहीं हो सकता। वे ही रसकी पुष्टि करती हैं।"—श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी॥ 200–213॥

भक्तिरसामृतसिन्धु (1/2/285) गौतमीय तन्त्र वाक्य :—

प्रेमैव गोपरामाणां काम इत्यगमत् प्रथाम्।
इत्युद्धवादयोऽप्येतं वाञ्छन्ति भगवत्प्रियाः॥ 215॥

निजेन्द्रिय-सुखहेतु कामेर तात्पर्य।
कृष्णसुख-तात्पर्य गोपीभाव-वर्य॥ 216॥

निजेन्द्रिय-सुखवाञ्छा नाहि गोपीकार।
कृष्णे सुख दिते करे सङ्गम-विहार॥ 217॥

अनुवाद—गोपियोंके शुद्धप्रेमको ही 'काम' नामसे अभिहित करनेकी प्रथा हुई है। भगवद्भक्त उद्धवादि भी इस प्रेमके पिपासु हैं। अपनी इन्द्रियको सुखी करना ही कामका तात्पर्य है। गोपियोंका जो श्रेष्ठ भाव अर्थात् प्रेम है, उसका तात्पर्य केवलमात्र श्रीकृष्णका सुख है। गोपियोंमें अपनी इन्द्रियोंको सुखी करनेकी कोई वाञ्छा कभी नहीं होती है। उनका श्रीकृष्णके साथ सङ्गम और विहार भी श्रीकृष्णको सुख प्रदान करनेके लिये ही होता है॥ 215–217॥

अनुभाष्य— *'काम'*—यह सम्विद्‌विग्रह-श्रीकृष्णकी सेवापरायण वृत्ति नहीं है, अपितु श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य वस्तुका सुख इसका लक्ष्य है। *'प्रेम'*—यह केवलमात्र श्रीकृष्णके सुखतात्पर्य और श्रीकृष्ण-सेवामय होता है। गोपियोंके कामका नाम ही 'प्रेम' है, क्योंकि गोपियाँ अपनी इन्द्रियोंका सुख नहीं चाहतीं, केवल श्रीकृष्णके सुखके लिये सजातीय-सखीके द्वारा सेवा करवाकर एवं वैसी सखीके द्वारा श्रीकृष्णकी सेवामें नियुक्त होकर मात्र श्रीकृष्ण-काम स्वीकार करती हैं। आदिलीला 4/161-166 संख्या देखें॥ **214-217**॥

श्रीमद्भागवत(10/31/19) :—

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु।
तेनाटवीमटसि तद्‌व्यथते न किंस्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः॥218॥

अनुवाद—विरहणी गोपियाँ विलाप करती हुई कह रही हैं—"हे प्रिय! हम तुम्हारे सुकोमल चरणकमलोंको अपने कठोर स्तनोंपर धीरे-धीरे धारण करतीं हैं, उन्हीं चरणोंके द्वारा तुम अभी वनमें भ्रमण कर रहे हो, वहाँ छोटे-छोटे कङ्कड़-पत्थरादि चुभनेके द्वारा अवश्य ही तुम्हें कष्ट हो रहा होगा। तुम हमारे जीवन स्वरूप हो, इसलिये तुम्हारी चिन्तामें व्याकुल होकर हम सबकी बुद्धि भ्रमित हो रही है॥"218॥

अनुभाष्य—आदिलीला 4/173 संख्या देखें॥ **218**॥

रागानुगा भक्तिका परिचय :—

सेइ गोपीभावामृते याँर लोभ हय।
वेदधर्म त्यजि' से कृष्णके भजय॥219॥
रागानुग-मार्गे ताँरे भजे येइ जन।
सेइ जन पाय व्रजे व्रजेन्द्रनन्दन॥220॥
व्रजलोकेर कोन भाव लञा येइ भजे।
भावयोग्य देह पाञा कृष्ण पाय व्रजे॥221॥

रागमार्गके द्वारा श्रुतियोंकी कृष्णप्राप्ति :—

ताहाते दृष्टान्त—उपनिषद् श्रुतिगण।
रागमार्गे भजि' पाइल व्रजेन्द्रनन्दन॥222॥

अनुवाद—जिन्हें पूर्वकथित गोपीभावामृत प्राप्त करनेका लोभ होता है, वे वेद-धर्मका (इहलोक और परलोकके सुखकी कामनाका) सम्पूर्ण रूपसे त्याग करके श्रीकृष्णका भजन करते हैं। जो रागानुग-मार्गमें भजन करते हैं, वे ही व्रजमें व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णको प्राप्त करते हैं। जो व्रजमण्डलके परिकरोंके किसी एक विशेष भावको लेकर भजन करते हैं, वे भाव योग्य सिद्धदेहकी प्राप्ति करके व्रजमें श्रीकृष्णकी सेवा प्राप्त करते हैं। इसका दृष्टान्त उपनिषद् अथवा श्रुतियाँ हैं, जिन्होंने रागमार्गमें भजन करके श्रीव्रजेन्द्रनन्दनकी सेवा प्राप्त की थी॥**219-222**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—विधि-मार्गमें भजनके चौंसठ अङ्ग हैं, निर्मल श्रद्धाके साथ इन अङ्गोंका पालन करनेपर ही भक्तिमें अधिकार उत्पन्न होता है। परन्तु व्रजवासियोंका श्रीकृष्णके प्रति जो स्वाभाविक राग है, उसे देखकर जिन्हें उस मार्गपर चलनेके लिये लोभ होता है, उन्हें वही गोपीभावामृत-लोभ ही रागानुग-मार्गमें अधिकार प्रदान करता है। रागानुगमार्गमें प्रवेशकर भजन करनेसे वर्णाश्रमादि-वैदिकधर्ममें आसक्तिका सहज ही त्याग हो जाता है। व्रजमें रक्तक-पत्रकादि श्रीकृष्णके दास, श्रीदाम-सुबलादि श्रीकृष्णके सखा, श्रीनन्द-यशोदादि श्रीकृष्णके पिता-माता,—ये सब अपने-अपने रसके अनुसार श्रीकृष्णका भजन अर्थात् उनकी सेवा करते हैं। व्रजरसके भजनमें प्रवृत्ति होनेपर उक्त किसी विशेष रसमें जिन्हें लोभ होता है, वे उस भावके योग्य चित्स्वरूप प्राप्त करके सिद्धिकालमें श्रीकृष्णको प्राप्त होते हैं;—उपनिषद् अथवा श्रुतियाँ ही इसका दृष्टान्त हैं। श्रुतियोंने देखा कि गोपियोंका आनुगत्य नहीं करनेसे व्रजमें श्रीकृष्ण भजनका अधिकार प्राप्त नहीं होता, तब उन्होंने गोपियोंके आनुगत्यको ग्रहण करके रागमार्गमें

गोपीदेहसे [अपने सिद्धदेहसे] व्रजेन्द्रनन्दनका भजन किया था॥ **219–222**॥

अनुभाष्य— *'रागानुग-मार्ग'*—आदिलीला 4/167–169, 175 संख्या तथा मध्यलीला 22/145–162 संख्या देखें॥ **220–222**॥

गोपियोंके आनुगत्यमें श्रुतियोंको
श्रीकृष्णकी मधुर सेवाकी प्राप्ति :—
श्रीमद्भागवत (10/87/23)—

निभृतमरुन्मनोऽक्षदृढ़योगयुजो हृदि य-
न्मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात्।
स्त्रिय उरगेन्द्रभोगभुजदण्डविषक्त-धियो
वयमपि ते समाः समदृशोऽङ्घ्रिसरोजसुधाः॥ 223॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **223**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—मुनि लोगोंने प्राणायामके द्वारा निश्वासको जीतकर मन और इन्द्रियोंको दृढ़रूपसे योगयुक्त करके हृदयमें जिस ब्रह्मकी उपासना की थी, भगवान्‌के सभी शत्रुओंने भी उनके निरन्तर ध्यानके बलसे उस ब्रह्ममें प्रवेश किया था। व्रजस्त्रियोंने श्रीकृष्णके सर्प-शरीरतुल्य भुजाओंके सौन्दर्यरूप तीव्र विषके द्वारा हतबुद्धि होकर उनके चरणकमलोंकी सुधाको प्राप्त किया था। हमने भी वैसी गोपीदेह प्राप्त करके गोपीभावसे उनके चरणकमलोंकी सुधाका पान किया है॥ **223**॥

अनुभाष्य—जनलोकमें ब्रह्मसत्र-यज्ञमें श्रोता ऋषियोंको सनन्दनका श्रुतियोंके द्वारा किये गये भगवान्‌के स्तवका वर्णन—

निभृतमरुन्मनोऽक्षदृढ़योगयुजः (मरुत् प्राणश्च मनः च अक्षाणि इन्द्रियाणि च निभृतानि संयमितानि यैः ते संयतवायुहृदयेन्द्रियाः, दृढ़योगं युञ्जन्तीति दृढ़योगयुजश्च ते तथाभूताः अविचलितपरानुरक्ताः) मुनयः यत् (तत्त्वं) हृदि उपासते (अनुभवन्ति), तत् अरयः (कृष्णविद्वेषिणः) अपि [तव] स्मरणात् (वैरभावेन चिन्तनात्) ययुः (निर्विशेषतां प्रापुः); उरगेन्द्रभोगभुजदण्डविषक्तधियः (उरग्रेन्द्रस्य सर्पस्य भोगः देहः तत्तुल्ययोर्भुजदण्डयोः विषक्ता धीः यासां ताः) स्त्रियः, वयम् अपि समाः (गोपीकायव्यूहेन तत्तुल्यरूपाः) समदृशः (तद्भावानुगत-भावमयाः) ते (तव) अङ्घ्रिसरोजसुधाः (पादपद्मं सुष्ठु धारयन्त्यः सत्यः) [तत् त्वद्रूपं तत्त्वं ययिमेति शेषः]।

श्लोक-भावानुवाद—मुनि लोगोंने प्राणायामके द्वारा निश्वासको जीतकर मन और इन्द्रियोंको दृढ़रूपसे योगयुक्त करके अविचलित अनुरक्त हृदयमें जिस ब्रह्मकी उपासना की थी, भगवान्‌के सभी शत्रुओंने भी उनके निरन्तर ध्यानके बलसे उस ब्रह्ममें प्रवेश किया था। श्रीकृष्णके सर्प-शरीरतुल्य भुजाओंके सौन्दर्यमें आसक्त जिन गोपियोंकी बुद्धि है, हमने भी वैसी गोपीदेह प्राप्त करके उन गोपियोंके भावोंके अनुगत होकर श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी सुष्ठु रूपसे [हृदयपर] धारण किया है। [श्रीकृष्णके ऐसे रूपकी हम शरणागति ग्रहण करती हैं।]॥ **223**॥

अमृतानुकणिका—"जिन श्रुतियोंने गोपी बनकर श्रीकृष्णको प्राप्त किया, वे स्वयं ही श्रीमद्भागवतमें श्रुति-स्तवमें अपने साधनका वर्णन कर रही हैं। श्रुतिमन्त्र श्रीकृष्णके मुखारविन्द या उनकी श्वाससे निकले हैं; वे चेतन हैं, आत्मभूत हैं अर्थात् कृष्णने ही उनके रूपमें अवतार लिया है। इन श्रुतिचरी गोपियोंका प्रमाण श्रीबृहद्वामनपुराणके श्रुति-स्तवमें उल्लिखित है—उन्होंने श्रीकृष्णके कोटि कन्दर्पके लावण्यको विजय करनेवाले रूपके दर्शनसे कामिनी भावमें विभावित होकर गोपीभावसे कृष्णको पानेकी तीव्र अभिलाषा की थी।

'निभृतमरुन्मनो'—मुनिजन और श्रीकृष्णके शत्रुओंने श्रीकृष्णके निर्विशेष भावको प्राप्त किया। उन्हीं श्रीकृष्णको गोपियोंने उरगेन्द्रके अर्थात् श्रेष्ठ सर्पके तुल्य भुजाओंके सौन्दर्यके द्वारा अत्यधिक रूपमें आकर्षित होकर प्राप्त किया। सर्पका सुचिक्कण, सुशीतल और सुगोल होता है। गोपियाँ कहती हैं—'कृष्णकी भुजाएँ भी ऐसी ही सुगोल, सुशीतल और कोमल हैं। इन सर्पाकार भुजाओंका आलिङ्गन-पाश कामनाओंका प्रवाह उत्पन्न करता है। जिस प्रकार सर्पका विष अति तीव्र होता है, इन भुजाओंके सौन्दर्यने तीव्र विषके समान कार्य

करके हमारी विचार-विवेक बुद्धिको कुण्ठित कर दिया है।' रासके समय नृत्य करते हुए श्रीकृष्ण ये हस्तकमल गोपियोंके गलेमें डाल देते हैं, अपने पीताम्बरसे गोपियोंके मुखारविन्दपर नृत्य-परिश्रमके द्वारा आये स्वेद-कणोंको पोंछ देते हैं। गोपियाँ दिवा-रात्रि इसी मिलनकी चिन्ता करती हैं। श्रीकृष्णके हस्त एवं चरणकमल ब्रह्मादिके ध्यानमें भी नहीं आते और गोपियाँ इन्हें साक्षात् रूपमें प्राप्त करती हैं। वे श्रीकृष्णको परब्रह्म नहीं, अपने प्राणप्रियतमके रूपमें जानती हैं और उनके पद्मके समान सुगन्धित हाथोंको अपने शीशपर धारण करना चाहती हैं। भागवत (10/31/5)—'शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम्' अर्थात् अपने कमनीय और कामप्रद करकमल हमारे सिरपर अर्पण करो। गोपियाँ इन सर्पाकार भुजाओंके प्रति अत्यन्त आसक्त हैं और उनकी सेवा करती हैं।

'वयमपि ते समाः समदृशः'—इन्हीं गोपियोंके भावोंके अनुगत होकर हम वेदमन्त्रकी ऋचाओंने गोपीदेह प्राप्तकर गोपीभावसे आपके 'अंघ्रिसरोजसुधाः' अर्थात् आपके चरणकमलोंकी सुधाका पान किया है।

ये श्रुतिचरी गोपियाँ साधन-सिद्धा हैं। इन्होंने एकान्त निर्जन स्थानमें गोपाल-मन्त्र और कामगायत्रीके द्वारा कठोर तपस्या की। तब श्रीकृष्णने आकाशवाणीके द्वारा पूछा,—'तुम लोग क्या चाहती हो? वर माँगो। मैं तुम्हारा अभीष्ट पूर्ण करूँगा।' श्रुतियोंने कहा—'हे कृष्ण! कोटि-कोटि कामदेवोंके लावण्यपर विजय प्राप्त करनेवाले आपके सौन्दर्यके कारण हमारा मन कामिनी भावमें विभावित होकर निश्चय ही कामसे मोहित हो रहा है। गोकुलवासिनी गोपरमणियाँ जिस प्रकार आपको 'रमण' समझकर आपका भजन करती हैं, हम भी आपको उसी भावसे पानेके लिए तीव्र वासनाका पोषण कर रही हैं।' तब श्रीकृष्णने कहा-'हे श्रुतियों! तुम्हारा मनोरथ उत्तम है। यद्यपि तुम्हारी वासना अत्यन्त दुर्लभ और दुर्घट है, तथापि मेरे अनुमोदनसे यह भली-भाँति फलीभूत होगी। अब तुम लोग गोपियोंका भाव ग्रहण करो और उस भावसे भजन करो।' इन श्रुतिचरी गोपियोंने इसी प्रकार गोपियोंका आश्रय ग्रहण करके भजन किया, तब उनकी स्वरूप-सिद्धि हुई। इसके बाद वस्तु-सिद्धि होनेपर उनको प्रकट व्रजमें जन्म प्राप्त हुआ, जहाँ उन्हें नित्य-सिद्ध गोपियोंका सङ्ग मिला और उनके आनुगत्यमें उन्हें श्रीकृष्ण-सेवाकी शिक्षा मिली तथा वे गोपी बनकर सेवा करने लगीं। श्रीकृष्णकी प्रेयसियोंमें नित्य-सिद्ध गोपियोंका नित्य-सिद्धत्व अष्टादशाक्षर मन्त्रादिमें प्रकाशित है। इस मन्त्रमें 'गोपीजनवल्लभ' पदसे नित्य-सिद्धा श्रीराधिका आदि गोपियोंके साथ एकत्र भावसे ही श्रीकृष्णकी आराधनाका अनादि कालसे विधान है और यही विधि प्रचलित है।"—श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी॥ 219-223॥

श्लोकमें वर्णित शब्दोंका अर्थ :—

'समदृशः'-शब्दे कहे 'सेइ भावे अनुगति'।
'समाः'-शब्दे कहे श्रुतिर गोपीदेह-प्राप्ति॥ 224॥

'अङ्घ्रिपद्मसुधा'य कहे 'कृष्णसङ्गानन्द'।
विधिमार्गे ना पाइये व्रजे कृष्णचन्द्र॥ 225॥

अनुवाद—उपरोक्त श्लोकमें 'समदृशः' शब्दका तात्पर्य गोपियोंके भावोंके आनुगत्य होकर। 'समाः' शब्द श्रुतियोंके द्वारा गोपी देहकी प्राप्तिको सूचित करता है। तथा 'अङ्घ्रि-पद्मसुधा'का तात्पर्य है—श्रीकृष्णके श्रीचरणकमलोंका अमृत अर्थात् श्रीकृष्णसङ्ग और श्रीकृष्णसेवाजनित आनन्द। विधिमार्गसे कभी भी व्रजमें व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णको नहीं पाया जा सकता॥ 224-225॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्लोकके चौथे पादमें 'समदृशः'-शब्दसे 'गोपीभावमें आनुगत्य' की व्याख्या की है और 'समाः'-शब्दसे श्रुतियोंकी 'गोपीदेह-प्राप्ति' की व्याख्या है। 'अङ्घ्रिसरोजसुधा'-शब्दसे 'कृष्णसङ्ग-आनन्द' की व्याख्या है॥ 224-225॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 9/133-134 संख्या देखें॥ 223-225॥

रागात्मिका भक्तिकी महिमा :—

श्रीमद्भागवत (10/9/21)—

नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः।
ज्ञानिनाञ्चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह॥ 226॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 226॥

अमृतप्रवाह भाष्य—यशोदानन्दन भगवान् श्रीकृष्ण भक्तिमान् देहधारियोंके लिये जिस प्रकार सुलभ हैं, आत्मभूत ज्ञानियोंके लिये वैसे नहीं हैं॥ 226॥

अनुभाष्य—यशोदाके श्रीकृष्णको वशीभूत करनेवाले गुणोंको देखकर श्रीशुकदेव परीक्षितके निकट व्रजललनाओंके अप्राकृत सहज रागात्मिका भक्तिके माहात्म्यका वर्णन कर रहे हैं,—

अयं (गोपिकासुतः यशोदानन्दनः) भगवान् इह यथा भक्तिमतां (रागमार्गेण भजनकारिणां) सुखापः (अनायासलभ्यः), देहिनां (देहाभिमानिनाम्) आत्मभूतानां (तपोव्रतपराणां जड़विरागयुक्तात्मारामाणां) ज्ञानिनां च तथा न [सुखापः इति शेषः]।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 226॥

अनर्थोंसे मुक्त भक्तोंकी रागानुगा-भजन-प्रणाली :—

अतएव गोपीभाव करि' अङ्गीकार।
रात्रि-दिन चिन्ते राधाकृष्णेर विहार॥ 227॥
सिद्धदेहे चिन्ति' करे ताँहाञि सेवन।
सखीभावे पाय राधाकृष्णेर चरण॥ 228॥

अनुवाद—नित्यसिद्ध गोपियोंके सेवाभावको अङ्गीकार करके रात-दिन श्रीराधा-कृष्णकी लीलाओंका चिन्तन करे। इस प्रकार चिन्तनसे समस्त अनर्थ दूर हो जानेपर सिद्धदेहके द्वारा श्रीराधाकृष्ण-युगलकी मानसी सेवा करे। इस सखीभावसे श्रीराधा-कृष्णकी गोपी देहसे सेवा प्राप्त होती है॥ 227-228॥

अनुभाष्य— *'सिद्धदेह'*—वर्तमान जड़देह और मानस सूक्ष्मदेहसे अलग चिन्मय श्रीराधाकृष्ण-सेवोपयोगी देह।

जीवको जड़-कर्मोंके फलसे जड़देह प्राप्त होती है और कालके द्वारा वह देह परिवर्तित होकर स्थूल-भोगवासनासे दूसरी जड़देहकी प्राप्ति होती है। और जीव सूक्ष्म-जड़भोग-वासनासे मानस-लिङ्गदेह ग्रहण करके मनके द्वारा जड़विषय भोग करके पुनः वैसा परिवर्तित सूक्ष्म शरीर प्राप्त करता है।

परन्तु शुद्ध-जीवात्मा नश्वर स्थूल-सूक्ष्म,—दोनों प्रकारकी देहोंको ग्रहण करनेके बदले चिन्मय गोलोकमें अथवा वैकुण्ठमें नित्यकालके लिये दोनों चिन्मय देह प्राप्त करता है। तब उसके द्वारा वह श्रीकृष्णको सुखी करनेके उद्देश्यसे श्रीराधाकृष्णकी अप्राकृत सेवा करता है। जड़ अथवा सूक्ष्म देह, जड़से अतीत अथवा अपने भोगोंसे अतीत वस्तुओंकी चिन्ता करनेमें सक्षम नहीं हैं। इसलिये त्रिगुणातीत भक्त श्रीकृष्णके अप्राकृत गुणोंके प्रति आकृष्ट होकर उसके उपयोगी सिद्धदेहकी अप्राकृत इन्द्रियोंकी सहायतासे अप्राकृत-वस्तुकी चिन्ता करके अप्राकृत-सेवा करते-करते अप्राकृत सखीभावके आनुगत्यमें अप्राकृत श्रीराधा-कृष्णके चरणोंको प्राप्त करता है। मध्यलीला 22/152-156, 160 संख्या देखें॥ 228॥

गोपियोंके आनुगत्य बिना श्रीकृष्णकी प्राप्ति असम्भव :—

गोपी-आनुगत्य बिना ऐश्वर्यज्ञाने।
भजिलेह नाहि पाय व्रजेन्द्रनन्दने॥ 229॥

अनुवाद—गोपियोंके आनुगत्यके बिना ऐश्वर्यज्ञानसे युक्त होकर भजन करनेपर भी श्रीराधाकृष्णकी प्रेममयी सेवा प्राप्त नहीं हो सकती॥ 229॥

अनुभाष्य—ऐश्वर्य बुद्धिसे विधिमार्गमें व्रजेन्द्रनन्दनका भजन नहीं होता। माधुर्यके आकर्षणसे गोपियोंके आनुगत्यमें भजन करनेसे ही श्रीकृष्णकी प्राप्ति होती है। आदिलीला 4/176 और मध्यलीला 9/130-135, 137 संख्या देखें॥ 229॥

गोपियोंके आनुगत्यके बिना लक्ष्मीकी भी
रास विलासकी प्राप्तिमें अयोग्यता :—

ताहाते दृष्टान्त—लक्ष्मी करिल भजन।
तथापि ना पाइल व्रजे व्रजेन्द्रनन्दन॥ "230॥

अनुवाद—इसका एक उदाहरण लक्ष्मीदेवी हैं,—गोपियोंके आनुगत्यके बिना कठोर तपस्या और उपासनाके द्वारा भी वे व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी गोपियों जैसी प्रेममयी सेवा प्राप्त नहीं कर सकीं॥"230॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 9/111-155, 14/112-123 संख्या देखें॥230॥

श्रीमद्भागवत (10/47/60)—

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः।
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ-
लब्धशिषां य उदगाद्व्रजसुन्दरीणाम्॥231॥

अनुवाद—श्रीवृन्दावनमें रासोत्सवमें श्रीकृष्णकी भुजाओंके द्वारा आलिङ्गित-कण्ठवाली व्रजसुन्दरियोंके प्रति जो कृपा उदित हुई थी, वह श्रीकृष्णके वक्षःस्थलपर स्थित लक्ष्मी आदि परव्योमकी अत्यन्त अनुगत शक्तियोंको भी प्राप्त नहीं हुई, स्वर्गकी रमणियाँ जिनकी देहसे कमलकी सुगन्ध आती है, उनको भी उस प्रकारकी कृपाकी प्राप्ति नहीं हुई, तब अन्य स्त्रियोंके विषयमें तो क्या कहूँ?॥231॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 8/80 संख्या देखें॥231॥

महाप्रभु और श्रीरायका प्रेम-क्रन्दन :—

एत शुनि' प्रभु ताँरे कैल आलिङ्गन।
दुइ जने गलागलि करेन क्रन्दन॥232॥

दोनोंका रात्रिमें एक साथ वास और दूसरे दिन प्रातः स्वकार्यके लिये गमन :—

एइमत प्रेमावेशे रात्रि गोङाइला।
प्रातःकाले निज-निज-कार्ये दुँहे गेला॥233॥

श्रीरायकी दीनता और महाप्रभुके सङ्गकी प्रार्थना :—

विदाय-समये प्रभुर चरणे धरिया।
रामानन्द राय कहे विनति करिया॥234॥

"मोरे कृपा करिते तोमार इँहा आगमन।
दिन दश रहि' शोध मोर दुष्ट मन॥235॥

तोमा बिना अन्य नाहि जीव उद्धारिते।
तोमा बिना अन्य नाहि कृष्णप्रेम दिते॥"236॥

अनुवाद—इस प्रकार श्रीराय रामानन्दके द्वारा कथित अपूर्व रससिद्धान्तको सुनकर महाप्रभु बड़े आनन्दित हुए और उनका आलिङ्गन किया। दोनों ही एक दूसरेके गले लगकर रोदन करने लगे। इसी प्रकार प्रेमाविष्ट होकर वार्त्तालाप करते-करते सम्पूर्ण रात्रि बीत गयी। प्रातःकाल होते ही दोनों अपने कार्योंके लिये चले गये। विदायीके समय श्रीराय रामानन्द महाप्रभुके श्रीचरणोंको पकड़कर विनती करते हुए कहने लगे,—"हे प्रभो! यहाँ आपका आगमन मुझपर कृपा करनेके लिये ही हुआ है। अतः दस दिन और रहकर मेरे कलुषित मनको शुद्ध कीजिये। आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी इस जीवका उद्धार नहीं कर सकता और न ही कृष्णप्रेम प्रदान कर सकता है॥"232-236॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीरायकी स्तुति और उनकी वश्यताको स्वीकार करना :—

प्रभु कहे,—"आइलाङ शुनि' तोमार गुण।
कृष्णकथा शुनि, शुद्ध कराइते मन॥237॥

यैछे शुनिलुँ, तैछे देखिलुँ तोमार महिमा।
राधाकृष्ण-प्रेमरस-ज्ञानेर तुमि सीमा॥238॥

दश दिनेर का-कथा, यावत् आमि जीव'।
तावत् तोमार सङ्ग छाड़िते नारिब॥239॥

नीलाचलमें महाप्रभुको श्रीरायके सङ्गकी इच्छा :—

नीलाचले तुमि-आमि थाकिब एकसङ्गे।
सुखे गोङाइब काल कृष्णकथा-रङ्गे॥"240॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"मैं तो श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके मुखसे आपके गुणोंको सुनकर आपसे कृष्णकथा सुनकर अपने मनको शुद्ध करनेके लिये आया था। मैंने जैसा सुना था, आपकी महिमाको वैसा ही देखा। श्रीराधातत्त्व, श्रीकृष्णतत्त्व, श्रीप्रेमतत्त्व एवं

श्रीरसतत्त्वके ज्ञानकी आप ही अन्तिम सीमा हैं। दस दिनोंकी तो बात ही क्या? जीवन भर मैं आपका साथ छोड़ नहीं सकता। मैं और आप एक साथ ही जगन्नाथ पुरीमें रहेंगे और सुखपूर्वक कृष्णकथाके आनन्दमें अपना समय व्यतीत करेंगे॥"237-240॥

अनुभाष्य—राधाकृष्ण-प्रेमरसके स्वरूपको तुमने ही जाना है। उस ज्ञानमें तुम पारङ्गत सिद्ध हो, इसलिये तुम ही शेष (अन्तिम) सीमा हो॥238॥

निज-निज कार्य समाप्तकर सन्ध्यामें दोनोंका मिलन :—

एत बलि' दुँहे निज-निज कार्ये गेला।
सन्ध्याकाले राय पुनः आसिया मिलिला॥241॥

दोनोंकी इष्टगोष्ठी :—

अन्योन्ये मिलि' दुँहे निभृते बसिया।
प्रश्नोत्तर-गोष्ठी कहे आनन्दित हञा॥242॥

अनुवाद—इतना कहकर दोनों ही अपने-अपने कार्यके लिये चले गये। सन्ध्या होनेपर श्रीरामानन्द राय पुनः महाप्रभुसे आकर मिले। एक दूसरेसे मिलकर दोनों एकान्त स्थानपर बैठकर अति आनन्दके साथ परस्पर प्रश्नोत्तर गोष्ठीमें संलग्न हो गये॥241-242॥

अनुभाष्य—*'गोष्ठी'*—संलाप (बातचीत)॥242॥

महाप्रभु-रामानन्दका वार्त्तालाप;
महाप्रभुके प्रश्न, श्रीरायके उत्तर :—

प्रभु पुछे, रामानन्द करेन उत्तर।
एइ मत सेइ रात्रे कथा परस्पर॥243॥

अनुवाद—महाप्रभु प्रश्न करते और श्रीरामानन्द राय उसका उत्तर देते। इस प्रकार उन्होंने वह सारी रात परस्पर प्रश्नोत्तरमें ही बिता दी॥243॥

(1) कृष्णभक्ति ही परा विद्या :—

प्रभु कहे,—"कोन् विद्या विद्या-मध्ये सार?"
राय कहे,—"कृष्णभक्ति-बिना विद्या नाहि आर॥"244॥

अनुवाद—महाप्रभुने पूछा,—"कौन-सी विद्या समस्त विद्याओंका सार है?" श्रीरामानन्द रायने उत्तर दिया,—"श्रीकृष्णभक्ति ही सभी विद्याओंका सार है, इसके अतिरिक्त कोई और विद्या है ही नहीं॥"244॥

अनुभाष्य—विद्याकी श्रेष्ठता-विषयक प्रश्नका श्रीरायका उत्तर यह है कि कृष्णभक्ति-विद्या ही सर्वोत्तम है। जड़भोग-जननी विद्या और जड़से अतीत ब्रह्मविद्याकी अपेक्षा उन्नत विष्णुभक्ति-विद्यासे भी उन्नतस्तरकी कृष्णभक्ति-विद्या है। (भाः 4/29/49) "तत् कर्म हरितोषणं यत् सा विद्या तन्मतिर्यया"

जिसके द्वारा श्रीहरि सन्तुष्ट होते हैं, वही जीवका एकमात्र कर्त्तव्य कर्म है और जिसके द्वारा श्रीहरिमें मति होती है, वही विद्या है।

(भाः 7/5/23-24)—"श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं साख्यमात्मनिवेदनम्॥ इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा॥ क्रियेत भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥"

श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन—ऐसी नौ लक्षणोंवाली भक्तिको जो विष्णुमें साक्षात् अर्पण करते हैं, वे ही शास्त्रोंके उत्तम पण्डित हैं।

(भाः 11/19/40)—'विद्यात्मनि भिदोबाधः"

जीवमें अविद्याके द्वारा किया गया जो भेद है अर्थात् अनात्मत्व है, उसे दूर करना ही 'विद्या' है॥244॥

(2) कृष्णदास्य ही सर्वश्रेष्ठ यश या प्रतिष्ठा :—

'कीर्त्तिगण-मध्ये जीवेर कोन् बड़ कीर्त्ति?'
'कृष्णभक्ति बलिया याँहार हय ख्याति॥'245॥

अनुवाद—महाप्रभुने पूछा,—"समस्त कीर्तियोंमेंसे जीवकी प्रधान कीर्ति क्या है?" श्रीरामानन्द रायने कहा,—"श्रीकृष्णका भक्त कहलाना ही सबसे बड़ी कीर्ति है॥"245॥

अनुभाष्य—'कृष्णभक्त' होनेकी ख्याति ही सबसे अधिक कीर्त्ति (यश) है। जड़विषयोंके प्रति लोभके

कारण ही जीव जड़ीय-वैभवका आदर करते हैं। सांसारिक वैभवके द्वारा प्राप्त अनित्य यश अथवा जड़भोग-त्यागियोंके मध्यमें 'ब्रह्मज्ञ'के रूपमें प्राप्त ख्यातिकी अपेक्षा 'विष्णुभक्त'के रूपमें ख्यातिकी श्रेष्ठता है; उसीके उन्नत स्तरमें 'कृष्णभक्त'के रूपमें ख्याति है। (गरुड़ पुराणमें इन्द्रकी उक्ति)—

"कलौ भागवतं नाम दुर्लभं नैव लभ्यते।
ब्रह्मरुद्रपदोत्कृष्टं गुरुणा कथितं मम॥"

मेरे श्रीगुरुदेवने कहा है कि ब्रह्मा-रुद्रादि पदकी अपेक्षा भी उत्कृष्ट जो भागवत (शुद्धभक्त)-नामक पद है, वह कलियुगमें बहुत ही दुर्लभ है।

(इतिहास-समुच्चयमें श्रीनारद-पुण्डरीक-संवादमें)—

"जन्मान्तर-सहस्रेषु यस्य स्याद् बुद्धिरीदृशी।
'दासोऽहं वासुदेवस्य' सर्वलोकान् समुद्धरेत्॥"

'मैं श्रीवासुदेवका दास हूँ'—हजारों-हजारों जन्मोंके बाद जिनकी इस प्रकार बुद्धि हो गयी है, वे समस्त विश्वका उद्धार कर सकते हैं।

(आदि-पुराणके श्रीकृष्ण-अर्जुन संवादमें)—

"भक्तानामनुगच्छन्ति मुक्तयः श्रुतिभिः सह॥"

श्रुतियोंके साथ सालोक्यादि मुक्तियाँ भक्तोंका अनुगमन करती हैं।

(ब्रहनारदीयमें)—

"अद्यापि च मुनिश्रेष्ठा ब्रह्माद्या अपि देवताः।
प्रभावं न विजानन्ति विष्णुभक्तिरतात्मनाम्॥"

विष्णुभक्तिमें रत रहनेवाले भक्तोंके प्रभावको आज तक भी श्रेष्ठ मुनिजन और ब्रह्मादि देवता पूर्णरूपसे नहीं जानते।

(गरुड़ पुराणमें)—

ब्राह्मणानां सहस्रेभ्यः सत्रयाजी विशिष्यते।
सत्रयाजि-सहस्रेभयः सर्ववेदान्तपारगः।
सर्ववेदान्तवित्कोट्या विष्णुभक्तो विशिष्यते।
वैष्णवानां सहस्रेभ्या एकान्तेको विशिष्यते।
एकान्तिनस्तु पुरुषा गच्छन्ति परमं पदम्॥"

हजारों ब्राह्मणोंसे एक सावित्र्य ब्राह्मण श्रेष्ठ है, हजार सावित्र्य ब्राह्मणोंकी अपेक्षा एक सर्ववेदान्तका ज्ञाता ब्राह्मण श्रेष्ठ है, करोड़ों-करोड़ों वेदान्तके ज्ञाता ब्राह्मणोंकी अपेक्षा एक विष्णुभक्त श्रेष्ठ है, सैंकड़ों वैष्णवोंसे ऐकान्तिक भक्त श्रेष्ठ है। ऐकान्तिक पुरुष ही परम पदको प्राप्त करते हैं।

(भाः 3/13/4)—

"श्रुतस्य पुंसां सुचिरश्रमस्य नन्वञ्जसा सुरिभिरीड़ितोऽर्थः।
तत्तद्गुणानुश्रवणं मुकुन्द-पादारविन्दं हृदयेषु येषाम्॥"

हे मुने! जिनके हृदयमें श्रीमुकुन्दके चरणारविन्द विराजमान हैं, उन भक्तजनोंके गुणोंको श्रवण करना ही मनुष्योंके बहुत दिनों तक किये हुए शास्त्राभ्यासके श्रमका मुख्य फल है, ऐसा विद्वानोंका मत है।

(नारायणव्यूह स्तवमें)—

"नाहं ब्रह्मापि भूयासं त्वद्भक्तिरहितो हरे।
त्वयि भक्तस्तु कीटोऽपि भूयासं जन्मजन्मसु॥"

हे कृष्ण! आपमें भक्तिसे रहित होकर मैं ब्रह्माका जन्म भी नहीं चाहता, अपितु जन्म-जन्मान्तरोंमें भी आपके प्रति भक्तियुक्त होकर मैं कीट जन्मकी ही इच्छा करता हूँ।

तथा भागवतके 3/25/38, 4/24/29, 4/31/22, 7/9/24, 10/14/30 आदि श्लोक देखें।

भक्तोंमें प्रह्लादकी ख्याति—जैसे (भाः 7/9/26 और 7/10/21) तथा स्कन्दपुराणमें श्रीरुद्रवाक्य—

"भक्त एव हि तत्त्वेन् कृष्णं जानाति न त्वहम्।
सर्वेषु हरिभक्तेषु प्रह्लादोऽतिमहत्तमः॥"

भक्त ही श्रीकृष्णको तत्त्व-सहित जानते हैं, मैं नहीं जानता। सभी हरिभक्तोंमें प्रह्लाद सर्वश्रेष्ठ हैं।

उनसे पाण्डवोंकी श्रेष्ठता—(भाः 7/10/48-50, 7/15/75-77)में वर्णित है;

भागवत (7/10/48)—

यूयं नृलोके बत भूरिभागा लोकं पुनाना मुनयोऽभियन्ति।
येषां गृहानावसतीति साक्षाद् गूढ़ं परं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम्॥

श्रीनारद राजा युधिष्ठिरको प्रह्लाद-चरित्र वर्णन करनेके बाद बोले,—"इस मनुष्यलोकमें तुम अति

भाग्यवान् हो, क्योंकि तुम्हारे घर मनुष्यरूपी साक्षात् परब्रह्म श्रीकृष्ण गूढ़रूपमें वास करते हैं, यह जानकर संसारको पवित्र कर देनेवाले मुनिगण सदा तुम्हारे घरमें आते-जाते रहते हैं।"

उनसे यादवोंकी श्रेष्ठता-(भाः 10/82/28,30);

भागवत (10/82/29)—

अहो भोजपते यूयं जन्मभाजो नृणामिह।
यत् पश्यथासकृत् कृष्णं दुर्दर्शमपि योगिनाम्॥

पाण्डवोंने कहा,—"हे भोजराज उग्रसेन! आप लोगोंका ही पृथ्वीपर मानवोंके मध्य जन्म सार्थक है, क्योंकि जिन भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन योगियोंके लिये भी दुर्लभ है, उनके आप निरन्तर दर्शन करते हैं।"

उनमेंसे उद्धवकी सर्वश्रेष्ठता-(भाः 3/4/31, 11/14/15, 11/16/29);

भागवत (11/14/15)—

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शङ्करः।
न च सङ्कर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्॥

श्रीकृष्णने उद्धवजीसे कहा,—"तुम मेरे जितने प्रियतम हो, ब्रह्मा, शङ्कर, सङ्कर्षण, लक्ष्मी, यहाँ तक कि मेरा अपना स्वरूप भी उतना प्रिय नहीं है।"

उनकी अपेक्षा व्रजदेवियोंका श्रेष्ठत्व-(भाः 10/47/58)—

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो
गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढ़भावाः।
वाञ्छन्ति यद्भवभियो मुनयो वयञ्च
किं ब्रह्मजन्मभिरनन्त-कथारसस्य॥

श्रीउद्धजीने कहा,—"समस्त जीवोंके आत्मस्वरूप श्रीकृष्णमें परमप्रेमवती इन गोपियोंका ही जन्म सार्थक है। मुक्तिकामी मुनिगण और हम भक्तगण भी उस प्रकारके भावकी प्रार्थना करते रहते हैं। इसलिये श्रीकृष्णकथा-रसिकोंके लिये ब्रह्मादि जन्मका भी क्या मूल्य है?"

तथा 'बृहद्वामन'में भृगु आदि ऋषियोंके प्रति ब्रह्माके वाक्य—

"षष्टिवर्ष-सहस्राणि मया तप्तं तपः पुरा।
नन्दगोपव्रजस्त्रीणां पादरेणूपलब्धये॥
तथापि न मया प्राप्तास्तासां वै पादरेणवः।
नाहं शिवश्च शेषश्च श्रीश्च ताभिः समाः क्वचित्॥"

श्रीनन्दगोपके व्रजमें रहनेवाली गोपरमणियोंके श्रीचरणोंकी रज प्राप्त करनेके लिये पूर्वकालमें मैंने साठ हजार वर्षोंकी कठोर तपस्या की थी, तो भी मैं उनकी चरणरेणुको प्राप्त नहीं कर सका। मैं (ब्रह्मा) शङ्कर, शेष और लक्ष्मीजी किसी प्रकारसे उन व्रजगोपियोंके समान नहीं हैं।

आदि पुराणमें श्रीभगवद्-वाक्य—

"न तथा मे प्रियतमो ब्रह्मा रुद्रश्च पार्थिव।
न च लक्ष्मीर्न चात्मा च यथा गोपीजनो मम॥"

हे पार्थ! जिस प्रकार व्रजकी गोपियाँ मेरी प्रियतमा हैं, उस प्रकार ब्रह्मा, शङ्कर, लक्ष्मी और यहाँ तक कि मेरी आत्मा भी उतनी प्रिय नहीं है।

गोपियोंमें भी श्रीराधिकाका ही सर्वश्रेष्ठत्व है। श्रीराधाके सबसे प्रिय सेवकवर, श्रीगौराङ्गके अत्यन्त अन्तरङ्ग सेवक श्रील रूपगोस्वामी प्रभुके जो एकान्त अनुगत हैं, वे ही रूपानुगके नामसे प्रसिद्ध हैं। उनके ऐश्वर्यके सम्बन्धमें श्रीचैतन्यचन्द्रामृतमें—

"आस्तां वैराग्यकोटिर्भवतु शम-दम-क्षान्ति-मैत्रादिकोटि-स्तत्त्वानुध्यान कोटिर्भवतु भवतु वा वैष्णवी भक्तिकोटिः। कोट्यांशोऽप्यस्य न स्यात्तदपि गुणगणो यः स्वतःसिद्ध आस्ते श्रीमच्चैतन्यचन्द्र-प्रिय-चरण-नख-ज्योतिरामोद-भाजाम्॥"

कोटि वैराग्य रहे, कोटि शम, दम, क्षान्ति, मैत्रादि असंख्य गुण ही रहें, कोटि ब्रह्मध्यान हो या कोटि विष्णुभक्ति विद्यमान रहे, किन्तु श्रीचैतन्यचन्द्रके प्रिय भक्तोंकी चरण-नख ज्योतिके द्वारा आनन्द प्राप्त दासोंकी जो स्वतःसिद्ध गुणावली है, उनके कोटि भागका एक अंश भी ये सब नहीं हैं॥ **245**॥

(3) राधागोविन्दमें प्रेमभक्ति ही परम धन :—

'सम्पत्तिर मध्ये जीवेर कोन् सम्पत्ति गणि?'
'राधाकृष्णे प्रेम याँर, सेइ बड़ धनी॥'246॥

अनुवाद—महाप्रभुने पूछा,—"सम्पत्तियोंमें जीवकी सबसे बड़ी सम्पत्ति क्या है?" श्रीरामानन्द रायने उत्तर दिया,—"जिनके पास श्रीराधाकृष्णप्रेम रूप सम्पत्ति है, वही सबसे बड़ा धनी है॥"**246**॥

अनुभाष्य—जड़ीय भोगोंमें लिप्त होकर जीव अधिक भोगवासनाओंकी पूर्ति करनेवाले धनको ही प्राप्य वस्तुओंमें सबसे श्रेष्ठ समझते हैं। किन्तु सम्पत्तिके तारतम्यके विचारमें सूक्ष्म अप्राकृत-बुद्धिके अनुसार श्रीराधाकृष्णप्रेमके समान सम्पत्ति और कुछ भी नहीं है।

(भाः 10/39/2)—

"किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने।
तथापि तत्परा राजन्न हि वाञ्छन्ति किञ्चन॥"

"समस्त सम्पत्तिके मूलस्वरूप भगवान्‌के प्रसन्न होनेपर और क्या प्राप्त करना बाकी रह जाता है? तथापि हे राजन्! भक्त लोग श्रीकृष्णप्रेम-धनके अतिरिक्त उनसे और कुछ भी नहीं चाहते॥"**246**॥

(4) कृष्णभक्तका विरह ही तीव्रतम दुःख :—

'दुःख-मध्ये कोन् दुःख हय गुरुतर?'
'कृष्णभक्त-विरह बिना दुःख नाहि देखि पर॥'247॥

अनुवाद—महाप्रभुने पूछा,—"सब दुःखोंमेंसे कौनसा दुःख सबसे भारी है?" श्रीरामानन्द रायने उत्तर दिया,—"श्रीकृष्णभक्तके विरहसे बढ़कर और कोई दुःख मैं नहीं देखता हूँ॥"**247**॥

अनुभाष्य—(भाः 3/30/6)—

"मामनाराध्य दुःखार्त्तः कुटुम्बासक्तमानसाः।
सत्सङ्ग-रहितो मर्त्त्यो वृद्धसेवा-परिच्युतः॥"

"मेरी आराधना न करके कुटुम्बमें आसक्त चित्तवाले जीव साधुसङ्गरहित और पूर्व साधुसेवासे भ्रष्ट होकर दुःखों और कष्टोंमें पड़ जाते हैं।" (यह श्लोक उद्धृत संख्याके अनुसार मूलग्रन्थमें दिखायी नहीं देता)

(बृः भाः 1/5/44)—

'स्वजीवनाधिकं प्रार्थ्यं श्रीविष्णुजनसङ्गतः।
विच्छेदेन क्षणं चात्र न सुखांशं लभामहे॥"

महाराज युधिष्ठिर श्रीनारदसे बोले,—"वास्तवमें भगवान् श्रीविष्णुके भक्तोंका सङ्ग हमें अपने जीवनसे भी अधिक प्रार्थनीय है, परन्तु अब उन्हीं भक्तोंके विच्छेदसे हम इस संसारमें एक क्षणके लिये तनिक भी सुख प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं॥"247॥

(5) कृष्णप्रेमी ही सर्वश्रेष्ठ मुक्त :—

'मुक्त-मध्ये कोन् जीव मुक्त करि' मानि?'
'कृष्णप्रेम याँर, सेइ मुक्त-शिरोमणि॥'248॥

अनुवाद—महाप्रभुने पूछा,—"मुक्तगणोंमेंसे किस जीवको मुक्त मानना चाहिये?" श्रीरामानन्द रायने उत्तर दिया,—"जिनमें श्रीकृष्णप्रेम है, वे ही मुक्त-शिरोमणि हैं॥"**248**॥

अनुभाष्य—(भाः6/14/4)—

"मुक्तानामपि सिद्धानां नारायण परायणः।
सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने॥"

"हे महामुने! करोड़ों मुक्त और सिद्ध पुरुषोंमें भी प्रशान्तात्मा नारायण-परायण भक्त अत्यन्त दुर्लभ हैं॥"**248**॥

(6) कृष्णलीला-गान ही शुद्ध-जीवात्माका सहज धर्म :—

'गान-मध्ये कोन् गान—जीवेर निज धर्म?'
'राधाकृष्णेर प्रेमकेलि—येइ गीतेर मर्म॥'249॥

अनुवाद—महाप्रभुने पूछा,—"समस्त गानोंमें कौन-सा गान जीवका निज (स्वरूप) धर्म है?" श्रीरामानन्द रायने उत्तर दिया,—"श्रीराधाकृष्णकी प्रेमकेलि लीलाओंका गान करना ही समस्त गीतोंका सार है॥"**249**॥

अनुभाष्य—(भाः 10/33/36)—

"अनुग्रहाय भक्तानां मानुषं देहमाश्रितः।
भजते तादृशीः क्रीड़ा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्।"

"भगवान् श्रीकृष्णने भक्तोंके प्रति अनुग्रह करनेके लिये जो गोलोककी रासलीला प्रपञ्चमें प्रकट की है, उसे श्रवण करके मनुष्य देहधारी प्राणीमात्र ही भगवत्-सेवामें तत्पर होंगे॥"249॥

(7) कृष्णभक्तका सङ्ग ही जीवका एकमात्र श्रेय :—

'श्रेयो-मध्ये कोन् श्रेयः जीवेर हय सार?'
कृष्णभक्त-सङ्ग बिना श्रेयः नाहि आर॥'250॥

अनुवाद—महाप्रभुने पूछा,—"श्रेयोंमेंसे कौनसा श्रेय जीवोंके लिये सार है?" श्रीरामानन्द रायने उत्तर दिया,—"श्रीकृष्णभक्त-सङ्गके समान और कोई मङ्गल नहीं है॥"250॥

अनुभाष्य—(भाः 11/2/30)—

"अत अत्यान्तिकं क्षेमं पृच्छामो भवतोऽनघाः।
संसारेऽस्मिन् क्षणार्द्धोऽपि सत्सङ्गः सेवधिर्नृणाम्॥"

"हे महापुरुषों! आप लोगोंके दुर्लभ दर्शन प्राप्त करके मैं अपने परम कल्याणके विषयमें जाननेकी इच्छा करता हूँ। इस संसारमें यदि आधे क्षणके लिये भी शुद्धभक्तका सङ्ग प्राप्त हो जाय, तो वह जीवोंको परमानन्द प्रदान करनेवाला होता है॥"**250**॥

(8) कृष्ण ही एकमात्र नित्य स्मरणीय :—

'काँहार स्मरण जीव करिबे अनुक्षण?'
'कृष्ण-नाम-गुण-लीला—प्रधान स्मरण॥'251॥

अनुवाद—महाप्रभुने पूछा,—"जीवोंको प्रतिक्षण किसका स्मरण करना चाहिये?" श्रीरामानन्द रायने उत्तर दिया,—"श्रीकृष्णके नाम, रूप, गुण और लीलाओंका स्मरण करना ही प्रधान स्मरण है॥"**251**॥

अनुभाष्य—(भाः 2/2/36)—

"तस्मात् सर्वात्मना राजन् हरिः सर्वत्र सर्वदा।
श्रोतव्यः कीर्त्तितव्यश्च स्मर्त्तव्यो भगवन्नृणाम्॥"

"इसलिये हे राजन्! मनुष्यमात्रके लिये सर्वात्माके द्वारा सर्वत्र और सर्वदा उन श्रीहरिके नाम-गुण-लीलादि श्रवणीय, कीर्तनीय और स्मरणीय हैं॥"**251**॥

(9) राधाकृष्ण-चरणकमल ही एकमात्र ध्येय :—

'ध्येय-मध्ये जीवेर कर्त्तव्य कोन् ध्यान?'
'राधाकृष्णपदाम्बुज-ध्यान—प्रधान॥'252॥

अनुवाद—महाप्रभुने पूछा,—"सब प्रकारके ध्यानोंमेंसे किसका ध्यान करना जीवोंका कर्त्तव्य है?" श्रीरामानन्द रायने उत्तर दिया,—"श्रीराधाकृष्णके चरणकमलोंका ध्यान करना ही प्रधान ध्यान है॥"**252**॥

अनुभाष्य—(भाः 1/2/14)—

"तस्मादेकेन मनसा भगवान् सात्वतां पतिः।
श्रोतव्यः कीर्त्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा॥"

"इसलिये स्थिर चित्तसे भक्तोंके एकमात्र पतिस्वरूप भगवान् श्रीहरिके नामादिका श्रवण, कीर्तन, ध्यान और पूजा करना कर्त्तव्य है।"**252**॥

(10) व्रज ही एकमात्र वासयोग्य स्थान :—

'सर्व त्यजि' जीवेर कर्त्तव्य काँहा वास?'
'श्रीवृन्दावन-भूमि—याँहा नित्य-लीलारास॥'253॥

अनुवाद—महाप्रभुने पूछा,—"सर्वस्व त्याग करके कहाँ वास करना जीवका कर्त्तव्य है?" श्रीरामानन्द रायने उत्तर दिया,—"जहाँ श्रीकृष्ण नित्य रास-लीला करते हैं, उस व्रजभूमि वृन्दावनमें ही वास करना चाहिये॥"**253**॥

अनुभाष्य—(भाः10/47/61)—

"आसामहो चरणरेणु जुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधिनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथश्च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥"

"श्रीउद्धवने कहा,—"दुस्त्यज स्वजनों और आर्यपथका त्याग करके जो श्रुतिओंकी भी निरन्तर अन्वेषणीय श्रीकृष्णपदवीकी सेवामें निरत हुई हैं, अहो, मैं उन गोपियोंकी चरणधूलि प्राप्त करनेके लिये वृन्दावनमें झाड़ी-लतादिमें किसी एक स्वरूपसे जन्म ग्रहण करनेकी इच्छा करता हूँ॥"**253**॥

(11) श्रीराधाकृष्ण-प्रेमलीला ही एकमात्र श्रवणयोग्य :—

'श्रवण-मध्ये जीवेर कोन् श्रेष्ठ श्रवण?'
'राधाकृष्ण-प्रेमकेलि कर्ण-रसायन॥'254॥

अनुवाद—महाप्रभुने पूछा,—"श्रवणमें जीवके लिये सर्वश्रेष्ठ श्रवण क्या है?" श्रीरामानन्द रायने उत्तर दिया,—"कर्ण-रसायनरूप श्रीराधाकृष्णकी प्रेमकेलिका श्रवण ही सर्वश्रेष्ठ है॥"**254**॥

अनुभाष्य—(भाः 10/30/39)—

"विक्रीड़ितं व्रजवधूभिरिदञ्च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुश्रुणुयादथ वर्णयेद् यः।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥"

"व्रजवधुओंके साथ श्रीकृष्णकी रासक्रीड़ा जो धीर व्यक्ति श्रद्धासहित निरन्तर श्रवण करनेके बाद निरन्तर उसका कीर्तन करता है, वह अति शीघ्र ही पराभक्ति प्राप्त करके हृदयके कामरोगको अविलम्ब दूर करनेमें समर्थ होता है॥"254॥

(12) हरेकृष्ण-नाम ही एकमात्र कीर्तनीय :—

'उपास्येर मध्ये कोन् उपास्य प्रधान?'
'श्रेष्ठ-उपास्य—युगल 'राधाकृष्ण' नाम॥'255॥

अनुवाद—महाप्रभुने पूछा,—"उपास्योंमेंसे कौन-सा उपास्य सर्वप्रधान है?" श्रीरामानन्द रायने उत्तर दिया,—"श्रीराधाकृष्णका युगल नाम ही सर्वश्रेष्ठ उपास्य है॥"255॥

अनुभाष्य—(भाः 6/3/22)—

"एतावानेर लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्म परः स्मृतः।
भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः॥"

"नामसङ्कीर्तनादिके द्वारा भगवान् श्रीवासुदेवका जो भक्तियोग है—यहीं तक ही इस जगत्में जीवोंका 'परमधर्म' कहा गया है॥"255॥

(13) मुक्तिकामी और भुक्तिकामीकी गति :—

'मुक्ति, भुक्ति वाञ्छे येइ, काँहा दुँहार गति?'
'स्थावरदेह, देवदेह यैछे अवस्थिति॥'256॥

अनुवाद—महाप्रभुने पूछा,—"जो मुक्ति और भुक्तिकी कामना करते हैं, उन दोनोंकी क्या गति होती है?" श्रीरामानन्द रायने उत्तर दिया,—"जो ब्रह्म-सायुज्य मुक्तिकी कामना करते हैं, उन्हें वृक्ष योनिकी प्राप्ति होती है। भुक्तिका लोभ करनेवालोंको देवदेहकी प्राप्ति होती है॥"256॥

अमृतप्रवाह भाष्य—"प्रभु कहे,—कोन् विद्या" से आरम्भ होकर "स्थावरदेह, देव-देह यैछे अवस्थिति" तक प्रत्येक पद्यकी प्रथम पंक्ति महाप्रभुका प्रश्न और द्वितीय पंक्ति श्रीरायका उत्तर है। चैतन्यचन्द्रोदय नाटकके सातवें अङ्कमें यह कथोपकथन है॥244–256॥

अनुभाष्य—मुक्तिवादी लोग जड़भोगोंका त्यागकर साधनकी चरम अवस्थामें चित्-क्रियाहीन अर्थात् सुप्तचेतन स्थावर (वृक्षादि) देहको प्राप्त करते हैं। और जड़भोगोंकी कामनावाले भुक्तिवादी लोग परलोकमें भोग करनेके उपयोगी देव देहको प्राप्त करते हैं।

"मुक्तयैः यः प्रस्तरत्वाय शास्त्रमुचे महामुनि। गौतमं तं विजानीथ यथा वित्थ तथैव सः।"

यही बौद्ध मतवादियोंके दर्शनका फल है।

पत्थरके समान दशाकी प्राप्तिरूप मुक्तिके उद्देश्यसे जिन महामुनिने (न्याय)-शास्त्रका प्रवर्त्तन किया है, उन गौतमको जिस रूपमें जानते हो, वे उसी रूपमें कहकर जाने जाते हैं।

(भाः11/10/23)—

"इष्ट्वेह देवता यज्ञैः स्वर्लोकं याति याज्ञिकः।
भुञ्जीत् देववत्तत्र भोगान् दिव्यान् निजार्जितान्॥"

याज्ञिक पुरुष इस लोकमें यज्ञके द्वारा देवताओंकी आराधना करके स्वर्ग प्राप्त करते हैं और वहाँ देवताओंके समान अपने पुण्योंसे अर्जित सब दिव्य-विषयोंको भोग करते हैं।

(भाः 4/29/29)—

"देवो मनुष्यस्तिर्यग्वा यथाकर्मगुणं भवः॥"

अज्ञानसे आवृत जीव कभी देवता, कभी मनुष्य या तिर्यक् जन्म अथवा कर्मानुसार जन्म ग्रहण करता है। और (गीः 9/20) देखें॥256॥

ज्ञानी और भक्तके साधनका वैशिष्ट्य :—

अरसज्ञ काक चुषे ज्ञान-निम्बफले।
रसज्ञ कोकिल खाय प्रेमाम्र-मुकुले॥257॥

अभागिया ज्ञानी आस्वादये शुष्क ज्ञान।
कृष्ण-प्रेमामृत पान करे भाग्यवान्॥ 258॥

अनुवाद—जिस प्रकार कौवे नीमके फल जैसी कड़वी वस्तुओंको ही खाया करते हैं, उसी प्रकार अरसज्ञ अर्थात् रसको न जाननेवाले ज्ञानरूपी नीमके फलको चूसते हैं। किन्तु आमके कोमल और मृदुल मुकुलोंका रसास्वादन करनेवाली कोयलके समान भक्तिरसज्ञ श्रीकृष्णप्रेमरूपी आमकी कलियोंका रसास्वादन करते हैं। दुर्भागे ज्ञानी केवल नीरस शुष्कज्ञानका आस्वादन करते हैं और भक्त श्रीकृष्ण-प्रेमामृतका पान किया करते हैं, इसलिये वे परम सौभाग्यशाली हैं॥ 257-258॥

अनुभाष्य— *'ज्ञान'*—नीमके फलके समान कड़वा, आस्वादनके अयोग्य, कर्कश-तर्कनिष्ठ कौवे जैसी अवस्थावाले जीवोंके खाने योग्य है। किन्तु प्रेमरूपी आमकी कलीका स्वाद—प्रिय और अत्यधिक मीठा है, वह—रसास्वादक कोयल तुल्य श्रीकृष्णभक्तोंके लिये ही आस्वादनीय है।

नीरस ज्ञान ही दुर्भागे ज्ञानियोंके भाग्यमें आस्वादनीय वस्तु है; और सरस श्रीकृष्णप्रेमामृत ही भाग्यवान् भक्तोंके पान करने योग्य वस्तु है॥ 257-258॥

श्रीकृष्णकथा-आलोचनामें ही दोनोंकी रात्रि व्यतीत :—

एइमत दुइजन कृष्णकथा-रसे।
नृत्य-गीत-रोदने हैल रात्रि-शेषे॥ 259॥

दोँहे निज-निज-कार्ये चलिला विहाने।
सन्ध्याकाले राय आसिं मिलिला आर दिने॥ 260॥

अनुवाद—इस प्रकार श्रीराय रामानन्द और महाप्रभु दोनों ही श्रीकृष्णकी कथाओंका आस्वादन करते रहे, प्रेमपूर्वक नृत्य-गीत-रोदन करते रहे और सारी रात्रि बीत गयी। प्रातःकाल होते ही दोनों अपने-अपने कार्यके लिये चले गये। सन्ध्याकाल होनेपर पूर्व दिनोंकी भाँति श्रीराय रामानन्द पुनः आकर महाप्रभुसे मिले॥ 259-260॥

अनुभाष्य— *'विहाने'*—पूर्वबङ्गाल और पश्चिममें (हिन्दी भाषामें) अभी भी 'प्रातःकालमें'-शब्दके बदले चलती भाषामें यह शब्द व्यवहार किया जाता है॥ 260॥

दूसरे दिन महाप्रभुके चरणोंमें श्रीरायका निवेदन :—

इष्टगोष्ठी कृष्णकथा कहिं कतक्षण।
प्रभुपद धरिं राय करे निवेदन॥ 261॥

"'कृष्णतत्त्व', 'राधातत्त्व' 'प्रेमतत्त्वसार'।
'रसतत्त्व', 'लीलातत्त्व' विविध प्रकार॥ 262॥

शुद्धहृदयमें उदयके कारण महाप्रभुका स्व-प्रकाशत्व :—

एत तत्त्व मोर चित्ते कैले प्रकाशन।
ब्रह्माके वेद येन पड़ाइल नारायण॥ 263॥

अन्तर्यामी ईश्वरेर एइ रीति हय।
बाहिरे ना कहे, वस्तु प्रकाशे हृदय॥ 264॥

अनुवाद—कुछ समय तक इष्टगोष्ठीमें श्रीकृष्णकथाका कथन-श्रवण हुआ। उसके बाद श्रीरामानन्द रायने महाप्रभुके चरणकमलोंको पकड़कर बड़े ही विनीत भावसे निवेदन किया,—"आपने मेरे हृदयमें 'कृष्णतत्त्व', 'राधातत्त्व', 'प्रेमतत्त्वसार', 'रसतत्त्व' और विविध प्रकारके 'लीलातत्त्वों'को इस प्रकार प्रकाशित किया है, जिस प्रकार श्रीनारायणने ब्रह्माजीको वेदोंका ज्ञान प्रदान किया था। अन्तर्यामी ईश्वरकी यही रीति है कि वे बाहरसे कुछ नहीं कहते, किन्तु हृदयमें उस तत्त्ववस्तुको स्फुरित कराते हैं॥ 261-264॥

अनुभाष्य—ब्रह्माके हृदयमें भगवान्के द्वारा वेदप्रकाशन,—(श्वेःउः 6/18)—

"यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥"

जिन्होंने सृष्टिके पहले ब्रह्माकी सृष्टि की थी और उनके हृदयमें समस्त वेदोंको सञ्चारित किया था, उन आत्मबुद्धिप्रकाशक-देवकी मुक्तिकी इच्छा करनेवाला मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

इसके द्वारा श्रीगौरसुन्दर ही गायत्रीके प्रतिपाद्य

बुद्धिवृत्ति-प्रवर्त्तक 'भर्गोदेव' हैं, यह कहा जा रहा है; जैसे (भाः 2/4/22)—

"प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती
वितन्वताजस्य सतीं स्मृतिं हृदि।
स्वलक्षणा प्रादुरभूत् किलास्यतः
स मे ऋषीणामृषभः प्रसीदताम्॥"

"कल्पके प्रारम्भमें जिन्होंने ब्रह्माके हृदयमें सृष्टिविषयक स्मृतिका प्रकाश किया था और जिनके द्वारा प्रेरित सरस्वतीने ब्रह्माके मुखसे प्रकटित होकर श्रीकृष्णको ही उपास्यरूपमें लक्ष्य किया था, वे ज्ञानप्रदातागणोंमें सर्वश्रेष्ठ श्रीभगवान् मेरे प्रति प्रसन्न हों।"

भाः 2/9/30-35, 11/14/3, 12/4/40 और 12/13/19 आदि श्लोक देखें॥ **263-264**॥

चिद्विलासमय परमेश्वर-वस्तुका निरूपण और ध्यान :— श्रीमद्भागवत (1/1/1)—

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत् सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि॥265॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **265**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—इस विश्वका जन्म, स्थिति और लय जिससे होता है, ऐसा कहनेसे जो तत्त्व निश्चित हुआ है, अन्वय-व्यतिरेकके द्वारा विचार करनेपर जो समस्त अर्थ अथवा कार्यमें एकमात्र परम 'ज्ञ-तत्त्व' अर्थात् 'स्वरूपतत्त्व' कहलाकर स्थिर होते हैं; जो दृश्यमान जगत्में एकमात्र स्वराट् अर्थात् स्वतन्त्र राजा हैं; जिन्होंने आदिकवि ब्रह्माको अन्तर्यामीके रूपमें ब्रह्मतत्त्वकी शिक्षा दी है; जिनके विषयमें समस्त बुद्धिमान पण्डितोंमें बारम्बार मोह उत्पन्न होता है; जिनसे अग्नि, जल और मिट्टी आदि भूतोंका विनिमय अर्थात् पृथक् रूपमें सत्ता है; जिनसे तीन प्रकारकी सृष्टि अर्थात् चिद्-उदयरूप सृष्टि, जीव-प्राकट्यरूप सृष्टि और मायिक-ब्रह्माण्डरूप सृष्टि—सत्यरूपमें वर्तमान है; स्वरूपशक्तिके द्वारा नित्य-कपट-शून्य परमसत्य-तत्त्वरूप उन श्रीकृष्णका हम ध्यान करते हैं॥ **265**॥

अनुभाष्य—

यतः (यस्मात् शक्तिमतः) अस्य (विश्वस्य) जन्मादि (जन्मस्थितिभङ्गं "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते" इत्यादि श्रुतेः, "जन्माद्यास्य यतः" इति न्यायात्—ब्रः सूः 1/1/2) अन्वयात् इतरतश्च (अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां भवति); यः अन्वयात् अर्थेषु (चिन्मयरूपरसगन्धशब्दस्पर्शयोग्य-व्यापारेषु) अभिज्ञः (आसक्तः) व्यतिरेकात् अर्थेषु (जड़रूपरसगन्धशब्दस्पर्शविषयेषु) अभिज्ञः (असंस्पृष्टः) सन् स्वराट् (स्वेन एव राजते यः स्वप्रकाशः); यत् (यस्मिन् परमसत्ये) सुरयः (ब्रह्मादयः—दशमे ब्रह्ममोहनात्, देवाः तलवकारश्रुतेः; ब्राह्मणादयः मुनयश्च दत्तात्रेय-दुर्वासो-वशिष्ठ-शङ्कर-विद्यारण्यादयः "दैवाहतार्थरचना" इति भाः 3/9/10 वचनात्) अपि मुह्यन्ति (मोहं प्राप्नुवन्ति परमसत्यनिर्द्धारणे असमर्थाः भवन्ति); तत् ब्रह्म (तत्त्वं—"वदन्ति तत्तत्त्वविदः" इत्याद्योः) आदिकवये (ब्रह्मणे), हृदा (मनसि—'त्रया प्रबुद्धः' इति ब्रह्मसंहिता-वचनात्) यः तेने (प्रकाशितवान्); यथा तेजोवारिमृदां विनिमयः (व्यत्ययः अन्यस्मिन् अन्यावभासः तथा) त्रिसर्गः (त्रयाणां रजस्तमःसत्त्वानां नश्वरः सर्गः, पक्षान्तरे, अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग-तटस्थ-शक्तित्रयाणां नित्यप्रकाशः) यत्र (परमसत्ये भगवत्-स्वरूपे सच्चिदानन्दविग्रहाद्वयज्ञाने) अमृषा (सत्यः); स्वेन धाम्ना (अप्राकृतान्तरङ्गसन्धिन्यादि-तद्रूप-वैभवेन बलेन) सदा निरस्त-कुहकं (निरस्तं व्युदस्तं माया-लक्षणं कुहकं कपटं यस्मिन् तं) सत्यं (सत्यस्वरूपं सनातनं) परं (सर्वस्मात् परं परमेश्वरं) धीमहि (वयं ध्यायेमः)।

श्लोक-भावानुवाद—जिन शक्तिमान्से इस विश्वका ("यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते" आदि उपनिषद् वचनों और "जन्माद्यास्य यतः" ब्रह्मसूत्र 1/1/2 से प्रमाणित) अन्वय-व्यतिरेक रूपसे जन्म, स्थिति और लय होता है, जो अन्वय रूपसे चिन्मय रूप-रस-गन्ध-शब्द-स्पर्श योग्य कार्योंमें आसक्त और व्यतिरेक रूपसे जड़ रूप-रस-गन्ध-शब्द-स्पर्श विषयोंसे पूर्णरूपसे अस्पृष्ट होकर एकमात्र स्वतन्त्र राजा अथवा स्वयं-प्रकाश रूपमें विराजमान हैं; जिन परम सत्यका निर्धारण करनेमें ब्रह्मा (दशम स्कन्ध ब्रह्ममोहनलीला), देवता लोग (तलवकार श्रुति) ब्राह्मण आदि मुनि (दत्तात्रेय,

दुर्वासा, वशिष्ठ, शङ्कर, विद्यारण्य आदि 'देवाहतार्थरचना' भागवतके 3/9/10 वचनानुसार) आदि भी असमर्थ होते हैं; जिन्होंने अन्तर्यामीके रूपमें आदिकवि ब्रह्माके हृदयमें ('त्रया प्रबुद्धः' ब्रह्मसंहिता वचनानुसार) ब्रह्मतत्त्वकी शिक्षा दी है; जिनसे अग्नि, जल और मिट्टी आदि भूतोंका विनिमय अर्थात् अन्यमें अन्यका आभास होता है; जिनसे 'रज-तम-सत्त्व'—तीन गुणोंसे नश्वर सृष्टि, पक्षान्तरमें अन्तरङ्गा, बहिरङ्गा और तटस्था—इन तीन शक्तियोंका नित्य प्रकाश है; जिनका भगवद्-स्वरूप अर्थात् अद्वयज्ञान सच्चिदानन्द विग्रहरूप सत्य है; स्वरूपशक्ति-तद्रूप-वैभवके द्वारा नित्य माया-कपट-शून्य उन परमसत्य परमेश्वर श्रीकृष्णका हमें ध्यान करना चाहिये।

विशेष रूपसे जाननेके लिये श्रीमद्भागवतका गौड़ीय भाष्य देखें॥ **265**॥

अमृतानुकणिका—" 'जन्माद्यस्य यतः'—जिन्होंने मथुरा तथा गोकुलमें जन्मग्रहण आदि लीलाओंको प्रकटितकर आद्य रस अर्थात् शृङ्गार रसमें अपनी सर्वश्रेष्ठ नित्य लीलाओंका आस्वादन किया। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य आदि अन्य सभी रस शृङ्गार रसके अन्तर्भुक्त हैं; शृङ्गाररस ही आदि रस है। जैसे, जब स्वयं श्रीकृष्ण अवतार लेते हैं, तब उनके समस्त पूर्व-पूर्व अवतार, अंश, कला, तद्रूप वैभव तथा भविष्यमें आनेवाले सभी अवतार उनके अन्दर क्रोड़ीभूत होकर अवतरित होते हैं। शृङ्गार रस—अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां भवति। शृङ्गाररसका प्रादुर्भाव अन्वय-व्यतिरेक अर्थात् मिलन और विरहके रूपमें होता है। रसमय श्रीकृष्णसे संयोग और वियोग भेदसे प्रेयसियोंके साथ यह शृङ्गाररस उत्पन्न होता है। प्रेमके आविर्भाव होनेपर श्रीकृष्णकी प्रेयसियोंमें मिलनसे पूर्व दर्शन, प्रियके श्रवण आदिसे उत्पन्न होनेवाली उत्कण्ठामयी रति को पूर्वराग कहा जाता है। यही प्रेम कुटिल रूप धारणकर मानके रूपमें श्रीकृष्ण और गोपियोंको और अधिक आनन्द प्रदान करता है। इस अप्राकृत शृङ्गाररस संयोग-वियोग लीलामें विभिन्न प्रकारके सञ्चारी, सात्त्विक भाव-अनुभाव उदित होकर श्रीकृष्ण और गोपियोंको रससागरमें निमग्न करते हैं। 'अर्थेष्वभिज्ञः' धीर-ललित नायक श्रीकृष्ण इन सभी चौंसठ प्रकारकी शृङ्गाररसकी विद्याओंमें अत्यन्त अभिज्ञ हैं। प्रेयसियोंको आकर्षित करना, उन्हें मनाना, शृङ्गार-वेश रचना आदि सभी कलाओंमें वे प्रवीण हैं अर्थात् वे प्रेमकी समस्त कलाओंमें दक्ष, विदग्ध हैं। 'स्वराट्'—इस विषयमें उन्हें किसीसे सीखनेकी आवश्यकता नहीं है।

'तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये'—श्रीकृष्णने आदिकवि ब्रह्माके हृदयमें 'शब्दब्रह्म'को प्रकाशित किया था, परन्तु श्रीशुकदेव गोस्वामीके हृदयमें 'रसब्रह्म'को प्रकाशित किया जिसके द्वारा वे श्रीमद्भागवतमें वर्णित 'पिबत भागवतं रसं' की रसवर्षा कर सके। 'मुह्यन्ति यत् सूरयः'—जिनकी वृन्दावनलीलामें ब्रह्माजी मोहित होकर ग्वालबाल-बछड़ोंको चुरानेका अपराध कर बैठे, इसी प्रकार अन्य-अन्य ऋषिगण, देवतागण भी श्रीकृष्णकी व्रजलीलाएँ देखकर मोहग्रस्त हो गये। 'तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो'—चन्द्रसरोवरमें श्रीकृष्णकी रासलीलामें वंशीध्वनि श्रवण करके चन्द्रमा निस्तेज हो गये, श्रीकृष्णके सौन्दर्यके सम्मुख वे मलिन हो गये; यमुनाका जल जमकर कठोर हो गया, गिरिराज गोवर्धनकी शिलायें पिघल गयीं। श्रीकृष्णके रूप और सौन्दर्य तथा वंशीध्वनिने रसधारा वर्षण करके तेज, जल और प्रस्तरके स्वभावको बदल दिया, उनके स्वभावका विनिमय हो गया अर्थात् जड़ चेतन हो गया और चेतन जड़ाकार हो गया।

'यत्र त्रिसर्गोऽमृषा'—श्रीकृष्णके त्रिसर्ग गोकुल, मथुरा और द्वारका, उनकी त्रिशक्ति ह्लादिनी, सम्वित् और सन्धिनी, श्रीकृष्णकी त्रिविध लीलाएँ—बाल्य, पौगण्ड, और कैशोर, ये त्रिसर्ग सब समय सत्य हैं। इन समस्त अवस्थाओं, लीलाओं और शक्तियोंके साथ जो अपने 'निरस्त कुहकं' अर्थात् महामायाके प्रभावसे रहित धाममें विराजमान हैं, उन 'सत्यं परं धीमहि' सत्य स्वरूप सनातन परम परमेश्वर श्रीकृष्णका मैं ध्यान करता हूँ।

अथवा व्याख्यान्तरके द्वारा—'जन्माद्यस्य यतः'—जो

नित्य अपनी शक्ति स्वरूपा गोपियोंके साथ लीला-विलास करते रहते हैं, उनकी लीलाओंसे आदिरस शृङ्गाररसका जन्म होता है। 'अन्वय व्यतिरेकाभ्यां भवति'—अन्वय और व्यतिरेक रूपमें श्रीराधा-कृष्णके संयोग या मिलनके रूपमें राधाजीका महाभाव उच्चतम अवस्था मादन तक पहुँच जाता है; पुनः वियोगमें चित्रजल्पादि अनेक रूप धारण करता है। इन दोनोंके संयोग और वियोगके कारण ही रस पूर्णताको प्राप्त करता है। इस आद्य शृङ्गार रसमें दोनों अभिज्ञ हैं। कभी श्रीराधा मान कर लेती हैं और इस रसको नवीन-नूतन बनाकर श्रीकृष्णको अपनी सेवामें नियुक्त कर लेती हैं। इधर श्रीकृष्ण भी अभिज्ञ हैं, परम विदग्ध हैं, श्रीराधाके मान-प्रसादनके लिये प्रेमके वशीभूत होकर परम चातुरीसे उनका मान दूर करते हैं। ऐसे शृङ्गाररसका प्रादुर्भाव अन्य किसी भी भगवत्-अवतारमें नहीं हुआ, क्योंकि उनमें ऐश्वर्यकी प्रधानता होती है। श्रीराधाकृष्णकी लीलाओंमें ही शृङ्गाररस सर्वोत्तम स्तरपर पहुँचा है। 'स्वराट्'—श्रीकृष्ण और श्रीराधा दोनों ही अपनेमें पूर्ण हैं। 'तेने ब्रह्महृदा'—श्रीशुकदेव गोस्वामीके हृदयमें आद्य शृङ्गाररस प्रकट किया, क्योंकि ये श्रीराधाके शुक हैं और श्रीकृष्णके हाथोंमें भी गये हैं, तब इनको दोनोंकी कृपासे रस-विषयमें अनुभूति हुई। 'मुह्यन्ति यत् सूरयः'—ब्रह्मा आदि देवता इस व्रजलीलासे मोहित हो जाते हैं। ब्रह्मा व्रजमें आये, किन्तु वे शृङ्गाररस तक नहीं पहुँच पाये, उन्होंने केवल बाल्यलीलाएँ देखीं, श्रीकृष्णका ऐश्वर्य देखा, अघासुरकी मुक्ति देखी, जब श्रीकृष्णने अपना चतुर्भुज रूप दिखाया, तब वे आश्चर्यचकित हो गये। श्रीराधाकृष्णके मिलनमें जो रस होता है, उसके द्वारा यमुनाका जल कठोर हो जाता है, गिरिराजके प्रस्तर पिघल जाते हैं, चन्द्रमा निस्तेज हो जाता है। 'त्रिसर्ग'—श्रीराधाकृष्णकी वृन्दावनमें परिपूर्णतम, मथुरामें पूर्णतर और द्वारकामें पूर्ण लीलाएँ हुईं। इन दोनों स्थानों, मथुरा और द्वारकामें श्रीराधा नहीं रहीं, इसलिये लीलाएँ भी पूर्णताको प्राप्त नहीं कर सकी। उन अप्राकृत व्रजलीलाओंके सहित मैं श्रीराधाकृष्णका ध्यान करता हूँ।"—श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी॥ 265॥

श्रीरायका संशय :—

एक संशय मोर आछये हृदये।
कृपा करि' कह मोरे ताहार निश्चये॥ 266॥

श्रीरायके निकट महाप्रभुके स्वरूपका आविर्भाव :—

पहिले देखिलुँ तोमार संन्यासी-स्वरूप।
एबे तोमा देखि मुञि श्याम-गोपरूप॥ 267॥

अनुवाद—श्रीरामानन्द रायने कहा,—"मेरे हृदयमें एक संशय उदित हुआ है। आप कृपा करके मुझे उसका समाधान निश्चय करके बताइये। पहले मैंने आपके संन्यासीरूपका दर्शन किया और अब मैं आपको श्याम-वर्ण गोपके रूपमें देख रहा हूँ॥ 266-267॥

अनुभाष्य—अर्थात् 'रसराज, महाभाव—दुइ एक रूप' (281 संख्या)। *'संन्यासी-स्वरूप'*—नित्य श्रीकृष्णविरहजनित अधिरूढ़-महाभावमय नित्य वैरागी अथवा तपस्वी-स्वरूप॥ 267॥

श्रीरायको राधाभावद्युति-सुवलित श्रीगौरसुन्दरका दर्शन :—

तोमार सन्मुखे देखि काञ्चन-पञ्चालिका।
ताँर गौरकान्त्ये तोमार सर्व अङ्ग ढाका॥ 268॥

ताहाते प्रकट देखि स-वंशी वदन।
नाना-भावे चञ्चल ताहे कमल-नयन॥ 269॥

स्वयं महाप्रभुसे ही श्रीरायके द्वारा
गौररूपके कारणकी जिज्ञासा :—

एइमत तोमा देखि' हय चमत्कार।
अकपटे कह, प्रभु, कारण इहार॥"270॥

अनुवाद—अब आपके सामने एक स्वर्ण प्रतिमाको देख रहा हूँ, जिसकी गौरकान्तिसे आपके सारे अङ्ग ढके हुए हैं। गौरकान्तिसे आपके अङ्गोंके ढके होनेपर भी मैं आपके उस वंशीयुक्त मुखकमलको देख रहा हूँ और अनेक प्रकारके भावोंसे आपके नेत्रकमल भी

चञ्चल हो रहे हैं। इस प्रकारसे आपके स्वरूपको देखकर मेरे हृदयमें अद्भुत चमत्कार भाव उदित हो रहा है। इसलिये हे प्रभो! आप कपटता छोड़कर मुझे इसका यथार्थ कारण बतलाइये॥"268-270॥

अनुभाष्य—आदिलीला 3/86-89 संख्या देखें॥266-269॥

रायको 'महाभागवत' कहकर उनकी प्रशंसाके द्वारा स्वयंका गोपन करनेकी चेष्टा :—

प्रभु कहे,—"कृष्णे तोमार गाढ़प्रेम हय।
प्रेमार स्वभाव एइ जानिह निश्चय॥271॥

महाभागवत अथवा वैष्णव अथवा परमहंसका दर्शन :—

महाभागवत देखे स्थावर-जङ्गम।
ताँहा ताँहा हय ताँर श्रीकृष्ण-स्फुरण॥272॥

स्थावर-जङ्गम देखे, ना देखे तार मूर्त्ति।
सर्वत्र हय ताँर इष्टदेव-स्फूर्त्ति॥273॥

अनुवाद—महाप्रभुने आत्म-गोपन करते हुए श्रीरामानन्द रायसे कहा,—"आपका श्रीकृष्णके प्रति गाढ़ अनुराग है। प्रेमका स्वभाव ही यह होता है कि महाभागवतकी दृष्टिमें जो भी स्थावर-जङ्गम आते हैं, उनमें उन्हें श्रीकृष्णकी ही स्फूर्त्ति होती है। स्थावर-जङ्गम दृष्टिगोचर होनेपर भी उन्हें उनकी मूर्ति (आकृति) दिखायी नहीं देती, केवल सर्वत्र अपने इष्टदेवकी ही स्फूर्त्ति होती है॥271-273॥

अमृतप्रवाह भाष्य—प्रभो, आपको मैंने पहले एक संन्यासीके जैसा देखा था; अब आपको श्याम-गोपरूपमें देख रहा हूँ। फिर आपके सामने एक सोनेकी पुतली देख रहा हूँ। यद्यपि उस पुतलीने गौरकान्तिके द्वारा आपकी पूरी देहको ढक दिया है, तथापि आपका रङ्ग जैसे प्रकटरूपमें ही प्रतीत हो रहा है और आपका बाँया नेत्र अनेक प्रकारसे चञ्चल है। प्रभो! आपके इस प्रकार चमत्कारमय-भावका कारण क्या है, उसे निष्कपट होकर बतलाइये। महाप्रभुने कहा,—जिनका श्रीकृष्णमें गाढ़ प्रेम है, वे उत्तम भागवत हैं। उनके प्रेमका स्वभाव यह है कि वे स्थावर-जङ्गम, जो कुछ भी देखते हैं, उनमें स्थावर-जङ्गमकी मूर्ति न देखकर सर्वत्र (अपने) इष्टदेवकी स्फूर्त्तिरूपी श्रीकृष्णभावको ही देखते हैं॥267-273॥

सर्वत्र श्रीकृष्ण-कार्ष्ण-दर्शन :—
श्रीमद्भागवत (11/2/45)—

सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥274॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥274॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जो उत्तम भागवत होते हैं, वे सभी प्राणियोंमें आत्माके भी आत्मरूप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको ही देखते हैं एवं आत्माके आत्मस्वरूप श्रीकृष्णमें समस्त जीवोंको देख पाते हैं॥274॥

अनुभाष्य—विदेहराज 'निमि'के द्वारा तीन प्रकारके भक्तों अथवा भागवतोंके लक्षण, दर्शन, आचरण और बोलनेके सम्बन्धमें जाननेकी इच्छा करनेपर उनके प्रश्नोंके उत्तरमें नव-योगेन्द्रोंमेंसे अन्यतम 'हवि'ने कहा—

यः सर्वभूतेषु (चेतनाचेतनात्मकेषु सर्वेषु) आत्मनः (भोगजड़ातीतस्य अप्राकृतस्य) भगवद्भावं (भूतानां भगवत्-सेवोपयोगिसिद्धस्वरूपादिकं) पश्येत्, आत्मनि भगवति [निजसिद्धरूपेण अप्राकृत-नित्यसेवापराणि] भूतानि पश्येत, [सः] एषः भागवतोत्तमः। [अप्राकृतभावप्राबल्येन महाभागवताः सर्वत्र सेव्य-सेवक-भावावस्थिताः कृष्णकार्ष्णान् पश्यन्ति, बहिर्दृष्टेरभावात्]।

श्लोक-भावानुवाद—जो चेतन-अचेतन प्राणियोंमें अप्राकृत भगवद्-सेवोपयोगी सिद्ध-स्वरूपको देखते हैं और उन्हें अपने समान ही श्रीकृष्णकी अप्राकृत-सेवाके उपकरण रूपमें देखते हैं, वे ही महाभागवतोंमें उत्तम हैं। [अप्राकृत-भावकी प्रबलताके कारण महाभागवत सर्वत्र ही सेव्य-सेवक-भावमें स्थित कृष्ण-कार्ष्ण-दर्शन करते हैं, क्योंकि उनमें बाह्य-दृष्टिका अभाव होता है]॥274॥

श्रीकृष्णसेवामय-चित्तमें सर्वत्र चेतना
या श्रीकृष्णसेवावृत्ति-दर्शन :—
श्रीमद्भागवत (10/35/9)—

वनलतास्तरव आत्मनि विष्णुं
व्यञ्जयन्त्य इव पुष्पफलाढ्याः।
प्रणतभारविटपा मधुधाराः
प्रेमहृष्टतनवो ववृषुः स्म॥ 275॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 275॥

अमृतप्रवाह भाष्य—[श्रीकृष्णका वेणुनाद श्रवण करके] वनकी लताएँ और वृक्ष फूल और फलोंसे लद गये और उनके भारसे उनकी डालियाँ झुक गयीं। समस्त वनस्पति अपने भीतर श्रीकृष्णकी अभिव्यक्तिको सूचित करते हुए प्रेममें पुलकित होकर मधुधारा वर्षण करने लगीं॥ 275॥

अनुभाष्य—दिनके समय श्रीकृष्णके वनमें जानेपर विरह-सन्तप्त गोपियाँ परस्पर इस प्रकार गीत गाती थीं—

[कृष्णवेणु-नादं श्रुत्वा] प्रणतभारविटपाः (भारावनत तरवः) पुष्पफलाढ्याः (फलकुसुमान्विताः) प्रेमहृष्टतनवः (कृष्णप्रेमोत्फुल्लकलेवराः) वनलताः तरवः च आत्मनि (स्वीये विग्रहे) विष्णुं (विभु-चैतन्यं) व्यञ्जयन्त्यः (प्रकाशयमानं सूचयन्त्यः) इव मधुधारा ववृषुः स्म।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 275॥

वैष्णवोंका सर्वोत्तम चरम दर्शन :—

राधाकृष्णे तोमार महाप्रेम हय।
याँहा ताँहा राधाकृष्ण तोमारे स्फुरय॥"276॥

अनुवाद—तुम्हारे हृदयमें श्रीराधाकृष्णके प्रति महाप्रेम है, इसलिये जहाँ-तहाँ सर्वत्र तुम्हारे हृदयमें श्रीराधाकृष्णकी ही स्फूर्त्ति होती है॥"276॥

श्रीरायके द्वारा स्पष्टरूपसे महाप्रभुके
अवतारके उद्देश्यका कथन :—

राय कहे,—"प्रभु तुमि छाड़ भारिभुरि।
मोर आगे निजरूप ना करिह चुरि॥ 277॥

राधिकार भावकान्ति करि' अङ्गीकार।
निजरस आस्वादिते करियाछ अवतार॥ 278॥

निज-गूढ़कार्य तोमार—प्रेम-आस्वादन।
आनुषङ्गे प्रेममय कैले त्रिभुवन॥ 279॥

महाप्रभुके द्वारा अपनेको गोपन करना
और छलसे श्रीरायका आरोप :—

आपने आइले मोरे करिते उद्धार।
एबे कपट कर,—तोमार कोन् व्यवहार॥"280॥

अनुवाद—यह सुनकर श्रीराय रामानन्दने कहा,—"प्रभो! आप अपनी चतुराई छोड़िये। मुझसे अपने स्वरूपको मत छिपाइये। श्रीराधिकाके भाव और कान्तिको अङ्गीकार करके स्वयं रसास्वादनके लिये ही आपने अवतार ग्रहण किया है। आपका अपना परम गूढ़ कार्य है—प्रेमका आस्वादन करना और उसके आनुषङ्गिक फलसे आपने तीनों भुवनोंको प्रेममय बना दिया है। आप यहाँ मेरा उद्धार करनेके लिये आये हैं। और अब कपटता कर रहे हैं, यह आपका कैसा व्यवहार है?"॥ 277–280॥

अनुभाष्य—भगवान्‌के द्वारा अपनेको गोपन करनेका प्रयास करनेपर भी भक्त भगवान्‌की लीलाको देख लेते हैं, इस सम्बन्धमें आदिलीला 3/86–89 संख्या एवं आदिलीला 1/5 श्लोकके तात्पर्यके सम्बन्धमें आदिलीला चौथा अध्याय देखें॥ 277–279॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीरायको अपने
श्याम और गौररूपका प्रदर्शन :—

तबे हासि' ताँरे प्रभु देखाइल स्वरूप।
'रसराज', 'महाभाव'—दुइ एक रूप॥ 281॥

अनुवाद—तब मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए महाप्रभुने श्रीरामानन्द रायको अपने स्वरूपका दर्शन कराया। उस स्वरूपमें मूर्तिमान श‍ृङ्गार-रसराज श्रीकृष्ण और मूर्तिमती महाभावमयी श्रीराधा दोनों ही एक रूपमें प्रकट हो रहे थे॥ 281॥

अमृतप्रवाह भाष्य—रसराजरूप श्रीकृष्ण और महाभावरूपा श्रीमती राधिका—दोनों मिलकर जो एकतत्त्व हैं, वही स्वरूप दिखलाया—अर्थात् 'राधाभावद्युतिसुवलित श्रीकृष्णस्वरूप' दिखलाया। इससे एक-तत्त्वमें दो और दोनों-तत्त्व ही एक हैं, ऐसा एक अपूर्व स्वरूप दिखलाया। जो श्रीकृष्णचैतन्य और श्रीराधाकृष्ण-तत्त्व जाननेमें समर्थ होते हैं, वे ही श्रीस्वरूप गोस्वामीकी कृपासे उस नित्य स्वरूपकी सेवा कर पाते हैं॥ 281॥

श्रीरायकी आनन्द-मूर्च्छा :—

देखि' रामानन्द हैला आनन्दे मूर्च्छिते।
धरिते ना पारे देह, पड़िला भूमिते॥ 282॥

चेतनता प्राप्त होनेपर महाप्रभुके संन्यास वेशके दर्शनसे विस्मय :—

प्रभु ताँरे हस्त स्पर्शि' कराइला चेतन।
संन्यासीर वेष देखि' विस्मित हैल मन॥ 283॥

अनुवाद—इस अपूर्व स्वरूपको देखते ही श्रीरामानन्द अत्यधिक आनन्दसे मूर्च्छित हो गये, देहको सम्भाल न पाये और भूमिपर गिर पड़े। महाप्रभुने उनको अपने हस्तकमलोंसे स्पर्शकर उन्हें चेतन किया। चेतनावस्था आनेपर पुनः उनका संन्यासीका वेश देखकर उनका मन विस्मित हो गया॥ 282–283॥

अमृतानुकणिका—"श्रीराय रामानन्द व्रजलीलामें विशाखा सखी हैं। उन्होंने श्रीकृष्णको भी देखा है और श्रीराधाको भी, किन्तु दोनों मिलकर एक हो गये और कैसे श्यामकान्ति गौरकान्तिसे आवृत हो गयी—यह इससे पूर्व उन्होंने नहीं देखा था। जिस वस्तुका प्रभाव अधिक होता है, वही दूसरी वस्तुको आवृत कर सकती है। श्रीराधा शक्ति हैं और श्रीकृष्ण शक्तिमान्। शक्ति ही शक्तिमान्‌को प्रकाशित करती है। इस अद्भुत मिलनसे नीलमणि श्यामकान्ति स्वर्णकान्तिसे ढककर एक अद्भुत कान्ति बन गयी।

अभी तक योगमायाके प्रभावसे महाप्रभुका स्वरूप आच्छादित था। महाप्रभुकी कृपासे योगमाया तनिक-सी हटी और श्रीराय रामानन्दने इस मिलित स्वरूपके दर्शन किये। अब वे महाप्रभुके वार्त्तालाप और प्रश्न करनेकी चतुरायीसे समझ गये कि ये अन्य कोई नहीं, स्वयं श्रीकृष्ण ही हैं। श्रीकृष्ण अत्यन्त चतुर हैं, किन्तु उनके भक्त उनसे अधिक चतुर होते हैं। श्रीकृष्णने महाप्रभुके संन्यासी स्वरूपमें स्वयंको छिपानेकी बहुत चेष्टा की, परन्तु केवल वर्ण-कान्ति परिवर्तित होनेसे स्वरूप परिवर्तित नहीं होता। श्रीराय रामानन्द अथवा विशाखा सखीके समान श्रीकृष्णके अन्तरङ्ग परिकर उन्हें किसी भी रूपमें पहचान लेते हैं। इसलिये श्रीराय रामानन्दने कहा—'प्रभो! अब अपनी कपटता त्याग दीजिये और इसका रहस्य मुझे बतलाइये।' महाप्रभु मुस्कुरा दिये कि अब ये मेरे भावको समझ गये हैं और मेरी चोरीका भेद खुल गया है। परन्तु फिर भी अपनेको गोपन रखनेका प्रयास करते हुए वे कहने लगे—'मैं तो ब्राह्मण संन्यासी ही हूँ। तुम्हारी श्रीकृष्णके प्रति अगाध निष्ठा है, इसलिये तुम सर्वत्र श्रीकृष्णको ही देख रहे हो। महाभागवतका यही स्वभाव है कि उन्हें स्थावर-जङ्गम—सभी वस्तुओंमें अपने इष्टदेवकी स्फूर्त्ति होती है।'

तब श्रीराय रामानन्दने कहा—'प्रभो! अब आप अपनी इस चतुरायीको आप छोड़ दीजिये। मैं आपके स्वरूपको पहचान गया हूँ। आप तो मेरा उद्धार करने आये हैं, फिर कपटता क्यों कर रहे हैं? मैं जान गया हूँ कि कृष्णरूपमें आपकी रसास्वादनकी इच्छा पूर्ण नहीं हुई थी, इसलिये आपने अपनी सर्वश्रेष्ठ प्रेयसी श्रीराधाके प्रेमकी महिमा और उस प्रेमके द्वारा आपके माधुर्यके रसास्वानकी सीमाको अनुभव करनेके लिये उनके मादनाख्य महाभावको चोरी किया है। इस भावके साथ उनकी स्वर्ण-कान्तिका अटूट सम्बन्ध है, इसलिये आपका वर्ण भी परिवर्तित हो गया। अब आप कपट व्यवहार त्यागकर अपने स्वरूपको प्रकट कीजिये।'

महाप्रभु हँस दिये और उन्होंने श्रीराय रामानन्दको अपने रसराज-महाभावके सम्मिलित स्वरूपके दर्शन करवाये। श्रीराय रामानन्दने श्रीकृष्णको भी देखा है

और श्रीराधाको भी। परन्तु जब महाभाव-स्वरूपा श्रीराधा और रसराज-स्वरूप श्रीकृष्णको एक रूपमें देखा, तब उनके हृदयमें भावकी प्रबल तरङ्गें उठने लगीं, जिनके आवेशमें वे अपनेको सम्भाल न सके और मूर्च्छित हो गये। सुन्दर श्यामवर्ण किशोर गोप श्रीकृष्ण और सुन्दरी गौरकान्तियुक्त किशोरी गोपी श्रीराधा—दोनोंको एक-साथ संयुक्त होते देखकर वे मूर्च्छित हो गये। यह मूर्च्छा अत्यन्त घनीभूत थी, इसलिए महाप्रभुने अपने कोमल सुगन्धित हस्त-स्पर्शसे उसे दूर किया।

श्रीकृष्णने श्रीराधाके मादनाख्य-महाभाव और अङ्गकान्तिको चोरीसे ग्रहण किया था, परन्तु उनमें आश्रय-विग्रहका विज्ञान नहीं था। श्रीराय रामानन्दसे समस्त तत्त्व सुनकर उन्हें अनुभूति हुई कि 'मैं व्रजमें वृषभानु महाराजकी पुत्री हूँ, एक किशोरी गोपी हूँ, मेरा विवाह जावटमें हुआ, परन्तु मैं नन्द महाराजके पुत्रपर आसक्त हूँ, वे मेरे प्रेमी और प्राण-प्रियतम हैं, मैं उनके अतिरिक्त अन्य किसीको नहीं जानती, तथा हमारा मिलन छिप-छिपकर होता है।'

यहाँ श्रीकृष्णके अङ्ग और भाव ढक गये और अब वे श्रीराधा हो गये। श्रीकृष्णमें एकादश भाव, महाभाव, मादन-मोदन, प्रेम-वैचित्त्य, समस्त भाव-सम्पत्ति सञ्चरित हो गयी। श्रीकृष्णकी आत्मा और मनकी भावनाएँ—सभी राधामय हो गयीं; यही महाप्रभुका स्वरूप है। शृङ्गार रसराज मूर्ति और महाभावमय—यही गौर-तत्त्व है।"—श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी॥ 266–283॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीरायको सान्त्वना, अपने कृष्ण-स्वरूपत्व और राधाभावद्युतिमयत्वके उद्देश्य आदि समस्त गूढ़ कारणोंका अकपट रूपसे ज्ञापन :—

आलिङ्गन करि' प्रभु कैल आश्वासन।
"तोमा बिना एइ रूप ना देखे अन्यजन॥ 284॥

मोर तत्त्वलीला-रस तोमार गोचरे।
अतएव एइ रूप देखाइलुँ तोमारे॥ 285॥

गौर अङ्ग नहे मोर—राधाङ्ग-स्पर्शन।
गोपेन्द्रसुत बिना तेँहो ना स्पर्शे अन्यजन॥ 286॥

ताँर भावे भावित करि' आत्म-मन।
तबे निज-माधुर्य करि आस्वादन॥ 287॥

तोमार ठाञि आमार किछु गुप्त नाहि कर्म।
लुकाइले प्रेम-बले जान सर्व मर्म॥ 288॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीराय रामानन्दका आलिङ्गन किया और आश्वासन देते हुए कहने लगे,—"राय! तुम्हारे अतिरिक्त अन्य किसीने मेरे इस रूपको नहीं देखा है। मेरा स्वरूपतत्त्व एवं लीलारसतत्त्व, सब कुछ तुम जानते हो, इसलिये मैंने तुम्हें यह अपना विशेष रूप दिखलाया है। मेरा गौरवर्ण नहीं है, परन्तु राधाके अङ्गस्पर्शसे मेरा गौरवर्ण हो गया है और राधा गोपेन्द्रसुत अर्थात् व्रजेन्द्रनन्दनके अतिरिक्त किसी अन्यका कदापि स्पर्श नहीं करती हैं। राधाके भावोंमें अपने मन एवं आत्माको अनुभावित करके ही मैं अपने माधुर्यका आस्वादन कर सकता हूँ। तुम्हारे सम्मुख मेरा कोई भी तत्त्व छिपा नहीं रह सकता। मैंने आत्मगोपनका प्रयास अवश्य किया, परन्तु तुम्हारे प्रेमके अतिशय प्रभावके कारण तुमने मेरा स्वरूपतत्त्व जान लिया अर्थात् मुझे पहचान ही लिया॥ 284–288॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे रामानन्द, तुम मुझे अलग एक 'गौरपुरुष'के रूपमें देख रहे हो, मैं वह नहीं हूँ, मैं वही गोपेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण हूँ, राधा-अङ्ग-स्पर्शके कारण मेरा यह गौरभाव ही नित्य है। राधिका कृष्णके अतिरिक्त और किसीको स्पर्श नहीं करती। श्रीराधिकाके भावमें अपने स्वरूप और मनको भावित करके मैं अपने कृष्णमाधुर्यरसका आस्वादन करता हूँ॥ 286–287॥

अनुभाष्य—प्राकृत सहजिया-सम्प्रदायके लोग पयार संख्या 286के 'गौर अङ्ग नहे' वचनके द्वारा श्रीगौर और श्रीकृष्णको अलग मानते हैं। वस्तुतः दोनों ही स्वयं रूप-विग्रह हैं अर्थात् श्रीगौर ही 'श्रीकृष्णस्वरूपमें'

सम्भोगरसमें नागर अथवा विषय-विग्रह हैं। और श्रीकृष्ण ही 'श्रीगौरस्वरूपमें' विप्रलम्भरसमें आश्रय-विग्रह-श्रीराधा-भावकान्तिमय श्रीकृष्णचैतन्य हैं। अप्राकृत शृङ्गार-रसराज विग्रह 'धीर-ललित' नायक स्वयंरूप श्रीनन्दनन्दनके अतिरिक्त अन्य कोई भी विष्णुविग्रह श्रीकृष्णकी पूर्ण-चिद्-शक्ति अथवा स्वरूपशक्ति महाभावस्वरूपा श्रीराधिकाके भोक्ता नहीं हो सकते। क्योंकि श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य समस्त विष्णु-विग्रहोंमें शृङ्गाररस एवं धीर-ललित नायकका भाव नहीं है और ऐश्वर्यभावकी प्रबलता है। इसलिये श्रीमतीके नाम "गोविन्दानन्दिनी, राधा, गोविन्दमोहिनी। गोविन्दसर्वस्व, सर्वकान्ता-शिरोमणि॥" हैं (आदिलीला 4/82 संख्या)। आदिलीला 3/86-89 संख्या भी देखें॥ **284-288**॥

गूढ़ भजनकी बात सर्वत्र प्रकाश योग्य नहीं :—

गुप्ते राखिह, काँहा ना करिह प्रकाश।
आमार वातुल-चेष्टा लोके उपहास॥ 289॥

महाप्रभु और श्रीराय, दोनों ही आश्रयके भावमें प्रमत्त :—

आमि—एक वातुल, तुमि—द्वितीय वातुल।
अतएव तोमाय-आमाय हइ समतुल॥"290॥

अनुवाद—तुम मेरे इस स्वरूप, तत्त्व एवं दर्शनको गुप्त ही रखना, कहीं प्रकाशित मत करना। मेरी उन्मत्तकी भाँति चेष्टाओंको लोग समझ न पानेके कारण वे उपहास करेंगे। मैं एक पागल हूँ और तुम दूसरे पागल हो, हम-तुम दोनों ही एक समान हैं॥"**289-290**॥

अनुभाष्य—केवल जड़ वस्तुओंमें आसक्तिके कारण तर्कनिष्ठ लोग इन सब बातोंको न समझनेके कारण उपहास करेंगे, इसलिये तुम इनको अभक्त अनधिकारीके सामने प्रकाशित मत करना। जो श्रीकृष्णप्रेममें मत्त हो जाता है, उसकी तर्कनिष्ठ सांसारिक जड़-चेष्टाएँ दूर हो जाती हैं। यद्यपि रागानुगा-भावकी प्रेम-चेष्टाएँ साधारण भोगी लोगोंके दृष्टिकोणसे 'पागलपन' मात्र लगती हैं, तथापि यह पागलपन नहीं, प्रेमोन्मत्तता है। सांसारिक लोगोंके विचारसे मैं भी पागल और तुम भी पागल हो। दोनोंमें समानता रहनेसे हम दोनों ही श्रीकृष्णप्रेमकी कथामें मत्त हैं। भक्तोंके दृष्टिकोणसे श्रीकृष्णसे इतर जड़रस-रसिक पागल और उपहासके पात्र हैं॥ **289-290**॥

महाप्रभुका श्रीरायके साथ दस दिन तक वास :—

एइरूप दशरात्रि रामानन्द-सङ्गे।
सुखे गोङाइला प्रभु कृष्णकथा-रङ्गे॥ 291॥

अनुवाद—इस प्रकार महाप्रभुने श्रीरामानन्द रायके साथ दस रात्रियाँ सुखपूर्वक कृष्णकथाके आनन्दमें बितायीं॥ **291**॥

महाप्रभु और श्रीरामानन्द-संवाद—एक बृहद् धातुकी खान, उसके मूल्यके भेदसे बहुतसी धातुओंका प्रकाश :—

निगूढ़ व्रजेर रस-लीलार विचार।
अनेक कहिल, तार ना पाइल पार॥ 292॥

अनुवाद—व्रजकी रसलीलाओंका विचार अति रहस्यमय है—अनेक प्रकारसे इसका वर्णन किया जाय, तो भी इनका पार नहीं पाया जा सकता॥ **292**॥

अप्राकृत पाँच रसोंकी उपमा :—

तामा, काँसा, रूपा, सोना, रत्नचिन्तामणि।
केह यदि काँहा पोता पाय एकखानि॥ 293॥

क्रमे उठाइते सेह उत्तम वस्तु पाय।
ऐछे प्रश्नोत्तर कैल प्रभु-रामराय॥ 294॥

अनुवाद—किसी व्यक्तिको एक ही खानमें जिस प्रकार ताँबा, काँसा, चाँदी, सोना, रत्न एवं चिन्तामणि दबी हुई मिल जाँय, तो क्रमसे खोदनेपर उत्तरोत्तर उत्तम वस्तु प्राप्त होती जाती है, ठीक इसी प्रकार श्रीराय रामानन्दके साथ प्रश्नोत्तरमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठतर तत्त्वकी प्राप्ति हुई है॥ **293-294**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीरामानन्द रायने श्रीमहाप्रभुके प्रश्नके पहले पाँच (इसी अध्यायकी 57 संख्यासे 67

तक) उत्तर दिये। उनमें पहला—ताँबेके समान साधारण धातु; दूसरा—काँसेके समान उससे उत्कृष्ट धातु, तीसरा—चाँदीके समान उससे भी उत्कृष्ट धातु, चौथा—सर्वोत्कृष्ट स्वर्ण-धातु हैं। किन्तु पाँचवाँ—ज्ञानशून्य भक्ति; वही रत्नचिन्तामणि अथवा साध्य वस्तु,—जिसके प्रभावसे अन्य चार धातुएँ धातुत्व प्राप्त करती है। पुनः छठे उत्तरको (68-81 संख्या तक) 'पहला' मानकर उसके बाद एक-एक करके जो पाँच प्रेम विषयक उत्तर दिये हैं, उनमें भी वैसी ही तुलना समझनी चाहिये॥ 293॥

अनुभाष्य—व्रजमें यमुनाजल, तटकी बालू, कदम्ब-वृक्षादि, गो-छड़ी-वेणु आदि शान्त-रसके विग्रहसमूह, चित्रक-पत्रक-रक्तकादि दास्यरसके विग्रहसमूह, श्रीदाम-सुदामादि सख्यरसके विग्रहसमूह, श्रीनन्द-यशोदादि वात्सल्यरसके विग्रहसमूह और श्रीमती राधिका, ललितादि गोपरमणियाँ अपने-अपने रसमें धनी हैं। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—ये पाँचों उत्तरोत्तर ताँबा, काँसा, चाँदी, सोना और रत्न-चिन्तामणिके तुल्य हैं।

'पोता'—भूमिके गर्भमें स्थित॥ 293॥

अमृतानुकणिका—"भागवतमें देवताओं और दैत्योंके द्वारा एक समुद्र मन्थनका वर्णन है। उसमें पहले कालकूट विष निकला, उसके बाद सुन्दर-सुन्दर रत्न निकले, फिर ऐरावत हाथी और फिर उसके बाद कौस्तुभ मणि, लक्ष्मीजी और फिर धन्वन्तरिके सहित अमृत निकला। श्रीचैतन्यचरितामृतमें भी एक समुद्रका मन्थन हुआ है। समस्त धर्मशास्त्र, वेद, उपनिषदादिको मिलाकर उस समुद्रका मन्थन गोदावरीके तटपर हुआ। गोदावरीके तटपर मन्थनमें पहले विषके समान वर्णाश्रम-धर्म निकला, अर्थात् लोग गृहस्थमें रहकर संसारमें अपनी समृद्धिके लिये भगवान्का भजन करते हैं, यही वह विष है। जो भी इसका पान करेगा, वह अवश्य ही मरेगा अर्थात् जन्म-मरणके चक्रमें ही पड़ा रहेगा। शङ्करजी इसका सामञ्जस्य कर सकते हैं। महाप्रभुके गृहस्थ भक्त श्रीवास पण्डितादि, महाराज जनक, गोपियाँ आदि—ये संसारमेंसे कुछ लाभ करके भगवान्का भजन कर सकते हैं। इसलिये महाप्रभुने इसे बाह्य कहा। ऐसे समुद्र मन्थन हो रहा था और भगवान्के चरणोंमें कर्मार्पण, सर्वधर्मत्याग, ज्ञानमिश्रा-भक्ति आदि निकले। जो इनके अधिकारी हैं, महाप्रभु उन्हें वह प्रदान करते जा रहे थे। अर्थात् जो शुद्ध भक्तिके अधिकारी नहीं है, सङ्गसिद्धा और आरोपसिद्धा भक्तिके ही अधिकारी हैं, महाप्रभु उनको यह सब देते जा रहे थे। ज्ञानमिश्रा भक्ति अर्थात् जो शत्रु-मित्रादि सबके प्रति समान है, समदर्शी है, जिसकी कोई सांसारिक आकाङ्क्षाएँ नही हैं, ऐसा व्यक्ति भक्त-सङ्गके द्वारा भगवान्की पराभक्तिको लाभ करता है, परन्तु अभी प्राप्त नहीं किया है।

तब श्रीरायने ज्ञानशून्य भक्तिको साध्यसार कहा। जो ज्ञानका प्रयास छोड़कर सन्तोंके मुखसे निकली भगवद्-कथाका श्रवण करते हैं और उसे ही अपना जीवन समझते हैं, वे ही प्रेमाभक्ति लाभ करते हैं। भागवतकी कथा बड़ी रसीली कथा है और सभी तत्त्व इसमें स्वयं आ जाते है। पृथक् रूपसे जाननेकी आवश्यकता नहीं है कि जीव-तत्त्व, माया-तत्त्व, ईश-तत्त्व आदि क्या हैं? ज्ञान, वैराग्य, तत्त्व-ज्ञानके लिये भी प्रयासकी कोई आवश्यकता नहीं है, ये सब सन्तोंके मुखसे झरनेकी भाँति उनके हृदयसे निकलकर आ जाते हैं। प्रेमके साथमें श्रवण करनेसे, उन कथाओंको नमस्कार करनेसे, कथावाचकको नमस्कार करनेसे, कथाके स्थानको नमस्कार करनेसे, श्रोताओंको नमस्कार करनेसे, वक्ताओंको भी नमस्कार करनेसे और उनकी कथाओंका निरन्तर चिन्तन करनेसे अजित भगवान् भी वशीभूत हो जाते हैं। इसके बाद श्रीरायने क्रमशः दास्य, साख्य, वात्सल्य और अन्तमें मधुर रसको साध्यसार कहा। समस्त शास्त्रोंका यही तात्पर्य है कि श्रीकृष्णके प्रति गोपियोंकी जैसी भक्ति है, उससे बढ़कर उससे श्रेष्ठ और कोई भक्ति नहीं है। यही अमृतकी खान है।

जैसा 'आराध्यो भगवान्...' श्लोकमें भी कहा है। अतः समुद्र-मन्थनके अन्तमें महाप्रभुने यही प्रदान किया है कि राधाजीका ही भाव ही सर्वोत्तम है। इससे बढ़कर और कोई भाव नहीं है। जो भजन करना चाहते हैं, उन्हें राधाजीकी अनुचरी बननेका लक्ष्य रखना चाहिये। अर्थात् राधाजीकी जो सखियाँ हैं अथवा दासियाँ हैं, उन दासियोंकी दासीकी दासीकी दासीके रूपमें उनकी चरणोंकी धूलि ग्रहणकर उनकी किङ्करी बन जाँय। यही सब शास्त्रोंका एकमात्र उद्देश्य है और भागवतका भी यह एकमात्र प्रतिपाद्य विषय है। यथार्थ समुद्र-मन्थन श्रीचैतन्यचरितामृतमें इस प्रकारसे दिया है। इसी रूपमें इसे ग्रहण करना चाहिये।"—श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी॥ 294॥

श्रीरायसे महाप्रभुके द्वारा विदायी-ग्रहण और आदेश देना :—

आर दिन राय-पाशे विदाय मागिला।
विदायेर काले ताँरे एइ आज्ञा दिला॥ 295॥

श्रीरायको नीलाचल जानेका आदेश और वहाँ पुनः मिलनेपर श्रीकृष्णकथा चर्चाका सुयोग :—

"विषय छाड़िया तुमि याह नीलाचले।
आमि तीर्थ करि' ताँहा आसिब अल्पकाले॥ 296॥

दुइजने नीलाचले रहिब एकसङ्गे।
सुखे गोङाइब काल कृष्णकथा-रङ्गे॥ "297॥

एत बलि' रामानन्दे करि' आलिङ्गन।
ताँरे घरे पाठाइया करिल शयन॥ 298॥

अनुवाद—अगले दिन महाप्रभुने श्रीरामानन्द रायसे विदायी माँगी। विदायीके समय महाप्रभुने उन्हें यह आज्ञा प्रदान की,—"सांसारिक विषयोंको छोड़कर अर्थात् सब प्रकारके दायित्वसे मुक्त होकर आप नीलाचल चले जाइये और मैं भी तीर्थभ्रमण करके थोड़े समयमें वहाँ आ जाऊँगा। तब हम दोनों एक साथ नीलाचलमें रहेंगे और परस्पर कृष्णकथाका श्रवण-कीर्तन करके सुखपूर्वक समय बितायेंगे।" इतना कहकर महाप्रभुने श्रीरामानन्दका आलिङ्गन किया और उन्हें घर भेजकर स्वयं शयन करने चले गये॥ 295–298॥

बजरङ्गजीके दर्शन करके महाप्रभुके द्वारा दक्षिण-यात्रा :—

प्रातःकाले उठि' प्रभु देखि' हनुमान्।
ताँरे नमस्करि' प्रभु दक्षिणे करिला प्रयाण॥ 299॥

अनुवाद—प्रातःकालमें उठकर महाप्रभुने श्रीहनुमानजीके दर्शन किये और उन्हें प्रणामकर दक्षिण भारतके तीर्थोंकी ओर प्रस्थान किया॥ 299॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'हनुमान'*—विद्यानगरमें श्रीहनुमानकी मूर्ति-पूजा होती है। उन ग्राम्य-देवताको प्रणाम करके महाप्रभु दक्षिण दिशाकी ओर गये॥ 299॥

महाप्रभुके दर्शनसे सम्पूर्ण विद्यानगरवासीकी वैष्णवता :—

'विद्यापुरे' नाना-मत लोक बैसे जत।
प्रभु-दर्शने 'वैष्णव' हैल छाड़ि' निजमत॥ 300॥

अनुवाद—'विद्यापुर' में अनेक मतावलम्बी लोग थे, परन्तु महाप्रभुका दर्शन करते ही वे लोग अपने मतको छोड़कर वैष्णव बन गये॥ 300॥

अनुभाष्य—*'विद्यापुरे'*—विद्यानगरमें॥ 300॥

महाप्रभुके विरहमें श्रीरायकी अवस्था :—

रामानन्द हैला प्रभुर विरहे विह्वल।
प्रभुर ध्याने रहे विषय छाड़िया सकल॥ 301॥

अनुवाद—इधर श्रीराय रामानन्द महाप्रभुके विरहमें अति व्याकुल हो गये और सारे विषयोंका त्याग करके महाप्रभुजीके ध्यानमें लगे रहते थे॥ 301॥

ग्रन्थमें महाप्रभु-श्रीरामानन्द संवादका संक्षिप्त वर्णन :—

संक्षेपे कहिलुँ रामानन्देर मिलन।
विस्तारि' वर्णिते नारे सहस्र-वदन॥ 302॥

अनुवाद—(ग्रन्थकार कह रहे हैं)—इस प्रकार महाप्रभुके साथ श्रीरामानन्द रायके मिलनका मैंने संक्षेपमें वर्णन किया। जिसका विस्तारपूर्वक वर्णन

अपने सहस्र मुखोंसे भगवान् श्रीशेष भी नहीं कर सकते॥ 302॥

चैतन्यलीला, श्रीराय-चरित्र और राधाकृष्णलीलाका परस्पर सम्बन्ध एवं अति सौभाग्यशालीव्यक्तिका ही इस लीलामें अधिकार और सुयोग :—

सहजे चैतन्य-चरित्र—घनदुग्धपूर।
रामानन्द-चरित्र ताहे खण्ड प्रचुर॥ 303॥

राधाकृष्णलीला—ताते कर्पूर-मिलन।
भाग्यवान् येइ, सेइ करे आस्वादन॥ 304॥

ये इहा एकबार पिये कर्णद्वारे।
तार कर्ण लोभे इहा छाड़िते ना पारे॥ 305॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभुका चरित्र स्वाभाविक रूपसे घन-दुग्ध (रबड़ी) के सदृश है और श्रीराय रामानन्दका चरित्र मीठी चीनीके समान है, जिससे मिलनेसे रबड़ी मधुरातिमधुर हो गयी है। श्रीराधाकृष्णकी लीला उसमें कर्पूरके समान मिश्रित है, जिसका कोई-कोई भाग्यवान् ही आस्वादन कर सकता है। जो भी मनुष्य अपने कर्ण-द्वारसे एक बार भी इसका पान कर लेता है, फिर तो माधुर्यके लोभी उसके कान इसे कभी छोड़ नहीं सकते॥ 303-305॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महाप्रभुका चरित्र रबड़ी-स्वरूप है, श्रीरामानन्दका चरित्र उसमें चीनीके समान है; एवं (उसमें) श्रीराधाकृष्णकी लीला—चीनीयुक्त-रबड़ीमें श्रीकर्पूर है॥ 303-304॥

आठवें अध्यायका अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

महाप्रभु-श्रीरामानन्द राय-संवाद-श्रवणके फलका वर्णन :—

'रसतत्त्व-ज्ञान' हय इहार श्रवणे।
'प्रेमभक्ति' हय राधाकृष्णेर चरणे॥ 306॥

चैतन्येर गूढ़तत्त्व जानि इहा हैते।
विश्वास करि' शुन, तर्क ना करिह चित्ते॥ 307॥

अनुवाद—इस मिलन-प्रसङ्गके श्रवणसे सम्पूर्ण रसतत्त्वका ज्ञान हो जाता है और श्रीराधाकृष्णके श्रीचरणकमलोंमें प्रेमभक्तिकी उपलब्धि हो जाती है। श्रीचैतन्य महाप्रभुका तत्त्व अत्यन्त रहस्यमय है—उस रहस्यका ज्ञान इसके श्रवणसे ही होता है। अपने मनमें किसी भी प्रकारका तर्क-कुतर्क न करके इसे विश्वासपूर्वक सुनो॥ 306-307॥

भगवान्‌का अचिन्त्यभाव—तर्कातीत :—

अलौकिक लीला एइ परम निगूढ़।
विश्वासे पाइये, तर्के हय बहुदूर॥ 308॥

अनुवाद—महाप्रभुकी यह अलौकिक लीला अति निगूढ़ और रहस्यमय है, जिसे विश्वास है, वही इसकी उपलब्धि कर सकता है, तर्क करनेसे इससे बहुत दूर रहोगे॥ 308॥

श्रीनिताइ-गौर-अद्वैतके ऐकान्तिक भक्तोंको ही श्रीकृष्णप्रेमकी प्राप्ति :—

श्रीचैतन्य-नित्यानन्द-अद्वैत-चरण।
याँहार सर्वस्व, ताँरे मिले एइ धन॥ 309॥

अनुवाद—महाप्रभु, श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीअद्वैताचार्य प्रभुके श्रीचरणकमलोंको जिन्होंने अपना सर्वस्व मान लिया है, उनको ही इस रस-सम्पत्तिकी प्राप्ति हो सकती है॥ 309॥

अनुभाष्य—"विश्वासे मिलये कृष्ण, तर्के बहुदूर" अर्थात् विश्वास रखनेवाले श्रद्धालुको क्रमशः आगे बढ़ते हुए इस अलौकिक परम-गोपनीय वास्तव-वस्तु श्रीकृष्णलीलाकी अनुभूति होती है। यह (श्रीकृष्णलीला) गुरु-परम्पराको न माननेवाले, वास्तव-सत्यमें संशयशील सेवा-विमुख जीवोंके सङ्कल्प-विकल्पात्मक मनोधर्मसे उत्पन्न और स्वेच्छानुसार गठन-योग्य काल्पनिक विचार नहीं है। जड़ीय तर्कका सहारा लेनेपर जड़-भोग प्रवृत्तिकी प्रचुरताके कारण चिन्मयलीला उनसे दूर रहती है। जैसे—(कठोपनिषद् 1/2/9)—

"नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ।"

हे प्रियतम नचिकेत! इस भगवद्-विषयणी मतिको

तर्कके द्वारा नष्ट करना उचित नहीं है। यह अन्य तत्त्वज्ञ व्यक्तिके द्वारा उपदिष्ट हुई है, इसलिये यह उत्तम ज्ञानका कारण होगी।

(मुण्डकोपनिषद् 3/2/3)—

"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥"

इस परमात्म-वस्तुका बहुत तर्क, मेधा (बुद्धि) या पाण्डित्यके द्वारा बोध नहीं होता। वे जिसको (भक्तिसे सन्तुष्ट होकर) वरण करते हैं, उसके द्वारा प्राप्य होती है। उसके निकट ही ये परमेश्वर अपनी श्रीमूर्ति प्रकाश करते हैं।

(ब्रः सूः 2/1/11)—

"तर्काप्रतिष्ठानात्।"

तर्कके द्वारा अप्राकृत तत्त्वकी क्या बात, प्राकृत विषयमें भी उसकी प्रतिष्ठा नहीं देखी जाती।

मानव प्राकृत लौकिक विचारपूर्ण ज्ञानकी सहायतासे अलौकिक तत्त्वको समझनेका प्रयास करनेपर उस तत्त्वसे दूर हो जाता है। यहाँ विचारणीय विषय (श्रीकृष्णप्रेमरस)-अलौकिक है। जड़-सहजिया या साहित्यिक व्यक्ति जो भी विचार अपने मन या बुद्धिसे करेंगे, वह लौकिक होगा, इसलिये (अलौकिक वस्तुको जाननेका) उनका प्रयास निरर्थक है। उस प्रकारके विचारोंको त्याग करके जो विष्णु-तत्त्वमें ऐकान्तिक श्रद्धावान् होते हैं, उनका सम्बन्धज्ञान ही शुद्ध और अनायास प्राप्य होता है॥307-309॥

ग्रन्थकारके द्वारा श्रीरायकी वन्दना :—

रामानन्द राये मोर कोटी नमस्कार।
याँर मुखे कैल प्रभु रसेर विस्तार॥310॥

दामोदर-स्वरूपेर कड़चा-अनुसारे।
रामानन्द-मिलन-लीला करिल प्रचारे॥311॥

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥312॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते मध्यखण्डे रामानन्दराय-सङ्गोत्सवो नामाष्टम-परिच्छेदः।

अनुवाद—श्रीरामानन्द रायके श्रीचरणकमलोंमें मैं कोटि-कोटि बार प्रणाम करता हूँ, जिनके मुखारविन्दसे महाप्रभुने प्रेमरस-सम्पत्तिका विस्तार करवाया है। इस प्रकार मैंने श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामीके कड़चाके अनुसार महाप्रभु और श्रीरामानन्द रायके मिलनकी लीलाका वर्णन किया है। श्रीरूप-रघुनाथ गोस्वामीके चरणकमलोंकी कृपाभिलाषा करते हुए कृष्णदास इस श्रीचैतन्यचरितामृतका वर्णन कर रहा है॥310-312॥

अनुभाष्य—ग्रन्थकार प्रायः प्रत्येक अध्यायके अन्तमें इस प्रकार श्रौत-पन्थामें अर्थात् गुरुके प्रति अपनी अचला (अटल) निष्ठा प्रदर्शित कर रहे हैं। यह 'महाप्रभु-रामानन्द-मिलन' घटना श्रील स्वरूप दामोदरके कड़चाके अनुसार ही लिखित और वर्णित हुई है। सांसारिक लोग अपने अभिमानके कारण जैसे गुरुमुखसे सुनी कथाका परित्याग करके स्वकपोल-कल्पित (मनघड़न्त) कथा बोलते हैं, यह महाप्रभु-रामानन्द-मिलन लीला वैसी ग्रन्थकारकी दम्भपूर्ण चेष्टा नहीं है—यही ग्रन्थकारके प्रतिपादन (स्थापित) करनेका उद्देश्य है॥311॥

अष्टम अध्यायका अनुभाष्य समाप्त॥

श्रीचैतन्यचरितामृतके मध्यखण्डमें रामानन्दराय-सङ्गोत्सव नामक आठवाँ अध्याय समाप्त।

चित्र–9

नौवाँ अध्याय

कथासार—इस अध्यायमें विद्यानगरसे महाप्रभुका गौतमीगङ्गा, मल्लिकार्जुन, अहोबल-नृसिंह, सिद्धवट, स्कन्दक्षेत्र, त्रिमठ, वृद्धकाशी, बौद्धस्थान, त्रिपति, त्रिमल्ल, पाना-नृसिंह, शिवकाञ्ची, विष्णुकाञ्ची, त्रिकालहस्ती, वृद्धकोल, शियालीभैरवी, कावेरीतट और कुम्भकर्णकपालसे होते हुए श्रीरङ्गक्षेत्र जाकर श्रीव्येङ्कट भट्टको सपरिवार कृष्ण-भक्त बनानेका वृत्तान्त है। श्रीरङ्गम्‌से ऋषभपर्वतपर गये और वहाँ श्रीपरमानन्द पुरी-गोसाईंके साथ मिलन हुआ। श्रीपुरी-गोस्वामीने पुरुषोत्तमकी यात्रा की एवं महाप्रभु सेतुबन्धकी ओर चल दिये। श्रीशैलपर्वतपर ब्राह्मण-ब्राह्मणीके वेशमें रह रहे शिव-दुर्गाके साथ बातचीत की। वहाँसे कामकोष्ठिपुरीको पार करके दक्षिण मथुरामें पहुँचे। वहाँ रामभक्त वैरागी ब्राह्मणके साथ वार्त्तालाप हुआ। बादमें कृतमालामें स्नान करके महेन्द्र-पर्वतपर श्रीपरशुरामके दर्शन किये। वहाँसे महाप्रभु सेतुबन्ध गये, वहाँ उन्होंने धनुस्तीर्थमें स्नान और श्रीरामेश्वरके दर्शन करके कूर्मपुराणके मायासीता-सम्बन्धी पुराने पन्नोंको संग्रह करके पूर्वोक्त रामदास ब्राह्मणको लाकर दिये। उसके बाद पाण्डुदेशमें ताम्रपर्णी, बादमें नयत्रिपदी, चियड़तला, तिलकाञ्ची, गजेन्द्र-मोक्षण, पानागड़ि, चाम्तापुर, श्रीवैकुण्ठ, मलयपर्वत, धनुस्तीर्थ, कन्याकुमारी होकर मल्लार देशमें उन्होंने भट्टथारी लोगोंको देखा। उनके चङ्गुलसे काला-कृष्णदासका उद्धार करके लाये। बादमें पयस्विनीके तटपर 'ब्रह्मसंहिता' (पाँचवाँ अध्याय) संग्रह किया। वहाँसे पयस्विनी, शृङ्गवेर-पुरीमठ, मत्स्यतीर्थ होकर उडुपी गाँवमें मध्वाचार्यके गोपालका दर्शन किया। तत्त्ववादियोंको विचारमें पराजित करके फल्गुतीर्थ, त्रिकूप, पञ्चाप्सरा, सूर्पारक, कोलापुर होकर पाण्डेरपुर पहुँचकर श्रीरङ्गपुरीसे शङ्करारण्यकी सिद्धि प्राप्ति (अप्रकट होने)का संवाद सुना। कृष्णवेण्वाके तटपर वैष्णव-ब्राह्मणोंके समाजसे श्रीबिल्वमङ्गल-विरचित कृष्णकर्णामृत ग्रन्थका संग्रह किया। वहाँसे ताप्ती, माहिष्मतीपुर, नर्मदा-तट, ऋष्यमूक-पर्वत होकर दण्डकारण्यमें सप्ततालका उद्धार किया। वहाँसे पम्पा-सरोवर, पञ्चवटी, नासिक, ब्रह्मगिरि, गोदावरीके जन्मस्थान कुशावर्त्त आदि बहुतसे तीर्थोंके दर्शन करके विद्यानगरमें पहुँचे। विद्यानगरसे पूर्व दिशावाले मार्गसे आलालनाथके दर्शन करके श्रीक्षेत्रमें लौटे।

—(अमृतप्रवाहभाष्य)

अवैष्णवमतग्रस्त दक्षिण देशवासियोंका
उद्धार करनेवाले श्रीगौरहरि :—

नानामतग्राहग्रस्तान दाक्षिणात्यजनद्विपान्।
कृपारिणा विमुच्यैतान् गौरश्चक्रे स वैष्णवान्॥1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—बौद्ध-जैन-मायावादी आदि अनेक प्रकारके मतरूपी मगरमच्छोंसे ग्रस्त गजेन्द्र-स्थानीय दक्षिण भारतवासियोंको कृपारूपी चक्रके द्वारा श्रीगौरचन्द्रने उद्धार करके वैष्णव बनाया था॥1॥

अनुभाष्य—

सः गौरः नानामतग्राहग्रस्तान् (नानामतानि एव ग्राहाः नक्रकुम्भीरमकराः तैः ग्रस्तान् कवलितान्) दाक्षिणात्यजनद्विपान् (दाक्षिणात्यजनाः एव द्विपाः हस्तिनः तान्) कृपारिणा (कृपा-चक्रेण) [तेभ्यः] विमुच्य (अवैष्णवमतवादात् उद्धृत्य) एतान् वैष्णवान् (कृष्ण-पूजारतान्) चक्रे।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥1॥

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥2॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभुकी जय हो, जय हो,

श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो। श्रीअद्वैतचन्द्रकी जय हो और समस्त गौरभक्तवृन्दकी जय हो॥2॥

महाप्रभुकी दक्षिण-यात्रा :—

दक्षिणगमन प्रभुर अति विलक्षण।
सहस्र सहस्र तीर्थ कैल दरशन॥3॥

अनुवाद—महाप्रभुकी दक्षिण यात्रा बड़ी ही विलक्षण थी। इस यात्रामें उन्होंने हजारों-हजारों तीर्थोंका दर्शन किया था॥3॥

महाप्रभुके दर्शनोंके फलस्वरूप तीर्थोंका भी महातीर्थ होना और उससे लोगोंका उद्धार :—

सेइ सब तीर्थ स्पर्शि' महातीर्थ कैल।
सेइ छले सेइ देशेर लोक निस्तारिल॥4॥

अनुवाद—महाप्रभुने उन सब तीर्थोंको स्पर्श करके उन्हें महातीर्थ बना दिया। तीर्थ दर्शनके बहाने महाप्रभुने दक्षिण भारतके लोगोंका उद्धार किया॥4॥

महाप्रभुके द्वारा दाँये-बाँये भ्रमणके फलस्वरूप वर्णनमें भौगोलिक-क्रमभङ्ग, यहाँ केवल दिग्दर्शन मात्र :—

सेइ सब तीर्थेर क्रम कहिते ना पारि।
दक्षिण-वामे तीर्थ-गमन हय फेराफेरि॥5॥

अतएव नाममात्र करिये गणन।
कहिते ना पारि तार यथा अनुक्रम॥6॥

अनुवाद—(ग्रन्थकार कह रहे हैं)—महाप्रभु जिन-जिन तीर्थोंमें गये, मैं काल और भौगोलिक क्रमानुसार उन सबको नहीं लिख सकता, क्योंकि वे तीर्थ-भ्रमणमें कभी दाहिनीसे बाँये दिशाकी ओर, और बाँयेसे दाहिनी दिशाकी ओर जाते थे। इसलिये मैं केवल उन तीर्थोंके नामोंका उल्लेख कर रहा हूँ, क्रमानुसार उन तीर्थोंका वर्णन नहीं कर पाऊँगा॥5-6॥

महाप्रभुके दर्शनमात्रसे लोगोंमें वैष्णवता :—

पूर्ववत् पथे याइते ये पाय दरशन।
येइ ग्रामे याय, से ग्रामेर यत जन॥7॥

सबेइ वैष्णव हय, कहे 'कृष्ण' 'हरि'।
अन्य ग्राम निस्तारये सेइ 'वैष्णव' करि'॥8॥

अनुवाद—पहले जैसे वर्णन किया है, मार्गमें महाप्रभुके दर्शन करनेवाले व्यक्ति और महाप्रभु जिस गाँवमें जाते, उस गाँवके सभी लोग वैष्णव बनकर 'कृष्ण' 'हरि' कीर्तन करने लगते। इस प्रकार महाप्रभु अन्य जिन भी ग्रामोंमें गये वहाँके वासी सभी वैष्णव बन गये और उनका उद्धार हो गया॥7-8॥

उस समय दक्षिणदेशके लोगोंकी अवस्था :—

दक्षिण देशेर लोक अनेक प्रकार।
केह ज्ञानी, केह कर्मी, पाषण्डी अपार॥9॥

अनुवाद—दक्षिण भारतमें अनेक प्रकारके लोग थे। कोई तार्किक ज्ञानी, और कोई कर्मी थे तथा पाखण्डी तो अपार थे॥9॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'पाषण्डी'*—शुद्धभक्तिविरुद्ध ज्ञानी और कर्मवादी॥9॥

महाप्रभुकी कृपासे कर्मी, ज्ञानी और पाखण्डीको भी वैष्णवताकी प्राप्ति :—

सेइ सब लोक प्रभुर दर्शनप्रभावे।
निज-निज-मत छाड़ि' हइल वैष्णवे॥10॥

अनुवाद—वे सब लोग महाप्रभुके दर्शनके प्रभावसे अपने-अपने मतको छोड़कर वैष्णव बन गये॥10॥

रामोपासक माधव और 'श्रीवैष्णवों'के द्वारा कृष्णभजन आरम्भ :—

वैष्णवेर मध्ये राम-उपासक सब।
केह हय 'तत्त्ववादी', केह हय 'श्रीवैष्णव'॥11॥

सेइ सब वैष्णव महाप्रभुर दर्शने।
कृष्ण-उपासक हैल, लय कृष्णनामे॥12॥

अनुवाद—दक्षिण भारतके वैष्णवोंमें अधिकांश श्रीरामचन्द्रके उपासक थे। अन्य कोई 'तत्त्ववादी' और

कोई 'श्रीवैष्णव' थे। महाप्रभुके दर्शनोंसे वे सब विभिन्न वैष्णव श्रीकृष्णके उपासक बन गये और श्रीकृष्णनामका कीर्तन करने लग गये॥ 11–12॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'राम उपासक'*—रामात् वैष्णव। *'तत्त्ववादी'*—मध्वाचार्य-मतके तत्त्वको स्वीकारकर जो शुद्धद्वैतवाद स्थापित करते हैं। *'श्रीवैष्णव'*—रामानुज-सम्प्रदायी वैष्णव॥ 11॥

अनुभाष्य— *'तत्त्ववादी'*—श्रीमाध्व-वैष्णवोंको श्रीशाङ्कर-मायावादियोंसे पृथक् करनेके लिये माध्व-वैष्णवोंको 'तत्त्ववादी' कहा है। तत्त्ववादी-आचार्यगण केवलाद्वैतवादके काल्पनिक विचारोंसे पुष्ट निर्विशेष-'ब्रह्मवाद'का खण्डन करके 'भगवद्-तत्त्व' स्थापित करते हैं।

'माध्व वैष्णवगण'—ब्रह्मवैष्णव (ब्रह्म सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त) हैं, इसलिये वे आदिगुरु ब्रह्माजीकी (दशम स्कन्धमें वर्णित) मोहित अवस्थाको स्वीकार नहीं करते, क्योंकि श्रीमन्मध्वाचार्यने स्वरचित 'भागवत-तात्पर्य' टीकामें इस 'ब्रह्ममोहन-लीला'का वर्णन नहीं किया है। श्रीमाध्व-वैष्णवोंमें एक प्रमुख वैष्णव श्रीमाधवेन्द्रपुरीने **तत्त्ववादके चरम उद्देश्य प्रेमभक्तिका** प्रचार किया। गौड़ीय-वैष्णव माध्व होनेपर भी 'तत्त्ववादी' नहीं कहलाते।

'श्रीवैष्णव'—श्रीरामानुजीय सम्प्रदायकी मूलगुरु 'लक्ष्मी' होनेके कारण उस सम्प्रदायके वैष्णव 'श्रीवैष्णव'के नामसे जाने जाते हैं।

'तत्त्ववादिगण' श्रीकृष्णके उपासक होनेपर भी और 'श्रीवैष्णवगण' श्रीलक्ष्मी-नारायणके उपासक होनेपर भी, दोनोंमें ही श्रीरामचन्द्रकी उपासनाकी प्रबलता देखी जाती है।

तत्त्ववादि-सम्प्रदायके वर्तमानकालके लेखक श्रीपद्मनाभाचार्य कहते हैं,—हमारे प्रधान-प्रधान श्रीमाध्वमठोंमें श्रीराम-सीता विग्रहोंकी ही विशेष रूपसे पूजा होती है। 'अध्यात्म-रामायण'-नामक ग्रन्थके बारहसे पन्द्रह अध्यायों तकमें मूल श्रीराम-सीताकी मूर्त्तिकी कहानी इस प्रकार लिखी है—'किसी ब्राह्मणने प्रतिज्ञा की थी कि श्रीरामचन्द्रके प्रतिदिन दर्शन किये बिना वे कुछ भी नहीं खायेंगे। एक बार श्रीरामचन्द्र कार्यमें व्यस्त रहनेके कारण एक सप्ताह तक प्रजाके सामने नहीं आ सके; इसलिये राम-दर्शननिष्ठ ब्राह्मणने सात दिन तक पानीकी एक बूँद तक भी नहीं ग्रहण नहीं की। अन्तमें आँठवे दिनके बाद नौवे दिनमें ब्राह्मणने श्रीरामचन्द्रके निकट उपस्थित होकर उनके दर्शन प्राप्त किये। ब्राह्मणकी निष्ठाको सुनकर श्रीरामचन्द्रने लक्ष्मणजीको आदेश दिया कि वे अपने घरमें रखी हुई राम-सीताकी युगलमूर्ति इस वास्तविक भक्त ब्राह्मणको दे दें। ब्राह्मण लक्ष्मणजीसे दोनों श्रीविग्रहोंको प्राप्त करके अपने जीवन भर उनकी सेवा करता रहा और शरीर त्यागते समय उसने उन श्रीविग्रहोंको श्रीहनुमानको दे दिया। श्रीहनुमानने इन दोनों विग्रहोंको बहुत समय तक वक्षपर धारण करके उनकी सेवा की। बहुत समयके बाद भीमसेन गन्धमादन पर्वतपर श्रीहनुमानके पास गये। श्रीहनुमानने विदा करते समय इन दोनों विग्रहोंको भीमसेनको प्रदान किया। भीमसेनने उन्हें लाकर अपने राजमहलमें संरक्षित रखा। उस राजवंशके अन्तिम राजा 'क्षेमाकान्त'के समय तक यह दोनों विग्रह राजमहलमें ही सेवित हुए। बादमें वे उत्कल (उड़ीसा)के गजपति-राजाओंके हाथोंमें आये तथा उनके राजकोषमें संरक्षित थे। श्रीमध्वाचार्यने अपने शिष्य श्रीनरहरितीर्थको राजकोषसे उन मूल रामसीता विग्रहोंको लेकर उनकी सेवा करनेकी अनुमति दी। ये रामसीताके विग्रह इक्ष्वाकु-राजाके समयसे सूर्यवंशीय राजाओंके द्वारा महलोंमें सेवित होते थे। श्रीरामचन्द्रके जन्मके पहलेसे ही दशरथ महाराज इनकी सेवा करते थे। बादमें लक्ष्मणजी जब उन श्रीविग्रहोंकी सेवा करते थे, तब उन्होंने श्रीरामचन्द्रके आदेशसे उन्हें पूर्वोक्त ब्राह्मणको अर्पित किये थे।' श्रीमध्वाचार्यने अपने तिरोभावसे तीन मास सोलह दिन पहले इन दोनों विग्रहोंको प्राप्त करके उडुपी गाँवके मूल-मठ उत्तर-राढ़ी-मठमें स्थापित किया, तबसे श्रीमाध्व आचार्यगण उनके अधिकारी हैं।

रामानुजीय-सम्प्रदायमें श्रीरामायणको गुरुके रूपमें स्वीकार करनेकी पद्धति प्रचलित है। रामानुजीय भक्त तिरुपति और अन्यान्य स्थानोंपर श्रीराममूर्तिकी पूजा करते हैं। रामानुजीय-सम्प्रदायसे उत्पन्न 'रामानन्दी', 'जमायेत्' या 'रामात्'-सम्प्रदायमें श्रीरामसीताकी उपासना प्रबलरूपसे प्रतिष्ठित हैं। रामानुजीय भक्त श्रीकृष्णकी अपेक्षा श्रीरामके अधिक अनुगत हैं॥ 11॥

मार्गपर चलते हुए महाप्रभुके द्वारा गान :—

राम! राघव! राम! राघव!
राम! राघव! पाहि माम्।
कृष्ण! केशव! कृष्ण! केशव!
कृष्ण! केशव! रक्ष माम्॥ 13॥

गोमती गङ्गा :—

एइ श्लोक पथे पड़ि' करिला प्रयाण।
गौतमी-गङ्गाय याइ' कैल गङ्गास्नान॥ 14॥

अनुवाद—महाप्रभु मार्गमें यह गान करते चल रहे थे—'हे राम! हे राघव! आप मेरा पालन कीजिये। हे कृष्ण! हे केशव! आप मेरी रक्षा कीजिये।' चलते-चलते महाप्रभु गौतमी-गङ्गा पहुँचे और उन्होंने वहाँ स्नान किया॥ 13–14॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रील कविराज गोस्वामीने जिस तीर्थ दर्शनका वर्णन किया है, उसमें भौगोलिक क्रम नहीं है, यह उन्होंने स्वयं भी स्वीकार किया है। गोविन्ददास-कृत कड़चेमें (?) जो क्रम प्राप्त होता है, उसकी भौगोलिक विवरणके साथ बहुत कुछ समानता है। पाठकवर्ग उसी ग्रन्थका क्रम देखकर विचार करेंगे। गोविन्ददासके मतानुसार राजमाहेन्द्रिसे महाप्रभु त्रिमन्दे गये थे और वहाँसे ढुण्डिराम तीर्थ गये। इस ग्रन्थके मतानुसार राजमाहेन्द्रिसे गौतमी-गङ्गा जाकर महाप्रभुने मल्लिकार्जुन तीर्थके लिये गमन किया॥ 14॥

अनुभाष्य—*'गौतमी गङ्गा'*—गोदावरी नदीकी एक धारा है। राजमाहेन्द्रिके दूसरे तटपर गौतम-ऋषिका आश्रम था, इसलिये गोदावरीका नाम वहाँ गौतमी-गङ्गा है॥ 14॥

मल्लिकार्जुन-तीर्थमें रामदास शम्भुका दर्शन :—

मल्लिकार्जुन-तीर्थे याइ' महेश देखिल।
ताँहा सब लोके कृष्णनाम लओयाइल॥ 15॥

अनुवाद—मल्लिकार्जुन-तीर्थमें जाकर महाप्रभुने श्रीमहेशका दर्शन किया। महाप्रभुने उस तीर्थके सभी लोगोंसे श्रीकृष्णनाम कीर्तन करवाया॥ 15॥

अनुभाष्य—*'मल्लिकार्जुन'*—श्रीशैलम्; यह कर्णुलसे सत्तर मील दूर कृष्णा नदीके दक्षिण तटपर अवस्थित है। घिरी हुई चारदीवारीके केन्द्रमें प्रधानदेवता 'मल्लिकार्जुन' शिवका मन्दिर है। यह ज्योतिर्लिङ्गोंमें एक प्रसिद्ध शिवलिङ्ग है (कर्णुल म्यानुयेल)॥ 15॥

अहोबल नृसिंहका दर्शन :—

रामदास महादेवे करिल दरशन।
अहोबल-नृसिंहेरे करिला गमन॥ 16॥

अनुवाद—रामदास महादेवके दर्शन करके महाप्रभु अहोबल-नृसिंहदेवके दर्शनके लिये गये॥ 16॥

अनुभाष्य—*'अहोबल-नृसिंह'*—मध्यलीला 1/106 देखें॥ 16॥

सिद्धवटमें श्रीराम और सीताके विग्रहोंका दर्शन :—

नृसिंह देखिया ताँरे कैल नति-स्तुति।
सिद्धवट गेला याँहा मूर्त्ति सीतापति॥ 17॥

अनुवाद—महाप्रभुने नृसिंह भगवान्के दर्शन करके उनको प्रणाम और स्तुति की। वहाँसे वे सिद्धवट पहुँचे, जहाँ सीतापति श्रीरामचन्द्रका विग्रह विराजमान है॥ 17॥

अनुभाष्य—*'सिद्धवट'*—कुडापा नगरके दस मील पूर्वमें स्थित है। यह स्थान *'सिधौट'*—नामसे और पहले किसी समय 'दक्षिण-काशी'के नामसे भी प्रसिद्ध था। 'आश्रम-वटवृक्ष'से इस नाम 'सिद्धवट'की उत्पत्ति हुई है (कुडापा म्यानुयेल)॥ 17॥

वहाँ रामसेवक एक वैष्णव ब्राह्मणके द्वारा महाप्रभुको भिक्षा प्रदान :—

रघुनाथ देखि' कैल प्रणति स्तवन।
ताँहा एक विप्र प्रभुर कैल निमन्त्रण॥ 18॥

सेइ विप्र रामनाम निरन्तर लय।
'राम' 'राम' बिना अन्य वाणी ना कहय॥ 19॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीरघुनाथजीके दर्शन करके उन्हें प्रणामकर उनकी स्तव-स्तुति की। वहाँ एक ब्राह्मणने महाप्रभुको भोजनके लिये निमन्त्रण दिया। वह ब्राह्मण निरन्तर रामनामका जप किया करता था। 'राम' 'राम'के अतिरिक्त वह मुखसे कुछ भी नहीं बोलता था॥ 18-19॥

उसके घरमें एक दिन वास और उसपर कृपा :—

सेइ दिन ताँर घरे रहि' भिक्षा करि'।
ताँरे कृपा करि' आगे चलिला गौरहरि॥ 20॥

अनुवाद—उस दिन महाप्रभु उस ब्राह्मणके घरमें रहे और भिक्षा ग्रहण की। उसपर कृपा करके महाप्रभु आगे यात्रापर चल पड़े॥ 20॥

स्कन्दक्षेत्रमें स्कन्द और त्रिमठमें वामन-विग्रहका दर्शन :—

स्कन्दक्षेत्र-तीर्थे कैल स्कन्द-दरशन।
त्रिमठ आइला ताँहा देखि' त्रिविक्रम॥ 21॥

अनुवाद—स्कन्दक्षेत्र-तीर्थमें आकर महाप्रभुने स्कन्द (कार्त्तिकेय)का दर्शन किया। फिर त्रिमठमें आकर उन्होंने श्रीत्रिविक्रम (वामन भगवान्)का दर्शन किया॥ 21॥

अनुभाष्य— *'स्कन्द'*—कार्त्तिकेय। यह तीर्थ हैदराबादमें है॥ 21॥

पूर्वोक्त ब्राह्मणका रामनामके बदले कृष्णनाम ग्रहण :—

पुनः सिद्धवट आइला सेइ विप्र-घरे।
सेइ विप्र कृष्णनाम लय निरन्तरे॥ 22॥

अनुवाद—त्रिमठसे महाप्रभु पुनः सिद्धवटमें उसी ब्राह्मणके घर लौटकर आये। तब वह ब्राह्मण निरन्तर कृष्णनामका जप कर रहा था॥ 22॥

महाप्रभुके प्रश्न और विप्रका उत्तर :—

भिक्षा करि' महाप्रभु ताँरे प्रश्न कैल।
"कह विप्र, एइ तोमार कोन् दशा हैल?॥ 23॥

पूर्वे तुमि निरन्तर लैते रामनाम।
एबे केने निरन्तर लओ कृष्णनाम॥"24॥

अनुवाद—महाप्रभुने उस ब्राह्मणके घर भिक्षा ग्रहण करनेके बाद उससे पूछा,—"हे ब्राह्मण! कहो तुम्हारी यह दशा कैसे हुई? पहले तो तुम निरन्तर रामनामका जाप करते थे, अब क्यों निरन्तर कृष्णनामका कीर्तन कर रहे हो?॥"23-24॥

विप्र बले,—"एइ तोमार दर्शन-प्रभाव।
तोमा देखि' गेल मोर आजन्म-स्वभाव॥ 25॥

बाल्यावधि रामनाम-ग्रहण आमार।
तोमा देखि' कृष्णनाम आइल एकबार॥ 26॥

सेइ हैते कृष्णनाम जिह्वाते बसिला।
कृष्णनाम स्फुरे, रामनाम दूरे गेला॥ 27॥

बाल्यकाल हैते मोर स्वभाव एक हय।
नामेर महिमा-शास्त्र करिये सञ्चय॥ 28॥

अनुवाद—उस ब्राह्मणने उत्तर दिया,—"यह आपके दर्शनका प्रभाव है। आपके दर्शनसे मेरा आजन्म-स्वभाव चला गया। मैं बाल्यकालसे ही श्रीरामनाम करता था, परन्तु आपके दर्शनसे मेरे मुखमें एकबार श्रीकृष्णनाम उदित हुआ। तभीसे श्रीकृष्णनाम मेरी जिह्वापर बैठ गया और अब जिह्वापर श्रीकृष्णनाम ही स्फुरित होता है और श्रीरामनाम दूर चला गया। बाल्यकालसे मेरा एक स्वभाव है कि मैं शास्त्रोंसे नामकी महिमाको संग्रह करता आया हूँ॥ 23-28॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जन्मसे ही जो श्रीरामनाम-जप

करनेका स्वभाव था, वह परिवर्तित होकर श्रीकृष्णनाम-जपका स्वभाव हो गया॥ 25॥

'राम'-शब्दका व्युत्पतिगत अर्थ :—
(पद्मपुराणमें श्रीरामचन्द्र शतनामस्त्रोतका आठवाँ श्लोक)—

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥ 29॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 29॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अनन्त सत्यानन्द-चिदात्मस्वरूप परमतत्त्वमें सभी योगी रमण (आनन्द प्राप्त) करते हैं। इसलिये परमब्रह्म-वस्तुको रामनामसे कहा जाता है॥ 29॥

अनुभाष्य—

योगिनः (विषयनिवृत्ताः) अनन्ते (जड़ातीते) सत्यानन्दे चिदात्मनि (सच्चिदानन्दे) रमन्ते। इति [अतः] रामपदेन असौ (रामचन्द्रः) परं ब्रह्म अभिधीयते (कथ्यते)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 29॥

'कृष्ण'-शब्दका व्युत्पतिगत अर्थ :—
श्रीधरस्वामी-उद्धृत महाभारतमें उः पः (71/4)—

कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः।
तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते॥ 30॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 30॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'कृष-धातु'*—भू अर्थात् आकर्षक सत्त्वा-वाचक है; ण-शब्द निवृत्ति अर्थात् परमानन्द-वाचक है। कृष-धातुमें ण-प्रत्यय लगानेसे उन दोनोंके एक होनेपर 'कृष्ण'-शब्दसे परमब्रह्म प्रतिपादित हुए हैं॥ 30॥

अनुभाष्य—

कृषिः-शब्दः भूः-वाचकः (सत्ता-निर्धारकः) णश्च निर्वृत्ति-वाचकः (आनन्दाभिधः); तयोः (द्वयोः) ऐक्यं कृष्णः परं ब्रह्म इति अभिधीयते (कथ्यते)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 30॥

रामनाम और कृष्णनामका लीलागत वैचित्र्य :—

परंब्रह्म दुइनाम समान हइल।
पुनः आर शास्त्रे किछु विशेष पाइल॥ 31॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 31॥

अमृतप्रवाह भाष्य—पूर्वोक्त दो श्लोकोंका तात्पर्य लेनेपर, राम और कृष्ण नाममें परमब्रह्म समान अर्थवाले हैं, तथापि शास्त्रोंमें और भी कुछ कहा गया है, उसे बादमें कहा जा रहा है॥ 31॥

अनुभाष्य—'राम' और 'कृष्ण', ये दोनों नाम ही परब्रह्मके हैं। उनमें समानता वर्तमान है। परन्तु शास्त्रोंमें इन दोनों नाम-परब्रह्मके रस-तारतम्यके वैशिष्ट्यका अनुसन्धान करनेपर एक विशेष बात समझमें आती है॥ 31॥

सहस्त्र विष्णुनामके समान एक रामनाम :—
पद्मपुराणमें श्रीरामचन्द्र शतनामस्तोत्र 9वाँ श्लोक,
उत्तरखण्डमें श्रीविष्णु सहस्रनाम-स्तोत्रमें (72/335)—

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनामभिस्तुल्यं रामनाम वरानने॥ 32॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 32॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'राम' 'राम' 'राम' कहकर मनोरम जो राम हैं, मैं उनमें रमण (आनन्द प्राप्त) करता हूँ। हे वरानने (सुन्दरी), एक राम-नाम सहस्त्र विष्णुनामोंके तुल्य है॥ 32॥

अनुभाष्य—

हे वरानने, अहं राम रामेति रामेति सङ्कीर्त्य मनोरमे (मनोहरे) रामे रमे (आनन्दं प्राप्नोमि)। [एकं] राम-नाम सहस्रनामभिः (विष्णुसहस्रनामभिः) तुल्यम्।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 32॥

तीन बार रामनामके समान एक कृष्णनाम :—
(ब्रह्माण्डपुराणका वचन)—

सहस्रनाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्त्या तु यत्फलम्।
एकावृत्त्या तु कृष्णस्य नामैकं तत् प्रयच्छति॥ 33॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 33॥

अमृतप्रवाह भाष्य—(विष्णुके) पवित्र सहस्त्रनामोंका तीनबार पाठ करनेसे जो फल होता है, कृष्णनाम एक

बार उच्चारित होनेसे ही वही फल देते हैं। तात्पर्य यह है कि एक रामनाम सहस्र विष्णुनामके समान है। इसलिये तीन बार रामनामका फल एक बार कृष्णनामसे ही प्राप्त होता है॥ 33॥

अनुभाष्य—

पुण्याणां (पवित्राणां) सहस्रनाम्नां (विष्णुसहस्रनाम्नां) त्रिरावृत्त्या (वारत्रयपठनेन) यत् फलं प्राप्ननोति, कृष्णस्य एकं नामं एकवृत्त्या (सकृतदुच्चारणेन) तत् फलं तु प्रयच्छति (ददाति)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 33॥

श्रीकृष्णनामका सर्वश्रेष्ठ माहात्म्य :—

एइ वाक्ये कृष्णनामेर महिमा अपार।
तथापि लइते नारि, शुन हेतु तार॥ 34॥

ब्राह्मणके द्वारा पहले श्रीकृष्णनाम नहीं लेनेका हेतु :—

इष्टदेव राम, ताँर नामे सुख पाइ।
सुख पाञा रामनाम रात्रिदिन गाइ॥ 35॥

श्रीकृष्णविग्रह ही श्रीकृष्णनाम प्रदान करनेमें समर्थ होनेके कारण ब्राह्मणका महाप्रभुमें श्रीकृष्ण-ज्ञान :—

तोमार दर्शने यबे कृष्णनाम आइल।
ताहार महिमा तबे हृदये लागिल॥ 36॥

सेइ कृष्ण तुमि—इहा साक्षात् निर्धारिल।"
एत कहि' विप्र प्रभुर चरणे पड़िल॥ 37॥

अनुवाद—यद्यपि इस श्लोकमें कहा गया है कि श्रीकृष्णनामकी महिमा अपार है, तथापि मैं श्रीकृष्णनाम नहीं लेता था, इसका कारण सुनिये। मेरे इष्टदेव श्रीरामचन्द्र हैं और उनके नामके कीर्तनसे मुझे बहुत आनन्द मिलता था। इसलिये मैं रात-दिन श्रीरामनामका कीर्तन करते हुए आनन्द प्राप्त करता था। परन्तु आपके दर्शन करके जब मेरी मुखमें श्रीकृष्णनाम स्फुरित हुआ, तभीसे मेरे हृदयमें श्रीकृष्णनामकी महिमा प्रकाशित हुई। आप ही वे श्रीकृष्ण हैं, यह मुझे साक्षात् अनुभव हुआ है।" यह कहकर ब्राह्मण महाप्रभुके चरणोंमें गिर पड़ा॥ 34-37॥

वृद्धकाशीमें शम्भुका दर्शन :—

ताँरे कृपा करि' प्रभु चलिला आर दिने।
वृद्धकाशी आसि' कैल शिव-दरशने॥ 38॥

अनुवाद—उस ब्राह्मणपर कृपा करके महाप्रभु अगले दिन वहाँसे चले गये और वृद्धकाशीमें आकर उन्होंने शिवजीका दर्शन किया॥ 38॥

अनुभाष्य— *'वृद्धकाशी'*—वर्तमान नाम 'वृद्धाचलम्' है। यह दक्षिण आर्कट-जिलेकी भेलार-नदीकी एक उपनदी 'मणिमुख'के तटपर अविस्थत है। पहले इसका नाम 'वृद्धकाशी' था (दक्षिण-आर्कट म्यानुयेल)। कोई-कोई 'कालहस्तिपुर'को वृद्धकाशी कहते हैं। श्रीरामानुजाचार्यके मौसेरे भाई गोविन्दने इन्हीं शिवकी बहुत दिनों तक सेवा की थी॥ 38॥

उसके बाद अन्य ग्राममें वास और महाप्रभुके दर्शनोंके लिये बहुतसे लोगोंका आना :—

ताँहा हैते चलि' आगे गेला एक ग्रामे।
ब्राह्मण-समाज ताँहा, करिल विश्रामे॥ 39॥

प्रभुर प्रभावे लोक आइल दरशने।
लक्षार्बुद लोक आइसे ना याय गणने॥ 40॥

अनुवाद—महाप्रभु वृद्धकाशीसे आगे चले। एक ग्राममें उन्होंने देखा कि अधिकांश व्यक्ति ब्राह्मण थे, तब महाप्रभुने उस स्थानपर ही विश्राम किया। महाप्रभुके प्रभावसे लाखों-लाखों लोग उनके दर्शनके लिये आने लगे। जितने लोग आये उनकी गणना नहीं की जा सकती॥ 39-40॥

महाप्रभुके दर्शनोंसे सभीको वैष्णवताकी प्राप्ति :—

गोसाञिर सौन्दर्य देखि' ताते प्रेमावेश।
सबे 'कृष्ण' कहे, 'वैष्णव' हैल सर्वदेश॥ 41॥

अनुवाद—महाप्रभुके सौन्दर्यको और उसके ऊपर उनके प्रेमके आवेशको देखकर सभी 'कृष्ण' नामका कीर्तन करने लगे। इस प्रकार वहाँके सब देशवासी वैष्णव बन गये॥ 41॥

महाप्रभुके द्वारा समस्त मतवादियोंके विचारोंका खण्डन :—

तार्किक-मीमांसक, यत मायावादिगण।
सांख्य, पातञ्जल, स्मृति, पुराण, आगम॥ 42॥

निज-निज-शास्त्रोद्ग्राहे सबाइ प्रचण्ड।
सर्व मत दुषि' प्रभु करे खण्ड खण्ड॥ 43॥

वेदान्तके अचिन्त्यभेदाभेदरूप भक्तिसिद्धान्तकी स्थापना :—

सर्वत्र स्थापय प्रभु वैष्णवसिद्धान्ते।
प्रभुर सिद्धान्त केह ना पारे खण्डिते॥ 44॥

महाप्रभुके अकाट्य सिद्धान्तसे पराजित
व्यक्तियोंके द्वारा भक्तिसिद्धान्त-ग्रहण :—

हारि' हारि' प्रभुमते करेन प्रवेश।
एइमते 'वैष्णव' करिल दक्षिण देश॥ 45॥

अनुवाद—वहाँ तार्किक, मीमांसक, मायावादी, सांख्यक, पातञ्जल-योगी, स्मृति, पुराण और आगम शास्त्रोंको माननेवाले बड़े-बड़े पण्डित लोग थे, वे सभी अपने-अपने शास्त्रोंके प्रमाण देकर अपने मतको स्थापित करनेमें प्रवीण थे। महाप्रभुने उन सबके मतोंके दोषोंको दिखलाकर उन सभीके सिद्धान्तोंको खण्ड-खण्ड करके सर्वत्र वैष्णव सिद्धान्तको स्थापित किया, परन्तु कोई भी महाप्रभुके सिद्धान्तका खण्डन न कर सका। पराजय स्वीकार करके सभी दार्शनिकोंने महाप्रभुके मतमें प्रवेश किया। इस प्रकार महाप्रभुने दक्षिण-भारतको वैष्णव बना दिया॥ 42–45॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'तार्किक'*—गौतमीय नैयायिक और कणादीय वैशेषिक। *'मीमांसक'*—जैमिनी-मतके स्थापक। *'मायावादी'*—शङ्करके मतके स्थापक। *'सांख्य'*—कपिल-मत। *'पातञ्जल'*—योगशास्त्र। *'स्मृति'*—मन्वत्रि आदि बीस धर्मशास्त्रीय संहिता। *'पुराण'*—अठारह महापुराण और अठारह उपपुराण। *'आगम'*—तन्त्रशास्त्र। *'शास्त्रोद्ग्राहे'*—शास्त्र-संस्थापन करनेमें। *'प्रभुर सिद्धान्त', 'एइमते'*—महाप्रभुका मत अर्थात् वेद, वेदान्त और ब्रह्मसूत्रके द्वारा स्थापित अचिन्त्यभेदाभेद-सिद्धान्त॥ 42–45॥

पाखण्डी बौद्धाचार्यका अपने शिष्योंके साथ आगमन :—

पाषण्डी आइल यत पाण्डित्य शुनिया।
गर्व करि' आइल सङ्गे शिष्यगण लञा॥ 46॥

अनुवाद—जब पाखण्डी (बौद्धाचार्य)ने महाप्रभुके पाण्डित्यके विषयमें सुना, तो अपनी विद्वताका अभिमान करते हुए वह अपने शिष्योंके साथ महाप्रभुके पास आया॥ 46॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'पाषण्डिगण'*—वेद, स्मृति, दर्शन, पुराण और आगम आदि शास्त्रोंसे बहिर्भूत मतवादियोंको पाखण्डी कहा जाता है॥ 46॥

उसका तर्क :—

बौद्धाचार्य महापण्डित विजन वनेते *।
प्रभुर आगे उदग्राह करि' लागिला बलिते॥ 47॥

***पाठान्तरमें 'निज नवमते'।**

अनुवाद—बौद्धाचार्य महापण्डित 'विजन वनेते' (अर्थात् एकान्तमें) महाप्रभुके पास आकर अपने सिद्धान्त स्थापित करनेके लिये तर्क करने लगा।

पाठान्तरमें *'निज नवमते'*, अर्थात् अपने नये मत॥ 47॥

असम्भाष्य होनेपर भी कृपाको प्रकाशित
करके उसके विचारका खण्डन :—

यद्यपि असम्भाष्य बौद्ध अयुक्त देखिते।
तथापि बलिला प्रभु गर्व खण्डाइते॥ 48॥

अनुवाद—यद्यपि बौद्धोंसे वार्त्तालाप नहीं करना चाहिये और यहाँ तक कि उनको देखना तक नहीं चाहिये, तथापि महाप्रभुने उसके अभिमानको चूर करनेके लिये उसके साथ बातचीत की॥ 48॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'असम्भाष्य'*—बातचीत करनेके योग्य नहीं, क्योंकि वे वेदविरुद्ध और भक्तिसे बहिर्मुख हैं। *'देखिते अयुक्त'*—निरीश्वर बौद्धादिको देखनेपर 'सचेलं जलमाविशेत्' [वस्त्रोंसहित स्नान करना चाहिये],

क्योंकि (सात्वत) शास्त्र-वाक्यानुसार नास्तिक बौद्धादिका दर्शन अनुचित है॥ 48॥

अश्रौतपन्थी बौद्ध-शास्त्रका विचार-युक्तिसे खण्डन :—

तर्क-प्रधान बौद्धशास्त्र 'नव मतें'।
तर्केइ खण्डिल प्रभु, ना पारे स्थापिते॥ 49॥

बौद्धाचार्य 'नव प्रश्न' सब उठाइल।
दृढ़ युक्ति-तर्के प्रभु खण्ड खण्ड कैल॥ 50॥

अनुवाद—बौद्धशास्त्र मुख्यतः तर्कपर आधारित हैं और इनमें नौ प्रधान सिद्धान्त हैं। महाप्रभुने तर्कके द्वारा ही उनके तर्कका खण्डन कर दिया और बौद्धाचार्य अपना मत स्थापित न कर सका। बौद्धाचार्यने अपने नौ प्रधान सिद्धान्तोंके आधारपर सब प्रश्न उठाये, परन्तु महाप्रभुने दृढ़ युक्ति और तर्कोंसे उनके समस्त विचारोंका खण्डन कर दिया॥ 49-50॥

अमृतप्रवाह भाष्य—बौद्धमतमें 'हीनायन' और 'महायन' दो प्रकारके मार्ग है। उस मार्गपर गमन करनेके प्रस्थान-स्वरूप नौ सिद्धान्त हैं; जैसे—(1) विश्व अनादि है, इसलिये ईश्वरशून्य है, (2) जगत् असत्य है, (3) अहंतत्त्व, (4) जन्म-जन्मान्तर (पुनर्जन्म) और परलोक सत्य हैं, (5) बुद्ध ही तत्त्व-प्राप्तिका उपाय हैं, (6) निर्वाण (मुक्ति) ही परमतत्त्व है, (7) बौद्धदर्शन ही वास्तविक दर्शन है, (8) वेद मानवके द्वारा रचित हैं, (9) दया आदि सद्-धर्मका आचरण ही बौद्ध-जीवन है॥ 49॥

बौद्धाचार्यकी पराजय देख लोगोंका हास्य :—

दार्शनिक पण्डित सबाइ पाइल पराजय।
लोके हास्य करे, बौद्ध पाइल लज्जा-भय॥ 51॥

अनुवाद—सभी (पाखण्डी) दार्शनिक और पण्डित महाप्रभुसे पराजित हुए और जब लोग उनपर हँसने लगे, तब बौद्ध लोग लज्जित और भयभीत हुए॥ 51॥

अनुभाष्य— *'दार्शनिक पण्डित सबाइ'*—उपस्थित पाखण्डी दर्शन-आचार्यगण॥ 51॥

वैष्णव सिद्धान्तको श्रवणकर महाप्रभुको वैष्णव सम्प्रदायके अन्तर्गत जानकर बौद्धाचार्यका षड़यन्त्र :—

प्रभुके वैष्णव जानि' बौद्ध घरे गेल।
सकल बौद्ध मिलि' तबे कुमन्त्रणा कैल॥ 52॥

'महाप्रसाद'के नामपर महाप्रभुको अपवित्र अन्नके द्वारा छलनेकी चेष्टा :—

अपवित्र अन्न एक थालिते भरिया।
प्रभु-आगे निल 'महाप्रसाद' बलिया॥ 53॥

अनुवाद—महाप्रभुके विचारोंसे बौद्धलोग जान गये कि वे वैष्णव हैं। अपने मठमें जाकर सभी बौद्धोंने मिलकर षड़यन्त्र रचा। उन बौद्धोंने अपवित्र अन्नसे भरकर एक थाली लाकर महाप्रभुके आगे रख दी और कहा कि यह भगवान्का 'महाप्रसाद' है॥ 52-53॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'अपवित्र'*—वैष्णवोंके द्वारा ग्रहण करने अयोग्य॥ 53॥

अनुभाष्य—अवैष्णवोंके द्वारा अर्पित नैवेद्य (भोग) कितना भी सुन्दर रूपमें क्यों ना सजाया गया हो, उसमें बिन्दुमात्र भी त्रुटि ना हो, हजार बार हजार मुखोंसे उसे 'महाप्रसाद' कहनेपर भी वास्तवमें उनमें विष्णुदास्य या चिद्-दर्शनका अभाव अर्थात् उनकी विष्णुविमुखताके कारण उस अन्नको विष्णु कभी भी ग्रहण नहीं करते। इसलिये शुद्धवैष्णवदास उसको 'अपवित्र' मानकर कभी भी उसे ग्रहण करते या खाते नहीं हैं॥ 53॥

जैसा कर्म, वैसा फल :—

हेनकाले महाकाय एक पक्षी आइल।
ओष्ठे करि' थालि-सह अन्न लञा गेल॥ 54॥

बौद्धगणेर उपरे अन्न अमेध्य हञा।
बौद्धाचार्येर माथाय थालि पड़िल बाजिया॥ 55॥

पाखण्डी बौद्धकी सजा :—

तेरछे पड़िल थालि,—माथा काटि' गेल।
मूर्च्छित हञा आचार्य भूमिते पड़िल॥ 56॥

अनुवाद—उसी समय वहाँ एक विशाल पक्षी उड़ता हुआ आया और अपनी चोंचमें अन्न-सहित थालीको उठाकर ले गया। ऊपर आकाशमें जाकर वह थाली पक्षीकी चोंचसे छूट गयी और सारा अपवित्र अन्न उन्हीं बौद्धोंके सिरपर आ गिरा और थाली बौद्धाचार्यके सिरपर गिरी, जिससे बहुत जोरका शब्द हुआ। वह थाली तिरछी होकर ऐसे बौद्धाचार्यके सिरपर आकर गिरी, जिससे उसका सिर फट गया और वह मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़ा॥ **54–56**॥

गुरुकी दशाको देखकर शिष्योंके द्वारा
महाप्रभुके चरणोंमें शरणागति :—

हाहाकार करि' कान्दे सब शिष्यगण।
सबे आसि' प्रभु-पदे लइल शरण॥ 57॥

"तुमि त' ईश्वर साक्षात्, क्षम अपराध।
जीयाओ आमार गुरु, करह प्रसाद॥"58॥

अनुवाद—अपने गुरुकी दशा देखकर सभी शिष्य हाहाकार करते हुए रोने लगे। तब सब आकर महाप्रभुके चरणोंकी शरण लेकर कहने लगे,—"आप तो साक्षात् भगवान् हैं, हमारे अपराध क्षमा कीजिये। कृपा करके हमारे गुरुदेवको पुनः जीवित कर दीजिये॥"**57–58**॥

शरणागतिके बाद महाप्रभुके द्वारा उन्हें कृष्णनाम-दान :—

प्रभु कहे,—"सबे कह 'कृष्ण' 'कृष्ण' 'हरि'।
गुरुकर्णे कह कृष्णनाम उच्च करि'॥ 59॥

महाप्रभुके मुखसे कीर्तित कृष्णनामके श्रवणसे ही अचैतन्य
मायावादी जीवको चेतना एवं वैष्णवताकी प्राप्ति :—

तोमा-सबार गुरु तबे पाइबे चेतन।"
सब बौद्ध मिलि' करे कृष्णसङ्कीर्त्तन॥ 60॥

गुरु-कर्णे कहे सबे 'कृष्ण' 'राम' 'हरि'।
चेतन पाञा आचार्य बले 'हरि' 'हरि'॥ 61॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने उनसे कहा,—"तुम सब मिलकर 'कृष्ण' 'कृष्ण' 'हरि' आदि नामोंका कीर्तन करो। और अपने गुरुके कानमें भी उच्चस्वरसे कृष्णनाम कहो, तब तुम सबके गुरुकी चेतनता लौट आयेगी।" सभी बौद्ध मिलकर कृष्णनाम-सङ्कीर्तन करने लगे और गुरुके कानमें सब 'कृष्ण' 'राम' 'हरि' नाम सुनाने लगे। नाम सुनकर बौद्धाचार्यकी चेतना लौट आयी और वह भी 'हरि' 'हरि' बोलने लगा॥ **59–61**॥

अनुभाष्य— *'सब बौद्ध'*—बौद्धगण महाप्रभुके श्रीमुखसे कृष्णनाम-दीक्षा प्राप्त करनेपर अब पहलेकी भाँति पाखण्डवत् आचरण करनेवाले बौद्ध नहीं रहे। अब उन्होंने 'वैष्णव' बनकर जीवोंके स्वरूपधर्म-विष्णुपूजाको आरम्भ किया।

गुरु ही शिष्यका उद्धार करते हैं अर्थात् वे अचैतन्य (आत्माको भूले हुए) शिष्यको चैतन्य (आत्माकी स्मृति) सम्पादन करके विष्णु-पूजाका ज्ञान प्रदान करके उसे उसमें नियुक्त करते हैं—यही 'दीक्षा' अथवा दिव्यज्ञान है।

किन्तु यहाँ देखते हैं कि अचेतन बौद्धाचार्यके पूर्व शिष्योंने ही महाप्रभुकी कृपासे कृष्णनामसे चैतन्य प्राप्त करके उन नाममात्रके गुरुके कानमें कृष्णनामका उच्चारण करके आचार्यका कार्य किया। बाहरी दृष्टिकोणसे बौद्धाचार्य गुरु थे और स्वयंको उनका शिष्य माननेवाले उनके शिष्य थे। परन्तु इस घटनाके बाद गुरु और शिष्यकी परस्पर पदवी विपरीत हो गयी। क्योंकि जो वास्तवमें श्रीकृष्णकृपासे चैतन्य-लाभ करके श्रीकृष्णनामका उच्चारण करते हैं, वे ही 'गुरु' हैं और अचैतन्य-व्यक्ति ही 'लघु' अर्थात् उनके शिष्य हैं—यही जगद्गुरु महाप्रभुकी शिक्षा है॥ **59–61**॥

बौद्धके द्वारा महाप्रभुको श्रीकृष्ण जानकर स्तुति :—

कृष्ण बलि' आचार्य प्रभुरे करेन विनय।
देखिया सकल लोक हइल विस्मय॥ 62॥

महाप्रभुका अन्तर्धान होना :—

एइरूपे कौतुक करि' शचीर नन्दन।
अन्तर्धान कैल, केह ना पाय दर्शन॥ 63॥

अनुवाद—जब बौद्धाचार्यने कृष्ण बोलते हुए महाप्रभुको आत्म-समर्पण किया, तब यह देखकर उपस्थित सभी लोग बहुत आश्चर्यचकित हुए। तब श्रीशचीनन्दन एक और कौतुक करते हुए वहाँसे अन्तर्धान हो गये और उनको कोई देख नहीं पाया॥ 62-63॥

तिरुपति एवं तिरुमलयमें आगमन और बालाजी-दर्शन :—

महाप्रभु चलि' आइला त्रिपति-त्रिमल्ले।
चतुर्भुज-मूर्त्ति देखि' व्येङ्कटाद्रये चले॥ 64॥

अनुवाद—तब महाप्रभु त्रिपति-त्रिमल्लमें आये। वहाँ चतुर्भुज श्रीविष्णुमूर्तिका दर्शन करके वे व्येङ्कट-पर्वतकी ओर गये॥ 64॥

अनुभाष्य—महाप्रभुके द्वारा भ्रमण किये गये स्थानोंका प्रायः ठीक प्रकारसे वर्णन किया जा रहा है—

'तिरुपति' अथवा *'तिरुपट्टुर'*—उत्तर आर्कटमें चन्द्रगिरि-तालुकके अन्तर्गत प्रसिद्ध तीर्थ है। व्येङ्कटेश्वरके नामसे व्येङ्कट-गिरि अथवा व्येङ्कट-पर्वतके ऊपर आठ मील दूरीपर 'श्री' और 'भू'—दो शक्तियोंके साथ चतुर्भुज 'बालाजी' अथवा व्येङ्कटेश्वर विष्णु-विग्रह है। इसको व्येङ्कटक्षेत्र भी कहते हैं। सम्पूर्ण दक्षिण भारतमें यही एक श्रेष्ठ ऐश्वर्य-सम्पद्-शाली मन्दिर है। आश्विन मासमें यहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है। *'निम्न-तिरुपति'*—व्येङ्कट पर्वतकी तलहटीमें स्थित है। वहाँ कुछ मन्दिर हैं। यहाँ श्रीगोविन्दराज और श्रीरामचन्द्रजीकी मूर्तियाँ हैं। *'तिरुमल्लय'*—सम्भवतः पर्वतके ऊपर विराजमान तिरुपतिके प्राचीन कालका नामान्तर है॥ 64॥

व्येङ्कटाचलमें श्रीराम-दर्शन :—

त्रिपति आसिया कैल श्रीराम-दरशन।
रघुनाथ-आगे कैल प्रणाम-स्तवन॥ 65॥

पाना-नृसिंहका दर्शन :—

स्वप्रभावे लोक सबार कराञा विस्मय।
पाना-नृसिंहे आइला प्रभु दयामय॥ 66॥

नृसिंहे प्रणति-स्तुति प्रेमावेशे कैल।
प्रभुर प्रभावे लोक चमत्कार हैल॥ 67॥

अनुवाद—त्रिपतिमें आकर महाप्रभुने श्रीरामचन्द्रके दर्शन किये। उन्होंने श्रीरघुनाथको प्रणाम किया और उनकी स्तव-स्तुति की। अपने प्रभावसे महाप्रभुने सभी लोगोंको विस्मित कर दिया। तब दयामय महाप्रभु पाना-नृसिंहमें आये। महाप्रभुने प्रेमावेशमें नृसिंह भगवान्‌को प्रणाम किया और उनकी स्तव-स्तुति की। महाप्रभुके प्रेमावेशको देखकर लोग आश्चर्यचकित हो गये॥ 65-67॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'पाना-नृसिंह'*—चीनीका पाना अर्थात् शरबत जिसका भोग श्रीनृसिंहदेवको लगता है॥ 66॥

अनुभाष्य—*'पाना-नृसिंह' (पानाकल् नरसिंह)*—कृष्णा जिलेमें विजयवाड़ा शहरसे सात मील दूर 'मङ्गलगिरि'में स्थित है। छह सौ सीढ़ियाँ चढ़नेके बाद यह प्रसिद्ध मन्दिर है। प्रवाद (किंवदन्ती)—इन श्रीनृसिंहदेवको शरबतका भोग लगानेपर, वे शरबतको आधेसे अधिक ग्रहण नहीं करते। इस मन्दिरमें ताञ्जोरके भूतपूर्व महाराजाने 'श्रीकृष्णके द्वारा व्यवहार किये गये कहलानेवाले' एक शङ्खका दान किया था। मार्चके महीनेमें इस स्थानपर बहुत बड़ा मेला लगता है॥ 66॥

शिवकाञ्चीमें शिवका दर्शन और महाप्रभुकी कृपासे शैवोंको भी वैष्णवताकी प्राप्ति :—

शिवकाञ्ची आसिया कैल शिव-दरशन।
प्रभावे 'वैष्णव' कैल सब शैवगण॥ 68॥

अनुवाद—फिर महाप्रभुने शिवकाञ्ची आकर शिवजीका दर्शन किया। अपने प्रभावसे महाप्रभुने समस्त शैवोंको वैष्णव बना दिया॥ 68॥

अनुभाष्य—*'शिवकाञ्ची'*—अर्थात् काञ्चीपुरम, यह 'दक्षिणकाशी'के नामसे जाना जाता है। यहाँ असंख्य शिवलिङ्ग हैं, उनमेंसे 'एकाम्बर कैलाशनाथ'का मन्दिर बहुत प्राचीन है॥ 68॥

विष्णुकाञ्चीमें लक्ष्मी-नारायणका दर्शन
और वहाँके लोगोंको वैष्णवताकी प्राप्ति :—

विष्णुकाञ्ची आसि' देखिल लक्ष्मी-नारायण।
प्रणाम करिया कैल बहुत स्तवन॥ 69॥

प्रेमावेशे नृत्य-गीत बहुत करिल।
दिन-दुइ रहि' लोके 'कृष्णभक्त' कैल॥ 70॥

अनुवाद—उसके बाद महाप्रभुने विष्णुकाञ्ची आकर श्रीलक्ष्मी-नारायणका दर्शनकर उनको प्रणाम किया और उनकी बहुत स्तव-स्तुति की। प्रेमावेशमें महाप्रभुने बहुत देर तक नृत्य-गान किया। दो दिन वहाँ रहकर महाप्रभुने लोगोंको कृष्णभक्त बना दिया॥ 69-70॥

अनुभाष्य— *'विष्णुकाञ्ची'*—काञ्चीपुरमसे पाँच मीलकी दूरी पर है। यहाँ 'वरदराज' विष्णु-विग्रह और 'अनन्त सरोवर' है॥ 69॥

त्रिकालहस्तीमें शम्भु-दर्शन :—

त्रिमलय देखि' गेला त्रिकालहस्ती-स्थाने।
महादेव देखि' ताँरे करिल प्रणामे॥ 71॥

अनुवाद—त्रिमलयका दर्शन करके महाप्रभु त्रिकालहस्ती नामक स्थानपर आये। वहाँ महादेवका दर्शन करके महाप्रभुने उन्हें प्रणाम किया॥ 71॥

अनुभाष्य— *'त्रिमलय'*—ताञ्जोर अथवा तौण्डीर-मण्डलमें स्थित है।

'त्रिकालहस्ती'—तिरुपतिसे बाइस मील उत्तर-पूर्व दिशामें सुवर्णमुखी-नदीके दक्षिण-तटपर स्थित है। यह 'श्रीकालहस्ती' अथवा प्रचलित भाषामें 'कालहस्ती'-नामसे भी जाना जाता है। यह स्थान 'वायुलिङ्ग-शिव' मन्दिरके लिये विख्यात है। (उत्तर आर्कटम्यानुयेल)॥ 71॥

पक्षीतीर्थमें शिव-दर्शन, वृद्धकोल-तीर्थमें
श्वेतवराह-विग्रहका दर्शन :—

पक्षीतीर्थ देखि' कैल शिव दरशन।
वृद्धकोल-तीर्थे तबे करिला गमन॥ 72॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने पक्षीतीर्थमें आकर शिवजीका दर्शन किया और वहाँसे वृद्धकोल-तीर्थके लिये गमन किया॥ 72॥

अनुभाष्य— *'पक्षीतीर्थ'*—तिरुकालुकुन्द्रम्। चेङ्गलपट्टुसे नौ मील दक्षिण-पूर्वमें, समतल भूमिसे 500 फुट ऊँचे पर्वतमालाके ऊपर एक शिव-मन्दिर है। इस पर्वतका नाम वेदगिरि अथवा वेदाचलम् है और मूर्तिका नाम—वेदगिरिश्वर है। प्रतिदिन दो बाज पक्षी आकर सेवायेत पुजारीसे आहार प्राप्त करते हैं। वहाँ किंवदन्ती है कि अनादिकालसे ही ऐसा चला आ रहा है (चेङ्गलपट्टु म्यानुयेल)।

'वृद्धकोल'—श्रीवराह-विग्रहका मन्दिर; इस मन्दिरकी विशेषता यह है कि यह केवल एक पत्थरसे ही बना है। यह 'महाबलीपुरम्' अथवा 'सप्तमन्दिर'के अन्तर्गत 'बलिपीठम्'से प्रायः एक मील दक्षिणमें है। इस मन्दिरके अन्दर वराहरूपी विष्णुविग्रहके ऊपर 'शेष'-नागने छत्र धारण किया हुआ है॥ 72॥

पीताम्बर-शम्भुका दर्शन :—

श्वेतवराह देखि', ताँरे नमस्करि'।
पीताम्बर-शिव-स्थाने गेला गौरहरि॥ 73॥

अनुवाद—वृद्धकोलमें आकर महाप्रभुने श्वेतवराहका दर्शनकर उन्हें प्रणाम किया। फिर श्रीगौरहरि पीताम्बर शिवजीका दर्शन करनेके लिये गये॥ 73॥

अनुभाष्य— *'पीताम्बर'—अर्थात्* 'चिदाम्बरम्'। यह 'कुडालोर'-नगरसे छब्बीस मील दक्षिणकी ओर स्थित है। विग्रहका नाम—'आकाशलिङ्ग' शिव है। उनतालीस एकड़ जमीनके ऊपर बना हुआ यह एक बहुत बड़ा मन्दिर है। यह चारों ओर साठ फुट चौड़े पक्के रास्तेसे घिरा हुआ है (दक्षिण आर्कट म्यानुयेल)॥ 73॥

शियाली-भैरवीरूपिनी कात्यायनीका दर्शन :—

शियाली भैरवी देवी करि' दरशन।
कावेरीर तीरे आइला शचीर नन्दन॥ 74॥

अनुवाद—शियाली-भैरवीदेवी [दुर्गादेवी] का दर्शनकर श्रीशचीनन्दन कावेरीके तटपर आये॥ 74॥

अनुभाष्य— *'शियालि'*—ताञ्जोर जिलेमें है। ताञ्जोर नगरसे अड़तालीस मील उत्तर-पूर्व दिशामें शियाली तालुक (मौजा)के अन्तर्गत एक प्रधान ग्राम है। इस स्थानपर एक विख्यात शैव-मन्दिर और एक बहुत बड़ा सरोवर है। 'तिरुज्ञान सम्बन्धर' नामक एक शिवभक्तने यह मन्दिर भेंट किया था। (किंवदन्ती)—यह शिवभक्त शिशुकालमें जब मन्दिरमें आया था, तब भैरवीने उसको स्तनपान कराया था (ताञ्जोर गेजेटियार)। (इस अध्यायके 358 संख्या पयारका अनुभाष्य देखें)।

वहाँसे महाप्रभु त्रिचिनपल्ली जिलेमें कोलिरण अथवा कावेरी नदीके तटपर आये।

'कावेरी'—"कावेरी च महापुण्या" (भाः 11/5/40)॥ 74॥

कावेरीके तटपर शम्भुका दर्शन :—

गो-समाजे शिव देखि' आइला वेदावन।
महादेव देखि' ताँरे करिला वन्दन॥ 75॥

अनुवाद—गो-समाज नामक स्थानपर शिवजीका दर्शन करके महाप्रभुने वेदावनमें जाकर महादेवका दर्शन करके उनकी वन्दना की॥ 75॥

अनुभाष्य— *'गो-समाज'*—शैवतीर्थ है। *'वेदावन'*—ताञ्जोर जिलेके तिरुत्तराइमण्डि-तालुकके दक्षिणपूर्व-कोणमें और पयेन्ट कलिमियारके पाँच मील उत्तरमें स्थित है। वहाँके ब्राह्मणोंके मतानुसार तीर्थोंके महत्त्वके हिसाबसे रामेश्वरके बाद इसका स्थान आता है (ताञ्जोर गेजेटियार)॥ 75॥

महाप्रभुकी कृपासे शैवोंको वैष्णवताकी प्राप्ति :—

अमृतलिङ्ग-शिव देखि' वन्दन करिल।
सब शिवालये शैव 'वैष्णव' हइल॥ 76॥

अनुवाद—महाप्रभुने अमृतलिङ्ग-शिवके दर्शनकर उनकी वन्दना की। महाप्रभुके प्रभावसे सभी शिवालयोंके शैव वैष्णव बन गये॥ 76॥

देवस्थानमें विष्णुदर्शन और 'श्रीवैष्णवों'के सङ्ग आलाप :—

देवस्थाने आसि' कैल विष्णु-दरशन।
श्री-वैष्णवेर सङ्गे ताँहा गोष्ठी अनुक्षण॥ 77॥

अनुवाद—देवस्थान आकर महाप्रभुने भगवान् विष्णुका दर्शन किया और वहाँ रहनेवाले 'श्रीवैष्णव' सम्प्रदायके लोगोंके साथ बहुत समय इष्टगोष्ठी की॥ 77॥

कुम्भकोणममें सरोवर-दर्शन, शिवक्षेत्रमें शिव-दर्शन :—

कुम्भकर्ण-कपाले देखि' सरोवर।
शिव-क्षेत्रे शिव देखे गौराङ्गसुन्दर॥ 78॥

अनुवाद—तब कुम्भकर्ण-कपालमें महाप्रभुने एक विशाल सरोवरका दर्शन किया। तत्पश्चात् श्रीगौराङ्गसुन्दरने शिवक्षेत्र नामक स्थानपर शिवजीका दर्शन किया॥ 78॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'कुम्भकर्ण कपाले'*—कुम्भकर्णकी खोपड़ीसे जो सरोवर बना था॥ 78॥

अनुभाष्य— *'कुम्भकर्ण कपाले'*—'कपाल' अर्थात् खोपड़ी। कुम्भकर्ण ही ताञ्जोर जिलेमें स्थित वर्तमान कुम्भकोणम-नगर है। यह ताञ्जोर नगरसे बीस मील उत्तर पूर्व दिशामें है। इस स्थानपर बारह शिवमन्दिर, चार विष्णुमन्दिर और एक ब्रह्मामन्दिर है (ताञ्जोर गेजेटियार)।

'शिवक्षेत्र'—ताञ्जोर नगरमें एक शिवगङ्गा-सरोवर है। यहाँ एक विशाल बृहतीश्वर-शिव-मन्दिर है॥ 78॥

पापनाशनमें विष्णुके दर्शनके बाद श्रीरङ्गममें जाना :—

पापनाशने विष्णु कैल दरशन।
श्रीरङ्गक्षेत्रे तबे करिला गमन॥ 79॥

अनुवाद—महाप्रभुने पापनाशन नामक तीर्थमें भगवान् श्रीविष्णुका दर्शन किया। तब उन्होंने श्रीरङ्गक्षेत्रके लिये प्रस्थान किया॥ 79॥

अनुभाष्य— *'पापनाशन'*—कुम्भकोणम्से आठ मील दक्षिण-पश्चिममें स्थित है (ताञ्जोर गेजेटियार)। तिनेभेलि जिलेके अन्तर्गत पालमकोटा नगरसे उनतीस मील

पश्चिममें पापनाशन-नामक एक नगर है। इसी स्थानपर ही एक मन्दिरके निकट ताम्रपर्णी-नदी पहाड़से समतल भूमिपर आ गयी है। (तिनेभेलि म्यानुयेल)।

'श्रीरङ्गक्षेत्र'—त्रिचिनपल्लीके निकट कावेरी या कोलिरन-नदीके ऊपर श्रीरङ्गम अवस्थित है। यह ताञ्जोर जिलेमें कुम्भकोणम्‌से चार-पाँच कोस पश्चिममें है। श्रीरङ्गनाथजीका मन्दिर भारतके समस्त मन्दिरोंकी अपेक्षा बड़ा है; इसकी सात प्राचीर हैं। श्रीरङ्गमके सात रास्तोंके पुराने नाम—

(1) धर्मका पथ।
(2) राजमहेन्द्रका पथ।
(3) कुलशेखरका पथ।
(4) आलिनाड़नका पथ।
(5) तिरुविक्रमका पथ।
(6) माड़माड़ि-गाइसका तिरुविडि पथ। और
(7) अड़इयावलइन्दानका पथ।

चोलराज आदिकुलोत्तुङ्गसे पहले राजमहेन्द्रने राज्य किया था; उससे पहले धर्मवर्मने और उससे पहले श्रीरङ्गमका पतन हुआ था। कुलशेखर आदि कुछ व्यक्तियों और आलवान्दारुने श्रीरङ्ग-मन्दिरमें वास किया था। यामुनाचार्य, श्रीरामानुज, सुदर्शनाचार्य आदिने श्रीरङ्गनाथकी सेवाकी प्रधान अध्यक्षता की थी। लक्ष्मीकी अवतार 'गोदादेवी'—जो बारह सिद्ध दिव्यसूरियोंमेंसे एक हैं, उन्होंने श्रीरङ्गनाथके साथ विवाह करके भगवद्-देहमें प्रवेश किया। कार्मुक-अवतार तिरुमङ्गइ आलोवरने दस्यु-वृत्तिके द्वारा एकत्रित धनसे श्रीरङ्गनाथ मन्दिरकी चौथी प्राचीर और अन्यान्य गृहादिका निर्माण करवाया था। कहा जाता है,—289 कल्याब्दमें तोन्डरडिप्पडि आलोवर जन्म ग्रहण करके भक्तिसाधन करते-करते किसी वेश्याके प्रलोभनसे पतित हुए। श्रीरङ्गनाथने अपने सेवककी दुर्दशा देखकर उसके उद्धारकी अभिलाषासे अपने एक सोनेके बर्तनको किसी सेवक द्वारा उस स्त्री (वेश्या)के घरमें भेज दिया। मन्दिरमें सोनेके बर्तनको नहीं देखनेपर बहुत खोज-बीन करनेपर वह उस स्त्रीके घरमें मिला। श्रीरङ्गनाथकी उस स्त्रीपर कृपा देखकर भक्तका भ्रम दूर हुआ। तिरुमङ्गइके आविर्भाव कालसे पहले इन्होंने रङ्गनाथ मन्दिरकी तीसरी प्राचीरका निर्माण करवाया और वहाँ इन्होंने तुलसीके बगीचेकी रचना की थी।

श्रीरामानुजके शिष्य—कुरेश, उनके सबसे छोटे पुत्र—श्रीरामपिल्लाइ, उनके पुत्र—वाग्विजय भट्ट, उनके पुत्र—वेदव्यास भट्ट या श्रीसुदर्शनाचार्य हैं। इन महात्माकी वृद्धावस्थाके समय मुसलमानोंने रङ्गनाथ मन्दिरपर आक्रमण किया और बारह हजार श्रीवैष्णवोंको मार डाला। तब श्रीरङ्गनाथदेवको तिरुपतिमें स्थानान्तरित किया गया था। विजयनगर राज्यके अधीन गिङ्गिके शासनकर्त्ता श्रीवैष्णव ब्राह्मण 'कम्पन्न उदय' या 'गोप्पणार्य' ने श्रीवैष्णवोंकी प्रार्थनापर श्रीरङ्गनाथदेवको 'तिरुपति'से 'सिंहब्रह्म'में लाकर तीन वर्ष तक रखा और बादमें 1293 शकाब्दमें श्रीरङ्गक्षेत्रमें पुनः प्रतिष्ठित किया। श्रीरङ्गनाथ मन्दिरके प्राचीरके पूर्व भागमें श्रील वेदान्त-देशिकके द्वारा रचित यह श्लोक खुदा हुआ है, जैसे—

"आनीय नीलशृङ्गद्युतिरचित-जगद्रञ्जनादञ्जनाद्रेः
श्रेण्यामाराध्य कञ्चित् समयमथ निहत्योद्धनुष्कांस्तुलुष्कान्।
लक्ष्मी-क्ष्माभ्यामुभाभ्यां सह निजनगरे स्थापयन् रङ्गनाथं
सम्यग्वर्यां सपर्यां पुनरकृतयशो दर्पणो गोप्पणार्यः॥"
"विश्वेशं रङ्गराजं वृषभगिरितटात् गोप्पणः क्षौणिदेवो
नीत्वा स्वां राजधानीं निजबलनिहतोत्सिक्त-तौलुष्कसैन्यः।
कृत्वा श्रीरङ्गभूमिं कृतयुगसहितां तन्तु लक्ष्मी-महीभ्यां
संस्थाप्यास्यां सरोजोद्भवं इव कुरुत साधुचर्यां सपर्याम्॥"

अर्थात् "गोप्पणार्यने तलुष्क लोगोंको मारकर जगत्‌को आनन्द देनेवाले नीलशृङ्गद्युतिसे रचित श्रीरङ्गनाथदेवको अञ्जन पर्वतकी श्रेणीसे लाकर लक्ष्मी और भूदेवीके साथ अपने नगरमें स्थापित किया। उन्होंने श्रेष्ठ अर्चन पद्धतिसे उनकी कुछ समय तक वहाँ सेवा की। अभिमानी तौलुष्क राज्यकी सेनाका निजबलसे नाश करनेवाले पृथ्वीपति गोप्पणने तब जगदीश श्रीरङ्गनाथको वृषभगिरितटसे लाकर सत्ययुगके गुणोंसे युक्त अपनी राजधानी श्रीरङ्गक्षेत्रमें लक्ष्मी और भूदेवीके साथ स्थापित

किया। राजा गोप्पणने ब्रह्माके समान साधु आचरण करते हुए श्रीरङ्गनाथदेवका उनकी शक्तियों सहित पूजनकी पद्धति स्थापित की॥"79॥

स्नानके पश्चात् रङ्गनाथ-दर्शन और नृत्य-गान :-

कावेरीते स्नान करि' देखि' रङ्गनाथ।
स्तुति-प्रणति करि' मानिला कृतार्थ॥80॥

प्रेमावेशे कैल बहुत गान नर्त्तन।
देखि' चमत्कार हैल सब लोकेर मन॥81॥

अनुवाद—कावेरीमें स्नान करके महाप्रभुने श्रीरङ्गनाथके दर्शन किये। उन्हें प्रणामकर उनकी स्तुति करके महाप्रभुने स्वयंको कृतार्थ माना। महाप्रभुने वहाँ प्रेमावेशमें बहुत देर तक नृत्य-कीर्तन किया, जिसे देखकर सभी लोगोंके मन चमत्कृत हो गये॥80-81॥

अनुभाष्य—कावेरीका जलपान करनेसे भगवद्भक्ति (भाः 11/5/40) देखें॥80॥

रङ्गक्षेत्रवासी व्येङ्कटभट्टके द्वारा महाप्रभुको निमन्त्रण :-

श्री-वैष्णव एक,—'व्येङ्कट भट्ट' नाम।
प्रभुरे निमन्त्रण कैल करिया सम्मान॥82॥

अनुवाद—श्रीव्येङ्कट भट्ट नामक एक श्रीवैष्णवने आदरपूर्वक महाप्रभुको अपने घरमें निमन्त्रित किया॥82॥

अमृतप्रवाह भाष्य—व्येङ्कटभट्ट, उनके भाई त्रिमल्लभट्ट और प्रबोधानन्द सरस्वती,—ये पहले श्रीसम्प्रदायमें आचार्यरूपमें थे। व्येङ्कटभट्टके पुत्रका नाम ही श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी है॥82॥

अनुभाष्य— *'श्रीव्येङ्कटभट्ट'*—श्रीरङ्गक्षेत्रमें रहनेवाले श्रीसम्प्रदायके एक ब्राह्मण थे। 'श्रीरङ्ग'—तमिलदेशके अन्तर्गत है, इसलिये वहाँके निवासियोंके 'व्येङ्कट', 'तिरुमलय' आदि नाम आजकल नहीं होते। ये वंश सम्भवतः कुछ समय पहलेसे ही श्रीरङ्गममें वास करने लगे थे। 'व्येङ्कटभट्ट'—'बड़गलइ' शाखामें रामानुजीय-वैष्णव थे। इनके एक और भ्राता—त्रिदण्डी रामानुजीयाचार्य स्वामी श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती थे। व्येङ्कटके पुत्र ही श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी हैं। आदिलीला 10/105 संख्या और श्रीभक्तिरत्नाकरकी प्रथम तरङ्ग देखें॥82॥

व्येङ्कटभट्टके द्वारा महाप्रभुकी सेवा और उनको अपने घरमें चातुर्मास्य व्रत पालन करनेकी प्रार्थना :-

निज-घरे लञा कैल पादप्रक्षालन।
सेइ जल लञा कैल सवंशे भक्षण॥83॥

भिक्षा कराञा किछु कैल निवेदन।
"चातुर्मास्य आसि', प्रभु, हैल उपसन्न॥84॥

चातुर्मास्ये कृपा करि' रह मोर घरे।
कृष्णकथा कहि' कृपाय उद्धार' आमारे॥"85॥

अनुवाद—श्रीव्येङ्कट भट्टने महाप्रभुको अपने घर ले जाकर उनके श्रीचरणोंको धोया और उसी जलको (चरणामृतको) अपने वंशसहित पान किया। महाप्रभुको भोजन करानेके बाद उन्होंने उनसे कुछ निवेदन किया,—"प्रभो! चातुर्मास्यका समय आ गया है। ये चार मास आप कृपा करके मेरे घरपर ही रहिये और कृष्णकथा कहकर कृपया हम सबका उद्धार कीजिये॥"83-85॥

व्येङ्कटभट्टके घरमें महाप्रभुके द्वारा चातुर्मास्य यापन :-

ताँर घरे रहिला प्रभु कृष्णकथा-रसे।
भट्टसङ्गे गोङाइल सुखे चारि मासे॥86॥

अनुवाद—महाप्रभु व्येङ्कट भट्टके अनुरोधपर उनके घरमें रहे। उन्होंने व्येङ्कट भट्ट और उनके परिवारके साथ कृष्णकथाके रसमें निमग्न होकर सुखपूर्वक चार मास बिताये॥86॥

प्रतिदिन श्रीरङ्गनाथका दर्शन :-

कावेरीते स्नान करि' श्रीरङ्ग-दर्शन।
प्रतिदिन प्रेमावेशे करेन नर्त्तन॥87॥

महाप्रभु-दर्शनसे लोगोंको अशोक-अभय-अमृत-प्राप्ति :-

सौन्दर्यादि प्रेमावेश देखि' सर्वलोक।
देखिबारे आइसे, देखे, खण्डे दुःख-शोक॥88॥

महाप्रभुके दर्शनके फलसे असंख्य लोगोंको श्रीकृष्णभक्तिकी प्राप्ति :—

लक्ष लक्ष लोक आइल नाना-देश हैते।
सबे कृष्णनाम कहे प्रभुके देखिते॥ 89॥

कृष्णनाम बिना केह नाहि कहे आर।
सबे कृष्णभक्त हैल,—लोके चमत्कार॥ 90॥

अनुवाद—महाप्रभु प्रतिदिन कावेरीमें स्नान करनेके बाद श्रीरङ्गनाथका दर्शन करते और वहाँ प्रेमावेशमें नृत्य करते। वहाँके सब लोग महाप्रभुके सौन्दर्य आदि और प्रेमावेशको देखने आते और महाप्रभुके दर्शनसे उन सबके दुःख और शोक दूर हो जाते। अनेक स्थानोंसे लाखों-लाखों लोग महाप्रभुके दर्शनके लिये आये। महाप्रभुको देखने मात्रसे ही वे श्रीकृष्णनामका उच्चारण करने लगे। श्रीकृष्णनामके अतिरिक्त कोई कुछ भी नहीं कहता था और इस प्रकार सभी कृष्णभक्त बन गये,—जिसे देखकर लोगोंके हृदयमें चमत्कार हुआ॥ 87–90॥

एक-एक वैष्णव ब्राह्मणके घर एक-एक दिन भिक्षा :—

श्रीरङ्गक्षेत्रे बैसे यत वैष्णव-ब्राह्मण।
एक एक दिन सबे कैल निमन्त्रण॥ 91॥

एक एक दिने चातुर्मास्य पूर्ण हैल।
कतक ब्राह्मण भिक्षा दिते ना पाइल॥ 92॥

अनुवाद—श्रीरङ्गक्षेत्रमें जितने ब्राह्मण-वैष्णव रहते थे, वे एक-एक दिन करके महाप्रभुको निमन्त्रण करने लगे। एक-एक दिन निमन्त्रण करते-करते चातुर्मास्यका समय पूरा हो गया, परन्तु कुछ ब्राह्मण महाप्रभुको भोजन न करा पाये॥ 91–92॥

एक शरणागत सेवान्मुख ब्राह्मणका गीतापाठ :—

सेइ क्षेत्रे रहे एक वैष्णव-ब्राह्मण।
देवालये आसि' करे गीता आवर्त्तन॥ 93॥

शुद्धभक्तियोगमें जड़विद्या अथवा पाण्डित्यका अभिमान अथवा कृत्रिम-भावाभास नहीं :—

अष्टादशाध्याय पड़े आनन्द-आवेशे।
अशुद्ध पड़ेन, लोक करे उपहासे॥ 94॥

केह हासे, केह निन्दे, ताहा नाहि माने।
आविष्ट हञा गीता पड़े आनन्दित-मने॥ 95॥

अनुवाद—उसी स्थानमें एक वैष्णव-ब्राह्मण रहता था। वह प्रतिदिन मन्दिरमें आकर गीताका पाठ करता था। बड़े आनन्दके आवेशमें वह ब्राह्मण गीताके पूरे अठारह अध्यायोंका पाठ करता था, परन्तु वह पाठ शुद्ध नहीं होता था, जिसके कारण लोग उसका उपहास करते थे। कोई उनपर हँसता था, तो कोई उनकी निन्दा करता था, तो भी वह ब्राह्मण गीताका पाठ करना बन्द नहीं करता था। बल्कि प्रेमाविष्ट होकर आनन्दित मनसे गीताको पढ़ता जाता था॥ 93–95॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'वैष्णव-ब्राह्मण'*—'गोविन्दके कड़चामें' (?) इस ब्राह्मणका नाम 'युधिष्ठिर' कहा गया है॥ 93॥

अनर्थसे निवृत्त एवं चेतनताको प्राप्त करनेवाले व्यक्तिके सात्त्विक-भाव :—

पुलकाश्रु, कम्प, स्वेद,—यावत् पठन।
देखि' आनन्दित हैल महाप्रभुर मन॥ 96॥

अनुवाद—गीताका पाठ करते समय उस ब्राह्मणकी देहमें पुलक, अश्रु, कम्प और स्वेद आदि अष्ट-सात्त्विक भाव उदित हो रहे थे, जिसे देखकर महाप्रभुके मनमें बहुत आनन्द हुआ॥ 96॥

अनुभाष्य—(भाः 1/5/11)—

"तद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो
यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यत्
शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः॥"

अर्थात् "इसके विपरीत जिन वाणियों अथवा

ग्रन्थोंमें भगवान् अनन्तदेवके महिमासूचक नामोंका वर्णन है, उसका प्रत्येक श्लोक अथवा आख्यान दूषित अपशब्दादिसे युक्त रहनेपर भी, तथा सुर, मान, लय, ताल आदि साहित्यगत अलङ्कार-गुणोंसे रहित होनेपर भी लोगोंके पापोंका विनाश करता है। ऐसी वाणीका वक्ता मिलनेपर ही साधुजन उसका श्रवण करते हैं, श्रोता मिलनेपर कीर्तन करते हैं और यदि कोई न हो तो स्वयं ही गान करते हैं।"

भाः 4/31/21, 11/12/5-9 श्लोक और भाः 2/3/24 "तदश्मसारं" श्लोककी श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकी 'सारार्थदर्शिनी' टीका विशेष रूपसे देखें॥ **94-96**॥

अमृतानुकणिका—(भाः 2/3/24) "तदश्मसारं" श्लोककी 'साराथदर्शनी' टीका—

"जिनमें अनन्तस्वरूप श्रीकृष्णके यशोङ्कित सभी नाम सजे हुए हों, उन श्लोकोंकी सुन्दररूपसे रचना नहीं होनेपर भी, वह वाक्यविन्यास ही जीवोंकी समस्त पापराशिको ध्वंस करता है। साधुजन उसीका श्रवण और कीर्तन करते हैं (भाः 1/5/11)। 'तदश्मसारं' (भाः 2/3/24) श्लोककी सारार्थदर्शिनी टीका—बहुत नाम ग्रहण करनेपर भी चित्त द्रवीभूत न होनेपर वह नामापराधका लक्षण है, ऐसा समझना चाहिये। किन्तु अश्रु, पुलक ही चित्तके द्रवित होनेके लक्षण हैं, ऐसा भी नहीं कहा सकता। क्योंकि श्रीरूपगोस्वामीने कहा है,—"निसर्गपिच्छिलस्वान्ते तदभ्यासपरेऽपि च। सत्त्वाभासं बिनापि स्युः क्वाप्यश्रुपुलकादयः॥ (भ:र:सिः 2/3/89)—अर्थात् जिनका हृदय स्वभावतः पिच्छिल (फिसलनेवाला) है और जिन्होंने अश्रु बहाने आदिका अभ्यास किया है, उनके हृदयमें सत्त्वाभासके बिना ही कहीं-कहीं अश्रु-पुलकादि देखे जाते हैं। और फिर, अति गम्भीर महानुभाव-भक्तोंका चित्त हरिनामके द्वारा द्रवित होनेपर भी उनके अनेक समय अश्रु-पुलकादि दिखायी नहीं देते। इसलिये उक्त श्लोककी इस प्रकारसे व्याख्या करनी होगी,—हरिनाम ग्रहण करनेपर बाहरसे अश्रु-पुलकादि विकार दिखायी देनेपर भी जो हृदय विगलित नहीं होता, वह पाषाणके समान है, यही अर्थ है। हृदय-विकारके ये असाधारण लक्षण हैं—"(1) क्षान्तिः, (2) अव्यर्थकालत्वं, (3) विरक्तिः, (4) मानशून्यता, (5) आशाबन्ध, (6) समुत्कण्ठा, (7) नामगाने सदा रुचिः, (8) आसक्तिः तद्गुणाख्याने, (9) प्रीतिः तद्वसतिस्थले। इत्यादयोऽनुभावाः स्युर्जातभावाङ्कुरे जने॥" (भ:र:सिः 1/3/25)। निर्मत्सर उत्तमाधिकारियोंको नामग्रहण-मात्रसे ही नाम-माधुर्य अनुभव होता है, तब उनके हृदयमें विकार होता है। हृदय विकार होनेपर 'क्षान्ति' आदि नौ प्रकार असाधारण लक्षण और अश्रु-पुलकादि साधारण लक्षण प्रकाशित होते हैं। किन्तु मात्सर्यपरायण कनिष्ठाधिकारियोंका चित्त अपराधमय होनेके कारण बहुत नामग्रहणपर भी नामके माधुर्यका अनुभव नहीं होनेसे चित्तमें विकार उत्पन्न नहीं होता। फलस्वरूप उनमें 'क्षान्ति'-आदि (असाधारण) लक्षण सब कभी भी प्रकाशित नहीं होते। अश्रु-पुलकादि साधारण-लक्षण दिखायी देनेपर भी उनका हृदय पाषाणतुल्य कहकर निन्दनीय है। साधुसङ्गसे अनर्थनिवृत्ति, निष्ठा, रुचि आदि भूमिकामें आरूढ़ होनेपर यथाकाल उनका चित्त भी द्रवित होगा और चित्तकी कठोरता दूर होगी। किन्तु जिनका चित्त द्रवित होनेपर भी चित्तकी कठिनता बनी रहती है, उनका रोग अति गम्भीर है, ऐसा जानना होगा॥"**94-96**॥

उसके भावोंको देखकर महाप्रभुकी कारण-जिज्ञासा :—

महाप्रभु पुछिल ताँरे,—"शुन, महाशय।
कोन् अर्थ जानि' तोमार एत सुख हय॥"97॥

अनुवाद—महाप्रभुने उस ब्राह्मणसे पूछा,—"सुनो महाशय! गीताके किस अर्थको जानकर आपको इतना आनन्द प्राप्त होता है॥"**97**॥

वास्तवसत्यमें विश्वासी ब्राह्मणका सरलरूपसे उत्तर :—

विप्र कहे,—"मूर्ख आमि, शब्दार्थ ना जानि।
शुद्धाशुद्ध गीता पड़ि, गुरु-आज्ञा मानि॥98॥

अर्जुनेर रथे कृष्ण हय रज्जुधर।
बसियाछेन ताते—येन श्यामल-सुन्दर॥ 99॥

अर्जुनेरे कहिलेन हित-उपदेश।
ताँरे देखि' हय मोर आनन्द-आवेश॥ 100॥

यावत् पड़ोँ, तावत् पाङ ताँर दरशन।
एइ लागि' गीता-पाठ ना छाड़े मोर मन॥"101॥

अनुवाद—ब्राह्मणने उत्तर दिया,—"मैं तो मूर्ख हूँ, शब्दोंके अर्थ तक भी नहीं जानता हूँ। मैं तो गुरुदेवकी आज्ञा मानकर भले शुद्ध हो या अशुद्ध, गीताका पाठ करता हूँ। अर्जुनके रथपर श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण, घोड़ेकी लगामको पकड़कर सारथीके रूपमें बैठे हैं और अर्जुनको हितोपदेश दे रहे हैं—उन्हें देखने मात्रसे ही मैं आनन्दसे आविष्ट हो जाता हूँ। जब तक मैं गीताको पढ़ता रहता हूँ, तब तक मुझे उनका दर्शन होता रहता है, इसलिये मेरा मन गीताके पाठको छोड़ना नहीं चाहता॥"98–100॥

महाप्रभुके द्वारा शुद्धचित्त ऐकान्तिक भक्तकी प्रशंसा :—

प्रभु कहे,—"गीता-पाठे तोमारइ अधिकार।
तुमि से जानह एइ गीतार अर्थ-सार॥"102॥

अनुवाद—महाप्रभुने उस ब्राह्मणसे कहा,—"गीता-पाठमें वास्तवमें तुम्हारा ही अधिकार है। तुम जो जानते हो, वही गीताका सारार्थ है॥"102॥

अनुभाष्य—भाः 7/5/23 और "भक्त्या भागवतं ग्राह्यं न बुद्धया न च टीकया"; "गीताधीता च येनापि भक्तिभावेन चेतसा। वेदशास्त्रपुराणानि तेनाधीतानि सर्वशः॥" आदि एवं (श्वेःउः 6/23)—"यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥" आदि देखें।

अर्थात् 'श्रीमद्भागवत केवल भक्तिके द्वारा ही ग्रहण की जा सकती है—बुद्धि या टीकाके द्वारा नहीं।' 'जो भक्तिभावयुक्त चित्तसे श्रीमद्भगवद्गीता अध्ययन करते हैं, वे वेद-पुराणादि सर्वशास्त्र अध्ययन करते हैं।' 'जिनकी श्रीभगवान्में पराभक्ति है, और जैसी श्रीभगवान्में है, श्रीगुरुदेवमें भी वैसी पराभक्ति है, उन महात्माके हृदयमें कहे गये सभी विषय अर्थात् श्रुतिओंके मर्मार्थ प्रकाशित होते हैं॥'102॥

महाप्रभुके द्वारा ब्राह्मणको आलिङ्गन और ब्राह्मणको महाप्रभुमें श्रीकृष्णका ज्ञान :—

एत बलि' सेइ विप्रे कैल आलिङ्गन।
प्रभु-पद धरि' विप्र करेन रोदन॥ 103॥

"तोमा देखि' ताहा हैते द्विगुण सुख हय।
सेइ कृष्ण तुमि,—हेन मोर मने लय॥"104॥

अनुवाद—इतना कहकर महाप्रभुने उस ब्राह्मणका आलिङ्गन किया और वह ब्राह्मण महाप्रभुके चरणकमलोंको पकड़कर रोते हुए कहने लगा,—"गीता पाठके समय श्रीकृष्णका दर्शन करके मुझे जिस आनन्दकी प्राप्ति होती थी, उससे भी दो गुणा अधिक आनन्दकी प्राप्ति आपके दर्शनसे हो रही है, मेरा मन कहता है कि आप वही श्रीकृष्ण हैं॥"103–104॥

कर्मज्ञान-अन्याभिलाषशून्य छलरहित शुद्ध मन ही वृन्दावन, उसी मनमें ही सम्विद्विग्रह श्रीकृष्णका अधिष्ठान :—

कृष्णस्फूर्त्ये ताँर मन हञाछे निर्मल।
अतएव प्रभुर तत्त्व जानिल सकल॥ 105॥

अनुवाद—गीताका पाठ करते हुए उस ब्राह्मणके हृदयमें श्रीकृष्णकी स्फूर्त्ति हुई थी, जिससे उसका हृदय निर्मल हो गया था, इसलिये वह महाप्रभुके तत्त्वके विषयमें सब कुछ जान सका॥ 105॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 6/83–84 संख्या देखें॥ 105॥

महाप्रभुकी अपने प्रचारकी निषेधाज्ञाके द्वारा असुर लोगोंकी वञ्चना :—

तबे महाप्रभु ताँरे कराइल शिक्षण।
"एइ बात् काँहा ना करिह प्रकाशन॥"106॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने उस ब्राह्मणको शिक्षा दी और कहा,—"मुझे तुमने कृष्ण समझा है, इस बातको किसीके सामने प्रकाशित मत करना॥"106॥

महाप्रभु-भक्त ब्राह्मण :—

सेइ विप्र महाप्रभुर बड़ भक्त हैल।
चारि मास प्रभु-सङ्ग कभु ना छाड़िल॥107॥

अनुवाद—वह ब्राह्मण महाप्रभुका बड़ा भक्त बन गया। चार महीने जब तक महाप्रभु श्रीरङ्गममें थे, तब तक उस ब्राह्मणने कभी भी उनका साथ नहीं छोड़ा॥107॥

व्येङ्कटभट्टके घरमें महाप्रभु गौरचन्द्र :—

एइमत भट्टगृहे रहे गौरचन्द्र।
निरन्तर भट्ट-सङ्गे कृष्णकथानन्द॥108॥

अनुवाद—इस प्रकार श्रीगौरचन्द्र व्येङ्कट भट्टके घरमें रहे और निरन्तर कृष्णकथा करते हुए दोनोंने उसका आनन्द लिया॥108॥

लक्ष्मीनारायण-सेवक श्रीसम्प्रदायी भट्ट :—

'श्री-वैष्णव' भट्ट सेवे लक्ष्मी-नारायण।
ताँर भक्ति देखि' प्रभुर तुष्ट हैल मन॥109॥

अनुवाद—व्येङ्कट भट्ट 'श्रीवैष्णव' सम्प्रदायके थे, इसलिये वे श्रीलक्ष्मी-नारायणकी सेवा करते थे। उनकी भक्तिको देखकर महाप्रभु बहुत सन्तुष्ट हुए॥109॥

महाप्रभुके साथ उनका सख्यभाव :—

निरन्तर ताँर सङ्गे हैल सख्यभाव।
हास्य-परिहास दुँहे सख्येर स्वभाव॥110॥

अनुवाद—निरन्तर साथ रहनेके कारण महाप्रभु और व्येङ्कट भट्टका साथ सख्यभाव हो गया, इसलिये दोनों कभी सखाकी भाँति हास-परिहास भी करते थे॥110॥

महाप्रभुकी उनको श्रीकृष्णसेवा-दानकी इच्छा, महाप्रभु और भट्टका संवाद; महाप्रभुका कौतुकपूर्ण प्रश्न—लक्ष्मी और गोपियोंकी श्रीकृष्णसेवाका वैशिष्ट्य :—

प्रभु कहे,—"भट्ट, तोमार लक्ष्मी-ठाकुराणी।
कान्त-वक्षःस्थिता, पतिव्रता-शिरोमणि॥111॥

नारायणाश्रित होते हुए भी लक्ष्मीका श्रीकृष्णके माधुर्यसे आकर्षित होकर श्रीकृष्णसङ्ग प्राप्त करनेकी प्रार्थना :—

आमार ठाकुर कृष्ण—गोप, गो-चारण।
साध्वी हञा केने चाहे ताँहार सङ्गम॥112॥

इस उद्देश्यसे लक्ष्मीकी कठोर तपस्या :—

एइ लागि' सुखभोग छाड़ि' चिरकाल।
व्रत-नियम करि' तप करिल अपार॥"113॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा, "भट्ट! आपकी ठाकुराणी श्रीलक्ष्मी देवी पतिव्रता शिरोमणि हैं और सदा अपने कान्तके वक्षःस्थलपर विराजमान रहती हैं। मेरे ठाकुर श्रीकृष्ण एक गोप हैं और गैया चराते हैं, परन्तु तुम्हारी ठाकुराणी साध्वी होकर भी उनका सङ्ग क्यों चाहती हैं? इसके लिये उन्होंने बहुत लम्बे समय तक वैकुण्ठके समस्त सुख-भोगोंको छोड़कर व्रत लेकर नियमोंका पालन करते हुए बहुत कठोर तपस्या भी की है॥"111–113॥

श्रीमद्भागवत (10/16/36)—

कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे,
तवाङ्घ्रिरेणुस्पर्शाधिकारः।
यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाचरत्तपो,
विहाय कामान् सुचिरं धृतव्रता॥114॥

अनुवाद—हे देव! जिनकी चरणरजको प्राप्त करनेकी वासनासे कमलाने (लक्ष्मीने) बहुत समय तक समस्त प्रकारके विषय-भोगोंका परित्याग करके दृढ़व्रत धारण करके तपस्या की थी, उस चरणरजको इस कालिय-नागने किस सुकृतिके द्वारा लाभ करनेका अधिकार प्राप्त किया, उसे हम नहीं जानती॥114॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 8/146 संख्या देखें॥ **114**॥

भट्टका उत्तर, श्रीकृष्णके सङ्गसे नारायण-पत्नीके सतीत्वकी हानिकी असम्भावना :—

भट्ट कहे,—"कृष्ण-नारायण—एकइ स्वरूप।
कृष्णेते अधिक लीला-वैदग्ध्यादिरूप॥ 115॥

ताँर स्पर्शे नाहि याय पतिव्रता-धर्म।
कौतुके लक्ष्मी चाहेन कृष्णेर सङ्गम॥ 116॥

अनुवाद—व्येङ्कट भट्टने कहा,—"श्रीकृष्ण और श्रीनारायण—दोनों एक ही स्वरूप हैं, परन्तु श्रीकृष्णमें लीला-वैदग्ध्यादि अधिक है। कौतुकवशतः श्रीलक्ष्मीने श्रीकृष्णके सङ्गकी इच्छा की, क्योंकि श्रीकृष्णके स्पर्शसे उनका पतिव्रता-धर्म नष्ट नहीं होता॥ **115–116**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीनारायण ही श्रीकृष्णकी विलास-मूर्ति हैं, इसलिये श्रीकृष्णसे उनका स्वरूप द्विभुज-चतुर्भुजका भेद होनेपर भी पृथक् नहीं है। नारायणमें श्रीकृष्णके समान लालित्य होनेपर भी उनमें श्रीकृष्ण जैसी वैदग्ध्य आदि रूप लीला नहीं है। श्रीकृष्ण ही जब विलासमूर्तिमें श्रीनारायण हैं, तब नारायण-पत्नी-लक्ष्मीका श्रीकृष्ण-स्पर्शसे पतिव्रता-धर्म नहीं नष्ट होता है। इसलिये श्रीकृष्णसङ्गममें लक्ष्मीका कौतुक होना स्वाभाविक ही है॥ **115–116**॥

अनुभाष्य—आदिलीला 5/223 संख्या और मध्यलीला 8/144 संख्या देखें॥ **111–116**॥

श्रीकृष्ण और नारायणकी लीलाका वैचित्र्य :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (1/2/59)—

सिद्धान्ततस्त्वभेदेऽपि श्रीश-कृष्णस्वरूपयोः।
रसेनोत्कृष्यते कृष्णरूपमेषा रसस्थितिः॥ 117॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ **117**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'श्रीनारायण' और 'श्रीकृष्ण'के दो स्वरूपोंमें सिद्धान्तके अनुसार कोई भेद नहीं है, तथापि शृङ्गार-रसविचारसे श्रीकृष्णरूपने ही रसके द्वारा उत्कर्षता प्राप्त की है। इसी प्रकार ही रसतत्त्वकी स्थापना होती है॥ **117**॥

अनुभाष्य—

सिद्धान्ततः (वस्तुतत्त्वतः) श्रीशकृष्णस्वरूपयोः (नारायण-कृष्णतत्त्वयोः) अभेदे सति अपि रसेन कृष्णरूपम् (एव) उत्कृष्यते,—एषा रसस्थितिः (रस-स्वभावः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें।

आदिलीला दूसरा और तीसरा अध्याय एवं लघुभागवतामृत देखें॥ **117**॥

कृष्णसङ्गे पतिव्रता-धर्म नहे नाश।
अधिक लाभ पाइये, आर रासविलास॥ 118॥

विनोदिनी लक्ष्मीर हय कृष्णे अभिलाष।
इहाते कि दोष, केने कर परिहास॥"119॥

अनुवाद—लक्ष्मीजीने विचार किया कि श्रीकृष्णके सङ्गसे उनका पतिव्रता-धर्म नष्ट नहीं होगा, अपितु श्रीकृष्णका सङ्ग होनेसे रासलीलारूपी अधिक लाभ ही मिलेगा। लक्ष्मीजी विनोदिनी हैं, इसलिये उन्होंने यदि श्रीकृष्णके सङ्गकी अभिलाषा की, तो इसमें क्या दोष है? आप क्यों उनका परिहास कर रहे हैं?"॥ **118–119**॥

महाप्रभुका पुनः प्रश्न :—

प्रभु कहे,—"दोष नाहि, इहा आमि जानि।
रास ना पाइल लक्ष्मी, शास्त्रे इहा शुनि॥ 120॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"इसमें कोई दोष नहीं है, यह मैं भी जानता हूँ। परन्तु मैंने शास्त्रोंमें सुना है कि लक्ष्मीजीका रासमें प्रवेश नहीं हुआ॥ **120**॥

व्रजगोपियोंकी महिमा :—
श्रीमद्भागवत (10/47/60)—

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः।
स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः।
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ-
लब्धाशिषां य उदगाद्व्रजसुन्दरीणाम्॥ 121॥

अनुवाद—श्रीवृन्दावनमें रासोत्सवमें श्रीकृष्णकी भुजाओंके द्वारा आलिङ्गित-कण्ठवाली व्रजसुन्दरियोंके प्रति जो कृपा उदित हुई थी, वह श्रीकृष्णके वक्षःस्थलपर स्थित लक्ष्मी आदि परव्योमकी अत्यन्त अनुगत शक्तियोंको भी प्राप्त नहीं हुई, स्वर्गकी रमणियाँ जिनकी देहसे कमलकी सुगन्ध आती है, उनको भी उस प्रकारकी कृपाकी प्राप्ति नहीं हुई, तब अन्य स्त्रियोंके विषयमें तो क्या कहूँ? ॥ 121 ॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 8/80 संख्या देखें॥ 121 ॥

गोपियोंके आनुगत्यके बिना लक्ष्मीका
श्रीकृष्णके साथ रासविलास असम्भव :—

लक्ष्मी केने ना पाइल, इहार कि कारण।
तप करि' कैछे कृष्ण पाइल श्रुतिगण॥ 122 ॥

अनुवाद—तपस्या करके श्रुतियोंने कैसे श्रीकृष्णको रासलीलामें प्राप्त किया? और लक्ष्मीजीको रासमें प्रवेश क्यों नहीं मिला? इसका क्या कारण है? ॥ 122 ॥

गोपियोंके आनुगत्यसे ही श्रुतियोंको
रागमार्गमें श्रीकृष्णसेवाकी प्राप्ति :—
श्रीमद्भागवत (10/87/23)—

निभृतमरुन्मनोऽक्षदृढयोगयुजो हृदि य-
न्मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात्।
स्त्रिय उरगेन्द्र-भोगभुजदण्डविषक्त-धियो
वयमपि ते समाः समदृशोऽङ्घ्रिसरोजसुधाः॥ 123 ॥

अनुवाद—मुनियोंने प्राणायामके द्वारा निश्वासको जीतकर मन और इन्द्रियोंको दृढ़रूपसे योगयुक्त करके हृदयमें जिस ब्रह्मकी उपासना की थी, भगवान्के सभी शत्रुओंने भी उनके निरन्तर ध्यानके बलसे उस ब्रह्ममें प्रवेश किया था। व्रजस्त्रियोंने श्रीकृष्णके सर्पके शरीरतुल्य भुजाओंके सौन्दर्यरूप तीव्र विषके द्वारा हतबुद्धि होकर उनके चरणकमलोंकी सुधाको प्राप्त किया था। हमने भी वैसी गोपीदेह प्राप्त करके गोपीभावसे उनके चरणकमलोंकी सुधाका पान किया है॥ 123 ॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 8/223 संख्या देखें॥ 123 ॥

महाप्रभुके प्रश्नका उत्तर देनेमें भट्टकी असमर्थता :—

श्रुति पाय, लक्ष्मी ना पाय, इथे कि कारण।"
भट्ट कहे,—"इहा प्रवेशिते नारे मोर मन॥ 124 ॥

आमि जीव,—क्षुद्रबुद्धि, सहजे अस्थिर।
ईश्वरेर लीला—कोटिसमुद्र-गम्भीर॥ 125 ॥

प्रभुकी कृपासे ही प्रभुकी लीलाका ज्ञान :—

तुमि साक्षात् सेइ कृष्ण, जान निजकर्म।
यारे जानाह, सेइ जाने तोमार लीलामर्म्म॥" 126 ॥

अनुवाद—(महाप्रभुका प्रश्न—) श्रुतियोंको रासकी प्राप्ति हुई, परन्तु लक्ष्मीजीको नहीं हुई, इसका क्या कारण है?" व्येङ्कट भट्टने कहा,—"इस रहस्यमें प्रवेश करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। मैं एक जीव हूँ जिसकी बुद्धि अल्प और स्वभावतः चञ्चल है। श्रीकृष्णकी लीला करोड़ों समुद्रकी भाँति गम्भीर (गहरी) है, मेरी बुद्धिका उसमें प्रवेश नहीं है। आप साक्षात् वही श्रीकृष्ण हैं, आप ही अपनी लीलाओंके उद्देश्यको जानते हैं। आप जिसे उसे जनाते हैं, वही आपकी लीलाओंके मर्मको जान पाता है॥" 124–126 ॥

अनुभाष्य—(कठ, 2/23, मुःउः 3/2/3)—

"यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्।"

अर्थात् "जब जीवात्मा भगवान्के प्रति सेवोन्मुख होकर परमात्माकी कृपायाचना करता है, तब उसीके निकट वे परमात्मा अपना स्वयंप्रकाश श्रीविग्रह प्रकट करते हैं॥ 126 ॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीकृष्ण और व्रजवासियोंके
सहज रागात्मक स्वभावका वर्णन :—

प्रभु कहे,—"कृष्णेर एक सजीव लक्षण।
स्वमाधुर्य्ये सर्व चित्त करे आकर्षण॥ 127 ॥

व्रजलोकेर भावे पाइये ताँहार चरण।
ताँरे ईश्वर करि' नाहि जाने व्रजजन॥ 128 ॥

केह ताँरे पुत्र–ज्ञाने उदुखले बान्धे।
केह सखा–ज्ञाने जिनि' चड़े ताँर कान्धे॥ 129॥

'व्रजेन्द्रनन्दन' बलि' ताँरे जाने व्रजजन।
ऐश्वर्यज्ञाने नाहि कोन सम्बन्ध–मानन॥ 130॥

व्रजलोकेर भावे येइ करये भजन।
सेइ व्रजे पाये शुद्ध व्रजेन्द्रनन्दन॥ 131॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"श्रीकृष्णका एक सजीव लक्षण यह है कि वे अपने माधुर्यके द्वारा सबके चित्तको आकर्षित करते हैं। केवल व्रजवासियोंके भावोंका आनुगत्य करके ही श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी प्राप्ति की जा सकती है। व्रजवासी श्रीकृष्णको भगवान् नहीं मानते। कोई उन्हें अपना पुत्र मानकर ऊखलसे बाँध देती हैं, तो कोई उन्हें सखा मानकर खेलमें उनसे जीतकर उनके कन्धेपर चढ़ जाता है। व्रजवासी श्रीकृष्णको व्रजेन्द्रनन्दनके रूपमें ही जानते हैं। ऐश्वर्यज्ञानसे श्रीकृष्णके साथ वे कोई सम्बन्ध नहीं मानते हैं। व्रजवासियोंके भावोंके अनुगत होकर जो श्रीकृष्णका भजन करते हैं, वे ही व्रजमें व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णको प्राप्त करते हैं॥ 127–131॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'सजीव–लक्षण'*—क्रियालक्षण; पाठान्तरमें *'स्वभाव–लक्षण'*, इसका अर्थ स्पष्ट है। तीसरा पाठान्तर *'स्वभाव–विलक्षण'*,—श्रीकृष्णका स्वभाव दूसरोंके स्वभावसे भिन्न प्रकारका है, अथवा 'विलक्षण'–शब्दका अर्थ विशेष लक्षण है।

'उदूखल'—ओखली अर्थात् जिसमें धानादि कूटा जाता है।

व्रजवासी श्रीकृष्णको 'नन्दनन्दन'के रूपमें जानते हैं। परम ऐश्वर्यशाली 'परमेश्वर'से जो एक अन्य प्रकारका सम्बन्ध है, वे उसे नहीं मानते। व्रजवासियोंके दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—इन चार प्रकारके भावोंमेंसे कोई भाव ग्रहण करके जो परमतत्त्वका भजन करता है; वह चरम अवस्थामें व्रजेन्द्रनन्दन–श्रीकृष्णको शुद्ध रूपमें व्रजधाममें प्राप्त होता है॥ 127–131॥

अनुभाष्य—आदिलीला 4/137–158 संख्या एवं मध्यलीला 8/138, 142, 147, 148 संख्या देखें।

पयार संख्या 130 की पहली पंक्तिके लिये—आदिलीला 4/33 संख्या, मध्यलीला 8/203–204, 220–222, 226, 228–230 संख्या देखें। पयार संख्या 130 की दूसरी पंक्तिके लिये—आदिलीला 4/21–26 संख्या देखें॥ 127–130॥

श्रीमद्भागवत (10/9/21)—

नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः।
ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह॥ 132॥

अनुवाद—यशोदाके पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण भक्तिमान् देहधारियोंके लिये जिस प्रकार सुलभ हैं, आत्मभूत ज्ञानियोंके लिये वैसे नहीं हैं॥ 132॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 8/226 संख्या देखें॥ 132॥

गोपियोंके आनुगत्यसे श्रुतियोंको रासमें कृष्णसेवा–प्राप्ति :—

श्रुतिगण गोपीगणेर अनुगत हञा।
व्रजेश्वरीसुत भजे गोपीभाव लञा॥ 133॥

बाह्यान्तरे गोपीदेह व्रजे यबे पाइल।
सेइ देहे कृष्णसङ्गे रासक्रीड़ा कैल॥ 134॥

अनुवाद—श्रुतियोंने गोपियोंके अनुगत होकर गोपीभावसे यशोदानन्दनका भजन किया था। जब श्रुतियोंको व्रजमें गोपीदेहकी प्राप्ति हुई, तब उस देहसे उन्होंने श्रीकृष्णके साथ रासक्रीड़ा की थी॥ 133–134॥

गोपीके अतिरिक्त अन्य चिन्मयी स्त्रीके लिये भी मधुर–सेवा–प्राप्ति असम्भव :—

गोपजाति कृष्ण, गोपी—प्रेयसी ताँहार।
देवी वा अन्य स्त्री कृष्ण ना करे अङ्गीकार॥ 135॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण गोपजातिके हैं और गोपियाँ उनकी प्रेयसियाँ हैं। श्रीकृष्ण गोपियोंके अतिरिक्त अन्य किसी और देवी या स्त्रीको अङ्गीकार नहीं करते॥ 135॥

लक्ष्मीके ऐश्वर्यज्ञानसे श्रीकृष्णका सङ्ग असम्भव :—

लक्ष्मी चाहे सेइ देहे कृष्णेर सङ्गम।
गोपी–रागानुगा हञा ना कैल भजन॥ 136॥

अन्य देहे ना पाइये रासविलास।
अतएव 'नायं' श्लोक कहे वेदव्यास॥"137॥

अनुवाद—लक्ष्मीजी अपनी उसी देहसे ही श्रीकृष्णका सङ्ग प्राप्त करना चाहती थीं। किन्तु उन्होंने गोपियोंके अनुरागके अनुगत होकर श्रीकृष्णका भजन नहीं किया था। श्रीवेदव्यासने श्रीमद्भागवतमें 'नायं सुखापो–' श्लोक कहा है, क्योंकि गोपीदेहके अतिरिक्त अन्य किसी देहसे श्रीकृष्णके रासमण्डलमें प्रवेश सम्भव नहीं है॥"136–137॥

*किसी अन्य संस्करणमें 'नायं' से 'नायं श्रियो–' श्लोक लिया गया है। यद्यपि उस श्लोकमें गोपियोंकी महिमा बतलायी गयी है, उनके समान किसी औरका वैसा सौभाग्य नहीं है, परन्तु यह स्पष्ट रूपसे नहीं कहा है कि गोपीदेहके बिना रासमें किसीका प्रवेश सम्भव नहीं है।

पहले 'श्रीवैष्णव' सम्प्रदायके व्येङ्कटभट्टकी नारायणकी ही 'स्वयंरूप'के रूपमें धारणा :—

पूर्वे भट्टेर मने एक हैत अभिमान।
''श्रीनारायण' ह'न स्वयं–भगवान्॥ 138॥

ताँहार भजन सर्वोपरि–कक्षा हय।
'श्री–वैष्णवे'र भजन एइ सर्वोपरि हय॥'139॥

अनुवाद—पहले व्येङ्कट भट्टके मनमें एक अभिमान था,—"श्रीनारायण' ही स्वयं भगवान् हैं। उनका भजन ही सर्वश्रेष्ठ श्रेणीका है और 'श्रीवैष्णव'–सम्प्रदायकी भजन परिपाटी ही सर्वश्रेष्ठ है॥'138–139॥

एइ ताँर गर्व प्रभु करिते खण्डन।
परिहासद्वारे उठाय एतेक वचन॥ 140॥

अनुवाद—महाप्रभुने उनके इसी गर्वका खण्डन करनेके लिये ही परिहासमें ये सब बातें कहीं॥ 140॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रुतियाँ श्रीकृष्णके रासमण्डलमें प्रवेश करनेकी चेष्टा करनेपर भी जब सफल नहीं हो पायीं और केवल हृदयगत गोपीभावको लेकर भी जब प्रवेश नहीं कर पायीं, तब बाहरी गोपी–देह और हृदयमें गोपीभाव ग्रहण करके गोपियोंके अनुगत होकर श्रीकृष्णके रासमें प्रविष्ट हुई थीं। श्रीकृष्ण—गोप जातिके हैं, गोपियाँ ही उनकी प्रेयसियाँ हैं, इसलिये ऐश्वर्यमयी देवीके रूपमें या अन्य स्त्रीरूपमें, 'श्रीकृष्णसङ्गम' प्राप्त नहीं होता। लक्ष्मीदेवीने अपनी देवी–देहमें ही श्रीकृष्णके सङ्गमकी प्रार्थना की थी, किन्तु उन्होंने गोपियोंके स्वाभाविक अनुरागके अनुगत होकर भजन नहीं किया। इसलिये वे गोपीसे पृथक् अन्य देहमें रासविलास प्राप्त नहीं कर पायी। इसके सम्बन्धमें श्रीव्यासदेवने "नायं सुखापो भगवान्"—यह श्लोक लिखा है। व्येङ्कट भट्टके मनमें एक अभिमान था कि परव्योममें रहनेवाले श्रीनारायण ही स्वयं भगवान् हैं, उनका भजन ही सर्वोत्तम उपासनाका विशेष स्तर है; इसलिये श्रीसम्प्रदायी वैष्णवोंका भजन ही सर्वोपरि है। इस वृथा गर्वका खण्डन करनेके अभिप्रायसे ही महाप्रभुने परिहासके द्वारा इस विचारको उठाया था॥ 133–140॥

अनुभाष्य—आदिलीला 2/23–24, 28–115 संख्या और लघुभागवतामृतमें श्रीरूपगोस्वामी प्रभुका विचार आलोच्य है॥ 138–139॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीकृष्ण और नारायणकी लीलाके वैशिष्ट्यका वर्णन और श्रीकृष्णके स्वयंरूप होनेकी संस्थापना :—

प्रभु कहे,—"भट्ट, तुमि ना करिह संशय।
'स्वयं भगवान्' कृष्ण एइ त' निश्चय॥ 141॥

कृष्णेर विलासमूर्त्ति—श्रीनारायण।
अतएव लक्ष्मी–आद्येर हरे तेँह मन॥ 142॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"श्रीकृष्णकी विलासमूर्ति श्रीनारायण हैं। इसलिये श्रीकृष्ण लक्ष्मी आदि देवियोंके मनका भी हरण करते हैं। भट्ट, तुम कोई भी संशय

मत करो, श्रीकृष्ण ही 'स्वयं भगवान्' हैं, श्रीमद्भागवत ही इस विषयमें प्रमाण है॥ 141–142॥

श्रीमद्भागवत(1/3/28) :—

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृड़यन्ति युगे युगे॥ 143॥

अनुवाद—राम-नृसिंहादि, पुरुषावतारके अंश या कला (अंशके अंश) हैं, किन्तु श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं। दैत्योंके द्वारा पीड़ित लोगोंकी प्रत्येक युगमें ये (अवतार) रक्षा करते हैं॥ 143॥

अनुभाष्य—आदिलीला 2/67 संख्या देखें॥ 143॥

नारायण हैते कृष्णेर असाधारण गुण।
अतएव लक्ष्मीर कृष्णे तृष्णा अनुक्षण॥ 144॥
तुमि ये पड़िला श्लोक, से हय प्रमाण।
सेइ श्लोके आइसे 'कृष्ण—स्वयं भगवान्'॥ 145॥

अनुवाद—श्रीकृष्णमें चार असाधारण गुण हैं जो श्रीनारायणमें नहीं हैं, इसलिये लक्ष्मी सदा श्रीकृष्णका सङ्ग चाहती हैं। आपने जो श्लोक 'सिद्धान्ततस्त्वभेदेऽपि--' पढ़ा था, वही इस बातका प्रमाण है कि श्रीकृष्ण 'स्वयं भगवान्' हैं॥ 144–145॥

भक्तिरसामृतसिन्धु (1/2/59) :—

सिद्धान्ततस्त्वभेदेऽपि श्रीश-कृष्णस्वरूपयोः।
रसेनोत्कृष्यते कृष्णरूपमेषा रसस्थितिः॥ 146॥

अनुवाद—इसी अध्यायमें 117 संख्या देखें॥ 146॥

लक्ष्मी श्रीकृष्णका माधुर्य चाहती हैं, परन्तु गोपियाँ चतुर्भुज नारायणका ऐश्वर्य नहीं चाहती :—

स्वयं भगवान् 'कृष्ण' हरे लक्ष्मीर मन।
गोपिकार मन हरिते नारे 'नारायण'॥ 147॥

स्वयंश्रीकृष्णके चतुर्भुजरूपका भी गोपियों द्वारा अनादर :—

नारायणेरका कथा, श्रीकृष्ण आपने।
गोपिकारे हास्य कराइते हय 'नारायणे'॥ 148॥
'चतुर्भुज-मूर्त्ति' देखाय गोपीगणेर आगे।
सेइ 'कृष्णे' गोपिकार नहे अनुरागे॥"149॥

अनुवाद—अपने असाधारण गुणोंके कारण स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण लक्ष्मीके मनको हर लेते हैं, परन्तु श्रीनारायण गोपियोंके मनको नहीं हर सकते। श्रीनारायणकी तो बात ही क्या, गोपियोंके साथ परिहास करनेके लिये श्रीकृष्ण नारायण हो गये। नारायण रूप धारण करके उन्होंने गोपियोंको 'चतुर्भुज-मूर्त्ति' दिखलायी। उन (चतुर्भुज) श्रीकृष्णमें भी गोपियोंका अनुराग उत्पन्न नहीं हुआ॥ 147–149॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीनारायणमें साठ गुण हैं; उन गुणोंके ऊपर और भी श्रीकृष्णके चार असाधारण गुण है, वे श्रीनारायणमें नहीं हैं। जैसे (1) सर्वाद्भुत-चमत्कारलीलासमुद्रविशिष्टता, (2) अतुल्यमधुर-प्रेम-परिशोभितप्रियमण्डलयुक्तता, (3) त्रिजगन्मानसाकर्षि-मुरलीगीतपरायणता, (4) चराचरविस्मयकारि-समोर्द्ध-रहितरूप-श्रीयुक्तता। ऐसे असाधारण चार गुणोंसे युक्त श्रीकृष्णमें ऐश्वर्यस्वरूपिणी लक्ष्मीकी भी प्रतिक्षण तृष्णा उत्पन्न होती है। 'सिद्धान्ततस्त्वभेदेऽपि' जिस श्लोकका तुमने उच्चारण किया है, उसमें ही श्रीकृष्णकी 'स्वयं-भगवत्ता' प्रमाणित होती है। स्वयं-भगवत्तासे युक्त श्रीकृष्ण ही लक्ष्मीके मनका हरण करते हैं। गोपियोंके मनको हरण करनेके उपयोगी चार गुण श्रीनारायणमें नहीं रहनेपर वे गोपियोंके मनका हरण नहीं कर सकते। नारायणकी बात तो दूर रहे, श्रीकृष्ण परिहास करते हुए स्वयं नारायणके रूपमें 'प्रकाशित' होनेपर भी गोपियोंका उनमें अनुराग नहीं हुआ।

यहाँ यह विचारणीय है कि श्रीरूपगोस्वामीने 'भक्तिरसामृतसिन्धु'की महाप्रभुके साथ व्येङ्कटभट्टके साथ साक्षात्कारके अनेक दिनोंके बाद रचना की, तब श्रीव्येङ्कटभट्टने किस प्रकार इस ग्रन्थके श्लोकका प्रमाणके रूपमें पाठ किया था? हम इस प्रकार इसका समाधान करते हैं—

'भक्तिरसामृतसिन्धु' आदि ग्रन्थोंके जो-जो श्लोक

उन ग्रन्थोंकी रचनासे पहले प्रयोग किये गये हैं—ऐसा कहकर इस ग्रन्थमें उनका उल्लेख हुआ है, तो यह समझना चाहिये कि वे श्लोक बहुत प्राचीन श्रीकृष्णभक्तोंमें भी प्रचलित थे। श्रीलरूप गोस्वामीने उन प्राचीन श्लोकोंका ही अपने ग्रन्थमें प्रयोग किया है। कविराज-गोस्वामीकी इस ग्रन्थकी रचनासे पहले, श्रीरूपके सभी ग्रन्थ रचित हो चुके थे। इसलिये (कविराज गोस्वामीने अपने इस ग्रन्थमें श्रीरूपके) उन-उन ग्रन्थोंसे उद्धृत कहकर इन सब श्लोकोंका उल्लेख किया है। अनेक स्थानोंपर, कविराज गोस्वामीने भावमात्रका सहारा लेकर पूर्व-गोस्वामियोंके श्लोकोंको वार्त्तालापमें प्रवेश कराया है॥ **144–149**॥

अनुभाष्य— आदिलीला 17/278-293 संख्या देखें॥ **148–149**॥

ललितमाधव (6/14) :—

गोपीनां पशुपेन्द्रनन्दनजुषो भावस्य कस्तां कृती
विज्ञातुं क्षमते दुरूहपदवीसञ्चारिणः प्रक्रियाम्।
आविष्कुर्वति वैष्णवीमपि तनुं तस्मिन् भुजैर्जिष्णुभि-
र्यासां हन्त चतुर्भिरद्भुतरुचिं रागोदयः कुञ्चति॥ 150॥

अनुवाद— किसी समय श्रीकृष्णने कौतुकवशतः अद्भुत-रुचियुक्त चतुर्भुज नारायणरूप प्रकाश किया, जिसे देखकर गोपियोंके रागका उदय सङ्कुचित हो गया। इसलिये नन्दनन्दनमें अनन्य-भजनशील दुर्गम-पारकीय-पथका अवलम्बन करनेवाली गोपियोंकी भाव-क्रियाको कौन पण्डित समझ सकता है?॥ **150**॥

अनुभाष्य— आदिलीला 17/281 संख्या देखें॥ **150**॥

महाप्रभुके द्वारा लक्ष्मी और
गोपियोंके तत्त्वका समन्वय :—

एत कहि' प्रभु ताँर गर्व चूर्ण करिया।
ताँरे सुख दिते कहे सिद्धान्त फिराइया॥ 151॥

"दुःख ना भाविह, भट्ट, कैलुँ परिहास।
शास्त्रसिद्धान्त शुन, याते वैष्णव-विश्वास॥ 152॥

स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण और नारायणतत्त्व एवं
सर्वलक्ष्मीमयी श्रीराधा और लक्ष्मीतत्त्व :—

कृष्ण-नारायण, यैछे एकइ स्वरूप।
गोपी-लक्ष्मी-भेद नाहि हय एकरूप॥ 153॥

एकइ विग्रहे करे नानाकार रूप।
गोपी-लक्ष्मी-भेद नाहि, जानिह 'स्वरूप'॥ 154॥

अनुवाद— ऐसा कहकर महाप्रभुने व्येङ्कट भट्टके गर्वको तो चूर्ण कर दिया, परन्तु उसे प्रसन्न करनेके लिये महाप्रभुने सिद्धान्तको घुमाकर कहा,—"भट्ट, आप दुःखी मत होइये, मैंने तो केवल परिहास किया था। अब आप शास्त्रोंके वे सिद्धान्त सुनो, जिनमें वैष्णवोंका विश्वास है। श्रीकृष्ण और श्रीनारायण जैसे एक ही स्वरूप हैं, वैसे ही गोपियों और लक्ष्मीमें भी कोई भेद नहीं है, वे भी एकरूप हैं। एक ही विग्रह अनेक रूप धारण करते हैं, इसलिये गोपी और लक्ष्मीमें भी कोई भेद नहीं है, इसलिये उनके 'स्वरूप'को जानो॥ **151–154**॥

अनुभाष्य— जिस प्रकार श्रीकृष्ण एवं नारायण—वस्तुतः अभेद अर्थात् एक ही वस्तु हैं, उसी प्रकार गोपी एवं लक्ष्मी वस्तुतः अभिन्न हैं। रस विचारसे लक्ष्मीकी अपेक्षा गोपीकी उत्कर्षता होनेपर भी दोनोंको सिद्धान्तसे अभिन्न ही जानना चाहिये॥ **153**॥

कृष्णतत्त्व और विष्णुतत्त्व एवं श्रीराधातत्त्व और
लक्ष्मीतत्त्वमें भेदबुद्धि—अपराधजनक :—

गोपीद्वारे लक्ष्मी करे कृष्णसङ्गास्वाद।
ईश्वर-तत्त्वे भेद मानिले हय अपराध॥ 155॥

अनुवाद— गोपियोंके द्वारा ही लक्ष्मी श्रीकृष्णके सङ्गका आस्वादन करती हैं। ईश्वरके विभिन्न रूपोंमें भेद माननेसे अपराध होता है॥ **155**॥

भक्तोंके स्वरूपके अनुरूप सेवा-भेदसे
आराध्यवस्तुका माधुर्य और ऐश्वर्यभेद :—

एक ईश्वर—भक्तेर ध्यान-अनुरूप।
एकइ विग्रहे करे नानाकार रूप॥"156॥

अनुवाद—एक ही विग्रह नाना प्रकारके आकार और रूप प्रकाश करते हैं। एक ईश्वर भक्तोंके ध्यानके अनुरूप भिन्न-भिन्न रूपोंमें स्वयंको प्रकाशित करते हैं॥"156॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महाप्रभुने परिहास-वाक्य छोड़कर अन्तमें कहा,—ओहे भट्ट, तुम दुःखी मत होवो, 'श्रीकृष्ण' और 'श्रीनारायण' जिस प्रकार अभेद हैं, गोपी और लक्ष्मी भी उसी प्रकार अभेद हैं। सर्वलक्ष्मीमयी राधिका एक ही विग्रहसे नाना आकार और रूप प्रकाशित करती हैं। गोपियोंके द्वारा लक्ष्मी कृष्णसङ्गका आस्वादन करती हैं अर्थात् स्वरूपशक्ति माधुर्यस्वरूपमें गोपीदेहमें श्रीकृष्ण-सङ्गास्वादन करती हैं और ऐश्वर्यदेहमें लक्ष्मीरूपमें नारायण-सङ्गास्वादन करती हैं। ईश्वर-तत्त्वमें भेद नहीं है। भक्तोंके भावोंके भेदसे एक ही चिद्-विग्रहमें अनेक प्रकारके आकार और रूपके ध्यानभेद मात्र जानने चाहिये॥151-156॥

लघुभागवतामृत (1/357)में उद्धृत श्रीनारदपञ्चरात्र-वचन :—

मणिर्यथा विभागेन नीलपीतादिभिर्युतः।
रूपभेदमवाप्नोति ध्यानभेदात्तथाच्युतः॥157॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥157॥

अमृतप्रवाह भाष्य—वैदुर्यमणि जिस प्रकार विभिन्न वस्तुओंके निकट आनेसे उनके रङ्गके अनुसार नीले-पीले आदि रङ्गभेदसे दिखायी देती है, उसी प्रकार भक्तके भावानुसार ध्यानभेदसे एक अद्वितीय अच्युतके ध्यानमें अलग अलग रूप दिखलायी देते हैं॥157॥

अनुभाष्य—

मणिः (वैदूर्यं) नीलादिभिः [गुणैः युतः सन्] यथा विभागेन [उपलक्षितः भवति, यद्वा, विभागेन उपलक्षितः सन् नीलादिभिर्युतः भवति] तथा अच्युतः (च्युतिरहितः, यद्वा, नास्ति च्युतं क्षरणं भक्तानां यस्मात्—"न च्यवन्ते हि यद्भक्ता महत्यां प्रलयापदि। अतोऽच्युतोऽखिले लोके महद्भिः परिगीयते॥" इति काशीखण्ड-वचनात्); ध्यानभेदात् (उपासनाभेदात्) रूपभेदं (चतुर्भुज-द्विभुजाद्याकारभेदं शुक्लरक्तश्यामादिकं च) अवाप्नोति [औदार्यपराः आदौ गौरादिकं, ततः माधुर्यपर-भावापन्नाः गौराभिन्नरूपं श्यामादिकं पश्यन्ति]।*

श्लोक-भावानुवाद—वैदुर्यमणि जिस प्रकार नीले-पीले रङ्गोंको अपने विभागसे प्रकट करती हुई विभिन्न रङ्गोंवाली प्रतीत होती है, उसी प्रकार श्रीअच्युत (जिनमें कोई भी च्युति या न्यूनता न हो अथवा भक्तोंका जिनसे कभी भी विच्छेद न हो, जैसा कि स्कन्दपुराणके काशीखण्डमें कहा गया है—'जिनके भक्त महान विपत्ति (प्रलयादि सङ्कट)में भी उनसे दूर नहीं होते अथवा उन्हें नहीं भुलाते, इसलिये वे सभी लोकोंमें साधुओंके द्वारा अच्युत-नामसे कीर्त्तित होते हैं) भक्तके भावानुसार उपासना-भेदसे ध्यानमें अलग अलग रूप (चतुर्भुज-द्विभुज आकार भेद तथा शुक्ल-रक्त-श्यामादि वर्ण भेद) दिखलायी देते हैं [उदारतापरायण श्रीगौरहरिके भक्त पहले श्रीगौरचन्द्रका ध्यान करते हैं और तब माधुर्य-भावापन्न जन श्रीगौरसे अभिन्न श्याम (द्वापर), रक्त (त्रेता) और शुक्ल (सत्य) आदि रूपोंका दर्शन करते हैं]॥157॥

व्येङ्कटभट्टका महाप्रभुको श्रीकृष्ण समझना :—

भट्ट कहे,—"काँहा आमि जीव पामर।
काँहा तुमि सेइ कृष्ण,—साक्षात् ईश्वर॥158॥

महाप्रभुके सिद्धान्तमें भट्टका दृढ़ विश्वास :—

अगाध ईश्वर-लीला किछुइ ना जानि।
तुमि येइ कह, सेइ सत्य करि' मानि॥159॥

उपास्य लक्ष्मीनारायणकी कृपासे ही
महाप्रभुकी कृपाकी प्राप्ति :—

मोरे पूर्ण कृपा कैल लक्ष्मी-नारायण।
ताँर कृपाय पाइनु तोमार चरण-दरशन॥160॥

महाप्रभुकी कृपासे भट्टके द्वारा श्रीकृष्णसेवा आरम्भ :—

कृपा करि' कहिले मोरे कृष्णेर महिमा।
याँर रूप-गुणैश्वर्येर केह ना पाय सीमा॥161॥

एबे से जानिनु कृष्णभक्ति सर्वोपरि।
कृतार्थ करिले, मोरे कहिले कृपा करि'॥"162॥

अनुवाद—व्येङ्कट भट्टने कहा,—"कहाँ मैं एक अधम जीव और कहाँ आप वही श्रीकृष्ण—साक्षात् ईश्वर। ईश्वरकी लीला अगाध (अनन्त) है, उस विषयमें मैं कुछ भी नहीं जानता। आपने जो कहा, मैं उसे ही सत्य मानता हूँ। श्रीलक्ष्मी-नारायणने मुझे अपनी सेवा प्रदान की है और उनकी कृपासे ही मुझे आपके श्रीचरणकमलोंका दर्शन प्राप्त हुआ है। आपने कृपा करके मुझे श्रीकृष्णकी महिमा बतलायी है, जिनके रूप-गुण-ऐश्वर्यकी सीमाको कोई नहीं पा सकता। अब मैं जान गया हूँ कि श्रीकृष्णभक्ति ही सर्वोपरि है। आपने कृपा करके यह सब बतलाकर मुझे कृतार्थ कर दिया है॥"158-162॥

भट्टका महाप्रभुको प्रणाम और महाप्रभुका आलिङ्गन :—

एत बलि' भट्ट पड़िला प्रभुर चरणे।
कृपा करि' प्रभु ताँरे कैला आलिङ्गने॥ 163॥

अनुवाद—इतना कहकर व्येङ्कट भट्ट महाप्रभुके श्रीचरणकमलोंमें गिर पड़े। महाप्रभुने अहैतुकी कृपाके कारण उनका आलिङ्गन किया॥ 163॥

चातुर्मास्यके अन्तमें महाप्रभुकी पुनः दक्षिण-यात्रा :—

चातुर्मास्य पूर्ण हैल, भट्ट-आज्ञा लञा।
दक्षिण चलिला प्रभु श्रीरङ्ग देखिया॥ 164॥

अनुवाद—चातुर्मास्यके पूर्ण होनेपर महाप्रभु व्येङ्कट भट्टसे आज्ञा लेकर और श्रीरङ्गनाथके दर्शन करके दक्षिणकी ओर चल दिये॥ 164॥

अनुगामी भट्टको महाप्रभुके द्वारा सान्त्वना-दान :—

सङ्गेते चलिला भट्ट, ना याय भवने।
ताँरे विदाय दिला प्रभु अनेक यतने॥ 165॥

महाप्रभुके विरहमें भट्ट :—

प्रभुर वियोगे भट्ट हैल अचेतन।
एइ रङ्गलीला करे शचीर नन्दन॥ 166॥

अनुवाद—व्येङ्कट भट्ट महाप्रभुके साथ-साथ चलने लगे, वे अपने घर लौट नहीं रहे थे। महाप्रभुने बहुत यत्न करके उन्हें विदा किया। महाप्रभुके विरहमें व्येङ्कट भट्ट मूर्च्छित होकर गिर पड़े। श्रीशचीनन्दन इस प्रकारकी अद्भुत लीलाएँ करते हैं॥ 165-166॥

ऋषभ पर्वतपर महाप्रभुके द्वारा नारायणका दर्शन :—

ऋषभ-पर्वते चलि' आइला गौरहरि।
नारायण देखिला ताँहा नति-स्तुति करि'॥ 167॥

अनुवाद—तब महाप्रभु ऋषभ-पर्वतपर आये। वहाँ उन्होंने भगवान् श्रीनारायणके विग्रहका दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया और स्तव-स्तुति की॥ 167॥

अनुभाष्य—*'ऋषभ पर्वत'*—दक्षिण-कर्णाटकमें मादुरा जिलेके एक प्रान्तमें है। मादुराके बारह मील उत्तरमें 'आनागड़मलय-पर्वत' कुटकाचलके उपवनमें जिस स्थानपर ऋषभदेव दावानलके द्वारा भस्मीभूत हुए थे, वही आजकल 'पालनि हिल'के नामसे विख्यात है॥ 167॥

परमानन्दपुरीके साथ मिलन :—

परमानन्दपुरी ताँहा रहे चतुर्मास।
शुनि' महाप्रभु गेला पुरी-गोसाञिर पाश॥ 168॥

अनुवाद—श्रीपरमानन्दपुरी भी ऋषभ पर्वतपर रहकर चातुर्मास्यका पालन कर रहे थे। यह सुनकर महाप्रभु श्रीपुरी गोसाईंके दर्शनके लिये उनके पास गये॥ 168॥

गुरुज्ञानसे पुरीकी वन्दना और पुरीके द्वारा आलिङ्गन :—

पुरी-गोसाञिर प्रभु कैल चरण-वन्दन।
प्रेमे पुरी गोसाञि ताँरे कैल आलिङ्गन॥ 169॥

तिनदिन प्रेमे दोँहे कृष्णकथा-रङ्गे।
सेइ विप्र-घरे दोँहे रहे एकसङ्गे॥ 170॥

पुरी-गोसाञि बले,—"आमि याब पुरुषोत्तमे।
पुरुषोत्तम देखि' गौड़े याब गङ्गास्नाने॥"171॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीपरमानन्दपुरीके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी वन्दना की। श्रीपुरी गोस्वामीने प्रेममें

विभोर होकर उनका आलिङ्गन किया। महाप्रभु भी परमानन्दपुरीके साथ उस ब्राह्मणके घरमें रहे जहाँ वे पहले रह रहे थे। दोनोंने प्रेमपूर्वक कृष्णकथाकी चर्चामें तीन दिन बिताये। श्रीपुरी गोस्वामीने महाप्रभुसे कहा,—"मैं पुरुषोत्तम जाकर श्रीजगन्नाथका दर्शन करके गङ्गास्नान करनेके लिये गौड़देश जाऊँगा॥"169-171॥

अनुभाष्य—*'सेइ विप्रघरे'* (उस ब्राह्मणके घर)—यहाँ किस ब्राह्मणके विषयमें कहा है, वह जानना कठिन है॥170॥

प्रभु कहे,—"तुमि पुनः आइस नीलाचले।
आमि सेतुबन्ध हैते आसिब अल्पकाले॥172॥

तोमार निकटे रहि,—हेन वाञ्छा हय।
नीलाचले आसिबे, मोरे हञा सदय॥"173॥

अनुवाद—महाप्रभुने उनसे कहा,—"आप वहाँसे पुनः नीलाचल आइयेगा, मैं भी सेतुबन्ध (रामेश्वरसे) होकर थोड़े समयमें नीलाचल पहुँच जाऊँगा। मेरी आपके पास रहनेकी इच्छा है। कृपा करके आप अवश्य ही नीलाचल आइयेगा॥"172-173॥

एत बलि' ताँर ठाञि आज्ञा लञा।
दक्षिणे चलिला प्रभु हरषित हञा॥174॥

परमानन्द पुरी तबे चलिला नीलाचले।
महाप्रभु चलि तबे आइला श्रीशैले॥175॥

अनुवाद—इस प्रकार निवेदन करके उनसे आज्ञा लेकर महाप्रभु हर्षित होकर दक्षिणकी ओर चल पड़े। श्रीपरमानन्दपुरी भी तब नीलाचलकी ओर चल दिये। महाप्रभु चलते-चलते श्रीशैल पहुँचे॥174-175॥

अनुभाष्य—*'श्रीशैल'*—यहाँ किस श्रीशैलकी बात कह रहे हैं, यह समझ नहीं आता; यहाँ मल्लिकार्जुनका मन्दिर नहीं है, क्योंकि धारवाड़-जिलेमें अवस्थित श्रीशैल यहाँ नहीं हो सकता, वह श्रीशैल बेलगामके दक्षिणमें है जहाँ अनादिलिङ्ग 'मल्लिकार्जुन' (मध्यलीला 9/15 संख्या) विराजमान है; "श्रीपर्वते महादेवो देव्या सह महाद्युतिः। न्यवसत् परमप्रीतो ब्रह्मा च त्रिदशैः सह॥" (माः भाः वनपर्वमें 58 अः)

अर्थात् "श्रीपर्वतपर महाद्युतिमान् श्रीमहादेव पार्वतीदेवीजीके साथ और परमप्रीतिमान् ब्रह्माजी देवताओंके साथ वास करते हैं॥"175॥

महाप्रभुके साथ भव और भवानीका साक्षात्कार :—

शिव-दुर्गा रहे ताँहा ब्राह्मणेर वेशे।
महाप्रभु देखि' दौँहार हइल उल्लासे॥176॥

दास-दासीके घरमें भिक्षाके छलसे उनकी सेवा ग्रहण :—

तिन दिन भिक्षा दिल करि' निमन्त्रण।
निभृते बसि' गुप्तवार्त्ता कहे दुइ जन॥177॥

कामकोष्ठीपुरीमें आगमन :—

ताँर सङ्गे महाप्रभु करि इष्टगोष्ठी।
आज्ञा लञा आइला तबे पुरी कामकोष्ठी॥178॥

अनुवाद—वहाँ श्रीशिव-दुर्गा ब्राह्मण दम्पत्तिके वेशमें रह रहे थे। महाप्रभुको देखकर उन दोनोंको बड़ा उल्लास हुआ। तीन दिन तक उन दोनोंने महाप्रभुको निमन्त्रण करके भोजन कराया और ऐकान्तमें बैठकर उन दोनोंने महाप्रभुके साथ कुछ गुप्त बातें कीं। उन दोनोंके साथ इष्टगोष्ठी करनेके बाद महाप्रभु उनसे आज्ञा लेकर कामकोष्ठी पुरीमें आये॥176-178॥

मादुरामें आगमन :—

दक्षिण-मथुरा आइला कामकोष्ठि हैते।
ताँहा देखा हैल एक ब्राह्मण-सहिते॥179॥

अनुवाद—कामकोष्ठीसे महाप्रभु दक्षिण-मथुरा (मादुरा) आये और वहाँ उनकी एक ब्राह्मणसे भेंट हुई॥179॥

अनुभाष्य—*'दक्षिण-मथुरा'*—वर्तमान समयमें जिसको 'मादुरा' कहते हैं, यह भागाइ-नदीके तटपर है। यह 'शैव क्षेत्र'के नामसे प्रसिद्ध है। यह स्थान पर्वत और वनसे परिपूर्ण है। यहाँ 'रामेश्वर', 'सुन्दरेश्वर' और 'मीनाक्षी देवी' हैं। इन मीनाक्षी-देवीका मन्दिर बहुत

विशाल और विशेषरूपसे देखने योग्य है। यह नगरी बहुत समय तक पाण्ड्यवंशीय राजाओंके शासनके अधीन थी। मुसलमानोंके आक्रमणसे 'सुन्दरलिङ्ग'के मन्दिरके बहुत अंश विध्वंस हो गये। 1372 ईसवीमें 'कम्पन्न उदैयर'ने मादुराके सिंहासनपर अधिकार किया। बहुत पहले राजा कुलशेखरने इस पुरीका निर्माण करके इसमें ब्राह्मणोंके घरोंको स्थापित किया था। 'अनन्तगुणपाण्ड्य'—कुलशेखरसे ग्यारहवें अधस्तन (वंशज) हैं॥ 179॥

वहाँ एक रामभक्त-ब्राह्मणके घरपर भिक्षा :—

सेइ विप्र महाप्रभुके कैल निमन्त्रण।
रामभक्त सेइ विप्र—विरक्त महाजन॥ 180॥

स्नानके बाद प्रसाद सेवाके लिये महाप्रभुका आगमन,
किन्तु ब्राह्मणका रसोई न बनाना :—

कृतमालाय स्नान करि' आइला ताँर घरे।
भिक्षा कि दिबेन विप्र,—पाक नाहि करे॥ 181॥

अनुवाद—उस ब्राह्मणने महाप्रभुको भिक्षाके लिये अपने घरमें निमन्त्रण किया। वह ब्राह्मण रामभक्त था और विरक्त महात्मा था। कृतमाला नदीमें स्नान करके महाप्रभु उस ब्राह्मणके घर आये, परन्तु वह ब्राह्मण भिक्षा क्या करायेगा, उसने तब तक भोजनके लिये कुछ भी नहीं बनाया था॥ 180–181॥

अनुभाष्य—*'कृतमाला'*—वर्तमान समयमें 'बैगाइ' अथवा 'भगाइ' नदीकी एक धारा है। 'सरुली', 'वराह-नदी' और 'वट्टिल्ल गुन्डु'—ये तीन धाराएँ बैगाई-नदीमें आकर मिलती है। (भाः 11/5/39)—"ताम्रपर्णी-नदी यत्र कृतमाला पयःस्विनी॥"

अर्थात् "जहाँ ताम्रपर्णी, कृतमाला और पयस्विनी नदियाँ बहती हैं॥"181॥

रसोई न बनाना और उपवास :—

महाप्रभु कहे ताँरे,—"शुन महाशय।
मध्याह्न हैल, केने पाक नाहि हय॥"182॥

अनुवाद—महाप्रभुने उस ब्राह्मणसे कहा,—"सुनो महाशय! मध्याह्नका समय हो गया है, आपने अब तक रसोई नहीं बनायी है॥"182॥

ब्राह्मणकी मानसी उपासना :—

विप्र कहे,—"प्रभु मोर अरण्ये वसति।
पाकेर सामग्री वने ना मिले सम्प्रति॥ 183॥

वन्य शाक-फल-मूल आनिबे लक्ष्मण।
तबे सीता करिबेन पाक-प्रयोजन॥"184॥

अनुवाद—ब्राह्मणने उत्तर दिया,—"मेरे प्रभु वनमें वास करते हैं। वनमें इस समय भोजन बनानेकी सामग्री नहीं मिलती। लक्ष्मणजी जब वनसे शाक, फल और मूल आदि लायेंगे, तभी श्रीसीतादेवी रसोईका प्रबन्ध करेंगी॥"183–184॥

सुनकर महाप्रभुकी प्रसन्नता और ब्राह्मणका रन्धन :—

ताँर उपासना शुनि' प्रभु तुष्ट हैला।
आस्ते-व्यस्ते सेइ विप्र रन्धन करिला॥ 185॥

अनुवाद—उस ब्राह्मणकी उपासनाके विषयमें सुनकर महाप्रभु बहुत प्रसन्न हुए। अन्तमें उस ब्राह्मणने बहुत शीघ्रतासे भोजन तैयार किया॥ 185॥

तृतीय प्रहरमें महाप्रभुका भोजन,
किन्तु ब्राह्मणका उपवास :—

प्रभु भिक्षा कैल दिनेर तृतीय प्रहरे।
अनिर्विघ्न सेइ विप्र उपवास करे॥ 186॥

अनुवाद—महाप्रभुने दिनके तीसरे प्रहरमें भोजन ग्रहण किया, किन्तु क्षुब्ध होनेके कारण उस ब्राह्मणने उपवास किया॥ 186॥

उपवासके कारणकी जिज्ञासा :—

प्रभु कहे,—"विप्र, काँहे कर उपवास।
केने एत दुःख, केने करह हुताश॥"187॥

अनुवाद—महाप्रभुने उससे पूछा,—"हे ब्राह्मण! तुम

उपवास क्यों कर रहे हैं? तुम इतने दुःखी क्यों हो? किसलिये इतने चिन्तित हो?॥"187॥

रावणके द्वारा सीतादेवीके अपहरणके विषयमें विचारकर ब्राह्मणका दुःख और आत्महत्याका सङ्कल्प :—

विप्र कहे,—"मोर जीवने नाहि प्रयोजन।
अग्नि-जले प्रवेशिया छाड़िब जीवन॥188॥
जगन्माता महालक्ष्मी सीता-ठाकुराणी।
राक्षसे स्पर्शिल ताँरे,—इहा काने शुनि॥189॥
ए शरीर धरिवारे कभु ना युयाय।
एइ दुःखे ज्वले देह, प्राण नाहि याय॥"190॥

अनुवाद—उस ब्राह्मणने कहा,—"मेरे जीवित रहनेका कोई प्रयोजन नहीं है। मैं अग्नि अथवा जलमें प्रवेश करके अपना जीवन त्याग दूँगा। श्रीसीता-ठाकुराणी जगत्-माता और महालक्ष्मी हैं, उनको रावण नामक राक्षसने स्पर्श किया, यह बात सुनकर मैं बहुत दुःखी हूँ। इस दुःखके कारण मैं अब और शरीर धारण नहीं कर सकता। इस दुःखसे मेरा शरीर जलता है, परन्तु प्राण नहीं निकलते॥"188–190॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'अग्नि-जले'*—अग्निमें अथवा जलमें॥188॥

महाप्रभुके द्वारा आश्वासन और सत्सिद्धान्तका वर्णन :—

प्रभु कहे,—"ए भावना ना करिह आर।
पण्डित हञा मने ना करह विचार॥191॥

अधोक्षजवस्तु अक्षज-चेष्टासे परे :—

ईश्वर-प्रेयसी सीता—चिदानन्दमूर्त्ति।
प्राकृत-इन्द्रियेर ताँरे देखिते नाहि शक्ति॥192॥

रावण किसी प्रकारसे सीताके दर्शन-स्पर्शयोग्य नहीं :—

स्पर्शिवार कार्य आछुक, ना पाय दर्शन।
सीतार आकृति-माया हरिल रावण॥193॥

अनुवाद—महाप्रभुने सान्त्वना देते हुए उससे कहा,—"ऐसा विचार कभी भी अपने मनमें मत लाना। पण्डित होकर इसपर विचार क्यों नहीं करते? श्रीसीतादेवी भगवान्की प्रेयसी हैं, उनकी देह चिदानन्दमय है। प्राकृत इन्द्रियोंकी उन्हें देखनेकी शक्ति नहीं है। श्रीसीतादेवीको स्पर्श करनेकी बात तो दूर रहे, कोई मायाबद्ध जीव उनका दर्शन भी नहीं कर सकता। उनकी मायिक-आकृतिका ही रावणने हरण किया था॥191–193॥

अमृतप्रवाह भाष्य—सीताजी स्वयं चिदानन्दमूर्ति हैं, उनकी चिदाकृतिकी छायास्वरूप माया-सीताका ही रावणने हरण किया था॥192॥

रावणके द्वारा छायारूपी सीताका अपहरण :—

रावण आसितेइ सीता अन्तर्धान कैल।
रावणेर आगे माया-सीता पाठाइल॥194॥

वैकुण्ठ-वस्तु जड़के द्वारा मापी नहीं जा सकती :—

अप्राकृत वस्तु नहे प्राकृत-गोचर।
वेद-पुराणेते एइ कहे निरन्तर॥195॥

महाप्रभुके द्वारा आश्वासन :—

विश्वास करह तुमि आमार वचने।
पुनरपि कु-भावना ना करिह मने॥"196॥

अनुवाद—रावणके आते ही वास्तविक सीता अन्तर्धान हो गयी थीं और रावणको छलनेके लिये उन्होंने अपने मायामय रूपको ही उसके सामने भेजा था। अप्राकृत वस्तु प्राकृत इन्द्रियोंसे अनुभव नहीं की जा सकती। वेद-पुराणोंका सदा यही निर्णय है। मेरी बातपर विश्वास करो और फिर कभी भी अपने मनमें इस प्रकारकी बुरी भावना मत लाना॥"194–196॥

अनुभाष्य—(कठोपनिषद् 2/3)—

"इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम्।
सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम्॥
अव्यक्तात् तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिङ्ग एव च।
यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वञ्च गच्छति॥
न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य, न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लिप्तो, य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति॥xx
नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा॥"

(भाः 10/84/13)—

"यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके
स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न
कर्हिचिज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः॥"

अर्थात् "सभी इन्द्रियोंसे मन श्रेष्ठ है, मनसे बुद्धि श्रेष्ठ है, बुद्धिसे देह और इन्द्रियोंका स्वामी जीवात्मा श्रेष्ठ है एवं जीवात्मासे अव्यक्त (जिसे अतिक्रम करना अति दुष्कर है) माया श्रेष्ठ है। मायासे सर्वव्यापक और प्राकृतधर्मरहित पुरुषोत्तम श्रेष्ठ है। उनको जाननेसे ही जीव अमृतत्व (जन्म-मृत्युसे मुक्ति) प्राप्त करता है। उनका रूप जीवको दिखलायी नहीं देता, कोई भी (अपनी चेष्टासे) नेत्रोंसे उनके दर्शन नहीं कर सकता। वे केवल भक्तिसे पवित्र हुए हृदयसे निर्मल मनके द्वारा और विशुद्ध बुद्धिकी सहायतासे जीवकी धारणाके विषय होते हैं। जो उनको इस प्रकार जानता है, वही अमृतत्व लाभ करता है।×× वे परमेश्वर वाणीके द्वारा नहीं जाने जाते, मनके द्वारा उनका बोध नहीं होता, नेत्रोंके द्वारा वे देखें नहीं जा सकते (कठोपनिषद्)।" "जो मनुष्य त्रिधातुओं (कफ-वात-पित्त) से बने जड़ शरीरमें आत्मबुद्धि, स्त्री-पुत्रादिमें ममत्वबुद्धि, जन्मभूमिमें पूजनीयबुद्धि तथा जलादिमें तीर्थबुद्धि रखता है—किन्तु इन समस्त बुद्धिके मध्य किसी प्रकारकी बुद्धि भगवद्भक्तोंमें नहीं हो, तो वह गाय आदि (घास चरनेवाले) पशुओंमें भी गधा ही है॥"195॥

ब्राह्मणका महाप्रभुके वाक्योंपर विश्वास और भोजन :—

प्रभुर वचने विप्रेर हइल विश्वास।
भोजन करिल, हैल जीवनेर आश॥197॥

अनुवाद—महाप्रभुके वचन सुनकर ब्राह्मणको उनपर विश्वास हुआ। तब उसने भोजन किया और उसमें जीवनको धारण करनेकी आशाका सञ्चार हुआ॥197॥

दुर्वशनमें 'रामचन्द्र'का दर्शन :—

ताँरे आश्वासिया प्रभु करिला गमन।
कृतमालाय स्नान करि' आइला दुर्वशन॥198॥

महेन्द्रपर्वतपर भृगुराम-दर्शन :—

दुर्वशने रघुनाथे कैल दरशन।
महेन्द्र-शैले परशुरामेर कैल वन्दन॥199॥

अनुवाद—उस ब्राह्मणको आश्वासन देकर महाप्रभु वहाँसे चल दिये और कृतमाला नदीमें स्नान करके दुर्वशन नामक स्थानपर आये। दुर्वशनमें महाप्रभुने श्रीरघुनाथके दर्शन किये। फिर महेन्द्र-पर्वतपर जाकर श्रीपरशुरामके दर्शनकर उनकी वन्दना की॥198–199॥

अनुभाष्य— *'दुर्वशन'*—'दर्भशयन' अथवा श्रीरामचन्द्रजीका मन्दिर, रामनादसे सात मील पूर्वकी ओर समुद्रके तटपर अवस्थित है।

'महेन्द्र-शैल'—'तिनेभेलि'के निकट इस पर्वतकी तलहटीमें 'त्रिचिनगुड़ि'-नगर है; इसके पश्चिममें त्रिवाङ्कुर-राज्य है। रामायणमें महेन्द्र-पर्वतका उल्लेख मिलता है॥199॥

धनुषकोटि-तीर्थ-स्नान, रामेश्वरका दर्शन और विश्राम :—

सेतुबन्धे आसि' कैल धनुस्तीर्थे स्नान।
रामेश्वर देखि' ताँहा करि विश्राम॥200॥

अनुवाद—वहाँसे सेतुबन्ध (रामेश्वर)में आकर महाप्रभुने धनुस्तीर्थमें स्नान किया और रामेश्वरका दर्शन करके वहाँपर विश्राम किया॥200॥

अनुभाष्य—*'सेतुबन्ध, धनुस्तीर्थ और रामेश्वर'*—'मण्डपम्' और 'पम्वम्' द्वीपके बीच समुद्रमें कहीं रेतीला और कहीं जलमग्न मार्ग वर्तमान है। पम्वम् द्वीपकी लम्बाई साढ़े पाँच कोस और चौड़ाई तीन कोस है। पम्वम्-बन्दरगाहसे चार मील उत्तरमें 'रामेश्वर'-मन्दिर है—"देवीपत्तनमारभ्य गच्छेयुः सेतुबन्धम्।" इस स्थानपर चौबीस तीर्थ हैं, उनमेंसे 'धनुष्कोटि' भी एक है। यह रामेश्वरसे बारह मील दक्षिण-पूर्वमें है। विभीषणकी प्रार्थनापर अयोध्या वापिस लौटनेसे पहले श्रीरामचन्द्रने (मतान्तरमें लक्ष्मणने) अपने धनुषके कोनेसे सेतु (पुल) को तोड़ दिया था। इस धनुस्तीर्थका दर्शन करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता; धनुस्तीर्थमें स्नान करनेसे

अग्निष्टोमादि यज्ञोंकी अपेक्षा अधिक फल प्राप्त होता है। पम्वम्-द्वीपमें स्थित सेतुबन्धमें रामेश्वर-शिवमूर्ति अर्थात् 'राम ही जिनके ईश्वर हैं',-ऐसे भक्तावतार शिवकी मूर्ति है॥ 200॥

ब्राह्मणोंकी सभामें कूर्मपुराणके पाठका श्रवण :-

विप्र-सभाय शुने ताँहा कूर्म-पुराण।
तार मध्ये आइला पतिव्रता-उपाख्यान॥ 201॥

पतिव्रता-शिरोमणि जनक-नन्दिनी।
जगतेर माता सीता—रामेर गृहिणी॥ 202॥

अनुवाद—रामेश्वरमें ब्राह्मण-सभामें महाप्रभुने कूर्म-पुराणकी कथाको सुना। कथामें पतिव्रताका प्रसङ्ग आया कि जनकनन्दिनी सीताजी पतिव्रता-शिरोमणि हैं, वे श्रीरामचन्द्रकी पत्नी और जगत्-माता हैं॥ 201-202॥

अनुभाष्य— *'कूर्मपुराण'*—वर्तमान समयके कूर्म-पुराणमें केवलमात्र पूर्व और उत्तर—दो खण्ड ही प्राप्त होते हैं। वास्तविक कूर्मपुराण छह हजार श्लोकवाला नहीं; इसमें सत्तरह हजार श्लोक थे। भागवतके मतानुसार—"तत् सप्त-दशसाहस्रं सुचतुःसंहितं शुभम्। सप्तदश-सहस्राणि लक्ष्मीकल्पानुषङ्गिकम्॥"—यह अठारह महापुराणोंमें पन्द्रहवाँ पुराण है॥ 201॥

रावणका छाया-सीताके अपहरणके वृत्तान्तका श्रवण :-

रावण देखिया सीता लैल अग्निर शरण।
रावण हैते अग्नि कैल सीताके आवरण॥ 203॥

'मायासीता' रावण निल, शुनिला आख्याने।
शुनि' महाप्रभु हैल आनन्दित मने॥ 204॥

सीता लञा राखिलेन पार्वतीर स्थाने।
'मायासीता' दिया अग्नि वञ्चिला रावणे॥ 205॥

रघुनाथ आसि' यबे रावणे मारिल।
अग्नि-परीक्षा दिते यबे सीतारे आनिल॥ 206॥

तबे मायासीता अग्न्ये कैल अन्तर्धान।
सत्य-सीता आनि' दिल राम-विद्यमान॥ 207॥

अनुवाद—रावणको देखकर सीताजीने अग्निदेवकी शरण ली और अग्निदेवने सीताजीको रावणसे छिपा लिया। रावणने तो 'मायासीता'का हरण किया था, यह सुनकर महाप्रभु बहुत प्रसन्न हुए। अग्निदेवने असली सीताजीको पार्वतीजीके पास पहुँचा दिया और मायासीता देकर रावणके साथ छल किया। श्रीरघुनाथने जब रावणका वध किया और सीताजीकी अग्नि-परीक्षाके लिये जब उन्हें लाया गया, तब अग्निदेवने मायासीताको अन्तर्धान करके असली सीताजीको लाकर श्रीरामचन्द्रको सौंप दिया॥ 203-207॥

सत्-सिद्धान्त सुननेसे महाप्रभुको आनन्द
और पुराणके ग्रन्थके पन्नोंको लेना :-

ए-सब सिद्धान्त शुनि' प्रभुर आनन्द हैल।
ब्राह्मणेर स्थाने मागि' सेइ पत्र निल॥ 208॥

नूतन पत्र लेखाञा पुस्तके देओयाइल।
प्रतीति लागि' पुरातन पत्र मागि' निल॥ 209॥

अनुवाद—ये सब सिद्धान्त सुनकर महाप्रभुको बहुत आनन्द हुआ और उन्होंने उन ब्राह्मणोंसे कूर्मपुराणके उन पन्नोंको माँगकर ले लिया। महाप्रभुने उन पुराने पन्नोंकी नकल करवाकर नये पन्नोंको पुरानी पुस्तकमें जोड़ दिया और प्रमाणके रूपमें उन्होंने ब्राह्मणोंसे पुराने पन्नोंको अपने पास रखनेकी अनुमति ले ली॥ 208-209॥

दक्षिण-मथुरामें आकर सीताभक्त ब्राह्मणको पत्रार्पण :-

पत्र लञा पुनः दक्षिण-मथुरा आइला।
रामदास-विप्रे सेइ पत्र आनि' दिला॥ 210॥

अनुवाद—उन पन्नोंको लेकर महाप्रभु पुनः दक्षिण मथुरा (मदुरा)में आये और उन्होंने रामदास ब्राह्मणको वे मूल-पन्ने दिये॥ 210॥

रावणके द्वारा मायासीता-अपहरणसूचक श्लोक :-
कूर्मपुराण और बृहद्ग्निपुराण—

सीतयाराधितो वह्निश्छाया-सीतामजीजनत्।
तां जहार दशग्रीवः सीता वह्निपुरं गता॥ 211॥

परीक्षा-समये वह्निं छाया-सीता विवेश सा।
वह्निः सीतां समानीय तत्पुरस्तादनीनयत्॥ 212॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 211-212॥

अमृतप्रवाह भाष्य—सीताजीके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर अग्निदेवने 'छायासीता' प्रस्तुत की। दसमुख रावणने उन्हीं छायासीताका हरण किया था, मूल-सीताजी अग्निलोकमें ही रहीं। श्रीरामचन्द्रने जब परीक्षा की, तब छायासीताने अग्निमें प्रवेश किया, अग्निदेवने मूल सीताजीको लाकर उन्हें श्रीरामचन्द्रके निकट उपस्थित किया॥ 211-212॥

अनुभाष्य—

सीतया (जनकनन्दिन्या) बह्निः (अग्निदेवः) आराधितः (अर्चितः सन्) छायासीतां (मायामयीं तादृशीं मूर्त्तिम्) अजीजनत् (प्रकटितवान्)। दशग्रीवः (दशभिरिन्द्रियैः भोगपरायणः रावणः) तां (प्राकृतां छायासीताम् एव, न तु मूलसीतां, सीतायाः अधोक्षजत्वात्) जहार। सीता (मूलसीता) [तु] वह्निपुरं गता। परीक्षासमये सा छायासीता बह्निं विवेश। वह्निः तत्पुरस्तात् सीतां (मूलसीतां) समानीय अनीनयत्।

श्लोक-भावानुवाद—जनकनन्दिनी सीताजीके द्वारा प्रार्थना करनेपर अग्निदेवने सीताजीके समान ही एक मायाकी मूर्ति प्रकटित कर दी। दसों इन्द्रियोंके द्वारा जो भोगोंमें ही लगा रहता था, उस दशानन रावणने छाया सीताका ही हरण किया था, मूल सीताका नहीं, क्योंकि सीताजी अधोक्षज हैं अर्थात् प्राकृत इन्द्रियाँ उन्हें देख-स्पर्श नहीं कर सकतीं। मूल सीताजी तो अग्नि लोकमें चली गयीं। परीक्षाके समय वह छाया सीता अग्निमें प्रवेश कर गयी और अग्निदेव मूलसीताको अपने लोकसे अपने साथ ले आये॥ 211-212॥

कूर्मपुराणके पन्ने और श्लोक-दर्शनसे विप्रको आनन्द :—

पत्र पाञा विप्रेर हैल आनन्दित मन।
प्रभुर चरणे धरि' करये क्रन्दन॥ 213॥

अनुवाद—कूर्मपुराणके उन प्राचीन पन्नोंको प्राप्त करके वह ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुआ और महाप्रभुके चरणोंको पकड़कर रोने लगा॥ 213॥

अमृतप्रवाह भाष्य—कूर्मपुराण ग्रन्थमें नये पन्नोंको लिखवाकर रामदासको दिखानेके लिये जिन प्राचीन पन्नोंको महाप्रभु लाये थे, उस पन्नोंको पाकर ब्राह्मणका मन बहुत प्रसन्न हुआ॥ 213॥

महाप्रभुको 'रघुनाथ' मानना :—

विप्र कहे,—"तुमि साक्षात् श्रीरघुनन्दन।
संन्यासीर वेषे मोरे दिला दरशन॥ 214॥

ब्राह्मणका दैन्य, महाप्रभुको निमन्त्रण और भिक्षा दान :—

महा-दुःख हइते मोरे करिला निस्तार।
आजि मोर घरे भिक्षा कर अङ्गीकार॥ 215॥

मनोदुःखे भाल भिक्षा ना दिल सेइ दिने।
मोर भाग्ये पुनरपि पाइलुँ दरशने॥"216॥

एत बलि' सेइ विप्र सुखे पाक कैल।
उत्तम प्रकारे प्रभुके भिक्षा कराइल॥ 217॥

अनुवाद—ब्राह्मणने कहा,—"आप तो साक्षात् श्रीरघुनन्दन हैं जो संन्यासीके वेशमें मुझे अपने दर्शन दे रहे हैं। आपने महान् दुःखसे मेरा उद्धार किया है। कृपा करके आज आप मेरे घरपर भिक्षा ग्रहण कीजिये। मनमें दुःख होनेके कारण मैं उस दिन आपको अच्छी तरहसे भोजन नहीं करा सका, परन्तु मेरे सौभाग्यसे आज आप पुनः मेरे घरमें आये हैं।" यह कहकर उस ब्राह्मणने बड़े आनन्दसे भोजन बनाया और उत्तम-उत्तम व्यञ्जनोंके द्वारा महाप्रभुको भोजन कराया॥ 214-217॥

एक रात ब्राह्मणके घरमें वास और ताम्रपर्णीमें स्नान :—

सेइ रात्रि ताँहा रहि' ताँरे कृपा करि'।
पाण्ड्यदेशे ताम्रपर्णी गेला गौरहरि॥ 218॥

अनुवाद—उस रात महाप्रभु ब्राह्मणके घरमें ही रहे। अगले दिन उसपर कृपा करके श्रीगौरहरि पाण्ड्यदेशमें ताम्रपर्णीके लिये चले गये॥ 218॥

अनुभाष्य— *'पाण्ड्यदेश'*—दक्षिण भारतके 'केरल' और 'चोल' राज्यका मध्यवर्ती प्रदेश है। यहाँपर बहुतसे 'पाण्ड्य' उपाधिधारी राजाओंने मादुरा और रामेश्वरपर राज्य किया। रामायण (किष्किन्धाकाण्ड 41/17-18)में—"ताम्रपर्णीं ग्राहजुष्टां तरिष्यथ महानदीम्। स चन्दनवनैश्चित्रैः प्रच्छन्नद्वीपवारिणीम्। युक्तं कपाटं पाण्ड्यानां गता द्रक्ष्म्यथ वानराः॥" अर्थात् "ताम्रपर्णी नदीके द्वीप और जल विचित्र चन्दनवनोंसे आच्छादित हैं, अतः वह सुन्दर साड़ीसे विभूषित युवती प्रेयसीकी भाँति अपने प्रियतम समुद्रसे मिलती है। वानरो! वहाँसे आगे बढ़नेपर तुम लोग पाण्ड्यवंशी राजाओंके नगरद्वारपर लगे हुए सुवर्णमय कपाटका दर्शन करोगे, जो मुक्तामणियोंसे विभूषित और दिव्य है।"

'ताम्रपर्णी'—'तिनेभेलि' नदीके बाँये तटपर अवस्थित है; इसको 'परूणै' कहते हैं। यह नदी 'पश्चिम घाट'-पर्वतसे बाहर निकलकर बङ्गालकी खाड़ीमें मिलती है। (भाः 11/5/31)—"ताम्रपर्णी-नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी।"

अर्थात् जहाँ ताम्रपर्णी, कृतमाला और पयस्विनी नदियाँ बहती हैं॥ 218॥

नव-तिरुपतिका दर्शन :—

ताम्रपर्णी स्नान करि' ताम्रपर्णी-तीरे।
नय त्रिपति देखि' बुले कुतूहले॥ 219॥

अनुवाद—ताम्रपर्णी नदीमें स्नान करके महाप्रभुने ताम्रपर्णीके तटपर स्थित नौ विष्णुके मन्दिरोंमें दर्शनके लिये कौतुहलसे वहाँ भ्रमण करने लगे॥ 219॥

अनुभाष्य— *'नय तिरुपति'*—'आलोवर तिरुनगरी', यह नगर तिनेभेलिसे सतरह मील दक्षिण-पूर्वमें है; इसके चारों ओर नौ श्रीपति अर्थात् विष्णुके मन्दिर वर्तमान हैं। सभी नौ विग्रह उत्सवके उपलक्षमें इस नगरमें एकत्रित होते हैं॥ 219॥

चियड़तलामें श्रीराम-लक्ष्मण और
तिलकाञ्चीमें शिवका दर्शन :—

चियड़तला तीर्थे देखि' श्रीराम-लक्ष्मण।
तिलकाञ्ची आसि' कैल शिव-दरशन॥ 220॥

अनुवाद—वहाँसे चियड़तला तीर्थमें आकर महाप्रभुने श्रीराम-लक्ष्मणके दर्शन किये। और फिर तिलकाञ्चीमें आकर शिवजीके दर्शन किये॥ 220॥

अनुभाष्य— *'चियड़तला'*—कोई-कोई इसे 'छेरतला' कहते हैं, यह नगरकैलेरके निकट है; यहाँ श्रीरामलक्ष्मणका मन्दिर है।

'तिलकाञ्ची'—शिवमन्दिर, सम्भवतः इसे तिनेभेलि-नगरसे तीस मील उत्तर-पूर्व दिशामें 'तेन काशी'को लक्ष्य करके कहा गया है॥ 220॥

गजेन्द्रमोक्षणमें विष्णु और पानागड़िमें श्रीरामका दर्शन :—

गजेन्द्रमोक्षण-तीर्थे देखि' विष्णुमूर्त्ति।
पानागड़ि-तीर्थे आसि' देखिल सीतापति॥ 221॥

अनुवाद—उसके बाद महाप्रभु गजेन्द्रमोक्षण-तीर्थमें गये और वहाँ श्रीविष्णुमूर्तिके दर्शन किये। और फिर पानागड़ि-तीर्थमें आकर सीतापति श्रीरामचन्द्रके दर्शन किये॥ 221॥

अनुभाष्य— *'गजेन्द्र-मोक्षण'*—भ्रमके कारण कोई-कोई इसको नगरकैवेरसे दो मील दक्षिणमें स्थित 'स्थानुलिङ्ग' अथवा 'देवेन्द्र-मोक्षणशिव'के नामसे कहते हैं, वास्तवमें ये श्रीविष्णुविग्रह हैं।

'पानागड़ि'—'पानागड़ि', त्रिवेन्द्रम जाते समय तिनेभेलिसे तीस मील दक्षिणमें, थोड़ेसे पश्चिम कोणमें। पहले यहाँपर श्रीराममूर्ति थी, बादमें शैव लोग उनको 'रामेश्वर' अथवा 'रामलिङ्ग शिव'के रूपमें पूजा करते आ रहे हैं॥ 221॥

चाम्तापुरमें श्रीराम-लक्ष्मण, श्रीवैकुण्ठमें विष्णु-दर्शन :—

चाम्तापुरे आसि' देखि' श्रीराम-लक्ष्मण।
श्रीवैकुण्ठे आसि' कैल विष्णु-दरशन॥ 222॥

अनुवाद—चाम्तापुरमें आकर महाप्रभुने श्रीराम-लक्ष्मणके दर्शन किये। और वहाँसे श्रीवैकुण्ठमें आकर श्रीविष्णुके दर्शन किये॥ 222॥

अनुभाष्य—'चाम्तापुर'—सम्भवतः त्रिवाङ्कुर-राज्यमें स्थित 'चेङ्गानुर' है। यहाँपर श्रीराम-लक्ष्मणका मन्दिर है।

'श्रीवैकुण्ठ'—'श्रीवैकुण्ठम्', आलोयार तिरूनगरीसे चार मील उत्तर एवं तिनेभेलिसे सोलह मील दक्षिण-पूर्वमें ताम्रपर्णी नदीके बाँये तटपर अवस्थित है॥ 222॥

कुमारिकामें अगस्त्य-दर्शन :—

मलय-पर्वते कैल अगस्त्य-वन्दन।
कन्याकुमारी ताँहा कैल दरशन॥ 223॥

अनुवाद—महाप्रभुने मलय पर्वतपर आकर श्रीअगस्त्य मुनिकी वन्दना की। महाप्रभुने फिर कन्याकुमारीका दर्शन किया॥ 223॥

अनुभाष्य—'मलय पर्वत'—दक्षिण भारतमें केरलसे कन्याकुमारी (Cape Comorin) तक फैली हुई पर्वतमाला है।

'अगस्त्य'के सम्बन्धमें चार मत हैं—(1) ताञ्जोर जिलेमें कलिमियार प्वाइंटमें वेदारण्यमके निकट अगस्त्यम्पल्ली-ग्राममें एक अगस्त्य-मुनिका मन्दिर है; (2) मादुरा जिलेमें शिवगिरि पर्वतके शिखरपर अगस्त्य मुनिके द्वारा निर्मित एक सुब्रह्मण्यका (स्कन्दका) मन्दिर है; (3) कोई-कोई कन्याकुमारीके निकटवर्ती पठिया-पर्वतको अगस्त्यका वासस्थान कहते हैं; (4) ताम्रपर्णी नदीके दोनों ओर केलेकी आकृतिवाली चोटी 'अगस्त्यमलय'के नामसे जानी जाती है। *'कन्याकुमारी'*—कुमारिका-अन्तरीप॥ 223॥

आम्लितलामें श्रीराम-दर्शन :—

आम्लितलाय देखि' श्रीराम गौरहरि।
मल्लार-देशेते आइला यथा भट्टथारि॥ 224॥

अनुवाद—तब श्रीगौरहरिने आम्लितलामें श्रीरामचन्द्रके दर्शन किये। वहाँसे वे मल्लारदेशमें आये, जहाँ 'भट्टथारि' लोग वास करते थे॥ 224॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'भट्टथारि'*—जिनको चलती भाषामें किसी-किसी स्थानपर 'भाटओयारी' कहते हैं; इनका अपना कोई घर-द्वार नहीं होता। जब जहाँ भी रहते हैं, वे वहाँ तम्बुओंमें रहते हैं। इनका बाहरसे तो संन्यासी वेश होता है, किन्तु इनका व्यवसाय चोरी करना और दूसरोंको ठगना है। ये बहुतसी स्त्रियोंको ठगकर लाते हैं और उन्हें अपने शिविरमें रखते हैं। फिर दूसरे लोगोंको स्त्रियाँ दिखलाकर उन्हें भ्रमित करके अपने दलको बढ़ाते हैं। बङ्गालमें जैसे वेदोंकी पाठशालाएँ हैं, पश्चिम और दक्षिण भारतमें उस प्रकार भाटओयारियोंकी 'शिरकि' हैं॥ 224॥

अनुभाष्य—*'मल्लारदेश'*—म्यालेबार-देश। इसके उत्तरमें दक्षिण-कानाड़ा (कर्नाटक), पूर्वमें कूर्ग और महीशूर, दक्षिणमें कोचीन एवं पश्चिममें अरब-सागर है॥ 224॥

मालावरदेशमें तमाल-कार्त्तिक और वेतापनिमें रामके दर्शनकर एक रात वास :—

तमाल-कार्त्तिक देखि' आइल वेतापनि।
रघुनाथ देखि' ताँहा वञ्चिला रजनी॥ 225॥

अनुवाद—तमाल-कार्त्तिकका दर्शन करके महाप्रभु वेतापनि आये और श्रीरघुनाथके दर्शन करके वहीं रात बितायी॥ 225॥

अनुभाष्य—*'तमाल कार्त्तिक'*—तिनेभेलिसे चव्वालीस मील दक्षिणमें और 'अमरवल्ली' पर्वतके बीच सङ्कुचित स्थानसे दो मील दक्षिणमें, तोवल-तालुकाके अन्तर्गत सुब्रह्मण्य या कार्त्तिकदेवका मन्दिर है।

'वेतापनि'—'भूतपण्डि'। यह त्रिवाङ्कुर राज्यमें, नगर-कैलके उत्तरमें, तोबल-तालुकाके बीचमें है। पहले श्रीमन्दिरमें श्रीरामचन्द्रके विग्रह थे। लगता है, वही बादमें रामेश्वर अथवा भूतनाथ शिवलिङ्गके नामसे पूजित हो रहे हैं॥ 225॥

भट्टाथारिके चङ्गुलमें महाप्रभुके सङ्गी कृष्णदास ब्राह्मण :—

गोसाञिर सङ्गे रहे कृष्णदास ब्राह्मण।
भट्टथारि-सह ताँहा हैल दरशन॥ 226॥

स्त्रीधन देखाञा तारे लोभ जन्माइल।
आर्य सरल विप्रेर बुद्धिनाश कैल॥ 227॥

अनुवाद—महाप्रभुके साथ उनका सेवक कृष्णदास आया था। वह ब्राह्मण था, परन्तु भट्टथारियोंके साथ उसकी भेंट हो गयी। भट्टथारियोंने उसे स्त्रियाँ दिखलाकर उसमें लोभ उत्पन्न कर दिया, जिसने उस सरल पवित्र ब्राह्मणकी बुद्धि नष्ट कर दी॥ 226-227॥

अनुभाष्य— *'भट्टथारि'*—मध्यलीला 1/112 संख्या देखें॥ 226॥

कृष्णदासको ढूँढ़ते हुए भट्टथारिके
शिविरमें महाप्रभुका आगमन :—

प्राते उठि' आइला विप्र भट्टथारि-घरे।
ताहार उद्देशे प्रभु आइला सत्वरे॥ 228॥

अनुवाद—प्रातःकालमें उठते ही कृष्णदास ब्राह्मण स्त्री लोभसे महाप्रभुको छोड़कर भट्टथारियोंके शिविरमें आ गया। और महाप्रभु उसे ढूँढ़ते हुए शीघ्रतासे वहाँ आ पहुँचे॥ 228॥

भट्टथारियोंसे महाप्रभुके द्वारा कृष्णदासकी याचना :—

आसिया कहेन सब भट्टथारिगणे।
"आमार ब्राह्मण तुमि राख कि कारणे॥ 229॥

आमिह संन्यासी देख, तुमिह संन्यासी।
मोरे दुःख देह,—तोमार 'न्याय' नाहि वासि॥"230॥

अनुवाद—आकर महाप्रभुने भट्टथारियोंसे कहा,—"मेरे साथी ब्राह्मणको तुमने अपने पास किसलिये रख लिया है? मैं संन्यासी हूँ और आप भी संन्यासी हो, परन्तु आप मुझे जानबूझकर दुःख दे रहे हो, इसका कोई न्यायसङ्गत कारण मुझे दिखलायी नहीं देता॥"229-230॥

भट्टथारियोंके द्वारा महाप्रभुपर आक्रमण, किन्तु महाप्रभुके
अचिन्त्य-शक्तिबलसे वे ही आक्रान्त हुए :—

शुनि' सब भट्टथारि उठे अस्त्र लञा।
मारिबारे आइल सबे चारिदिके धाञा॥ 231॥

तार अस्त्र तार अङ्गे पड़े हात हैते।
खण्ड खण्ड हैल भट्टथारि पलाय चारिभिते॥ 232॥

महाप्रभुके द्वारा कृष्णदास ब्राह्मणका उद्धार :—

भट्टथारि-घरे ताँहा उठिल क्रन्दन।
केशे धरि' विप्रे लञा करिल गमन॥ 233॥

अनुवाद—यह सुनकर सभी भट्टथारि अपने अस्त्र लेकर उठ खड़े हुए और महाप्रभुको मारनेके लिये सब चारों ओरसे दौड़कर आये। परन्तु उनके अस्त्र उनके हाथोंसे छूटकर उनके ही अङ्गोंपर आघात करने लगे। जब कुछ भट्टथारियोंके शरीर खण्ड-खण्ड हो गये, तब बचे हुए भट्टथारि चारों दिशाओंमें भागने लगे। भट्टथारियोंके शिविरमें उनके सम्बन्धी जोर-जोरसे रोने लगे और महाप्रभु कृष्णदास ब्राह्मणको केशोंसे पकड़कर वहाँसे लेकर चल दिये॥ 231-233॥

आदिकेशव-मन्दिरमें विष्णु-दर्शनसे महाप्रभुका नृत्य-गीत
और उनके दर्शनसे सभीका आश्चर्यचकित होना :—

सेइ दिन चलि' आइला पयस्विनी-तीरे।
स्नान करि' गेला आदिकेशव-मन्दिरे॥ 234॥

केशव देखिया प्रेमे आविष्ट हैला।
नति, स्तुति, नृत्य, गीत, बहुत करिला॥ 235॥

प्रेम देखि' लोके हैल महा-चमत्कार।
सर्वलोक कैल प्रभुर परम सत्कार॥ 236॥

अनुवाद—उस दिन चलकर महाप्रभु पयस्विनी नदीके तटपर पहुँचे। वहाँ स्नान करके वे आदिकेशवके मन्दिरमें गये। आदिकेशवके दर्शन करके महाप्रभु प्रेममें आविष्ट हो गये और उनको प्रणाम करके उनकी

स्तव-स्तुति की। तब बहुत देर तक महाप्रभुने नृत्य-गान किया। महाप्रभुके प्रेमको देखकर लोगोंको बहुत आश्चर्य हुआ और सभी लोगोंने महाप्रभुका परम सत्कार किया॥ 234-236॥

शुद्धभक्त-सङ्गसे ब्रह्मसंहिताके पाँचवें अध्यायकी प्राप्ति :—

महाभक्तगणसह ताँहा गोष्ठी कैल।
'ब्रह्मसंहिताध्याय'-पुँथि ताँहा पाइल॥ 237॥

अनुवाद—आदिकेशव मन्दिरमें महाप्रभुने वहाँ एकत्रित महान्-भक्तोंके साथ इष्टगोष्ठी की। वहाँ उन्हें 'ब्रह्मसंहिता' ग्रन्थके एक अध्यायकी (पाँचवें अध्यायकी) एक पोथी प्राप्त हुई॥ 237॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'ब्रह्मसंहिताध्याय'*—ब्रह्मसंहिताका पाँचवाँ अध्याय, जो अब बङ्गालमें श्रीजीवगोस्वामीकी टीकाके साथ मिलता है॥ 237॥

ग्रन्थ-दर्शनसे महाप्रभुको आनन्द :—

पुँथि पाञा प्रभुर हैल आनन्द अपार।
कम्पाश्रु-पुलक-स्वेद-स्तम्भ विकार॥ 238॥

अनुवाद—इस पोथीको प्राप्त करके महाप्रभुको अपार प्रसन्नता हुई और कम्प, अश्रु, पुलक, स्वेद और स्तम्भादि अष्ट-सात्त्विक विकार उनकी देहमें प्रकाशित हो आये॥ 238॥

ब्रह्मसंहिताका माहात्म्य :—

सिद्धान्त-शास्त्र नाहि 'ब्रह्मसंहिता'र सम।
गोविन्दमहिमा-तत्त्व परम कारण॥ 239॥

अल्पाक्षरे कहे सिद्धान्त अपार।
सकल-वैष्णवशास्त्र-मध्ये अति सार॥ 240॥

अनुवाद—ब्रह्मसंहिताके समान और कोई भी सिद्धान्त-शास्त्र नहीं है। यह ग्रन्थ श्रीगोविन्दकी महिमाको सर्वाधिक प्रकाशित करनेवाला है, क्योंकि इसमें उनका सर्वोत्तम तत्त्व प्रकाशित हुआ है। समस्त सिद्धान्त इस ग्रन्थमें संक्षेपमें वर्णन किये गये हैं। यह ग्रन्थ सभी वैष्णव-शास्त्रोंका परमसार स्वरूप है॥ 239-240॥

अनुभाष्य— *'ब्रह्मसंहिताध्याय'*—'ब्रह्मसंहिता'-ग्रन्थका पाँचवाँ अध्याय। इसमें अचिन्त्यभेदाभेदस्थिति, अभ्यास, अष्टादशाक्षर मन्त्र, आत्मा, आत्माराम, कर्म, कामगायत्री, कामबीज, कारणब्धिशायी, कृष्णधामका चिद्-विशेष, गणेश, गर्भोदकशायी, गायत्री-उत्पत्ति, गोकुल, 'गोविन्द-रूप, स्वरूप-तत्त्व और धाम', जीवतत्त्व, जीवका प्राप्य स्वरूप, दुर्गा, तप, पञ्चभूत, प्रेम, ब्रह्म, ब्रह्माजीकी दीक्षा, भक्तिनेत्र, भक्तिके सोपान (सीढ़ियाँ), मन, महाविष्णु, योगनिद्रा, रमा, रागमार्गीय भक्ति, श्रीरामादि अवतार, लिङ्गादि शब्दका तात्पर्य, बद्धजीव, उसका साधन, विष्णुतत्त्व, वेदसार-स्तव, शम्भु, श्रुत, स्वकीय, पारकीय, सदाचार, सूर्य और हैमाण्ड आदि विषय वर्णित हुए हैं॥ 237-240॥

श्रीअनन्त पद्मनाभ-दर्शन :—

बहु यत्ने सेइ पुँथि लइला लिखिया।
'अनन्त-पद्मनाभ' आइला हरषित हञा॥ 241॥

अनुवाद—महाप्रभुने बड़े यत्नसे ब्रह्म-संहिता ग्रन्थ लेकर उसकी नकल करवाकर अपने पास रख ली। फिर महाप्रभु हर्षित होकर 'अनन्त-पद्मनाभ' आये॥ 241॥

अनुभाष्य— *'अनन्त-पद्मनाभ'*—मध्यलीला 1/115 संख्या देखें॥ 241॥

दो दिन वहाँ वास और बादमें श्रीजनार्द्दनका दर्शन :—

दिन-दुइ पद्मानाभेर कैल दरशन।
आनन्दे देखिते आइला श्रीजनार्द्दन॥ 242॥

अनुवाद—दो दिन तक वहाँ रहकर महाप्रभुने भगवान् पद्मनाभके दर्शन किये और फिर आनन्दपूर्वक श्रीजनार्द्दनके दर्शनके लिये आये॥ 242॥

अनुभाष्य— *'श्रीजनार्द्दन'*—त्रिवेन्द्रमके छब्बीस मील उत्तरमें वर्काला-रेलवे स्टेशनके निकट विराजमान हैं॥ 242॥

पयस्विनीके तटपर शङ्कर नारायण-दर्शनः—

दिन दुइ ताँहा करि' कीर्त्तन-नर्त्तन।
पयस्विनी आसिया देखे शङ्कर नारायण॥ 243॥

अनुवाद—दो दिन तक वहाँ रहकर महाप्रभुने नृत्य-कीर्तन किया और वहाँसे पयस्विनी नदीके तटपर आकर शङ्कर नारायणके दर्शन किये॥ 243॥

शृङ्गेरि-मठमें आगमन और बादमें मत्स्यतीर्थ दर्शन :—

शृङ्गेरि-मठे आइला शङ्कराचार्य-स्थाने।
मत्स्य-तीर्थ देखि' कैल तुङ्गभद्राय स्नाने॥ 244॥

अनुवाद—उसके बाद महाप्रभु शङ्कराचार्यके स्थान शृङ्गेरि-मठमें आये। फिर मत्स्यतीर्थका दर्शन करके उन्होंने तुङ्गभद्रा नदीमें स्नान किया॥ 244॥

अनुभाष्य— *'शृङ्गेरि-मठ'*—महीशूरके अन्तर्गत शिमोगा जिलेमें शृङ्गेरि-मठ है। यह स्थान तुङ्गभद्रा नदीके बाँये तटपर और हरिहरपुरके सात मील दक्षिणमें अवस्थित है। इसका वास्तविक नाम—(ऋष्य) शृङ्गगिरि अथवा शृङ्गवेर पुरी है। इस स्थानपर दक्षिण भारतमें स्थित शङ्कराचार्यका प्रधान मठ है। श्रीशङ्कराचार्यने अपने चार शिष्योंके द्वारा भारतके (1) उत्तरमें—बदरिकामें ज्योतिर्मठ; (2) पूर्वमें—पुरुषोत्तममें भोगवर्द्धन अथवा गोवर्धन मठ; (3) पश्चिममें—द्वारकामें शारदा मठ और (4) दक्षिणमें—'शृङ्गेरि' मठ स्थापित किये। शृङ्गेरि मठमें 'सरस्वती', 'भारती', 'पुरी'—इन तीन प्रकारका एक-दण्ड संन्यास ग्रहण करते हैं।

"चतुर्थो दक्षिणाम्नायः शृङ्गेर्यां वर्त्तते मठः।
सम्प्रदायो भूरिवारः भूर्भुवः गोत्र उच्यते॥
पदानि त्रीणि ख्यातानि सरस्वती भारती पुरी।
वराहो देवता यत्र क्षेत्रं रामेश्वरं वदेत्॥
तीर्थश्च तुङ्गाभद्राख्यं शक्तिः कामाक्षिका स्मृता।
चैतन्य-ब्रह्मचारीति हस्तामलकदेशिकः॥
आन्ध्र-द्राविड़-कर्णाट-केरलादि-प्रभेदतः।
शृङ्गेर्यधीना देशास्ते ह्यवाचीदिगवस्थिताः॥
स्वरज्ञानरतो नित्यं स्वरवादी कवीश्वरः।
संसार-सागरासार-हन्तासौ हि 'सरस्वती'॥
विद्याभारेण सम्पूर्णः सर्वभावं परित्यजन्।
दुःखभारं न जानाति 'भारती' परिकीर्त्यते॥
ज्ञानतत्त्वेन सम्पूर्णः पूर्णतत्त्वपदे स्थितः।
परब्रह्मरतो नित्यं 'पुरी'नामा स उच्यते॥" (मठाम्नाय)

अर्थात् मठका नाम—शृङ्गेरि, दिशा—दक्षिण; देश—आन्ध्र, द्रविड़, कर्णाटक और केरलादि; सम्प्रदाय—भूरिवार, गोत्र—भूर्भुवः, क्षेत्र-रामेश्वर; महावाक्य अथवा बोध—'अहं ब्रह्मास्मि'; देव—वराह; शक्ति—कामाक्षी; आचार्य—हस्तामलक; संन्यास-पदवी—'सरस्वती', 'भारती', और 'पुरी'; ब्रह्मचारी—चैतन्य; तीर्थ—तुङ्गभद्रा; वेद—यजुः।

शृङ्गेरि मठके गुरु और संन्यास ग्रहण-काल-परम्परा जैसे—

1) शङ्कराचार्य—22 शक।
2) सुरेश्वराचार्य—30 शक।
3) बोधनाचार्य—680 शक।
4) ज्ञानधनाचार्य—768 शक।
5) ज्ञानोत्तम शिवाचार्य—827 शक।
6) ज्ञानगिरि आचार्य—871 शक।
7) सिंहगिरि आचार्य—958 शक।
8) ईश्वर तीर्थ—1019 शक।
9) नारसिंह तीर्थ—1067 शक।
10) विद्यातीर्थ विद्याशङ्कर—1150 शक।
11) भारतीकृष्ण तीर्थ—1250 शक।
12) विद्यारण्य भारती—1253 शक।
13) चन्द्रशेखर भारती—1290 शक।
14) नरसिंह भारती—1309 शक।
15) पुरुषोत्तम भारती—1328 शक।
16) शङ्करानन्द—1350 शक।
17) चन्द्रशेखर भारती—1371 शक।
18) नरसिंह भारती—1386 शक।
19) पुरुषोत्तम भारती—1394 शक।
20) रामचन्द्र भारती—1430 शक।
21) नरसिंह भारती—1479 शक।
22) नरसिंह भारती—1485 शक।
23) धनमड़ि नरसिंह भारती—1498 शक।

24) अभिनव नरसिंह भारती—1521 शक।

25) सच्चिदानन्द भारती—1544 शक।

26) नरसिंह भारती—1585 शक।

27) सच्चिदानन्द भारती—1627 शक।

28) अभिनव सच्चिदानन्द भारती—1663 शक।

29) नृसिंह भारती—1689 शक।

30) सच्चिदानन्द भरती—1692 शक।

31) अभिनव सच्चिदानन्द भारती—1730 शक,

32) नरसिंह भारती—1739 शक, इनकी समाधिके विषयमें जाननेके लिये 'वैष्णव-मञ्जुषा-समाहृति' (चतुर्थ संख्या) देखें।

33) सच्चिदानन्द शिवाभिनव विद्या नरसिंह भारती—1788 शक।

'शङ्कराचार्य'—इन्होंने दक्षिण भारतके केरल-देशके अन्तर्गत 'कालाडि' नामक ग्राममें 608 शकमें वैशाखी शुक्ला-तृतीयके दिवसमें जन्म ग्रहण किया। इनके पिताके नाम 'शिवगुरु' था। बचपनमें ही इनके पिता परलोक सिधार गये। आठ वर्षकी आयुके पार होते-न-होते ही इन्होंने शास्त्र-अध्ययन समाप्त करके नर्मदाके तटपर 'गोविन्द'से संन्यास ग्रहण किया। संन्यास ग्रहण करनेके बाद कुछ दिनों तक वे गोविन्दके पास रहे। तब उनकी अनुमतिसे वाराणसी गये और वहाँसे बदरिकाश्रममें जाकर बारह वर्षकी आयुमें ब्रह्मसूत्रके एक भाष्यका प्रणयन किया। बादमें दस उपनिषदों, गीता, सनत्सुजातीय और नृसिंह-तापनी आदि ग्रन्थोंके भाष्यकी भी रचनाकी।

शङ्कराचार्यके शिष्योंमेंसे 'पद्मनाभ', 'सुरेश्वर', 'हस्तामलक' और 'त्रोटक'—ये चार व्यक्ति प्रधान है। शङ्कराचार्यने वाराणसीसे होकर प्रयागमें आकर कुमारिल भट्टके साथ भेंट की। कुमारिल मरणासन्न थे, इसलिये उस समय उन्होंने उनके साथ स्वयं विचार (शास्त्रार्थ) न करके अपने प्रधान शिष्य 'मण्डन'के पास माहिष्मती-नगरमें भेज दिया। वहाँ शङ्कराचार्यने मण्डनको विचारमें पराजित कर दिया। मण्डनकी सहधर्मिणी (पत्नी) 'सरस्वती' अथवा 'उभयभारती' उनके विचारके समय मध्यस्था थी; ऐसा कहा जाता है कि उसने शङ्कराचार्यके साथ कामशास्त्रके विषयमें विचार करनेकी इच्छा प्रकाशित की। शङ्कर नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे, अतएव कामशास्त्रके विषयमें कुछ नहीं जानते थे। उन्होंने 'उभयभारती'से एक महीनेका समय माँगकर योगबलसे एक क्षणभर पहले मरे हुए एक राजाके शरीरमें प्रवेश किया। इस प्रकार उन्होंने कामशास्त्रका अनुभव प्राप्त किया। ज्ञान अर्जन करके 'उभयभारती'से विचार-विमर्श करनेकी प्रार्थना की, परन्तु उन्होंने विचार ना करके शङ्करकी प्रार्थनाके अनुसार उनके शृङ्गेरि मठमें वे अचला रहेंगी अर्थात् सदा वहाँ वास करेंगी, यह वर देकर संसारसे विदा हो गयीं। मण्डनने शङ्कराचार्यसे संन्यास ग्रहण किया और उनका नाम 'सुरेश्वर' हुआ। शङ्कराचार्यने एक-एक करके भारतमें प्रायः सर्वत्र भ्रमण करके नाना मतावलम्बियोंको विचारमें पराजित करके उन्हें अपने मतमें ले आये। उन्होंने तैंतीस वर्षकी आयुमें देहत्याग किया।

'मत्स्यतीर्थ'—सम्भवतः मालावर-जिलामें समुद्रके तटपर स्थित वर्तमान 'माहे' नगर है। कोई-कोई कहते हैं कि भिजागापटमके अन्तर्गत पद्म-तालुकाके बीचमें 'पादेरु'से छह मील उत्तरकी ओर मटम-ग्रामके निकट माचेरु-नदीका एक अद्भुत टापु ही मत्स्यतीर्थ है (भिजागापटम् गेजेटियार); किन्तु वह स्थान यहाँपर लक्षित नहीं हुआ है, ऐसा ही बोध होता है॥ **244**॥

उडुपीमें मध्वाचार्य-स्थानमें नर्त्तक-गोपाल-दर्शन :—

मध्वाचार्य-स्थाने आइला याँहा 'तत्त्ववादी'।
उडुपीते 'कृष्ण' देखि' ताँहा हैल प्रेमास्वादी॥ 245॥

अनुवाद—महाप्रभु श्रीमध्वाचार्यके स्थान उडुपीमें आये, जहाँ तत्त्ववादी रहते थे। उडुपीमें महाप्रभु श्रीकृष्णके दर्शन करके प्रेममें उन्मत्त हो गये॥ **245**॥

अनुभाष्य—*'श्रीमध्वाचार्य'*—दक्षिण भारतमें सह्याद्रिके पश्चिममें 'कानाड़ा' जिला है; 'दक्षिण कानाड़ा' जिलेमें

एक प्रधान नगर है—'म्याङ्गलोर', उसके उत्तरमें 'उडुपी' (उडिपी) है। उडुपी ग्रामके पाजका-क्षेत्रमें शिवाल्ली ब्राह्मणकुलके 'मध्यगेह' भट्ट और वेदविद्याके पुत्रके रूपमें 1040 शकाब्दमें, (मतान्तरमें 1160 शकाब्दमें) श्रीमध्वाचार्यने जन्म ग्रहण किया। बाल्यकालमें श्रीमध्वाचार्यका नाम 'वासुदेव' था। उनके विषयमें कुछ अलौकिक बातें कही जाती हैं—

बाल्यकालमें—उडुपीसे पाजकाक्षेत्रमें लौटते समय बिना किसी विघ्नके आना, माताकी अनुपस्थितिमें बड़ी बहनके सामने रोना बन्द करनेके छलसे गैयाओंके द्वारा खाये जानेवाले एक नाद भर भूसेको खाना, एक विशाल साँड़की पूँछ पकड़कर झूलना और इमलीके बीजोंको ही वास्तविक धनके रूपमें बदलकर उससे पिताके द्वारा साहूकारसे लिये ऋणको चुकाना आदि।

पौगण्ड अवस्थामें—नेडिउरुग्रामके उत्सवमें मध्वका खोना और बादमें उडुपीमें अनन्तेश्वर मन्दिरमें मिलना, नेयाम्पल्लि-ग्राममें 'शिव' नामक ब्राह्मणके भ्रमका प्रदर्शन आदि।

पाँच वर्षकी आयुमें उनका उपनयन संस्कार हुआ था। महाभारतमें वर्णित 'मणिमान्' नामक असुर सर्पका आकार धारण करके वहाँ वास करता था। उपनयनके बाद ही 'वासुदेव'ने अपने पैरके अँगूठे द्वारा उस सर्पका संहार किया। माताके चिन्ता करनेपर वे एक छलाँग लगाकर माताके सामने उपस्थित हो गये। इस छोटी अवस्थामें ही उन्होंने पढ़ाईमें बहुत निपुणता दिखलायी। पिताकी सब प्रकारसे असहमति होनेपर भी उन्होंने 'अच्युतप्रेक्ष'से बारह वर्षकी आयुमें संन्यास ग्रहणकर 'पूर्णप्रज्ञ तीर्थ' नाम प्राप्त किया। दक्षिण भारतके अनेक प्रदेशोंमें भ्रमण करनेके बाद श्रृङ्गेरि मठके मठाधीश विद्याशङ्करके साथ उनका बहुत शास्त्रार्थ हुआ। विद्याशङ्कर अति उच्च पदपर थे, परन्तु उन्हें मध्वाचार्यके सामने झुकना पड़ा। 'सत्यतीर्थ' नामक संन्यासीके साथ श्रीमध्व बदरिका गये। वहाँ श्रीव्यासको अपने द्वारा रचित 'गीता-भाष्य' सुनाया और श्रीव्यासने उनके भाष्यको सम्मति प्रदान की। श्रीव्याससे थोड़े ही समयमें उन्होंने अनेक विषयोंकी शिक्षा प्राप्त की। बदरिकासे आनन्दमठमें लौटनेके समय ही श्रीमध्वकी ब्रह्मसूत्र-भाष्य रचना पूर्ण हुई; सत्यतीर्थने उसे लिख दिया। श्रीमध्व बदरीसे गञ्जाममें गोदावरी-प्रदेशमें गये। वहाँ 'शोभन भट्ट' और 'स्वामी शास्त्री' नामक दो पण्डित उन्हें मिले। वे दोनों श्रीमध्वके शिष्य हुए और उनका नाम 'पद्मनाभ तीर्थ' और 'नरहरि तीर्थ' हुआ। उडुपिमें लौटकर एक दिन समुद्र स्नानके लिये जाते-जाते उन्होंने पाँच अध्यायोंमें 'श्रीकृष्ण' स्तोत्रकी रचना की। श्रीकृष्णके चिन्तनमें विभोर होकर वे एक दिन समुद्रके तटपर बालूके ऊपर बैठे थे। तभी उन्होंने देखा कि एक नौका जिसमें द्वारकामें व्यापारके लिये सामान जा रहा था, वह समुद्रमें फँस गयी है। नौकाको बालूमें धँसते देखकर नौकाको ऊपर उठानेके उद्देश्यसे उन्होंने वहींसे ही हाथोंसे कुछ इशारे किये और वह नौका बालूसे निकलकर तटपर आ गयी। इस सहायताके बदलेमें नाविकोंने जब उन्हें कुछ देनेकी इच्छा जतलायी, तब उन्होंने केवल नौकामें रखे हुए कुछ गोपीचन्दनको लेना स्वीकार किया। परन्तु नाविकोंने उन्हें एक बड़ा गोपीचन्दनका टुकड़ा दिया। रास्तेमें लाते-लाते 'बड़वन्देश्वर' नामक स्थानपर वह टूट गया और उसमेंसे एक बहुत सुन्दर 'बालकृष्णमूर्ति' उन्हें प्राप्त हुई। मूर्तिके एक हाथमें एक दही मन्थन करनेवाला दण्ड तथा दूसरे हाथमें मन्थनकी रस्सी थी। श्रीकृष्णके प्राप्त होनेपर उनके 'द्वादश स्तोत्र'के बचे हुए सात अध्याय उसी दिन ही रचित हुए। तीस बलवान व्यक्ति भी जब इस मूर्तिको नहीं उठा पाये, तब परव्योममें सर्वव्यापी वायुके, हनुमानके अथवा भीमसेनके अवतार श्रीमध्व स्वयं माधवको उठाकर उडुपीमें अपने मठमें ले गये। उनके आठ प्रधान संन्यासी-शिष्य उडुपीके आठ मठोंके अध्यक्ष थे। वृन्दावनकी आठ गोपियाँ जिस प्रकार श्रीकृष्णकी सेवा करती हैं, उसी प्रकार इन बालकृष्णकी सेवा श्रीमध्वाचार्य स्वयं और उनके बाद उत्तराढ़ी-मठोंके

अध्यक्ष श्रीमध्वाचार्यगण आठ मठाधीश-संन्यासियोंकी सहायतासे क्रमानुसार कराते थे। आज भी वैसा ही चल रहा है।

श्रीमध्वने दूसरी बार बदरिकाकी यात्रा की थी। जिस समय वे महाराष्ट्र
उस समय वहाँके 'महादेव' नामक राजा अपने मजदूरोंके द्वारा जनताके उपकारके लिये तालाब खुदवा रहे थे। राजाने आदेश देकर श्रीमध्वको उनके शिष्योंके सहित मिट्टी खुदवानेके कार्यमें बलपूर्वक लगाया। किन्तु श्रीमन्मध्वाचार्य अपने प्रभावसे राजाको ही उस कार्यमें नियुक्त करके सहसा स्वयं अपने शिष्योंको लेकर आगे चल दिये। गाङ्गप्रदेशके एक ओर हिन्दु राज्य और दूसरी ओर मुसलमान राज्य था। जिस समय श्रीमन्मध्वाचार्य गाङ्गप्रदेशमें पहुँचे, उस समय इन दोनों राज्योंमें परस्पर भीषण विवाद चल रहा था, जिसके कारण नदी पार करनेके लिये नौका भी नहीं मिलती थी। नदी बहुत चौड़ी थी और विरोधी सैनिकोंने नदी पार करनेपर प्रतिबन्ध लगा रखा था। श्रीमन्मध्वाचार्य और उनके शिष्योंने उस विकट स्थितिमें एक दूसरेका हाथ पकड़कर नदीको तैरकर पार तो कर लिया, किन्तु उनके तटपर पहुँचते ही विरोधी सैनिकोंने उन्हें सताना आरम्भ कर दिया। श्रीमन्मध्वाचार्यने राजाकी अवज्ञा की थी, इसलिये वे स्वयं राजाके समक्ष उपस्थित हुए तथा उन्होंने अपनी परिस्थितिका वर्णन किया। मुसलमान राजा उनकी सौम्य मूर्तिका दर्शनकर और उनके मधुर वचनोंको सुनकर इतना मुग्ध हो गया कि उसने अपना आधा राज्य उन्हें देनेकी इच्छा प्रकट की। किन्तु श्रीमन्मध्वाचार्यने उसे स्वीकार नहीं किया। आगे चलते-चलते मार्गमें डकैतोंने उनपर आक्रमण किया, किन्तु महाबली श्रीमन्मध्वाचार्यने अनायास ही उन सभीका विनाश कर डाला। कुछ आगे जानेपर सत्यतीर्थपर एक बाघने आक्रमण कर दिया, किन्तु श्रीमन्मध्वाचार्यने बलपूर्वक उस बाघको मारकर दूर फेंक दिया। तत्पश्चात् श्रीबदरिकाश्रममें पहुँचकर उन्होंने श्रीव्यासदेवका साक्षात् दर्शन लाभ किया और उनसे अष्टमूर्ति (आठ) शालग्राम प्राप्त किये। उसके बाद ही श्रीमन्मध्वाचार्यने 'महाभारत-तात्पर्य' की रचना की।

इस प्रकार श्रीमन्मध्वाचार्यके अलौकिक पाण्डित्य और भगवत्-आनुगत्यकी ख्याति भारतमें सर्वत्र फैल गयी। इसके कारण शृङ्गेरि मठाधीश शङ्कराचार्य बड़े उद्विग्न और चिन्तित हो गये। शाङ्कर-मतावलम्बी अपनी प्रतिष्ठाको नष्ट होते देखकर श्रीमध्वाचार्यके प्रति हिंसा करनेकी योजना बनाने लगे। वे मध्व-मतावलम्बियोंको समाजसे बहिष्कृत और मध्वमतको अवैदिक और शास्त्र-विरोधी सिद्ध करनेका प्रयास करने लगे। शृङ्गेरि मठके मठाधीश पद्मतीर्थने पुण्डरीकाक्ष-पुरी नामक एक शाङ्कर-मतावलम्बी पण्डितको लेकर श्रीमन्मध्वाचार्यके साथ शास्त्रार्थ कराया। श्रीमध्वाचार्यके द्वारा संगृहीत एवं रचित ग्रन्थोंको भी चोरी करवा लिया। इस घटनासे श्रीमध्व और उनके शिष्योंको बहुत कष्ट हुआ। परन्तु कुम्लाधि देशके राजा श्रीजयसिंहकी सहायतासे श्रीमध्वाचार्यको वे ग्रन्थ पुनः प्राप्त हो गये। विष्णुमङ्गल निवासी देश-प्रसिद्ध पण्डित त्रिविक्रमाचार्यको शास्त्रयुक्तिके द्वारा वाद-विवादमें पराजितकर श्रीमध्वाचार्यने उसे अपने शिष्यके रूपमें ग्रहण किया। पण्डित त्रिविक्रमाचार्यके पुत्र कविवर श्रीनारायणाचार्य ही 'श्रीमध्वविजय' ग्रन्थके रचयिता हैं। पिताके परलोक सिधारनेके बाद उनके छोटे भाईने भी संन्यास ग्रहण किया और उनका नाम 'विष्णुतीर्थ' हुआ।

श्रीपूर्णप्रज्ञके शारीरिक बलकी भी कोई सीमा नहीं थी। 'कड़ञ्जरी' नामक एक बलवान् पुरुष अपनेको तीस व्यक्तियोंके समान बलशाली समझकर बहुत ही अभिमान करता था। श्रीमध्वाचार्यने अपने पैरके अङ्गुठेको भूमिमें लगाकर कड़ञ्जरीसे उसे हिलानेके लिए कहा, किन्तु वह अपने सम्पूर्ण बलका प्रयोग करनेपर भी उसे टससे मस नहीं कर सका। एक समय कादुर जिलेके मुदगेरी गाँवमें नदी अपने तटको तोड़कर बहुत-से भूभागको नष्ट कर रही थी। अतः नदीके

वेगको कम करनेके लिये हजारसे भी अधिक व्यक्ति एक साथमें मिलकर एक विशाल शिला लानेकी चेष्टा कर रहे थे। जब बहुत प्रयास करनेपर भी वे सफल नहीं हुए और उन्हें वह शिला बीच मार्गमें ही छोड़नी पड़ी। तब महाबली श्रीमध्वाचार्यने एक हाथसे अनायास ही उस शिलाको उठाकर ठीक स्थानपर ले जाकर स्थापित कर दिया। इसलिये आज भी वहाँ उस विशाल शिलापर लिखा है—'श्रीमध्वाचार्यके एक हाथसे लायी गयी स्थापित शिला।' किसी समय श्रीमध्वाचार्य एक बहुत ही कमजोर शरीरवाले बालकके कन्धेपर चढ़कर घूम रहे थे, उस समय उस बालकको उनके भारका बिल्कुल भी पता नहीं चला।

अपने शिष्योंके सामने ऐतरेयोपनिषद्-भाष्यकी व्याख्या करते-करते उन्नासी वर्षकी आयुमें माघी-शुक्ला-नवमी तिथिमें श्रीमध्वाचार्यने परलोकमें गमन किया। विशेष विवरण जाननेके लिये श्रीमध्व-शिष्य त्रिविक्रमाचार्यके पुत्र नारायण-पण्डितके द्वारा रचित 'मध्वविजय' ग्रन्थ देखें। उक्त ग्रन्थका एक संक्षिप्त विवरण (मञ्जुषा समाहृति—द्वितीय संख्यामें) देखें।

श्रीमाध्व-तत्त्ववाद-सम्प्रदायके आचार्यगण उडुपी ग्रामके मूल माधवमठको 'उत्तरराढ़ी मठ' कहते हैं। उडुपीके आठ मठोंके मूल-आचार्यों और मठसमूहोंके नाम, जैसे—

1) विष्णु-तीर्थ—शोद मठ,
2) जनार्द्दन-तीर्थ—कृष्णपुर मठ,
3) वामन-तीर्थ—कनुर मठ,
4) नरसिंह-तीर्थ—अघमर मठ,
5) उपेन्द्र-तीर्थ—पुत्तुगी मठ
6) राम-तीर्थ—शिरुर मठ
7) हृषीकेश-तीर्थ—पलिमर मठ,
8) अक्षोभ्य-तीर्थ—पेजावर मठ।

वहाँकी गुरु और काल परम्परा; जैसे—

1) हंस परमात्मा, 2) चतुर्मुख ब्रह्मा, 3) सनकादि, 4) दुर्वासा, 5) ज्ञाननिधि, 6) गरुड़वाहन, 7) कैवल्यतीर्थ, 8) ज्ञानेशतीर्थ, 9) परतीर्थ, 10) सत्यप्रज्ञतीर्थ, 11) प्राज्ञतीर्थ, 12) अच्युतप्रेक्ष्याचार्य तीर्थ, 13) श्रीमध्वाचार्य—1040 शक, 14) पद्मनाभ—1120 शक, नरहरि—1127 शक, माधव—1136 शक और अक्षोभ्य—1159 शक, 15) जयतीर्थ—1167 शक, 16) विद्याधिराज—1190 शक, 17) कवीन्द्र—1255 शक, 18) वागीश—1261 शक, 19) रामचन्द्र—1269 शक, 20) विद्यानिधि—1298 शक, 21) श्रीरघुनाथ—1366 शक, 22) रघुवर्य (महाप्रभुके साथ वाद करनेवाले)—1424 शक, 23) रघुत्तम—1471 शक, 24) वेदव्यास—1517 शक, 25) विद्याधीश—1541 शक, 26) वेदनिधि—1553 शक, 27) सत्यव्रत—1557 शक, 28) सत्यनिधि—1560 शक, 29) सत्यनाथ—1582 शक, 30) सत्याभिनव—1595 शक, 31) सत्यपूर्ण—1628 शक, 32) सत्यविजय—1648 शक, 33) सत्यप्रिय—1659 शक, 34) सत्यबोध—1666 शक, 35) सत्यसन्ध—1705 शक, 36) सत्यवर—1716 शक, 37) सत्यधर्म—1719 शक, 38) सत्यसङ्कल्प—1752 शक, 39) सत्यसन्तुष्ट—1763 शक, 40) सत्यपरायण—1763 शक, 41) सत्यकाम—1785 शक, 42) सत्येष्ट— 1793 शक, 43) सत्यपराक्रम—1794 शक, 44) सत्यधीर—1801 शक, 45) सत्यधीर तीर्थ—1808 शक।

16) संख्यावाले श्रीविद्याधिराज तीर्थसे और एक शिष्य धारा प्रारम्भ होती है, जो इस प्रकार है—17) राजेन्द्रतीर्थ—1254 शक, 18) विजयध्वज, 19) पुरुषोत्तम, 20) सुब्रह्मण्य, 21) व्यासराय—1470-1520 शक।

इस मठकी परम्पराक्रमसे वर्तमान समय तक और भी उन्नीस व्यक्ति श्रीमाधव-तीर्थ-संन्यासी हुए हैं।

19) रामचन्द्र तीर्थकी एक और शिष्य धारा—20) विबुधेन्द्र—1218 शक, 21) जितामित्र—1348 शक, 22) रघुनन्दन, 23) सुरेन्द्र, 24) विजेन्द्र, 25) सुधीन्द्र, 26) राघवेन्द्रतीर्थ—1545 शक।

इस 'पर-मठ'में आज तक और भी चौदह व्यक्ति श्रीमाधव-तीर्थ-संन्यासी हुए हैं।

'उडुपी'—दक्षिण कानाड़ा जिलेमें, म्याङ्गलोरसे छत्तीस मील उत्तरकी ओर समुद्रके तटपर अवस्थित है (दक्षिण कानाड़ा-म्यानुयेल एवं बोम्बाई गेजेटियार)॥ 245॥

श्रीमध्वको गोपाल-प्राप्ति और
तबसे शिष्य-परम्परामें सेवा :—

'नर्त्तक गोपाल देखे परम-मोहने।
मध्वाचार्ये स्वप्न दिया आइला ताँर स्थाने॥ 246॥
गोपीचन्दन-तले आछिल डिङ्गाते।
मध्वाचार्य-ठाञि कृष्ण आइला कोनमते॥ 247॥
मध्वाचार्य आनि' ताँरे करिला स्थापन।
अद्यावधि सेवा करे तत्त्ववादिगण॥ 248॥

अनुवाद—महाप्रभुने 'नर्तक गोपाल'के परम मनोहर रूपके दर्शन किये। ये विग्रह श्रीमध्वाचार्यके स्वप्नमें आये थे। जब ये नर्तक गोपाल गोपीचन्दनमें ढके हुए एक नौकामें आये थे, तब श्रीमध्वाचार्यने उन्हें किसी प्रकारसे प्राप्त किया था। श्रीमध्वाचार्यने उन्हें लाकर उडुपीमें स्थापित किया था। आज तक श्रीमध्वाचार्यकी शिष्य-परम्परामें तत्त्ववादिगण उन श्रीविग्रहकी सेवा करते आ रहे हैं॥ 246–248॥

अमृतप्रवाह भाष्य—दक्षिण भारतके एक प्रदेशमें उडुपी गाँवमें श्रीमध्वाचार्यकी गद्दी है, उस सम्प्रदायके आचार्योंको 'तत्त्ववादी' कहते हैं। वहाँपर नर्तक गोपालकी श्रीमूर्ति है। श्रीमध्वाचार्यने जलमग्न एक बड़ी नौकामें गोपीचन्दनके एक बड़े टुकड़ेके अन्दरसे श्रीगोपालको प्राप्त किया था॥ 245–247॥

श्रीमध्व-स्थापित श्रीकृष्ण-दर्शनसे महाप्रभुका नृत्य-गीत :—

कृष्णमूर्त्ति देखि' प्रभु महासुख पाइल।
प्रेमावेशे बहुत नृत्य-गीत कैल॥ 249॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण-विग्रहके दर्शन करके महाप्रभुको बहुत आनन्द हुआ और प्रेमावेशमें उन्होंने बहुत समय तक नृत्य-गान किया॥ 249॥

प्रथम दर्शनमें भ्रमवशतः तत्त्ववादियोंका
महाप्रभुको 'मायावादी' समझना :—

तत्त्ववादिगण प्रभुके 'मायावादी'-ज्ञाने।
प्रथम दर्शने प्रभुके ना कैल सम्भाषणे॥ 250॥

बादमें महाप्रभुके सात्त्विक विकारोंका
दर्शनकर उनको वैष्णव समझना :—

पाछे प्रेमावेश देखि' हैल चमत्कार।
वैष्णव-ज्ञाने बहुत करिल सत्कार॥ 251॥

तत्त्ववादियोंका स्वयंको वैष्णव' माननेका जड़ाभिमान :—

'वैष्णवता' सबार अन्तरे गर्व जानि'।
ईषत् हासिया किछु कहे गौरमणि॥ 252॥

महाप्रभुका उनके गर्व-खण्डनरूपी कृपाका सङ्कल्प :—

ताँ-सबार अन्तरे गर्व जानि' गौरचन्द्र।
ताँ-सबा-सङ्गे गोष्ठी करिला आरम्भ॥ 253॥

महापण्डित रघुवर्यतीर्थसे महाप्रभुका दीनतापूर्वक प्रश्न :—

तत्त्ववादी-आचार्य—सब शास्त्रेते प्रवीण।
ताँरे प्रश्न कैल प्रभु हञा येन दीन॥ 254॥

साध्य-साधनकी जिज्ञासा :—

"साध्य-साधन आमि ना जानि भालमते।
साध्य-साधन-श्रेष्ठ जानाह आमाते॥" 255॥

तत्त्वाचार्यका उत्तर—(1) वर्णाश्रम धर्म और श्रीकृष्णके
प्रति समर्पणरूपी कर्ममिश्रा भक्ति ही 'साधन' :—

आचार्य कहे,—"वर्णाश्रम-धर्म कृष्णे-समर्पण।
एइ हय कृष्णभक्तेर श्रेष्ठ साधन॥ 256॥

(2) पाँच प्रकारकी मुक्ति ही 'साध्य' :—

'पञ्चविध मुक्ति' पाञा वैकुण्ठे गमन।
'साध्य-श्रेष्ठ' हय,—एइ शास्त्र-निरूपण॥" 257॥

महाप्रभुका उत्तर—(1) शरणागत भक्तोंके
लिये नवधा भक्ति ही साधन :—

प्रभु कहे,—"शास्त्रे कहे श्रवण-कीर्त्तन।
कृष्णप्रेमसेवा-फलेर 'परम-साधन'॥ 258॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 250–258॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महाप्रभुके शाङ्कर संन्यास-चिह्नोंको देखकर शुद्धद्वैतवाद परायण तत्त्ववादियोंने पहले तो महाप्रभुके साथ बातचीत नहीं की, किन्तु बादमें उनका प्रेमावेश देखकर उनको वैष्णव समझकर उनका सत्कार अर्थात् सेवा की थी। तत्त्वादियोंके अन्तःकरणमें वैष्णव होनेका अभिमान था, उसे देखकर महाप्रभुने थोड़ा हँसकर उनके साथ वार्त्तालाप किया था। महाप्रभुने कहा,—'मैं साध्य-साधन भली-भाँति नहीं जानता हूँ; आप लोग कृपा करके मुझे उसकी शिक्षा प्रदान करें।' तत्त्वाचार्यने उत्तर दिया,—'वर्णाश्रमधर्म श्रीकृष्णमें समर्पित करना ही श्रीकृष्णभक्तका श्रेष्ठ साधन है एवं उस साधन-बलसे श्रेष्ठ साध्यरूपी पाँच प्रकारकी मुक्ति प्राप्त करके सिद्धव्यक्ति वैकुण्ठमें जाता है।' यह सुनकर महाप्रभुने कहा,—शास्त्रके मतमें श्रवण-कीर्तन ही श्रेष्ठ-साधन है; उस साधनके बलसे श्रीकृष्णप्रेमसेवारूपी साध्यफलकी प्राप्ति होती है॥ 250-258॥

अनुभाष्य—निर्विशेष-ब्रह्मवादी कैवलाद्वैतवादियों अथवा मायावादियोंके साथ शुद्धद्वैतवादियों अथवा तत्त्ववादियोंका बहुत समयसे विरोध प्रसिद्ध है॥ 250॥

श्रीमद्भागवत (7/5/23-24) :—

श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥ 259॥
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥ 260॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 259-260॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीकृष्णका श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन,—इन नौ लक्षणोंसे सम्पन्ना भक्ति ही श्रीकृष्णमें अर्पित होकर साधित होनेसे सर्वसिद्धि होती है,—यही शास्त्रोंका उत्तम तात्पर्य है॥ 259-260॥

अनुभाष्य—प्राकृत सीमित ज्ञान ही जिसका एकमात्र सहारा था, ऐसे दैत्यराज हिरण्यकशिपुने महाभागवत प्रह्लादको 'पुत्र' समझकर यह जिज्ञासा की,—'तुमने अपने (तथाकथित) गुरुसे किन-किन विषयोंका अध्ययन किया है', उसके उत्तरमें अधोक्षज-सेवक श्रीप्रह्लादने कहा—

विष्णोः श्रवणं (नामरूपगुणपरिकरलीलामयशब्दानां श्रोत्रस्पर्शः), [विष्णोः] कीर्त्तनं (नामरूपगुणपरिकरलीलामयशब्दानां उच्चारणं), [विष्णोः] स्मरणं (नामरूपगुणपरिकरलीलामयकृष्णस्य यत्किञ्चिन्मनसानुसन्धानं), [विष्णोः] पादसेवनं (कालदेशाद्युचितपरिचर्या), [विष्णोः] अर्चनं (पूजनं), [विष्णोः] वन्दनं (नमस्कारः), [विष्णोः] दास्यं (तद्दासोऽस्मीत्यभिमानः) [विष्णोः] सख्यं (बन्धुभावेन तत्-हिताशंसनं), [विष्णौ] आत्मनिवेदनं (देहादि-शुद्धात्मपर्यन्तस्य सर्वतोभावेन तस्मै एवार्पणम्) इति नवलक्षणा (नवलक्षणानि यस्याः सा) भक्तिः पुंसा (मानवेन) [आदौ] अर्पिता [सती] भगवति विष्णो (श्रीहरौ) अद्धा (साक्षादेव, न तु ज्ञानकर्मादिर्व्यवधानेन) [पश्चात्] चेत् क्रियेत [न तु आदौ कृता सती, पश्चादर्प्येत, न तु कर्माद्यर्पणरूप-परम्परा इयं भक्तिः; भगवत्तोषणार्थैवेयमिति भाव्यम्, न तु धर्मार्थकाममोक्षार्थमिति, एवम्भूता चेत् क्रियेत, तदा तेन कर्त्रा शुद्धहरिभजनमेव सर्वशास्त्राध्ययनफलमिति मत्वा यत्] अधीतं, तत् [एव] उत्तमं मन्ये।

*श्लोक-भावानुवाद—*श्रीकृष्णके नाम-रूप-गुण-परिकर-लीलामय शब्दोंका श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, श्रीकृष्णके चरणोंकी सेवा (देश-कालोचित परिचर्या), श्रीकृष्णका पूजन, वन्दन (नमस्कार), श्रीकृष्णके दास होनेका अभिमान, श्रीकृष्णके प्रति सख्यभाव (बन्धुभावसे श्रीकृष्णके हिताभिलाषी) और श्रीकृष्णको आत्मनिवेदन (श्रीकृष्णको देहादि, शुद्धात्मा तक सभी प्रकारसे समर्पण),—इन नौ लक्षणोंसे सम्पन्ना भक्ति मानवके द्वारा पहले श्रीकृष्णमें साक्षात् (ज्ञान-कर्मादिके व्यवधानसे रहित) अर्पित होनेके बाद ही कर्मफलका अर्पण हो [ऐसा नहीं कि पहले कर्म करके बादमें उसके फलको अर्पित करें; और भक्ति भी श्रीकृष्णके सन्तोषके लिये हो, धर्म-अर्थ-काम-मोक्षादिकी कामनासे नहीं; इस प्रकारके जिस कर्त्ताने यह जान लिया है कि शुद्धहरिभजन ही सभी शास्त्रोंके अध्ययनका फल है], उसने ही शास्त्रोंके अध्ययनको उत्तमरूपसे ग्रहण किया है॥ 259-260॥

शुद्ध श्रवण-कीर्तनके फलसे ही श्रीकृष्णप्रेम :—

श्रवण-कीर्त्तन हइते कृष्णे हय 'प्रेमा'।
सेइ पञ्चम पुरुषार्थ—पुरुषार्थेर सीमा॥ 261॥

अनुवाद—श्रवण-कीर्तनादि नवधा भक्तिके अङ्गोंका पालन करनेसे श्रीकृष्णमें प्रेम होता है। यह प्रेम ही पाँचवाँ पुरुषार्थ है, जो सभी पुरुषार्थोंकी चरम सीमा है॥ 261॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रवण-कीर्तनरूपी नौ प्रकारकी साधनभक्तिसे श्रीकृष्णमें जिस प्रेमभक्तिका उदय होता है, वही 'पाँचवाँ'-पुरुषार्थ है और वही पुरुषार्थोंकी सीमा है। तात्पर्य यह है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष,—ये चारों 'सकैतव' (छलयुक्त) पुरुषार्थ हैं; प्रेमरूप पुरुषार्थ ही 'अकैतव' (छलरहित) पुरुषार्थ है॥ 261॥

अनुभाष्य—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार पुरुषार्थ हैं। 'श्रीकृष्णप्रेम'—इन चारों पुरुषार्थोंसे परे 'पाँचवाँ'-पुरुषार्थ है और सबकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। श्रीकृष्णनाम-श्रवण-कीर्तनादिसे ही श्रीकृष्णप्रेम उदित होता है। अन्य प्रकारकी भक्तिका आचरण करनेपर भी कीर्तनके संयोगसे उनका करना ही कर्त्तव्य है,—यही श्रीमहाप्रभुका अभिप्राय है। मध्यलीला 22/105—

"नित्यसिद्ध कृष्णप्रेम 'साध्य' कभु नय।
श्रवणादि-शुद्धचित्ते करये उदय।

अर्थात् "शुद्ध श्रीकृष्णप्रेम जीवोंके हृदयमें नित्य स्थित है। यह कोई बाहरसे प्राप्त होनेवाली वस्तु नहीं है। श्रीकृष्ण नाम-रूप-गुण-लीलादिके श्रवण-कीर्तनसे शुद्ध हुए चित्तमें श्रीकृष्णप्रेम स्वाभाविक रूपमें उदित होता है॥"261॥

जातरुचि व्यक्तिके श्रीकृष्णप्रेमका लक्षण :—
श्रीमद्भगवत (11/2/40)—

एवंव्रतः स्वप्रियनाम-कीर्त्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥ 262॥

अनुवाद—श्रीकृष्णसेवा-व्रतधारी पुरुष अवशचित्त होकर अर्थात् अब उसका चित्त उसके वशमें नहीं है, प्रियतम श्रीकृष्णके नामकीर्तनमें राग उत्पन्न होनेके कारण शिथिल-हृदय हो जाता है। वह लोक-व्यवहारकी अपेक्षासे रहित होकर उन्मत्तकी भाँति कभी हँसता, कभी रोता, कभी चीत्कार करता और कभी गान-नृत्य करता है॥ 262॥

अनुभाष्य—आदिलीला 7/94 संख्या देखें॥ 262॥

फलभोगतात्पर्यकी निन्दा; काम प्रेमका जनक नहीं :—

कर्मनिन्दा, कर्मत्याग, सर्वशास्त्रे कहे।
कर्म हैते प्रेमभक्ति कृष्णे कभु नहे॥ 263॥

अनुवाद—सभी शास्त्र कर्मकी निन्दा करते और कर्मका त्याग कहते हैं। कर्मसे श्रीकृष्णमें प्रेमभक्तिकी प्राप्ति कभी नहीं होती॥ 263॥

अमृतप्रवाह भाष्य—कर्म-प्रतिपादक शास्त्रोंमें कर्मके उपदेश और प्रशंसा बहुत स्थानोंपर होनेपर भी अन्तमें कर्मकी निन्दा और कर्मके त्यागकी व्यवस्था ही सभी शास्त्रोंमें कही गयी है। कर्म अथवा कर्मार्पणके द्वारा श्रीकृष्णमें कभी भी प्रेमभक्ति नहीं हो सकती। तात्पर्य यह है कि, कर्मार्पणादिके द्वारा चित्त शुद्ध होता है; चित्त शुद्ध होनेपर सत्सङ्गके बलसे अनन्य-श्रीकृष्ण-भक्तिमें श्रद्धाका उदय होता है। श्रद्धाके उदय होनेपर श्रवण-कीर्तनादिरूप 'साधनभक्ति' होती है। श्रवण-कीर्तनादि भक्ति साधन करते-करते अनर्थोंकी जितनी निवृत्ति होती है, प्रेमका उतना ही आविर्भाव होता है। इसलिये कर्म अथवा कर्मार्पणसे निश्चितरूपसे श्रीकृष्णभक्तिके उदित होनेकी सर्वत्र (सर्वदा) सम्भावना नहीं है; क्योंकि (शुद्ध श्रीकृष्णभक्ति) सत्सङ्गजनित 'श्रवणोत्पत्ति'-लक्षणा श्रद्धाकी अपेक्षा रखती है॥ 263॥

अनुभाष्य—असत्कर्मकी अपेक्षा सत्कर्म श्रेष्ठ हैं; किन्तु सत्कर्मोंसे कभी भी श्रीकृष्णमें प्रेमभक्तिका उदय नहीं होता। कर्म—जीवोंके सुख और दुःखकी प्राप्तिका

कारण है। जीवोंके सुख अथवा दुःखकी प्राप्तिके फलसे भक्तिके उदित होनेकी सम्भावना नहीं है। श्रीकृष्णकी सुख प्राप्तिके लिये सेवा ही—भक्ति है। अपने भोगके लिये किये गये कर्मोंकी निन्दा एवं उनको त्याग करनेका विधान सभी शास्त्रोंमें, यहाँ तक कि, ज्ञानशास्त्रोंमें भी कहा गया है। अमल-प्रमाण-शिरोमणि श्रीमद्भागवतमें शुद्धज्ञानविरागभक्ति-सहित नैष्कर्म्यकी बातका ही विचार हुआ है और इसीकी ही संस्थापना हुई है। इसलिये सभी शास्त्रोंमें श्रेष्ठ इस पुराणके आदि, मध्य और अन्तमें, सर्वत्र ही अत्यन्त तुच्छ फलभोगमें बाँधनेवाले कर्म और ज्ञानकी निन्दा की गयी है। ग्रन्थके आकारकी वृद्धिके भयसे इस स्थानपर कोई श्लोक-प्रमाण उद्धृत नहीं किया है॥ 263॥

स्वधर्म-त्यागपूर्वक हरिभजन :—
श्रीमद्भागवत (11/11/32)—

आज्ञायैवं गुणान् दोषान्मयादिष्टानपि स्वकान्।
धर्मान् सन्त्यज्य यः सर्वान्मां भजेत् स सत्तमः॥ 264॥

अनुवाद—धर्मशास्त्रोंमें मुझ भगवान्ने जिनको 'धर्म' कहकर आदेश किया है, उनके गुण-दोषका विचार करके, उन सभी प्रकारके धर्मोंकी प्रवृत्तिको छोड़कर जो मेरा भजन करते हैं, वे ही सबसे श्रेष्ठ (साधु) हैं॥ 264॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 8/62 संख्या देखें॥ 264॥

श्रीमद्भगवदगीता (18/66) :—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ 265॥

अनुवाद—समस्त धर्मोंका परित्याग करके एकमात्र, मैं जो भगवान् हूँ, मेरे शरणागत होओ। ऐसा करनेपर मैं तुम्हें समस्त पापोंसे मुक्त करूँगा। तुम शोक मत करो॥ 265॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 8/63 संख्या देखें॥ 265॥

हरिकथामें श्रद्धावान् लोगोंका कर्ममें अधिकार नहीं :—
श्रीमद्भागवत (11/20/9)—

तावत् कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता।
मत्कथा श्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते॥ 266॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 266॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जब तक कर्ममार्गमें निर्वेद (वैराग्य) उदित न हो, अथवा मेरी कथा-श्रवणादिमें श्रद्धा उत्पन्न न हो, तब तक नित्य-नैमित्तिकादि कर्म करने चाहिये॥ 266॥

अनुभाष्य—कर्मानुष्ठान और कर्मत्यागके अधिकारके सम्बन्धमें संशय होनेपर उद्धवजीके प्रश्नके उत्तरमें श्रीभगवान्ने कहा—

यावता पुमान् न निर्विद्येत (यावन्निर्वेदः कृष्णेतर-कथासु वैराग्यो न जायते), यावत् मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा न जायते, तावत् कर्माणि (नित्यनैमित्तिकानि पुण्यकर्माणि) कुर्वीत।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 266॥

पञ्चविध मुक्ति त्याग करे भक्तगण।
फल्गु करि' 'मुक्ति' देखे नरकेर सम॥ 267॥

अनुवाद—भक्त लोग 'मुक्ति'को तुच्छ मानकर उसे नरकके समान देखते हैं, इसलिये वे पाँच प्रकारकी मुक्तियोंका त्याग करते हैं॥ 267॥

अमृतप्रवाह भाष्य—भक्तिमें बाधक-कर्मके सम्बन्धमें (आपने) शास्त्रके सिद्धान्त सुने। अब देखिये, भक्त लोग पाँच प्रकारकी मुक्तिकी पिपासाका अवश्य त्याग करेंगे, क्योंकि वे मुक्तिको नरकके समान तुच्छ मानते हैं॥ 267॥

शुद्धसेवक श्रीकृष्णकी शुद्धसेवा चाहता है, मुक्ति नहीं :—
श्रीमद्भागवत (3/29/13)—

सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य-सारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति बिना मत्सेवनं जनाः॥ 268॥

अनुवाद—(मेरे द्वारा) सालोक्य (वैकुण्ठवास), सार्ष्टि

(ऐश्वर्यसम्पत्ति), सारूप्य (चतुर्भुजाकार), सामीप्य (निकटवास) और एकत्व (सायुज्य या अभेदगति) प्रदान करनेपर भी भक्त उन्हें ग्रहण नहीं करते, क्योंकि मेरी अप्राकृत सेवाके अतिरिक्त उनकी कोई भी अभिलाषा नहीं है॥ 268॥

अनुभाष्य—आदिलीला 4/207 संख्या देखें॥ 268॥

शुद्धभक्तके लिये मोक्ष भी तुच्छ :—
श्रीमद्भागवत (5/14/44)—

यो दुस्त्यजान् क्षितिसुतस्वजनार्थदारान्
प्रार्थ्यां श्रियं सुरवरैः सदयावलोकाम्।
नैच्छन्नृपस्तदुचितं महतां मधुद्विट्-
सेवानुरक्तमनसामभवोऽपि फल्गुः॥ 269॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 269॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अपरित्यज्य (बहुत कठिनाईसे परित्याग किये जा सकनेवाले) सम्पत्ति, पुत्र, स्वजन, अर्थ और पत्नी एवं [यहाँ तक कि] प्रधान-प्रधान देवता भी जिसके लिये प्रार्थना करते हैं, ऐसी दया-दृष्टिसे युक्त राज्यलक्ष्मी तककी भी भरत-महाराजने अभिलाषा नहीं की, वह उनके लिये उचित ही था; क्योंकि उनके जैसे श्रीकृष्णसेवामें अनुरक्त चित्तवाले साधुओंके लिये जब निर्वाणमुक्ति भी तुच्छ है, तब पार्थिव (जड़ीय) सुखकी तो बात ही नहीं है॥ 269॥

अनुभाष्य—श्रीशुकदेवके द्वारा महाराज परीक्षितके समक्ष महाभागवत भरतके शुद्ध भगवद्भक्तजनरूप गुण-महिमाका कीर्तन—

यः नृपः (राजर्षिः भरतः) दुस्त्यजान् (दुष्परिहरान्) क्षितिसुतस्वजनार्थदारान् (भूमिपुत्रबन्धुद्रविणकलत्रादीन्) सुरवरैः (देवश्रेष्ठैरपि) प्रार्थ्यां (प्रार्थनीयां) श्रियं (लक्ष्मीं) सदयावलोकां (भरतस्य दया यथा भवत्येवमवलोको यस्या इति, यद्वा, भरतो वैरागयोत्थं शारीरकष्टं मा स्वीकरोतु, मया लाल्यमानो गृहे एव तिष्ठतु, इति सदयोऽवलोको यस्यास्तां) न ऐच्छत् इति यत्, तत् (श्रियाम् औदासीन्यं) उचितमेव; [यतः] मधुद्विट्-सेवानुरक्तमनसां (मधुद्विषः सेवायाम् अनुरक्तं मनो येषां तेषां) महतां अभवः (अपौनर्भवः मोक्षः) अपि फल्गुः (तुच्छः एव)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 269॥

शुद्धवैष्णवके लिये दुष्कर्मका फल नरक, सुकर्म
या स्वधर्मका फल स्वर्ग एवं ज्ञानका
फल मोक्ष—सभी एक समान :—
श्रीमद्भागवत (6/17/28)—

नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन विभ्यति।
स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः॥ 270॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 270॥

अमृतप्रवाह भाष्य—स्वर्ग, अपवर्ग (मुक्ति) और नरकको एक समान देखनेवाले नारायण-भक्त किसीसे भी भयभीत नहीं होते॥ 270॥

अनुभाष्य—परमहंस शम्भुकी अवज्ञा करनेवाले चित्रकेतुको पार्वतीका 'वृत्रासुरके रूपमें जन्म ग्रहण करो' ऐसा कहकर अभिशाप देनेपर साधु चित्रकेतुने मस्तक झुकाकर उस शापको ग्रहण किया। फिर पार्वती-शम्भु, दोनोंको प्रसन्न करके उन्होंने अपने स्थानके लिये प्रस्थान किया। इसे देखकर परमवैष्णव शम्भु पार्वतीको विष्णुभक्तोंके आचरण और स्वभावका वर्णन कर रहे हैं—

सर्वे नारायणपराः (विष्णुभक्ताः) कुतश्चन न विभ्यति (अकुतोभयाः इत्यर्थः); (यतः ते) स्वर्गापवर्गनरकेषु (सुखधामस्वर्गमोक्षेषु क्लेशधामनरकादिषु) अपि तुल्यार्थदर्शिनः (तुल्यः अर्थः प्रयोजनमिति द्रष्टुं शीलं येषां ते तथा तुल्यफलद्रष्टार इत्यर्थः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें।

इस श्लोकमें "कुतश्चन न विभ्यति" अर्थात् 'अकुतोभय' शब्दमें जिस 'भय'का उल्लेख किया गया है, वह द्वितीयाभिनिवेश ('द्वितीय' अर्थात् अद्वयज्ञान-श्रीकृष्ण अथवा सेव्य-चैतन्य वस्तुके अतिरिक्त अन्य प्रतीत होनेवाली जो माया है, उसमें अभिनिवेश, इन्द्रिय-सुखकर भोग) से उत्पन्न है—(भाः 11/2/37, वृःआःउः 1/4/2)। यह भोग ही 'काम' अर्थात् स्वार्थ कहलानेवाली अपनी

इन्द्रियोंको सुखी करनेकी इच्छा है। इस इच्छापूर्तिके लिये की जाने वाली चेष्टा ही 'मत्सरता' अथवा 'ईर्ष्या' है। केवलमात्र नारायणपरायण अर्थात् शुद्धभक्त ही 'अभय' प्राप्त करके कह सकते हैं,—'नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति' (छाःउः 8/9/1); इसलिये स्वर्ग, नरक अथवा मोक्ष, सभी उनके लिये 'द्वितीय' अथवा अनात्म-विषय है, इसलिये अप्रिय है॥ 270॥

कर्म और ज्ञान—शुद्धभक्तिके प्रतिकूल,
इसलिये 'साधन' और 'साध्य' नहीं :—

मुक्ति, कर्म—दुइ वस्तु त्यजे भक्तगण।
सेइ दुइ स्थाप' तुमि 'साध्य', 'साधन'॥ 271॥

अनुवाद—मुक्ति और कर्म—दोनोंको ही भक्तगण त्याग देते हैं और उन्हींको आप 'साध्य' एवं 'साधन'के रूपमें स्थापित कर रहे हैं॥ 271॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे तत्त्ववादाचार्य, शुद्धभक्तमात्र ही 'मुक्ति' और 'कर्म'—इन दोनोंका परित्याग कर देते हैं। दुःखकी बात यह है कि आपने उसी मुक्तिको 'साध्य' और कर्मको 'साधन' कहकर स्थापित किया है॥ 271॥

अनुभाष्य—श्रीकुलशेखर द्वारा रचित 'मुकुन्द माला' स्तोत्रमें—

"नाहं वन्दे पदकमलयोर्द्वन्द्वमद्वन्द्वहेतोः,
कुम्भीपाकं गुरुमपि हरे नारकं नापनेतुम्।
रम्या-रामा-मृदुतनुलता-नन्दने नाभिरन्तुं,
भावे भावे हृदय भवने भावयेयं भवन्तम्॥"

"नास्था धर्मे न वसुनिचये नैव कामोपभोगे,
यद्यद्भव्यं भवतु भगवन् पूर्वकर्मानुरूपम्।
एतत् प्रार्थ्यं मम बहुमतं जन्मजन्मान्तरेऽपि,
त्वत्पादाम्भोरुहयुगगता निश्चला भक्तिरस्तु॥"

अर्थात् "हे कृष्ण! मैं मुक्तिके लिये आपके चरणयुगलकी वन्दना नहीं कर रहा हूँ, अथवा कुम्भीपाक नरक या उससे भी भयङ्कर नरकसे छुटकारा पानेके लिये वन्दना नहीं कर रहा हूँ अथवा स्वर्गमें नन्दनकाननमें देव-रमणियोंकी सुकोमल देहलताके साथ रमण करनेके लिये स्तुति नहीं कर रहा हूँ, केवल भावके प्रत्येक स्तरमें विलास करनेके लिये ही हृदयमन्दिरमें आपके चरणकमलोंकी चिन्ता करता हूँ। हे भगवन्, पाप-पुण्यात्मक धर्म अथवा धन-रत्नोंमें, यहाँ तक कि कामके उपभोगमें मेरी कुछ भी आकाङ्क्षा नहीं है। पूर्व कर्मानुसार मेरा जो कुछ भी होना है, वह हो। केवलमात्र मेरी यही विनम्र प्रार्थना है, आपके चरणकमलयुगलकी भक्ति मेरे हृदयमें जन्मजन्मान्तरमें अचल होकर अवस्थान करे॥"271॥

तत्त्वाचार्यके भ्रमके लिये मानद महाप्रभुका आक्षेप :—

संन्यासी देखिया मोरे करह वञ्चन।
ना कहिला तेञि साध्य-साधन-लक्षण॥"272॥

अनुवाद—मुझे संन्यासी देखकर आप मेरी वञ्चना कर रहे हैं, इसलिये आपने साध्य-साधनका वास्तविक लक्षण मुझे नहीं बतलाया॥"272॥

तत्त्वाचार्यको लज्जा और महाप्रभुकी महिमा-उपलब्धि :—

शुनि' तत्त्वाचार्य हैला अन्तरे लज्जित।
प्रभुर वैष्णवता देखि' हइला विस्मित॥ 273॥

अनुवाद—महाप्रभुके वचनोंको सुनकर तत्त्वाचार्य हृदयमें बहुत लज्जित हुए और साथ ही महाप्रभुकी वैष्णवताको देखकर बहुत विस्मित हुए॥ 273॥

अनुभाष्य— *'तत्त्वाचार्य'*—उत्तरराढ़ी मठकी गुरुपरम्परा (247 संख्याका अनुभाष्य देखें) से जाना जाता है कि श्रीमहाप्रभुके समयमें वहाँ श्रीरघुवीर्यतीर्थ मध्वाचार्य थे॥ 273॥

तत्त्वाचार्यके द्वारा महाप्रभुके मतको स्वीकार करना :—

आचार्य कहे,—"तुमि येइ कह, सेइ सत्य हय।
सर्वशास्त्रे वैष्णवेर एइ सुनिश्चय॥ 274॥

आनन्दतीर्थकी आज्ञाके अनुसार तत्त्ववाद-सम्प्रदायमें
कर्ममिश्रा-भक्तिका प्रचलन :—

तथापि मध्वाचार्य ऐछे करियाछे निर्बन्ध।
सेइ आचरिये सबे सम्प्रदाय-सम्बन्ध॥"275॥

अनुवाद—तत्त्वाचार्यने कहा,—"यद्यपि आप जो कह रहे हैं, वही सत्य है और वैष्णवोंके सभी शास्त्रोंने यही सुनिश्चित किया है, तथापि श्रीमध्वाचार्यने जो शिक्षा-निर्देश किया है, हम सम्प्रदायके सम्बन्धसे उसीका ही आचरण करते हैं॥ 274-275॥

अनुभाष्य—सदाचार स्मृतिमें—

"धर्मेणेज्यासाधनानि साधयित्वा विधानतः।
सर्ववर्णाश्रमैर्विष्णुरेक एवेज्यते सदा॥
आनन्दतीर्थमुनिना व्यासवाक्य-समुद्धृताः।
सदाचारस्य विषये कृताः संक्षेपतः शुभा॥"

अर्थात् "सभी वर्ण ओर सभी आश्रम पूजा-साधनोंको धर्मके साथ यथाविधि सम्पादन करके एकमात्र विष्णुकी ही आराधना करते थे। श्रीमत् आनन्दतीर्थ-मुनिने सदाचार विषयक व्यासवाक्यसमूह संग्रह करके संक्षिप्तरूपमें मङ्गलकारिणी स्मृतिको लिखा॥ 275॥

महाप्रभुके द्वारा कर्मी और ज्ञानीका अनादर :—

प्रभु कहे,—"कर्मी, ज्ञानी,—दुइ भक्तिहीन।
तोमार सम्प्रदाये देखि सेइ दुइ चिह्न॥ 276॥

उपास्यके सविशेषत्व अथवा चिद्विलासको स्वीकार करनेके फलस्वरूप तत्त्ववादीकी वैष्णवता :—

सबे, एक गुण देखि तोमार सम्प्रदाये।
'सत्यविग्रह ईश्वरे', करह निश्चये॥"277॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"कर्मी और ज्ञानी,—दोनों ही भक्तिहीन हैं। और आपके सम्प्रदायमें मैं ये दोनों चिह्न देख रहा हूँ। तो भी, आपके सम्प्रदायमें एक गुण देखता हूँ,—आप ईश्वरके श्रीविग्रहको सत्य मानते हैं॥"276-277॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महाप्रभुने कहा,—"ओहे तत्त्ववादी आचार्य, तुम्हारे सम्प्रदायके सभी सिद्धान्त प्रायः शुद्धभक्तिके विरुद्ध हैं, तथापि ईश्वरके सत्य और नित्य विग्रहको स्वीकार करनेवाला एक महान गुण मैं तुम्हारे सम्प्रदायमें देख रहा हूँ। तात्पर्य यह है कि मेरे परमगुरु श्रीमाधवेन्द्रपुरीने इस प्रधान सिद्धान्तके आधारपर माध्व-सम्प्रदायको स्वीकार किया था॥ 277॥

अमृतानुकणा—श्रीचैतन्य महाप्रभुने उडुपी ग्राममें स्थित मूल माध्वमठके तत्कालीन तत्त्ववादी आचार्य श्रीरघुवर्यतीर्थके द्वारा कहे गये साध्य-साधन-विचारका खण्डन किया था। इसलिये और विशेषतः, महाप्रभुने उन आचार्यको 'तुम्हारे सम्प्रदाय' शब्द जो कहा था, इसके द्वारा कुछ लोग ऐसा सोचते हैं कि, श्रीमन्महाप्रभु श्रीमध्व-सम्प्रदायमें नहीं है। वे लोग श्रीमन्महाप्रभु और रघुवर्यतीर्थकी वार्त्तालापसे इस प्रकार विचार निकालते हैं,—"श्रीमध्वाचार्यके मतसे कर्मार्पण 'साधन' है और ज्ञानमार्गके द्वारा मुक्ति 'साध्य' है। इसलिये उसमें भक्तिहीन कर्म और ज्ञानके चिह्न रहनेसे वह श्रीमन्महाप्रभुके द्वारा प्रदर्शित शुद्धभक्तिरूप 'साधन' और कृष्णप्रेम-रूप 'साध्य'के विचारसे सम्पूर्ण रूपसे पृथक् है। इसलिये श्रीमहाप्रभु स्वयं ही पृथक् साध्य-साधन-विचारसम्पन्न एक पाँचवें सम्प्रदायके प्रवर्त्तक हैं।" सम्प्रदाय-विज्ञान-वैभव-सम्बन्धमें अनभिज्ञ व्यक्तिकी इस प्रकारकी भावना अस्वाभाविक नहीं है।

श्रीमध्व-मतके कनिष्ठ अधिकारी साधकके लिये प्रारम्भिक अवस्थामें श्रीकृष्णमें अपने कर्म अर्पण करनेकी बात स्वीकृत होनेपर भी निर्मल भक्ति ही प्रधान साधन रूपमें स्थापित हुई है। देहधर्ममें आसक्त फलभोगकी आकाङ्क्षा करनेवाले जीव 'कर्मी' होते हैं। उन्हें श्रीकृष्णके प्रति उन्मुख करनेके लिये प्रारम्भिक अवस्थामें श्रीकृष्णको कर्म अर्पण करनेके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। इसलिये श्रीमध्वाचार्यने भक्तिके अधीन और शुद्ध-भगवद्-ज्ञानके अनुकूल कर्मको सामान्यभावसे स्वीकार किया था। "ॐ सहकारित्वेन ॐ" (ब्रह्मसूत्र 3/4/33)— इसके भाष्यमें उन्होंने लिखा है,—"यथा राज्ञः सहकार्ये मन्त्री तथा ऋतेऽत्र क्षितिपः कार्यमृच्छेत्। एवं ज्ञानं कर्म बिनापि कार्यं सहायभूतं न विचारः कुतश्चिदिति कमठश्रुतौ सहकारित्वोक्तेश्च।" तात्पर्य यह है कि, जिस प्रकार राजाके कर्मसचिव-रूपमें मन्त्री वर्तमान रहते हैं, किन्तु राजा मन्त्रीके अतिरिक्त भी स्वयं कार्य-सम्पादन करनेमें समर्थ है, उसी प्रकार

शुद्ध-भगवद्-ज्ञान भी कर्मके बिना मोक्ष प्रदान करनेमें समर्थ होनेपर भी किसी-किसी स्थानमें कर्म-ज्ञानके कर्मसचिव रूपमें स्वीकृत हुआ है। इससे स्पष्ट होता है कि श्रीमध्वपादने कर्मको मुख्य रूपमें मुक्तिका उपाय या 'साधन' कहकर स्वीकार नहीं किया गया है। उसे गौण कर्म-निर्वाहक मन्त्रीका आसन मात्र दिया है। श्रीमद्भागवतके मतके साथ इस मतका कोई विरोध नहीं है, इसे भागवतके (10/47/24) श्लोककी आलोचनाके द्वारा यह समझा जा सकता है—"दान-व्रत-तपो-होम-जप-स्वाध्याय-संयमैः। श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते॥" अर्थात् "जीव इस जगत्में दान, व्रत, तपस्या, होम, जप, वेद अध्ययन, संयम और अन्यान्य अनेक प्रकारके मङ्गल-अनुष्ठानके द्वारा श्रीकृष्णभक्तिकी साधना करते हैं।" तथापि अपनी इन्द्रियोंके सुखके लिये विष्णुके उद्देश्यसे अनुष्ठित जो याज्ञ, यज्ञादि हैं, उस प्रकारके कर्म गौणरूपमें भी भक्तिके सचिव नहीं हो सकते। कर्म साधारणतः ही अपनी इन्द्रियोंके सुखके लिये किये जाते हैं, इसलिये श्रीमन्महाप्रभुने कहा है,—"कर्मनिन्दा, कर्मत्याग—सर्वशास्त्रे कहे॥" किन्तु, जो कर्म धर्मके उद्देश्यसे किये जाते हैं और जिस धर्मका पालन वैराग्यके उद्देश्यसे किया जाता है और जो वैराग्य भगवान्‌के चरणकमलोंकी सेवाके लिये ही होता है, वह गौणरूपमें अभिधेय हो सकता है। श्रीमध्वाचार्यने इस प्रकारके कर्मको ही मात्र भक्तिके सचिवका आसन प्रदान किया है। जो परमार्थके उद्देश्यसे नहीं किया जाता, ऐसे कर्म निन्दनीय और वर्जनीय हैं। इस बातको उन्होंने ब्रह्मसूत्र (3/3/50)के भाष्यमें स्पष्ट रूपसे निर्देश किया है,—"**कर्मणा बध्यते जन्तु**र्विद्यया च विमुच्यते। **तस्मात् कर्म न कुर्वन्ति** यतयः पारदर्शिनः॥" अर्थात् "कर्मसे जीव बँधता है और विद्याके द्वारा मुक्त होता है, इसलिये पारदर्शी यतिगण कर्म नहीं करते।"

श्रीमध्वाचार्यके मतमें अमला भक्तिही एकमात्र 'साधन' रूपमें विवेचित हुई है। मध्व-सम्प्रदायमें सुप्रचलित, संक्षिप्त मध्वमत-प्रकाशक एक श्लोकमें यह व्यक्त हुआ है। जैसे—"श्रीमध्वमते हरिः परतरः सत्यं जगत् तत्त्वतो, भेदो जीवगणा हरेरनुचरा नीचोच्चभावं गताः। मुक्तिर्नैजसुखानुभूती**रमला भक्तिश्च तत्साधनं**, ह्यक्षादि त्रितयं प्रमाणमखिलाम्नायैकवेद्यो हरिः॥" अर्थात् "श्रीमध्वके मतसे हरि ही सर्वश्रेष्ठ तत्त्व हैं, वस्तुतः जगत् सत्य है, जीवका भगवान्‌से नित्य भेद है और वह उनका नित्य दास है तथा जीव संसारमें उच्च-नीच गतिको प्राप्त करता रहता है। निज आनन्द (हरिदास्य)की अनुभूति ही मुक्ति है और अमला भक्ति ही उसका साधन है। प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द—ये तीन ही प्रमाण हैं और समस्त आम्नाय धाराके (गुरु-परम्पराके) द्वारा श्रीहरि ही जानने योग्य हैं।" इस श्लोकके ही अनुरूप एक श्लोक—"श्रीमध्वः प्राह विष्णुं परतमम्" अर्थात् "श्रीमध्वने कहा विष्णु ही परम तत्त्व हैं।" श्रीप्रमेय-रत्नावली-ग्रन्थमें श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुने प्रकाश करके श्रीमध्वमत और श्रीचैतन्यमतका अभेद दिखलाया है।

श्रीमन्मध्वने अपने विभिन्न भाष्योंमें श्रवण-कीर्त्तन-लक्षणा भक्तिको ही मुख्य साधनरूपमें बार-बार घोषित किया है। जैसे (मुण्डकोपनिषद्-भाष्यमें उद्धृत नारायणसंहिता-वचन)—'द्वापरीयैर्जनैर्विष्णुः पञ्चरात्रैस्तु केवलैः। **कलौ तु नाममात्रेण पूज्यते भगवान् हरिः**॥" अर्थात् "द्वापरमें पञ्चरात्र विधिके अनुसार विष्णुकी आराधना होती है, किन्तु कलियुगमें केवल नामके द्वारा ही भगवान्‌की पूजा होती है।"; (3/3/53 सूत्रभाष्य)—"**भक्तिरेवैनं दर्शयति, भक्तिवशः पुरुषो**, **भक्तिरेव भूयसी**ति माठर श्रुतेः।" (माठर श्रुतिमें कहा है—भक्ति ही भगवान्‌के दर्शन कराती है, भगवान् भक्तिके द्वारा ही वशीभूत होते हैं और शास्त्रोंमें सर्वत्र ही भक्तिकी महिमाका गान किया गया है)।; (महाभारत-तात्पर्य 1/118)—"**भक्त्यैव तुष्टिमभ्येति** विष्णुर्नान्येन केनचित्। स एव मुक्तिदाता च **भक्तिस्तत्रैव कारणम्**॥" अर्थात् "भक्तिसे ही विष्णु सन्तुष्ट होते है, उनके सन्तोष अन्य कोई कारण नहीं है। वे ही मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं और भक्ति ही मुक्तिका कारण है।"

इस प्रकारसे उन्होंने बार-बार विभिन्न शास्त्रवचनोंको उद्धृत करके यह बतलाया कि 'भक्ति'के अतिरिक्त साध्य-मुक्ति प्राप्त करनेका अन्य कोई उपाय नहीं है।

श्रीमध्वमतमें जिस मुक्तिको 'साध्य'रूपमें निर्णीत किया गया है, वह पाँच प्रकारकी मुक्तियोंके अन्तर्गत जीव-परमात्मैक्य-रूपा सायुज्य मुक्ति नहीं है। यदि वे जीव और परमात्माका ऐक्य ही स्वीकार करेंगे, तब उन्हें शुद्धद्वैतवादी या नित्य पञ्चभेदवादी कहनेके बदले भास्कर-भट्टादिके जैसे औपचारिक भेदवादी कहना होगा। श्रीमध्वाचार्यने जीवोंको श्रीहरिका नित्य सेवक कहा है। मुक्तावस्थामें भी जीव और ईश्वरके भेद और जीवकी ईश्वर-उपासनाकी बात उन्होंने उच्चस्वरसे घोषित की है।

"न यत्र माया किमुतापरे हरेरनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिता इत्यादि श्रुति-स्मृतिषु तात्पर्य **मुक्तानां भेदस्यैवोक्तेः**।" (छान्दोग्य-भाष्य छठे अः)—अर्थात् जिस स्थानमें दूसरोंकी बात तो दूर रहे, स्वयं माया भी जहाँ प्रवेश नहीं कर सकती, वहाँ देवासुरादि समस्त जीवोंके पूजनीय हरिसेवकगण अवस्थान करते हैं, इत्यादि श्रुति-स्मृतिका तात्पर्य यह है कि सर्वत्र ही मुक्तजीव भगवान्से भिन्न हैं। "**कृष्णोमुक्तैरिज्यते वीतमोहैः**" (महाभारत तात्पर्य 2/62)—अर्थात् मोहरहित मुक्तगणोंके द्वारा श्रीकृष्ण पूजित होते हैं। "**मुक्ता अपि हि कुर्वन्ति स्वेच्छयोपासनं हरे॥**"(सूत्रभाष्य 3/3/27); "**मुक्तानामपि भक्तिर्हि नित्यानन्द-स्वरूपिणी**" (मः भाः 1/105) आदि वाक्योंमें मुक्तगणोंकी भी श्रीहरि-उपासना और भक्ति, जो मुक्तगणोंकी नित्य आनन्दस्वरूपिणी है, वह प्रकाशित हुई है। "भेद व्यपदेशाच्च" ब्रह्मसूत्र (1/1/17)के भाष्यमें भी उन्होंने श्रीमद्भागवत-सिद्धान्तसे ही मुक्तिका (आत्माके) स्वरूप-रूपमें वर्णन किया है,—"**मुक्तिर्हित्वान्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः**" (भाः 2/10/6) अर्थात् मायिक, स्थूल-सूक्ष्मरूप दोनोंका परित्याग करके शुद्धजीव-स्वरूपमें अर्थात् भगवद्-पार्षदरूपमें अवस्थानका नाम ही मुक्ति है। यहाँ तक कि, उक्त मतमें मुक्ति और मुक्तजीवोंके मध्यमें भी तारतम्य और आनन्दका तारतम्य स्वीकृत हुआ है; (संक्षिप्त मध्वमत)—"जीवगणा हरेरनुचरा नीचोच्चभावं गताः" अर्थात् "जीव हरिका नित्य दास है तथा जीव संसारमें उच्च-नीच गतिको प्राप्त करता रहता है।"; (सूत्रभाष्य 3/3/33)—"मुक्तावानन्दो विशिष्यते" अर्थात् "मुक्तिमें आनन्द एक विशेष वस्तु है।"

इसलिये मायावाद-दलन चिह्न उठानेवाले श्रीमध्वपादने जिस मुक्तिको साध्य कहकर निर्णित किया है, वह नितान्त ही भक्तिपरक और श्रीमद्भागवत-विचारपरक है, उसमें कोई ज्ञान-दोष नहीं है। श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रभुने श्रीमध्वाचार्यके द्वारा कही गयी उक्त मुक्तिको "मोक्षं विष्वङिघ्रलाभं।" अर्थात् श्रीविष्णुके चरणकमलोंकी प्राप्ति कहकर वर्णित किया है। घीमें जिस प्रकार दूधकी मौलिकता होती है अर्थात् दूध जैसे घीका मूल है, उसी प्रकार श्रीगौरसुन्दरके द्वारा प्रचारित साध्य-सार प्रेमके मध्यमें भी श्रीमध्व-प्रतिपाद्य 'साध्य' श्रीविष्णुके चरणकमल प्राप्तिरूपा मुक्ति भी ग्रथित है।

श्रीमध्वाचार्यकी परम्परामें तत्त्ववादी-आचार्य रघुवर्यतीर्थकी या उनके अनुगत शिष्यवर्गकी अथवा परवर्ती तत्त्ववादियोंकी विचारधारामें कालक्रमसे श्रीमध्वाचार्यके वास्तविक मतसे अनेक भेद आ गये हैं, यह श्रीमध्वाचार्यकी लेखनी और आधुनिक तत्त्वादियोंकी आचार-प्रचार लेखनीपर विचार करके अच्छी तरहसे समझा जा सकता है। इसलिये परवर्त्ती विकृत मतको मूल-आचार्यका सिद्धान्त कहकर स्थापित नहीं किया जा सकता। श्रीमन्महाप्रभुने मध्व-सम्प्रदायको स्वीकार करके भी उक्त तत्त्ववादि-आचार्यको "तुम्हारे सम्प्रदाय" कहकर जो कहा, उससे उक्त तत्त्ववादि-महाशय मूल 'मध्व-सम्प्रदाय'की धारासे बहुत दूर होकर स्वतन्त्र हो गये हैं, वही सूचित हुआ है।

उन्होंने उक्त वाक्यके द्वारा उस तत्त्ववादि-आचार्यको इस प्रकार समझाया,—"मेरा अभिप्रेत और स्वीकृत जो मध्व-सम्प्रदाय है, तुमने उसके वास्तविक तात्पर्यको न समझकर केवल बाहरी-मतजालमें आबद्ध होकर एक

पृथक् सम्प्रदायकी सृष्टि की है,—उसमें एक भगवद्-विग्रहकी सत्यताको स्वीकार करना छोड़कर और कोई भी शुद्ध वैष्णव-सिद्धान्त नहीं देखा जाता। इसलिये तुम्हारे कल्पित इस सम्प्रदायके साथ व्यास-शिष्य श्रीमध्वका और मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है।"

'आउल', 'बाउल', 'प्राकृतिक सहजिया' आदि गोष्ठी अपना परिचय महाप्रभुके अनुगत और गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदायके रूपमें देते हैं। किन्तु ऐसा कहनेसे उनके अपसिद्धान्तको महाप्रभुके द्वारा प्रचारित मत नहीं कहा जा सकता। बल्कि कोई उक्त अपसिद्धान्तोंका खण्डन करके यह कहे कि उसने महाप्रभुके मतका खण्डन किया है, तो इस प्रकारका विचार नितान्त अयुक्तिपूर्ण है। इसी प्रकार तथाकथित तत्त्ववादियोंके अपसिद्धान्तका महाप्रभुके द्वारा शास्त्रयुक्तिसे खण्डन करनेकी बात कहकर कि महाप्रभुने चार-सात्वत-सम्प्रदायोंके एक मुख्य पूर्वाचार्य श्रीमध्वके प्रवर्त्तित श्रौतमतका खण्डन किया है, इसलिये उन्होंने कभी भी श्रीमध्व सम्प्रदायको स्वीकार नहीं किया—इस प्रकारकी युक्ति नितान्त बालभाष्य है अर्थात् बालककी वाणी है॥ 276॥

फल्गुतीर्थमें आगमन :—

एइमत ताँर घरे गर्व चूर्ण करि'।
फल्गुतीर्थे तबे आइला श्रीगौरहरि॥ 278॥

अनुवाद—इस प्रकार उनके गर्वको चूर्ण करके तब श्रीगौरहरि फल्गुतीर्थमें आये॥ 278॥

अनुभाष्य—*'ताँर घरे'*—अर्थात् 'उनके'; आज तक भी हावड़ा-आमता लाईन पर 'माजु' आदि स्थानों पर एवं वर्द्धमान-काटोयाकी ओर 'तत्' 'युष्मद्' और 'अस्मद्' शब्दके कर्मकारकमें द्वितीया विभक्तिके एक वचनमें और बहुवचनमें चलित भाषामें सम्बन्ध-विभक्ति 'र'के साथ 'घरे' शब्दका व्यवहार प्रसिद्ध है। जैसे—'तादेर घरे', 'तोमादेर घरे' एवं 'आमादेर घरे' आदि शब्दोंका अर्थ क्रमशः 'उनके', 'तुम्हारे' एवं 'हमारे' होता है। पूर्वी बङ्गालमें इन सभी शब्दोंके कर्मकारकमें द्वितीया-विभक्तिमें केवलमात्र बहुवचनमें 'गोरे' शब्द इस 'घरे' शब्दके अपभ्रंशके रूपमें प्रचलित है; किन्तु सम्बन्ध विभक्त 'र' आगम नहीं होता; जैसे-'तुम्हें बुला रहे हैं' को बङ्गला भाषामें 'तोमादिगके डाकियाछे' कहनेके स्थानपर पूर्वबङ्गालमें चलती भाषामें 'तोमागोरे डाकछे' ही प्रचलित है॥ 278॥

त्रितकूपमें विशालाका दर्शन और
पञ्चाप्सरा तीर्थमें आगमन :—

त्रितकूपे विशाला करिल दरशन।
पञ्चाप्सरा-तीर्थे आइला शचीर नन्दन॥ 279॥

अनुवाद—महाप्रभुने त्रितकूपमें विशालाके दर्शन किये। उसके बाद श्रीशचीनन्दन पञ्चाप्सरा-तीर्थमें गये॥ 279॥

अनुभाष्य—*'पञ्चाप्सरा तीर्थ'*—शातकर्णिकी, अन्य मतमें माण्डकर्णिकी, और एक अन्य मतमें अच्युत-ऋषिकी तपस्याको भङ्ग करनेके उद्देश्यसे इन्द्रने लता, बुदबुदा, समीची, सौरभेयी और वर्णा—इन पाँच अप्सराओंको भेजा। परन्तु वे ऋषिके द्वारा श्रापग्रस्त होकर मगरमच्छके रूपमें सरोवरमें वास करने लगीं। बादमें श्रीरामचन्द्रने इस सरोवरको देखा था। नारदजीके वचनोंसे पता चलता है कि अर्जुनने तीर्थयात्रा करते हुए यहाँ आकर मगरमच्छकी योनिसे इन पाँच अप्सराओंका उद्धार किया। तबसे यह सरोवर तीर्थके रूपमें परिणत हो गया है॥ 279॥

गोकर्णमें शिवका दर्शन और द्वैपायनि
और सूर्पारक-तीर्थमें आगमन :—

गोकर्णे शिव देखि' आइला द्वैपायनि।
सूर्पारक-तीर्थे आइला न्यासि-शिरोमणि॥ 280॥

अनुवाद—उसके बाद महाप्रभुने गोकर्णमें आकर शिवजीका दर्शन किया और वहाँसे वे द्वैपायनि आये। संन्यासी शिरोमणि महाप्रभु तब सूर्पारक तीर्थमें गये॥ 280॥

अनुभाष्य—*'गोकर्ण'*—बम्बई प्रदेश (वर्तमान महाराष्ट्र

में उत्तर कानाड़ामें कारवारके बीस मील दक्षिण-पूर्वकी ओर अवस्थित है और महाबलेश्वर शिवलिङ्गके मन्दिरके लिये विख्यात है। इस स्थानपर तीर्थ करनेके उद्देश्यसे बहुत यात्री आते हैं (बोम्बाई गेजेटियार)।

'सूर्पारक'—मुम्बईसे छब्बीस मील उत्तरकी ओर थाना जिलेमें 'सोपारा' नामक स्थान है। अति प्राचीन कालसे मध्ययुग तक यह 'कोङ्कण'की राजधानी थी (बोम्बाई गेजेटियार)।

मःभाः शाःपः 49/66-67 देखें॥ 280॥

कोलापुरमें लक्ष्मी, भगवती, गणेश और पार्वती-दर्शन :—

कोलापुरे लक्ष्मी देखि' देखे क्षीर-भगवती।
लाङ्ग-गणेश देखि' देखे चोर-पार्वती॥ 281॥

अनुवाद—महाप्रभु तब कोलापुर आये और वहाँ क्षीर-भगवती मन्दिरमें उन्होंने लक्ष्मीजीके दर्शन किये। उसके बाद चोर-पार्वती मन्दिरमें उन्होंने लाङ्ग-गणेशके दर्शन किये॥ 281॥

अनुभाष्य— *'कोलापुर'*—महाराष्ट्र एक जिला है। इसके उत्तरमें—साँतारा, पूर्व और दक्षिणमें—बेलग्राम, पश्चिममें—रत्नगिरि है। यहाँपर 'उर्णा' नदी है। कोलापुरमें पहले लगभग ढाई सौ मन्दिर थे; उनमेंसे अब ये छह मन्दिर प्रसिद्ध हैं—

1) अम्बाबाई अथवा महालक्ष्मीका मन्दिर,
2) विठोवाका मन्दिर,
3) टेम्बालाईका मन्दिर,
4) महाकालीका मन्दिर,
5) फिराङ्गई अथवा प्रत्यङ्गिराका मन्दिर और
6) याल्लाम्मार मन्दिर। (बोम्बाई गेजेटियार)॥ 281॥

भीमा-नदीके तटपर स्थित पाण्डरपुरमें आगमन और विट्ठलदेवका दर्शन :—

तथा हैते पाण्डरपुरे आइला गौरचन्द्र।
विट्ठल-ठाकुर देखि' पाइला आनन्द॥ 282॥

अनुवाद—वहाँसे श्रीगौरचन्द्र पाण्डरपुरमें आ गये और वहाँ ठाकुर श्रीविठ्ठल देवका दर्शन करके बहुत आनन्दित हुए॥ 282॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'पाण्डरपुर'*—भीमा नदीके तटपर 'पाण्डुपुर' अथवा 'पाण्डरपुर' नगर है। अनुसन्धान करनेपर यह जाना जाता है कि इस स्थानपर महाप्रभुने तुकारामाचार्यको हरिनाम देकर कृपाकी थी—इसे तुकारामकृत 'अभङ्ग'में उन्होंने स्वयं ही स्वीकार किया है। तुकारामसे ही उस प्रदेशमें मृदङ्गादि वाद्यके साथ कीर्तनका प्रचार हुआ है॥ 282॥

अनुभाष्य—'पाण्डरपुर अथवा पण्डरपुर'—महाराष्ट्र प्रदेशमें शोलापुर जिलेके अन्तर्गत एक छोटा शहर है। पाण्डरपुर शोलापुर नगरसे अड़तीस मील सीधे पश्चिम दिशामें है। यहाँपर विट्ठल अथवा विठोवा-देव ठाकुर हैं; वे—चतुर्भुज श्रीनारायण-मूर्ति हैं। यह नगर भीमा नदीके तटपर अवस्थित है। पन्द्रह सौ शक-शताब्दीमें यहाँ 'तुकाराम' नामक प्रसिद्ध वैष्णव-साधु रहते थे॥ 282॥

महाप्रभुका नृत्य-गीत और एक वैष्णव ब्राह्मणके घर भिक्षा :—

प्रेमावेश कैल बहुत कीर्त्तन-नर्त्तन।
ताँहा एक विप्र ताँरे कैल निमन्त्रण॥ 283॥

वहाँ श्रीरङ्गपुरीके होनेका समाचार मिलना :—

बहुत आदरे प्रभुके भिक्षा कराइल।
भिक्षा करि' तथा एक शुभवार्त्ता पाइल॥ 284॥

माधवपुरीर शिष्य 'श्रीरङ्गपुरी' नाम।
सेइग्रामे विप्रगृहे करिला विश्राम॥ 285॥

अनुवाद—श्रीविठ्ठलदेवके मन्दिरमें महाप्रभुने प्रेमावेशमें बहुत देर तक कीर्तन-नृत्य किया। वहाँ एक ब्राह्मणने आकर महाप्रभुको निमन्त्रण दिया। उस ब्राह्मणने महाप्रभुको बहुत आदरपूर्वक भोजन कराया। भोजन करके महाप्रभुको एक शुभ समाचार मिला कि श्रीमाधवेन्द्रपुरीके एक शिष्य जिनका नाम 'श्रीरङ्गपुरी' है, वे उसी ग्राममें एक ब्राह्मणके घरमें कुछ समयसे रह रहे हैं॥ 283-285॥

श्रीरङ्गपुरीके पास जाना और उनको प्रणाम करना :—

शुनिया चलिला प्रभु ताँरे देखिबारे।
विप्रगृहे बसि' आछेन, देखिला ताँहारे॥ 286॥

प्रेमावेशे करे ताँरे दण्ड-परणाम।
अश्रु, पुलक, कम्प, सर्वाङ्गे पड़े घाम॥ 287॥

महाप्रभुके भावोंको देखकर रङ्गपुरीका महाप्रभुका माधवेन्द्रपुरीके साथ सम्बन्ध मानना :—

देखिया विस्मित हैला श्रीरङ्ग-पुरीर मन।
'उठह श्रीपाद' बलि' बलिला वचन॥ 288॥

"श्रीपाद, धर मोर गोसाञिर सम्बन्ध।
ताहा बिना अन्यत्र नाहि एइ प्रेमार गन्ध॥"289॥

अनुवाद—यह सुनकर महाप्रभु श्रीरङ्गपुरीके दर्शनके लिये चल पड़े और ब्राह्मणके घरमें जाकर उन्होंने देखा कि श्रीरङ्गपुरी बैठे हुए है। महाप्रभुने प्रेमावेशमें उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। उनके शरीरमें अश्रु, पुलक, कम्प एवं सभी अङ्गोंमें पसीना आदि अष्ट-सात्त्विक विकार प्रकाशित होने लगे। महाप्रभुके सात्त्विक विकारोंको देखकर श्रीरङ्गपुरी मन-ही-मन विस्मित हो गये और कहा,—'उठो श्रीपाद, अवश्य ही आपका मेरे गुरुदेवसे कुछ सम्बन्ध है, क्योंकि उनसे सम्बन्धके बिना इस प्रकारके प्रेमकी गन्ध भी नहीं देखी जाती॥"286-289॥

अनुभाष्य—श्रीपाद माधवेन्द्रपुरीसे पहले श्रीपाद लक्ष्मीपति तीर्थ तक मध्व-सम्प्रदायमें अकेले श्रीकृष्णकी पूजा ही प्रचलित थी। श्रील माधवेन्द्रपुरीसे ही जगत्में ऐकान्तिक-श्रीराधादास्यके भावसे विप्रलम्भ-रससे कृष्णप्रेम अवतरित हुआ है। क्योंकि "भक्तिकल्पतरुर तेँह प्रथम अङ्कुर" (आदिलीला 9/10 संख्या)। श्रील माधवेन्द्रपुरीके साथ प्रिय सम्बन्धवाले जातरुचि भक्तोंका ही इस श्रीकृष्णप्रेममें अधिकार है। मध्यलीला 2/83 संख्या भी देखें।

'गोसाञिर'—गोस्वामी। निष्किञ्चन (संसारकी किसी भी वस्तु अपना नहीं माननेवाले) परमहंसकुल-शिरोमणि (त्यागियोंमें सर्वश्रेष्ठ) कृष्णैकशरण (ऐकान्तिक श्रीकृष्ण-शरणागत) श्रीगुरुदेव, जिन्होंने छह (वाणी, मन, क्रोध, जिह्वा, उदर और जनेन्द्रियोंके) वेगोंको विजय किया है, वे ही 'गोस्वामी' कहलाने योग्य हैं। इसलिये गृहका त्याग करनेवाले श्रीमाधवेन्द्रपुरी पादको 'गोस्वामी' शब्दके द्वारा सम्बोधित किया गया है। इसके द्वारा यह समझना चाहिये कि 'गोस्वामी'-शब्द रक्त अथवा शुक्र अथवा शौक्रवंशमें आबद्ध नहीं है, अर्थात् किसी विशेष परिवारमें जन्मके द्वारा स्वयंको गोस्वामी नहीं कहा जा सकता। किन्तु वैष्णवोंसे विरोधकी स्पृहाके कारण अवैधरूपसे 'गोस्वामी' शब्द वर्तमानकालमें पारिवारिक उपाधिमें परिवर्तित हो गया है। इसलिये वह 'गोस्वामी' पदवी अनधिकारी व्यक्तियोंके द्वारा व्यवहार किये जानेपर उनकी व्याधिका कारण बन गयी है॥ 289॥

महाप्रभुको आलिङ्गन और दोनोंका प्रेम-क्रन्दन :—

एत बलि' प्रभुके उठाञा कैल आलिङ्गन।
गलागलि करि' दुँहे करेन क्रन्दन॥ 290॥

दोनोंका धैर्य; परस्परके परिचयकी प्राप्ति एवं प्रेम :—

क्षणेके आवेश छाड़ि' दुँहे धैर्य हैला।
ईश्वरपुरीर सम्बन्ध गोसाञि जानाइला॥ 291॥

अद्भुत प्रेमेर वन्या दुँहार उथलिल।
दुँहे मान्य करि' दुँहे आनन्दे बसिल॥ 292॥

दोनोंके द्वारा सात दिन तक श्रीकृष्णकथा-आलोचना :—

दुइजने कृष्णकथा कहे रात्रि-दिने।
एइमते गोङाइल पाँच-सात दिने॥ 293॥

अनुवाद—इतना कहकर श्रीरङ्गपुरीने महाप्रभुको उठाकर उनका आलिङ्गन किया। दोनों एक-दूसरेको गले लगाकर रोने लगे। कुछ समयके बाद प्रेमावेश कम हुआ और दोनोंने धैर्य धारण किया। तब महाप्रभुने श्रीरङ्गपुरीको श्रीईश्वरपुरीके साथ अपने सम्बन्धके विषयमें बतलाया। दोनोंमें एक अद्भुत प्रेमकी बाढ़ उमड़ पड़ी। अन्ततः दोनों एक-दूसरोंको सम्मान देते हुए आनन्दपूर्वक बैठकर बातचीत करने लगे। दोनों ही रात-दिन

श्रीकृष्णकथा कहने लगे। इस प्रकार उन्होंने पाँच-सात दिन वहाँ बिताये॥ 290–293॥

पुरीके पूछनेपर महाप्रभुका 'जन्मस्थान—नवद्वीप' बताना :—

कौतुके पुरी ताँरे पुछिल जन्मस्थान।
गोसाञि कौतुके कहेन 'नवद्वीप' नाम॥ 294॥

अनुवाद—तब उत्सुकतावश श्रीरङ्गपुरीने महाप्रभुसे उनके जन्मस्थानके विषयमें पूछा। महाप्रभुने कौतुकवश अपने जन्मस्थानका नाम 'नवद्वीप' बतलाया॥ 294॥

पहले शचीमाताके घरपर रङ्गपुरीके द्वारा उनके हाथोंसे बने हुए भोजनको ग्रहण करनेका सुयोग :—

श्रीमाधवपुरीर सङ्गे श्रीरङ्गपुरी।
पूर्वे आसियाछिला तेँहो नदीया-नगरी॥ 295॥
जगन्नाथमिश्र-घरे भिक्षा ये करिल।
अपूर्व मोचार घण्ट ताँहा ये खाइल॥ 296॥
जगन्नाथेर ब्राह्मणी, तेँह—महा-पतिव्रता।
वात्सल्ये हयेन तेँह येन जगन्माता॥ 297॥
रन्धने निपुणा ताँ-सम नाहि त्रिभुवने।
पुत्रसम स्नेह करेन संन्यासि-भोजने॥ 298॥
ताँर एक योग्य पुत्र करियाछे संन्यास।
'शङ्करारण्य' नाम ताँर अल्प वयस॥ 299॥

रङ्गपुरीके मुखसे विश्वरूपके संन्यासके बाद उनकी सिद्धि प्राप्तिका संवाद श्रवण :—

एइ तीर्थे शङ्करारण्येर सिद्धिप्राप्ति हैल।
प्रस्तावे श्रीरङ्गपुरी एतेक कहिल॥ 300॥

अनुवाद—श्रीरङ्गपुरीको नदिया नाम सुनते ही वहाँकी बातें स्मरण हो आयीं जब वे श्रीमाधवेन्द्र पुरीके साथ पहले एक बार नदीया-नगरी आये थे। उन दोनोंने श्रीजगन्नाथ मिश्रके घरमें भोजन किया था और भोजनमें अपूर्व स्वादिष्ट केलेके फूलकी सूखी सब्जी खाई थी। श्रीजगन्नाथ मिश्रकी पत्नी महान पतिव्रता थीं और जिनका वात्सल्य ऐसा था, मानो वे सामस्त जगत्की माता हों। भोजन बनानेमें त्रिभुवनमें उनके समान कोई भी निपुण नहीं था। पुत्रकी भाँति स्नेह करते हुए उन्होंने संन्यासियोंको भोजन कराया था। उनका एक योग्य पुत्र था, उसने छोटी आयुमें ही संन्यास ग्रहण किया था। उनका संन्यासका नाम 'शङ्करारण्य' था। इसी पाण्डरपुर तीर्थमें आकर शङ्करारण्यने सिद्धि प्राप्त की अर्थात् यहीं वे अप्रकट हुए। प्रसङ्गवशतः श्रीरङ्गपुरीने महाप्रभुसे यह सब वृत्तान्त कहा॥ 295–300॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महाप्रभुके ज्येष्ठ भ्राता श्रीमद्विश्वरूपको संन्यास ग्रहण करके 'शङ्करारण्य स्वामी' नाम प्राप्त हुआ था। उन्होंने देश भ्रमण करते-करते 'पाण्डरपुर'-तीर्थमें सिद्धि प्राप्त की थी, अर्थात् चिन्मय-धाममें प्रवेश किया था। श्रीमाधवेन्द्रपुरीके शिष्य और श्रीईश्वरपुरीके गुरुभाई श्रीरङ्गपुरीने यह संवाद महाप्रभुको दिया॥ 300॥

महाप्रभुके द्वारा अपने पूर्वाश्रमका परिचय देना :—

प्रभु कहे,—"पूर्वाश्रमे तेँहो मोर भ्राता।
जगन्नाथ मिश्र—पूर्वाश्रमे मोर पिता॥"301॥

अनुवाद—यह सुनकर महाप्रभुने कहा,—"पूर्वाश्रममें 'शङ्करारण्य' मेरे भाई थे। श्रीजगन्नाथ मिश्र मेरे पूर्वाश्रममें पिता थे॥"301॥

श्रीरङ्गपुरीकी द्वारका यात्रा :—

एइमत दुइजने इष्टगोष्ठी करि'।
द्वारका देखिते चलिला श्रीरङ्गपुरी॥ 302॥

अनुवाद—इस प्रकार दोनोंने इष्टगोष्ठी की और उसके बाद श्रीरङ्गपुरी द्वारका दर्शनके लिये चले गये॥ 302॥

वैष्णव ब्राह्मणके घरपर महाप्रभुका चार दिन वास और विठ्ठलदेव दर्शन :—

दिन-चारि तथा प्रभुके राखिल ब्राह्मण।
भीमानदी स्नान करि' करेन विठ्ठल-दर्शन॥ 303॥

अनुवाद—श्रीरङ्गपुरीके जानेके बाद चार दिन तक महाप्रभु उस ब्राह्मणके घरमें रहे। महाप्रभु प्रतिदिन भीमा नदीमें स्नान करते और श्रीविट्ठलदेवका दर्शन किया करते॥ 303॥

कृष्णवेण्वाके तटपर आगमन :—

तबे महाप्रभु आइला कृष्णवेण्वा-तीरे।
नाना तीर्थ देखि' ताँहा देवता-मन्दिरे॥ 304॥

अनुवाद—तब महाप्रभु कृष्णवेण्वा नदीके तटपर आये। वहाँ उन्होंने अनेक तीर्थों और बहुतसे देवताओंके मन्दिरोंका दर्शन किये॥ 304॥

अनुभाष्य— *'कृष्णवेण्वा'*—सह्याद्रि-पर्वतपर स्थित महाबलेश्वरसे कृष्णा नदीकी दो धाराओंकी उत्पत्ति हुई है। इसी नदीके तटपर ही बिल्वमङ्गल ठाकुरका वासस्थान था। 'वेण्वा'के स्थान पर कोई-कोई 'वीणा', कोई-कोई 'वेणी', 'सिना' और कोई 'भीमा' कहते हैं॥ 304॥

वहाँके ब्राह्मणगण—वैष्णव और कर्णामृत-पाठक :—

ब्राह्मण-समाज सब—वैष्णव-चरित्र।
वैष्णव सकल पड़े 'कृष्णकर्णामृत'॥ 305॥

अनुवाद—वहाँके ब्राह्मण-समाजमें सब शुद्ध वैष्णव थे जो नियमित रूपसे बिल्वमङ्गल ठाकुर-कृत 'कृष्णकर्णामृत'का पाठ किया करते थे॥ 305॥

अनुभाष्य— *'कृष्णकर्णामृत'*—श्रीठाकुर बिल्वमङ्गलके द्वारा रचित एक सौ बारह श्लोकोंवाला ग्रन्थ है। इस नामके ही दो-तीन और भी गीतिग्रन्थ पाये जाते हैं। 'कृष्णकर्णामृत'की श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी और श्रीचैतन्यदास गोस्वामीके द्वारा लिखीं दो गौड़ीय वैष्णवोंके लिये पढ़ने योग्य टीकाएँ हैं॥ 305॥

कर्णामृत-श्रवणसे महाप्रभुको हर्ष
और ग्रन्थकी नकलका संग्रह :—

कृष्णकर्णामृत शुनि' प्रभुर आनन्द हैल।
आग्रह करिया पुँथि लेखाञा लैल॥ 306॥

'कर्णामृत'की महिमा :—

'कर्णामृत'-सम वस्तु नाहि त्रिभुवने।
याहा हैते हय कृष्णे शुद्धप्रेमज्ञाने॥ 307॥

सौन्दर्य-माधुर्य-कृष्णलीलार अवधि।
सेइ जाने, ये 'कर्णामृत' पड़े निरवधि॥ 308॥

अनुवाद—कृष्णकर्णामृतको सुनकर महाप्रभुको बहुत आनन्द हुआ। उन्होंने आग्रह करके उस ग्रन्थकी नकल करवाके अपने पास रख ली। त्रिभुवनमें 'कृष्णकर्णामृत'के समान कोई भी ग्रन्थ नहीं है जिसको पढ़नेसे श्रीकृष्णमें शुद्धप्रेमका ज्ञान प्राप्त होता है। जो 'कर्णामृत'का नित्य पाठ करता है, वह श्रीकृष्णके सौन्दर्य, माधुर्य और उनकी लीलाओंको पूर्णरूपसे जान सकता है॥ 306-308॥

महाप्रभुके द्वारा दो ग्रन्थोंका संग्रह—
(1) सिद्धान्त और (2) रसशास्त्र :—

'ब्रह्मसंहिता', 'कर्णामृत' दुइ पुँथि पाञा।
महा यत्न करि' पुँथि आइला लञा॥ 309॥

अनुवाद—महाप्रभुने 'ब्रह्मसंहिता' और 'कर्णामृत', ये दो ग्रन्थ-रत्न प्राप्त किये। अति सावधानीके साथ उन दोनों ग्रन्थोंको वे अपने साथ लेकर आये॥ 309॥

अनुभाष्य— *'ब्रह्म संहिता'*—इसी अध्यायकी 237 संख्याका अनुभाष्य देखें॥ 309॥

ताप्ती और नर्मदाके तटपर तीर्थ-दर्शन
और माहिष्मतीपुरमें आगमन :—

तापी स्नान करि' आइला माहिष्मतीपुरे।
नाना तीर्थ देखि' ताँहा नर्मदार तीरे॥ 310॥

अनुवाद—वहाँसे महाप्रभु तापी नदीके तटपर आये और नदीमें स्नान करके माहिष्मतीपुरमें आये। वहाँ उन्होंने नर्मदा नदीके तटपर स्थित अनेक तीर्थोंका दर्शन किया॥ 310॥

अनुभाष्य— *'तापी'*—इसका वर्तमान नाम 'ताप्ती' है।

यह मध्य-भारतके मूलताइ-गिरिसे निकलकर सौराष्ट्र उत्तर अंशमें पश्चिम-सागरमें जाकर मिलती है।

'माहिष्मतीपुर'—'चुलिमहेश्वर'; महाभारत सभापर्वमें सहदेवकी दिग्विजयपर 31/21 श्लोक—

"ततो रत्नान्युपादाय पुरीं माहिष्मतीं ययौ।
तत्र नीलेन राज्ञा स चक्रे युद्धं नरर्षभः॥"

अर्थात् "तदन्तर वे नरश्रेष्ठ (सहदेव) वहाँसे रत्नोंकी भेंट लेकर माहिष्मती पुरीको गये और वहाँ राजा नीलके साथ घोर युद्ध किया।"

पहले गुजरातका ब्रोच जिला कार्त्तवीर्यार्जुनका स्थान था॥310॥

धनुस्तीर्थ-दर्शन और निर्विन्ध्या-नदीमें स्नान, उसके बाद ऋष्यमूक पर्वतसे दण्डकारण्यमें आगमन और 'सप्तताल'का उद्धार :—

धनुस्तीर्थ देखि' करिला निर्विन्ध्ये स्नाने।
ऋष्यमूक-गिरि आइला दण्डकारण्ये॥311॥
'सप्तताल-वृक्ष' देखे कानन-भितर।
अति वृद्ध, अति स्थूल, अति उच्चतर॥312॥
सप्तताल देखि' प्रभु आलिङ्गन कैल।
सशरीरे सप्तताल अन्तर्धान हैल॥313॥

अनुवाद—धनुस्तीर्थका दर्शन करके महाप्रभुने निर्विन्ध्या नदीमें स्नान किया। फिर ऋष्यमूक पर्वतसे दण्डकारण्यमें आये। दण्डकारण्यमें महाप्रभुने 'सप्तताल वृक्ष' देखे। ये सात तालके वृक्ष बड़े पुराने, बहुत मोटे और बहुत ऊँचे थे। सप्तताल वृक्षोंको देखकर महाप्रभुने उनका आलिङ्गन किया और साथ-ही-साथ वे वृक्ष सशरीर अन्तर्धान हो गये॥311–313॥

अनुभाष्य—*'निर्विन्ध्या नदी'*—उज्जैनीके निकट पूर्वोत्तरमें अवस्थित पारा-नदीके पश्चिममें और पावनी नदीके दक्षिणमें है।

'ऋष्यमूक'—कोई कोई कहते हैं कि बेलारि-जिलेमें हाम्पि-ग्रामके निकट तुङ्गाभद्रा-नदीके तटपर स्थित सबसे सङ्कीर्ण पर्वतपथके बगलमें जो पर्वत निजाम-राज्यमें पड़ता है, वही ऋष्यमूक पर्वत है। किसी औरके मतसे, यह मध्यप्रदेशमें अवस्थित है और इसका वर्तमान नाम 'राम्प' है; किसी अन्यके मतानुसार, त्रिवाङ्कुर-राज्यमें 'अनमलय' और फिर किसीके मतानुसार ऋष्यमूक पर्वतसे ही पम्पा नदी बाहर निकलकर अनागुण्डिरके निकट तुङ्गाभद्रामें आकर मिलती है।

'दण्डकारण्य'—उत्तरमें 'खान्देश'से दक्षिणमें अहमदनगर एवं बीचमें 'नासिक' और 'औरङ्गाबाद' तक गोदावरी-नदीके तटपर स्थित विस्तृत भूभागपर 'दण्डकारण्य' नामक विशाल वन था।

'सप्तताल'—वानरराज सुग्रीवको बालीका वध करनेमें अपने सामर्थ्यमें विश्वास दिलानेके लिये श्रीरामचन्द्रका एक ही बाणसे सप्ततालको बींधनेका प्रसङ्ग रामायणके किष्किन्धाकाण्डमें ग्यारहवें और बारहवें सर्गमें वर्णित है॥311–312॥

लोगोंके द्वारा महाप्रभुको श्रीरामका अवतार समझना :—

शून्यस्थल देखि' लोकेर हैल चमत्कार।
लोके कहे,—"ए संन्यासी—राम-अवतार॥314॥
सशरीरे ताल गेल श्रीवैकुण्ठ-धाम।
ऐछे शक्ति कार हय, बिना एक राम?॥"315॥

अनुवाद—जिस स्थानपर ताल वृक्ष थे, उस स्थानको रिक्त देखकर लोग बहुत आश्चर्यचकित हुए। वे कहने लगे,—"ये संन्यासी तो भगवान् श्रीरामचन्द्रके अवतार हैं। तालवृक्ष सशरीर श्रीवैकुण्ठ-धाममें चले गये। ऐसी शक्ति तो एकमात्र भगवान् श्रीरामचन्द्रके अतिरिक्त और किसमें हो सकती है?॥"314–315॥

पम्पा-सरोवरमें स्नान और पञ्चवटीपर विश्राम :—

प्रभु आसि' कैल पम्पा-सरोवरे स्नान।
पञ्चवटी आसि ताँहा करिल विश्राम॥316॥

अनुवाद—सप्ततालका उद्धार करके महाप्रभुने पम्पा सरोवर आकर उसमें स्नान किया और फिर पञ्चवटी नामक स्थानपर आकर विश्राम किया॥316॥

अनुभाष्य— *'पम्पा'*—"ऋष्यमूकस्तु पम्पायां पुरस्तात् पुष्पितद्रुमः" अर्थात् "पम्पा नगरीमें ऋष्यमूक पर्वत है जिसके आगे पुष्पित वृक्ष हैं।"; कोई-कोई कहते हैं,—तुङ्गाभद्रा-नदीका ही प्राचीन नाम 'पम्बा' है। मतान्तरमें—विजयनगरकी प्राचीन प्रसिद्ध राजधानी हाम्पि-ग्राम ही पहले पम्पा-तीर्थके नामसे प्रसिद्ध था। मतान्तरमें—हैदराबादकी ओर, अनागुण्डिरके निकट तुङ्गाभद्राके तटपर स्थित एक सरोवर ही 'पम्पा सरोवर'के नामसे जाना जाता है; मतान्तरमें—पम्पा-सरोवर ही त्रिवाङ्कुरकी पम्वै-नदी है; मतान्तरमें—जल स्थिर होनेके कारण नदीको ही सरोवर कहा जाता है।

'पञ्चवटी'—दण्डकारण्यके अन्तर्गत एक वन है; यह वर्तमान 'नासिक' शहरमें अवस्थित है। यहाँपर श्रीलक्ष्मणने शूर्पणखाके नाकको काटा था। नासिक शहरमें 'त्रयम्बक' नामक महादेव हैं (बोम्बाई गेजेटियार)॥ 316॥

नासिकमें शिवका दर्शन करनेके बाद ब्रह्मगिरि एवं उसके बाद कुशावर्त्तमें आगमन :—

नासिके त्र्यम्बक देखि' गेला ब्रह्मगिरि।
कुशावर्त्ते आइला याँहा जन्मिला गोदावरी॥ 317॥

अनुवाद—महाप्रभु नासिकमें त्र्यम्बकके दर्शन करके ब्रह्मगिरि गये। और फिर वे कुशावर्त्त आये जो गोदावरी नदीका उद्गम-स्थल है॥ 317॥

अनुभाष्य— *'कुशावर्त्त'*—पश्चिम घाट अथवा सह्याद्रिके कुशट्ट-नामक प्रदेशसे गोदावरीकी मूल धाराएँ उत्पन्न होती हैं। कुशावर्त्त नासिकके निकट स्थित है; किसी-किसीके मतानुसार यह विन्ध्याकी तलहटीमें अवस्थित है॥ 317॥

गोदावरीके सप्तशाखाओंके तटोंपर बहुत तीर्थोंका उद्धारकर विद्यानगरमें आगमन :—

सप्त गोदावरी आइला करि' तीर्थ बहुतर।
पुनरपि आइला प्रभु विद्यानगर॥ 318॥

अनुवाद—बहुतसे तीर्थोंका दर्शन करनेके बाद महाप्रभु सप्त गोदावरी आये। और अन्तमें फिर वे विद्यानगर लौट आये॥ 318॥

अनुभाष्य—गोदावरीके उत्पत्ति-स्थानसे वर्तमान हैदराबादके उत्तर-अंशसे होते हुए 'वस्तार' होकर उत्तर-सर्कासमें कलिङ्गदेशमें पहुँचे॥ 318॥

महाप्रभुके साथ श्रीरामानन्द रायका मिलन :—

रामानन्द राय शुनि' प्रभुर आगमन।
आनन्दे आसिया कैल प्रभुसह मिलन॥ 319॥
दण्डवत् हञा पड़े चरणे धरिया।
आलिङ्गन कैल प्रभु ताँरे उठाञा॥ 320॥

अनुवाद—श्रीरामानन्द रायको महाप्रभुका विद्यानगरमें आगमनका समाचार मिला, तो वे बड़े आनन्दित होकर महाप्रभुसे मिलनेके लिये आये। आकर श्रीरामानन्द रायने महाप्रभुके चरणकमलोंमें दण्डवत् प्रणाम किया। महाप्रभुने उन्हें उठाकर उनका आलिङ्गन किया॥ 319–320॥

दोनोंका प्रेमानन्द और इष्टगोष्ठी :—

दुइजने प्रेमावेशे करेन क्रन्दन।
प्रेमानन्दे शिथिल हैल दुँहाकार मन॥ 321॥
कतक्षणे दुइ जना सुस्थिर हञा।
नाना इष्टगोष्ठी करे एकत्र बसिया॥ 322॥

अनुवाद—दोनों एक-दूसरेको मिलकर प्रेमावेशमें रोने लगे और प्रेमानन्दमें दोनोंका मन शिथिल हो गया। कुछ समयके बाद सुस्थिर होकर दोनों एक साथ बैठे। तब उन्होंने अनेक विषयोंपर चर्चा की॥ 321–322॥

महाप्रभुके द्वारा अपनी तीर्थयात्राके वृत्तान्तका वर्णन और संगृहीत दोनों ग्रन्थ प्रदान :—

तीर्थयात्रा-कथा प्रभु सकल कहिला।
कर्णामृत, ब्रह्मसंहिता,—दुइ पुँथि दिला॥ 323॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीरामानन्द रायको अपनी तीर्थ यात्राका पूर्ण वृत्तान्त सुनाया और अपने साथ लायी हुई कर्णामृत एवं ब्रह्मसंहिता—नामक दो पुस्तकें उन्हें प्रदान कीं॥ 323॥

प्रभु कहे,—"तुमि ये 'प्रेम-सिद्धान्त' कहिले।
एइ दुइ पुस्तके सेइ रसेर साक्षी दिले॥ "324॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"तुमने जिस 'प्रेम-सिद्धान्त' का वर्णन किया था, ये दोनों ग्रन्थ उस रसके साक्षी हैं॥ "324॥

रायेर आनन्द हैल पुस्तक पाइया।
प्रभु-सह आस्वादिल, राखिल लिखिया॥ 325॥

अनुवाद—उन दोनों ग्रन्थोंको प्राप्त करके श्रीरामानन्द रायको बहुत आनन्द हुआ। उन्होंने महाप्रभुके साथ उन दोनों ग्रन्थोंका आस्वादन किया तथा उनकी नकल करके रख ली॥ 325॥

महाप्रभुके दर्शनके लिये लोगोंका समागम :—

'गोसाञि' आइला', ग्रामे हैल कोलाहल।
प्रभुके देखिते लोक आइल सकल॥ 326॥

अनुवाद—'गोसाईं आये हैं'—यह समाचार सुनकर विद्यानगर ग्राममें कोलाहल हो गया। सभी लोग महाप्रभुके दर्शनके लिये आने लगे॥ 326॥

अनुभाष्य—*'गोसाञि'*—श्रीचैतन्य गोसाईं॥ 326॥

बहिरङ्ग-लोगोंको देखकर श्रीरामानन्द राय और महाप्रभुका अपने-अपने कार्यके लिये प्रस्थान :—

लोक देखि' रामानन्द गेला निजघरे।
मध्याह्न उठिला प्रभु भिक्षा करिबारे॥ 327॥

अनुवाद—लोगोंकी भीड़को देखकर श्रीरामानन्द राय अपने घर लौट गये और महाप्रभु भी मध्याह्न भोजन करनेके लिये उठ खड़े हुए॥ 327॥

महाप्रभु और श्रीरायका कृष्णकथा-प्रसङ्गमें एक सप्ताह व्यतीत :—

रात्रिकाले राय पुनः कैल आगमन।
दुइजने कृष्णकथाय कैल जागरण॥ 328॥

दुइजने कृष्णकथा कहे रात्रि-दिने।
परम-आनन्दे गेल पाँच-सात दिने॥ 329॥

अनुवाद—रातके समय श्रीरामानन्द राय पुनः महाप्रभुके पास आये। दोनोंने श्रीकृष्णकथामें सारी रात बितायी। इस प्रकार दोनों रात-दिन कृष्णकथा कहते-सुनते रहे और पाँच-सात दिन परमानन्दमें बीते॥ 328–329॥

महाप्रभुकी आज्ञानुसार श्रीरायका पुरीमें जानेके विषयमें बतलाना :—

रामानन्द कहे,—"प्रभु, तोमार आज्ञा पाञा।
राजाके लिखिलुँ आमि विनय करिया॥ 330॥

राजा मोरे आज्ञा दिल नीलाचले याइते।
चलिबार उद्योग आमि लागियाछि करिते॥ "331॥

अनुवाद—तब श्रीरामानन्द रायने कहा,—"प्रभो! आपकी आज्ञा पाकर मैंने राजाको पत्र लिखा था जिसमें मैंने उनसे राजकार्य छोड़कर नीलाचल जानेकी अनुमतिके लिये विनती की थी। अब राजाने मुझे नीलाचल जानेकी अनुमति प्रदान कर दी है। इसलिये अब मैं नीलाचल जानेकी तैयारी कर रहा हूँ॥ "330–331॥

महाप्रभुका विद्यानगरमें आनेका कारण :—

प्रभु कहे,—"एथा मोर ए-निमित्ते आगमन।
तोमा लञा नीलाचले करिब गमन॥ "332॥

अनुवाद—यह सुनकर महाप्रभुने कहा,—"मेरे यहाँ आनेका यही कारण है। मैं तुम्हें अपने साथ लेकर नीलाचल जाऊँगा॥ "332॥

रायके द्वारा महाप्रभुको पहले पुरी जानेका निवेदन और बादमें स्वयं आनेके लिये सहमति :—

राय कहे,—"प्रभु, आगे चल नीलाचले।
मोर सङ्गे हाती-घोड़ा, सैन्य-कोलाहले॥ 333॥

दिन-दशे इहा-सबार करि' समाधान।
तोमार पाछे पाछे आमि करिब प्रयाण॥"334॥

अनुवाद—श्रीरामानन्द रायने कहा,—"प्रभो! आप अभी अकेले ही नीलाचल चले जाइये, क्योंकि मेरे साथ बहुतसे हाथी, घोड़े और सैनिक हैं और इनके कारण बहुत शोर हो रहा है। दस दिनोंमें मैं इन सबकी व्यवस्था कर दूँगा। तब मैं आपके पीछे-पीछे नीलाचल आ जाऊँगा॥"333-334॥

महाप्रभुकी सम्मति और पुरीकी ओर गमन :—

तबे महाप्रभु ताँरे आसिते आज्ञा दिया।
नीलाचले चलिला प्रभु आनन्दित हञा॥335॥

अनुवाद—तब महाप्रभु श्रीरामानन्द रायको पुरी आनेकी आज्ञा देकर आनन्दपूर्वक नीलाचलकी ओर चल पड़े॥335॥

वैष्णवता प्राप्त भक्तोंपर कृपा प्रदर्शन करनेके लिये महाप्रभुका पहलेवाले मार्गसे ही गमन :—

येइ पथे पूर्वे प्रभु कैला आगमन।
सेइ पथे चलिला देखि, सर्व वैष्णवगण॥336॥

अनुवाद—जिस मार्गसे महाप्रभु पहले आये थे, उसी मार्गसे ही वे नीलाचलकी ओर गये और मार्गमें सभी वैष्णवोंने उनके दर्शन किये॥336॥

याँहा याय, लोक उठे हरिध्वनि करि'।
देखि' आनन्दित-मन हैला गौरहरि॥337॥

अनुवाद—महाप्रभु जहाँ भी जाते, उनको देखकर लोग हरिध्वनि करने लगते। यह देखकर श्रीगौरहरिको बहुत आनन्द हुआ॥337॥

आलालनाथमें आकर श्रीनित्यानन्दादिको वहाँ लानेके लिये अपने सङ्गी कृष्णदासको भेजना :—

आलालनाथे आसि' कृष्णदासे पाठाइल।
नित्यानन्द-आदि निजगणे बोलाइल॥338॥

अनुवाद—आलालनाथ पहुँचकर महाप्रभुने कृष्णदासको भेजकर श्रीनित्यानन्द प्रभु आदि अपने परिकरोंको वहीं बुलवाया॥338॥

महाप्रभुके दर्शनोंके लिये श्रीनित्यानन्दादिका अति शीघ्रागमन :—

प्रभुर आगमन शुनि' नित्यानन्द-राय।
उठिया चलिला, प्रेमे थेह नाहि पाय॥339॥

जगदानन्द, दामोदर-पण्डित, मुकुन्द।
नाचिया चलिला, देहे ना धरे आनन्द॥340॥

अनुवाद—महाप्रभुके आनेका समाचार सुनकर श्रीनित्यानन्द प्रभु प्रेममें अधीर हो गये और तुरन्त उठकर महाप्रभुसे मिलने चल पड़े। श्रीजगदानन्द पण्डित, श्रीदामोदर पण्डित तथा श्रीमुकुन्द भी प्रेमानन्दमें उन्मत्त होकर उनके साथ नाचते हुए चलने लगे॥339-340॥

गोपीनाथाचार्य चलिला आनन्दित हञा।
प्रभुरे मिलिला सबे पथे लाग् पाञा॥341॥

अनुवाद—श्रीगोपीनाथाचार्य भी बहुत आनन्दित होकर महाप्रभुसे मिलनेके लिये चले और मार्गमें ही उनका महाप्रभुसे मिलन हुआ॥341॥

महाप्रभुके द्वारा सबको प्रेम-आलिङ्गन :—

प्रभु प्रेमावेशे सबाय कैल आलिङ्गन।
प्रेमावेशे सबे करे आनन्द-क्रन्दन॥342॥

अनुवाद—प्रेमावेशमें महाप्रभुने उन सबका आलिङ्गन किया और सभी प्रेमाविष्ट होकर आनन्दसे रोने लगे॥342॥

समुद्रतटपर श्रीसार्वभौमके साथ मिलन :—

सार्वभौम भट्टाचार्य आनन्दे चलिला।
समुद्रेर तीरे आसि' प्रभुरे मिलिला॥343॥

सार्वभौम महाप्रभुर पड़िला चरणे।
प्रभु ताँरे उठाञा कैल आलिङ्गने॥344॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य भी आनन्दित होकर महाप्रभुके दर्शनोंके लिये चल पड़े और समुद्रके तटपर उनका महाप्रभुसे मिलन हुआ। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य महाप्रभुको देखते ही उनके चरणोंमें गिर पड़े और महाप्रभुने उन्हें उठाकर उनका आलिङ्गन किया॥ 343–344॥

सभीको साथ लेकर महाप्रभुका श्रीजगन्नाथ-दर्शन
और भावावेशमें नृत्य-गीत :—

प्रेमावेशे सार्वभौम करिला रोदने।
सबा-सङ्गे आइला प्रभु ईश्वर-दरशने॥ 345॥

जगन्नाथ-दरशन प्रेमावेशे कैल।
कम्प-स्वेद-पुलकाश्रुते शरीर भासिल॥ 346॥

अनुवाद—प्रेमावेशमें श्रीसार्वभौम रोने लगे। महाप्रभु सभीको साथ लेकर श्रीजगन्नाथके दर्शन करने गये। श्रीजगन्नाथके दर्शनसे प्रेममें आविष्ट होकर महाप्रभुका शरीर कम्प, स्वेद, पुलक और अश्रुओं आदि सात्त्विक भावोंसे व्याप्त हो गया॥ 345–346॥

बहु नृत्यगीत कैल प्रेमाविष्ट हञा।
पाण्डापाल आइल सबे माला-प्रसाद लञा॥ 347॥

अनुवाद—प्रेममें आविष्ट होकर महाप्रभुने बहुत देर तक नृत्य-गान किया। सब पण्डा लोगोंने आकर महाप्रभुको श्रीजगन्नाथकी माला और प्रसाद दिया॥ 347॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'पाण्डापाल'*—श्रीजगन्नाथकी जो पूजा करते हैं, वे—पाण्डा हैं। जो अन्य प्रकारसे टहल करते हैं, अर्थात् मन्दिरके बाहरके कार्योंको देखते हैं, वे—पशुपाल हैं। ये दोनों एक साथ मिलकर 'पाण्डापाल' हुए हैं॥ 347॥

महाप्रभुका धैर्य-धारण और
श्रीजगन्नाथ-सेवकोंके साथ मिलन :—

मालाप्रसाद पाञा प्रभु सुस्थिर हइला।
जगन्नाथेर सेवक सब आनन्दे मिलिला॥ 348॥

काशीमिश्र आसि' प्रभुर पड़िला चरणे।
मान्य करि' प्रभु ताँरे कैल आलिङ्गने॥ 349॥

अनुवाद—श्रीजगन्नाथकी माला और प्रसाद पाकर महाप्रभुका आवेश दूर हुआ। तब श्रीजगन्नाथके सब सेवक आनन्दसे महाप्रभुसे मिले। श्रीकाशीमिश्र आकर महाप्रभुके चरणोंमें पड़ गये और महाप्रभुने उन्हें सम्मान देते हुए उनका आलिङ्गन किया॥ 348–349॥

मध्याह्नमें सगण महाप्रभुको भट्टाचार्यके द्वारा भिक्षादान :—

प्रभु लञा सार्वभौम निज-घरे गेला।
'मोर घरे भिक्षा' बलि' निमन्त्रण कैला॥ 350॥

दिव्य महाप्रसाद अनेक आनाइल।
पीठा-पाना आदि जगन्नाथ ये खाइल॥ 351॥

मध्याह्न करिला प्रभु निजगण लञा।
सार्वभौम-घरे भिक्षा करिला असिया॥ 352॥

भिक्षा कराञा ताँरे कराइल शयन।
आपने सार्वभौम करे पादसम्वाहन॥ 353॥

अनुवाद—'आज आप मेरे घरमें भिक्षा ग्रहण कीजिये'—यह कहकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने महाप्रभुको निमन्त्रण दिया और उन्हें अपने घर ले गये। पीठा-पाना आदि जो-जो व्यञ्जन श्रीजगन्नाथदेवने खाये थे, श्रीसार्वभौमने बहुतसा वह दिव्य महाप्रसाद मँगवाया। महाप्रभु अपने परिकरोंके साथ श्रीसार्वभौमके घरपर आये और सभीने भोजन किया। भोजन कराके श्रीसार्वभौमने महाप्रभुको विश्रामके लिये लिटाया और स्वयं उनके चरण दबाने लगे॥ 350–353॥

भट्टाचार्यके घरमें रात्रिमें वास और
सभीको तीर्थयात्राके वृत्तान्तका वर्णन :—

प्रभु ताँरे पाठाइल भोजन करिते।
सेइ रात्रि ताँर घरे रहिला ताँर प्रीते॥ 354॥

सार्वभौम-सङ्गे आर लञा निजगण।
तीर्थयात्रा-कथा कहि' कैल जागरण॥ 355॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यको भोजन करनेके लिये भेज दिया और उस रात उनकी प्रसन्नताके लिये उन्हींके घरमें रह गये। महाप्रभुने श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य और अपने परिकरोंके साथ अपनी तीर्थ-यात्राका वृत्तान्त बतलाते हुए सारी रात जागरण किया॥ 354-355॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीसार्वभौम और श्रीरामानन्दकी प्रशंसा :—

प्रभु कहे,—"एत तीर्थ कैलुँ पर्यटन।
तोमा-सम वैष्णव ना देखिलुँ एकजन॥ 356॥

एक रामानन्द राय बहु सुख दिल।"
भट्ट कहे,—"एइ लागि' मिलिते कहिल॥"357॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यसे कहा,—"मैंने इतने तीर्थोंमें भ्रमण किया, किन्तु आपके जैसा एक भी वैष्णव मुझे दिखायी नहीं दिया। हाँ, एक रामानन्दरायने मुझे बहुत आनन्द प्रदान किया।" श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने कहा,—"इसलिये मैंने आपको उनसे मिलनेकी प्रार्थना की थी॥"356-357॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीसार्वभौम और श्रीकृष्णचैतन्यका वार्त्तालाप श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटकके आठवें अङ्कमें इस प्रकार लिखा हुआ है, जैसे-

श्रीकृष्णचैतन्यः। सार्वभौम! एतावद्दूरं पर्यटितम्; भवत्सदृशः कोऽपि न दृष्टः, केवलमेव रामानन्दरायः, स तु अलौकिक एव भवति।

सार्वभौमः। देव! अतएव निवेदितं—सोऽवश्यमेव द्रष्टव्य इति।

श्रीकृष्णचैतन्यः। कियन्त एव वैष्णवा दृष्टास्तेऽपि नारायणोपासका एव; अपरे तत्त्ववादिनस्ते तथाविधा एव निरवद्यं न भवति तेषां मतम्; अपरे तु शैवा एव बहवः, पाषण्डास्तु महाप्रबला भूयांस एव। किन्तु भट्टाचार्य! रामानन्द-मतमेव मे रुचितम्।"

अर्थात् श्रीकृष्णचैतन्य—हे सार्वभौम! मैं इतनी दूर तक घूमते हुए गया, किन्तु आपके समान कोई नहीं दिखा, केवलमात्र एक रामानन्दराय ही मिले, वे अलौकिक ही हैं।

सार्वभौम—हे देव! इसलिये मैंने आपसे निवेदन किया था, वे अवश्य ही आपसे मिलनेके योग्य हैं।

श्रीकृष्णचैतन्य—कुछ वैष्णव भी दिखे थे, वे नारायणके ही उपासक हैं, अन्य कुछ तत्त्ववादी भी थे जो उनके समान हैं, परन्तु उनका मत निर्दोष नहीं है। अन्य अधिकांश तो शैव ही हैं और पाखण्डी तो बड़ी संख्यामें महाप्रबल हैं, किन्तु मुझे तो रामानन्दका मत ही रुचिकर लगा॥"355-357॥

महाप्रभुकी तीर्थयात्राका वृत्तान्त इस ग्रन्थमें संक्षेपमें ही वर्णित :—

तीर्थयात्रा-कथा एइ कैलुँ समापन।
संक्षेपे कहिलुँ, विस्तार ना याय वर्णन॥ 358॥

अनुवाद—(ग्रन्थकार श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी कह रहे हैं—) मैं महाप्रभुकी तीर्थयात्राकी कथाको यहीं समाप्त करता हूँ। मैंने संक्षेपमें ही इसका वर्णन किया है, क्योंकि विस्तारपूर्वक इसका वर्णन नहीं किया जा सकता॥ 358॥

अनुभाष्य—इस अध्यायकी 74 संख्यामें "शियालीते भैरवी देवी करि' दरशन" पाठके स्थानपर "शियालीते श्रीभू-वराह करि' दरशन" होगा। शियाली एवं चिदम्बरमके निकट सुविख्यात 'श्रीमुञ्चम्'-मन्दिर है। वहाँ श्रीभू-वराहदेवका विग्रह है। चिदम्बरम् तालुकाके अन्तर्गत दक्षिण-आर्कट् जिलेमें शियालीके निकटमें 'श्रीभू-वराहदेव' ही विराजमान हैं, 'भैरवीदेवी' नहीं॥ 358॥

चैतन्यलीला-वर्णन करनेकी ग्रन्थकारकी लालसा :—

अनन्त चैतन्यलीला कहिते ना जानि।
लोभे लज्जा खाञा तार करि टानाटानि॥ 359॥

अनुवाद—महाप्रभुकी लीलाएँ अनन्त हैं, उन्हें कहनेका सामर्थ्य मुझमें नहीं है। तथापि लोभवशतः लज्जाको खाकर अर्थात् निर्लज्ज होकर मैं उन लीलाओंको वर्णन करनेकी चेष्टा कर रहा हूँ॥ 359॥

अनुभाष्य— *'लज्जा खाञा'*—लज्जाका सिर खाकर (निर्लज्ज होकर); *'तार'*—श्रीचैतन्यलीलाका॥ 359॥

महाप्रभुकी तीर्थयात्राके छलसे लोगोंके
उद्धारकी कथाके श्रवणका फल :—

प्रभुर तीर्थयात्रा-कथा शुने येइ जन।
चैतन्यचरणे पाय गाढ़ प्रेमधन॥ 360॥

अनुवाद—महाप्रभुकी तीर्थ-यात्राकी कथाको जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक श्रवण करता है, उसे महाप्रभुके चरणोंमें गाढ़ प्रेमधनकी प्राप्ति होती है॥ 360॥

अनुभाष्य—निर्विशेषवादी पञ्चोपासक लोग जगत्‌में अपने जड़ेन्द्रिय-ज्ञानके अनुरूप परम-तत्त्वके किसी रूपकी कल्पना करके उसे उपास्य मान लेते हैं, किन्तु श्रीमद्भागवत अथवा श्रीकृष्णचैतन्यदेव वैसी इन्द्रिय-भोगमयी उपासनाको 'परमार्थ' नहीं कहते। मायावादी अहंग्रहोपासक परम-तत्त्वको निराकार मानते हैं और उनके जितने भी रूप कहे जाते हैं, वे सब आकाश-कुसुमकी भाँति काल्पनिक हैं। मायावादी और परम-तत्त्वके काल्पनिक रूपकी उपासना करनेवाले, दोनों ही भ्रान्त हैं। उनके विचारके अनुसार भगवान्‌के श्रीविग्रह अथवा उनके किसी अन्य रूपकी उपासना बद्धजीवका भ्रम है। परन्तु श्रीगौरसुन्दरने श्रीमद्भागवतके प्रतिपाद्य अचिन्त्य-भेदाभेद-विचारके अनुसार वैसे कर्मी, ज्ञानी और योगियोंकी अनुभूतिकी अकर्मण्यताको (निकम्मेपनको) प्रदर्शित किया है। महाप्रभुने सर्वत्र तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए मन्दिरोंमें भगवान्‌के नाम रूप-गुण-लीलाका परिचय देनेवाली भगवद्-वस्तुका ही दर्शन किया था। वैष्णव लोग जब शिवादि विभिन्न देवताओंके मन्दिरमें उनके दर्शन करते हैं, तो उनका दर्शन अवैष्णवोंके दर्शनसे भिन्न होता है, इसे बतानेके लिये ही महाप्रभुने वहाँ अधोक्षज वस्तुका ही दर्शन किया। आत्मवृत्तिसे अधोक्षज वस्तुका दर्शन और जड़ेन्द्रियोंके द्वारा मूर्ति-दर्शन, दोनों सम्पूर्ण रूपसे विपरीत भावमें अवस्थित हैं,—यही गौर-दासोंका अनुसरणीय विषय हैं। श्रीकृष्णकी परिकर गोपियोंकी कात्यायनीकी पूजाका लक्ष्य गोपीजनवल्लभको उपपति रूपमें पाना था। प्राकृत सहजिया लोग "महामाया" आदि अनेकानेक देवताओंको भोग प्रदान करनेवाले यन्त्रके रूपमें देखते हैं, इसलिये वे अपने इन देवी-देवताओंकी पूजाके साथ गोपियोंकी पूजाको 'एक' अथवा 'समान' मानकर विवर्त्तवादके गड्ढेमें गिरते हैं। श्रौतपन्था अर्थात् गुरु-परम्पराको समझ नहीं पानेके कारण तर्कपन्थी पञ्चोपासना विधिका प्रचार करते हैं। (विष्णु, शिव, दुर्गा, गणेश और सूर्य) पाँच उपास्य देवताओंमेंसे अन्योंका त्यागकर एकको ही 'परमेश्वर' मानकर उनको भी विश्वमें निर्विशेष ब्रह्मका प्रतीक मानकर जो दर्शन है, वही 'पञ्चोपासना' है। वैसा दर्शन मूर्तिपूजाके ही अन्तर्गत है, वही बादमें मायावादियोंके 'निर्विशेषवाद'में परिणत हुआ है। श्रीकृष्ण दर्शनके अभावके कारण ही जीव अवैष्णव होकर पञ्चोपासक बनता है, और कभी नास्तिक बनता है। किन्तु महाप्रभुने शुद्धभक्तोंके विषयमें कहा है,—"स्थावर जङ्गम देखे, ना देखे तार (स्थावरजङ्गमेर) मूर्त्ति। सर्वत्र स्फुरये ताँर इष्टदेव मूर्त्ति॥" अर्थात् न तो उन्हें स्थावर-जङ्गम दिखायी देता है, न ही उनकी मूर्ति (आकार) दिखायी देती है, बस सर्वत्र उन्हें अपने इष्टदेवकी ही स्फूर्त्ति होती है॥ 360॥

श्रीकृष्णचैतन्यमें दृढ़-श्रद्धा और छलरहित मनसे
हरि-सङ्कीर्तन ही जीवोंका एकमात्र परमधर्म :—

चैतन्यचरित शुन श्रद्धा-भक्ति करि'।
मात्सर्य छाड़िया मुखे बल 'हरि' 'हरि'॥ 361॥

अनुवाद—हे श्रोताओं! महाप्रभुके चरित्रका श्रद्धा-प्रेमसहित श्रवण कीजिये और मात्सर्यकी भावनाको त्यागकर मुखसे 'हरि' 'हरि' सङ्कीर्तन कीजिये॥ 361॥

इसे छोड़कर "नान्य पन्था विद्यतेऽयनाय" :—

एइ कलिकाले आर नाहि कोन धर्म।
वैष्णव, वैष्णवशास्त्र, एइ कहे मर्म॥ 362॥

अनुवाद—इस कलिकालमें श्रीहरिनाम सङ्कीर्तनके अतिरिक्त और कोई भी धर्म नहीं है। सभी वैष्णव एवं वैष्णव शास्त्रोंकी कथाका यही सार है॥ 362॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अन्य जीवोंके प्रति स्वाभाविक दयाके साथ अर्थात् उनके प्रति ईर्ष्यावृत्ति (भोगबुद्धिके कारण उन्हें श्रीकृष्णके वि मुख करनेकी चेष्टा) सम्पूर्ण रूपसे परित्याग करके मुखसे 'हरि' 'हरि' बोलो। (इसके अतिरिक्त) इस कलिकालमें अन्य कोई धर्म नहीं है,—शुद्धवैष्णव-सेवा, शुद्धवैष्णव-शास्त्र पाठ करना ही जीवोंका एकमात्र धर्म है॥ 361-362॥

नौवें अध्यायका अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त॥

अनुभाष्य—वैष्णवों और वैष्णव-शास्त्रोंकी सारकथा यह है कि विश्वाससहित भक्तिपूर्वक श्रीचैतन्यलीला श्रवण करनेसे जीवोंमें मात्सर्य नहीं रह सकता। कलिकालमें निर्मत्सर शुद्धजीवोंके लिये श्रीगौरपादाश्रित होकर हरिनाम-कीर्तन ही एकमात्र सनातन धर्म है।

'वैष्णव'—शुद्धभक्त महाजन अथवा विद्वत्-अनुभवी; *'वैष्णव-शास्त्र'*—श्रुति अथवा शब्द प्रमाण; दोनोंका अनुसरण ही श्रौतपन्थामें अवस्थान है। चरम कल्याणकी अकाङ्क्षा रखनेवाले व्यक्तिमात्रके लिये इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। (भाः 11/19/17)—

"श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयम्।
प्रमाणेष्वनवस्थानाद् विकल्पात् स विरज्यते॥"

अर्थात् "श्रुति, प्रत्यक्ष, एतिह्य (इतिहास) और अनुमान—इन चार प्रमाणोंके द्वारा स्वर्गादि-भोगरूप सभी विकल्पोंका सर्वकालिक अवस्थानका अभाव अर्थात् इनकी नश्वरता दिखायी देनेपर जीव इनसे विरक्त हो जाता है॥"361-362॥

नौवें अध्यायका अनुभाष्य समाप्त॥

श्रीश्रीचैतन्यचन्द्रकी लीलाका असमोर्द्ध गाम्भीर्य और ग्रन्थकारका सहज दैन्य :—

चैतन्यचन्द्रेर लीला—अगाध, गम्भीर।
प्रवेश करिते नारि,—स्पर्शि रहि' तीर॥ 363॥

अनुवाद—श्रीचैतन्यचन्द्रकी लीला अगाध एवं गम्भीर (गहरी) है। मैं उसमें प्रवेश नहीं कर सकता, परन्तु उसके तटपर रहकर केवल उसका स्पर्श कर रहा हूँ॥ 363॥

श्रीचैतन्यमहाप्रभुके अनुशीलनसे श्रीकृष्णमें प्रीति-प्राप्ति :—

चैतन्यचरित श्रद्धाय शुने येइ जन।
यतेक विचारे, तत पाय प्रेमधन॥ 364॥

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ 365॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते मध्यखण्डे दक्षिणदेशतीर्थ-भ्रमणं नाम नवम-परिच्छेदः॥

अनुवाद—श्रीचैतन्यचरितको जो श्रद्धापूर्वक सुनता है और सुनकर उसपर जितना विचार करता है, उतना ही उसे महाप्रभुके चरणोंमें प्रेमरूपी धन प्राप्त होता है। श्रीरूप-रघुनाथ गोस्वामीके चरणकमलोंकी कृपाभिलाषा करते हुए कृष्णदास इस श्रीचैतन्यचरितामृतका वर्णन कर रहा है॥ 364-365॥

श्रीचैतन्यचरितामृतके मध्यखण्डमें दक्षिणदेश-तीर्थ-भ्रमण नामक नौवें अध्यायका अनुवाद समाप्त॥

चित्र–10

दसवाँ अध्याय

कथासार–महाप्रभुने जब दक्षिण भारतकी यात्राके लिये गये, तब उनके विषयमें श्रीसार्वभौमके साथ राजा प्रतापरुद्रकी बहुत बातचीत हुई। राजाने महाप्रभुके दर्शन करनेकी अभिलाषा प्रकट की। तब श्रीसार्वभौमने कहा था कि महाप्रभुके लौटकर आनेपर वे उनके साथ किसी प्रकारसे साक्षात्कार करा देंगे। महाप्रभु लौटकर आनेके बाद काशीमिश्रके घरमें रहने लगे। श्रीसार्वभौमने श्रीमहाप्रभुके साथ क्षेत्रवासी वैष्णवोंका परिचय करा दिया। श्रीरामानन्द रायके पिता श्रीभवानन्द रायने अपने पुत्र श्रीवाणीनाथ पट्टनायकको महाप्रभुको सौंप दिया। जब महाप्रभुने काला कृष्णदासके भट्टथारिसे मिलनके दोषको व्यक्त करके उसे विदायी देनेका प्रस्ताव रखा, तब श्रीनित्यानन्द प्रभु और अन्यान्य भक्तोंने युक्ति करके, उसके द्वारा श्रीनवद्वीपमें एवं गौड़देशमें सर्वत्र महाप्रभुके लौट आनेका संवाद भिजवाया। नवद्वीपादि स्थानोंपर संवाद पहुँचनेपर भक्त लोग महाप्रभुके दर्शनके लिये आनेके लिये तैयारी करने लगे। इसी समय श्रीपरमानन्दपुरीने नदीया-नगरमें आकर जब महाप्रभुके नीलाचलमें पहुँचनेका संवाद श्रवण किया, तब वे ब्राह्मण कमलाकान्तको साथ लेकर पुरुषोत्तम क्षेत्रमें महाप्रभुके पास पहुँचे। नवद्वीपवासी पुरुषोत्तम भट्टाचार्य वाराणसीमें 'चैतन्यानन्द' नामक गुरुसे संन्यास ग्रहण करके 'स्वरूप' नाम ग्रहण करके नीलाचलमें महाप्रभुके चरणोंमें उपस्थित हुए। श्रीईश्वरपुरीके अप्रकट होनेके बाद उनके सेवक 'गोविन्द' उनकी आज्ञासे महाप्रभुके पास आये। केशव-भारतीके सम्पर्कसे ब्रह्मानन्द-भारती महाप्रभुके पूजनीय थे; उनके उपस्थित होनेपर महाप्रभुने कृपा करके उनका चर्माम्बर (चमड़ेका वस्त्र) छुड़वाया। महाप्रभुके प्रभावसे ब्रह्मानन्दने महाप्रभुके माहात्म्यको जानकर उन्हें 'कृष्ण' मानकर स्वीकार किया। जब श्रीसार्वभौमने महाप्रभुको 'कृष्ण' कहकर निर्देश किया, तब महाप्रभुने उनकी बातको 'अतिस्तुति' कहकर उस बातका अनादर किया। (इसी बीच एकदिन) काशीश्वर गोस्वामी आकर उपस्थित हुए। इस अध्यायमें, समुद्रमें नद-नदी-मिलनकी भाँति महाप्रभुके साथ बहुतसे देशोंके भक्तोंके मिलनका वर्णन हुआ है।

—(अमृतप्रवाहभाष्य)

भक्तोंके जीवनधन श्रीगौरको प्रणाम :—

तं वन्दे गौरजलदं स्वस्य यो दर्शनामृतैः।
विच्छेदावग्रहम्लान-भक्तशस्यान्यजीवयत्॥1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिन्होंने अपने दर्शनामृत-वर्षणके द्वारा विच्छेदरूप अकालके द्वारा मुरझाये हुए भक्तरूपी धान्योंको जीवित किया था, उन गौररूप मेघकी मैं वन्दना करता हूँ॥1॥

अनुभाष्य—

यः (श्रीकृष्णचैतन्यदेवः) स्वस्य (निजश्रीमूर्त्तेः) दर्शनामृतैः (निजदर्शनान्येव अमृतानि पीयूषाणि तैः) विच्छेदावग्रहम्लानभक्तशस्यानि (विच्छेदः अनुपस्थितिजन्य-विरहः एव अवग्रहः वर्षणाभावः तेन म्लानानि भक्तरूप-शस्यानि) अजीवयत् (प्राणदानेन रक्षयामास) तं गौरजलदं (श्रीचैतन्यमेघम्) अहं वन्दे।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष देखें॥1॥

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥2॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभुकी जय हो, जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो। श्रीअद्वैतचन्द्रकी जय हो, समस्त श्रीगौरभक्तवृन्दकी जय हो॥2॥

महाप्रभुके दक्षिण भ्रमणके समय राजाप्रतापरुद्र और श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यका वार्त्तालाप :—

पूर्वे यबे महाप्रभु चलिला दक्षिणे।
प्रतापरुद्र राजा तबे बोलाइल सार्वभौमे॥ 3॥

राजाके द्वारा महाप्रभुके परिचयकी जिज्ञासा और उनके दर्शनकी आकाङ्क्षा :—

बसिते आसन दिल करि' नमस्कारे।
महाप्रभुर वार्त्ता तबे पुछिल ताँहारे॥ 4॥

"शुनिलाङ तोमार घरे एक महाशय।
गौड़ हइते आइला, तेँहो—महा-कृपामय॥ 5॥

तोमारे बहु कृपा कैला, कहे सर्वजन।
कृपा करि' कराह मोरे ताँहार दर्शन॥"6॥

अनुवाद—महाप्रभु जब दक्षिण भारतकी यात्राके लिये चले गये, तब राजा प्रतापरुद्रने श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यको अपने महलमें बुलवाया था। उनके आनेपर महाराज प्रतापरुद्रने उन्हें प्रणाम किया और बैठनेके लिये आसन दिया। तब वे श्रीसार्वभौमसे महाप्रभुके सम्बन्धमें पूछने लगे,—"मैंने सुना है कि गौड़देशसे एक महापुरुष आये हैं और वे आपके घरमें रह रहे हैं। मैंने यह भी सुना है कि वे महा-कृपालु हैं और लोग कह रहे हैं कि उन्होंने आपपर बहुत कृपा की है। इसलिये आप कृपा करके मुझे भी उनके दर्शन करा दीजिये॥"3-6॥

श्रीसार्वभौमके द्वारा महाप्रभुके आचरणका वर्णन :—

भट्ट कहे,—"ये शुनिला सब सत्य हय।
ताँर दर्शन तोमार घटन ना हय॥ 7॥

विरक्त संन्यासी तेँहो रहेन निर्जने।
स्वप्नेह ना करेन तेँहो राजदरशने॥ 8॥

तथापि प्रकारे तोमा कराइताम दरशन।
सम्प्रति करिला तेँहो दक्षिण गमन॥"9॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने कहा,—"आपने जो सुना है, वह सब सत्य है, परन्तु आपको उनके दर्शन नहीं मिलेंगे। यद्यपि वे एकान्तमें वास करनेवाले विरक्त संन्यासी हैं और वे स्वप्नमें भी राजाका दर्शन नहीं करते, तथापि मैं आपको किसी प्रकार उनका दर्शन कराता, परन्तु अभी तो वे दक्षिण भारतकी यात्रापर गये हुए हैं॥"7-9॥

राजाके द्वारा महाप्रभुके पुरुषोत्तम परित्याग करनेके कारणकी जिज्ञासा :—

राजा कहे,—"जगन्नाथ छाड़ि' केने गेला।"
भट्ट कहे,—"महान्तेर एइ एक लीला॥ 10॥

भट्टाचार्यका सद्-उत्तर :—

तीर्थ पवित्र करिते करे तीर्थभ्रमण।
सेइ छले निस्तारये सांसारिक जन॥ 11॥

अनुवाद—यह सुनकर राजाने कहा,—"वे श्रीजगन्नाथ पुरीको छोड़कर क्यों गये?" श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने कहा,—"महापुरुषोंकी यह एक लीला है, वे तीर्थोंको पवित्र करनेके उद्देश्यसे तीर्थोंमें भ्रमण करते हैं। इस बहानेसे वे तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए सांसारिक लोगोंका उद्धार कर रहे हैं॥ 10-11॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 8/39 संख्या देखें और (भाः 4/30/37)—

"तेषां विचरतां पद्भ्यां तीर्थानां पावनेच्छया।
भीतस्य किं न रोचेत तावकानां समागमः॥"

अर्थात् "प्रचेतागण श्रीजनार्दनसे बोले,—हे भगवन्! आपके भक्त सभी तीर्थोंको पवित्र करनेके लिये पैदल ही भ्रमण करते हैं। इसलिये संसारसे भयभीत किस व्यक्तिके लिये उनका समागम रुचिकर नहीं होगा?"॥ 10-11॥

श्रीमद्भागवत(1/13/10)—

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता॥ 12॥

अनुवाद—आपके जैसे भागवतजन स्वयं तीर्थस्वरूप हैं। आप लोग अपने अन्तःस्थित भगवान्‌की पवित्रताके

बलसे पापियोंके पापोंसे मलिन सभी तीर्थोंको पवित्र करते हैं॥ 12॥

अनुभाष्य—आदिलीला 1/63 संख्या देखें॥ 12॥

दीनजनोंका उद्धार करना ही महान्त लोगोंका स्वभाव है, उसपर भी वे स्वेच्छामय परमेश्वर हैं :—

वैष्णवेर हय एइ एक स्वभाव निश्चल।
तेँहो जीव नहेन, हन स्वतन्त्र ईश्वर॥"13॥

अनुवाद—वैष्णवोंका ऐसा ही निश्चल स्वभाव होता है और वे तो जीव नहीं, स्वतन्त्र ईश्वर हैं॥ 13॥

अमृतप्रवाह भाष्य—वैष्णवोंका यह एक अचल स्वभाव है—'तीर्थोंको पवित्र करनेके लिये तीर्थभ्रमण और उसके छलसे सांसारिक लोगोंका उद्धार करना।' वास्तवमें श्रीकृष्णचैतन्य—'जीव' नहीं हैं, वे—स्वतन्त्र ईश्वर हैं, तथापि उन्होंने गुप्तरूपसे भक्तावतार होकर वैष्णवों जैसा स्वभाव ग्रहण किया है॥"13॥

अनुभाष्य—श्रीभागवतगण तीर्थोंमें जाकर उन्हें पवित्र करते हैं और तीर्थमें जानेके बहानेसे तीर्थवासी सांसारिक लोगोंका उद्धार करते हैं—यही परदुःख-दुःखी (दूसरोंके दुःखमें दुःखी) शुद्धभक्तोंका नित्य स्वभाव है। किन्तु श्रीमहाप्रभु परतन्त्र भक्तरूपमें लीला करनेपर भी स्वयं स्वतन्त्र परमेश्वर हैं।

'निश्चल'—अचल, सनातन, नित्य॥ 13॥

राजाके द्वारा भट्टाचार्यसे शिकायत :—

राजा कहे,—"ताँरे तुमि याइते केने दिले?
पाय पड़ि' यत्न करि' केने ना राखिले?॥"14॥

अनुवाद—तब राजा प्रतापरुद्रने कहा,—"आपने उनको जाने क्यों दिया? उनके चरणोंमें पड़कर आग्रह करके उन्हें रोक क्यों नहीं लिया?॥"14॥

राजाको वैधभक्तके भाँति श्रीभट्टाचार्यका उत्तर देना :—

भट्टाचार्य कहे,—"तेँहो स्वयं ईश्वर स्वतन्त्र।
साक्षात् श्रीकृष्ण, तेँहो नहे परतन्त्र॥ 15॥

तथापि राखिते ताँरे महायत्न कैलुँ।
ईश्वरेर स्वतन्त्र भाव, राखिते नारिलुँ॥"16॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने उत्तर दिया,—"वे स्वयं ईश्वर और परम स्वतन्त्र हैं। वे साक्षात् श्रीकृष्ण हैं, वे परतन्त्र नहीं हैं। तथापि मैंने उन्हें रोकनेका बहुत प्रयास किया, परन्तु भगवान्‌की अपनी स्वतन्त्र इच्छा है, मैं उन्हें रोक नहीं पाया॥"15-16॥

महापण्डित भट्टाचार्यके वचनोंपर राजाका विश्वास :—

राजा कहे,—"भट्ट, तुमि विज्ञशिरोमणि।
तुमि ताँरे 'कृष्ण' कह, ताते सत्य मानि॥ 17॥

राजाकी एक बार महाप्रभुके दर्शनकी आकाङ्क्षा :—

पुनरपि इँहा ताँर हैले आगमन।
एकबार देखि' करि सफल नयन॥"18॥

अनुवाद—राजाने कहा,—"हे भट्टाचार्य! आप विद्वानोंमें शिरोमणि हैं। आप उन्हें साक्षात् 'श्रीकृष्ण' कह रहे हैं, तो मैं इसे सत्य मानता हूँ। जब वे यहाँ लौटकर आयेंगे, तब उनका एकबार दर्शन करके मैं भी अपने नेत्रोंको सफल करना चाहता हूँ॥"17-18॥

अनुभाष्य—महाजनके वाक्यमें विश्वास करनेसे राजाका मङ्गल और उनमें भक्तिका उदय हुआ॥ 17॥

महाप्रभुके शीघ्र आनेके समाचारका ज्ञापन और राजाको महाप्रभुके योग्य वास-स्थानके निर्देशका अनुरोध :—

भट्टाचार्य कहे,—"तेँहो आसिबे अल्पकाले।
रहिते ताँर एक स्थान चाहिये विरले॥ 19॥

ठाकुरेर निकट, आर हइबे निर्जने।
एमत निर्णय करि' देह' एक स्थाने॥"20॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने कहा,—"वे शीघ्र ही लौट आयेंगे, किन्तु उनके रहनेके लिये एक एकान्त और शान्त स्थानकी आवश्यकता है। वह स्थान ठाकुरके (श्रीजगन्नाथके) मन्दिरके निकट हो और एकान्त भी हो, इस विषयपर विचार करके आप एक स्थानकी व्यवस्था कर दीजिये॥"19-20॥

राजाके द्वारा काशीमिश्रके भवनका निर्देश :—

राजा कहे,—"ऐछे काशीमिश्रेर भवन।
ठाकुरेर निकट, हय परम निर्जन॥"21॥

अनुवाद—राजाने कहा,—"ऐसा स्थान तो काशीमिश्रका घर है। वह श्रीजगन्नाथ-मन्दिरके निकट तथा अत्यन्त निर्जन-शान्त स्थान है॥"21॥

अनुभाष्य—*'काशीमिश्रेर भवन'*—श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें मन्दिरसे कुछ दक्षिणकी ओर बालिसाहिके अन्तर्गत वर्तमान श्रीराधाकान्त मठ है; श्रीमन्महाप्रभु वहाँ वास करते थे। श्रीवक्रेश्वर पण्डितके शिष्य श्रीगोपालगुरु थे और उनके शिष्य श्रीध्यानचन्द्र गोस्वामीने वहाँ श्रीविग्रह स्थापित किये थे। वह स्थान श्रीजगन्नाथदेव-मन्दिरके निकटमें है और उस समय वह निर्जन स्थान था॥21॥

राजाकी महाप्रभुके दर्शनकी उत्कण्ठा :—

एत कहि' राजा रहे उत्कण्ठित हञा।
भट्टाचार्य काशीमिश्रे कहिल आसिया॥22॥

अनुवाद—ऐसा कहकर राजा उत्कण्ठित होकर महाप्रभुके लौटनेकी प्रतीक्षा करने लगे। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने श्रीकाशीमिश्रके पास आकर उन्हें राजाकी इच्छा बतलायी॥22॥

काशीमिश्रको राजाका आदेश बताना
और सुनकर मिश्रका आनन्द :—

काशीमिश्र कहे,—"आमि बड़ भाग्यवान्।
मोर गृहे 'प्रभुपादेर' हबे अवस्थान॥"23॥

अनुवाद—यह सुनकर श्रीकाशीमिश्रने कहा,—"मैं बहुत भाग्यवान् हूँ। मेरे घरमें 'प्रभुपाद' (महाप्रभु) वास करेंगे॥"23॥

अनुभाष्य—स्वयं भगवान् श्रीमन्महाप्रभुको उनके दासका अभिमान रखनेवाले जीवमात्र ही 'प्रभुपाद' कहकर पुकारते हैं। श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु और श्रीमद् अद्वैत प्रभु—ये दोनों भी उसी प्रकार 'प्रभुपाद'के नामसे कहे जाते हैं, क्योंकि सभी विषय-विग्रह विष्णुतत्त्व हैं एवं विष्णु ही जीवोंके नित्य प्रभु हैं। और भी, श्रीकृष्णतत्त्ववेत्ता आश्रय-विग्रह श्रीगुरुदेव भी लघु-शिष्यके लिये साक्षात् 'कृष्णचैतन्य' अथवा 'हरि' स्वरूप होनेके कारण 'ॐ विष्णुपाद' कहलाते हैं। श्रीगुरुदेवके अतिरिक्त अन्यान्य शुद्धभक्तों अथवा शुद्ध-वैष्णवोंको उनके सभी शिष्य-स्थानीय जीव 'श्रीपाद'के नामसे बुलाते हैं। किन्तु श्रीगुरुदेव और वैष्णव एवं उनके द्वारा अङ्गीकार किये गये शिष्य, सभी एक-दूसरेको पूज्य-द्योतक 'प्रभु' शब्दके द्वारा सम्बोधन करते हैं। इसी सत् सिद्धान्तका प्रचुर व्यवहार भागवत, चैतन्यचरितामृत, चैतन्यभागवतादि प्रमाणिक ग्रन्थों और शुद्धभक्त-सम्प्रदायमें देखा जाता है।

प्राकृत-सहजिया वैष्णव कहलाने योग्य नहीं हैं। उनके सम्प्रदायमें तथाकथित गोस्वामियों और उनके मूर्ख शिष्योंके द्वारा मुखसे अपनेको 'वैष्णव-दासानुदास', 'वैष्णव-दासाभास' कहना दीनताकी आड़में छल या कपटता है। उनका कहना है कि जात-गोस्वामी ही 'प्रभुपाद' कहलानेके अधिकारी हैं। जाति-बुद्धिकी प्रबलताके कारण वे यथार्थ श्रीकृष्णतत्त्वविद् गुरु अथवा वैष्णवोंमें मर्त्त्य-बुद्धि रखकर उनको 'प्रभुपाद' सम्बोधनके योग्य नहीं मानते,—यह उनके दुर्भाग्यका परिचायक और नरककी यात्राका सहायक मात्र है॥23॥

पुरीवासियोंकी महाप्रभुके दर्शनकी उत्कण्ठा :—

एइमत पुरुषोत्तमवासी सर्वजन।
प्रभुके मिलिते सबार उत्कण्ठित मन॥24॥

सेवाकी उत्कण्ठा ही भक्त और भगवान्के मिलनका सूत्र;
महाप्रभुका दक्षिणसे आगमन :—

सर्वलोकेर उत्कण्ठा यबे अत्यन्त बाड़िल।
महाप्रभु दक्षिण हैते त्वराय आइल॥25॥

महाप्रभुके दर्शनके लिये सभीकी भट्टाचार्यसे प्रार्थना :—

शुनि' आनन्दित हैल सबाकार मन।
सबे आसि' सार्वभौमे कैल निवेदन॥26॥

"प्रभुर सहित आमा-सबार कराह दरशन।
तोमार प्रसादे पाइ प्रभुर चरण॥"27॥

अनुवाद—इस प्रकार पुरुषोत्तमवासी सभी लोगोंका मन महाप्रभुके दर्शन करनेके लिये उत्कण्ठित हो रहा था। जब सब लोगोंकी उत्कण्ठा बहुत बढ़ गयी, तब महाप्रभु दक्षिण भारतसे तुरन्त आ गये। महाप्रभुके आनेका समाचार सुनकर सभीका मन प्रसन्न हो गया। सब आकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यसे प्रार्थना करने लगे,—"हम सबको महाप्रभुके दर्शन कराइये। आपकी कृपासे ही हमें महाप्रभुके चरणकमलोंकी प्राप्ति हो सकती है॥"24–27॥

काशीमिश्रके घरमें महाप्रभुके साथ
मिलनेका सभीको आश्वासन :—

भट्टाचार्य कहे,—"कालि काशीमिश्रेर घरे।
प्रभु याइबेन ताँहा, मिला'ब सबारे॥"28॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने कहा,—"कल महाप्रभु काशीमिश्रके घर जायेंगे। वहीं मैं आप सबको उनके दर्शन कराऊँगा॥"28॥

दूसरे दिन महाप्रभुके द्वारा जगन्नाथ-दर्शन
और पण्डागणोंके साथ मिलन :—

आर दिन महाप्रभु भट्टाचार्येर सङ्गे।
जगन्नाथ-दरशन कैल महारङ्गे॥29॥

महाप्रसाद दिया ताँहा मिलिला सेवकगण।
महाप्रभु सबाकारे कैल आलिङ्गन॥30॥

अनुवाद—अगले दिन महाप्रभु श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके साथ बड़े आनन्दसे भगवान् श्रीजगन्नाथदेवके दर्शन करने गये। श्रीजगन्नाथदेवके सेवकोंने महाप्रभुसे मिलकर उन्हें महाप्रसाद दिया और महाप्रभुने उन सबका आलिङ्गन किया॥29–30॥

भट्टाचार्यका महाप्रभुको काशी मिश्रके घरपर लाना :—

दर्शन करि' प्रभु चलिला बाहिरे।
भट्टाचार्य आनिल ताँरे काशीमिश्र-घरे॥31॥

महाप्रभुके चरणोंमें काशीमिश्रका आत्मसमर्पण :—

काशीमिश्र आसि' पड़िल प्रभुर चरणे।
गृह-सहित आत्मा ताँरे कैल निवेदने॥32॥

काशीमिश्रको चतुर्भुज-मूर्तिका दर्शन :—

प्रभु चतुर्भुज-मूर्त्ति ताँरे देखाइल।
आत्मसात् करि' ताँरे आलिङ्गन कैल॥33॥

अनुवाद—भगवान् श्रीजगन्नाथका दर्शन करके महाप्रभु मन्दिरसे बाहर चले और श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य उन्हें काशीमिश्रके घर ले आये। महाप्रभुको देखकर श्रीकाशीमिश्र उनके चरणोंमें गिर पड़े और उन्होंने घरके साथ-साथ अपने आपको भी महाप्रभुके श्रीचरणोंमें समर्पित कर दिया। महाप्रभुने श्रीकाशीमिश्रको अपने चतुर्भुज रूपका दर्शन कराया और उन्हें अपने दासके रूपमें स्वीकार करके उनका आलिङ्गन किया॥31–33॥

अमृतप्रवाह भाष्य—काशीमिश्रने अपना घर और सेवा करने योग्य अपना शरीर भी महाप्रभुको समर्पित कर दिया॥32॥

सभीके द्वारा आसन ग्रहण :—

तबे महाप्रभु ताँहा बसिला आसने।
चौदिके बसिला नित्यानन्दादि भक्तगणे॥34॥

अनुवाद—तब महाप्रभु वहाँ आसनपर बैठ गये और श्रीनित्यानन्द प्रभु आदि भक्तगण उनके चारों ओर बैठ गये॥34॥

योग्य वासस्थान-निर्वाचन देखकर महाप्रभुको आनन्द :—

सुखी हैला देखि' प्रभु वासार संस्थान।
येइ वासाय हय प्रभुर सर्व-समाधान॥35॥

अनुवाद—महाप्रभु अपने रहनेके स्थानको देखकर बहुत प्रसन्न हुए, क्योंकि ऐसे स्थानपर उनकी आवश्यकता अनुसार सब व्यवस्था थी॥35॥

महाप्रभुको घर स्वीकार करनेकी प्रार्थना :—

सार्वभौम कहे,—"प्रभु, योग्य तोमार वासा।
तुमि अङ्गीकार कर,—काशीमिश्रेर आशा॥"36॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने कहा,—"प्रभो! यह निवासस्थान आपके योग्य है। कृपा करके इसे स्वीकार करके काशीमिश्रकी आशाको पूर्ण कीजिये॥"36॥

अमृतप्रवाह भाष्य—काशीमिश्रकी यही आशा है कि आप उनके घरमें वास करे,—इसे आप कृपा करके स्वीकार कीजिये॥36॥

महाप्रभुके द्वारा अपने भक्तकी वश्यता-ज्ञापन :—

प्रभु कहे,—"एइ देह तोमा-सबाकार।
येइ तुमि कह, सेइ कर्त्तव्य आमार॥"37॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"यह देह तो आप सबकी ही है। आप लोग जैसा कहेंगे, वैसा करना ही मेरा कर्त्तव्य है॥"37॥

श्रीभट्टाचार्यके द्वारा महाप्रभुको पुरीवासी भक्तोंका परिचय प्रदान :—

तबे सार्वभौम प्रभुर दक्षिण-पार्श्वे बसि'।
मिलाइते लागिला सब पुरुषोत्तमवासी॥38॥

अनुवाद—तब श्रीसार्वभौम महाप्रभुके दाहिनी ओर बैठ गये और वे सब पुरुषोत्तमवासियोंको महाप्रभुसे मिलवाने लगे॥38॥

पुरीवासियोंके द्वारा महाप्रभुके दर्शनकी उत्कण्ठा-ज्ञापन और महाप्रभुकी कृपाके लिये प्रार्थना :—

"एइ सब लोक, प्रभु, बैसे नीलाचले।
उत्कण्ठित हञाछे सबे तोमा मिलिबारे॥39॥

महाप्रभुके दर्शनके लिये तृष्णासे युक्त पुरीवासी भक्त :—

तृषित चातक यैछे करे हाहाकार।
तैछे एइ सब,—सबे कर अङ्गीकार॥40॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने कहा,—"ये सब लोग नीलाचलमें रहते हैं और आपसे मिलनेके लिये बड़े ही उत्कण्ठित हैं। जैसे प्यासा चातक पानीके लिये हा-हाकार करता है, आपके दर्शनके बिना इनकी स्थिति भी वैसी है, आप इन्हें अङ्गीकार कीजिये॥39–40॥

अमृतप्रवाह भाष्य—पाठान्तरमें—'तैछे एइ सब, सबा कर अङ्गीकार' अर्थात् जिस प्रकार प्यासा चातक जलके लिये हाहाकार करता है, उसी प्रकार ये सब उत्कलवासी आपके दर्शनोंके लिये प्यासे हैं; प्रभो! आप सभीको ही स्वीकार कीजिये॥40॥

(1) जनार्द्दन :—

जगन्नाथ-सेवक एइ, नाम-जनार्द्दन।
अनवसरे करे प्रभुर श्रीअङ्ग-सेवन॥41॥

अनुवाद—(भक्तोंसे परिचय कराते हुए श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य कह रहे हैं)—ये भगवान् श्रीजगन्नाथके सेवक हैं, इनका नाम जनार्द्दन है। अनवसरके समय ये श्रीजगन्नाथके श्रीविग्रहकी सेवा करते हैं॥41॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'अनवसरे'*—स्नानयात्राके बादसे 'नवयौवन'-दर्शन तक अनवसर-काल है॥41॥

(2) कृष्णदास, (3) शिखि माहाति :—

कृष्णदास-नाम एइ सुवर्ण-वेत्रधारी।
शिखि माहाति-नाम एइ लिखनाधिकारी॥42॥

अनुवाद—ये कृष्णदास हैं, ये स्वर्णकी छड़ी धारण करते हैं। और इनका नाम शिखि माहाति है, ये लेखन अधिकारी हैं अर्थात् ये पञ्जिका आदि लिखनेका कार्य करते हैं॥42॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'लिखन अधिकारी'*—मन्दिरके पद-प्राप्त कर्मचारी, जो मात्ला-पञ्जिका लिखते हैं॥42॥

अनुभाष्य—*'शिखि माहाति'*—अन्त्यलीला 2/105–106 संख्या और आदिलीला 10/137 संख्याका अनुभाष्य देखें॥42॥

(4) प्रद्युम्न मिश्र :—

प्रद्युम्नमिश्र इँह वैष्णव प्रधान।
जगन्नाथेर महा-सोयार इँह 'दास' नाम॥43॥

अनुवाद—ये वैष्णवोंमें प्रधान प्रद्युम्नमिश्र हैं। ये

श्रीजगन्नाथके प्रधान रसोइया हैं और ये 'दास' नामसे भी जाने जाते हैं॥ 43॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'महा-सोयार'*—महासूपकार (प्रधान रसोइया), प्रधान पाककर्त्ता (प्रधान भोजन बनानेवाला), महानसाधिकारी अर्थात् रसोईका मालिक॥ 43॥

अनुभाष्य— *'प्रद्युम्नमिश्र'*—अन्त्यलीला पाँचवाँ अध्याय देखें। ब्राह्मणोंके विष्णुदास्यसूचक नामके बाद 'दास'-शब्दका व्यवहार चुल्लिभट्ट सम्मत है॥ 43॥

(5) मुरारि माहाति :—

मुरारि माहाति इँह—शिखि माहातिर भाइ।
तोमार चरण बिना आर गति नाइ॥ 44॥

अनुवाद—ये शिखि माहातिके भाई मुरारि माहाति हैं, आपके चरणकमल ही इनकी एकमात्र गति हैं॥ 44॥

(6) चन्दनेश्वर, (7) सिंहेश्वर,
(8) मुरारि, (9) विष्णुदास :—

चन्दनेश्वर, सिंहेश्वर, मुरारि ब्राह्मण।
विष्णुदास,—इँह ध्याये तोमार चरण॥ 45॥

अनुवाद—ये चन्दनेश्वर, सिंहेश्वर, मुरारि ब्राह्मण और विष्णुदास हैं,—ये सदा आपके चरणकमलोंका ही ध्यान करते रहते हैं॥ 45॥

(10) परमानन्द :—

'प्रहरराज' 'महापात्र' इँह महामति।
परमानन्द महापात्र इँहार संहति॥ 46॥

अनुवाद—ये परमानन्द प्रहरराज हैं, इन्हें महापात्र भी कहते हैं। ये बहुत बुद्धिमान हैं॥ 46॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'प्रहरराज'*—पहराज (एक प्रहरके लिये राजा)॥ 46॥

अनुभाष्य— *'प्रहरराज'*—उत्कलमें राजाओंमें यह नियम प्रचलित है कि मृत राजाकी मृत्यु और अन्त्येष्टिकालसे अगले उत्तराधिकारीके सिंहासन ग्रहण करने अथवा अभिषेकसे पहले तक एक प्रहर कालके लिये राजकुल-पुरोहितवंशका कोई व्यक्ति सिंहासनपर बैठकर राजदण्ड धारण करेगा, जिससे राज सिंहासन खाली न रहे। ये पुरोहितगण ही वंशावलीसे 'प्रहरराज'के नामसे प्रसिद्ध हैं॥ 46॥

शुद्ध वैष्णव ही तीर्थोंके अलङ्कार :—

ए-सब वैष्णव—एइ क्षेत्रेर भूषण।
एकान्तभावे चिन्ते सबे तोमार चरण॥"47॥

अनुवाद—ये सब वैष्णव इस श्रीजगन्नाथ पुरीके भूषणस्वरूप हैं। ये सब एकान्त भावसे आपके चरणकमलोंका ही चिन्तन करते हैं॥"47॥

सभीका महाप्रभुको प्रणाम, महाप्रभुका आलिङ्गन :—

तबे सबे भूमे पड़ि' दण्डवत् हञा।
सबा आलिङ्गिला प्रभु प्रसाद करिया॥ 48॥

अनुवाद—परिचय होनेके बाद सबने भूमिपर गिरकर महाप्रभुको दण्डवत् प्रणाम किया। महाप्रभुने कृपा करके उन सबको आलिङ्गन दान दिया॥ 48॥

(11) चार पुत्रों-सहित भवानन्द-रायका परिचय-दान :—

हेनकाले आइला तथा भवानन्द राय।
चारिपुत्र-सङ्गे पड़े महाप्रभुर पाय॥ 49॥
सार्वभौम कहे,—"एइ राय भवानन्द।
इँहार प्रथम पुत्र—राय रामानन्द॥"50॥

अनुवाद—उसी समय वहाँ श्रीभवानन्द राय अपने चार पुत्रोंके साथ आये और सभीने महाप्रभुके चरणोंमें गिरकर उन्हें प्रणाम किया। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने कहा,—"ये भवानन्द राय हैं। इनके प्रथम पुत्रका नाम राय रामानन्द है॥"49–50॥

अनुभाष्य— *'चारिपुत्र'*—श्रीरामानन्द रायके अतिरिक्त वाणीनाथ, गोपीनाथ, कलानिधि और सुधानिधि—नामक चार भाई॥ 49॥

महाप्रभुका आलिङ्गन और श्रीरामानन्द-
महिमाका कीर्तन :—

तबे महाप्रभु ताँरे कैल आलिङ्गन।
स्तुति करि' कहे रामानन्द-विवरण॥ 51॥

"रामानन्द-हेन रत्न याँहार तनय।
ताँहार महिमा लोके कहन ना जाय॥ 52॥

भवानन्द ही पाण्डु, उनके पाँच पुत्र ही पाँच-पाण्डव :—

साक्षात् पाण्डु तुमि, तोमार पत्नी कुन्ती।
पञ्चपाण्डव तोमार पञ्चपुत्र महामति॥"53॥

अनुवाद—यह सुनकर महाप्रभुने श्रीभवानन्द रायका आलिङ्गन किया और श्रीरामानन्द रायकी प्रशंसा करते हुए उनके बारेमें महाप्रभुने कहा,—"रामानन्द जैसा रत्न जिनका पुत्र हो, उनकी महिमाका जगत्में वर्णन नहीं किया जा सकता। आप साक्षात् महाराज पाण्डु हैं और आपकी पत्नी साक्षात् कुन्तीदेवी हैं। आपके पाँच बुद्धिमान पुत्र पाँच पाण्डव ही हैं॥"51-53॥

भवानन्दकी दीनता; ईश्वरकी कृपा—
जातिकुलसे निरपेक्ष :—

राय कहे,—"आमि शुद्र, विषयी, अधम।
तबु तुमि स्पर्श,—एइ ईश्वर-लक्षण॥ 54॥

भवानन्दका महाप्रभुके चरणोंमें सर्वस्व-अर्पण :—

निज-गृह-वित्त-भृत्य-पञ्चपुत्र-सने।
आत्म समर्पिलुँ आमि तोमार चरणे॥ 55॥

महाप्रभुके चरणोंमें वाणीनाथको अर्पण :—

एइ वाणीनाथ रहिबे तोमार चरणे।
यबे येइ आज्ञा, ताहा करिबे सेवने॥ 56॥

निजदास मानकर अङ्गीकार करनेके लिये
भवानन्दकी महाप्रभुको प्रार्थना :—

आत्मीय-ज्ञाने मोरे सङ्कोच ना करिबे।
येइ यबे इच्छा, तबे सेइ आज्ञा दिबे॥"57॥

अनुवाद—महाप्रभुसे अपनी प्रशंसा सुनकर श्रीभवानन्द रायने कहा,—"मैं तो एक शूद्र हूँ, जो विषयोंमें लिप्त है। मैं अधम व्यक्ति हूँ, तो भी आपने मुझे स्पर्श किया। यह आपके ईश्वर होनेका ही प्रमाण है। मैं अपने घर, धन, दासों और पाँचों पुत्रोंके साथ स्वयंको आपके चरणोंमें समर्पित करता हूँ। यह मेरा पुत्र वाणीनाथ सदा आपके श्रीचरणकमलोंमें ही रहेगा। आप इसे जब जो आदेश देंगे, उसी प्रकार आपकी सेवा करेगा। आप मुझे अपना समझकर किसी भी प्रकारका सङ्कोच नहीं कीजियेगा, जब जो इच्छा हो, तब वह आदेश कीजियेगा॥"54-57॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अर्थात्, मुझे 'आत्मीय' (अपना) जानियेगा,—'आत्मीय' होनेके नाते कृपा कीजियेगा; किसी भी विषयमें सङ्कोच करनेकी आवश्यकता नहीं है॥ 57॥

महाप्रभुकी कृपा-वाणी और अङ्गीकार :—

प्रभु कहे,—"कि सङ्कोच, तुमि नह पर।
जन्मे जन्मे तुमि आमार सवंशे किङ्कर॥ 58॥

दिन-पाँच भितरे आसिबे रामानन्द।
ताँर सङ्गे पूर्ण हबे आमार आनन्द॥"59॥

अनुवाद—यह सुनकर महाप्रभुने कहा,—"आप पराये तो नहीं हो, इसलिये आपसे कैसा सङ्कोच? आप तो वंशसहित जन्म-जन्मसे मेरे दास हो। पाँच-सात दिनोंमें रामानन्द भी यहाँ आ जायेंगे। उनके साथ रहकर मेरा आनन्द पूर्ण होगा॥"58-59॥

एत बलि' प्रभु ताँरे कैल आलिङ्गन।
ताँर पुत्र सब शिरे धरिल चरण॥ 60॥

वाणीनाथको अङ्गीकार :—

तबे महाप्रभु ताँरे घरे पाठाइल।
वाणीनाथ-पट्टनायके निकटे राखिल॥ 61॥

अनुवाद—यह कहकर महाप्रभुने उनका आलिङ्गन किया और अपने चरणकमल उनके सभी पुत्रोंके सिरपर रखे। तब महाप्रभुने श्रीभवानन्द रायको उनके

घर भेज दिया और वाणीनाथ पट्टनायकको अपने पास रख लिया॥ 60–61॥

अनुभाष्य— *'शिरे'*—अपने-अपने मस्तकपर॥ 60॥

भट्टाचार्य सब लोके विदाय कराइल।
तबे प्रभु काला-कृष्णदासे बोलाइल॥ 62॥

कृष्णदासके पूर्व आचरणका वर्णन :—

प्रभु कहे,—"भट्टाचार्य, शुनह इँहार चरित।
दक्षिण गियाछिल इँह आमार सहित॥ 63॥

भट्टथारि-काछे गेला आमारे छाड़िया।
भट्टथारि हैते इँहारे आनिलुँ उद्धारिया॥ 64॥

महाप्रभुके द्वारा कृष्णदासका परित्याग :—

एबे आमि इँहा आनि' करिलाङ विदाय।
याँहा इच्छा, याह, आमा-सने नाहि आर दाय॥"65॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने तब सब लोगोंको विदा किया। बादमें महाप्रभुने काला कृष्णदासको अपने पास बुलवा लिया। महाप्रभुने कहा,—"हे सार्वभौम भट्टाचार्य! इसका (काला कृष्णदासका) चरित्र सुनो। यह मेरे साथ दक्षिण भारत गया था। वहाँ मुझे छोड़कर यह भट्टथारि लोगोंके पास चला गया था। मैं इसे भट्टथारि लोगोंके चङ्गुलसे छुड़ाकर यहाँ लाया हूँ। मैं इसे यहाँ ले आया हूँ, अब इसके बाद मुझपर इसका कोई दायित्व नहीं है, इसलिये मैं इसे यहाँसे जानेके लिये कह रहा हूँ। अब यह जहाँ जाना चाहे, वहीं चला जाय॥"62–65॥

अनुभाष्य—आदिलीला, 10/145 संख्या और मध्यलीला 7/39 संख्याका अनुभाष्य देखें॥ 62॥

कृष्णदासका क्रन्दन :—

एत शुनि' कृष्णदास कान्दिते लागिल।
मध्याह्न करिते महाप्रभु चलि' गेल॥ 66॥

अनुवाद—यह सुनकर कि महाप्रभुने उसका त्याग कर दिया है, कृष्णदास रोने लगा। किन्तु महाप्रभु उसको अनदेखा करके मध्याह्नके भोजनके लिये चले गये॥ 66॥

श्रीनित्यानन्दादिका कृष्णदासको
नवद्वीप भेजनेका परामर्श :—

नित्यानन्द, जगदानन्द, मुकुन्द, दामोदर।
चारिजने युक्ति तबे करिला अन्तर॥ 67॥

"गौड़देशे पाठाइते चाहि एकजन।
'आइ'के कहिबे याइ, प्रभुर आगमन॥ 68॥

अद्वैत-श्रीवासादि यत भक्तगण।
सबेइ आसिबे शुनि' प्रभुर आगमन॥ 69॥

कृष्णदासको सान्त्वना :—

एइ कृष्णदासे दिब गौड़े पाठाञा।"
एत कहि' तारे राखिलेन आश्वासिया॥ 70॥

अनुवाद—तब श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीजगदानन्द, श्रीमुकुन्द और श्रीदामोदर, ये चारों गुप्तरूपसे कुछ योजनापर विचार करने लगे,—"हम एक व्यक्तिको गौड़देशमें भेजना चाहते हैं, जो जाकर शचीमाताको महाप्रभुके दक्षिण भारतसे लौटकर आनेका समाचार दे। श्रीअद्वैत-श्रीवासादि सभी भक्तगण महाप्रभुके आनेका समाचार सुनकर यहाँ आयेंगे। इस कार्यके लिये हम इस कृष्णदासको गौड़देश भेजेंगे।" यह विचार करके उन्होंने कृष्णदासको आश्वस्त करके रख लिया॥ 67–70॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'अन्तर'*—गुप्त अथवा दूर जाकर॥ 67॥

महाप्रभुसे अनुमति ग्रहण :—

आर दिने प्रभुस्थाने कैल निवेदन।
"आज्ञा देह' गौड़-देशे पाठाइ एकजन॥ 71॥

तोमार दक्षिण-गमन शुनि' शचि 'आइ'।
अद्वैतादि भक्त सब आछे दुःख पाइ'॥ 72॥

एकजन याइ' कहुक् शुभ समाचार।"
प्रभु कहे,—"सेइ कर, ये इच्छा तोमार॥"73॥

अनुवाद—अगले दिन सबने महाप्रभुसे निवेदन किया,—"यदि आपकी आज्ञा हो, तो हम एक व्यक्तिको गौड़देश भेज दें। आपके दक्षिण भारत जानेका समाचार सुनकर शचीमाता और श्रीअद्वैतादि सब भक्त बड़े दुःखी हो रहे हैं। इसलिये एक व्यक्ति जाकर उनको आपके लौट आनेका शुभ समाचार दे।" यह सुनकर महाप्रभुने कहा,—"जैसी आप सबकी इच्छा हो, वैसा ही कीजिये॥"71–73॥

महाप्रसादके साथ कृष्णदासको गौड़देशमें भेजना :—

तबे सेइ कृष्णदासे गौड़े पाठाइल।
वैष्णव-सबाके दिते महाप्रसाद दिल॥ 74॥

अनुवाद—इस प्रकार काला कृष्णदासको गौड़देश भेज दिया। उसके साथ सभी वैष्णवोंको देनेके लिये प्रचुर मात्रामें श्रीजगन्नाथजीका महाप्रसाद भी भेजा॥ 74॥

कृष्णदासकी गौड़यात्रा और नवद्वीपमें शचीमाताके साथ साक्षात्कार :—

तबे गौड़देशे आइला काला-कृष्णदास।
नवद्वीपे गेल तेँह शची-आइ-पाश॥ 75॥

प्रणाम करनेके बाद सभीको महाप्रभुका संवाद-वर्णन :—

महाप्रसाद दिया ताँरे कैल नमस्कार।
दक्षिण हैते आइला प्रभु,—कहे समाचार॥ 76॥

अनुवाद—तब काला-कृष्णदास गौड़देशमें आकर सबसे पहले नवद्वीपमें शचीमाताके पास गया। शचीमाताको प्रणाम करके काला कृष्णदासने उन्हें प्रसाद दिया और साथ ही महाप्रभुके दक्षिण भारतसे आ जानेका समाचार सुनाया॥ 75–76॥

महाप्रभुका संवाद सुनकर सभीको आनन्द :—

शुनिया आनन्दित हैल शचीमातार मन।
श्रीवासादि आर यत यत भक्तगण॥ 77॥

शुनिया सबार हैल परम उल्लास।
अद्वैत-आचार्य-गृहे गेला कृष्णदास॥ 78॥

अनुवाद—यह शुभ समाचार सुनकर शचीमाताको बहुत आनन्द हुआ। श्रीवासादि तथा अन्यान्य जितने भी भक्त थे, सभीके हृदयमें इस समाचारको सुनकर उल्लास हो गया। तब कृष्णदास श्रीअद्वैताचार्यके घर गया॥ 77–78॥

श्रीअद्वैतके घर जाकर महाप्रभुका संवाद-वर्णन :—

आचार्येरे प्रसाद दिया करि' नमस्कार।
सम्यक् कहिल महाप्रभुर समाचार॥ 79॥

अनुवाद—काला कृष्णदासने श्रीअद्वैताचार्यको प्रणाम करके उन्हें प्रसाद दिया और फिर उन्होंने महाप्रभुका समस्त समाचार कह सुनाया॥ 79॥

श्रीअद्वैताचार्यका आनन्द और अन्यान्य गौड़ीय भक्तोंका हर्षित होकर अद्वैतके पास जाना :—

शुनि' आचार्य-गोसाञिर आनन्द हइल।
प्रेमावेशे बहु नृत्य-गीत-हुँकार कैल॥ 80॥

हरिदास ठाकुरेर हैल परम आनन्द।
वासुदेव दत्त, गुप्त मुरारि, सेन शिवानन्द॥ 81॥

आचार्यरत्न, आर पण्डित वक्रेश्वर।
आचार्यनिधि, आर पण्डित गदाधर॥ 82॥

श्रीराम पण्डित, आर पण्डित दामोदर।
श्रीमान् पण्डित, आर विजय, श्रीधर॥ 83॥

राघवपण्डित, आर आचार्य नन्दन।
कतेक कहिब आर यत भक्तगण॥ 84॥

शुनिया सबार हैल परम उल्लास।
सबे मेलि' गेला श्रीअद्वैतेर पाश॥ 85॥

आचार्येर सबे कैल चरण वन्दन।
आचार्य-गोँसाइ सबारे कैल आलिङ्गन॥ 86॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्य महाप्रभुके लौटनेका समाचार सुनकर बड़े आनन्दित हुए। वे प्रेमावेशमें बहुत देर तक नृत्य-गीत और हुँकार करते रहे। श्रीहरिदास ठाकुर भी समाचार सुनकर परम आनन्दित हुए।

श्रीवासुदेव दत्त, श्रीमुरारि गुप्त, श्रीशिवानन्द सेन, श्रीआचार्यरत्न, श्रीवक्रेश्वर पण्डित, श्रीआचार्यनिधि, श्रीगदाधर पण्डित, श्रीराम पण्डित, श्रीदामोदर पण्डित, श्रीमान् पण्डित, श्रीविजय, श्रीधर, श्रीराघवपण्डित और श्रीआचार्य नन्दन भी इस समाचारको सुनकर बड़े आनन्दित हुए। और कितने भक्तोंके नाम कहूँ, जिसने भी महाप्रभुके नीलाचल आनेका समाचार सुना, उसके मनमें परम उल्लास हुआ। सभी भक्त मिलकर श्रीअद्वैताचार्यके पास गये और उनके चरणकमलोंकी वन्दना की। श्रीअद्वैताचार्यने भी उन सबका आलिङ्गन किया॥ 80-86॥

अनुभाष्य— *'आचार्यनिधि'*—आदिलीला 10/14 संख्या देखें॥ 82॥

आनन्दसूचक महोत्सवका अनुष्ठान :—

दिन दुइ-तिन आचार्य महोत्सव कैल।
नीलाचल याइते आचार्य युक्ति दृढ़ कैल॥ 87॥

अनुवाद—इस शुभ समाचारको पाकर श्रीअद्वैताचार्यने दो-तीन दिन तक महोत्सव किया। तब श्रीअद्वैताचार्य आदि सबने नीलाचल जानेका दृढ़ निश्चय किया॥ 87॥

शचीमाताकी आज्ञा लेकर सभीकी पुरी-यात्रा :—

सबे मेलि' नवद्वीपे एकत्र हञा।
नीलाद्रि चलिल शचीमातार आज्ञा लञा॥ 88॥

अनुवाद—सभी भक्त नवद्वीपमें एकत्रित हुए और श्रीशचीमाताकी आज्ञा लेकर वे नीलाचलकी ओर चल दिये॥ 88॥

कुलीन ग्रामवासियोंका आगमन और मिलन :—

प्रभुर समाचार शुनि' कुलीनग्रामवासी।
सत्यराज-रामानन्द मिलिला सबे आसि'॥ 89॥

अनुवाद—महाप्रभुका नीलाचल लौटनेका समाचार सभी कुलीनग्रामवासियोंने सुना। श्रीसत्यराज, श्रीरामानन्दादि सभी कुलीनग्रामवासी भी श्रीअद्वैताचार्य आदि भक्तोंके साथ नीलाचल जानेके लिये आकर मिले॥ 89॥

खण्डवासियोंका आगमन और मिलन :—

मुकुन्द, नरहरि, रघुनन्दन खण्ड हैते।
आचार्येर ठाञि आइला नीलाचल याइते॥ 90॥

अनुवाद—समाचार पाकर श्रीमुकुन्द, श्रीनरहरि और श्रीरघुनन्दनादि भी खण्डवासी नीलाचल जानेके लिये श्रीअद्वैताचार्यके घर आ गये॥ 90॥

अनुभाष्य—आदिलीला 10/78 संख्या देखें। श्रीखण्डवासी श्रीरघुनन्दनकी वंशप्रणालीके लिये मञ्जुषा-समाहृति संख्या पाँच देखें। इनमेंसे बहुतसे भक्तोंके नामके साथ 'आनन्द'-शब्द जोड़कर विभिन्न नाम हैं। साधारणतः 'आनन्द' शब्द जोड़कर ही इनका नाम पाठ करना चाहिये॥ 90॥

श्रीपरमानन्द पुरीका नवद्वीपमें आगमन :—

सेकाले दक्षिण हैते परमानन्दपुरी।
गङ्गातीरे-तीरे आइला नदीया-नगरी॥ 91॥

शचीमाताके घरमें श्रीपरमानन्दपुरीकी भिक्षा और वास :—

आइर मन्दिरे सुखे करिला विश्राम।
आइ ताँरे भिक्षा दिला करिया सम्मान॥ 92॥

अनुवाद—उसी समय श्रीपरमानन्दपुरी भी दक्षिण भारतसे गङ्गा-तटके साथ-साथ चलते हुए नदीया-नगरीमें पहुँचे। उन्होंने शचीमाताके घरपर आकर सुखपूर्वक विश्राम किया। शचीमाताने उन्हें सम्मानपूर्वक भोजन कराया॥ 91-92॥

अनुभाष्य— *'आइर मन्दिरे'*—श्रीमायापुरमें आर्या श्रीशचीमाताके घरमें॥ 92॥

श्रीपरमानन्द पुरीकी जगन्नाथपुरी जानेकी इच्छा :—

प्रभुर आगमन तेँह ताँहाञि शुनिल।
शीघ्र नीलाचल याइते ताँर इच्छा हैल॥ 93॥

अनुवाद—वहाँ उन्होंने महाप्रभुके दक्षिण भारतसे नीलाचल लौट आनेका समाचार सुना। उनकी भी शीघ्र ही नीलाचल जानेकी इच्छा हुई॥ 93॥

अनुभाष्य—श्रीमहाप्रभु दक्षिण भारत भ्रमण करके नीलाचल लौट आये हैं,—यह संवाद अपने पूर्व परिचित कालाकृष्णदाससे श्रीमायापुरमें ही श्रीपरमानन्द पुरीको प्राप्त हुआ॥ 93॥

द्विज कमलाकान्तके साथ
श्रीपरमानन्दपुरीका पुरी जाना :—

प्रभुर एक भक्त—'द्विज कमलाकान्त' नाम।
ताँरे लञा नीलाचले करिला प्रयाण॥ 94॥

महाप्रभुके साथ श्रीपरमानन्द पुरीका मिलन :—

सत्वरे आसिया तेँह मिलिला प्रभुरे।
प्रभुर आनन्द हैल पाञा ताँहारे॥ 95॥

महाप्रभुका प्रणाम और श्रीपरमानन्दपुरीके
द्वारा आलिङ्गन :—

प्रेमावेशे कैल ताँर चरण वन्दन।
तेँह प्रेमावेशे कैल प्रभुरे आलिङ्गन॥ 96॥

अनुवाद—द्विज कमलाकान्त नामक महाप्रभुके एक भक्तको श्रीपरमानन्द पुरी साथ लेकर नीलाचलकी ओर चल दिये। शीघ्र ही नीलाचल पहुँचकर श्रीपरमानन्द पुरी महाप्रभुसे मिले। उनसे मिलकर महाप्रभुको भी बहुत आनन्द हुआ और प्रेमावेशमें आकर महाप्रभुने उनके चरणोंकी वन्दना की। श्रीपरमानन्दपुरीने भी प्रेमावेशमें महाप्रभुका आलिङ्गन किया॥ 94-96॥

महाप्रभु और पुरी, परस्परके प्रेमसे आकृष्ट होकर दोनोंकी ही नीलाचल-पुरीमें वास करनेकी इच्छाका प्रकाश :—

प्रभु कहे,—"तोमा-सङ्गे रहिते वाञ्छा हय।
मोरे कृपा करि' कर नीलाद्रि आश्रय॥"97॥

अनुवाद—महाप्रभु ने कहा,—"आपके साथ रहनेकी मेरी बहुत इच्छा है, मुझपर कृपा करनेके लिये आप नीलाचलमें ही रह जाइये॥"97॥

पुरी कहे,—"तोमा-सङ्गे रहिते वाञ्छा करि'।
गौड़ हैते चलि' आइलाङ नीलाचल-पुरी॥ 98॥

श्रीपुरीके द्वारा शचीमाताका संवाद देना और भक्तोंके
भावी-आगमनके संवादका ज्ञापन :—

दक्षिण हैते शुनि' तोमार आगमन।
शची आनन्दित, आर यत भक्तगण॥ 99॥

सबे आसितेछेन तोमारे देखिते।
ताँ-सबार विलम्ब देखि' आइलाङ त्वरिते॥"100॥

अनुवाद—श्रीपरमानन्दपुरीने कहा,—"मेरी भी आपके साथ रहनेकी बहुत इच्छा है, इसलिये गौड़देशसे चलकर नीलाचल-पुरीमें आया हूँ। दक्षिण भारतसे आपके आगमनका समाचार सुनकर शचीमाता और सभी भक्त बड़े आनन्दित हुए हैं। सभी भक्त आपसे मिलनेके लिये जगन्नाथपुरी आ रहे हैं, परन्तु उनके आनेमें कुछ विलम्ब देखकर मैं शीघ्र ही चला आया॥"98-100॥

श्रीपरमानन्दपुरीको काशीमिश्रके घरमें वास-स्थानप्राप्ति :—

काशीमिश्रेर आवासे निभृते एक घर।
प्रभु ताँरे दिल, आर सेवार किङ्कर॥ 101॥

अनुवाद—श्रीकाशीमिश्रके घरमें एक एकान्त कमरा था, जिसे महाप्रभुने श्रीपरमानन्दपुरीको प्रदान किया और उनकी सेवाके लिये एक सेवक भी नियुक्त कर दिया॥ 101॥

श्रीदामोदर स्वरूपका आगमन और उनका वैशिष्ट्य :—

आर दिने आइला स्वरूप दामोदर।
प्रभुर अत्यन्त मर्मी, रसेर सागर॥ 102॥

उनके पूर्वाश्रमका परिचय :—

'पुरुषोत्तम आचार्य' ताँर नाम पूर्वाश्रमे।
नवद्वीपे छिला तेँह प्रभुर चरणे॥ 103॥

प्रभुर संन्यास देखि' उन्मत्त हञा।
संन्यास ग्रहण कैल वाराणसी गिया॥ 104॥

अनुवाद—अगले दिन श्रीस्वरूप दामोदर भी श्रीजगन्नाथ पुरीमें आ गये। वे महाप्रभुके अन्तरङ्ग भक्त और रसके सागर हैं। उनके पूर्वाश्रमका नाम 'पुरुषोत्तम

आचार्य' था और वे नवद्वीपमें महाप्रभुकी शरणमें ही रहते थे। जब महाप्रभुने संन्यास ग्रहण किया, तो वे भी संन्यास लेनेके लिये उन्मत्त हो गये। तब उन्होंने भी वाराणसीमें जाकर संन्यास ग्रहण किया॥ 102-104॥

अनुभाष्य— *'स्वरूप दामोदर'*—वैदिक दशनामी संन्यासियोंमें श्रीशङ्कराचार्यके द्वारा प्रवर्तित जो विधि देखी जाती है, वह इस प्रकार है। 'तीर्थ' और 'आश्रम', इन दो उपाधियोंवाले एक-दण्डी संन्यासी उनसे संन्यास ग्रहणवालेको पहले नैष्ठिक-ब्रह्मचारियोंके विधानानुसार 'ब्रह्मचारी' नाम प्रदान करते हैं। नवद्वीपवासी श्रीपुरुषोत्तम आचार्यने संन्याससे पहले 'ब्रह्मचारी'-नाम 'दामोदर-स्वरूप' प्राप्त किया। संन्यासका योगपट्ट प्राप्त होनेपर नैष्ठिक-ब्रह्मचारी 'स्वरूप' उपाधिके बदले 'तीर्थ' संन्यास-उपाधि प्राप्त होती है॥ 102॥

संन्यास गुरुका आदेश :—

'चैतन्यानन्द' गुरु ताँर आज्ञा दिलेन ताँरे।
"वेदान्त पड़िया पड़ाओ समस्त लोकेरे॥"105॥

अनुवाद—श्रीस्वरूप दामोदरके गुरु 'श्रीचैतन्यानन्द' थे। उन्होंने श्रीस्वरूप दामोदरको आज्ञा दी,—"तुम वेदान्त पढ़ो और सभी लोगोंको भी पढ़ाओ॥"105॥

अनुभाष्य— *'चैतन्यानन्द'*—'श्रीचैतन्यानन्द भारती'—श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-नाटककी टिप्पणी देखें॥ 105॥

श्रीदामोदर-स्वरूपका चरित्र :—

परम विरक्त तेँह परम पण्डित।
कायमने आश्रियाछे श्रीकृष्ण-चरित॥ 106॥

श्रीकृष्ण भजनके लिये ही उनके द्वारा संन्यास ग्रहण :—

'निश्चिन्ते कृष्ण भजिब' एइ त' कारणे।
उन्मादे करिल तेँह संन्यास ग्रहणे॥ 107॥

'स्वरूप'-नामकरण :—

संन्यास करिला शिखा-सूत्रत्याग-रूप।
योगपट्ट ना निल, नाम हैल 'स्वरूप'॥ 108॥

अनुवाद—श्रीस्वरूप दामोदर परम विरक्त तथा परम पण्डित भी थे। उन्होंने तन और मनसे श्रीकृष्णका ही आश्रय ग्रहण किया था। 'निश्चिन्त होकर श्रीकृष्णका भजन करूँगा'—इसी कारणसे उन्होंने उन्मादित होकर संन्यास ग्रहण किया था। उन्होंने संन्यास ग्रहण करके शिखा और यज्ञोपवीतका तो त्याग किया, किन्तु योगपट्ट अर्थात् गेरूए वस्त्रको स्वीकार नहीं किया। इसलिये उन्होंने संन्यासका नाम स्वीकार न करके अपने ब्रह्मचारी नाम 'स्वरूप' को ही धारण किये रखा॥ 106-108॥

अमृतप्रवाह भाष्य—पुरुषोत्तमाचार्यने महाप्रभुके संन्यासको देखकर 'शिखासूत्रत्यागरूप संन्यास' ग्रहण किया। उनका संन्यास-नाम 'स्वरूप-दामोदर' हुआ। योगपट्ट लेनेकी जो प्रक्रिया है, उसे उन्होंने स्वीकार नहीं किया, क्योंकि उन्होंने संन्यास किसी प्रकारके आश्रमके अहङ्कारकी वृद्धि करनेके लिये नहीं लिया था। 'निश्चिन्त होकर श्रीकृष्ण-भजन करूँगा'—केवल इसी भावनासे संन्यासको स्वीकार किया था॥ 108॥

अनुभाष्य—श्रीकवि कर्णपूरने चैतन्यचन्द्रोदय-नाटकमें लिखा है—

"समस्तहानाय तुरीयमाश्रमं जग्राह वैराग्यवशेन केवलम्।
श्रीकृष्णपादाब्ज-पराग-रागतस्तुच्छीचकारैणमहो वहन्नपि॥"

अर्थात् "केवल वैराग्यवशतः समस्त त्यागके उद्देश्यसे उन्होंने चतुर्थ आश्रम (संन्यास) ग्रहण किया। किन्तु श्रीकृष्ण-चरणकमलोंके परागमें अनुरागवशतः यह (संन्यास) वेश धारण करनेपर भी उसे तुच्छ ही माना।"

अष्टश्राद्ध, विरजा-होम, शिखा-मण्डन, सूत्रत्याग आदि संन्यासके कृत्य समाप्त करके गुरु-आह्वान, योगपट्ट, संन्यास-नाम और दण्डादिको ग्रहण करनेकी अपेक्षा नहीं की, इसलिये उनका नैष्ठिक-ब्रह्मचर्यसूचक 'दामोदर स्वरूप' नाम ही रह गया॥ 106-108॥

पुरीमें आगमन :—

गुरु-ठाञि आज्ञा मागि' आइला नीलाचले।
रात्रिदिने कृष्णप्रेम-आनन्द-विह्वले॥ 109॥

स्वरूप दामोदरका आचरण, उनका निर्जनमें वास :—

पाण्डित्येर अवधि, वाक्य नाहि कारो सने।
निर्जने रहये, लोक सब नाहि जाने॥ 110॥

महाप्रभुके द्वितीय विग्रह :—

कृष्णरस-तत्त्ववेत्ता, देह—प्रेमरूप।
साक्षात् महाप्रभुर द्वितीय स्वरूप॥ 111॥

अनुवाद—अपने संन्यासगुरुसे आज्ञा लेकर वे नीलाचल चले आये और रात-दिन श्रीकृष्णप्रेमके आनन्दमें विह्वल रहने लगे। श्रीस्वरूप दामोदर पाण्डित्यकी चरम सीमा थे, परन्तु वे किसीसे कोई बातचीत नहीं करते थे। वे एकान्त स्थानपर रहते थे और लोगोंको पता भी नहीं होता था कि वे कहाँ हैं। श्रीस्वरूप दामोदर श्रीकृष्णप्रेमके मूर्त्तरूप थे और श्रीकृष्णरस-तत्त्वके परम ज्ञाता थे। वे महाप्रभुके साक्षात् द्वितीय स्वरूप थे॥ 109–111॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'कृष्णरस-तत्त्ववेत्ता'*—उनकी देह साक्षात् प्रेमरूप थी, उन्हें देखनेसे ही प्रतीत था, जैसे महाप्रभुका द्वितीय स्वरूप उदित हुआ है॥ 111॥

दामोदर-स्वरूप ही भक्तिरस-सिद्धान्तके
एकमात्र परीक्षक :—

ग्रन्थ, श्लोक, गीत केह प्रभु-पाशे आने।
स्वरूप परीक्षा कैले, प्रभु ताहा शुने॥ 112॥

महाप्रभुका अप्रिय विषय :—

भक्तिसिद्धान्त-विरुद्ध, आर रसाभास।
शुनिले ना हय प्रभुर चित्तेर उल्लास॥ 113॥

अनुवाद—कोई भी व्यक्ति यदि किसी भी प्रकारका ग्रन्थ, श्लोक अथवा गीत लिखकर महाप्रभुके पास सुनानेके लिये लाता, तो पहले श्रीस्वरूप दामोदर उसकी परीक्षा करते। यदि वह दोषरहित होता, तब उसे महाप्रभुको सुनानेकी अनुमति देते। भक्तिसिद्धान्त-विरुद्ध या रसाभास-दोषयुक्त श्लोक-गीतादि सुनकर महाप्रभुके चित्तमें प्रसन्नता नहीं होती थी॥ 112–113॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'भक्तिसिद्धान्त-विरुद्ध'*—अचिन्त्य-भेदाभेद ही भक्ति सिद्धान्त है, इसके विरुद्ध जो कुछ भी है, वही 'भक्तिसिद्धान्त विरुद्ध' है। 'रसाभास' अर्थात् रस जैसा प्रतीत होता है, किन्तु रस नहीं है। इन दो प्रकारकी 'अभक्ति'से वैष्णवोंका दूर रहना कर्त्तव्य है। क्योंकि मायावादी भक्तिसिद्धान्त-विरुद्ध-वाक्य सुनते-सुनते जीवका पतन होता है। रसाभासकी विवेचना करते-करते जीव 'प्राकृत-सहजिया', 'बाउल' और 'जड़रसासक्त' हो जाता है। इन दोषोंसे जो दूषित हैं, उनके सङ्गका निषेध करनेके लिये श्रीमहाप्रभुने भक्तिसिद्धान्तविरुद्ध और रसाभासको दूर रखनेकी प्रथाका निर्देश किया है॥ 113॥

दामोदर-स्वरूपकी परीक्षामें उत्तीर्ण
विषयोंमें ही महाप्रभुकी प्रसन्नता :—

अतएव स्वरूप गोसाञि करे परीक्षण।
शुद्ध हय यदि, प्रभुरे करा'न श्रवण॥ 114॥

अनुवाद—इसलिये श्रीस्वरूप गोस्वामी पहले परीक्षण करते और यदि वह शुद्ध होता, तभी उसे महाप्रभुको श्रवण कराते॥ 114॥

अनुभाष्य—जिनसे श्रीकृष्ण भजनमें बाधा पड़ती है, वे सब सिद्धान्त ही भक्तिविरुद्ध हैं, इसलिये अशुद्ध हैं। शुद्धभक्त वैसे सिद्धान्तोंका अनुमोदन नहीं करते। और वे ऐसे रसाभास-परायण भक्तिविरुद्ध सिद्धान्तवाले लोगोंको 'शुद्धभक्त'के रूपमें स्वीकार नहीं कर सकते। अशुद्ध सिद्धान्त अथवा रसाभाससे पुष्ट होकर बहुतसे कुमत जगत्में चल रहे हैं। साधारण व्यक्तियोंसे सम्मान पानेके लिये अनेक लोग ऐसे भक्तिविरोधी असत् सिद्धान्तोंका आदर करते हैं और साथ ही अपनेको श्रीगौरसुन्दरका भक्त भी कहते हैं। परन्तु श्रीदामोदर-स्वरूप गोस्वामी उन्हें 'गौड़ीय-वैष्णव'के रूपमें स्वीकार नहीं करते थे और श्रीमहाप्रभुके निकट नहीं जाने देते थे॥ 114॥

चण्डीदास, विद्यापति और जयदेवके पद गाकर
महाप्रभुकी प्रसन्नताका वर्द्धन :—

विद्यापति, चण्डीदास, श्रीगीतगोविन्द।
एइ तिन गीते करा'न प्रभुर आनन्द॥ 115॥

अनुवाद—श्रीविद्यापति और श्रीचण्डीदासके पद एवं श्रीजयदेव गोस्वामीके द्वारा रचित श्रीगीतगोविन्दके श्लोकों-गीतोंका गान करके श्रीस्वरूप दामोदर महाप्रभुको आनन्द प्रदान करते थे॥ 115॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'विद्यापति'*—मिथिला प्रान्तके प्राचीन वैष्णव कवि। *'चण्डीदास'*—(वीरभूम-जिलामें साकुल्लिपुर थानेके अन्तर्गत) नान्नुर-ग्रामके प्राचीन बङ्गाली-वैष्णव-कवि। *'श्रीगीतगोविन्द'*—श्रीजयदेवके द्वारा रचित कृष्णरसाश्रित संस्कृत गीत समूहसे परिपूर्ण सुप्रसिद्ध काव्य॥ 115॥

दामोदर-स्वरूपके गुण :—

सङ्गीत—गन्धर्व-सम, शास्त्रे—बृहस्पति।
दामोदर-सम आर नाहि महामति॥ 116॥

अनुवाद—श्रीस्वरूप दामोदर सङ्गीतमें गन्धर्वके समान तथा शास्त्रोंके ज्ञानमें देवताओंके गुरु बृहस्पतिके समान थे। श्रीस्वरूप दामोदरके समान महाबुद्धिमान और कोई नहीं था॥ 116॥

अमृतप्रवाह भाष्य—स्वरूप गोस्वामी गीत-शास्त्र और साधारण-शास्त्रमें विशेष निपुण थे। श्रीमन्महाप्रभुने उन्हें गानविद्यामें निपुण देखकर पहले ही उन्हें 'दामोदर' नाम दिया था। 'दामोदर' नामके साथ संन्यास गुरुके द्वारा दिया 'स्वरूप' जुड़कर उनका नाम 'दामोदर-स्वरूप' हुआ था। 'संगीतदामोदर' नामक संगीत-शास्त्रका एक ग्रन्थ भी उन्होंने लिखा है॥ 116॥

सभी भक्तोंके ही प्रिय पात्र :—

अद्वैत-नित्यानन्देर परम प्रियतम।
श्रीवासादि भक्तगणेर हय प्राण-सम॥ 117॥

स्वरूप दामोदरके महाप्रभुकी दयाके वैशिष्ट्य वर्णनकारी प्रणाम श्लोक :—

सेइ दामोदर आसि' दण्डवत् हैला।
चरणे धरिया श्लोक पड़िते लागिला॥ 118॥

अनुवाद—श्रीस्वरूप दामोदर श्रीअद्वैताचार्य और श्रीनित्यानन्द प्रभुके परम प्रियतम तथा श्रीवासादि भक्तोंके प्राणोंके समान थे। वे श्रीस्वरूप दामोदरने महाप्रभुके चरणकमलोंमें दण्डवत् प्रणाम किया और उनके श्रीचरणोंको पकड़कर निम्नलिखित श्लोक पढ़ने लगे॥ 117-118॥

श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-नाटक (8.14) श्लोक—

हेलोद्धूलित-खेदया विशदया प्रोन्मीलदामोदया
शाम्यच्छास्त्रविवादया रसदया चित्तार्पितोन्मादया।
शश्वद्भक्तिविनोदया स-मदया माधुर्यमर्यादया
श्रीचैतन्यदयानिधे, तव दया भूयादमन्दोदया॥ 119॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 119॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे दयानिधे श्रीचैतन्य! जो अनायास ही समस्त खेद दूर करती है, जिसमें सम्पूर्ण निर्मलता है, जिसमें परमानन्द (अन्य सभी विषयोंको आच्छादित करके) प्रकाशित होता है, जिसके उदित होनेसे शास्त्र विवाद समाप्त हो जाते हैं, जो रसकी वर्षा करके चित्तको उन्मत्त बना देती है, जिसकी भक्तिविनोदनक्रिया सर्वदा शमता (स्थिरबुद्धि) दान करती है, माधुर्य मर्यादाके द्वारा आपकी अति विस्तृत वह शुभ प्रदान करनेवाली दया मेरे प्रति उदित हो॥ 119॥

अनुभाष्य—

हे दयानिधे श्रीचैतन्य, हेलोद्धूलितखेदया (हेलया अवहेलया उद्धूलितो दूरीकृतः खेदो मनस्तापो यया तया) विशदया (निर्मलतया सर्वप्रकाशिकया) प्रोन्मीलदामोदया (प्रकृष्टेन उन्मीलन् प्रकाशमानः आमोदः परमानन्दो यस्यां सा तया) शाम्यच्छास्त्रविवादया (शाम्यन् शास्त्राणां विवादः वादप्रतिवादो यस्यां सा तया) रसदया (मधुरादि-रसं ददातीति रसदा तया) चित्तार्पितोन्मादया (चित्ते अर्पितः उन्मादः देहादौ अनभिनिवेशः, यद्वा, प्रौढ़ानन्दापद्विरहादिजः हृद्भ्रमः, दिव्योन्मादः इत्यर्थः, यया सा तया) शश्वद्भक्तिविनोदया (शश्वत् निरन्तरं भक्तिं विनोदयति स्वभावेन प्रेरयति या तया) समदया (मदः अनङ्गविक्रियाभरजः विवेकहरः उल्लासः, तेन सहितया, 'शमदया' इति पाठे तु—कृष्णेतर-तृष्णया रहितया) माधुर्यमर्यादया (माधुर्याणां मर्यादा सीमा यस्यां सा तया—विशेषणे तृतीया) तव अमन्दोदया (मन्दः कुण्ठाः तद्रहितः अमन्दः निःश्रेयसं, तस्य उदयो यस्यां सा) दया [मयि] भूयात् (भवतु)।

श्लोक-भावानुवाद—हे दयानिधे श्रीचैतन्य! जो अनायास ही समस्त खेद दूर करती है, जिसमें सम्पूर्ण निर्मलता है, जिसमें परमानन्द (अन्य सभी विषयोंको आच्छादित करके) प्रकाशित होता है, जिसके उदित होनेसे शास्त्रोंके वाद-प्रतिवाद समाप्त हो जाते हैं, जो (मधुरादि) रसकी वर्षा करके देहमें अभिनिवेशको दूर करके चित्तको (दिव्योन्माद अवस्था तक) उन्मत्त बना देती है, जिसकी भक्तिविनोदनक्रिया सर्वदा (समदया पाठसे) प्रणयोन्मत्त अथवा (शमदया पाठसे) श्रीकृष्णेतर-तृष्णा-रहित करती है, माधुर्य मर्यादाके द्वारा आपकी अति विस्तृत वह शुभ प्रदान करनेवाली दया मेरे प्रति उदित हो।

औदार्यमय प्रेम विग्रह भगवान् श्रीचैतन्यचन्द्र तीन प्रकारसे अपनी करुणाको सुकृतिसम्पन्न जीवोंमें वितरण करते हैं। जीव सांसारिक अभावोंसे दुःखी होकर अनेक उपायोंके द्वारा क्लेश दूर करनेका प्रयास करनेपर भी सफल नहीं होते। भगवान्की दया जीवके प्रयासके द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकती। भगवद्-कृपासे जीवके हृदयमें श्रीकृष्ण-चरणकमलकी गन्धका विकास होता है, उससे चित्तसे खेदरूपी धूलि अनायास ही उड़ जाती है, इसलिये हृदय निर्मल हो जाता है। तब हृदयमें श्रीकृष्णसेवाजनित परमानन्द प्रकाशित होता है। शास्त्रोंकी विभिन्न प्रकारकी व्याख्याओंसे विवाद चित्तमें उदित होकर अनेक वाद-प्रतिवाद करते हैं। भगवद्-कृपा प्राप्त करनेपर ही कृपा प्राप्त करनेवाला हृदय भगवद्-रसमें उन्मत्त हो जाता है। दूसरी ओर, श्रीकृष्णरस प्रदान करनेवाली मत्तता भी भगवद्-कृपाके बलसे ही उदित होती है, इसलिये शास्त्र-विवाद शान्त हो जाते हैं। माधुर्य-मर्यादा जीवको निरन्तर श्रीकृष्ण-चरणोंमें अवस्थित कराती है और सौभाग्यवान् जीव उस समयमें केवल प्रेमभक्तिसे ही प्रीति प्राप्त करता हैं। श्रीकृष्णकृपा—निर्मला, रसदा और स-मदा है।

श्रीकृष्णकृपाके कारण हृदयके निर्मल होनेपर अभाव-जनित कोई खेदरूपी मल नहीं रहता। श्रीकृष्ण कृपावशतः रस प्राप्त करनेपर शास्त्र-विवाद शान्त होनेसे भक्तिसिद्धान्त सुदृढ़ होता है, इसलिये चित्त श्रीकृष्णप्रेममें उन्मत्त हो जाता है। श्रीकृष्णकृपाके कारण शमता (भगवन् निष्ठा बुद्धि) प्राप्त करके माधुर्य-गौरवमें निरन्तर भक्तिमें विनोदकी प्राप्ति होती है।

जीव—पहले ईश्वरविमुख होता है और विषयोंमें फंसकर खिन्न रहता है। उसके बाद ईश्वरके अनुसन्धानमें लगता है और अन्तमें भगवन्की सेवामें रत होता है। भगवान्की दयासे पहले उसकी अनर्थ-निवृत्ति, उससे उत्पन्न हृदयकी निर्मलता एवं हृदयकी निर्मलताके परिणामसे श्रीकृष्ण-आमोदका विकास होता है। भगवान्की दयासे तब भक्तिसिद्धान्तकी प्राप्ति तथा फलस्वरूप रसोत्पत्तिसे प्रेमोन्मत्तताकी प्राप्ति होती है। भगवान्की दयासे अन्तमें भक्तिमें अनुरक्ति तथा उसके फलस्वरूप सर्वत्र भगवद्-लीलाकी स्फूर्त्तिकी प्राप्ति एवं स्फूर्त्तिसे माधुर्य-पराकाष्ठाकी प्राप्ति होती है। श्रीकृष्ण-कृपासे तृष्णासे मुक्त होकर श्रीकृष्णकीर्तन-सेवा (प्रचार) करते हुए भी जीवका श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्यत्र विराग हो सकता है अथवा उसे मुक्तिकी कामना हो सकती है। तब जीवके विषयी होनेपर भी श्रीकृष्णकृपाके बलसे श्रवण-मनोभिराम (कानों और मनको आनन्द देनेवाले) हरिगुणानुवादके फलसे उसका विषय-भोगका त्याग हो सकता है अथवा भवरोगकी औषधि प्राप्त करके मुक्तिकी कामनाका त्याग हो सकता है। तब श्रीकृष्णकी अनुभूति प्राप्तकर अन्तमें जीव शुद्धभक्तिमें अवस्थित हो सकता है। इसलिये सब समय भगवान्की दया ही आश्रय करने योग्य है॥ 119॥

परस्परके स्पर्शसे महाप्रभु और स्वरूप दामोदरका प्रेम :—

उठाञा महाप्रभु कैल आलिङ्गन।
दुइजने प्रेमावेशे हैल अचेतन॥ 120॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीस्वरूप दामोदरको उठाकर उनका आलिङ्गन किया और दोनों ही प्रेमावेशमें अचेतन हो गये॥ 120॥

स्थिर होकर गाढ़-प्रीतिसे भरकर महाप्रभुके द्वारा स्वरूप दामोदरका अभिनन्दन :—

कतक्षणे दुइ जने स्थिर यबे हैला।
तबे महाप्रभु ताँरे कहिते लागिला॥ 121॥

"तुमि ये आसिबे, आजि स्वप्नेते देखिल।
भाल हैल, अन्ध येन दुइ नेत्र पाइल॥" 122॥

अनुवाद—कुछ देरके बाद जब दोनोंने धैर्य धारण किया, तब महाप्रभु श्रीस्वरूप दामोदरसे कहने लगे,—"मैंने स्वप्नमें देखा था कि आप आज आयेंगे। बहुत अच्छा हुआ, आपके आनेसे ऐसा आनन्द हो रहा है, मानो अन्धेको दो नेत्र मिल गये हों॥" 121-122॥

स्वरूप दामोदरकी दीनतापूर्ण उक्ति :—

स्वरूप कहे,—"प्रभु, मोर क्षम' अपराध।
तोमा छाड़ि' अन्यत्र गेनु, करिनु प्रमाद॥ 123॥

तोमार चरणे मोर नाहि प्रेम-लेश।
तोमार छाड़ि' पापी मुञि गेनु अन्य-देश॥ 124॥

मुञि तोमा छाड़िल, तुमि मोरे ना छाड़िला।
कृपा-पाश गलाय बान्धि' चरणे आनिला॥ 125॥

अनुवाद—श्रीस्वरूप दामोदरने कहा,—"हे प्रभो! आप मेरे अपराधको क्षमा कीजिये। मैं प्रमादवशतः आपको छोड़कर कहीं और चला गया था। आपके चरणकमलोंमें मेरा लेशमात्र भी प्रेम नहीं है, तभी तो मेरे जैसा पापी व्यक्ति आपको छोड़कर किसी और स्थानपर चला गया था। मैंने आपको छोड़ा था, परन्तु आपने मुझे नहीं छोड़ा। अपने कृपारूपी पाशको मेरे गलेमें बाँधकर आप मुझे अपने श्रीचरणकमलोंके आश्रयमें ले आये हैं॥" 123-125॥

निताइको प्रणाम और निताइके द्वारा आलिङ्गन :—

तबे स्वरूप कैल निताइर चरण-वन्दन।
नित्यानन्दप्रभु कैल प्रेम-आलिङ्गन॥ 126॥

अन्यान्य सभी भक्तोंके साथ मिलन :—

जगदानन्द, मुकुन्द, शङ्कर, सार्वभौम।
सबा-सङ्गे यथायोग्य करिल मिलन॥ 127॥

श्रीपरमानन्द पुरीकी वन्दना :—

परमानन्द पुरीर कैल चरण वन्दन।
पुरी-गोसाञि ताँरे कैल प्रेम-आलिङ्गन॥ 128॥

अनुवाद—तब श्रीस्वरूप दामोदरने श्रीनित्यानन्द प्रभुके चरणकमलोंकी वन्दना की और श्रीनित्यानन्द प्रभुने उनका प्रेमपूर्वक आलिङ्गन किया। श्रीस्वरूप दामोदर श्रीजगदानन्द पण्डित, श्रीमुकुन्द, श्रीशङ्कर और श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यसे यथोचित रूपसे मिले। श्रीस्वरूप दामोदरने श्रीपरमानन्द पुरीके चरणोंकी वन्दना की और पुरी गोस्वामीने प्रेमपूर्वक उनका आलिङ्गन किया॥ 126-128॥

योग्य वासस्थान और एक सेवककी प्राप्ति :—

महाप्रभु दिल ताँरे निभृते वासाघर।
जलादि-परिचर्या लागि' दिल एक किङ्कर॥ 129॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीस्वरूप दामोदरको एकान्तमें रहनेका कमरा दिया और जलादि सभी आवश्यकताओंके लिये एक सेवकको भी नियुक्त कर दिया॥ 129॥

भक्तोंसे घिरे महाप्रभु :—

आर दिन सार्वभौम-आदि भक्त-सङ्गे।
बसिया आछेन महाप्रभु कृष्णकथा-रङ्गे॥ 130॥

श्रीगोविन्दका आगमन और अपना परिचय देना :—

हेनकाले गोविन्देर हैल आगमन।
दण्डवत् करि' कहे विनय-वचन॥ 131॥

"ईश्वरपुरीर भृत्य,—'गोविन्द' मोर नाम।
पुरी-गोसाञिर आज्ञाय आइनु तोमार स्थान॥ 132॥

सिद्धिप्राप्तिकाले गोसाञि आज्ञा कैल मोरे।
कृष्णचैतन्य-निकटे याइ' सेविह ताँहारे॥ 133॥

अपने गुरुभ्राता श्रीकाशीश्वरकी बादमें
आनेकी सम्भावनाको बताना :—

काशीश्वर आसिबेन सब तीर्थ देखिया।
प्रभु-आज्ञाय मुञि आइनु तोमा-पदे धाञा॥"134॥

अनुवाद—अगले दिन श्रीसार्वभौमादि भक्तोंके साथ महाप्रभु जब बैठकर श्रीकृष्णकथाका आस्वादन कर रहे थे, तभी श्रीगोविन्द वहाँ आ गये। उन्होंने महाप्रभुको दण्डवत् प्रणाम करके विनयपूर्वक कहा,—"मैं श्रीईश्वरपुरीका दास हूँ, मेरा नाम 'गोविन्द' है। मैं उनकी आज्ञासे आपके पास आया हूँ। अप्रकट होनेके समय उन्होंने मुझे आदेश दिया था कि मैं आपके पास आकर आपकी सेवा करूँ। श्रीकाशीश्वर भी तीर्थोंका दर्शन करके यहाँ आयेंगे। मैं तो प्रभुके आदेशानुसार सीधा आपके चरणोंमें तुरन्त उपस्थित हुआ हूँ॥"130-134॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'काशीश्वर और गोविन्द'*,—ये दोनों ही श्रीईश्वरपुरीके साथ रहते थे। श्रीकाशीश्वर अन्यान्य तीर्थ भ्रमण करके महाप्रभुके पास बादमें आयेंगे। श्रीगोविन्दने श्रीईश्वरपुरीकी सिद्धि-प्राप्ति (अप्रकट होने)के तुरन्त बाद ही महाप्रभुके चरणोंका आश्रय किया था॥134॥

महाप्रभुकी दीनता :—

गोसाञि कहिल,—"पुरीश्वर वात्सल्य करे मोरे।
कृपा करि' मोर ठाञि पाठाइला तोमारे॥"135॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"श्रीईश्वरपुरी पादका मेरे प्रति वात्सल्य स्नेह था, इसलिये उन्होंने कृपा करके आपको मेरे पास भेजा है॥"135॥

गोविन्दके सम्बन्धमें श्रीसार्वभौमका प्रश्न :—

एत शुनि' सार्वभौम प्रभुरे पुछिल।
"पुरी-गोसाञि शूद्र-सेवक काँहे त' राखिल॥"136॥

अनुवाद—यह सुनकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने महाप्रभुसे पूछा,—"श्रीईश्वरपुरीने शूद्रको सेवक क्यों रखा था?॥"136॥

महाप्रभुका उचित उत्तर-दान—ईश्वर या शक्तिशालीका
आचरण; स्नेह-कृपा और मर्यादाका वैशिष्ट्य :—

प्रभु कहे,—"ईश्वर हय परम स्वतन्त्र।
ईश्वरेर कृपा नहे वेद-परतन्त्र॥137॥

ईश्वरेर कृपा जाति-कुल नाहि माने।
विदुरेर घरे कृष्ण करिला भोजने॥138॥

स्नेह-सेवापेक्षा मात्र श्रीकृष्ण-कृपार।
स्नेहवश हञा करे स्वतन्त्र आचार॥139॥

मर्यादा हैते कोटि सुख स्नेह-आचरणे।
परमानन्द हय यार नाम-श्रवणे॥"140॥

अनुवाद—महाप्रभुने उत्तर दिया,—"ईश्वर परम स्वतन्त्र हैं, इसलिये उनकी कृपा भी वेदोंके अधीन नहीं है। ईश्वरकी कृपामें जाति-कुलादिका भेद-भाव नहीं है। जैसे विदुरके शूद्र होनेपर उनके घरमें श्रीकृष्णने भोजन किया था। श्रीकृष्णकी कृपा स्नेहपूर्वक की गयी सेवाकी ही अपेक्षा करती है। और उसी स्नेहके वशीभूत होकर श्रीकृष्ण स्वतन्त्र आचरण करते हैं। मर्यादापूर्ण आचरणकी अपेक्षा स्नेहपूर्ण आचरणमें करोड़ो गुणा अधिक आनन्द होता है। भक्तको भगवान्के नाम सुनने मात्रसे ही परमानन्दकी प्राप्ति होती है॥"137-140॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीकृष्णकृपा और किसीकी अपेक्षा नहीं रखती, केवल स्नेहसेवाकी ही अपेक्षा करती है। सेवा दो प्रकारकी है—स्नेह-सेवा ओर मर्यादा-सेवा। जहाँ स्नेह-सेवा होती है, वहींपर ही केवल श्रीकृष्णकृपा होती है। जहाँ मर्यादा-सेवा होती है, वहाँ श्रीकृष्णकृपा सहज नहीं है; कृपामें जाति-कुलका विचार नहीं रहता॥139॥

अनुभाष्य—*'श्रीईश्वर पुरी'*—श्रीमाध्व-वैष्णव-संन्यासी थे। उन्होंने शूद्रवंशमें जन्मे दीक्षित-ब्राह्मण गोविन्दको 'सेवक'-रूपमें किस प्रकार अपना शिष्य बनाया था?—यही श्रीसार्वभौमके प्रश्नका कारण था। स्मृतिके मतानुसार—ब्राह्मणके अतिरिक्त अन्य वर्णके किसी व्यक्तिको शिष्य

अथवा सेवकरूपमें ग्रहण करनेपर ब्राह्मण-गुरुका पतन हो जाता है। श्रीईश्वरपुरीने सदाचार सम्पन्न होकर भी स्मृतिमें निर्धारित आदेशका किस प्रकार उल्लङ्घन किया? उसके उत्तरमें महाप्रभुने कहा,—"मेरे गुरुदेव—'ईश्वर' अर्थात् जगत्के प्रभु हैं, इसलिये वे साधारण जीवोंके नियामक स्मृतिशास्त्रके अधीन नहीं है। ईश्वर अर्थात् समर्थवान् गुरुदेवकी कृपा कभी भी वैदिक-शासनके अधीन नहीं है।"

परमेश्वर जगद्गुरु श्रीकृष्णने जाति-कुलके लौकिक विचारको छोड़कर विदुरके घरमें भोजन किया था। मेरे प्रभु श्रीईश्वरपुरीने कृपा करके गोविन्दके शौक्र-जन्मादिका विचार नहीं किया, क्योंकि वे जानते हैं कि वैष्णव-दीक्षाके द्वारा वह स्वतः ही ब्राह्मण हो जायेगा। इसलिये उन्होंने गोविन्दको दीक्षा प्रदान करके 'सेवक'के रूपमें ग्रहण किया था॥ 137-138॥

श्रीगोविन्दका आलिङ्गन, श्रीगोविन्दके द्वारा सब भक्तोंके चरणोंकी वन्दना :—

एत बलि' गोविन्देरे कैल आलिङ्गन।
गोविन्द करिल सबार चरण वन्दन॥ 141॥

अनुवाद—इतना कहकर महाप्रभुने श्रीगोविन्दका आलिङ्गन किया। श्रीगोविन्दने महाप्रभु और सभी भक्तोंके चरणोंकी वन्दना की॥ 141॥

महाप्रभुकी भट्टाचार्यसे जिज्ञासा—गुरुसेवकसे सेवा ग्रहण करना उचित है या अनुचित :—

प्रभु कहे,—"भट्टाचार्य, करह विचार।
गुरुर किङ्कर हय मान्य आपनार॥ 142॥
ताँहारे आपन-सेवा कराइते ना युयाय।
गुरु-आज्ञा दियाछेन, कि करि उपाय॥"143॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यसे कहा,—"भट्टाचार्य! कृपया इस बातपर विचार कीजिये कि गुरुदेवका सेवक (गोविन्द) मेरे लिये पूजनीय है। इससे अपनी व्यक्तिगत सेवा कराना उचित नहीं है, किन्तु श्रीगुरुदेवने ऐसा आदेश दिया है। तब ऐसी परिस्थितिमें मुझे क्या करना चाहिये?॥"142-143॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'गुरुर किङ्कर'*—गुरुका सेवक सहज ही सम्माननीय, उसे अपनी सेवा करने देना उचित नहीं है॥ 142-143॥

अनुभाष्य—गुरुका प्रत्येक सेवक ही अन्यान्य प्रत्येक शिष्यके लिये ही सम्माननीय है। उसे अपनी सेवामें नियुक्त करना उचित नहीं होनेपर भी गुरुके आदेशको पालन करनेके लिये उसे स्वीकार किस प्रकारसे किया जाय, इस विषयमें विचार करो॥ 142-143॥

श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यका उत्तर,—
गुरु-आज्ञा अवश्य ही पालनीय-

भट्ट कहे,—"गुरुर आज्ञा हय बलवान्।
गुरु-आज्ञा ना लङ्घिये, शास्त्र—प्रमाण॥"144॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने कहा,—"गुरुकी आज्ञा अत्यन्त बलवान् होती है। गुरुकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये, शास्त्र ही इस विषयमें प्रमाण हैं॥"144॥

गुरु-आज्ञा पालनका पौराणिक दृष्टान्त :—
रघुवंश (14/46)—

स शुश्रुवान्मातरि भार्गवेण
पितुर्नियोगात् प्रहृतं द्विषद्वत्।
प्रत्यगृहीदग्रजशासनं तदाज्ञा
गुरुणां ह्यविचारणीया॥ 145॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 145॥

अमृतप्रवाह भाष्य—पिताकी आज्ञासे परशुरामजीने अपनी माता (रेणुका)का शत्रुकी भाँति वध किया था,—यह सुनकर लक्ष्मणजीने ज्येष्ठ भ्राता श्रीरामचन्द्रकी आज्ञाको ग्रहण किया था; क्योंकि गुरुवर्गोंकी आज्ञा—अविचारणीया होती है॥ 145॥

अनुभाष्य—

भार्गवेण (जामदग्न्येन) पितुर्नियोगात् (जामदग्न्यादेशेन) मातरि

(रेणुकायां) द्विषद्वत् (शत्रुवत्) प्रहृतं (निहतम्) इति सः (लक्ष्मणः) शुश्रुवान् (श्रुतवान्); तत् अग्रजशासनं (सीता-वनवासरूपं स्वीयाग्रजस्य श्रीरामचन्द्रस्य आदेशं) प्रत्यग्रहीत् (प्रतिपालितवान्); हि (यतः) गुरुणां आज्ञा अविचारणीया (उचितानुचितादि-विचारार्नहा)।

श्लोक-भावानुवाद—परशुरामजीने अपने पिता जमदग्निके आदेशसे अपनी माता रेणुकाका शत्रुवत् वध किया था, यह सुनकर सीताजीको वनमें छोड़कर आनेकी अपने बड़े भ्राता श्रीरामचन्द्रकी आज्ञाका लक्ष्मणजीने पालन किया था, क्योंकि गुरुकी आज्ञा अविचारणीया है अर्थात् उसपर उचित-अनुचितका विचार नहीं करना चाहिये॥ 145॥

गुरु-आज्ञा पालनेसे ही जीवोंको कल्याणकी प्राप्ति :—
रामायणमें अयोध्याकाण्डमें (23/10)—

निर्विचारं गुरोराज्ञा मया कार्या महात्मनः।
श्रेयो ह्येवं भवत्याश्च मम चैव विशेषतः॥"146॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 146॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महात्मा गुरुदेवकी आज्ञा मेरे लिये बिना कुछ विचार किये ही अनुष्ठान करने योग्य है। इसमें आपका भी मङ्गल है, विशेष करके मेरा भी मङ्गल है॥ 146॥

अनुभाष्य—

मया महात्मनः गुरोः (पितुः दशरथस्य) आज्ञा निर्विचारं कार्या (पालनीया)। भवत्याश्च एवं हि विशेषतः मम एव च श्रेयः।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें। गुरुदेवसे यहाँ अभिप्राय पिता श्रीदशरथसे है॥ 146॥

महाप्रभुका श्रीगोविन्दको सेवकके रूपमें अङ्गीकार :—

तबे महाप्रभु ताँरे कैल अङ्गीकार।
आपन-श्रीअङ्ग-सेवाय दिल अधिकार॥ 147॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके विचारको सुनकर तब महाप्रभुने श्रीगोविन्दको स्वीकार करके उन्हें अपने श्रीअङ्गकी सेवा करनेका अधिकार दिया॥ 147॥

श्रीगोविन्द सभी वैष्णवोंके प्रियपात्र :—

प्रभुर प्रिय भृत्य करि' सबे करे मान।
सकल वैष्णवेर गोविन्द करे समाधान॥ 148॥

अनुवाद—श्रीगोविन्दको महाप्रभुका प्रिय सेवक जानकर सभी उनका सम्मान करते थे तथा श्रीगोविन्द भी सभी वैष्णवोंकी सभी प्रकारसे सेवा करते थे॥ 148॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'समाधान'*—सेवाकार्य॥ 148॥

उनके सङ्ग छोटे और बड़े हरिदास एवं रामाइ-नन्दाइ :—

छोट-बड़-कीर्त्तनीया—दुइ हरिदास।
रामाइ-नन्दाइ रहे गोविन्देर पाश॥ 149॥

श्रीगोविन्दका सेवाका सौभाग्य :—

गोविन्देर सङ्गे करे प्रभुर सेवन।
गोविन्देर भाग्यसीमा ना याय वर्णन॥ 150॥

अनुवाद—दो कीर्तनीया—छोटे हरिदास और बड़े हरिदास तथा रामाइ और नन्दाइ—ये चारों श्रीगोविन्दके साथ रहकर उनके साथ महाप्रभुकी सेवा करते थे। श्रीगोविन्दके भाग्यकी सीमाका वर्णन नहीं किया जा सकता, क्योंकि उन्हें महाप्रभुकी साक्षात् सेवाका सौभाग्य प्राप्त हुआ था॥ 149-150॥

श्रीब्रह्मानन्द भारतीका आगमन :—

आर दिने मुकुन्ददत्त कहे प्रभुर स्थाने।
"ब्रह्मानन्द-भारती आइला तोमार दरशने॥ 151॥

महाप्रभुकी मर्यादा :—

आज्ञा देह' यदि ताँरे आनिये एथाइ।"
प्रभु कहे,—"गुरु तेँह, याब ताँर ठाञि॥"152॥

अनुवाद—अगले दिन श्रीमुकुन्द दत्तने महाप्रभुसे कहा,—"श्रीब्रह्मानन्द भारती आपके दर्शनके लिये आये हैं। यदि आप आज्ञा दें, तो मैं उन्हें यहाँ ले आऊँ॥" महाप्रभुने कहा,—"वे मेरे गुरुके समान हैं, इसलिये मैं स्वयं ही उनके पास जाऊँगा॥"151-152॥

भारतीके साथ साक्षात्कार :—

एत बलि' महाप्रभु भक्तगण-सङ्गे।
चलि' आइला ब्रह्मानन्द-भारतीर आगे॥ 153॥

भारतीके मृगचर्म-वस्त्रको देखकर महाप्रभुकी अप्रसन्नता :—

ब्रह्मानन्द परियाछे मृगचर्माम्बर।
ताहा देखि' प्रभु दुःख पाइला अन्तर॥ 154॥

अनुवाद—इतना कहकर महाप्रभु अपने भक्तोंके साथ चलकर श्रीब्रह्मानन्द भारतीके पास आये। श्रीब्रह्मानन्द भारतीने मृगचर्मका (हिरणके चमड़ेका) वस्त्र पहन रखा था, जिसे देखकर महाप्रभुके मनमें बहुत दुःख हुआ॥ 153-154॥

अनुभाष्य—श्रीब्रह्मानन्द भारती एक शाङ्कर-दशनामी संन्यासी थे। मृगचर्म अथवा तृणवल्कल (घास या वृक्षकी छाल) आदिके वस्त्र गृहका त्याग करनेवाले व्यक्तियोंके पहनने योग्य हैं। (मनुसंहिता छठा अ:)—"ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः। वसीत चर्मचीरं वा"; कुल्लुक-भट्ट-कृता टीका-'मृगादिचर्मवस्त्रखण्डं वा आच्छादयेत्॥"

अर्थात् "गृहत्यागी व्यक्ति ग्राम छोड़कर वनमें जाकर इन्द्रियोंपर संयम रखते हुए वहाँ वास करेंगे और चर्म या चीरका वस्त्र पहनेंगे। कुल्लुक-भट्टकृत टीका—मृगादिके चर्म या कपड़ेके टुकड़ेसे शरीरका आच्छादन करना चाहिये॥"154॥

महाप्रभुका श्रीभारतीको देखकर भी अनदेखा करना :—

देखिया त' छद्म कैल येन देखे नाञि।
मुकुन्देरे पुछे,—"काँहा भारती-गोसाञि?"॥ 155॥

मुकुन्द कहे,—"एइ आगे देख विद्यमान।"
प्रभु कहे,—"तेँह नहेन, तुमि अगेयान॥ 156॥

अन्येरे अन्य कह, नाहि तोमार ज्ञान।
भारती-गोसाञि केने परिबेन चाम?"॥ 157॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीब्रह्मानन्द भारतीको देखकर भी ऐसा बहाना किया जैसे उन्हें नहीं देखा और श्रीमुकुन्दसे पूछा,—"भारती-गोसाईं कहाँ है?" श्रीमुकुन्दने कहा,—"देखिये, वे आपके सामने ही तो हैं।" महाप्रभुने कहा,—"यह वे नहीं है, तुम्हें भूल हो रही है। तुम किसी दूसरेको भारती-गोसाईं कह रहे हो, तुम तो उन्हें जानते ही नहीं हो। भला भारती-गोसाईं मृगछाला क्यों पहनेंगे?"॥ 155-157॥

अमृतप्रवाह भाष्य— '*छद्म*'—छल, कपट॥ 155॥

महाप्रभुके व्यवहारसे श्रीभारतीको सुबुद्धि :—

शुनि' ब्रह्मानन्द करे हृदये विचारे।
'मोर चर्माम्बर एइ, ना भाय इँहारे॥ 158॥

बाह्यचिह्न-धारण करनेसे ही संसार-मुक्ति नहीं मिलती :—

भाल कहेन,—चर्माम्बर दम्भ लागि' परि।
चर्माम्बर-परिधाने संसार ना तरि॥ 159॥

श्रीभारतीका बहिर्वास-परिधान और महाप्रभुका प्रणाम :—

आजि हैते ना परिब एइ चर्माम्बर।'
प्रभु बहिर्वास आनाइला जानिया अन्तर॥ 160॥

चर्माम्बर छाड़ि' ब्रह्मानन्द परिल वसन।
प्रभु आसि' कैल ताँर चरण वन्दन॥ 161॥

अनुवाद—महाप्रभुकी बातको सुनकर श्रीब्रह्मानन्द भारती मनमें विचार करने लगे,—'मेरा यह मृगछाला पहनना इन्हें अच्छा नहीं लगा। इन्होंने ठीक ही तो कहा है। मैं प्रतिष्ठाके लिये ही मृगछाला पहनता हूँ। मृगछाला पहननेसे ही संसारसे उद्धार नहीं हो सकता। इसलिये आजसे मैं मृगछाला नहीं पहनूँगा।' महाप्रभुने उनके मनकी बातको जानकर संन्यासका वस्त्र मँगवा लिया। तब श्रीब्रह्मानन्द भारतीने मृगछालाको त्यागकर वह संन्यासका वस्त्र पहन लिया। तब महाप्रभुने आकर उनके श्रीचरणोंकी वन्दना की॥ 158-161॥

अमृतप्रवाह भाष्य— '*ना भाय*'—शोभा नहीं देता॥ 158॥

अनुभाष्य—लोक-संग्रह अर्थात् बहुतसे अनुयायी बनानेके अभिमानके वशीभूत होकर चर्मवस्त्र पहननेसे

ही संसारसे उद्धार नहीं होता। मनुसंहिता छठा अध्याय—

"फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम्।
न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति।"

और इस श्लोककी कुल्लुक-भट्टकृत टीका—

"कतक-वृक्षस्य फलं कलुषजलस्वच्छताजनकं, तथापि तन्नामोच्चारणवशात् न प्रसीदति किन्तु फलप्रक्षेपेण। एवं न लिङ्गधारणमात्रम् धर्म-कारणम्।"

अर्थात् " 'कतक'-वृक्षका फल (रीठा) यद्यपि जलको निर्मल करता है, किन्तु इस फलका नाम लेनेसे ही जल निर्मल नहीं होता। कुल्लुक-भट्टकृत टीका—'कतक'-वृक्षका फल गन्दे-जलको स्वच्छ करता है। ऐसा कहकर 'कतक' 'कतक', इस प्रकार नामके उच्चारणसे जल निर्मल नहीं होता, बल्कि जलमें रीठा फल डालनेपर ही जल स्वच्छ होता है। उसी प्रकार केवल धार्मिक-चिह्न धारण करनेसे ही धर्मका पालन नहीं होता।"

'बहिर्वास'—कौपीनके ऊपर पहना जानेवाला वस्त्र॥ 159-160॥

महाप्रभुके प्रणामको ग्रहण करनेमें श्रीभारतीको आपत्ति :—

भारती कहे,—"तोमार आचार लोक शिखाइते।
पुनः ना करिबे नति, भय पाङ चित्ते॥ 162॥

श्रीभारतीका तत्त्वदर्शन—महाप्रभु और जगन्नाथमें अभेद दर्शन :—

साम्प्रतिक 'दुइ ब्रह्म' इहाँ,—'चलाचल'।
जगन्नाथ—अचल, तुमि—ब्रह्म सचल॥ 163॥

अनुवाद—अनुभाष्य देखें॥ 162-163॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'साम्प्रतिक'*—वर्तमान कालमें। इस पुरुषोत्तममें 'चल' और 'अचल', दो ब्रह्म देख रहा हूँ॥ 163॥

अनुभाष्य—लोकशिक्षाके लिये ही आपका आचरण है। यदि आपके मनके अनुसार मैं सदाचार पालन न करूँ, तो आप पुनः मुझे प्रणाम न करके मेरी उपेक्षा करेंगे, इसलिये मुझे भय हो रहा है।

'श्रीजगन्नाथ विग्रह'—अचल-ब्रह्म एवं आप श्रीचैतन्य महाप्रभु—सचल ब्रह्म हैं। आप दोनों ही मायाधीश चल-अचल ब्रह्मवस्तु स्वरूपमें इस समय श्रीपुरुषोत्तममें विराजमान हैं॥ 162-163॥

तुमि—गौरवर्ण, तेँह-श्यामवरण।
दुइ ब्रह्म कैल सब जगत्-तारण॥"164॥

अनुवाद—आप गौरवर्ण हैं और वे श्यामवर्णके हैं। आप दोनों ब्रह्म समस्त जगत्का उद्धार कर रहे हैं॥"164॥

महाप्रभुके द्वारा उत्तर देना :—

प्रभु कहे,—"सत्य कहि, तोमार आगमने।
दुइ ब्रह्म प्रकटिल श्रीपुरुषोत्तमे॥ 165॥
'ब्रह्मानन्द' नाम तुमि—गौर-ब्रह्म 'चल'।
श्यामवर्ण जगन्नाथ बसियाछेन 'अचल'॥"166॥

अनुवाद—महाप्रभुने उत्तर दिया,—"मैं सत्य कह रहा हूँ, आपके आनेसे श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें दो ब्रह्म प्रकट हो गये हैं। 'ब्रह्मानन्द' नामक गौरवर्णके आप 'चल' ब्रह्म हैं और दूसरे श्यामवर्णके श्रीजगन्नाथ 'अचल' ब्रह्म यहाँ पहलेसे ही बैठे हैं॥"165-166॥

महाप्रभु और श्रीभारती, दोनोंके विचारमें श्रीसार्वभौमकी मध्यस्थता :—

भारती कहे,—"सार्वभौम, मध्यस्थ हञा।
इँहार सने आमार 'न्याय' बुझ' मन दिया॥ 167॥

श्रीभारतीका जीव-ब्रह्म विचार :—

'व्याप्य'-'व्यापक'-भावे 'जीव'-'ब्रह्मे' जानि।
जीव—व्याप्य, ब्रह्म—व्यापक, शास्त्रेते बाखानि॥ 168॥

स्वेच्छापूर्वक चालित करानेवाले इच्छाशक्तिके परिचालक प्रभु ही विभु या विष्णु या ब्रह्म, श्रीभारती ही जीव :—

चर्म घुचाञा कैल आमारे शोधन।
दोँहार व्याप्य-व्यापकत्वे, एइ त' कारण॥ 169॥

अनुवाद—श्रीब्रह्मानन्द भारतीने कहा,—"हे सार्वभौम

भट्टाचार्य! आप मध्यस्थ होकर इनके साथ मेरे न्यायसङ्गत विचारको ध्यानपूर्वक सुनिये। 'व्याप्य' और 'व्यापक'—इन दो प्रकारसे 'जीव' और 'ब्रह्म'को मैं जानता हूँ। जीवको व्याप्य और ब्रह्मको व्यापकके रूपमें शास्त्रोंमें कहा गया है। मृगछाला छुड़ाकर इन्होंने मेरा शोधन किया है, इसलिये ये व्यापक-ब्रह्म हैं और मैं व्याप्य-जीव हूँ॥ 167–169॥

अमृतप्रवाह भाष्य—इनके साथ आप मेरा विचार ध्यानपूर्वक सुनिये। ब्रह्म—व्यापक अर्थात् सर्वव्यापक हैं; जीव—अणु अर्थात् ब्रह्मके द्वारा व्याप्य है। जिन्होंने मृगछाला छुड़ाकर मेरा शोधन किया है, वे—व्यापक हैं और मैं—व्याप्य हूँ। यहाँपर विचार करके देखिये कि ब्रह्मानन्द-भारतीरूप मैं या श्रीकृष्णचैतन्यरूप ये—हम दोनोंमेंसे कौन 'ब्रह्म' हुए॥ 169॥

महाभारतमें दानधर्म 149, विष्णुसहस्त्रनाम-स्तोत्र (92, 75)—

सुवर्णवर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी।
संन्यासकृच्छमः शान्तो निष्ठा-शान्ति-परायणः॥ 170॥

अनुवाद—सुवर्णवर्ण, पिघले स्वर्णकी भाँति अङ्ग, सर्वाङ्गसुन्दर गठन, चन्दनमालासे सुशोभित, संन्यासाश्रमी, हरि-रहस्यकी आलोचनारूप शमगुणसे युक्त, हरिकीर्तनरूप महायज्ञमें दृढ़तापूर्वक निष्ठावान् और केवलाद्वैतवादी अभक्त-निवृत्तिकारिणी शान्ति-प्राप्त महाभावपरायण—ये विष्णु सहस्र नामोंमें आठ नाम हैं॥ 170॥

अनुभाष्य—आदिलीला 3/49 संख्या देखें॥ 170॥

महाप्रभुमें ही उपरोक्त श्लोकका तात्पर्य निहित :—

एइसब नामेर इँह हय निजास्पद।
चन्दनाक्त प्रसाद-डोर—द्विभुजे अङ्गद॥"171॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 171॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'सुवर्णवर्णः'-श्लोकमें जो सब नाम हैं, उनके श्रीकृष्णचैतन्य ही आस्पद हैं अर्थात् उन नामोंने उन्होंने ही स्थान प्राप्त किया है। चन्दनका लेप और प्रसाद-डोर (श्रीजगन्नाथदेवकी प्रसादी डोर जो उन्हें प्राप्त हुई है)—ये उनकी दोनों भुजाओंमें कङ्गनस्वरूप हैं॥"171॥

श्रीसार्वभौमकी मीमांसा—श्रीभारतीकी जय और महाप्रभुकी पराजय स्वीकार :—

भट्टाचार्य कहे,—"भारती, देखि तोमार जय।"
प्रभु कहे,—"येइ कह, सेइ सत्य हय॥ 172॥

गुरुतुल्य श्रीभारतीके समक्ष शिष्य-स्थानीय महाप्रभुकी पराजय :—

गुरु-शिष्य-न्याये शिष्येर सत्य पराजय।"
भारती कहे,—"ए नहे, अन्य हेतु हय॥ 173॥

श्रीभारतीकी प्रत्युक्ति—भक्तोंके समक्ष भगवान्‌की पराजय :—

भक्त ठाञि हार' तुमि,—ए तोमार स्वभाव।
आर एक शुन तुमि आपन प्रभाव॥ 174॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने कहा,—"भारती! मैं तो आपकी विजय देखता हूँ।" उनकी बात सुनकर महाप्रभुने कहा,—"आपने जो कहा, वह सत्य ही है, क्योंकि गुरु और शिष्यके तर्कमें शिष्यकी ही पराजय निश्चित है।" श्रीब्रह्मानन्द भारतीने कहा,—"यह नहीं, बल्कि इसका अन्य कोई कारण है। यह आपका स्वभाव है कि आप अपने भक्तोंसे सदा पराजित होते हैं। इसके अतिरिक्त आप अपना एक और प्रभाव सुनिये॥ 172–174॥

अनुभाष्य—शिष्य-वाक्य सत्य होनेपर भी गुरु-वाक्य ही शिष्यके ऊपर विजयी होता है। गुरु-वाक्य सब समय ही शिष्य-वाक्यकी अपेक्षा अधिक आदरणीय है। महाप्रभुने यह कहा,—उक्त न्यायके अनुसार श्रीब्रह्मानन्द भारती ही गुरु हैं और महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्यने स्वयंको उनका शिष्य माना, इसलिये ब्रह्मानन्दके वाक्योंकी ही विजय हुई। किन्तु श्रीब्रह्मानन्दने इस विषयमें महाप्रभुके द्वारा कहे गये गुरु-शिष्य-न्यायके आधारको ही उनकी

पराजयका कारण स्वीकार नहीं किया; उन्होंने कहा कि उसका एक और कारण है। वह यह है कि भगवान् भक्तके सामने अपनी पराजय स्वीकार करते हैं,—यही भगवत्ताका स्वभाव है; जैसे भीष्मवाक्य (भाः 1/9/34)—

"स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञामृतमधिकर्त्तुमवप्लुतो रथस्थः।
धृतरथचरणोऽभ्ययाचलद्गुर्हरिरिव हन्तुमिभं गतोत्तरीयः॥"

अर्थात् "श्रीभीष्मदेवने कहा,—'कुरुक्षेत्र-युद्धमें मैं अस्त्र धारण नहीं करूँगा'—अपनी यह प्रतिज्ञा त्यागकर श्रीकृष्ण मेरी उनसे अस्त्र धारण करवानेकी प्रतिज्ञाको सत्य करनेके लिये रथसे उतरकर चक्र धारणकर मेरा वध करनेके लिये दौड़े थे, जिसमें उनका ऊपरका वस्त्र भी गिर गया था॥"174॥

महाप्रभुकी अलौकिक महिमाका वर्णन,—श्रीभारतीका निर्विशेष-विचार चिद्विलासमें परिवर्तित :—

आजन्म करिनु मुञि 'निराकार'-ध्यान।
तोमा देखि' 'कृष्ण' हैल मोर विद्यमान॥ 175॥

महाप्रभुकी कृपासे श्रीभारतीको कृष्णभक्तिकी प्राप्ति :—

कृष्णनाम स्फुरे मुखे, मने नेत्रे कृष्ण।
तोमाके तद्रूप देखि' हृदय—सतृष्ण॥ 176॥

श्रीबिल्वमङ्गलके साथ तुलना :—

बिल्वमङ्गल कैल यैछे दशा आपनार।
इँह देखि' सेइ दशा हइल आमार॥"177॥

अनुवाद—मैंने जन्मसे ही निराकारका ध्यान किया है, परन्तु आपके दर्शन करके मुझे ऐसा लगता है कि श्रीकृष्ण साक्षात् मेरे सामने हैं। मेरे मुखसे श्रीकृष्णनाम स्फुरित हो रहा है, मेरे मनमें और नेत्रोंसे श्रीकृष्णके दर्शन हो रहे हैं और मैं आपको श्रीकृष्णरूपमें देख रहा हूँ और आपकी सेवा करनेकी तृष्णा हो रही है। निराकारका ध्यान छोड़कर साकारकी अनुभूतिसे जैसी दशा बिल्वमङ्गल ठाकुरकी हुई थी, मैं देख रहा हूँ कि मेरी भी वैसी ही दशा हो गयी है॥ 175-177॥

अनुभाष्य—मैं सारा जीवन निराकार-ब्रह्मका ध्यान ही करता था, परन्तु आपके साक्षात्कारके फलस्वरूप अप्राकृत श्रीकृष्णमूर्ति मेरे सामने उदित हुई है। मेरे मुखमें और मनमें श्रीकृष्णनाम स्फुरित हो रहा है एवं नेत्रोंसे श्रीकृष्णके दर्शन हो रहे हैं। फिर, आपमें श्रीकृष्णरूप दर्शन करके हृदयमें भी सेवाकी तृष्णा जाग्रत हुई है। ठाकुर बिल्वमङ्गल पूर्व जीवनमें अद्वैतवादी निराकार-ब्रह्म-ध्यानपरायण थे और बादमें श्रीकृष्णभक्त होकर उन्होंने अपनी यह बात कही है, मेरी भी आज वही दशा हुई है।

श्रीचैतन्यचन्द्रामृतमें,—

"कैवल्यं नरकायते xxx यत्कारुण्यकटाक्षवैभववतां तं गौरमेव स्तुमः", "धिक् कुर्वन्ति च ब्रह्मयोगविदुषस्तं गौरचन्द्रं नुमः"; "तावद् ब्रह्मकथा विमुक्तपदवी तावन्न तिक्तीभवेत्तावच्चापि विशृङ्खलत्वमयते नो लोकवेदस्थितिः। तावच्छास्त्रविदां मिथः कलकलो नाना-बहिर्वर्त्मसु श्रीचैतन्यपदाम्बुजप्रियजनो यावन्न दृग्गोचरः"॥ "गौरश्चौरः सकलमहरत् कोऽपि मे तीव्रवीर्यः॥"

अर्थात् "'जिनकी कृपाकटाक्ष-सम्पत्तिसे सम्पत्तिशाली उन गौरभक्तोंको केवलारूपा मुक्ति नरकतुल्य प्रतीत होती है, उन श्रीगौरसुन्दरका मैं स्तव करता हूँ।' 'जिनके चरणकमलोंसे क्षरित उज्ज्वल प्रेमानन्दमय अद्भुत अमृतरस पान करके ब्रह्मज्ञानी और अष्टाङ्ग-योगियोंको धिक्कार करता हूँ, उन श्रीगौरहरिकी मैं वन्दना करता हूँ।' 'उस समय तक ही निर्विशेष-ब्रह्म-आलोचना चलती रहती है, उस समय तक ही ईश्वर-सायुज्यादि मुक्तिमार्ग कड़वा नहीं लगता, उस समय तक ही लौकिक और वैदिक कर्मकाण्ड सभी विशृङ्खलताको प्राप्त न हों (अर्थात् सुन्दररूपसे सम्पन्न होते रहें), उस समय तक ही नाना बहिर्मुख मार्गमें दौड़ते हुए पण्डित-मान्यगणोंका परस्पर वाद-विवाद होता रहता है, जिस समय तक श्रीचैतन्यचरणकमल-प्रिय गौरभक्तगण दृष्टिगोचर नहीं होते।' 'कोई एक अमित प्रभावशाली गौरविग्रहधारी चोर मेरे सभी (कुण्ठा-स्वभावका) अपहरण कर रहा है।'॥"175-177॥

श्रीकृष्णकी इच्छा मात्रसे ही कर्म और
ज्ञान-निष्ठाका ध्वंस :—
श्रीकृष्णकर्णामृतमें बिल्वमङ्गल-वाक्य—

अद्वैतवीथीपथिकैरुपास्याः
स्वानन्दसिंहासन-लब्धदीक्षाः।
शठेन केनापि वयं हठेन
दासीकृता गोपवधूविटेन॥178॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥178॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अद्वैतमार्गके पथिकोंके द्वारा उपास्य, और आत्मानन्द-सिंहासनसे दीक्षा प्राप्त करनेपर भी मैं किसी गोपवधू-लम्पट शठके द्वारा हठतापूर्वक दासीके रूपमें परिणत हो गया हूँ॥178॥

दसवें अध्यायका अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

अनुभाष्य—

अद्वैतवीथीपथिकैः (अद्वैतं स्वगत-सजातीय-विजातीय-भेदरहितम् एव वीथी पन्थाः तस्यां ये पथिकाः केवलाद्वैतवादिनः तैः निराकारब्रह्मवादिभिः) उपास्याः (पूजनीयाः) स्वानन्दसिंहासन-लब्धदीक्षा (आत्मानन्द एव सिंहासनम् उच्चपीठः तस्मिन् लब्धा प्राप्ता दीक्षा यैः, एवम्भूताः योगमार्गरताः) वयं (अहं—गौरवे-बहुवचनं) केनापि शठेन (कपटेन्) गोपवधूविटेन (गोपीलम्पटेन् नन्दनन्दनेन) हठेन (बलात्कारेण) दासीकृताः (स्वदास्ये नियुक्ता इत्येकवचनेनैव बोद्धव्यम्)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥178॥

महाप्रभुकी श्रीभारतीको 'महाभागवत' कहकर प्रशंसा :—

प्रभु कहे,—"कृष्णे तोमार गाढ़ प्रेमा हय।
याँहा नेत्र पड़े, ताँहा कृष्णस्फूर्त्ति हय॥"179॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"श्रीकृष्णके प्रति आपका गाढ़ प्रेम है, इसलिये जहाँ आपकी दृष्टि पड़ती है, वहाँ आपको श्रीकृष्णकी स्फूर्त्ति होती है॥"179॥

श्रीसार्वभौमके द्वारा कृष्णकृपाकी महिमाकी व्याख्या :—

भट्टाचार्य कहे,—"तोमार हय सत्य वचन।
आगे यदि कृष्ण देन साक्षात् दरशन॥180॥

भक्तकी प्रेमसेवा और भगवान्‌की कृपा ही
परस्परका मिलन अथवा योगसूत्र :—

प्रेम बिना कभु नहे ताँर साक्षात्कार।
इँहार कृपाते हय दरशन इँहार॥"181॥

अनुवाद—श्रीभट्टाचार्यने कहा,—"आपके वचन सत्य हैं। यदि श्रीकृष्ण साक्षात् दर्शन भी दें, तो भी प्रेमके बिना कभी भी उनका साक्षात्कार नहीं होता। इनकी (महाप्रभुकी) कृपासे ही इन्हें (ब्रह्मानन्द भारतीको) श्रीकृष्णका साक्षात् दर्शन प्राप्त हुआ है॥"180-181॥

अनुभाष्य—श्रीमहाप्रभुने कहा,—"आप ब्रह्मानन्द भारती प्रेममय महाभागवत हैं, इसलिये सर्वत्र आपको श्रीकृष्णदर्शन होगा, इसमें और सन्देह क्या है?" भट्टाचार्य दोनोंके मध्यस्थ होकर बोले,—"महाभागवत ब्रह्मानन्द भारतीको श्रीकृष्णदर्शन हुए हैं, महाप्रभुका यह वाक्य भी सत्य है, क्योंकि श्रीकृष्ण महाभागवतोंके समक्ष ही साक्षात् दर्शन दिया करते हैं, किन्तु भक्तोंके प्रेमाधिक्यके अतिरिक्त वैसे साक्षात्कारकी सम्भावना नहीं है।" पहले 'इँहार' शब्दका अर्थ—श्रीमहाप्रभुकी कृपासे है; बादवाले 'इँहार' शब्दका अर्थ ब्रह्मानन्द भारतीको दर्शन अर्थात् श्रीकृष्ण दर्शन हुए हैं। (ब्रह्मसंहिता 5/38 श्लोक)—"प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति" अर्थात् "प्रेमरूप काजलके द्वारा रञ्जित भक्तिनेत्रोंसे सन्तपुरुष अपने हृदयमें श्रीकृष्णके दर्शन करते हैं॥"179-181॥

बाह्य-जीवाभिमान-हेतु महाप्रभुके द्वारा
श्रीसार्वभौमके वाक्यका अनादर :—

प्रभु कहे,—"'विष्णु' 'विष्णु', कि कह सार्वभौम।
'अतिस्तुति' हय एइ निन्दार लक्षण॥"182॥

अनुवाद—यह सुनकर महाप्रभुने कहा,—"'विष्णु'! 'विष्णु'! हे सार्वभौम, आप यह क्या कह रहे हैं? किसीकी अधिक प्रशंसा निन्दाका ही लक्षण है॥"182॥

अनुभाष्य—महाप्रभु श्रीसार्वभौमके वाक्यसे लज्जित

होकर 'विष्णु' 'विष्णु' शब्द उच्चारण करके बोले कि किसी व्यक्तिकी अति-स्तुति करना वास्तवमें उसकी निन्दा करना ही है॥ 182॥

श्रीभारतीको साथ लेकर महाप्रभुका
अपने स्थानपर आना :—

एत बलि' भारतीरे लञा निज-वासा आइला।
भारती-गोसाञि प्रभुर निकटे रहिला॥ 183॥

अनुवाद—इतना कहकर महाप्रभु श्रीब्रह्मानन्द भारतीको अपने निवास-स्थानपर ले आये। तब श्रीभारती गोसाईं महाप्रभुके निकट ही रहने लगे॥ 183॥

महाप्रभुके ऐकान्तिक भक्त—(1) रामभद्र
और (2) भगवान्-आचार्य :—

रामभद्राचार्य, आर भगवान् आचार्य।
प्रभुपदे रहिला दुँहे छाड़ि' सर्व कार्य॥ 184॥

अनुवाद—श्रीरामभद्राचार्य और श्रीभगवान् आचार्य भी अपने सब कार्योंको छोड़कर महाप्रभुकी शरणमें रहने लगे॥ 184॥

काशीश्वरका आगमन :—

काशीश्वर गोसाञि आइला आर दिने।
सम्मान करिया प्रभु राखिला निज-स्थाने॥ 185॥

अनुवाद—अगले दिन श्रीकाशीश्वर गोसाईं भी आ गये। महाप्रभुने उन्हें सम्मानपूर्वक अपने पास रख लिया॥ 185॥

अनुभाष्य—*'रामभद्राचार्य'*—आदिलीला 10/148 संख्या देखें। *'भगवान् आचार्य'*—आदिलीला 10/136 संख्या देखें। *'काशीश्वर'*—आदिलीला 8/66 संख्याका अनुभाष्य देखें।

'मुरारि-कड़चामें'—

"अथ भक्तगणाः सर्वे ये ये गौड़निवासिनः।
गन्तुमिच्छन्ति गौराङ्गदर्शनाय नीलाचलम्॥
श्रीकाशीश्वर-गोस्वामी" इत्यादि।

अर्थात् "गौड़देशके निवासी श्रीगौरभक्त श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके दर्शनके लिये नीलाचल आते। श्रीकाशीश्वर गोस्वामी भी इसी भावसे नीलाचल आये थे।" आदि॥ "184–185॥

दसवें अध्यायका अनुभाष्य समाप्त।

बलवान श्रीकाशीश्वरका महाप्रभुकी सेवामें
बलका सद्-व्यवहार :—

प्रभुके लञा करा'न ईश्वर दरशन।
लोक-भिड़ आगे सब करि' निवारण॥ 186॥

अनुवाद—श्रीकाशीश्वर गोस्वामी महाप्रभुको श्रीजगन्नाथदेवके दर्शनके लिये मन्दिर लेकर जाते और महाप्रभुके आगे चलते हुए भीड़को हटाकर उनके लिये मार्ग बनाते थे जिससे कोई उन्हें स्पर्श न करे॥ 186॥

महाप्रभुके साथ सभी भक्तोंके मिलनकी उपमा :—

यत नद नदी यैछे समुद्रे मिलय।
ऐछे महाप्रभुर भक्त याँहा ताँहा हय॥ 187॥

सबे आसि' मिलिला प्रभुर श्रीचरणे।
प्रभु कृपा करि' सबाय राखिल निज-स्थाने॥ 188॥

अनुवाद—जिस प्रकार समस्त नद-नदियाँ आकर समुद्रमें मिलती हैं, उसी प्रकार महाप्रभुके भक्त जहाँ कहीं भी रहते थे, वे सब आकर महाप्रभुके श्रीचरणोंमें उपस्थित हुए और महाप्रभुने कृपापूर्वक उन सबको अपने पास ही रहनेका स्थान दिया॥ 187–188॥

महाप्रभुके साथ भक्त-मिलनके संवादका वर्णन समाप्त :—

एत त' कहिल प्रभुर वैष्णव-मिलन।
इहा येइ शुने, पाय चैतन्य-चरण॥ 189॥

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ 190॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते मध्यखण्डे वैष्णवमिलनं
नाम दशम परिच्छेदः।

अनुवाद—यहाँ तक मैंने महाप्रभुके साथ वैष्णवोंके मिलनकी कथाका वर्णन किया है। इसे जो भी श्रवण करता है, उसे महाप्रभुके श्रीचरणकमलोंकी प्राप्ति होती है। श्रीरूप-रघुनाथ गोस्वामीके चरणकमलोंकी कृपाभिलाषा करते हुए कृष्णदास इस श्रीचैतन्यचरितामृतका वर्णन कर रहा है॥ 189-190॥

श्रीचैतन्यचरितामृत मध्यखण्डमें वैष्णवमिलन
नामक दसवें अध्यायका अनुवाद समाप्त।

चित्र-11

ग्यारहवाँ अध्याय

कथासार—जब श्रीसार्वभौमने राजा प्रतापरुद्रकी महाप्रभुके साथ भेंट करानेकी चेष्टा की, तब महाप्रभुने उसे अस्वीकार कर दिया। श्रीरामानन्द-रायने पुरुषोत्तममें (पुरीमें) आकर महाप्रभुके साथ मिलकर राजाके बहुतसे वैष्णव-गुणोंकी व्याख्या की, जिससे महाप्रभुका चित्त परिवर्तित हो गया। उधर राजाने श्रीसार्वभौमको अपनी दैन्य-प्रतिज्ञा बतलायी। तब श्रीसार्वभौमने राजाको महाप्रभुके चरण-दर्शनका एक उपाय बतला दिया। अनवसर-काल आनेपर भगवद्-दर्शनके विरहमें व्याकुल होकर महाप्रभु आलालनाथ चले गये, कुछ समय बाद गौड़देशसे सभी भक्तोंके आगमनके विषयमें सुनकर महाप्रभु पुरुषोत्तम लौट आये। श्रीअद्वैताचार्य आदि भक्तोंके आनेके समय श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीगोविन्द महाप्रभुके द्वारा दी गयी मालाओंको लेकर उन्हें लाने गये। राजा अट्टालिकासे वैष्णवोंको आते हुए देखने लगे। श्रीसार्वभौमकी इच्छानुसार श्रीगोपीनाथाचार्यने इन सब वैष्णवोंका परिचय दिया। श्रीचैतन्यके श्रीकृष्णत्व और समागत वैष्णवोंके मुण्डन-उपवास आदिको परित्यागकर प्रसादान्न-सेवनके सम्बन्धमें श्रीसार्वभौमके साथ राजाके अनेक विचार उपस्थित हुए। इसके उपरान्त राजाने वैष्णवोंके रहनेके स्थान और प्रसादान्न आदिकी व्यवस्था कर दी। महाप्रभुने श्रीवासुदेव-दत्तादि वैष्णवोंके साथ अनेक आनन्दजनक वार्त्तालाप किया। श्रीहरिदास ठाकुरका दैन्य देखकर महाप्रभुने बगीचेके बीचमें उन्हें एक एकान्त स्थान प्रदान किया और दूसरोंको श्रीहरिदासकी महिमा बतलायी। उसके बाद श्रीजगन्नाथदेवके मन्दिरमें चार मण्डलियाँ बनाकर महासङ्कीर्तन हुआ। तदुपरान्त वैष्णवगण महाप्रभुकी आज्ञासे अपने-अपने स्थानपर चले गये।

—(अमृतप्रवाहभाष्य)

नृत्यशील श्रीगौरका विश्वको प्रेमकी बाढ़में डुबोना :—

अत्युद्दण्डं ताण्डवं गौरचन्द्रः
कुर्वन् भक्तैः श्रीजगन्नाथगेहे।
नानाभावालङ्कृताङ्गः स्वधाम्ना
चक्रे विश्वं प्रेमवन्या-निमग्नम्॥ 1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीजगन्नाथके मन्दिरमें भक्तोंके साथ नाना प्रकारके भावोंसे अलङ्कृत शरीरवाले श्रीगौरचन्द्रने अतिशय उद्दण्ड नृत्य करके अपने माधुर्यके द्वारा इस विश्वको प्रेमकी बाढ़में डुबोया था॥ 1॥

अनुभाष्य—

नानाभावालङ्कृताङ्गः (विविधभावाभरणमण्डितदेहः) गौरचन्द्रः श्रीजगन्नाथगेहे (श्रीजगन्नाथदेवस्य मन्दिरे) भक्तैः [सह] स्वधाम्ना (अलौकिक-स्वमाधुर्येण) अत्युद्दण्डं ताण्डवं (अतिमनोज्ञ-नृत्यादिकं) कुर्वन् विश्वं (चिद्रसहीनं जड़रसपरं भुवनं) प्रेमवन्या-निमग्नं चक्रे (कृष्णप्रेमतरङ्गैः प्लावयामास)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 1॥

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥ 2॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभुकी जय हो, जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो। श्रीअद्वैतचन्द्रकी जय हो एवं श्रीगौरभक्तवृन्दकी जय हो॥ 2॥

श्रीसार्वभौमकी महाप्रभुसे कुछ निवेदन करनेकी इच्छा :—

आर दिन सार्वभौम कहे प्रभुस्थाने।
"अभय-दान देह' यदि, करि निवेदने॥"3॥

अनुवाद—अगले दिन श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने महाप्रभुसे कहा,—"यदि आप अभय-दान दें, तो मैं आपसे कुछ निवेदन करूँ॥"3॥

महाप्रभुके द्वारा अनुमति प्रदान :—

प्रभु कहे,—"कह तुमि, नाहि किछु भय।
योग्य हैले करिब, अयोग्य हैले नय॥"4॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"जो कहना है, आप निर्भय होकर कहिये। यदि आपकी बात उचित होगी, तो मैं अवश्य करूँगा, अनुचित होनेपर उसे अस्वीकार कर दूँगा॥"4॥

प्रतापरुद्रका पक्ष लेकर श्रीसार्वभौमके द्वारा महाप्रभुकी कृपाकी याचना :—

सार्वभौम कहे,—"एइ प्रतापरुद्र राय।
उत्कण्ठा हञाछे, तोमा मिलिबारे चाय॥"5॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने कहा,—"ये राजा प्रतापरुद्र आपसे मिलनेके लिये बहुत उत्कण्ठित हो रहे हैं॥"5॥

राजादर्शन करनेमें महाप्रभुकी असम्मति और वितृष्णा :—

कर्णे हस्त दिया प्रभु स्मरे 'नारायण'।
"सार्वभौम, कह केन अयोग्य वचन॥6॥

संन्यासीका धर्म :—

विरक्त संन्यासी आमार राज-दरशन।
स्त्री-दरशन-सम विषेर भक्षण॥"7॥

अनुवाद—यह सुनते ही महाप्रभुने अपने कानोंको हाथोंसे ढक करके भगवान् श्रीनारायणका स्मरण किया। तब महाप्रभुने कहा,—"हे सार्वभौम! आप ऐसी अनुचित बात क्यों कह रहे हैं? मैं एक विरक्त संन्यासी हूँ। मेरे लिये राजाका दर्शन तो स्त्री-दर्शनके समान विषपान करना है॥"6-7॥

प्रेमाकाङ्क्षीके लिये भोक्ताभावसे भोग्य वस्तुका दर्शन विष खानेके समान निषिध :—
श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक (8/24)—

निष्किञ्चनस्य भगवद्भजनोन्मुखस्य
पारं परं जिगमिषोर्भवसागरस्य।
सन्दर्शनं विषयिणामथ योषिताञ्च
हा हन्त हन्त विषभक्षणतोऽप्यसाधु॥8॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥8॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीचैतन्यदेवने खेदके साथ कहा,—हाय! भवसागरको सम्पूर्णरूपसे पार होनेकी जिनकी इच्छा है, ऐसे भगवद्-भजनोन्मुख निष्किञ्चन व्यक्तिके लिये विषयी और स्त्रीका [भोग बुद्धिसे] दर्शन विषपानकी अपेक्षा अधिक अकल्याणकारी है॥8॥

अनुभाष्य—

हा हन्त हन्त (खेदातिशये) भवसागरस्य (संसारसमुद्रस्य) परं पारं (देवीधामतीतं परव्योम-भगवद्धाम) जिगमिषोः (गन्तुकामस्य) निष्किञ्चनस्य (निर्विषयिणः) भगवद्भजनोन्मुखस्य (कृष्णसेवापरस्य) विषयिणां (कृष्णेतरविषयभोगपराणां) योषितां (भोग्यानां च) सन्दर्शनं (भोग्यबुद्ध्या अवलोकनादिकं) विषभक्षणतः (आत्मविनाशक-गरलस्य सेवनात्) अपि असाधु (अकल्याणकरम्)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥8॥

श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके द्वारा राजाकी प्रशंसा :—

सार्वभौम कहे,—"सत्य तोमार वचन।
जगन्नाथ-सेवक राजा, किन्तु भक्तोत्तम॥"9॥

भोक्ता बनकर वस्तुको भोग्य मानकर उसके बाहिरी दर्शनसे द्वितीयाभिनिवेशसे भयकी उत्पत्ति :—

प्रभु कहे,—"तथापि राजा कालसर्पाकार।
काष्ठनारी-स्पर्शे यैछे उपजय विकार॥10॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥9-10॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने कहा,—"प्रभो! आपने जो कहा है, वह सत्य है। किन्तु राजा

प्रतापरुद्रदेव श्रीजगन्नाथके सेवक और उत्तम भक्त हैं।" महाप्रभुने कहा,—"श्रीजगन्नाथके सेवक और उत्तम भक्त होनेपर भी 'राजा' कालसर्पके समान है। देखो, लकड़ीकी बनी हुई नारीको स्पर्श करनेसे जैसे किसी प्रकारका विकार उत्पन्न हो सकता है, उसी प्रकार उत्तम भक्त राजाके दर्शन करनेपर विरक्त व्यक्तिमें भी अनर्थ उदित हो सकते हैं॥ 9-10॥

श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक (8/25)—

आकारादपि भेतव्यं स्त्रीणां विषयिणामपि।
यथाहेर्मनसः क्षोभस्तथा तस्याकृतेरपि॥ 11॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 11॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिस प्रकार साँप और उसकी आकृति देखनेसे मनमें क्षोभ (भय) उत्पन्न होता है, उसी प्रकार स्त्री और विषयीका आकार देखते ही भय हुआ करता है॥ 11॥

अनुभाष्य—

स्त्रीणां (योषितां) विषयिणाम् (इन्द्रियसेविनां) [(भोक्तृ-भोग्यानामिति यावत्] आकारात् अपि (बहिराकृतेरपि) [कृष्णैक-सेविभिः परमार्थपरैः साधकैः जनैः] भेतव्यम्। यथा अहेः (भुजङ्गात्) मनसः क्षोभः (भयं) भवति, तथा तस्य (सर्पस्य) आकृतेः (सदृशाकारात्) अपि [भयं भवति]।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 11॥

लोकशिक्षक महाप्रभुका कठोर सङ्कल्प, आश्रम-मर्यादाकी रक्षाके लिये श्रीसार्वभौमका तिरस्कार :—

ऐछे बात पुनरपि मुखे ना आनिबे।
कह यदि, तबे आमाय एथा ना देखिबे॥"12॥

अनुवाद—आप ऐसी बात फिर कभी अपने मुखमें मत लाना। यदि पुनः कहेंगे, तो आप मुझे यहाँ नहीं देखेंगे॥"12॥

श्रीसार्वभौमका दुःखी मनसे घर जाना :—

भय पाञा सार्वभौम निज घरे गेला।
बासाय गिया भट्टाचार्य चिन्तित हइला॥ 13॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य यह सुनकर भयभीत होकर अपने घर चले गये। घर आकर श्रीभट्टाचार्य इस विषयपर चिन्तन करने लगे॥ 13॥

कटकसे श्रीरामानन्दादि परिकरोंके साथ राजाका पुरीमें आगमन :—

हेनकाले प्रतापरुद्र पुरुषोत्तमे आइला।
पात्र-मित्र-सङ्गे राजा दरशने चलिला॥ 14॥

महाप्रभु और रामानन्दका मिलन :—

रामानन्द राय आइला गजपति-सङ्गे।
प्रथमेइ प्रभुरे आसि' मिलिला बहुरङ्गे॥ 15॥

अनुवाद—उसी समय राजा प्रतापरुद्र पुरुषोत्तम क्षेत्रमें आ गये तथा वे अपने मन्त्रियों और मित्रोंके साथ भगवान् श्रीजगन्नाथका दर्शन करनेके लिये चल पड़े। श्रीरामानन्द राय भी गजपति (राजा प्रतापरुद्र)के साथ आये थे। वे आते ही सर्वप्रथम महाप्रभुसे बड़े आनन्दसे मिले॥ 14-15॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'गजपति'*—जिस प्रकार अन्यान्य कोई-कोई विशेष राजाओंकी 'छत्रपति', 'नरपति', 'अश्वपति' आदि पदवियाँ थीं, उसी प्रकार 'गजपति'—उड़ीसाके सम्राटोंकी उपाधि थी॥ 15॥

अनुभाष्य—गङ्गावंशीय प्रतापरुद्र-राजाकी राजधानी कटक-नगरमें थी। बादमें कटकसे खुर्दामें राजधानी स्थानान्तरित हुई थी॥ 14॥

राय प्रणति कैल, प्रभु कैल आलिङ्गन।
दुइजने प्रेमावेशे करेन क्रन्दन॥ 16॥

श्रीरायके प्रति महाप्रभुके आचरणको देखकर सभीको आश्चर्य :—

राय-सङ्गे प्रभुर देखि' स्नेह-व्यवहार।
सर्व भक्तगणेर मने हैल चमत्कार॥ 17॥

अनुवाद—श्रीरामानन्द रायने महाप्रभुको प्रणाम किया और महाप्रभुने उनका आलिङ्गन किया। दोनों ही प्रेममें

आविष्ट होकर क्रन्दन करने लगे। श्रीरामानन्द रायके साथ महाप्रभुके ऐसे स्नेहपूर्ण व्यवहारको देखकर सभी भक्तोंके मनमें आश्चर्य हुआ॥ 16–17॥

श्रीरायका राजकार्य-त्याग करनेके विषयमें बताना :—

राय कहे,—"तोमार आज्ञा राजाके कहिल।
तोमार इच्छाय राजा मोर विषय छाड़ाइल॥ 18॥

राजासे श्रीरायकी सेवासे निवृत्तिकी प्रार्थना :—

आमि कहि,—'आमा हैते ना हय विषय'।
चैतन्यचरणे रहोँ, यदि आज्ञा हय॥' 19॥

राजाके द्वारा आनन्दपूर्वक सम्मति प्रदान :—

तोमार नाम शुनि' राजा आनन्दित हैल।
आसन हैते उठि' मोरे आलिङ्गन कैल॥ 20॥

अनुवाद—श्रीरामानन्द रायने कहा,—"मैंने आपकी आज्ञा जब राजाको बतलायी, तब आपकी इच्छानुसार राजाने मुझे उन राजकार्योंसे मुक्त कर दिया। मैंने राजा प्रतापरुद्रसे कहा,—'अब मुझसे यह राजकार्य नहीं होता। आप यदि मुझे आज्ञा दें, तो मैं श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणोंमें जाकर रहूँ।' आपका नाम सुनकर राजा बहुत आनन्दित हुए और उन्होंने अपने आसनसे उठकर मेरा आलिङ्गन किया॥ 18–20॥

अनुभाष्य—*'तोमार आज्ञा'*—मध्यलीला 8/296–297 संख्या देखें। यह बात श्रीरामानन्द रायने जब राजा प्रतापरुद्रको कही, तब महाप्रभुके अभिप्रायके अनुसार राजा प्रतापरुद्रने लौकिक-दृष्टिसे श्रीरामानन्दके विषय छुड़वा दिये अर्थात् उस राजकार्यसे उन्हें निवृत्त कर दिया॥ 18॥

महाप्रभुके प्रति राजाकी भक्ति :—

'तोमार नाम शुनि' हैल महा-प्रेमावेश।
मोर हाते धरि' करे पिरीति विशेष॥ 21॥

राजाके द्वारा श्रीरायको सेवा-निवृत्तिपर भी वेतन-दान :—

तोमार ये वर्त्तन, तुमि खाओ सेइ वर्त्तन।
निश्चिन्त हञा भज चैतन्येर चरण॥ 22॥

राजाका दैन्य :—

आमि—छार, योग्य नहि ताँर दरशने।
ताँरे येइ भजे, ताँर सफल जीवने॥ 23॥

परम कृपालु तेँह व्रजेन्द्रनन्दन।
कोन-जन्मे मोरे अवश्य दिबेन दरशन॥' 24॥

अनुवाद—'आपका नाम सुनकर वे महा-प्रेमावेशमें आ गये। उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर मुझसे विशेष प्रीति प्रदर्शित करते हुए कहा कि आपका जो वेतन है, वह आपको मिलता रहेगा। अब आप निश्चिन्त होकर महाप्रभुके श्रीचरणोंकी सेवा करो। मैं तो महापतित हूँ, महाप्रभुके दर्शन करने योग्य भी नहीं हूँ। परन्तु जो उनका भजन करता है, उसीका जीवन सफल है। महाप्रभु परम कृपालु और साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन हैं। किसी-न-किसी जन्ममें वे मुझे अवश्य ही दर्शन देंगे॥' 21–24॥

अमृतप्रवाह भाष्य—दक्षिण-कलिङ्गके शासनकर्त्ता पदपर आप जो वर्त्तन अर्थात् पारिश्रमिक या वेतन प्राप्त करते थे, अब आपको कार्यसे निवृत्त कर दिया है, तथापि आपको वही वेतन प्राप्त होगा॥ 22॥

रायके द्वारा महाप्रभुके समक्ष राजाकी प्रशंसा :—

ये ताँहार प्रेम-आर्त्ति देखिलुँ तोमाते।
तार एक प्रेम-लेश नाहिक आमाते॥" 25॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 25॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीरामानन्द ने कहा,—"प्रभो! मैंने आपके प्रति राजाकी जो प्रेमवेदना देखी थी, उसका लेशमात्र भी मुझमें नहीं है॥" 25॥

शुद्धवैष्णवमें प्रीति हेतु महाप्रभुके द्वारा राजाको
भावी-कृपा-प्रदान करनेका इङ्गित :—

प्रभु कहे,—"तुमि कृष्णभक्त प्रधान।
तोमाके ये प्रीति करे, सेइ भाग्यवान्॥ 26॥

तोमाते ये एत प्रीति हइल राजार।
एइ गुणे कृष्ण ताँरे करिबे अङ्गीकार॥"27॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"आप श्रीकृष्ण-भक्तोंमें प्रधान हैं, इसलिये आपसे जो प्रीति करता है, वह भाग्यवान् है। राजाकी आपके प्रति जो इतनी प्रीति उत्पन्न हुई है, उनके इसी गुणके कारण श्रीकृष्ण उन्हें अवश्य अङ्गीकार करेंगे॥"26-27॥

भक्तोंके भक्त ही भगवद्भक्त :—
आदिपुराण वचन—

ये मे भक्तजनाः पार्थ न मे भक्ताश्च ते जनाः।
मद्भक्तानाञ्च ये भक्तास्ते मे भक्ततमा मताः॥28॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥28॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे पार्थ, जो केवल मेरे ही भक्त हैं, वे वास्तवमें मेरे भक्त नहीं है। किन्तु जो मेरे भक्तोंके भक्त हैं, उन्हें ही मैं अपना 'उत्तम भक्त' समझता हूँ॥28॥

अनुभाष्य—

हे पार्थ (अर्जुन), ये मे (मम) भक्तजनाः, ते मे (मम) भक्ताः जनाः न [भवन्ति]; ये च मद्भक्तानां [एव] भक्ताः, ते मे (मम) भक्ततमाः (श्रेष्ठ-सेवकाः) [इति मयैव] मताः (सम्मताः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥28॥

शुद्धभक्तोंकी क्रिया :—
श्रीमद्भागवत (11.19.21-22)—

आदरः परिचर्यायां सर्वाङ्गैरभिवन्दनम्।
मद्भक्तपूजाभ्यधिका सर्वभूतेषु मन्मतिः॥29॥
मदर्थेष्वङ्गचेष्टा च वचसा मद्गुणेरणम्।
मय्यर्पणञ्च मनसः सर्वकामविवर्जनम्॥30॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥29-30॥

अमृतप्रवाह भाष्य—मेरी परिचर्या (सेवा)का आदर, सर्वाङ्गके द्वारा अभिवन्दन, मेरे भक्तोंकी विशेष पूजा, सभी जीवोंमें मुझसे सम्बन्धित बुद्धि, मेरे लिये अखिल चेष्टा, वाक्यके द्वारा मेरे गुणोंकी व्याख्या, मुझमें मन अर्पण और सब प्रकारकी कामनाओंका परित्याग,—ये सब भक्तोंके लक्षण हैं॥29-30॥

अनुभाष्य—श्रीउद्धवके द्वारा भगवद्भक्तियोगके विषयमें जाननेके लिये जिज्ञासा करनेपर श्रीभगवान्‌की उक्ति—

[भक्तियोगं तुभ्यं पुनश्च कथयिष्यामीत्याह—मम] परिचर्यायां (सेवायाम्) आदरः, सर्वाङ्गैः (अङ्गप्रत्यङ्गाद्यैः) अभिवन्दनं, [मत्तः] अभ्यधिका (श्रेष्ठा) मद्भक्तपूजा, सर्वभूतेषु (प्राणि-मात्रेषु) मन्मतिः (भगवद्भावदर्शनम्)।

मदर्थेषु च (कृष्णैकतात्पर्येषु) कार्येषु अङ्गचेष्टा (अखिल-चेष्टा), वचसा (वाक्यद्वारेण) मद्गुणैरणं (कृष्णगुण-कथनं) मनसः मयि (कृष्णे) अर्पणं (समर्पणं), सर्वकाम-विवर्जनं (मनसः कृष्णेतर-विषयभोगवासना-परित्यागः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥29-30॥

सर्वेश्वरेश्वर विष्णुकी पूजाकी अपेक्षा वैष्णवपूजा श्रेष्ठ :—
लघुभागवतामृत (2/4) पद्मपुराणवचन—

आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम्।
तस्मात् परतरं देवि तदीयानां समर्चनम्॥31॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥31॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे देवि! अन्यान्य देवताओंकी आराधनाकी अपेक्षा विष्णुकी आराधना ही श्रेष्ठ है। विष्णुकी आराधनाकी अपेक्षा भक्तोंका अर्चन श्रेष्ठ है॥31॥

अनुभाष्य—

हे देवि, सर्वेषां आराधनानाम् (उपासनानां मध्ये) विष्णोः (भगवतः कृष्णचन्द्रस्य) आराधनं (पूजनं) परं (श्रेष्ठं); तस्मात् (श्रीकृष्णोपासनम् अपि) तदीयानां (मधुररसे श्रीरूप-वार्षभानव्यादीनां, वात्सल्ये नन्द-यशोदादीनां, सख्ये श्रीदाम-सुबलादीनां, दास्ये चित्रकादीनां), समर्चनं (दृढ़पूजनं) परतरं (प्रशस्ततरम्)।

श्लोक-भावानुवाद—हे देवि! सभी उपासनाओंमें भगवान् श्रीकृष्णकी उपासना श्रेष्ठ है। श्रीकृष्ण उपासनासे भी उनके भक्तोंकी (मधुर रसमें श्रीरूप मञ्जरी, श्रीमती

राधिका आदिकी, वात्सल्य रसमें श्रीनन्द-यशोदा आदिकी, सख्य रसमें श्रीदाम-सुबल आदिकी और दास्य रसमें चित्रक आदिकी) दृढ़ उपासना श्रेष्ठ है॥ 31॥

शुद्धभक्तकी सेवा बहुत सुकृतिसे प्राप्त होती है :—
श्रीमद्भागवत (3/7/20)—

दुरापा ह्यल्पतपसः सेवा वैकुण्ठवर्त्मसु।
यत्रोपगीयते नित्यं देवदेवो जनार्द्दनः॥ 32॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 32॥

अमृतप्रवाह भाष्य—देवदेव श्रीजनार्द्दनका जो नित्य गान करते हैं, उन वैकुण्ठपथपर चलनेवाले कृष्णदासोंकी सेवा अल्प-तपस्यावान् व्यक्तिको प्राप्त नहीं हो सकती॥ 32॥

अनुभाष्य—महाभागवत श्रीमैत्रेय ऋषिसे हरिकथा सुनकर विदुरके संशय दूर होनेपर विदुरके द्वारा हरिभक्तोंके गुण-माहात्म्य-कीर्तन—

यत्र (येषु महत्सु साधुषु) नित्यं (सर्व्वदा) देवदेवः (सर्व्वदेवमयः) जनार्द्दनः (कृष्णः) उपगीयते, तत्र (तेषु) वैकुण्ठवर्त्मसु (वैकुण्ठस्य श्रीकृष्णस्य वैकुण्ठलोकस्य वा, वर्त्मसु मार्गभूतेषु हरिजनेषु) सेवा—अल्पतपसः (क्षीणपुण्यजनस्य) दुरापा (दुर्लभा) हि (एव)। [महत्सेवयैव हरिकथाश्रवणं, ततो हरौ प्रेम, तेन च देहाद्यनुसन्धानमपि निवर्त्तते इति तात्पर्यम्।]

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें।

[महत्-सेवाके द्वारा ही हरिकथा श्रवण होती है, इसके फलस्वरूप श्रीहरिमें प्रेम उत्पन्न होता है और इसके द्वारा देहादिमें अभिनिवेश निवृत्त होता है, यही तात्पर्य है।]

इस प्रसङ्गमें पद्मपुराणके ये श्लोक आलोच्य हैं—

"भक्तिस्तु भगवद्भक्तसङ्गेन परिजायते।
सत्सङ्गः प्राप्यते पुंभिः सुकृतैः पूर्वसञ्चितैः॥" एवं
"महाप्रसादे गोविन्दे नामब्रह्मणि वैष्णवे।
स्वल्पपुण्यवतां राजन् विश्वासो नैव जायते॥"

अर्थात् "भगवद्भक्तके साथ सङ्गवशतः भक्तिका उदय होता है और पूर्व पूर्व जन्मकी सञ्चित सुकृतिके फलसे जीव वह भक्तसङ्ग प्राप्त करते हैं।' 'हे राजन्! अति अल्प सुकृतिवान् व्यक्तिको महाप्रसादमें, श्रीगोविन्दमें, श्रीनामब्रह्ममें और वैष्णवमें विश्वास उत्पन्न नहीं होता॥"32॥

श्रीरायके द्वारा सभी भक्तोंको यथायोग्य सम्मान :—

पुरी, भारती-गोसाञि, स्वरूप, नित्यानन्द।
जगदानन्द, मुकुन्दादि यत भक्तवृन्द॥ 33॥

चारि गोसाञिर कैल राय चरण वन्दन।
यथायोग्य सब भक्तेर करिल मिलन॥ 34॥

अनुवाद—श्रीरामानन्द रायने श्रीपरमानन्द पुरी, श्रीब्रह्मानन्द भारती, श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीनित्यानन्द प्रभु, इन चार गोस्वामियोंके श्रीचरणकमलोंकी वन्दना की और श्रीजगदानन्द पण्डित तथा श्रीमुकुन्दादि अन्यान्य भक्तोंके साथ वे उन्हें यथोचित सम्मान देते हुए मिले॥ 33-34॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'पुरी'*—श्रीपरमानन्दपुरी। *'भारती'*—श्रीब्रह्मानन्द भारती। *'स्वरूप'*—प्रसिद्ध श्रीदामोदर-स्वरूप। *'नित्यानन्द'*—श्रीनित्यानन्द प्रभु; श्रीरामानन्दने इन चारों गोसाइयोंके चरणोंकी वन्दना की॥ 33-34॥

श्रीजगन्नाथके दर्शन करनेके लिये श्रीरायको आदेश :—

प्रभु कहे,—"राय, देखिले कमलनयन?"
राय कहे,—"एबे याइ' पाब दरशन॥"35॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"राय! क्या आपने कमलनयन श्रीजगन्नाथका दर्शन किया है?" श्रीरामानन्द रायने उत्तर दिया,—"अभी तो दर्शन मिलेंगे, इसलिये अब जाऊँगा॥"35॥

महाप्रभुके दर्शनसे पहले श्रीजगन्नाथका दर्शन
न करनेके कारणकी जिज्ञासा :—

प्रभु कहे,—"राय, तुमि कि कार्य करिले?
ईश्वरे ना देखि' केने आगे एथा आइल?"॥ 36॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"हे राय! आपने यह कैसा कार्य किया? श्रीजगन्नाथदेवका दर्शन न करके आप पहले यहाँ क्यों आये?"॥ 36॥

श्रीरायका चित्त औदार्यप्रधान-विग्रहमें
ही अधिक आकृष्ट :—

राय कहे,—"चरण—रथ, हृदय—सारथि।
याँहा लञा याय, ताँहा याय जीव-रथी॥ 37॥

आमि कि करिब, मन इँहा लञा आइल।
जगन्नाथ-दरशने विचार ना कैल॥"38॥

अनुवाद—श्रीरामानन्द रायने कहा,—"चरण रथ हैं और हृदय इस रथका सारथी। जहाँ सारथी ले जाता है, वहीं रथपर सवार जीव जाता है। मैं क्या करूँ, मेरे मनने श्रीजगन्नाथके दर्शनका विचार ही नहीं किया और मुझे यहाँ ले आया॥ 37–38॥

अनुभाष्य—*'जीव'*—रथके सवारके समान, *'जीवके चरण'*—रथके समान, और *'जीवका मन'*—रथचालक सारथिके समान। इसलिये मनरूप सारथी जीवरूप सवारको चरण-रथपर बैठाकर जहाँ ले जाता है, जीव वहीं गमन करता है। कठोपनिषद् (3/3/6–9)—

'आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥
यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टश्वा इव सारथेः॥
यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः॥
xxx विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः-प्रग्रहवान्नरः।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्॥"

अर्थात् "आत्माको रथी (रथपर सवार व्यक्ति) जानो और शरीरको रथ, बुद्धिको सारथि और मनको लगाम-रूपमें जानो। पण्डित लोग इन्द्रियोंको घोड़े और विषयोंको इन्द्रियरूप घोड़ोंकी चारणभूमि कहते हैं और इस प्रकारसे शरीर, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धियुक्त जीवात्माको सुख-दुःखादिके भोक्ताके रूपमें निर्देश करते हैं। जो व्यक्ति किन्तु असंयत मनमें आविष्ट होकर सर्वदा अविज्ञानवान् (विवेकहीन बुद्धियुक्त) होते हैं, उनकी इन्द्रियाँ अदक्ष (अनाड़ी) सारथिके दुष्ट घोड़ोंके समान अनियन्त्रित हो जाती हैं। किन्तु जो सर्वदा संयत मनके साथ विज्ञानवान् (विवेकयुक्त बुद्धिसम्पन्न) होते हैं, उनकी इन्द्रियाँ सारथिके नियन्त्रित घोड़ोंके समान वशीभूत होती हैं। जिन व्यक्तियोंने विवेकयुक्त-बुद्धिरूप सारथिके द्वारा मनोरूप लगाम धारण की है, वे व्यवस्थित-चित्तवाले व्यक्ति संसारसे परे जाकर श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त करते हैं॥"37–38॥

श्रीरायको जगन्नाथ और स्वजनोंके दर्शनका आदेश :—

प्रभु कहे,—"शीघ्र गिया कर दरशन।
ऐछे घर याइ' कर कुटुम्ब मिलन॥"39॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"अब शीघ्र जाकर श्रीजगन्नाथदेवका दर्शन करो और वहाँसे घर जाकर अपने परिवारजनोंसे मिलो॥"39॥

श्रीरायके द्वारा महाप्रभुकी आज्ञाका पालन :—

प्रभु आज्ञा पाञा राय चलिला दरशने।
रायेर प्रेमभक्ति-रीति बुझे कोन् जने॥ 40॥

अनुवाद—महाप्रभुकी आज्ञा पाकर श्रीरामानन्द राय श्रीजगन्नाथका दर्शन करने चले। श्रीरामानन्द रायकी प्रेमभक्तिकी रीतिको कौन समझ सकता है?॥ 40॥

श्रीसार्वभौमसे राजाकी अपने प्रति महाप्रभुकी
कृपा-प्राप्तिके विषयमें जिज्ञासा :—

क्षेत्रे आसि' राजा सार्वभौमे बोलाइला।
सार्वभौमे नमस्करि' ताँहारे पुछिला॥ 41॥

"मोर लागि' प्रभुपदे कैले निवेदन?"
सार्वभौम कहे,—"कैनु अनेक यतन॥ 42॥

श्रीसार्वभौमके द्वारा महाप्रभुकी दृढ़ और
अचल वितृष्णाका ज्ञापन :—

तथापि ना करे तेँह राज-दरशन।
क्षेत्र छाड़ि' याबेन पुनः यदि करि निवेदन॥"43॥

अनुवाद—नीलाचलमें आकर राजा प्रतापरुद्रने

श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यको अपने पास बुलवाया। श्रीसार्वभौमके आनेपर राजाने उन्हें प्रणाम किया और उनसे पूछा,—"क्या आपने मेरे लिये महाप्रभुके चरणोंमें प्रार्थना की?" श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने कहा,—"यद्यपि मैंने अनेक यत्न किये, तथापि वे राजाका दर्शन नहीं करना चाहते और यदि मैं उनसे पुनः निवेदन करूँगा, तो वे नीलाचल छोड़कर चले जायेंगे॥"41–43॥

राजाका गम्भीर विलाप और खेदपूर्ण उक्ति :—

शुनिया राजार मने दुःख उपजिला।
विषाद करिया किछु कहिते लागिला॥44॥

"पापी-नीच उद्धारिते ताँर अवतार।
जगाइ माधाइ करियाछेन उद्धार॥45॥

प्रतापरुद्र छाड़ि' करिबे जगत् निस्तार।
एइ प्रतिज्ञा करि' करियाछेन अवतार?॥46॥

अनुवाद—यह सुनकर राजा प्रतापरुद्रके मनमें बहुत दुःख हुआ और वे निराश होकर कहने लगे,—"पापी और नीच लोगोंका उद्धार करनेके लिये ही उनका अवतार हुआ है और उन्होंने जगाइ-माधाइ तकका भी उद्धार किया। क्या वे ऐसी प्रतिज्ञा करके अवतरित हुए हैं कि प्रतापरुद्रको छोड़कर समस्त जगत्का उद्धार करेंगे?॥44–46॥

श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक (8/70)—

अदर्शनीयानपि नीचजातीन् संवीक्षते
हन्त तथापि नो माम्।
मदेकवर्जं कृपयिष्यतीति निर्णीय
किं सोऽवततार देवः॥47॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥47॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अदर्शनीय नीच जातिके भी सभी लोगोंको दर्शन दे रहे हैं, तथापि मुझे दर्शन नहीं देंगे। मेरे अतिरिक्त सभी जीवोंपर कृपा करेंगे, यही निश्चय करके ही क्या वे अवतीर्ण हुए हैं?॥47॥

अनुभाष्य—

अदर्शनीयान् (द्रष्टुमनर्हान्) नीचजातीन् (नीचकुलोद्भूतान् अधमवृत्तिजीवनान्) अपि संवीक्षते (करुणया अवलोकयति, कृपयति); तथापि, हन्त (खेदे) मां न [वीक्षते]; मदेकवर्ज्जं (मामेकं त्यक्त्वा अन्यं सर्वं) कृपयिष्यति इति निर्णीय (स्थिरीकृत्य) किं सः देवः (गौरहरिः) भुवि अवततार (प्रकटोऽभूत्)?

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥47॥

महाप्रभु-कृपा न पाकर राजाका प्राण-त्यागका सङ्कल्प :—

ताँर प्रतिज्ञा—मोरे ना करिबे दरशन।
मोर प्रतिज्ञा—ताँहा बिना छाड़िब जीवन॥48॥

यदि सेइ महाप्रभुर ना पाइ कृपा-धन।
किवा राज्य, किवा देह,—सब अकारण॥"49॥

अनुवाद—उनकी यह प्रतिज्ञा है—वे मेरा मुख नहीं देखेंगे। तो मेरी भी यह प्रतिज्ञा है—मैं उनके दर्शनके बिना अपना जीवन त्याग दूँगा। यदि महाप्रभुका कृपा-धन मुझे प्राप्त नहीं हुआ, तो मेरा राज्य और मेरी यह देह—सब व्यर्थ हैं॥"48–49॥

राजाकी महाप्रभुमें प्रीतिको देखकर
श्रीसार्वभौमको आश्चर्य :—

एत शुनि' सार्वभौम हइला चिन्तित।
राजार अनुराग देखि' हइला विस्मित॥50॥

अनुवाद—यह सुनकर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य बहुत चिन्तित हो गये और साथ ही राजाका महाप्रभुके प्रति अनुराग देखकर वे विस्मित हो गये॥50॥

श्रीभट्टाचार्यके द्वारा सान्त्वना दान :—

भट्टाचार्य कहे,—"देव, ना कर विषाद।
तोमारे प्रभुर अवश्य हइबे प्रसाद॥51॥

तेँह—प्रेमाधीन, तोमार प्रेम—गाढ़तर।
अवश्य करिबेन कृपा तोमार उपर॥52॥

अनुवाद—श्रीभट्टाचार्यने कहा,—"राजन्! आप निराश

मत होइये। आपपर महाप्रभुकी कृपा अवश्य होगी। आपका उनके प्रति प्रगाढ़ प्रेम है और वे प्रेमके अधीन हैं, इसलिये वे आपपर अवश्य ही कृपा करेंगे॥ 51–52॥

महाप्रभुके साथ राजाके साक्षात्कारका उपाय निर्धारण :—

तथापि कहिये आमि एक उपाय।
एइ उपाय कर, प्रभु देखिबे याहाय॥ 53॥

रथयात्रा-दिने प्रभु सब भक्त लञा।
रथ-आगे नृत्य करिबेन प्रेमाविष्ट हञा॥ 54॥

प्रेमावेशे पुष्पोद्याने करिबेन प्रवेश।
सेइकाले एकले तुमि छाड़ि' राजवेश॥ 55॥

'कृष्ण-रासपञ्चाध्याय' करिते पठन।
एकले याइ' महाप्रभुर धरिबे चरण॥ 56॥

बाह्यज्ञान नाहि, से-काले कृष्णनाम शुनि'।
आलिङ्गन करिबेन तोमाय 'वैष्णव' जानि'॥ 57॥

श्रीरामानन्दके द्वारा महाप्रभुका कठिन मन भी द्रवीभूत :—

रामानन्द राय, आजि तोमार प्रेम-गुण।
प्रभु-आगे कहिते, प्रभुर फिरि' गेल मन॥"58॥

अनुवाद—तथापि मैं आपको एक उपाय बतलाता हूँ। इस उपायको करनेसे आपको महाप्रभुके दर्शन होंगे। रथ-यात्राके दिन महाप्रभु अपने सभी भक्तोंको अपने साथ लेकर रथके आगे प्रेमाविष्ट होकर नृत्य करेंगे और प्रेमावेशमें वे पुष्पोद्यानमें प्रवेश करेंगे। उस समय आप अपने राजवेशको छोड़कर साधारण वेशमें अकेले वहाँ जाना। कृष्ण-रासपञ्चाध्यायका पाठ करते हुए महाप्रभुके श्रीचरणोंको पकड़ लेना। उस समय महाप्रभुको प्रेमावेशके कारण बाह्यज्ञान नहीं रहेगा, इसलिये उस समय आपके मुखसे श्रीकृष्ण नाम सुनकर वे आपको 'वैष्णव' समझकर आपका आलिङ्गन करेंगे। रामानन्दरायने आज जब आपके प्रेमके गुणोंका महाप्रभुके समक्ष वर्णन किया, तब महाप्रभुका मन आपके प्रति बदल गया॥"53–58॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीमद्भागवतके (दशम स्कन्ध, 29–33 अध्याय) श्रीकृष्णके रास-पञ्चाध्यायकी कविताओंका पाठ करते-करते आप अकेले जाकर महाप्रभुके श्रीचरण पकड़ लेना॥ 56॥

अनुभाष्य— *'पुष्पोद्याने'*—गुण्डिचामें॥ 55॥

महाप्रभुकी कृपाप्राप्तिकी आशामें राजाका दृढ़ सङ्कल्प :—

शुनि' गजपतिर मने सुख उपजिल।
प्रभुरे मिलिते एइ मन्त्रणा दृढ़ कैल॥ 59॥

राजाकी अधीरता और दिनोंको गिनना :—

स्नानयात्रा कबे हबे पुछिल भट्टेरे।
भट्ट कहे,—"तिन दिन आछये यात्रारे॥"60॥

अनुवाद—यह सुनकर गजपतिका (राजा प्रतापरुद्रका) मन प्रसन्न हो गया। श्रीसार्वभौमके परामर्श अनुसार उन्होंने महाप्रभुसे मिलनेके दृढ़ निश्चय कर लिया और उनसे पूछा,—"श्रीजगन्नाथदेवकी स्नानयात्रा कब होगी? श्रीभट्टाचार्यने उत्तर दिया,—"स्नानयात्रामें अभी तीन दिन बाकी हैं॥"59–60॥

श्रीसार्वभौमका प्रस्थान; स्नानयात्रामें महाप्रभुकी प्रसन्नता :—

राजारे प्रबोधिया भट्ट गेला निजालय।
स्नानयात्रा-दिने प्रभुर आनन्द हृदय॥ 61॥

स्नानयात्रा देखि' प्रभुर हैल बड़ सुख।
ईश्वरेर 'अनवसरे' पाइल बड़ दुःख॥ 62॥

अनवसरके समय महाप्रभुका श्रीकृष्ण-विरह
और अकेले ही आलालनाथ जाना :—

गोपीभावे विरहे प्रभु व्याकुल हञा।
आलालनाथे गेला प्रभु सबारे छाड़िया॥ 63॥

अनुवाद—इस प्रकार राजा प्रतापरुद्रको आश्वस्त करके श्रीसार्वभौम अपने घर चले गये। स्नान-यात्राके दिन महाप्रभुके हृदयमें बड़ा आनन्द था। श्रीजगन्नाथदेवकी स्नान-यात्रा देखकर महाप्रभु बहुत प्रसन्न हुए, परन्तु स्नान-यात्राके बाद 'अनवसर'में महाप्रभुको श्रीजगन्नाथके

दर्शन न होनेसे बहुत दुःख हुआ और वे गोपीभावमें आविष्ट होकर विरहमें कातर हो गये। तब वे सबको छोड़कर अकेले ही आलालनाथ चले गये॥ 61–63॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अनवसरके समय श्रीजगन्नाथजीके दर्शन प्राप्त ना कर पानेके कारण महाप्रभु श्रीकृष्णके विरहमें व्याकुल-अवस्थामें आलालनाथमें जाकर रहे॥ 63॥

अनुभाष्य— *'अनवसर'*—स्नानयात्राके बाद श्रीजगन्नाथदेवके अङ्ग-रागादिके उद्देश्यसे श्रीविग्रहको दर्शनार्थियोंकी दृष्टिसे दूर रखा जाता है। इस कालको ही 'अनवसर' कहते हैं॥ 62॥

महाप्रभुको भक्तोंके द्वारा गौड़ीय-भक्तोंके आगमनका संवाद देना :—

पाछे प्रभुर निकट आइला भक्तगण।
गौड़ हैते भक्त आइसे,—कैल निवेदन॥ 64॥

अनुवाद—बादमें भक्तगण भी महाप्रभुके पास आलालनाथ आये और उन्होंने महाप्रभुसे निवेदन किया कि गौड़देशसे भक्त श्रीजगन्नाथपुरी आ रहे हैं॥ 64॥

महाप्रभुके साथ श्रीभट्टाचार्यका पुरीमें आगमन और राजाको महाप्रभुका समाचार देना :—

सार्वभौम नीलाचले आइला प्रभु लञा।
'प्रभु आइला'—राजा-ठाञि कहिलेन गिया॥ 65॥

गौड़देशसे सबसे पहले श्रीगोपीनाथाचार्यका आगमन :—

हेनकाले आइला तथा गोपीनाथाचार्य।
राजाके आशीर्वाद करि' कहे,—"शुन भट्टाचार्य॥ 66॥

दो सौ गौड़ीय गौरभक्तोंके आगमनका समाचार देना और उनके रहनेके स्थानकी व्यवस्थाके लिये अनुरोध :—

गौड़ हैते वैष्णव आसितेछेन दुइशत।
महाप्रभुर भक्त, सब—महाभागवत॥ 67॥

नरेन्द्रे आसिया सबे हैल विद्यमान।
ताँ-सबारे चाहि वासा प्रसाद-समाधान॥"68॥

अनुवाद—यह संवाद सुनकर श्रीसार्वभौम महाप्रभुको लेकर नीलाचल आ गये। श्रीसार्वभौमने राजाके पास जाकर उन्हें महाप्रभुके आनेका समाचार दिया। तभी वहाँ श्रीगोपीनाथाचार्य भी आ गये। उन्होंने राजाको आशीर्वाद देकर श्रीसार्वभौमसे कहा,—"सुनो भट्टाचार्य! गौड़देशसे दो-सौ वैष्णव आ रहे हैं। वे सब महाभागवत हैं और महाप्रभुके भक्त हैं। वे सब नरेन्द्र सरोवर तक आ गये हैं और वहाँ प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैं चाहता हूँ कि उन सबके रहनेके स्थान तथा प्रसादकी व्यवस्था हो॥"65–68॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'नरेन्द्र'*—'नरेन्द्र' नामक सरोवर, जिसमें 'चन्दन-यात्रा' उत्सव होता है। आज तक भी गौड़ीय भक्तगण पुरुषोत्तममें प्रवेश करते समय नरेन्द्र सरोवरके जलमें हाथ-पैर धोकर श्रीमन्दिरमें जाते हैं॥ 68॥

अनुभाष्य— *'गोपीनाथचार्य'*—आदिलीला 10/130 संख्या देखें।

'महाभागवत'—निष्किञ्चन (संसारमें किसी वस्तुको अपना न माननेवाले), वर्णाश्रमसे अतीत, श्रीकृष्णके शरणागत परमहंस; जैसे श्रीनरोत्तम ठाकुर स्वरचित 'प्रार्थना'में लिखते हैं,—

"गौराङ्गेर सङ्गिगणे, नित्यसिद्ध करि' माने,
से याय व्रजेन्द्रसुतपाश।"

अर्थात् "जो महाप्रभुके सङ्गियोंको नित्य सिद्ध परिकर मानता है, वह निश्चय ही श्रीव्रजेन्द्रनन्दनके पास जाता है॥"66–68॥

राजाके द्वारा सब व्यवस्थाके लिये पड़िछाको आदेश :—

राजा कहे,—"पड़िछाके आमि आज्ञा दिब।
वासा आदि ये चाहिये,—पड़िछा सब दिब॥ 69॥

गौड़ीय भक्तोंका परिचय देनेके लिये श्रीभट्टाचार्यसे राजाका अनुरोध :—

महाप्रभुर गण यत आइल गौड़ हैते।
भट्टाचार्य, एके एके देखाह आमाते॥"70॥

अनुवाद—यह सुनकर राजा प्रतापरुद्रने कहा,—"मैं 'पड़िछा' को आदेश दे दूँगा। वासस्थान आदि जो कुछ भी चाहिये, पड़िछा वह सब आपको दे देगा। महाप्रभुके जितने भी भक्त गौड़देशसे आये हैं, हे भट्टाचार्य! आप मुझे उन सबके एक-एक करके दर्शन कराइये॥"69-70॥

श्रीभट्टाचार्यके द्वारा अपनी असमर्थता बतलाना, इसके लिये श्रीगोपीनाथसे प्रार्थना, तीनोंका अट्टालिकापर चढ़ना :—

भट्ट कहे,—"अट्टालिकाय कर आरोहण।
गोपीनाथ चिने सबारे, कराबे दरशन॥71॥

आमि काहारे नाहि चिनि, चिनिते मन हय।
गोपीनाथाचार्य सबारे करा'बे परिचय॥"72॥

एत बलि' तिन जन अट्टालिकाय चड़िल।
हेनकाले वैष्णव सब निकटे आइल॥73॥

अनुवाद—श्रीभट्टाचार्यने कहा,—"आइये हम सब महलकी अट्टालिकापर चढ़ जाते हैं। श्रीगोपीनाथाचार्य सभी भक्तोंको पहचानते हैं, वे आपको सबके दर्शन करायेंगे। मैं भी किसी भक्तको नहीं पहचानता, परन्तु मेरी भी उनके विषयमें जाननेकी इच्छा है। इसलिये श्रीगोपीनाथाचार्य ही उन सबका परिचय करायेंगे।" इतना कहकर तीनों अट्टालिकापर चढ़ गये। उस समय वे सब वैष्णव राजभवनके निकट आ गये थे॥71-73॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीसार्वभौमने कहा,—मैं किसीको भी नहीं पहचानता, (किन्तु) जाननेकी इच्छा होती है॥72॥

महाप्रभुकी प्रेरणासे श्रीदामोदरस्वरूप और श्रीगोविन्दके द्वारा माला एवं प्रसादके साथ भक्तोंका स्वागत :—

दामोदरस्वरूप, गोविन्द—दुइ जन।
माला-प्रसाद लञा याय, याँहा वैष्णवगण॥74॥

प्रथमेते महाप्रभु पाठाइल दुँहारे।
राजा कहे,—"एइ दुइ कोन् चिनाह आमारे॥"75॥

अनुवाद—महाप्रभुने गौड़देशके भक्तोंके अभिनन्दनके लिये श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीगोविन्द—इन दोनोंको श्रीजगन्नाथदेवकी माला और प्रसाद लेकर भेजा था। ये दोनों वहाँ जा रहे थे, जहाँ वे वैष्णव लोग थे। राजा प्रतापरुद्रने पूछा,—"ये दोनों कौन है? मुझे इनका परिचय दीजिये॥"74-75॥

राजाको भट्टाचार्यके द्वारा (1) श्रीदामोदर-स्वरूपका परिचय देना :—

भट्टाचार्य कहे,—"एइ स्वरूप-दामोदर।
महाप्रभुर हय इँह द्वितीय कलेवर॥76॥

(2) श्रीगोविन्दका परिचय प्रदान-

द्वितीय, गोविन्द—भृत्य, इँहा दोँहा दिया।
माला पाठाञाछेन प्रभु गौरव करिया॥"77॥

अनुवाद—श्रीभट्टाचार्यने कहा,—"ये श्रीस्वरूप दामोदर हैं। महाप्रभुके ये दूसरे शरीर हैं। उनके साथ ये दूसरे भक्त महाप्रभुके सेवक श्रीगोविन्द हैं। महाप्रभुने इन दोनोंको वैष्णवोंका सम्मान करनेके लिये माला देकर भेजा है॥76-77॥

श्रीअद्वैताचार्यको माला पहनाना :—

आदौ माला अद्वैतेरे स्वरूप पराइल।
पाछे गोविन्द द्वितीय माला आनि' ताँरे दिल॥78॥

श्रीगोविन्दके प्रणाम करनेपर श्रीअद्वैताचार्यके प्रश्नके उत्तरमें श्रीगोविन्दका परिचय देना :—

तबे गोविन्द दण्डवत् कैल आचार्येरे।
ताँरे नाहि चिने आचार्य, पुछिल दामोदरे॥79॥

दामोदर कहे,—"इँहार 'गोविन्द' नाम।
ईश्वर-पुरीर सेवक अति गुणवान्॥80॥

प्रभुर सेवा करिते पुरी आज्ञा दिल।
अतएव प्रभु ताँरे निकटे राखिल॥"81॥

अनुवाद—सबसे पहले श्रीस्वरूप दामोदरने श्रीअद्वैताचार्यको माला पहनायी और बादमें श्रीगोविन्दने भी अद्वैताचार्यको दूसरी माला पहनाकर उनको दण्डवत्

प्रणाम किया। श्रीअद्वैताचार्य श्रीगोविन्दको नहीं पहचानते थे, इसलिये उनके बारेमें श्रीस्वरूप दामोदरसे पूछा। श्रीस्वरूप दामोदरने कहा,—"इनका नाम 'गोविन्द' है। ये श्रीईश्वरपुरीके सेवक थे और बहुत गुणवान् हैं। श्रीईश्वरपुरीने इन्हें महाप्रभुकी सेवा करनेके लिये आदेश दिया था, इसलिये महाप्रभुने इन्हें अपने पास रख लिया है॥"78-81॥

श्रीअद्वैताचार्यको देखकर राजाका कौतूहल :—

राजा कहे,—"याँरे माला दिल दुइजन।
आश्चर्य तेज, बड़ महान्त,—कह कोन् जन?"॥82॥

अनुवाद—राजा प्रतापरुद्रने कहा,—"जिन्हें श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीगोविन्दने माला पहनायी है, उनके तेजको देखकर बड़ा आश्चर्य हो रहा है, वे अवश्य ही बड़े महापुरुष होंगे। कृपा करके बतलाइये कि वे कौन हैं?"॥82॥

(3) श्रीअद्वैताचार्यका परिचय देना :—

आचार्य कहे,—"इँहार नाम अद्वैत आचार्य।
महाप्रभुर मान्यपात्र, सर्व-शिरोधार्य॥83॥

अनुवाद—श्रीगोपीनाथाचार्यने कहा,—"इनका नाम श्रीअद्वैताचार्य है। ये महाप्रभुके भी आदरणीय और अन्यान्य सभी भक्तोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं॥"83॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'आचार्य कहे'*—श्रीगोपीनाथाचार्यने कहा॥83॥

(4) श्रीवास, (5) श्रीवक्रेश्वर,
(6) श्रीविद्यानिधि, (7) श्रीगदाधर :—

श्रीवास-पण्डित इँह, पण्डित-वक्रेश्वर।
विद्यानिधि-आचार्य, इँह पण्डित-गदाधर॥84॥

अनुवाद—ये श्रीवास पण्डित, श्रीवक्रेश्वर पण्डित, और श्रीविद्यानिधि आचार्य हैं तथा ये श्रीगदाधर पण्डित हैं॥84॥

अनुभाष्य—*'विद्यानिधि आचार्य'* (आचार्य निधि)—पुण्डरीक विद्यानिधि; आदिलीला 10/14 संख्याका अनुभाष्य और वैष्णव-मञ्जुषा-समाहृति-(प्रथम संख्या) देखें॥84॥

(8) श्रीचन्द्रशेखर, (9) श्रीपुरन्दर,
(10) श्रीगङ्गादास, (11) श्रीशङ्कर :—

आचार्यरत्न इँह, पण्डित-पुरन्दर।
गङ्गादास पण्डित इँह, पण्डित-शङ्कर॥85॥

अनुवाद—ये श्रीआचार्य रत्न, श्रीपुरन्दर पण्डित, ये श्रीगङ्गादास पण्डित और श्रीशङ्कर पण्डित हैं॥85॥

(12) श्रीमुरारि, (13) श्रीनारायण,
(14) श्रीहरिदास ठाकुर :—

एइ मुरारि गुप्त, इँह पण्डित-नारायण।
हरिदास ठाकुर इँह भुवनपावन॥86॥

अनुवाद—ये श्रीमुरारि गुप्त हैं, ये श्रीनारायण पण्डित और ये ब्रह्माण्डको पवित्र करनेवाले श्रीहरिदास ठाकुर हैं॥86॥

(15) श्रीहरिभट्ट, (16) श्रीनृसिंहानन्द,
(17) श्रीवासुदेव दत्त, (18) श्रीसेन शिवानन्द :—

एइ हरि-भट्ट, एइ श्रीनृसिंहानन्द।
एइ वासुदेव दत्त, एइ शिवानन्द॥87॥

अनुवाद—ये श्रीहरि भट्ट हैं, ये श्रीनृसिंहानन्द हैं, ये श्रीवासुदेव दत्त और ये श्रीशिवानन्द सेन हैं॥87॥

(19) श्रीगोविन्द, (20) श्रीमाधव, (21) श्रीवासुघोष :—

गोविन्द, माधव घोष, एइ वासुघोष।
तिन भाइर कीर्त्तने प्रभु पायेन सन्तोष॥88॥

अनुवाद—ये श्रीगोविन्द, श्रीमाधव घोष और श्रीवासुघोष—तीन भाई हैं। इन तीनों भाइयोंका कीर्तन सुनकर महाप्रभुको बहुत आनन्द होता है॥88॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'गोविन्द घोष'*—उत्तर-राढ़देशके कायस्थ कुलमें प्रकटित हुए थे; इन्हें ही 'घोषठाकुर'

कहते हैं; आज भी (काटोयाके निकट) अग्रद्वीपमें घोषठाकुरका मेला होता है।

'वासुघोष'—इन्होंने महाप्रभुके विषयमें अनेक गीत लिखे हैं, वे महाजनोंके गीतोंमें अग्रगण्य हैं॥ 88॥

(22) श्रीराघव, (23) श्रीनन्दन, (24) श्रीमान्,
(25) श्रीकान्त, (26) श्रीनारायण :—

राघव पण्डित, इँह आचार्य नन्दन।
श्रीमान् पण्डित एइ, श्रीकान्त, नारायण॥ 89॥

(27) श्रीशुक्लाम्बर, (28) श्रीधर,
(29) श्रीविजय, (30) श्रीवल्लभसेन,
(31) श्रीपुरुषोत्तम, (32) श्रीसञ्जय :—

शुक्लाम्बर देख, एइ श्रीधर, विजय।
वल्लभ-सेन, एइ पुरुषोत्तम, सञ्जय॥ 90॥

(33) श्रीसत्यराज, (34) श्रीरामानन्द :—

कुलीन-ग्रामवासी एइ सत्यराज-खान।
रामानन्द-आदि सबे देख विद्यमान॥ 91॥

(35) श्रीमुकुन्द, (36) श्रीनरहरि, (37) श्रीरघुनन्दन,
(38) श्रीचिरञ्जीव, (39) श्रीसुलोचन :—

मुकुन्ददास, नरहरि, श्रीरघुनन्दन।
खण्डवासी, चिरञ्जीव, आर सुलोचन॥ 92॥

कतेक कहिब, एइ देख यत जन।
चैतन्येर गण, सब—चैतन्यजीवन॥" 93॥

अनुवाद—ये श्रीराघव पण्डित, ये श्रीनन्दन आचार्य, ये श्रीमान् पण्डित, श्रीकान्त और श्रीनारायण हैं। देखो! ये श्रीशुक्लाम्बर हैं, ये श्रीधर, श्रीविजय, श्रीवल्लभसेन, ये श्रीपुरुषोत्तम और श्रीसञ्जय हैं। ये कुलीनग्रामवासी श्रीसत्यराज खान, श्रीरामानन्द आदि सभी उपस्थित भक्तोंको देखो। ये खण्डवासी श्रीमुकुन्ददास, श्रीनरहरि, श्रीरघुनन्दन, चिरञ्जीव और श्रीसुलोचन हैं। कहाँ तक कहूँ? ये जितने भी भक्त आप देख रहे हैं, सभी महाप्रभुके गण हैं और महाप्रभु ही इन सबके जीवन स्वरूप हैं॥"89-93॥

वैष्णवोंके तेजके दर्शन और अपूर्व
कीर्तनादिके श्रवणसे राजाको आश्चर्य :—

राजा कहे,—"देखि' मोर हैल चमत्कार।
वैष्णवेर ऐछे तेज देखि नाहि आर॥ 94॥

कोटिसूर्य-सम सब—उज्ज्वल-वरण।
कभु नाहि शुनि एइ मधुर कीर्त्तन॥ 95॥

ऐछे प्रेम, ऐछे नृत्य, ऐछे हरिध्वनि।
काँहा नाहि देखि, ऐछे काँहा नाहि शुनि॥" 96॥

अनुवाद—राजा प्रतापरुद्रने कहा,—"इन सबको देखकर मुझे बहुत आश्चर्य हो रहा है। वैष्णवोंका ऐसा तेज मैंने पहले कभी भी नहीं देखा, ये सब करोड़ों-करोड़ों सूर्यके समान उज्जवल वर्णके हैं। इनके कीर्तनके जैसा मधुर कीर्तन मैंने पहले कभी भी नहीं सुना। और ऐसा प्रेम, ऐसा नृत्य और ऐसी हरिध्वनि—मैंने न तो कहीं देखी है और न ही कहीं सुनी है॥"94-96॥

सङ्कीर्त्तनके प्रवर्त्तक श्रीकृष्णचैतन्य :—

भट्टाचार्य कहे एइ मधुर वचन।
"चैतन्येर सृष्टि—एइ प्रेम सङ्कीर्त्तन॥ 97॥

विमुख-जीवको श्रीकृष्ण-उन्मुख करने
रूपी प्रचार ही सङ्कीर्तन :—

अवतरि' चैतन्य कैल धर्मप्रचारण।
कलिकाले धर्म—कृष्णनाम-सङ्कीर्त्तन॥ 98॥

चैतन्य प्राप्त जीवके द्वारा गौर-कीर्तन करना ही बुद्धिमता
और जाड्यता (आलस्य) ही मूर्खता :—

सङ्कीर्त्तन-यज्ञे ताँरे करे आराधन।
सेइ त' सुमेधा, आर—कलिहत-जन॥" 99॥

अनुवाद—श्रीभट्टाचार्यने तब मधुर वचन कहे,—"यह कीर्तन महाप्रभुकी सृष्टि है—यह प्रेम-सङ्कीर्तन है। कलियुगका धर्म श्रीकृष्णनाम-सङ्कीर्तन ही है और महाप्रभुने अवतीर्ण होकर उसी धर्मका प्रचार किया है। जो कलियुगमें सङ्कीर्तन-यज्ञके द्वारा महाप्रभुकी आराधना करते हैं, वे ही बुद्धिमान हैं। जिन सबकी बुद्धि कलिके द्वारा हर ली गयी है, वे ऐसा नहीं करते॥"97-99॥

अमृतप्रवाह भाष्य—कलिकालमें सङ्कीर्तन-यज्ञके द्वारा जो श्रीकृष्णचैतन्यकी आराधना करते हैं, वे सुमेधा (बुद्धिमान) हैं। जो उस प्रकारसे भजन नहीं करते, वे सब व्यक्ति कलिहत अर्थात् कलिके द्वारा हत (मारी गयी) बुद्धिवाले हैं॥ 99॥

अनुभाष्य—लब्धचैतन्य अर्थात् श्रीकृष्णसेवोन्मुख जीवकी श्रीकृष्णकीर्तनरूप चेतनमयी वाणीके प्रभावसे अन्य जीव जाग्रत-चेतन होकर सेवोन्मुखी वृत्ति प्राप्त करके शुद्ध सेवक (भक्त) होते हैं। इस प्रकार शुद्धभक्तोंकी अपने गोत्र-वर्द्धनरूपी (अपने जैसे शुद्धभक्तोंकी संख्या वृद्धिरूपी) उपासनामें ही श्रीकृष्णचैतन्यको आनन्द होता है। इस उपासनामें ही जीवकी सर्वापेक्षा अधिक बुद्धिमताका परिचय है।

तुच्छ, जड़-स्वार्थपरक जीवका ताण्डव नृत्य-कीर्तन आदि समस्त क्रियाएँ जड़ताकी ही परिचायक हैं। इसका कारण यह है कि 'वास्तव-वस्तु ही परम सेव्य है', इस बातमें उसका अविश्वास और संशय है। इसलिये उसका भगवद्-कीर्तन भी क्षणिक कृत्रिम भावुकता और उत्तेजना अथवा आन्दोलन मात्र है॥ 99॥

श्रीमद्भागवत (11/5/32)—

कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।
यज्ञैः सङ्कीर्त्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः॥ 100॥

अनुवाद—जिनके मुखमें सदा श्रीकृष्ण-वर्ण अर्थात् श्रीकृष्णनाम और जिनकी अङ्गकान्ति अकृष्ण अर्थात् गौर है, उन्हीं अङ्ग, उपाङ्ग, अस्त्र तथा पार्षदोंसे परिवेष्टित महापुरुषकी बुद्धिमान् व्यक्ति सङ्कीर्तनप्राय यज्ञके द्वारा पूजा करते हैं॥ 100॥

अनुभाष्य—आदिलीला 3/51 संख्या देखें॥ 100॥

परविद्यापति चैतन्य ही श्रीकृष्ण,
जड़विद्या या अपरा-विद्या उनसे विमुख :—

राजा कहे,—"शास्त्र-प्रमाणे चैतन्य हन कृष्ण।
तबे केने पण्डित सब ताँहाते वितृष्ण?" ॥ 101॥

अनुवाद—राजा प्रतापरुद्रने कहा,—"शास्त्र-प्रमाणके आधारपर जब महाप्रभु साक्षात् श्रीकृष्ण हैं, तब पण्डित लोग उनके प्रति उदासीन क्यों रहते हैं?"॥ 101॥

सेवान्मुखतासे ही कृपा-प्राप्ति, कृपाके
प्रभावसे ही भगवान्की उपलब्धि :—

भट्ट कहे,—"ताँर कृपा-लेश हय याँरे।
सेइ से ताँहारे 'कृष्ण' करि' लइते पारे॥ 102॥

कृपाके बिना जड़विद्यासे नास्तिकताकी
वृद्धि और मोहकी प्राप्ति :—

ताँर कृपा नहे यारे, पण्डित नहे केने।
देखिले शुनिलेह ताँरे 'ईश्वर' ना माने॥" 103॥

अनुवाद—श्रीभट्टाचार्यने कहा,—"जिसपर महाप्रभुकी लेशमात्र भी कृपा होती है, वही उन्हें श्रीकृष्णके रूपमें स्वीकार कर पाता है। और जिसपर उनकी कृपा नहीं हो, तो भले कितना बड़ा पण्डित ही क्यों ना हो, सब कुछ देख-सुनकर भी उनको 'ईश्वर' नहीं मानता॥"102-103॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिनके प्रति उनकी कृपा नहीं है, वह भले ही पण्डित क्यों न हो, उनका समस्त ऐश्वर्य देखने-सुननेपर भी वह उनकी कृपाके अभावके कारण श्रीकृष्णचैतन्यको 'ईश्वर' मान नहीं पाता॥ 102-103॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 6/82-87 संख्या देखें॥ 102-103॥

श्रीमद्भागवत (10/14/29)—

तथापि ते देव पदाम्बुजद्वय-
प्रसादलेशानुगृहीत एव हि।
जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो
न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन्॥ 104॥

अनुवाद—हे देव, आपके श्रीचरणकमलोंकी लेशमात्र कृपाको प्राप्त करनेवाला व्यक्ति ही केवल आपकी महिमाके तत्त्वको जान सकता है; किन्तु जो चिरकालसे भी अनुमानके द्वारा शास्त्रोंका विचार करते हुए

अन्वेषण करते हैं, उनमेंसे कोई भी उस तत्त्वको नहीं जान पाता॥ 104॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 6/84 संख्या देखें॥ 104॥

श्रीजगन्नाथ-दर्शनसे पहले महाप्रभुके
दर्शनके कारणकी जिज्ञासा :—

राजा कहे,—"सबे जगन्नाथ ना देखिया।
चैतन्येर वासा-गृहे चलिला धाञा॥"105॥

अनुवाद—राजा प्रतापरुद्रने कहा,—"सभी भक्त श्रीजगन्नाथका दर्शन न करके क्यों श्रीचैतन्य महाप्रभुके वासस्थानकी ओर दौड़े चले जा रहे हैं॥"105॥

गौड़ीय भक्तोंकी गौर-प्रीति :—

भट्ट कहे,—"एइ त' स्वाभाविक प्रेम-रीत।
महाप्रभु मिलिबारे उत्कण्ठित चित॥ 106॥
आगे ताँरे मिलि' सबे ताँरे सङ्गे लञा।
ताँर सङ्गे जगन्नाथ देखिबेन गिया॥"107॥

अनुवाद—श्रीभट्टाचार्यने कहा,—"यह तो स्वाभाविक प्रेमकी रीति है। इन सब भक्तोंका मन महाप्रभुसे मिलनेके लिये उत्कण्ठित हो रहा है। ये सब भक्त पहले महाप्रभुसे मिलकर उन्हें अपने साथ ले जाकर उनके साथ श्रीजगन्नाथका दर्शन करेंगे॥"106-107॥

वाणीनाथको प्रचुर प्रसाद वहन करते
देखकर उसके कारणकी जिज्ञासा :—

राजा कहे,—"भवानन्देर पुत्र वाणीनाथ।
प्रसाद लञा सङ्गे चले पाँच-सात॥ 108॥
महाप्रभुर आलये करिल गमन।
एत महाप्रसाद चाहि'—कह कि कारण?"॥ 109॥

अनुवाद—राजा प्रतापरुद्रने कहा,—"श्रीभवानन्द रायके पुत्र वाणीनाथ पाँच-सात लोगोंको साथ श्रीजगन्नाथजीका प्रसाद लेकर महाप्रभुके घरकी ओर जा रहे हैं। महाप्रभुको इतना महाप्रसाद क्यों चाहिये?"॥ 108-109॥

श्रीभट्टका उत्तर—महाप्रभुकी इच्छा ही कारण :—

भट्ट कहे,—"भक्तगण आइल जानिञा।
प्रभुर इङ्गिते प्रसाद याय ताँरा लञा॥"110॥

अनुवाद—श्रीभट्टाचार्यने कहा,—"भक्त लोग पुरीमें आ चुके है, ऐसा जानकर महाप्रभुके इङ्गितसे वाणीनाथ इतना सब प्रसाद लेकर जा रहे हैं॥"110॥

उपवास और मुण्डनादि क्रियाके बिना ही
प्रसाद ग्रहणके कारणकी जिज्ञासा :—

राजा कहे,—"उपवास, क्षौर—तीर्थेर विधान।
ताहा ना करिया केने खाइब अन्न-पान?"॥ 111॥

श्रीभट्टके द्वारा रागमार्गमें आचरण बताना :—

भट्ट कहे,—"तुमि येइ कह, सेइ विधि धर्म।
एइ रागमार्गे आछे सूक्ष्मधर्म-मर्म॥ 112॥

भगवान्‌के परोक्ष और साक्षात् आदेश :—

ईश्वरेर परोक्ष आज्ञा—क्षौर, उपोषण।
प्रभुर साक्षात् आज्ञा—प्रसाद-भोजन॥ 113॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 111-113॥

अमृतप्रवाह भाष्य—राजाने कहा,—'तीर्थमें प्रवेश करनेपर उस दिन उपवास करना होता है और वहाँ मुण्डन कराना होता है—शास्त्रोंका इस प्रकार विधान है। ये सब वैष्णव वैसा न कर कैसे अन्न-जल आदि ग्रहण करेंगे?' श्रीभट्टाचार्यने कहा,—'आपने जो कहा है, वही वैध-धर्म है, किन्तु रागमार्गीय धर्मका और एक सूक्ष्म मर्म है,—भगवान्‌ने ऋषियोंके द्वारा ही परोक्षरूपसे शास्त्रोंमें मुण्डन कराने आदिकी आज्ञा दी है, किन्तु उन्होंने स्वयं प्रसाद-सेवनकी आज्ञाका प्रचार किया है॥'111-113॥

अनुभाष्य—तीर्थमें जाकर पापोंका विनाश करनेके उद्देश्यसे पूर्व दिवसमें संयम करके अगले दिन उपवास करेंगे। सिरपर चढ़े पापोंको ध्वंस करनेके लिये सिर आदिका मुण्डन करेंगे। ये सब तैर्थिक कर्मविधान त्याग करके भोजनादि करनेका क्या उद्देश्य है?॥ 111॥

ताँहा उपवास, याँहा नाहि महाप्रसाद।
प्रभु-आज्ञा-प्रसाद-त्यागे हय अपराध॥114॥

भक्तोंकी उपवासकी विधिको त्यागनेका अन्य कारण :—

विशेषे महाप्रभु करे आपने परिवेशन।
एत लाभ छाड़ि' केने करिबे उपोषण॥115॥

अनुवाद—उपवास वहाँ होता है, जहाँ महाप्रसाद उपलब्ध नहीं है। किन्तु महाप्रभुकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके प्रसादका त्याग करनेसे अपराध होता है। विशेष रूपसे महाप्रभु जब स्वयं अपने हाथोंसे प्रसाद बाँट रहे हों, तब ऐसे सौभाग्यको छोड़कर कौन उपवासकी विधिका पालन करेगा?॥114-115॥

अपने पूर्व-दृष्टान्तका वर्णन :—

पूर्वे प्रभु मोरे प्रसाद-अन्न आनि' दिल।
प्राते शय्याय बसि' आमि से अन्न खाइल॥116॥

श्रीकृष्णकृपाके फलसे सेवान्मुखताके कारण फलभोग-काममूलक नित्य-नैमित्तिक और काम्य कर्मोंका त्याग :—

याँरे कृपा करि' करेन हृदये प्रेरण।
कृष्णाश्रय हय, छाड़े वेद-लोक-धर्म॥"117॥

अनुवाद—एक बार महाप्रभुने मुझे अन्न प्रसाद लाकर दिया था। उस समय मैं प्रातः जागकर अपनी शय्यापर ही बैठा था और मैंने उसी अवस्थामें प्रसाद खा लिया था। कृपा करके भगवान् जिसके हृदयमें प्रेरणा करते हैं, वही श्रीकृष्णका आश्रय लेता है और सभी प्रकारके वेद-लोक धर्मका त्याग कर देता है॥"116-117॥

भागवतका प्रमाण :—
श्रीमद्भागवत (4/29/46)—

यदा यस्यानुगृह्णाति भगवानात्मभावितः।
स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम्॥118॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥118॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिस किसी व्यक्तिके सम्बन्धमें जब आत्मभावित भगवान् हृदयमें प्रेरणाके द्वारा अनुग्रह करते हैं, तब वह लोक और वेदोंके प्रति जो परिनिष्ठित बुद्धि होती है, उसे त्याग देता है॥118॥

अनुभाष्य—ब्रह्मनिष्ठ श्रीनारद गोस्वामीने राजा प्राचीनबर्हिको पुरञ्जनके उपाख्यानके द्वारा भोगी अथवा कर्मी-जीवोंकी और कर्मकाण्डकी दुर्गतिका वर्णन करके बतलाया कि ब्रह्मा, रुद्र, मनु, दक्षादि प्रजापति, नैष्ठिक चतुःसन, मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वशिष्ठ और मैं, हम सबमेंसे कोई भी भगवद्-कृपाके बिना भगवद्-ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। तब भगवद्-कृपाके फलका वर्णन करते हुए कह रहे हैं—

भगवान् यदा आत्मभावितः (आत्मनि भावितः ध्यातः आराधितः प्रकटितः सन्) यस्य (यम् अनुगृह्णाति कृपायति), तदा सः लोके (लौकिकव्यवहारे) वेदे (वैदिककर्मानुष्ठाने) च परिनिष्ठिताम् (आसक्तां) मतिं जहाति (त्यजति)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥118॥

नीचे उतरकर राजाकी काशीमिश्र और पड़िछा-पात्रको भक्तोंकी सेवाकी व्यवस्था करनेका आदेश :—

तबे राजा अट्टालिका हैते तलेते आइला।
काशीमिश्र, पड़िछा-पात्र, दुँहे आनाइला॥119॥

प्रतापरुद्र आज्ञा दिल सेइ दुइ जने।
"प्रभु-स्थाने आसियाछेन यत प्रभुर गणे॥120॥

सबारे स्वच्छन्दे वासा, स्वच्छन्द प्रसाद।
स्वच्छन्द दर्शन कराइह, नहे येन बाध॥121॥

अनुवाद—तब राजा प्रतापरुद्र अट्टालिकासे उतरकर नीचे आये और काशीमिश्र और पड़िछा-पात्र—दोनोंको बुलाया। राजाने उन दोनोंको आज्ञा दी,—"महाप्रभुके पास जितने भी उनके भक्त आये हैं, उन सबको रहनेका अलग-अलग स्थान दो, उनकी इच्छानुसार उनके प्रसादकी व्यवस्था और मन्दिरमें दर्शन करनेकी व्यवस्था करो, जिससे उन्हें किसी भी प्रकारकी असुविधा न हो॥119-121॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'पड़िछा'*—'परीक्षा' शब्दसे 'पड़िछा' शब्द बना है; इसलिये तत्त्वकी आलोचना करना ही पड़िछाका कार्य है॥ 119॥

सेव्यके इङ्गितमात्रसे ही सेवा करना उत्तम :—

प्रभुर आज्ञा पालिह दुँहे सावधान हञा।
आज्ञा नहे, तबु करिह, इङ्गित जानिया॥ 122॥

अनुवाद—आप दोनों महाप्रभुकी आज्ञाका सावधानीपूर्वक पालन करना। यदि वे स्पष्टरूपसे आज्ञा न भी दें, तो भी उनका सङ्केत समझकर ही सब सेवाओंको करना॥ 122॥

अनुभाष्य—महाप्रभुके पास जो सब भक्त गौड़ादि देशोंसे आये हैं, उनके लिये रहनेके लिये अच्छे स्थान, अच्छे प्रसादकी व्यवस्था एवं उत्तमरूपसे श्रीजगन्नाथ-दर्शन आदिमें किसी प्रकारकी असुविधा न हो, इन सबका ध्यान रखनेके लिये प्रतापरुद्र राजाने पड़िछा-पात्रको बोल दिया। और भक्तोंकी सुविधा आदिके उद्देश्यसे महाप्रभुका स्पष्ट आदेश प्राप्त न करनेपर भी, उनका सङ्केत समझकर, जब जो-जो कर्त्तव्य है, तत्क्षणात् उसका भी पालन करे, यह बतला दिया॥ 121-122॥

श्रीसार्वभौम और श्रीगोपीनाथका थोड़ी दूर खड़े होकर भक्त और भगवान्‌के मिलनका दर्शन :—

एत बलि' विदाय दिल सेइ दुइ-जने।
सार्वभौम देखिते आइल वैष्णव-मिलने॥ 123॥

गोपीनाथाचार्य, भट्टाचार्य सार्वभौम।
दुँहे देखे दूरे प्रभु-वैष्णव-मिलन॥ 124॥

सिंहद्वार डाहिने छाड़ि' सब वैष्णवगण।
काशीमिश्र-गृह-पथे करिला गमन॥ 125॥

भक्तोंसे मिलनेके लिये महाप्रभुका स्वयं आना :—

हेनकाले महाप्रभु निजगण-सङ्गे।
वैष्णवे मिलिला आसि' पथे बहुरङ्गे॥ 126॥

अनुवाद—इतना कहकर राजा प्रतापरुद्रने उन दोनोंको विदा किया। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य आये हुए वैष्णवोंका महाप्रभुके साथ मिलन देखनेके लिये गये। श्रीगोपीनाथाचार्य और श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य—दोनों दूरसे महाप्रभु और वैष्णवोंका मिलन देखने लगे। इधर श्रीजगन्नाथ मन्दिरके सिंहद्वारको अपनी दाहिनी ओर छोड़ करके सभी वैष्णव काशीमिश्रके घरकी ओर जानेवाले मार्गकी ओर चले। और उधर महाप्रभु अपने परिकरोंके साथ मार्गमें ही सभी वैष्णवोंको बड़े आनन्दपूर्वक आकर मिले॥ 123-126॥

श्रीअद्वैतके द्वारा प्रणाम, महाप्रभुका आलिङ्गन :—

अद्वैत करिल प्रभुर चरण वन्दन।
आचार्येरे कैल प्रभु प्रेम-आलिङ्गन॥ 127॥

दोनोंका प्रेमावेश, बादमें धैर्य :—

प्रेमानन्दे हैला दुँहे परम अस्थिर।
समय देखिया प्रभु हैला किछु धीर॥ 128॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्यने महाप्रभुके चरणोंकी वन्दना की और महाप्रभुने श्रीअद्वैताचार्यका प्रेमपूर्वक आलिङ्गन किया। दोनों ही प्रेमानन्दमें परम अधीर हो गये, किन्तु समय और परिस्थिति देखकर महाप्रभु कुछ धीर हो गये॥ 127-128॥

श्रीवासादिका महाप्रभुको प्रणाम, महाप्रभुका आलिङ्गन :—

श्रीवासादि करिल प्रभुर चरण वन्दन।
प्रत्येके करिल प्रभु प्रेम-आलिङ्गन॥ 129॥

सभी भक्तोंके साथ यथायोग्य वार्त्तालाप :—

एके एके सर्वभक्तेरे कैल सम्भाषण।
सबा लञा अभ्यन्तरे करिला गमन॥ 130॥

अनुवाद—इसके बाद श्रीवासादि भक्तोंने महाप्रभुके चरणोंकी वन्दना की। महाप्रभुने भी प्रत्येक भक्तका प्रीतिपूर्वक आलिङ्गन किया और एक-एक करके सभी भक्तोंके साथ वार्त्तालाप किया। तब उन सबको अपने साथ लेकर वे घरके अन्दर चले गये॥ 129-130॥

स्थान कम होनेपर भी काशीमिश्रके भवनमें
सभी भक्तोंका उसमें समाना :—

मिश्रेर आवास सेइ हय अल्प स्थान।
असंख्य वैष्णव ताँहा हैल परिमाण॥ 131 ॥

सभी भक्तोंको स्वयं महाप्रभुके द्वारा माला-गन्ध प्रदान :—

आपन-निकटे प्रभु सबा बसाइला।
आपनि स्वहस्ते सबारे माल्य-गन्ध दिला॥ 132 ॥

अनुवाद—श्रीकाशीमिश्रके घरमें स्थान अपर्याप्त था, परन्तु असंख्य वैष्णव वहाँ समा गये। महाप्रभुने सब भक्तोंको अपने पास बैठा लिया और अपने हस्तकमलसे सबको माला एवं चन्दन प्रदान किया॥ 131-132 ॥

श्रीसार्वभौमके साथ सभी भक्तोंका मिलन :—

भट्टाचार्य आइला तबे महाप्रभुर स्थाने।
यथायोग्य मिलिला सबाकार सने॥ 133 ॥

अनुवाद—तब श्रीभट्टाचार्य महाप्रभुके वासस्थानपर आये और वे सभी भक्तोंसे यथोचित रूपसे मिले॥ 133 ॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीअद्वैतकी स्तुति :—

अद्वैतेरे कहेन प्रभु मधुर वचने।
"आजि आमि पूर्ण हइलाङ तोमार आगमने॥" 134 ॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने श्रीअद्वैताचार्यसे मधुर वचन कहे,—"आपके आनेसे आज मैं पूर्ण हो गया॥" 134 ॥

श्रीअद्वैतके द्वारा ईश्वरके
भक्तवात्सल्य-स्वभावका वर्णन :—

अद्वैत कहे,—"ईश्वरेर एइ स्वभाव हय।
यद्यपि आपने पूर्ण, सर्वैश्वर्यमय॥ 135 ॥

तथापिह भक्तसङ्गे हय सुखोल्लास।
भक्त-सङ्गे करे नित्य विविध विलास॥" 136 ॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्यने कहा,—"ईश्वरका यह स्वभाव ही होता है। यद्यपि वे स्वयं ही पूर्ण और सर्वैश्वर्यमय हैं, तथापि भक्त-सङ्गमें उन्हें आनन्दोल्लास होता है। अपने भक्तोंके साथ वे नित्य अनेक प्रकारकी लीलाएँ करते हैं॥" 135-136 ॥

महाप्रभुकी बचपनके साथी श्रीमुकुन्दकी अपेक्षा
श्रीवासुदेव दत्तमें अधिक प्रीति :—

वासुदेव देखि' प्रभु आनन्दित हञा।
ताँरे किछु कहे ताँर अङ्गे हस्त दिया॥ 137 ॥

"यद्यपि मुकुन्द—आमा-सङ्गे शिशु हैते।
ताँहा हैते अधिक सुख तोमारे देखिते॥" 138 ॥

अनुवाद—श्रीवासुदेव दत्तको देखकर महाप्रभु बहुत आनन्दित हुए और अपने हाथसे उन्हें स्पर्शकर उनसे कहा,—"यद्यपि मुकुन्द मेरे साथ बाल्यावस्थासे है, परन्तु उसकी अपेक्षा तुम्हें देखकर मुझे अधिक प्रसन्नता हो रही है॥" 137-138 ॥

अमानी और मानद वासुदेवदत्तका अपने कनिष्ठ मुकुन्दको
महाप्रभुका प्रिय जानकर अपनेसे श्रेष्ठ मानना :—

वासु कहे,—"मुकुन्द पाइल तोमार सङ्ग।
तोमार चरण पाइल सेइ पुनर्जन्म॥ 139 ॥

छोट हञा मुकुन्द एबे हैल आमार ज्येष्ठ।
तोमार कृपाय ताते सर्वगुणे श्रेष्ठ॥" 140 ॥

अनुवाद—यह सुनकर श्रीवासुदेव दत्तने कहा,—"मुकुन्दने आपका सङ्ग प्राप्त किया है। आपके चरणकमलोंका आश्रय प्राप्तकर उसका पुनर्जन्म हुआ है। यद्यपि मुकुन्द आयुमें मुझसे छोटा है, तथापि अब वह मुझसे बड़ा हो गया है। आपकी कृपा प्राप्तकर वह सभी गुणोंमें मुझसे श्रेष्ठ है॥" 139-140 ॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'वासु कहे मुकुन्द'*—मकुन्द दत्त वासुदेव दत्तके छोटे भाई हैं। मुकुन्द (बचपनसे ही) महाप्रभुके साथ थे। वासुदेवने कहा,—मुकुन्दने मुझसे पहले ही आपके चरणोंका आश्रय किया है, मैंने तो बादमें किया। मुकुन्दका पारमार्थिक जन्म मुझसे पहले हुआ है, इसलिये मैं उससे छोटा हो गया हूँ॥ 139-140 ॥

वासुदेवको स्वरूप दामोदरसे 'ब्रह्मसंहिता' और 'कर्णामृत' लेकर उनकी नकल करनेका आदेश :—

पुनः प्रभु कहे,—"आमि तोमार निमित्ते।
दुइ पुस्तक आनियाछि 'दक्षिण' हइते॥ 141॥

स्वरूपेर काछे आछे, लह ता लिखिया।"
वासुदेव आनन्दित पुस्तक पात्रा॥ 142॥

अनुवाद—महाप्रभुने पुनः कहा,—"मैं तुम्हारे लिये दक्षिण भारतसे दो पुस्तकें लाया हूँ। ये पुस्तकें स्वरूप दामोदरके पास हैं, तुम उनसे लेकर उनकी नकल कर लो।" श्रीवासुदेव दत्त उन पुस्तकोंको प्राप्त करके बहुत आनन्दित हुए॥ 141–142॥

अनुभाष्य—*'दुइ पुस्तक'*—श्रीब्रह्मसंहिता और श्रीकृष्णकर्णामृत॥ 141॥

वासुदेवादि सभी गौड़ीयके द्वारा नकल करके ग्रन्थोंकी रक्षाके फलस्वरूप इन दोनों ग्रन्थोंका सर्वत्र प्रचार :—

प्रत्येक वैष्णव सबे लिखिया लइल।
क्रमे क्रमे दुइ ग्रन्थ सर्वत्र व्यापिल॥ 143॥

अनुवाद—प्रत्येक वैष्णवने उन दोनों पुस्तकोंकी नकल करके रख ली। इस प्रकार क्रमशः उनकी प्रतियाँ बननेसे दोनों ग्रन्थ सर्वत्र व्याप्त हो गये॥ 143॥

श्रीवासादिकी प्रशंसा :—

श्रीवासाद्ये कहे प्रभु करि' महाप्रीत।
"तोमार चारि-भाइर आमि हइनु विक्रीत॥"144॥

श्रीवासका दैन्य :—

श्रीवास कहेन,—"केने कह विपरीत।
कृपा-मूल्ये चारि-भाइ हइ तोमार क्रीत॥"145॥

अनुवाद—तब महाप्रभु श्रीवासादि चार भाइयोंसे अति प्रीतिपूर्वक कहने लगे,—"आप चारों भाइयोंने मुझे खरीद लिया है।" यह सुनकर श्रीवास पण्डितने महाप्रभुसे कहा,—"आप विपरीत बात क्यों कह रहे हैं? अपितु हम चारों भाई तो आपकी कृपाके द्वारा खरीदे गये हैं॥"144–145॥

महाप्रभुकी दामोदरके प्रति गौरवप्रीति, शङ्करके प्रति शुद्धप्रेम :—

शङ्करे देखिया प्रभु कहे दामोदरे।
"सगौरव-प्रीति आमार तोमार उपरे॥ 146॥

शुद्ध केवल-प्रेम शङ्कर-उपरे।
अतएव तोमार सङ्गे राखह शङ्करे॥"147॥

अमानी और मानद दामोदर-पण्डितका कनिष्ठ शङ्करको महाप्रभुका प्रिय जानकर अपनेसे श्रेष्ठ मानना :—

दामोदर कहे,—"शङ्कर छोट आमा हैते।
एबे आमार बड़ भाइ तोमार कृपाते॥"148॥

अनुवाद—श्रीशङ्कर पण्डितको देखकर महाप्रभुने श्रीदामोदर पण्डितसे कहा,—"तुम्हारे प्रति मेरी प्रीति गौरवयुक्त है, परन्तु शङ्करके प्रति मेरी शुद्ध प्रीति है। इसलिये शङ्करको तुम अपने साथ ही रखना।" श्रीदामोदरने कहा,—"शङ्कर आयुमें मुझसे छोटा है, परन्तु आपकी कृपाके कारण अब वह मेरा बड़ा भाई बन गया है॥ 146–148॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'दामोदर पण्डित'*—बड़े भाई हैं और *'शङ्कर पण्डित'*—छोटे भाई। महाप्रभुने कहा,—'दामोदर! तुम्हारे प्रति मेरी सगौरव-प्रीति अर्थात् सम्मानके साथ प्रीति है; किन्तु शङ्करके प्रति मेरा केवल शुद्धप्रेम है। तुम अब शङ्करको अपने साथ रखना।' दामोदरने कहा,—'प्रभो, आपके अधिक स्नेहको प्राप्त करनेके कारण शङ्कर मेरा छोटा भाई होनेपर भी बड़ा भाई हो गया है॥'146–148॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीशिवानन्दकी प्रशंसा :—

शिवानन्दे कहे प्रभु,—"तोमार आमाते।
गाढ़ अनुराग हय, जानि आगे हैते॥"149॥

श्रीशिवानन्दका दैन्य :—

शुनि' शिवानन्द-सेन प्रेमाविष्ट हञा।
दण्डवत् हञा पड़े श्लोक पड़िया॥ 150॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीशिवानन्दसेनसे कहा,—"यह तो मैं पहलेसे ही जानता हूँ कि आपका मेरे प्रति गाढ़ अनुराग है।" महाप्रभुके वचन सुनकर श्रीशिवानन्द-सेन प्रेममें आविष्ट हो गये और महाप्रभुको दण्डवत् प्रणाम करके उन्होंने एक श्लोक पढ़ा॥ 149-150॥

भगवान्की दयाकी प्रार्थना :—
यमुनाचार्य-कृत स्तोत्ररत्न (26)—

निमज्जतोऽनन्त भवार्णवान्तश्चिराय
मे कूलमिवासि लब्धः।
त्वयापि लब्धं भगवन्निदानीम्
अनुत्तमं पात्रमिदं दयायाः॥ 151॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 151॥

अमृतप्रवाह भाष्य—"हे अनन्त, भवसागरमें निमग्न रहकर बहुत दिनोंके बाद आपको तटके रूपमें प्राप्त किया है। हे भगवन्, आपने भी मुझे प्राप्त करके अपनी दयाके अति उत्तम पात्रको प्राप्त किया है।"

यह श्लोक आलवन्दारु-यमुनाचार्य-कृत स्तोत्रके अन्तर्गत है॥ 151॥

अनुभाष्य—

हे अनन्त, चिराय भवार्णवान्तः (संसार-दुःख-जलधि-मध्ये) निमज्जतः (उत्थानशक्तिरहितस्य मग्नस्य) मे (मम) कूलं (तटम्) इव [त्वं भगवान् मया] लब्धः असि; हे भगवन्, इदानीं (सम्प्रति) त्वया अपि दयायाः इदम् अनुत्तमं (नास्ति उत्तमं परतमं श्रेष्ठं यस्मात् तत् सर्वश्रेष्ठं) पात्रं लब्धं (प्राप्तम्)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 151॥

श्रीमुरारिगुप्तका दैन्यवशतः आत्मगोपन :—

प्रथमे मुरारि-गुप्त प्रभुरे ना देखिया।
बाहिरेते पड़ि' आछे दण्डवत् हञा॥ 152॥

अनुवाद—श्रीमुरारि-गुप्तने पहले महाप्रभुके दर्शन नहीं किये, वे बाहर ही दण्डवत् प्रणाम करके भूमिपर पड़े हुए थे॥ 152॥

भगवान्के द्वारा भक्तको ढूँढ़ना :—

मुरारि ना देखिया प्रभु करे अन्वेषण।
मुरारि लइते धाञा आइला बहुजन॥ 153॥

अनुवाद—श्रीमुरारि गुप्तको न देखकर महाप्रभुने उनके बारेमें पूछा। तब बहुतसे वैष्णव श्रीमुरारि गुप्तको लानेके लिये दौड़ पड़े॥ 153॥

श्रीमुरारिके द्वारा दीनतापूर्वक महाप्रभुका दर्शन :—

तृण दुइगुच्छ मुरारि दशने धरिया।
महाप्रभुर आगे गेला दैन्याधीन हञा॥ 154॥

अनुवाद—श्रीमुरारि गुप्त तिनकोंके दो गुच्छोंको अपने दाँतोंमे दबाकर अत्यन्त दीन होकर महाप्रभुके सामने गये॥ 154॥

स्वयंको अस्पृश्य मानते हुए मुरारिको
महाप्रभुके स्पर्शमें सङ्कोच :—

मुरारि देखिया प्रभु आइला मिलिते।
पाछे भागे मुरारि, लागिला कहिते॥ 155॥

"मोरे ना छुँइह प्रभु, मुञि त' पामर।
तोमार स्पर्शयोग नहे एइ कलेवर॥"156॥

अनुवाद—श्रीमुरारि गुप्तको आते देखकर महाप्रभु उठकर जब उनसे मिलनेके लिये आये, तब श्रीमुरारि गुप्त पीछेकी ओर भागते हुए कहने लगे,—"हे प्रभो! आप मुझे स्पर्श न करें, मैं तो अत्यन्त पतित हूँ। मेरा यह शरीर आपके स्पर्श करने योग्य नहीं है॥"155-156॥

भक्तकी दीनताको देखकर भगवान्का आर्द्रभाव :—

प्रभु कहे,—"मुरारि, कर दैन्य सम्वरण।
तोमार दैन्य देखि' मोर विदीर्ण हय मन॥"157॥

भक्तोंकी सेवामें रत भगवान् :—

एत बलि' प्रभु ताँरे कैल आलिङ्गन।
निकटे बसाञा करे अङ्ग सम्मार्जन॥ 158॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"हे मुरारि! तुम इतनी

दीनता मत प्रकाश करो। तुम्हारी दीनता देखकर मेरा हृदय फट रहा है", इतना कहकर महाप्रभुने श्रीमुरारि गुप्तका आलिङ्गन किया और अपने पास बैठाकर अपने हाथोंसे उनके शरीरका मार्जन करने लगे॥ 157-158॥

श्रीचन्द्रशेखर, श्रीपुण्डरीक और श्रीगदाधरादिकी महाप्रभुके द्वारा प्रशंसा एवं आलिङ्गन :—

आचार्यरत्न, विद्यानिधि, पण्डित गदाधर।
गङ्गादास, हरिभट्ट, आचार्य पुरन्दर॥ 159॥
प्रत्येक्षे सबार प्रभु करि' गुणगान।
पुनः पुनः आलिङ्गिया करिल सम्मान॥ 160॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीआचार्यरत्न, श्रीविद्यानिधि, श्रीगदाधर पण्डित, श्रीगङ्गादास, श्रीहरिभट्ट और श्रीपुरन्दर आचार्य,—सभी भक्तोंका गुणगान किया और बार-बार उनका आलिङ्गन करके उनका सम्मान किया॥ 159-160॥

श्रीहरिदासको ढूँढ़ना :—

सबारे सम्मानि' प्रभुर हइल उल्लास।
हरिदासे ना देखिया कहे,—"काँहा हरिदास॥"161॥

अनुवाद—इस प्रकार सभी भक्तोंका सम्मान करके महाप्रभु उल्लसित हुए, परन्तु श्रीहरिदास ठाकुरको न देखकर महाप्रभु कहने लगे,—"हरिदास कहाँ हैं॥"161॥

ठाकुर हरिदासका दैन्यवशतः दूर रहना :—

दूर हैते हरिदास गोसाञे देखिया।
राजपथ-प्रान्ते पड़ि' आछे दण्डवत् हञा॥ 162॥
मिलन-स्थाने आसि' प्रभुरे ना मिलिला।
राजपथ-प्रान्ते दूरे पड़िया रहिला॥ 163॥

अनुवाद—श्रीहरिदास ठाकुर दूर राजमार्गके किनारे भूमिपर पड़े दण्डवत् प्रणाम कर रहे थे। वे महाप्रभुसे भक्तोंके मिलन स्थानपर नहीं आये, बल्कि वहाँसे दूर राजपथके किनारे ही पड़े रहे॥ 162-163॥

भक्तोंके द्वारा श्रीहरिदासको महाप्रभुकी आज्ञा बताना :—

भक्त सब धाञा आइल हरिदासे निते।
"प्रभु तोमाय मिलिते चाहे, चलह त्वरिते॥"164॥

अनुवाद—सब भक्त दौड़ते हुए श्रीहरिदासको ले जानेके लिये आये और कहा,—"शीघ्र चलो! महाप्रभु आपसे मिलना चाहते हैं॥"164॥

मर्यादा-विधिकी रक्षाके लिये श्रीहरिदासकी दैन्यपूर्ण उक्ति :—

हरिदास कहे,—"आमि नीच-जाति छार।
मन्दिर-निकटे याइते मोर नाहि अधिकार॥ 165॥
निभृते टोटा-मध्ये स्थान यदि पाङ।
ताँहा पड़ि' रहो, एकले काल गोङाङ॥ 166॥
जगन्नाथ-सेवकेर मोर स्पर्श नाहि हय।
ताँहा पड़ि' रहोँ,-मोर एइ वाञ्छा हय॥"167॥

अनुवाद—श्रीहरिदास ठाकुरने कहा,—"मैं नीच जातिका अधम व्यक्ति हूँ। मन्दिरके निकट जानेका मेरा अधिकार नहीं है। यदि मुझे एकान्तमें किसी उद्यानमें कोई स्थान मिल जाय, तो वहीं रहकर मैं अकेले ही समय व्यतीत कर लूँगा। मेरी यही इच्छा है कि मैं वहीं पड़ा रहूँ, जिससे श्रीजगन्नाथके सेवकोंको मेरा स्पर्श न हो॥"165-167॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'टोटा-मध्ये'*—उद्यानमें॥ 166॥

लोगोंके मुखसे श्रीहरिदासकी दैन्योक्ति सुनकर महाप्रभुको आनन्द :—

एइ कथा लोक गिया प्रभुरे कहिल।
शुनिया प्रभुर मने बड़ सुख हइल॥ 168॥

अनुवाद—श्रीहरिदासकी यह बात भक्तोंने जाकर महाप्रभुसे कही, जिसे सुनकर महाप्रभु मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए॥ 168॥

काशीमिश्रके द्वारा महाप्रभुके चरणोंकी वन्दना :—

हेनकाले काशीमिश्र, पड़िछा,—दुइ जन।
आसिया करिल प्रभुर चरण वन्दन॥ 169॥

सर्ववैष्णव देखि' सुख बड़ पाइला।
यथायोग्य सबा-सने आनन्दे मिलिला॥ 170॥

अनुवाद—इतनेमें काशीमिश्र और पड़िछा—ये दोनों वहाँ आये और उन्होंने महाप्रभुके चरणोंकी वन्दना की। सभी वैष्णवोंका दर्शन करके वे दोनों बहुत प्रसन्न हुए और यथायोग्य सभीसे आनन्दपूर्वक मिले॥ 169-170॥

वैष्णवोंकी सेवाके लिये काशीमिश्रकी
महाप्रभुसे आज्ञाके लिये प्रार्थना :—

प्रभुपदे दुइ जने कैल निवेदने।
"आज्ञा देह',—वैष्णवेर करि समाधाने॥ 171॥

सबार करियाछि वासा-गृह-स्थान।
महाप्रसाद सबाकारे करि समाधान॥" 172॥

अनुवाद—दोनोंने महाप्रभुके चरणोंमें निवेदन किया,—"यदि आपकी आज्ञा हो तो हम सभी वैष्णवोंके लिये यथोचित व्यवस्था कर दें। सभीके लिये रहनेके स्थानकी व्यवस्था हो चुकी है। अब हमें उन सबके लिये महाप्रसादके परिवेशनकी आज्ञा दीजिये॥" 171-172॥

श्रीगोपीनाथाचार्यको भक्तोंके सभी कार्योंको
सम्पादन करनेके लिये महाप्रभुका आदेश :—

प्रभु कहे,—"गोपीनाथ, याह' वैष्णव लञा।
याँहा याँहा कहे वासा, ताँहा देह' लञा॥ 173॥

श्रीवाणीनाथके ऊपर प्रसादकी व्यवस्थाका भार :—

महाप्रसादान्न देह वाणीनाथ-स्थाने।
सर्व वैष्णव इँहो करिबे समाधाने॥ 174॥

श्रीकाशीमिश्रसे महाप्रभुके द्वारा बगीचेमें स्थित
निर्जन कमरेके लिये प्रार्थना :—

आमार निकटे एइ पुष्पेर उद्याने।
एकखानि घर आछे परम-निर्जने॥ 175॥

सेइ घर आमाके देह'-आछे प्रयोजन।
निभृते बसिया ताँहा करिब स्मरण॥" 176॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"हे गोपीनाथाचार्य! आप सभी वैष्णवोंको अपने साथ लेकर जाइये और जहाँ-जहाँ ये काशीमिश्र और पड़िछा बतलायें, वहाँ उन भक्तोंको रहनेके लिये स्थान दे दीजिये। और आप (श्रीकाशीमिश्र और पड़िछा) जितना भी महाप्रसाद लाये हैं, सब वाणीनाथको दे दीजिये। वे सभी वैष्णवोंकी देखभाल करेंगे और सभीको महाप्रसाद भी वितरित कर देंगे। मेरे स्थानके पास पुष्पोंके उद्यानमें एक निर्जन कमरा है। वह कमरा मुझे दे दो, मुझे उसकी आवश्यकता है। मैं वहाँ एकान्तमें बैठकर भगवान्‌का स्मरण करूँगा॥" 173-176॥

अनुभाष्य—अब यह स्थान 'सिद्धबकुल-मठ'के नामसे प्रसिद्ध है॥ 175॥

महाप्रभुसे सभी वस्तुओंको इच्छानुसार
ग्रहण करनेके लिये काशीमिश्रका आवेदन :—

मिश्र कहे,—"सब तोमार, चाह कि-कारणे?
आपन-इच्छाय लह, येइ तोमार मने॥ 177॥

काशीमिश्रका स्वयंको महाप्रभुके आज्ञाकारी
दासके रूपमें स्वीकार करने हेतु प्रार्थना :—

आमि-दुइ हइ तोमार दास आज्ञाकारी।
ये चाह, सेइ आज्ञा देह' कृपा करि'॥" 178॥

अनुवाद—श्रीकाशीमिश्रने कहा,—"प्रभो! सब कुछ तो आपका ही है, फिर आप माँग क्यों रहे हैं? अपनी इच्छासे आप जो चाहें ले सकते हैं। हम दोनों तो आपकी आज्ञाका पालन करनेवाले दास हैं। आप जैसा जो भी चाहते हैं, कृपा करके हमें उसकी आज्ञा दीजिये॥" 177-178॥

अमृतप्रवाह भाष्य—आपको जो चाहिये, कृपा करके उसकी आज्ञा दीजिये। हम दोनों आपके आज्ञा पालनकारी दास हैं॥ 178॥

विदायी लेकर श्रीगोपीनाथको गृह-निर्वाचन और श्रीवाणीनाथको प्रसादकी व्यवस्थाका भार-अर्पण :—

एत कहि' दुइजने विदाय लइल।
गोपीनाथ, वाणीनाथ—दुँहे सङ्गे निल॥ 179॥

गोपीनाथे देखाइल सब वासा-घर।
वाणीनाथ-ठाञि दिल प्रसाद विस्तर॥ 180॥

वाणीनाथ आइला बहु प्रसाद पिठा लञा।
गोपीनाथ आइला वासा संस्कार करिया॥ 181॥

अनुवाद—यह कहकर उन दोनोंने महाप्रभुसे विदायी ली। तब वे दोनों श्रीगोपीनाथाचार्य तथा श्रीवाणीनाथको अपने साथ ले गये। उन्होंने श्रीगोपीनाथाचार्यको सभी रहनेके स्थान दिखला दिये और श्रीवाणीनाथको बहुत सारा महाप्रसाद दिया। श्रीवाणीनाथ वह प्रसाद और पिठा-पाना लेकर आ गये। श्रीगोपीनाथाचार्य भी सभी रहनेके स्थानोंकी सफाई करके वहाँ आ गये॥ 179–181॥

महाप्रभुका सभी भक्तोंको स्नानके बाद चूड़ा दर्शन करके प्रसादका सम्मान करनेके लिये आमन्त्रण :—

महाप्रभु कहे,—"शुन, सर्व वैष्णवगण।
निज-निज-वासा सबे करह गमन॥ 182॥

समुद्रस्नान करि' कर चूड़ा दरशन।
तबे आजि इँह आसि' करिबे भोजन॥"183॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"सभी वैष्णव सुनो! आप सभी अपने-अपने रहनेके स्थानपर जाइये। फिर समुद्रस्नान करके श्रीजगन्नाथ मन्दिरके चूड़ाका (शिखरका) दर्शन कीजिये। तब यहाँ आकर महाप्रसाद सेवन कीजिये॥"182–183॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'चूड़ा'*—श्रीजगन्नाथ मन्दिरका चूड़ा॥ 183॥

महाप्रभुको प्रणाम करके सभी भक्तोंका श्रीगोपीनाथके द्वारा बतलाये अपने अपने वासस्थानको ग्रहण करना :—

प्रभु नमस्करि' सबे वासाते चलिला।
गोपीनाथाचार्य सबे वासास्थान दिला॥ 184॥

अनुवाद—महाप्रभुको प्रणाम करके सभी भक्त श्रीगोपीनाथचार्यके साथ गये और उन्होंने सभीको उनके रहनेका स्थान दिया॥ 184॥

महाप्रभुका श्रीहरिदास ठाकुरके पास आना :—

महाप्रभु आइला तबे हरिदास-मिलने।
हरिदास करे प्रेमे नाम-सङ्कीर्त्तने॥ 184॥

अनुवाद—तब महाप्रभु श्रीहरिदास ठाकुरसे मिलने आये। उस समय श्रीहरिदास प्रेमपूर्वक नाम-सङ्कीर्तन कर रहे थे॥ 184॥

श्रीहरिदासका प्रणाम और महाप्रभुका आलिङ्गन :—

प्रभु देखि' पड़े पाय दण्डवत् हञा।
प्रभु आलिङ्गन कैल ताँरे उठाञा॥ 186॥

परस्पर गुणोंके स्मरणसे भक्त और भगवान्, दोनोंकी प्रेम-विह्वलता :—

दुइजने प्रेमावेशे करेन क्रन्दने।
प्रभु-गुणे भृत्य विकल, प्रभु भृत्य-गुणे॥ 187॥

अनुवाद—महाप्रभुको देखकर श्रीहरिदास ठाकुरने उनके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम किया और महाप्रभुने उन्हें उठाकर उनका आलिङ्गन किया। दोनों प्रेमके आवेशमें क्रन्दन करने लगे। प्रभुके गुणोंसे दास और दासके गुणोंसे प्रभु विह्वल हो रहे थे॥ 186–187॥

श्रीहरिदास ठाकुरका अपनेको अस्पृश्य मानना :—

हरिदास कहे,—"प्रभु, ना छुँइओ मोरे।
मुञि—नीच, अस्पृश्य, परम पामरे॥"188॥

अनुवाद—श्रीहरिदास ठाकुरने कहा,—"हे प्रभो! आप मुझे स्पर्श मत कीजिये। मैं नीच, अस्पृश्य (अछूत) और सबसे अधिक पतित हूँ॥"188॥

साक्षात् ब्रह्मण्यदेव-प्रभुके द्वारा श्रीहरिदासके आर्य होनेकी घोषणा :—

प्रभु कहे,—"तोमा स्पर्शि पवित्र हइते।
तोमार पवित्र धर्म नाहिक आमाते॥ 189॥

कृष्णभक्तमें प्रतिक्षण सभी तीर्थोंका स्नान और सभी प्रकारके तप-यज्ञ-दानादि विद्यमान :—

क्षणे क्षणे कर तुमि सर्वतीर्थे स्नान।
क्षणे क्षणे कर तुमि यज्ञ-तपो-दान॥ 190॥

कृष्णभक्त ही अङ्गसहित वेद-वेदान्तका अध्ययन करनेवाले और समस्त ब्राह्मणों तथा संन्यासियोंके गुरु :—

निरन्तर कर तुमि वेद-अध्ययन।
द्विज-न्यासी हैते तुमि परम-पावन॥"191॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"मैं स्वयं पवित्र होनेके लिये आपको स्पर्श कर रहा हूँ। आपके जैसा पवित्र करनेका गुण मुझमें नहीं है। आप तो क्षण-क्षणमें सभी तीर्थोंमें स्नान करते हैं और क्षण-क्षणमें आप यज्ञ, तप और दान करते हैं। आप निरन्तर वेदोंका अध्ययन करते हैं। आप तो ब्राह्मण और संन्यासीसे भी परम पवित्र हैं॥"189-191॥

श्रीमद्भागवत (3/33/7)—

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्त्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्याः
ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते॥ 192॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 192॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे भगवन्! जिनके मुखमें आपका नाम वर्तमान है, वे श्वपच (कुत्तेका मांस खानेवाले) होनेपर भी श्रेष्ठ हैं। जो आपका नाम कीर्तन करते हैं, उन्होंने सब प्रकारकी तपस्या कर ली है, समस्त यज्ञ कर लिये हैं, सभी तीर्थोंमें स्नान कर लिया हैं एवं अङ्गसहित समस्त वेदोंका पाठ कर लिया है, इसलिये उनकी आर्योंमें गणना होती है॥ 192॥

अनुभाष्य—देवहूतिके द्वारा भगवान् कपिलकी स्तुति-वर्णनके प्रसङ्गमें समस्त गुणोंसे सम्पन्न उनके भक्तोंके माहात्म्यका वर्णन—

यत् (यस्य) जिह्वाग्रे तुभ्यं (तव) नाम वर्त्तते, अतः (दैक्ष्य-विप्राभिधानात्) सः श्वपचः (शौक्रान्त्यजादि-नीचकुलोद्भूतः) अपि गरीयान् (श्रेष्ठः) अहो बत (इत्याश्चर्यम्)। ये ते (तव) नाम गृणन्ति (उच्चारयन्ति), ते तपः तेपुः (अनुष्ठितवन्तः—तपस्विनोऽधिका इत्यर्थः) जुहुवुः (होमं कृतवन्तः), सस्नुः (सर्वेष्वेव तीर्थेषु स्नाताः), आर्याः (सदाचाराः), ब्रह्म (साङ्गं वेदम्) अनूचुः (अधीतवन्तः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें।

इस श्लोकका तथ्य और पूर्ववर्ती श्लोककी विवृत्ति श्रीगौड़ीय भाष्य (श्रीमद्भागवतमें) देखें॥ 192॥

अमृतानुकणिका—(गरुड़पुराण)—

ब्राह्मणानां सहस्रेभ्यः सत्रयाजी विशिष्यते।
सत्रयाजि-सहस्रेभ्यः सर्ववेदान्तपारगः॥
सर्ववेदान्तवित्कोट्या विष्णुभक्तो विशिष्यते।
वैष्णवानां सहस्रेभ्यः एकान्त्येको विशिष्यते॥

अर्थात् "हजारों ब्राह्मणोंसे एक सावित्र्य ब्राह्मण श्रेष्ठ है, सहस्र सावित्र्य ब्राह्मणोंकी अपेक्षा एक वेदान्तविद् ब्राह्मण श्रेष्ठ है, कोटि-कोटि वेदान्तविद् ब्राह्मणोंकी अपेक्षा एक विष्णु भक्त श्रेष्ठ है, सैंकड़ों विष्णु भक्तोंसे एक ऐकान्तिक वैष्णव श्रेष्ठ है।"

न मेऽभक्तश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचः प्रियः।
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथाह्यहम्॥

अर्थात् "चतुर्वेदपाठी अर्थात् चारों वेदोंको जाननेवाला ब्राह्मण होनेपर भी वह भक्त हो, ऐसा नहीं है। मेरा भक्त चाण्डाल कुलमें उत्पन्न होनेपर भी मेरा प्रिय है और भक्त ही यथार्थ दानपात्र एवं ग्रहणपात्र है। चाण्डालकुलमें उत्पन्न होनेपर भी मेरा भक्त मेरी भाँति ब्राह्मणादि सभीका पूज्य है।"

गीता 9/32 श्लोक देखें। और भी (अन्त्यलीला, 4/66-68)—

"नीच जाति नहे कृष्णभजने अयोग्य।
सत्कुल विप्र नहे भजनेर योग्य॥
येइ भजे, सेइ बड़, अभक्त—हीन, छार।
कृष्णभजने नाहि जाति-कुलादि विचार॥
दीनेरे अधिक दया करे भगवान्।
कुलीन, पण्डित, धनीर बड़ अभिमान॥"

"नीच-जातिमें उत्पन्न व्यक्ति श्रीकृष्णभजनके अयोग्य नहीं होता, दूसरी ओर, केवलमात्र सत्कुलमें उत्पन्न ब्राह्मण होनेसे ही कोई श्रीकृष्णभजनके योग्य नहीं बन जाता। वास्तवमें जो श्रीकृष्णका भजन करता है, वही बड़ा है। अभक्त तो हीन है, घृणित है। श्रीकृष्णभजनमें जाति और कुल आदिका कोई विचार ही नहीं है। भगवान् दीन व्यक्तिपर अधिक कृपा करते हैं। क्योंकि श्रेष्ठ कुलमें जन्म लेनेवाले कुलीन, विद्वान तथा धनी व्यक्तियोंमें बहुत अभिमान होता है।"

(मध्यलीला, 19/147–148)—

"धर्माचारी-मध्ये बहुत 'कर्मनिष्ठ'।
कोटि-कर्मनिष्ठ-मध्ये एक 'ज्ञानी' श्रेष्ठ॥
कोटिज्ञानी-मध्ये हय एकजन 'मुक्त'।
कोटिमुक्त-मध्ये 'दुर्लभ' एक कृष्णभक्त॥"

"धर्मका आचरण करनेवालोंमें भी बहुत कर्मनिष्ठ हैं। करोड़ों कर्मनिष्ठ व्यक्तियोंसे एक ज्ञानी श्रेष्ठ है। करोड़ों ज्ञानियोंमेंसे एक व्यक्ति ही मुक्त होता है। करोड़ों मुक्तोंमें भी एक कृष्णभक्त 'दुर्लभ' होता है।"

कर्म करते हुए पापाचरणके फलसे रज-तमः स्वभावसम्पन्न होकर बद्धजीव सवनयज्ञके अधिकारसे च्युत होता है। ईशसेवासे विमुखता ही जीवको कर्मकाण्डमें प्रवृत्त कराती है। कर्म करते समय बद्धजीव ऊँचे-नीचेका विचार करते हुए प्रवृत्तिके क्रमसे सत्त्वगुणसे रजो-तमोगुणमें अवस्थितिकी अभिलाषा करता है। पापरहित सत्त्वगुणवाले व्यक्तियोंकी भगवान् विष्णुकी सेवामें स्वभावतः रुचि होती है। वे अधोपतित होकर सत्त्व-रजोके मिश्रित गुणसे क्षत्रिय, सत्त्व-तमोके मिश्रित गुणसे वैश्य, रजो-तमोके मिश्रित गुणसे शूद्र और तमोगुणमें अवस्थित होकर अन्त्यज आदि श्रेणीमें गिने जाते हैं। ब्राह्मण अधिकारसे च्युत होनेपर वे ब्राह्मणके अतिरिक्त अन्य कुलमें जन्म ग्रहण करते हैं। और पापरहित जीवकी भी ब्राह्मणकुलमें बीजगर्भसे उत्पन्न देह प्राप्त करके सत्त्वगुणसे च्युत होनेकी रुचि हो जाती है। उस रुचिसे जिन सब पापोंका उदय होता है, उसके प्रतिबन्धक स्वरूप गर्भाधान आदिसे लेकर उपनयन तक सभी संस्कार हैं। संस्कार-वर्जित ब्राह्मणकुलमें भी जन्में ब्राह्मण अपने रुचि-क्रमसे सत्त्वके अतिरिक्त मिश्र और दूसरे गुणोंमें अग्रसर होकर पतित होते हैं। ब्राह्मण कुलमें जन्म कर्मफलजनित निष्पाप होनेका सूचकमात्र है। उपरोक्त संस्कार ही निष्पाप जीवको पुनः पापमें प्रवृत्त होनेसे बचाते हैं। शूद्र आदिके लिये इन संस्कारोंकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि शूद्रने पूर्वजन्मके पापोंके प्रभावसे उस प्रकार कल्मष-प्रधान वंशमें जन्म ग्रहण किया है। अच्छेसे वर्णधर्मका पालन करनेवाले सत्कर्मोंके बलसे जन्म-जन्मान्तरमें उन्नति लाभ करते हैं। यह उन्नति गुण और कर्मजात है।

जो श्वपच (कुत्तेका माँस खानेवाले) अन्त्यज कुलमें जन्म ग्रहण करके सारा जीवन संसारमें लिप्त रहते हैं, उनकी उन्नतिकी बात शास्त्रमें नहीं लिखी है। किन्तु ऐसे कुलमें जन्में जिन वैष्णवोंकी उस प्रकारके कुलमें आचारमें रुचि न होकर भगवद्-सेवामें लगनेकी योग्यता दिखायी दे, तो यह निश्चित है कि पूर्व जन्ममें उनका ब्राह्मणकुलके सत्त्वाधिकारमें अवस्थान था।

"भगवद्भक्तिहीनस्य जातिः शास्त्रं जपस्तपः।
अप्राणस्यैव देहस्य मण्डनं लोकरञ्जनम्॥
शुचिः सद्भक्तिदीप्ताग्निदग्धदुर्जातिकल्मषः।
श्वपाकोऽपि-बुधैः श्लाघ्यो न वेदज्ञोऽपि नास्तिकः॥"

अर्थात् "सच्चरित्र, सद्भक्तिरूपी दीप्ताग्नि द्वारा जिनके दुर्जातिके पाप क्षय हो चुके हैं, इस प्रकारका चाण्डाल भी पण्डितोंके द्वारा सम्मानित है, किन्तु नास्तिक व्यक्ति वेदज्ञ होनेपर भी सम्मानके योग्य नहीं है। भगवद्भक्तिहीन व्यक्तिकी सद्जाति, शास्त्रज्ञान, जप और तप मृतदेहके अलङ्कारके जैसे किसी कामके नहीं होते, वह तो केवल लोकरञ्जनमात्र है॥"192॥

श्रीहरिदास ठाकुरको 'सिद्धबकुल' स्थान देना :—

एत बलि ताँरे लञा गेला पुष्पोद्याने।
अति निभृते ताँरे दिला वासा-स्थाने॥193॥

महाप्रभुके द्वारा स्वयं ही भक्तके साथ मिलन स्वीकार :—

“एइस्थाने रहि' कर नाम-सङ्कीर्त्तन।
प्रतिदिन आसि' आमि करिब मिलन॥ 194॥

मन्दिरके सुदर्शनचक्रको प्रणाम करनेकी आज्ञा-दान :—

मन्दिरेर चक्र देखि' करिह प्रणाम।
एइ ठाञि तोमार आसिबे प्रसादान्न॥”195॥

अनुवाद—यह कहकर महाप्रभु श्रीहरिदास ठाकुरको पुष्प उद्यानमें ले गये और उन्हें अति निर्जनमें एक रहनेका स्थान दिया। महाप्रभुने उनसे कहा,—“आप इसी स्थानपर रहकर नाम-सङ्कीर्तन कीजिये। मैं प्रतिदिन यहाँ आकर आपसे मिलूँगा। यहींसे श्रीजगन्नाथ मन्दिरके चक्रको देखकर प्रणाम कीजियेगा और यहींपर आपके लिये अन्न-प्रसाद आ जायेगा॥”193-195॥

अनुभाष्य—श्रीहरिदास ठाकुरने लौकिक-स्मृति-विधानके मतानुसार श्रीमन्दिरमें प्रवेश करके श्रीजगन्नाथदेवके दर्शनके लिये स्वयंको अयोग्य जाना है, ऐसा जानकर महाप्रभुने उन्हें दूरसे श्रीमन्दिरके चूड़ाके अग्रभागमें सुदर्शनचक्रको देखकर प्रणाम करनेकी व्यवस्था कर दी और कहा,—इस सिद्धबकुलमें तुम्हारे लिये महाप्रसाद आयेगा॥ 195॥

श्रीनित्यानन्द आदिको श्रीहरिदासके दर्शनसे आनन्द :—

नित्यानन्द, जगदानन्द, दामोदर, मुकुन्द।
हरिदासे मिलि' सबे पाइल आनन्द॥ 196॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीजगदानन्द पण्डित, श्रीदामोदर और श्रीमुकुन्द—सभीको श्रीहरिदाससे मिलकर बहुत आनन्द हुआ॥ 196॥

महाप्रभुके समुद्रस्नानके बाद श्रीअद्वैतादिका समुद्रस्नान :—

समुद्रस्नान करि' प्रभु आइला निज-स्थाने।
अद्वैतादि गेला सिन्धु करिबारे स्नाने॥ 197॥

मन्दिर-चूड़ा दर्शनके बाद सभीके द्वारा प्रसाद-सम्मान :—

आसि' जगन्नाथेर कैल चूड़ा दरशन।
प्रभुर आवासे आइला करिते भोजन॥ 198॥

अनुवाद—जब महाप्रभु समुद्रस्नान करके अपने स्थानपर आ गये, तब श्रीअद्वैतादि भक्तगण समुद्रमें स्नान करने गये। समुद्रस्नान करके सभी भक्तोंने श्रीजगन्नाथ मन्दिरके चूड़ाका दर्शन किया और महाप्रभुके आवासपर प्रसाद पानेके लिये पहुँचे॥ 197-198॥

सभी भक्तोंका बैठना और महाप्रभुके द्वारा परिवेशन :—

सबारे बसाइला प्रभु योग्य क्रम करि'।
श्रीहस्ते परिवेशन कैल गौरहरि॥ 199॥

श्रीहस्तके द्वारा प्रचुर परिवेशन :—

अल्प अन्न नाहि आइसे दिते प्रभुर हाते।
दुइ-तिनेर अन्न देन एक-एक पाते॥ 200॥

अनुवाद—महाप्रभुने सभी भक्तोंको योग्यक्रमसे बैठा दिया और स्वयं श्रीगौरहरिने अपने श्रीहाथोंसे प्रसादका परिवेशन (वितरण) आरम्भ किया। प्रसाद बाँटनेके लिये महाप्रभुके हाथोंमें थोड़ा अन्न नहीं आता था, इसलिये एक-एक पत्तलपर दो-तीन व्यक्तियोंके भोजन करने जितना अन्न दे रहे थे॥ 199-200॥

अमृतप्रवाह भाष्य—‘योग्यक्रम करि”—जिसके बाद जिसका बैठना उचित है, उस प्रकारसे करके॥ 199॥

महाप्रभुके भोजन किये बिना सभी
भक्तोंका भी प्रसाद ग्रहण न करना :—

प्रभु ना खाइले केह ना करे भोजन।
ऊर्द्ध-हस्ते बसि' रहे सर्व भक्तगण॥ 201॥

अनुवाद—महाप्रभु नहीं खा रहे थे, इसलिये कोई भी भोजन नहीं कर रहा था। सभी भक्त हाथ उठाकर ही बैठे रहे॥ 201॥

श्रीदामोदर-स्वरूपकी महाप्रभुको श्रीनित्यानन्द प्रभुके
साथ भोजन करनेकी प्रार्थना एवं स्वयं
भक्तोंको परिवेशन करना स्वीकार :—

स्वरूप-गोसाञि प्रभुके कैल निवेदन।
“तुमि ना बसिले केह ना करे भोजन॥ 202॥

तोमा-सङ्गे रहे यत संन्यासीर गण।
गोपीनाथाचार्य ताँरे करियाछे निमन्त्रण॥ 203॥
आचार्य आसियाछेन भिक्षार प्रसादान्न लञा।
पुरी, भारती आछेन तोमार अपेक्षा करिया॥ 204॥
नित्यानन्द लञा भिक्षा करिते बैसे तुमि।
वैष्णवेर परिवेशन करितेछि आमि॥ "205॥

अनुवाद—तब श्रीस्वरूप दामोदरने महाप्रभुको निवेदन किया,—"जब तक आप बैठकर भोजन नहीं करेंगे, तब तक कोई भी भोजन नहीं करेगा। आपके साथ जो सब संन्यासी रहते हैं, श्रीगोपीनाथाचार्य ने उन्हें भी निमन्त्रण दिया है। श्रीगोपीनाथाचार्य बहुतसा भिक्षाका प्रसाद-अन्न लेकर आ गये हैं। श्रीपरमानन्द पुरी और श्रीब्रह्मानन्द भारती भी आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। आप श्रीनित्यानन्द प्रभुके साथ भोजन करनेके लिये बैठिये और मैं सभी वैष्णवोंको परिवेशन करता हूँ॥ "202-205॥

महाप्रभुके द्वारा परिवेशन छोड़ देना और श्रीगोविन्दके हाथों श्रीहरिदास ठाकुरके लिये प्रसाद भेजना :—

तबे प्रभु प्रसादान्न गोविन्द-हाते दिला।
यत्न करि' हरिदास-ठाकुरे पाठाइला॥ 206॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने सावधानीपूर्वक कुछ प्रसाद श्रीहरिदास ठाकुरको देनेके लिये श्रीगोविन्दके हाथोंमें दिया॥ 206॥

संन्यासियोंके साथ महाप्रभुका प्रसाद-सम्मान और आचार्यके द्वारा परिवेशन :—

आपने बसिला सब संन्यासीरे लञा।
परिवेशन करे आचार्य हरषित हञा॥ 207॥

अनुवाद—फिर महाप्रभु सभी संन्यासियोंके साथ बैठ गये और श्रीगोपीनाथाचार्य आनन्दपूर्वक परिवेशन करने लगे॥ 207॥

अनुभाष्य—'आचार्य'—श्रीगोपीनाथ आचार्य॥ 204-207॥

श्रीगोपीनाथाचार्य-श्रीस्वरूप-श्रीजगदानन्दके द्वारा परिवेशन :—

स्वरूप दामोदर आर जगदानन्द।
वैष्णवेरे परिवेशे तिन जने—आनन्द॥ 208॥

अनुवाद—श्रीगोपीनाथाचार्य, श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीजगदानन्द पण्डित—ये तीनों आनन्दपूर्वक सभी वैष्णवोंको परिवेशन करने लगे॥ 208॥

प्रसाद ग्रहण करते समय हरिध्वनि :—

नाना पिठापाना खाय आनन्द करिया।
मध्ये मध्ये 'हरि' कहे आनन्दित हञा॥ 209॥

अनुवाद—सभी वैष्णव आनन्दपूर्वक अनेक प्रकारका पिठा-पाना खा रहे थे और आनन्दित होकर बीच-बीचमें 'हरि' 'हरि' कह रहे थे॥ 209॥

अनुभाष्य—उस समयमें प्रसादके सम्मान करते समय शुद्धसम्प्रदायमें हरिध्वनि देनेकी रीति थी॥ 209॥

ग्यारहवें अध्यायका अनुभाष्य समाप्त।

सभी भक्तोंका आचमन :—

भोजन समाप्त हैल, कैल आचमन।
सबारे पराइल प्रभु, माल्य-चन्दन॥ 210॥

अनुवाद—भोजन समाप्त होनेपर सभीने आचमन किया। तब महाप्रभुने सबको माला पहनायी और चन्दन लगाया॥ 210॥

सभीका अपने स्थानपर जाना और सन्ध्यामें महाप्रभुके साथ फिरसे मिलन :—

विश्राम करिते सबे निज-वासा गेला।
सन्ध्याकाले आसि' पुनः प्रभुके मिलिला॥ 211॥

अनुवाद—तब विश्राम करनेके लिये सभी अपने-अपने वासस्थानपर चले गये और सन्ध्यामें वे आकर पुनः महाप्रभुसे मिले॥ 211॥

श्रीरामानन्दका आगमन और वैष्णवोंके साथ मिलन :—

हेनकाले रामानन्द आइला प्रभुस्थाने।
प्रभु मिलाइल ताँरे सब वैष्णवगणे॥ 212॥

अनुवाद—उस समय श्रीरामानन्द राय महाप्रभुके वासस्थानपर आये और महाप्रभुने उन्हें सभी वैष्णवोंसे मिलवाया॥ 212॥

संन्ध्यामें मन्दिरके आङ्गनमें भक्तोंके साथ कीर्तनारम्भ :—

सबा लञा गेला प्रभु जगन्नाथालय।
कीर्त्तन-आरम्भ तथा कैल महाशय॥ 213॥

सभीको पड़िछाके द्वारा माल्यचन्दन प्रदान, चारों ओरसे चार मण्डलियोंमें भक्तोंके द्वारा महाकीर्तन आरम्भ :—

सन्ध्या-धूप देखि' आरम्भिला सङ्कीर्त्तन।
पड़िछा आसि' सबारे दिल माल्य-चन्दन॥ 214॥

चारिदिके चारि-सम्प्रदाय करेन कीर्त्तन।
मध्ये नृत्य करे प्रभु शचीर नन्दन॥ 215॥

अष्ट मृदङ्ग बाजे, बत्रिश करताल।
हरिध्वनि करे सबे, बले,—भाल, भाल॥ 216॥

कीर्त्तनेर ध्वनि महामङ्गल उठिल।
चतुर्दश लोक भेदि' ब्रह्माण्ड भेदिल॥ 217॥

अनुवाद—महाप्रभु सभी भक्तोंको साथ लेकर श्रीजगन्नाथ मन्दिरमें गये और वहाँ उन्होंने कीर्तन आरम्भ किया। फिर सबने सन्ध्याकी धूप-आरतीके दर्शन किये और उसके बाद उन्होंने सङ्कीर्तन आरम्भ किया। पड़िछाने आकर सबको माला और चन्दन प्रदान किया। चार दिशाओंमें भक्त चार मण्डलियाँ बनाकर कीर्तन करने लगे और बीचमें श्रीशचीनन्दन नृत्य करने लगे। चार मण्डलियोंमें आठ मृदङ्ग और बत्तीस करताल बजने लगीं और सभी हरिध्वनि करते हुए 'अति सुन्दर', 'अति सुन्दर' कहने लगे। कीर्तनकी ध्वनिसे महामङ्गल होने लगा। वह ध्वनि चौदह लोकोंको भेदती हुई ब्रह्माण्डको भी भेदकर उसके बाहर गयी॥ 213-217॥

अमृतप्रवाह भाष्य—पाठान्तरमें—

"सन्ध्या-धूप देखि' आरम्भिला सङ्कीर्त्तन।
पड़िछा आनिया दिल माल्य-चन्दन॥
चारिदिके चारिसम्प्रदाय करे सङ्कीर्त्तन।
मध्ये नृत्य करे प्रभु शचीर नन्दन॥"

अर्थात् "सन्ध्याकी धूप-आरतीके दर्शन करके उन्होंने सङ्कीर्तन आरम्भ किया। तभी पड़िछाने आकर सबको माला और चन्दन प्रदान किया। चार दिशाओंमें भक्त चार मण्डलियाँ बनाकर कीर्तन करने लगे और बीचमें श्रीशचीनन्दन नृत्य करने लगे॥"214॥

कीर्तन श्रवण करके बहुत पुरीवासियोंका आना और उनको आश्चर्य :—

कीर्त्तन-आरम्भे प्रेम उथलि' चलिल।
नीलाचलवासी लोक धाञा आइल॥ 218॥

कीर्त्तन देखि' सबार मने हैल चमत्कार।
कभु नाहि देखि ऐछे प्रेमेर विकार॥ 219॥

अनुवाद—जब कीर्तन आरम्भ हुआ, तब महाप्रभु और भक्तोंके हृदयसे निकलकर श्रीकृष्णप्रेम सब ओर फैलने लगा और नीलाचलवासी लोग दौड़कर आये। कीर्तनको देखकर सभीके मनमें बहुत आश्चर्य हुआ और वे कहने लगे कि उन्होंने कभी भी प्रेमके ऐसे विकार नहीं देखे॥ 218-219॥

'बेड़ा-नृत्य'-कीर्तन या मन्दिरकी परिक्रमा करते हुए कीर्तन :—

तबे प्रभु जगन्नाथेर मन्दिर बेड़िया।
प्रदक्षिण करि' बुलेन नर्त्तन करिया॥ 220॥

अनुवाद—तब महाप्रभु नृत्य करते-करते श्रीजगन्नाथ मन्दिरके चारों ओर परिक्रमा करने लगे॥ 220॥

महाप्रभुके अष्ट-सात्त्विक विकार :—

आगे-पाछे गान करे चारि-सम्प्रदाय।
आछाड़ेर काले धरे नित्यानन्द-राय॥ 221॥

अश्रु, पुलक, कम्प, स्वेद, गम्भीर, हुँकार।
प्रेमेर विकार देखि' लोके चमत्कार॥ 222॥

पिच्कारि-धारा जिनि' अश्रु नयने।
चारिदिकेर लोक सब करये सिनाने॥ 223॥

'बेड़ानृत्य' महाप्रभु करि' कतक्षण।
मन्दिरेर पाछे रहि' करये कीर्त्तन॥ 224॥

अनुवाद—महाप्रभुके आगे-पीछे चार मण्डलियाँ गान कर रही थी। महाप्रभु जब पछाड़ खाकर गिरने लगते, तब श्रीनित्यानन्द प्रभु उन्हें सम्भाल लेते। महाप्रभुमें अश्रु, पुलक, कम्प, स्वेद, गम्भीर हुँकार आदि प्रेमके अष्ट-सात्त्विक विकारोंको देखकर लोग आश्चर्यचकित हो रहे थे। महाप्रभुके नेत्रोंसे पिचकारीकी भाँति अश्रुधारा निकल रही थी, जो चारों ओर खड़े लोगोंको भिगो रही थी। महाप्रभु श्रीजगन्नाथ मन्दिरकी परिक्रमा करके कुछ समयके लिये मन्दिरके पीछे खड़े होकर कीर्तन करते रहे॥ 221-224॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'लोक सब करये सिनानें'—चारों ओर सब लोगोंने अश्रुजलसे स्नान किया॥ 222॥

चारों सम्प्रदायके बीचमें महाप्रभुका नृत्य :—

चारिदिके नाचे, सम्प्रदाय उच्चैःस्वरे गाय।
मध्ये ताण्डव-नृत्य करे गौरराय॥ 225॥

बहुक्षण नृत्य करि' प्रभु स्थिर हैला।
चारि महान्तेरे तबे नाचिते आज्ञा दिला॥ 226॥

अनुवाद—चारों ओर चार मण्डलियोंमें भक्त उच्च स्वरसे गा रहे थे तथा उनके बीचमें श्रीगौरराय ताण्डव नृत्य कर रहे थे। बहुत समय तक नृत्य करनेके बाद जब महाप्रभु कुछ स्थिर हुए, तो उन्होंने चार महान्तोंको नृत्य करनेका आदेश दिया॥ 225-226॥

अकेले पुरुषके नृत्यको ताण्डव नृत्य कहते हैं।

चार महान्त-(1) श्रीनित्यानन्द, (2) श्रीअद्वैत :—

एक सम्प्रदाये नाचे नित्यानन्द-राये।
अद्वैत-आचार्य नाचे आर सम्प्रदाये॥ 227॥

अनुवाद—एक मण्डलीमें श्रीनित्यानन्द प्रभुने नृत्य आरम्भ किया और दूसरी मण्डलीमें श्रीअद्वैताचार्य प्रभु नृत्य करने लगे॥ 227॥

(3) श्रीवक्रेश्वर, (4) श्रीवास :—

आर सम्प्रदाये नाचे पण्डित-वक्रेश्वर।
श्रीवास नाचे आर सम्प्रदाय-भितर॥ 228॥

अनुवाद—तीसरी मण्डलीमें श्रीवक्रेश्वर पण्डित नृत्य करने लगे और चौथी मण्डलीमें श्रीवास पण्डित नृत्य कर रहे थे॥ 228॥

कीर्तनके बीचमें महाप्रभुका अवस्थान और चारों जनोंके नृत्य-दर्शनके लिये ऐश्वर्यका प्रकाश :—

मध्ये रहि' महाप्रभु करेन दरशन।
ताँहा एक ऐश्वर्य हइल प्रकटन॥ 229॥

चारिदिके नृत्यगीत करे यत जन।
सबे कहे,—प्रभु करे आमारे दरशन॥ 230॥

चारिजनेर नृत्य देखिते प्रभुर अभिलाष।
सेइ अभिलाषे करे ऐश्वर्य प्रकाश॥ 231॥

दर्शने आवेश ताँर देखि' मात्र जाने।
केमने चौदिके देखे,—इहा नाहि जाने॥ 232॥

अनुवाद—महाप्रभु बीचमें रहकर इन सबको नृत्य करते देख रहे थे और वहाँ महाप्रभुका एक ऐश्वर्य प्रकट हो गया। चारों ओर जितने भक्त नृत्य-गीत कर रहे थे, वे सभी कह रहे थे,—महाप्रभु मेरी ओर ही देख रहे हैं। महाप्रभुकी इच्छा चारों महान्तोंके नृत्यका दर्शन करनेकी थी, इसी अभिलाषाके कारण उन्होंने अपना ऐश्वर्य प्रकाशित किया। दर्शनके आवेशमें चारों ओर भक्त महाप्रभुको अपने सामने देख रहे थे, किन्तु महाप्रभु कैसे एक साथ चारों ओर देख रहे हैं—इसे वे नहीं जानते थे॥ 229-232॥

व्रजलीलामें सखाओंके मध्यमें बैठे श्रीकृष्णके पुलिन भोजनके साथ उपमा :—

पुलिन-भोजने येन कृष्ण मध्य-स्थाने।
चौदिकेर सखा कहे,—आमारे नेहाने॥ 233॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण यमुनाके तटपर भोजन करते

समय सभी सखाओंके बीचमें बैठते थे। उनके चारों ओर बैठे हुए सभी सखा यही अनुभव करते थे कि श्रीकृष्ण उन्हें देख रहे हैं॥ 233॥

अमृतप्रवाह भाष्य—व्रजमें श्रीकृष्ण जब यमुना-तटपर भोजन करते थे, तब उनके चारों ओर बैठकर प्रत्येक गोपबालक देखते थे कि श्रीकृष्ण उसकी ओर मुख करके ही भोजन कर रहे हैं। उसी प्रकार महाप्रभु भी जब नृत्य कर रहे थे, तब उनके चारों ओर स्थित भक्तोंने उनके सामने रहकर उनके मुखका दर्शन किया था। यह भी महाप्रभुका एक ऐश्वर्य प्रकाश है। *'नेहाने'*—देखे॥ 233॥

निकट नृत्यकारी भक्तको महाप्रभुके द्वारा आलिङ्गन :—

नृत्य करिते येइ आइसे सन्निधाने।
महाप्रभु करे ताँरे दृढ़ आलिङ्गने॥ 234॥

महासङ्कीर्त्तन-नृत्य :—

महानृत्य, महाप्रेम, महासङ्कीर्त्तन।
देखि' प्रेमावेशे भासे नीलाचल-जन॥ 235॥

अनुवाद—नृत्य करते हुए जो भी महाप्रभुके निकट आता, महाप्रभु उसे दृढ़तापूर्वक आलिङ्गन करते। इस प्रकार महानृत्य, महाप्रेम और महासङ्कीर्तनको देखकर नीलाचलवासी प्रेमावेशमें डूब गये॥ 234-235॥

प्रतापरुद्रके द्वारा अट्टालिकापर चढ़कर कीर्तन-दर्शन :—

गजपति राजा शुनि' कीर्तन-महत्त्व।
अट्टालिका चड़ि' देखे स्वगण-सहित॥ 236॥

राजाका आश्चर्य एवं महाप्रभु-चरण-दर्शनकी उत्कण्ठा :—

कीर्त्तन देखिया राजार हैल चमत्कार।
प्रभुके मिलिते उत्कण्ठा बाड़िल अपार॥ 237॥

अनुवाद—गजपति राजाने भी जब कीर्तनकी महिमा सुनी, तो वे अपने लोगोंके साथ अट्टालिकापर चढ़कर उसे देखने लगे। कीर्तनको देखकर राजाको बहुत आश्चर्य हुआ और उनकी महाप्रभुसे मिलनेकी उत्कण्ठा और अधिक बढ़ गयी॥ 236-237॥

कीर्तनके अन्तमें पुष्पाञ्जलि दर्शन करके भक्तोंके साथ महाप्रभुका अपने घरपर जाना :—

कीर्त्तन-समाप्त्ये प्रभु देखि' पुष्पाञ्जलि।
सर्व वैष्णव लञा प्रभु आइला वासा चलि'॥ 238॥

अनुवाद—कीर्तन समाप्त होनेपर महाप्रभुने श्रीजगन्नाथदेवकी पुष्पाञ्जलिका दर्शन किया। तब महाप्रभु सभी वैष्णवोंको लेकर अपने वासस्थानपर चले आये॥ 238॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'पुष्पाञ्जलि'*—जगन्नाथदेवकी पुष्पाञ्जलि॥ 238॥

ग्यारहवें अध्यायका अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

सभीका महाप्रभुके हाथोंसे वितरित प्रसादका सम्मान :—

पड़िछा आनिया दिल प्रसाद विस्तर।
सबारे बाँटिया ताहा दिलेन ईश्वर॥ 239॥

सभी भक्तोंको विश्राम करनेकी अनुमति देना :—

सबारे विदाय दिल करिते शयन।
एइमत लीला करे शचीर नन्दन॥ 240॥

अनुवाद—पड़िछाने आकर महाप्रभुको बहुत-सा महाप्रसाद दिया और महाप्रभुने उसे सभी वैष्णवोंमें बाँट दिया। तब महाप्रभुने सभी भक्तोंको शयन करनेके लिये विदायी दी। इस प्रकार श्रीशचीनन्दन ऐसी अद्भुत लीलाएँ करते हैं॥ 239-240॥

महाप्रभुके साथ रहते हुए सभीको इस प्रकार कीर्तनके आनन्दकी प्राप्ति :—

यावत् आछिला सबे महाप्रभु-सङ्गे।
प्रतिदिन एइमत करे कीर्त्तन-रङ्गे॥ 241॥

अनुवाद—जब तक सब भक्त महाप्रभुके साथ जगन्नाथपुरीमें रहे, प्रतिदिन महाप्रभु इसी प्रकार बड़े आनन्दसे कीर्तन करते थे॥ 241॥

बेड़ा-नृत्य-कीर्तनके श्रवणसे चिद्वृत्तिकी स्फूर्त्ति :—

एइ त' कहिलुँ प्रभुर कीर्त्तन-विलास।
येबा इहा शुने, हय चैतन्येर दास॥ 242॥

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ 243॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते मध्यखण्डे
'बेड़ा-कीर्त्तन'-विलास-वर्णनं नाम एकादश परिच्छेदः।

अनुवाद—इस प्रकार मैंने महाप्रभुके कीर्तन-विलासका वर्णन किया। (ग्रन्थकार आशीर्वाद कर रहे हैं) जो इसका श्रवण करेगा, वह महाप्रभुका दास बन जायेगा। श्रीरूप-रघुनाथ गोस्वामीके चरणकमलोंकी कृपाभिलाषा करते हुए कृष्णदास इस श्रीचैतन्यचरितामृतका वर्णन कर रहा है॥ 242-243॥

श्रीचैतन्यचरितामृतके मध्यखण्डमें 'बेड़ा-कीर्त्तन'-विलास-वर्णन
नामक ग्यारहवें अध्यायका अनुवाद समाप्त।

चित्र-12

बारहवाँ अध्याय

कथासार—श्रीमहाप्रभुका दर्शन करनेके लिये राजाने बहुत चेष्टा की। सभी भक्तोंको अपने साथ लेकर श्रीनित्यानन्द प्रभुने महाप्रभुको राजाके चित्तके भाव बतलाये। महाप्रभुके तब भी (राजासे मिलना) अस्वीकार करनेपर श्रीनित्यानन्द प्रभुने महाप्रभुसे उनका एक बहिर्वास (वस्त्र) लेकर राजाके पास भिजवा दिया। किसी और दिन जब श्रीरामानन्द रायने महाप्रभुको राजापर कृपा करनेके लिये कहा, तो महाप्रभु उनसे सम्मत नहीं हुए, किन्तु उन्होंने राजाके पुत्रको लानेकी आज्ञा दे दी; राजपुत्रके कृष्णोद्दीपक वेशको देखकर महाप्रभुने उसपर कृपा की। रथयात्रासे पहले ही अपने भक्तोंके साथ महाप्रभुने गुण्डिचा मन्दिरकी धुलायी और सफाई की। उसके बाद इन्द्रद्युम्न सरोवरमें स्नान करके उपवनमें समस्त वैष्णवोंको लेकर महाप्रभुने प्रसाद सेवा की। मन्दिर-मार्जनके समय जब किसी गौड़ीयने महाप्रभुके चरणोंमें जल देकर उस जलको पान किया, तब एक प्रेम-रहस्य उदित हुआ। दूसरी ओर, श्रीअद्वैताचार्यके पुत्र श्रीगोपालके मूर्च्छित होनेपर उसकी मूर्च्छाको भङ्ग होते न देखकर महाप्रभुने उसे चेतन किया। प्रसाद सेवनके समय श्रीअद्वैताचार्य और श्रीनित्यानन्द प्रभुमें थोड़ा प्रेमकलह हुआ था। श्रीअद्वैत प्रभुने कहा,—'अज्ञात कुल-शील नित्यानन्दके साथ एक पंक्तिमें भोजन करना गृहस्थ-ब्राह्मणका कर्त्तव्य नहीं है'; उसके उत्तरमें श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा,—"अद्वैताचार्य 'अद्वैत-सिद्धान्त'में निपुण हैं, इसके साथ भोजन करनेसे सज्जन लोगोंका चित्त ना जाने किस प्रकारका हो जाता है?" इन दोनों प्रभुओंकी बातमें अत्यन्त गूढ़ रहस्य है, उसे सद्भक्त ही अनायास समझ सकते हैं। वैष्णवोंकी सेवा होनेके बाद श्रीस्वरूप आदि सज्जनोंने घरके भीतर प्रसाद सेवा की। श्रीनवयौवन-दर्शनके दिन भक्तोंको लेकर महाप्रभुने जगद्बन्धु (जगन्नाथ)के दर्शनमें विशेष प्रसन्नता प्राप्त की।

—(अमृतप्रवाह भाष्य)

गुण्डिचा मार्जन करनेवाले श्रीगौरसुन्दर :—

श्रीगुण्डिचा-मन्दिरमात्मवृन्दैः
सम्मार्जयन् क्षालनतः स गौरः।
स्वचित्तवच्छीतलमुज्ज्वलञ्च
कृष्णोपवेशौपयिकं चकार॥1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीगौरचन्द्रने अपने आत्मीय भक्तों सहित श्रीगुण्डिचा मन्दिरको पोंछ और धो करके उसे अपने शीतल और उज्ज्वल चित्तकी भाँति स्वच्छ करके श्रीकृष्णके बैठने योग्य किया था॥1॥

अनुभाष्य—

सः गौरः आत्मवृन्दैः (निजभक्तगणैः सह) श्रीगुण्डिचा-मन्दिरं सम्मार्जयन् (मलादि-विरहितं कुर्वन्) क्षालनतः (प्रक्षालनादिना) स्वचित्तवत् (आत्महृदयवत्) शीतलं (भोगवासनानलजनित-त्रितापविहीनम्) उज्ज्वलं (दीप्तिविशिष्टं) च कृष्णोपवेशौपयिकं (कृष्णस्य वासयोग्यं स्थानं) चकार।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥1॥

जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥2॥

अनुवाद—श्रीगौरचन्द्रकी जय हो जय हो, श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो, श्रीअद्वैतचन्द्रकी जय हो एवं समस्त श्रीगौरभक्तोंकी जय हो॥2॥

गौरभक्तोंसे ग्रन्थकारकी श्रीकृष्णचैतन्यके गुण-लीला-वर्णन करनेकी शक्तिकी प्रार्थना :—

जय जय श्रीवासादि गौरभक्तगण।
शक्ति देह,—करि येन चैतन्य-वर्णन॥ 3॥

अनुवाद—श्रीवासादि गौरभक्तोंकी जय हो जय हो। आप सभी मुझे शक्ति प्रदान करें, जिससे मैं महाप्रभुकी लीलाओंका वर्णन कर सकूँ॥ 3॥

दक्षिण देशसे आनेके बाद राजा प्रतापरुद्रकी महाप्रभुके दर्शनकी उत्कण्ठा—

पूर्वे दक्षिण हैते प्रभु यबे आइला।
ताँरे मिलिते गजपति उत्कण्ठित हैला॥ 4॥

दर्शन करनेके लिये श्रीभट्टाचार्यको महाप्रभुकी अनुमतिके लिये पत्र भेजना :—

कटक हैते पत्री दिल सार्वभौम-ठाञि।
प्रभुर आज्ञा हय यदि, देखिवारे याइ॥ 5॥

अनुवाद—दक्षिण भारतसे जब महाप्रभु लौट आये, तब गजपति (राजा प्रतापरुद्र) उनसे मिलनेके लिये बड़े उत्कण्ठित हो गये। कटकसे राजाने श्रीसार्वभौमको पत्र लिखा कि यदि महाप्रभुकी आज्ञा हो, तो मैं उनके दर्शनके लिये आ जाऊँ॥ 4-5॥

श्रीभट्टाचार्यके द्वारा महाप्रभुकी निषेध आज्ञाका बताना और राजाके द्वारा पुनः लोभरूपी पत्र भेजना :—

भट्टाचार्य लिखिल,—प्रभुर आज्ञा ना हैल।
पुनरपि राजा ताँरे पत्री पाठाइल॥ 6॥

भक्तोंके पास अभीष्ट सिद्धि हेतु प्रार्थना :—

'प्रभुर निकटे आछे यत भक्तगण।
मोर लागि' ताँ-सबारे करिह निवेदन॥ 7॥

सेइ सब दयालु मोरे हञा सदय।
मोर लागि' प्रभुपदे करिबे विनय॥ 8॥

ताँ-सबार प्रसादे मिले श्रीप्रभुर पाय।
प्रभुकृपा बिना मोर राज्य नाहि भाय॥ 9॥

महाप्रभुकी कृपाके अभावमें राजाका निर्वेद और राज्य त्याग करनेकी प्रतिज्ञा :—

यदि मोरे कृपा ना करिबे गौरहरि।
राज्य छाड़ि' योगी हइ' हइब भिखारी॥' 10॥

अनुवाद—श्रीभट्टाचार्यने उत्तरमें लिखा,—अभी महाप्रभुकी ऐसी आज्ञा नहीं हुई है। यह सुनकर राजाने फिरसे उन्हें एक पत्र लिखकर भेजा,—'महाप्रभुके पास जितने भक्त रहते हैं, उन सबसे मेरे ओरसे निवेदन करना कि वे सब दयालु भक्त मुझपर कृपा करके मेरे लिये महाप्रभुके श्रीचरणोंमें प्रार्थना करें। उन सबकी कृपासे ही मुझे महाप्रभुके श्रीचरणोंकी प्राप्ति हो सकती है। महाप्रभुकी कृपाके बिना अब मेरा राजपाटमें मन नहीं लगता। यदि श्रीगौरहरि मुझपर कृपा नहीं करेंगे, तो मैं राजपाट छोड़कर योगी बनकर घर-घर भिक्षा करूँगा॥' 6-10॥

अनुभाष्य—'कल्याणकल्पतरु' ग्रन्थमें श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुरने लिखा है—

"काँदिया, काँदिया जानाइब दुःखग्राम।
संसार-अनल ह'ते मागिब विश्राम॥
शुनिया आमार दुःख वैष्णव-ठाकुर।
आमा लागि' कृष्णे आवेदिबेन प्रचुर॥
वैष्णवेर आवेदने कृष्ण दयामय।
मो-हेन पामर-प्रति ह'बेन सदय॥"

अर्थात् "मैं रोते-रोते अपने दुःखकी गाथा सुना रहा हूँ। अब मैं इस संसार-अग्निसे छुटकारा चाहता हूँ। हे वैष्णव-ठाकुर! मेरे दुःखकी गाथाको सुनकर श्रीकृष्णसे मेरे लिये ज़ोर देकर प्रार्थना करना। वैष्णवकी प्रार्थना सुनकर दयामय श्रीकृष्ण मेरे जैसे पापीके प्रति भी दयाशील होंगे॥"7-9॥

सभी भक्तोंको राजाका पत्र दिखाना :—

भट्टाचार्य पत्री देखि' चिन्तित हञा।
भक्तगण-पाश गेला सेइ पत्री लञा॥ 11॥

सबारे मिलिया कहिल राज–विवरण।
पिछे सेइ पत्री सबारे कराइल दरशन॥ 12॥

अनुवाद—राजाका पत्र पढ़कर श्रीभट्टाचार्य बड़े चिन्तित हो गये। वे उस पत्रको लेकर भक्तोंके पास गये। पहले श्रीभट्टाचार्यने सभी भक्तोंसे मिलकर उनको राजाकी महाप्रभुके दर्शनकी तीव्र उत्कण्ठाके विषयमें बतलाया और बादमें सबको राजाका पत्र भी दिखलाया॥ 11–12॥

राजाकी महाप्रभुके प्रति भक्तिको
देखकर सभी भक्तोंको विस्मय :—

पत्री देखि' सबार मने हइल विस्मय।
प्रभुपदे गजपतिर एत भक्ति हय!!13॥

अनुवाद—राजाके पत्रको देखकर सभीके मनमें आश्चर्य हुआ कि गजपति राजाकी महाप्रभुके चरणोंमें इतनी भक्ति है॥ 13॥

सभीकी महाप्रभुके दृढ़ सङ्कल्पमें आस्थाके कारण भय
और राजाको अप्रिय सत्य बात कहनेकी अनिच्छा :—

सबे कहे,—"प्रभु ताँरे कभु ना मिलिबे।
आमि सब कहि यदि, दुःख से मानिबे॥"14॥

अनुवाद—सभी भक्तोंने कहा,—"महाप्रभु राजासे कभी भी नहीं मिलेंगे, परन्तु यह बात यदि हम सब राजासे कहेंगे, तो उनको बहुत दुःख होगा॥"14॥

श्रीसार्वभौमकी युक्ति—महाप्रभुको राजाकी
भगवद्भक्तिकी निष्ठा वर्णन करनेकी इच्छा :—

सार्वभौम कहे,—"सबे चल' एकबार।
मिलिते ना कहिब, कहिब राज–व्यवहार॥"15॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौमने कहा—"आइये, हम सब एक बार महाप्रभुके पास चलते हैं। हम उन्हें राजासे मिलनेके लिये नहीं कहेंगे, केवल राजाके व्यवहारकी ही बात कहेंगे॥"15॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीसार्वभौमने कहा,—हम सब मिलकर महाप्रभुके सामने राजाके सुवैष्णव-व्यवहारके बारेमें बतलायेंगे। राजाको दर्शन देनेके लिये अनुरोध नहीं करेंगे॥ 15॥

महाप्रभुके निकट आकर भी सभीको
राजाकी बात कहनेमें भय :—

एत बलि' सबे गेला महाप्रभुर स्थाने।
कहिते उन्मुख सबे, ना कहे वचने॥ 16॥

अनुवाद—इतना कहकर श्रीसार्वभौम सबके साथ महाप्रभुके पास गये। वे सब कहनेके लिये महाप्रभुके सामने आये, परन्तु कुछ कह नहीं सके॥ 16॥

सभीकी भय-चकित-दृष्टिको देखकर महाप्रभुके
द्वारा उनके आगमनके कारणकी जिज्ञासा :—

प्रभु कहे,—"कि कहिते सबार आगमन?
देखिये कहिते चाह,—ना कह, कि कारण?॥"17॥

अनुवाद—महाप्रभुने पूछा,—"आप क्या कहनेके लिये यहाँ आये हैं? मैं देख रहा हूँ कि आप कुछ कहना चाहते हैं, किन्तु कुछ कह नहीं रहे, क्या कारण है?"॥ 17॥

नित्यानन्द प्रभुका भयभीत होकर निवेदन :—

नित्यानन्द कहे,—"तोमाय चाहि निवेदिते।
ना कहिले रहिते नारि, कहिते भय चित्ते॥ 18॥

योग्यायोग्य तोमाय सब चाहि निवेदिते।
तोमा ना मिलिले राजा चाहे योगी हैते॥ 19॥

श्रीगौरकृपाके अभावमें राज-प्रतिज्ञाका निवेदन :—

काणे मुद्रा लइ' मुञि हइब भिखारी।
राज्यभोग नहे चित्ते बिना गौरहरि॥ 20॥

राजाका गाढ़ गौर–अनुराग :—

देखिब से मुखचन्द्र नयन भरिया।
धरिब से पादपद्म हृदये तुलिया॥"21॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा,—"हम आपसे

कुछ निवेदन करना चाहते हैं, कहे बिना रह नहीं पा रहे हैं और कहनेमें भय हो रहा है। योग्य हो या अयोग्य हो, हम सब आपसे निवेदन करना चाहते हैं कि अगर आप राजासे नहीं मिलेंगे, तो वे योगी बन जायेंगे। उन्होंने कहा हैं कि श्रीगौरहरिके बिना मुझे राज्य-भोगकी इच्छा नहीं है, इसलिये मैं कानोंमें मुद्रा धारणकर भिखारी बन जाऊँगा। तब मैं महाप्रभुके मुखचन्द्रको अपने नेत्रोंसे जी भरकर देखूँगा और उनके श्रीचरणकमलोंको उठाकर अपने हृदयपर धारण करूँगा॥"18-21॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'काणे मुद्रा'*—पश्चिम भारतमें योगियोंको 'कान-फाटा योगी' कहते हैं। योगी लोग कानमें घोंघेकी हड्डीके द्वारा एक चिह्न धारण करते हैं।

राजाने कहा,—श्रीगौरहरिके दर्शन बिना राज्य-भोग चित्तमें नहीं है, अर्थात् अच्छा नहीं लगता॥20॥

महाप्रभुका आचार्योचित कठोर संन्यास-धर्मपरक वाक्य :—

यद्यपि शुनिया प्रभुर कोमल हय मन।
तथापि बाहिरे कहे निष्ठुर वचन॥22॥

भक्तोंकी राजदर्शनरूपी इच्छा जानकर प्रभुका आरोप :—

"तोमा-सबार इच्छा,—एइ आमारे लञा।
राजाके मिलह इँह कटकेते गिया॥23॥

विधिके उल्लङ्घनके कारण लोकनिन्दा और श्रीदामोदर पण्डितके वाक्य-दण्डकी सम्भावना :—

परमार्थ थाकुक्, लोके करिबे निन्दन।
लोके रहु—दामोदर करिबे भर्त्सन॥24॥

मर्यादा प्रदर्शनके छलसे श्रीदामोदरकी अनधिकार चर्चाके प्रति कटाक्ष :—

तोमा-सबार आज्ञाय आमि ना मिलि राजारे।
दामोदर कहे यबे, मिलि तबे ताँरे॥"25॥

अनुवाद—यद्यपि यह सब सुनकर महाप्रभुका मन कोमल हो गया, तथापि बाहरसे कठोर होकर उन्होंने निष्ठुर वचन कहे,—"आप सबकी इच्छा यह है कि आप सब मुझे कटकमें ले जाकर राजासे मिलवायेंगे। परमार्थकी बात तो दूर रहे, लोग भी निन्दा करेंगे। यदि लोक-निन्दाकी बातको भी छोड़ दें, तो यह दामोदर ही मेरी भर्त्सना करेगा। आप सबके कहनेपर भी मैं राजासे नहीं मिलूँगा, किन्तु यदि दामोदर कह दे, तो मैं राजासे मिल सकता हूँ॥"22-25॥

अमृतप्रवाह भाष्य—पारमार्थिक-विचारसे संन्यासीके लिये राजाका दर्शन करना दोषपूर्ण है। उस दोषकी तो बात ही नहीं—लोग तो संन्यासीके अति छोटेसे दोषको देखनेसे ही निन्दा करते हैं। लोकनिन्दा परित्यागका कुछ तात्पर्य है,—जगत्में धर्म-प्रचार ही संन्यासीका कर्म है। जगत्में यदि निन्दा हुई, तो धर्म-प्रचारकार्य ठीकसे नहीं होता; इसलिये लोक-रक्षा करना भी आवश्यक है। लोक-निन्दाकी बात दूर रहे—मेरे निकट यह जो दामोदर पण्डित बैठा है, इसके हाथों छुटकारा पाना कठिन है, यह अवश्य ही मेरी भर्त्सना करेगा। केवल आपकी आज्ञासे राजाके साथ साक्षात्कार नहीं कर सकता; यदि दामोदर उनसे मिलनेके लिये कहे, तभी मैं ऐसा कर सकता हूँ।' महाप्रभुके इस वाक्यके अनेक गूढ़ अर्थ हैं,—दामोदरकी भक्तिके वशीभूत होनेपर भी उसका वाक्यरूपी दण्ड बहुत बार महाप्रभुके लिये अयोग्य होता है। इस बातसे दामोदरको वह प्रवृत्ति छोड़नी होगी॥24-25॥

श्रीदामोदरका अभिमान और आरोप :—

दामोदर कहे,—"तुमि स्वतन्त्र ईश्वर।
कर्त्तव्याकर्त्तव्य सब तोमार गोचर॥26॥

आमि कोन् क्षुद्रजीव, तोमाके विधि दिब?
आपनि मिलिबे ताँरे, ताहाओ देखिब॥27॥

राजा तोमारे स्नेह करे, तुमि—स्नेहवश।
ताँर स्नेहे कराबे ताँरे तोमार परश॥28॥

यद्यपि ईश्वर तुमि परम-स्वतन्त्र।
तथापि स्वभावे हओ प्रेम-परतन्त्र॥29॥

अनुवाद—श्रीदामोदरने कहा,—"आप स्वतन्त्र ईश्वर

हैं। क्या कर्त्तव्य है और क्या अकर्त्तव्य, यह आप भली-भाँति जानते हैं। मैं एक क्षुद्र जीव कौन होता हूँ जो आपको विधि-नियम बतलाऊँगा? आप स्वयं ही राजासे मिलेंगे, मैं यह देखूँगा। राजा आपसे स्नेह करते हैं और आप भी उनके स्नेहके वशीभूत हैं। राजाका स्नेह ही उन्हें आपका स्पर्श प्राप्त करायेगा। यद्यपि आप ईश्वर हैं, इसलिये परम-स्वतन्त्र हैं, तथापि अपने स्वभावके कारण आप प्रेमके अधीन रहते हैं॥"26-29॥

अनुभाष्य—यद्यपि आप ईश्वर हैं, इसलिये किसीके भी द्वारा किसी प्रकारसे बँधे नहीं है, तथापि अपने स्वभावके कारण आप अपने ऐकान्तिक भक्तोंकी प्रीतिसे ही बँधे हैं॥29॥

महाप्रभुके मतका समर्थन करते हुए श्रीनित्यानन्द प्रभुके द्वारा राजाके अनुरागका समर्थन :—

नित्यानन्द कहे,—"ऐछे हय कोन् जन।
ये तोमारे कहे, 'कर राजदरशन'॥30॥

कृष्णानुरागीका स्वभाव और याज्ञिक-ब्राह्मणोंकी पत्नियोंके कृष्णानुरागका दृष्टान्त :—

किन्तु अनुरागी लोकेर स्वभाव एक हय।
इष्ट ना पाइले निज-प्राण से छाड़य॥31॥

याज्ञिक-ब्राह्मणी सब ताहाते प्रमाण।
कृष्ण लागि' पति-आगे छाड़िलेक प्राण॥32॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा,—"इस त्रिभुवनमें ऐसा कौन है जो आपसे राजाका दर्शन करनेके लिये कह सके? किन्तु क्या यह अनुरागी व्यक्तियोंका स्वभाव नहीं है कि वे अपने इष्टको न पानेसे अपने प्राणोंका भी त्याग कर देते हैं। याज्ञिक ब्राह्मणियाँ सब इसका प्रमाण हैं, श्रीकृष्णके लिये वे अपने पतियोंके सामने ही अपने प्राण त्यागनेके लिये तत्पर हो गयीं थी॥30-32॥

अमृतप्रवाह भाष्य—एक दिन जब श्रीकृष्ण गोपबालकों और गैयाओंको लेकर मथुराके निकट पहुँचे, तब गोपबालकोंको भूख लगी। श्रीकृष्णने कहा,—'यहाँ पासमें एक वनमें याज्ञिक ब्राह्मण यज्ञ कर रहे हैं, उनके पास जाकर मेरे नामसे भोजन माँग लो।' गोपबालकोंने जाकर जब भोजनकी याचना की, तब कर्मजड़ याज्ञिक ब्राह्मणोंने उन्हें भोजन नहीं दिया। उन ब्राह्मणोंकी पत्नियोंने श्रीकृष्णके प्रति स्वाभाविक अनुरागवशतः गोपबालकोंकी याचनाको सुनकर पतियोंके यज्ञका त्याग करके श्रीकृष्णको भोजन देनेके लिये अनेक विपत्तियोंको स्वीकार किया। तात्पर्य यह है कि भगवद्-तत्त्वमें अनुराग होनेपर उनकी सेवाके अभावमें भक्त प्राण त्यागनेके लिये भी तत्पर होता है॥31-32॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 2/28, 43 और 45 संख्या देखें। मध्यलीला 4/186 संख्या एवं अन्त्यलीला 4/61-64 संख्या इस प्रसङ्गमें विचारणीय हैं। याज्ञिक ब्राह्मण पत्नियोंको श्रीकृष्णप्राप्ति-प्रसङ्गके लिये भागवत दशम-स्कन्ध 23वाँ अध्याय देखें॥31-32॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुकी युक्ति :—

एक युक्ति आछे, यदि कर अवधान।
तुमि ना मिलिलेह ताँरे, रहे ताँर प्राण॥33॥

एक बहिर्वास यदि देह' कृपा करि'।
ताहा पाञा प्राण राखे, तोमार आशा धरि'॥"34॥

अनुवाद—ऐसी एक युक्ति है, जिसपर आप विचार करें जिसके द्वारा आपके राजासे नहीं मिलनेपर भी उनके प्राण बचे रह सकते हैं। यदि आप कृपा करके अपना एक बहिर्वास दें, तो राजा उसे पाकर अपनी अभिलाषा पूर्ण होनेकी आशासे अपने प्राण धारण कर सकते हैं॥"33-34॥

अनुभाष्य—राजाके भाग्यमें आपके दर्शनकी प्राप्ति किसी भी प्रकारसे नहीं होगी और आपके दर्शन न होनेके कारण उनके प्राण उत्कण्ठित हुए हैं। ऐसे समयमें यदि आपका एक पहना हुआ बहिर्वास कृपा करके उन्हें प्रदान करें, तभी उनके प्रति आपकी दया

है, ऐसा वे समझेंगे और भविष्यमें उनकी अभिलाषा पूर्ण हो सकती है,—इस आशासे राजा प्राण धारण कर सकेंगे॥ 34॥

श्रीनित्यानन्दादिके वशीभूत महाप्रभु :—

प्रभु कहे,—"तुमि-सब परम विद्वान्।
येइ भाल हय, सेइ कर समाधान॥"35॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"आप सब परम विद्वान हो। जैसा उचित समझते हैं, वैसा ही कीजिये॥"35॥

श्रीनित्यानन्दके द्वारा श्रीगोविन्दसे महाप्रभुका बहिर्वास लेना :—

तबे नित्यानन्द-गोसाञि गोविन्देर पाश।
मागिया लइल प्रभुर एक बहिर्वास॥ 36॥

श्रीसार्वभौमके द्वारा उस बहिर्वासको राजाके पास भेजना :—

सेइ बहिर्वास सार्वभौम-पाश दिल।
सार्वभौम सेइ वस्त्र राजारे पाठा'ल॥ 37॥

अनुवाद—तब श्रीनित्यानन्द प्रभुने श्रीगोविन्दसे महाप्रभुका एक बहिर्वास माँगकर ले लिया। उस बहिर्वासको उन्होने श्रीसार्वभौमको दिया और श्रीसार्वभौमने उस वस्त्रको राजाके पास भिजवा दिया॥ 36–37॥

महाप्रभुके वस्त्रको महाप्रभुसे अभिन्न जानकर राजाके द्वारा उसकी सेवा :—

वस्त्र पाञा राजार हैल आनन्दित मन।
प्रभुरूप करि' करे वस्त्रेर पूजन॥ 38॥

अनुवाद—महाप्रभुके वस्त्रको पाकर राजाके मनमें बहुत आनन्द हो गया। राजा उस वस्त्रको महाप्रभुका ही रूप जानकर उसकी पूजा करने लगे॥ 38॥

अनुभाष्य—महाप्रभुकी जिस प्रकार आग्रहपूर्वक पूजा करनेकी बात राजाने सोची थी, महाप्रभुके द्वारा दिये गये बहिर्वासके खण्डको महाप्रभुके समान मानकर राजा उसी प्रकार पूजा करने लगे। महाप्रभुके श्रीअङ्गके साथ उनके द्वारा पहने गये वस्त्र-भूषणादिका नित्य अभेद हैं। सन्धिनी-शक्तिमान्-विग्रह श्रीबलदेवकी ही कला, 'शेष'-रूपी विष्णु-शय्या और वस्त्रादि विविधरूपोंमें अपने आराध्य श्रीकृष्णचन्द्रकी सेवा करती हैं। इसलिये वे सभी वस्तुएँ श्रीकृष्णसे अभिन्न रूपमें शुद्धसेवकोंके लिये सेव्य हैं। विशेषतः महाप्रभु अद्वयज्ञान सच्चिदानन्दविग्रह स्वयं भगवान् हैं। इस प्रकार सच्चिदानन्दमय गुरु-वैष्णवोंको और उनके द्वारा व्यवहार किये गये उपकरणोंको परस्पर अभिन्न अर्थात् जीवोंके नित्य परम-अर्चनीय विग्रहके रूपमें जानने होंगे॥ 38॥

पुरीमें आकर महाप्रभुका सङ्ग प्राप्त करनेके लिये श्रीरायको राजकार्यसे निवृत्तिके लिये राजाकी अनुमति :—

रामानन्द राय यबे 'दक्षिण' हैते आइला।
प्रभुसङ्गे रहिते राजाके निवेदिला॥ 39॥

रायको महाप्रभुके दर्शन कराने हेतु राजाका अनुरोध :—

तबे राजा सन्तोषे ताँहारे आज्ञा दिला।
आपनि मिलन लागि' कहिते लागिला॥ 40॥

"महाप्रभु महाकृपा करेन तोमारे।
मोरे मिलिबारे अवश्य साधिबे ताँहारे॥"41॥

अनुवाद—श्रीरामानन्द राय जब दक्षिण भारतसे आये, तो उन्होंने महाप्रभुके साथ रहनेके लिये राजासे निवेदन किया। तब राजाने प्रसन्नतापूर्वक उनको राजकार्य छोड़कर महाप्रभुके साथ रहनेके लिये अनुमति दे दी। फिर महाप्रभुके साथ अपने मिलनके सम्बन्धमें कहने लगे,—"महाप्रभुकी आपपर अपार कृपा है। इसलिये मुझे उनसे मिलवानेके लिये आप भी यत्न करना॥"39–41॥

राजाके साथ कटकसे पुरी आनेपर ही श्रीरायको महाप्रभुका दर्शन :—

एकसङ्गे दुइ जन क्षेत्रे यबे आइला।
रामानन्द राय तबे प्रभुरे मिलिला॥ 42॥

अनुवाद—श्रीरामानन्द राय और राजा प्रतापरुद्र, दोनों जब एक ही साथ नीलाचल आ गये, तब श्रीरामानन्द राय महाप्रभुसे मिले॥ 42॥

महाप्रभुसे राजाके लिये आवेदन :—

प्रभुपदे प्रेमभक्ति जानाइल राजार।
प्रसङ्ग पाञा ऐछे कहे बारबार॥ 43॥

अनुवाद—श्रीरामानन्द रायने महाप्रभुको राजाकी उनके श्रीचरणोंमें प्रेमभक्तिको जनाया। और बादमें भी प्रसङ्ग पाकर उसी बातको बार-बार कहते॥ 43॥

व्यवहारमें चतुर श्रीरामानन्द :—

राजमन्त्री रामानन्द—व्यवहारे निपुण।
राजप्रीति कहि' द्रवाइल प्रभुर मन॥ 44॥

अनुवाद—श्रीरामानन्द राय राजमन्त्री होनेके कारण व्यवहारमें निपुण थे। इसलिये राजाकी प्रीतिको बतलाते हुए धीरे-धीरे उन्होंने महाप्रभुके मनको द्रवीभूत कर दिया॥ 44॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीरामानन्द राय राजमन्त्री होनेके कारण राजकीय-व्यवहारादि सभी विषयोंमें बड़े ही निपुण थे, इसलिये राजाकी महाप्रभुके प्रति जो प्रीति है, उसका वर्णन करके उन्होंने महाप्रभुके चित्तको द्रवीभूत कर दिया था॥ 44॥

उत्कण्ठित राजाको दर्शन देनेके लिये महाप्रभुसे प्रार्थना :—

उत्कण्ठाते प्रतापरुद्र नारे रहिबारे।
रामानन्द साधिलेन प्रभुरे मिलिबारे॥ 45॥

रामानन्द प्रभु-पाय कैल निवेदन।
"एकबार प्रतापरुद्रे देखाह चरण॥" 46॥

अनुवाद—महाप्रभुके दर्शनकी उत्कण्ठाके कारण राजा प्रतापरुद्रसे रहा नहीं जा रहा था, इसलिये श्रीरामानन्द रायने उन्हें महाप्रभुसे मिलानेका एक उपाय निकाला। श्रीरामानन्द रायने महाप्रभुके चरणोंमें निवेदन किया,—"आप एकबार राजा प्रतापरुद्रको अपने श्रीचरणोंका दर्शन दे दीजिये॥" 45-46॥

रायसे ही महाप्रभुकी सद्विचारकी याचना :—

प्रभु कहे,—"रामानन्द, कह विचारिया।
राजाके मिलिते युयाय संन्यासी हञा? ॥ 47॥

राजार मिलने भिक्षुकेर दुइ कुल नाश।
परलोक रहु, लोके करे उपहास॥" 48॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"रामानन्द! तुम स्वयं ही विचार करके बतलाओ कि क्या संन्यासी होकर राजासे मिलना उचित है? राजासे मिलनेसे भिक्षुकके दोनों कुल नाश हो जाते हैं। परलोककी तो बात दूर रहे, इस लोकमें भी लोग उसका उपहास करते हैं॥" 47-48॥

महाप्रभुमें श्रीरायका विधि-निषेधसे अतीत 'ईश्वर'-ज्ञान :—

रामानन्द कहे,—"तुमि ईश्वर स्वतन्त्र।
कारे तोमार भय, तुमि नह परतन्त्र॥" 49॥

अनुवाद—श्रीरामानन्द रायने कहा,—"आप तो स्वतन्त्र ईश्वर हैं। आपको किसीका भय नहीं है, क्योंकि आप किसीके अधीन नहीं हैं॥" 49॥

स्वयंको विधिके द्वारा बाध्य दिखलाकर महाप्रभुकी छलनेकी चेष्टा :—

प्रभु कहे,—"आमि मनुष्य, आश्रमे संन्यासी।
कायमनोवाक्ये व्यवहारे भय वासि॥ 50॥

वैध संन्यासीके लिये निष्कलङ्क आचरण ही कर्त्तव्य :—

शुक्लवस्त्रे मसि-बिन्दु यैछे ना लुकाय।
संन्यासीर अल्प छिद्र सर्वलोके गाय॥" 51॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"मैं ईश्वर नहीं, एक साधारण मनुष्य हूँ और उसपर आश्रमसे संन्यासी हूँ। इसलिये मेरे तन, मन और वाक्यसे व्यवहारके विषयमें

लोग क्या कहेंगे, इसका भय करता हूँ। जिस प्रकार सफेद वस्त्रपर स्याहीका एक छोटासा भी बिन्दु छिपता नहीं है, उसी प्रकार संन्यासीके छोटेसे दोषकी भी सब लोग चर्चा करते हैं॥"50–51॥

अनुभाष्य—मैं चतुर्थ आश्रम अर्थात् संन्यासमें स्थित मनुष्य मात्र हूँ, ईश्वर नहीं। इसलिये तन-मन-वाक्यसे लौकिक व्यवहारके व्यभिचारकी आशङ्का करता हूँ अर्थात् दूसरोंकी अपेक्षा रखता हूँ॥50॥

महापापीके उद्धारके लिये भगवद्भक्त राजाका भी महाप्रभुके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त करनेका अवश्य ही अधिकार :—

राय कहे,—"यत पापी करियाछ अव्याहति।
ईश्वर-सेवक तोमार भक्त गजपति॥"52॥

अनुवाद—श्रीरामानन्द रायने कहा,—"आपने तो अनेक पापियोंका उद्धार किया है। गजपति राजा तो श्रीजगन्नाथके सेवक और आपके भक्त हैं॥"52॥

महाप्रभुकी फिर भी राजाका दर्शन करनेकी अनिच्छा :—

प्रभु कहे,—"पूर्ण यैछे दुग्धेर कलस।
सुराबिन्दु-पाते केह ना करे परश॥53॥

जड़ 'विषयी'-संज्ञा—सर्वगुण नाशक :—

यद्यपि प्रतापरुद्र—सर्व गुणवान्।
ताँहारे मलिन कैल एक 'राजा' नाम॥54॥

अन्तमें श्रीरामानन्द रायके आग्रहसे महाप्रभुकी राजाके पुत्रके साथ मिलनेकी इच्छा :—

तथापि तोमार यदि महाग्रह हय।
तबे आनि' मिलाह तुमि ताँहार तनय॥55॥

पिता और पुत्रमें दैहिक-धातुगत अभेद :—

"आत्मा वै जायते पुत्रः"—एइ शास्त्रवाणी।
पुत्रेर मिलने येन मिलिबे आपनि॥"56॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"जिस प्रकार दूधसे भरे कलशमें यदि मदिराकी एक बूँद भी गिर जाय, तो कोई भी उसे स्पर्श नहीं करता। यद्यपि राजा प्रतापरुद्रके सर्वगुणवान् होनेपर भी एक 'राजा' नामने ही उनको मलिन किया हुआ है, तथापि यदि आपका बहुत आग्रह है, तो उनके पुत्रको लाकर मुझसे मिलवा सकते हो। शास्त्रोंमें कहा गया है कि आत्मा ही पुत्रके रूपमें आता है, इसलिये पुत्रके मुझसे मिलनेसे जैसे उनका (राजाका) अपना मिलना हो जायेगा॥"53–56॥

अनुभाष्य—*'तनय'*—पुरोषत्तम जाना (?)

श्रीभगवदुक्ति (भाः 10/78/36)—"आत्मा वै पुत्र उत्पन्न इति वेदानुशासनम्" अर्थात् "जीव स्वयं ही पुत्रके रूपमें उत्पन्न होता है, इस प्रकारसे वेदोंका निर्देश है"; इस श्लोककी श्रीधर-स्वामीकी टीका—"आत्मा वै पुत्रनामासि स जीवः शरदः शतम्" इत्यादि वेदानुशासनम्॥55–56॥

राजाको श्रीरायके द्वारा महाप्रभुकी कृपाका समाचार देना; राजपुत्रको महाप्रभुके पास लाना :—

तबे राय याइ' सब राजारे कहिला।
प्रभुर आज्ञाय ताँर पुत्र लञा आइला॥57॥

अनुवाद—तब श्रीरामानन्द रायने जाकर महाप्रभुकी सारी बात राजाको बतला दी और महाप्रभुकी आज्ञा अनुसार राजाके पुत्रको अपने साथ ले आये॥57॥

श्यामवर्ण किशोर राजपुत्रसे महाप्रभुको 'श्रीकृष्ण'की उद्दीपना :—

सुन्दर, राजार पुत्र—श्यामल-वरण।
किशोर वयस, दीर्घ कमलनयन॥58॥

पीताम्बर, धरे अङ्गे रत्न-आभरण।
श्रीकृष्ण-स्मरणे तेँह हैला 'उद्दीपन'॥59॥

ताँरे देखि' महाप्रभुर कृष्णस्मृति हैल।
प्रेमावेशे ताँरे मिलि' कहिते लागिल॥60॥

वैष्णवदर्शनकी चूड़ान्त कथा :—

"एइ—महाभागवत, याँहार दर्शने।
व्रजेन्द्रनन्दन-स्मृति हय सर्वजने॥61॥

राजपुत्रको श्रीकृष्ण मानकर महाप्रभुके द्वारा आलिङ्गन :—

कृतार्थ हइलाङ आमि इँहार दरशने।"
एत बलि' कैल तारे पुनः आलिङ्गने॥62॥

अनुवाद—राजा प्रतापरुद्रका पुत्र श्याम वर्णका और देखनेमें अति सुन्दर था। उसकी किशोर अवस्था थी और कमलके समान सुन्दर बड़े नयन थे। उसने पीताम्बर पहन रखा था और उसके अङ्गोंमें अनेक रत्नोंके आभूषण शोभा पा रहे थे। उसे देखते ही श्रीकृष्ण-स्मरणका 'उद्दीपन'-भाव प्रकाशित हो जाता था, इसलिये उसे देखकर महाप्रभुको श्रीकृष्णकी स्मृति हो आयी। उससे मिलकर प्रेमोवेशमें महाप्रभुने उसका आलिङ्गन किया और कहने लगे,—"यह तो महाभागवत है, इसे देखनेसे सभीको व्रजेन्द्रनन्दनकी स्मृति होती है। इसके दशर्नसे मैं कृतार्थ हो गया हूँ।" इतना कहकर महाप्रभुने उसे पुनः आलिङ्गन किया॥ 58–62॥

अनुभाष्य—महाप्रभुने राजपुत्रकी आत्माका दर्शन किया, उसके बाहरी अनात्म देह और भोग्य-अनुशीलनपर मनका दर्शन नहीं किया। महाप्रभुमें राजपुत्रको 'विषयीका पुत्र विषयी', इसलिये उसे 'स्त्री सङ्गी' एवं स्वयंको 'स्त्री-भोक्ता पुरुष' माननेकी धारणा बिल्कुल भी नहीं है। अर्थात् जिस प्रकार श्रीकृष्णबहिर्मुख मायावादी जीव निसर्गसुलभ जड़में चिद्का आरोप करते हैं अथवा भूमिमें पूज्यबुद्धि रखते हैं, उस प्रकारसे सच्चिदानन्दमय वास्तव-वस्तुके दर्शनमें महाप्रभुमें किसी प्रकारके मनोधर्मसे उत्पन्न कल्पना अथवा आरोपका लेशमात्र भी अवकाश नहीं है। यद्यपि महाप्रभु स्वयं अद्वयज्ञान विषय-विग्रह हैं, तथापि उन्होंने अपनेको 'आश्रय'-जातीय 'गोपी' मानकर राजपुत्रको साक्षात् 'व्रजेन्द्र-नन्दन' रूपमें देखा, यही शुद्ध जीवात्माका अद्वयज्ञान-दर्शन अथवा वैष्णव दर्शन है (मध्यलीला आठवें अध्यायकी 277 संख्या देखें)। (कठ और मुण्डकोपनिषद्)—

"यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्" अर्थात् जब जीवात्मा भगवान्के प्रति सेवोन्मुख होकर परमात्माकी कृपायाचना करता है, तब उसीके निकट वे परमात्मा अपना स्वयंप्रकाश श्रीविग्रह प्रकट करते हैं। इस अभय-दर्शनके अभावके कारण ही जीवका अविद्याजनित सभी अनर्थोंका आह्वान अथवा संसार है। "संसारे आसिया प्रकृति भजिया 'पुरुष' अभिमाने मरि" (ठाकुर श्रीभक्तिविनोदकृत 'कल्याण कल्पतरु') अर्थात् संसारमें आकर जीव स्वयंमें पुरुष (भोक्ता) अभिमान रखकर प्रकृतिका (मायाका) भजन करनेसे जन्म-मृत्युके बन्धनमें जकड़ जाता है॥ 59–61॥

आलिङ्गनके फलस्वरूप राजपुत्रमें श्रीकृष्णप्रेमावेश :—

प्रभुस्पर्शे राजपुत्रेर हैल प्रेमावेश।
स्वेद, कम्प, अश्रु, स्तम्भ, पुलक विशेष॥ 63॥

उसके प्रेमका दर्शन करके भक्तोंके द्वारा प्रशंसा :—

'कृष्ण' 'कृष्ण' कहे, नाचे, करये रोदन।
ताँर भाग्य देखि' श्लाघा करे भक्तगण॥ 64॥

अनुवाद—महाप्रभुका स्पर्श पाते ही राजपुत्रमें प्रेमका आवेश हो गया और उसके शरीरमें स्वेद, कम्प, अश्रु, स्तम्भ तथा पुलकादि विशेष सात्त्विक विकार उदित होने लगे। वह 'कृष्ण' 'कृष्ण' कहकर नाचने और रोने लगा। उसका ऐसा सौभाग्य देखकर सभी भक्त उसकी प्रशंसा करने लगे॥ 63–64॥

महाप्रभुके द्वारा राजाके पुत्रको आश्वासन
और नित्य सङ्गकी याचना :—

तबे महाप्रभु ताँरे धैर्य कराइल।
'नित्य आसि आमाय मिलिह'—एइ आज्ञा दिल॥ 65॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने उसे धैर्य धारण कराया और आदेश दिया,—'तुम नित्य आकर मुझसे मिला करो॥ '65॥

पुत्रके दर्शन और आलिङ्गनसे राजाको
महाप्रभुके स्पर्शकी अनुभूति :—

विदाय हञा राय आइल राजपुत्रे लञा।
राजा सुख पाइल पुत्रेर चेष्टा देखिया॥ 66॥
पुत्रे आलिङ्गन करि' प्रेमाविष्ट हैला।
साक्षात् स्पर्श येन महाप्रभुर पाइला॥ 67॥

अनुवाद—महाप्रभुसे विदायी लेकर श्रीरामानन्द राय राजपुत्रको लेकर राजाके पास आ गये। अपने पुत्रकी चेष्टा (महाप्रभुका आलिङ्गन प्राप्त करना) सुनकर राजाको बहुत प्रसन्नता हुई। अपने पुत्रका आलिङ्गन करके राजा प्रतापरुद्र भी प्रेममें आविष्ट हो गये मानो उन्हें साक्षात् महाप्रभुका स्पर्श प्राप्त हो गया हो॥ 66–67 ॥

राजाके पुत्रकी गौरभक्तोंमें गणना :—

सेइ हैते भाग्यवान् राजार नन्दन।
प्रभुभक्तगण–मध्ये हैला एकजन॥ 68 ॥

अनुवाद—उस दिनसे भाग्यवान् राजपुत्र भी महाप्रभुके भक्तोंमें एक भक्त हो गया॥ 68 ॥

भक्तोंके साथ महाप्रभुका कीर्तन-विलास :—

एइमत महाप्रभु भक्तगण–सङ्गे।
निरन्तर क्रीड़ा करे सङ्कीर्त्तन–रङ्गे॥ 69 ॥

अनुवाद—इस प्रकार महाप्रभु अपने भक्तोंके साथ सङ्कीर्तनका आनन्द लेते हुए निरन्तर लीलाएँ करते थे॥ 69 ॥

श्रीअद्वैतादिका सगण महाप्रभुको निमन्त्रण :—

आचार्यादि भक्त करे प्रभुरे निमन्त्रण।
ताँहा ताँहा भिक्षा करे लञा भक्तगण॥ 70 ॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्यादि प्रमुख भक्त महाप्रभुको अपने-अपने स्थानपर निमन्त्रण करते और महाप्रभु अपने भक्तोंके साथ वहाँ-वहाँ जाकर भोजन ग्रहण करते॥ 70 ॥

रथयात्रा निकटवर्ती :—

एइमत नाना–रङ्गे कत दिन गेल।
जगन्नाथेर रथयात्रा निकट हइल॥ 71 ॥

अनुवाद—इस प्रकार अनेक मधुर लीलाएँ करते-करते कुछ दिन बीत गये और श्रीजगन्नाथकी रथयात्राका समय निकट आ गया॥ 71 ॥

काशीमिश्र, पड़िछा और श्रीभट्टाचार्यसे महाप्रभुके द्वारा गुण्डिचा-मन्दिर-मार्जनके लिये अनुमतिकी याचना :—

प्रथमेइ काशीमिश्रे प्रभु बोलाइल।
पड़िछा–पात्र, सार्वभौमे बोलाञा आनिल॥ 72 ॥

तिनजन–पाशे प्रभु हासिया कहिल।
गुण्डिचा–मन्दिर–मार्जन–सेवा मागि' निल॥ 73 ॥

अनुवाद—महाप्रभुने पहले श्रीकाशीमिश्रको और फिर पड़िछा और श्रीसार्वभौमको अपने पास बुलवाया। उन तीनोंसे महाप्रभुने मुस्कुराते हुए गुण्डिचा-मन्दिर-मार्जन-सेवा माँगी॥ 72–73 ॥

अनुभाष्य— *'गुण्डिचा-मन्दिर'*—श्रीजगन्नाथ मन्दिरसे पूर्व-उत्तर दिशामें एक कोसकी दूरीपर स्थित है। रथयात्राके समय श्रीजगन्नाथदेव एक सप्ताहके लिये वहाँ जाते हैं। बादमें पुनः रथमें लौट आते हैं। जनश्रुतिके आधारपर यह जाना जाता है कि श्रीइन्द्रद्युम्न राजाकी पत्नीका नाम 'गुण्डिचा' था। शास्त्रग्रन्थोंमें गुण्डिचा-मन्दिरका उल्लेख है। गुण्डिचा मन्दिरके प्राङ्गणकी लम्बाई 288 हाथ और चौड़ाई 215 हाथ है। मूल मन्दिरकी लम्बाई 36 हाथ, चौड़ाई 30 हाथ है। नाट्य-मन्दिरकी लम्बाई 32 हाथ और चौड़ाई 30 हाथ है॥ 73 ॥

पड़िछाकी दैन्योक्ति :—

पड़िछा कहे,—"आमि–सब सेवक तोमार।
ये तोमार इच्छा, सेइ कर्त्तव्य आमार॥ 74 ॥

राजाकी आज्ञासे महाप्रभुकी सेवाका अधिकार :—

विशेषे राजार आज्ञा हञाछे आमारे।
प्रभुर आज्ञा येइ, सेइ शीघ्र करिबारे॥ 75 ॥

पड़िछाकी गुण्डिचा-मन्दिर-मार्जनके तत्त्वमें अनभिज्ञता :—

तोमार योग्य सेवा नहे मन्दिर–मार्जन।
एइ एक लीला कर, ये तोमार मन॥ 76 ॥

महाप्रभुके द्वारा घड़े और झाड़ू संग्रह :—

किन्तु घट, सम्मार्जनी बहुत चाहिये।
आज्ञा देह—आजि सब इँहा आनि दिये॥"77 ॥

अनुवाद—पडिछ़ाने कहा,—"हम सब आपके सेवक हैं। आपकी जो भी इच्छा होगी, उसका पालन करना हमारा कर्त्तव्य है। विशेषरूपसे राजाने हमें आज्ञा दी है कि महाप्रभुकी जो आज्ञा हो, उसका शीघ्र पालन किया जाय। मन्दिरकी सफाई करनेकी सेवा आपके योग्य नहीं है। यह तो आप एक लीला कर रहे हैं, इसलिये जैसी आपकी इच्छा। किन्तु मन्दिरकी सफाई करनेके लिये बहुतसे घड़ों और झाड़ुओंकी आवश्यकता होगी। आप आज्ञा दीजिये तो मैं आज ही वे सब कुछ लाकर रख दूँगा॥"74-77॥

नूतन एकशत घट, शत सम्मार्जनी।
पड़िछा आनिया दिल प्रभुर इच्छा जानि॥78॥

अनुवाद—महाप्रभुकी इच्छा जानकर पड़िछाने उन्हें एक सौ नये घड़े और एक सौ झाड़ू लाकर दे दिये॥78॥

प्रभातमें भक्तोंके साथ महाप्रभुका गुण्डिचामें जाना :—

आर दिने प्रभाते लञा निजगण।
श्रीहस्ते सबार अङ्गे लेपिला चन्दन॥79॥
श्रीहस्ते दिल सबारे एक एक मार्जनी।
सबगण लञा प्रभु चलिला आपनि॥80॥

अनुवाद—अगले दिन प्रातःकालमें महाप्रभुने अपने भक्तोंको अपने साथ लिया और अपने श्रीहाथोंसे उन सबके अङ्गोंमें चन्दन लगाया। उसके बाद महाप्रभुने सबको अपने श्रीहाथोंसे एक-एक झाड़ू दिया। इस प्रकार स्वयं अपने भक्तोंको साथ लेकर महाप्रभु गुण्डिचा मन्दिरको चल दिये॥79-80॥

पहले अपने आचरणके द्वारा आदर्श-प्रदर्शन :—

गुण्डिचा-मन्दिरे गेला करिते मार्जन।
प्रथमे मार्जनी लञा करिल शोधन॥81॥
भितर मन्दिर उपर,—सकल माजिल।
सिंहासन माजि' पुनः स्थापन करिल॥82॥
छोट-बड़-मन्दिर कैल मार्जन-शोधन।
पाछे तैछे शोधिल श्रीजगमोहन॥83॥

अनुवाद—गुण्डिचा मन्दिरका मार्जन करनेके लिये भक्तोंके साथ महाप्रभु वहाँ पहुँचे। पहले झाड़ू लेकर महाप्रभुने वहाँ सफाई की। महाप्रभुने मन्दिरके भीतर सभी स्थानों और छतको भी अच्छेसे साफ किया। उन्होंने सिंहासनको हटाकर उसे पूरी तरहसे साफ करके उसे फिर उसी स्थानपर स्थापित कर दिया। गुण्डिचा-मन्दिरके अन्दर बने अन्यान्य सभी छोटे-बड़े मन्दिरोंका मार्जन करके उनको साफ किया। बादमें वैसे ही श्रीजगमोहनकी भी सफाई की॥81-83॥

अनुभाष्य—गुण्डिचाके मूल मन्दिरमें बारह हाथ चौड़ी और दो हाथ ऊँची एक रत्नवेदी है,—यही सिंहासन है। *'श्रीजगमोहन'*—मूलमन्दिर और नाट्य-मन्दिरके बीचका मन्दिर 32 हाथ लम्बा है॥82-83॥

महाप्रभुके द्वारा स्वयं सफाई करके शिक्षा-दान :—

चारिदिके शत भक्त सम्मार्जनी करे।
आपनि शोधेन प्रभु, शिखा'न सबारे॥84॥

अनुवाद—सैंकड़ों भक्त हाथमें झाड़ू लेकर सभी ओरसे मन्दिरकी सफाई कर रहे थे और महाप्रभु स्वयं भी सफाई करते हुए सभीको शिक्षा दे रहे थे॥84॥

भक्तोंके द्वारा महाप्रभुका अनुसरण :—

प्रेमोल्लासे शोधेन, लयेन कृष्णनाम।
भक्तगण 'कृष्ण' कहे, करे निज-काम॥85॥

अनुवाद—महाप्रभु प्रेमोल्लाससे मन्दिरकी सफाई करते हुए साथमें मुखसे श्रीकृष्णनामका कीर्तन कर रहे थे। इसी प्रकार सभी भक्त भी हाथोंसे अपना सफाईका कार्य करते हुए 'कृष्ण' नामका उच्चारण कर रहे थे॥85॥

अश्रुओंके जलसे मन्दिरका मार्जन :—

धूलि-धूसर तनु देखिते शोभन।
काँहा काँहा अश्रुजले करे सम्मार्जन॥ 86॥

अनुवाद—महाप्रभुका शरीर धूल-धूसरित होनेपर अधिक शोभायुक्त दिखलायी दे रहा था। मन्दिरका मार्जन करते हुए कभी-कभी उनके नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित हो रहे थे और कहीं-कहीं तो वे उन अश्रुओंसे ही धुलाई कर रहे थे॥ 86॥

सर्वत्र सम्पूर्णरूपसे शोधन-मार्जन :—

भोगमन्दिर शोधन करि' शोधिल प्राङ्गन।
सकल आवास क्रमे करिल शोधन॥ 87॥

अनुवाद—महाप्रभुने जहाँ भोग रखा जाता है, उस भोग-मन्दिरकी सफाई करके बाहर मन्दिरके प्राङ्गणकी सफाई की। और फिर महाप्रभुने क्रमशः सभी आवास-स्थानोंकी सफाई की॥ 87॥

अनुभाष्य—*'भोग मन्दिर'*—इसकी लम्बाई 40 हाथ और चौड़ाई 17 हाथ है॥ 87॥

भक्तोंके द्वारा तृण-धूलि आदिको बाहर फैंकना :—

तृण, धूलि, झिँकुर, सब एकत्र करिया।
बहिर्वासे लञा फेलाय बाहिर करिया॥ 88॥

एइमत भक्तगण करि' निज-वासे।
तृण, धूलि बाहिरे फेलाय परम-हरिषे॥ 89॥

अनुवाद—महाप्रभुने तिनके, धूल और छोटे-छोटे कङ्कड़ आदिको एकत्रित कर लिया तथा उन्हें अपने बहिर्वासमें भरकर बाहर फैंक दिया। इसी प्रकार सभी भक्तोंने भी तिनके, धूल आदिको एकत्रित करके अपने वस्त्रोंमें भरकर परम-हर्षके साथ बाहर फैंक दिया॥ 88-89॥

मलके परिमाणके अनुसार मार्जनका तारतम्य :—

प्रभु कहे,—"के कत करियाछ सम्मार्जन।
तृण, धूलि देखिलेइ जानिब परिश्रम॥"90॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"एकत्रित तिनके, धूलको देखनेसे ही पता चलेगा कि किसने कितना परिश्रम किया है और कितनी सफाई की है॥"90॥

सबकी अपेक्षा महाप्रभुके मार्जन-फलस्वरूप गुण्डिचाका अधिक निर्मल होना :—

सबार झँ्याटान बोझा करिल एकत्र।
सबा हैते प्रभुर बोझा अधिक हइल॥ 91॥

अनुवाद—सभी भक्तोंने झाड़ू लगाकर जो धूलि-कङ्कड़ आदि एकत्रित किये थे, उनका एक-एक ढेर लगाया, परन्तु महाप्रभुका ढेर सबसे बड़ा था॥ 91॥

सेवकोंके साथ सेव्यका सेवा-निर्वाह :—

एइमत अभ्यन्तर करिल मार्जन।
पुनः सबाकारे दिल करिया वण्टन॥ 92॥

मन्दिरको गन्दगी रहित करनेकी महाप्रभुकी आज्ञा :—

"सूक्ष्म धूलि, तृण, काँकर, सब करह दूर।
भालमते शोधन करह प्रभुर अन्तःपुर॥"93॥

अनुवाद—इस प्रकार मन्दिरको भीतरसे साफ करके महाप्रभुने पुनः सभीको मन्दिरके भीतर एक-एक खण्डको सफाईके लिये भक्तोंमें बाँटकर उनसे कहा,—"आप सब सूक्ष्म धूलि, तृण और कङ्कड़ादि सबको बाहर फैंककर श्रीजगन्नाथके अन्तःपुरको अच्छेसे साफ कर दो॥"92-93॥

दो बार मन्दिरकी सफाई :—

सब वैष्णव लञा यबे दुइबार शोधिल।
देखि' महाप्रभुर मने सन्तोष हइल॥ 94॥

अनुवाद—सभी वैष्णवोंको साथ लेकर जब मन्दिरकी दो बार सफाई कर ली, तब मन्दिरको साफ देखकर महाप्रभुका मन सन्तुष्ट हुआ॥ 94॥

अन्य मण्डलीकी मन्दिर मार्जनमें सहायता :—

आर शत-जन शत-घटे जल भरि'।
प्रथमेइ लञा आछे काल अपेक्षा करि'॥ 95॥

'जल आन' बलि' यबे महाप्रभु कहिल।
तबे शत घट आनि' प्रभु-आगे दिल॥ 96॥

अनुवाद—पहलेसे अन्य सौ भक्त सौ घड़ोंमें जल भरकर अपनी सेवाके समयकी प्रतीक्षा कर रहे थे। जब महाप्रभुने जल लानेके लिये कहा, तभी उन्होंने सौ घड़े जल लाकर महाप्रभुके सामने रख दिया॥ 95-96॥

मन्दिरमें सर्वत्र पानीसे धुलाई :—

प्रथमे करिल प्रभु मन्दिर प्रक्षालन।
ऊर्ध्व-अधो भित्ति, गृह-मध्य, सिंहासन॥ 97॥

खापरा भरिया जल ऊर्ध्वे चालाइल।
सेइ जले ऊर्ध्वे सब भित्ति प्रक्षालिल॥ 98॥

अनुवाद—उस जलको लेकर पहले महाप्रभुने मुख्य मन्दिरको धोया, तब वहाँ मन्दिरकी दीवारोंको ऊपर-नीचे और मन्दिरके भीतरके सभी स्थानोंके साथ सिंहासनको भी साफ किया। महाप्रभु और सभी भक्त ठीकरोंमें पानी भरकर छतकी ओर फेंकने लगे। नीचे गिरते हुए जलसे दीवारें भी धुल गयीं॥ 97-98॥

अपने हाथोंसे भगवान्‌के सिंहासनकी सफाई :—

श्रीहस्ते करेन सिंहासनेर मार्जन।
प्रभुर आगे जल आनि' देय भक्तगण॥ 99॥

अनुवाद—तब महाप्रभु अपने हाथोंसे सिंहासनकी सफाई करने लगे और भक्त उनको जल लाकर देने लगे॥ 99॥

भक्तोंकी विचित्र सेवा :—

भक्तगण करे गृह-मध्य प्रक्षालन।
निज निज हस्ते करे मन्दिर मार्जन॥ 100॥

केह जल आनि' देय महाप्रभुर करे।
केह जल देय ताँर चरण-उपरे॥ 101॥

केह लुकाञा करे सेइ जलपान।
केह मागि' लय, केह अन्ये करे दान॥ 102॥

अनुवाद—भक्तगण अपने हाथोंमें झाड़ू लेकर मन्दिरके भीतर जलसे धुलाई करने लगे। कोई जल लाकर महाप्रभुके हाथोंमें दे रहा था, तो कोई जल लेकर उनके चरणोंमें डाल रहा था। कोई छिपकर महाप्रभुके चरणोंका जल पान कर रहा था। कोई किसीसे माँगकर उस जलका पान कर रहा था, तो कोई स्वयं ही दूसरेको दे रहा था॥ 100-102॥

नालीसे जलका निकलना :—

घर धुइ' प्रणालिकाय जल छाड़ि' दिल।
सेइ जले प्राङ्गण सब भरिया रहिल॥ 103॥

अनुवाद—मन्दिरके सभी कक्षोंको धोनेके बाद जलको नालीमें छोड़ दिया और उस जलसे बाहर प्राङ्गण भर गया॥ 103॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'प्रणालिकाय'*—नालीमें॥ 103॥

अपने वस्त्रोंसे गृह और सिंहासनका मार्जन :—

निज-वस्त्रे कैल प्रभु गृह सम्मार्जन।
महाप्रभु निज-वस्त्रे माजिल सिंहासन॥ 104॥

अनुवाद—महाप्रभुने अपने वस्त्रसे कक्षोंको पोंछकर साफ किया और अपने वस्त्रसे ही सिंहासनको भी चमकाया॥ 104॥

श्रीराधाके निर्मल मनके साथ स्वच्छ और धुले हुए मन्दिरकी उपमा :—

शत घट जले हैल मन्दिर मार्जन।
मन्दिर शोधिया कैल-येन निज मन॥ 105॥

निर्मल, शीतल, स्निग्ध करिल मन्दिरे।
आपन-हृदय येन धरिल बाहिरे॥ 106॥

अनुवाद—इस प्रकार सौ घड़े जलसे मन्दिरके सभी कक्ष साफ हो गये। महाप्रभुने मन्दिरको अपने मनके समान स्वच्छ कर दिया। महाप्रभुने मन्दिरको ऐसा निर्मल, शीतल तथा स्निग्ध कर दिया, मानो उन्होंने

अपने हृदयको ही बाहर प्रकाशित कर दिया हो॥ 105-106॥

सौ-सौ भक्तोंके द्वारा मन्दिरको स्वच्छ करनेकी चेष्टा :—

शत-शत जन जल भरे सरोवरे।
घाटे स्थान नाहि, केह कूपे जल भरे॥ 107॥

पूर्ण कुम्भ लञा आइसे शत भक्तगण।
शून्य घट लञा याय, आर शत जन॥ 108॥

अनुवाद—सैकड़ों लोग सरोवरसे जल भरकर ला रहे थे, घाटपर खड़े होनेका स्थान नहीं था। इसलिये कुछ लोगोंने कुएँसे ही जल भरना आरम्भ किया। सैकड़ों भक्त पानीसे भरे घड़ोंको ला रहे थे और अन्य सैकड़ों भक्त खाली घड़ोंको भरनेके लिये ले जा रहे थे॥ 107-108॥

श्रीनित्यानन्द, श्रीअद्वैत, श्रीस्वरूप, श्रीभारती, श्रीपुरी आदिका मन्दिर-मार्जन, अन्य भक्तोंके द्वारा जल लाना :—

नित्यानन्द, अद्वैत, स्वरूप, भारती, पुरी।
इँहा बिना आर सब आने जल भरि'॥ 109॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैताचार्य, श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीब्रह्मानन्द भारती और श्रीपरमानन्द पुरीके अतिरिक्त सभी भक्त जल भरकर ला रहे थे॥ 109॥

अनुभाष्य—वैष्णवगण जल लानेके कार्यमें नियुक्त थे। श्रीनित्यानन्दप्रभु, श्रीअद्वैतप्रभु, श्रीदामोदर-स्वरूप, श्रीब्रह्मानन्द-भारती और श्रीपरमानन्द पुरी—ये पाँच लोग महाप्रभुके साथ जल ग्रहण करके सफाईके कार्यमें व्यस्त थे॥ 109॥

मन्दिरको स्वच्छ करनेमें सभीका उत्साह :—

घटे घटे ठेकि' कत घट भाङ्गि' गेल।
शत शत घट लोक ताँहा लञा आइल॥ 110॥

अनुवाद—घड़ेसे घड़ा टकरानेसे कई घड़े टूट गये, किन्तु लोग फिरसे सैंकड़ों नये घड़े वहाँ लेकर आ गये॥ 110॥

मन्दिरकी सफाई और धुलाईके समय प्रतिक्षण कृष्णनाम-कीर्तन :—

जल भरे, घर धोय, करे हरिध्वनि।
'कृष्ण' 'हरि' ध्वनि बिना आर नाहि शुनि॥ 111॥

'कृष्ण' 'कृष्ण' कहि करे घटेर प्रार्थन।
'कृष्ण' 'कृष्ण' कहि करे घट समर्पण॥ 112॥

येइ येइ कहे, सेइ कहे कृष्णनामे।
कृष्णनाम हइल सङ्केत सब-कामे॥ 113॥

अनुवाद—कुछ भक्त जल भरकर ला रहे थे और कुछ कक्षोंको धो रहे थे, परन्तु सभी हरि-ध्वनि कर रहे थे। इस प्रकार 'कृष्ण' 'हरि'की ध्वनिके अतिरिक्त और कुछ भी सुनायी नहीं दे रहा था। कुछ भक्त 'कृष्ण' 'कृष्ण' कहते हुए घड़ा माँग रहे थे और अन्य कुछ भक्त उनको 'कृष्ण' 'कृष्ण' कहते हुए घड़ा दे रहे थे। जिसको जो भी कुछ कहना होता, वह श्रीकृष्ण नाम बोलकर ही कहता, अतः श्रीकृष्णनाम ही सभी कार्योंका सङ्केत बन गया॥ 111-113॥

महाप्रभुके द्वारा प्रतिक्षण कृष्ण-नाम-ग्रहण और अकेले ही एक सौ भक्तोंके समान सेवा :—

प्रेमावेशे प्रभु कहे 'कृष्ण' 'कृष्ण'-नाम।
एकले प्रेमावेशे करे शतजनेर काम॥ 114॥

स्वयं ही आचार और उपदेशकारी :—

शत-हस्ते करेन येन क्षालन-मार्जन।
प्रतिजन-पाशे याइ' करान शिक्षण॥ 115॥

अनुवाद—प्रेमोवेशमें महाप्रभु 'कृष्ण' 'कृष्ण' नाम कह रहे थे। इस प्रकार प्रेमावेशमें वे अकेले ही सौ भक्तोंका कार्य रहे थे मानो स्वयं सौ हाथोंसे धुलाई-सफाई कर रहे हों। वे प्रत्येक भक्तके पास जाकर उसे भी सफाई करना सिखा रहे थे॥ 114-115॥

अच्छे सेवकोंकी सेवाकी प्रशंसा :—

भालकर्म देखि' तारे करे प्रशंसन।
मने ना मिलिले करे पवित्र भर्त्सन॥ 116॥

"तुमि भाल करियाछ, शिखाह अन्येरे।
एइमत भाल कर्म सेइ येन करे॥"117॥

ए-कथा शुनिया सबे सङ्कुचित हञा।
भाल-मते कर्म करे सबे मन दिया॥118॥

अनुवाद—किसीके अच्छे कार्यको देखकर महाप्रभु उसकी प्रशंसा करते और किसीके कार्यसे सन्तुष्ट नहीं होनेपर उसको मधुर वचनोंसे झिड़कते हुए कहते,—"अहो! तुम तो बहुत अच्छा कार्य कर रहे हो, तुम दूसरोंको भी ऐसा करना सिखाओ, जिससे वे भी अच्छी तरहसे कार्य करें।" महाप्रभुकी ऐसी बातको सुनकर वे सब लज्जित हो जाते और मन लगाकर अच्छी प्रकारसे सफाई करने लगते॥116-118॥

मन्दिरमें सर्वत्र धुलाई :—

तबे प्रक्षालन कैल श्रीजगमोहन।
भोगमन्दिर-आदि तबे कैल प्रक्षालन॥119॥

नाटशाला धुइ' धुइल चत्वर-प्राङ्गण।
पाकशाला-आदि करि' करिल प्रक्षालन॥120॥

मन्दिरेर चतुर्द्दिक् प्रक्षालन कैल।
सब अन्तःपुर भालमते धोयाइल॥121॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने मन्दिरके जगमोहन और भोगमन्दिर आदिकी धुलाई की। नाटशालाकी धुलाईके बाद उन्होंने चारों ओरके प्राङ्गणकी भी धुलाई की तथा फिर रसोईघर आदिको भी धोया। इस प्रकार चारों ओरसे मन्दिर अन्दर-बाहरसे धुल गया॥119-121॥

एक गौड़ीय-भक्तका महाप्रभुके चरणोंको
धोकर चरणामृतका पान :—

हेनकाले गौड़ीय एक सुबुद्धि सरल।
प्रभुर चरण-युगे दिल घट जल॥122॥

सेइ जल लञा आपने पान कैल।
ताहा देखि' महाप्रभुर मने रोष हैल॥123॥

अनुवाद—उसी समय एक बङ्गालसे आये एक बुद्धिमान सरल भक्तने महाप्रभुके दोनों चरणकमलोंपर घड़ेका जल डाल दिया और फिर उस जलको लेकर उसने पी लिया। ऐसा देखकर महाप्रभुके मनमें क्रोध आ गया॥122-123॥

जगद्गुरु आचार्यकी लीला-प्रदर्शक महाप्रभुका क्रोध :—

यद्यपि गोसाञि तारे हञाछे सन्तोष।
धर्मसंस्थापन लागि' बाहिरे महारोष॥124॥

माध्व-गौड़ीयेश्वरसे श्रीदामोदरस्वरूपसे
महाप्रभुकी शिकायत :—

शिक्षा लागि' स्वरूपे डाकि' कहिल ताँहारे।
"एइ देख तोमार 'गौड़ीया'र व्यवहारे॥125॥

भगवान्‌के मन्दिरमें चरण-धोना—जीवका सेवापराध :—

ईश्वर-मन्दिरे मोर पद धोयाइल।
सेइ जल आपनि लञा पान कैल॥126॥

महाप्रभुकी सेवापराधके (?) भयसे कातरता :—

एइ अपराधे मोर काँहा हबे गति।
तोमार 'गौड़ीया' करे एतेक दुर्गति॥"127॥

अनुवाद—यद्यपि महाप्रभु भीतरसे उसके प्रति सन्तुष्ट थे, परन्तु धर्मकी स्थापना करनेके लिये बाहरसे बहुत रोष प्रकट कर रहे थे। महाप्रभुने अन्य लोगोंको शिक्षा देनेके लिये श्रीस्वरूप दामोदरको बुलाया और उनसे कहा,—"यह अपने 'गौड़ीया'का व्यवहार तो देखो। इसने भगवान्‌के मन्दिरमें मेरे चरणोंको धोया और उसी जलको लेकर स्वयं पान कर लिया। इस अपराधके कारण मेरी कहाँ गति होगी? तुम्हारे 'गौड़ीया'ने मेरी ऐसी दुर्गति कर दी है॥"124-127॥

अनुभाष्य—*'तोमार'*—सभी गौड़ीय-वैष्णव ही श्रीदामोदर स्वरूपके अधीन हैं, इसलिये महाप्रभुने 'तोमार' (तुम्हारे)-शब्द प्रयोग किया।

जीवोंके नित्यप्रभु भगवान्‌के मन्दिरमें पैर धोना आदि उनके नित्यदास जीवोंके लिये मर्यादाके उल्लङ्घनके कारण सेवापराध है (हः भः विः); किन्तु महाप्रभु तो

स्वयं भगवान् हैं, इसलिये उनके ऊपर किसी अपराधादिका आरोप पूर्णतः असम्भव और वेद-विरुद्ध है। तथापि वे बाहरसे जगद्गुरु, लोकशिक्षक और आचार्यका कार्य कर रहे हैं, इसलिये उन्होंने अपने आपको भगवान्‌का एक विभिन्नांश जीवमात्र मानकर निर्बोध तथाकथित गुरुओंको सेवापराधसे सतर्क करनेके लिये शिक्षा दी॥ 125-127॥

श्रीस्वरूपके द्वारा उस 'गौड़ीय'को गुण्डिचासे बाहर निकालना :-

तबे स्वरूपगोसाञि तार घाड़े हात दिया।
ढेका मारि' पुरीर बाहिर राखिलेन लञा॥ 128॥

महाप्रभुके चरणोंमें क्षमा-भिक्षा :-

पुनः आसि' प्रभु पाय करिल विनय।
"अज्ञे अपराध क्षमा करिते युयाय॥"129॥

अनुवाद—तब श्रीस्वरूप दामोदरने हाथसे उसकी गर्दनको पकड़कर उसे धक्का मारकर मन्दिरसे बाहर कर दिया और फिर महाप्रभुके चरणोंमें विनती की,—"वह अज्ञानी है, इसलिये उसके अपराधको क्षमा करना ही उचित है॥"128-129॥

अनुभाष्य— *'ढेका'*—धक्का; *'पुरीर'*—गुण्डिचा-पुरीके॥ 128॥

महाप्रभुका क्षमा करना; सभीको अपने दोनों ओर बैठाना :-

तबे महाप्रभुर मने सन्तोष हइल।
सारि करि' दुइ पाशे सबारे बसाइल॥ 130॥

बीचमें महाप्रभुका तिनके आदि एकत्रित करना :-

आपने बसिया माझे, आपनार हाते।
तृण, काँकर, कुटा लागिला कुड़ाइते॥ 131॥

कम इकट्ठा करनेवाले व्यक्तियोंसे प्रसाद-ग्रहणरूप दण्ड :-

"के कत कुड़ाय, सब एकत्र करिब।
यार अल्प, तार ठाञि पिठा-पाना लइब॥"132॥

अनुवाद—तब महाप्रभु सन्तुष्ट हो गये। उन्होंने पंक्ति बनवाकर सभी भक्तोंको अपने दोनों ओर बैठा लिया और महाप्रभु स्वयं उनके बीचमें बैठ गये। फिर महाप्रभु अपने हाथोंसे तिनके, कङ्कड़ और कूड़ेको एकत्रित करने लगे और उन्होंने कहा,—"मैं सबको बुलाकर देखूँगा कि किसने कितना कूड़ा एकत्रित किया है। जिसका कम होगा, उससे मैं पिठा-पाना लूँगा॥"130-132॥

गुण्डिचा मन्दिरको सम्पूर्णरूपसे निर्मल करना :-

एइमत सब पुरी करिल शोधन।
शीतल, निर्मल कैल—येन निज-मन॥ 133॥

अनुवाद—इस प्रकार महाप्रभुने अपने भक्तोंके साथ सम्पूर्ण गुण्डिचा मन्दिरकी सफाई की। मन्दिरको उन्होंने ऐसा शीतल और निर्मल बना दिया, जैसा उनका मन है॥ 133॥

नालीके द्वारसे जलका निकलना :-

प्रणालिका छाड़ि' यदि पानि बहाइल।
नूतन-नदी येन समुद्रे मिलिल॥ 134॥

अनुवाद—नालीसे पानीको छोड़नेपर उसके तेज प्रवाहको देखकर ऐसा लग रहा था मानो कोई नयी नदी समुद्रमें मिलने जा रही है॥ 134॥

गुण्डिचा मन्दिरके विभिन्न मार्गोंकी सफाई :-

एइमत पुरद्वार-आगे पथ यत।
सकल शोधिल, ताहा के वर्णिबे कत॥ 135॥

अनुवाद—इस प्रकार उन्होंने मन्दिरके मुख्य द्वारके आगे सभी मार्गोंकी भी सफाई की। यह सब कुछ कैसे हुआ, कौन इसका वर्णन कर सकता है॥ 135॥

अनुभाष्य— *'गुण्डिचा-मार्जनलीला-रहस्य'*—जगद्गुरु महाप्रभु इस लीलाके द्वारा यह शिक्षा दे रहे हैं कि यदि कोई सौभाग्यवान् जीव श्रीकृष्णको अपने हृदय-सिंहासनपर बैठानेकी इच्छा करता है, तो सबसे पहले उसे अपने

हृदयके मलको धोना उचित है; हृदयको निर्मल, शान्त और भक्तिसे उज्ज्वल करना आवश्यक है। हृदयक्षेत्रमें काँटेयुक्त तिनके अथवा जङ्गली-घास, धूलि और कङ्कड़ादि-रूप अनर्थ थोड़ेसे रहनेपर भी परमसेव्य भगवान्‌को वहाँ बैठाया नहीं जा सकता। हृदयका यह मल अथवा कूड़ा—अन्याभिलाष, कर्म, ज्ञान और योग-चेष्टादिके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। श्रीलरूप गोस्वामी प्रभुने कहा है,—

"अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥"

जहाँ भक्तिके अतिरिक्त अन्य अभिलाषा, ज्ञान-कर्म-योग-तपस्या आदि अथवा भक्तिप्रतिकूल-भावके द्वारा आत्माकी नित्य स्वाभाविक वृत्ति 'भक्ति' ढक गयी है, वहाँ शुद्धभक्ति नहीं है। शुद्धसत्त्वमयी शुद्धभक्तिके बिना श्रीकृष्णका आविर्भाव नहीं होता।

'अन्य अभिलाषा' अर्थात् 'जगत्‌में जब तक रहूँगा, केवल अपनी इन्द्रियोंके द्वारा भोग ही करूँगा'—ऐसी अन्य अभिलाषा,—यह काँटेयुक्त तिनकेकी भाँति शुद्ध-जीवकी सुकोमल हृदयवृत्ति केवला-भक्तिको (शुद्धभक्तिको) छलनी करती है। कर्मचेष्टा अर्थात् याग, यज्ञ, दान, तपस्यादिके द्वारा 'स्वर्गादि उच्च लोकोंमें सुख अथवा इस लोकमें सुख भोग करूँगा', इस प्रकार जो वासनामयी क्रिया है, वह धूलिके समान है। कर्मके बवण्डरसे उड़ती हुई वायुके द्वारा वासनारूपी धूलिराशि हमारे स्वच्छ और निर्मल हृदय-दर्पणको ढक देती है। सत् और असत् कर्मोंकी वासनारूपी असंख्य धूलि-राशिने हरिविमुख-जीवके हृदयको अनेक जन्म-जन्मान्तर तक मलिन किया है, इसलिये उसकी कर्मवासना दूर नहीं हो रही। हरिविमुख जीव सोचता है, कर्मके द्वारा कर्मरूप काँटेको निकाला जा सकता है, अर्थात् पुण्य-कर्मके द्वारा पाप-कर्मके फलका नाश किया जा सकता है, किन्तु ऐसी धारणा गलत है। ऐसी धारणाके वशीभूत होकर जीव केवल अपनेसे ही छल करता है। हाथीको स्नान करा देनेपर जैसे वह फिरसे शरीरपर धूलि मल लेता है, उसी प्रकार कर्मके द्वारा कर्मकी वासना दूर नहीं होती। एकमात्र केवलाभक्तिके द्वारा ही जीवोंकी समस्त असुविधाएँ दूर होती हैं। तब उसके उस निर्मल हृदयरूपी सिंहासनपर ही श्रीभगवान् विश्राम-योग्य स्थान प्राप्त करते हैं। इसलिये भक्तकविने गान किया है,—"भक्तेर हृदये सदा गोविन्द विश्राम।"

निर्विशेष और कैवल्ययोग अथवा ज्ञान-योगादिकी चेष्टाएँ—ठीक कङ्कड़के समान हैं। उसके द्वारा श्रीहरिकी सन्तुष्टि अथवा सेवा तो दूरकी बात है, अपितु यह श्रीहरिकी देहमें काँटा चुभानेका प्रयास है। यद्यपि निर्विशेष-ब्रह्मानुसन्धानमें पहले मुक्तिकी कामनाकी अवस्थामें श्रीहरिका नामादि गौणरूपमें स्वीकार किया जाता है, किन्तु मुक्त अथवा ब्रह्म-अभिमानके समय उनका स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जाता; इसलिये भगवान् वैसे दुर्भागे विमुक्त-अभिमानी जीवके हृदयमें आविर्भूत नहीं होते। इसलिये श्रीगौरसुन्दरने इन सब तिनकों, धूलि, छोटे-छोटे कङ्कड़ादि कूड़ेको भगवान्‌के मन्दिरकी चारदीवारीके भीतर भी नहीं रखा, परन्तु अपने वस्त्रमें भरकर उनको बाहर फैंक दिया—कहीं बादमें हवाके साथ उड़ते हुए ये सब जञ्जाल पुनः श्रीमन्दिरमें प्रवेश ना कर जाँय।

बहुत बार कर्म-ज्ञानादिकी चेष्टाके दूर होनेपर भी हृदयमें सूक्ष्म-सूक्ष्म मल रह जाते हैं। उनकी 'कुटिनाटि', 'प्रतिष्ठाशा', 'जीवहिंसा', 'निषिद्धाचार', 'लाभ', 'पूजा' आदिके साथ तुलनाकी जा सकती है।

'कुटिनाटी'-शब्दका अर्थ कपटता है।

'प्रतिष्ठाशा'-शब्दसे—निर्जनभजनादि अथवा ढोंगके द्वारा 'अज्ञानी लोग मुझे एक बड़ा साधु अथवा महान्त कहेंगे'—ऐसी जड़ीय-सम्मानादिकी आशा अथवा विषय-भोगसे स्वार्थको पूर्ण करनेके उद्देश्यसे कठोर हुए हृदयमें कृत्रिम विकारादि भावाभास-प्रदर्शनके द्वारा 'भक्त' अथवा 'अवतार'के रूपमें सजनेकी आशाको समझना चाहिये।

'जीवहिंसा'-शब्दसे शुद्धभक्तिके प्रचारमें निराशा अथवा कृपणता करना, मायावादी, कर्मी और अन्याभिलाषीको आश्रय देना या उनके मनको रखनेवाली बात बोलना।

'लाभ-पूजा'-शब्दसे धर्मके नामपर हरिनाम, मन्त्र, विग्रह या भागवतके द्वारा जीविका अर्जित करनेके लिये सरल लोगोंको ठगकर धनादि अथवा सम्मानकी प्राप्तिको समझना चाहिये।

'निषिद्धाचार'-शब्दसे स्त्रीसङ्ग एवं कर्मी, ज्ञानी और अन्याभिलाषी आदि कृष्ण-अभक्तोंके सङ्गको समझना चाहिये।

इस प्रकार एक बार बहुत दिनोंसे सञ्चित बड़े-बड़े कङ्कड़, तिनके, धूलिराशि आदिको झाड़कर फैंक देनेके बाद श्रीगौरसुन्दरने दो-दो बार मन्दिरको पूरी तरहसे साफ करके जलके द्वारा धो दिया। फिर भी कहीं कोई सूक्ष्म दाग-धब्बे आदि रह गये, तो महाप्रभु अपने पहने हुए सूखे वस्त्रके द्वारा उनको घिस-घिसकर श्रीमन्दिर और भगवान्के बैठने योग्यस्थान सिंहासनको साफ करने लगे।

इस प्रकारसे धुलाई, सफाई और घिसने आदिके बाद श्रीमन्दिरमें धूलिकणोंका लेश, यहाँ तक कि एक छोटा सा दाग भी नहीं रहा। श्रीमन्दिर स्फटिक मणिकी भाँति निर्मल हो गया, केवल इतना ही नहीं, और सुशीतल भी हो गया। अर्थात् साधकका 'सूर्यतापसे तप्त मरुभूमिके समान' हृदय तापरहित अर्थात् विषयभोग-वासनासे उत्पन्न आध्यात्मिकादि तीनों तापोंकी अग्निकी ज्वालासे रहित हो गया। वास्तवमें उसके हृदयसे अन्याभिलाष और कर्म-ज्ञान-योगादि चेष्टारूपी भुक्ति-मुक्तिकी कामना दूर होकर आत्मवृत्ति शुद्धभक्ति प्रकटित होनेपर जीव इस प्रकार शान्त और सुशीतल हो जाता है।

बहुत बार समस्त प्रकारकी कामनाओं और वासनाओंके दूर होनेपर भी हृदयके किसी-किसी अज्ञात कोनेमें एक छोटासा दाग रह जाता है, उसे अज्ञानी जीव समझ नहीं पाता; वह 'मुक्तिकी कामना' है। निर्विशेषवादियोंकी सायुज्य मुक्तिकी कामना तो दूरकी बात है—अन्यान्य चार प्रकारकी मुक्तियोंकी कामनारूप सूक्ष्म दागको भी श्रीमन्महाप्रभुने अपने वस्त्रके द्वारा घिसकर दूर किया।

इस प्रकारसे श्रीगौरसुन्दर जीवोंके मङ्गलके लिये अपनेको जीव मानकर जगद्गुरुके रूपमें स्वयं शिक्षा देने लगे कि किस प्रकारसे साधक अपने हृदयको वृन्दावनरूपमें परिणत करके स्वराट् (स्वतन्त्र) श्रीकृष्णके स्वच्छन्द विहारका स्थल बनानेके लिये, श्रीकृष्णेन्द्रिय-प्रीतिवाञ्छाके लिये, अत्यधिक उत्साहपूर्वक उच्च स्वरसे श्रीकृष्णनाम करते-करते श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिये अपने हृदयको साफ करेंगे।

"यद्यप्यना भक्तिः कलौ कर्त्तव्या, तदा कीर्त्तनाख्या भक्ति-संयोगेनैव।"

अर्थात् "यद्यपि भक्तिके अन्य अङ्गोंका पालन भी कलियुगमें कर्त्तव्य है, तथापि उन सबका पालन कीर्तनके संयोगसे करेंगे।"

महाप्रभु प्रत्येक भक्तके निकट जाकर उसका हाथ पकड़कर मन्दिर-मार्जन-सेवाकी शिक्षा देने लगे। जिसका कार्य अच्छा हो रहा था, उसकी प्रशंसा की। और जिसका कार्य (श्रीकृष्णवाञ्छापूर्तिमयी श्रीराधाके भावयुक्त) महाप्रभुके मनकी इच्छानुसार नहीं हो रहा था, उसे भी मीठी डाँट देकर हाथ पकड़कर श्रीकृष्णसेवाकी प्रणालीकी शिक्षा दी।

केवल इतना ही नहीं—श्रीचैतन्यशिक्षाके अनुगत होकर जिन्होंने भजनमें कौशल प्राप्त किया है, ऐसे अद्वयज्ञानमें भक्तियोगयुक्त शुद्धहृदयवाले भक्तोंको अन्य विमुख जीवोंके 'आचार्य'का कार्य करनेके लिये भी आदेश देकर उत्साहित किया। (117 संख्या)।

पुनः, जो जितने अधिक परिमाणमें अभद्रराशि (मैल)को हृदयसे निकालकर सफाई करनेमें समर्थ होंगे, वे उतने अधिक महाप्रभुके प्रिय होंगे एवं जिनकी

अनर्थ-निवृत्ति सामान्य (बहुत कम) ही हुई है, उनके लिये दण्ड-स्वरूप श्रीहरि-गुरु-वैष्णव-सेवाको ही विधि कहकर निर्देश किया गया है॥ 135॥

नृसिंह मन्दिरकी सफाईके बाद सभीका विश्राम :—

नृसिंहमन्दिर-भितर-बाहिर शोधिल।
क्षणेक विश्राम करि' नृत्य आरम्भिल॥ 136॥

अनुवाद—उसके बाद महाप्रभुने श्रीनृसिंह मन्दिरको भी भीतर और बाहरसे स्वच्छ कर दिया। तब थोड़ासा विश्राम करनेके बाद नृत्य करना आरम्भ किया॥ 136॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'नृसिंह-मन्दिर'*—गुण्डिचा मन्दिरके पासमें ही एक सुन्दर और पुराना नृसिंह मन्दिर है। वहाँ नृसिंह चतुर्दशीके दिन बहुत बड़ा महोत्सव होता है। श्रीमुरारिगुप्त-रचित श्रीचैतन्यचरित-ग्रन्थ में, श्रीनवद्वीपधाममें नृसिंह-मन्दिर अर्थात् श्रीनृसिंह-पल्लीका वर्णन है, जहाँपर भी उसी दिन एक बहुत बड़ा उत्सव होता है॥ 136॥

चारों ओर महासङ्कीर्तन और बीचमें महाप्रभुका नृत्य :—

चारिदिके भक्तगण करेन कीर्त्तन।
मध्ये नृत्य करेन प्रभु मत्तसिंह-सम॥ 137॥

अनुवाद—चारों ओर भक्तगण कीर्तन कर रहे थे और बीचमें महाप्रभु मत्त-सिंहकी भाँति नृत्य कर रहे थे॥ 137॥

महाप्रभुके अष्टसात्त्विक-विकार और अश्रुवर्षण :—

स्वेद, कम्प, वैवर्ण, पुलक, हुँकार।
निज-अङ्ग धुइ' आगे चले अश्रुधार॥ 138॥

चारिदिके भक्त-अङ्ग कैल प्रक्षालन।
श्रावणेर मेघ येन करे वरिषण॥ 139॥

महा-उच्चसङ्कीर्त्तने आकाश भरिल।
प्रभुर उद्दण्ड-नृत्ये भूमिकम्प हैल॥ 140॥

अनुवाद—नृत्य करते हुए महाप्रभुमें पसीना, कम्प, वर्ण-परिवर्तन, अश्रु, पुलक, हुँकारादि अष्ट-सात्त्विक विकार उदित होने लगे। उनके नेत्रोंसे ऐसी अश्रुओंकी धारा बहने लगी जो उनके अपने अङ्गोंके साथ-साथ सामनेवालोंको भी धो रही थी। उनकी अश्रुधारासे चारों ओर एकत्रित भक्तोंके शरीर ऐसे धुल गये मानो श्रावणके मेघ वर्षण कर रहे हों। भक्तोंके उच्च सङ्कीर्तनसे सम्पूर्ण आकाश भर गया और महाप्रभुके उद्दण्ड नृत्यसे मानो भूकम्प आ गया॥ 138-140॥

उच्च-स्वरसे स्वरूप दामोदरके
कीर्तनसे महाप्रभुका आनन्दपूर्वक नृत्य :—

स्वरूपेर उच्च-गान प्रभुरे सदा भाय।
आनन्दे उद्दण्ड नृत्य करे गौरराय॥ 141॥

नृत्यके अन्तमें विश्राम :—

एइमत कतक्षण नृत्य ये करिया।
विश्राम करिला प्रभु समय जानिया॥ 142॥

अनुवाद—श्रीस्वरूप दामोदरका उच्चस्वरमें गान महाप्रभुको सदैव प्रिय लगता था, इसलिये उनके गानको सुनकर श्रीगौरराय आनन्दपूर्वक उद्दण्ड नृत्य कर रहे थे। इस प्रकार कुछ देर तक नृत्य करनेके बाद महाप्रभुने परिस्थिति देखकर नृत्य करना बन्द कर दिया॥ 141-142॥

श्रीअद्वैताचार्यके पुत्र श्रीगोपालको नृत्य करनेका आदेश :—

आचार्य-गोसाञिर पुत्र श्रीगोपाल-नाम।
नृत्य करिते ताँरे आज्ञा दिल गौरधाम॥ 143॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्यके पुत्र जिनका नाम श्रीगोपाल है, उनको तब गौरधाम महाप्रभुने नृत्य करनेका आदेश दिया॥ 143॥

अनुभाष्य—'श्रीगोपाल'—आदिलीला 12/19-26 संख्या देखें॥ 143॥

नृत्य करनेसे श्रीगोपालकी मूर्च्छा :—

प्रेमावेशे नृत्य करि' हइला मूर्च्छिते।
अचेतन हञा तेँह पड़िला भूमिते॥ 144॥

आचार्यकी चिन्ता :—

आस्ते-व्यस्ते आचार्य ताँरे कैल कोले।
श्वास-रहित देखि' आचार्य हैला विकले॥ 145॥

श्रीअद्वैताचार्यकी नृसिंहमन्त्रके द्वारा पुत्रकी चेतना लौटानेकी चेष्टा :—

नृसिंहेर मन्त्र पड़ि' मारे जल छाँटि।
हुँकारेर शब्दे ब्रह्माण्ड याय फाटि'॥ 146॥

फिर भी श्रीगोपालमें चेतनता न आना, आचार्यादि भक्तोंका दुःख :—

अनेक करिल, तबु ना हय चेतन।
आचार्य कान्देन, कान्दे सब भक्तगण॥ 147॥

अनुवाद—प्रेमावेशमें नृत्य करते हुए श्रीगोपाल मूर्च्छित हो गये और अचेतन होकर भूमिपर गिर पड़े। श्रीअद्वैताचार्यने तुरन्त ही श्रीगोपालको अपनी गोदमें ले लिया और उसकी सांसको बन्द देखकर वे व्याकुल हो गये। श्रीअद्वैताचार्य अपने पुत्रकी रक्षाके लिये भगवान् श्रीनृसिंहके मन्त्र पढ़ते हुए श्रीगोपालके मुँहपर जलके छींटे मारने लगे। उनकी मन्त्रोंकी हुँकारसे ब्रह्माण्ड भी फटा जा रहा था। उनके अनेक प्रयत्न करनेपर भी जब श्रीगोपालको चेतना नहीं आयी, तो वे रोने लगे और उन्हें देखकर सब भक्त भी रोने लगे॥ 144–147॥

महाप्रभुकी कृपासे चेतनाकी वापिसी और भक्तोंमें हर्ष :—

तबे महाप्रभु ताँर बुके हस्त दिल।
'उठह गोपाल' बलि' उच्चैःस्वरे कहिल॥ 148॥

शुनितेइ गोपालेर हइल चेतन।
'हरि' बलि' नृत्य करे सर्वभक्तगण॥ 149॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने श्रीगोपालके वक्षःस्थलपर अपना हस्तकमल रखा और उच्च स्वरसे कहा—'गोपाल उठो।' महाप्रभुकी वाणीको सुनते ही श्रीगोपालकी चेतना लौट आयी। तब आनन्दसे सभी भक्त 'हरि' बोलकर नृत्य करने लगे॥ 148–149॥

श्रीवृन्दावनदास ठाकुरके द्वारा यह लीला वर्णित :—

एइ लीला वर्णियाछेन दास-वृन्दावन।
अतएव संक्षेपे करि' करिलुँ वर्णन॥ 150॥

अनुवाद—इस लीलाका वर्णन श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने किया है, इसलिये मैंने (ग्रन्थकारने) संक्षेपमें ही इसका वर्णन किया है॥ 150॥

अनुभाष्य—श्रीगोपालका यह वृत्तान्त श्रीचैतन्यभागवतमें दिखायी नहीं देता॥ 150॥

भक्तोंके साथ महाप्रभुका स्नान :—

तबे महाप्रभु क्षणेक विश्राम करिया।
स्नान करिवारे गेला भक्तगण लञा॥ 151॥

स्नानके बाद नृसिंहदेवको प्रणाम करके उद्यानमें जाकर बैठना :—

तीरे उठि' परेन प्रभु शुष्क वसन।
नृसिंहदेवे नमस्करि' गेला उपवन॥ 152॥

अनुवाद—तब महाप्रभु कुछ समय विश्राम करके अपने भक्तोंके साथ (इन्द्रद्युम्न सरोवरमें) स्नान करने गये। स्नान करनेके बाद महाप्रभुने तटपर आकर सूखे वस्त्र पहने। तब श्रीनृसिंहदेव मन्दिरमें उनको प्रणाम करके उद्यानमें चले गये॥ 151–152॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'इन्द्रद्युम्न सरोवर'*—गुण्डिचा मन्दिरके निकट है। इस सरोवरमें स्नान करके महाप्रभु श्रीनृसिंहदेवको प्रणाम करके उद्यानमें चले गये॥ 151–152॥

श्रीवाणीनाथके द्वारा प्रसाद लाना :—

उद्याने बसिला प्रभु भक्तगण लञा।
तबे वाणीनाथ आइला महाप्रसाद लञा॥ 153॥

अनुवाद—महाप्रभु अपने भक्तोंके साथ उद्यानमें बैठ गये और तब श्रीवाणीनाथ वहाँपर सभीके लिये महाप्रसाद लेकर आ गये॥ 153॥

श्रीकाशीमिश्र और तुलसी-पड़िछाके द्वारा पाँच सौ लोगोंके लिये पर्याप्त प्रसाद भेजना :—

काशीमिश्र, तुलसी-पड़िछा—दुइजन।
पञ्चशत लोक यत करये भोजन॥ 154॥

तत अन्न-पिठा-पाना, सब पाठाइल।
देखि' महाप्रभुर मने सन्तोष हइल॥ 155॥

अनुवाद—श्रीकाशीमिश्र और तुलसी नामक पड़िछा—इन दोनोंने पाँच सौ भक्त जितना खा सकते हैं, उतना अन्न, पिठा-पाना आदि महाप्रसाद भिजवाया। इसे देखकर महाप्रभु मनमें बहुत सन्तुष्ट हुए॥ 154-155॥

निजगण सहित महाप्रभुका प्रसाद-सम्मानार्थ बैठना :—

पुरी-गोसाञि, महाप्रभु, भारती ब्रह्मानन्द।
अद्वैत-आचार्य, आर प्रभु-नित्यानन्द॥ 156॥

आचार्यरत्न, आचार्यनिधि, श्रीवास, गदाधर।
शङ्कर, नन्दनाचार्य, आर राघव, वक्रेश्वर॥ 157॥

प्रभु-आज्ञा पाञा बैसे आपने सार्वभौम।
पिण्डार उपरे प्रभु बैसे लञा भक्तगण॥ 158॥

तार तले, तार तले करि' अनुक्रम।
उद्यान भरि' बैसे भक्त करिते भोजन॥ 159॥

अनुवाद—श्रीपरमानन्द पुरी, महाप्रभु, श्रीब्रह्मानन्द भारती, श्रीअद्वैताचार्य, श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीआचार्यरत्न (श्रीचन्द्रशेखर), श्रीआचार्यनिधि (श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि), श्रीवास पण्डित, श्रीगदाधर पण्डित, श्रीशङ्कर पण्डित, श्रीनन्दनाचार्य, श्रीराघव पण्डित, श्रीवक्रेश्वर पण्डित आदि सब प्रसाद पानेके लिये बैठ गये। महाप्रभुकी आज्ञा होनेपर श्रीसार्वभौम भी बैठ गये। महाप्रभु और सब भक्त लकड़ीकी चौकियोंपर क्रमानुसार बैठे और समस्त भक्तोंसे उद्यान भर गया॥ 156-159॥

अनुभाष्य—*'पिण्डा'*—उड़िया भाषामें लकड़ीके आसनको कहते हैं, बङ्गाली भाषामें इसे 'पीड़ि' कहते हैं॥ 158॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीहरिदास ठाकुरका आह्वान :—

'हरिदास' बलि' प्रभु डाके घने घन।
दूरे रहि' हरिदास करे निवेदन॥ 160॥

श्रीहरिदासका स्वाभाविक दैन्य और शुद्धभक्तके प्रति मर्यादा-बुद्धि :—

"भक्त-सङ्गे प्रभु करुन प्रसाद अङ्गीकार।
ए-सङ्गे बसिते योग्य नहि मुञि छार॥ 161॥

सबसे अन्तमें प्रसाद ग्रहण करनेकी इच्छा; महाप्रभुके द्वारा सम्मति :—

पाछे मोरे प्रसाद गोविन्द दिबे बहिर्द्वारे।"
मन जानि' प्रभु पुनः ना बलिल ताँरे॥ 162॥

अनुवाद—महाप्रभु बार-बार 'हरिदास' 'हरिदास' नाम लेकर उन्हें पुकारने लगे, परन्तु श्रीहरिदास ठाकुरने दूरसे ही निवेदन किया,—"आप अपने भक्तोंके साथ प्रसाद ग्रहण कीजिये। मैं अधम आप सबके साथ बैठनेके योग्य नहीं हूँ। बादमें श्रीगोविन्द उद्यानके द्वारके बाहर आकर मुझे महाप्रसाद दे देंगे।" उनके मनकी भावनाको समझकर महाप्रभुने उन्हें फिर नहीं पुकारा॥ 160-162॥

श्रीस्वरूपादि सात भक्तोंके द्वारा परिवेशन :—

स्वरूप-गोसाञि, जगदानन्द, दामोदर।
काशीश्वर, गोपीनाथ, वाणीनाथ, शङ्कर॥ 163॥

प्रसाद-सेवनके समय हरिध्वनि :—

परिवेशन करे ताँहा एइ सातजन।
मध्ये मध्ये हरिध्वनि करे भक्तगण॥ 164॥

अनुवाद—श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीजगदानन्द, श्रीदामोदर पण्डित, श्रीकाशीश्वर, श्रीगोपीनाथ, श्रीवाणीनाथ और श्रीशङ्कर—इन सात भक्तोंने वहाँ प्रसादका परिवेशन किया। प्रसाद पाते हुए बीच-बीचमें भक्तलोग हरिध्वनि करने लगे॥ 163-164॥

अनुभाष्य—'हरिध्वनि'—मध्यलीला 11/209 संख्या देखें॥ 164॥

द्वापरमें श्रीकृष्णकी पुलिन-भोजन-लीलाका उद्दीपन :—

पुलिन-भोजन कृष्ण पूर्वे यैछे कैल।
सेइ लीला महाप्रभुर मने स्मृति हैल॥ 165॥

अनुवाद—द्वापरमें श्रीकृष्ण जैसे अपने सखाओंके साथ यमुना पुलिन-स्थित (तट-स्थित) वनमें भोजन करते थे, महाप्रभुके मनमें आज उसका स्मरण हो आया॥ 165॥

महाप्रभुका धैर्य और भावोंका संवरण :—

यद्यपि प्रेमावेशे प्रभु हैला अस्थिर।
समय बुझिया प्रभु हैला किछु धीर॥ 166॥

अनुवाद—यद्यपि श्रीकृष्णकी लीलाको स्मरण करते ही महाप्रभु प्रेमावेशमें अधीर हो गये, तथापि समय और परिस्थितिको देखकर उन्होंने कुछ धैर्य धारण किया॥ 166॥

महाप्रभुकी वैराग्यलीला :—

प्रभु कहे,—"मोरे देह' लाफ्‌रा-व्यञ्जने।
पिठा-पाना, अमृत-गुटिका देह' भक्तगणे॥"167॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"मुझे तो केवल लाफ्‌रा-व्यञ्जन दो और सब भक्तोंको पिठा-पाना, अमृत-गुटिका आदि दो॥"167॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'लाफ्‌रा-व्यञ्जन'*—सामान्य सूखी सब्जीके जैसा एक प्रकारका विशेष व्यञ्जन; उसे चावलमें मिलाकर दुःखी (गरीब) लोगोंको बाँटा जाता है। *'अमृतगुटिका'*—दूधमें पकाई गयी मोटी 'पूड़ी', जिसको सभी 'अमृत-रसावली' कहते हैं॥ 167॥

अनुभाष्य—मध्यलीला, 6/43-44 संख्या देखें॥ 167॥

श्रीस्वरूपके द्वारा प्रत्येक भक्तको उसके
मनके अनुसार प्रसाद-दान :—

सर्वज्ञ प्रभु जानेन, याँरे येइ भाय।
ताँरे ताँरे सेइ देओयाय स्वरूप-द्वाराय॥ 168॥

अनुवाद—सर्वज्ञ महाप्रभु जानते थे कि किसे क्या अच्छा लगता है, इसलिये उन्होंने श्रीस्वरूप दामोदरके द्वारा सबको उनकी रुचिके अनुसार परिवेशन करवाया॥ 168॥

श्रीजगदानन्दका महाप्रभुके प्रति प्रीतिका प्रदर्शन :—

जगदानन्द बेड़ाय परिवेशन करिते।
प्रभुर पाते भाल-द्रव्य देन आचम्बिते॥ 169॥

महाप्रभुके न चाहनेपर भी उनका
उत्तम भोग देनेपर सन्तोष :—

यद्यपि दिले प्रभु ताँरे करेन रोष।
बले-छले तबु देन, दिले से सन्तोष॥ 170॥

श्रीजगदानन्दके मानके भयसे महाप्रभुके
द्वारा थोड़ा-थोड़ा ग्रहण :—

पुनरपि सेइ द्रव्य करे निरीक्षण।
ताँर भये प्रभु किछु करेन भक्षण॥ 171॥

ना खाइले जगदानन्द करिबे उपवास।
ताँर आगे किछु खा'न—मने ऐ त्रास॥ 172॥

अनुवाद—जब श्रीजगदानन्द परिवेशन करते हुए महाप्रभुके पास आये, तो उन्होंने अचानक अच्छे-अच्छे व्यञ्जन उनके पत्तलमें डाल दिये। उनके ऐसा करनेपर महाप्रभुने उनके प्रति क्रोध दिखलाया। परन्तु श्रीजगदानन्द कभी छलसे और कभी बलसे ऐसे परिवेशन करने लगे, तब महाप्रभुके मनमें सन्तोष ही हुआ। महाप्रभुने पुनः पत्तलमें पड़े हुए उन व्यञ्जनोंको देखा और श्रीजगदानन्दके भयसे उसमेंसे कुछ खा लिया। महाप्रभुके मनमें यह भय था कि उनके नहीं खानेसे श्रीजगदानन्द उपवास करेंगे, इसलिये उनके सामने उन व्यञ्जनोंमेंसे कुछ खा लेते॥ 169-172॥

श्रीस्वरूपके द्वारा महाप्रभुको मिठाई प्रसादका परिवेशन :—

स्वरूप-गोसाञि भाल मिष्टप्रसाद लञा।
प्रभुके निवेदन करे आगे दाण्डाञा॥ 173॥

"एइ महाप्रसाद अल्प करह आस्वादन।
देख, जगन्नाथ कैछे करयाछेन भोजन॥"174॥

अनुवाद—तब श्रीस्वरूप दामोदरने उत्तम मिठाई प्रसाद लेकर महाप्रभुके सामने खड़े होकर निवेदन किया,—"इस थोड़ेसे महाप्रसादका आस्वादन कीजिये, देखो! भगवान् श्रीजगन्नाथने कैसा भोजन किया है॥"173-174॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीस्वरूपकी इच्छा पूर्ण :—

एत बलि' आगे किछु करे समर्पण।
ताँर स्नेहे प्रभु किछु करेन भोजन॥ 175॥

अनुवाद—इतना कहकर श्रीस्वरूप दामोदरने महाप्रभुके पत्तलमें कुछ मीठा प्रसाद दे दिया और उनके स्नेहके कारण महाप्रभुने उसमेंसे कुछ ग्रहण कर लिया॥ 175॥

श्रीस्वरूप और श्रीजगदानन्दके विचित्र-प्रेमवश महाप्रभु :—

एइमत दुइजन करे बारबार।
विचित्र एइ दुइ भक्तेर स्नेह-व्यवहार॥ 176॥

दोनोंकी महाप्रभु-प्रीतिको देखकर श्रीसार्वभौमका हास्य :—

सार्वभौमे प्रभु बसाञाछेन वाम-पाशे।
दुइ भक्तेर स्नेह देखि' सार्वभौम हासे॥ 177॥

अनुवाद—इस प्रकार श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीजगदानन्द पण्डित, दोनों ही बार-बार आकर महाप्रभुको कुछ-न-कुछ परोस देते। महाप्रभुके प्रति इन दोनों भक्तोंका अद्भुत स्नेहपूर्ण व्यवहार है। महाप्रभुने श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यको अपने बायीं ओर बैठाया था और इन दोनों भक्तोंके स्नेहको देखकर श्रीसार्वभौम मुस्कराने लगे॥ 176-177॥

श्रीसार्वभौमके प्रति महाप्रभुका स्नेह :—

सार्वभौमे देयान प्रभु प्रसाद उत्तम।
स्नेह करि' बारबार करान भोजन॥ 178॥

महाप्रभुकी आज्ञासे श्रीगोपीनाथके द्वारा
श्रीभट्टाचार्यको उत्तम प्रसाद-दान :—

गोपीनाथाचार्य उत्तम महाप्रसाद आनि'।
सार्वभौमे देन प्रसाद प्रभु-आज्ञा मानि'॥ 179॥

श्रीसार्वभौमके पूर्व और वर्तमान आचरणकी तुलना :—

"काँहा भट्टाचार्येर पूर्व जड़-व्यवहार।
काँहा एइ परमानन्द,—करह विचार॥"180॥

अनुवाद—महाप्रभु श्रीसार्वभौमको भी उत्तम प्रसाद खिलाना चाह रहे थे, इसलिये वे स्नेहके कारण परिवेशन करनेवालोंके द्वारा उनके पत्तलमें उत्तम व्यञ्जन बार-बार डलवा रहे थे। श्रीगोपीनाथाचार्यने भी उत्तम महाप्रसाद लाकर श्रीसार्वभौमको परिवेशन किया और कहा,—"थोड़ा विचार कीजिये कि कहाँ तो भट्टाचार्यका पहलेवाला जड़ व्यवहार! और कहाँ अब ये परमानन्द॥"178-180॥

अनुभाष्य—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य पहले स्मार्त्त विचारवाले थे और प्राकृत जगत्की सब वस्तुएँ जड़ हैं, ऐसा उनका दृढ़ विश्वास था। इसलिये उनको प्रसादमें, श्रीगोविन्द-नाममें और वैष्णवोंमें अप्राकृत-श्रद्धा नहीं थी, अर्थात् इन्हें वे अप्राकृत नहीं मानते थे। अब महाप्रभुकी कृपासे इन सबमें अप्राकृत-दर्शनमें विश्वास प्राप्त करके उन्होंने प्रसाद आदि ग्रहण करनेमें परमानन्द प्राप्त किया—यही विचारका विषय है॥ 180॥

श्रीभट्टाचार्यका दैन्य और श्रीगोपीनाथके
प्रति कृतज्ञता ज्ञापन :—

सार्वभौम कहे,—"आमि तार्किक कुबुद्धि।
तोमार प्रसादे मोर ए सम्पत्-सिद्धि॥ 181॥

महाप्रभुकी अहैतुकी कृपा-महिमाका वर्णन :—

महाप्रभु बिना केह नाहि दयामय।
काकेरे गरुड़ करे,—ऐछे कौन हय॥ 182॥

अपनी पूर्व और वर्तमान अवस्थापर विचार :—

तार्किक-शृगाल-सङ्गे भेउ-भेउ करि।
सेइ मुखे एबे सदा कहि 'कृष्ण' 'हरि'॥ 183॥
काँहा बहिर्मुख तार्किक-शिष्यगण-सङ्गे।
काँहा एइ सङ्गसुधा-समुद्र-तरङ्गे॥"184॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने कहा,—"मैं तो तार्किक कुबुद्धिवाला था, किन्तु आपकी कृपासे मुझे यह सम्पत्ति प्राप्त हुई है। महाप्रभुके बिना और कोई भी ऐसा दयालु नहीं है, जो कौवेको भी गरुड़के समान बना सके। जिस मुखसे मैं पहले तार्किक-सियारोंके साथ भेउ-भेउ करता था, अब उसी मुखसे सदा 'कृष्ण' 'हरि' बोलता हूँ। मैं कहाँ तो पहले बहिर्मुख तार्किक-शिष्योंके सङ्गमें रहता था और कहाँ अब ऐसे सङ्गरूपी अमृत-सिन्धुकी तरङ्गोंमें डूबा रहता हूँ॥ 181-184॥

अनुभाष्य—*'बहिर्मुख'*—जो बाहरी रूप-रसादिमें अपनेको भोक्तारूपमें अभिमान करते हुए अपने इन्द्रिय-भोगमें व्यस्त है और श्रीकृष्णसेवा-विमुख है, वही 'बहिर्मुख' है। (भाः 7/5/31)—

"मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वा मिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानाम्।
अदान्त गोभिर्विशतां तमिस्रं पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम्॥
न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुं दुराशया ये बहिरर्थमानिनः।
अन्धा यथान्धैरुपनीयमानास्तेऽपीशतन्त्र्यामुरुदाम्नि बद्धाः॥"

अर्थात् "श्रीप्रह्लादने कहा,—"हे पिताजी! जो गृहव्रतधारी परस्पर आसक्तिसे आबद्ध हैं, उनकी कभी भी अपने प्रयाससे अथवा गुरुके कहनेसे श्रीकृष्णमें मति नहीं होती। वे अजितेन्द्रिय हैं, इसलिये वे पुनः पुनः इस क्लेशमय संसारमें प्रवेश करके चबाये गये विषयोंको ही फिरसे चबाते हैं। जो बाह्य जड़ विषयोंका ही आदर करते हैं, वे सब दूषित अन्तःकरणवाले व्यक्ति समस्त स्वार्थकी एकमात्र गति जो श्रीविष्णु हैं, उनको नहीं जान सकते हैं। एक अन्धा जैसे दूसरे अन्धे व्यक्तिको पकड़कर ले जाता है, उसी प्रकार वे भी (अन्ध-परम्परामें) वेदरूपी लम्बी रस्सीसे काम्यकर्मोंकी रस्सियोंसे बँधे हैं।"

जड़ विषयोंके भोक्ताके अभिमानके कारण श्रीकृष्णसेवाके स्वरूपकी उपलब्धि नहीं होती। अप्राकृत राज्यके बाहरी भागमें यह देवीधाम अवस्थित है, इस राज्यकी सभी वस्तुएँ ही प्राकृत है। स्वरूप-भ्रमके कारण ये वस्तुएँ ही बद्धजीवको अपनी सेव्य वस्तुके रूपमें प्रतीत होती हैं॥ 184॥

श्रीसार्वभौमकी मानद महाप्रभुके द्वारा प्रशंसा :—

प्रभु कहे,—"पूर्वे सिद्ध कृष्णे तोमार प्रीति।
तोमा-सङ्गे आमा-सबार हैल कृष्णे मति॥"185॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"आपकी तो पिछले जन्मसे ही श्रीकृष्णमें प्रीति है। आपका श्रीकृष्णसे इतना प्रेम है कि अब आपके सङ्गसे हम सबकी भी श्रीकृष्णमें मति लग गयी है॥"185॥

भक्तगुण-कीर्तन करनेमें भगवान् श्रीचैतन्य—अद्वितीय :—

भक्त-महिमा बाड़ाइते, भक्ते सुख दिते।
महाप्रभु बिना अन्य नाहि त्रिजगते॥ 186॥

अनुवाद—भक्तोंकी महिमाको बढ़ाने तथा भक्तोंको सुख प्रदान करनेमें महाप्रभुके अतिरिक्त त्रिभुवनमें अन्य कोई नहीं है॥ 186॥

अनुभाष्य—भागवतके तीसरे स्कन्धका सोलहवाँ अध्याय इस प्रसङ्गमें विचारणीय है॥ 186॥

सभी भक्तोंको प्रसाद देना :—

तबे प्रभु प्रत्येके, सब भक्तेर नाम लञा।
पिठा-पाना देओयाइल प्रसाद करिया॥ 187॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने सारा प्रसाद एकत्रित करके प्रत्येक भक्तका नाम लेकर सबको पिठा-पाना आदि बाँटा॥ 187॥

श्रीनिताइ और श्रीअद्वैत, परस्पर कौतुकपूर्ण कलह :—

अद्वैत-नित्यानन्द बसियाछेन एक ठाञि।
दुइजने क्रीड़ा-कलह लागिल तथाइ॥ 188॥

श्रीअद्वैताचार्यके द्वारा कलह आरम्भ :—

अद्वैत कहे,—"अवधूतेर सङ्गे एक पंक्ति।
भोजन करिलुँ, ना जानि हबे कोन् गति॥ 189॥

संन्यासीको अन्नस्पर्शदोष नहीं :—

प्रभु त' संन्यासी, उँहार नाहि अपचय।
अन्न-दोषे संन्यासीर दोष नाहि हय॥ 190॥

"नान्नदोषेण मस्करी"—एइ शास्त्र-प्रमाण।
आमि त' गृहस्थ-ब्राह्मण, आमार दोष-स्थान॥ 191॥

'अपनेको गृहस्थ-ब्राह्मण' कहकर श्रीअद्वैताचार्यके द्वारा लौकिक स्मार्त्तसमाजके आनुगत्यकी छलना :—

जन्मकुलशीलाचार ना जानि याहार।
तार सङ्गे एक पंक्ति—बड़ अनाचार॥"192॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्य और श्रीनित्यानन्द प्रभु एक साथ बैठे थे और वहीं उन दोनोंमें प्रेम-कलह आरम्भ हो गयी। श्रीअद्वैताचार्यने कहा,—"मैंने इस अवधूतके साथ एक ही पंक्तिमें बैठकर भोजन किया है, न जाने मेरी क्या गति होगी? महाप्रभु तो संन्यासी हैं, उनको कोई अन्तर नहीं पड़ेगा, क्योंकि जहाँ कहींसे भी अन्न खानेसे संन्यासीको दोष नहीं लगता। 'नान्नदोषेण मस्करी' अर्थात् संन्यासीका किसीके घरमें भोजन करनेमें कोई असङ्गति नहीं है—यह शास्त्रका प्रमाण है। किन्तु मैं तो एक गृहस्थ ब्राह्मण हूँ, इसलिये मुझे दोष लगेगा। जिसके जन्म, कुल, स्वभाव और आचरणका पता नहीं है, गृहस्थ ब्राह्मणका उसके साथ एक पंक्तिमें बैठकर प्रसाद पाना बड़ा अनाचार है॥"188–192॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'नान्नदोषेण मस्करी'*—अर्थात् संन्यासीको अन्नदोष नहीं लगता॥ 191॥

श्रीनित्यानन्दके द्वारा केवलाद्वैतवादकी निन्दा :—

नित्यानन्द कहे,—"तुमि अद्वैत-आचार्य।
'अद्वैत-सिद्धान्ते' बाधे शुद्धभक्तिकार्य॥ 193॥

श्रीनित्यानन्द प्रभुके द्वारा श्रीअद्वैताचार्यकी निन्दाके छलसे अद्वयज्ञानकी महिमाका वर्णन :—

तोमार सिद्धान्त-सङ्ग करे येइ जने।
'एक' वस्तु बिना सेइ 'द्वितीय' नाहि माने॥ 194॥

अद्वयज्ञान-विरोधी जड़-द्वैतज्ञानी या मायावादीके सङ्गकी निषिद्धताके विषयमें इङ्गित :—

हेन तोमार सङ्गे मोर एकत्रे भोजन।
ना जानि, तोमार सङ्गे कैछे हय मन॥"195॥

अनुवाद—यह सुनकर श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा,—"तुम अद्वैत-आचार्य अर्थात् अद्वैतवादके आचार्य हो। 'अद्वैत-सिद्धान्त'से शुद्धभक्तिके कार्यमें बाधा पहुँचाती है। तुम्हारे सिद्धान्तको जो व्यक्ति ग्रहण करता है, वह केवल एक वस्तुके अतिरिक्त दूसरी वस्तुको नहीं मानता। ऐसे तुम्हारे साथ बैठकर मैं भोजन कर रहा हूँ, न जाने तुम्हारे सङ्गसे मेरे मनपर क्या प्रभाव होगा॥"193–195॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा,—तुम अद्वैत-आचार्य हो। तुम्हारे सिद्धान्त सब अद्वैतवाद हैं, जिससे शुद्ध भक्तिके कार्यमें बाधा पहुँचती है। तुम्हारे सिद्धान्तके प्रति जो आसक्त होता है, वह एक वस्तु (चिद्-विलास) ब्रह्मके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं देख पाता। इस प्रकार तुम्हारा सङ्ग द्वैतवादियोंके लिये त्याज्य होनेपर भी तुम्हारे साथ एक स्थानपर भोजन कर रहा हूँ—यह बात मेरे मनको अच्छी नहीं लग रही॥ 193–195॥

अनुभाष्य—*'अद्वैत-सिद्धान्त'*—सेव्य-सेवक-लीला नित्य सत्य है, अद्वैतवादियोंका सिद्धान्त इस बातका अनुमोदन नहीं करता। वे श्रीकृष्णसेवारूप अप्राकृत भक्तिकार्यको भी मनुष्यके कामादि इन्द्रियवृत्तिसे उत्पन्न सुखदुःख-भोग अथवा कर्मफलके अन्तर्गत एक प्राकृत विषयभोग-चेष्टा समझते हैं। इसलिये अद्वैतवादियोंका सिद्धान्त—भगवान्‌से अभिन्न नाम, रूप, गुण एवं लीला-वैचित्र्यसेवामय निर्मल भक्तिकार्यका प्रतिबन्धक है।

आदिलीला 1/7 श्लोक इस स्थानपर विशेषरूपसे विचारणीय है। असुरोंको मोहित करनेके लिये श्रीअद्वैताचार्यकी निन्दाके छलसे श्रीनित्यानन्द प्रभुने ऐसा कहा। प्राकृत लोगोंकी बाहरी दृष्टिमें मायावादी कैवलाद्वैतवादियोंके 'अद्वैत-सिद्धान्त' अथवा 'निर्भेद-ब्रह्मसायुज्य'वादके साथ श्रीअद्वैताचार्यके द्वारा प्रचारित शुद्ध अद्वय-ज्ञान आपाततः 'एक' प्रतीत होनेपर भी वास्तवमें श्रीहरिके अभिन्न-विग्रह श्रीअद्वैताचार्यकी 'शुद्ध-

भक्तिके प्रचार" हेतु ही 'आचार्य'-पदवी है। उनका जो 'अद्वैत-सिद्धान्त' है,—वह अद्वयज्ञान-उपासना अथवा शुद्धभक्तिके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसलिये श्रीगौरकृष्णभक्तिकी महिमाके कीर्तनकारी होनेके कारण श्रीनित्यानन्द प्रभुने श्रीअद्वैताचार्यकी निन्दाके छलसे उनकी 'व्याज-स्तुति' की है।

वास्तवमें, शुद्धवैष्णव अथवा शुद्धभक्ति साधक भक्त (भाः 1/2/11)—वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्। ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥" अर्थात् "तत्त्वको जाननेवाले पण्डित लोग वास्तव-तत्त्ववस्तुको 'अद्वयज्ञान' कहते हैं, जो ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्—इन तीन नामोंसे जानी जाती हैं।" अथवा (छाः उः 6/2/1)—"एकमेवाद्वितीयम्" अर्थात् "इस विश्वकी सृष्टिसे पूर्व एक, अद्वितीय सत्-वस्तुमात्र थी" आदि शास्त्रीय वाक्योंमें दृढ़ विश्वास रखते हैं। वे तत्त्ववस्तुको असमोर्द्ध मानकर भी उन्हें केवल निर्विशेष चिन्मात्र 'ब्रह्म' या सच्चिदात्मक 'भूमा', 'विराट' नामोंसे न कहकर उनका उद्देश्य 'चिद्विलासी रसमय भगवान्'से है। वे ये स्वीकार करते हैं कि शक्तिमान् विग्रह एक 'अद्वयज्ञान' होनेपर भी प्रभावके अनुसार उनकी एक ही शक्तिके बहुतसे भेद अथवा वैचित्र्य हैं। उनमें स्वगत-सजातीय-विजातीय भेद अथवा ज्ञेय-ज्ञान-ज्ञाता,—ये तीन अवस्थाएँ नित्य-वर्तमान हैं, एवं उनके स्वरूपविग्रहसे अभिन्न नित्य नाम, रूप, गुण, लीला और परिकरवैशिष्ट्य विद्यमान है। इसलिये भक्ति-मार्गीय वैष्णवगण कभी भी अहंग्रहोपासक मायावादी नहीं हैं। यह कहना अधिक होगा कि यदि ज्ञेय और ज्ञाता पृथक् न हों, तो परस्पर ज्ञान, विलास अथवा रस-वैचित्र्य नहीं रहता। इसलिये केवलाद्वैत-सिद्धान्त—प्रच्छन्न अवैदिक नास्तिक्यवाद-मात्र है। श्रीनित्यानन्द प्रभुने इसीकी निन्दा की है। परमार्थभूत वास्तव वस्तु 'एक' श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य वस्तुमें जो 'द्वितीय'-प्रतीति है—वही माया है। माया दो प्रकारकी है—'जीव-माया' और 'गुण-माया'; गुणमाया भी 'प्रकृति' और 'प्रधान'के भेदसे दो प्रकारकी है। जहाँ श्रीकृष्णकी प्रतीति है, वहाँ 'द्वितीयकी' (मायाकी) प्रतीति नहीं है—(भाः 2/9/33 और 11/3/45 श्लोकोंके गौड़ीय-भाष्य देखें)। शुद्धभक्त प्रह्लादके समान महाभागवतको सर्वत्र 'एक' श्रीकृष्णकी प्रतीति होती है (भाः 7/4/37)—"कृष्णग्रह-गृहीतात्मा न वेद जगदीदृशम्।" अर्थात् "प्रह्लादका मनको श्रीकृष्णके अनुग्रहरूप ग्रहने इस प्रकार खींच लिया कि जगत् इस प्रकार श्रीकृष्णके बिना प्रतीतिमय है, यह वे नहीं जानते थे।"। इसलिये उनको द्वितीयाभिनिवेश-जनित मृत्यु या भय अर्थात् संसार (वृः आः 1/4/2) नहीं रहता। श्रीअद्वैताचार्यने आचार्यरूपमें इस 'अद्वयज्ञान-दर्शन'के आधारपर 'शुद्धभक्तिकी ही प्रशंसा' की है। श्रीनित्यानन्द प्रभुने द्वितीयाभिनिवेशकारी भोगोंमें रत जड़-द्वैतवादियोंका तिरस्कार करके श्रीअद्वैताचार्यके इस अद्वयज्ञान-दर्शनकी ही प्रशंसा की है।

श्रीरूप प्रभुने 'उपदेशामृत'में लिखा है,—"ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति। भुङ्क्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम्॥" इस श्लोकके अनुसार भोजनादि सङ्गविषयक विचार—शुद्धभक्तोंके लिये अवश्य पालनीय है। परन्तु, प्रच्छन्न मायावादी अथवा द्वितीयाभिनिवेशमें रत प्राकृत-सहिजयाओंके साथ शुद्धभक्तोंको कभी भी एकत्र भोजन करना उचित नहीं है,—यह भी श्रीनित्यानन्द प्रभुने इङ्गितके द्वारा बतलाया॥ 194–195॥

निन्दाके छलसे दोनों प्रभुओंकी परस्पर स्तुति :—

एइमत दुइजने करे बलाबलि।
व्याज-स्तुति करे दुँहे, येन गालागालि॥ 196॥

अनुवाद—इस प्रकार दोनों ही एक-दूसरेको कुछ-न-कुछ कहते रहे। दोनों ही एक दूसरेकी छलसे स्तुति कर रहे थे, परन्तु बाहरसे ये निन्दा प्रतीत हो रही थी॥ 196॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'व्याज-स्तुति'*—छल स्तुति अर्थात् बाहरसे निन्दा-वाक्य, भीतरसे माहात्म्यसूचक वचन॥ 196॥

अनुभाष्य— *'दुईजने क्रीड़ा-कलह'*—मध्यलीला 3/93-101 संख्या देखें॥ 188-196॥

महाप्रभुके द्वारा सभी भक्तोंको महाप्रसाद देना :—

तबे प्रभु सर्व वैष्णवेर नाम लञा।
महाप्रसाद देन महा-अमृत सिञ्चिया॥ 197॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने सभी वैष्णवोंका नाम पुकारकर उन्हें महाप्रसाद दिलवाया और उसपर अपनी कृपारूपी महा-अमृतका सिञ्चन किया॥ 197॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महाप्रभुने वैष्णवोंको महाप्रसाद दिलवाया; उसपर महाप्रभुका कृपारूप अमृत सिञ्चित होनेके कारण वह और अधिक आस्वादनीय हो गया॥ 197॥

प्रसाद-सम्मानके बाद हरिध्वनि देकर
उठना और आचमन :—

भोजन करि' उठे सबे हरिध्वनि करि'।
हरिध्वनि उठिल सब स्वर्गमर्त्त्य भरि'॥ 198॥

भक्तोंको अपने हाथोंसे माला और चन्दन देना :—

तबे महाप्रभु सब निज-भक्तगणे।
सबाकारे श्रीहस्ते दिला माल्य-चन्दने॥ 199॥

अनुवाद—उसके बाद सभी भोजन करके हरिध्वनि करते हुए उठ खड़े हुए और उस हरिध्वनिसे स्वर्गलोक और मर्त्त्यलोक गूँज उठे। तब महाप्रभुने अपने समस्त भक्तोंको अपने श्रीहस्तकमलोंसे माला पहनायी और चन्दन लगाया॥ 198-199॥

श्रीस्वरूपादि सात परिवेशन करनेवाले
भक्तोंको सबसे अन्तमें प्रसादकी प्राप्ति :—

तबे परिवेशक स्वरूपादि सातजन।
गृहेर भितरे कैल प्रसाद भोजन॥ 200॥

श्रीगोविन्दकी सहायतासे श्रीहरिदासको
महाप्रभुके उच्छिष्टकी प्राप्ति :—

प्रभुर अवशेष गोविन्द राखिल धरिया।
सेइ अन्न हरिदासे किछु दिल लञा॥ 201॥

श्रीगोविन्दको सबसे अन्तमें महाप्रभुके
उच्छिष्टकी प्राप्ति :—

भक्तगण गोविन्द-पाश किछु मागि' निल।
सेइ प्रसादान्न गोविन्द आपनि पाइल॥ 202॥

अनुवाद—उसके बाद परिवेशन करनेवाले श्रीस्वरूप दामोदर आदि सात भक्तोंने घरके भीतर बैठकर प्रसाद ग्रहण किया। श्रीगोविन्दने महाप्रभुके अवशिष्ट प्रसादको रख लिया और उसमेंसे कुछ अन्न प्रसाद लेकर श्रीहरिदास ठाकुरको दिया। भक्तोंने भी श्रीगोविन्दसे महाप्रभुके अवशिष्ट प्रसादमेंसे थोड़ा-थोड़ा माँगकर ले लिया और अन्तमें जो बचा, उसे श्रीगोविन्दने स्वयं ग्रहण किया॥ 200-202॥

गुण्डिचा-मार्जन-लीलाका ही नामान्तर
'धोयापाखला'-लीला :—

स्वतन्त्र ईश्वर प्रभु करे नाना खेला।
'धोयापाखला' नाम कैल एइ एक लीला॥ 203॥

अनुवाद—महाप्रभु स्वतन्त्र ईश्वर हैं, इसलिये वे अनेक प्रकारकी लीलाएँ करते हैं। उन्होंने 'धोयापाखला' नामक यह एक लीला भी की॥ 203॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'धोयापाखला'*—इस गुण्डिचा-मार्जन-लीलाको उड़िया भाषामें 'धोयापाखला' कहते हैं॥ 203॥

अनवसरके अन्तमें नेत्रोत्सव या अङ्गरागोत्सव :—

आर दिने जगन्नाथेर 'नेत्रोत्सव'-नाम।
महोत्सव हैल भक्तेर प्राण समान॥ 204॥

अनुवाद—अगले दिन श्रीजगन्नाथका 'नेत्रोत्सव'-नामक उत्सव हुआ। यह महोत्सव भक्तोंके लिये प्राणोंके समान है॥ 204॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'नेत्रोत्सव'*—स्नानके समय श्रीजगन्नाथका रङ्ग धुलनेके कारण 'अनवसर'-कालमें तीनों मूर्तियोंका 'अङ्गराग' होता है। नवयौवन दिवसमें प्रातःकालमें नेत्रोत्सव अर्थात् नेत्रोंका अङ्गराग होता है॥ 204॥

पन्द्रह दिनोंके बाद श्रीजगन्नाथदेवका मन भरके दर्शन :—

पक्षदिन दुःखी लोक प्रभुर अदर्शने।
दर्शन करिया लोक सुख पाइल मने॥ 205॥

अनुवाद—श्रीजगन्नाथदेवके दर्शन न होनेके कारण पन्द्रह दिनोंसे सभी लोग बड़े दुःखी थे, परन्तु अब श्रीजगन्नाथके दर्शन करके सभीके मन प्रसन्न हो गये॥ 205॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'पक्ष-दिन'*—पन्द्रह दिन॥ 205॥

अनुभाष्य—पूर्णिमाकी स्नान-यात्राके बाद पन्द्रह दिनोंके लिये श्रीजगन्नाथ-मूर्तिके अदर्शनके कारण दर्शनार्थियोंके नेत्र आनन्दसे वञ्चित हो जाते हैं। दर्शनार्थी व्यक्ति पन्द्रह दिनोंके अदर्शनके बाद श्रीभगवान्‌के दर्शन करके अपने नेत्रोंको सफल बनाते हैं। इस वियोग-पक्षके बाद उस प्रथम दर्शनको ही 'नेत्रोत्सव' कहते हैं॥ 205॥

भक्तोंके साथ महाप्रभुकी जगन्नाथ-दर्शन यात्रा :—

महाप्रभु सुखे लञा सब भक्तगण।
जगन्नाथ-दरशने करिला गमन॥ 206॥

महाप्रभुके आगे बलवान श्रीकाशीश्वर
और पीछे श्रीगोविन्दका जाना :—

आगे काशीश्वर याय लोक निवारिया।
पाछे गोविन्द याय जल-करङ्ग लञा॥ 207॥

अनुवाद—महाप्रभु आनन्दपूर्वक सभी भक्तोंको साथ लेकर श्रीजगन्नाथके दर्शनके लिये चल पड़े। महाप्रभुके आगे श्रीकाशीश्वर लोगोंकी भीड़को हटाते हुए चल रहे थे और महाप्रभुके पीछे श्रीगोविन्द जलका पात्र लेकर चल रहे थे॥ 206-207॥

अनुभाष्य— *'करङ्ग'*—चतुर्थाश्रमी संन्यासीका जलपात्र (कमण्डलु)॥ 207॥

महाप्रभुके आगे श्रीपुरी-भारतीके
बगलमें श्रीस्वरूप-अद्वैत :—

प्रभुर आगे पुरी, भारती,—दुँहार गमन।
स्वरूप, अद्वैत,—दुँहेर पार्श्वे दुइजन॥ 208॥

पीछे-पीछे अन्यान्य भक्त :—

पाछे पाछे चलि' याय आर भक्तगण।
उत्कण्ठाते गेला सब जगन्नाथ-भवन॥ 209॥

कमलनयनके दर्शन करनेके लिये
भक्तोंके अनुरागवशतः मर्यादाका उल्लङ्घन :—

दर्शन-लोभेते करि' मर्यादा लङ्घन।
भोग-मण्डपे याञा करे श्रीमुख दर्शन॥ 210॥

अनुवाद—श्रीपरमानन्द पुरी एवं श्रीब्रह्मानन्द भारती महाप्रभुसे आगे जा रहे थे और श्रीस्वरूप दामोदर एवं श्रीअद्वैताचार्य महाप्रभुके दोनों ओर चल रहे थे। अन्य सब भक्तगण उत्कण्ठासे उनके पीछे चलते हुए श्रीजगन्नाथ मन्दिरमें जा रहे थे। दर्शनके लोभसे मर्यादाका उल्लङ्घन करते हुए सभी भक्तोंने भोग-मण्डपमें जाकर श्रीजगन्नाथके श्रीमुखका दर्शन किया॥ 208-210॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'मर्यादा लङ्घन'*—शास्त्रोंकी जिस विधिके अनुसार देव दर्शन करने चाहिये, उस विधिका नाम 'मर्यादा' है। दर्शनके लोभसे बहुतसे लोग उस मर्यादाका उल्लङ्घन करके नवयौवन-दर्शनके लिये गये॥ 210॥

राधाभावमें भावित महाप्रभुका अपलक-नेत्रोंसे
श्रीकृष्णके मुखका दर्शन :—

तृष्णार्त्त प्रभुर नेत्र—भ्रमर-युगल।
गाढ़ तृष्णाय पिये कृष्णेर वदन-कमल॥ 211॥

अनुवाद—महाप्रभु श्रीजगन्नाथके दर्शनके बहुत प्यासे थे, उनके नेत्र दो भ्रमरोंकी भाँति प्रगाढ़ तृष्णासे श्रीकृष्णके (श्रीजगन्नाथके) मुखकमलका पान करने लगे॥ 211॥

अनुभाष्य—श्रीमहाप्रभु जगमोहनके सबसे पिछले भागमें सदैव 'गरुड़ स्तम्भ'के पीछेसे श्रीजगन्नाथके दर्शन करते थे। पन्द्रह दिन तक दर्शन प्राप्त नहीं कर पानेके कारण प्रबल विप्रलम्भसे पुष्ट चेष्टाके कारण महाप्रभुने जगमोहन पार करके भोगमण्डपमें जाकर श्रीमुखका दर्शन किया। वरणीय वस्तुके अत्यन्त निकट जानेको

मर्यादाका उल्लङ्घन समझना चाहिये। प्याससे व्याकुल भ्रमर जिस प्रकार पुष्पके मधुपान करनेकी सुदृढ़ चेष्टा दिखलाता है, उसी प्रकार महाप्रभुके नेत्रोंकी दो भ्रमरोंसे और श्रीजगन्नाथके श्रीमुखकी कमल-पुष्पसे उपमा दी गयी है। गाढ़ तृष्णावश श्रीकृष्ण मुखकमल दर्शनरूप पान कार्यमें महाप्रभुकी अत्यधिक प्यास प्रकाशित हो रही थी॥ 210–211॥

श्रीविग्रहका असमोर्द्ध और नित्य नव-नवायमान और वर्द्धनशील माधुर्य :—

प्रफुल्ल-कमल जिनि' नयन-युगल।
नीलमणि-दर्पण-कान्ति गण्ड झलमल॥ 212॥

बान्धुलीर फुल जिनि' अधर सुरङ्ग।
ईषत् हसित कान्ति—अमृत-तरङ्ग॥ 213॥

श्रीमुख-सुन्दरकान्ति बाढ़े क्षणे क्षणे।
कोटिभक्त-नेत्र-भृङ्ग करे मधुपाने॥ 214॥

यत पिये, तत तृष्णा बाढ़े निरन्तर।
मुखाम्बुज छाड़ि' नेत्र ना याय अन्तर॥ 215॥

अनुवाद—श्रीजगन्नाथके दोनों नेत्र प्रफुल्लित कमलका भी तिरस्कार करनेवाले थे। नीलमणि-दर्पणकी कान्तिके समान उनके दोनों कपोल (गाल) झलमल कर रहे थे। लाल रङ्गके उनके अधर बान्धुली पुष्पकी शोभाको भी पराजित करनेवाले थे और उनकी मन्द मुस्कानकी कान्ति अमृतकी तरङ्गोंकी भाँति लहरा रही थी। उनके श्रीमुखकी सुन्दर कान्ति क्षण-क्षणमें बढ़ती जा रही थी और कोटि-कोटि भक्त अपने नेत्ररूपी भ्रमरोंके द्वारा उस मुखकमलके मधुका पान कर रहे थे। वे जितना उस मधुका पान करते थे, उनकी तृष्णा निरन्तर उतनी ही बढ़ती जाती थी। उनके नेत्र श्रीजगन्नाथके मुखकमलको छोड़कर और कहीं नहीं जा रहे थे॥ 212–215॥

अमृतप्रवाह भाष्य—नीलमणि अर्थात् इन्द्रनीलमणिसे बने हुए दर्पणकी कान्तिकी भाँति श्रीजगन्नाथदेवके कपोल (गाल) झलमल कर रहे थे॥ 212॥

बारहवें अध्यायका अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

अनुभाष्य— *'बान्धुली'*—यहाँ इस जातिके लाल रङ्गके पुष्पको समझना चाहिये। *'सुरङ्ग'*—सिन्दूर रङ्गका।

श्रीविग्रह-माधुरीके विषयमें श्रीरूपप्रभुने श्रीलघु-भागवतामृतमें लिखा है,—

'असमानोर्द्धमाधुर्य- तरङ्गामृतवारिधिः।
जङ्गमस्थावरोल्लासिरूपो गोपेन्द्रनन्दनः।"

अर्थात् "जिनके समान या जिनकी अपेक्षा अधिक नहीं है, इस प्रकारके जो माधुर्य-तरङ्गमय अमृतसिन्धु हैं, उन श्रीनन्दनन्दनका रूप स्थावर और जङ्गम, बिना भेदके सभी प्राणियोंके उल्लासको वर्द्धित करता है।"

तन्त्रमें,—

"कन्दर्प-कोट्यर्बुदरूप-शोभा-नीराज्य-पादाब्ज-नखाञ्चलस्य।
कुत्राप्यदृष्टश्रुत-रम्यकान्तेर्ध्यानं परं नन्दसुतस्य वक्ष्ये॥"

अर्थात् "जिनके चरणकमलोंके नखके अग्रभाग असंख्य कामदेवोंकी रूपशोभाके द्वारा नित्य ही अर्चित होते हैं, जिनकी रम्यकान्ति और कहीं भी (यहाँ तक कि मथुरा-द्वारकाधीशमें भी) दिखायी या सुनायी नहीं देती, उन नन्दनन्दनके ध्यानकी विधि कहूँगा।"

(भाः 10/29/40)—

"का स्त्र्यङ्ग ते कलपदामृतवेणुगीत
सम्मोहितार्यचरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम्।
त्रैलोक्यसौभगमिदञ्च निरीक्ष्य रूपं
यद् गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन्॥"

अर्थात् गोपियोंने कहा,—"हे कृष्ण! त्रिजगत्‌में ऐसी कौन स्त्री है, जो तुम्हारे सुमधुर पद और दीर्घ मूर्च्छनायुक्त अमृतमय सङ्गीतसे मोहित होकर आर्य धर्मसे विचलित ना हो जाय? तुम्हारी त्रिभुवन-मोहन दिव्यरूपके दर्शनसे गौएँ, पक्षी, वृक्ष और मृग आदि प्राणी भी परमानन्दसे पुलकित हो जाते हैं।"

श्रीमहाप्रभु जितना ही श्रीमुखका दर्शन करने लगे, उतनी ही उनकी दर्शनकी प्यास उत्तरोत्तर वर्द्धित होने लगी। महाप्रभुके नेत्र और श्रीकृष्णका मुखकमल, दोनोंमें तब और कोई भेद अथवा दूरी नहीं रही॥ 212–215॥

दो प्रहर तक श्रीमुखदर्शन-लीला :-

एइमत महाप्रभु लञा भक्तगण।
मध्याह्न पर्यन्त कैल श्रीमुख दरशन॥ 216॥

महाप्रभुका भावावेश होनेपर भी उसे सम्वरणकर दर्शन-सेवा-सुख :-

स्वेद, कम्प, अश्रु-जल बहे सर्वक्षण।
दर्शनेर लोभे प्रभु करे सम्वरण॥ 217॥

अनुवाद—इस प्रकार महाप्रभुने अपने भक्तोंके साथ मध्याह्नकाल तक श्रीजगन्नाथके श्रीमुखका दर्शन किया। श्रीजगन्नाथके दर्शन करके महाप्रभुमें शरीरमें स्वेद, कम्प और नेत्रोंसे अश्रु-जल निरन्तर बह रहा था, परन्तु दर्शनके लोभसे महाप्रभु उन भावोंको छिपा रहे थे, क्योंकि इनके द्वारा दर्शनमें बाधा होती है॥ 216-217॥

अनुभाष्य—आदिलीला 4/201-203 संख्या विशेषरूपसे विचारणीय है॥ 217॥

बारहवें अध्यायका अनुभाष्य समाप्त।

भोगके समय महाप्रभुका दर्शन-कीर्तन :-

मध्ये मध्ये भोग लागे, मध्ये दरशन।
भोगेर समये प्रभु करेन कीर्त्तन॥ 218॥

श्रीकृष्णदर्शन-सेवासुखमें महाप्रभुकी आत्मविस्मृति; अन्तमें घर लौट जाना :-

दर्शन-आनन्दे प्रभु सब पासरिला।
भक्तगण मध्याह्नेते प्रभुरे लञा गेला॥ 219॥

अनुवाद—श्रीजगन्नाथको बीच-बीचमें जब भोग लगता तब दर्शन नहीं होते और भोग लग जानेके बाद दर्शन होते। भोगके समय महाप्रभु कीर्तन करने लगते। श्रीजगन्नाथके दर्शनके आनन्दमें महाप्रभु सब भूल गये। मध्याह्नकालमें भक्तगण महाप्रभुको दोपहरके प्रसादके लिये ले गये॥ 218-219॥

प्रातःकाले रथयात्रा हबेक जानिया।
सेवक लागाय भोग द्विगुण करिया॥ 220॥

अनुवाद—श्रीजगन्नाथके सेवक जानते थे कि अगले दिन प्रातःकालमें श्रीजगन्नाथकी रथयात्रा होगी, इसलिये वे दो-गुणा भोग लगाने लगे॥ 220॥

गुण्डिचा-मार्जन-लीलाके श्रवणसे अपवित्र व्यक्तिके भी चित्तकी शुद्धि :-

गुण्डिचा-गृह-मार्जन संक्षेपे कहिल।
याहा देखि' शुनि' पापीर कृष्णभक्ति हैल॥ 221॥

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ 222॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते मध्यखण्डे गुण्डिचा-गृह-मार्जनं नाम द्वादश-परिच्छेदः।

अनुवाद—इस प्रकार मैंने गुण्डिचा-मन्दिर-मार्जन लीलाका संक्षेपमें वर्णन किया है, जिसे देखकर और सुनकर पापी व्यक्तियोंको भी श्रीकृष्णभक्तिकी प्राप्ति हुई है। श्रीरूप-रघुनाथ गोस्वामीके चरणकमलोंकी कृपाभिलाषा करते हुए कृष्णदास इस श्रीचैतन्यचरितामृतका वर्णन कर रहा है॥ 221-222॥

श्रीचैतन्यचरितामृतके मध्यखण्डमें गुण्डिचा-मन्दिर-मार्जन नामक बारहवें-अध्यायका अनुवाद समाप्त।

चित्र–13

तेरहवाँ अध्याय

कथासार—प्रातःकालमें स्नान करके महाप्रभुने श्रीजगन्नाथ, बलदेव और सुभद्राके पाण्डुविजयके साथ रथारोहणका दर्शन किया। उस समय राजा सोनेके झाड़ूके द्वारा मार्गकी सफाई कर रहे थे। लक्ष्मीजीकी अनुमति लेकर श्रीजगन्नाथ गुण्डिचा-मन्दिरकी ओर चल पड़े। वह मार्ग रेतीला और चौड़ा था, उसके दोनों ओर घर और उद्यान आदि थे। उस मार्गपर गौड़गण रथ खींचकर ले जाने लगे। महाप्रभुने अपने भक्तोंको सात मण्डलियोंमें विभक्त करके चौदह-मृदङ्गोंके साथ कीर्तन आरम्भ किया। कीर्तनके समयमें महाप्रभुके बहुत प्रकारके भाव उदित होने लगे। यहाँ तक कि, जैसे श्रीजगन्नाथ और महाप्रभु परस्पर भावोंके आदान-प्रदानका परिचय देने लगे। बलगण्डि तक रथ आनेपर वहाँ साधारण लोगोंके द्वारा एक भोग निवेदित होने लगा। उद्यानके निकटवर्ती उपवनमें महाप्रभुने नृत्यमें हुए परिश्रमको कुछ दूर किया।

—(अमृतप्रवाह भाष्य)

रथके आगे आश्चर्यपूर्ण नृत्य करनेवाले
गौरहरिकी जय :—

स जीयात् कृष्णचैतन्यः श्रीरथाग्रे ननर्त्त यः।
येनासीज्जगतां चित्रं जगन्नाथोऽपि विस्मितः॥ 1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीजगन्नाथके रथके आगे जिन्होंने नृत्य किया था, वे श्रीकृष्णचैतन्य जययुक्त हों; उनका वह नृत्य देखकर समस्त जगत् और स्वयं श्रीजगन्नाथ भी विस्मित हो गये थे॥ 1॥

अनुभाष्य—

यः (महाप्रभुः) रथाग्रे (श्रीजगन्नाथदेवस्य रथस्य सम्मुखे) ननर्त्त, येन (नर्त्तनमाधुर्येण) जगतां (लोकानां) चित्रं (कुतूहलम्) आसीत्, जगन्नाथः अपि विस्मितः (बभूव), सः कृष्णचैतन्यः जीयात् (विजयेत)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 1॥

जय जय श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥ 2॥

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभुकी जय हो, जय हो, श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो। श्रीअद्वैतचन्द्रकी जय हो और श्रीगौरभक्तोंकी जय हो॥ 2॥

श्रोताओंके चित्तका आकर्षण :—

जय श्रोतागण, शुन, करि' एक मन।
रथयात्राय नृत्य प्रभुर परम मोहन॥ 3॥

अनुवाद—श्रीचैतन्यचरितामृतके श्रोताओंकी जय हो! आप एकाग्रचित्त होकर महाप्रभुके रथयात्रामें किये गये परम मनोहर नृत्यके विषयमें श्रवण कीजिये॥ 3॥

पाहाण्डिके दर्शनके लिये प्रातः स्नानके बाद
भक्तोंसहित महाप्रभुका गमन :—

आर दिन महाप्रभु हञा सावधान।
रात्रे उठि' गण-सङ्गे कैल प्रातःस्नान॥ 4॥
पाण्डुविजय देखिबारे करिल गमन।
जगन्नाथ यात्रा कैल छाड़ि' सिंहासन॥ 5॥

अनुवाद—अगले दिन महाप्रभु और उनके परिकर रात समाप्त होनेसे पहले ही उठ गये और उन्होंने प्रातःकालका स्नान किया। श्रीजगन्नाथ अपने सिंहासनको छोड़कर जैसे यात्राके लिये रथपर आरूढ़ होते हैं, श्रीजगन्नाथकी उस पाण्डुविजयको देखनेके लिये महाप्रभु भक्तोंके साथ चल दिये॥ 4-5॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीजगन्नाथ, बलदेव और सुभद्रा,—इन तीन मूर्तियोंको रेशमकी डोरसे बाँधकर सेवकगण मन्दिरसे जिस प्रणालीके द्वारा सिंहद्वारके निकट रथपर चढ़ाते हैं, उसे 'पाण्डु-विजय' कहते हैं॥ 5॥

अनुभाष्य—*'पाण्डुविजय अथवा पाहाण्डि'*—सिंहासनसे रथारोहण॥ 5॥

पाहाण्डिके दर्शनमें सपरिकर राजाकी सहायता :—

आपनि प्रतारुद्र लञा पात्रगण।
महाप्रभुर गणे कराय विजय-दर्शन॥ 6॥

अनुवाद—राजा प्रतापरुद्रने स्वयं और उनके परिचारकोंने महाप्रभुके भक्तोंके पाण्डु-विजयके दर्शनकी व्यवस्था की॥ 6॥

श्रीनिताइ-श्रीअद्वैतादिके साथ महाप्रभुका पाहाण्डि-दर्शन :—

अद्वैत, निताइ आदि सङ्गे भक्तगण।
सुखे महाप्रभु देखे ईश्वर-गमन॥ 7॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्य, श्रीनित्यानन्द प्रभु आदि परिकरों और अन्य भक्तोंके साथ महाप्रभु आनन्दपूर्वक श्रीजगन्नाथकी यात्राका दर्शन करने लगे॥ 7॥

दयिताओंकी श्रीजगन्नाथदेवको रथपर चढ़ानेकी चेष्टा :—

बलिष्ठ 'दयिता' गण—येन मत्त हाती।
जगन्नाथ विजय कराय करि' हाताहाति॥ 8॥

कतक दयिता करे स्कन्ध आलम्बन।
कतक दयिता धरे श्रीपद्म-चरण॥ 9॥

कटितटे बद्ध, दृढ़, स्थूल पट्टडोरी।
दुइदिके दयितागण उठाया ताहा धरि'॥ 10॥

उच्च दृढ़ तुली सब पाति' स्थाने स्थाने।
एक तुली हैते त्वराय आर तुली आने॥ 11॥

अनुवाद—मत्त हाथीकी भाँति बलवान् श्रीजगन्नाथके 'दयिता' सेवक श्रीजगन्नाथको अपने हाथोंपर उठाकर सिंहासनसे रथपर ले जा रहे थे। कुछ दयिता श्रीजगन्नाथके कन्धेके नीचे हाथका सहारा दे रहे थे और कुछ दयिता श्रीजगन्नाथके श्रीचरणकमलोंको पकड़कर उन्हें उठा रहे थे। श्रीजगन्नाथकी कमरमें रेशमकी मजबूत मोटी रस्सी बँधी थी और उनके दोनों ओरसे दयिता लोग उस रस्सीको पकड़कर उन्हें उठाकर चल रहे थे। सिंहासनसे रथ तक आनेके मार्गमें स्थान-स्थान पर मजबूत, मोटे रुईके गद्दे बिछाये हुए थे। दयिता लोग श्रीजगन्नाथको एक गद्देसे उठाकर जल्दीसे आगेवाले गद्दे तक ले जा रहे थे॥ 8-11॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'दयितागण'*—'दयित'-शब्दसे 'दयिता' शब्द बना है। श्रीजगन्नाथके दयिता-नामसे एक श्रेणीके सेवक हैं। ये जातिसे भद्र नहीं हैं, किन्तु इन्होंने श्रीजगन्नाथकी सेवा प्राप्त करके भद्र-वर्णका सम्मान प्राप्त किया है। स्नानके दिनसे आरम्भ करके रथके लौट आने तक दयिताओंका श्रीजगन्नाथपर (अर्थात् उनकी सेवामें) विशेष अधिकार रहता है। दयिताओंको 'क्षेत्रमाहात्म्य'में 'शबर' कहा गया है। उनमें जो ब्राह्मण हैं, उन्हें 'दयितापति' कहा जाता है। ये श्रीजगन्नाथदेवको अनवसर कालमें मिठाईका भोग देते हैं और प्रतिदिन प्रातःकालमें बालभोगमें मिठाई अर्पण करते हैं। ये अनवसर-कालमें 'श्रीजगन्नाथदेवको ज्वर हुआ है' कहकर उन्हें औषधि और पाँचन (मीठे रसका पाना) अर्पित करते हैं। मूल बात यह है कि श्रीजगन्नाथकी प्रतिष्ठासे पहले शबरोंके पास श्रीनीलमाधव-मूर्ति थी, उसी श्रीनीलमाधव-मूर्तिका बादमें 'श्रीजगन्नाथमें' परिणत होनेके कारण शबर-दयिताओंका श्रीजगन्नाथकी अन्तरङ्ग सेवामें अधिकार उत्पन्न हुआ है।

'तूली'—कपड़ेमें भरी हुई रुई, रुई की छोटी-छोटी गद्दियाँ (तकियेके समान)॥ 8-11॥

अनुभाष्य—*'पाति'*—डालकर, बिछाकर; *'आर तुली'*—अन्य गद्दीपर॥ 11॥

श्रीजगन्नाथका गुरुत्व :—

प्रभु–पदाघाते तुली हय खण्ड खण्ड।
तुला सब उड़ि' याय, शब्द हय प्रचण्ड॥ 12॥

अनुवाद—दयितोंके द्वारा श्रीजगन्नाथको एक गद्देसे दूसरेपर ले जाते हुए श्रीजगन्नाथके चरणकमलोंकी चोटसे कुछ गद्दे फट जाते। उनके फटनेसे बहुत जोरसे शब्द होता और सारी रुई इधर–उधर उड़कर फैल जाती॥ 12॥

अनुभाष्य— *'प्रभु'*—श्रीजगन्नाथदेव॥ 12॥

स्वेच्छामय प्रभु श्रीजगन्नाथ :—

विश्वम्भर जगन्नाथे के चालाइते पारे?
आपन–इच्छाय चले करिते विहारे॥ 13॥

श्रीजगन्नाथका कातर भावसे आह्वान :—

महाप्रभु 'मणिमा' 'मणिमा' करे ध्वनि।
नाना–वाद्य–कोलाहले किछुइ ना शुनि॥ 14॥

अनुवाद—विश्वम्भर अर्थात् विश्वका पालन करनेवाले श्रीजगन्नाथको कौन उठा और चला सकता है? वे तो विहार करनेके लिये अपनी इच्छासे चल रहे थे। महाप्रभु 'मणिमा' 'मणिमा' कहकर श्रीजगन्नाथको सम्बोधित कर रहे थे, परन्तु अनेक वाद्योंके कोलाहलके कारण किसीको वह सुनायी नहीं दे रहा था॥ 13–14॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'मणिमा'*—उड़ीसाके लोग पूजनीय व्यक्ति और राजाको 'मणिमा' कहकर सम्बोधन करते हैं॥ 14॥

स्वयं राजाकी झाड़ूदारके रूपमें सेवा :—

तबे प्रतापरुद्र करे आपने सेवन।
सुवर्ण–मार्जनी लञा करे पथ सम्मार्जन॥ 15॥

चन्दन–जलेते करे पथ निषेचने।
तुच्छ सेवा करे बसि' राज–सिंहासने॥ 16॥

अनुवाद—तब श्रीजगन्नाथके आगे–आगे राजा प्रतापरुद्र स्वयं अपने हाथोंमें सोनेके हत्थेवाली झाड़ू लेकर मार्ग साफ करनेकी सेवा कर रहे थे और चन्दनसे युक्त जलका मार्गपर छिड़काव कर रहे थे। राजसिंहासनपर बैठनेवाले राजा प्रतापरुद्र श्रीजगन्नाथकी इस प्रकारकी तुच्छ सेवा कर रहे थे॥ 15–16॥

राजाकी दैन्यमयी सेवाको देखकर महाप्रभुकी कृपा :—

उत्तम हञा राजा करे तुच्छ सेवन।
अतएव जगन्नाथेर कृपार भाजन॥ 17॥

महाप्रभु सुख पाइल से–सेवा देखिते।
महाप्रभुर कृपा हैल से–सेवा हइते॥ 18॥

अनुवाद—उत्तम व्यक्ति होते हुए भी राजा प्रतापरुद्र तुच्छ सेवा कर रहे थे, इसलिये वे श्रीजगन्नाथकी कृपाके अधिकारी हुए। राजाकी उन सेवाओंको देखकर महाप्रभु बहुत प्रसन्न हुए और उन्हीं सेवाओंके कारण राजापर महाप्रभुकी कृपा हुई॥ 17–18॥

रथकी शोभा :—

रथेर साजनि देखि' लोके चमत्कार।
नव हेममय रथ—सुमेरु–आकार॥ 19॥

शत शत सु–चामर–दर्पणे उज्ज्वल।
उपरे पताका शोभे चाँदोया निर्मल॥ 20॥

घाघर, किङ्किणी बाजे, घण्टार क्वणित।
नाना चित्र–पट्टवस्त्रे रथ विभूषित॥ 21॥

अनुवाद—रथकी सजावटको देखकर लोग आश्चर्यचकित हो रहे थे। वह रथ ऐसा लग रहा था मानो नये सोनेका बना हो और आकारमें भी बहुत ऊँचा था, इसलिये वह सुमेरु पर्वतके समान प्रतीत हो रहा था। उस रथमें सैकड़ों सुन्दर चामर एवं उज्ज्वल दर्पण सुशोभित हो रहे थे। रथके ऊपर स्वच्छ चँदोवा और सुन्दर पताका शोभायमान हो रहे थे। रथ अनेक चित्रों और रङ्ग–बिरङ्गे रेशमी वस्त्रोंसे सजाया गया था। बहुतसे झाँझ (बड़ी करताल), घुँघरु और घण्टे बज रहे थे॥ 19–21॥

अनुभाष्य— *'साजनि'*—सजावट। *'घाघर'*—झाँझ; *'किङ्किणी'*—घुँघरु; *'क्वणित'*—ध्वनि॥ 19–21॥

श्रीजगन्नाथ, बलराम और सुभद्राका रथारोहण :—

लीलाय चड़िल ईश्वर रथेर उपर।
आर दुइ रथे चड़े सुभद्रा, हलधर॥ 22॥

अनुवाद—रथयात्राकी लीला करनेके लिये श्रीजगन्नाथ रथके ऊपर चढ़ गये। श्रीसुभद्रा और हलधर श्रीबलराम अन्य दो रथोंपर चढ़े॥ 22॥

अनवसरकालके पन्द्रह दिन लक्ष्मीके साथ श्रीजगन्नाथका विलास :—

पञ्चदश दिन ईश्वर महालक्ष्मी लञा।
ताँर सङ्गे क्रीड़ा कैल निभृते बसिया॥ 23॥

विलासके बाद लक्ष्मीकी सहमतिसे रथारोहण :—

ताँहार सम्मति लञा भक्ते सुख दिते।
रथे चड़ि' बाहिर हैल विहार करिते॥ 24॥

अनुवाद—स्नानयात्राके बाद पन्द्रह दिनों तक श्रीजगन्नाथने महालक्ष्मीके साथ एकान्तमें रहकर लीला विहार किया। उसके बाद महालक्ष्मीकी अनुमति लेकर श्रीजगन्नाथ भक्तोंको सुख प्रदान करनेके उद्देश्यसे रथपर चढ़कर विहार करनेके लिये बाहर आ गये॥ 23–24॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीजगन्नाथदेव, स्नानके बाद जिन पन्द्रह दिनों तक एकान्तमें रहते हैं, उस समयको 'अनवसर' अथवा निभृत-काल कहते हैं। उसके बाद वे लक्ष्मीकी अनुमति लेकर रथमें गमन करते हैं॥ 23॥

रथके जानेके मार्गका वर्णन :—

सूक्ष्म श्वेतबालु पथे पुलिनेर सम।
दुइदिके टोटा, सब—येन वृन्दावन॥ 25॥

अनुवाद—रथके मार्गपर यमुना तटके समान सूक्ष्म श्वेत बालू फैली हुई थी और मार्गके दोनों ओर सुन्दर उद्यान थे—इन सबको देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो यह वृन्दावन है॥ 25॥

अनुभाष्य—अनवसर-कालमें श्रीजगन्नाथदेवने पतिकी मर्यादाका पालन करते हुए पन्द्रह दिनों तक निर्जनमें महालक्ष्मीके साथ बिना किसी बाधाके क्रीड़ा की थी। अब लक्ष्मीकी सम्मतिसे अनुराग मार्गके श्रीकृष्णमें ऐकान्तिक-निष्ठ भक्तोंको आनन्द देनेके लिये रथपर चढ़कर स्वच्छन्द विहारके लिये बाहर निकले। यह कहना अधिक होगा कि स्वकीयाभाव यहाँ शिथिल हो जाता है। रथके जानेका मार्ग यमुनाके तटके समान सूक्ष्म सफेद बालूसे ढ़का हुआ था। मार्ग दोनों ओरसे वृन्दावनके समान उपवनोंसे घिरा था॥ 23–25॥

रथे चड़ि' जगन्नाथ करिला गमन।
दुइपार्श्वे देखि' चले आनन्दित-मन॥ 26॥

अनुवाद—रथपर चढ़कर श्रीजगन्नाथ चलने लगे और दोनों ओरके दृश्यको देखकर उनका मन आनन्दित हो रहा था॥ 26॥

गौड़गणोंके द्वारा रथकी रस्सीको खींचना, स्वेच्छामय भगवान्‌की इच्छाके अनुसार रथका चलना :—

'गौड़' सब रथ टाने करिया आनन्द।
क्षणे शीघ्र चले रथ, क्षणे चले मन्द॥ 27॥

क्षणे स्थिर हञा रहे, टानिलेह ना चले।
ईश्वर-इच्छाय चले, ना चले कारो बले॥ 28॥

अनुवाद—सब 'गौड़' बड़े आनन्दसे रथको खींच रहे थे। कभी रथ तेजीसे चलता, तो कभी धीरे चलता और कभी स्थिर होकर एक स्थानपर खड़ा हो जाता और पूरा बल लगाकर खींचनेपर भी आगे नहीं बढ़ता। श्रीजगन्नाथकी इच्छासे ही रथ चलता है, किसीके बलसे नहीं॥ 27–28॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'गौड़'*—उड़ीसावासी ग्वालोंको 'गौड़' कहते हैं॥ 27॥

महाप्रभुका भक्तोंको अपने हाथोंसे माला-चन्दन देना :—

तबे महाप्रभु सब लञा भक्तगण।
स्वहस्ते पराइल सबे माल्य-चन्दन॥ 29॥

सर्वप्रथम गुरुवर्गोंका सम्मान :—

परमानन्द पुरी, आर भारती ब्रह्मानन्द।
श्रीहस्ते चन्दन पाञा बाड़िल आनन्द॥ 30॥

अद्वैत-आचार्य, आर प्रभु-नित्यानन्द।
श्रीहस्त-स्पर्शे दुँहार हइल आनन्द॥ 31॥

प्रधान कीर्तनीया श्रीस्वरूप और श्रीवासका समादर :—

कीर्त्तनीयागणे दिल माल्य-चन्दन।
स्वरूप, श्रीवास,—याँहा मुख्य दुइजन॥ 32॥

अनुवाद—जब रथ रुका हुआ था, तब महाप्रभुने सभी भक्तोंको एकत्रित करके अपने श्रीहस्तसे माला पहनायी और उन्हें चन्दन लगाया। महाप्रभुके श्रीहस्तसे माला-चन्दन प्राप्त करके श्रीपरमानन्द पुरी और श्रीब्रह्मानन्द भारतीका आनन्द बहुत अधिक बढ़ गया। श्रीअद्वैताचार्य और श्रीनित्यानन्द प्रभु भी महाप्रभुके श्रीहस्तका स्पर्श पाकर बहुत आनन्दित हुए। महाप्रभुने सभी कीर्तन करनेवालोंको भी माला-चन्दन प्रदान किये। उनमें श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीवास पण्डित मुख्य कीर्तनीया थे॥ 29–32॥

मृदङ्गवादक और गायकोंकी चार कीर्तन-मण्डलियाँ :—

चारि सम्प्रदाये हैल चब्बिश गायन।
दुइ दुइ मृदङ्ग करि' हैल अष्टजन॥ 33॥

महाप्रभुके द्वारा कीर्तन-मण्डलीका विभाग :—

तबे महाप्रभु मने विचार करिया।
चारि सम्प्रदाय दिल गायन बाँटिया॥ 34॥

अनुवाद—कीर्तन करनेवाली चार मण्डलियोंमें चौबीस गायक थे। प्रत्येक मण्डलीमें दो-दो मृदङ्ग बजानेवाले थे अर्थात् आठ लोग थे। तब महाप्रभुने मनमें विचार करके चौबीस गायकोंको चार मण्डलियोंमें बाँट दिया। इस प्रकार प्रत्येक मण्डलीमें छह-छह गायक और दो-दो मृदङ्ग बजानेवाले थे॥ 33–34॥

चार मण्डलियोंमें चार नर्तक :—

नित्यानन्द, अद्वैत, हरिदास, वक्रेश्वरे।
चारिजने आज्ञा दिल नृत्य करिबारे॥ 35॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैताचार्य, श्रीहरिदास ठाकुर और श्रीवक्रेश्वर पण्डितको एक-एक मण्डलीमें नृत्य करनेका आदेश दिया॥ 35॥

प्रथम मण्डलीमें श्रीस्वरूपही मूल गायक :—

प्रथम-सम्प्रदाये कैल स्वरूप—प्रधान।
आर पञ्चजन दिल ताँर पालिगान॥ 36॥

श्रीस्वरूपके साथ पाँच भक्त उनके पीछे गानेवाले :—

दामोदर, नारायण, दत्त गोविन्द।
राघव पण्डित, आर श्रीगोविन्दानन्द॥ 37॥

अनुवाद—प्रथम मण्डलीमें श्रीस्वरूप दामोदरको प्रधान कीर्तनीया बनाया और उन्हें पाँच लोग—श्रीदामोदर पण्डित, श्रीनारायण, श्रीगोविन्द दत्त, श्रीराघव पण्डित और श्रीगोविन्दानन्द, उनके पीछे गानेके लिये दिये॥ 36–37॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'पालिगान'*—दोहराना॥ 36॥

और श्रीअद्वैत ही नर्तक; दूसरी
मण्डलीमें श्रीवास मूल गायक :—

अद्वैतेरे नृत्य करिबारे आज्ञा दिल।
श्रीवास—प्रधान आर सम्प्रदाय कैल॥ 38॥

पाँच लोग पीछे गानेवाले, श्रीनिताइ-नर्तक :—

गङ्गादास, हरिदास, श्रीमान्, शुभानन्द।
श्रीराम पण्डित, ताँहा नाचे नित्यानन्द॥ 39॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीअद्वैताचार्यको श्रीस्वरूप दामोदरकी मण्डलीमें नृत्य करनेका आदेश दिया और श्रीवास पण्डितको दूसरी मण्डलीका प्रधान कीर्तनीया नियुक्त किया। दूसरी मण्डलीमें श्रीवास पण्डितके पीछे गानेवाले श्रीगङ्गादास, श्रीहरिदास, श्रीमान्, श्रीशुभानन्द और श्रीराम पण्डित थे। उस मण्डलीमें नृत्य करनेवाले श्रीनित्यानन्द प्रभु थे॥ 38–39॥

तीसरी मण्डलीमें श्रीमुकुन्द मूल गायक, पाँच लोग पीछे गानेवाले, श्रीहरिदास ठाकुर ही नर्तक :—

वासुदेव, गोपीनाथ, मुरारि याँहा गाय।
मुकुन्द—प्रधान कैल आर सम्प्रदाय॥ 40॥

श्रीकान्त, वल्लभसेन आर दुइ जन।
हरिदास ठाकुर ताँहा करेन नर्त्तन॥ 41॥

अनुवाद—तीसरी मण्डलीमें श्रीमुकुन्दको प्रधान कीर्तनीया नियुक्त किया और उनके सहायक गानेवाले श्रीवासुदेव, श्रीगोपीनाथ, श्रीमुरारि, श्रीकान्त तथा श्रीवल्लभसेन थे। इस मण्डलीमें श्रीहरिदास ठाकुर नर्तक थे॥ 40-41॥

चौथी मण्डलीमें श्रीगोविन्द घोष ही मूल गायक, पाँच लोग पीछे गानेवाले, श्रीवक्रेश्वर नर्तक :—

गोविन्द घोष—प्रधान कैल आर सम्प्रदाय।
हरिदास, विष्णुदास, राघव, याँहा गाय॥ 42॥

माधव, वासुदेव-घोष,—दुइ सहोदर।
नृत्य करेन ताँहा पण्डित-वक्रेश्वर॥ 43॥

अनुवाद—चौथी मण्डलीमें श्रीगोविन्दघोषको प्रधान कीर्तनीया बनाया और इसमें श्रीहरिदास, श्रीविष्णुदास, श्रीराघव, तथा दो भाई—श्रीमाधव और श्रीवासुदेव घोष, कुल मिलाकर पाँच सहायक गायक थे और श्रीवक्रेश्वर पण्डित नर्तक थे॥ 42-43॥

रथके एक ओर कुलीनग्रामवासियोंका कीर्तन-दल :—

कुलीन-ग्रामेर एक कीर्त्तनीया-समाज।
ताँहा नृत्य करेन रामानन्द, सत्यराज॥ 44॥

अनुवाद—कुलीन-ग्रामसे भी एक कीर्तनमण्डली आयी थी और महाप्रभुने उसमें श्रीरामानन्द वसु और श्रीसत्यराज खाँको नृत्य करनेके लिये नियुक्त किया॥ 44॥

दूसरी ओर श्रीअद्वैताचार्यके अनुगतजन :—

शान्तिपुरेर आचार्येर एक सम्प्रदाय।
अच्युतानन्द नाचे तथा, आर सब गाय॥ 45॥

अनुवाद—श्रीअद्वैताचार्यकी शान्तिपुरसे एक मण्डली आयी थी जिसमें श्रीअच्युतानन्द नृत्य कर रहे थे और अन्य सब गायक थे॥ 45॥

रथके पीछे खण्डवासियोंके कीर्तनदलमें श्रीनरहरि और श्रीरघुनन्दन ही नर्तक :—

खण्डेर सम्प्रदाय करे अन्यत्र कीर्त्तन।
नरहरि नाचे ताँहा श्रीरघुनन्दन॥ 46॥

अनुवाद—श्रीखण्डसे भी एक मण्डली आयी थी जो रथके पीछे अन्य स्थानपर कीर्तन कर रही थी। उसमें श्रीनरहरि और श्रीरघुनन्दन नृत्य कर रहे थे॥ 46॥

सात सम्प्रदायोंके अवस्थानकी पुनः आलोचना :—

जगन्नाथेर आगे चारिसम्प्रदाय गाय।
दुइ पाशे दुइ, पाछे एक सम्प्रदाय॥ 47॥

सात सम्प्रदाये बाजे चौद्द मादल।
यार ध्वनि शुनि' हैल वैष्णव पागल॥ 48॥

अनुवाद—श्रीजगन्नाथके आगे चार मण्डलियोंमें गान हो रहा था। रथके दोनों ओर एक-एक मण्डली और पीछे एक मण्डली थी। सात मण्डलियोंमें कुल चौदह मृदङ्ग बज रहे थे जिनकी ध्वनिको सुनकर वैष्णवगण आनन्दसे पागल हो रहे थे॥ 47-48॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'सात सम्प्रदाय'*—पूर्वोक्त चारों मण्डलियोंके साथ कुलीनग्रामकी मण्डली, शान्तिपुरकी मण्डली और श्रीखण्डकी मण्डली मिलाकर कुल सात मण्डलियाँ हुईं एवं दो-दो मृदङ्गके हिसाबसे चौदह मृदङ्गोंके साथ कीर्तन हुआ॥ 48॥

अनुभाष्य—*'गायन'*—गायक; सात-मण्डिलयोंका क्रमपूर्वक विवरण इस प्रकार है—

श्रीजगन्नाथके रथके आगे—(क) पहली मण्डलीके प्रधान (मूल) गायक—श्रीदामोदर स्वरूप; गायक (पीछे दोहरानेवाले)—1) श्रीदामोदर पण्डित, 2) श्रीनारायण, 3) श्रीगोविन्द दत्त, 4) श्रीराघव पण्डित, 5) श्रीगोविन्दानन्द;

नर्तक—श्रीअद्वैताचार्य। (ख) दूसरी मण्डलीके मूल गायक—श्रीवास; पीछे दोहरानेवाले—1) श्रीगङ्गादास, 2) (बड़े?) श्रीहरिदास, 3) श्रीमान्, 4) श्रीशुभानन्द, 5) श्रीराम; नर्तक—श्रीनित्यानन्द प्रभु। (ग) तीसरी मण्डलीके मूल गायक—श्रीमुकुन्द; पीछे दोहरानेवाले—1) श्रीवासुदेव दत्त, 2) श्रीगोपीनाथ, 3) श्रीमुरारि, 4) श्रीकान्त, 5) श्रीवल्लभसेन; नर्तक—श्रीहरिदास ठाकुर। (घ) चौथी मण्डलीके मूल गायक—श्रीगोविन्द; पीछे दोहरानेवाले—1) (छोटा?) श्रीहरिदास, 2) श्रीविष्णुदास, 3) श्रीराघव, 4) श्रीमाधव, 5) श्रीवासुघोष; नर्तक—श्रीवक्रेश्वर। रथके बाँयी ओर (ङ) पाँचवीं मण्डलीके गायक—कुलीन ग्रामवासिगण; नर्तक—श्रीरामानन्द और श्रीसत्यराज। रथके दाँयी ओर—(च) छठी मण्डलीके गायक—श्रीअद्वैताचार्यके अनुगतजन; नर्तक—श्रीअच्युतानन्द। रथके पीछे—(छ) सातवीं मण्डलीके गायक—खण्डवासिगण; नर्तक—श्रीनरहरि और श्रीरघुनन्दन॥ 33-48॥

महासङ्कीर्तन-वर्णन :—

वैष्णवेर मेघ घटाय हइल बादल।
कीर्त्तनानन्दे सब वर्षे नेत्र-जल॥ 49॥

त्रिभुवन भरि' उठे कीर्त्तनेर ध्वनि।
अन्य वाद्यादिर ध्वनि किछुइ ना शुनि॥ 50॥

अनुवाद—सभी वैष्णव मेघकी घटाके समान एकत्रित होकर बादलकी भाँति छा गये और कीर्तनके आनन्दमें उनके नेत्रोंसे अश्रुओंकी वर्षा होने लगी। कीर्तनकी ध्वनिसे समस्त त्रिभुवन गूँजने लगा जिससे अन्य वाद्यों आदिकी ध्वनि कुछ भी सुनायी नहीं दे रही थी॥ 49-50॥

महाप्रभुका आचरण :—

सात ठाञि बुले प्रभु 'हरि' 'हरि' बलि'।
'जय जगन्नाथ', बलेन हस्तयुग तुलि'॥ 51॥

अनुवाद—महाप्रभु अपने दोनों हाथोंको उठाकर 'हरि' 'हरि', 'जय जगन्नाथ' बोलते हुए सातों मण्डलियोंमें भ्रमण कर रहे थे॥ 51॥

महाप्रभुका सात रूपोंमें प्रकाश :—

आर एक शक्ति प्रभु करिल प्रकाश।
एककाले सात ठाञि करिल विलास॥ 52॥

सबे कहे,—'प्रभु आछेन मोर सम्प्रदाय।
अन्य ठाञि नाहि या'न आमारे दयाय॥' 53॥

अनुवाद—महाप्रभुने एक ही समयमें सातों मण्डलियोंमें प्रकट होकर विलास करते हुए एक और शक्तिका प्रकाश किया। सब कहने लगे,—'महाप्रभु केवल हमारी मण्डलीमें हैं और अन्य मण्डलीमें नहीं जा रहे हैं। वे हमारे ऊपर ही कृपा वर्षण कर रहे हैं॥' 52-53॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिस प्रकार रासमें और महिषियोंके साथ विलासमें श्रीकृष्ण एक साथ 'अनेक' विग्रह होकर 'प्रकाशित' हुए थे, श्रीकृष्णचैतन्यने भी उसी प्रकार उसी शक्तिको प्रकाशित करके प्रत्येक मण्डलीमें स्वयंको 'प्रकाशित' किया था। प्रत्येक मण्डलीके लोग यह समझ रहे थे कि 'महाप्रभु हमारी मण्डलीमें ही हैं, दूसरी मण्डलीमें नहीं॥' 52॥

महाप्रभुकी शक्ति, शुद्ध भक्तोंके ही दृष्टिगोचर :—

केह लक्षिते नारे प्रभुर अचिन्त्यशक्ति।
अन्तरङ्ग-भक्त जाने, याँर शुद्धभक्ति॥ 54॥

अनुवाद—महाप्रभुकी अचिन्त्यशक्तिको कोई नहीं देख पाया। एकमात्र अन्तरङ्ग भक्त जिनमें शुद्धभक्ति है, वे ही इसे जान सके॥ 54॥

कीर्तन-दर्शनसे श्रीजगन्नाथको आनन्द :—

कीर्त्तन देखिया जगन्नाथ हरषित।
सङ्कीर्त्तन देखे रथ करिया स्थगित॥ 55॥

अनुवाद—कीर्तनको देखकर श्रीजगन्नाथ बहुत प्रसन्न हुए और वे अपने रथको स्थगित करके सङ्कीर्तन देखने लगे॥ 55॥

यह देखकर राजाको आश्चर्य :—

प्रतापरुद्रेर हैल परम विस्मय।
देखिते शरीर याँर हैल प्रेममय॥ 56॥

श्रीकाशीमिश्रके समक्ष उस रहस्यका प्रकाश :—

काशीमिश्रे कहे राजा प्रभुर महिमा।
काशीमिश्र कहे,—'तोमार भाग्येर नाहि सीमा॥' 57॥

अनुवाद—[महाप्रभुको सातों मण्डलियोंमें एक साथ देखकर] राजा प्रतापरुद्रको बहुत आश्चर्य हुआ और उनका शरीर श्रीकृष्ण-प्रेममय हो गया। राजा प्रतापरुद्रने श्रीकाशीमिश्रको महाप्रभुके एक साथ सात रूप धारण करनेकी महिमा बतलायी। श्रीकाशीमिश्रने कहा,—'हे राजन्! आपके सौभाग्यकी तो सीमा नहीं है॥' 56-57॥

श्रीसार्वभौमके साथ राजाका मूक सङ्केत :—

सार्वभौम-सङ्गे राजा करे ठाराठारि।
आर केह नाहि जाने चैतन्येर चुरि॥ 58॥

कृपासे ही उनकी उपलब्धि, तर्कपन्थासे
वे ब्रह्माके लिये भी अज्ञेय :—

याँरे ताँर कृपा, सेइ जानिबारे पारे।
कृपा बिना ब्रह्मादिक जानिबारे नारे॥ 59॥

अनुवाद—राजा प्रतापरुद्र श्रीसार्वभौमको महाप्रभुकी इस लीलाको इङ्गित करने लगे। इन दोनोंके अतिरिक्त और कोई भी महाप्रभुकी इस लीलाको न जान सका। जिसपर महाप्रभुकी कृपा है, वही उन्हें जान सकता है। महाप्रभुकी कृपाके बिना ब्रह्मादि भी उन्हें नहीं जान सकते॥ 58-59॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 6/82, 84, 86, 87, 89-91 संख्या देखें॥ 59॥

राजाकी दीन-सेवाके दर्शनसे महाप्रभुको सन्तोष :—

राजार तुच्छ सेवा देखि' प्रभुर तुष्ट मन।
सेइ त' प्रसादे पाइल 'रहस्य-दर्शन'॥ 60॥

अनुवाद—राजा प्रतापरुद्रके द्वारा की गयी तुच्छ सेवाको देखकर महाप्रभु प्रसन्न हो गये थे, इसलिये उनकी कृपासे ही राजा उनके रहस्योंका दर्शन कर सके॥ 60॥

अनुभाष्य— *'रहस्य-दर्शन'*—श्रीजगन्नाथदेवने महाप्रभुके नृत्य-गीतादिके दर्शनसे विस्मित होकर अपने रथको स्थगित कर दिया। महाप्रभुने भी उनके सामने नृत्यादिके द्वारा श्रीजगन्नाथको आनन्द प्रदान किया। 'द्रष्टा' (श्रीजगन्नाथ) और 'दृश्य' (महाप्रभु)के यहाँ एक वस्तु होनेपर भी लीलाकी विचित्रताके कारण इस अद्भुत रहस्यका प्रकाश हुआ और महाप्रभुकी कृपासे राजा इसे समझ सके। सात-मण्डलियोंमें महाप्रभुकी एक साथ उपस्थिति भी जो रहस्योंमें एक और है, राजाने उसकी भी उपलब्धि की॥ 60॥

राजाके प्रति सामनेसे वैराग्य, पीछेसे कृपा :—

साक्षाते ना देय देखा, परोक्षे त' दया।
के बुझिते पारे चैतन्यचन्द्रेर माया॥ 61॥

अनुवाद—महाप्रभुने राजाको साक्षात् दर्शन नहीं दिये, परन्तु परोक्ष रूपमें उनपर कृपा की। श्रीचैतन्यचन्द्रकी योगमायाको कौन जान सकता है॥ 61॥

अनुभाष्य—प्रत्यक्षरूपमें आचार्यकी लीलाका अभिनय करनेवाले महाप्रभुकी 'राजा'-नामके प्रति बहुत घृणा थी, किन्तु परोक्षरूपसे उनके प्रति इतनी कृपा थी कि, राजा महाप्रभुकी कृपासे उनकी गूढ़लीलाके रहस्य तकको भी भेद करनेमें समर्थ हुए। वास्तवमें महाप्रभुकी यह कृपा और वञ्चना-लीला अर्थात् एक ही साथ उनकी ईश्वरकी और जीवके जैसी लीलाके तात्पर्यको उनके ऐकान्तिक भक्तोंके अतिरिक्त और कोई भी समझनेमें समर्थ नहीं है॥ 61॥

श्रीभट्ट और श्रीमिश्रको यह देखकर आश्चर्य :—

सार्वभौम, काशीमिश्र,—दुइ महाशय।
राजारे प्रसाद देखि' हइला विस्मय॥ 62॥

अनुवाद—राजापर महाप्रभुकी कृपाको देखकर श्रीसार्वभौम और श्रीकाशीमिश्र—ये दोनों महाशय भी आश्चर्यचकित हो गये॥ 62॥

स्वयं मूलगायक होकर सभी दलोंको नृत्यकी प्रेरणा :—

एइमत लीला प्रभु कैल कतक्षण।
आपने गायेन, नाचा'न निज-भक्तगण॥ 63॥

कीर्तनके बीचमें ऐश्वर्य-प्रकाश :—

कभु एक मूर्त्ति, कभु हन बहु-मूर्त्ति।
कार्य-अनुरूप प्रभु प्रकाशये शक्ति॥ 64॥

अधीनस्थ लीलाशक्तिके द्वारा अपने प्रभुकी सेवा :—

लीलावेशे प्रभुर नाहि निजानुसन्धान।
इच्छा जानि' 'लीला शक्ति' करे समाधान॥ 65॥

अनुवाद—महाप्रभुने कुछ समय तक इस प्रकार लीला की। वे स्वयं गान करके अपने भक्तोंको नचाने लगे। कभी महाप्रभु एक मूर्ति धारण करते, तो कभी अनेक, यह उनकी लीलाशक्तिके द्वारा ही सम्पादित हो रहा था। लीलाके आवेशमें महाप्रभुको अपना भी अनुसन्धान नहीं था अर्थात् अपनेको भूल गये, इसलिये महाप्रभुकी इच्छा जानकर उनकी 'लीलाशक्ति'ने ही सभी लीलाओंका समाधान किया॥ 63-65॥

अनुभाष्य—सात कीर्तन-मण्डलियोंमें स्वतन्त्र निरङ्कुश-इच्छामय महाप्रभु अपनी इच्छानुसार कभी एक मूर्ति, कभी अनेक मूर्तियाँ प्रकाश करके स्वयं नाचते, गाते एवं भक्तोंको नचाकर आनन्द आस्वादन करनेमें इतने मत्त थे कि उन्हें अपने स्वरूपके विषयमें अनुसन्धान अथवा लक्ष्य करनेका बिल्कुल भी अवसर नहीं मिला—मानो वे पूर्ण रूपसे आत्मविस्मृत हो गये थे। (उनकी अप्राकृत चिन्मय अनन्तलीलाके वैचित्र्यका अर्थात् चिद्विलासका, यह भी एक कार्य है); किन्तु इच्छामात्रसे ही स्वरूपशक्तिरूपिणी इच्छा-शक्तिने महाप्रभुके प्रकाश-विग्रहोंको प्रकटित करके अपने प्रभुकी सेवा की॥ 65॥

द्वापरमें रासलीलामें और महिषी-विवाहमें
भी इसी प्रकारका प्रकाश :—

पूर्वे यैछे रासादि-लीला कैल वृन्दावने।
अलौकिक लीला गौर कैल क्षणे क्षणे॥ 66॥

"अप्राकृत वस्तु प्राकृत इन्द्रियोंके गोचर नहीं" :—

भक्तगण अनुभवे, नाहि जाने आन।
श्रीभागवत-शास्त्र ताहाते प्रमाण॥ 67॥

अनुवाद—पूर्वकाल अर्थात् द्वापरयुगमें जैसे वृन्दावनमें श्रीकृष्णने रासादि लीलाएँ की थीं, उसी प्रकार अब श्रीगौरहरिने क्षण-क्षणमें अलौकिक लीला की। श्रीभागवत-शास्त्र ही इस बातका प्रमाण है। इन अलौकिक लीलाओंको भक्तोंके अतिरिक्त अन्य कोई भी अनुभव नहीं कर सकता॥ 66-67॥

अनुभाष्य—श्रीकृष्णलीलामें जिस प्रकार रासस्थलीमें श्रीकृष्णका बहुत्व और महिषियोंके साथ विवाहके समय जिस प्रकार एक ही मूर्ति अनेक होकर प्रकट हुई थी, उसी प्रकार श्रीगौर-लीलामें सात भिन्न-भिन्न कीर्तन-मण्डलियोंके भक्तोंके निकट और प्रतापरुद्र आदि दर्शकोंके नेत्रोंके सामने भगवान् श्रीगौरसुन्दर अनेक मूर्तियोंमें प्रकट हुए। भक्तोंके अतिरिक्त उनकी लोकातीत लीला-दर्शनमें अन्योंका अधिकार नहीं होता। रासमें और महिषियोंके साथ विवाहमें श्रीकृष्णका एक साथ अनेक मूर्तियोंमें प्रकट होनेका प्रमाण श्रीमद्भागवतमें है॥ 67॥

महाप्रभुके नृत्यसे लोगोंका उद्धार :—

एइमत महाप्रभु करे नृत्य-रङ्गे।
भासाइल सब लोक प्रेमेर तरङ्गे॥ 68॥

अनुवाद—इस प्रकार महाप्रभुने आनन्दपूर्वक नृत्य किया और सभी लोगोंको प्रेमकी तरङ्गोंमें डुबो दिया॥ 68॥

महाप्रभुके निजभक्तों सहित नृत्य और कीर्तनके बीचमें
श्रीजगन्नाथका रथपर चढ़ना और गुण्डिचा गमन :—

एइमत हैल कृष्णेर रथे आरोहण।
तार आगे प्रभु नाचाइल भक्तगण॥ 69॥

आगे शुन जगन्नाथेर गुण्डिचा-गमन।
तार आगे प्रभु यैछे करिला नर्त्तन॥ 70॥

एइमत कीर्त्तन प्रभु करिल कतक्षण।
आपन-उद्योगे नाचाइल भक्तगण॥ 71॥

अनुवाद—इस प्रकार श्रीजगन्नाथके द्वारा रथपर चढ़े और उनके आगे महाप्रभुने भक्तोंको नृत्य करवाया। अब श्रीजगन्नाथके गुण्डिचा मन्दिरकी ओर जानेका वृत्तान्त सुनो जब महाप्रभुने रथके आगे नृत्य किया था। इस प्रकार महाप्रभुने कुछ समय तक कीर्तन किया और अपने प्रयाससे सभी भक्तोंको नृत्य करनेके लिये प्रेरित किया॥ 69–71॥

महाप्रभुकी नृत्य करनेकी इच्छासे नौ भक्तोंके साथ स्वरूपके कीर्तनदलका गठन :—

आपनि नाचिते यबे प्रभुर मन हैल।
सात सम्प्रदाय तबे एकत्र करिल॥ 72॥

अनुवाद—जब महाप्रभुकी स्वयं नृत्य करनेकी इच्छा हुई, तब उन्होंने सातों मण्डलियोंको एकत्र कर लिया॥ 72॥

श्रीवास, रामाइ, रघु, गोविन्द, मुकुन्द।
हरिदास, गोविन्दानन्द, माधव, गोविन्द॥ 73॥

उद्दण्ड-नृत्ये प्रभुर यबे हैल मन।
स्वरूपेर सङ्गे दिल एइ नव जन॥ 74॥

अनुवाद—जब महाप्रभुकी उद्दण्ड (बहुत उछल-कूदकर) नृत्य करनेकी इच्छा हुई, तब उन्होंने श्रीस्वरूप दामोदरके साथ गान करनेके लिये श्रीवास, श्रीरामाइ, श्रीरघु, श्रीगोविन्द, श्रीमुकुन्द, श्रीहरिदास, श्रीगोविन्दानन्द, श्रीमाधव तथा श्रीगोविन्द—इन नौ भक्तोंको दे दिया॥ 73–74॥

अन्यान्य भक्तोंके द्वारा चारों ओर कीर्तन :—

एइ दश जन प्रभुर सङ्गे गाय, धाय।
आर सब सम्प्रदाय चारिदिके गाय॥ 75॥

अनुवाद—श्रीस्वरूप दामोदरादि ये दस भक्त महाप्रभुके नृत्यमें गान करते हुए उनके साथ भाग भी रहे थे। चारों ओरसे सभी मण्डलियोंमें अन्यान्य भक्त भी गान कर रहे थे॥ 75॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीजगन्नाथकी स्तुति :—

दण्डवत् करि, प्रभु युड़ि' दुइ हात।
ऊर्ध्वमुखे स्तुति करे देखि' जगन्नाथ॥ 76॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीजगन्नाथको दण्डवत् प्रणाम किया और फिर उठकर अपने दोनों हाथोंको जोड़कर उनको देखते हुए उनकी स्तुति करने लगे॥ 76॥

विष्णुपुराण (1/19/65)—

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः॥ 77॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 77॥

अमृतप्रवाह भाष्य—ब्रह्मण्यदेव, गो-ब्राह्मणके हितस्वरूप, जगत्के मङ्गलस्वरूप, श्रीकृष्णस्वरूप और श्रीगोविन्दस्वरूप, उन परमतत्त्वको मैं प्रणाम करता हूँ॥ 77॥

अनुभाष्य—

गोब्राह्मणहिताय (गवादिसर्वमङ्गलाकरवस्तूनां शुभानुध्यायिने) ब्रह्मण्यदेवाय (ब्रह्मण्यानाम् उपास्याय) जगद्धिताय (लोककल्याणनिवासाय), गोविन्दाय कृष्णाय नमः नमः नमः (असकृत् प्रणतिः)।

श्लोक-भावानुवाद—ब्राह्मणोंके उपास्य, गो-ब्राह्मण अर्थात् गौ आदि सर्वमङ्गलकारी वस्तुओंके हितस्वरूप, जगत्के मङ्गलस्वरूप, श्रीकृष्णस्वरूप और श्रीगोविन्दस्वरूप, उन परमतत्त्वको मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ॥ ॥ 77॥

श्रीकुलशेखर-कृत मुकुन्दमाला-स्तोत्र—

जयति जयति देवो देवकीनन्दनोऽसौ
जयति जयति कृष्णो वृष्णिवंशप्रदीपः।
जयति जयति मेघश्यामलः कोमलाङ्गो
जयति जयति पृथ्वीभारनाशो मुकुन्दः॥ 78॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 78 ॥

अमृतप्रवाह भाष्य—ये देवकीनन्दन-देवता जययुक्त हों; ये वृष्णिवंश-प्रदीप श्रीकृष्ण जययुक्त हों; ये नवजलधर-श्याम कोमलाङ्ग श्रीकृष्ण जययुक्त हों; पृथ्वीके भारनाशी मुकुन्द जययुक्त हों॥ 78 ॥

अनुभाष्य—

असौ देवकीनन्दनः (इति प्रसिद्धः) देवः जयति जयति (सर्वोत्तमत्वेन वर्त्तते); वृष्णिवंशप्रदीपः (वृष्णीनां यदुनां वंशं कुलं प्रदीपयति यः सः वृष्णिकुलोज्ज्वलकारी) कृष्णः जयति जयति; मेघ-श्यामलः (नवघनश्यामलः इव वर्णः यस्य सः इन्द्रनीलघनश्यामः) कोमलाङ्गः (कोमलं—"यत्ते सुजात चरणाम्बुरुहम्" इत्यादि-श्लोकोदितं सुकोमलम् अङ्गं यस्य सः कृष्णः) जयति जयति; पृथ्वीभारनाशः (कृष्णाभक्तार्द्दितधराभारक्लेश-नाशन-वीरः) मुकुन्दः (मुक्तिप्रदो हरिः) जयति जयति।

श्लोक-भावानुवाद—ये देवकीनन्दन (इस नामसे प्रसिद्ध) देवता जययुक्त हों; ये वृष्णिकुलोज्ज्वलकारी श्रीकृष्ण जययुक्त हों; ये इन्द्रनीलघनश्याम कोमलाङ्ग (गोपीगीतमें 'यत्ते सुजात' आदि श्लोकोंमें वर्णित सुकोमल अङ्ग जिनके हैं, वे) श्रीकृष्ण जययुक्त हों; कृष्ण-अभक्तोंके भारसे पीड़ित पृथ्वीके क्लेशका नाश करनेवाले मुकुन्द (मुक्ति प्रदान करनेवाले श्रीहरि) जययुक्त हों॥ 78 ॥

अप्राकृत नवीन कामदेवकी जय :—

श्रीमद्भागवत (10/90/48)—

जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो
यदुवरपरिषत् स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्मम्।
स्थिरचरवृजिनघ्नः सुस्मित-श्रीमुखेन
व्रजपुरवनितानां वर्धयन् कामदेवम्॥ 79 ॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 79 ॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जननिवास, देवकीजन्मवाद (देवकीके गर्भसे जन्म ग्रहण करनेवालेके रूपमें विख्यात), यदुओंके सभापति, अपनी भुजाओंके द्वारा अधर्मका नाश करनेवाले, स्थावर-जङ्गमके पापोंको हरण करनेवाले, मधुर-हास्ययुक्त मुखके द्वारा व्रजपुरकी वनिताओंके कामको वर्द्धित करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र जययुक्त हों॥ 79 ॥

अनुभाष्य—महाभागवत श्रीशुकदेव दशम स्कन्धके अन्तमें संक्षेपमें श्रीकृष्णलीला वर्णन करते हुए श्रीकृष्णकी सर्वोत्तमता बतला रहे हैं—

जननिवासः (जनेषु गोप-यादवादि-मध्येषु एव निवासो यस्य सः, यद्वा जनानां जीवानां यो निवासः आश्रयः, जीवेषु वा निवसति अन्तर्यामितया तथा सः) देवकीजन्मवादः (देवक्यां जन्म इति वादमात्रं यस्य सः, अथवा देवक्योर्नन्द-वसुदेवगृहिण्योर्जन्मैव वादः सिद्धान्तो यत्र सः, वस्तुतः अजन्मा) यदुवरपरिषत् (यदुवराः गोपाः व्रजस्थाः क्षत्रियाः पुरस्थाः च परिषत् सभा सेवकरूपा यस्य सः) स्वैः दोर्भिः (इच्छामात्रेण निरसनसमर्थोऽपि क्रीड़ार्थं दोर्भिः दोस्तुल्यैः स्वभक्तजनैः अर्जुनादिभिर्वा) अधर्मं (धर्मप्रतिपक्षमसुरसंघम्) अस्यन् (क्षिप्यन्, दूरीकुर्वन्, निघ्नन्) स्थिरचरवृजिनघ्नः (स्थिरचराणां—स्थिराणां स्थावराणां चराणां जङ्गमानां, वृजिनं संसारदुःखं व्रजपुरस्थानां तेषां सेवकानां स्ववियोगदुःखं वा हन्ति यः सः) व्रजपुरवनितानां (व्रजवनितानां पुरवनितानाञ्च मथुरा-द्वारका-पुरस्थानुरागिणीनां तासां योषितां) कामदेवं (कामश्चासौ दिव्यतीति विजिगीषते संसारमिति देवश्च, यद्वा, देवः अप्राकृतस्तत्स्वरूपभूतः तं स्वप्रकाशस्वरूपं) सुस्मितश्रीमुखेन (शोभनं स्मितं तदुपलक्षितं प्रसादविलासादिकं यत्र तेन स्वभावत एव श्रीमता शोभनहास्य-युतेन मुखेनैव) वर्द्धयन् (उद्दीपयन् सन्) [एवम्भूतः श्रीकृष्णः] जयति (सर्वोत्तमत्वेन वर्त्तते)।

श्लोक-भावानुवाद—जननिवास (जिनका निवास गोप-यादवोंके मध्य है अथवा जीवोंके जो आश्रय हैं अथवा जीवोंके अन्तर्यामी रूपमें जो निवास करते हैं), देवकीजन्मवाद (यह तो केवल प्रसिद्धि मात्र है अथवा देवकी शब्दका अर्थ है—नन्द और वसुदेव, दोनोंकी पत्नियाँ—यशोदा और देवकी, उनसे उनका जन्म होना एक सिद्धान्त है, वस्तुतः वे अजन्मा ही हैं), यदुओंके सभापति (व्रजमें स्थित गोप और मथुरा-द्वारकामें स्थित क्षत्रिय श्रीकृष्णके सभा अर्थात् सेवकरूप हैं), इच्छामात्रसे अधर्मको दूर करनेवाले अथवा क्रीड़ार्थ अपनी भुजा-तुल्य भक्तमण्डलीके द्वारा या अर्जुन आदिके द्वारा धर्म विरोधी

असुरसमूहको उखाड़ फेंकनेवाले, स्थावर और जङ्गम जनोंके संसार-दुःखको तथा व्रज और पुरवासी सेवकोंके वियोग दुःखको नष्ट करनेवाले, व्रज और पुरकी अनुरागिनी स्त्रियोंके कामदेवको (जो अभिलाषा रूप है तथा संसारको जीतनेकी इच्छावाला होनेके कारण देवरूप है अथवा 'देव' जो अप्राकृत तत्त्वस्वरूपभूत अर्थात् स्वप्रकाश है, उसको) सुस्मितश्रीमुख (जिस मुखमें शोभन-स्मित तथा उपलक्षणके द्वारा प्रसन्नता और विलासादि भी विराजमान हैं, ऐसे स्वाभाविक शोभायुक्त हास्यवाले मुख) के द्वारा वर्धित करनेवाले श्रीकृष्ण सर्वोत्तम रूपमें जययुक्त अथवा विराजमान हों॥ 79॥

अहं-पदार्थ कहलानेवाले जीवात्माका स्वरूप :—
पद्यावली (74)अङ्कमें उद्धृत श्रीकृष्णचैतन्योक्त श्लोक—

नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो
नाहं वर्णी न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा।
किन्तु प्रोद्यन्निखिलपरमानन्दपूर्णामृताब्धे-
र्गोपीभर्त्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः॥ 80॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 80॥

अमृतप्रवाह भाष्य—मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, क्षत्रिय-राजा नहीं हूँ, वैश्य अथवा शूद्र नहीं हूँ, अथवा ब्रह्मचारी नहीं हूँ, गृहस्थ नहीं हूँ, वानप्रस्थ नहीं हूँ, संन्यासी भी नहीं हूँ, किन्तु उन्मीलित (अर्थात् नित्य स्वप्रकाशमान) निखिल परमानन्दसे पूर्ण अमृतसमुद्ररूप 'श्रीकृष्णके चरणकमलोंके दासोंका दास' कहकर अपना परिचय देता हूँ॥ 80॥

अनुभाष्य—

अहं (जीवात्मस्वरूपः) विप्रः (प्राकृतबुद्ध्या शौक्र-सावित्र्य-दैक्ष-त्रिविध-जन्माभिमानी ब्राह्मणः) न (न अस्मि), नरपतिः (क्षत्रियः) च न, वैश्यः न, शूद्रः च न (नाहं वर्णाभिमानीत्यर्थः); [पुनः] अहं (जीवः) वर्णी (ब्रह्मचारी) न, गृहपतिः (गृहस्थः) च न, वनस्थः (वानप्रस्थः) न, यतिः (तुर्याश्रमी संन्यासी वा) न (नास्मि—नाहं आश्रमाभिमानीत्यर्थः)। किन्तु [कोऽहमिति चेत्? तत्राह—अहं जीवस्वरूपः] प्रोद्यन्निखिल-परमानन्द-पूर्णामृताब्धेः (प्रकृष्टरूपेण उद्यन् उदयमाविष्कुर्वन प्रकाशमान इति यावत्, यः निखिलः परमानन्दः, तेन एव पूर्णः अमृताब्धिः तस्य) गोपीभर्त्तुः (गोपीजनवल्लभस्य तस्यैव स्वयंभगवत्तायाः स्वयंरूपत्वाद्वा) पदकमलयोः (पादपङ्कजयोः) दासदासानुदासः (वैष्णवदास्यानुदास्ये संप्रतिष्ठितः त्रिगुणातीतः कृष्णदासः)।

श्लोक-भावानुवाद—मैं (जीवात्मास्वरूप) प्राकृत बुद्धिसे शौक्र, सवित्र्य और दैक्ष, इन तीन प्रकारके जन्माभिमानी ब्राह्मण नहीं हूँ, क्षत्रिय नहीं हूँ, वैश्य अथवा शूद्र भी नहीं हूँ (वर्णाभिमानी नहीं हूँ—यह अर्थ है), अथवा मैं (जीव) ब्रह्मचारी नहीं हूँ, गृहस्थ नहीं हूँ, वानप्रस्थ नहीं हूँ, चतुर्थाश्रमी संन्यासी भी नहीं हूँ (आश्रमाभिमानी नहीं हूँ), किन्तु [मैं कौन हूँ, तभी कहा है—मैं जीवस्वरूप] प्रकृष्टरूपसे प्रकाशमान निखिल परमानन्दसे पूर्ण अमृतसमुद्ररूप स्वयंरूप स्वयं-भगवान् गोपीजनवल्लभके चरणकमलोंके दासोंका दास अर्थात् वैष्णवोंके दासानुदास्यमें प्रतिष्ठित त्रिगुणातीत कृष्णदास हूँ॥ 80॥

अमृतानुकणा—श्रुतियोंमें भूतशुद्धिके लिये जो मन्त्र कहे गये हैं, उनमेंसे आचार्य श्रीशङ्करके द्वारा प्रवर्त्तित मायावाद शास्त्रमें जो एक महावाक्य कहकर निर्धारित हुआ है, उस "अहं ब्रह्मास्मि" (बृहदारण्यक)-मन्त्रका विद्वत्-रूढ़िवृत्ति-गत अर्थ भगवान् श्रीगौरसुन्दरने स्वयं रचित "नाहं विप्रः" श्लोकमें सुन्दर रूपसे स्पष्ट किया है। अर्चनसे पूर्व जिसमें अर्चाका अधिष्ठान सेवनोपयोगी रूपमें परिणत होता है, उसके लिये ही भूतशुद्धिकी आवश्यकता है। क्योंकि, 'नादेवो देवमर्च्चयेत्'—अदैव व्यक्तिका देवता-अर्चनमें अधिकार नहीं है। "देवं भूत्वा देवं यजेत्"—देवत्व लाभ करके ही देवता यजनकी विधि है। इसलिये लोकातीत भगवद्-नामवतार या अर्चावतारके प्रति अपनी सेवाकी वृत्ति प्रकाश करनेसे पहले साधक जीवको अपने अलौकिक स्वरूप-सम्बन्धमें अवस्थित होना होगा, अन्यथा लौकिक धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष-वासनारूप पिशाचीके द्वारा आक्रान्त होकर वे सेवाधिकारसे च्युत हो जायेंगे—यही भूतशुद्धिका तात्पर्य

है। किन्तु शङ्कराचार्यके अनुगत जनोंके द्वारा 'अहं ब्रह्मास्मि'-मन्त्रके द्वारा मुक्तिस्पृहा-रूप पिशाचीको आह्वान करनेपर भूतशुद्धि वहाँसे बहुत दूरीपर ही अवरुद्ध हो जाती है। "ज्ञानी जीवन्मुक्तदशा पाइनु करि माने। वस्तुतः बुद्धि शुद्ध नहे कृष्णभक्ति बिने॥" (चैःचः मध्यलीला 22/29)। उनका जो ब्रह्मध्यान है, वह ब्रह्म (?) होकर स्वयं ब्रह्मका परित्याग करनेके लिये ही है, ब्रह्म-पूजनके उद्देश्यसे नहीं है। किन्तु श्रुतिओंमें कहा गया है,—"ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्योति"—ब्रह्म होकर ही ब्रह्मकी प्राप्ति होती है; "सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता"—वह मुक्तात्मा सर्वज्ञ ब्रह्मके साथ समस्त सेवाभिलाष उपभोग करती है। श्रीमद्भगवद्गीता कहती है,—"ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति। समः सवेषु भूतेषु भद्भक्तिं लभेत् पराम्।"

श्रीमद्भागवतमें सर्ववेदान्तके साररूपमें जीवका परिचय व्यक्त करते हुए कहा गया है,—"सर्ववेदान्तसारं यद्ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम्" (भाः 12/13/12)। ब्रह्ममें जो लक्षण हैं, जीवात्मामें वही लक्षण वर्तमान हैं—दोनों सजातीय समतात्पर्यपर न होनेसे अद्वयज्ञान सिद्ध नहीं होता। (इस प्राकृत) भेद-जगत्में जो अवस्था है, यदि ज्ञेय पदार्थ (अद्वयज्ञान तत्त्व) भी उस प्रकार भेदजातीय हो, तब अद्वयज्ञानमें भी जड़भोग या त्यागमूलक चिन्त्य द्वैतवादकी तुच्छता आकर उपस्थित होगी। 'वे मेरे नित्य चेतनमय, आनन्दमय, ज्ञानमय प्रभु हैं, मैं उनके आनन्दका विधान करनेवाला चित्कण पदार्थ हूँ, उनसे पृथक् मेरा अवस्थान ही माया, अविद्या है'—यही ब्रह्मके साथ जीवका एकत्वका लक्षण है। इस स्थानपर ही अद्वयज्ञान प्रतिष्ठित होकर ब्रह्मके साथ जीवके नित्य सेव्य-सेवक, व्यापक-व्याप्य सम्बन्धको स्थापित करके जीवको परंब्रह्मके सान्निध्यमें लाता है—"ब्रह्म मां परमं प्रापुः" (भाः 11/12/13)।

श्रुतिमें कथित उस 'अहं ब्रह्मास्मि'-मन्त्रमें जीवका जो स्वरूप-विज्ञान ग्रथित होकर रहता है, उसे ही "वेदान्तकृद्-वेदविदेव चाहम्" (गीः 15/15) अर्थात् मूल वेदान्तकारी और समस्त वेदोंके तात्पर्यको जाननेवाले भगवान् श्रीगौरसुन्दरने प्रकाश किया है—'अहं गोपीभर्त्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासोऽस्मि'—मैं गोपीनाथ श्रीकृष्णके चरणकमलयुगलके आश्रित दासके दासका अनुदास हूँ। 'मुकुन्दपदवी' अर्थात् श्रीकृष्णके चरणकमल जिन्हें श्रुतियाँ विशेषरूपसे ढूँढ़ती रहती हैं और वे ही वेदान्तका एकमात्र चरम प्रतिपाद्य विषय हैं। महा-महा-वेदान्तिकोंमें भी अग्रगणीय, विशुद्ध-चेतनमें अवस्थिता, परमसिद्धा गोपियाँ सभी चिद्-इन्द्रियोंके द्वारा उस मुकुन्दपदवीकी ही सर्वोन्नत-रसमें (शृङ्गार-रसमें) सेवामें निमग्न हैं। परंब्रह्म श्रीकृष्ण स्वयं अखिल परमानन्द-अमृतसिन्धु होनेपर भी गोपियाँ उनके सर्व आनन्दका स्रोत हैं। श्रीकृष्ण सभीको उनके भजनके अनुरूप प्रतिदान देनेमें समर्थ होनेपर भी गोपियोंकी प्रीतिके अनुरूप प्रतिदानमें समर्थ नहीं हैं। गोपियोंके तुल्य अन्य कोई श्रीकृष्णके मर्मज्ञ भी नहीं हैं। तटस्था शक्तिसे उत्पन्न, बालके अग्रभागके दस हजारवें भागके जितने परिमाणके अणुचेतन पदार्थ जीवके आत्मगत विचारसे विविध रसोंमें अनेक प्रकारके परिचय सम्भव हैं। परन्तु समस्त गोपियोंमें सर्वश्रेष्ठा, मूल ह्लादिनी-स्वरूपिणी, परा ब्रह्मस्वरूपा, स्वरूपशक्ति श्रीवार्षभानवीके (श्रीराधाके) प्रियतमके दासदासानुदास रूपमें अपनेको सम्बन्धित करनेपर, जीव सर्व शिरोमणिरूपमें दैदीप्यमान होकर ब्रह्मा-शिवादिके भी वन्दनीयरूपमें परिगणित होते हैं। यही 'अहं ब्रह्मास्मि'-मन्त्रकी स्वरूपावधि (स्वरूपकी सीमा) है।

उस आत्मजगत्में अविमिश्र-चेतनराज्यमें सभी कुछ चेतनमय हैं—उसमें अचेतनता, अनित्यता, तुच्छता, असम्पूर्णता या अभावका कोई स्थान नहीं है। दूसरी ओर यह अनात्म जगत्—मिश्रित चेतनराज्य है अर्थात् इस जड़ जगत्में चेतन आत्माएँ भी विद्यमान हैं। यहाँ जड़ जगत्में चेतनके विकासके लिये नित्यता, सम्पूर्णता, अकपटता, अव्यभिचारिता, ईशता, निर्गुणता, अविमिश्रता आदिकी अवस्थिति नहीं है—"नासतो विद्यते भावो

नाभावो विद्यते सतः।" (गीता 2/16)। इसलिये इस ब्रह्माण्डगत सभी स्थूल-सूक्ष्मभाव चिद्-अचिद्-मिश्र होनेके कारण विद्वेष, अचेतनता, असम्पूर्णतासे रहित नहीं हो सकते। इसलिये श्रीचैतन्य महाप्रभुने उस सब स्थूल-सूक्ष्मभावोंको त्याग करनेका उपदेश दिया है,—'मैं ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय नहीं, वैश्य नहीं या शूद्र भी नहीं हूँ, अथवा आश्रम विचारसे मैं ब्रह्मचारी नहीं, गृहस्थ नहीं, वानप्रस्थ या संन्यासी भी नहीं हूँ।' "अहङ्कारविमूढ़ात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते" (गीता 3/43)—अशुद्ध अहङ्कारके द्वारा जीव विवेकरहित हो जाता है और 'मैं ही कर्त्ता हूँ'-इस अभिमानसे अपनी सुविधानुसार कभी भोगी और कभी त्यागी हो जाता है। उस अशुद्ध अहङ्कारवशतः वर्णाश्रम-विचारसे या 'जन्म-ऐश्वर्य-श्रुत-श्री' के परिमापसे जीवके समस्त अभिमान नितान्त जड़ीय अथवा अचिद्मिश्र, कुण्ठायुक्त हैं। इसलिये उन-उन अभिमानोंके वशवर्ती होकर सम्पूर्ण-चेतनराज्य-वैकुण्ठमें अभियान सम्भव नहीं होता।

जीवके शुद्ध-अहङ्कारमें स्वयंको अद्वयज्ञान-परतत्त्वका सेवक मानकर जो केवल उनके दासके दासका दास अभिमान है, वह किसी प्रकारसे जड़ीय दीनता नहीं है। इस जगत्में दीनताका कारण दूर होनेपर दम्भ (घमण्ड) आकर उपस्थित हो जाता है, इसलिये वह दीनता दम्भका ही दूसरा रूप है। मायाके सङ्गसे 'अशुद्ध-अहङ्कार'-ग्रस्त जीव 'अहं ब्रह्मास्मि'-मन्त्रसे स्वयंको ब्रह्मके प्रतियोगी रूपमें ध्यान करके केवल दम्भमात्रको ही सञ्चय करता है। इस प्रकार वह भगवद्-चरणकमलोंमें अपराध करता रहता है और उसके फलस्वरूप उसका अधःपतन अनिवार्य हो जाता है। किन्तु "गोपीभर्त्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः" या सम्राट कुलशेखर-रचित 'त्वद्भृत्य-भृत्य-परिचारक-भृत्यभृत्य-भृत्स्य भृत्य इति मां स्मर लोकनाथ"—इस रूपसे जो आत्मगत क्षुद्रातिक्षुद्र-अभिमान है, वह इस जगत्में तृणके भीतर जो सर्वापेक्षा क्षुद्र होनेका अभिमान निहित है, उससे भी अतीत है। वही आत्मगत दैन्य शुद्धभक्तिके अनुभाव-रूपमें मात्र प्रकाशित होता है और वह भक्तिका सम्वर्धन करते-करते उत्तरोतर वर्धित होकर श्रीकृष्णका आकर्षण करता है। तब दैन्यका कारण दूरीभूत होनेपर भी वह दैन्य नवनवायमान होकर श्रीकृष्ण-प्रीति उत्पादक विभूषणमें परिणत होता है॥ 80॥

महाप्रभुका अनुगमन करके भक्तोंका भगवान्को प्रणाम :—

एत पड़ि' पुनरपि करिल प्रणाम।
योड़हाते भक्तगण वन्दे भगवान्॥ 81॥

अनुवाद—इन सब श्लोकोंको पढ़कर महाप्रभुने पुनः श्रीजगन्नाथको प्रणाम किया और समस्त भक्तोंने भी अपने हाथ जोड़कर श्रीजगन्नाथकी वन्दना की॥ 81॥

महाप्रभुके उद्दण्ड नृत्यका वर्णन :—

उद्दण्ड नृत्य प्रभु करिया हुँकार।
चक्र-भ्रमि भ्रमे यैछे अलात-आकार॥ 82॥

नृत्ये प्रभुर याँहा याँहा पड़े पदतल।
ससागर-शैल मही करे टलमल॥ 83॥

अनुवाद—महाप्रभु हुँकार करते हुए ऊँचा-ऊँचा कूदकर नृत्य करते हुए चक्रकी भाँति गोल परिधिमें घूमने लगे, इस प्रकार वे अलातचक्रकी भाँति दिखने लगे। नृत्य करते समय महाप्रभुके चरण जहाँ-जहाँ पड़ते, पर्वत और सागर सहित पृथ्वी टलमल करने लगती॥ 82-83॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'चक्र-भ्रमि भ्रमे यैछे अलात-आकार'*—जलते हुए अङ्गारेके चक्रके समान महाप्रभु चक्रमें भ्रमण करनेवाले जैसे घूमने लगे॥ 82॥

अनुभाष्य—अलातचक्र अर्थात् जलते हुए अङ्गारेको बहुत तेजीसे घुमानेपर वह जैसे एक पूरे जलते हुए चक्रकी भाँति प्रतीत होता है, किन्तु वह वास्तवमें जलता हुआ चक्र नहीं होता, उसी प्रकार महाप्रभु उद्दण्ड नृत्य करते-करते 'एक'-विग्रह होनेपर भी सर्वत्र 'व्यापक' रूपमें दिखलायी दिये थे॥ 82॥

महाप्रभुके अष्टसात्त्विक विकार :—

स्तम्भ, स्वेद, पुलक, अश्रु, कम्प, वैवर्ण्य।
नाना भावे विवशता, गर्व, हर्ष, दैन्य॥ 84॥

आछाड़ खाञा पड़े भूमे गड़ि' याय।
सुवर्ण-पर्वत यैछे भूमेते लोटाय॥ 85॥

अनुवाद—नृत्य करते हुए महाप्रभुके शरीरमें स्तम्भ, स्वेद, पुलक, अश्रु, कम्प, वैवर्ण्य, विवशता, गर्व, हर्ष और दैन्य आदि प्रेमके विकार और भाव उदित हो रहे थे। पछाड़ खाकर जब महाप्रभु भूमिपर गिरकर लोट-पोट करने लगते, तो ऐसा प्रतीत होता मानो कोई सोनेका पर्वत भूमिपर लोट-पोट खा रहा हो॥ 84–85॥

निताइके द्वारा रक्षा करनेकी चेष्टा :—

नित्यानन्दप्रभु दुइ हात प्रसारिया।
प्रभुरे धरिते चाहे आशपाश धाञा॥ 86॥

महाप्रभुके पीछे हरिध्वनिमें रत श्रीअद्वैत :—

प्रभु-पाछे बुले आचार्य करिया हुँकार।
'हरिबोल' 'हरिबोल' बले बार बार॥ 87॥

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभु अपने दोनों हाथोंको पसारकर महाप्रभुको पकड़नेके लिये उनके आस-पास भाग रहे थे। श्रीअद्वैताचार्य महाप्रभुके पीछे-पीछे चलते हुए बार-बार उच्च स्वरसे 'हरिबोल' 'हरिबोल' बोलते हुए हुँकार कर रहे थे॥ 86–87॥

महाप्रभुको लोगोंके स्पर्शसे रक्षाके लिये
तीन दलोंके द्वारा घेरेका गठन :—

लोक निवारिते हैल तिन मण्डल।
प्रथम-मण्डले नित्यानन्द महाबल॥ 88॥

काशीश्वर मुकुन्दादि यत भक्तगण।
हाताहाति करि' हैल द्वितीय आवरण॥ 89॥

बाहिरे प्रतापरुद्र लञा पात्रगण।
मण्डल हञा करे लोक निवारण॥ 90॥

अनुवाद—लोगोंकी भीड़को महाप्रभुसे दूर रखनेके लिये उन्होंने तीन चक्र (घेरे) बनाये। भीतरवाले पहले चक्रमें महाबलवान् श्रीनित्यानन्द प्रभु (बलके अधिष्ठात्री देवता श्रीबलदेव प्रभु) रक्षा कर रहे थे। उसके बाहर श्रीकाशीश्वर और श्रीमुकुन्दादि सब भक्तोंने अपने हाथोंको दोनों ओर फैलाकर दूसरे भक्तोंके हाथोंको पकड़कर दूसरा आवरण बनाया। सबसे बाहरी अर्थात् तीसरे चक्रमें राजा प्रतापरुद्रने अपने सैनिकोंको लेकर एक चक्र बनाकर लोगोंको रोक दिया॥ 88–90॥

अनुभाष्य— *'महाबल'*—श्रीबलदेव।

'तिनमण्डल'—लोगोंके द्वारा रौंदनेसे बचानेके लिये महाप्रभुको केन्द्रमें रखकर भक्तोंने चक्रके आकारमें उन्हें चारों ओरसे घेरकर तीन वृत्त (घेरे) बनाये। पहले-घेरेमें—अन्यान्य भक्तोंके साथ श्रीनित्यानन्द प्रभु थे, पहले घेरेको केन्द्रमें रखकर पुनः चक्राकारमें श्रीकाशीश्वर और श्रीमुकुन्दादिने दूसरा घेरा बनाया तथा दूसरे घेरेको केन्द्रमें रखकर अपने लोगोंके द्वारा आवृत करके राजा प्रतापरुद्रने तीसरा घेरा बनाया। तीसरे घेरेके द्वारा आवरण करके दूसरे, पहले और उसके भीतर श्रीमहाप्रभुको लोगोंकी भीड़से स्वतन्त्र कर दिया। इसका उद्देश्य यह था कि लोगोंकी भीड़से तीसरे घेरेके टूट जानेपर दूसरा और उसके भी उसी प्रकारसे टूट जानेपर पहला घेरा महाप्रभुकी रक्षाके कार्यमें आयेगा॥ 88॥

हरिचन्दनके साथ राजाका महाप्रभुके नृत्यका दर्शन :—

हरिचन्दनेर स्कन्धे हस्त आलम्बिया।
प्रभुर नृत्य देखे राजा आविष्ट हञा॥ 91॥

राजाके सामने श्रीवासकी महाप्रभु-नृत्य-दर्शन-सेवा :—

हेनकाले श्रीनिवास प्रेमाविष्ट-मन।
राजार आगे रहि' देखे प्रभुर नर्त्तन॥ 92॥

राजाको बिना बाधाके दर्शनका सुयोग देनेके लिये
श्रीवासको हरिचन्दनकी नम्रभावसे हटानेकी चेष्टा :—

राजार आगे हरिचन्दन देखे श्रीनिवास।
हस्ते ताँरे स्पर्शि कहे,—'हओ एकपाश॥'93॥

सेवारत श्रीवासका पुनः पुनः सेवामें विघ्नहेतु क्रोध :—

नृत्यावेशे श्रीनिवास किछुइ ना जाने।
बार बार ठेले, तेँहो क्रोध हैल मने॥ 94॥

हरिचन्दनको थप्पड़ मारना और उसके
फलस्वरूप हरिचन्दनका क्रोधित होना :—

चापड़ मारिया तारे कैल निवारण।
चापड़ खाञा क्रु

अनुवाद—हरिचन्दनके कन्धेपर हाथ रखकर राजा प्रतापरुद्र महाप्रभुके नृत्यको देखकर उसमें आविष्ट हो रहे थे। उस समय श्रीवास पण्डित भी राजाके आगे खड़े होकर महाप्रभुके नृत्यको देखकर प्रेममें आविष्ट हो रहे थे। राजाके आगे श्रीवास पण्डितको देखकर हरिचन्दनने उन्हें अपने हाथके स्पर्शसे एक तरफ हटाते हुए कहा,—'आप एक ओर हो जाइये।' परन्तु श्रीवास पण्डित तो महाप्रभुके नृत्यको देखनेमें इतने आविष्ट थे कि उन्हें कुछ भी पता नहीं चला। हरिचन्दनके द्वारा बार-बार ठेले जानेपर उनको क्रोध आ गया और हरिचन्दनको थप्पड़ मारकर उसे ठेलनेके लिये मना किया। थप्पड़ खाकर हरिचन्दनको भी क्रोध आ गया॥ 91-95॥

अनुभाष्य— *'तारे'*—हरिचन्दनको॥ 95॥

हरिचन्दनको राजाके द्वारा मना करना :—

क्रु
आपनि प्रतापरुद्र निवारिल तारे॥ 96॥

वैष्णवके द्वारा अपमान या आघात भी सौभाग्यसूचक :—

"भाग्यवान् तुमि—इँहार हस्त-स्पर्श पाइला।
आमार भाग्ये नाहि, तुमि कृतार्थ हैला॥"97॥

अनुवाद—हरिचन्दन क्रोधमें आकर श्रीवास पण्डितको कुछ कहना ही चाहता था, परन्तु स्वयं राजा प्रतापरुद्रने उसे यह कहकर रोक दिया,—"तुम बहुत भाग्यवान् हो जो तुमने इनके हाथोंका स्पर्श प्राप्त किया। मेरा ऐसा सौभाग्य नहीं है, तुम कृतार्थ हो गये हो॥"96-97॥

अनुभाष्य— *'ताँरे'*—श्रीवासको॥ 96॥

अपलक नेत्रोंसे निश्चलभावसे श्रीजगन्नाथको महाप्रभुके
नृत्यका दर्शन करनेसे परमानन्द :—

प्रभुर नृत्य देखि' लोके हैल चमत्कार।
अन्य आछुक्, जगन्नाथेर आनन्द अपार॥ 98॥

रथ स्थिर कैल, आगे ना करे गमन।
अनिमिष-नेत्रे करे नृत्य दरशन॥ 99॥

महाप्रभुके नृत्य-दर्शनसे सुभद्रा एवं बलराम भी हर्षित :—

सुभद्रा-बलरामेर हृदये उल्लास।
नृत्य देखि' दुइ जनार श्रीमुखेते हास॥ 100॥

अनुवाद—महाप्रभुके नृत्यको देखकर लोग आश्चर्यचकित हो गये और यहाँ तक कि स्वयं श्रीजगन्नाथको भी अपार आनन्द हुआ। श्रीजगन्नाथने अपने रथको स्थिर कर दिया और वे अपलक-नेत्रोंसे महाप्रभुका नृत्य देखने लगे। श्रीसुभद्रा और श्रीबलरामके हृदयमें भी उल्लास हो रहा था और महाप्रभुका नृत्य देखकर उन दोनोंके मुखपर मुस्कुराहट छा गयी॥ 98-100॥

अष्टसात्त्विक-भावसमूह सुशोभित
महाप्रभुका रूप और लीला :—

उद्दण्ड नृत्ये प्रभुर अद्भुत विकार।
अष्टसात्त्विक-भाव उदय समकाल॥ 101॥

माँस व्रण-सम रोमवृन्द पुलकित।
शिमुलीर वृक्ष येन कण्टक-वेष्टित॥ 102॥

एक एक दन्तेर कम्प देखिते लागे भय।
लोके जाने, दन्त सब खसिया पड़य॥ 103॥

सर्वाङ्गे प्रस्वेद, ताते रक्तोद्गम।
'जज गग' 'जज गग'—गद्गद-वचन॥ 104॥

जलयन्त्र-धारा यैछे बहे अश्रुजल।
आश-पाशे लोक यत भिजिल सकल॥ 105॥

देहकान्ति गौरवर्ण देखिये अरुण।
कभु कान्ति देखि' येन मल्लिका-पुष्पसम॥ 106॥

कभु स्तम्भ, कभु प्रभु भूमिते लोटाय।
शुष्ककाष्ठसम पद-हस्त ना चलय॥ 107॥

कभु भूमे पड़े, कभु श्वास हय हीन।
याहा देखि' भक्तगणेर प्राण हय क्षीण॥ 108॥

अनुवाद—उद्दण्ड नृत्य करते हुए महाप्रभुके शरीरमें अद्भुत विकार होने लगे और आठों सात्त्विक भाव एक साथ उदय हो गये। उनकी रोमावली पुलकित होकर खड़ी हो गयी और उसकी जड़ें फूल गयीं, उनके शरीरको देखकर ऐसा लगता था जैसे रुईके वृक्षमें चारों ओर काँटे हों। उनका एक-एक दाँत कटकटा रहा था और लोंगोंको भय लग रहा था मानो उनके सभी दाँत टूटकर गिर पड़ेंगे। सभी अङ्गोंसे पसीना निकलकर बह रहा था और साथ ही रक्त भी निकलने लगा। गद्गद् वाणीसे वे जगन्नाथ न बोलकर केवल 'जज गग' 'जज गग' ही बोल पा रहे थे। पिचकारीकी धारके समान महाप्रभुके नेत्रोंसे अश्रु बह रहे थे और आस-पास खड़े लोग उन अश्रुओंकी धारामें भीग रहे थे। वैवर्ण्यके कारण महाप्रभुकी गौरवर्ण (पीतवर्ण) देहकान्ति कभी अरुणवर्ण की और कभी मल्लिकाके पुष्पोंकी भाँति शुक्लवर्ण दिखायी देने लगती। कभी तो महाप्रभु चलते-चलते स्तम्भित हो जाते और कभी भूमिपर लोटने लगते। कभी उनके हाथ-पैर सूखी लकड़ीकी भाँति हो जाते जिससे वे हिल-डुल भी नहीं पाते। कभी वे भूमिपर गिर पड़ते और कभी श्वासहीन हो जाते जिसे देखकर भक्तोंके प्राण निकलनेवाले हो जाते॥ 101-108॥

अनुभाष्य—महाप्रभुके शरीरमें एक ही समयमें आठों प्रकारके सात्त्विक भावोंका उदय हो रहा था। महाप्रभुके रोम पुलकित होनेपर लोमकूपका माँस रोमाञ्चके कारण घाव या फोड़े जैसा दीखने लगा। *'जज गग'*—'जगन्नाथ' बोलते हुए उच्चारण करते हुए महाप्रभुके मुखसे इस प्रकार अस्फुट-शब्द ही निकल रहे थे। *'जल-यन्त्र'*—पिचकारी, अथवा जल-सींचनेवाला यन्त्र अथवा फव्वारा॥ 101-105॥

महाप्रभुके मुखचन्द्रसे फेनामृत-धारा :—

कभु नेत्रे-नासाय जल, मुखे पड़े फेन।
अमृतेर धारा चन्द्रबिम्बे बहे येन॥ 109॥

शुभानन्दके द्वारा पान :—

सेइ फेन लञा शुभानन्द कैल पान।
कृष्णप्रेमरसिक तेँहो महाभाग्यवान्॥ 110॥

अनुवाद—कभी महाप्रभुके नेत्रों और कभी नाकसे जल निकलने लगता और कभी मुखचन्द्रसे फेन निकलता जिसे देखकर ऐसा लगता मानो चन्द्रमासे अमृतकी धारा बह रही हो। महाप्रभुके मुखचन्द्रसे निकली हुई फेनको श्रीशुभानन्दने पान कर लिया, क्योंकि वे महाभाग्यवान् श्रीकृष्णप्रेम रसके रसिक थे॥ 109-110॥

अनुभाष्य—*'शुभानन्द'*—आदिलीला 10/110 संख्या और मध्यलीला 13/39 संख्या देखें॥ 110॥

नृत्यके अन्तमें महाप्रभुके द्वारा कान्तके साथ कान्ताके मिलनका गीत-श्रवण :—

एइमत ताण्डव-नृत्य कैल कतक्षण।
भाव-विशेषे प्रभुर प्रवेशिल मन॥ 111॥

ताण्डव-नृत्य छाड़ि' स्वरूपेर आज्ञा दिल।
हृदय जानिया स्वरूप गाइते लागिल॥ 112॥

श्रीस्वरूप दामोदरका गीत :—

तथाहि पदम्—

"सेइ त' पराण-नाथ पाइनु।
याहा लागि' मदन-दहने झुरि' गेनु॥"113॥ ध्रु॥

अनुवाद—इस प्रकार कुछ समय तक ताण्डव-नृत्य (अकेले पुरुषके द्वारा नृत्य) करते हुए महाप्रभुके मनमें विशेष भाव उदित हुआ। तब उन्होंने ताण्डव-नृत्यको रोककर श्रीस्वरूप दामोदरको गान करनेके लिये आदेश दिया। श्रीस्वरूप दामोदर महाप्रभुके हृदयके भावोंको

जानकर गान करने लगे,—"मैंने उन्हीं प्राणनाथको पा लिया है, जिनके विरहमें मैं कामाग्निकी ज्वालामें जलकर म्लान हो रही थी॥"111-113॥

अमृतप्रवाह भाष्य—ताण्डव-नृत्य छोड़कर महाप्रभुके हृदयमें कुरुक्षेत्र-मिलनमें श्रीराधाके भाव उदित हुए थे। बहुत दिनोंके विरहके बाद, यह गीत स्वाभाविक रूपमें आकर उपस्थित हुआ॥113॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 1/53-56 संख्या देखें॥113॥

गीत श्रवण करनेसे महाप्रभुका नृत्य :—

एइ धुया उच्चैःस्वरे गाय दामोदर।
आनन्दे मधुर नृत्य करेन ईश्वर॥114॥

श्रीजगन्नाथका महाप्रभुके पीछे-पीछे चलना :—

धीरे धीरे जगन्नाथ करेन गमन।
आगे नृत्य करि' चलेन शचीर नन्दन॥115॥

अनुवाद—श्रीस्वरूप दामोदर इस पदका बार-बार उच्च स्वरसे गान करने लगे और महाप्रभु आनन्दपूर्वक उस गानकी लयके साथ नृत्य करने लगे। श्रीजगन्नाथका रथ धीरे-धीरे चलने लगा और शचीनन्दन श्रीगौरहरि उसके आगे नृत्य करते हुए चलने लगे॥114-115॥

सभी भक्तोंका श्रीजगन्नाथकी ओर
मुख करके नृत्य और कीर्तन :—

जगन्नाथे नेत्र दिया सबे नाचे, गाय।
कीर्त्तनीया सह प्रभु पाछे पाछे याय॥116॥

अनुवाद—नृत्य एवं गान करते हुए सभी भक्त श्रीजगन्नाथको ही देख रहे थे। महाप्रभु तब कीर्तन करनेवाले भक्तोंके साथ यात्रामें सबसे पीछेकी ओर गये॥116॥

बहुत समयके विरहके बाद श्रीराधाभावमें भावित
महाप्रभुका प्रियतम श्रीकृष्णके साथ मिलन :—

जगन्नाथ-मग्न प्रभुर नयन-हृदय।
श्रीहस्तयुगे करे गीतेर अभिनय॥117॥

श्रीराधाभाव-सुवलित महाप्रभुमें ही
श्रीकृष्णकी अपेक्षा अधिक प्रेम :—

गौर यदि पाछे चले, श्याम हय स्थिरे।
गौर आगे चले, श्याम चले धीरे धीरे॥118॥
एइमत गौर-श्यामे, दोँहे ठेलाठेलि।
स्वरथे श्यामेरे राखे गौर महाबली॥119॥

अनुवाद—महाप्रभुके नेत्र और हृदय श्रीजगन्नाथमें निमग्न थे और गीतके भावोंके अनुरूप वे अपने दोनों श्रीहस्तकमलोंको चलाते हुए अभिनय करने लगे। जब श्रीगौरसुन्दर रथके पीछे चलते, तब श्यामसुन्दर (श्रीजगन्नाथ) रुक जाते और यदि श्रीगौरसुन्दर रथके आगे चलते, तो श्यामसुन्दर उनके नृत्यको देखते हुए धीरे-धीरे चलने लगते। इस प्रकार श्रीगौरसुन्दर एवं श्रीश्यामसुन्दर, दोनोंमें परस्पर खींचातानी हो रही थी। महाबली श्रीगौरसुन्दरने अपने प्रेमके द्वारा रथपर चढ़े हुए श्रीश्यामसुन्दरको वशीभूत कर रखा था॥117-119॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिस समय श्रीगौरचन्द्र गीतका अभिनय करते-करते (रथ के) पीछे चले जाते, तब श्रीजगन्नाथ स्थिर हो जाते; श्रीगौरचन्द्र जब आगे चलते, तब श्रीजगन्नाथ धीरे-धीरे आगे बढ़ते॥118॥

अनुभाष्य—श्रीमहाप्रभुका भाव यह है—व्रजेन्द्रनन्दन गोकुलवासिनियोंको छोड़कर द्वारका लीलामें मत्त हो गये थे, बादमें कुरुक्षेत्र मिलनमें उनका सङ्ग प्राप्त किया। यहाँपर, व्रजेन्द्रनन्दनरूप श्रीजगन्नाथदेवको राधाभावमें विभावित श्रीगौरसुन्दर ऐश्वर्यलीला-क्षेत्र श्रीक्षेत्र-नीलाचलसे माधुर्य- लीलाभूमि गुण्डिचाकी ओर आकर्षण करके ले जा रहे हैं। श्रीराधा और गोपियोंके भावमें विभावित श्रीगौरहरिका रथके पीछे जानेका उद्देश्य यह था कि व्रजेन्द्रनन्दनने व्रजके भावोंको भूलकर उनका (श्रीराधादि गोपियोंका) अनादर किया है, तथापि उनकी चेष्टासे फिरसे श्रीकृष्णमें व्रजकी माधुरीके उदित होनेके कारण ऐश्वर्यलीलासे माधुर्यलीलाके उत्कर्षकी उपलब्धि होनेपर ही श्रीकृष्णकी रथ-विजय है। वास्तवमें श्रीराधादि

व्रजजनोंके प्रति आन्तरिक सौहार्दके वशीभूत होकर ही श्रीकृष्ण जा रहे हैं, अथवा उनका इसके अतिरिक्त कोई और उद्देश्य है, इस विषयमें सन्देहको दूर करनेके लिये श्रीमन्महाप्रभु रथके पीछेकी ओर चले गये। महाप्रभुके हृदयके भावको जानकर श्रीजगन्नाथदेव भी रुककर उनकी प्रतीक्षा करने लगे। विशेषतः, वृन्दावनेश्वरीके अभावमें व्रजभावके सौन्दर्यकी सम्भावना नहीं है। श्रीजगन्नाथको प्रतीक्षा करते देख गोपीभावके सामर्थ्यको समझकर श्रीगौरसुन्दरके उत्साहित होकर आगे बढ़नेपर श्रीजगन्नाथदेव भी लज्जित होकर धीरे-धीरे उनका अनुगमन करने लगे। श्रीराधादि-गोपीभावमें भावुक श्रीगौरका अनुगमन और श्रीगौरके लिये प्रतीक्षा करनेकी योग्यता श्रीजगन्नाथदेवमें ही देखी जाती है, इसलिये श्रीजगन्नाथके प्रति महाप्रभुके भाव और महाप्रभुके प्रति श्रीजगन्नाथके भाव,—दोनोंके इस प्रकारके भावोंकी ठेला-ठेलीमें या युद्धमें श्रीराधाभाव-विभावित महाप्रभु अथवा उनका प्रेम ही अधिक बलवान् है॥ 118-119॥

विरहके अन्तमें मिलन-स्थलीकी
स्मृतिका द्योतक श्लोक-पाठ :—

नाचिते नाचिते प्रभुर हैला भावान्तर।
हस्त तुलि' श्लोक पड़े करि' उच्चैःस्वर॥ 120॥

अनुवाद—नृत्य करते-करते महाप्रभुका भावान्तर हुआ और वे अपने हाथोंको ऊपर उठाकर उच्च स्वरसे एक श्लोक पढ़ने लगे॥ 120॥

काव्यप्रकाशमें (1/4), साहित्यदर्पणमें (1/10);
पद्यावलीमें (382) :—

यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपा-
स्ते चोन्मीलितमालतीसुरभयः प्रौढाः कदम्बानिलाः।
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौ
रेवा-रोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठते॥ 121॥

अनुवाद—एक नायिका अपनी एक सखीसे कहती है,—"जिसने कौमारावस्थामें मेरे चित्तका हरण किया था, अब वही मेरा वर है अर्थात् वैवाहिक पति है। उसके साथ कौमारावस्थामें प्रथम मिलनके समय जो चैत्रमाहकी ज्योत्सनामयी रात्रि थी, अब भी वही चैत्रमाहका ज्योत्सनामय रात्रिकाल है। प्रथम मिलनके समयकी भाँति खिली हुई मालती पुष्पोंकी भीनी-भीनी मधुर सुगन्धयुक्त वायु अब भी कदम्ब वनकी ओरसे प्रवाहित हो रही है; मैं भी वही हूँ; फिर भी उसी रेवा नदीके किनारे निर्जन सुशीतल प्रदेशमें बैंतके वृक्षके नीचे प्रथम मिलनके समयवाली सुरत-व्यापारलीला अर्थात् प्रेममय विहारके लिये मेरा मन उत्कण्ठित हो रहा है॥"121॥

महाप्रभुके हृदयके भावोंके रसज्ञ श्रीस्वरूप :—

एइ श्लोक महाप्रभु पड़े बार बार।
स्वरूप बिना अर्थ केह ना जाने इहार॥ 122॥

अनुवाद—महाप्रभु बार-बार इस श्लोकको पढ़ रहे थे, परन्तु श्रीस्वरूप दामोदरके अतिरिक्त कोई भी इसके अर्थ (आन्तरिक भाव) को नहीं जानता था॥ 122॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 1/58-59 संख्या देखें॥ 121-122॥

इस श्लोकके अर्थकी मध्यलीलाके
पहले अध्यायमें व्याख्या :—

एइ श्लोकार्थ पूर्वे करियाछि व्याख्यान।
श्लोकेर भावार्थ करि संक्षेपे आख्यान॥ 123॥

अनुवाद—(ग्रन्थकार कह रहे हैं)—इस श्लोकके अर्थकी मैंने पहले व्याख्या की थी। अब संक्षेपमें ही इस श्लोकके भावोंको व्यक्त कर रहा हूँ॥ 123॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 1/53, 77-80, 82-84 संख्या देखें॥ 123॥

बहुत समयके विरहके बाद कुरुक्षेत्रमें
श्रीकृष्णके साथ गोपियोंका मिलन :—

पूर्वे यैछे कुरुक्षेत्रे सब गोपीगण।
कृष्णेर दर्शन पाञा आनन्दित मन॥ 124॥

श्रीजगन्नाथ-दर्शनसे भी महाप्रभुका वैसा ही गोपी-भाव :—

जगन्नाथ देखि' प्रभुर से भाव उठिल।
सेइ भावाविष्ट हञा धुया गाओयाइल॥ 125॥

अनुवाद—पहले जैसे कुरुक्षेत्रमें सभी गोपियाँ श्रीकृष्णका दर्शन पाकर आनन्दित हो गयीं थीं, श्रीजगन्नाथको देखकर महाप्रभुमें भी वही भाव उदित हुआ। उसी भावमें आविष्ट होकर महाप्रभुने श्रीस्वरूप दामोदरसे उस पदका बार-बार गान करवाया था॥ 124-125॥

राजवेशधारी श्रीकृष्णके प्रति गोपवधू श्रीमती राधिकाकी उक्ति :—

अवशेषे राधा कृष्णे करे निवेदन।
'सेइ तुमि, सेइ आमि, सेइ नव सङ्गम॥ 126॥

तथापि आमार मन हरे वृन्दावन।
वृन्दावने उदय कराओ आपन-चरण॥ 127॥

इँहा लोकारण्य, हाती, घोड़ा, रथध्वनि।
ताँहा पुष्पारण्य, भृङ्ग-पिक-नाद शुनि॥ 128॥

एइ राजवेश, सङ्गे सब क्षत्रियगण।
ताँहा गोपवेश, सङ्गे मुरली-वादन॥ 129॥

व्रजे तोमार सङ्गे येइ सुख-आस्वादन।
सेइ सुखसमुद्रेर इँहा नाहि एक कण॥ 130॥

आमा लञा पुनः लीला करह वृन्दावने।
तबे आमार मनोवाञ्छा हय त' पूरणे॥' 131॥

अनुवाद—अन्तमें श्रीमती राधिका श्रीकृष्णसे इस प्रकार निवेदन करने लगीं,—'आप भी वही हैं, मैं भी वहीं हूँ और हमारा मिलन भी नवनवायमान जैसा ही है। तथापि मेरे मनको तो वृन्दावनकी स्मृति हरण कर रही है, अतः आप वृन्दावनमें अपने चरण धरो अर्थात् वृन्दावनमें प्रवेश करो। यहाँपर लोगोंकी भीड़, हाथियों, घोड़ों और रथोंका कोलाहल है, परन्तु वृन्दावनमें पुष्पोंके वन तथा भ्रमर और कोयल की मधुर ध्वनि सुनायी देती है। यहाँ आपका राजवेश है और साथमें योद्धा भी हैं और वृन्दावनमें आपका गोपवेश होता है और वहाँ आप मुरलीवादन करते हैं। [इस स्थानपर रणभूमिका परिवेश है, प्रेमरसास्वादनके अनुकूल वातावरण नहीं है]। इसलिये व्रजमें आपके साथ जो सुखका आस्वादन है, उस सुख-समुद्रका यहाँ एक कण भी नहीं है। मुझे साथ लेकर पुनः उसी वृन्दावनमें आप लीला कीजिये, तभी मेरी मनोवाञ्छा पूर्ण होगी॥ 126-131॥

प्रथम अध्यायमें सूत्र-वर्णनके बीचमें यह वर्णित :—

भागवते आछे यैछे राधिका-वचन।
पूर्वे ताहा सूत्रमध्ये करियाछि वर्णन॥ 132॥

अनुवाद—(ग्रन्थकार कह रहे हैं—) भागवतमें जैसे श्रीमती राधिकाके वचन वर्णित हैं, उन्हीं वचनोंका मैंने पहले श्रीचैतन्यलीलाके सूत्ररूप वर्णनमें (मध्यलीलाके पहले अध्यायमें) उल्लेख किया है॥ 132॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 1/81 संख्या, 13/136 संख्या देखें॥ 132॥

भागवतके इन श्लोकोंका अर्थ श्रीस्वरूप और श्रीरूपके अतिरिक्त अन्योंके लिये अज्ञेय :—

सेइ भावावेशे प्रभु पड़े आर श्लोक।
सेइ सब श्लोकेर अर्थ नाहि बुझे लोक॥ 133॥

स्वरूप-गोसाञि जाने, ना कहे अर्थ तार।
श्रीरूप-गोसाञि कैल से अर्थ प्रचार॥ 134॥

अनुवाद—श्रीमती राधिकाके भावावेशमें महाप्रभुने और कई श्लोक पढ़े। इन सब श्लोकोंके अर्थको साधारण लोग नहीं समझ सकते। यद्यपि श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी उन श्लोकोंके अर्थको जानते थे, तथापि उन्होंने किसीको भी उन्हें प्रकाशित नहीं किया। श्रीरूप गोस्वामीने ही उनके अर्थका प्रचार किया॥ 133-134॥

नृत्यके बीचमें नित्य-आस्वादित श्लोकोंका उच्चारण :—

स्वरूप सङ्गे यार अर्थ करे आस्वादन।
नृत्यमध्ये सेइ श्लोक करेन पठन॥ 135॥

अनुवाद—महाप्रभु श्रीस्वरूप दामोदरके साथ जिन श्लोकोंके भावोंका आस्वादन करते थे, उन्हीं श्लोकोंका नृत्य करते हुए पाठ करते॥ 135॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 1/59-60, 69-72 और 76-84 संख्या देखें॥ 133-135॥

गोपियोंकी अपने घरमें श्रीकृष्णको पानेकी आकाङ्क्षा :—
श्रीमद्भागवत (10/82/48)—

आहुश्च ते नलिन-नाभ पदारविन्दं
योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः।
संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं
गेहं जुषामपि मनस्युदियात् सदा नः॥ 136॥

अनुवाद—[इसका शाब्दिक अर्थ है]—गोपियोंने कहा,—"प्रिय प्रभो! आपकी नाभि कमल-पुष्पके समान है। संसारकूपमें पतित जीवोंके लिये आपके चरणकमल ही एकमात्र आश्रय हैं। बड़े-बड़े ज्ञानी और योगी भी आपके चरणकमलोंकी आराधना करते हैं। वे ध्यानमें उनके दर्शनोंकी अभिलाषा रखते हैं, परन्तु यदा-कदा ही वे उनके दर्शन पाते हैं। यद्यपि हम गृह-शृंखलामें आबद्ध साधारण जीव हैं, किन्तु आपसे प्रार्थना करती हैं कि आपके ये चरणकमल हमारे हृदयमें भी उदित हों॥"136॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 1/81 संख्या देखें॥ 136॥

कृष्णेन्द्रिय-प्रीतिवाञ्छामय शुद्ध हृदयरूपी वृन्दावनमें ही श्रीकृष्णके उदय होनेकी योग्यता :—

"अन्येर हृदय—मन, मोर मन—वृन्दावन,
'मने' 'वने' एक करि' जानि।
ताँहा तोमार पदद्वय, कराह यदि उदय,
तबे तोमार पूर्ण कृपा मानि॥ 137॥

अनुवाद—श्रीमती राधारानीके भावोंमें विभावित होकर महाप्रभु श्रीजगन्नाथसे कह रहे हैं,—"संसारके लोगोंका मन ही हृदय है, परन्तु मेरा मन और वृन्दावन एक है, क्योंकि मेरा मन वृन्दावनसे कभी पृथक् नहीं होता। मेरा मन वृन्दावन है, जहाँ आप परम सुख अनुभव करते हो। वृन्दावनका आनन्द लेनेके लिये आप अपने चरणकमल मेरे मनरूपी वृन्दावनमें रखोगे, तो मैं इसे आपकी पूर्ण कृपा मानूँगी॥ 137॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अन्य लोगोंका मन ही हृदय है, किन्तु मेरा मन वृन्दावनसे पृथक् नहीं है। मैं मन और वृन्दावनको 'एक' ही जानती हूँ॥ 137॥

अनुभाष्य—प्राकृत मानव सङ्कल्प और विकल्पात्मक धर्मसे युक्त हृदयको 'मन' मानता है। प्राकृत-भोगबुद्धि परित्याग करके मैं अपने श्रीकृष्ण-सेवापरायण चित्तको ही श्रीराधाकृष्णकी विहार भूमि 'वृन्दावन' मानती हूँ। प्राकृत-विषय-चेष्टारहित मनको वृन्दावनसे 'अभिन्न' मानती हूँ॥ 137॥

शुद्ध हृदयमें श्रीकृष्णसङ्ग-लालसा :—

प्राणनाथ, शुन मोर निवेदन।
व्रज—आमार सदन, ताँहा तोमार सङ्गम,
ना पाइले ना रहे जीवन॥ 138॥ ध्रु॥

अनुवाद—हे प्राणनाथ! मेरा एक निवेदन सुनिये। व्रज मेरा घर है, वहाँ आपका सङ्ग प्राप्त नहीं करनेपर मेरा जीवन नहीं रहेगा॥ 138॥

कृष्णेन्द्रिय प्रीतिवाञ्छामें ऐश्वर्यसूचक ज्ञान शिथिल :—

पूर्वे उद्धव-द्वारे, एबे साक्षात् आमारे,
योग-ज्ञाने कहिला उपाय।
तुमि—विदग्ध, कृपामय, जानह आमार हृदय,
मोरे ऐछे कहिते ना युयाय॥ 139॥

ऐकान्तिक कृष्णप्रेममें उसके अतिरिक्त अन्य अभिनिवेश असम्भव :—

चित्त काढ़ि तोमा हैते, विषये चाहि लागाइते,
यत्न करि, नारि काढ़िबारे।
तारे ध्यान शिक्षा कराह, लोक हासाञा मार,
स्थानास्थान ना कर विचारे॥ 140॥

ऐश्वर्य ज्ञानके अभ्यासमें गोपियोंकी विरक्ति :—

नहे गोपी योगेश्वर, पदकमल तोमार,
ध्यान करि' पाइबे सन्तोष।
तोमार वाक्य-परिपाटी, तार मध्ये कुटिनाटी,
शुनि' गोपीर आरो बाढ़े रोष॥ 141॥

कृष्णविरहके ग्राससे ही उद्धारकी गोपियोंकी इच्छा, अपने संसार-बन्धनसे मुक्त होनेकी इच्छा नहीं :—

देह-स्मृति नाहि यार, संसार-कूप काँहा तार,
ताहा हैते ना चाहे उद्धार।
विरह-समुद्र-जले, काम-तिमिङ्गिल गिले,
गोपीगणे नेह' तार पार॥ 142॥

व्रजलीला और स्वजनोंको भूलनेके कारण श्रीकृष्णको उलाहना देना :—

वृन्दावन, गोवर्धन, यमुना-पुलिन, वन,
सेइ कुञ्जे रासादिक लीला।
सेइ व्रजेर जनगण, माता, पिता, बन्धुगण,
बड़ चित्र, केमने पासरिला॥ 143॥

श्रीकृष्णकी व्रजकी विस्मृतिको देखकर प्रियतमको दोष न देकर अपने भाग्यको धिक्कार :—

विदग्ध, मृदु, सद्गुण, सुशील, स्निग्ध, करुण,
तुमि, तोमार नाहि दोषाभास।
तबे ये तोमार मन, नाहि स्मरे व्रजजन,
से—आमार दुर्दैव-विलास॥ 144॥

यशोदाका दुःख बतलाकर आवेदनके द्वारा श्रीकृष्णकी करुणाको उदित करानेकी चेष्टा; श्रीकृष्णके विरहकी अपेक्षा व्रजवासियोंकी मृत्युकी कामना :—

ना देखि आपन-दुःख, देखि' व्रजेश्वरी-मुख,
व्रजजनेर हृदय विदरे।
किवा मार' व्रजवासी, किवा जीयाओ व्रजे आसि',
केन जीयाओ दुःख सहाइबारे?॥ 145॥

श्रीकृष्णकी ऐश्वर्यलीलामें व्रजवासियोंकी अरुचि, फिर भी व्रजके त्याग और श्रीकृष्णके विरहमें मृतप्राय :—

तोमार ये अन्यवेश, अन्य सङ्ग, अन्य देश,
व्रजजने कभु नाहि भाय।
व्रजभूमि छाड़िते नारे, तोमा ना देखिले मरे,
व्रजजनेर कि हबे उपाय?॥ 146॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 139-146॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे कृष्ण! तुम जब मथुरामें थे, तब उद्धवके माध्यमसे 'ज्ञानयोग'का उपदेश भेजकर कि ज्ञानयोगसे तुम्हें प्राप्त किया जा सकता है, यह बात तुमने कही थी। अब इस कुरुक्षेत्रमें साक्षात् मिलन होनेपर भी उसी प्रकार 'ज्ञानयोग' बतला रहे हो। मेरा हृदय—प्रेममय है, इसमें ज्ञानयोगका स्थान नहीं है। ऐसा जाननेपर भी तुम्हारा इस प्रकार उपदेश देना उचित नहीं है। मैं तुमसे चित्त हटाकर विषयमें लगानेकी इच्छा करनेपर भी वैसा नहीं कर पाती। इसलिये तुम्हारे प्रति ऐसी अनुरक्ति ही जब मेरा स्वभाव है, तब मुझे ध्यानकी शिक्षा देना—केवल लोकहास्य मात्र है; इसलिये तुमने स्थान-अस्थानका विचार नहीं किया है। गोपियाँ कोई योगेश्वर नहीं है कि तुम्हारे चरणकमलोंका ध्यान करके आनन्द प्राप्त करेंगी। तुम्हारे वचनोंकी परिपाटी उचित होनेपर भी गोपियोंको (अपने) ध्यानके विषयमें शिक्षा देना—केवल कुटिनाटी (कपटता मात्र) है। इस (ध्यानकी शिक्षाकी आवश्यकताको) सुनकर गोपियोंमें अधिक अभिमान उत्पन्न होता है। गोपियोंकी स्वाभाविक रूपसे ही जब देहकी स्मृति नहीं है, तब 'संसार-कूप'के नामपर तो उनका कुछ है ही नहीं। इसलिये मुक्तिजनक ध्यानकी पद्धति उनके लिये विफल (मात्र) है। तुम्हारे विरह-समुद्रमें पड़ी हुई गोपियोंको केवल तुम्हारी सेवा-कामरूपी तिमिङ्गल (बहुत बड़ी विशेष मछली) निगल रही है, उससे अर्थात् उस विरहसे उनका उद्धार करो। आश्चर्यकी बात यह है कि, तुम अपने उन व्रजजनों अर्थात् माता, पिता, बन्धुओंको कैसे भूल गये? तुम विशुद्ध पुरुष, मृदु, सद्गुणोंके द्वारा सदैव सुशील, स्निग्ध, करुण हो, इसलिये तुम्हारे ऐसे व्यवहारमें दोषाभास भी नहीं है। फिर भी तुम व्रजजनोंको अब

स्मरण नहीं करते हो, वह केवल हमारा ही दुर्दैवविलास (दुर्भाग्यका खेल) है। मैं अपने दुःखको नहीं देख रही हूँ, (किन्तु सत्य तो यह है कि), व्रजेश्वरी यशोदाका दुःख देखकर व्रजवासियोंका हृदय वास्तवमें फट जाता है। तुम व्रजवासियोंको विरहके द्वारा कभी तो मरे हुए जैसा बना देते हो, कभी मिलनके द्वारा जीवित करते हो,—किसलिये यह दुःख सहन करनेके लिये जीवित रखते हो, इस विषयमें कुछ नहीं कह सकती। तुम्हारा यह माथुर राजवेशादि धारण करना, व्रजसे पृथक् स्थानपर वास और महिषियोंका सङ्ग, यह व्रजवासियोंको बिल्कुल भी अच्छा नहीं लगता। व्रजवासियोंकी यही एक विचित्र बात है कि, वे व्रजभूमिको छोड़कर अन्यत्र नहीं जा सकते, और दूसरी ओर, तुम्हें नहीं देखनेपर मर भी रहे हैं, इसलिये व्रजवासियोंके लिये क्या उपाय होगा, उसे तुम ही जानते हो॥ 139-146॥

अनुभाष्य— *'उद्धव-द्वारे'*—भाः दशम स्कन्ध, 47वाँ अध्याय देखें।

'विषय'—श्रीकृष्णसे भिन्न वस्तु अथवा कार्य।

'कुटिनाटी'—कपटता।

देहस्मृति या देहमें अभिनिवेश होनेसे 'संसार' होता है—भाः 11/2/37, 11/3/6 आदि असंख्य भागवतके श्लोक इसके प्रमाण हैं, अधिकताके भयसे वे यहाँ उद्धृत नहीं किये जा रहे हैं। गोपियों (एवं सिद्ध महाभागवत अथवा परमहंसोकी भी) देहस्मृति नहीं होती, भाः 10/29/30, 33-34, 11/30/43, 10/32/22, 11/35/19 आदि श्लोक देखें।

'काम'—भःरःसिः पूर्व विभाग, साधनभक्ति लहरीमें गौतमीयतन्त्र-वाक्य—आदिलीला 4/162-214 संख्या एवं मध्यलीला 8/207-218 संख्या देखें।

'तिमिङ्गिल'—बड़ी व्हेल-मछलीको भी निगलनेमें जो समर्थ है, ऐसा बहुत बड़ा जलचर जन्तु।

'नेह'—ले जाओ।

'तार'—विरह-समुद्रका॥ 139-142॥

श्रीकृष्णको व्रजमें आनेके लिये कातर होकर आवेदन :—

तुमि—व्रजेर जीवन, व्रजराजेर प्राणधन,
तुमि—व्रजेर सकल सम्पद्।
कृपार्द्र तोमार मन, आसि' जीयाओ व्रजजन,
व्रजे उदय कराओ निज-पद॥ '147॥

अनुवाद—हे कृष्ण! तुम व्रजके जीवन हो। व्रजराज नन्द महाराजके प्राणधन हो। तुम तो समस्त व्रजकी एकमात्र सम्पत्ति हो। तुम्हारा मन कृपासे द्रवीभूत रहता है। तुम व्रजमें आकर व्रजवासियोंको सञ्जीवित करो। कृपाकर व्रजमें पदार्पण करो॥ 147॥

श्रीकृष्णकी लज्जा, व्याकुलता एवं
श्रीराधाको सान्त्वना :—

शुनिया राधिका-वाणी, व्रजप्रेम मने जानि,
भावे व्याकुलित देह-मन।
व्रजलोकेर प्रेम शुनि', आपनाके 'ऋणी' मानि',
करे कृष्ण ताँरे आश्वासन॥ 148॥

श्रीकृष्णका सहैतुक प्रत्युत्तर :—

'प्राणप्रिये, शुन, मोर ए सत्य-वचन।
तोमा-सबार स्मरणे, झुरोँ मुञि रात्रिदिने,
मोर दुःख ना जाने कोन जन॥ 149॥ ध्रु॥

अनुवाद—श्रीमती राधिकाके वचन सुनकर श्रीकृष्णके मनमें व्रजवासियोंके प्रति प्रेम जाग्रत हो उठा और उनके देह तथा मन व्याकुल हो गये। अपने प्रति व्रजवासियोंके प्रेमके विषयमें सुनकर वे स्वयंको ऋणी मानने लगे। तब श्रीकृष्ण श्रीमती राधिकाको आश्वासन देते हुए कहने लगे,—'हे प्राणप्रिय राधिके! मैं सत्य वचन कह रहा हूँ। तुम सबको स्मरण करके मैं रात-दिन रोता हूँ। मेरे दुःखको कोई भी नहीं जानता॥ 148-49॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'झुरोँ'*—रोता रहता हूँ॥ 149॥

अनुभाष्य— *'ऋणी'*—आदिलीला 4/179-180 संख्या देखें॥ 148॥

श्रीकृष्णके द्वारा व्रजवासियोंकी विशेषतः गोपियों और श्रीराधिकाकी स्तुति :—

व्रजवासी यत जन, माता, पिता, सखागण,
सबे हय मोर प्राणसम।
ताँर मध्ये गोपीगण, साक्षात् मोर जीवन,
तुमि—मोर जीवनेर जीवन॥ 150॥

व्रजवासियोंसे वियोग—श्रीकृष्णके ही दुर्भाग्यका फल :—

तोमा-सबार प्रेमरसे, आमाके करिल वशे,
आमि तोमार अधीन केवल।
तोमा-सबा छाड़ाञा, आमा दूर-देशे लञा,
राखियाछे दुर्दैव प्रबल॥ 151॥

अनुवाद—समस्त व्रजवासी—माता, पिता, सखादि सभी मेरे प्राणोंके समान हैं। उनमें भी गोपियाँ तो साक्षात् मेरे जीवन स्वरूप हैं और तुम तो मेरे जीवनका भी जीवन हो। तुम सबके प्रेमरसने मुझे वशमें कर रखा है, मैं तो केवल तुम्हारे अधीन हूँ। मेरा प्रबल दुर्दैव (दुर्भाग्य) ही तुम सबसे छुड़ाकर, मुझे दूर देशमें ले गया है॥ 150-151॥

परस्परका विच्छेद मृत्युजनक होनेपर भी परस्परकी प्रीतिके लिये कान्त और कान्ताको जीवन-धारणकी इच्छा :—

प्रिया प्रिय-सङ्गहीना, प्रिय प्रिया-सङ्ग बिना,
नाहि जीये,—ए सत्य प्रमाण।
मोर दशा शोने यबे, ताँर एइ दशा हबे,
एइ भये दुँहे राखे प्राण॥ 152॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 152॥

अमृतप्रवाह भाष्य—प्रियके सङ्गके बिना प्रिया स्त्री, प्रियाके सङ्गके बिना प्रिय पुरुष जीवन धारण नहीं कर सकते—यही सत्य प्रमाण है; तथापि (दोनों यही सोचकर) इसलिये जीवन धारण किये रहते हैं कि 'मेरी मृत्युको सुनकर उसकी भी मृत्यु होगी॥ '152॥

विरह होनेपर भी प्रियका मङ्गल अथवा प्रीतिवाञ्छा ही यथार्थ प्रेमका परिचय :—

सेइ सती—प्रेमवती, प्रेमवान् सेइ पति,
वियोगे ये वाञ्छे प्रिय-हिते।
ना गणे आपन-दुःख, वाञ्छे प्रियजन-सुख,
सेइ दुइ मिले अचिराते॥ 153॥

अनुवाद—वही सती ही प्रेमवती है तथा प्रेमवान् वही पति है, जो वियोगमें भी प्रियका हित चाहते हैं। वे अपने दुःखका विचार न करके केवल प्रियजनके सुखकी ही कामना करते हैं। ऐसे दोनों प्रेमियोंका शीघ्र ही मिलन होता है॥ 153॥

श्रीराधाको प्रबोध प्रदान करनेकी छलना :—

राखिते तोमार जीवन, सेवि आमि नारायण,
ताँर शक्त्ये आसि निति-निति।
तोमा-सने क्रीड़ा करि', पुनः याइ यदुपुरी,
ताहा तुमि मानह मोर स्फूर्त्ति॥ 154॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 154॥

अमृतप्रवाह भाष्य—तुम मेरी नित्यप्रिया हो और मेरे विरहमें तुम बचोगी नहीं—ऐसा जानकर मैं नारायणकी सेवा करते हुए उनकी विभुत्व-शक्तिके बलसे प्रतिदिन व्रजमें आकर तुम्हारे साथ क्रीड़ा करके पुनः यदुपुरी लौट जाता हूँ; इसलिये व्रजमें रहकर तुम सोचती हो कि तुम्हें मेरी स्फूर्त्ति हुई है॥ 154॥

अनुभाष्य— *'यदुपुरी'*—द्वारकामें और मथुरामें॥ 154॥

श्रीराधाप्रेमसे श्रीकृष्णका प्राकट्य :—

मोर भाग्य मो-विषये, तोमार ये प्रेम हये,
सेइ प्रेम—परम प्रबल।
लुकाञा आमा आने, सङ्ग कराय तोमा सने,
प्रकटेह आनिबे सत्वर॥ 155॥

श्रीराधाको अपने व्रज-गमन-विषयमें आश्वासन-दान :—

यादवेर विपक्ष, यत दुष्ट कंसपक्ष,
ताहा आमि कैलुँ सब क्षय।
आछे दुइ-चारि जन, ताहा मारि' वृन्दावन,
आइलाम आमि, जानिह निश्चय॥ 156॥

सेइ शत्रुगण हैते, व्रजजन राखिते,
रहि राज्ये उदासीन हञा।
येबा स्त्री-पुत्र-धने, करि राज्य-आवरणे,
यदुगणेर सन्तोष लागिया॥ 157॥

'व्रजमें आऊगाँ' कहकर श्रीराधासे श्रीकृष्णकी प्रतिज्ञा :—

तोमार ये प्रेमगुण, करे आमा आकर्षण,
आनिबे आमा दिन दश-विशे।
पुनः आसि' वृन्दावने, व्रजबन्धु तोमा-सने,
विलासिब रजनी-दिवसे॥' 158॥

श्रीकृष्णोक्त श्लोक श्रवणसे श्रीराधाको विश्वास :—

एत ताँरे कहि' कृष्ण, व्रजे याइते सतृष्ण,
एक श्लोक पड़ि' शुनाइल।
सेइ श्लोक शुनि' राधा, खण्डिल सकल बाधा,
कृष्णप्राप्त्ये प्रतीति हइल॥ 159॥

अनुवाद—नारायणकी कृपारूपी मेरे सौभाग्यसे मेरे प्रति तुम्हारा जो प्रेम है, वह प्रेम अति प्रबल है। वही मुझे गुप्तरूपसे व्रजमें लाकर तुम्हारे साथ मेरा सङ्ग कराता है। मुझे विश्वास है कि शीघ्र ही वह साक्षात् रूपमें भी मुझे वहाँ ले जायेगा। यादवोंके जो विपक्षी थे, कंस और उसके पक्षके जो दुष्ट राजा थे—मैंने उस सबका वध कर दिया है। अब तो केवल दो-चार दुष्ट लोग ही बचे हैं, निश्चय जानो कि उन्हें मारकर मैं वृन्दावनमें आ ही गया हूँ। उन शत्रुओंसे तुम व्रजवासियोंकी रक्षाके लिये ही मैं अपने राज्यमें रहता हूँ। परन्तु मैं उस राज्यके प्रति उदासीन हूँ। उस राज्यमें मेरे जो स्त्री-पुत्र-धन आदि हैं, उनका निर्वाह मैं केवल यादवोंकी सन्तुष्टिके लिये ही करता हूँ। तुम्हारा जो प्रेमरूपी गुण है, वही मुझे सदा वृन्दावनमें आकर्षित करता है और मुझे दस-बीस दिनोंमें व्रजमें ले जायेगा। पुनः वृन्दावनमें आकर मैं तुम्हारे और सब व्रजवधुओंके साथ रात-दिन विलास करूँगा।' श्रीराधासे इतना कहकर श्रीकृष्ण व्रजमें जानेके लिये आतुर हो गये। तब उन्होंने एक श्लोक कहा जिसे सुनकर श्रीराधाको विश्वास हो गया कि अब समस्त बाधाएँ दूर हो गयी हैं और उन्हें श्रीकृष्णप्राप्ति अवश्य होगी॥ 155-159॥

अनुभाष्य— *'येबा'*—यद्यपि॥ 157॥

गोपियोंका कृष्णप्रेम ही उनकी श्रीकृष्णप्राप्तिका कारण :—
श्रीमद्भागवत (10/82/44)—

मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते।
दिष्ट्या यदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां मदापनः॥ 160॥

अनुवाद—मेरे प्रति भक्ति ही जीवोंके लिये अमृत है। हे गोपियों! मेरे प्रति तुम्हारा जो स्नेह है, वही एकमात्र तुम लोगोंका मुझे प्राप्त करनेका कारण है॥ 160॥

अनुभाष्य—आदिलीला 4/23 संख्या देखें॥ 160॥

श्रीस्वरूपके साथ महाप्रभुका आस्वादन :—

एइ सब अर्थ प्रभु स्वरूपेर सने।
रात्रि-दिने घरे बसि' करे आस्वादने॥ 161॥

अनुवाद—भागवतके श्लोकोंके इन सब भावोंका महाप्रभु श्रीस्वरूप दामोदरके साथ रात-दिन अपने वासस्थानमें बैठकर आस्वादन करते थे॥ 161॥

श्रीजगन्नाथको देखकर राधाभावमें भावित
महाप्रभुका श्लोक पाठ :—

नृत्यकाले सेइ भावे आविष्ट हञा।
श्लोक पड़ि' नाचे जगन्नाथ-मुख चाञा॥ 162॥

अनुवाद—इन्हीं भावोंमें आविष्ट होकर महाप्रभु नृत्य कर रहे थे। श्रीजगन्नाथका मुख दर्शन करते हुए महाप्रभु नृत्य करते समय ये सब श्लोक पढ़ रहे थे॥ 162॥

ग्रन्थकारके द्वारा श्रीस्वरूप दामोदरकी स्तुति :—

स्वरूप-गोसाञिर भाग्य ना याय वर्णन।
प्रभुते आविष्ट याँर काय, वाक्य, मन॥ 163॥

अनुवाद—श्रीस्वरूप दामोदरके भाग्यका वर्णन नहीं किया जा सकता जो तन-मन और वचनसे महाप्रभुमें ही आविष्ट रहते थे॥ 163॥

कृष्णसेवारत महाप्रभु और श्रीस्वरूपकी इन्द्रियाँ अभिन्न :—

स्वरूपेर इन्द्रिये प्रभुर निजेन्द्रियगण।
आविष्ट हञा करे गान-आस्वादन॥ 164॥

अनुवाद—श्रीस्वरूप दामोदरकी इन्द्रियोंमें अपनी इन्द्रियोंको आविष्ट करके महाप्रभु उनके गानका आस्वादन कर रहे थे॥ 164॥

अमृतप्रवाह भाष्य—स्वरूप दामोदर जब इन सब भावोंका गान करते हैं, तब महाप्रभुकी नेत्र-कर्ण आदि अपनी इन्द्रियाँ स्वरूपकी इन्द्रियोंमें आविष्ट होकर गानका आस्वादन करने लगती हैं, अर्थात् दोनोंका एकचित्तता (चित्तका एक समान होना) और एकतानता (एक ही वस्तुके प्रति आकर्षित होना) सर्वोत्तम रूपसे उदित होता है॥ 164॥

कान्तकी उदासीनताके कारण मलिन-मुखवाली मानिनी श्रीराधाके भावोंमें आविष्ट महाप्रभु :—

भावेर आवेशे कभु भूमिते बसिया।
तर्जनीते भूमे लिखे अधोमुख हञा॥ 165॥

अनुवाद—भावाविष्ट होकर महाप्रभु कभी भूमिपर बैठ जाते और नीचेकी ओर मुख करके अपनी तर्जनी अङ्गुलीके द्वारा भूमिपर कुछ लिखने लगते॥ 165॥

महाप्रभुकी अङ्गुलीमें चोट लगनेके भयसे श्रीस्वरूपकी सतर्कता :—

अङ्गुलिते क्षत हबे जानि' दामोदर।
भये निज-करे निवारये प्रभु-कर॥ 166॥

अनुवाद—यह जानते हुए कि भूमिपर लिखनेसे महाप्रभुकी अङ्गुलीमें घाव हो जायेगा, श्रीस्वरूप दामोदरने अपने हाथोंसे उनको रोक दिया॥ 166॥

अनुभाष्य— *'दामोदर'*—श्रीस्वरूप॥ 166॥

श्रीस्वरूपके कीर्तनसे महाप्रभुके हृदयमें राधाभावके वैचित्र्य मूर्त्तिमान :—

प्रभुर भावानुरूप स्वरूपेर गान।
यबे येइ रस, ताहा करे मूर्त्तिमान॥ 167॥

अनुवाद—महाप्रभुके भावोंके अनुरूप ही श्रीस्वरूप दामोदर गान करते थे। जिस समय महाप्रभु जिस रसका आस्वादन करते थे, उसी समय उसके अनुरूप गान करके श्रीस्वरूप दामोदर उस रसको मूर्तिमान कर देते थे॥ 167॥

श्रीजगन्नाथके श्रीरूपका वर्णन :—

श्रीजगन्नाथेर देखे श्रीमुख-कमल।
ताहार उपर सुन्दर नयनयुगल॥ 168॥

सूर्येर किरणे मुख करे झलमल।
माल्य, वस्त्र, दिव्य, अलङ्कार, परिमल॥ 169॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीजगन्नाथके मुखकमल और उसके ऊपर शोभायमान सुन्दर नेत्रोंको देखा। उनके श्रीअङ्गोंपर माला, वस्त्र और दिव्य अलङ्कार थे। सूर्यकी किरणोंसे श्रीजगन्नाथका मुखकमल झलमल कर रहा था और सारा वातावरण सुगन्धित हो रहा था॥ 168-169॥

अनुभाष्य— *'परिमल'*—सुगन्ध॥ 169॥

महाप्रभुका दिव्य-उन्माद :—

प्रभुर हृदये आनन्दसिन्धु उथलिल।
उन्माद, झञ्झा-वात ततक्षणे उठिल॥ 170॥

आनन्दोन्मादे उठाय भावेर तरङ्ग।
नाना-भाव-सैन्ये उपजिल युद्ध-रङ्ग॥ 171॥

भावोदय, भावशान्ति, सन्धि, शाबल्य।
सञ्चारी, सात्त्विक, स्थायी स्वभाव-प्राबल्य॥ 172॥

अनुवाद—महाप्रभुके हृदयमें आनन्दके सागरकी लहरें उठने लगीं और उसमें उसी समय उन्मादकी तीव्रताने तूफानका रूप ले लिया। आनन्दके उन्मादमें अनेक भावोंकी तरङ्गें उठने लगीं और उन भावोंमें विरोधी सेनाओं जैसा युद्ध होने लगा। महाप्रभुमें कभी भाव उदय होते और अत्यधिक रूपमें प्रकट होकर कभी शान्त हो जाते, तो कभी अनेक भावोंकी सन्धि होती और कभी एक भाव दूसरोंको दबाकर प्रबल होनेसे भाव-शाबल्य होता। इस प्रकार सञ्चारी, सात्त्विक और स्थायी भावोंने महाप्रभुके शरीरपर अत्यधिक प्रबलता धारण की॥ 170-172॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'झञ्झावात'*—बीच-बीचमें आनेवाली तेज हवा।

'भावोदय', 'भावशान्ति', 'सन्धि', 'शाबल्य'—भावोदय, भावशान्ति, भावसन्धि, भावशाबल्य॥ 170-172॥

अनुभाष्य—*'उन्माद'*—मध्यलीला 2/66 संख्या देखें। भाव-सन्धि, भाव-शाबल्य आदिके लिये मध्यलीला 2/63 संख्या देखें॥ 170-172॥

स्वर्णगिरिके साथ महाप्रभुकी देह और पुष्पवृक्षके साथ सात्त्विक भावोंकी उपमा :—

प्रभुर शरीर येन शुद्ध-हेमाचल।
भाव-पुष्पद्रुम ताहे पुष्पित सकल॥ 173॥

महाप्रभुके प्रेम-दर्शनसे सभी श्रीकृष्णप्रेममें उन्मत :—

देखिते आकर्षये सबार चित्त-मन।
प्रेमामृतवृष्ट्ये प्रभु सिञ्चे सबार मन॥ 174॥

जगन्नाथ-सेवक यत राजपात्रगण।
यात्रिक लोक, नीलाचलवासी यत जन॥ 175॥

प्रभुर नृत्य प्रेम देखि' हय चमत्कार।
कृष्णप्रेम उपजिल हृदये सबार॥ 176॥

अनुवाद—महाप्रभुका शरीर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वह शुद्ध-स्वर्णका पर्वत था और उसपर भावरूपी पुष्पोंके वृक्ष सब पुष्पित हो रहे थे। इस प्रकार महाप्रभुके भावोंको देखकर सभीके चित्त और मन आकर्षित हो रहे थे। महाप्रभुने श्रीकृष्णप्रेमके अमृतकी वर्षा करके श्रीजगन्नाथके सेवक, राजकर्मचारी, यात्रीगण और सभी नीलाचलवासी आदि जितने भी लोग वहाँ उपस्थित थे, सभीके हृदयोंका सिञ्चन किया। महाप्रभुके नृत्य और प्रेमको देखकर सभीके मन चमत्कृत हुए और उनके दर्शनसे सभीके हृदयमें श्रीकृष्णप्रेम उदित हो गया॥ 173-176॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 2/81-82 संख्या देखें॥ 174-176॥

सभीका प्रेम-कलरव :—

प्रेमे नाचे, गाय, लोक, करे कोलाहल।
प्रभु-नृत्ये कैल यात्री चौगुण-मङ्गल॥ 177॥

अनुवाद—श्रीकृष्णप्रेममें मत्त होकर सभी लोग नृत्य-गान करते हुए कोलाहल कर रहे थे। महाप्रभुके नृत्यसे यात्रियोंकी मङ्गलध्वनि चौगुनी हो गयी॥ 177॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'चौगुण मङ्गल'*—चार गुणा मङ्गलध्वनि॥ 177॥

श्रीकृष्ण-बलरामके द्वारा भी महाप्रभुके नृत्यका दर्शन :—

अन्येर कि काय, जगन्नाथ-हलधर।
प्रभुर नृत्य देखि' सुखे चलिला मन्थर॥ 178॥

दोनोंके द्वारा महाप्रभुके नृत्यको देखकर चलना स्थगित करना :—

कभु सुखे नृत्यरङ्ग देखे रथ राखि'।
से कौतुक ये देखिल, सेइ तार साक्षी॥ 179॥

अनुवाद—अन्य लोगोंकी तो बात ही क्या, स्वयं श्रीजगन्नाथ और श्रीबलदेव भी महाप्रभुके नृत्यको देखनेके लिये धीरे-धीरे चलने लगे और कभी-कभी अपने रथको रोककर आनन्दसे महाप्रभुके नृत्यको देखते। इस कौतुकको जिसने देखा, वही उसका साक्षी है॥ 178-179॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'मन्थर'*—धीरे-धीरे॥ 178॥

नृत्य करते हुए महाप्रभुका राजाके आगे गिरने लगना :—

एइमत नृत्य प्रभु करिते भ्रमिते।
प्रतापरुद्रेर आगे लागिला पड़िते॥ 180॥

राजाके द्वारा महाप्रभुको पकड़ना, महाप्रभुकी बाह्यदशा :—

सम्भ्रमे प्रतापरुद्र प्रभुके धरिल।
ताँहाके देखिते प्रभुर बाह्य हइल॥ 181॥

बाह्यदशामें लोकशिक्षक जगद्गुरु आचार्यलीलाकारी महाप्रभुका राजाके स्पर्श करनेसे स्वयंको धिक्कार :—

राजा देखि' महाप्रभु करेन धिक्कार।
"छि, छि, विषयीर स्पर्श हइल आमार॥"182॥

अनुवाद—महाप्रभु जब इस प्रकार नृत्य और भ्रमण कर रहे थे, तब वे राजा प्रतापरुद्रके आगे गिरने लगे। राजा प्रतापरुद्रने महाप्रभुको गिरते हुए देखकर उन्हें आदरपूर्वक पकड़ लिया, परन्तु राजाको देखते ही महाप्रभुको बाहरी ज्ञान हो आया। राजाको देखते ही महाप्रभु अपनेको धिक्कारते हुए कहने लगे,—"छि, छि, मुझे एक विषयीका स्पर्श हो गया है॥"180–182॥

आवेशेते नित्यानन्द हैला असावधान।
काशीश्वर-गोविन्दादि छिला अन्यस्थान॥ 183॥

अनुवाद—उस समय श्रीनित्यानन्द प्रभु भी भावमें आविष्ट होनेके कारण असावधान हो गये थे और श्रीकाशीश्वर एवं श्रीगोविन्दादि महाप्रभुके सेवक भी किसी अन्य स्थानपर थे॥ 183॥

राजाकी दैन्यमयी श्रीकृष्णसेवा-दर्शनसे हृदयमें सन्तोष, भक्तिसाधकके हितके लिये बाहरसे रोषाभास :—

यद्यपि राजारे देखि' हाड़िर सेवने।
प्रसन्न हञाछे ताँरे मिलिबारे मने॥ 184॥

तथापि आपन-गणे करिते सावधान।
बाह्य किछु रोषाभास कैला भगवान्॥ 185॥

अनुवाद—यद्यपि राजाको श्रीजगन्नाथके झाड़ूदारका कार्य करते देखकर महाप्रभु प्रसन्न हुए थे और राजासे मिलना भी चाहते थे, तथापि अपने परिकरोंको सावधान करनेके लिये भगवान्‌ने बाहरसे कुछ क्रोधका आभास दिखलाया॥ 184–185॥

अनुभाष्य—*'हाड़िर सेवन'*—रास्तेमें झाड़ूदारका कार्य; मध्यलीला 13/15–18 संख्या देखें।

'आपन-गण'—भवसागरसे पार जानेके इच्छुक, निष्किञ्चन, भगवद्-भजनोन्मुख अर्थात् प्रेमकी भूमिकामें आरूढ़ होनेके इच्छुककी लीला करनेवाले भक्तगण॥ 184–185॥

महाप्रभुके वाक्यको सुनकर राजाको भय, श्रीसार्वभौमका आश्वासन :—

प्रभुर वचने राजार मने हैल भय।
सार्वभौम कहे,—"तुमि ना कर संशय॥ 186॥

तोमार उपरे प्रभुर सुप्रसन्न मन।
तोमा लक्ष्य करि' शिखायेन निजगण॥ 187॥

अवसर जानि' आमि करिब निवेदन।
सेइकाले याइ' करिह प्रभुर मिलन॥"188॥

अनुवाद—महाप्रभुके वचन सुनकर राजाके मनमें भय उत्पन्न हुआ, परन्तु श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने राजाको सान्त्वना देते हुए कहा,—"आप किसी भी प्रकारका संशय मत करें। महाप्रभु आपपर बहुत प्रसन्न हैं। आपको लक्ष्य करके वे अपने परिकरोंको शिक्षा देना चाहते हैं। उचित समय आनेपर मैं आपके विषयमें निवेदन करूँगा, तब आपको महाप्रभुसे मिलना सहज हो जायेगा॥"186–188॥

स्वयं महाप्रभुके द्वारा रथ-सञ्चालन :—

तबे महाप्रभु रथ प्रदक्षिण करिया।
रथ-पाछे याइ' ठेले रथे माथा दिया॥ 189॥

रथके चलते हुए देखकर लोगोंके द्वारा हरिध्वनि :—

ठेलितेइ चलिल रथ 'हड़' 'हड़' करि'।
चतुर्दिके लोक सबे बले 'हरि' 'हरि'॥ 190॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने रथकी परिक्रमा की और रथके पीछे जाकर रथको अपने माथेसे ठेलने लगे। रथको ठेलते ही रथ 'हड़' 'हड़' शब्द करता हुआ आगे चलने लगा। चारों ओरसे सभी लोग 'हरि' 'हरि' बोलने लगे॥ 189–190॥

सुभद्रा-बलरामके रथके आगे सगण महाप्रभुका नृत्य :—

तबे प्रभु निज-भक्तगण लञा सङ्गे।
बलदेव-सुभद्राग्रे नृत्य करे रङ्गे॥ 191॥

उसके बाद श्रीजगन्नाथके रथके आगे नृत्य :—

ताँहा नृत्य करि' जगन्नाथाग्रे आइला।
जगन्नाथ-आगे नृत्य करिते लागिला॥ 192॥

अनुवाद—तब महाप्रभु अपने भक्तोंको साथ लेकर श्रीबलदेव एवं श्रीसुभद्राके रथोंके आगे आनन्दसे नृत्य करने लगे। कुछ देर वहाँ नृत्य करनेके बाद महाप्रभु श्रीजगन्नाथके सामने आये। तब श्रीजगन्नाथके रथके आगे नृत्य करने लगे॥ 191–192॥

बलगण्डिपर रथका रुकना :—

चलिया आइल रथ 'बलगण्डि'-स्थाने।
जगन्नाथ राखि' देखे डाहिने-वामे॥ 193॥

वामे—'विप्रशासन', नारिकेल-वन।
डाहिने त' पुष्पोद्यान येन वृन्दावन॥ 194॥

आगे नृत्य करे गौर लञा भक्तगण।
रथ राखि' जगन्नाथ करेन दरशन॥ 195॥

अनुवाद—रथ चलते-चलते बलगण्डि नामक स्थानपर पहुँच गया। वहाँ रथको रोककर श्रीजगन्नाथ दायें-बायें देखने लगे। बाईं ओर ब्राह्मणोंकी बस्ती और नारियलके वृक्षोंका वन था और दायीं और वृन्दावन जैसा सुन्दर पुष्पोंका उद्यान था। रथके आगे महाप्रभु अपने भक्तोंके साथ नृत्य कर रहे थे और श्रीजगन्नाथ रथको रोककर नृत्यका दर्शन करने लगे॥ 193–195॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'बलगण्डि'-स्थाने*—श्रद्धाबालु और अर्द्धासनी देवीके बीचमें जो स्थान है, उसका नाम 'बलगण्डि' है॥ 193॥

अनुभाष्य—उड़ीसामें ब्राह्मणोंकी बस्तीको 'विप्रशासन' कहते हैं॥ 194॥

श्रीजगन्नाथके द्वारा उत्तम भोगोंका आस्वादन :—

सेइ स्थले भोग लागे, आछये नियम।
कोटि भोग जगन्नाथ करे आस्वादन॥ 196॥

जगन्नाथेर छोट-बड़ यत भक्तगण।
निज निज उत्तम-भोग करे समर्पण॥ 197॥

अनुवाद—उस स्थानपर श्रीजगन्नाथको भोग लगता है, ऐसा नियम है। वहाँ असंख्य भोग श्रीजगन्नाथको अर्पित किये गये और उन्होंने सभीका आस्वादन किया। श्रीजगन्नाथके कनिष्ठसे उत्तम जितने भी भक्त हैं, सभीने अपने लाये हुए उत्तम भोग समर्पित किये॥ 196–197॥

छोटे-बड़े, प्रजा-राजा सभीके द्वारा भोग समर्पण :—

राजा, राजमहिषीवृन्द, पात्र, मित्रगण।
नीलाचलवासी यत छोट-बड़ जन॥ 198॥

नाना-देशेर देशी यत यात्रिक जन।
निज-निज-भोग ताँहा करे समर्पण॥ 199॥

आगे-पाछे, दुइ पार्श्वे उद्यानेर-वने।
येइ याहा पाय, लागाय,—नाहिक नियमे॥ 200॥

अनुवाद—उस स्थानपर स्वयं राजा और उनकी महिषियाँ, राजमन्त्री, राजाके मित्रों एवं नीलाचलवासी सभी छोटे-बड़े लोगों तथा अनेक देशोंसे आये जितने भी यात्री थे, अपना-अपना भोग लाकर उन्होंने श्रीजगन्नाथको वहाँ समर्पित किया। रथके आगे-पीछे, दोनों ओर उद्यानोंमें, जिसे जहाँ स्थान मिला, उसने वहींसे श्रीजगन्नाथको भोग लगाया, वहाँ किसी विशेष स्थानसे भोग लगानेका नियम नहीं है॥ 198–200॥

भोगके समय लोगोंका एकत्रित होना, विश्राम करनेके लिये महाप्रभुका निकटस्थ उद्यानमें जाना :—

भोगेर समय लोकेर महा भिड़ हैल।
नृत्य छाड़ि' महाप्रभु उपवने गेल॥ 201॥

प्रेमावेशे महाप्रभु उपवन पाञा।
पुष्पोद्याने गृहपिण्डाय रहिला पड़िया॥ 202॥

शीतल वायुसे परिश्रम दूर होना :—

नृत्य-परिश्रमे प्रभुर देहे घन घर्म।
सुगन्धि शीतल-वायु करेन सेवन॥ 203॥

अनुवाद—भोगके समय वहाँ लोगोंकी बहुत भीड़ हो गयी, इसलिये महाप्रभु नृत्य छोड़कर उपवनमें चले गये। प्रेमोवेशमें महाप्रभु उपवनमें जाकर एक पुष्प-उद्यानमें एक चबूतरेके ऊपर लेट गये। नृत्यके परिश्रमसे महाप्रभुका शरीर पसीनेसे तर-बतर हो गया था। इसलिये महाप्रभु उस उपवनमें प्रवाहित हो रही सुगन्धित, शीतल वायुका आनन्द लेने लगे॥ 201–203॥

कीर्तनकारियोंका वृक्षोंके नीचे विश्राम :—

यत भक्त कीर्त्तनीया आसिया आराम।
प्रतिवृक्षतले सबे करेन विश्राम॥ 204॥

अनुवाद—जितने भी भक्त सङ्कीर्तन कर रहे थे, वे सब उस उपवनमें आकर प्रत्येक वृक्षके नीचे विश्राम करने लगे॥ 204॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'*आराम*'—उद्यानमें (उपवन, वृक्षवाटिका, बागान)॥ 204॥

महाप्रभुका इस प्रकार महासङ्कीर्तन :—

एइ त' कहिल प्रभुर महासङ्कीर्त्तन।
जगन्नाथेर आगे यैछे करिल नर्त्तन॥ 205॥

श्रीरूप गोस्वामीके चैतन्याष्टकमें रथके आगे महाप्रभुके नृत्यका वर्णन :—

रथाग्रेते प्रभु यैछे करिला नर्त्तन।
श्रीचैतन्याष्टके रूप-गोसाञि करयाछे वर्णन॥ 206॥

अनुवाद—(ग्रन्थकार कह रहे हैं)—यहाँ तक मैंने महाप्रभुके महासङ्कीर्तनका और जैसे उन्होंने श्रीजगन्नाथके रथके आगे नृत्य किया, उसका वर्णन किया है। श्रीरूप गोस्वामीने स्वरचित श्रीचैतन्याष्टकमें श्रीजगन्नाथके रथके आगे महाप्रभुने जिस प्रकारसे नृत्य किया था, उसका वर्णन किया है॥ 205–206॥

स्तवमालामें प्रथम चैतन्याष्टक (7) श्लोकमें श्रीरूप गोस्वामी-वाक्य :—

रथारूढ़स्यारादधिपदवि नीलाचलपते-
रदभ्रप्रेमोर्मिस्फुरितनटनोल्लासविवशः।
सहर्षं गायद्भिः परिवृत-तनुर्वैष्णवजनैः
स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम्॥ 207॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 207॥

अमृतप्रवाह भाष्य—रथपर आरूढ़ नीलाचलपतिके सम्मुख अधिक प्रेमकी लहरोंसे स्फुरित नाट्योल्लाससे विवश होकर आनन्दके सहित सङ्कीर्तनकारी एवं वैष्णवोंके द्वारा जो आवृत (घिरे हुए) हैं, वे श्रीचैतन्यदेव क्या पुनः मेरे दृष्टिपथ पर आयेंगे?॥ 207॥

तेरहवें अध्यायका अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

अनुभाष्य—श्रीरूप गोस्वामीने तीन 'श्रीचैतन्याष्टकों'की रचना की है, उनमेंसे प्रथम अष्टकका सातवाँ श्लोक—

रथारूढ़स्य (रथोपरि स्थितस्य) नीलाचलपतेः (जगन्नाथ-देवस्य) आरात् (समीपे) अधिपदवि (प्रधानपथे) अदभ्र-प्रेमोर्मिस्फुरित-नटनोल्लासविवशः (अदभ्रेण अधिकेन प्रेमोर्मिणा प्रेमतरङ्गेण स्फुरितः प्रतिबिम्बितः यः नटनोल्लासः नर्त्तन-विलास-हर्षः, तेन विवशः श्रम-विह्वलः) सहर्षं (सानन्दं) गायद्भिः (कीर्त्तनपरैः) वैष्णव-जनैः (भक्तवृन्दैः) परिवृतः-तनुः (वेष्टितविग्रहः एवम्भूतः) सः चैतन्यः (गौरचन्द्रः) पुनरपि किं मे (मम) दृशोः पदं (नयनपथं) यास्यति (प्राप्स्यति)?

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें।

श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती त्रिदण्डिपादने स्वकृत 'श्रीराधारससुधानिधि'में भी—

"निन्दन्तं पुलकोत्करेण विकसन्नीपप्रसूनच्छविं प्रोर्द्धीकृत्य

भुजद्वयं हरि-हरीत्युच्चैर्वदन्तं मुहुः। नृत्यन्तं द्रुतमश्रुनिर्झरचयैः सिञ्चन्तमुर्वीतलं गायद्भिर्निजपार्षदैः परिवृतं श्रीगौरचन्द्रं स्तुमः॥"

अर्थात् "जो सात्त्विक भावोंसे उदित पुलकादि समूहके द्वारा परिशोभित श्रीअङ्गशोभाके द्वारा विकसित कदम्ब-पुष्पकी शोभाको भी निन्दित कर रहे हैं, सुविशाल दोनों भुजाओंको ऊपर उठाकर उच्च स्वरसे बार बार 'हरि-हरि' बोल रहे हैं, चञ्चल चरणोंसे नृत्य करते-करते अश्रु-प्रवाह धाराके द्वारा धरतीका सिञ्चन कर रहे हैं, पार्षदोंके द्वारा परिवेष्टित कीर्तनरस-विनोदी उन श्रीगौरचन्द्रको मैं प्रणाम करता हूँ॥"207॥

तेरहवें अध्यायका अनुभाष्य समाप्त॥

रथके आगे महाप्रभुके नृत्य-श्रवणसे प्रेमभक्तिकी प्राप्ति :—

इहा येइ शुने, सेइ श्रीचैतन्य पाय।
सुदृढ़ विश्वास-सह प्रेमभक्ति हय॥208॥

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥209॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते मध्यखण्डे रथाग्रे नर्त्तनं नाम त्रयोदश-परिच्छेदः।

अनुवाद—श्रीजगन्नाथके रथके आगे महाप्रभुके नृत्यकी लीलाको जो व्यक्ति सुनेगा, उसे महाप्रभुकी प्राप्ति होगी और सुदृढ़ विश्वासके साथ प्रेमाभक्ति प्राप्त होगी। श्रीरूप-रघुनाथ गोस्वामीके चरणकमलोंकी कृपाभिलाषा करते हुए कृष्णदास इस श्रीचैतन्यचरितामृतका वर्णन कर रहा है॥208-209॥

श्रीचैतन्यचरितामृतके मध्यखण्डमें रथके आगे नृत्य नामक तेरहवें अध्यायका अनुवाद समाप्त।

चित्र-14

चौदहवाँ अध्याय

कथासार—बलगण्डि-उद्यानमें महाप्रभु प्रेमावेशमें थे, तब राजा प्रतापरुद्रदेव अकेले वैष्णव वेश धारण करके वहाँ आये और भागवतके श्लोकोंका पाठ करते-करते महाप्रभुके चरणोंको दबाने लगे। प्रेमावेशमें महाप्रभुने उनका आलिङ्गन करके कृपा की। भक्तोंके साथ महाप्रभुने बलगण्डि-भोगके प्रसादकी सेवा की। उसके बाद रथके न चलनेपर, राजाने अनेक मतवाले हाथियोंको लगाया, परन्तु वे भी रथको नहीं चला पाये। तब महाप्रभुने स्वयं अपने सिरसे रथको धकेलकर उसे चलाया और फिर भक्तगण उस समय रस्सी खींचने लगे। गुण्डिचाके निकट आइटोटामें महाप्रभुका विश्राम स्थान हुआ। श्रीजगन्नाथके सुन्दराचलमें वास करनेपर महाप्रभुको वृन्दावनकी लीलाओंकी स्फूर्त्ति हो आई। इन्द्रद्युम्न सरोवरमें महाप्रभुकी अपने भक्तों सहित जल-क्रीड़ा हुई। नवरात्र-यात्रामें महाप्रभु जगन्नाथ-वल्लभ उद्यानमें रहे और पञ्चमीके दिन 'हेरा-पञ्चमी' लीलाके दर्शनमें (महाप्रभुका श्रीस्वरूप दामोदरके साथ) लक्ष्मी और गोपियोंके स्वभावको लेकर अनेक वार्त्तालाप हुआ था। श्रीस्वरूपके मुखसे राधिकाके भावोंकी सर्वोत्कर्षताके विषयमें सुनकर महाप्रभुको परमानन्द हुआ। पुनर्यात्राके समय कीर्तनादि होनेके बाद कुलीनग्रामवासी श्रीरामानन्द वसु और सत्यराज खाँको प्रत्येक वर्ष (श्रीजगन्नाथके रथके लिये) 'रेशमी डोरी' लानेके लिये श्रीमन्महाप्रभुने आज्ञा दी।

—(अमृतप्रवाह भाष्य)

'हेरा-पञ्चमी'के दर्शनमें नृत्य करते हुए श्रीगौरसुन्दर :—

गौरः पश्यन्नात्मवृन्दैः श्रीलक्ष्मीविजयोत्सवम्।
श्रुत्वा गोपीरसोल्लासं हृष्टः प्रेम्णा ननर्त्त सः॥1॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥1॥

अमृतप्रवाह भाष्य—अपने भक्तों सहित लक्ष्मीदेवीके विजयोत्सवका दर्शन करके और गोपियोंका रासोल्लास श्रवण करके प्रसन्नचित्त होकर श्रीगौरचन्द्रने नृत्य किया था॥1॥

अनुभाष्य—

सः गौरः आत्मवृन्दैः (स्वपार्षदगणैः) श्रीलक्ष्मी-विजयोत्सवं पश्यन् गोपीरसोल्लासं (गोपीनां पारकीयरसातिशयं) श्रुत्वा हृष्टः सन् प्रेम्णा (परमया प्रीत्या) ननर्त्त।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥1॥

जय जय गौरचन्द्र श्रीकृष्णचैतन्य।
जय जय नित्यानन्द जयाद्वैत धन्य॥2॥

जय जय श्रीवासादि गौड़ेर भक्तगण।
जय श्रोतागण,—याँर गौर प्राणधन॥3॥

अनुवाद—श्रीगौरचन्द्र श्रीकृष्णचैतन्यकी जय हो, जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जय हो, जय हो और धन्य श्रीअद्वैताचार्य प्रभुकी जय हो। श्रीवासादि गौड़-भक्तोंकी जय हो, जय हो तथा ग्रन्थके श्रोताओंकी जय हो, श्रीगौरचन्द्र जिनके प्राणधन हैं॥2-3॥

महाप्रभुके विश्रामके समय राजाका प्रवेश :—

एइमत प्रभु आछेन प्रेमेर आवेशे।
हेनकाले प्रतापरुद्र करिल प्रवेशे॥4॥

अनुवाद—इस प्रकार महाप्रभु प्रेमके आवेशमें जब विश्राम कर रहे थे, उस समय राजा प्रतापरुद्रने पुष्पोद्यानमें प्रवेश किया॥4॥

दीन वैष्णव-वेशमें सभी वैष्णवोंकी आज्ञा लेकर बन्द नेत्रोंसे महाप्रभुका पाद-सम्वाहन :—

सार्वभौम-उपदेशे छाड़ि' राजवेश।
एकला वैष्णव-वेशे करिल प्रवेश॥ 5॥

सब-भक्तेर आज्ञा निल योड़-हात हञा।
प्रभु-पद धरि' पड़े साहस करिया॥ 6॥

आँखि मुदि' प्रेमे प्रभु भूमिते शयान।
नृपति नैपुण्ये करे पाद-सम्वाहन॥ 7॥

राजाके द्वारा गोपीगीतका पाठ :—

रासलीलार श्लोक पड़ि' करेन स्तवन।
"जयति तेऽधिक" अध्याय करेन पठन॥ 8॥

अनुवाद—श्रीसार्वभौमके उपदेशानुसार राजा प्रतापरुद्रने राजवेशको छोड़कर वैष्णववेशमें अकेले पुष्पोद्यानमें प्रवेश किया। राजाने पहले सभी भक्तोंसे हाथ जोड़कर आज्ञा ली। तब राजाने बहुत साहस करके महाप्रभुके श्रीचरणोंको पकड़ लिया। महाप्रभु प्रेमावेशमें आँखें मूँदकर भूमिपर लेटे हुए थे और राजा बड़ी निपुणतासे उनके चरणोंको दबाने लगे तथा साथ ही श्रीमद्भागवतमें वर्णित रासलीलाके श्लोकोंका पाठ करने लगे। उन्होंने "जयति तेऽधिक" श्लोकसे आरम्भ होनेवाले अध्यायका पाठ आरम्भ किया॥ 5-8॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*"जयति तेऽधिक" अध्याय*—रासपञ्चध्यायके बीचमें "गोपीगीत"—दशम स्कन्धमें 31वाँ अध्याय॥ 8॥

महाप्रभुका सन्तोष और सुननेका आग्रह :—

शुनिते शुनिते प्रभुर सन्तोष अपार।
'बल, बल' बलि' प्रभु बले बार बार॥ 9॥

प्रेमाविष्ट महाप्रभुका राजाको आलिङ्गन :—

'तब कथामृतं' श्लोक राजा ये पड़िल।
उठि' प्रभु प्रेमावेशे आलिङ्गन कैल॥ 10॥

स्वयंको प्रचुर लाभान्वित जानकर राजाके प्रति कृतज्ञता :—

"तुमि मोरे दिले बहु अमूल्य रतन।
मोर किछु दिते नाहि, दिलुँ आलिङ्गन॥"11॥

अनुवाद—सुनते-सुनते महाप्रभुको अपार सन्तोष हुआ और वे बार-बार 'बोलो बोलो' कहने लगे। जैसे ही राजा प्रतापरुद्रने 'तव कथामृतं' श्लोक पढ़ा, तभी महाप्रभुने उठकर प्रेमावेशमें उनका आलिङ्गन किया और कहा,—"तुमने मुझे बहुत अमूल्य रत्न दिये हैं, परन्तु इसके बदलेमें मेरे पास तुम्हें देनेके लिये कुछ नहीं है, इसलिये मैं तुम्हें आलिङ्गन ही दे सकता हूँ॥"9-11॥

दोनोंमें अश्रु और कम्प :—

एत बलि' सेइ श्लोक पड़े बार बार।
दुइजनार अङ्गे कम्प, नेत्रे जलधार॥ 12॥

अनुवाद—इतना कहकर महाप्रभु उस श्लोकको बार-बार पढ़ने लगे। महाप्रभु और राजा प्रतापरुद्र, दोनोंके अङ्ग काँपने लगे तथा उनके नेत्रोंसे अश्रुओंकी धारा बहने लगी॥ 12॥

भगवत्कथामृत वितरण करनेवाला ही सर्वश्रेष्ठ दाता :—
(श्रीमद्भागवत 10/31/9)—

तव कथामृतं तप्तजीवनं,
कविभिरीड़ितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥ 13॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 13॥

अमृतप्रवाह भाष्य—हे प्रिय, बहुत जन्मोंमें बहु-सुकृतिकारी व्यक्ति जगत्में आकर, तुम्हारे प्रेममें सन्तप्त व्यक्तियोंके जीवन-स्वरूप, कवियोंके सङ्गीत, कल्मषका नाश करनेवाले, श्रवणमात्रसे मङ्गल करनेवाले, सर्वोत्कृष्ट, सर्वव्यापक तुम्हारे कथामृतका गान करते हैं॥ 13॥

अनुभाष्य—रासक्रीड़ाके समय श्रीकृष्णके अचानक अन्तर्धान होनेपर कृष्णैकप्राणा (कृष्णमयी) गोपियाँ श्रीकृष्णके विरहमें अत्यन्त कातर होकर तन्मय चित्तसे रासक्रीड़ा-स्थलसे यमुनाके तटपर आकर इन सब गीतोंके द्वारा श्रीकृष्णका विविध गुणगान कर रही हैं—

ये जनाः भुवि (संसारे) तप्तजीवनं (विरहतापक्लिष्टानां प्राणस्वरूपं) कविभिः (कृष्णरसविद्भिः) ईड़ितम् (आराधितं) कल्मषापहं (विरहज्वरदुःखविनाशकं) श्रवणमङ्गलं (कर्णरसायनं) श्रीमत् (सर्वशक्तिसमन्वितं) तव (हरेः) कथामृतं (सुधात्मकां कथाम्) आततं (विस्तृतं) गृणन्ति (कीर्त्तयन्ति), [ते एव जनाः] भूरिदाः (वदान्यवराः)।

श्लोक-भावानुवाद—जो लोग संसारमें तुम्हारे विरहमें सन्तप्त व्यक्तियोंके जीवन-स्वरूप, कृष्णरसविद्-जनोंके द्वारा आराधित, विरहज्वरदुःखविनाशक, कर्णरसायन, सर्वशक्तियुक्त तुम्हारे कथामृतका सर्वत्र कीर्तन करते हैं, वे लोग ही श्रेष्ठ वदान्य (दाता) हैं॥ 13॥

अनजानेमें राजाका आलिङ्गन :—

'भूरिदा' 'भूरिदा' बलि' करे आलिङ्गन।
इँहो नाहि जाने,—इँहो हय कोन जन॥ 14॥

अनुवाद—महाप्रभु राजा प्रतापरुद्रको 'भूरिदा' 'भूरिदा' अर्थात् दानियोंमें सर्वोत्तम कहकर उनका आलिङ्गन करने लगे, परन्तु वे यह नहीं जानते थे कि ये कौन हैं॥ 14॥

अनुभाष्य—पहलेवाले *'इँहो'*—शब्दसे महाप्रभुको तथा बादवाले *'इँहो'*—शब्दसे राजा प्रतापरुद्रको समझना चाहिए॥ 14॥

राजाकी पूर्व-सेवाको देखनेसे महाप्रभुकी कृपा :—

पूर्व-सेवा देखि' ताँरे कृपा उपजिल।
अनुसन्धान बिना कृपा-प्रसाद करिल॥ 15॥

चैतन्यकी कृपामें अधिकार-विचार अथवा कारण नहीं :—

एइ देख, चैतन्येर कृपा-महाबल।
तार अनुसन्धान बिना कराय सफल॥ 16॥

अनुवाद—राजा प्रतापरुद्रकी (श्रीजगन्नाथके रथके आगे झाड़ू लगानेकी) पूर्व-सेवाको देखकर महाप्रभुकी उनके प्रति कृपा उत्पन्न हुई थी। इसलिये अब बिना पूछे कि वे कौन हैं, उन्होंने राजाको कृपा-प्रसाद प्रदान किया। महाप्रभुकी कृपाका महाबल देखो, राजाके बारेमें बिना पूछे ही उनका जीवन सफल कर दिया॥ 15-16॥

प्रेमावेशमें राजाके परिचयकी जिज्ञासा :—

प्रभु बले,—"के तुमि, करिला मोर हित?
आचम्बिते आसि' पियाउ कृष्णलीलामृत?" 17॥

राजाका 'कृष्णदासानुदास' कहकर अपना परिचय देना :—

राजा कहे,—"आमि तोमार दासेर दास।
भृत्येर भृत्य कर,—एइ मोर आश॥" 18॥

अनुवाद—अन्तमें महाप्रभुने पूछा,—"तुम कौन हो जो मेरा इतना हित कर रहे हो? अचानक आकर मुझे कृष्णलीलामृतका पान करा रहे हो?" राजा प्रतापरुद्रने कहा—"मैं आपके दासोंका दास हूँ। मेरी यही अभिलाषा है कि आप मुझे अपने दासोंके दासरूपमें स्वीकार कीजिये॥" 17-18॥

महाप्रभुके द्वारा राजाको अपना ऐश्वर्य दिखाना :—

तबे महाप्रभु ताँरे ऐश्वर्य देखाइल।
'कारेह ना कहिबे' एइ निषेध करिल॥ 19॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने राजाको अपना कुछ ऐश्वर्य दिखलाया और 'इसे किसीसे मत कहना' कहकर उन्हें निषेध किया॥ 19॥

सर्वान्तर्यामी महाप्रभुका बाह्य-दशामें भावावेशमें राजाके दर्शनकी घटना अप्रकाशित :—

'राजा'—हेन ज्ञान कभु ना कैल प्रकाश।
अन्तरे सकल जानेन, बाहिरे उदास॥ 20॥

अनुवाद—महाप्रभु भीतरसे सब कुछ जानते थे कि क्या हो रहा है, बाहरसे उसे प्रकाश नहीं किया। उन्होंने यह भी प्रकट नहीं किया कि वे राजा प्रतापरुद्रसे बात कर रहे थे॥ 20॥

भक्तोंके द्वारा राजाके भाग्यकी प्रशंसा :—

प्रतापरुद्रेर भाग्य देखि' भक्तगणे।
राजारे प्रशंसे सबे आनन्दित-मने॥ 21॥

अनुवाद—राजा प्रतापरुद्रके सौभाग्यको देखकर सभी भक्तको बहुत आनन्द हुआ और वे उनकी प्रशंसा करने लगे॥ 21॥

महाप्रभु और भक्तोंकी वन्दना करके राजाका प्रस्थान :—

दण्डवत् करि' राजा बाहिरे चलिला।
योड़ हस्त करि' सब भक्तेरे वन्दिला॥ 22॥

अनुवाद—राजा प्रतापरुद्रने हाथ जोड़कर सभी भक्तोंकी वन्दना की और महाप्रभुको दण्डवत् प्रणाम करके बाहर चले आये॥ 22॥

सभीके मध्याह्न स्नानके बाद श्रीवाणीनाथके द्वारा प्रचुर प्रसाद लाना :—

मध्याह्न करिला प्रभु लञा भक्तगण।
वाणीनाथ प्रसाद लञा करिल गमन॥ 23॥

सार्वभौम-रामानन्द-वाणीनाथे दिया।
प्रसाद पाठाल राजा बहुत करिया॥ 24॥

अनुवाद—महाप्रभुने भक्तोंको साथ लेकर मध्याह्न स्नान किया। उधर श्रीवाणीनाथ सबके लिये प्रसाद लेने गये। राजा प्रतापरुद्रने श्रीसार्वभौम, श्रीरामानन्द राय और श्रीवाणीनाथके द्वारा बहुतसा प्रसाद भिजवा दिया॥ 23-24॥

विचित्र प्रसाद :—

'बलगण्डि भोगे'र प्रसाद—उत्तम अनन्त।
'नि-सकड़ि' प्रसाद आइल, यार नाहि अन्त॥ 25॥

छाना, पाना, पैड़, आम्र, नारिकेल, काँठाल।
नानाविध कदली, आर बीज-ताल॥ 26॥

नारङ्ग, छोलङ्ग, टावा, कमला, बीजपूर।
बादाम, छोहारा, द्राक्षा, पिण्डखर्जूर॥ 27॥

मनोहरा, लाड्डु आदि शतेक प्रकार।
अमृतगुटिका-आदि, क्षीर्सा अपार॥ 28॥

अमृतमण्डा, सरवती, आर कुमड़ा-कुरी।
रसामृत, सरभाजा आर सरपुरी॥ 29॥

हरिवल्लभ, सेँओति, कर्पूर, मालती।
डालि-मरिच-लाड्डु, नवात, अमृति॥ 30॥

पद्मचिनि, चन्द्रकान्ति, खाजा, खण्डसार।
वियरि, कद्मा, तिलाखाजार प्रकार॥ 31॥

नारङ्ग-छोलङ्ग-आम्र-वृक्षेर आकार।
फूल-फल-पत्रयुक्त खण्डेर विकार॥ 32॥

दधि, दुग्ध, ननी, तक्र, रसाला, शिखरिणी।
स-लवण, मुद्गाङ्कुर, आदा खानि खानि॥ 33॥

लेम्बु-कुल आदि नानाप्रकार आचार।
लिखिते ना पारि प्रसाद कतेक प्रकार॥ 34॥

अनुवाद—'बलगण्डि' पर लगनेवाले भोगका प्रसाद उत्तम कोटिका और मात्रामें अनन्त होता है। राजाने 'नि-सकड़ि' अर्थात् जो पकाया न गया हो, वह प्रसाद इतना भेजा जिसका कोई अन्त नहीं था। उस प्रसादमें दही, फलोंका रस, डाब (पानीवाला नारियल), आम, सूखा नारियल, कटहल, अनेक प्रकारके केले और तालके बीज थे। नारङ्गी, मौसमी, गलगल, संतरा, कीनू आदि अनेक प्रकारके नींबू-जातीय फल थे। बादाम, छुहारा, किशमिश, खजूर आदि मेवा थे। मनोहर आदि सैंकड़ों प्रकारके लड्डू, अमृत-गुटिका आदि मिठाइयाँ, अनेक प्रकारकी खीर थी। पपीता, मौसमी, पेठेकी मिठाई, मलाई लड्डू, मलाईको घीमें भूनकर बनायी गयी मिठाई और मलाईका मिश्रण देकर बनी एक प्रकारकी पूरी थी। घीमें बनायी गयी मीठी रोटी, सफेद गुलाब, कर्पूर और मालतीके फूलोंसे बनी मिठाइयाँ, मूँग दालके लड्डू, नवात (एक प्रकारकी मिठाई), इमरती, कमलके पुष्पसे बनायी चीनी, उड़दकी दालसे बनी रोटी और पूरी, खाजा, गुड़की मिठाई, चावलको भूनकर गुड़में मिलाकर बनी मिठाई, तिलकी मिठाई, तिलकी गजक आदि अनेक प्रकारके व्यञ्जन थे। संतरा,

मौसमी, आम आदिके वृक्षके आकारकी फूल-फल-पत्तोंसे युक्त चीनीसे बनी मिठाइयाँ (खिलौने) भी थीं। दही, दूध, माखन, छाछ, शिकञ्जी, शिखरिणी (दही, चीनी, शहद, कर्पूर आदिके मिश्रणसे बनी), अदरकके टुकड़ोंके साथ अङ्कुरित मूँगकी नमकीन दाल भी थी। नींबू तथा बेर आदिसे बने अनेक प्रकारके आचार थे। भगवान् श्रीजगन्नाथको कितनी प्रकारका भोग लगा था, मैं उसका वर्णन नहीं कर सकता॥ 23-34॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'नि-सकड़ि'*—दही, दूध, फल, मूल आदि जो पकाया नहीं गया है।

'पैड़'-डाब (हरा नारियल); (पाठान्तरमें, 'पैरा'—खजूर और ताड़के रससे बना शीरा।)

चीनीसे बनाया गये 'नारङ्गी', 'मौसमी', 'कीनू', 'संतरा' आदि नींबूजातीय फल और आमके वृक्षके आकारकी मिठाई (खिलौने)॥ 25-32॥

अनुभाष्य—ग्रन्थकारका कृष्ण-नैवेद्यका विचित्रता-विषयक ज्ञान प्रकाशित हो रहा है—

'बीजताल'—कच्चे ताल का फल। संतरा आदि सभी नींबूजातिके फल हैं। *'बीजपूर'*—अनार अथवा गलगल (?)। *'छोहारा'*—छुआरा (सूखी खजूर)। *'द्राक्षा'*—अंगूर। *'मनोहरा'*—एक विशेष प्रकारकी बनी मिठाई, जिसे संदेश कहते हैं। *'क्षीरसा'*—पूर्व बङ्गालमें चलती भाषामें 'क्षीर अर्थात् दूध' को ही क्षीरसा कहते हैं। पाठान्तरमें *'अमृतभण्डा'*—पपीता; 'सरबती'—एक विशेष प्रकारका उत्कृष्ट नींबू। *'सरभाजा'* और *'सरपुरी'*—नदीया जिलेके कृष्णनगर अञ्चलमें विशेषरूपसे बनायी जानेवाली मिठाई। *'हरिवल्लभ'*—घीमें बनायी गयी विशेष प्रकारकी रोटी (?), *'सेँउति'*—विशेष सुगन्धित पुष्प। *'कर्पूर'*—विशेष पुष्प(?)। *'डाल-मरिच-लाडु'*—मूँगकी दालका लड्डू (?) *'नवात'*—चीनीके रसमें पका विशेष मिष्ठान्न-द्रव्य। *'अमृति'*—'जलेबी'-जातीय घीमें पकी मिठाई (इमरती) (पूर्व बङ्गालमें विशेष रूपसे बनती है)। *'चन्द्रकान्ति'*—उड़दकी दालकी बनी चन्द्राकारकी फुलबड़ी। *'वियरि'*—विरण धानके चावलको भूनकर बनाये गये मिठाईके टुकड़े। *'कद्मा'*—चावलोंको पीसकर चीनीके रसमें बनायी गयी बहुत कठोर अति प्रसिद्ध मिठाई। *'तिलेखाजा'*—खाजाके साथ घीमें भूने हुए तिलसे बनी मिठाई। *'तक्र'*—छाछ। *'रसाला'*—शरबत, पाना। *'खानि-खानि'*—छोटे-छोटे टुकड़े। नींबूका आचार और बेरका आचार; पूर्वबङ्गालमें चलती भाषामें 'नींबू'को लेम्बू कहते है॥ 26-34॥

प्रसादके पात्रोंसे बहुतसे स्थानका घिर जाना :—

प्रसादे पूरित हइल अर्द्ध उपवन।
देखिया सन्तोष हैल महाप्रभुर मन॥ 35॥

जगन्नाथकी तृप्तिके स्मरणसे महाप्रभुको हर्ष :—

एइमत जगन्नाथ करेन भोजन।
एइ सुखे महाप्रभुर जुड़ाय नयन॥ 36॥

केयापत्र-द्रोणी आइल बोझा पाँच-सात।
एक एक जने दश दोना दिल,—एत पात॥ 37॥

अनुवाद—आधा उपवन प्रसादके पात्रोंसे ही भर गया, जिसे देखकर महाप्रभुके मनमें बहुत सन्तोष हुआ। श्रीजगन्नाथने इतनी मात्रामें ऐसे स्वादिष्ट व्यञ्जनोंका भोजन किया है, इस सुखमें ही महाप्रभुके नेत्र शीतल हो रहे थे। पाँच-सात बोरियाँ भरकर केतकी वृक्षके पत्ते और दोने आये। एक-एक भक्तके आगे दस-दस दोने और एक-एक पत्ता रखा गया॥ 35-37॥

अनुभाष्य— *'केयापत्र-द्रोणी'*—केतकी वृक्षके पत्तोंसे बना दोना॥ 37॥

कीर्त्तन करते-करते थक गये भक्तोंकी
स्वयं भगवान्‌के द्वारा ही सेवा :—

कीर्त्तनीयार परिश्रम जानि' गौरराय।
ताँ-सबारे खाओयाइते प्रभुर मन धाय॥ 38॥

अनुवाद—कीर्त्तनकारी भक्तोंके परिश्रमको जानकर

श्रीगौररायका मन उन्हें पेट भर प्रसाद खिलानेके लिये उत्कण्ठित हो रहा था॥ 38॥

महाप्रभु स्वयं परिवेशन करनेवाले :—

पाँति पाँति करि' भक्तगणे बसाइला।
परिवेशन करिबारे आपने लागिला॥ 39॥

अनुवाद—महाप्रभुने सभी भक्तोंको पंक्तियाँ बनाकर बैठा दिया और वे स्वयं प्रसादका परिवेशन करने लगे॥ 39॥

अनुभाष्य— *'पाँति'*—पंक्ति बनाकर॥ 39॥

महाप्रभुके द्वारा भोजन न करनेसे
सभीकी भोजन करनेमें अरुचि :—

प्रभु ना खाइले, केह ना करे भोजन।
स्वरूप-गोसाञि तबे कैल निवेदन॥ 40॥

भक्तोंका पक्ष लेकर श्रीस्वरूपकी प्रार्थना :—

"आपने बैस, प्रभु, भोजन करिते।
तुमि ना खाइले, केह ना पारे खाइते॥"41॥

अनुवाद—महाप्रभुके भोजन न करनेसे कोई भी भोजन नहीं कर रहा था। तब श्रीस्वरूप दामोदरने महाप्रभुसे निवेदन किया,—"प्रभो! आप भोजन करनेके लिये बैठिये। जब तक आप भोजन नहीं करेंगे, तब तक कोई भी प्रसाद ग्रहण नहीं करेगा॥"40-41॥

प्रभुके द्वारा प्रसाद सेवन :—

तबे महाप्रभु बैसे निजगण लञा।
भोजन कराइल सबाके आकण्ठ पूरिया॥ 42॥

अनुवाद—तब महाप्रभु अपने भक्तोंके साथ भोजन करनेके लिये बैठ गये और उन्होंने सभी भक्तोंको कण्ठ तक भरकर भोजन कराया॥ 42॥

भोजनके बाद आचमन, बहुत लोगोंको
भी अतिरिक्त प्रसादकी प्राप्ति :—

भोजन करि' बसिला प्रभु करि' आचमन।
प्रसाद उवरिल, खाय सहस्रेक जन॥ 43॥

दीन-दुःखी-कङ्गालोंको महाप्रभुकी कृपासे प्रसाद-प्राप्ति :—

प्रभुर आज्ञाय गोविन्द दीन-हीन जने।
दुःखी काङ्गाल आनि' कराय भोजने॥ 44॥

अनुवाद—भोजन करनेके पश्चात् महाप्रभु आचमन करके बैठ गये। तब उन्होंने देखा कि इतना प्रसाद बच गया है कि अभी और हजारों व्यक्ति भोजन कर सकते हैं। महाप्रभुकी आज्ञासे श्रीगोविन्दने दीन-हीन, दुःखी तथा दरिद्र लोगोंको बुलाकर उन्हें भोजन कराया॥ 43-44॥

अनुभाष्य— *'उवरिल'*—अतिरिक्त (अधिक) हुआ॥ 43॥

गौरहरिके द्वारा कङ्गालोंको भोजन करते हुए देखना और
हरिकीर्त्तन करनेका उपदेश :—

काङ्गालेर भोजन-रङ्ग देखे गौरहरि।
'हरिबोल' बलि' तारे उपदेश करि॥ 45॥

काङ्गालोंको हरिभक्तिकी प्राप्ति :—

'हरिबोल' बलि' काङ्गाल प्रेमे भासि' याय।
ऐछन अद्भुत लीला करे गौरराय॥ 46॥

अनुवाद—श्रीगौरहरिने दरिद्रोंको भोजन करते देखकर उन्हें 'हरिबोल' बोलनेका उपदेश दिया। 'हरिबोल' बोलकर दरिद्र व्यक्ति भी प्रेममें डूबे जा रहे थे। श्रीगौरराय ऐसी अद्भुत लीला करते हैं॥ 45-46॥

रथ-सञ्चालनमें गौड़ोंका असामर्थ्य :—

इँहा जगन्नाथेर रथ-चलन-समय।
गौड़ सब रथ टाने, आगे नाहि याय॥ 47॥

सपरिकर राजाकी व्यग्र भावसे उपस्थिति :—

टानिते ना पारे गौड़, रथ छाड़ि' दिल।
पात्र-मित्र लञा राजा व्यग्र हञा आइल॥ 48॥

अनुवाद—इधर जब श्रीजगन्नाथके रथके चलनेका समय हुआ, तब सब गौड़ोंने रथ खींचना आरम्भ किया, परन्तु रथ आगे नहीं चला। गौड़ लोग जब रथको चला नहीं पाये, तो उन्होंने प्रयास करना छोड़ दिया। तब अपने सेवकों और मित्रोंके साथ राजा व्याकुल होकर आये॥ 47-48॥

बड़े-बड़े बलवान भी रथको चलानेमें असमर्थ :—

महामल्लगणे दिल रथ चालाइते।
आपने लागिला रथ, ना पारे टानिते॥ 49॥

व्यग्र हञा आने राजा मत्त-हातीगण।
रथ चालाइते रथे करिल योजन॥ 50॥

मत्त-हस्तिगण टाने, यत तार बल।
एक पद ना चले रथ, हइल अचल॥ 51॥

अनुवाद—राजाने रथको चलानेके लिये बड़े-बड़े पहलवानोंको नियुक्त किया और फिर वे स्वयं भी प्रयास करने लगे, परन्तु वे सब मिलकर भी रथको हिला नहीं सके। अधीर होकर राजाने मतवाले हाथियोंको मँगवाकर उन्हें रथके आगे जोत दिया। मतवाले हाथियोंने भी अपना सम्पूर्ण बल लगाकर खींचनेका प्रयास किया, परन्तु रथ हिला ही नहीं, एक पग भी आगे नहीं बढ़ा॥ 49-51॥

सपरिकर महाप्रभुका रथको खींचनेकी चेष्टाका दर्शन :—

शुनि' महाप्रभु आइला निजगण लञा।
मत्तहस्ति रथ टाने,—देखे दाण्डाञा॥ 52॥

हाथियोंके द्वारा भी रथको चलता न देख सबका हाहाकार :—

अङ्कुशेर घाय हस्ती करये चित्कार।
रथ नाहि चले, लोक करे हाहाकार॥ 53॥

अनुवाद—यह सुनकर महाप्रभु अपने भक्तोंको साथ लेकर वहाँ आये और खड़े होकर मतवाले हाथियोंको रथको खींचते हुए देखने लगे। अङ्कुशके प्रहारसे हाथी चिंघाड़ने लगे, परन्तु रथ फिर भी न हिला। लोग भी सब हाहाकार करने लगे॥ 52-53॥

अपने भक्तोंको रथ खींचनेमें नियुक्त करना :—

तबे महाप्रभु सब हस्ति घुचाइल।
निजगणे रथ-काछि टानिबारे दिल॥ 54॥

महाप्रभुके द्वारा रथके साथ अपने मस्तकको स्पर्श करने मात्रसे रथका चलना :—

आपने रथेर पाछे ठेले माथा दिया।
हड़् हड़् करि' रथ चलिल धाइञा॥ 55॥

अनायास ही रथका चलना :—

भक्तगण काछि हाते करि' मात्र धाय।
आपने चलिल रथ, टानिते ना पाय॥ 56॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने सभी हाथियोंको हटवा दिया और रथको खींचनेके लिये अपने भक्तोंके हाथोंमें रस्सीको पकड़ा दिया। रथके पीछे जाकर महाप्रभु स्वयं अपने सिरसे रथको ठेलने लगे और तभी रथ हड़् हड़् शब्द करता हुआ तेजीसे चलने लगा। रथके आगे भक्तगण केवल रस्सीको हाथमें पकड़कर दौड़ रहे थे, रथ तो बिना खींचे ही अपने आप चल रहा था॥ 54-56॥

हर्षवशतः सभीके द्वारा जयध्वनि :—

आनन्दे करये लोक 'जय' 'जय'-ध्वनि।
'जय जगन्नाथ' बइ आर नाहि शुनि॥ 57॥

अनुवाद—रथको चलते हुए देख लोग आनन्दमें 'जय' 'जय'-कार करने लगे। 'जय जगन्नाथ'के अतिरिक्त और कुछ भी सुनायी नहीं दे रहा था॥ 57॥

महाप्रभुके प्रभावसे रथका गुण्डिचा पहुँचना :—

निमेषे त' गेल रथ गुण्डिचार द्वार।
चैतन्य-प्रताप देखि' लोके चमत्कार॥ 58॥

अनुवाद—एक निमेष अर्थात् पलक झपकनेके समयमें ही श्रीजगन्नाथका रथ गुण्डिचा मन्दिरके द्वारपर पहुँच गया। श्रीचैतन्य महाप्रभुके ऐसे प्रतापको देखकर सभी लोग चमत्कृत हो उठे॥ 58॥

लोगोंके द्वारा महाप्रभुकी जयध्वनि :—

'जय गौरचन्द्र', 'जय श्रीकृष्णचैतन्य'।
एइमत कोलाहल लोके करे धन्य॥ 59॥

अनुवाद—'जय गौरचन्द्र', 'जय श्रीकृष्णचैतन्य' का तुमुलनाद लोगोंको अति धन्य कर रहा था॥ 59॥

महाप्रभुकी महिमाके दर्शनसे राजाको प्रेमावेश :—

देखिया प्रतापरुद्र पात्र-मित्र-सङ्गे।
प्रभुर महिमा देखि' प्रेमे फुले अङ्गे॥ 60॥

अनुवाद—राजा प्रतापरुद्र और उनके सेवकों एवं मित्रोंको महाप्रभुकी महिमाका दर्शन करके प्रेमसे रोमाञ्च हो गया॥ 60॥

श्रीजगन्नाथका पाहाण्डि :—

पाण्डुविजय तबे करे सेवकगणे।
जगन्नाथ बसिला गिया निज-सिंहासने॥ 61॥

सुभद्रा-बलरामका पाहाण्डि, श्रीजगन्नाथका स्नानभोग :—

सुभद्रा-बलराम निज-सिंहासने आइला।
जगन्नाथेर स्नानभोग हइते लागिला॥ 62॥

आङ्गनमें महाप्रभुका अपने भक्तोंके साथ कीर्तन :—

आङ्गिनाते महाप्रभु लञा भक्तगण।
आनन्दे आरम्भ कैल नर्त्तन-कीर्त्तन॥ 63॥

महाप्रभुके प्रेममें सभी पागल :—

आनन्दे महाप्रभुर प्रेम उथलिल।
देखि' सब लोक प्रेम-सागरे भासिल॥ 64॥

अनुवाद—तब श्रीजगन्नाथके सेवकोंने उनको रथसे नीचे उतारा और श्रीजगन्नाथ गुण्डिचा मन्दिरमें स्थित अपने सिंहासनपर जाकर बैठ गये। तब श्रीसुभद्रा और श्रीबलराम भी अपने सिंहासनपर आकर विराजमान हुए। इसके बाद श्रीजगन्नाथका स्नान हुआ और फिर उन्हें भोग लगा। इधर महाप्रभुने मन्दिरके आङ्गनमें अपने भक्तोंके साथ आनन्दपूर्वक नृत्य-कीर्तन करना आरम्भ किया। नृत्य-कीर्तनके आनन्दमें महाप्रभु प्रेममें विह्वल हो गये, जिसे देखकर सब लोग प्रेमके सागरमें डूबने लगे॥ 61-64॥

सन्ध्या आरतिका दर्शन और आइटोटामें विश्राम :—

नृत्य करि' सन्ध्याकाले आरति देखिल।
आइटोटा आसि' प्रभु विश्राम करिल॥ 65॥

अनुवाद—नृत्य करनेके बाद महाप्रभुने श्रीजगन्नाथकी सन्ध्या आरतीका दर्शन किया। तब महाप्रभुने आइटोटामें जाकर रात्रिमें विश्राम किया॥ 65॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'आइटोटा'*—गुण्डिचा मन्दिरके निकट एक उद्यान॥ 65॥

श्रीअद्वैतादि नौ भक्तोंके द्वारा नौ रातकी यात्राके नौ दिनों तक महाप्रभुको निमन्त्रण :—

अद्वैतादि भक्तगण निमन्त्रण कैल।
मुख्य मुख्य नव जन नव दिन पाइल॥ 66॥

चातुर्मास्यमें प्रत्येक भक्तके द्वारा एक-एक दिन तक महाप्रभुको निमन्त्रण :—

आर भक्तगण चातुर्मास्ये यत दिन।
एक एक दिन करि' करिल वण्टन॥ 67॥

अनुवाद—तब श्रीअद्वैतादि भक्तोंने जाकर महाप्रभुको भोजनके लिये निमन्त्रण किया। मुख्य-मुख्य नौ भक्तोंने नौ दिन अपने-अपने स्थानपर निमन्त्रण करनेका सौभाग्य प्राप्त किया। अन्य कुछ मुख्य भक्तोंने चातुर्मास्यके जितने दिन थे, उनको एक-एक दिन करके बाँट लिया॥ 66-67॥

अमृतप्रवाह भाष्य—गौड़देशसे श्रीअद्वैतादि जो सब भक्त आये थे, उन्होंने महाप्रभुको एक-एक दिन निमन्त्रण करके भिक्षा (प्रसाद) दी। गुण्डिचा मन्दिरमें नौ दिन उत्सव होता है,—इसका नाम 'नवरात्र'-यात्रा है। उन नौ दिनोंमें महाप्रभुने भक्तों सहित आइटोटामें वास किया। श्रीअद्वैतादि प्रधान-प्रधान नौ भक्तोंने इन नौ दिन महाप्रभुको निमन्त्रित किया। और-और भक्तोंने चातुर्मास्यका एक एक दिन करके बाँट लिया था॥ 66॥

बाकी भक्तोंके द्वारा महाप्रभुको निमन्त्रण करनेके सौभाग्यका अभाव :—

चारि मासेर दिन मुख्यभक्त बाँटि निल।
आर भक्तगण अवसर ना पाइल॥ 68॥

अन्य कोई उपाय न देख 2-3 भक्तोंके द्वारा इकट्ठे मिलकर एक-एक दिन महाप्रभुका निमन्त्रण :—

एक दिन निमन्त्रण करे दुइ-तिने मिलि'।
एइमत महाप्रभुर निमन्त्रण-केलि॥ 69॥

अनुवाद—महाप्रभुको भिक्षा करानेके लिये चातुर्मास्यके दिन भी मुख्य-मुख्य भक्तोंने बाँट लिये। अन्य भक्तोंको इसका अवसर प्राप्त नहीं हुआ। इसलिये दो-तीन भक्तोंने मिलकर महाप्रभुको एक-एक दिन निमन्त्रण किया। इस प्रकार महाप्रभुकी निमन्त्रण-लीला हुई॥ 68-69॥

प्रातःकाल स्नान करके श्रीजगन्नाथके दर्शनके बाद परिकरोंके साथ कीर्तन-नृत्य :—

प्रातःकाले स्नान करि' देखि' जगन्नाथ।
सङ्कीर्त्तने नृत्य करे भक्तगण-साथ॥ 70॥

श्रीनिताइ और श्रीअद्वैतादिका नृत्य, गुण्डिचामें तीनों समय कीर्तन :—

कभु अद्वैते नाचाय, कभु नित्यानन्दे।
कभु हरिदासे नाचाय, कभु अच्युतानन्दे॥ 71॥
कभु वक्रेश्वरे, कभु आर भक्तगणे।
त्रिसन्ध्या कीर्त्तन करे गुण्डिचा-प्राङ्गणे॥ 72॥

अनुवाद—महाप्रभु प्रातःकालमें स्नान करके श्रीजगन्नाथका दर्शन करनेके बाद अपने भक्तोंके साथ सङ्कीर्तनमें नृत्य करते थे। वे सङ्कीर्तनमें नृत्य करते हुए कभी श्रीअद्वैताचार्यको नचाते, तो कभी श्रीनित्यानन्द प्रभुको, कभी श्रीहरिदासको नृत्य कराने लगते, तो कभी श्रीअच्युतानन्दको, कभी श्रीवक्रेश्वरको और कभी किसी ओर भक्तको। इस प्रकार महाप्रभु तीन सन्ध्या श्रीगुण्डिचा मन्दिरके प्राङ्गणमें कीर्तन करते॥ 70-72॥

श्रीकृष्णका व्रजमें आगमन और श्रीराधाके साथ मिलनसे उनकी दासी-गोपी-अभिमानी महाप्रभुका आनन्द :—

वृन्दावने आइला कृष्ण—एइ प्रभुर ज्ञान।
कृष्णेर विरह-स्फूर्त्ति हैल अवसान॥ 73॥
राधासङ्गे कृष्णलीला—एइ हैल ज्ञाने।
एइ रसे मग्न प्रभु हइला आपने॥ 74॥

अनुवाद—महाप्रभुको अनुभव होता कि श्रीकृष्ण वृन्दावनमें आ गये हैं। अतः उनकी श्रीकृष्ण विरह-स्फूर्त्ति शान्त हो गयी। महाप्रभु सदा श्रीकृष्णकी श्रीराधाके साथ विहारलीलाका स्मरण करते हुए स्वयं इस रसमें निमग्न हो गये॥ 73-74॥

भक्तोंके साथ महाप्रभुकी अनेक प्रकारकी जलकेलि :—

नानोद्याने भक्तसङ्गे वृन्दावन-लीला।
'इन्द्रद्युम्न'-सरोवरे करे जलखेला॥ 75॥
आपने सकल भक्ते सिञ्चे जल दिया।
सब भक्तगण सिञ्चे चौदिके बेड़िया॥ 76॥
कभु एक मण्डल, कभु अनेक मण्डल।
जलमण्डूक-वाद्ये सबे बाजाय करतल॥ 77॥

अनुवाद—गुण्डिचा मन्दिरके पास अनेक उद्यान थे और महाप्रभु प्रत्येक उद्यानमें भक्तोंके साथ वृन्दावनकी लीलाएँ करने लगे। 'इन्द्रद्युम्न' नामक सरोवरमें उन्होंने भक्तोंके साथ जल-क्रीड़ा की। महाप्रभु सभी भक्तोंपर सरोवरका जल उलीचने लगे और सब भक्त भी चारों ओरसे महाप्रभुपर जल फैंकने लगे। वे जलमें कभी तो एक घेरा और कभी अनेक घेरे बनाकर जलमें करताल बजाते हुए मेंढ़क जैसी ध्वनि करते॥ *75-77*॥

अमृतप्रवाह भाष्य— *'जलमण्डुक-वाद्य'*—पानीमें मेढ़क जिस प्रकार आवाज करता है, उस प्रकार ध्वनिके जैसे बजाते हुए गोलाकारमें जलकेलि होने लगी॥ 77॥

अनुभाष्य— *'जलमण्डुक-वाद्य'*—पानीमें करताल बजाकर मेढ़क जैसे ध्वनि करना॥ 77॥

दो-दो भक्तोंके द्वारा जलकेलि करना और
महाप्रभुके द्वारा उसका दर्शन :-

दुइ-दुइ जने मेलि' करे जल-रण।
केह हारे, केह जिने—प्रभु करे दरशन॥ 78॥

अद्वैत-नित्यानन्दे जल-फेलाफेलि।
आचार्य हारिया, पाछे करे गालागालि॥ 79॥

विद्यानिधिर जलकेलि स्वरूपेर सने।
गुप्त-दत्ते जलकेलि करे दुइ जने॥ 80॥

श्रीवास-सहित जल खेले गदाधर।
राघव-पण्डित सने खेले वक्रेश्वर॥ 81॥

सार्वभौम-सङ्गे खेले रामानन्द-राय।
गाम्भीर्य गेल दोँहार, हैल शिशुप्राय॥ 82॥

अनुवाद—कभी दो भक्त एक दूसरेसे जल-युद्ध करने लगते। इस युद्धमें एक हार जाता और दूसरा जीत जाता—महाप्रभु ये सब क्रीड़ा देखते। एक-दूसरेपर जल फैंकनेकी पहली क्रीड़ा श्रीअद्वैताचार्य और श्रीनित्यानन्द प्रभुके बीच हुई। इसमें श्रीअद्वैताचार्य हार गये और बादमें वे श्रीनित्यानन्द प्रभुको (प्रेमपूर्वक) गाली देने लगे। श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि श्रीस्वरूप दामोदरके साथ और श्रीमुरारि गुप्त वासुदेवदत्तके साथ जलकेलि कर रहे थे। श्रीवास पण्डित श्रीगदाधर पण्डितके साथ और श्रीराघव पण्डित श्रीवक्रेश्वर पण्डितके साथ जलकेलि करते एक-दूसरेपर जल फेंक रहे थे। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य श्रीरामानन्द-रायके साथ जल-क्रीड़ा कर रहे थे, क्रीड़ा करते हुए उनकी गम्भीरता न जाने कहाँ लुप्त हो गयी और वे बालकोंकी भाँति हो गये॥ 78-82॥

अनुभाष्य—*'गुप्त'*—मुरारि गुप्त; *'दत्त'*—वासुदेव दत्त॥ 80॥

श्रीगोपीनाथको श्रीसार्वभौम और श्रीरायके चापल्यको त्याग
करवानेकी आज्ञा :-

महाप्रभु ताँ दोँहार चापल्य देखिया।
गोपीनाथाचार्ये किछु कहेन हासिया॥ 83॥

"पण्डित, गम्भीर दुँहे—प्रामाणिक जन।
बाल-चाञ्चल्य करे, कराह वर्जन॥" 84॥

अनुवाद—महाप्रभुने श्रीसार्वभौम और श्रीरामानन्द राय—दोनोंकी चञ्चलताको देखकर मुस्कुराते हुए श्रीगोपीनाथाचार्यसे कहा,—"इन्हें बाल-चापल्य करनेसे मना करो, क्योंकि ये दोनों ही विद्वान, गम्भीर और समाजमें प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं॥" 83-84॥

श्रीगोपीनाथके द्वारा महाप्रभुकी कृपा-महिमाका वर्णन :-

गोपीनाथ कहे,—"तोमार कृपा-महासिन्धु।
उछलित करे यबे तार एक बिन्दु॥ 85॥

मेरु-मन्दर-पर्वत डुबाय यथा तथा।
एइ दुइ—गण्ड-शैल, इहार का कथा॥ 86॥

महाप्रभुकी कृपासे शुष्कज्ञानी श्रीसार्वभौम भी
अब श्रीकृष्णसेवा-रसमें रसिक :-

शुष्कतर्क-खलि खाइते जन्म गेल याँर।
ताँरे लीलामृत पियाओ,—ए कृपा तोमार॥" 87॥

अनुवाद—श्रीगोपीनाथने कहा,—"आपकी कृपा महासिन्धुकी भाँति है। जब उसकी एक बूँद भी उछलती है, तो वह सुमेरु-मन्दराचल जैसे बड़े पर्वतोंको भी वहीं डुबो सकती है। ये दोनों तो छोटीसी पहाड़ियोंके समान हैं, तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है कि ये आपकी कृपाके सागरमें डूब रहे हैं। जिनका (श्रीसार्वभौमका) समस्त जीवन शुष्कतर्क रूपी खली खाते हुआ व्यतीत हुआ है, उन्हें आप आज अपनी लीलामृतका पान करा रहे हैं—आपकी इनपर यह महान् कृपा है॥ 85-87॥

अनुभाष्य—*'गण्ड-शैल'*—पहाड़ी; यद्यपि *'दुइ'*—अर्थात् 'दो'-शब्दका उल्लेख है, तथापि विशेष रूपसे श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यको लक्ष्य करके ऐसा कहा गया है। *'खलि'*—खली (बीजसे तेल निकालनेके बाद बची हुई खली); महाप्रभुकी कृपा प्राप्त करनेसे पहले निर्विशेष-ब्रह्म-ज्ञानी

तर्कपन्थी श्रीसार्वभौमकी खली खानेवाले 'कोल्हूके बैल'के साथ तुलना की है॥ 86-87॥

तैरते हुए श्रीअद्वैतकी 'शेष' और महाप्रभुकी 'शेषशायी'-लीलाका प्रकाश :—

हासि' महाप्रभु तबे अद्वैते आनिल।
जलेर उपरे ताँरे शेष-शय्या कैल॥ 88॥

आपने ताँहार उपर करिल शयन।
'शेषशायी-लीला' प्रभु कैल प्रकटन॥ 89॥

अद्वैत निज-शक्ति प्रकट करिया।
महाप्रभु लञा बुले जलेते भासिया॥ 90॥

भक्तोंके साथ महाप्रभुका आइटोटामें आगमन :—

एइमत जलक्रीड़ा करि' कतक्षण।
आइटोटा आइला प्रभु लञा भक्तगण॥ 91॥

अनुवाद—तब महाप्रभुने मुस्कुराते हुए श्रीअद्वैताचार्यको बुलाया और उन्हें जलके ऊपर तैरती शेष-शय्याकी भाँति बना दिया। फिर महाप्रभुने स्वयं उनके ऊपर लेटकर अपनी 'शेषशायी-लीला'को प्रकाशित किया। श्रीअद्वैताचार्य अपनी शक्तिको प्रकट करके महाप्रभुको अपने ऊपर लेकर जलमें तैरते हुए भ्रमण करने लगे। इस प्रकार कुछ समय तक जलक्रीड़ा करनेके बाद महाप्रभु अपने भक्तोंके साथ आइटोटामें आये॥ 88-91॥

मुख्यभक्तोंके द्वारा आचार्यका निमन्त्रण स्वीकार :—

पुरी, भारती आदि यत मुख्य भक्तगण।
आचार्येर निमन्त्रणे करिला भोजन॥ 92॥

अनुवाद—श्रीपरमानन्द पुरी, श्रीब्रह्मानन्द भारती आदि मुख्य-मुख्य भक्तोंने श्रीअद्वैताचार्यका निमन्त्रण स्वीकार करके भोजन ग्रहण किया॥ 92॥

महाप्रभुके भक्तोंके द्वारा श्रीवाणीनाथके द्वारा लाया हुआ प्रसाद ग्रहण :—

वाणीनाथ आर यत प्रसाद आनिल।
महाप्रभुर गणे सेइ प्रसाद खाइल॥ 93॥

अनुवाद—श्रीवाणीनाथ और जितना प्रसाद लाये, महाप्रभुके अन्य भक्तोंने उसे ग्रहण किया॥ 93॥

अपराह्नमें दर्शन और नृत्य, रातमें उपवनमें निद्रा :—

अपराह्ने आसि' कैल दर्शन, नर्त्तन।
निशाते उद्याने आसि' करिला शयन॥ 94॥

अनुवाद—अपराह्न-कालमें महाप्रभुने गुण्डिचा मन्दिरमें श्रीजगन्नाथके दर्शन करके नृत्य किया और रातमें उद्यानमें आकर शयन किया॥ 94॥

अन्य दिन भगवान्का दर्शन और मन्दिरके प्राङ्गणमें नृत्य-गीत :—

आर दिन आसि' कैल ईश्वर-दरशन।
प्राङ्गणे नृत्य-गीत कैल कतक्षण॥ 95॥

अनुवाद—अगले दिन भी महाप्रभुने गुण्डिचा मन्दिरमें आकर श्रीजगन्नाथका दर्शन किया और प्राङ्गणमें कुछ समय तक नृत्य-गीत आदि किया॥ 95॥

भक्तोंके साथ उद्यानमें व्रज-विहार :—

भक्तगण-सङ्गे प्रभु उद्याने आसिया।
वृन्दावन-विहार करे भक्तगण लञा॥ 96॥

अनुवाद—उसके बाद महाप्रभु अपने भक्तोंके साथ उद्यानमें आ गये और उनके साथ वृन्दावन-विहार लीला करने लगे॥ 96॥

अनुभाष्य—महाप्रभुने यहाँ वृन्दावन-विहार आरम्भ किया, परन्तु यह श्रीकृष्णकी भाँति उनकी 'पारकीय'-रसमें परस्त्रियोंके साथ विहाररूपी भोक्ताकी लीला नहीं है। स्वयंको श्रीराधाकी दासी समझकर और उनकी सेव्या आश्रय-विग्रह श्रीराधा अपने प्रियतम श्रीकृष्णके मिलनमें आनन्द-सागरमें निमग्न हैं—इस रसमें मत्त अवस्थामें ही महाप्रभुकी भक्तोंके साथ 'वृन्दावन-विहार' लीला हुई थी; (इसी अध्यायकी 74, 75 संख्या देखें)। इसलिये 'गौरनागरी-वाद'का यहाँ कोई भी प्रयोजन नहीं है॥ 96॥

महाप्रभुके दर्शनसे चारों ओर हर्षका लक्षण :—

वृक्षवल्ली प्रफुल्लित प्रभुर दरशने।
भृङ्ग, पिक गाय, बहे शीतल पवने॥ 97॥

महाप्रभुका नृत्य, श्रीवासुदेव-दत्तका कीर्तन :—

प्रति-वृक्षतले प्रभु करेन नर्त्तन।
वासुदेव-दत्त मात्र करेन गायन॥ 98॥

प्रत्येक वृक्षके नीचे नृत्य करनेवाले महाप्रभु :—

एक एक वृक्षतले एक एक गान गाय।
परम-आवेशे एका नाचे गौरराय॥ 99॥

नृत्यके अन्तमें श्रीवक्रेश्वरको नाचनेका आदेश :—

तबे वक्रेश्वरे प्रभु कहिला नाचिते।
वक्रेश्वर नाचे, प्रभु लागिला गाइते॥ 100॥

महाप्रभुके साथ श्रीस्वरूप आदि भक्तोंका गान, सभीमें प्रेम-विह्वलता :—

प्रभु-सङ्गे स्वरूपादि कीर्त्तनीया गाय।
दिक्‌विदिक् नाहि ज्ञान प्रेमेर वन्याय॥ 101॥

अनुवाद—महाप्रभुका दर्शन करके वहाँके वृक्ष और लताएँ प्रफुल्लित हो गये, भ्रमर और कोयल गान करने लगे तथा शीतल पवन बहने लगी। महाप्रभु प्रत्येक वृक्षके नीचे नृत्य करने लगे और एक मात्र श्रीवासुदेव-दत्त ही गान कर रहे थे। श्रीवासुदेव-दत्त एक-एक वृक्षके नीचे एक-एक गीतका गान कर रहे थे और परमावेशमें महाप्रभु उनके साथ अकेले ही नृत्य कर रहे थे। तब महाप्रभुने श्रीवक्रेश्वर पण्डितसे नृत्य करनेके लिये कहा। श्रीवक्रेश्वर पण्डितने जैसे नृत्य आरम्भ किया, तभी महाप्रभु स्वयं गाने लगे। तब श्रीस्वरूप दामोदर और अन्य कीर्तनीया भी महाप्रभुके साथ गाने लगे। प्रेमकी बाढ़में सब इतना डूब गये कि उन्हें समय और परिस्थितिका भी ज्ञान नहीं रहा॥ 97-101॥

वनलीलाके अन्तमें नरेन्द्र-सरोवरमें जलकेलि :—

एइ मत कतक्षण करि' वन-लीला।
नरेन्द्र-सरोवरे गेला करिते जलखेला॥ 102॥

अनुवाद—इस प्रकार कुछ समय तक वनलीला करनेके बाद सभी नरेन्द्र सरोवर गये और उसमें जल-क्रीड़ाका आनन्द लिया॥ 102॥

स्नानके बाद उद्यानमें भक्तोंके साथ प्रसाद-सम्मान :—

जलक्रीड़ा करि' पुनः आइला उद्याने।
भोजनलीला कैला प्रभु लञा भक्तगणे॥ 103॥

अनुवाद—जल-क्रीड़ाके बाद महाप्रभु पुनः उद्यानमें आ गये और वहाँ उन्होंने भक्तोंके साथ भोजनलीला की॥ 103॥

गुण्डिचामें श्रीजगन्नाथके नौ दिनों तक रहनेके समय इस प्रकारकी लीलाएँ हुईं :—

नव दिन गुण्डिचाते रहे जगन्नाथ।
महाप्रभु ऐछे लीला करे भक्त-साथ॥ 104॥

अनुवाद—श्रीजगन्नाथ नौ दिनों तक श्रीगुण्डिचा मन्दिरमें रहे, उस कालमें महाप्रभुने अपने भक्तोंके साथ इस प्रकारकी लीलाएँ की॥ 104॥

जगन्नाथवल्लभमें महाप्रभुकी विश्राम-लीला :—

'जगन्नाथ-वल्लभ'-नाम बड़ पुष्पाराम।
नव दिन करेन प्रभु ताहाते विश्राम॥ 105॥

अनुवाद—'जगन्नाथ-वल्लभ'-नामक एक बड़ी पुष्प-वाटिकामें ही महाप्रभुने उन नौ दिनों तक विश्राम किया॥ 105॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'जगन्नाथ-वल्लभ'*—गुण्डिचा मन्दिर और जगन्नाथ मन्दिरके प्रायः मध्यमें ही 'जगन्नाथ-वल्लभ' नामक एक उद्यान है। इस उद्यान में 'दना'-चोरीलीला होती है अर्थात् श्रीमदनमोहन जाकर दना-नामक सुगन्धित वृक्ष चोरी करके लाते हैं॥ 105॥

अनुभाष्य—*'पुष्पाराम'*—पुष्पवाटिका॥ 105॥

हेरापञ्चमी-उत्सवके विपुल आयेजनके लिये राजाका काशीमिश्रसे अनुरोध :—

'हेरा-पञ्चमी'र दिन आइल जानिया।
काशीमिश्रे कहे राजा सयत्न करिया॥ 106॥

"कल्य 'हेरा-पञ्चमी', हबे लक्ष्मीर विजय।
ऐछे उत्सव कर, येन कभु नाहि हय॥ 107॥

अनुवाद—'हेरा-पञ्चमी' अगले दिन ही है, ऐसा जानकर राजा प्रतापरुद्रने श्रीकाशीमिश्रको ध्यानपूर्वक कहा,—"कल हेरा-पञ्चमी अथवा लक्ष्मी विजय है। इस उपलक्ष्यमें ऐसा उत्सव करो, जैसा पहले कभी न हुआ हो॥ 106-107॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'हेरा-पञ्चमी'र दिन'*—रथ यात्राके बाद पाँचवें दिनको 'हेरा-पञ्चमी' कहते हैं। लक्ष्मीदेवी श्रीजगन्नाथको ढूँढ़ते हुए गुण्डिचामें जाकर श्रीजगन्नाथको हेरकर (देखकर) आती हैं, इसलिये उड़ीसावासी लोग इस दिनको 'हेरा-पञ्चमी' कहते हैं। इस दिन लक्ष्मी श्रीजगन्नाथको खोई हुई वस्तुकी भाँति ढूँढ़ने जाती है, इसलिये 'अतिबाड़ी' लोग इसे 'हारापञ्चमी' कहते हैं। जो हो, कविराज गोस्वामीने इस पञ्चमीको 'हेरा-पञ्चमी' कहकर ही लिखा है॥ 106॥

महाप्रभुकी सन्तुष्टिके लिये महोत्सवके आयोजनका आदेश :—

महोत्सव कर तैछे विशेष सम्भार।
देखि' महाप्रभुर यैछे हय चमत्कार॥ 108॥

सुचारू रूपसे सजानेका आदेश :—

ठाकुरेर भाण्डारे आर आमार भाण्डारे।
चित्रवस्त्र किङ्किणी, आर छत्र-चामरे॥ 109॥

ध्वजावृन्द-पताका-घन्टाय करह मण्डन।
नानावाद्य-नृत्य-दोलाय करह साजन॥ 110॥

अनुवाद—विशेष आयोजन करके ऐसा महोत्सव करो, जिसे देखकर महाप्रभु आश्चर्यचकित हो जाँय। ठाकुर श्रीजगन्नाथके भण्डार और मेरे भण्डारमें जितने भी रङ्ग-बिरङ्गे वस्त्र, किङ्किणी, छत्र, चामर, ध्वजा, पताका, घण्टा आदि हैं, उन्हें एकत्रित करके पालकीको सजाओ। अनेक प्रकारके वाद्य-यन्त्रों तथा नर्त्तकोंको बुलाकर यात्राकी शोभाको बढ़ाओ॥ 108-110॥

अनुभाष्य—*'चित्रवस्त्र'*—रङ्गे हुए वस्त्र; *'किङ्किणी'*—छोटी घण्टियाँ॥ 109॥

रथयात्राकी अपेक्षा बड़े समारोहके लिये आदेश :—

द्विगुण करिया कर सब उपहार।
रथयात्रा हैते यैछे हय चमत्कार॥ 111॥

महाप्रभुके लिये दर्शनकी सुविधाका विधान :—

सेइत' करिह,—प्रभु लञा भक्तगण।
स्वच्छन्दे आसिया करे यैछे दरशन॥"112॥

अनुवाद—पहलेकी अपेक्षा इस बार दोगुणा अधिक उपहारों और प्रसादका आयोजन करो, जिससे यह उत्सव रथ-यात्रासे भी बढ़-चढ़कर हो जाय। और ऐसी व्यवस्था करना जिससे महाप्रभु अपने भक्तोंके साथ स्वतन्त्ररूपसे आकर उत्सवका दर्शन कर सकें॥"111-112॥

भक्तोंके साथ गुण्डिचामें जगन्नाथका दर्शन :—

प्रातःकाले महाप्रभु निजगण लञा।
जगन्नाथ-दर्शन कैल सुन्दराचले याञा॥ 113॥

अनुवाद—प्रातःकालमें महाप्रभु अपने भक्तोंको साथ लेकर श्रीजगन्नाथका दर्शन करने सुन्दराचल गये॥ 113॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'सुन्दराचल'*—श्रीजगन्नाथ मन्दिरको जिस प्रकार 'नीलाचल' कहा जाता है, गुण्डिचा-मन्दिरको उसी प्रकार 'सुन्दराचल' कहते हैं॥ 113॥

हेरा-पञ्चमीके दर्शनके लिये पुनः नीलाचल आगमन :—

नीलाचले आइला पुनः भक्तगण-सङ्गे।
देखिते उत्कण्ठा हेरा-पञ्चमीर रङ्गे॥ 114॥

श्रीकाशीमिश्रके द्वारा महाप्रभुको उत्तम स्थानपर विराजमान करना :—

काशीमिश्र प्रभुरे बहु आदर करिया।
स्वगण-सह भालस्थाने बसाइल लञा॥ 115॥

अनुवाद—महाप्रभु हेरा पञ्चमीके उत्सवको देखनेकी उत्कण्ठासे अपने भक्तोंके साथ नीलाचल (श्रीजगन्नाथ मन्दिर) आये। श्रीकाशीमिश्रने बड़े आदरसे महाप्रभुको

उनके भक्तोंके साथ ऐसे स्थानपर बैठा दिया जहाँसे हेरा-पञ्चमीकी लीलाको देखनेमें उन्हें कोई भी असुविधा नहीं हो॥ 114-115॥

महाप्रभुकी श्रीस्वरूपसे श्रीजगन्नाथके द्वारा लक्ष्मीके सङ्गको छोड़कर वृन्दावन जानेके कारणकी जिज्ञासा :—

रसविशेष प्रभुर शुनिते मन हैल।
ईषत् हासिया प्रभु स्वरूपे पुछिल॥ 116॥

"यद्यपि जगन्नाथ करेन द्वारकाय विहार।
सहज प्रकट करे परम उदार॥ 117॥

तथापि वत्सर-मध्ये हय एकबार।
वृन्दावन देखिते ताँर उत्कण्ठा अपार॥ 118॥

वृन्दावन-सम एइ उपवन-गण।
ताहा देखिबारे उत्कण्ठित हय मन॥ 119॥

बाहिर हइते करे रथयात्रा-छल।
सुन्दराचले याय प्रभु छाड़ि' नीलाचल॥ 120॥

नाना-पुष्पोद्याने तथा खेले रात्रि-दिने।
लक्ष्मीदेवीरे सङ्गे नाहि लय कि कारणे?"॥ 121॥

अनुवाद—महाप्रभुकी कुछ विशेष रसके विषयको सुननेकी इच्छा हुई और उन्होंने मन्द मुस्कुराते हुए श्रीस्वरूप दामोदरसे पूछा,—"यद्यपि श्रीजगन्नाथ द्वारकामें विहार करते हैं और सहज रूपमें ही परम उदारता प्रकट करते हैं, तथापि वर्षमें एक बार उनकी वृन्दावन देखनेकी तीव्र उत्कण्ठा होती है। यहाँके उपवन वृन्दावनके समान हैं, जिन्हें देखनेकी उनकी उत्कण्ठा होती है। बाहरसे वे रथ-यात्राका बहाना करते हैं, परन्तु वास्तवमें वे नीलाचलको छोड़कर सुन्दराचल जाना चाहते हैं। सुन्दराचलके पुष्प उद्यानोंमें वे दिन-रात लीला करते हैं, परन्तु किस कारणसे वे लक्ष्मीदेवीको अपने साथ नहीं ले जाते?"॥ 116-121॥

अनुभाष्य—श्रीजगन्नाथदेव जीवोंके प्रति करुण होकर नीलाचल मन्दिरमें बैठकर श्रीकृष्णके द्वारका-विहारको प्रकट करते हैं। वर्षमें एकबार मात्र उनकी वृन्दावन सदृश सुन्दराचलको देखनेके लिये अत्यधिक उत्कण्ठा होती है॥ 117-119॥

श्रीस्वरूपके द्वारा इसका कारण बतलाना—व्रजलीलामें गोपियोंका ही अधिकार और लक्ष्मीका अनधिकार :—

स्वरूप कहे,—"शुन, प्रभु, कारण इहार।
वृन्दावन-क्रीड़ाते लक्ष्मीर नाहि अधिकार॥ 122॥

वृन्दावन-लीलाय कृष्णेर सहाय गोपीगण।
गोपीगण बिना कृष्णेर हरिते नारे मन॥"123॥

अनुवाद—श्रीस्वरूप दामोदरने कहा,—"प्रभो! इसका कारण सुनो। वृन्दावनकी लीलाओंमें लक्ष्मीका अधिकार नहीं है। वृन्दावनकी लीलाओंमें गोपियाँ ही श्रीकृष्णकी सहायक हैं। गोपियोंके अतिरिक्त कोई भी श्रीकृष्णके मनको नहीं हर सकता॥"122-123॥

अनुभाष्य—वृन्दावन-लीलामें लक्ष्मी-ठाकुराणीका अधिकार नहीं होनेके कारण सुन्दराचल जाते समय श्रीजगन्नाथ लक्ष्मीको साथ नहीं ले जाते,—यही कारण है॥ 122॥

महाप्रभुका पुनः प्रश्न—लक्ष्मीके क्रोधके कारणकी जिज्ञासा :—

प्रभु कहे,—"यात्रा-छले कृष्णेर गमन।
सुभद्रा आर बलदेव, सङ्गे दुइजन॥ 124॥

गोपी-सङ्गे यत लीला हय उपवने।
निगूढ़ कृष्णेर भाव केह नाहि जाने॥ 125॥

अतएव कृष्णेर प्राकट्ये नाहि किछु दोष।
तबे केने लक्ष्मीदेवी करे एत रोष?"॥ 126॥

अनुवाद—महाप्रभुने पुनः पूछा,—"रथ-यात्राके छलसे श्रीकृष्ण श्रीसुभद्रा तथा श्रीबलदेवको भी अपने साथ वहाँ ले जाते हैं। गोपियोंके साथ श्रीकृष्णकी उपवनमें जो लीलाएँ होती हैं, वे अति रहस्यमयी हैं, उन्हें कोई नहीं जानता है। इसलिये श्रीकृष्णकी लीलाओंमें कोई

भी दोष नहीं है, तो लक्ष्मीदेवी इतना क्रोध क्यों करती हैं?"124–126॥

अनुभाष्य— *'यात्रा'*—रथयात्रा। बृहद्भागवतामृतके प्रथम खण्डका सातवाँ अध्याय देखें॥124–126॥

श्रीस्वरूपके द्वारा इसका कारण बताना—प्रियकी उदासीनतासे प्रियाका क्रोधाभिमान :—

स्वरूप कहे,—"प्रेमवतीर एइ त' स्वभाव।
कान्तेर उदास्य-लेशे हय क्रोधभाव॥"127॥

अनुवाद—श्रीस्वरूप दामोदरने कहा,—"प्रेमवतीका यही तो स्वभाव ही होता है कि कान्तकी लेशमात्र उदासीनतासे ही उसमें क्रोध उत्पन्न हो जाता है॥"127॥

विपुल समारोहमें बहुतसी दासियोंके साथ लक्ष्मीका आगमन :—

हेनकाले, खचित याहे विविध रतन।
सुवर्णेर चौदोला करि' आरोहण॥128॥

छत्र-चामर-ध्वजा पताकार गण।
नानावाद्य-आगे नाचे देवदासीगण॥129॥

ताम्बुल-सम्पुट, झारी, व्यजन, चामर।
साथे दासी शत, हार दिव्य भूषाम्बर॥130॥

अनेक ऐश्वर्य सङ्गे बहु-परिवार।
क्रु

अनुवाद—महाप्रभु और श्रीस्वरूप दामोदरका वार्त्तालाप चल ही रहा था, उसी समय विविध रत्नोंसे जड़ित सोनेकी पालकीपर बैठीं लक्ष्मीदेवीकी सवारी आयी। उनकी कुछ दासियाँ हाथोंमें छत्र, चामर, ध्वजा तथा पताकाएँ लेकर पालकीको चारों ओरसे घेरकर चल रही थीं। पालकीके आगे वादक अनेक प्रकारके वाद्ययन्त्र बजा रहे थे और देवदासियाँ नृत्य कर रही थीं। कुछ दासियाँ पानकी पेटिका, जलपात्र, पंखा, चामर लेकर चल रही थीं। उनके साथ हार तथा दिव्य परिधान धारण किये और सैंकड़ों दासियाँ थी। इस प्रकार लक्ष्मीदेवी क्रोधित होकर सिंहद्वारपर आयीं। उनके साथ उनके परिवारके अनेक सदस्य थे, उन सबका अपार ऐश्वर्य था॥128–131॥

अनुभाष्य— *'सम्पुट'*—पेटिका; 'झारी'—नलरहित जलपात्र॥130॥

लक्ष्मीकी दासियोंके द्वारा श्रीजगन्नाथके प्रधान सेवकोंको बाँधकर ईश्वरीके पास लाना और प्रहार :—

जगन्नाथेर मुख्य मुख्य यत भृत्यगणे।
लक्ष्मीदेवीर दासीगण करेन बन्धने॥132॥

बान्धिया आनिया पाड़े लक्ष्मीर चरणे।
चोरे दण्ड करे, येन लय नाना-धने॥133॥

अचेतनवत् तारे करेन ताड़ने।
नानामत गालि देन भण्ड-वचने॥134॥

अनुवाद—जब लक्ष्मीदेवी सिंहद्वार पर पहुँचीं, तब उनकी दासियाँ श्रीजगन्नाथके मुख्य-मुख्य दासोंको बाँधने लगीं। उन्हें बाँधकर लक्ष्मीदेवीके चरणोंमें ऐसे पटक दिया जैसे चोरको बहुत धन चुरानेपर दण्ड दिया जाता है। लक्ष्मीदेवीके चरणोंमें गिरकर श्रीजगन्नाथके सेवक प्रायः मूर्च्छित हो गये। लक्ष्मीदेवीकी दासियाँ अनेक प्रकारके अश्लील वचनोंका व्यवहार करके उन्हें गालियाँ देने लगीं॥132–134॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीजगन्नाथ जिस समय रथपर यात्रा करते हैं, उस समय लक्ष्मीको यह कहकर जाते हैं कि 'मैं कल ही लौट आऊँगा'। दो-तीन दिन बीत जानेपर भी श्रीजगन्नाथके न आनेपर, कान्तकी उदासीनताके लेशमात्रके दर्शनसे ही प्रेमवती लक्ष्मीदेवीमें स्वभावतः ही क्रोध उदित होता है। तब वे सज-धजकर पालकीमें विराजमान होकर अपनी सब दासियोंके साथ श्रीमन्दिरसे बाहर निकल पड़ती हैं। इसी समय, श्रीजगन्नाथके मन्दिरमें एक परम रहस्यमय घटना होती है, लक्ष्मीदेवीकी सेविकाएँ श्रीजगन्नाथके प्रधान-प्रधान सेवकोंको बाँधकर लाकर उनके चरणोंमें पटक देती हैं॥132–133॥

लक्ष्मीकी दासियोंकी उद्दण्डताको देख भक्तोंका हँसना :—

लक्ष्मी-सङ्गे दासीगणेर प्रागल्भ्य देखिया।
हासे महाप्रभुर गण मुखे हस्त दिया॥ 135॥

अनुवाद—लक्ष्मीदेवीकी दासियोंकी ढिठाईको देखकर महाप्रभुके भक्त मुँहपर हाथ रखकर हँसने लगे॥ 135॥

श्रीदामोदरके द्वारा लक्ष्मीदेवीके ऐसे अपूर्व असाधारण मानकी व्याख्या :—

दामोदर कहे,—"ऐछे मानेर प्रकार।
त्रिजगते काँहा देखि, शुनि नाइ आर॥ 136॥

कान्तकी उदासीनतासे मानिनी कान्ताका आचरण :—

मानिनी निरुत्साहे छाड़े विभूषण।
भूमे बसि' नखे लेखे, मलिन-वदन॥ 137॥

व्रजगोपियों और सत्यभामाका मान भी इसी प्रकार :—

पूर्वे सत्यभामार शुनि एवम्विध मान।
व्रजे गोपीगणेर मान—रसेर निधान॥ 138॥

लक्ष्मीका मान उनसे भी विलक्षण :—

इँहो निज-सम्पत्ति सब प्रकट करिया।
प्रियेर उपर याय सैन्य साजाञा॥"139॥

अनुवाद—तब श्रीस्वरूप दामोदरने कहा,—"इस प्रकारका मान तो त्रिभुवनमें मैंने न कहीं देखा है और न सुना है। प्रायः मानिनी तो निरुत्साहित होकर अपने आभूषण उतार देती है और मलिन-मुख होकर वह भूमिपर बैठकर अपने नखोंसे लिखने लगती है। पूर्वकालमें श्रीसत्यभामाके इस प्रकारके मानके विषयमें मैंने सुना है और व्रजमें गोपियोंका मान तो रसका भण्डार है। परन्तु लक्ष्मीके विषयमें तो मैं अलग प्रकारका मान देख रहा हूँ। वे तो अपना सारा ऐश्वर्य दिखाते हुए अपने सैन्य बलके साथ प्रियतम श्रीजगन्नाथके ऊपर आक्रमण करने जा रही हैं॥"136-139॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीस्वरूप गोस्वामीने लक्ष्मीकी ऐसी ढिठाईको देखकर व्रजवासियोंकी प्रेम-सम्पत्तिके उत्कर्षको दिखलानेके लिये कहा,—"प्रभो, लक्ष्मीके इस प्रकारके मानके विषयमें मैंने कभी भी त्रिजगत्‌में नहीं सुना है। प्रिया मानिनी होनेपर उत्साहहीन होकर भूषणादि परित्याग करके मलिन-मुखसे भूमिपर बैठकर नखसे कुछ-कुछ लिखती है। व्रजमें गोपियोंके इस प्रकारका मान और द्वारकापुरवासिनी सत्यभामाका भी ऐसा मान सुना गया है, किन्तु लक्ष्मीदेवीका मान उसके विपरीत देख रहा हूँ। ये अपने ऐश्वर्यको प्रकट करके सेना सजाकर प्रियके ऊपर आक्रमण करने जा रही हैं॥ 136-139॥

महाप्रभुके प्रश्नोंके उत्तरमें श्रीस्वरूपके द्वारा गोपियोंके मानका वर्णन :—

प्रभु कहे,—"कह व्रजेर मानेर प्रकार।"
स्वरूप कहे,—"गोपीमान-नदी शतधार॥ 140॥

कान्ताके स्वभाव और प्रीतिके भेदसे मान-भेद :—

नायिकार स्वभाव, प्रेमवृत्त्ये बहु भेद।
सेइ भेदे नाना-प्रकार मानेर भेद॥ 141॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"यह बतलाओ कि व्रजका मान कितने प्रकारका होता है।" श्रीस्वरूप दामोदरने उत्तर दिया,—"गोपियोंका मान तो सैकड़ों धाराओंवाली नदीके समान है। व्रजमें नायिकाओंके स्वभाव और उनकी प्रेमकी वृत्तिके अनुसार बहुत भेद हैं और उस भेदके कारण उनमें उदित होनेवाले मानके भी अनेक भेद हैं॥ 140-141॥

अमृतप्रवाह भाष्य—नायिकाका स्वभाव और प्रेमवृत्ति—अनेक प्रकारके हैं, उसी भेदके अनुसार ही प्रत्येक नायिकाके (विभिन्न) मानका उदय होता है॥ 141॥

गोपियोंके अनिवर्चनीय मानका संक्षेपमें वर्णन :—

सम्यक् गोपिकार मान ना याय कथन।
एक-दुइ-भेदे करि दिग्-दरशन॥ 142॥

अनुवाद—सम्पूर्ण रूपसे गोपियोंके मानका वर्णन तो नहीं किया जा सकता, तो भी एक-दो भेद बतलाकर उसका दिग्दर्शन करा रहा हूँ॥ 142॥

तीन प्रकारकी मानिनी :—

माने केह हय 'धीरा', केह त' 'अधीरा'।
एइ तिन-भेदे, केह हय 'धीराधीरा'॥ 143॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 143॥

अमृतप्रवाह भाष्य—मानिनीगण संक्षेपमें तीन भागोंमें विभक्त हैं—'धीरा', 'अधीरा' और 'धीराधीरा'॥ 143॥

'धीरा' मानिनीका स्वभाव :—

'धीरा' कान्ते दूरे देखि' करे प्रत्युत्थान।
निकटे आसिते, करे आसन प्रदान॥ 144॥

हृदये कोप, मुखे कहे मधुर वचन।
प्रिय आलिङ्गिते, तारे करे आलिङ्गन॥ 145॥

सरल व्यवहार, करे मानेर पोषण।
किम्वा सौलुण्ठ-वाक्ये करे प्रिय-निरसन॥ 146॥

अनुवाद—'धीरा'-मानिनी दूरसे कान्तको आते देखकर उसके स्वागतके लिये खड़ी हो जाती है और कान्तके निकट आनेपर उसे आसन प्रदान करती है। हृदयमें क्रोध होनेपर भी मुखसे मधुर वचन ही बोलती है। प्रियतमके आलिङ्गन करनेपर वह भी उसका आलिङ्गन करती है। वह कान्तके प्रति सरल व्यवहार करते हुए भी हृदयमें मानका पोषण करती है। अथवा बाहरसे परिहासयुक्त मृदु वचनों या व्याज-स्तुतिके द्वारा अपने प्रियतमकी निकट आनेकी चेष्टा आदिका निराकरण करती है॥ 144–146॥

अनुभाष्य— *'सौलुण्ठ वाक्य'*—मन्दहास-परिहासयुक्त अथवा व्याज-स्तुति वाक्य; 'निरसन'—प्रतिवाद॥ 146॥

'अधीरा' मानिनीका स्वभाव :—

'अधीरा' निष्ठुर-वाक्ये करये भर्त्सन।
कर्णोत्पले ताड़े, करे मालाय बन्धन॥ 147॥

अनुवाद—'अधीरा' नायिका कभी निष्ठुर (कटु) वाक्योंके द्वारा अपने कान्तकी भर्त्सना करती है। कभी उसके कानोंको खींचती है और कभी मालाके द्वारा उसे बाँध भी देती है॥ 147॥

'धीराधीरा' मानिनीका स्वभाव :—

'धीराधीरा' वक्र-वाक्ये करे उपहास।
कभु स्तुति, कभु निन्दा, कभु वा उदास॥ 148॥

अनुवाद—'धीराधीरा' नायिका कभी वक्रोक्ति (कुटिल वचनों)के द्वारा कान्तका उपहास करती है, कभी स्तुति, कभी निन्दा और कभी उसके प्रति उदासीन हो जाती है॥ 148॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 8/171 संख्या देखें; *'वक्र'*—कुटिल, शठतापूर्ण॥ 148॥

तीन प्रकारकी नायिकाएँ; मान-कौशलमें मुग्धाकी अनभिज्ञता :—

'मुग्धा', 'मध्या', 'प्रगल्भा',—तिन नायिकार भेद।
'मुग्धा' नाहि जाने मानेर वैदग्ध्य-विभेद॥ 149॥

मुख आच्छादिया करे केवल रोदन।
कान्तेर प्रियवाक्य शुनि' हय प्रसन्न॥ 150॥

अनुवाद—नायिकाओंके तीन भेद हैं—'मुग्धा', 'मध्या' और 'प्रगल्भा'। 'मुग्धा' नायिका मानके चातुर्यकी गहराइयोंको नहीं जानती। वह मान करके मुँहको ढककर केवल रोती रहती है और कान्तके द्वारा कहे गये प्रियवचनोंको सुनकर ही प्रसन्न हो जाती है अर्थात् उसका मान दूर हो जाता है॥ 149–150॥

अनुभाष्य— *'वैदग्ध्य-विभेद'*—अनेक प्रकारकी कुशलता॥ 149॥

'मध्य' और 'प्रगल्भा'का ही पूर्वोक्त धीरा, अधीरा और धीराधीरा-भेद; इसीमें श्रीकृष्णका सुख :—

'मध्या' 'प्रगल्भा' धरे धीरादि-विभेद।
तार मध्ये सबार स्वभावे तिन भेद॥ 151॥

केह 'प्रखरा', केह 'मृदु', केह हय 'समा'।
स्व-स्वभावे कृष्णेर बाड़ाय प्रेम-सीमा॥ 152॥

प्राखर्य्य, मार्द्दव, साम्य—स्वभाव निर्द्दोष।
सेइ सेइ स्वभावे कृष्णे कराय सन्तोष॥"153॥

अनुवाद—'मध्या' और 'प्रगल्भा' नायिकाएँ धीरादिके भेदसे तीन प्रकारकी हैं। फिर इन सबके स्वभावमें भी तीन प्रकारके भेद हैं—कोई 'प्रखरा', कोई 'मृदु' और कोई 'समा' है। ये सब अपने स्वभावके अनुसार श्रीकृष्णके प्रेमको अन्तिम सीमा तक बढ़ाती हैं। यद्यपि कुछ गोपियाँ प्रखरा, कुछ मृदु और कुछ सम हैं, परन्तु तीनों प्रकारकी गोपियाँ अप्राकृत और निर्दोष हैं। वे अपने-अपने विशेष स्वभावसे श्रीकृष्णको सन्तुष्ट करती हैं॥ 151–153॥

अमृतप्रवाह भाष्य—नायिकाएँ तीन प्रकारकी हैं,—'मुग्धा', 'मध्या' और 'प्रगल्भा'। मुग्धागण मान-चातुर्यका किसी प्रकारका भेद (रहस्य) नहीं जानतीं। जो सब नायिकाएँ,—'मध्या' और 'प्रगल्भा' हैं, वे ही धीरादिके भेदसे तीन प्रकारकी हैं॥ 149–151॥

अनुभाष्य—श्रीउज्ज्वलनीलमणिमें नायिका-भेद, यूथेश्वरी-भेद और सखी-भेद-प्रकरण देखें॥ 141–153॥

गोपियोंके नायिका-लक्षणोंको
सुनकर महाप्रभुकी प्रसन्नता :—

एकथा शुनिया प्रभुर आनन्द अपार।
'कह, कह, दामोदर',—बले बार बार॥ 154॥

अनुवाद—नायिकाओंके विषयमें सुनकर महाप्रभुको अपार आनन्द हुआ और वे बार-बार कहने लगे,—'दामोदर, और कहो, और कहो॥' 154॥

श्रीस्वरूपके द्वारा श्रीकृष्ण और गोपियोंके
परस्पर प्रेम-लक्षणका वर्णन :—

दामोदर कहे,—"कृष्ण रसिकशेखर।
रस-आस्वादक, रसमय-कलेवर॥ 155॥

प्रेममय-वपु कृष्ण—भक्त प्रेमाधीन।
शुद्धप्रेमे, रसगुणे, गोपिका—प्रवीण॥ 156॥

गोपिकार प्रेमे नाहि रसाभास-दोष।
अतएव कृष्णेर करे परम सन्तोष॥ 157॥

अनुवाद—श्रीस्वरूप दामोदरने कहा,—"श्रीकृष्ण रसिकशेखर हैं, वे सभी रसोंके आस्वादक हैं और उनका शरीर भी रसमय है। श्रीकृष्णका शरीर प्रेमके द्वारा गठित है और वे भक्तोंके प्रेमके अधीन हैं। गोपियोंका श्रीकृष्णके प्रति शुद्ध प्रेम है और उन्हें रसका आस्वादन करानेमें प्रवीण हैं। गोपियोंके प्रेममें रसाभास-दोष नहीं है, इसलिये वे श्रीकृष्णको परम सन्तोष प्रदान करती हैं॥ 155–157॥

अनुभाष्य—*'रस-आस्वादक'*—श्रीकृष्ण ही चिद्-रसके एकमात्र आस्वादक, भोक्ता अथवा विषय हैं, अन्य सभी उनके आश्रय अथवा भोग्य हैं।

'रसाभास'—भः रः सिः, उः विः, नौवीं लहरी,—

'पूर्वमेवानु
रसा एव रसाभासा रसज्ञैरनुकीर्त्तिताः॥
स्युस्त्रिधोपरसाश्चानुरसाश्चापरसाश्च ते।
उत्तमा मध्यमाः प्रोक्ताः कनिष्ठाश्चेत्यमी क्रमात्॥"

पूर्वकथित रस-लक्षणसे विपर्ययता प्राप्त करनेपर उस लक्षणहीन रसको ही रसिकगण 'रसाभास' कहते हैं। रसाभास तीन प्रकारके हैं—उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ अर्थात् उपरस, अनुरस और अपरस॥ 155–157॥

श्रीकृष्णकी चिन्मयी रासक्रीड़ा :—
(श्रीमद्भागवत 10/33/25)—

एवं शशाङ्कांशुविराजिता निशाः
स सत्यकामोऽनुरताबलागणः।
सिषेव आत्मन्यवरुद्ध-सौरतः
सर्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रयाः॥ 158॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 158॥

अमृतप्रवाह भाष्य—इस प्रकारसे शरत्कालीन और काव्य-सम्बन्धीय समस्त कथाओंके रसाश्रय-रूप, अबलाओंके द्वारा अनुरत, चन्द्र-किरणोंसे सुशोभित उन सब रात्रियोंमें, चिन्मय-भावावरुद्ध सत्यकाम शृङ्गाररसमय पुरुष श्रीकृष्णने रासलीला की थी। तात्पर्य यह है,—सभी गोपियाँ शुद्ध चिन्मयी हैं, श्रीवृन्दावन शुद्ध

चिन्मयधाम है और वे आनन्दमय सभी रात्रियाँ भी चिन्मय रात्रियाँ हैं; जो रासलीला हुई थी, वह भी सम्पूर्ण रूपसे चिन्मय है; उसमें जड़ीय किसी भी क्रियाका स्पर्शमात्र भी नहीं हुआ। श्रीकृष्ण कभी भी जड़मयी रतिकी ओर देखते नहीं हैं। चिद्-जगत्में ही उनकी समस्त लीलाएँ अवरुद्ध हैं; उनकी कामक्रीड़ा—सब कुछ चिन्मय कार्य-मात्र है॥ 158॥

अनुभाष्य—शुद्ध हृदयवाले राजा परीक्षितको महाभागवत परमहंस-कुलचूड़ामणि श्रीशुकदेवके द्वारा गोपियोंके साथ श्रीकृष्णकी रासक्रीड़ाका वर्णन—

एवं [कथितभावेन] सत्यकामः (नित्यसत्यसङ्कल्पः श्रीकृष्णः) अनुरताबलागणः (अनुरतः आकृष्टः अबलागणः यस्मिन् तादृशः अनुरागि-स्त्रीकदम्बस्थः इत्यर्थः) आत्मनि (एव) अवरुद्धसौरतः (अवरुद्धाः सौरताः सुरतव्यापाराः येन एवम्भूतः सः आत्मारामः अप्राकृत-कामदेवः इत्यर्थः) शरत्-काव्यकथारसाश्रयाः (शरदि भवाः काव्येषु कथ्यमाना ये रसास्तेषामाश्रयभूताः, यद्वा, शरत्कालोचितकाव्यकथारसाः तेषाम् आश्रयभूताः ताः, यद्वा, 'रसाश्रयाः शरत्काव्यकथाः' इत्यन्वये—शृङ्गार-रसाश्रयाः शरदि प्रसिद्धाः काव्येषु याः कथास्ताः) शशाङ्कांशुविराजिताः (शशाङ्कस्य अंशुभिः किरणैः विराजिताः शोभमानाः) सर्वाः एव निशाः सिषेवे (रासक्रीड़या यापयामास)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 158॥

गोपियोंमें नायिकोचित परम-चमत्कार-
लक्षणमय गुण-वैचित्र्य :—

'वामा' एक गोपीगण, 'दक्षिणा' एक गण।
नाना-भावे कराय कृष्णे रस आस्वादन॥ 159॥

अनुवाद—एक प्रकारकी गोपियाँ 'वामा' स्वभावकी हैं और दूसरी प्रकारकी 'दक्षिणा' स्वभावकी हैं। ये अनेक भावोंके द्वारा श्रीकृष्णको रसास्वादन कराती हैं॥ 159॥

सभी गोपियोंमें श्रेष्ठा श्रीकृष्णप्रेष्ठा
श्रीराधाके गुण और स्वभाव :—

गोपीगण-मध्ये श्रेष्ठा राधा-ठाकुराणी।
निर्मल-उज्ज्वल-रस-प्रेम-रत्नखनि॥ 160॥
वयसे 'मध्यमा' तेँहो स्वभावेते 'समा'।
गाढ़ प्रेमभावे तेँहो निरन्तर 'वामा'॥ 161॥
वाम्य-स्वभावे मान उठे निरन्तर।
तार मध्ये उठे कृष्णेर आनन्द-सागर॥"162॥

अनुवाद—गोपियोंमें सर्वश्रेष्ठा श्रीराधा-ठाकुराणी हैं, वे निर्मल-उज्ज्वल-रस-प्रेमरूपी रत्नोंकी खान हैं। वे आयुमें 'मध्यमा' (पौगण्ड और यौवनके मध्य), स्वभावमें 'समा' (समभाव) हैं। 'समा' होनेपर भी गाढ़ प्रेमभावके कारण निरन्तर 'वामा' अर्थात् वाम्यभाव धारण करनेवाली हैं। वाम्य स्वभावके कारण निरन्तर मानवती होती रहती हैं, जिसके द्वारा वे श्रीकृष्णको आनन्द सागरमें निमज्जित करती हैं॥ 160-162॥

अमृतप्रवाह भाष्य—गोपियाँ दो प्रकारकी हैं,—'वामा' और 'दक्षिणा'। गोपियोंके मध्य निर्मल उज्ज्वल-रस-प्रेमरत्नकी खान-स्वरूपा राधा-ठाकुराणी ही सर्वश्रेष्ठा हैं। वे आयुमें—'मध्यमा', स्वभावमें—'समा' एवं निरन्तर 'वामा' हैं। उनके वाम्य स्वभावसे ही मान उदित होता है॥ 159-162॥

अनुभाष्य— *'वामा'*—उज्ज्वलनीलमणिके सखी प्रकरणमें, 32 संख्या—

"मानग्रहे सदोद्युक्ता तच्छैथिल्ये च कोपना।
अभेद्या नायके प्रायः क्रूरा वामेति कीर्त्त्यते॥"

"जो नायिका मानग्रहण करनेमें सदैव चेष्टाशील होती है, मानके शिथिल पड़नेसे अत्यन्त कोप करती है, नायक जिसको सहज ही वशीभूत करनेमें समर्थ नहीं होता तथा नायकके प्रति प्रायः कठोर होती है, वही 'वामा' कहलाती है।"

'दक्षिणा'—उज्ज्वलनीलमणिके सखी प्रकरणमें 38 संख्या—

"असह्या माननिर्बन्धे नायके युक्तवादिनी।
सामभिस्तेन भेद्या च दक्षिणा परिकीर्तिता॥"

"जो नायिका मान करनेमें असमर्थ होती है,

नायकके प्रति युक्तिपूर्ण प्रिय वचनोंका प्रयोग करती है, नायकके प्रीतिपूर्ण वचनोंसे प्रसन्न हो जाती है, उसे 'दक्षिणा' कहते हैं॥ 159॥

उज्जवलनीलमणिमें शृङ्गारभेदकथनमें 102 श्लोक :—

अहेरिव गतिः प्रेम्णः स्वभावकुटिला भवेत्।
अतो हेतोरहेतोश्च यूनोर्मान उदञ्चति॥ 163॥

अनुवाद—सर्पकी स्वभाव-सिद्ध कुटिलगतिकी भाँति प्रेमकी भी स्वाभाविक वक्रगति होती है। इसलिये कभी कारण और कभी अकारण ही नायक एवं नायिकाका मान उदित होता है॥ 163॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 8/110 संख्या देखें॥ 163॥

महाप्रभुकी हर्ष-वृद्धि, दामोदरके द्वारा श्रीराधाके कृष्णप्रेम या महाभाव-सार-पराकाष्ठा-महिमा-व्याख्याका विस्तार :—

एत शुनि' बाड़े प्रभुर आनन्द-सागर।
'कह, कह' कहे प्रभु, बले दामोदर॥ 164॥

"अधिरूढ़ महाभाव—राधिकार प्रेम।
विशुद्ध, निर्मल, यैछे दग्धवान् हेम॥ 165॥

कृष्णेर दर्शन यदि पाय आचम्बिते।
नाना-भाव-विभूषणे हय विभूषिते॥ 166॥

अनुवाद—यह सुनकर महाप्रभुका आनन्द-सागर वर्धित होने लगा और वे श्रीस्वरूप दामोदरको 'और कहो, और कहो' कहने लगे। श्रीस्वरूप दामोदर कहने लगे,—"श्रीराधिकाका प्रेम अधिरूढ़ महाभाव है। वह प्रेम विशुद्ध, निर्मल और तपाये हुए सोनेकी भाँति उज्ज्वल है। श्रीराधिकाको यदि अक्समात् श्रीकृष्णका दर्शन प्राप्त हो जाता है, तो वे अनेक भावरूपी आभूषणोंसे विभूषित हो जाती हैं॥ 164-166॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'दग्धवान् हेम'*—ज्वलित अर्थात् तपता हुआ सोना॥ 165॥

अनुभाष्य—*'अधिरूढ़ महाभाव'*—उज्ज्वलनीलमणिके स्थायिभाव प्रकरणमें 170 संख्या—

"रूढ़ोक्तेभ्योऽनुभावेभ्यः कामप्याप्ता विशिष्टताम्।
यत्रानुभावा दृश्यन्ते सोऽधिरूढ़ो निगद्यते॥"

"रूढ़भावके लक्षणमें कहे गये जो सब सात्त्विक अनुभाव अपूर्व विशिष्टताको प्राप्त होते हैं, उस अनिर्वचनीय विशिष्टता-प्राप्त सात्त्विक भावसमूहको 'अधिरूढ़ महाभाव' कहते हैं॥"165॥

श्रीकृष्णको परिपूर्ण मात्रामें सुख प्रदान करनेवाले सब प्रकारके भावरूपी अलङ्कारोंसे विभूषित श्रीराधिका :—

अष्ट 'सात्त्विक', हर्षादि 'व्यभिचारी' याँर।
'सहज प्रेम', विंशति 'भाव' अलङ्कार॥ 167॥

'किलकिञ्चित', 'कुट्टमित', 'विलास', 'ललित'।
'विव्वोक', 'मोट्टायित', आर 'मौग्ध्य', 'चकित'॥ 168॥

श्रीकृष्णवाञ्छा पूर्ण करनेवाली श्रीराधाके नाना भाव-अलङ्कार-शोभित रूप-दर्शनसे श्रीकृष्णको असीम सुख :—

एत भावभूषाय भूषित श्रीराधार अङ्ग।
देखिते उथले कृष्णसुखाब्धि-तरङ्ग॥ 169॥

अनुवाद—आठ सात्त्विकभाव, हर्षादि व्यभिचारी भाव, 'सहज प्रेम', बीस भावरूपी अलङ्कार—'किलकिञ्चित', 'कुट्टमित', 'विलास', 'ललित', 'विव्वोक', 'मोट्टायित', 'मौग्ध्य' और 'चकित'—इन समस्त भावरूपी अलङ्कारोंसे श्रीराधिकाके अङ्ग विभूषित हैं, जिन्हें देखने मात्रसे ही श्रीकृष्णके सुख-समुद्रमें तरङ्गें उठने लगती हैं॥ 167-169॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'सात्त्विक'*—सात्त्विक विकार आठ प्रकारके हैं—(1) स्तम्भ, (2) स्वेद (पसीना), (3) रोमाञ्च, (4) स्वरभङ्ग, (5) वेपथु (कम्प), (6) वैवर्ण्य (वर्ण परिवर्तन), (7) अश्रु और (8) प्रलय।

'व्यभिचारी'—व्यभिचारी अथवा सञ्चारी भाव तैंतीस प्रकारके हैं, जैसे,—

(1) निर्वेद, (2) विषाद, (3) दैन्य, (4) ग्लानि, (5) श्रम, (6) मद, (7) गर्व, (8) शङ्का, (9) त्रास, (10) आवेग, (11) उन्माद, (12) अपस्मार, (13) व्याधि, (14) मोह, (15) मृति, (16) आलस्य,

(17) जाड्य, (18) व्रीड़ा, (19) अवहित्था, (20) स्मृति, (21) वितर्क, (22) चिन्ता, (23) मति, (24) धृति, (25) हर्ष, (26) औत्सुक्य, (27) औग्र्य, (28) अमर्ष (29) असूया, (30) चापल्य, (31) निद्रा, (32) सुप्ति और (33) प्रबोध।

'भाव' रूप अलङ्कार—बीस प्रकारके हैं; जैसे—

[क] अङ्गज (अङ्गोंमें उत्पन्न)— (1) भाव, (2) हाव, (3) हेला; [ख] अयत्नज (बिना प्रयासके उत्पन्न)— (4) शोभा, (5) कान्ति, (6) दीप्ति, (7) माधुर्य, (8) प्रगल्भता, (9) औदार्य, (10) धैर्य; [ग] स्वभावज (स्वभावसे उत्पन्न)— (11) लीला, (12) विलास, (13) विच्छित्ति, (14) विभ्रम, (15) किलकिञ्चित, (16) मोट्टायित, (17) कुट्टमित, (18) विव्वोक, (19) ललित और (20) विकृत॥ **167**॥

अनुभाष्य— *'किलकिञ्चित'*—इस अध्यायकी 174 संख्या देखें। *'कुट्टमित'*—इसी अध्यायकी 197 संख्या देखें। *'विलास'*—इसी अध्यायकी 187 संख्या देखें। *'ललित'*—इसी अध्यायकी 192 संख्या देखें। *'विव्वोक'*—उज्ज्वलनीलमणिके अनुभाव प्रकरणमें 75 संख्या—

"इष्टेऽपि गर्वमानाभ्यां विव्वोकः स्यादनादरः"

अर्थात् गर्व और मानके द्वारा प्रियतम अथवा उनके द्वारा दी गयी वस्तुके अनादरको 'विव्वोक' कहते हैं। *'मोट्टायित'*—उज्ज्वलनीलमणिमें अनुभाव प्रकरणमें—

"कान्तस्मरणवार्त्तादौ हृदि तद्भावभावतः।
प्राकट्यमभिलाषस्य मोट्टायितमुदीर्यते॥ "

अर्थात् हृदयमें प्रियतमकी स्मृति और कथाजनित उनकी भावनासे जो अभिलाषा उत्पन्न होती है, वही 'मोट्टायित' कहलाती है। 'मौग्ध्य',—उज्ज्वलनीलमणिके अनुभाव प्रकरणमें—

"ज्ञातस्याप्यज्ञवत्पृच्छा प्रियाग्रे मौग्ध्यमीरितम्"

अर्थात् कान्तके सामने नायिका किसी विषयको जाननेपर भी जैसे नहीं जानती है, इस प्रकारके भावको प्रकाश करके जो जिज्ञासा करती है, उसीको 'मौग्ध्य' कहते हैं। *'चकित'*—उज्ज्वलनीलमणिके अनुभाव प्रकरणमें—

"प्रियाग्रे चकितं भीतेरस्थानेऽपि भयं महत्"

अर्थात् कान्तके सम्मुख होनेपर भयभीत नहीं होनेपर भी जब नायिका अत्यन्त भयभीत होनेका प्रदर्शन करती है, उसीको 'चकित' कहते हैं।" आदिलीला 4/243, 250, 256 संख्या देखें॥ **168–169**॥

श्रीराधाके 'किलकिञ्चित'-भावके दृष्टान्त-स्थल :—

किलिञ्चितादि-भावेर शुन विवरण।
ये भाव-भूषाय राधा हरे कृष्ण-मन॥ 170॥
राधा देखि' कृष्ण यदि छुँइते करे मन।
दानघाटि-पथे यबे वर्जेन गमन॥ 171॥
याबे आसि' माना करे पुष्प उठाइते।
सखी-आगे चाहे यदि गाये हात दिते॥ 172॥
एइसब स्थाने 'किलकिञ्चित'-उद्गम।
प्रथमे 'हर्ष' सञ्चारी—मूल-कारण॥ 173॥

अनुवाद—अब किलकिञ्चितादि भावोंका विवरण सुनिये जिन भावरूपी भूषणोंसे विभूषित होकर श्रीराधा श्रीकृष्णका मन हरण करती हैं। श्रीकृष्ण जब श्रीराधाको देखकर यदि उन्हें छूनेकी इच्छा करते हैं, अथवा जब दानघाटीका पथ अवरुद्धकर जब श्रीराधाको जानेसे रोकते हैं, अथवा जब श्रीराधाके पास आकर उन्हें पुष्प-चयन करनेसे मना करते हैं, अथवा किसी सखीके सामने श्रीराधाके श्रीअङ्गको छूनेका प्रयास करते हैं—ऐसे समयपर किलकिञ्चित भावका प्राकट्य होता है। पहले हर्ष-नामक सञ्चारी भाव प्रकट होता है और यही इन किलकिञ्चत भावोंका मूल कारण है॥ **170–173**॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जब श्रीमती राधिकाकी भाव-भूषा देखकर श्रीकृष्णमें उन्हें स्पर्श करनेकी इच्छा उत्पन्न होती है, तब दानघाटीके पथमें, या फिर पुष्पोंके वनमें,

वैसी लीला सम्पादित करते हैं। दानघाटीके पथपर इस प्रकारकी लीला,—जिस मार्गपर श्रीमती राधिका दूध-दही-घी आदि लेकर जाती हैं, उस रास्ते अथवा दूसरी पार खड़े होकर श्रीकृष्ण कहते हैं,—'तुम जब तक शुल्क (कर) नहीं दोगी, तब तक इस मार्गसे तुम्हारा जाना मना है'; इस छलसे एक दानकेलिरूप लीलाका उद्गम करते हैं। और जब श्रीराधिका पुष्प चयन करने जाती हैं, तब श्रीकृष्ण पुष्पवनके अधिकारी बनकर 'मेरे पुष्प चोरी कर रही हो' कहकर एक लीलाका उद्गम करते हैं। इन सभी स्थानोंपर ऐसे समयमें श्रीराधाजीका 'किलकिञ्चित' भाव प्रकट होता है॥ 171-173॥

किलकिश्चित-भावकी संज्ञा :—
उज्ज्वलनीलमणिमें अनुभाव प्रकरणमें (44 श्लोक)—

गर्वाभिलाषरुदितस्मितासूयाभयक्रु
सङ्करीकरणं हर्षादुच्यते किलकिञ्चितम्॥ 174॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 174॥

अमृतप्रवाह भाष्य—गर्व, अभिलाष, रोदन, हास्य, असूया, भय और क्रोध—इन सात भावोंके हर्षके साथ संमिश्रणको 'किलकिञ्चित्' भाव कहते हैं॥ 174॥

अनुभाष्य—

हर्षात् (हर्षः एव हेतुः तस्मात्) गर्वाभिलाषरुदितस्मितासूयाभय-क्रुधां (गर्वादीनां सप्तानां भावानां) सङ्करीकरणं (मिश्रणं युगपत्-प्राकट्यं) 'किलकिञ्चितम्' उच्यते।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 174॥

गर्वादि सात भावोंका हर्षके साथ युगपत्
मिलनके फलसे उक्त 'महाभाव'का उदय :—

आर सात भाव आसि' सहजे मिलय।
अष्टभाव-सम्मिलने 'महाभाव' हय॥ 175॥

गर्व, अभिलाष, भय, शुष्करुदित।
क्रोध, असूया हय, आर मन्दस्मित॥ 176॥

नाना-स्वादु अष्टभाव एकत्र मिलन।
याहार आस्वादे तृप्त हय कृष्ण-मन॥ 177॥

मीठे पानेके साथ उपमा :—

दधि, खण्ड, घृत, मधु, मरीच, कर्पूर।
एलाची-मिलने यैछे रसाला मधुर॥ 178॥

अनुवाद—हर्षके साथ गर्व, अभिलाष, भय, शुष्क-रोदन, क्रोध, असूया और मन्द-मुस्कान—ये सात भाव सहजमें आकर मिल जाते हैं और इन आठ भावोंके मिलनेसे 'महाभाव' होता है। इन आठ भावोंका एक साथ मिश्रण ऐसा स्वादिष्ट होता है कि उसे आस्वादन करके श्रीकृष्णका मन तृप्त हो जाता है; जिस प्रकार दही, चीनी, घी, मधु, काली मिर्च, कर्पूर और छोटी इलायचीके मिलनेपर रस मधुर हो जाता है॥ 175-178॥

अनुभाष्य—मूल कारण हर्षके साथ गर्व आदि सात भाव जब मिलते हैं, तब इन आठ भावोंके सम्मिलनसे 'किलकिञ्चित'-महाभाव होता है॥ 175॥

श्रीराधाके किलकिश्चित भाव-दर्शनसे
श्रीकृष्णका प्रगाढ़तम सुख :—

एइ भाव-युक्त देखि' राधास्य-नयन।
सङ्गम हइते सुख पाय कोटि-गुण॥"179॥

अनुवाद—किलकिञ्चित भावसे युक्त श्रीराधाके मुखकमल और नेत्रोंको देखकर श्रीकृष्णको जो सुख होता है, वह श्रीराधाके सङ्गम सुखसे भी करोड़ों गुणा अधिक है॥ 179॥

श्रीराधाके किलकिश्चित-भावका दृष्टान्त-स्थल :—
दानकेलिकौमुदीमें (1) श्लोक और उज्ज्वलनीलमणिमें
अनुभावकथनमें (46) श्लोक—

अन्तःस्मेरतयोज्ज्वला जलकणव्याकीर्णपक्ष्माङ्कुरा
किञ्चित्पाटलिताञ्चला रसिकतोत्सिक्ता पुरः कुञ्चती।
रुद्धायाः पथि माधवेन मधुरव्याभुग्नतारोत्तरा
राधायाः किलकिञ्चितस्तबकिनी दृष्टिः श्रियं वः क्रियात्॥ 180॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 180॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीराधिकाके गर्वादि सात भावोंसे

मिलित, हर्षजनित 'किलकिञ्चित' भावोत्थित दृष्टि तुम्हारा मङ्गलविधान करे। दानघाटीके पथपर श्रीकृष्णने आकर जब राधाजीको रोका, तब राधाजीके अन्तःकरणमें हँसीका उदय हुआ; तब उनके नयन उज्ज्वल हो गये; नेत्रोंकी पलकें नव-उदित अश्रुओंसे भर गयीं; नेत्रोंके दोनों कोने कुछ लाल रङ्गके हो गये; रसके उच्छ्वास-हेतु नेत्रोंमें उत्साह उदित हुआ; नयनाश्रु कुछ बन्द होने लगे और दोनों नयनोंकी पुतली अति सुन्दर रूपसे ऊपर हो गयीं॥ 180॥

अनुभाष्य—

पथि (दानघट्टमार्गे) माधवेन (शुल्क-ग्रहणच्छलेन) रुद्धायाः राधायाः अन्तःस्मेरतया (अन्तः अव्यक्तया स्मेरतया ईषद्धास्ययुक्ततया) उज्ज्वला (दीप्तिविशिष्टा इति 'स्मितं'), जलकणव्याकीर्णपक्ष्माङ्कुरा (जलकणैः व्याकीर्णाः विक्षिप्ताः पक्ष्माङ्कुराः नेत्रलोमाग्रभागाः यस्याः सा इति 'रोदनं'), किञ्चित्पाटलिताञ्चला (श्वेतरक्ताभनयनप्रान्तदेशा, श्वेतिमा स्वाभाविक एव, रक्तिमा क्रोधात् इति 'क्रोधः'), रसिकतोत्सिक्ता (रसिकतया उत्कर्षेण सिक्ता इति 'गर्वः' 'अभिलाषः' वा), पुरः (अग्रतः) एव कुञ्चती (इति 'भयं'), मधुर-व्याभुग्नतारोत्तरा (मधुरा व्याभुग्ना वक्रा या नयनतारा तया उत्तरा श्रेष्ठा इति 'अभिलाषः' 'गर्वः' 'असूया' वा), किलकिञ्चितस्तबकिनी (किलकिञ्चितरूपो यः स्तबकः गाम्भीर्यमयत्वादस्फुटः भावविशेषः नानाभावपुष्पगुच्छः तद्वती) दृष्टिः वः (युष्माकं) श्रियं क्रियात्।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 180॥

गोविन्दलीलामृतमें (9/18 श्लोक) :—

वाष्पव्याकुलितारुणाञ्चलचलन्नेत्रं रसोल्लासितं
हेलोल्लासचलाधरं कुटिलितभ्रूयुग्मुद्यत्स्मितम्।
राधायाः किलकिञ्चिताञ्चितमसौ वीक्ष्याननं सङ्गमा-
दानन्दं तमवाप कोटिगुणितं योऽभून्न गीर्गोचरः॥ 181॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 181॥

अमृतप्रवाह भाष्य—राधिकाके अश्रुओंके द्वारा आकुलित नेत्र किञ्चित् अरुण और चञ्चल हो गये; रसोल्लास और कन्दर्पभावके कारण अधर कम्पित होने लगे; दोनों भौंहे कुटिल (टेढ़ी) हो गयीं; मुखकमलपर मृदु मन्द मुस्कानकी रेखा दिखायी देने लगी और किलकिञ्चित-भावसे उत्पन्न प्रसन्नताको व्यक्त होते देखकर श्रीकृष्णने राधिकाके मुख दर्शनसे उनके साथ सङ्गमकी अपेक्षा करोड़ों गुणा जिस सुखको प्राप्त किया, उसका वाणीके द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता॥ 181॥

अनुभाष्य—

असौ (श्रीकृष्णः) राधायाः वाष्पव्याकुलितारुणाञ्चलचलन्नेत्रं (वाष्पैः अश्रुजलैः व्याकुलिते अरुणम् अञ्चलं ययोः एवम्भूते चञ्चले नेत्रे यस्मिन् तत्) रसोल्लासितं, हेलोल्लासचलाधरं (भावविशेषातिशयेन कम्पमानोष्ठं) कुटिलितभ्रूयुग्मम् उद्यत्स्मितम् (प्रकटन्मन्दहास्यं) किलकिञ्चिताञ्चितं (तद्भावयुक्तम्) आननं (मुखं) वीक्ष्य (दृष्ट्वा) सङ्गमात् कोटिगुणितं तम् आनन्दं अवाप (प्राप्तवान्)—यः आनन्दः गीर्गोचरः (वाक्यविषयः) न (नैव भवति, कदापीत्यर्थः)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 181॥

श्रीराधाके भाव-श्रवणसे श्रीस्वरूपका
महाप्रभुके द्वारा आलिङ्गन :—

एत शुनि' प्रभु हैला आनन्दित मन।
सुखाविष्ट हञा स्वरूपे कैला आलिङ्गन॥ 182॥

अनुवाद—यह सुनकर महाप्रभुके मनमें बहुत आनन्द हुआ और उस आनन्दमें आविष्ट होकर उन्होंने श्रीस्वरूप दामोदरका आलिङ्गन किया॥ 182॥

महाप्रभुके प्रश्नके उत्तरमें श्रीस्वरूपके द्वारा
श्रीराधाके 'विलास' भावका वर्णन :—

" 'विलासादि'-भाव-भूषार कह त' लक्षण।
येइ भावे राधा हरे गोविन्देर मन॥ "183॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"'विलासादि'-भाव- भूषणोंका लक्षण वर्णन करो, जिनके द्वारा विभूषित श्रीराधा श्रीगोविन्दका मन हरण करती हैं॥ "183॥

श्रीस्वरूपके द्वारा वर्णन आरम्भ; भक्तोंका सुख :—

तबे त' स्वरूप-गोसाञि कहिते लागिला।
शुनि' प्रभुर भक्तगण महासुख पाइला॥ 184॥

"राधा बसि' आछे किवा वृन्दावने याय।
ताँहा आचम्बिते कृष्ण-दरशन पाय॥ 185॥

देखितेइ नाना-भाव हय विलक्षण।
से वैलक्षण्येर नाम 'विलास'-भूषण॥ 186॥

अनुवाद—तब श्रीस्वरूप दामोदरने कहना आरम्भ किया, जिसे सुनकर महाप्रभुके भक्तोंको परमसुख प्राप्त हुआ। श्रीस्वरूप दामोदरने कहा,—"श्रीराधा कभी कहीं बैठी हुई हैं अथवा वृन्दावनमें जा रही हैं—ऐसे समयमें यदि उन्हें अचानक श्रीकृष्णका दर्शन प्राप्त हो जाये, तो दर्शन करते ही उनमें अनेक प्रकारके विलक्षण भाव उदित हो जाते हैं, उन विलक्षण भावोंका नाम ही 'विलास'-भूषण है॥ 184–186॥

उज्जवलनीलमणिमें अनुभावकथनमें (31 श्लोक) :—

गतिस्थानासनादीनां मुखनेत्रादिकर्मणाम्।
तात्कालिकं तु वैशिष्ट्यं विलासः प्रियसङ्गजम्॥ 187॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 187॥

अमृतप्रवाह भाष्य—प्रियके सङ्गसे उत्पन्न, प्रिय सङ्गम-स्थानपर जाना और बैठना आदि एवं मुखनेत्रादि अङ्गोंका उस समय जो वैशिष्ट्य उदित होता है, उसे 'विलास' कहते हैं॥ 187॥

अनुभाष्य—

गतिस्थानासनादीनां (कान्तायाः गमनावस्थानोपवेशनादिकानां) मुखनेत्रादिकर्मणां च (आङ्गिकक्रियाणां) प्रियसङ्गजं (कान्तसम्मिलनजातं) तात्कालिकं (कान्तमिलन-कालिकं) वैशिष्ट्यं (वैचित्र्यं) तु 'विलासः' [इत्यभिधीयते]।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 187॥

लज्जा, हर्ष, अभिलाष, सम्भ्रम, वाम्य, भय।
एत भाव मिलि' राधाय चञ्चल करय॥ 188॥

अनुवाद—श्रीकृष्णके अचानक दर्शन होनेसे श्रीराधाको लज्जा, हर्ष, अभिलाष, सम्भ्रम, वाम्य तथा भय—ये सब भाव मिलकर चञ्चल कर देते हैं॥ 188॥

गोविन्दलीलामृतमें (9/11 श्लोक) :—

पुरः कृष्णलोकात् स्थगितकुटिलास्या गतिरभूत्
तिरश्चीनं कृष्णाम्बरदरवृतं श्रीमुखमपि।
चलत्तारं स्फारं नयनयुगमाभुग्नमिति सा
विलासाख्य-स्वालङ्करणवलितासीत् प्रियमुदे॥ 189॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 189॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीकृष्णको सामने देखकर राधिकाके गमनने स्थिर होकर कुटिल भाव धारण कर लिया; उनका मुखकमल नीले वस्त्रसे कुछ ढका होनेपर भी नेत्रोंकी दोनों पुतलियाँ विस्तृत, चञ्चल और वक्र हो गयीं एवं विलास नामक अलङ्कारसे मण्डित होकर वे श्रीकृष्णके आनन्दका वर्धन करने लगीं॥ 189॥

अनुभाष्य—

अस्याः (श्रीराधायाः) गति पुरः (अग्रतः) कृष्णालोकात् (कृष्णदर्शनेन) स्थगितकुटिला (स्थगिता स्तब्धा कुटिला मन्दा च) अभूत्; श्रीमुखमपि तिरश्चीनं (वक्रीभूतं) कृष्णाम्बर-दरवृतं (श्यामवासेन ईषत् आवृतश्च) अभूत; चलत्तारं (चलन्ती तारा यत्र तत्) स्फारं (विस्तृतं) नयनयुगं (नेत्रद्वयम्) आभुग्नं (वक्रम्) अभूत;—इति सा राधा प्रियमुदे (कृष्णानन्दवर्द्धनाय) विलासाख्य-स्वालङ्करण-वलिता (विलासाभिधेयेन स्वेन निजेन अलङ्करणेन भूषणेन वलिता समन्विता) आसीत्।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 189॥

कृष्ण-आगे राधा यदि रहे दाण्डाञा।
तिन-अङ्ग-भङ्गे रहे भ्रू नाचाञा॥ 190॥

मुखे-नेत्रे हय नाना-भावेर उद्गार।
एइ कान्ता-भावेर नाम 'ललित'-अलङ्कार॥ 191॥

अनुवाद—यदि श्रीराधा श्रीकृष्णके सामने खड़ी रहें, तो वे त्रिभङ्ग रूपमें हो जाती हैं, उनकी भ्रकुटि (भौंहे) नृत्य करने लगती है और उनके मुख तथा नेत्रोंमें अनेक प्रकारके भाव प्रकट होने लगते हैं। कान्ताके इस भावका नाम 'ललित'-अलङ्कार है॥ 190–191॥

अनुभाष्य— *'तिन-अङ्ग-भङ्गे'*—त्रिभङ्ग रूपमें; *'तिन*

अङ्ग'—गर्दन, कमर और चरण (अथवा घुटना)। *'हय उद्गार'*—फूटकर बाहर आता है॥ 190–191॥

उज्जवलनीलमणिमें अनुभावकथनमें (56 श्लोक) :—

विन्यासभङ्गिरङ्गानां भ्रूविलासमनोहरा।
सुकुमारा भवेद्यत्र ललितं तदुदाहृतम्॥ 192॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 192॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जहाँ (अर्थात् जिन चेष्टाओंसे) अङ्गोंकी विन्यासभङ्गि और भौंहोका विलास मनोहर और सुकुमार होता है, वहीं 'ललित-अलङ्कार' कहा जाता है॥ 192॥

अनुभाष्य—

यत्र अङ्गानां सुकुमारा (अतिकोमला) विन्यासभङ्गिः (रचना-चातुरी) भ्रूविलास-मनोहरा भवेत्, तत् 'ललितम्' इति उदाहृतम्।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 192॥

ललितभूषित राधा देखे यदि कृष्ण।
दुँहे दुँहा मिलिबारे हयेन सतृष्ण॥ 193॥

अनुवाद—जब श्रीकृष्ण इन ललित-अलङ्कारोंसे भूषित श्रीराधाको देखते हैं, तब दोनों एक-दूसरेसे मिलनेके लिये उत्कण्ठित हो जाते हैं॥ 193॥

गोविन्दलीलामृतमें (9/14 श्लोक)—

ह्रिया तिर्यग्-ग्रीवा-चरण-कटि-भङ्गी-सुमधुरा
चलच्चिल्ली-वल्ली-दलित-रतिनाथोर्जित-धनुः।
प्रिय-प्रेमोल्लासोल्लसित-ललितालालित-तनुः
प्रियप्रीत्यै सासीदुदितललितालंकृतियुता॥ 194॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 194॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीकृष्णकी प्रीति वर्धित करनेके लिये जब श्रीराधिका ललित-अलङ्कारसे भूषित हुई थी, तब लज्जासे उनकी गर्दनके वक्रभाव, चरण और कमरकी सुमधुर भङ्गिमा, भ्रूलताकी चञ्चलतासे कामदेवके तेजस्वी धनुषकी भी पराजय और प्रियतमके प्रति प्रेमोल्लासमें उल्लसित ललित-भावसे पुष्ट श्रीअङ्ग लक्षित होने लगे॥ 194॥

अनुभाष्य—

सा (राधा) ह्रिया (लज्जया) तिर्यग् ग्रीवा-चरण-कटि-भङ्गीसुमधुरा (त्रिर्यग्भावेन सुष्ठु-विन्यस्त-कन्धर-जानु-कटीभ्यङ्-त्रयेण भङ्ग्या सुमधुरा कृष्णमनोहरा) चलच्चिल्लीवल्ली-दलित-रतिनाथोर्जित-धनुः (चलन्ती कम्पनवती चिल्लीभ्रूः चिल्ली-पक्षिणीव भ्रूः क्लिन्नाक्षी वा, सा एव वल्ली लता, तया दलितः विजितः रतिनाथस्य कामदेवस्य उर्जितं धनुः यया सा) प्रियप्रेमोल्लासोल्लसित-ललितालालित-तनुः (प्रियस्य कान्तस्य कृष्णस्य प्रेम्णा यः उल्लासः तेनोल्लसितं यत् ललितं क्रीड़ानृत्यं तेन आ-लालित-तनुः आ-लालिता संसेविता तनुः यस्याः सा) प्रियप्रीत्यै (कान्तस्य प्रेमवर्द्धनाय) उदितललितालंकृतियुता (उदितं प्रकाशितं ललितभावविशेषं, तदेव अलङ्कारेण युता ललितालङ्कार-समन्विता) आसीत्।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 194॥

लोभे आसि' कृष्ण करे कञ्चुकाकर्षण।
अन्तरे उल्लास, राधा करे निवारण॥ 195॥

बाहिरे वामता-क्रोध, भितरे सुख मने।
'कुट्टमित'-नाम एइ भाव विभूषणे॥ 196॥

अनुवाद—जब श्रीकृष्ण आगे आकर लोभसे श्रीराधाकी कञ्चुकी (चोली) को खींचते हैं, तब यद्यपि उससे श्रीराधाके हृदयमें उल्लास होता है, तथापि वे बाहरसे श्रीकृष्णको ऐसा करनेसे मना करती हैं। श्रीराधा बाहरसे वाम्यभाव और क्रोध प्रकट करती हैं और भीतरसे अपने मनमें सुख अनुभव करती हैं। इसी भावरूपी विभूषणका नाम 'कुट्टमित' है॥ 195–196॥

अनुभाष्य—*'कञ्चुक'*—चोली, कवच, अङ्गरखा, वस्त्र॥ 195॥

उज्जवलनीलमणिमें अनुभाव-प्रकरणमें (49 श्लोक)—

स्तनाधरादिग्रहणे हृत्प्रीतावपि सम्भ्रमात्।
बहिः क्रोधो व्यथितवत् प्रोक्तं कुट्टमितं बुधैः॥ 197॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 197॥

अमृतप्रवाह भाष्य—चोली या मुखको ढकनेवाले आञ्चलको स्पर्श करनेके समय हृदय प्रफुल्लित होनेपर भी सम्भ्रमके कारण बाहरसे क्रोध और व्यथितकी भाँति लक्षणोंको 'कुट्टमित' कहते हैं॥ 197॥

अनुभाष्य—

स्तनाधरादि-ग्रहणे (वक्षोगण्डस्थलौष्ठ-स्पर्शने) हृत्प्रीतौ (मनसि लब्धे आनन्दे सति) अपि सम्भ्रमात् (लोक-गौरवात्) बहिः (सखिदृष्टिपथे) व्यथितवत् (आर्त्तजनोचितः) क्रोधः (अर्थात् अन्तः-सन्तोषाः बहिः-क्रोधः) [भवेत्]—इति बुधैः (अलङ्कारशास्त्रविद्भिः) 'कुट्टमितं' प्रोक्तं (कथितम्)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 197॥

कृष्ण-वाञ्छा पूर्ण हय, करे पाणि-रोध।
अन्तरे आनन्द राधा, बाहिरे वाम्य-क्रोध॥ 198॥
व्यथा पाञा करे, येन शुष्क रोदन।
ईषत् हासिया कृष्णे करेन भर्त्सन॥ 199॥

अनुवाद—उनको स्पर्श करनेके लिये बढ़े श्रीकृष्णके हाथोंको श्रीराधा रोकती तो हैं, परन्तु मन-ही-मनमें सोचती हैं—'श्रीकृष्ण अपनी इच्छा पूर्ण कर लें'। इस प्रकार श्रीराधा हृदयमें तो आनन्द अनुभव करती हैं, परन्तु बाहरसे वामता (विरोध) और क्रोध प्रकट करती हैं। श्रीराधा ऐसा प्रदर्शन करती हैं जैसे वे दुःखी हैं और बिना आँसूके रोनेका अभिनय करती हैं। और साथ ही मन्द मुस्कुराते हुए श्रीकृष्णको डाँट भी लगाती है॥ 198-199॥

(गोस्वामीपाद द्वारा उक्त श्लोक) :—

पाणिरोधमविरोधितवाञ्छं
भर्त्सनाश्च मधुरस्मितगर्भाः।
माधवस्य कुरुते करभोरुर्हारि
शुष्करुदितञ्च मुखेऽपि॥ 200॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 200॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीकृष्णके हाथके द्वारा उन्हें स्पर्श करनेकी चेष्टाको रोकनेकी इच्छा नहीं होनेपर भी शिशु-हाथीकी सूंड़के समान जंघावाली श्रीमती राधिका श्रीकृष्णके हाथोंकी चेष्टाका विरोध करते हुए मधुर-मुस्कानके साथ उनको डाँटने और मनोहर शुष्करोदन (रोनेका दिखावा) करने लगीं॥ 200॥

अनुभाष्य—

करभोरुः (करिशावकशुण्डवत् उर्जितोरुदेशा राधिका) माधवस्य अविरोधितवाञ्छं (न विरोधिता वाञ्छा यस्मिन् तत्) पाणिरोधं (करस्पर्शनिवारणं), मधुरस्मित-गर्भाः (मधुरं मृदु स्मितं मन्दहास्यं गर्भे येषां तथाभूताः) भर्त्सनाः, अपि च मुखे हारि-शुष्करुदितं (कृष्णमनोहारि कपटरोदनं) कुरुते।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 200॥

एइमत आर सब भाव-विभूषण।
याहाते भूषित राधा हरे कृष्ण मन॥ 201॥

अनुवाद—इस प्रकार और अनेक भावरूपी भूषण हैं जिनसे विभूषित होकर श्रीराधा श्रीकृष्णका मन हरण करती हैं॥ 201॥

अनुभाष्य—*'हरे'*—हरण अर्थात् आकर्षण करती हैं॥ 201॥

सहस्र मुखोंसे भी शेषरूपी विष्णु
श्रीकृष्ण-लीला वर्णन करनेमें असमर्थ :—

अनन्त कृष्णेर लीला ना याय वर्णन।
आपने वर्णेन यदि 'सहस्रवदन'॥ 202॥

अनुवाद—यदि श्रीकृष्ण स्वयं अपने अंश 'सहस्र-वदन' अर्थात् हजार मुखवाले शेषके द्वारा भी वर्णन करें, तो भी उनकी अनन्त लीलाओंका वर्णन करना सम्भव नहीं है॥ 202॥

अनुभाष्य—मध्यलीला 21/10, 12 संख्या तथा भाः 2/7/41 और 10/14/7 श्लोक देखें॥ 202॥

श्रीराधा-सेवक श्रीस्वरूप और श्रीलक्ष्मीनारायणके सेवक श्रीवासका संलाप; श्रीवासको अपनी ईश्वरीके ऐश्वर्यका गर्व :—

श्रीवास हासिया कहे,—"शुन, दामोदर।
आमार लक्ष्मीर देख सम्पत्ति विस्तर॥ 203॥

वृन्दावनेर सम्पद् देख,—पुष्प-किसलय।
गिरिधातु-शिखिपिच्छ-गुञ्जाफल-मय॥ 204॥

अनुवाद—[नारदजीके भावमें आविष्ट होकर लक्ष्मीजीके ऐश्वर्यको देखकर] श्रीवासने हँसते हुए कहा,—"सुनो! दामोदर, इधर मेरी आराध्या लक्ष्मीकी अपार सम्पत्तिको देखो। और उधर वृन्दावनकी सम्पत्ति देखो—वहाँ तो केवल फूल, कोंपलें, गैरिक धातु, मोरपंख और गुञ्जाफल मात्र ही हैं [अर्थात् दोनोंमें तुलनाका कोई स्थान ही नहीं है]॥ 203-204॥

अनुभाष्य—श्रीवास स्वयंको दास्यरसके ऐश्वर्यमें अवस्थित होनेका अभिमान करके श्रीदामोदर स्वरूपको ऐश्वर्यहीन 'व्रजवासी' समझकर प्रेमकलह कर रहे हैं॥ 203॥

श्रीकृष्णके व्रजगमन हेतु लक्ष्मीका क्रोध अभिमान :—

वृन्दावन देखिबारे गेला जगन्नाथ।
शुनि' लक्ष्मीदेवीर मने हैल आसोयाथ॥ 205॥

एत सम्पत्ति छाड़ि' केने गेला वृन्दावन।
ताँरे हास्य करिते लक्ष्मी करिला साजन॥ 206॥

'तोमार ठाकुर, देख एत सम्पत्ति छाड़ि'।
पत्र-फल-फूल-लोभे गेला पुष्पबाड़ी॥ 207॥

एइ कर्म करे काँहा विदग्ध-शिरोमणि?
लक्ष्मीर अग्रेते निज प्रभुरे देह' आनि'॥ '208॥

अनुवाद—'श्रीजगन्नाथ वृन्दावनको देखने गये हैं'—यह सुनकर लक्ष्मीदेवीके मनमें निराशा होती है कि यहाँ इतनी सब सम्पत्तिको छोड़कर वे वृन्दावन क्यों गये हैं? श्रीजगन्नाथका उपहास करनेके लिये ही लक्ष्मीजीने सज-धजकर अपने ऐश्वर्यको दिखलाया। लक्ष्मीदेवीकी दासियोंने श्रीजगन्नाथके सेवकोंसे कहा,—'तुम्हारे ठाकुर (श्रीजगन्नाथ) इतनी सम्पत्तिको छोड़कर पत्र-फल-फूलके लोभसे पुष्पोद्यानमें गये हैं! विदग्ध-शिरोमणि होकर भी वे ऐसा कार्य क्यों करते हैं? शीघ्रतासे अपने प्रभुको लक्ष्मीजीके सामने लेकर आओ॥ '205-208॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'आसोयाथ'*-असूयायुक्त, स्वल्प-ईर्ष्यायुक्त। लक्ष्मीजीकी दासियाँ कह रही हैं,—'ओहे जगद्-बन्धुके सेवकों! देखो, इतनी सम्पत्ति छोड़कर फल-पत्र-पुष्पके लोभसे तुम्हारे ठाकुर पुष्पोद्यानमें गये हैं। (अभी) लक्ष्मीदेवीके समक्ष अपने उन प्रभुको लेकर आओ॥ 205-208॥

अनुभाष्य—*'आसोयाथ'*—अशान्ति, अस्वास्थ्य, चाञ्चल्य। *'तोमार ठाकुर'*—श्रीजगन्नाथके सेवकोंको लक्ष्य करके लक्ष्मीकी दासियोंकी उक्ति। *'निज प्रभुरे'*—श्रीजगन्नाथको॥ 205-208॥

लक्ष्मीकी दासियोंके द्वारा ईश्वरके दोषके भागीदार सेवकोंका बन्धन और उन्हें दण्ड प्रदान :—

एत बलि' लक्ष्मीर सब दासीगणे।
कटि-वस्त्रे बान्धि' आने प्रभुर निजगणे॥ 209॥

लक्ष्मीर चरणे आनि' कराय प्रणति।
धन-दण्ड लय, आर कराय मिनति॥ 210॥

रथेर उपरे करे दण्डेर ताड़न।
चोरप्राय करे जगन्नाथेर सेवकगण॥ 211॥

अनुवाद—यह कहकर महालक्ष्मीकी सभी दासियोंने श्रीजगन्नाथके सेवकोंको पकड़कर उनकी कमरमें वस्त्र बाँधकर उन्हें अपनी स्वामिनी श्रीलक्ष्मीके चरणोंमें गिराकर प्रणाम करवाया, दण्डके रूपमें उनसे धन लिया और उनसे क्षमा मँगवायी। और वे दासियाँ श्रीजगन्नाथके रथके ऊपर लाठियाँ बरसाने लगीं और श्रीजगन्नाथके सेवकोंका चोरकी भाँति तिरस्कार करने लगीं॥ 209-211॥

अमृतप्रवाह भाष्य—दण्ड अर्थात् लाठीके द्वारा गुण्डिचा मन्दिरके द्वारपर खड़े रथको पीटने लगीं॥ 211॥

अनुभाष्य— *'प्रभुर'*—श्रीजगन्नाथके॥ 209॥

श्रीजगन्नाथको लौटाने हेतु सेवकोंकी प्रतिज्ञा :—

सब भृत्यगण कहे,—योड़ करि' हात।
'कालि आनि दिब तोमार आगे जगन्नाथ॥'212॥

अनुवाद—श्रीजगन्नाथके सभी सेवकोंने हाथ जोड़कर कहा—'हम कल ही श्रीजगन्नाथको आपके सामने ले आयेंगे॥'212॥

उसे सुनकर लक्ष्मीजीका क्रोध शान्त :—

तबे शान्त हञा लक्ष्मी याय निज घर।
आमार लक्ष्मीर सम्पद्—वाक्य-अगोचर॥ 213॥

लक्ष्मीके ऐश्वर्यका वर्णनकर श्रीवासके द्वारा स्वरूपका परिहास :—

दुग्ध आउटि' दधि मथे तोमार गोपीगणे।
आमार ठाकुराणी बैसे रत्नसिंहासने॥"214॥

अनुवाद—श्रीजगन्नाथके सेवकोंके मुखसे ऐसा सुनकर शान्त होकर श्रीलक्ष्मी अपने महलमें चली गयीं। [श्रीवास पण्डित कह रहे हैं—] मेरी लक्ष्मीदेवीकी सम्पत्तिका वाणीसे वर्णन नहीं किया जा सकता। तुम्हारी गोपियाँ तो दूध उबालने और [उसकी दही बनाकर] दही मन्थनके कार्यमें ही लगी रहती हैं, परन्तु मेरी ठाकुराणीतो रत्नसिंहासनपर विराजमान होती हैं॥ 213–214॥

अनुभाष्य— *'आउटि'*—औटाकर या उबालकर॥ 214॥

श्रीवासके वचन सुनकर महाप्रभुके रागमार्गीय भक्तोंका हँसना :—

नारद-प्रकृति श्रीवास करे परिहास।
शुनि' हासे महाप्रभुर यत निज-दास॥ 215॥

अनुवाद—नारदजीके भावमें श्रीवास पण्डित इस प्रकार परिहास कर रहे थे। उनकी बातोंको सुनकर महाप्रभुके सभी अन्तरङ्ग भक्त हँस रहे थे॥ 215॥

अनुभाष्य— *'निज-दास'*—श्रीराधागोविन्दकी सेवामें एकनिष्ठ रागात्मिक भक्तिमें रत श्रीगदाधरादि महाप्रभुके शक्तिवर्ग॥ 215॥

महाप्रभुके द्वारा श्रीवास और श्रीस्वरूपके भजन-वैशिष्ट्यका वर्णन :—

प्रभु कहे,—"श्रीवास, तोमाते नारद-स्वभाव।
ऐश्वर्यभावे तोमाते, ईश्वर-प्रभाव॥ 216॥

इँहो दामोदर-स्वरूप—शुद्ध-व्रजवासी।
ऐश्वर्य ना जाने इँहो शुद्धप्रेमे भासि'॥"217॥

अनुवाद—महाप्रभुने कहा,—"श्रीवासजी, तुममें तो नारदका स्वभाव है, इसलिये ऐश्वर्य भावमें तुम्हारे ऊपर ईश्वरका प्रभाव हो रहा है। यह स्वरूप दामोदर तो शुद्ध व्रजवासी है, यह ऐश्वर्यको नहीं जानता, यह तो शुद्धप्रेममें ही डूबा रहता है॥"216–217॥

श्रीस्वरूपके द्वारा व्रजके माधुर्यकी गरिमाका वर्णन :—

स्वरूप कहे,—"श्रीवास, शुन सावधाने।
वृन्दावन-सम्पद् तोमार नाहि पड़े मने?॥ 218॥

महावैकुण्ठका ऐश्वर्य वृन्दावन-ऐश्वर्यका एक कणमात्र :—

वृन्दावने साहजिक ये सम्पत्सिन्धु।
द्वारका-वैकुण्ठ-सम्पत्—तार एक बिन्दु॥ 219॥

श्रीकृष्णके वृन्दावन-धामका वर्णन :—

परम पुरुषोत्तम स्वयं भगवान्।
कृष्ण याँहा धनी, ताँहा वृन्दावन-धाम॥ 220॥

चिन्तामणिमय भूमि रत्नेर भवन।
चिन्तामिणगण—दासी-चरण-भूषण॥ 221॥

कल्पवृक्ष-लतार—याँहा साहजिक-वन।
पुष्प-फल बिना केह ना मागे अन्य धन॥ 222॥

अनन्त कामधेनु ताँहा फिरे वने वने।
दुग्धमात्र देन, केह ना मागे अन्य धने॥ 223॥

सहज लोकेर कथा—याँहा दिव्य-गीत।
सहज गमन करे,—यैछे नृत्य-प्रतीत॥ 224॥

सर्वत्र जल—याँहा अमृत-समान।
चिदानन्द ज्योतिः स्वाद्य—याँहा मूर्त्तिमान्॥ 225॥
लक्ष्मी जिनि' गुण याँहा लक्ष्मीर समाज।
कृष्ण-वंशी करे याँहा प्रियसखी-काज॥ 226॥

अनुवाद—श्रीस्वरूप दामोदरने कहा,—"श्रीवासजी, सावधानीपूर्वक सुनो। क्या वृन्दावनकी सम्पत्तिके विषयमें भूल गये हो? वृन्दावनकी सहज सम्पत्ति महासागरकी भाँति है और द्वारका-वैकुण्ठकी सम्पत्ति उसकी एक बूँदके बराबर भी नहीं है। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण परम पुरुषोत्तम हैं और उनका समस्त ऐश्वर्य केवल वृन्दावन-धाममें ही प्रकाशित होता है। श्रीवृन्दावनकी भूमि चिन्तामणिसे बनी है, वहाँके भवन रत्नोंसे बने हैं। वृन्दावनकी दासियाँ भी चिन्तामणिसे बने नूपुर अपने चरणोंमें धारण करती हैं। वृन्दावन कल्पवृक्षों और लताओंसे भरा-पूरा स्वाभाविक वन है, परन्तु वृन्दावनवासी उन वृक्षोंसे पुष्प और फलोंके अतिरिक्त और कोई धन नहीं माँगते। वहाँ अनन्त कामधेनुएँ वन-वनमें भ्रमण करती रहती हैं, किन्तु व्रजवासीगण उनसे मात्र दूध ही चाहते हैं, कोई उनसे अन्य किसी भी प्रकारका धन नहीं माँगता। वृन्दावनवासियोंकी सहज बातचीत भी दिव्य-गीतकी भाँति मधुर हैं। उनका सहज चलना भी नृत्यकी भाँति प्रतीत होता है। वृन्दावनमें सर्वत्र ही जल अमृतके समान है तथा चिदानन्द ज्योति स्वयं मूर्तिमान स्वरूप होकर वहाँ प्रकाशित हो रही है। वहाँकी गोपियाँ साक्षात् लक्ष्मी-स्वरूपा हैं और ऐश्वर्यमें वैकुण्ठकी लक्ष्मियोंको भी परास्त करती हैं। और वृन्दावनमें श्रीकृष्णकी वंशी उनकी प्रिय सखीका कार्य करती है॥ 218–226॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीकृष्ण जिस स्थानपर ऐश्वर्यका परित्याग करके पत्र-पुष्पादिके माधुर्यमें स्वयंको धनी मानते हैं, उसीका नाम 'वृन्दावन-धाम' है। उस वृन्दावन-धाममें चिन्तामणिमय भूमि अर्थात् वह चिन्मय भूमि है, चिन्मय रत्नोंके भवन हैं, चिन्मय अलङ्कारोंको चरणोंमें धारण करनेवाली सेविकाएँ हैं, चिन्मय कल्पवृक्ष और लताओंसे भरे सहजसिद्ध-वन नित्य विराजमान हैं—जहाँपर फल-पुष्पके अतिरिक्त किसीको भी अन्य किसी धनकी इच्छा नहीं है। ऐश्वर्यवती लक्ष्मीको पराभूत करके अनन्तकोटि माधुर्यवती लक्ष्मियाँ वहाँ विराजमान हैं॥ 220–226॥

अनुभाष्य—आदिलीला 5/20–22 संख्या देखें॥ 220–226॥

वृन्दावन-स्थित वस्तुओंके स्वरूप और
विचित्र स्वभावका वर्णन :—
ब्रह्मसंहितामें (5/56 श्लोक)—

श्रियः कान्ताः कान्तः परमपुरुषः कल्पतरवो
द्रुमा भूमिश्चिन्तामणिगणमयी तोयममृतम्।
कथा गानं नाट्यं गमनमपि वंशी प्रियसखी
चिदानन्दं ज्योतिः परमपि तदास्वाद्यमपि च॥ 227॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 227॥

अमृतप्रवाह भाष्य—उस वृन्दावनमें कान्ताएँ—व्रजकी लक्ष्मियाँ गोपियाँ हैं। कान्त—परमपुरुष श्रीकृष्ण हैं, वृक्ष—सभी कल्पवृक्ष हैं, समस्त भूमि ही चिन्मय है, जल—अमृत है, बोलना—सङ्गीत है, चलना—नृत्य है और श्रीकृष्णकी वंशी—प्रियसखी है तथा सर्वत्र चिदानन्दज्योति अनुभव होती है। इसलिये श्रीवृन्दावन ही परम आस्वाद्य है॥ 227॥

अनुभाष्य—

तत्र (अप्राकृतभूमौ) परमपुरुषः [एव]—कान्तः (एकः द्वितीय-भोक्तृ-रहितः), श्रियः (लक्ष्म्यः गोप्यः एव)—कान्ताः, (सर्वाः कृष्णाश्रिताः) द्रुमाः (कदम्बाद्या वृक्षाः)—कल्पतरवः (कृष्णप्रेमफलदातारः एव), भूमिः चिन्तामणिगणमयी (विविध-चिन्मयवाञ्छापूरक-रत्नपूर्णा एव), तोयम्—अमृतं, कथा—गानं, गमनमपि नाट्यं [एव], वंशी—प्रियसखी [एव], परं ज्योतिः (चन्द्रसूर्यादिः) अपि चिदानन्दं (तन्मयं), तत् अपि आस्वाद्यं (तेषां सर्वमेव जड़भावरहितम् अप्राकृतं कृष्णैकभोग्यमित्यर्थः)।

श्लोक-भावानुवाद—उस अप्राकृत भूमि वृन्दावनमें परमपुरुष श्रीकृष्ण ही कान्त (अद्वितीय भोक्ता) हैं, कान्ताएँ—व्रजकी लक्ष्मियाँ गोपियाँ हैं, कदम्बादि वृक्ष—सभी कल्पवृक्ष (कृष्णप्रेमफल देनेवाले) हैं, समस्त भूमि ही चिन्मय (रत्नपूर्ण, समस्त चिन्मय इच्छाओंको पूर्ण करनेवाली) है, जल—अमृत है, बोलना—सङ्गीत है, चलना—नृत्य है और श्रीकृष्णकी वंशी—प्रियसखी है तथा सर्वत्र चिदानन्दज्योति अनुभव होती है। इसलिये श्रीवृन्दावन ही परम आस्वाद्य है (वह सर्वथा जड़भावरहित अप्राकृत और एकमात्र कृष्णके द्वारा भोग्य है—यह अर्थ है)।

मध्यलीला 8/137 संख्यामें वृन्दावन-शब्दका अनुभाष्य देखें॥ 227॥

वृन्दावनके ऐश्वर्यका वर्णन :—
भक्तिरसामृतसिन्धु (2/1/173)-उद्धृत बिल्वमङ्गल-वचन—

चिन्तामणिश्चरणभूषणमङ्गनानां
शृङ्गारपुष्पतरवस्तरवः सुराणाम्।
वृन्दावने व्रजधनं ननु कामधेनु-
वृन्दानि चेति सुखसिन्धुरहो विभूतिः॥"228॥

अनुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 228॥

अमृतप्रवाह भाष्य—श्रीवृन्दावनकी व्रजाङ्गनाओंके चरणोंके भूषण ही चिन्तामणि हैं, लीला-अनुकूल समस्त पुष्पवृक्ष ही कल्पवृक्ष (सुरतरु) और कामधेनु ही व्रजका परम-धन है। इन सबके द्वारा श्रीवृन्दावनकी विभूति परमानन्द-स्वरूपमें प्रकाशित हो रही है॥ 228॥

अनुभाष्य—

वृन्दावने अङ्गनानां (गोपीनां) चरणभूषणं चिन्तामणिः [एव] शृङ्गारपुष्पतरवः (शृङ्गारार्थं वेशविन्यासाय कुसुमविटपिनः) सुराणां तरवः (कल्पद्रुमाः एव), कामधेनुवृन्दानि [एव] व्रजधनं (गोकुलवासिनां धनं); अहो [वृन्दावनस्य] विभूतिः (अतुलनीय-महैश्वर्यमपि) सुखसिन्धुः (आनन्दामृतसमुद्रः एव)।

श्लोक-भावानुवाद—अमृतप्रवाह भाष्य देखें॥ 228॥

श्रीवासका परमानन्द :—

शुनि' प्रेमावेशे नृत्य करे श्रीनिवास।
कक्षतालि बाजाय, करे अट्ट-अट्ट हास॥ 229॥

अनुवाद—श्रीस्वरूप दामोदरसे वृन्दावनकी महिमा श्रवणकर श्रीनिवास प्रेममें आविष्ट होकर नृत्य करने लगे और बगल बजाते हुए जोरसे अट्टहास करने लगे॥ 229॥

श्रीराधाके रस-श्रवणसे महाप्रभुको भी आनन्द :—

राधार शुद्धरस प्रभु आवेशे शुनिल।
सेइ रसावेशे प्रभु नृत्य आरम्भिल॥ 230॥

महाप्रभुका नृत्य और स्वरूपका गीत :—

रसावेशे प्रभुर नृत्य, स्वरूपेर गान।
'बल', 'बल' बलि' प्रभु पाते निज-काण॥ 231॥

महाप्रभुकी प्रेम रूपी बाढ़में पुरी-धाम प्लावित :—

व्रजरस-गीत शुनि' प्रेम उथलिल।
पुरुषोत्तम-ग्राम प्रभु प्रेमे भासाइल॥ 232॥

अनुवाद—श्रीराधाके शुद्धप्रेमरसके विषयमें सुनकर महाप्रभुने उसी रसमें आविष्ट होकर नृत्य आरम्भ किया। महाप्रभुके रसावेशमें नृत्यके साथ श्रीस्वरूप दामोदर गान करने लगे,। तब महाप्रभु 'गान करते रहो', 'गान करते रहो', कहकर अपने कानोंको (हाथोंसे खींचकर) फैला रहे थे। व्रजरसके गीतोंको सुनकर महाप्रभुमें प्रेम उमड़ आया। इस प्रेमके द्वारा उन्होंने श्रीपुरुषोत्तम-ग्राम (श्रीजगन्नाथ पुरी) क्षेत्रको डुबो दिया॥ 230-232॥

दूसरे प्रहर तक महाप्रभुका नृत्य :—

लक्ष्मीदेवी यथाकाले गेला निज-घर।
प्रभु नृत्य करे, हैल द्वितीय प्रहर॥ 233॥

अनुवाद—श्रीलक्ष्मीदेवी भी यथासमय अपने घर नीलाचलमें चली गयीं। महाप्रभुके नृत्य करते हुए द्वितीय प्रहरका समय हो आया॥ 233॥

चारों सम्प्रदायोंको ही कीर्त्तन करते हुए थकान :—

चारि-सम्प्रदाय गान करि' बहु श्रान्त हैल।
महाप्रभुर प्रेमावेश द्विगुण बाड़िल॥ 234॥

अनुवाद—इतनी देरसे गान करते हुए भक्तोंकी चारों मण्डलियाँ बहुत थक गयीं, परन्तु महाप्रभुका प्रेमावेश बढ़कर दो गुणा हो गया॥ 234॥

श्रीराधा-प्रेमावेशमें महाप्रभु :—

राधा-प्रेमावेशे प्रभु हैला सेइ मूर्त्ति।
नित्यानन्द दूरे देखि' करिलेन स्तुति॥ 235॥

रसविरोध-भयसे दूरसे ही श्रीनिताइका महाप्रभुका स्तव :—

नित्यानन्द देखिया प्रभुर भावावेश।
निकटे ना आइसे, रहे किछु दूरदेश॥ 236॥

श्रीनिताइके न आनेसे महाप्रभुका आवेश और कीर्तन भी किसी प्रकारसे नहीं रुका :—

नित्यानन्द बिना प्रभुके धरे कोन् जन।
प्रभुर आवेश ना याय, ना रहे कीर्त्तन॥ 237॥

अनुवाद—श्रीराधा-प्रेमावेशमें महाप्रभु भी वैसी राधा-मूर्ति हो गये। दूरसे महाप्रभुके राधा-रूपको देखकर श्रीनित्यानन्द प्रभु उनकी स्तुति करने लगे। महाप्रभुको श्रीराधाके भावमें आविष्ट देखकर श्रीनित्यानन्द प्रभु निकट नहीं आये, कुछ दूरीपर ही रहे। श्रीनित्यानन्द प्रभुके अतिरिक्त महाप्रभुको कोई पकड़ नहीं सकता था। महाप्रभुका आवेश दूर नहीं हो रहा था, इसलिये (भक्तोंके थके होनेपर भी) कीर्तन भी नहीं रुक रहा था॥ 235–237॥

अनुभाष्य— *'रहे'*—रुके या विराम करे॥ 237॥

श्रीस्वरूपके कौशलसे महाप्रभुकी बाह्यदशा :—

भङ्गि करि' स्वरूप सबार श्रम जानाइल।
भक्तगणेर श्रम देखि' प्रभुर बाह्य हैल॥ 238॥

अनुवाद—तब श्रीस्वरूप दामोदरने इशारेसे महाप्रभुको बतलाया कि सब भक्त कीर्तन करते हुए थक गये हैं। भक्तोंके श्रमको देखकर महाप्रभु बाह्यदशामें आ गये॥ 238॥

अमृतप्रवाह भाष्य—महाप्रभुने राधाप्रेमावेशमें राधिका-मूर्ति प्रकाशित की है, ऐसा देखकर स्वयंको उस रसमें अनधिकारी जानकर श्रीनित्यानन्द प्रभु दूर ही रहे; श्रीस्वरूप गोस्वामीने इशारेसे महाप्रभुके भावावेशको भङ्ग कराया॥ 235–238॥

उपवनमें जाकर सभीके द्वारा विश्राम करनेके बाद मध्याह्न-स्नान :—

सब भक्त लञा प्रभु गेला पुष्पोद्याने।
विश्राम करिया कैला मध्याह्न-स्नाने॥ 239॥

अनुवाद—तब महाप्रभु सभी भक्तोंको साथ लेकर पुष्पोद्यानमें चले गये। वहाँ कुछ देर विश्राम करके उन्होंने मध्याह्निक-स्नान किया॥ 239॥

लक्ष्मी और जगन्नाथका बहुत प्रसाद-संग्रह :—

जगन्नाथेर प्रसाद आइल बहु उपहार।
लक्ष्मीर प्रसाद आइल विविध प्रकार॥ 240॥

भक्तोंके साथ प्रसाद सेवन; सन्ध्यामें स्नानके बाद श्रीजगन्नाथ-दर्शन :—

सबा लञा नाना-रङ्गे करिला भोजन।
सन्ध्या स्नान करि' कैल जगन्नाथ-दरशन॥ 241॥

अनुवाद—तब श्रीजगन्नाथको अर्पित भोगका उच्छिष्ट बहुतसा प्रसाद और लक्ष्मीजीको अर्पित अनेक प्रकारके भोगका प्रसाद आ गया। महाप्रभुने सभी भक्तोंके साथ आनन्दपूर्वक भोजन किया। सन्ध्या स्नान करके महाप्रभु श्रीजगन्नाथके दर्शनके लिये गये॥ 240–241॥

अमृतप्रवाह भाष्य—कोई-कोई कपटी (धर्मध्वजी भण्ड) व्यक्ति लक्ष्मीदेवीका प्रसाद पानेपर वितर्क करते हैं। यहाँ देखिये,—श्रीमहाप्रभुने स्वयं भक्तोंको लेकर उसी प्रसादको पाया था। तात्पर्य यह है कि लक्ष्मी आदि

समस्त शक्तियाँ ही श्रीभगवान्‌की दासियाँ हैं। जब जो भक्त उन्हें (शक्तियोंको) जो भी उत्तम वस्तु अर्पित करता है, शक्तियाँ अपने प्रभु श्रीकृष्णको वह निवेदन करके उन वस्तुओंका सेवन करती हैं। इसलिये भगवान्‌के दास-दासियोंका प्रसादान्न 'भगवान्‌का प्रसादान्न' ही है, ऐसा मानकर सर्वदा ही सेवनीय है। यहाँपर और भी कुछ विचारणीय विषय रहता है;—मायावादी नास्तिकोंके द्वारा निवेदित खाद्य द्रव्योंको भगवान्‌की शक्तियाँ ग्रहण करती है या नहीं, यह घोर सन्देहका विषय है। इसलिये भगवान्‌के दास-दासियोंके प्रति शुद्ध वैष्णवों द्वारा अर्पित निवेदित अन्नका सेवन करना ही वैष्णवोंके लिये उचित है॥ 240-241 ॥

आठ दिन तक श्रीजगन्नाथका दर्शन करते हुए
नृत्य-कीर्त्तनके बाद भक्तोंके साथ नरेन्द्र सरोवरमें
जलकेलि एवं उद्यानमें भोजन :—

जगन्नाथ देखि' करेन नर्त्तन-कीर्त्तन।
नरेन्द्रे जलक्रीड़ा करे लञा भक्तगण॥ 242 ॥

उद्याने आसिया कैल वन-भोजन।
एइमत क्रीड़ा कैल प्रभु अष्टदिन॥ 243 ॥

अनुवाद—श्रीजगन्नाथका दर्शन करते ही महाप्रभुने वहाँ नृत्य-कीर्तन आरम्भ किया। उसके बाद भक्तोंको साथ लेकर महाप्रभुने नरेन्द्र सरोवरमें जल-क्रीड़ा की और फिर उद्यानमें आकर वन-भोजन किया। इस प्रकार महाप्रभु आठ दिनों तक ऐसी लीलाएँ करते रहे॥ 242-243 ॥

श्रीजगन्नाथकी पुरीमें पुनर्यात्रा :—

आर दिने जगन्नाथेर भितर-विजय।
रथे चड़ि' जगन्नाथ चले निजालय॥ 244 ॥

अनुवाद—अगले दिन गुण्डिचा मन्दिरमें श्रीजगन्नाथ 'भितर-विजय'के बाद रथपर चढ़कर अपने स्थान नीलाचलकी ओर चले॥ 244 ॥

अमृतप्रवाह भाष्य—*'भितर-विजय'*—गुण्डिचा मन्दिरमें रत्नबेदीसे जगन्नाथ, बलराम और सुभद्रा—इन तीनों विग्रहोंको जगमोहनमें रखकर उन्हें एक ही समयमें रथपर चढ़ाया जाता है। रत्नबेदीसे उतरकर वे जगमोहनमें जितनी देर तक रहते हैं, उसीका नाम ही 'भितर-विजय' है॥ 244 ॥

अनुभाष्य—*'भितर-विजय'*—पुनर्यात्रामें श्रीमन्दिरके (गुण्डिचा-मन्दिरके) अन्दर वापिस नीलाचल लौटनेके लिये यात्रा। गुण्डिचा मन्दिरसे बाहरी विजय करके पुनः जगन्नाथ मन्दिरकी ओर गमन॥ 244 ॥

पहलेकी भाँति नृत्य-गीत :—

पूर्ववत् कैल प्रभु लञा भक्तगण।
परम आनन्दे करेन नर्त्तन-कीर्त्तन॥ 245 ॥

अनुवाद—पहलेकी भाँति ही महाप्रभुने अपने भक्तोंको साथ लेकर रथके आगे परमानन्दसे नृत्य-कीर्तन किया॥ 245 ॥

पाहाण्डिके समय रेशमी डोरी आंशिक रूपसे छिन्न :—

जगन्नाथेर पुनः पाण्डु-विजय हइल।
एक गुटि पट्टडोरी ताँहा टुटि गेल॥ 246 ॥

पाण्डुविजयेर तुली फाटि-फुटि याय।
जगन्नाथेर भरे तुला उड़िया पलाय॥ 247 ॥

अनुवाद—श्रीजगन्नाथकी फिरसे पाण्डु-विजय हुई, परन्तु अब उनके कमरमें बँधी हुई रेशमी डोरियोंमेंसे डोरियोंका एक गुच्छा टूट गया। श्रीजगन्नाथकी पाण्डु विजयके समय उन्हें थोड़ी-थोड़ी दूरीपर गद्दोंपर रखा जाता है। इस बार कुछ डोरी टूट जानेसे श्रीजगन्नाथका भार उन गद्दोंपर पड़ रहा था जिससे वे फटते जा रहे थे और उनकी रुई उड़ती जा रही थी॥ 246-247 ॥

सपुत्र सत्यराजको प्रतिवर्ष श्रीजगन्नाथके
लिये रेशमी डोरी लानेका आदेश :—

कुलीनग्रामी रामानन्द, सत्यराज खाँन।
ताँरे आज्ञा दिल प्रभु करिया सम्मान॥ 248 ॥

"एइ पट्टडोरीर तुमि हओ यजमान।
प्रतिवत्सर आनिबे 'डोरी' करिया निर्माण॥"249॥

अनुवाद—महाप्रभुने कुलीनग्रामवासी श्रीरामानन्द वसु और श्रीसत्यराज खाँनको सम्मान देते हुए आज्ञा दी,—"तुम रेशमी डोरीके यजमान बन जाओ और प्रतिवर्ष नयी मजबूत रेशमी डोरियाँ बनाकर लाया करना॥"248–249॥

अमृतप्रवाह भाष्य—जिन सब रेशमी डोरियोंके द्वारा तीनों मूर्तियोंकी पाण्डुविजय होती है, वे सब रस्सियाँ बहुत देशोंसे आती थीं और आती हैं। वर्द्धमान जिलेके अन्तर्गत कुलीनग्रामके निकटवर्ती अनेक ग्रामोंमें रेशमी वस्त्र बनानेके स्थान हैं, इसलिये रेशमी डोरियाँ लानेके लिये श्रीरामानन्द वसु और सत्यराज खाँनको महाप्रभुने यजमानके रूपमें नियुक्त किया॥249॥

मजबूत डोरी बनानेके लिये उदाहरण
स्वरूप टूटी हुई डोरी दिखाना :—

एत बलि' दिल ताँरे छिण्डा पट्टडोरी।
"इहा देखि' करिबे डोरी अति दृढ़ करि'॥250॥

श्रीजगन्नाथकी रेशमी डोरी—अनन्तरूपी
भगवान् विष्णुका ही अर्चा :—

एइ पट्टडोरीते हय 'शेष'-अधिष्ठान।
दश-मूर्त्ति हञा येँहो सेवे भगवान्॥"251॥

अनुवाद—यह कहकर महाप्रभुने उन्हें टूटी हुई रेशमी डोरियाँ पकड़ा दीं और कहा,—"इन्हें देखो। आप इनसे बहुत अधिक मजबूत डोरियाँ बनाकर लाना। इन रेशमी डोरियोंमें 'शेष'का वास है जो दस-मूर्ति धारण करके भगवान्की सेवा करते हैं॥"250–251॥

अमृतप्रवाह भाष्य—'*शेष'-अधिष्ठान'*—अनन्तदेवका अधिष्ठान; '*दशमूर्त्ति*'—आदिलीला 5/123-124 संख्या देखें॥251॥

चौदहवें अध्यायका अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

अनुभाष्य—'*'छिण्डा' (उड़िया भाषा)*'—टूटा हुआ टुकड़ा॥250॥

श्रीजगन्नाथके लिये रेशमी डोरी बनाकर
लानेकी सेवा प्राप्त करके दोनोंको आनन्द :—

भाग्यवान् सेइ सत्यराज, रामानन्द।
सेवा-आज्ञा पाञा हैल परम-आनन्द॥252॥

तभीसे प्रतिवर्ष गुण्डिचामें उनके द्वारा
परमानन्दसे रेशमी डोरी लाना :—

प्रति वत्सर गुण्डिचाते भक्तगण-सङ्गे।
पट्टडोरी लञा आइसे अति बड़ रङ्गे॥253॥

अनुवाद—श्रीसत्यराज खाँन और श्रीरामानन्द बड़े भाग्यवान् हैं जिन्होंने महाप्रभुसे सेवा-आज्ञा पायी। उस आज्ञाको पाकर वे परम आनन्दित हुए। इसके बाद प्रतिवर्ष गुण्डिचा-मन्दिर मार्जनके दिन वे बड़े उत्साहसे भक्तोंके साथ रथके लिये मजबूत रेशमी डोरियाँ लेकर आते रहे॥252–253॥

श्रीजगन्नाथका रत्नबेदीपर आरोहण, महाप्रभुका
अपने भक्तोंके साथ घर जाना :—

तबे जगन्नाथ याइ' बसिला सिंहासने।
महाप्रभु घरे आइला लञा भक्तगणे॥254॥

अनुवाद—तब श्रीजगन्नाथ अपने सिंहासनपर जाकर विराजमान हो गये और महाप्रभु भी अपने भक्तोंके साथ अपने वासस्थानपर चले आये॥254॥

भक्तोंको हेरापञ्चमीका प्रदर्शन और व्रजलीला :—

एइमत भक्तगणे यात्रा देखाइल।
भक्तगण लञा वृन्दावन-केलि कैल॥255॥
चैतन्य-गोसाञिर लीला—अनन्त, अपार।
'सहस्र-वदन' यार नाहि पाय पार॥256॥
श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥257॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते मध्यखण्डे 'हेरापञ्चमी'-
यात्रा-दर्शनं नाम चतुर्द्दश-परिच्छेदः।

अनुवाद—इस प्रकार महाप्रभुने भक्तोंको श्रीजगन्नाथ रथ-यात्राका दर्शन करवाया और भक्तोंको लेकर वृन्दावनकी लीलाएँ करके उनका आस्वादन किया। श्रीचैतन्य गोसाईंकी लीलाएँ अनन्त, अपार हैं, हजार मुखवाले शेष भी उन लीलाओंका पार नहीं पा सकते। श्रीरूप-रघुनाथ गोस्वामीके चरणकमलोंकी कृपाभिलाषा करते हुए कृष्णदास इस श्रीचैतन्यचरितामृतका वर्णन कर रहा है॥ **255–257**॥

श्रीचैतन्यचरितामृतके मध्यखण्डमें 'हेरा-पञ्चमी'-यात्रा-दर्शन
नामक चौदहवें अध्यायका अनुवाद समाप्त।

अनुभाष्य—आदिलीला 10/162–163 और 17/231 संख्या देखें॥ **256**॥

चौदहवें अध्यायका अनुभाष्य समाप्त।

मध्यलीलाका प्रथम भाग समाप्त।

श्लोक सूची

[वर्णक्रमानुसार प्रथम और तृतीय चरण]

अ

अखिलरसामृतमूर्त्तिः प्रसृमर 8/141
अघानां लवित्री जगत्क्षेम 3/28
अतो हेतोरहेतोश्च 8/110, 14/163
अत्युद्दण्डं ताण्डवं गौरचन्द्रः 11/1
अदर्शनीयानपि नीच 11/47
अद्वैतवीथीपथिकैरुपास्याः 10/178
अनयाराधितो नूनं भगवान् 8/99
अनाथबन्धो करुणैक 2/58
अनादिरादिर्गोविन्दः 8/136
अन्तःस्मेरतयोज्ज्वला 14/180
अन्यो वेद न चान्यदुःखं 2/18
अपरिकलितपूर्वः 8/148
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं 6/165
अमून्यधन्यानि दिन 2/58
अयमहमपि हन्त प्रेक्ष्य 8/148
अयि दीनदयार्द्रनाथ 4/197
अर्चनं वन्दनं दास्यं 9/259
अविद्या कर्मसंज्ञान्या 6/154, 8/152
अहङ्कार इतीयं मे 6/164
अहं तरिष्यामि दुरन्तपारं 3/6
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो 8/63, 9/265
अहेरिव गतिः 8/110, 14/163
अहो बत श्वपचोऽतो 11/192
अहो भाग्यमहो भाग्यं 6/149

आ

आकारादपि भेतव्यं स्त्रीणां 11/11
आज्ञायैवं गुणान् 8/62, 9/264
आत्मारामश्च मुनयो निर्ग्रन्था 6/186
आदरः परिचर्यायां 11/29
आनन्दचिन्मयरसप्रति 8/162
आराधनानां सर्वेषां 11/31
आविर्भूतस्तस्य पादारविन्दे 6/255
आविष्कुर्वति वैष्णवीमपि 9/150
आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य 6/101
आहुश्च ते नलिन 1/81, 13/136

इ

इतस्ततस्तामनुसृत्य 8/106
इति द्वापर उर्वीश 6/102
इति पुंसार्पिता विष्णौ 9/260
इति रामपदेनासौ परं 9/29
इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या 8/75
इत्युद्धवादयोऽप्येतं 8/215
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं 9/143

ई

ईश्वरः परमः कृष्णः 8/136

उ

उग्रोऽप्यनुग्र एवायं स्व 8/6

ए

एकावृत्त्या तु कृष्णस्य 9/33
एतां समास्थाय परात्म 3/6
एते चांशकलाः पुंसः 9/143
एवंव्रतः स्वप्रियनाम-कीर्त्त्या 9/262
एवं शशाङ्कांशुविराजिता 14/158

क

कंसारिरपि संसारवासना 8/105
कइअवरहिअं पेम्मं ण 2/42
कथा गानं नाट्यं गमन 14/227
कदाहमैकान्तिकनित्य 1/206, 8/73
कर्षन् वेणुस्वनैर्गोपी 1/5
कलावतीर्णाववनेर्भरासुरान् 8/145
कलित-श्यामा-ललितो 8/141
कलौ नास्त्येव नास्त्येव 6/242
कस्यानुभावोऽस्य 8/146, 9/114
का कृष्णस्य प्रणयजनिभूः 8/181
कालान्नष्टं भक्तियोगं निजं 6/255
किन्तु प्रोद्यान्निखिल 13/80
कुर्वन्ति चैषां मुहुरात्म 6/108
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्ति 6/186
कृतानुतापः स कलिन्द 8/106
कृपारिणा विमुच्यैतान् 9/1
कृषिर्भूवाचकः शब्दो 9/30
कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! 7/96
कृष्ण! केशव! 7/96, 9/13
कृष्णभक्तिरसभाविता 8/70
कृष्णवर्णं त्विषाऽ 6/103, 11/100
केशरीव स्वपोतानाम 8/6
क्रियते भगवत्यद्धा 9/260
क्वाहं दरिद्रः पापीयान् 7/143

ग

गतिस्थानासनादीनां 14/187

गर्वाभिलाषरुदितस्मित 14/174
गोपीनां पशुपेन्द्रनन्दन 9/150
गोलोक एव निवसत्य 8/162
गौड़ोदये पुष्पवन्तौ चित्रौ 1/2
गौरः पश्यन्नात्मवृन्दैः 14/1
गौरस्य कृष्णविच्छेदप्रलाप 2/1
गौराब्धिरेतैरमुना वितीर्णे 8/1

च

चलत्तारं स्फारं नयन 14/189
चित्राय स्वयमन्वरञ्ञयदिह 8/194
चिदानन्दभानोः सदा 3/28
चिन्तामणिश्चरणभूषण 14/228

ज

जइ होइ कस्स विरहो 2/42
जगद्धिताय कृष्णाय 13/77
जन्माद्यस्य यतोऽन्वय 8/265
जयतां सुरतौ पङ्गोर्मम 1/3
जयति जननिवासो देवकी 13/79
जयति जयति देवो 13/78
जयति जयति मेघश्यामलः 13/78
जानाति तत्त्वं 6/84, 11/104
जीवभूतां महाबाहो ययेदं 6/165
जैह्म्यं केशे दृशि 8/181

ज्ञ

ज्ञानिनाञ्चात्मभूतानां 8/226, 9/132
ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त 8/67

त

तं वन्दे गौरजलदं 10/1
तत् किं करोमि विरलं 2/61
तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्ष्यमाणो 6/261
तत्र लौल्यमपि मूल्यमेकलं 8/70
तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान् 8/94
तत्रास्माभिश्चटुलपशुपी 1/84
तथापि ते देव 6/84, 11/104
तथाप्यन्तः खेलन्मधुर 1/76
तद्वक्षोरुहचित्रकेलि 8/189
तमेवास्वादयत्यन्त 1/211
तया तिरोहितत्वाच्च 6/156
तयोरप्युभयोर्मध्ये 8/160
तयोरैक्यं परं ब्रह्म 9/30
तव कथामृतं तप्तजीवनं 14/13
तस्मात् परतरं देवि 11/31
तस्य तीर्थपदः किंवा 8/72
तां जहार दशग्रीवः 9/211
तात्कालिकं तु वैशिष्ट्यं 14/187
तावत् कर्माणि कुर्वीत 9/266
तासामाविरभूच्छौरिः 8/81,139
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि 10/12
तेजोवारिमृदां यथा 8/265
ते दुस्तरामतितरन्ति च 6/235
तेनाटवीमटसि तद् व्यथते 8/218
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः 11/192
त्वच्छैशवं त्रिभुवन 2/61
त्वयापि लब्धं 11/151

द

दिष्ट्या यदासी 8/89, 13/160
दीयमानं न गृह्णन्ति 6/270, 9/268
दीव्यद् वृन्दारण्यकल्पद्रुमाधः 1/4
दुरापा ह्यल्पतपसः सेवा 11/32
देशं ययौ विप्रकृतेऽद्भुतेऽहं 5/1
द्विजात्मजा मे युवयोर्दि 8/145

ध

धन्यं तं नौमि चैतन्यं 7/1
धर्मान् संत्यज्य यः 8/62, 9/264

न

न देशनियमस्तत्र न 6/226
नन्दः किमकरोद्ब्रह्मन् 8/77
न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां 8/92
न प्रेमगन्धोऽस्ति दरापि 2/45
न मृषा परमार्थमेव मे 1/203
नमो ब्रह्मण्यदेवाय 13/77
नष्टकुष्ठं रूपपुष्टं भक्ति 7/1
नानातन्त्रविधानेन कला 6/102
नानाभावालङ्कृताङ्गः 11/1
नानामतग्राहग्रस्तान 9/1
नानोपचार–कृतपूजनम 8/69
नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्त 8/80, 8/231, 9/121
नायं सुखापो 8/226, 9/132
नारायणपराः सर्वे न 9/270
नाहं विप्रो न च 13/80
निःश्रेयसाय भगवन्नान्यथा 8/40
निभृतमरुन्मनो 8/223, 9/123
निमज्जतोऽनन्त भवा 11/151
निर्विचारं गुरोराज्ञा मया 10/146
निश्चिन्तो धीरललितः 8/187
निष्किञ्चनस्य भगवद्भजनो 11/8
नेमं विरिञ्चो न भवो 8/78
नैच्छन्नृपस्तदुचितं महतां 9/269
नौमि तं गौरचन्द्रं यः 6/1
न्यासं विधायोत्प्रणयोऽथ 3/1

प

पद्भ्यां चलन् यः प्रतिमा 5/1
परव्यसनिनी नारी व्यग्रापि 1/211
परिहारेऽपि लज्जा मे किं 1/190
परीक्षा–समये वह्निं 9/212
पाणिरोधमविरोधितवाञ्छं 14/200

पाषाणशुष्केन्धनभारकाण्यहो 2/28
पीड़ाभिर्नवकालकूट 2/52
पीताम्बरधरः स्रग्वी 8/81, 8/139
पुनर्यस्मिन्नेष क्षणमपि 2/36
पुरः कृष्णालोकात् स्थगित 14/189
प्रणतभारविटपा 8/275
प्रत्यगृहीदग्रजशासनं 10/145
प्रवहति रसपुष्टिं चिद्विभूती 8/205
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत् 8/78
प्राप्तमन्नं द्रुतं शिष्टै 6/226
प्राप्तिमात्रेण भोक्तव्यं 6/225
प्रियः सोऽयं कृष्णः 1/76
प्रिय–प्रेमोल्लासोल्लसित 14/194
प्रेमच्छेदरुजोऽवगच्छति 2/18
प्रेमा सुन्दरि नन्दनन्दनपरो 2/52
प्रेमैव गोपरामाणां काम 8/215

ब

बहिः क्रोधो व्यथितवत् 14/197
ब्रह्मबन्धुरिति स्माहं बाहुभ्यां 7/143
ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न 8/65

भ

भवद्विधा भागवत 10/12
भवन्तमेवानुचर 1/206, 8/73
भूतानि भगवत्यात्मन्येष 8/274
भूमिरापोऽनलो वायुः खं 6/164

म

मणिर्यथा विभागेन 9/157
मत्कथा श्रवणादौ वा 9/266
मत्तुल्यो नास्ति पापात्मा 1/190
मत्सर्वस्वपदाम्भोजौ 1/3
मदर्थेष्वङ्‌चेष्टा च वचसा 11/30
मदेकवर्जं कृपयिष्यतीति 11/47
मद्भक्तपूजाभ्यधिका 11/29
मद्भक्तानाञ्च ये भक्तास्ते 11/28
मध्ये मणीनां हेमानां 8/94
मयि भक्तिर्हि 8/89, 13/160
मयैव विहितं देवि कलौ 6/182
मय्यर्पणञ्च मनसः 11/30
महद्विचलनं नृणां गृहिणां 8/40
महाभावस्वरूपेयं 8/160
माञ्च गोपय येन स्यात् 6/181
माधवस्य कुरुते कर 14/200
मायां मदीयमुदगृह्य वदतां 6/109
मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं 6/182
मायाश्रितानां नरदारकेण 8/75
मारः स्वयं नु मधुर 2/74

य

यः कौमारहरः स 1/58, 13/121
यच्छक्तयो वदतां वादिनां 6/108
यज्ञैः सङ्कीर्त्तनप्रायै 6/103, 11/100
यत् करोषि यदश्नासि 8/60
यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं 8/218
यत्तप्स्यसि कौन्तेय तत् 8/60
यत्रोपगीयते नित्यं देव 11/32
यथा राधा प्रिया विष्णो 8/98
यथाहेर्मनसः क्षोभस्तथा 11/11
यथोत्तरमसौ स्वाद 8/84
यदा यस्यानुगृह्णाति 11/118
यदा यातो दैवान्मधुरिपुरसौ 2/36
यदि मे न दयिष्यसे तदा 1/203
यद्वाञ्छया श्री 8/146, 9/114
यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान् 8/72
यन्नो विहाय गोविन्दः 8/99
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं 6/149
यया क्षेत्रज्ञशक्तिः सा 6/155
यशोदा वा महाभागा पपौ 8/77
यस्मै दातुं चोरयन् क्षीर 4/1
यस्य प्रसादादज्ञोऽपि सद्यः 1/1
या ते लीलारसपरिमल 1/84
या माभजन दुर्जय–गेह 8/92
या या श्रुतिर्जल्पति 6/142
यावत् क्षुदस्ति जठरे 8/69
युक्तञ्च सन्ति सर्वत्र 6/109
येनासीज्जगतां चित्रं 13/1
ये मे भक्तजनाः पार्थ 11/28
येषां स एष भगवान् 6/235
यो दुस्त्यजान् क्षितिसुत 9/269

र

रतिर्वासनया स्वाद्वी भासते 8/84
रथारूढ़स्यारादधिपदवि 13/207
रमन्ते योगिनोऽनन्ते 9/29
रसेनोत्कृष्यते कृष्ण 9/117, 9/146
राढ़े भ्रमन् शान्तिपुरी 3/1
राधामाधाय हृदये तत्याज 8/105
राधायाः किलकिञ्चिता 14/181
राधाया भवतश्च चित्त 8/194
राम! राघव! 7/96, 9/13
राम रामेति रामेति 9/32
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्ड 8/80, 8/231, 9/121
रुद्धायाः पथि माधवेन 14/180
रूपभेदमवाप्नोति ध्यान 9/157

ल

लोकोत्तराणां चेतांसि को 7/73

व

वंशीविलास्याननलोकनं 2/45
वज्रादपि कठोराणि मृदूनि 7/73

वनलतास्तरव आत्मनि 8/275
वन्दे श्रीकृष्णचैतन्य 1/2
वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण 8/58
विचारयोगे सति हन्त 6/142
वह्निः सीतां समानीय 9/212
वाचा सूचितशर्वरीरतिकला 8/189
वाष्पव्याकुलितारुण 14/181
विचारयोगे सति हन्त 6/142
विच्छेदावग्रहम्लान 10/1
विच्छेदेऽस्मिन् प्रभोरन्त्य 2/1
विदग्धो नवतारुण्यः 8/187
विन्यासभङ्गिरङ्गानां 14/192
विभुरपि सुखरूपः 8/205
विश्लेषामनुरञ्जनेन जन 8/143
विष्णुराराध्यते पन्था 8/58
विष्णुशक्तिः परा 6/154, 8/152
वृन्दावने व्रजधनं ननु 14/228
वेणीमृजो नु मम 2/74
वैराग्यविद्या-निजभक्तियोग 6/254

श

शठेन केनापि वयं हठेन 10/178
शश्वद्भक्तिविनोदया समदया 10/119
शुक्लो रक्तस्तथा पीत 6/101
शुष्कं पर्युषितं वापि 6/225

श्र

श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः 9/259
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं 14/13
श्रियः कान्ताः कान्तः 14/227
श्रीकृष्णचैतन्यशरीरधारी 6/254
श्रीकृष्णरूपादिनिषेवणं 2/28
श्रीगुण्डिचा-मन्दिरमात्मवृन्दैः 12/1
श्रीगोपालः प्रादुरासीद्वशः 4/1
श्रीमान्रासरसारम्भी वंशी 1/5
श्रीश्रीराधाश्रीलगोविन्ददेवौ 1/4
श्रुत्वा गोपीरसोल्लासं हृष्टः 14/1
श्रेयो ह्येवं भवत्याश्च 10/146

स

संसारकूपपतितो 1/81, 13/136
संसारतापानखिलान् 6/155
सख्यः श्रीराधिकाया 8/210
सङ्करीकरणं हर्षादुच्यते 14/174
सञ्चार्य रामाभिध-भक्त 8/1
स जहाति मतिं लोके 11/118
स जीयात् कृष्णचैतन्यः 13/1
सन्दर्शनं विषयिणामथ 11/8
संन्यासकृच्छमः 6/104, 10/170
समः सर्वेषु भूतेषु 8/65
सर्वगोपीषु सैवैका 8/98
सर्वधर्मान् परित्यज्य 8/63, 9/265
सर्वभूतेषु भूपाल 6/156
सर्वभूतेषु यः पश्येद्भ 8/274
स शुश्रुवान्मातरि भार्गवेण 10/145
स श्रीचैतन्यदेवो मे 1/1
सहर्षं गायद्भिः परिवृत 13/207
सहस्रनामभिस्तुल्यं राम 9/32
सहस्रनाम्नां पुण्यानां 9/33
सा चैवास्मि तथापि 1/58, 13/121
सार्वभौमं सर्वभूमा भक्ति 6/1
सालोक्य-सार्ष्टि 6/270, 9/268
सिक्तायां कृष्णलीलामृतरस 8/210
सिद्धान्ततस्त्वभेदेऽपि 9/117, 146
सिषेव आत्मन्यवरुद्ध 14/158
सीतयाराधितो वह्निश्छाया 9/211
सुकुमारा भवेद्यत्र ललितं 14/192
सुवर्णवर्णो हेमाङ्गो 6/104, 10/170
स्तनाधरादिग्रहणे हृत्प्रीत 14/197
स्त्रिय उरगेन्द्रभोग 8/223, 9/123
स्थानस्थिताः श्रुतिगतां 8/67
स्थिरचरवृजिनघ्नः सुस्मित 13/79
स्वचित्तवच्छीतलमुज्ज्वल 12/1
स्वच्छन्दं व्रजसुन्दरी 8/143
स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि 9/270
स्वागमैः कल्पितैस्त्वश्च 6/181

ह

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव 6/242
हसत्यथो रोदिति रौति 9/262
हृदयं त्वदलोककातरं 4/197
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते 6/261
हे देव, हे दयित 2/65
हे नाथ, हे रमण 2/65
हेलोद्धूलित-खेदया 10/119
ह्रिया तिर्यग्-ग्रीवा 14/194
ह्लादतापकरी मिश्रा 6/157, 8/155
ह्लादिनी सन्धिनी 6/157, 8/155

प्रयोजनीय अंशकी पद्य-सूची

[वर्णक्रमानुसार प्रथम और द्वितीय चरण]

अ

अकैतव कृष्णप्रेम, येन 2/43
अखिल ब्रह्माण्ड देखुक 1/202
अगाध ईश्वर-लीला 9/159
अग्नि-परीक्षा दिते यबे 9/206
अग्नि यैछे निज-धाम 2/26
अङ्ग हैते येइ कीड़ा 7/137
अङ्गुलिते क्षत हबे जानि' 13/166
अङ्घ्रिपद्मसुधा'य कहे 8/225
अचिन्त्यशक्ति ईश्वर 6/170
अचिराते कृष्ण तोमा 7/148
अज्ञ-स्थाने किछु नहे 6/79
अतएव अप्राकृत' ब्रह्मेर 6/146
अतएव आत्मपर्यन्त-सर्व 8/142
अतएव ईश्वरतत्त्व ना पार 6/86
अतएव ऋणी' हय 8/91
अतएव कल्पना करि' 6/180
अतएव कृष्णेर करे परम 14/157
अतएव गोपीभाव करि' 8/227
अतएव जगन्नाथेर कृपार 13/17
अतएव तोमाय-आमाय 8/290
अतएव त्रियुग' करि' 6/95, 99
अतएव नाम हैल क्षीरचोरा 4/20
अतएव लक्ष्मी-आद्येर हरे 9/142
अतएव लक्ष्मीर कृष्णे 9/144
अतएव श्रुति कहे, ब्रह्म 6/151
अतएव स्वरूप गोसाञि 10/114
अतएव स्वरूप-शक्ति हय 8/153
अतएव हङ तोमार आमि 6/56
अतिस्तुति' हय एइ 10/182
अद्यावधि सेवा करे तत्त्व 9/248
अद्वैत कहे,—अवधूतेर 12/189
अद्वैत-सिद्धान्ते' बाधे 12/193
अद्वैतादि भक्तगण निमन्त्रण 14/66
अधिक लाभ पाइये, आर 9/118
अधिकारी हयेन तेँहो 7/62
अनन्त ब्रह्माण्ड इँहा 8/134
अनन्त वैकुण्ठ, आर 8/134
अनुमान प्रमाण नहे ईश्वर 6/82
अन्तरङ्ग-भक्त जाने, याँर 13/54
अन्तरङ्गा—चिच्छक्ति 6/160
'अन्तरङ्गा', 'बहिरङ्गा' 8/151
अन्तरङ्गा स्वरूप शक्ति' 8/151
अन्तरे सकल जानेन 14/20
अन्तर्यामी ईश्वरेर एइ 8/264
अन्न-दोषे संन्यासीर दोष 12/190
अन्य ग्राम निस्तारये 9/8
अन्य देहे ना पाइये 9/137
अन्यापेक्षा हैले प्रेमेर 8/101
अन्येर कि कथा, आमि 8/45
अन्येर ये दुःख मने 2/23
अन्येर हृदय—मन, मोर 13/137
अन्येरे अन्य कह, नाहि 10/157
अन्योऽन्ये दुँहार दुँहा 1/50
अपवित्र अन्न एक 9/53
अपाणि-पाद'-श्रुति वर्जे 6/150
'अपादान', 'करण' 6/144
अपूर्वामृत-नदी बहे 8/100
अप्राकृत वस्तु नहे 9/195
अवश्य करिब आमि 7/44
अभागिया ज्ञानी आस्वादये 8/258
'अभिधा'-वृत्ति छाड़ि' 6/134
अरसज्ञ काक चुषे ज्ञान 8/257
अर्जुनेर रथे कृष्ण हय 9/99
अर्जुनेरे कहिलेन हित 9/100
अर्धरात्रे दुइ भाइ आइला 1/183
अलौकिक वाक्य चेष्टा 7/66
अलौकिक-लीलाय यार 7/111
अल्प अन्न नाहि आइसे 11/200
अल्पाक्षरे कहे सिद्धान्त 9/240
अष्टादश अर्थ कैल 6/195
अष्टादशवर्ष केवल 1/22
असम्भव कह केने, येइ 5/21
अस्पृश्य, अदृश्य सेइ 6/167

आ

आकाशादिर गुण येन 8/87
आकृत्ये-प्रकृत्ये तोमार 8/43
आगे मन नाहि चले 1/160
आगे यदि कृष्ण देन 10/180
आचार्य कहे,—अनुमाने 6/81
आचार्य कहे,—वर्णाश्रम 9/256
आचार्य कहे,—विज्ञमत 6/80
आचार्य कहे,—तुमि याँहा 3/33
आचार्य-गोसाञिर पुत्र 12/143

आचार्येर दोष नाहि 6/180
आचार्येर श्रद्धा-भक्ति 3/203
आछे दुइ-चारि जन 13/156
आजन्म करिनु मुञि 10/175
आजि कृष्णप्राप्ति-योग्य 6/234
आजि तुमि निष्कपटे 6/232
आजि मुञि अनायासे 6/230
आजि मोर श्लाघ्य 7/125
आजि से खण्डिल 6/233
आजि हैते दुँहार नाम 1/208
आज्ञा नहे, तबु करिह 11/122
आत्मनिन्दा करि' लैल 6/201
आत्मसुख-सङ्ग हैते 8/212
"आत्मा वै जायते पुत्रः" 12/56
आत्मारामाश्च-श्लोके 6/194
आत्माराम' पर्यन्त करे 6/185
आत्मीय-ज्ञाने मोरे 10/57
आनन्दचिन्मयरूप रसेर 8/158
आनन्दांशे 'ह्लादिनी' 6/159, 8/154
आनुषङ्गे प्रेममय कैले 8/279
आपन-इच्छाय चले करिते 13/13
आपन-इच्छाय बुलुन, याहाँ 1/170
आपन वासार चाले 1/61
आपन-हृदय येन धरिल 12/106
आपनार दुःख-सुख ताँहा 3/185
आपनि आचरि' जीवे 1/22
आपने अयोग्य देखि' 1/204
आपने वैराग्य-दुःख 7/30
आमा उद्धारिते बली 1/199
आमा उद्धारिया यदि 1/200
आमा उद्धारिले तुमि 6/213
आमा द्रवाइले तुमि 6/214
आमा निस्तारिते तोमार 8/38
आमार आज्ञाय गुरु 7/128
आमार ठाकुर कृष्ण 9/112
आमार वचने ताँरे 7/63
आमार ब्राह्मण तुमि 9/229
आमार भाग्ये नाहि, तुमि 13/97
आमा लञा पुनः 13/131
आमि अकुलीन आर 5/22
आमि—एक वातुल 8/290
आमि कभु लोकापेक्षा 7/27
आमि कि करिब, मन 11/38
आमि कोन् क्षुद्रजीव 12/27
आमि जीव,—क्षुद्रबुद्धि 9/125
आमि त' गृहस्थ-ब्राह्मण 12/191
आमि बालक-संन्यासी 6/59
आमि वृद्ध जरातुर 2/90
आमिह तोमार स्पर्शे 8/45
आमिह संन्यासी देख 9/230
आर विप्र—युवा, ताँर 5/16
आर्य सरल विप्रेर 9/227
आलालनाथे गेला प्रभु 11/63

इ

इतस्ततः भ्रमि' काँहा 8/114
इष्ट ना पाइले निज 12/31
इहलोक, परलोक तार 7/111
इँहाके चन्दन दिले 4/160
इहा आस्वादिते आर 4/195
इँहार मध्ये राधार 8/97
इँहा लोकारण्य, हाती 13/128
इँहा-सबार वश प्रभु 7/29
इहाँ हैते चल, प्रभु 1/222
इँहो केने दण्ड भाङ्गे 5/157
इँहो त' साक्षात् कृष्ण 6/200
इँहो दामोदर-स्वरूप 14/217

ई

ईश्वर-इच्छाय चले, ना 13/28
ईश्वर-तत्त्वे भेद मानिले 9/155
ईश्वरपुरीर भृत्य,—'गोविन्द' 10/132
ईश्वर-प्रेयसी सीता 9/192
ईश्वर-मन्दिरे मोर पद 12/126
ईश्वरेर कृपा जाति-कुल 10/138
ईश्वरेर कृपा नहे वेद 10/137
ईश्वरेर कृपा-लेश हयत' 6/83
ईश्वरेर कृपा-लेश नाहिक 6/86
ईश्वरेर परोक्ष आज्ञा—क्षौर 11/113
ईश्वरेर लीला—कोटिसमुद्र 9/125
ईश्वरेर श्रीविग्रह सच्चिदानन्द 6/166

उ

उछलित करे यबे तार 14/85
उठह गोपाल' बलि' उच्चैः 12/148
उठह पूजारी, कर द्वार 4/127
उठाञा सेइ कीड़ा राखे 7/137
उठि' महाप्रभु ताँरे चापड़ 1/68
उत्तम हञा राजा करे 13/17
उद्घूर्णा-प्रलाप तैछे प्रभुर 1/87
उदय करये यदि, तबे 1/82
उन्मादे करिल तेँह संन्यास 10/107
उपनिषद्-शब्दे येइ मुख्य 6/133
उपास्येर मध्ये कोन् 8/255
उलटिया आमा ना करिह 5/98

ऊ

ऊषर-भूमिते येन बीजेर 6/105

ए

एइ इच्छाय लज्जा पाञा 4/121
एइ कलिकाले विष्णुर 6/94
एइ कलिकाले आर 9/362

एइ गुणे कृष्ण 11/27
एइ तिने हरे सिद्ध 6/197
एइ तीर्थे शङ्करारण्येर 9/300
एइ दुइ श्लोक—भक्त 6/256
एइ देख, चैतन्येर कृपा 14/16
एइ देख तोमार गौड़ीया'र 12/125
एइ धुया–गाने नाचेन 1/56
एइ पट्टडोरीते हय शेष' 14/251
एइ प्रेमार वश कृष्ण 8/88
एइ प्रेमे'र अनुरूप ना 8/91
एइ भिक्षा मागों,—मोरे 3/189
एइ राजवेश, सङ्गे सब 13/129
एइमत गौर–श्यामे, दोँहे 13/119
एइमत दुँहे स्तुति करे 8/47
एइमत परम्पराय देश 7/118
एइमत 'वैष्णव' कैल 7/101
एइमत 'वैष्णव' हैल 7/104
एइमत लोके चैतन्य 1/30
एइमते कल्पित भाष्ये 6/176
एइ—महाभागवत, याँहार 12/61
एइ मोर मनेर कथा 1/213
एइ रागमार्गे आछे सूक्ष्म 11/112
एइरूपे नृत्य आगे हबे 7/82
एइ लागि' गीता–पाठ 9/101
एइ लागि' सुखभोग छाड़ि' 9/113
एइ श्लोकेर अर्थ जाने 1/59
एइ हय कृष्णभक्तेर श्रेष्ठ 9/256
एकइ विग्रहे करे 9/154, 156
एक ईश्वर—भक्तेर ध्यान 9/156
एक–दुइ गणने पञ्च 8/85
एक वस्तु बिना सेइ 12/194
एक बहिर्वास यदि देह' 12/34
एक महाधनी क्षत्रिय 4/101
एक रामानन्द राय बहु 9/357
एकसेर अन्न रान्धि' करिह 5/100
एकाकी याइब, केहो सङ्गे 7/11
एतदिन नाहि जानि 8/96
एथा नित्यानन्दप्रभु कैल 5/142
एथाय रहिब आमि, ना 5/107
एबार ना याबेन प्रभु 1/161
एबे अहङ्कार मोर जन्मिबे 7/146
एबे आमार बड़ भाइ 11/148
एबे आमि इँहा आनि' 10/65
एबे कपट कर,—तोमार 8/280
एबे जानिलुँ साध्य–साधन 8/117
एबे तोमा देखि मुञि 8/267
ए–सब वैष्णव—एइ क्षेत्रेर 10/47
एसब सिद्धान्त तबे तुमिह 6/106

ऐ

ऐछे अचिन्त्य भगवानेर 6/185
ऐछे बात पुनरपि मुखे 11/12
ऐछे शक्ति कार हय 9/315
ऐश्वर्यज्ञाने नाहि कोन 9/130
ऐश्वर्य ना जाने इँहो 14/217

क

कपोतेश्वर देखिते गेला 5/142
कभु एक मूर्त्ति, कभु 13/64
कभु ना बाधिबे तोमार 7/29
कर्मनिन्दा, कर्मत्याग 9/263
कर्म हैते प्रेमभक्ति कृष्णे 9/263
कलिकाले धर्म—कृष्णनाम 11/98
कलिकाले लीलावतार ना 6/99
कलियुगे अवतार नाहि 6/95
कल्पनार्थे तुमि ताहा 6/132
कल्पवृक्ष–लतार—याँहा 14/222
कह यदि, तबे आमाय 11/12
कहिबार कथा नय, कहिले 2/83
कहेन यदि, पुनरपि योग 6/76
काकेरे गरुड़ करे,—ऐछे 12/182
काङ्गालेर भोजन–रङ्ग 14/45
काणाकड़ि–छिद्र सम 2/31
काणे मुद्रा लइ' मुञि 12/20
कान्दिया बलेन प्रभु,—शुन 3/145
कानाइर नाटशाला' पर्यन्त 1/159
कानाञिर नाटशाला' हैते 1/162
कानुप्रेमविषे मोर तनु 3/124
कान्त–वक्षःस्थिता 9/111
कामक्रीड़ा–साम्ये तार 8/214
कामगायत्री, कामबीजे 8/137
कायमनोवाक्ये व्यवहारे 12/50
कारुण्यामृत–धाराय स्नान 8/166
काष्ठनारी–स्पर्शे यैछे 11/10
काँहा करों, काँहा पाङ 2/15
काँहा तुमि—साक्षात् ईश्वर 8/35
काँहा तुमि सेइ कृष्ण 9/158
काँहा बहिर्मुख तार्किक 12/184
काँहा मोर प्राणनाथ 2/15
काँहार स्मरण जीव करिबे 8/251
काहारे कहिब, केबा जाने 2/16
कि कहिब रे सखि 3/114
कि कहिये भाल 8/122, 197
किन्तु अनुरागी लोकेर 12/31
किन्तु आछिलाङ भाल 7/146
किन्तु तुमि अर्थ कैले 6/192
किन्तु याँर येइ रस 8/83
किवा आमि आगे याइ 5/154
किवा गौरचन्द्र इहा करे 4/195
किवा विप्र, किबा न्यासी 8/127
किवा मार' व्रजवासी 13/145

किम्वा नवम पदार्थ 6/272
कीर्त्तनीयार परिश्रम जानि' 14/38
कीर्त्तिगण-मध्ये जीवेर 8/245
कु-विषय-विष्ठा-गर्त्ते 1/198
कुलिया नगर हैते पथ 1/156
कृतघ्नता हय, तोमाय ना 5/20
कृतमालाय स्नान करि' 9/181
कृपा करि' कह, यदि 8/95
कृपा करि' कह, राय 8/196
कृपा-पाश गलाय बान्धि' 10/125
कृपा बिना ईश्वरेरे केह 6/82
कृपा बिना ब्रह्मादिक 13/59
कृष्ण आजि निष्कपटे 6/232
कृष्ण उपदेशि' कर जीवेर 7/148
कृष्ण-कर-पदतल 2/34
कृष्ण कहे,—प्रतिमा चले 5/95
कृष्ण' कृष्ण' कहि करे 12/112
कृष्णके आह्लादे, ता'ते 8/156
कृष्णके कराय श्यामरस 8/179
कृष्णचैतन्य-निकटे याइ' 10/133
कृष्णेते अधिक लीला 9/115
कृष्णदास'-नामे एइ सरल 7/39
कृष्णनाम, कृष्णकथा, कृष्ण 3/190
कृष्ण-नाम-गुण छाड़ि 1/270
कृष्ण-नाम-गुण-लीला 8/251
कृष्णनाम लोकमुखे शुनि' 7/117
कृष्णनाम स्फुरे मुखे 10/176
कृष्णनाम स्फुरे, रामनाम 9/27
कृष्णनाम हइल सङ्केत 12/113
कृष्णनामामृत-वन्याय देश 7/118
कृष्ण-नारायण, यैछे 9/153
कृष्णनिषेवण करि निभृते 3/9
कृष्णप्राप्ति-तारतम्य 8/82
कृष्णप्राप्तिर उपाय बहुविध 8/82
कृष्णप्रीत्ये करि तोमार 5/23
कृष्णप्रेम याँर, सेइ मुक्त 8/248
कृष्णप्रेमसेवा-फलेर परम 9/258
कृष्ण-प्रेमामृत पान करे 8/258
कृष्णप्रेमा सुनिर्मल, येन 2/48
कृष्ण-प्रेमे प्रतिष्ठा चले 4/147
कृष्ण-वंशी करे याँहा 14/226
कृष्णभक्ति बलिया याँहार 8/245
कृष्णभक्त-विरह बिना 8/247
कृष्णभक्त-सङ्ग बिना श्रेयः 8/250
कृष्णमूर्त्ति देखि' प्रभु 9/249
कृष्ण याँहा धनी, ताँहा 14/220
कृष्णरस-तत्त्ववेत्ता, देह 10/111
कृष्ण लञा व्रजे याइ 1/56
कृष्ण लागि' पति-आगे 12/32
कृष्णलीला-मनोवृत्ति-सखी 8/176
कृष्णलीलामृत यदि लताके 8/209
कृष्णसङ्गे पतिव्रता-धर्म 9/118
कृष्ण-सह निजलीलाय 8/206
कृष्णसह राधिकार लीला 8/207
कृष्णसुख-तात्पर्य गोपीभाव 8/216
कृष्णस्फूर्त्त्ये ताँर मन 9/105
कृष्णाश्रय हय, छाड़े वेद 11/117
कृष्णे मति रहु' बलि' 6/48
कृष्णे सुख दिते करे 8/217
कृष्णेर अधरामृत, कृष्ण 2/32
कृष्णेर अनन्त-शक्ति, ताते 8/150
कृष्णेर-उज्ज्वल रस 8/170
कृष्णेर दर्शन पाञा 13/124
कृष्णेर प्रतिज्ञा दृढ़ सर्व 8/90
कृष्णेर विग्रह येइ सत्य 6/264
कृष्णेर विरहलीला प्रभुर 1/51
कृष्णेर विलासमूर्त्ति 9/142
कृष्णेर विशुद्धप्रेम-रत्नेर 8/180
कृष्णेर मधुर वाणी 2/31
कृष्णेर-स्वरूप' कह राधार 8/118
केमने संन्यास-धर्म हबेक 6/74
केशे धरि' विप्रे लञा 9/233
केह ज्ञानी, केह कर्मी 9/9
केह हय तत्त्ववादी', केह 9/11
केह ताँरे पुत्र-ज्ञाने 9/129
केह सखा-ज्ञाने जिनि' 9/129
कैशोर-वयस सफल कैल 8/188
कोटि जन्मे तोमार ऋण 3/146
कोन् अर्थ जानि' तोमार 9/97
कोन-जन्मे मोरे अवश्य 11/24
कौतुके पुरी ताँरे पुछिल 9/294
कौतुके लक्ष्मी चाहेन 9/116
क्रोध करि' रास छाड़ि' 8/111

क्ष

क्षणे क्षणे कर तुमि 11/190
क्षीर एक राखियाछि 4/127
क्षीर लह एइ, यार 4/133

ख

खण्ड खण्ड हैल भट्टथारि 9/232

ग

गङ्गातीरे लञा गेला 'यमुना' 1/93
गङ्गाय यमुना बहे हञा 3/36
गन्ध बाड़े, तैछे एइ 4/192
गरुड़ेर पाशे रहि' दर्शन 6/63
गान-मध्ये कोन् गान 8/249
गिरिधातु-शिखिपिच्छ-गुञ्जा 14/204
गीताशास्त्रे जीवरूप शक्ति' 6/163
गुण-दोषोद्गार-छले सबा 7/32

गुणाधिक्ये स्वादाधिक्य 8/86
गुरु–आज्ञा दियाछेन, कि 10/143
गुरु–आज्ञा ना लङ्घिये 10/144
गुरुकर्णे कह कृष्णनाम 9/59
गुरु–कर्णे कहे सबे 9/61
गुरुबुद्ध्ये छोटविप्र बहु 5/34
गुरुर किङ्कर हय मान्य 10/142
गृह–सहित आत्मा ताँरे 10/32
गृहे रहि' कृष्णनाम 7/127
गोपजाति कृष्ण, गोपी 9/135
गोप–बालक सब प्रभुके 3/13
गोपालचम्पू–नामे ग्रन्थ 1/44
गोपाल–चरणे मागे,—चल 5/122
गोपाल यदि साक्षी देन 5/77
गोपालेर आगे कह ए 5/31
गोपालेर आगे पड़े 5/111
गोपालेर सहजे प्रीति 4/95
गोपिकार प्रेमे नाहि 14/157
गोपिकार मन हरिते 9/147
गोपी–आनुगत्य बिना 8/229
गोपीगण बिना कृष्णेर 14/123
गोपीगणेर रास–नृत्य 8/104
गोपीचन्दन–तले आछिल 9/247
गोपीद्वारे लक्ष्मी करे 9/155
गोपीनाथ आमार से 4/160
गोपीभावे विरहे प्रभु 11/63
गोपी–रागानुगा हञा 9/136
गोपी–लक्ष्मी–भेद 9/153,154
गोपेन्द्रसुत बिना तेँहो 8/286
गोविन्द–विरुदावली, ताहार 1/40
गो–ब्राह्मण–द्रोहि–सङ्गे 1/197
गोसाञिर सङ्गे रहे 9/226
गौड़–निकट आसिते नाहि 1/212
गौड़ हइते आइला दुइ 4/103
गौर अङ्ग नहे मोर 8/286
गौर आगे चले, श्याम 13/118
गौर यदि पाछे चले 13/118
ग्राम्यवार्त्ता–भये द्वितीय 4/179

घ

घरे आनि' प्रभुर कैल 7/122
घरे कृष्ण भजि' मोरे 7/69
घरे यात्रा कर सदा 3/190
घषिते घषिते यैछे मलयज 4/192

च

चण्डीदास, विद्यापति, रायेर 2/77
चतुर्भुज–मूर्त्ति' देखाय 9/149
चतुर्भुज–रूप प्रभु हइला 6/202
चन्दनेश्वर' निजपुत्र दिल 6/33
चब्बिश वत्सर शेष 1/16, 3/3
चर्माम्बर–परिधाने संसार 10/159
चातुर्मास्य महाप्रभु 1/110
चापड़ खाञा क्रु
चापड़ मारिया तारे कैल 13/95
चाले गोँजा तालपत्रे 1/66
'चिच्छक्ति', 'मायाशक्ति' 8/150
चित्त काढ़ि तोमा हैते 13/140
चिदंशे 'सम्वित्' 6/159, 8/154
चिन्तामिणगण—दासी 14/221
चिन्तामणिमय भूमि रत्नेर 14/221
चिरदिने माधव मन्दिरे 3/114
चुरि करि' राधाके निल 8/101
चैतन्य–गोसाञि याँरे बले 1/27
चैतन्यचन्द्रेर लीला—अगाध 9/363
चैतन्य–चरण बिना नाहि 6/237
चैतन्यचरित शुन श्रद्धा 9/361
चैतन्यचरित श्रद्धाय शुने 9/364
चैतन्य–प्रसादे मनेर 6/224
चैतन्यलीला–रत्न–सार 2/84
चैतन्यलीलार व्यास—दास 1/13
चैतन्य' सेव, चैतन्य' गाओ 1/29
चैतन्ये' ये भक्ति करे 1/29
चैतन्येर प्रिय येहोँ 1/26
चैतन्येर भक्तवात्सल्य 7/30
चैतन्येर सृष्टि—एइ प्रेम 11/97
चोद्दभुवने बैसे यत जीव 1/267

छ

छि, छि, विषयीर स्पर्श 13/182
छोटविप्र बले,—ठाकुर 5/33
छोट हञा मुकुन्द एबे 11/140

ज

जगत् निस्तारिले तुमि 6/213
जगत् ये मिथ्या नहे 6/173
जगतेर माता सीता 9/202
जगदानन्द चाहे आमा 7/21
जगद्रूप हय ईश्वर 6/171
जगन्नाथ—अचल, तुमि 10/163
जगन्नाथ–दरशने विचार 11/38
जगन्नाथ'—नाम, पदवी 6/51
जगन्नाथ–मग्न प्रभुर 13/117
जगन्नाथ–मन्दिरे ना 1/63
जगन्नाथ मिश्र—पूर्वाश्रमे 9/301
जगन्नाथेर ब्राह्मणी, तेँह 9/297
जगन्माता महालक्ष्मी 9/189
जगाइ माधाइ करियाछेन 11/45
जगाइ–माधाइ हैते कोटी 1/196
'जज गग' 'जज गग' 13/104
जन्मकुलशीलाचार ना 12/192
जन्मे जन्मे तुमि दुइ 1/215
जय जय महाप्रभु 1/273

जलपात्र–वस्त्र बहि' 7/40
जानि' वा ना जानि' 3/147
जीव—व्याप्य, ब्रह्म 10/168
जीवे ना सम्भवे एइ 8/43
जीवेर अस्थि–विष्ठा दुइ 6/136
जीवेर जीवन चञ्चल 2/24
जीवेर देहे आत्मबुद्धि 6/173
जीवेर निस्तार लागि' 6/169
जीयाओ आमार गुरु 9/58

ज्ञ

ज्ञान–कर्मपाश हैते हय 6/284

ठ

ठाकुरेर नासाते यदि 5/127
ठेलितेइ चलिल रथ 13/190

त

तटस्थ हञा विचारिले 8/83
तत्तत्पद-प्राधान्ये 'आत्माराम' 6/195
तत्त्ववादिगण प्रभुके 9/250
तत्त्ववादी-आचार्य—सब 9/254
तत्त्वमसि'—जीव–हेतु 6/175
तथापि आपन–गणे 13/185
तथापि आमार मन 13/127
तथापि चैतन्येर करे 1/28
तथापि तोमार गुणे 1/204
तथापि ना पाइल व्रजे 8/230
तथापि बाहिरे कहे निष्ठुर 12/22
तथापि यवन जाति, ना 1/223
तथापि राधिका यत्ने 8/211
तथापि लौकिकलीला, लोक 1/225
तप करि' कैछे कृष्ण 9/122
तबे आमार मनोवाञ्छा 13/131
तबे केने पण्डित सब 11/101
तबे जानि,—राधाय कृष्णेर 8/102
तबे प्रभु व्रजे पाठाइल 1/31
तबे महाप्रभु ताँर बुके 12/148
तबे मायासीता अग्न्ये 9/207
तबे सेइ कृष्णदासे गौड़े 10/74
तबे हासि' ताँरे प्रभु 8/281
तर्कनिष्ठ हृदय तोमार 6/100
तर्क–प्रधान बौद्धशास्त्र 9/49
तर्क–शास्त्रे जड़ आमि 6/214
तर्केइ खण्डिल प्रभु, ना 9/49
तर्जनीते भूमे लिखे 13/165
ताँर आज्ञाय करोँ ताँर 1/13
ताँर एक योग्य पुत्र 9/299
ताँर ऐछे वाक्य स्फुरे 6/278
भट्ट कहे,—ताँर कृपालेश 11/102
ताँर गुण गणिबे केमने 8/184
ताँर गौरकान्तये तोमार 8/268
ताँर ठाञि गोपालेर लुकान 4/78
ताँर नव अर्थ–मध्ये 6/193
ताँ'र निन्दा हय यदि 3/181
ताँर प्रतिज्ञा—मोरे ना 11/48
ताँर भक्तिवशे गोपाल 5/123
ताँर भ्रातुष्पुत्र नाम–श्रीजीव 1/42
ताँर मन कृष्णमाया नारे 8/129
ताँर येइ सुख, ताहा 3/185
ताँर सङ्गे बहु आइला 8/15
ताँर स्पर्शे नाहि याय 9/116
ताँर हस्त–स्पर्शे पुनः 4/77
ताँरे ईश्वर करि' नाहि 9/128
ताँरे देखि' महाप्रभुर कृष्ण 12/60
ताँरे देखि' हय मोर 9/100
ताँरे ना देखिया व्याकुल 8/111
ताँरे निराकार करि' करह 6/140
ताँरे प्रश्न कैल प्रभु 9/254
ताँ–सबार प्रसादे मिले 12/9
ताँहा उपवास, याँहा नाहि 11/114
ताँहा गोपवेश, सङ्गे मुरली 13/129
ताँहा पुष्पारण्य, भृङ्ग 13/128
ताँहा बिना रासलीला 8/113
ताँहार सन्तोषे भक्ति 5/24
ताँहारे मलिन कैल एक 12/54
ता'ते सुगन्धि देह 8/165
तावत् तोमार सङ्ग 8/239
तावत् स्पर्शमणि केह 6/279
तामा, काँसा, रूपा, सोना 8/293
तार अनुसन्धान बिना 14/16
तार अस्त्र तार अङ्गे 9/232
तार एक प्रेम–लेश 11/25
तार पाछे पाछे गोपाल 5/101
तार प्रतिफल मोरे देह 3/165
तार मध्ये एक–मूर्त्त्ये 8/108
तार मध्ये छय वत्सर 1/19, 23
तार मुक्ति फल नह 6/265
तार शुक्लपक्षे प्रभु करिला 1/16
तार शेष येइ रहे 1/51
ताँरा दुइजन जानाइला 1/184
तारुण्यामृत–धाराय स्नान 8/166
तारे ध्यान शिक्षा कराह 13/140
तार्किक–मीमांसक, यत 9/42
तार्किक–श्रृगाल–सङ्गे 12/183
ताहा खाञा तोमार सङ्गे 5/100
ताहातेइ अनुमानि 8/115
ताहाते दृष्टान्त—उपनिषद् 8/222
ताहाते दृष्टान्त—लक्ष्मी 8/230
ताहाते प्रकट देखि स–वंशी 8/269
ताहाते विख्यात इँहो परम 6/79

ताहा देखि' महाप्रभुर मने 12/123
ताहा ना करिया केने 11/111
ताहा पाञा प्राण राखे 12/34
ताहा बिना अन्यत्र नाहि 9/289
ताहार महिमा तबे हृदय 9/36
ताहा सहि, तोमार विच्छेद 7/48
तँहो जीव नहेन, हन 10/13
तँह—प्रेमाधीन, तोमार 11/52
तँहो कहे,—हङ मुञि 8/21
तँहो कहे, मोर प्रभु 1/27
तँहो गौड़देश भासाइल 1/24
तँहो यदि इँहा रहे 3/181
तिन अंशे चिच्छक्ति हय 6/158
तिन खण्ड करि' दण्ड 5/143
तीरे वन देखि' स्मृति 8/11
तीर्थ पवित्र करिते करे 10/11
तीर्थयात्राय एत संघट्ट 1/223
तुमि कह,—कलिते नाहि 6/98
तुमि—गौरवर्ण, तँह 10/164
तुमि त' ईश्वर साक्षात् 9/58
तुमि नराधिप हओ, विष्णु 1/178
तुमि भाल करियाछ 12/117
तुमि याँहा कह, आमि 3/148
तुमि येइ अर्थ कर 6/127
तुमि येइ कह, सेइ 9/159
तुमि येइ कहाओ, सेइ 8/120
तुमि शुनि' शुनि' रह 6/129
तुमि-सब आगे याह 5/154
तुमि-सब लोक—मोर 3/189
तुमि साक्षात् सेइ कृष्ण 9/126
तुमि से जानह एइ 9/102
तृषित चातक यैछे करे 10/40
तेरछे पड़िल थालि 9/56
तोमाके तद्रूप देखि' 10/176
तोमाके ये प्रीति करे 11/26
तोमाते ईश्वर-कृपा इथे 6/88
तोमाते ये एत प्रीति 11/27
तोमा छाड़ि' अन्यत्र गेनु 10/123
तोमा-दुँहा देखिते मोर 1/212
तोमा देखि' कृष्णनाम 9/26
तोमा देखि' कृष्ण' हैल 10/175
तोमा बिना अन्य नाहि 8/236
तोमा-बिना केह इहा 8/119
तोमा-सङ्गे आमा-सबार 12/185
तोमा-सबा जानि 7/8
तोमा-सह तेरछे 5/149
तोमार अग्रेते प्रभु कहिते 1/189
तोमार आगे एत कथार 6/105
तोमार आज्ञाते शुभे 7/45
तोमार आश्रय निलुँ, गुरु 6/59
तोमार उपरे ताँर कृपा 6/106
तोमार 'गौड़ीया' करे 12/127
तोमार चरण पाइल सेइ 11/139
तोमार चरण मोर व्रज 1/82
तोमार चरणे मोर नाहि 10/124
तोमार ठाञि आमार किछु 8/288
तोमार दर्शन-बिने, अधन्य 2/59
तोमार दर्शने यबे कृष्ण 9/36
तोमार देशे, तोमार भाग्ये 1/176
तोमार दैन्य देखि' मोर 11/157
तोमार नाम लञा तोमार 1/195
तोमार पवित्र धर्म नाहिक 11/189
तोमार पालित देह, जन्म 3/146
तोमार प्रसादे मोर ए 12/181
तोमार व्याख्या शुनि' 6/130
तोमार मङ्गल वाञ्छे 1/177
तोमार मने येइ उठे 8/132
तोमार ये अन्यवेश, अन्य 13/146
तोमार ये शिष्य कहे 6/107
तोमार लागि' जगन्नाथे 3/197
तोमार शरीर एइ, मोर 3/145
तोमार शिक्षाय पड़ि येन 8/121
तोमार सङ्ग लागि' मोर 6/60
तोमार सङ्गेर योग्य 7/64
तोमार सम्प्रदाये देखि 9/276
तोमार सन्मुखे देखि 8/268
तोमार स्पर्शयोग नहे 11/156
तोमा लागि' गोपीनाथ 4/133
तोमा-सब ना छाड़िब 3/176
तोमा-सबार आज्ञा बिना 3/174
तोमा-सम वैष्णव ना 9/356

त्र

त्रिजगते राधा-प्रेमेर 8/103
त्रिभुवन-मध्ये ऐछे 8/198
त्रिमल्ल भट्टेर घरे कैल 1/108

द

दण्डभङ्ग-लीला एइ 5/158
दर्शन-लोभेते करि' 12/210
दर्शने वैष्णव' हैल, बले 7/116
दशम-टिप्पणी, आर 1/35
दश दिनेर का-कथा 8/239
दानकेलिकौमुदी, आर 1/39
दामोदर-सम आर नाहि 10/116
दार्शनिक पण्डित सबाइ 9/51
दास्य-वात्सल्यादि-भावे 8/200
दुइ-एक सङ्गे चलुक 7/16
दुइजनार भरे दण्ड खण्ड 5/150
दुइ-तिन-गणने बाड़े 8/87

दुइ पुस्तक आनियाछि 11/141
दुइ पुस्तक लञा आइला 1/120
दुइविप्र–मध्ये एक विप्र 5/16
दुइ ब्रह्मे कैल सब 10/164
दुइ मास रहि' ताँरे 1/244
दुँहे दुँहार दरशने आनन्दित 8/47
दुःख–मध्ये कोन् दुःख 8/247
दुग्ध आउटि दधि मथे 14/214
दुग्धमात्र देन, केह ना 14/223
देख, जगन्नाथ कैछे 12/174
देखाइल ताँरे आगे 6/203
देखिब से मुखचन्द्र नयन 12/21
देखिया त' छद्म कैल 10/155
देखिले ना देखे तारे 6/92
देवी वा अन्य स्त्री 9/135
देह–स्मृति नाहि यार 13/142
दैवे आसि' प्रभु यबे 1/66
दैवे सार्वभौम ताँहाके करे 6/5
दैवे से वत्सर ताँहा 1/59
दोषरूप–छले करे गुण 7/29
द्वादश–वन देखि' शेषे 5/12
द्वारका–वैकुण्ठ–सम्पत् 14/219
द्विज–न्यासी हैते तुमि 11/191

ध

धरिब से पादपद्म हृदये 12/21
धर्मसंस्थापन लागि' बाहिरे 12/124
धीराधीरात्मक' गुण—अङ्गे 8/171
धोयापाखला' नाम कैल 12/203
ध्येय–मध्ये जीवेर कर्त्तव्य 8/252

न

नदीया–निवासी, विशारदेर 6/18
नदीया–सम्बन्धे सार्वभौम 6/55
नवद्वीपे छिला तेँह प्रभुर 10/103
नवद्वीप येइ शक्ति ना 7/109
नवविध अर्थ कैल शास्त्र 6/190
'नमो नारायणाय' बलि' 6/48
'नरक' वाञ्छये, तबु 6/268
नर्त्तक गोपाल देखे परम 9/246
नहे गोपी योगेश्वर 13/141
ना कहिला तेञि साध्य 9/272
ना जानि, तोमार सङ्गे 12/195
नाना–छले कृष्णे प्रेरि' 8/212
नाना–भक्तेर रसामृत 8/140
नाना–भावे चञ्चल ताहे 8/269
नाना शास्त्र आनि' कैला 1/33
"नाम्नदोषेण मस्करी"—एइ 12/191
नाम–प्रेमदान–आदि वर्णन 6/205
नामेर महिमा–शास्त्र करिये 9/28
नारद–प्रकृति श्रीवास करे 14/215
नारायण हैते कृष्णेर 9/144
नारायणेरका कथा, श्रीकृष्ण 9/148
नारीर यौवन–धन, यारे 2/25
ना सो रमण, ना 8/193
नाहि काँहा सविरोध, नाहि 2/86
निःशक्तिक' करि' ताँरे 6/153
निकटे ना आइसे, रहे 14/236
निज कार्य नाहि तबु 8/39
निज–गूढ़कार्य तोमार 8/279
निज–गृह–वित्त–भृत्य 10/55
निज जन्मस्थाने रहे 3/177
निज–दुःख–विघ्नादिर ना 4/186
निज–धन दिते निषेधिबे 5/29
निज–निज–मत छाड़ि' 9/10
निज–निज–शास्त्रोद्ग्राहे 9/43
निजरस आस्वादिते 8/278
निज–रूप प्रभु ताँरे 6/202
निज–लज्जा–श्याम 8/167
निज–सुख हैते ताते 8/207
निज–सुख हैते पलवाद्येर 8/209
निजेन्द्रिय–सुखवाञ्छा नाहि 8/217
निजेन्द्रिय–सुखहेतु कामेर 8/216
नित्यलीला स्थापन याहे 1/44
नित्यानन्द–गोसाञिरे 1/24
नित्यानन्द दूरे देखि' 14/235
नित्यानन्द देखिया प्रभुर 14/236
नित्यानन्द प्रभु महाप्रभु 1/93
नित्यानन्द–सङ्गे युक्ति 1/262
नित्यानन्दे कहे प्रभु 5/148
निन्दा–स्तुति–हास्ये शिक्षा 6/112
निवृन्त पुष्पशय्या उपरे 1/156
निरन्तर इँहाके वेदान्त 6/75
निरन्तर कर तुमि 6/121, 11/191
निरन्तर कह तुमि 'कृष्ण' 7/147
निरन्तर कामक्रीड़ा—याँहार 8/186
निरन्तर पूर्ण करे कृष्णेर 8/179
निरन्तर रात्रि–दिन विरह 1/52
निर्विशेष' ताँरे कहे येइ 6/141
निश्चय करिया कहे,—शुन 1/161
निश्चिन्त हञा भज चैतन्येर 11/22
निश्चिन्ते कृष्ण भजिब' 10/107
नीच–जाति, नीच–सङ्गी 1/189
नीचे कन्या दिले कुल 5/39
नीलाचल आसिते, पथे 7/20
नीलाचल–गौड़–सेतुबन्ध 1/19
नीलाचले तुमि–आमि 8/240
नीलाचले–नवद्वीपे येन 3/183
नीलाम्बर चक्रवर्त्तीर हयेन 6/52
नूतन एकशत घट, शत 12/78
नूपुरेर ध्वनिमात्र आमार 5/99

प

पञ्चपाण्डव तोमार पञ्चपुत्र 10/53
पञ्चविध मुक्ति त्याग 9/267
पञ्चविध मुक्ति' पाञा 9/257
पट्टडोरी लञा आइसे 14/253
पड़िछा मारिते तेँहो 6/5
पतिव्रता–शिरोमणि जनक 9/202
पथबान्धा ना याय 1/160
पथ साजाइल मने करिया 1/155
परम ईश्वर कृष्ण—स्वयं 8/133
परम पुरुषोत्तम स्वयं 14/220
परम–विरक्त, मौनी, सर्वत्र 4/179
परमार्थ थाकुक्, लोके 12/24
पराइल मुक्ता नासाय 5/132
परात्मनिष्ठा–मात्र वेष 3/8
परिणाम–वाद'—व्याससूत्रेर 6/170
परिपूर्ण–कृष्णप्राप्ति एइ 8/88
परिहास करियाछि ताँरे 7/66
परीक्षा करिया शेषे हैल 4/189
पहिले देखिलुँ तोमार 8/267
"पहिलेहि राग नयनभङ्गे 8/193
पाछे आमि करिब अर्थ 6/188
पाछे श्याम–वंशीमुख 6/203
पाण्डित्य आर भक्तिरस 7/65
पाण्डितयाद्ये ईश्वरतत्त्व–ज्ञान 6/87
पापराशि दहे नामाभासेइ 1/194
पापी–नीच उद्धारिते ताँर 11/45
पिठा–पाना, अमृत–गुटिका 12/167
पुँथि पाञा प्रभुर हैल 9/238
पुत्रसम स्नेह करेन 9/298
पुनः कहे,—शीघ्र चल 6/150
पुनरपि एइ ठाञि पाबे 7/129
पुराण–वाक्ये सेइ अर्थ 6/148
पुरी–गोसाञिर आज्ञाय 10/132
पुरीर वात्सल्य मुख्य 2/78
पुरुष, योषित्, किबा 8/138
पुरुषोत्तम आचार्य' ताँर 10/103
पुष्प–सम कोमल, कठिन 7/72
पूर्व–पूर्व–रसेर गुण 8/85
पूर्वे आसियाछिला तेँहो 9/295
पूर्वे उद्धव–द्वारे, एबे 13/139
पूर्वे प्रभु मोरे प्रसाद 11/116
पूर्वे विद्यानगरेर दुइ त' 5/10
पूर्वे माधव–पुरीर लागि' 4/20
पूर्वे यैछे कुरुक्षेत्रे सब 13/124
पृथिवीते रसिक भक्त नाहि 7/64
प्रगाढ़–प्रेमेर एइ स्वभाव 4/186
प्रणव' ये महावाक्य 6/174
प्रणव हैते सर्ववेद 6/174
प्रणय–मान–कञ्चुलिकाय 8/168
प्रतापरुद्र छाड़ि' करिबे 11/46
प्रतिवर्षे आइसे, सङ्गे रहे 1/256
प्रतिमा चलिञा आइला 5/110
प्रतिमा नह तुमि 5/96
प्रतियुगे करेन कृष्ण 6/100
प्रतिष्ठार भये पुरी रहे 4/147
प्रतिष्ठार स्वभाव एइ 4/146
प्रथम वत्सरे अद्वैतादि 1/46
प्रथमे मिलिला नित्यानन्द 1/183
प्रवेश करिते नारि,—स्पर्शि 9/363
प्रभावे वैष्णव' कैल सब 9/68
प्रभु–आज्ञा—प्रसाद–त्यागे 11/114
प्रभु–आज्ञाय कैल याहाँ 1/25
प्रभु–अज्ञाय भक्तगण 1/49
प्रभु कहे,—आमि मनुष्य 12/50
प्रभु कहे,—"एत तीर्थ 9/356
प्रभु कहे,—एथा मोर 9/332
प्रभु कहे,—एहो उत्तम 8/76
प्रभु कहे,—एहो बाह्य 8/59
प्रभु कहे,—एहो हय 8/71
प्रभु कहे,—कभु तोमार 7/147
प्रभु कहे,—कर्मी, ज्ञानी 9/276
प्रभु कहे,—कृष्णे तोमार 10/179
प्रभु कहे,—कृष्णेर एक 9/127
प्रभु कहे,—कोन् विद्या 8/244
प्रभु कहे,—गीता–पाठे 9/102
प्रभु कहे,—"तथापि राजा 11/10
प्रभु कहे,—तुमि कि 6/188
प्रभु कहे,—तुमि कृष्णभक्त 11/26
प्रभु कहे,—तुमि महाभागवत 8/44
प्रभु कहे,—तोमा स्पर्शि 11/189
प्रभु कहे,—पूर्ण यैछे 12/53
प्रभु कहे,—पूर्वाश्रमे तेँहो 9/301
प्रभु कहे,—भट्ट, तोमार 9/111
प्रभु कहे,—भट्टाचार्य, ना 6/184
प्रभु कहे,—मायावादी आमि 8/123
प्रभु कहे,—'मुक्तिपदे'—इहा 6/262
प्रभु कहे,—मूर्ख आमि 6/126
प्रभु कहे,—मोरे देह' 12/167
प्रभु कहे,—'विष्णु' विष्णु' 10/182
प्रभु कहे,—शास्त्रे कहे 9/258
प्रभु कहे,—साधु एइ 3/7
प्रभु कहे,—सूत्रेर अर्थ 6/130
प्रभुकृपा बिना मोर 12/9
प्रभुके कृष्ण जानि' कर 6/199
प्रभुके जानिल,—साक्षात् 6/280
प्रभुके ये भजे, तारे 7/110
प्रभु चतुर्भुज–मूर्त्ति ताँरे 10/33

प्रभु ताँरे देखि' जानिल 8/16
प्रभु ना खाइले, केह 14/40
प्रभुभक्तगण–मध्ये हैला 12/68
प्रभु भिक्षा कैल दिनेर 9/186
प्रभुर अत्यन्त मर्म्मी, रसेर 10/102
प्रभुर कृपाय ताँर स्फुरिल 6/205
प्रभुर कृपाय हय 7/107
प्रभुर चरण–युगे दिल 12/122
प्रभुर निकटे आछे यत 12/7
प्रभुर भावानुरूप स्वरूपेर 13/167
प्रभुर साक्षात् आज्ञा 11/113
प्रभुर सिद्धान्त केह ना 9/44
प्रभुर संन्यास देखि' उन्मत्त 10/104
प्रभुरूप करि' करे वस्त्रेर 12/38
प्रभुरे आसन दिया आपने 6/119
प्रमाणेर मध्ये श्रुति–प्रमाण 6/135
प्रह्लादेश जय पद्मामुख 8/5
प्राकृत–इन्द्रियेर ताँरे देखिते 9/192
'प्राकृत' निषेधि करे 6/141
प्राकृत–शक्तिते तखन 6/145
प्राण छाड़ा याय, तोमा 7/8
प्राणनाथ, शुन मोर निवेदन 13/138
प्राते शय्याय बसि' आमि 11/116
प्रेमा—प्रयोजन', वेदे तिन 6/178
प्रेम बिना कभु नहे 10/181
प्रेमभक्ति प्रवर्त्ताइला नृत्य 1/23
प्रेममय–वपु कृष्ण—भक्त 14/156
प्रेमावेशे तिन दिन आछे 3/38
प्रेमावेशे पड़िला तुमि 5/149
प्रेमावेशे पथे तुमि हबे 7/38
प्रेमे मत्त,—नाहि ताँर 4/22
प्रेमेर परम–सार 'महाभाव' 8/159
प्रेमेर 'स्वरूप'–'देह' 8/161

फ

फल्गु करि' मुक्ति' देखे 9/267
फाल्गुने आसिया कैल 7/4
फाल्गुनेर शेषे दोलयात्रा 7/5

ब

बलगण्डि 'भोगे'र प्रसाद 14/25
बसियाछेन ताते—येन 9/99
बहिरङ्गा—माया,—तिने 6/160
बहुजन्मेर पुण्यफले पाइ 7/47
बाल्यकाल हैते तोमार 3/165
बाल्यकाल हैते मोर 9/28
बाल्यकाले माता मोर 5/129
बाल्यावधि रामनाम–ग्रहण 9/26
बाहिरे ना कहे, वस्तु 8/264
बाहिरे नागरराज, भितरे 2/19
बाहिरे वामता–क्रोध 14/196
बाहिरे विषज्वाला हय 2/50
बाह्यान्तरे गोपीदेह व्रजे 9/134
बिना दाने एत लोक 1/169
बिल्वमङ्गल कैल यैछे 10/177
बुझ, कि ना बुझ 6/125
बौद्धगणेर उपरे अन्न 9/55
बौद्धाचार्य नव प्रश्न' सब 9/50
बौद्धाचार्येर माथाय थालि 9/55
ब्रह्मण्यदेव ! तुमि—बड़ 5/88
ब्रह्म–शब्दे कहे पूर्ण 6/147
ब्रह्मसंहिता, कर्णामृत, दुइ 1/120
ब्रह्म–सायुज्य हैते ईश्वर 6/269
ब्रह्म हैते जन्मे विश्व 6/143
ब्रह्माके वेद येन पड़ाइल 8/263
ब्रह्माण्ड–भितरे हय 1/267
ब्रह्मे, ईश्वरे सायुज्य दुइ 6/269
ब्राह्मण–समाज सब 9/305
ब्राह्मण–सेवाय कृष्णेर 5/24
ब्राह्मणेरे कहे,—तुमि 5/107

भ

भक्तगण 'कृष्ण' कहे 12/85
भक्तगणे सुख दिते 'ह्लादिनी' 8/157
भक्त ठाञि हार' तुमि 10/174
भक्ति बिना शास्त्रेर अन्य 6/237
भक्ति–शब्द कहिते मने 6/276
भक्तिसिद्धान्त ताते लिखियाछेन 1/43
भक्तिसिद्धान्त–विरुद्ध, आर 10/113
भगवत्ता–लक्षणेर इँहातेइ 6/78
भगवद्भक्तिविमुखेर हय दण्ड 6/263
भगवान् अनेक हैते यबे 6/145
भगवान्—'सम्बन्ध', भक्ति 6/178
भगवानेर सविशेषे एइ तिन 6/144
भजिलेह नाहि पाय 8/229
भट्ट कहे,—गुरुर आज्ञा 10/144
भट्ट कहे,—तुमि येइ 11/112
भट्ट कहे,—महान्तेर एइ 10/10
भट्टथारि हैते इँहारे 10/64
भट्टसङ्गे गोङाइल सुखे 9/86
भट्टाचार्य कहे,—तेँहो 10/15
भट्टाचार्य कहे,—'भक्ति' 6/263
भट्टाचार्य, तुमि इँहार 6/78
भट्टाचार्य प्रेमावेशे हैल 6/207
भट्टाचार्येर प्रार्थनाते प्रभु 6/193
भट्टाचार्येर वैष्णवता देखि' 6/280
भागवत–भारत, दुइ 6/97
भाग्यवान् तुमि—इँहार 13/97
भावयोग्य देह पाञा 8/221
भारती–गोसाञि केनेन 10/157
भारती–सम्प्रदाय एइ 6/72

भालकर्म देखि' तारे 12/116
भालमते शोधन करह 12/93
भाष्य कह तुमि—सूत्रेर 6/131
भोगेर समय लोकेर 13/201
भोजन करिलुँ, ना 12/189

म

मणि यैछे अविकृते 6/171
मण्डली छाड़िया गेला 8/113
मत्तगज भावगण, प्रभुर 2/64
मध्वाचार्य–ठाञि कृष्ण 9/247
मध्वाचार्य–स्थाने आइला 9/245
मनुष्येर वेश धरि' 1/268
मने ना मिलिले करे 12/116
मने भावेन, कुरुक्षेत्रे 1/53
मन्दिरेर चक्र देखि' 11/195
मन्दिर–निकटे याइते 11/165
मर्यादा हैते कोटि 10/140
महा–अपराध कैनु गर्वित 6/200
महाकुलीन तुमि—विद्या 5/22
महानुभावेर चित्तेर स्वभाव 7/72
महान्त–स्वभाव एइ 8/39
महाप्रभु बिना केह नाहि 12/182
महाप्रभुर गुण गाञा 1/269
महाप्रभुर भक्त, सब 11/67
महाप्रभुर भक्त तेँहो 6/18
महाभागवत देखे स्थावर 8/272
महाभाव–चिन्तामणि' 8/164
मात्सर्य छाड़िया मुखे 9/361
मातारे तावत् आमि 3/176
माने केह हय 'धीरा' 14/143
'मायाधीश'–'मायावश' 6/162
मायावादि–भाष्य शुनिले 6/169
मायासीता' दिया अग्नि 9/205
मायासीता' रावण निल 9/204
माला–प्रसाद लञा याय 11/74
मुकुन्द सेवन–व्रत कैल 3/7
मुकुन्द–सेवाय हय संसार 3/8
मुक्त–मध्ये कोन् जीव 8/248
मुक्ति, कर्म—दुइ वस्तु 9/271
मुक्तिपद–शब्दे साक्षात् 6/271
मुक्ति पदे याँर, सेइ 6/272
मुक्ति, भुक्ति वाञ्छे येइ 8/256
मुक्ति–शब्द कहिते मने 6/276
मुखे ना निःसरे वाणी 6/183
मुख्य' छाड़ि' लक्षणा'ते 6/151
मुख्यार्थ छाड़िया कर 6/134
मुञि तोमा छाड़िल 10/125
मुञि—नीच, अस्पृश्य 11/188
मूर्च्छित हञा आचार्य 9/56
मूर्च्छित हञा सबे 7/92
मूढ़ अधमजनेरे तेँहो 1/33
मो–बिनु दयार पात्र 1/201
मोर अपराधे तोमार दण्ड 5/151
मोर आगे निजरूप ना 8/277
मोर कर्म, मोर हाते 1/198
मोर गृहे 'प्रभुपादेर' हबे 10/23
मोर जिह्वा—वीणायन्त्र 8/132
मोर प्रतिज्ञा—ताँहा बिना 11/48
मोर मनेर कथा तुञि 1/69
मोर मनेर कथा रूप 1/71
मोर मुखे वक्ता तुमि 8/199
मोर लागि' प्रभुपदे करिबे 12/8
मोर श्लोकेर अभिप्राय ना 1/69
मोरे दया करि' कर 1/202
मोरे ना छुँइह प्रभु 11/156
मोरे पूर्ण कृपा कैल 9/160
म्लेच्छजाति, म्लेच्छसङ्गी 1/197
म्लेच्छ–भये सेवक मोर 4/42

य

यत नद नदी यैछे 10/187
यत पिये, तत तृष्णा 12/215
यतेक विचारे, तत पाय 9/364
यदि मोरे कृपा ना 12/10
यदि सेइ महाप्रभुर ना 11/49
यद्यपि असम्भाष्य बौद्ध 9/48
यद्यपि आपनि हये 1/28
यद्यपि आपने पूर्ण, सर्वैश्वर्य 11/135
यद्यपि ईश्वर तुमि परम 12/29
यद्यपि गोपाल सब अन्न 4/77
यद्यपि गोसाञि तारे हञाछे 12/124
यद्यपि जगद्गुरु तुमि 6/85
यद्यपि वस्तुतः प्रभुर किछु 1/225
यद्यपि मुक्ति हय एइ 6/266
यद्यपि राजारे देखि' हाड़िर 13/184
यद्यपि राय—प्रेमी 8/129
यद्यपि शुनिया प्रभुर 12/22
यद्यपि सखीर कृष्ण 8/211
यद्यपि सहसा आमि 3/175
यद्यपि सौन्दर्य कृष्ण 8/93
यबे येइ रस, ताहा 13/167
याइते नारिल, विघ्न 3/174
याँर ठाञि कलाविलास 8/182
याँर पतिव्रता–धर्म 8/183
याँर मुखे कैल प्रभु 8/310
याँर सद्गुण–गणने 8/184
याँर सौन्दर्यादि–गुण 8/183
याँरे कृपा करि' करेन 11/117
याँहा ताँहा राधाकृष्ण 8/276
याँहा नेत्र पड़े, ताँहा 10/179

याहाँ याहाँ प्रभुर चरण 1/165
याँहार सर्वस्व, ताँरे मिले 8/309
याँर सौभाग्य-गुण वाञ्छे 8/182
याँहा लज्जा याय, ताँहा 11/37
याहाँ सङ्गे चले एइ 1/224
याज्ञिक-ब्राह्मणी सब 12/32
यादवेर विपक्ष, यत 13/156
यावत् पड़ौं, तावत् पाङ 9/101
यारे जानाह, सेइ जाने 9/126
याँरे ताँर कृपा, सेइ 13/59
यारे देखे, तारे कह 7/101
याँहा इच्छा, याह, आमा 10/65
याँहार महिमा सर्वशास्त्रेते 8/97
याहा लागि' मदनदहने 1/55
याहा हैते हय कृष्णे 9/307
येइ कृष्णतत्त्ववेत्ता, सेइ 8/127
येइ ग्रामे रहि' भिक्षा 7/106
येइ भट्टाचार्य पड़े पड़ाय 6/278
येइ मत नाचाओ, सेइ 8/131
येइ येइ कहे, सेइ 12/113
ये इहा एकबार पिये 8/305
ये-काले करेन जगन्नाथ 1/53
ये-काले निमाञि पड़े 3/166
ये काले वा स्वपने 2/37
ये तोमार माया-नाटे 8/198
ये तोमारे राज्य दिल 1/176
ये ना वाञ्छे, तार 4/146
ये मदन तनुहीन, परद्रोहे 2/22
ये यैछे भजे, कृष्ण 8/90
योगपट्ट ना निल, नाम 10/108
योग्यपात्र हय गूढ़रस 1/74

र

रत्नगण-मध्ये यैछे 4/193
रथयात्रा देखि' ताँहा 1/47
रथयात्राय आगे यबे 1/54
रन्धने निपुणा ताँ-सम 9/298
'रस'—कोन् तत्त्व, 'प्रेम' 8/118
रसज्ञ कोकिल खाय 8/257
'रसराज', 'महाभाव'—दुइ 8/281
रसामृतसिन्धु, आर विदग्ध 1/38
राक्षसे स्पर्शिल ताँरे 9/189
रागमार्गे भजि' पाइल 8/222
रागानुग-मार्गे ताँरे भजे 8/220
राजवेश, हाती, घोड़ा 1/79
राजा कहे,—उपवास 11/111
राजा कहे,—शास्त्र-प्रमाणे 11/101
राजा कहे,—शुन, मोर 1/180
राज्य छाड़ि' योगी हइ' 12/10
राज्यभोग नहे चित्ते बिना 12/20
रात्रि-दिन कुञ्जे क्रीड़ा 8/188
रात्रि-दिन चिन्ते 8/227
राधाकृष्ण-कुञ्जसेवा साध्य 8/204
राधाकृष्णपदाम्बुज-ध्यान 8/252
राधाकृष्ण-प्रेमकेलि कर्ण 8/254
राधाकृष्णे तोमार महाप्रेम 8/276
राधाकृष्णे प्रेम याँर, सेइ 8/246
राधाकृष्णेर प्रेमकेलि—येइ 8/249
राधाकृष्णेर लीला एइ अति 8/200
राधा चाहि' वने फिरे 8/104
राधा-प्रति कृष्ण-स्नेह 8/165
राधा-प्रेमावेशे प्रभु हैला 14/235
राधार कुटिल-प्रेम हइल 8/109
राधार स्वरूप—कृष्णप्रेम 8/208
राधा लागि' गोपीरे यदि 8/102
राधिका-उन्माद यैछे 1/87
राधिकार भावकान्ति करि' 8/278
रामानन्द आइला अपूर्व 8/17
रामानन्द-चरित्र ताहे 8/303
रामानन्द-मिलन-लीला 8/311
'रामानन्द राय' आछे 7/62
रामानन्द राये मोर कोटी 8/310
राय कहे,—आमि—नट 8/131
राय कहे,—आमि शुद्र 10/54
राय कहे,—इहा आमि 8/120
राय कहे,—इहार आगे 8/96
राय कहे,—इहा वइ बुद्धि 8/190
राय कहे,—कान्तभाव प्रेम 8/79
राय कहे,—कृष्ण-कर्मार्पण 8/59
राय कहे,—कृष्णभक्ति-बिना 8/244
राय कहे,—"कृष्ण हय 8/186
राय कहे,—चरण—रथ 11/37
राय कहे,—ज्ञानमिश्रा भक्ति 8/64
राय कहे,—ज्ञानशून्या भक्ति 8/66
राय कहे,—दास्य-प्रेम 8/71
राय कहे,—प्रभु तुमि 8/277
राय कहे,—प्रेमभक्ति—सर्व 8/68
राय कहे,—येइ कहाओ 8/197
राय कहे,—स्वधर्माचरणे 8/57
रावण आसितेइ सीता 9/194
रावण देखिया सीता लैल 9/203
रावण हैते अग्नि कैल 9/203
रावणेर आगे माया-सीता 9/194
रास ना पाइल लक्ष्मी 9/120
रासलीला-वासनाते राधिका 8/112

ल

लक्षणा' करिते स्वतः 6/137
लक्ष्मी-आदि नारीगणेर 8/144
लक्ष्मीकान्तादि अवतारेर 8/144
लक्ष्मी केने ना पाइल 9/122

लक्ष्मी चाहे सेइ देहे 9/136
लक्ष्मी जिनि' गुण याँहा 14/226
लक्ष्मी-सङ्गे दासीगणेर 14/135
लघुभागवतामृतादिके करु 1/41
ललितादि सखी—ताँर 8/164
लावण्यामृत-धाराय तदुपरि 8/167
लीलाय चड़िल ईश्वर रथेर 13/22
लुकाइले प्रेम-बले जान 8/288
लोकापेक्षा नाहि इँहार 7/27
लोके कहे,—ए संन्यासी 9/314
लोकेरे कहिब गिया साक्षीर 5/104
लोहाके यावत् स्पर्शि' 6/279

व

वंशीगानामृत-धाम, लावण्य 2/29
वज्रेर स्थापित, आमि इँहा 4/41
वस्तुतत्त्व-ज्ञान हय कृपाते 6/89
वस्त्र पाञा राजार हैल 12/38
वाणीनाथ-पट्टनायके निकटे 10/61
वात्सल्ये हयेन तेँह येन 9/297
वामन हञा चाँद धरिते 1/205
विजातीय लोक देखि' 8/28
वितण्डा, छल, निग्रहादि 6/177
विदुरेर घरे कृष्ण 10/138
विधिमते कैल तेँहो 8/15
विधिमार्गे ना पाइये व्रजे 8/225
विनोदिनी लक्ष्मीर हय 9/119
विप्र कहे,—तुमि साक्षात् 9/214
विप्र कहे,—मूर्ख आमि 9/98
विप्र बले,—प्रतिमा हञा 5/95
विप्र लागि' कर तुमि 5/96
'विवर्त्तवाद' स्थापियाछे 6/172
विरक्त संन्यासी आमार 11/7
विशारदेर समाध्यायी,—एइ 6/53
विश्वम्भर जगन्नाथे के 13/13
विश्वरूप-उद्देशे अवश्य 7/11
विश्वरूप-सिद्धि-प्राप्ति 7/13
विश्वास करि' शुन 8/307
विश्वासे पाइये, तर्के 8/308
विषय छाड़िया तुमि 8/296
विषाद करेन कामबाणे 8/114
वृन्दावन-क्रीड़ाते लक्ष्मीर 14/122
वृन्दावन, गोवर्धन, यमुना 13/143
वृन्दावन याइबार ए 1/224
वृन्दावन याबेन प्रभु शुनि' 1/155
वृन्दावन-लीलाय कृष्णेर 14/123
वृन्दावने अप्राकृत नवीन 8/137
वृन्दावने आइला कृष्ण 14/73
वृन्दावने उदय कराओ 13/127
वृन्दावने गोविन्द-स्थाने 5/13
वृन्दावने साहजिक ये 14/219
वृन्दावनेर सम्पद् देख 14/204
वेद-आज्ञा यैछे, माता 3/186
वेदधर्म त्यजि' से कृष्णके 8/219
वेद-धर्म लङ्घि' कैले 6/234
वेद ना मानिया बौद्ध 6/168
वेद-पुराणेते एइ कहे 9/195
वेद-पुराणे कहे ब्रह्म 6/139
वेदान्त पड़ाइते तबे 6/120
वेदान्त-श्रवण,—एइ 6/121
वेदाश्रय नास्तिक्यवाद 6/168
वेदेर निगूढ़ अर्थ बुझन 6/148
वैराग्य-अद्वैत-मार्गे प्रवेश 6/75
वैशाखेर प्रथमे दक्षिण 7/6
वैष्णव-ज्ञाने बहुत 9/251
वैष्णव सकल पड़े 9/305
वैष्णव-संन्यासी इँहो 6/49
'वैष्णव' हइल लोक, सबे 7/89
वैष्णवेर हय एइ एक 10/13
वैष्णवेर मध्ये राम-उपासक 9/11
व्यथा पाञा करे, येन 14/199
व्यथा येन नाहि लागे 3/166
व्याज-स्तुति करे दुँहे 12/196
'व्याप्य'-'व्यापक'-भावे 10/168
व्यास—भ्रान्त बलि' सेइ 6/172
व्यास-सूत्रेर अर्थ—यैछे 6/138
व्रजदेवीर सङ्गे ताँर 8/93
व्रजवासी लोकेर कृष्णे 4/95
व्रजलोकेर कोन भाव 8/221
व्रजलोकेर भावे पाइये 9/128
व्रजलोकेर भावे येइ 9/131
व्रजे तोमार सङ्गे येइ 13/130
व्रजेन्द्रनन्दन बिना फाटे 2/16
व्रजेन्द्रनन्दन' बलि' ताँर 9/130
व्रजेन्द्रनन्दन-स्मृति हय 12/61
व्रजेश्वरीसुत भजे गोपीभाव 9/133

श

शङ्करारण्य' नाम ताँर 9/299
शतकोटि-गोपीते नहे 8/115
शतकोटि गोपी-सङ्गे 8/108
शत श्लोक कैल 6/206
शतेक संन्यासी यदि 3/100
शान्त-दास्य-सख्य 8/86
शास्त्रव्याख्या करिते ऐछे 6/191
शिरे वज्र पड़े यदि 7/48
शिष्य पड़िछा-द्वारा निल 6/8
शीतल, निर्मल कैल 12/133
शुक्लवस्त्रे मसि-बिन्दु 12/51
शुद्ध हय यदि, प्रभुरे 10/114
शुद्धाशुद्ध गीता पड़ि 9/98

शुनितेइ गोपालेर हइल 12/149
शुनि' प्रभु कहे किछु 6/190
शुनिले ना हय प्रभुर 10/113
शुष्कतर्क–खलि खाइते 14/87
शैल–उपरि हैते आमा 4/42
श्लोक करि' एक तालपत्रेते 1/61

श्र

श्रद्धाय चैतन्यलीला शुने 6/285
श्रवण–मध्ये जीवेर कोन् 8/254
श्रीगोपाल' नाम मोर 4/41
श्रीचैतन्य–नित्यानन्द–अद्वैत 8/309
श्रीनृसिंह, जय नृसिंह 8/5
श्रीपाद, धर मोर गोसाञिर 9/289
श्रीविग्रह ये ना माने 6/167
श्रीवृन्दावन–भूमि—याँहा 8/253
श्री–वैष्णव एक,—व्येङ्कट 9/82
श्रीभागवतसन्दर्भ–नाम ग्रन्थ 1/43
श्रीमाधवपुरीर सङ्गे श्रीरङ्ग 9/295
श्रुतिगण गोपीगणेर अनुगत 9/133
श्रुति–वाक्ये सेइ दुइ 6/136
श्रुति ये मुख्यार्थ कहे, सेइ 6/135
श्रेयो–मध्ये कोन् श्रेयः 8/250
श्रेष्ठ–उपास्य—युगल 8/255
शृङ्गार–रसराजमय–मूर्त्तिधर 8/142

ष

षड्विध ऐश्वर्य—प्रभुर 6/161
षड़ैश्वर्यपूर्णानन्द–विग्रह 6/152

स

सङ्कीर्त्तन–यज्ञे ताँरे करे 11/99
संस्कार करिये उत्तम 6/76
सकल–वैष्णवशास्त्र–मध्ये 9/240
सकल लोकेर आगे 5/112
सखीगण हय तार पल्लव 8/208
सखी बिना एइ लीला 8/202
सखी बिना एइ लीलाय 8/203
सखीभावे पाय राधाकृष्णेर 8/228
सखीभावे ये ताँरे करे 8/203
सखीर स्वभाव एक 8/206
सखी लीला विस्तारिया 8/202
सखी हैते हय एइ 8/201
सङ्गीत—गन्धर्व-सम, शास्त्रे 10/116
सच्चिदानन्द–तनु, व्रजेन्द्र 8/135
सच्चिदानन्दमय कृष्णेर स्वरूप 8/153
सच्चिदानन्दमय हय ईश्वर 6/158
सत्य एक बात कहोँ 1/201
सत्यविग्रह ईश्वरे', करह 9/277
सत्य–सीता आनि' दिल 9/207
सनकादि–शुकदेव ताहाते 6/198
संन्यास करि' विश्वरूप 7/44
संन्यास करिला शिखा 10/108
संन्यास ग्रहण कैल 10/104
संन्यासी देखिया मोरे 9/272
संन्यासी' बलिया मोरे ना 8/128
संन्यासीर अल्प छिद्र 12/51
संन्यासीर धर्म नहे 3/74
संन्यासीर धर्म नहे—संन्यास 3/177
संन्यासीर धर्म लागि' श्रवण 6/127
संन्यासीर वेष देखि' 8/283
संन्यासीर वेषे मोरे दिला 9/214
'सप्तताल–वृक्ष' देखे कानन 9/312
सप्तदिन पर्यन्त ऐछे करेन 6/123
सब खण्डि' प्रभु निज–मत 6/177
सब–भक्तेर आज्ञा निल 14/6
सबे, एक गुण देखि 9/277
सबे एक दोष तार 1/194
सबे एक सखीगणेर इँहा 8/201
सबे दण्डधन छिल, ताहा 5/153
सबे बले, केने आइला 1/213
'समाः'–शब्दे कहे श्रुतिर 8/224
सम्पत्तिर मध्ये जीवेर 8/246
सम्भाषिले जानिबे तुमि 7/65
सम्भाषिले जानिबे ताँर 7/67
सम्यक् वासना कृष्णेर 8/112
सर्व–अवतारी, सर्वकारण 8/133
सर्व–चित्ताकर्षक, साक्षात् 8/138
सर्व त्यजि' जीवेर कर्त्तव्य 8/253
सर्वत्र जल—याँहा अमृत 14/225
सर्वत्र स्थापय प्रभु वैष्णव 9/44
सर्वत्र हय ताँर इष्टदेव 8/273
सर्वदेश वैष्णव' हैल प्रभुर 7/108
सर्व मत दुषि' प्रभु 9/43
सर्वैश्वर्यपरिपूर्ण स्वयं 6/140
सर्वैश्वर्य–सर्वशक्ति–सर्वरस 8/135
सशरीरे सप्तताल अन्तर्धान 9/313
ससागर–शैल मही करे 13/83
सहज गमन करे,—यैछे 14/224
सहज गोपीर प्रेम,—नहे 8/214
सहज लोकेर कथा—याँहा 14/224
सहजेइ नित्यानन्द—कृष्णप्रेम 1/2
सहजेइ पूज्य तुमि, आरे 6/56
सहजे विचित्र मधुर चैतन्य 4/5
साक्षात् ईश्वर इँह, नाहिक 1/180
साक्षात् ईश्वर तुमि, के 8/121
साक्षात् पाण्डु तुमि, तोमार 10/53
साक्षात् महाप्रभुर द्वितीय 10/111
साक्षात् श्रीकृष्ण, तेँहो 10/15
साक्षाते ना देखिले मने 5/105
साक्षाते ना देय देखा 13/61

'साक्षिगोपाल' बलि' ताँर 5/118
सातदिन कर तुमि वेदान्त 6/124
साधारण-प्रेमे देखि' सर्वत्र 8/109
साध्यवस्तु' साधन'-बिना 8/196
साध्य-साधन आमि ना 9/255
साध्य-साधन-श्रेष्ठ जानाह 9/255
साध्वी हञा केने चाहे 9/112
साम्प्रतिक दुइ ब्रह्म' इहाँ 10/163
सायुज्य' शुनिते भक्तेर हय 6/268
सार्वभौम कहे,—नीलाम्बर 6/53
सार्वभौम परिवेशन करेन 6/43
सार्वभौम-सङ्गे मोर मन 8/124
सार्वभौम हैला प्रभुर भक्त 6/257
सार्वभौमेर हैल महाप्रसादे 6/231
सिद्धदेहे चिन्ति' करे 8/228
सिद्धान्त-शास्त्र नाहि 9/239
सिद्धिप्राप्तिकाले गोसाञि 10/133
सीतार आकृति-माया 9/193
सीता लञा राखिलेन 9/205
सुखरूप कृष्ण करे सुख 8/157
सुभद्रा-सहित देखे, वंशी 1/85
सुराबिन्दु-पाते केह ना 12/53
सूक्ष्म धूलि, तृण, काँकर 12/93
सूत्रेर अर्थ—भाष्य कहे 6/131
सूत्रेर मुख्य अर्थ ना 6/132
सूर्य येन उदय करि' 1/280
सेइ अर्थ मुख्य,—व्याससूत्रे 6/133
सेइ कृष्णे' गोपिकार नहे 9/149
सेइ गोपीभावामृते याँर 8/219
सेइ छले निस्तारये सांसारिक 10/11
सेइ छले सेइ देशेर 9/4
सेइ छिद्र अद्यापिह आछये 5/130
सेइ जन पाय व्रजे 8/220
सेइ जल वंश-सहित 7/122
सेइ जल लञा आपने 12/123
सेइ त' ईश्वर-तत्त्व 6/83
सेइत' पराण-नाथ 1/55, 13/113
सेइ त' सुमेधा, आर 11/99
सेइ दण्ड काँहा पड़िल 5/150
सेइ दिन ताँर घरे 9/20
सेइ दुइर दण्ड हय 6/265
सेइ दुइ स्थाप' तुमि 9/271
सेइ देहे कृष्णसङ्गे 9/134
सेइ नाम हइल तार 1/195
सेइ पञ्चम पुरुषार्थ 9/261
सेइ फेन लञा शुभानन्द 13/110
सेइ बहिर्वास सार्वभौम 12/37
सेइ बुझे, दुँहार पदे 5/158
सेइ ब्रह्म—बृहद्वस्तु 6/139
सेइ ब्रह्मे पुनरपि हये 6/143
सेइ भाव, सेइ कृष्ण 1/80
सेइ महाभाव हय चिन्तामणि 8/163
सेइ महाभावरूपा राधा 8/159
सेइ याइ' अन्य ग्रामे 7/104
सेइ वेष कैल, एबे 3/9
सेइ व्रजे पाये शुद्ध 9/131
सेइ शक्ति-द्वारे सुख 8/156
सेइ शक्ति प्रकाशि' 7/109
सेइ शब्दे आमार गमन 5/99
सेइ सती—प्रेमवती 13/153
सेइसब आचार्य हञा 7/107
सेइ सब तत्त्ववस्तु हैल 8/116
सेइ सब तीर्थ स्पर्शि' 9/4
सेइ सब दयालु मोरे 12/8
सेइ सब रसामृतेर 'विषय' 8/140
सेइ साध्य पाइते आर 8/204
सेइ सुखसमुद्रेर इँहा नाहि 13/130
सेइ से ए-सब लीला 7/110
सेइ से कर्त्तव्य, तुमि 6/122
सेइ से ताँहारे कृष्ण' 11/102
सेइ हैते कृष्णनाम 9/27
सेइ हैते भट्टाचार्येर 6/236
सेइ हैते भाग्यवान् 12/68
सेकाले दक्षिण हैते 10/91
से काले नाहि जन्मे 6/146
से-मन्दिरे गोपालेर 5/13
से मृत्तिका लय लोक 1/165
से-विग्रहे कह सत्त्वगुणेर 6/166
सौभाग्य-तिलक चारु 8/175
स्त्री-दरशन-सम विषेर 11/7
स्त्रीधन देखाञा तारे लोभ 9/227
स्थावर-जङ्गम देखे, ना 8/273
स्थावरदेह, देवदेह यैछे 8/256
स्नान करिबारे आइला 8/14
स्नेहवश हञा करे 10/139
स्नेह-भक्ति करि' किछु 6/120
स्नेह-सेवापेक्षा मात्र 10/139
स्वकल्पित भाष्य-मेघे करे 6/138
स्वतःप्रमाण वेद-वाक्ये 6/179
स्वतःप्रमाण वेद सत्य 6/137
स्वमाधुर्ये सर्व चित्त 9/127
'स्वयं भगवान्' कृष्ण 9/141, 6/147, 9/147
स्वरूप कहे,—याते जानिल 1/72
स्वरूपेर इन्द्रिये प्रभुर 13/164
स्वाद जानि' तैछे क्षीर 4/120
स्वाभाविक तिन शक्ति 6/153

ह

हरिदास कहे,—आमि 11/165

हरिदास ठाकुर, श्रीरूप	1/63
हरिदास' बलि' प्रभु डाके	12/160
हरिबोल' बलि' काङ्गाल	14/46
हरिबोल' बलि' तारे	14/45
हरिभक्तिविलास, आर	1/35
हस्ते ताँरे स्पर्शि कहे	13/93
हारि' हारि' प्रभुमते करेन	9/45
हासिञा गोपालदेव तथाय	5/106
हृदये प्रेरण कर, जिह्वाय	8/122
हेनकाले गोविन्देर हैल	10/131
हेनकाले गौड़ीय एक	12/122
हेनकाले दोलाय चड़ि'	8/14
हेनकाले महाकाय एक	9/54
हेन–जीवे भेद' कर	6/163
हेन–जीवे ईश्वर–सह	6/162
हेन तोमार सङ्गे मोर	12/195
हेन–भगवाने तुमि कह	6/152
हेन–मोरे स्पर्श' तुमि	7/145
हेन शक्ति नाहि मान	6/161
हेन–सङ्ग विधि मोर	7/47
ह्लादिनीर सार अंश, तार	8/158

शब्दकोश

अ

अक्षजज्ञान—इन्द्रियोंके द्वारा प्राप्त ज्ञान
अघटन-घटन-पटीयसी—असम्भवको भी सम्भव तथा इसके विपरीत करनेवाली
अचिद्वस्तु—जो वस्तु चित् नहीं हो
अच्छेद्य—अविभाज्य, जिसका छेदन ना हो सके
अच्युत—जो च्युत नहीं हो
अज—अजन्मा
अजागलस्तन—बकरीके गलेमें लटकनेवाली स्तनके जैसी चीज
अज्ञ—ज्ञानरहित
अणिमा—योगकी आठ सिद्धियोंमेंसे एक, जिसमें योगी अणुके समान सूक्ष्म हो जाता है
अतिक्रम—मर्यादा, कर्त्तव्य, अधिकार आदिका उल्लङ्घन
अतिक्रान्त—अतीत, क्रमका उल्लङ्घन किया हुआ
अतिशय—अत्यधिक
अतिशयोक्ति—किसी बातका बढ़ा-चढ़ाकर कहना
अत्याज्य—नहीं त्यागने योग्य
अत्युत्तम—अति उत्तम
अदृष्ट—न देखा हुआ, अज्ञात
अधिदैव—आराध्य देवता
अधिरूढ़—बढ़ा हुआ
अधिष्ठान—आधार, आश्रय
अनभिज्ञ—न जाननेवाला
अनवरत—निरन्तर
अनायास—बिना कष्टके
अनिर्वचनीय—वचनसे ना वर्णन करने योग्य
अनुक्षण—निरन्तर
अनुगत—अनुगामी, अधीन
अनुवर्त्तन—अनुसरण, अनुगमन
अनुष्ठान—आरम्भ करना, कोई धार्मिक कृत्य
अनुसन्धान—खोज, प्रयत्न
अन्तर्भुक्त—किसीके अन्तर्गत होना
अन्तर्भूत—अन्तर्गत
अन्त्य—अन्तका, आखिरी
अन्यतम—बहुतोंमें से एक, सर्वश्रेष्ठ
अन्वय—वाक्यमें शब्दोंका परस्पर सम्बन्ध, मेल
अन्वेषण—खोज, ढूँढना
अपकार—अहित
अपटुता—अकुशलता
अपरा—जो श्रेष्ठ ना हो
अपरिमित—अगणित, अनगिनत
अपवर्ग—मोक्ष, निर्वाण
अपूर्व—जो पहले ना हुआ हो, अनूठा
अप्राकट्य—अप्रकट होना
अप्राकृत—अलौकिक
अप्रारब्ध—वैसा फल जो वर्तमान शरीरमें न भोगा जा रहा हो
अप्रासङ्गिक—प्रस्तुत विषयसे असम्बद्ध, प्रसङ्गके विरुद्ध
अबाध—बाधारहित
अभयत्व—अभयता
अभिज्ञ—जाननेवाला
अभिधा—नाम, वाच्यार्थ प्रकट करनेवाली शब्द शक्ति
अभिधान—शब्दकोष
अभिधेय—अर्थ या उपाय, कथनीय, विषय

अभिप्राय—मूल अर्थ, तात्पर्य
अभिप्रेत—उद्दिष्ट, अभिलाषित, स्वीकृत
अभिवृद्धि—अभ्युदय, बढ़ना
अभिव्यक्ति—प्रकट करना
अभिसन्धि—जोड़, समझौता
अभिसार—आगे बढ़ना, प्रियसे मिलने जाना
अभिहित—कहा हुआ
अभीष्ट—प्रिय, रुचिकर
अभ्यस्त—बार बार अभ्यास किया गया
अभ्युदय—उदय
अमित—अत्यधिक
अरण्य—वन
अवगत—जाना हुआ
अर्वाचीन—नया, बादमें उत्पन्न हुआ
अवतारणा—नीचे लाना, इन्द्रियगोचर करना
अवतीर्ण—अवतारके रूपमें प्रकट
अवधारण—शब्दके अर्थकी सीमा बाँधना, निश्चय करना
अवयव—अङ्ग, अंश
अवरुद्ध—रुका हुआ
अवलम्बन—आश्रय लेना, सहारा लेना
अवलोकन—देखना
अवशिष्ट—बचा हुआ, शेष
अवस्थान—रहना, अवस्थिति
अविचिन्त्य—अचिन्त्य
अविच्छिन्न—अविभक्त, लगातार अविच्छिन्न तैलधारावत्-तेलकी धाराके समान अटूट
अव्यय—अविकारी
अव्याकृत—अव्यक्त
अशेष—सम्पूर्ण
अष्टसिद्धि—आठ प्रकारकी सिद्धियाँ
असङ्ग—आसक्तिहीन
असङ्गत—प्रसङ्गविरुद्ध, अनुचित
असङ्गति—मेलका ना होना
असंस्कृत—संस्कारहीन
असमोर्द्ध—जिससे बड़ा और जिसके बराबर कोई नहीं हो
असार—सारहीन
असूया—ईर्ष्या, दूसरेके गुणमें दोष निकालना

आ

आख्यायिका—कहानी
आच्छन्न—ढका हुआ
आत्मविषयणी—आत्म-सम्बन्धी
आत्मसात्—अपने अधिकारमें
आत्यन्तिक—असीम
आदित्य—सूर्य
आधान—स्थापन, कोई वस्तु रखनेका स्थान रखना
आधिदैविक—देवताओंके द्वारा कृत
आधिभौतिक—अन्य प्राणियों द्वारा प्रदत्त
आध्यात्मिक—मानसिक, आत्म-सम्बन्धी
आपाततः—अचानक, अन्तमें
आप्त—पूर्ण, कुशल
आम्नाय—वेद, श्रुत, परम्पराप्राप्त उपदेश
आयुध—अस्त्र
आरूढ़—आसीन
आरोहण—चढ़ना, ऊपरकी ओर जाना
आर्त्ति—क्लेश, पीड़ा
आर्ष—ऋषियोंका
आलोचना—गुण-दोष निरूपण
आलोच्य—आलोचना योग्य
आह्लादित—आनन्दित

इ

इति—इस प्रकार, समाप्ति
इहलोक—यह लोक

ई

ईक्षण—दृष्टिपात
ईशिता—ईश्वरत्व

उ

उच्छिष्ट—खाकर छोड़ा हुआ, परित्यक्त
उत्कृष्ट—उन्नत, श्रेष्ठ
उद्‌बुद्ध—जगा या जगाया हुआ, विकसित
उद्भासित—व्यक्त, चमकता हुआ
उद्यत—तैयार
उद्रेक—प्रचुरता, बढ़ती
उद्वेग—क्षोभ, चित्तकी अस्थिरता
उपक्रम—योजना, आरम्भ, प्रयास
उपशम—विराग, विरक्ति
उपलक्षित—इशारेसे बताया हुआ
उपाङ्ग—छोटा या सहायक अंग
उपार्जित—कमाया हुआ
उपादान—साधन-सामग्री
उपादेय—ग्रहण करने योग्य, उपयोगी
उपेयत्व—उपाय-योग्य होनेका भाव
उरु—विस्तृत, महान
उरुक्रम—विष्णु
उरुगाय—उत्तम व्यक्तियोंके द्वारा जिसका स्तुतिगान किया गया हो

ए

एकरस—जो सदा एक रूपमें रहे,
एकीभूत—जो मिलकर एक हो गया हो

ऐ

ऐहिक—सांसारिक

औ

औत्सुक्य—उत्सुकता
औद्धत्य—उद्धतता, अक्खड़पन
औपाधिक—उपाधियुक्त

क

कर्त्तृत्व—कर्ताका धर्म, कार्य
कलुषित—गंदा, कलुषयुक्त
कल्प—वेदका एक अङ्ग, ब्रह्माका एक दिन
कल्पवृक्ष—इच्छा पूरी करनेवाला वृक्ष
काम्यकर्म—फलकी कामनासे किया जानेवाला कर्म
कैतव—छल, धोखा
केवला भक्ति—शुद्धा भक्ति
कैङ्कर्य—दासत्व
कैवल्य मुक्ति—निर्वाण मुक्ति
कौतूहलवश—उत्सुकतावश
क्रोड़ीभूत—अन्तर्भूत
क्लान्त—थका हुआ, क्षीण

क्ष

क्षिति—पृथ्वी
क्षेत्र—शरीर
क्षेत्रज्ञ—शरीरका ज्ञाता, आत्मा तथा परमात्मा
क्षोभ—असन्तोष, व्याकुलता

ग

ग्रथित—गूँथा हुआ
ग्रन्थि—गाँठ
ग्रास—आहार
ग्रीवा—गर्दन

घ

घ्राण—गन्ध, सूँघनेकी शक्ति

च

चित्तगुहा—हृदयरूपी कन्दरा
चित्–शक्ति-भगवानकी एक प्रकारकी शक्ति
चिदालोचना—चित्-वस्तुकी आलोचना
चिन्तामल—चिन्तारूपी मल
चिन्मयत्व—चिन्मयता
चैतन्यत्व—चेतनता
चैतन्यनिष्ठ—चित्-वस्तुमें जिसकी निष्ठा है
चैतन्यहीन—चेतनारहित

छ

छन्दविद्या—अठारह विद्याओंमें एक

ज

जर्जरित—जो जर्जर हो गया हो

त

तत्त्वज्ञान—तत्त्ववस्तुका ज्ञान
तत्त्वतः—यथार्थतः
तत्त्वविद्—तत्त्वको जाननेवाला
तदीय—भगवत्-सम्बन्धी
तनय—पुत्र
तन्मय—तल्लीन
तादात्मय—दो वस्तुओंके परस्पर अभिन्न होनेका स्वभाव
तारतम्य—दो वस्तुओंके घट-बढ़कर होनेका भाव
तिर्यग्—पशु-पक्षी
तैलधारावत्—तैलकी भाँति धारावाला
त्रिगुणातीत—तीनों गुणोंसे अतीत
त्रिवर्ग—धर्म, अर्थ और काम

द

दिक्पाल—दश दिशाओंके रक्षक देवता
दुर्ज्ञेय, दुर्बोध—कठिनाईसे जानने योग्य
दुर्निगृहीत—कठिनाईसे वशमें लाया हुआ
दुर्वारित—कठिनाईसे निवारण किया हुआ
दुरूह—कठिन
दुस्त्याज्य—नहीं त्यागने योग्य
देदीप्यमान—चकमता-दमकता हुआ
देहाध्यास—देहमें मिथ्या अभिमान
द्रव्यमययज्ञ—द्रव्य द्वारा किया गया यज्ञ
द्विजवर—ब्राह्मणश्रेष्ठ
द्वैतभाव—दो होनेका भाव

ध

धूसरित—धूलसे भरा हुआ
ध्वनित होना—पता चलना

न

नराकृति—मनुष्यके समान आकृति
नामाभास—नामका आभास
निःशक्तिक—शक्तिरहित
निःश्वास—प्राणवायु या साँसका बाहर निकलना
निःसृत—निकला हुआ
निकृष्ट—तुच्छ
निकेतन—घर
निक्षेप करना—फेंकना
निगृहीत—निग्रह किया हुआ
निग्रह—संयम
निन्तान्त—अत्यन्त, एकदम
निमज्जित—डूबा हुआ, स्नात
नियमाग्रह—नियम-पालनमें आलस्य
निरञ्जन—निर्दोष, अज्ञानसे रहित
निरपेक्ष—किसी औरकी अपेक्षा नहीं
निर्गत—बाहर निकला हुआ
निर्गुण—सत्त्व, रज और तमोगुणसे अतीत
निर्दिष्ट—निर्देशित
निर्वाण—मोक्ष
निर्विकल्प—विकल्पसे रहित
निर्विवाद—बिना विवादका
निरुद्ध—विशेषरूपसे रोका हुआ
निरूपक—निरूपण करनेवाला
निरूपण—किसी विषयको ठीक-ठीक समझा देना
निशा—रात्रि
निष्काम कर्म—कामनासे रहित कर्म
निष्पन्न—जिसकी उत्पत्ति हुई है
निसर्गवाद—प्रकृतिवाद (प्रकृति ही जगत्की सृष्टि करनेवाली है, ऐसा मतवाद)
निस्तारक—निस्तार करनेवाला
निस्त्रैगुण्य—तीनों गुणोंसे अतीत
निहत—मारा हुआ
नीलमणि—नीलम
नैतिक—नीति-सम्बन्धी

नैमित्तिक—निमित्तसे उत्पन्न
नैरन्तर्य—निरन्तर होनेका भाव
नैर्घृण्य—निर्ममता, क्रूरता

प

पक्षान्तर—दूसरी ओर
पन्था—पथ
परिज्ञात—अच्छे प्रकारसे ज्ञात
परनिष्ठित—दूसरेमें निष्ठावाला
परदार—दूसरेकी स्त्री
परवर्ती—बादमें
पराक्रान्त—शक्तिशाली
परिग्रह—ग्रहण
पराभक्ति—श्रेष्ठा, शुद्धा भक्ति
पराभूत—पराजित
परिचर्या—सेवा
परिचालक—चलानेवाला
परिदृष्ट—दृष्ट
परिनिष्ठित—पूर्णतया निपुण
परिमित—सीमित
परिलक्षित—अच्छी तरह देखाभाला हुआ
परिव्राजक—संन्यासी
परिवेष्टित—घिरा हुआ
पर्यन्त—तक
पर्यवसित—समाप्त
पाण्डित्य—विद्वता
पारत्रिक—परलोक-सम्बन्धी
पारलौकिक—परलोक-सम्बन्धी
पार्षद—परिकर
पाषण्डी—पाखण्डी
पूर्वपक्ष—संशयके सम्बन्धमें उठाया गया प्रश्न
पूर्वराग—मिलनसे पहलेका राग
प्रकरण—निर्माण, प्रसङ्ग
प्रकृत—यथार्थ
प्रकृष्ट—उत्तम
प्रक्षिप्त—बादमें जोड़ा या घुसाया हुआ
प्रच्छन्न—ढका हुआ
प्रजल्प—इधर-उधरकी बात
प्रज्ञा—बुद्धि
प्रणयन—रचना, निर्माण
प्रणत—शरणागत
प्रणतपाल—शरणागतकी रक्षा करनेवाले
प्रणति—प्रणाम, शरणागति
प्रताड़ित—सताया गया
प्रतिपादित—प्रमाणित
प्रतिपाद्य—जिसे प्रमाणित किया जाय
प्रतिभात—प्रभायुक्त, ज्ञात
प्रतीयमान—जान पड़ता हुआ, जिसकी प्रतीति हो रही हो
प्रत्यगात्मा—जीवात्मा
प्रत्यवाय—दोष
प्रत्याहार—निरोध, रोकना
प्रत्युपकार—भलाईके बदलेमें की हुई भलाई
प्रदत्त—दिया हुआ
प्रधान—मायाकी एक वृत्ति
प्रधानतः—मुख्यरूपसे
प्रपत्ति—शरणागति
प्रभूत—अत्यधिक
प्रभृति—जैसा
प्रयोजनीयता—आवश्यकता
प्रयोजक—प्रयुक्त करनेवाला
प्रयोजकत्व—प्रयोजक होनेका भाव
प्रवर—श्रेष्ठ
प्रवर्त्तक—किसी काममें लगानेवाला, आरम्भ करनेवाला
प्रवृत्ति—मनका किसी विषयकी ओर झुकाव, प्रभाव
प्रशस्त—प्रशंसाके योग्य
प्रशान्तात्मा—शुद्ध या शान्त आत्मा
प्रशामक—शान्त करनेवाला
प्राकृत—प्रकृति-सम्बन्धी

प्राक्तन—प्राचीन
प्रादुर्भूत—आविर्भूत, अवतरित
प्रादेशिक वाक्य—प्रसङ्गगत, स्थानीय वाक्य
प्रापक—प्राप्त करने या करानेवाला
प्रापञ्चिक—जगत् या प्रपञ्च-सम्बन्धी
प्राप्य—प्राप्त होने योग्य
प्रार्थित—प्रार्थना किया हुआ
प्रेमास्पद—प्रेमका स्थल
प्रेमोत्कर्ष—प्रेमका उत्कर्ष

ब

बाहुल्य—अधिकता
बाह्य अङ्ग—बाहरी अङ्ग
बिद्ध—छेदा हुआ, आहत
बृहत्—बड़ा
बोधगम्य—समझमें आने योग्य
ब्रह्मलय—ब्रह्ममें लय होना
ब्रह्मवेत्ता—ब्रह्मको जाननेवाला
ब्रह्मानन्द—ब्रह्मका आनन्द
ब्रह्मानुभूति—ब्रह्मकी अनुभूति

भ

भक्तानन्दायिनी—भक्तोंको आनन्द देनेवाली
भोक्तृत्वभाव—भोक्ता होनेका भाव

म

मत्सम्बन्धी—मेरे सम्बन्धी
मत्सरता—डाह, जलन, द्वेष
मथन—मथनेका भाव
मधुरिमा—माधुर्य
मन्वन्तर—ब्रह्माजीके दिनका चौदहवाँ भाग
मन्तव्य—विचार, मत
मर्मार्थ—सार
महत्—बड़ा
मायाच्छन्न—मायाके द्वारा आच्छन्न
मुकुलित—आधा विकसित
मुमुक्षु—मुक्तिकी इच्छा करनेवाला
मेधायुक्त—मेधावी
मोहान्ध—मोहसे अन्धा
म्लेच्छ—चारो वर्णोंसे भी नीच

य

यतिगण—संन्यासी लोग
याग—यज्ञ
यादृच्छिक—स्वतन्त्र, ऐच्छिक
युक्तियुक्त—उचित, युक्तिपूर्ण
युगपत्—एक ही समयमें, साथ-साथ
युगावतार—प्रत्येक युगमें लेनेवाले अवतार
योगमाया—भगवान्‌की परा शक्ति
योगस्थैर्य—योगकी स्थिरता

र

रक्तिम—लालिमायुक्त
रञ्जित—रंगा हुआ
रुक्ष—रूखा, नीरस

ल

लिङ्गशरीर—सूक्ष्म शरीर
लिप्सा—किसी वस्तुको पानेकी इच्छा
लुब्ध—ललचाया हुआ, लोभित
लोकपाल—लोकका पालन करनेवाला
लोकप्रवर्त्तन—लोगोंके कल्याणके लिये

व

वञ्चक—वञ्चना करनेवाला
वयस—उम्र
वर्चस्व—अधिकार
वर्णविशिष्ट—वर्णवाला
वर्णसङ्कर—भिन्न जातियोंके स्त्री-पुरुषसे उत्पन्न
वाक्—वाणी, बोलनेकी इन्द्रिय
वाचाल—अधिक बोलनेवाला
वागिन्द्रिय—जिह्वा
विक्षिप्त—पागल, उद्विग्न

विगुण—गुणहीन
विच्युति—भूल, पतन, वियोग
विजितात्मा—जिसने मनको जीत लिया है
विज्ञ—पण्डित, जाननेवाला
विदित—मालूम
विधर्म—धर्मविरूद्ध
विधिवादिगण—नैतिक लोग
विधेय—करने योग्य
विधेयात्मा—जिसकी आत्मा संयत हो
विन्यास—व्यवस्थित करना
विपर्यय—प्रतिकूलता, विपरीतता
विभूति—ऐश्वर्य
विरहकातर—विरहसे कातर
विरोधाभास—विचारमें विरोध प्रतीत होना
विलास—क्रीड़ा
विवक्षित—इच्छित, कथित
विवृत—स्पष्ट, व्यक्त
विशारद—निपुण
विशिष्ट—विशेषतायुक्त
विशिष्टता—विशेषता
विशुद्धचित्त—जिसका चित्त शुद्ध है
विशेषत्व—विशेषता
विषयणी—विषयसे सम्बन्धित
विहित—आदेश किया हुआ
वृष्टि—वर्षा
वेदज्ञ—वेदोंके जाननेवाला
वैषम्य—विषमता
व्यङ्गोक्ति—गूढ़भाषा, वह भाषा जिसमें व्यङ्ग हो
व्यतिक्रम—उल्लङ्घन
व्यतिरेक—असङ्गति, निषेध
व्यवहृत—व्यवहार किया हुआ
व्योम—आकाश

श

शोच्य—शोचनीय
शैव—शिवके उपासक
श्रुत—सुना हुआ
श्रोतव्य—सुनने योग्य
श्लेषोक्ति—छिपे अर्थवाली बात

ष

षडैश्वर्यपूर्ण—छः ऐश्वर्योंसे परिपूर्ण

स

सङ्कीर्णता—उदार ना होनेका भाव
संवरण—छिपाना
संवेदन—अनुभूति
संस्पर्श—अच्छी तरहसे होनेवाला स्पर्श
संहर्त्ता—संहार करनेवाला
सङ्गति—मेल
सञ्चित—जमा किया हुआ
सदातन—विष्णु
सद्विवेकी—सद् विवेकवाला
समत्वभाव—समताका भाव
सन्निविष्ट—उत्तम रूपसे एकाग्र
समाहर—समुच्य, समूह
समाहित—संयमित, व्यवस्थित
सम्बन्धविशिष्ट—सम्बन्धवाला
सम्मत—सहमत, एक मत
समन्वित—संयुक्त, स्वाभाविक रूपसे क्रमबद्ध
सम्यक्—भलीभाँति, अच्छी तरह
सर्वतन्त्र—समस्त सिद्धान्त
सर्वतोभावेन—सम्पूर्ण रूपसे
सर्वभूतात्मा—सभी जीवोंके आत्मा अर्थात् परमात्मा
सर्वभुक्—सब कुछ खा जानेवाला
सर्वात्मकत्व—सर्वात्मकता
सहस्र—हजार
साम—सामवेद
सामर्थ्यविशिष्ट—सामर्थ्यवान्
साम्यलक्षण—समानताका लक्षण
सारगर्भित—तत्त्वपूर्ण

सालोक्य मुक्ति—जीवका भगवान्‌के साथ एक ही लोकमें वास करना
साष्टाङ्ग प्रणाम—आठ अङ्गोंसे प्रणाम (सिर, हाथ, पैर, आँख, जंघा, हृदय, वचन और मन)
सुखान्वेषी—सुखकी खोज करनेवाला
सुदुराचारी—अति दुराचारी
सुधा—अमृत
सुरस—रसयुक्त
सुष्ठु—भली भाँति, अच्छी तरह
सुस्पष्ट—विशेषरूपसे स्पष्ट
सौम्य—सुन्दर, कोमल
स्खलित—गिरा हुआ
स्निग्ध—स्नेहयुक्त, प्रियता
स्नेहाधिक्य—स्नेहकी अधिकता
स्फूर्ति—स्फुरण, व्यक्त होना
स्पृहा—इच्छा, आकाङ्क्षा
स्फुरण—व्यक्त होना
स्फुलिङ्ग—चिङ्गारी
स्मार्त्त—स्मृत्ति शास्त्रका अनुयायी
स्थायित्व—स्थिरता
स्रुवा—घीमें आहुति डालनेकी करछी
स्वच्छन्द—स्वतन्त्र
स्वधर्मस्थ—अपने धर्ममें स्थित
स्वयंभू—स्वयं उत्पन्न
स्वानन्दपूर्ण—अपने आनन्दमें पूर्ण

ह

हत—मरा हुआ
हतभागा—भाग्यहीन
हन्त—मारना
हिरण्यगर्भ—ब्रह्मा
हेयता—तुच्छता
हृदगत—हृदय-सम्बन्धी